



## ‘संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क’ की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१—थानस्थ शिव [ कविता ]	... १	पूजाके रहस्य तथा महत्वका वर्णन	... ३१
२—शिवका स्तवन [ कविता ] ( पाण्डेय पं० )	... २	५—महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिङ्ग- पूजनका महत्व बताना ...	... ३२
३—शिवपुराणमें शिवका स्वरूप	... ३	६—पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पञ्चाक्षर मन्त्रकी महत्त्वा, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान ...	... ३३
<b>शेशिवपुराण-माहात्म्य</b>		७—शिवलिङ्गकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजन- की विधिका वर्णन तथा शिवपदकी प्राप्ति कराने- वाले सत्कर्मोंका विवेचन ...	... ३५
१—शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजी- का उन्हें शिवपुराणकी उत्कृष्ट महिमा सुनाना ...	१७	८—सोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके बलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी ...	... ३८
२—शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति तथा चञ्चुलका पापसे भय एवं संसारसे		९—सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, संस्थावन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अभिष्ठोत्र आदिकी विधि एवं महिमाका वर्णन ...	... ३९
— वैराग्य ...	... १८	१०—अभियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन ...	... ४३
३—चञ्चुलकी प्रार्थनासे द्वाद्धाणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा चञ्चुलका पार्वतीजीकी सुखी एवं सुखी होना ...	... २०	११—देव, काल, पात्र और दान आदिका विचार ...	... ४५
४—चञ्चुलके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आशा पाकर तुम्भुरुका विन्द्यपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर बिन्दुग्रन्थ किशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतिका शिवधाममें सुखी होना ...	... २२	१२—पृथ्वी आदिसे निर्मित देव-प्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वारु तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिङ्गके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन ...	... ४६
५—शिवपुराणके श्रवणकी विधि तथा श्रोताओंके पालन करने योग्य नियमोंका वर्णन ...	... २५	१३—पद्मलिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म	
<b>श्रीशिवमहापुराण ( विद्येश्वरसंहिता )</b>			
१—प्रथागमें सूतजीसे मुनियोंका तुरंत पाप नाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न	... २७		
२—शिवपुराणका परिचय ...	... २८		
३—साध्य-साधन आदिका विचार तथा श्रवण, कीर्तन और सनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठता- का प्रतिपादन ...	... २९		
४—भगवान् शिवके लिङ्ग एवं साकार विग्रहकी			

रूप ( उँचाकर ) और स्थूल रूप ( पञ्चाश्वर मन्त्र ) का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यवद्धके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके <sup>२</sup> लोकों- तकका विवेचन करके कालातीत, पञ्चाश्वरण- विशिष्ट शिवलोकके अनिवार्यनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता                    ... ५१
१४—बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिङ्ग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्त्व, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा शिवके भस्म- धारणका रहस्य    ... ५६
१५—पार्थिवलिङ्गके निर्माणकी रीति तथा बैदमन्त्रों- द्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन    ... ५९
१६—पार्थिवपूजाकी महिमा, शिवनैवेद्यभक्षणके विषयमें निर्णय तथा विलक्षका माहात्म्य            ... ६४
१७—शिवनाम-जप तथा भस्मधारणकी महिमा, त्रिपुष्टके देवता और स्थान आदिका प्रतिपादन    ... ६६
१८—खद्राक्ष-धारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन    ... ६९
<b>खट्टसंहिता प्रथम ( सृष्टि ) खण्ड</b>
१—ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीका उन्हें नारदमोह- का प्रसङ्ग सुनाना, कामविजयके गवसे युक्त हुए नारदका शिव, ब्रह्मा तथा विष्णुके पास जाकर अपने तपका प्रभाव वतना...                                    ... ७२
२—मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्का अपने रूपके साथ उन्हें वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणों- को शाप देना    ... ७५
३—नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना, फिर मायाके दूर हो जानेपर पश्चात्तापपूर्वक भगवान्के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-दुश्शाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना                    ... ७८

४—नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शापोदारकी वात वतना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना ...
५—महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्त्वका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वर- मूर्ति ( सदाशिव ) का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूता शक्ति ( अम्बिका ) का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा उत्तम क्षेत्र ( काशी या थानन्द- वन ) का प्रादुर्भाव, शिवके बामाङ्गसे परम पुरुष ( विष्णु ) का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन    ...
६—भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छावद्य ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमलनालके उद्गमका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अनिस्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना                    ...
७—ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन    ...
८—उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन            ...
९—श्रीहरिको सुष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग- मोक्ष-दानका अधिकार दे भगवान् शिवका अन्तर्धान होना    ...
१०—शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल            ...
११—भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन                    ...
१२—शिव-पूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन            ...
१३—विभिन्न पुष्टियों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य                                    ...
१४—सुष्टिका वर्णन    ...
१५—स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी, ऋषियोंकी तथा दक्ष-कन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्त्वाका प्रतिपादन            ...
१६—यशदत्त-कुमारको भगवान् शिवकी वृप्तासे कुवेरपदकी प्राप्ति तथा उनकी भगवान् शिवके

साथ मैत्री	...	...	103	११—ब्रह्माजीसे दक्षकी अनुमति पाकर देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके धर जाना, दक्षद्वारा सदका सत्कार तथा सती और शिवका विवाह	...	...	130
१७—भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सुष्टिखण्डका उपसंहार	...	...	106	१२—सती और शिवके द्वारा अग्निकी परिक्रमा, श्रीहरिद्वारा शिवतत्त्वका वर्णन, शिवका ब्रह्माजीको दिये हुए वरके अनुसार वेदीपर सदाके लिये अवेष्टान तथा शिव और सतीका विदा हो कैलासपर जाना	...	...	131
द्रसंहिता द्वितीय ( सती ) खण्ड				१३—सतीका प्रथ तथा उसके उत्तरमें भगवान् शिवद्वारा ज्ञान एवं नवधार्भक्तिके स्वरूपका विवेचन	...	...	132
१—नारदजीके प्रश्न और ब्रह्माजीके द्वारा उनका उत्तर, सदाशिवसे विदेवोंकी उत्पत्ति तथा ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सुष्टिके पश्चात् एक नारी और एक पुरुषका प्राकट्य	...	108	१४—दण्डकारण्यमें शिवको श्रीरामके प्रति भस्तक झकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा श्रीरामकी परीक्षा	...	...	135	
२—कामदेवके नामोंका निर्देश, उसका रतिके साथ विवाह तथा कुमारी संध्याका चरित्र—चसिष्ठ मुनिका चन्द्रभागपर्वतपर उसको तपस्याकी विधि बताना	...	109	१५—श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक तथा उनके प्रति प्रणामका प्रसङ्ग सुनाकर श्रीरामका सतीके मनका संदेह दूर करना, सतीका शिवके द्वारा मानसिक त्याग	...	...	137	
३—संध्याकी तपस्या, उसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उससे संतुष्ट हुए शिवका उसे अभीष्ट वर दे मेधातिथिके यज्ञमें भेजना	...	112	१६—प्रयागमें समस्त महात्मा मुनियोंद्वारा किये गये यज्ञमें दक्षका भगवान् शिवको तिरस्कार- पूर्वक शाप देना तथा नन्दीद्वारा ब्राह्मणकुलको शाप-प्रदान, भगवान् शिवका नन्दीको शान्त करना	...	...	140	
४—संध्याकी आज्ञासे उन्हें अरुण्यतीके रूपमें अवतारीण होकर मुनिवर चसिष्ठके साथ विवाह करना, ब्रह्माजीका रुद्रके विवाहके लिये प्रयत्न और चिन्ता तथा भगवान् विष्णुका उन्हें ‘शिव’की आराधनाके लिये उपदेश देकर चिन्तामुक्त करना	...	115	१७—दक्षके द्वारा महान् यज्ञका आयोजन, उसमें ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं और ऋषियोंका आगमन, दक्षद्वारा सदका सत्कार, यज्ञका आरम्भ, दधीचद्वारा भगवान् शिवको बुलानेका अनुरोध और दक्षके विरोध करनेपर शिव- भक्तोंका वहाँसे निकल जाना	...	...	142	
५—दक्षकी तपस्या और देवी शिवाका उन्हें वरदान देना	...	118	१८—दक्षन्यज्ञका समाचार पा सतीका शिवसे वहाँ चलनेके लिये अनुरोध, दक्षके शिवद्रोहको जानकर भगवान् शिवकी आज्ञासे देवी सतीका पिताके यज्ञमण्डपकी ओर शिवगणोंके साथ प्रस्थान	...	...	144	
६—ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सुष्टिका आरम्भ, अपने पुनर्हर्यश्वों और शबलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप देना	...	120	१९—यज्ञशालमें शिवका भाग न देखकर सतीके रोपपूर्ण वचन, दक्षद्वारा शिवकी निन्दा सुन दक्ष तथा देवताओंको घिक्कार-फट्कारकर				
७—दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्ष और वीरिणीके यहाँ देवी शिवाका अवतार, दक्षद्वारा उनकी स्तुति तथा सतीके सदृगुणों एवं चेष्टाओंसे माता-पिताकी प्रसन्नता	...	122					
८—सतीकी तपस्यासे संतुष्ट देवताओंका कैलासमें जाकर भगवान् शिवका स्वतन्त्र करना	...	123					
९—ब्रह्माजीका रुद्रदेवसे सतीके साथ विवाह करने- का अनुरोध, श्रीविष्णुद्वारा अनुमोदन और श्रीसद्गीती इसके लिये स्वीकृति	...	125					
१०—सतीको शिवसे वरकी प्राप्ति तथा भगवान् शिवका ब्रह्माजीको दक्षके पास भेजकर सतीका वरण करना	...	127					

सतीद्वारा अपने प्राण-त्यागका निष्ठय	... १४५
२०—सतीका योगद्विसे अपने शरीरको भस्म कर देना, दर्शकोंका हाहाकार, शिवपार्षदोंका प्राण-त्याग तथा दक्षपर आक्रमण, मृष्टभुओंद्वारा उनका भगवा जाना तथा देवताओंकी चिन्ता ... १४७	
२१—आकाशवाणीद्वारा दक्षकी भर्त्सना, उनके विनाशकी सूचना तथा समस्त देवताओंको यज्ञमण्डपसे निकल जानेकी प्रेरणा ... १४९	
२२—गणोंके मुखसे और नारदसे भी सतीके दग्ध होनेकी बात सुनकर दक्षपर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विघ्नंस करने और विरोधियोंको जला डालनेकी आशा देना ... १५०	
२३—प्रमथगणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विघ्नंसके लिये प्रस्थान, दक्ष तथा देवताओंको अपशकुन एवं उत्पातसूचक लक्षणोंका दर्शन एवं भय होना ... १५२	
२४—दक्षकी यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवान्का शिवद्रोह-जनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन १५३	
२५—देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर बृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता बताना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये लल्कारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी बातचीत तथा विष्णु आदिका अपने लोकमें जाना एवं दक्ष और यज्ञका विनाश करके वीरभद्रका कैलासको लौटना ... १५५	
२६—श्रीविष्णुकी पराजयमें दधीच मुनिके शापको कारण बताते हुए दधीच और क्षुब्धके विवादका इतिहास, मृत्युंजय-मन्त्रके अनुष्ठानसे दधीचकी अवध्यता तथा श्रीहरिका क्षुब्धको दधीचकी पराजयके लिये यत्र करनेका आश्वासन ... १५७	
२७—श्रीविष्णु और देवताओंसे थपराजित दधीचका उनके लिये शाप और क्षुब्धर अनुग्रह ... १६०	
२८—देवताओंसहित व्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, श्रीविष्णुका उन्हें शिवसे क्षमा माँगनेकी अनुमति दे उनको	

साथ ले कैलासपर जाना तथा भगवान् शिवसे मिलना ... १६१
२९—देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, भगवान् शिवका देवता आदिके अङ्गोंके ठीक होने और दक्षके जीवित होनेका वरदान देना, श्रीहरि आदिके साथ यज्ञमण्डपमें पधारकर शिवका दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिके द्वारा उनकी स्तुति ... १६२
३०—भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, जानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवताओंकी एकता बताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, सब देवता आदिका अपने-अपने स्थानको जाना, सतीविष्णुका उपसंहार और माहात्म्य ... १६५
<b>रुद्रसंहिता तृतीय ( पार्वती ) खण्ड</b>
१—हिमालयके स्थावर-जंगम द्विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनका विवाह तथा मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए सनकादिके शाप एवं वरदानका कथन ... १६७
२—देवताओंका हिमालयके पास जाना और उनसे सत्कृत हो उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी एक सुन्दर स्थानमें जाकर उनकी स्तुति करना ... १६८
३—उमा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करना और देवीका अवसार लेनेकी बात स्वीकार करके देवताओंको आश्वासन देना १६९
४—मेनाको प्रत्यक्ष दर्शन देकर शिवा देवीका उन्हें अभीष्ट वरदानसे संतुष्ट करना तथा मेनासे मैनाकका जन्म ... १७१
५—देवी उमाका हिमवान्के हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्वावन, उनका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे बातचीत तथा नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना ... १७३
६—पार्वतीका नामकरण और विद्याभ्युयन, नारदका हिमवान्के यहाँ जाना, पार्वतीका हाथ देखकर भावी फल बताना, चिन्तित हुए हिमवान्को आश्वासन दे पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करनेको कहना और उनके संदेशका निवारण

करना	...	...	...	१७४
७—मेना और हिमाल्यकी बातचीत, पार्वती तथा हिमवान्‌के स्वप्न तथा भगवान् शिवसे 'मङ्गल' ग्रहकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग	...	...	१७६	१९१
८—भगवान् शिवका गङ्गावतरणीर्थमें तपस्याके लिये आना, हिमवानद्वारा उनका स्वागत, पूजन और स्वप्न तथा भगवान् शिवकी आशाके अनुसार उनका उस स्थानपर दूसरोंको न जाने देनेकी व्यवस्था करना	...	१७८	१९३	
९—हिमवान्का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना	१८०	१९५		
१०—पार्वती और शिवका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना तथा पार्वतीद्वारा भगवान्की प्रतिदिन सेवा	...	१८१	१९८	
११—तारकासुरसे सताये हुए देवताओंका ब्रह्माजीको अपनी कष्टकथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन्हें पार्वतीके साथ शिवके विवाहके लिये उद्योग करनेका आदेश देना, ब्रह्माजीके समझानेसे तारकासुरका स्वर्गको छोड़ना और देवताओंका वहाँ रहकर लक्ष्यसिद्धिके लिये यत्नशील होना	...	१८३	१९९	
१२—इन्द्रद्वारा कामका सरण, उसके साथ उनकी बातचीत तथा उनके कहनेसे कामका शिवको मोहनेके लिये प्रस्थान	...	१८४	२०१	
१३—सद्गीती नेत्राभिन्नसे कामका भस्त होना, रतिका विलाप, देवताओंकी प्रार्थनासे शिवका कामको द्वापरमें प्रद्युम्नरूपसे चूतन शरीरकी प्राप्तिके लिये घर देना और रतिका शम्बर-नगरमें जाना	...	१८५	२०३	
१४—ब्रह्माजीका शिवकी कोधायिको बड़वानलकी संशा दे समुद्रमें स्थापित करके संसारके भयको दूर करना, शिवके विरहसे पार्वतीका शोक तथा नारदजीके द्वारा उन्हें तपस्याके लिये उपदेशपूर्वक पञ्चाकर मन्त्रकी प्राप्ति	...	१८७	२०४	
१५—श्री शिवकी आराधनाके लिये पार्वतीजीकी दुक्कर तपस्या	...	१९०	२०६	
१६—पार्वतीकी तपस्याविषयक दृढ़ता, उनका पहलेसे भी उग्र तप, उससे त्रिलोकीका संतास				

कहना	...	...	2०७	सुन्दर रूपको देखकर प्रसन्न होना	...	२१५
२६—सप्तष्ठियोंके समझाने तथा मेर आदिके कहनेसे पक्षीसहित हिमवान्का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना तथा सप्तष्ठियोंका शिवके पास जा उन्हें सब बात बताकर अपने धामको जाना	...	2१०	३४—वरपक्षके आशूप्रणांसे विभूषित शिवाकी नीराजना, कन्या-दानके समय वरके साथ सब देवताओंका हिमाचलके घरके आँगनमें विराजना तथा वरवधूके द्वारा एक-दूसरेका पूजन	...	२२६	
२७—हिमवान्का भगवान् शिवके पास लग्नपत्रिका भेजना, विवाहके लिये आवश्यक सामान जुटाना, मङ्गलाचारका आरम्भ करना, उनका निमन्त्रण पाकर पर्वतों और नदियोंका दिव्य-रूपमें आना, पुरीकी सजावट तथा विश्व-कर्मद्वारा दिव्यमण्डप एवं देवताओंके नियासके लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करवाना	...	2१२	३५—शिव-पार्वतीके विवाहका आरम्भ, हिमालयके द्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तर, हिमालयका कन्या-दान करके शिवको दहेज देना तथा शिवाका अभिषेक	...	२२७	
२८—भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मङ्गलाचार एवं महपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना	...	2१५	३६—शिवके विवाहका उपसंहार, उनके द्वारा दक्षिणा-वितरण, वर-वधूका कोहवर और वासभवनमें जाना, वहाँ ख्रियोंका उनसे लोकाचारका पालन कराना, रतिकी प्रार्थनासे शिवद्वारा कामको जीवनदान एवं वर-प्रदान, वरवधूका एक-दूसरेको मिष्ठान भोजन कराना और शिवका जनवासमें लौटना	...	२२९	
२९—भगवान् शिवका वारात लेकर हिमाल्यपुरी-की ओर प्रस्थान	...	2१७	३७—रातको परम सुन्दर सजे हुए वासर्हमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनवासमें आगमन	...	२३१	
३०—हिमवान्द्वारा शिवकी बारातकी अगवानी तथा सबका अभिनन्दन एवं बन्दन; मेनाका नारदजीको बुलाकर उनसे वरातियोंका परिचय पाना तथा शिव और उनके गणोंको देखकर भयसे मुर्छित होना	...	2१८	३८—चतुर्थीकर्म, बारातका कई दिनोंतक ठहरना, सप्तष्ठियोंके समझानेसे हिमालयका बारातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बारातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना	...	२३२	
३१—मेनाका विलाप, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, देवताओं तथा श्रीविष्णुका उन्हें समझाना तथा उनका सुन्दर रूप धारण करनेपर ही शिवको कन्या देनेका विचार प्रकट करना	...	2२०	३९—मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मण-पक्षीका पार्वतीको पतिव्रतधर्मका उपदेश देना	...	२३३	
३२—भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य-रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी ख्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना	...	2२३	४०—शिव-पार्वती तथा उनकी बारातकी विदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको विदा करके कैलासपर रहना और पार्वतीखण्डके अवणकी महिमा	...	२३४	
३३—मेनाद्वारा द्वारपर भगवान् शिवका परिछन, उनके रूपको देखकर संतोषका अनुभव, अन्यान्य युवतियोंद्वारा वरकी प्रशंसा, पार्वतीका अन्विकापूजनके लिये बाहर निकलना तथा देवताओं और भगवान् शिवका उनके			४१—देवताओंद्वारा स्कन्दका शिव-पार्वतीके पास लाया जाना, उनका लाड-प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका उन्हें तारक-वधके लिये स्वामी कार्तिकको देना, कुमारकी अध्यक्षता-में देवसेनाका प्रस्थान, महे सागर-संगमपर			

## हृदसंहिता, चतुर्थ ( कुमार ) ४०७

१—देवताओंद्वारा स्कन्दका शिव-पार्वतीके पास लाया जाना, उनका लाड-प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका उन्हें तारक-वधके लिये स्वामी कार्तिकको देना, कुमारकी अध्यक्षता-में देवसेनाका प्रस्थान, महे सागर-संगमपर

		सुदृश्यम् ( शुद्ध ) स्तुष्ट
१—तारक-पुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्षणी की तपस्या, ब्रह्माद्वारा उन्हें वर-प्रदान, मयद्वारा उनके लिये तीन पुरोंका निर्माण और उनकी सजावट-शोभाका वर्णन	२४३	२५३
२—ब्रह्माजीकी आशासे कुमारका युद्धके लिये जाना, तारकके साथ उनका भीषण संग्राम और उनके द्वारा तारकका वध, तत्पश्चात् देवोद्वारा कुमारका अभिनन्दन और स्तवन, कुमारका उन्हें वरदान देकर कैलासपर जा शिव-पार्वतीके पास निवास करना	२४१	२५४
३—शिवका अपनी मैलसे गणेशको उत्पन्न करके द्वारपाल-पदपर नियुक्त करना, गणेशद्वारा शिवजीके रोके जानेपर उनको शिवगणोंके साथ भयंकर संग्राम, शिवजीद्वारा गणेशका शिरश्छेदन, कुपित हुई शिवाका शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और शृंखियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, उनके क्षारा पुत्रको जिलाये जानेकी बात कही जानेपर शिवजीके आशानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके घड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना	२४३	२५५
४—पार्वतीद्वारा गणेशजीको वरदान, देवोद्वारा उन्हें अग्रपूज्य साना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्षपद-प्रदान और गणेश-चतुर्थोवतका वर्णन, तत्पश्चात् सभी देवताओंका उनकी स्तुति करके हर्षपूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट जाना	२४७	२५६
५—स्वामिकार्तिक और गणेशकी बाललीला, दोनोंका परस्पर विवाहके विपर्यमें विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिकमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्तान, गणेशका माता-पिताकी परिकमा करके उनसे पृथ्वी-परिकमा स्वीकृत कराना, विश्वरूपकी सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओंके साथ गणेशका विवाह और उनसे धेम तथा लाभ नामक पुश्चोंकी उत्पत्ति, कुमारका पृथ्वी-परिकमा करके लौटना और शुद्ध होकर कौल पर्वतपर चल्ना जाना, कुमारद्वयोंके शत्रुग्नी महिमा	२४९	२६३
६—दम्भकी तपस्या और विष्णुद्वारा उसे पुत्र-प्राप्तिका वरदान, शङ्खचूड़का जन्म, तप और उसे वरप्राप्ति, ब्रह्माजीकी आशासे उसका पुष्करमें तुलसीके पास आना और उसके साथ वार्तालाप, ब्रह्माजीका पुनः बहौं प्रकट होकर दोनोंको आशीर्वाद देना और शङ्खचूड़का गान्धर्व विवाहकी विविसे तुलसीका पाणिग्रहण करना	२५९	२६४
७—शङ्खचूड़का असुरराज्यकर आभेदेक और उसके द्वारा देवोंका अधिकार ढीना जाना, देवोंका व्रताकी व्रतग्रन्थमें जाना, ब्रह्मका उन्हें		

साथ लेकर विष्णुके पास जाना, विष्णुद्वारा शङ्खचूड़के जन्मका रहस्योदयाटन और फिर सबका शिवके पास जाना और शिवसभामें उनकी क्षाँकी करना तथा अपना अभिप्राय प्रकट करना     ...     ...	२६७	चारमें प्रवृत्त होना, उसके मन्त्रियोद्धारा शिव-परिवारका वर्णन, पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर अन्धकका वहाँ जाना और नन्दीश्वरके साथ युद्ध, अन्धकके प्रहरसे नन्दीश्वरकी मूर्छा, पार्वतीके आवाहनसे देवियोंका प्रकट होकर युद्ध करना, शिवका आगमन और युद्ध, शिवद्वारा शुक्राचार्यका निगला जाना, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारण करके दानवोंके रक्तका पान करना, शिवका अन्धकको अपने चिशूलमें पिरोना और युद्धकी समाप्ति     ...     २८०
८—देवताओंका रुद्रके पास जाकर अपना हुःख निवेदन करना, रुद्रद्वारा उन्हें आश्वासन और चित्ररथको शङ्खचूड़के पास मेजना, चित्ररथके लौटनेपर रुद्रका गणों, पुत्रों और भद्रकालीसहित युद्धके लिये प्रस्तान, उधर शङ्खचूड़का सेनासहित पुष्पभद्राके तटपर पङ्घाव डालना तथा दानवराजके हूत और शिवकी बातचीत     ...     ...	२६९	१४—नन्दीश्वरद्वारा शुक्राचार्यका अपहरण और शिवद्वारा उनका निगला जाना, सौ वर्षके बाद शुक्रका शिवलिङ्गके रस्ते याहर निकलना, शिवद्वारा उनका 'शुक्र' नाम रखा जाना, शुक्रद्वारा जपे गये मृत्युंजय मन्त्र और शिवाष्टोत्ररक्षतनामस्तोत्रका वर्णन, शिवद्वारा अन्धकको वर-प्रदान     ...     २८३
९—देवताओं और दानवोंका युद्ध, शङ्खचूड़के साथ बीरभद्रका संग्राम, पुनः उसके साथ भद्रकालीका भयंकर युद्ध करना और आकाशवाणी सुनकर निवृत्त होना, शिवजीका शङ्खचूड़के साथ युद्ध और आकाशवाणी सुनकर युद्धसे निवृत्त हो विष्णुको प्रेरित करना, विष्णुद्वारा शङ्खचूड़के कवच और तुलसीके शीलका अपहरण, फिर रुद्रके हाथों त्रिशूलद्वारा शङ्खचूड़का कवच, शङ्खकी उत्पत्ति का कथन     ...     ...	२७१	१५—शुक्राचार्यकी धोर तपस्या और इनका शिवजीको चित्तरक्त अर्पण करना तथा अष्टमूर्त्युष्टक-स्तोत्रद्वारा उनका स्तवन करना, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी विद्या तथा अन्यान्य वर प्रदान करना     ...     २८४
१०—विष्णुद्वारा तुलसीके शील-हरणका वर्णन, कुपित हुई तुलसीद्वारा विष्णुको शाप, शम्भुद्वारा तुलसी और शालग्राम-शिलाके माहात्म्यका वर्णन     ...     ...	२७२	१६—बाणासुरकी तपस्या और उसे शिवद्वारा वर-प्राप्ति, शिवका गणों और पुत्रोंसहित उसके नगरमें निवास करना, बाणपुत्री ऊषाका रातके समय स्वमन्में अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखद्वारा अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, बाणका अनिरुद्धको नारपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनसे अनिरुद्धका बन्धनमुक्त होना, नारद-द्वारा समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुर-पर चढ़ाई, शिवके साथ उनका धोर युद्ध, शिवकी आशासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणाञ्चसे मोहित करके बाणकी सेनाका संहार करना     ...     २९०
११—उमाद्वारा शम्भुके नेत्र मूँद लिये जानेपर अन्धकारमें शम्भुके पसीनेसे अन्धकासुरकी उत्पत्ति, हिरण्याक्षकी पुत्रार्थ तपस्या और शिवका उसे पुत्रलूपमें अन्धकको देना, हिरण्याक्षका त्रिलोकीको जीतकर पूर्णीको रसातलमें ले जाना और वराहरूपधारी विष्णुद्वारा उसका वध     ...     ...	२७५	१७—श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाऊओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रेकना और उन्हें समझाना, श्रीकृष्णका परिवारसमेत द्वारकाको लैट जाना, बाणका ताण्डव नृत्यद्वारा शिवको प्रसन्न करना,
१२—हिरण्यकशिपुकी तपस्या और ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रखादको राज्य-प्राप्ति     ...     ...	२७६	
१३—भाइयोंके उपालमभूते अन्धकका तप करना और वर पाकर त्रिलोकीको जीतकर स्वेच्छा-	२७८	

शिवद्वारा उसे अन्यान्य वरदानोंके साथ महाकाल्स्वकी प्राप्ति ... ...	२९४	तथा ग्यारह सूर्य-अवतारोंका वर्णन ...	३१३
१८—गजासुरकी तपस्या, वर-प्राप्ति और उसका अन्याचार, शिवद्वारा उसका वध, उसकी प्रार्थनासे शिवका उसका चर्म घारण करना और 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना तथा कृत्तिवासेश्वर लिङ्गकी स्थापना करना	२९६	१०—शिवजीके दुर्बासावतार, तथा हनुमदवतार- का वर्णन ... ...	३१५
१९—दुन्दुभिनिर्हाद नामक दैत्यका व्याघ्ररूपसे शिवभक्तपर आक्रमण करनेका विचार और शिवद्वारा उसका वध ... ...	२९७	११—शिवजीके पिप्पलाद-अवतारके प्रसङ्गमें देवताओंकी दधीचि मुनिसे अस्थियाचना; दधीचिका शरीर-त्याग, वज्र-निर्माण तथा उसके द्वारा वृत्रासुरका वध, सुवर्चोका देवताओंको शाप, पिप्पलादका जन्म और उनका विस्तृत वृत्तान्त ...	३१६
२०—विदल और उत्पल नामक दैत्योंका पार्वतीपर मोहित होना और पार्वतीका कन्तुक-प्रद्वार- द्वारा उनका काम तमाम करना, कन्तुकेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा ...	२९७	१२—भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा— राजा भद्रायु तथा रानी कीर्तिमालिनीकी धार्मिक दृढ़ताकी परीक्षा ... ...	३१८
२१—शतहृदसंहिता		१३—भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंस नामक अवतार ... ...	३२०
१—शिवजीके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान नामक पौँच अवतारोंका वर्णन	२९९	१४—भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा ... ...	३२१
२—शिवजीकी अष्टमूर्तियोंका तथा अर्घनारीनर- रूपका सविस्तर वर्णन ...	३००	१५—भगवान् शिवके व्यवधूतेश्वरावतारकी कथा और उसकी महिमाका वर्णन ...	३२३
३—वाराहकल्पमें होनेवाले शिवजीके प्रथम अवतारसे लेकर नवम श्रुष्टभयवतार तकका वर्णन ...	३०२	१६—भगवान् शिवके भिष्मवर्यावतारकी कथा, राजकुमार और द्विजकुमारपर कृपा ...	३२४
४—शिवजीद्वारा दसवेंसे लेकर अद्वैटसंबैं योगेश्वरावतारोंका वर्णन ...	३०३	१७—शिवके सुरेश्वरावतारकी कथा, उपमन्त्युकी तपस्या और उन्हें उत्तम वरकी प्राप्ति ...	३२६
५—नन्दीश्वरका वर्णन ...	३०५	१८—शिवजीके किरातावतारके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण- द्वारा दैत्यवनमें हुर्चासाके शापसे पाण्डवोंकी रक्षा, व्यासजीका अर्जुनको शक्तिविद्या और पार्थिवपूजनकी विधि बताकर तपके लिये सम्मति देना; अर्जुनका इन्द्रकील पर्वतपर तप, इन्द्रका थागमन और अर्जुनको वरदान, अर्जुनका शिवजीके उद्देश्यसे पुनः तपमें प्रवृत्त होना ... ...	३२७
६—नन्दीश्वरके जन्म, वरप्राप्ति, अभिषेक और विवाहका वर्णन ...	३०६	१९—किरातावतारके प्रसङ्गमें मूर्क नामक दैत्यका शूकर-रूप धारण करके अर्जुनके पास आना, शिवजीका किरातवेषमें प्रकट होना और अर्जुन तथा किरातवेषधारी शिवद्वारा उस दैत्यका वध	३२९
७—कालभैरवका माहात्म्य, विश्वानरकी तपस्या और शिवजीका प्रसन्न होकर उनकी पत्नी शुचिभूतीके गर्भसे उनके पुत्ररूपमें प्रकट होनेका उन्हें वरदान देना ...	३०८	२०—अर्जुन और शिवदूतका वार्तालाप, किरातवेष- धारी शिवजीके साथ अर्जुनका युद्ध, पद्माननेपर अर्जुनद्वारा शिवस्मृति, शिवजीका अर्जुनको वरदान देकर अन्तर्घान होना, अर्जुन- का आभरणपर लौटकर भाइओंसे मिलना,	
८—शिवजीका शुचिभूतीके गर्भसे प्राकृत्य, ब्रह्मा- द्वारा चालकका संस्कार करके 'गृहपति' नाम रखा जाना, नारदजीद्वारा उसका भविष्य-कथन, पिताकी आशासे गृहपतिका काशीमें जाकर तप करना, इन्द्रका वर देनेके लिये प्रकट होना, गृहपतिका उन्हें ढुकराना, शिवजीका प्रकट होकर उन्हें वरदान देकर दिक्षालपद प्रदान करना तथा अग्नीश्वर लिङ्ग और अग्निका माहात्म्य ... ...	३१०		
९—शिवजीके नदकाल सादि दृष्ट अवतारोंका			

श्रीकृष्णका अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पधारना	३३१	गङ्गाका गौतमी ( या गोदावरी ) नामसे और शिवका व्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गावतारोंके नामसे विष्वात होना तथा इन दोनोंकी महिमा	३५७
२१—शिवजीके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गावतारोंके सविस्तर वर्णन ... ... कोटिरुद्रसंहिता	३३५	१३—बैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्गके प्राकट्यकी कथा तथा महिमा ... ...	३५९
१—द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों तथा उनके उपलिङ्गोंके वर्णन एवं उनके दर्शन पूजनकी महिमा ...	३३८	१४—नगोश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका प्रादुर्भाव और उसकी महिमा ... ...	३६०
२—काशी आदिके विभिन्न लिङ्गोंका वर्णन तथा अन्नीश्वरकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें गङ्गा और शिव-के अधिके तपोवनमें नित्य निवास करनेकी कथा ... ...	३४०	१५—रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाव तथा माहात्म्यका वर्णन ... ...	३६२
३—शृणिकापर भगवान् शिवकी कृपा, एक असुरसे उसके धर्मकी रक्षा करके उसके आश्रममें 'नन्दिकेश' नामसे निवास करना और वर्षमें एक दिन गङ्गाका भी वहाँ आना ...	३४१	१६—घुश्माकी शिवभक्तिसे उसके मरे हुए पुत्रका जीवित होना, घुश्मेश्वर शिवका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमाका वर्णन ... ...	३६३
४—प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और उसकी महिमा ... ...	३४२	१७—शंकरजीकी आराधनासे भगवान् विष्णुको बुद्धर्थन चक्रकी प्राप्ति तथा उसके द्वारा दैत्योंका महार ...	३६५
५—मल्लिकार्जुन और महाकालनामक ज्योतिर्लिङ्गोंके आविर्भावकी कथा तथा उनकी महिमा ...	३४४	१८—भगवान् विष्णुद्वारा पठित शिवसहस्रनाम-स्तोत्र	३६६
६—महाकालके माहात्म्यके प्रसङ्गमें शिवभक्त राजा चन्द्रसेन तथा गोप-बालक श्रीकरकी कथा ...	३४५	१९—भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाले व्रतोंका वर्णन, शिवरात्रि-व्रतकी विधि एवं महिमाका कथन ...	३६७
७—विन्ध्यकी तपस्या, ओंकारमें परमेश्वर लिङ्गके प्रादुर्भाव और उसकी महिमाका वर्णन ...	३४८	२०—शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि ...	३६८
८—केदारेश्वर तथा भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्गोंके आविर्भावकी कथा तथा उनके माहात्म्यका वर्णन ... ...	३४९	२१—अनजानमें शिवरात्रि-व्रत करनेसे एक भीलपर भगवान् शंकरकी अद्भुत कृपा ...	३६९
९—विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग और उनकी महिमाके प्रसङ्गमें पञ्चकोशीकी महत्त्वाका प्रतिपादन ...	३५२	२२—मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन ...	३९१
१०—वाराणसी तथा विश्वेश्वरका माहात्म्य ...	३५३	२३—शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माके स्वरूपका विवेचन	३९२
११—व्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके प्रसङ्गमें महर्षि गौतम-के द्वारा किये गये परोपकारकी कथा, उनका तपके प्रभावसे अक्षय जल प्राप्त करके शृणियों-की अनादृष्टिके कारण रक्षा करना, श्रृणियोंका छलपूर्वक उन्हें गोद्यामें फँसाकर आश्रमसे निकालना और शुद्धिका उपाय बताना ...	३५५	२४—शिवसम्बन्धी तत्त्वज्ञानका वर्णन तथा उसकी महिमा, कोटिरुद्रसंहिताका माहात्म्य एवं उपसंहार उमारुद्दिति	३९३
१२—पल्लीसंहित गौतमकी आराधनासे संतुष्ट हो भगवान् शिवका उन्हें दर्शन देना, गङ्गाको वहाँ स्थापित करके स्वयं भी स्थर होना, देवताओंका वहाँ दृश्यस्तिके सिंहराशिपर आने-पर गङ्गाजीके विशेष माहात्म्यको स्वीकार करना,	३५६	१—भगवान् श्रीकृष्णके तपसे मंतुष्ट हुए शिव और पार्वतीका उन्हें अभीष्ट वर देना तथा शिवकी महिमा ३९५	
		२—नरकमें गिरानेवाले पापोंका संक्षिप्त परिचय ...	३९६
		३—पापियों और पुण्यात्माओंकी यमलोकयात्रा ...	३९८
		४—नरकोंकी अष्टाईस कोटियोंतथा प्रत्येकके पाँच-	
		पाँच नायकके क्रमसे एक सौ चालीस रौरवादि-नरकोंकी नामावली ... ...	३९९
		५—विभिन्न पापोंके कारण मिलनेवाली नरकयातनाका वर्णन तथा कुक्कुरबलि, काकबलि एवं देवता आदिके लिये दी हुई बलिकी आवश्यकता एवं महत्त्वाका प्रतिपादन ... ...	४००
		६—यमलोकके मार्गमें सुविधा प्रदान करनेवाले विविध दानोंका वर्णन ... ...	४०१
		७—जलदान, जलाशय-निर्माण, वृक्षारोपण, सत्य-	

	कैलाल्यसंहिता
भावण और तयकी महिमा	४०३
८—वेद और पुराणोंके स्वाध्याय तथा विविध प्रकार- के दानकी महिमा, नरकोंका वर्णन तथा उनमें सिरानेवाले पापोंका दिग्दर्शन, पापोंके लिये सर्वों तम प्रायश्चित्त शिवस्मरण तथा शानके महत्वका प्रतिपादन	४०४
९—मृत्युकाल निकट आनेके कौन-कौनसे लक्षण हैं, इसका वर्णन	४०५
१०—कालको जीतनेका उपाय, नवधा शब्दग्रहा एवं तुंकारके अनुभंधान और उससे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन	४०६
११—काल या मृत्युको जीतकर अमरत्व प्राप्त करनेकी चार यौगिक साधनाएँ—प्राणायाम, भ्रमध्यमें अग्निका ध्यान, मुखसे वायुपान तथा मुड़ी हुई जिह्वाद्वारा गलेकी घाँटीका स्पर्श	४०८
१२—भगवती उमाके कालिका-अवतारकी कथा— समाधि और सुरथके समक्ष मेघाका देवीकी कृपा- से मधुकैटप्रके वषका प्रसङ्ग मुनाना	४०९
१३—सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे देवीका महालक्ष्मीरूप- में अवतार और उनके द्वारा महिमासुरका वध	४११
१४—देवी उमाके शरीरसे सरस्वतीका आविर्भाव, उन- के रूपकी प्रशंसा सुनकर शुभमका उनके पास दूत भेजना, दूतके निराश लौटनेपर शुभमका क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा रक्तदीज- को भेजना और देवीके द्वारा उन सदका मारा जाना	४१४
१५—देवीके द्वारा सेना और सेनापतियोंसहित निशुभ- एवं शुभमका संहार	४१५
१६—देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये तेज़पुञ्जरूपिणी उमाका प्राणुर्भाव	४१७
१७—देवीके द्वारादुर्गमासुरका वध तथा उनके दुर्गा, शताक्षी, शक्तिमरी और भ्रामरी आदि नाम पड़नेका कारण	४२१
१८—देवीके क्रियायोगका वर्णन—देवीकी मूर्ति एवं मन्दिरके निर्माण, स्थापन और पूजनका महत्व, परा अम्बाकी श्रेष्ठता, विभिन्न मासों और तिथियोंमें देवीके ब्रत, उत्सव और पूजन आदि- के फल तथा इस कंहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा	४२३
	४२६
	४२८
	४२९
	४३७
	४३८
	४४२
	४४५
	४४७
	४४९
	४५१
	४५२
	४५५
	४५६
	४५९

## व्यायवीयसंहिता ( पूर्वखण्ड )

१—प्रयागमें शृणियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्या-स्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ	४५१
२—शृणियोंका ब्रह्माजीके पास जा उनकी स्तुति करनेके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमम हो 'स्त्र' कहकर उत्तर देना	४५२
३—ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्वके रूपमें भगवान् शिवकी ही महत्त्वका प्रतिपादन, उनकी कृपाको ही सब सावनोंका फल बताना तथा उनकी आशासे सब मुनियोंका नैमित्यारण्यमें आना	४५४
४—नैमित्यारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन, उनका सल्कार तथा शृणियोंके पूठनेपर वायुके द्वारा पश्च, पाश एवं पश्चपतिका तात्त्विक विवेचन	४५६
५—महेश्वरकी महत्त्वका प्रतिपादन	४५९
६—ब्रह्माजीकी मृच्छा, उनके मूरतसे स्वदेहका	

प्राकट्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आशासे ब्रह्माद्वारा स्मृतिरचना ...	... ४६२	प्रतिपादन ... ४७५
७—भगवान् रुद्रके ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट होनेका रहस्य, रुद्रके महामहिम स्वरूपका वर्णन, उनके द्वारा बद्रगणोंकी सूष्टि तथा ब्रह्माजीके रोकनेसे उनका सूष्टिसे विरत होना ...	४६४	१६—शृंगियोंके प्रश्नका उत्तर देते हुए बायुदेव- के द्वारा शिवके स्वतन्त्र एवं सर्वानुग्राहक स्वरूपका प्रतिपादन ... ४७६
८—ब्रह्माजीके द्वारा अर्द्धनारीश्वररूपकी स्तुति तथा उस स्तोत्रकी महिमा ...	४६५	१७—परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत शान तथा उसके साधनोंका वर्णन ... ४७९
९—महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव ...	४६७	१८—पाशुपत-व्रतकी विधि और महिमा तथा भस्त्रधारणकी महत्त्वा ... ४८१
१०—भगवान् शिवका पार्वती तथा पर्षदोंके साथ मन्दराचलपर जाकर रहना, शुम्भ-निशुम्भके वधके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे शिवका पार्वतीको 'काली' कहकर कुपित करना और कालीका 'गौरी' होनेके लिये तपस्याके निमित्त जानेकी आशा माँगना ...	४६८	१९—बालक उपमन्युको दूधके लिये दुखी देख माताका उसे शिवकी आराधनाके लिये प्रेरित करना तथा उपमन्युकी तीव्र तपस्या ... ४८४
११—पार्वतीकी तपस्या, एक व्याप्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका उनके पास आना, देवीके साथ उनका वार्तालाप, देवीके द्वारा काली- त्वचाका त्याग और उससे कृष्णवर्णों कुमारीकन्याके रूपमें उत्पत्त हुई कौशिकीके द्वारा शुम्भ-निशुम्भका वध ...	४७०	२०—भगवान् शंकरका इन्द्ररूप धारण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत-से वर देना और अपना पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना ... ४८५
१२—गौरी देवीका व्याप्रको अपने साथ ले जाने- के लिये ब्रह्माजीसे आशा माँगना, ब्रह्माजीका उसे दुष्कर्मी बताकर रोकना, देवीका शरणागतको ल्याशनेसे इन्कार करना, ब्रह्माजी- का देवीकी महत्त्वा बताकर अनुमति देना और देवीका माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना ...	४७१	बायवीयसंहिता ( उत्तरखण्ड )
१३—मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजी- के द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं अविच्छेद सम्बन्धपर प्रकाश तथा देवीके साथ आये हुए व्याप्रको उनका गणार्थक बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना ...	४७३	१—शृंगियोंके पूछनेपर बायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसङ्ग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्युसे शानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ ... ४८९
१४—अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्की अमीपोमात्मकताका प्रतिपादन ...	४७४	२—उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत शानका उपदेश ... ४९०
१५—जगत् 'काणी और अर्थरूप' है—इसका		३—भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पञ्चमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकता- का वर्णन ... ४९१
		४—शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन ... ४९२
		५—परमेश्वर शिवके यथार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन ... ४९५
		६—शिवके शूद्र, बुद्ध, मुक्त, सर्वमय, सर्वव्यापक एवं सर्वात्मीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपता- का प्रतिपादन ... ४९७
		७—परमेश्वरकी शक्तिका शृंगियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा- भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिव-धर्मका वर्णन ... ४९८
		८—द्विव-शान, शिवकी उपासनासे देवताओंको

उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारोंका वर्णन		वर्णन	...	...	५२३
९—शिवके अवतार, योगाचार्यों तथा उनके शिष्यों-की नामावली	४९९	२२—शिवपूजनकी विधि	...	...	५२४
१०—भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्यचित्तसे भजनकी महिमा	५०१	२३—शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्ति-की महिमा	...	...	५२६
१०—भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्यचित्तसे भजनकी महिमा	५०२	२४—पञ्चाक्षर मन्त्रके जप तथा भगवान् शिवके भजन-पूजनकी महिमा, अग्रिकार्यके लिये कुण्ड और वेदी आदिके संस्कार, शिवामि-की स्थापना और उसके संस्कार, होम, पूर्णाहुति, भस्मके संग्रह एवं रक्षणकी विधि तथा हृवनान्तमें किये जानेवाले कृत्य-का वर्णन	...	...	५२८
११—वर्णश्राम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्त्वाका प्रतिपादन	५०४	२५—काम्य कर्मके प्रसङ्गमें शक्तिसहित पञ्चमुख महादेवकी पूजाके विधानका वर्णन	...	...	५३१
१२—पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन	५०६	२६—आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन	...	...	५३३
१३—पञ्चाक्षर-मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त वार्षस्य-की स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पञ्चाक्षर-विद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके श्रृंगि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अङ्गन्यास आदिका विचार	५०८	२७—शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मङ्गलकी कामना	...	...	५३६
१४—गुरुसे मन्त्र लेने तथा उनके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओं-का महत्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय वातें, सदाचारका महत्व, आस्तिकता-की प्रवांसा तथा पञ्चाक्षर मन्त्रकी विशेषताका वर्णन	५१०	२८—ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शान्ति-पुष्टि आदि विविध काम्य कर्मोंमें विभिन्न हृवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान	...	...	५४८
१५—त्रिविधि दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरु-का महत्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा	५१३	२९—पारलैकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिङ्ग-महान्तकी विधि और महिमाका वर्णन	...	...	५५१
१६—समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि	५१५	३०—योगके अनेक मेद, उसके आठ और छः अङ्गोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविन्द्र प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण	...	...	५५२
१७—षड्भवशोधनकी विधि	५१७	३१—योगमार्गके विध्न, सिद्धिसूचक उपसर्ग तथा पृथ्वीसे लेकर त्रुदित्वपूर्वक ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाके ध्यानकी महिमा	...	...	५५४
१८—षड्भवशोधनकी विधि	५१९	३२—ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राण देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्षलाभका कथन	...	...	५५७
१९—साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन	५२१	३३—बायुदेवका अन्तर्कान, श्रृंगियोंका सरस्वतीमें अवधृथलान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजी-	...	...	
२०—योग्य शिष्यके आचार्य-पदपर अभियेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निरूपण	५२२				
२१—अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजा-विधिका					

का उन्हें सिद्धि-प्राप्तिको सूचना देकर मेरुके		१३—हर हर भज [ कविता ]	...	६६२
कुमारशिखरपर भेजना	...	२०—शिवलिङ्ग और काशी ( स्व० पण्डित श्रीभवानीशकुरजी )	...	६६३
३४—मैरगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका		२१—शिव-महिमा-सूत्र [ प० श्रीसूरजचन्द्रजी सत्यप्रेमी ( डॉगीजी ) ]	...	६६७
सुनल्कुमारजीसे मिलना, भगवान् नन्दीका बहँ आना और दृष्टिपातमान्त्रसे पाशछेदन एवं शानयोगका उपदेश करके चला जाना,		२२—शिवताण्डव-स्तोत्र [ कविता ] ( अनु०—प्र० गोपालजी 'सर्वकिरण', एम० ए० )	...	६६८
शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार	५६१	२३—श्रीशिवाशिवसे वर-याचना [ कविता ] ( प० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री )	६६९	
शिवपुराण समाप्त		२४—आशुतोष भगवान् शिवजीके चरणोंमें एक विनीत प्रार्थना ( श्रीरामनिवासजी शर्मा )	६७०	
४—सद्द-देवता-तत्त्व ( सर्वदर्शनाचार्य, तत्त्वचिन्तक स्वामी अनन्तश्री अनिषद्धाचार्य वैकटाचार्यजी महाराज )	...	२५—हिंदीवर्णानुक्रम जययुक्त अश्वेतरशिव- सहस्रनाम [ कविता ]	...	६७१
५—प्रलयंकरके प्रति [ कविता ] ( श्रीरसिकविहारी मंजुल, एम० प० )	...	२६—शिवलिङ्गपूजनमें स्त्रियोंका तथा शिवनिर्माल्यमें सबका अधिकार है या नहीं ? ( श्रीवल्लभ दासजी विजानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न )	६७२	
६—शिव-महिमा ( महामहोपाध्याय प० श्रीगिरिधर- जी शर्मा चतुर्वेदी, वाचस्पति )	...	२७—नटराज शंकर [ कविता ] ( श्रीपृथ्वीसिंहजी चौहान ( प्रेमी ) )	...	६७९
७—लिङ्ग-रहस्य ( स्व० श्रीरामदासजी गौड, एम० ए० )	...	२८—महेश्वरस्त्वम् एव नापरः ( प० श्रीज्ञानकी- नायजी शर्मा )	...	६८०
८—शिव-तत्त्व ( स्व० श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी० ए०, बी० एल०, बी० एस०-सी०, एम० आर० इ० इ०, एम० आई० ई० )	...	२९—पवित्रतम शिवपुराणको कैसे पढ़ना, सुनना और रखना चाहिये [ शिवभक्तोंसे करबद्ध प्रार्थना ] ( भक्त श्रीरामशरणदासजी )	६८३	
९—श्रीशिवचालीसा [ कविता ]	...	३०—कालिदासोक्त कुमारसभवगत भगवान् शिवजीका विलक्षण स्वरूप ( प० श्रीरामनिवासजी शर्मा )	६८४	
१०—शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्	...	३१—अमोघशिवकवचम्	...	६८६
११—श्रीशिव ( स्व० प० श्रीहनूमान् शर्मा )	...	३२—श्रीशरमेश्वर ( शिव ) कवचम् ( प्रेषक- सम्मान्य श्रीशिवचैतन्यजी ब्रह्मचारी, महेश्वर )	६९२	
१२—श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय ( सम्मान्य प० स्व० श्रीहारणचन्द्रजी भट्टाचार्य, प्रधानाध्यापक मारवाडी-संस्कृत-कालेज, काशी )	...	३३—अष्टग्रही	...	६९६
१३—श्रीशिवको अष्टमूर्तियाँ ( श्रीपञ्चालालसिंहजी )	६३१	३४—सद्ग्राष्टकस्तोत्र	...	७००
१४—भगवान् शिव [ कविता ] ( श्रीवल्लभदासजी विजानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न )	...	३५—कल्पाण ( 'शिव' )	...	७०१
१५—शिव-तत्त्व ( श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )	६३८	३६—क्षमा-प्रार्थना	...	७०३
१६—परात्पर शिव ( स्व० श्रीगौरीशंकरजी गोयनका )	६४९			११
१७—श्रीचिन्तक [ कविता ]	...			
१८—श्रीशिव-तत्त्व ( स्व० पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्कस्वत्र )	...			
	६५७			

# चित्र-सूची

वहुरंगे	रेखा-चित्र
१-उमा-महेश्वर	... मुखपृष्ठ
२-भगवान् शिव ध्यानस्थ	... १
३-श्रीशिव-पार्वती	... २७
४-श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रकट होना	७२
५-तपस्यी सतीके सामने शिवका प्राकट्य	... १०८
६-उमासहित भगवान् मृत्युज्ञय	... १५८
७-दरवेषमें भगवान् शिव	... १६७
८-तपस्यामयी पार्वती	... १९६
९-पार्वती और सप्तर्षि	... १९६
१०-शिवकी विकट वरात	... २२०
११-भगवती पार्वती-विवाहशृङ्खाल	... २२५
१२-भगवान् गणेशजी	... २५३
१३-गुफामें गौरीशंकर	... २८१
१४-श्रीशिव-पार्वतीका श्रीकृष्णको वरदान	... ३९६
१५-भगवान् स्कन्द	... ४२७
१६-पार्वतीकी काली त्वचाके आवरणसे कौशिकीका प्राकट्य	... ४७१
१७-उपमन्तु और श्रीकृष्ण	... ५१३
रेखा चित्र दोरंगा	
१-उमा-महेश्वर	उपरी
	मुखपृष्ठ
इकरंगे चित्र	
१-नारदजीकी काम-विजय	... ७६
२-नारदजीके द्वारा सुन्दर रूपकी माँग	... ७६
३-स्वयंवरमें वानर-मुख नारद	... ७७
४-नारदजीके द्वारा भगवान् विष्णुको शाप	... ७७
५-भगवान् रामको शिवजीके द्वारा नमस्कार	... १३६
६-राम-परीक्षाके लिये सतीका सीतारूप धारण	१३६
७-दक्षपर सतीका क्रोध	... १४८
८-सतीका योगाग्रिसे शरीर-त्याग	... १४८
९-शिवजीके द्वारा दक्षके बकरेका सिर ल्पाना	१६४
१०-तपस्यामयी पार्वतीके साथ बृद्ध ब्राह्मणके सरमें शिवकी बातचीत	... २००
११-दादरा ज्योतिलिङ्ग-१	... ३३८
१२-दादरा ज्योतिलिङ्ग-२	... ३३९
	१-लिङ्गस्थित भगवान् शिव
	... मुखपृष्ठ
	२-शौनकजीको सूतजीका शिवपुराणकी उत्कृष्ट महिमा सुनाना
	... १७
	३-यमपुरीमें गये देवराज ब्राह्मणको विमानपर विठाकर शिवदूतोंका कैलास जानेके लिये उद्यत होना तथा धर्मराजका अपने भवनसे बाहर निकलकर उन सबकी पूजा एवं प्रार्थना करना
	... १९
	४-वाष्कलनगर-निवासिनी चञ्चुलाका गोकर्णक्षेत्रमें शिवकथा बाँचनेवाले एक पौराणिक ब्राह्मणसे अपना उद्धार करनेकी बात करना
	... २०
	५-चञ्चुलाका शिवपुराण सुननेके परिणामस्वरूप शिवद्वारा भेजे गये विमानपर आरूढ़ होकर शिवलोकमें आगमन तथा पार्वतीका उसे अपनी सखी स्वीकार करना
	... २२
	६-पार्वतीदेवीका चञ्चुलाके साथ जाकर उसके पाति पिशाच्योनिवाले विन्दुग्रन्थों को शिवपुराणकी कथा सुनानेका गन्धर्वराज तुम्भुरुको आदेश
	... २४
	७-चञ्चुलाके साथ विध्यपर्वतपर जाकर गन्धर्वराज तुम्भुरुका विन्दुग्रन्थ पिशाचको पाशों-द्वारा बाँधना तथा हाथमें धीणा लेकर गौरी-पतिकी कथाका गान आरम्भ करना
	... २४
	८-सरस्वती नदीके तटपर तपस्यारत व्यासदेवको सनस्कुमारका सत्यवस्तु—भगवान् शिवके चिन्तनका आदेश देना
	... ३०
	९-महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देना तथा दोनोंके मध्यमें भीषण अग्निस्तम्भके रूपमें उनका आविर्भाव
	... ३२
	१०-हिमालय पर्वतकी एक गुफामें नारदजीकी तपस्या
	... ३३
	११-नारदजीका अपनी काम-विजयका धृत्तान्त विष्णुसे कहनेके लिये विष्णुलोकमें आगमन
	... ७४
	१२-विष्णुद्वारा मायानिर्मित नगरमें राजा शीलनिधिका नारदको रत्नसिंहासनपर विठाकर उनका पूजन करना तथा अपनी कन्या

३५—कामिल्यनगरमें निवास करनेवाले यत्रदत्त ब्रह्मणके दुराचारी पुत्र गुणनिधिका शिव- मन्दिरमें नैवेद्य चुरानेकी इच्छासे प्रवेश ...	१०४
२६—कलिङ्गराज दमका ग्रामाध्यक्षोंको बुलाकर अपने-अपने गाँवोंके शिवालयोंमें सदा दीप जलनेका व्यादेश देना ...	१०४
२७—घोर तपस्यामें लीन कुवेरको शंकर और पार्वतीका प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर देना ...	१०६
२८—ब्रह्माजीसे समस्त शुभ शिव-चरित्र सुनानेके लिये नारदकी प्रार्थना ...	१०८
२९—ब्रह्माके हृदयसे मनोहर रूपवाली सुन्दरी नारी संध्याका उत्पन्न होना ...	१०९
३०—मरीचि आदि ऋषियोंद्वारा मनोभव कामदेवके मदन, मन्मथ, दर्पक, कंदर्प आदि अनेक नाम रखना ...	११०
३१—दक्षका अपने ही शरीरसे प्रकट हुई 'रति' नामकी कन्याको कंदर्पको संकल्पपूर्वक सौंपना ...	११०
३२—ब्रह्माकी प्रेरणासे वसिष्ठका एक तेजस्वी ब्रह्मचारीके रूपमें चन्द्रभाग पर्वतपर तपस्या करनेवाली संध्याके पास जाकर उसके निर्जन पर्वतपर आनेका प्रयोजन पूछना तथा तपस्या करनेकी विधि बताना ...	११२
३३—तपस्यामें लीन संध्याको शिवका उसीके आराध्यरूपमें प्रत्यक्ष दर्शन देना ...	११३
३४—संध्याद्वारा मेधातिथि सुनिके यजकी अग्निमें आत्माहुति तथा उसके पुरोडाशमय शरीरके तत्काल दग्ध होनेपर यजकी समाप्तिके समय अग्निकी ज्वालामें महर्षि मेधातिथिका तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली पुत्रीके रूपमें उसे प्राप्त करना ...	११६
३५—महाप्रजापति दक्षकी तपस्यासे प्रसन्न होकर सिंहवाहिनी जगदम्बाका चतुर्भुजरूपमें उन्हें दर्शन देना ...	११९
३६—नारदकी ही शिक्षासे अपने हर्यश तथा शबलाश्व आदि पुत्रोंके ऊर्ध्वेगामी होनेपर दक्ष प्रजापतिका कष्टका अनुभव करना तथा दैववश अनुग्रह करनेके लिये आये हुए नारदको उनका क्रोधपूर्वक विकारना ...	१२१

३७-अपनी पत्नी वीरिणीसहित प्रजापति दक्षद्वारा जगदम्बाका ध्यान और प्रेमपूर्वक स्तवन करना	...	...	१२२	४७-नारदके मुखसे दक्षयश्में सतीके योगाभिमें भस्म होने और असंख्य प्रमथगणोंके विनष्ट हो जानेका समाचार सुनकर शिवद्वारा क्रोध-पूर्वक सिरसे एक जटा उखाइकर पर्वतपर पटकना तथा जटाके दो भाग होनेपर पूर्वभागसे वीरभद्र और दूसरे भागसे महाकालीका उत्पन्न होना	...	...	१५१
३८-सब देवताओंके साथ ब्रह्मा और विष्णु आदिके गिरिश्रेष्ठ कैलासपर महादेवके पास आगमन	...	...	१२५	४८-दक्षका भगवान् विष्णुकी शरणमें जाकर उनके चरणोंमें गिरना तथा यशका विनाश न होनेकी प्रार्थना करना	...	१५३	
३९-सतीका तपस्या करके मनोवाञ्छित वर पानेपर घर लौटकर माता ( वीरिणी ) और पिता ( प्रजापति दक्ष ) को प्रणाम करना तथा अपनी सत्त्वीद्वारा उनको अपना तपस्यासम्बन्धी सब समाचार कहलवाना	...	१२९	४९-शुक्राचार्यके आदेशसे दधीचद्वारा महामृत्युंजयका कठोर तपस्यापूर्वक जप तथा शिवका उनके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देना, दधीचद्वारा शिवकी सुति और वरकी याचना	...	...	१५५	
४०-ब्रह्मा, विष्णु, नारद, देवताओं और मुनियों आदिके साथ शिवकी दक्षके घरके लिये विवाहयत्रा	...	१३०	५०-ब्रह्मा, विष्णु और देवताओंके साथ शिवका कनखलमें स्थित दक्षकी यज्ञशालामें पधारना तथा वीरभद्रद्वारा विध्वंस किये गये यज्ञस्थलको देखना	...	...	१६३	
४१-विवाहकृत्य सकुशल समाप्त हो जानेपर दक्षकी आशासे शिवका प्रसन्नतापूर्वक सतीको वृषभकी पीठपर विठाकर विष्णु आदि देवताओं और मुनियों आदिके साथ हिमालय पर्वतकी ओर प्रस्थान करना	...	१३२	५१-देवताओंद्वारा सुति की जानेपर परम अद्भुत दिव्य रत्नसय रथपर विराजमान जगजननी देवी उमाका उनके सामने प्रकट होना	...	...	१७०	
४२-शिवका अपने स्वरूपका ध्यान तोहना जानकर जगदम्बा सतीका कैलासपर आना तथा उदारचेता शम्भुद्वारा उन्हें अपने सामने बैठनेके लिये आसन देना	...	१३९	५२-मनमें संतानकी कामना लेकर तप करने-वाली हिमवान्की पत्नी मेनाके सामने प्रसन्नतापूर्वक जगदम्बाका प्रकट होकर उनपर अनुग्रह करना	...	...	१७१	
४३-दक्षद्वारा यज्ञमें रुद्रगणोंको शाप दिया जाना तथा शिवके प्रियभक्त नन्दीका दक्षको प्रसुत्तर	...	१४१	५३-गिरिराज हिमालयकी प्रार्थनापर नारदजीद्वारा उमाकी जन्मकुण्डलीपर विचार करनेके लिये उनका हाथ देखा जाना	...	...	१७४	
४४-त्राहणकुल और वेदोंको शाप देनेवाले नन्दीको शिवका समझाना	...	१४२	५४-अपनी कन्या उमाका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर देनेके लिये मेनाका अपने पति हिमवान्के पास जाकर विनश करना तथा हिमवान्का उन्हें समझाना	...	...	१७६	
४५-वृषभपर सबार होकर बहुसंख्यक प्रमथगणोंके साथ सतीका अपने पिता दक्षके यशकी ओर प्रस्थान	...	१४५	५५-शिवका गङ्गावतरणतीर्थमें जाकर व्यात्म-भूत परमात्माका चिन्तन करना तथा सेवकों-सहित गिरिराज हिमवान्का आकर उन्हें स्त्रवनपूर्वक प्रणाम करना	...	...	१७९	
४६-दक्षके यज्ञमें उपस्थित सतीके शरीरका योगाभिमिसे जलकर उसी क्षण भस्म हो जाना, शिवके पार्षदोंका दक्षका प्राण लेनेके लिये आकर्षण तथा भृगुद्वारा यज्ञमें विष्णु डालनेवालोंके नाशके लिये यज्ञकुण्डसे ऋषु नामक सहस्रों देवताओंको प्रकट करना और शिवके प्रमथगणोंका भाग खड़ा होना	...	१४८	५६-शिवका दर्शन करनेके लिये अपनी पुत्री उमाके साथ नित्य अनेकी हिमवान्का	...	...	१८१	

उनसे आज्ञा माँगना और शिवद्वारा उन्हें अकेले ही आनेकी आज्ञा देना ...	१८०	भवनमें चले जाना और अरुन्धती देवीका उन्हें भीतर जाकर समझाना तथा सप्तर्षियोंके पधारनेकी सूचना देना ...	२०८
५७—इन्द्रद्वारा अपना सरण किये जानेपर कामदेवका तल्काल ही उनके सामने आ पहुँचना ...	१८४	६६—वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों तथा मेह आदि पर्वतोंके समझानेपर मेनका और हिमवान्का प्रसन्नतापूर्वक शिवके साथ पार्वतीके विवाहका निश्चय करना ...	२११
५८—रुद्रकी नेत्राभिसे कामदेवका भस्म होना ...	१८६	६७—मेनका विलाप करना तथा अपनी पुत्री पार्वती और नारदको दुर्बचन सुनाना और धिकारना ...	२२१
५९—शिवकी क्रोधाभिसे वड्वानलकी संज्ञा देकर—घोड़ेके रूपमें परिवर्तित कर ब्रह्माका उसको स्थापित करनेके लिये समुद्रतटपर जाना तथा समुद्रका साक्षात् प्रकट होकर उनकी स्तुति कर आनेका कारण पूछना ...	१८८	६८—सप्तर्षियोंके समझानेपर भी मेनका शिवके साथ पार्वतीका विवाह न करनेका ही हठ करना तथा हिमवान्का उन्हें समझाना और शिवके पूजनीय स्वरूपका वर्णन करना ...	२२२
६०—शिवकी आराधनाके लिये पार्वतीकी तुष्कर तपस्या तथा उनके तपके प्रभावसे उस स्थलपर विचरण करनेवाले एक-दूसरेके विरोधी सिंह, गौ, चूहे, बिल्ली आदिका पारस्परिक विरोध- का त्याग कर देना तथा वृक्षोंका सदा फलसे लहर रहना ...	१९१	६९—भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, गङ्गा-यमुनाका उन्हें सुन्दर चँवर हुलाना, आठों सिद्धियोंका उनके आगे नाचना तथा सिद्ध, उपदेवता, समस्त मुनियोंका वररूपमें शोभित शिवके साथ प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करना ...	२२४
६१—भगवान् शिवकी आज्ञासे सप्तर्षियोंका तपस्यामें तत्पर पार्वतीके आश्रमपर जाकर उनके शिवविषयक अनुरोधकी परीक्षा करना ...	१९७	७०—केलिश्वरमें नूतन दम्पति शिव-पार्वतीको देखनेके लिये सोलह दिव्य नारियों— सरस्वती आदिका प्रवेश तथा रत्नमय सिंहासनपर नवदम्पतिके विराजमान होनेपर भगवान् शिवके सामने रतिका हाथ जोड़- कर अपने पति ( कामदेव ) को जीवित करनेकी प्रार्थना करना ...	२३०
६२—परीक्षाके बहाने जटिल तपस्यी ब्राह्मणके वेषमें पधारे हुए शंकरके सामने ही पार्वतीका अभिमें प्रवेश करना तथा उनकी तपस्याके प्रभावसे आगका उसी क्षण चन्दन-पङ्क के समान शीतल हो जाना और पार्वतीका व्याकाशमें ऊपरकी ओर उठने लगना ...	१९९	७१—मेनके मनोभावको जानकर एक सती-साध्वी ब्राह्मणपत्रीद्वारा गिरिजाको उत्तम पातिक्षत्यकी शिक्षाका उपदेश ...	२३६
६३—बायें हाथमें सींग और दाहिने हाथमें डमरू लेकर पीठपर कथरी रखकर तथा लाल बछ्र पहनकर शिवजीका नटके वेषमें मेनकाके पास जाना तथा मेनकाके पास बैठी हुई छियोंकी टोलीके समीप उनका सुन्दर नृत्य करना ...	२०५	७२—ब्रह्माजीकी सत्प्रेरणासे स्वामी-कार्तिकका विमानसे उत्तरकर हाथमें अपनी चमकीली शक्तिको लेकर तारक असुरकी ओर पैदल दौड़ पड़ना ...	२४१
६४—देवताओंके अनुरोधसे वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें शिवजीका हिमवान्के घर जाना और शिवकी निन्दा करके पार्वतीका विवाह उनके साथ न करनेको कहना ...	२०७	७३—तारक असुरका हनन करनेवाले कुमार स्कन्द ( कार्तिक ) का देवताओंके साथ विमानमें बैठकर शिवजीके समीप कैलास पहुँचना ...	२४३
६५—वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें पधारे हुए शिवजीकी ( शिवके ) अपने ही प्रति कही गयी बहुतसी उत्ती वातोंसे मेनकाका शानभ्रष्ट हो जाना तथा मैले कपड़े पहनकर कोप-		७४—सखियोंके समझानेपर पार्वतीजीद्वारा अपनी ही आज्ञामें तत्पर रहनेवाले चेतन पुरुष	

( गणेश ) का अपने शरीरकी मैलसे निर्माण करना तथा उन्हें अपना पुत्र कहकर द्वारपालके पदपर नियुक्त करना ... २४४	८१—देवराज हन्द्र, विष्णु आदि सहित देवगणोंकी त्रिपुरवासी दैत्योंके नाशके लिये भगवान् शिवकी स्तुति तथा शिवका बृंशभपर सवार होकर प्रकट हो जाना और नन्दीश्वर-की पीठसे उत्तरकर विष्णुका आलिङ्गनकर नन्दी-पर हाथ टेककर खड़े हो जाना ... २५७
७५—द्वारपालके पदपर नियुक्त गणेशसे शिवजीका लीलापूर्वक अपने गणों और देवताओंका युद्ध करना तथा उनके पराजित न होनेपर शूलपाणिका स्वयं आकर घोर युद्धके पश्चात् विशूलसे उनका ( गणेशका ) मस्तक काट देना तथा समाचार पाकर स्नानमें सखियों-सहित तत्पर पार्वतीका घटनास्थलपर आकर बहुतसी शक्तियोंको उत्पन्न कर उन्हें प्रल्य करनेकी आशा देना तथा शिवगणोंका भयभीत होकर दूर भाग लड़ा होना ... २४५	८२—शिवजीद्वारा धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर पाशुपतास्त्र नामक वाणका संधान कर उसे त्रिपुरपर छोड़नेका विचार करना ... २६२
७६—देवताओंद्वारा शिवके स्मरणपूर्वक वेदमन्त्र-द्वारा जलको अभिमन्त्रित कर बालक ( गणेश ) के शरीरपर छिड़का जाना तथा जलके सर्वांगोंसे बालकका शिवेच्छासे चेतनायुक्त होकर जीवित हो जाना तथा सोये हुएकी तरह उठ बैठना ... २४६	८३—ब्रह्माजीके आदेशसे शङ्खचूड़का वदरिकाश्रममें जाकर तपस्यामें लीन तुलसीसे मधुर तथा सकाम संलयप करना ... २६६
७७—देवताओंद्वारा शिवके स्मरणपूर्वक वेदमन्त्र-द्वारा जलको अभिमन्त्रित कर बालक ( गणेश ) के शरीरपर छिड़का जाना तथा जलके सर्वांगोंसे बालकका शिवेच्छासे चेतनायुक्त होकर जीवित हो जाना तथा सोये हुएकी तरह उठ बैठना ... २४७	८४—शिवजीकी इच्छासे विष्णुका बृंश ब्राह्मणका वेष धारण कर शङ्खचूड़से उत्र कवचकी याचना करना तथा शङ्खचूड़द्वारा कवचका प्रदान किया जाना ... २७४
७८—पृथ्वीपरिकल्पना करनेमें अपने आपको असमर्थ पाकर गणेशजीद्वारा अपने माता-पिताको दो आसनोंपर विठाकर उनकी सात वार प्रदक्षिण-कर अपने विवाहकी प्रार्थना करना ... २४८	८५—हिरण्याक्षद्वारा पुत्रप्राप्तिके लिये घोर तपका अनुष्ठान तथा गौरीके साथ विराजमान शंकरका प्रसन्नतापूर्वक उसे पुत्ररूपमें अन्धकासुरको प्रदान करना ... २७८
७९—प्रजापति विश्वरूपकी सुन्दर कन्याओं—सिद्धि और युद्धिके साथ विश्वकर्माद्वारा गणेशजीका विवाहसंस्कार सम्पन्न करना ... २४९	८६—युद्धमें श्रीकृष्णद्वारा दैत्यराज वाणासुरकी बहुत-सी भुजाओंका सुदर्शनचक्रसे काटा जाना तथा उसका सिर काट लेनेके लिये उद्यत होनेपर उन्हें शंकरजीका समझाना ... २९५
८०—तारकके तीनों पुत्र—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्षकी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट हुए महापश्चत्ती ब्रह्माजीका वर देनेके लिये उनके सामने प्रकट होना और उन तीनोंका अङ्गलि वौधकर रितामहके चरणोंमें प्रणिपात करना ... २५०	८७—शिवका प्रसन्नतापूर्वक पूर्णसच्चिदानन्दकी कामदा-मूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारी-नरके रूपसे ब्रह्माके निकट प्रकट होना तथा ब्रह्माजीका उन्हें दण्डवत् प्रणाम करना ... ३०१
८१—उत्तर तपस्यामें रत नन्दीको बृंशभवज शिवका वर देना तथा कमलोंकी वनी हुई अपनी शिरोमाला-को उत्तरकर उसके गलेमें कृपापूर्वक डाल देना ... ३०७	८८—विश्वानर मुनिका वाराणसीमें आकर वीरेश लिङ्गकी आराधना करना तथा अष्टवर्णीय विभूति-विभूषित बालकरूपमें शिवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देना तथा उनके पुत्ररूपमें उनकी पत्नी वृचिपतीके गर्भसे प्रकट होनेका आश्वासन प्रदान करना ... ३१०

९०—शिवजीका प्रकट होकर बालक गृहपतिको अभय-दान देना तथा अग्निपदका भागी बनाना ... ...	३१३	शिवजीका अर्जुनकी रक्षाके लिये आगे जाना और शिव तथा अर्जुनके बाणोंसे मरकर शूकरका भूतलपर गिर पड़ना तथा देवताओं-द्वारा जय-जयकारपूर्वक पुण्ड्रष्टि और स्तुति किया जाना ... ...	३२१
९१—इन्द्रके अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनुमानका सूर्यके निकट नित्य जाकर उनसे सारी विद्याएँ सीखना ...	३१६	९८—अर्जुनद्वारा वाण न लौटाये जानेपर किरात-वेषधारी शिवका उससे भीषण संग्राम छेड़ना ... ...	३३३
९२—भगवान् शिवका यतिरूप धारणकर भील आहुक और उसकी पत्नी आहुकाकी परीक्षा लेना तथा पतिके हिसक पशुओंद्वारा रातमें खा लिये जानेपर प्रातःकाल यतिसे चिता जलवाकर भीलनीके उसमें प्रवेश करते ही शिवका अपने साक्षात् रूपमें प्रकट होकर वर देना ...	३२१	९९—शिवजीका अर्जुनपर प्रसन्न होकर उसे पशुपत नामक अस्त्र प्रदान करना ...	३३५
९३—देवताओं तथा बृहस्पतिजीको साथ लेकर शिवका दर्शन करनेके लिये इन्द्रका कैलास पर्वतपर जाना तथा बीचमें ही अवधूत वेष धारणकर शिवद्वारा परीक्षा लिये जानेपर इन्द्रका उनपर वज्रसे प्रहार करना, शिवके नेत्रसे रोषवश अग्निका निकलना और बृहस्पतिकी प्रार्थनापर शिवका उस तेजको क्षारसमुद्रमें फेंकना और उसका बालक—सिन्धुपुत्र जलन्धरके रूपमें परिणत हो जाना ... ...	३२४	१००—अत्रिपत्नी अनसूयापर गङ्गाजीकी कृपा तथा उसके द्वारा गङ्गाजीको अपना वर्षभरका किया पुण्य अर्पण किया जाना तथा गङ्गाजीका उसके परिणामस्वरूप काशीमें स्थिररूपसे निवास करनेका आश्वासन देना ...	३४०
९४—ब्राह्मणपत्नीके सामने भिक्षुरूपमें शिवका प्रकट होकर उसे विदर्भदेशके सत्यरथ राजा, उनकी पत्नी तथा उनके नवजात शिशुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर बालकके पालन-पोषणका आदेश देना तथा ब्राह्मणीको अपने उत्तम स्वरूपका दर्शन कराना ... ...	३२६	१०१—ब्राह्मणपत्नीपर मूढ़ नामक मायावी दुष्ट असुरकी कुदृष्टि और संयोग-याचना तथा शिवद्वारा प्रकट होकर दैत्यराजको तत्काल भस्त कर दिया जाना और ब्राह्मण-द्वारा शिवकी स्तुति ...	३४१
९५—व्यासजीका अर्जुनको शूकविद्याका उपदेश देना तथा पार्थिवलिङ्गके पूजनका विधान बताकर उसे इन्द्रकील पर्वतपर जाकर जाह्नवीके तटपर बैठकर तप करनेकी प्रेरणा देना ... ...	३२८	१०२—रोहिणीमें ही अधिक आसक्त होनेके कारण चन्द्रमाको क्षयरोगसे ग्रस्त होनेका दक्षद्वारा शाप तथा रोगके शमनार्थ चन्द्रमाका शिव-लिङ्गकी स्थापना कर प्रभासक्षेत्रमें ल्यातार खड़े होकर मृत्युंजय मन्त्रसे भगवान् वृषभ-ध्वजका पूजन तथा शिवका प्रसन्न होकर चन्द्रमाको प्रत्यक्ष दर्शन देना और चन्द्रमा-द्वारा क्षयरोग-निवारणकी प्रार्थना ...	३४३
९६—इन्द्रकील पर्वतपर गङ्गाजीके समीप एक मनोरम स्थानपर अर्जुनद्वारा तेजोरशि शंकरजीका ध्यान करना तथा परीक्षा करनेके लिये ग्रहचारी ब्राह्मणके वेषमें आये हुए इन्द्रका अपने स्वरूपमें प्रकट होना और उसे शंकरका मन्त्र बताकर जप करनेकी आशा देना ...	३२९	१०३—अवन्तिपर दूषण असुरकी चढ़ाईसे क्षुब्ध ब्राह्मणोंको शिवपर भरोसा रखनेके लिये कहनेपर शिवलिङ्गके पूजनमें ध्यानस्थ वेद-प्रियके चारों पुत्रों—देवप्रिय आदिको भार डालनेका असुरका अपनी सेनाको आदेश और शिवलिङ्गके स्थानके ही गड्ढेसे महाकाल शिवका प्रकट होकर दैत्यको भस्त कर देना ... ...	३४५
९७—मूक नामक दैत्यका शूकररूप धारण करके अर्जुनके पास आना तथा किरातवेषमें	३४७	१०४—बानरराज हनुमानजीका प्रकट होकर गोपकुमार श्रीकर, राजा चन्द्रसेन तथा अन्य राजाओंको कृपादृष्टिसे देखना ... ...	३४७

१०५—विद्याचलकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीका योगियोंके लिये भी दुर्लभ रूपमें प्रकट होना तथा देवता और निर्मल अन्तःकरणबाले शृंगियोंका वहाँ आकर उनकी पूजा करके शिररूपसे वहाँ निवास करनेकी प्रार्थना करना	३४८	प्रकट होना और शुश्माकी अपनी सौत सुदेहा- की प्राणरक्षाकी उनसे प्रार्थना ..... ३६४
१०६—नरभारायणकी पार्थिवलिङ्ग-पूजासे प्रसन्न होकर शिवका प्रकट हो जाना तथा दोनोंका उनसे हिमालयके केदारतीर्थमें स्वयंज्योति- लिङ्गके रूपमें स्थित होनेका अनुरोध ..... ३४९	३४९	११५—कैलासपर जाकर भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक शिव-आराधना तथा देवाधिदेव महेश्वरका उन्हें अपना तेजोराशिमय सुदर्शनचक्र प्रदान करना ३६६
१०७—कामरूप देशके राजा सुदक्षिणके पार्थिवलिङ्ग- पूजनमें राक्षस भीमका विघ्न डालना तथा शिवका उस लिङ्गसे भीमेश्वररूपमें प्रकट होकर राक्षससे युद्ध करना और नारदजीकी प्रार्थनापर समस्त राक्षसों और भीमको हुंकारमात्रसे भस्त कर डालना ..... ३५०	३५०	११६—विल्वके पेढपर बैठे हुए गुरुद्वृह भीलका मृगीपर बाण-संधान करना तथा अनजानमें उसके हाथके धक्केसे पेढपे नीचे शिवलिङ्गपर थोड़े-से जल और विल्वपत्रका गिर पड़ना ३८७
१०८—सद्गुरु भगवान् शिवसे काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाकर उमासहित वहाँ विराजमान होनेके लिये प्रार्थना ..... ३५१	३५१	११७—अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मृग और दोनों मृगियोंका गुरुद्वृह भीलके पास आ पहुँचना तथा शिवपूजाके प्रभावसे दुर्लभ ज्ञानसे सम्पन्न भीलका परोपकारमें लगे उन पशुओंकी दशा देखकर अपने आपको धिक्कारना और उन्हें जानेकी आशा देना ..... ३९०
१०९—पलीसहित महर्षि गौतमकी आराधनासे संतुष्ट होकर भगवान् शिवका शिवा और प्रमथ- गणोंके साथ प्रकट होना तथा गौतमद्वारा उनका स्वकन ..... ३५२	३५२	११८—पुनर्की प्राप्तिके लिये श्रीकृष्णका तप करना और उनके तपसे प्रसन्न होकर पार्वती, कात्तिकेय तथा गणेशके सहित शिवका प्रकट होना और श्रीकृष्णका उनसे स्तुतिपूर्वक वरदान माँगना ..... ३९५
११०—भगवान् शिवसे महर्षि गौतमकी गङ्गा-याचना तथा शिवदत्त गङ्गा-जलका स्त्रीरूप धारण करके खड़ा होना, देवता आदिका आकर गङ्गाजीसे तथा शिवसे वहाँ निवास करनेकी प्रार्थना करना और गङ्गा तथा शिवका क्रमशः गौतमी और अग्निकेश्वरके रूपमें वहाँ निवास ..... ३५३	३५३	११९—शुभ कर्म करनेवाले प्राणीके यमपुरीमें जानेपर यमराजद्वारा उसे स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य और अर्थ्य दिया जाना ..... ३९८
१११—देवताओं, शृंगियोंके सांनिध्यमें रावणकी अपनी पली मन्दोदरीसहित वैद्यनाथ शिव- लिङ्गकी पूजा ..... ३५४	३५४	१२०—कूर कर्म करनेवालेका यमराजको भयंकर रूपमें देखना ..... ३९९
११२—राजसी दारकाकी स्तुतिसे देवी पार्वतीका प्रसन्न हो जाना तथा उसके द्वारा वंशकी रक्षाका वरदान माँगनेपर उनका शिवसे अनुरोध करना कि वही राक्षसोंके राज्यका शासन करे ..... ३५५	३५५	१२१—शिवसे कालचक्रके सम्बन्धमें पार्वतीका प्रश्न पूछना ..... ४०७
११३—श्रीरामकी पूजासे प्रसन्न होकर शिवका बामाङ्गभूता पार्वतीसहित प्रकट होकर विजय- सूचक वरदेना तथा उनके ज्योतिलिङ्ग ( रामेश्वर ) के रूपमें स्थित होनेके लिये श्रीरामकी प्रार्थना ..... ३५६	३५६	१२२—राजा सुरथके अपने आश्रमपर आनेपर सुनीश्वर मेधाका मीठे बच्चन, भोजन और आसनद्वारा उनका आदर-सत्कार करना ..... ४१२
११४—शुश्माके सामने व्योतिःस्वरूप महेश्वर शिवका	३५७	१२३—राजा सुरथका वैश्य समाधिको साथ लेकर मेधा मुनिके पास आना तथा उनसे अपने और वैश्यके मोहपाशको काटनेकी प्रार्थना ..... ४१३
	३५८	१२४—जगजननी महाविद्याका त्रैलोक्य-मोहिनी शक्तिके रूपमें प्राकट्य ..... ४१४
	३५९	१२५—दैत्य शुभ्मासुरके दूत दानवशिरोमणि सुग्रीव- का हिमालयपर देवीके पास आकर शुभ्मका संदेश-निवेदन ..... ४१५
	३६०	१२६—सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शिवप्रिया उमाका वर, पाद्य, अङ्गुष्ठा और अभय धारणकर प्रकट होना तथा देवताद्वारा मस्तक छुकाकर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करना ..... ४१६
	३६१	१२७—सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शिवप्रिया उमाका वर, पाद्य, अङ्गुष्ठा और अभय धारणकर प्रकट होना तथा देवताद्वारा मस्तक छुकाकर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करना ..... ४१७
	३६२	१२८—सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शिवप्रिया उमाका वर, पाद्य, अङ्गुष्ठा और अभय धारणकर प्रकट होना तथा देवताद्वारा मस्तक छुकाकर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करना ..... ४१८
	३६३	१२९—सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शिवप्रिया उमाका वर, पाद्य, अङ्गुष्ठा और अभय धारणकर प्रकट होना तथा देवताद्वारा मस्तक छुकाकर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करना ..... ४१९

१२७—देवताओंकी व्याकुल प्रार्थना सुनकर कृपामयी देवीका चारों हाथोंमें क्रमशः धनुष, वाण, कमल तथा अनेक प्रकारके फल-मूल लिये हुए प्रकट होना और प्रजाजनोंको कष्ट उठाते देखकर नौ दिन और नौ रात रोते रहना	१३३—ब्रह्माजीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महादेवजी- का अपने शरीरके बामभागसे देवी रुद्राणीको प्रकट करना और ब्रह्माद्वारा सर्वलोकमहेश्वर- की सुति ... ...	४६८
१२८—मेरुके दक्षिण शिखर—कुमारशृङ्गमें कुमार स्कन्दका दर्शन और पूजनकर महामुनि वाम- देवद्वारा उनका स्वावन ... ...	१३४—महादेवजी और पार्वतीजीकी परस्पर बात- चीतके बीचमें ही देवीद्वारा आज्ञा दिये जानेपर एक सख्तीका देवीद्वारा ही शंकरके लिये भेटस्वरूप लाये गये व्यापको लाकर उनके सामने खड़ा कर देना ... ...	४७४
१२९—सुन्दर रमणीय मेरुशिखरपर जाकर ब्रह्माजी- का ऋषियोद्वारा दर्शन तथा मस्तकपर अङ्गलि बाँधकर स्वावन किया जाना ... ...	१३५—भगवान् विष्णुके अनुरोधपर शिवका उमासहित इन्द्रके रूपमें ऐश्वर्यतपर आसीन होकर उपमन्तु मुनिके तपोवनमें जाना तथा मुनिका मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करना ... ...	४८६
१३०—ब्रह्माद्वारा छोड़े गये सूर्यतुत्य तेजस्वी मनोभय चक्रका पीछा करते हुए उसके शीर्ण होनेके स्थान ( नैमित्तारण्य ) में मुनियोंका जाना ... ...	१३६—देवी पार्वतीके साथ वृषभपर आरूढ़ हुए महादेवजीका दर्शन कर उपमन्तुका भक्तिविनम्र चित्तसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ जाना ... ...	४८७
१३१—नैमित्तारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन तथा महायज्ञके समाप्त होनेपर वे क्या करना चाहते हैं— इस सम्बन्धमें मुनियोंसे उनका प्रश्न ... ...	१३७—नैमित्तारण्यनिवासी ऋषियोंका वायुदेवसे श्रीकृष्ण और उपमन्तुके मिलन तथा श्रीकृष्णके पाशुपतशानकी प्राप्तिका प्रसङ्ग पूछना और वायुदेवका उसे सुनाना ... ...	४८९
१३२—ब्रह्माजीके द्वारा शिवके अद्विनारीश्वररूपकी स्तुति ... ...	१३८—उपमन्तुद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपतशानका उपदेश ... ...	४९०

छप गया !

प्रकाशित हो गया !!

## विक्रम-संवत् २०१८ ( सन् १९६२-६३ ) का गीता-पञ्चाङ्ग

सम्पादक—ज्यौतिषाचार्य ज्यौतिषतीर्थ पं० श्रीसीतारामजी ज्ञा, वाराणसी

आकार २२x३० आठपेजी, ब्लेज सफेद २६ पैंडका कागज, पृष्ठ-संख्या ७२, आर्टप्रेसरका सुन्दर सुखपृष्ठ,  
मूल्य .५० ( पचास नये पैसे ) ढाकव्यय रजिस्ट्रीखर्चसहित .७०, कुल १.२०

इस बार ज्योतिर्विंद् पं० श्रीविद्याधरजी शुद्धद्वारा तैयार की हुई दृष्टफलार्थ—काशीराश्युदयसिद्ध दैनिक लम्बारिणीके  
८ पृष्ठ और अधिक दिये गये हैं। अन्य सब उपयोगी वातें सदाकी तरह हैं ही।

वि० २०१८ के गीता-पञ्चाङ्गकी ४०,००० प्रतियाँ छापी गयी थीं; परंतु सब ग्राहकोंकी पूर्ति न हो सकी। जगह-जगहसे  
लोग माँगते ही रहे, पर उन्हें अन्ततः निराश ही होना पड़ा। इस बार भी ४०,००० प्रतियाँ ही छापी जा सकी हैं। अतः  
जिन्हें लेना हो, शीघ्रता करनेकी कृपा करेंगे।

विक्रेताओंके लिये १,००० प्रतियाँ एक साथ लेनेपर मूल्य ४५०.०० ( चार सौ पचास रुपये ) है।  
कमीशन, विशेष कमीशन तथा सवारी गाड़ीका फ्री रेलभाड़ा आदि नियमानुसार मिलता ही है।

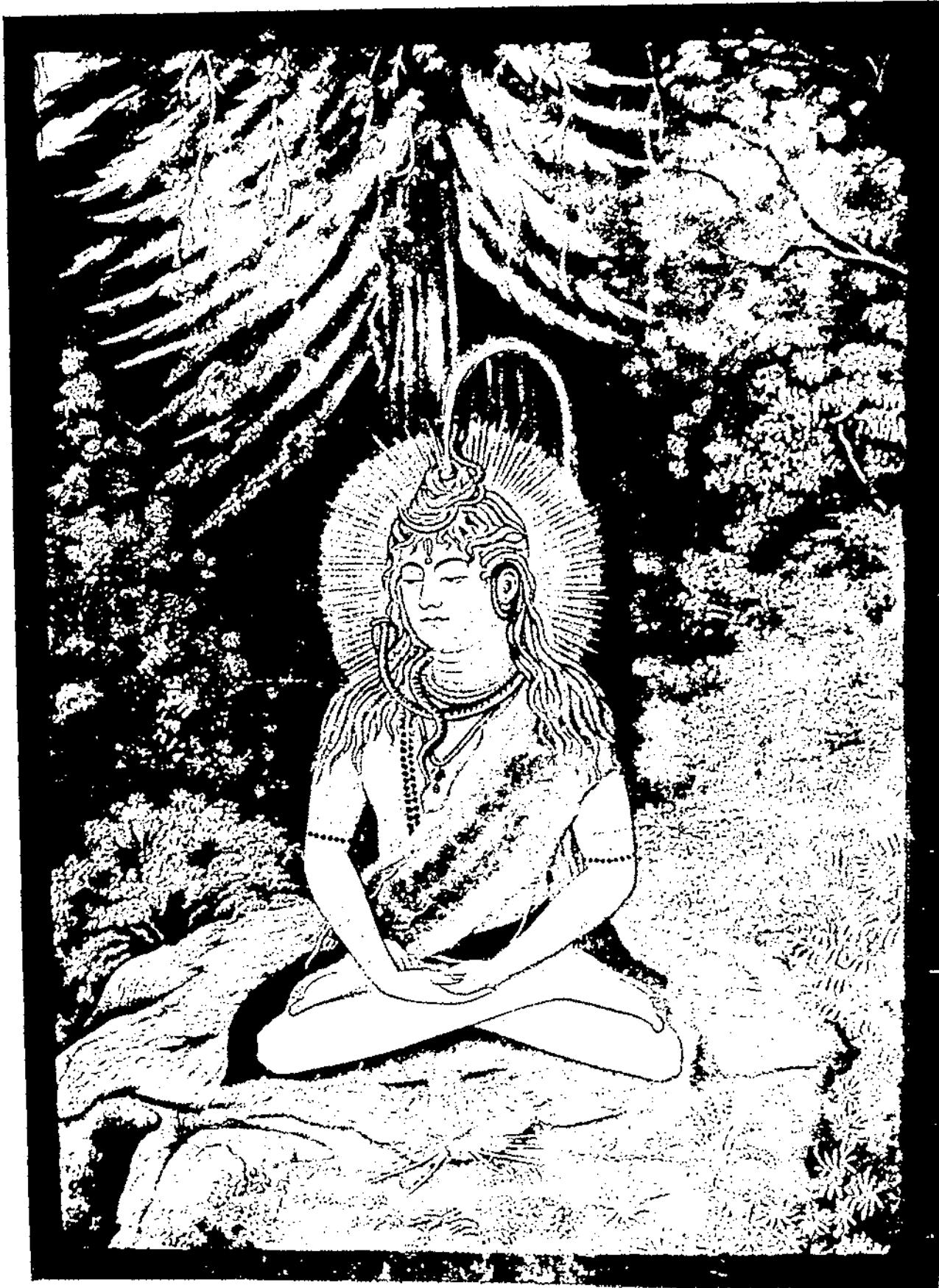
## मानस-पीयूषके खण्ड २ का चतुर्थ संस्करण

( वालकाण्डके दोहा ४३ से दोहा १८८ की ६ चौपाईतक )

पृष्ठ-संख्या ८६८, सजिल्द मूल्य ९.५० ( नौ रुपया पचास नये पैसे ), ढाकखर्च २.६० ( दो रुपया साठ नये पैसे )

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )





भगवान् शिव ध्यानस्थ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदन्व्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावश्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।  
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनि समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ }

गोरखपुर, सौर माघ २०१८, जनवरी १९६२

{ संख्या १  
पूर्ण संख्या ४२२

### ध्यानस्थ शिव सच्चिदानन्द

अचल सरल उज्ज्ञत सुदिव्य वपु, कपिश केश चूडा नगेश ।  
नीलकण्ठ, नासाद्व दृष्टि श्विर, मुक्तान्तगहार गल-देश ॥  
क्रोडस्थित कर-कमल, समुल्लच्छ्वल ज्योति, प्राण-तन-भन निस्पन्द ।  
व्याघ्रचर्म-आत्मन शुचि शोभित शिव योगेश सच्चिदानन्द ॥



## शिवका स्तवन

जय हे औदरदानी !

जैसे तुम उदार परमेखर, तैसी सिवा भवानी ॥ जय० ॥  
 तुम घट-घटवासी अविनासी व्यापक अंतरजामी,  
 सुदृश सच्चिदानन्द अनामय अमल अकाम अनामी ।  
 अविदितगति अनबद्ध अगोचर अगुन अनीह अमानी ॥ जय० ॥ १ ॥  
 अगम प्रमानि तुमहि निगमागम 'नेति' 'नेति' कहि हारे,  
 सोई तुम भक्तन हित कारन रूप अनेकन धारे ।  
 किए अनुग्रह भाजन प्रभु ने सकल चराचर प्रानी ॥ जय० ॥ २ ॥  
 परखि प्रीति परबत-तनया कों आधे अंग बिठायो,  
 आधो पुरुष अरथ नारी को अद्भुत रूप बनायो ।  
 दंपति की यह एकरूपता तुम ते जग ने जानी ॥ जय० ॥ ३ ॥  
 आक, धतूर, पात, श्रीफल पै तुम रीझत त्रिपुरारी,  
 चाउर चारि चढ़ाइ पदारथ चारि लहत नरनारी ।  
 आसुतोष ! तुम विन त्रिभुवन में को अति कृपानिधानी ॥ जय० ॥ ४ ॥  
 जाके पदरज के प्रसाद ते सुर सुरपति सुखभोगी,  
 सोई सरवस्त्र अरपि औरन कों फिरै, अकिञ्चन जोगी ।  
 परहित जाचत कर कंपाल लै, डारत भीख भवानी ॥ जय० ॥ ५ ॥  
 तुम विन ग्रेत पिसाचनहू कों को मानत निज प्यारे,  
 वैर विहाइ मोर अहि मूषक निवसत सदन तिहारे ।  
 बृषभ सिंघ सँग सँग रह पीअत एक घाट पै पानी ॥ जय० ॥ ६ ॥  
 विष विषधर दोषाकर दूषन भूषन कौन बनावै,  
 कौन आप हालाहल पीकै औरहि सुधा पियावै ।  
 तुम विन काके कंठ कृपा की लखियत नील निसानी ॥ जय० ॥ ७ ॥  
 कासी बीच मुक्ति-मुक्तामनि कौन लुटावत डोलै,  
 को पसुपति विनु वैष्ण वसुन को पास कृपा करि खोलै ।  
 स्ववन सुनाइ कौन तारक मनु तारत अग्नित प्रानी ॥ जय० ॥ ८ ॥  
 जेहि मारत जग तेहि अहि गन कों प्यार करत तुम स्वामी,  
 लीजै सरन महेस ! कृपा करि, चरन नमामि नमामी ।  
 तुम विन को अपनावत मो सम कुटिल अधम अभिमानी ॥ जय० ॥ ९ ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

## शिवपुराणमें शिवका स्वरूप

### एक ही परम तत्त्व

सत्-चित्-आनन्दरूप परतम परात्पर ब्रह्म एक है; वह सर्वदा सर्वथा पूर्ण, सर्वग, सर्वगत, अनन्त, विभु है; वह सर्वतीत है, सर्वरूप है। सम्पूर्ण देश-कालातीत है, सम्पूर्ण देश-कालमय है। वह नित्य निराकार, नित्य निर्गुण है; वह नित्य साकार, नित्य सगुण है। अवश्य ही उसकी आकृति पाञ्चभौतिक नहीं और उसके गुण त्रिगुणजनित नहीं हैं। वह ब्रह्म स्वरूपतः नित्य एकमात्र होते हुए ही स्वरूपतः ही अनादिकालसे विविध-स्वरूप-सम्पन्न, विविध-शक्तिसम्पन्न एवं विविध-शक्ति-प्रकाश-प्रक्रिया-सम्पन्न है। नित्य एक होते हुए ही उसकी नित्य विभिन्न पृथक् सत्ता है। उन्हीं पृथक् रूपोंके नाम—शिव, विष्णु, शक्ति, राम, कृष्ण, गणेश आदि हैं। वह एक ही अनादिकालसे इन विविध रूपोंमें अभिव्यक्त है। ये सभी स्वरूप नित्य शाश्वत आनन्दमय ब्रह्मरूप ही हैं—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।  
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्लचित् ॥  
परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः ।  
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः ॥

‘परात्पर ब्रह्मके वे सभी रूप नित्य शाश्वत परमात्म-स्वरूप हैं। उनके देह जन्म-मरणसे रहित और स्वरूप-भूत हैं, कदापि प्रकृतिजनित नहीं हैं। वे परमानन्द-संदोह हैं, सर्वतोभावेन ज्ञानैकस्वरूप हैं, वे सभी समस्त भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं एवं सभी दोषोंसे (माया-प्रपञ्चसे) सर्वया रहित हैं।’

शिवपुराणमें ये ही परात्पर ब्रह्म ‘शिव’ नामसे व्याख्यात हैं। इनके स्वरूपका शिवपुराणमें आदिसे अन्ततक जो वर्णन मिलता है, वह सब-का-सब पूर्णरूपसे परतम ब्रह्मका ही वर्णन है। वेद-उपनिषद्में परात्पर ब्रह्मके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, वही शिवपुराणमें

भगवान् शिवके सम्बन्धमें कथित है। एक-एक अक्षर मानो औपनिषद्ब्रह्मका वाचक है। कुछ उदाहरण लीजिये। शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें भगवान् वायुदेवने महेश्वर श्रीशिवका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।  
संसूक्ष्य विश्वसुवनं गोत्रान्ते संचुकोच्च यः ॥  
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।  
तथैव विश्वतोदाहुर्विश्वतः पादसंयुतः ॥  
घावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ।  
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥  
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम् ।  
विश्वसादधिको रुद्रो महर्विरिति हि श्रुतिः ॥  
देवाहमेतं पुरुषं महान्तमसृतं ध्वन्यम् ।  
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् संस्थितं प्रभुम् ॥  
असाक्षात्स्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः ।  
लाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत् ॥  
सर्वानन्नशिरोग्रीवः सर्वभूतगुह्याशयः ।  
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥  
सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।  
सर्वतःश्रुतिमङ्ग्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥  
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ।  
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥  
अचक्षुरपि यः पश्येदकर्णोऽपि शृणोति यः ।  
सर्वे वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥  
अणोरणीयान् महतो महीयानयमव्ययः ।  
गुह्यायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः ॥  
तमकुतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम् ।  
धातुः प्रसादादीशानं चीतशोकः प्रपद्यति ॥  
देवाहमेनमजरं पुराणं सर्वनां विभुम् ।  
निरोधं जन्मनो यस्य चदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ १४—२६ ॥  
( शि० यु० वा० सं० पू० ख० ६ । १४—२६ ॥

१ एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्यु-  
२ इमोद्देवकार्मचक्षत ईशनीभिः ।

सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं,  
दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके

प्रत्यक्ष जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले  
संसज्ज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥  
( ३ । २ )

विश्वतश्चभुवत् विश्वतोमुखो विश्वतोवाहुरुत् विश्वतस्पात् ।  
सं वाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्योवाभूमी जनयन् देव एकः ॥  
( ३ । ३ )

यो देवानां प्रभवश्चोद्द्वयश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।  
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥  
( ३ । ४ )

वेदाहमेतत् पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।  
तमेव विदित्वाति भूत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥  
( ३ । ८ )

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्  
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-  
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥  
( ३ । ९ )

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुह्यशयः ।  
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥  
( ३ । ११ )

सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।  
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥  
( ३ । १६ )

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।  
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहद् ॥  
( ३ । १७ )

अपाणिपादो जबनो ग्रहीता पश्यत्यच्छुः स शृणोत्यकर्णः ।  
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरुत्यं पुरुषं महान्तम् ॥  
( ३ । १९ )

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुह्यायां निहितोऽस्य जन्तोः ।  
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥  
( ३ । २० )

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्यात् ।  
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति वस्य व्रह्मावादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥  
( ३ । २१ )

[ खेताश्वतरोपनिषद् ]

इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं। सर्व और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाले वे ही एक महेश्वर देव हैं। वे ही सब देवताओंको उत्पन्न तथा पालन करते हैं। वे ही सब देवताओंमें सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। वे ही सबसे अधिक श्रेष्ठ रुद्रदेव महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अङ्गकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अङ्गानांवकारसे परे विराजमान हैं। इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह समस्त जगत् परिष्ठूर्ण है। ये भगवान् सब ओर मुख, सिर और कण्ठवाले हैं। सब प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करते हैं, सर्वव्यापी हैं; अतएव ये भगवान् शिव सर्वगत हैं। इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके निषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। ये सबके खामी, शासक, शरणदाता और सुहृद् हैं। ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान् से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय-गुफामें निवास करते हैं। जो मनुष्य सबकी रचना करनेवाले परमेश्वरकी कृपासे इन यज्ञस्वरूप संकल्परहित अत्यन्त महिमासे युक्त परमेश्वरको देख लेता है, वह सब प्रकारके शोकसे रहित हो जाता है। ब्रह्मवादी पुरुष जिनके जन्मका अभाव बतलाते हैं, उसर्वव्यापी, सर्वत्र विद्यमान, जरा-मृत्यु आदिसे रहि पुराणपुरुष परमेश्वरको मैं जानता हूँ।

वायुदेवता आगे फिर कहते हैं—

द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ  
एकोऽस्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो यद्गृतं भव्यमेव च ॥  
मायां विद्वर्त्सु ज्यत्यस्मिन्निविष्टे मायया परः ।  
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥

×      ×      ×

परस्तिकालादकलः स एव परमेश्वरः ।  
सर्ववित् त्रियुगाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः ॥  
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम् ।  
देवदेवं जगत्पूज्यं सचिन्तस्यमुपास्महे ॥  
कालादिभिः परो यसात् प्रपञ्चः परिवर्तते ।  
धर्मायहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च ॥  
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं

तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पर्ति पतीनां परमं परस्ता-  
द्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ॥

न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते ।  
न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ॥

परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता ।  
श्वानं वलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ॥

न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिङ्गं न चेशिता ।  
कारणं कारणानां च सत्तेषामधिपात्पिः ॥

न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन ।  
न जन्महेतवस्ताद्वन्मलमायादिसंब्रकाः ॥

सं एकः सर्वभूतेषु गृहो व्याप्तश्च विश्वतः ।  
सर्वभूतान्तरात्मा च धर्माध्यक्षः स कथ्यते ॥

सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः ।  
एको चशी निष्क्रियाणां वहनां विवशात्मनाम् ॥

नित्यानामप्यसौ लित्यश्चेततानां च चेतनः ।  
एको वहनां चाकामः कामानीशः प्रथच्छति ॥

सांख्योगाधिगम्यं यत् कारणं जगतां पतिम् ।  
शत्वा देवं पश्युः पाशैः सर्वैरेव विमुच्यते ॥

विद्वद्विद्वयवित् स्वात्मयोनिः कालहृष्णी ।  
प्रथातः देवतापतिर्गुणेशः पाशामोक्तकः ॥

घट्साणं विद्वे पूर्वे वेदांश्चोपादिशात् ख्ययम् ।  
यो देवतामहं घुट्ध्वा स्वात्मयुद्धिप्रसादतः ॥

मुमुक्षुरसात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम् ॥

शिवपुराण सं० पृ० ८०४ । ६-७, ९-१०, ६ । ५५-६७  
यतो चान्यो निवर्तन्ते अग्राप्य मनसा सह ।  
आनन्दं यस्य वै विद्वान् न विभेति कुतश्चन ॥

( शिवपुराण सं० पृ० ८०४ । ६-७, ९-१०, ६ । ५५-६७ )

यस्मिन्न भासते विद्युत्त्र सूर्यो न च चन्द्रमाः ।  
यस्य भासा विभातीदमित्येषां शाश्वती श्रुतिः ॥\*  
( शिवपुराण सं० पृ० ८०४ । ६-७, ९-१०, ६ । ५५-६७ )

\* द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिग्रस्व जाते ।  
तयोरन्यः पिष्पलं स्वाद्वस्यनश्वन्यो अभिचाकशीति ॥४ । ६॥  
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो ब्रतानि भूतं भव्यं यत्वा वेदा वदन्ति ।  
अस्मान्मायी सज्जते विश्वमेतत्सिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥४ । ९॥  
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।  
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥४ । १० ॥

×      ×      ×

आदिः स संयोगनिमित्तदेतुः परस्तिकालादकलोऽपि दृष्टः ।  
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचिन्तस्यमुपास्य पूर्वम् ॥६ । ५॥  
स वृक्षकालाद्विभिः परोऽन्यो यसात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ।  
धर्मायहं पापनुदं भगेशं शत्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥६ । ६॥  
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।  
पर्ति पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥६ । ७॥  
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।  
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी शानवलक्षिया च ॥६ । ८॥  
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।  
स कारणं करणाधिपातिः न चास्य कश्चिजनिता न चाधिपः ॥  
एको देवः सर्वभूतेषु गृहः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।  
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवले निर्गुणश्च ॥६ । ११॥  
एको वशी निष्क्रियाणां वहनामेकं वीजं वहुधा यः करोति ।  
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥६ । १२॥  
निलो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको वहनां यो विदधाति कामान् ॥  
तत्कारणं सांख्ययोगादिगम्यं शत्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥६ । १३॥  
स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः कालकाले गुणी सर्वविद्ययः ।  
प्रधानक्षेत्रज्ञगतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्मितिवन्धवेतुः ॥६ । १६॥  
यो व्रहाणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।  
तं ह देवमात्मद्विप्रकाशं सुमुक्षुर्वं शरणमहं प्रपद्ये ॥६ । १८॥

( श्वेताश्वतरेषानिपद् )

यतो वाचो निवर्तन्ते अग्राप्य मनसा सह । आनन्दं व्रहाणो  
विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति ( तैतिरीयोपनिपद्, व्रहा० नवम  
अनुवाक )  
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः ।  
तमेव भान्तमनुभाति लवं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥६ । १४॥  
( श्वेताश्वतरेषानिपद् )

‘एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष ( शरीर )-का आश्रय लेकर रहते हैं । उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है ।

‘छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रखता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है । प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है ।’

‘वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं । सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है । वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं । अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं । जो काल आदिसे परे हैं, जिनसे यह समस्त प्रपञ्च प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं । उनके शरीर-रूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी करण नहीं हैं । उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्में कोई नहीं दिखायी देता । ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक प्रणाली वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है । उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है । उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है । वह समस्त कारणोंका कारण है एवं उनका भी अधीश्वर है । उसका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं । वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें समस्त भूतोंमें गुह्यरूपसे व्याप्त है । वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्मान्यक्ष कहलाता

है । वह सब भूतोंके अंदर वसा हुआ, सबका इष्ट साक्षी, चेतन और निर्गुण है । वह एक है, वही है अनेकों विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है । वह एक । कामनारहित है और वहृतोंकी कामना पूर्ण करनेवा ईश्वर है । सांख्य और योग अर्यात् ज्ञानयोग और निष्क्रियरूपसे प्राप्त करने योग्य सबके कारणरूप ; जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पा ( वन्धनों ) से मुक्त हो जाता है । वे सम्पूर्ण विश्व स्थान, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकृत्यके हेतु, ज्ञानसर्व कालके भी स्थान, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रब्रह्म और जीवात्माके स्वामी, समस्त गुणोंके शासक । संसार-वन्धनसे छुड़ानेवाले हैं । जिन परमदेवने इस पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदे ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्र ( विकसित ) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जान में इस संसार-वन्धनसे मुक्त होनेके लिये उनकी २१० जाता हूँ ।’

‘जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुकम्भी भी किसीसे नहीं डरता ।’

‘जिसके पास न तो यह विजली प्रकाश करती न सूर्य और चन्द्रमा ही अपनी प्रभा फैलाते हैं । उन्हें प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है । ऐसे सनातनी श्रुतिका कथन है ।’

इस प्रकारके स्वरूप-व्याख्यानसे शिवपुराण भरा है इससे सिद्ध है कि शिवपुराणके शिव पर तम प्ररात्पर ब्रह्म हैं, जो विष्णुपुराणके महाविष्णु, श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण हैं, रामायणके श्रीराम हैं, भगवतकी दुर्गा हैं । वस्तुतः एक ही ब्रह्म अनादिक ही विभिन्न नामों-रूपोंसे अभिव्यक्त है—‘एकं सं बहुधा वदन्ति ।’ एक ही तत्त्वस्वरूप परात्पर सर्व-

महेश्वर, सर्वगत, सर्वातीत प्रभुको ऋशियोंने विभिन्न रूपोंमें जाना, देखा और कहा है। शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेश एक ही परमात्माके पाँच समुण्डर हैं। महाप्रलयके समय वे एकमात्र ब्रह्म ही रह जाते हैं। फिर कल्यके प्रारम्भमें उन्होंने एक ब्रह्मकी शक्तिके द्वारा उनके किसी रूपसे शक्तिका तथा ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र—इन त्रिदेवों ने प्राकाच्य होता है। यह कभी 'शिव' रूपसे होता है, हमी विष्णु, शक्ति या अन्य किसी रूपसे। कैसे तत्त्वः वस्तुतः इनमें कोई भी भेद नहीं है।

### भगवान् शिव और विष्णुमें तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रमें अभिनवता

भगवान् हरिन्हर तो सर्वथा एक है ही। लीलामात्रके लिये कहीं भगवान् हर रूपसे उपास्य एवं हरिरूपसे उपासक होते हैं, तो कहीं हरिरूपसे उपास्य और हररूपसे उपासक होते हैं। उपासनाका तत्त्व बतलानेके लिये ही वे परस्पर उपास्य-उपासककी लीला करते हैं। वस्तुतः—

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम् ।

एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात् ॥

'हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही रूपका भेद होता है। नाटकमें अभिनेता विभिन्न रूप धारण होता है; पर वस्तुतः वह जो है, वही रहता है।'

हृष्टद्यूर्घातपुराण ( पूर्वखण्ड अध्याय ९ । १० ) में एक ऐडी सुन्दर कथा है—

एक बार भगवान् नारायण अपने दिव्य वैकुण्ठलोकमें आये हुए स्वप्न देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओंकी तात्त्विक्युल, विशूल-डमरुधारी, स्वर्णभूषणोंसे विभूषित, उरेन्द्रवन्दित, अणिमादि सिद्धियोंके द्वारा सुसेवित अत्रिलोचन भगवान् शिव प्रेम तथा आनन्दातिरेकसे उन्मत्त हैं उनके सामने चृत्य कर रहे हैं। उन्हें इस प्रकार वृत्य-रायग देखकर भगवान् विष्णु हर्षोऽस्तुल्ल हो सहसा हृष्टवर शम्यापर बैठ नये और ध्यान करने लगे। उन्हें उनीं विराजित देखकर भगवती लक्ष्मीजीने उनसे इस प्रकार

उठ-बैठनेका कारण पूछा, पर वे बोले नहीं। कुछ समय पश्चात् बाह्यभावमें आकर उन्होंने कहा—'देवि ! मैंने अभी खम्में अपूर्व आनन्द और मनोहर शोभासे संयुक्त श्रीमहेश्वरके दर्शन किये हैं। इससे ज्ञात होता है श्रीशंकरने मुझे स्मरण किया है, अतः चलो, हमलोग कैलास जाकर भगवान् महादेवके दर्शन करें।'

यों कहकर वे दोनों तुरंत कैलासकी ओर चल दिये। कुछ ही दूर गये होंगे कि उन्हें सामनेसे भगवती उमाके साथ खयं शिव आते दिखायी दिये। मानो घर बैठे ही निधि मिल गयी। समीप पहुँचते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेमसे मिले। प्रेम और प्रेमानन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। दोनों ही पुलकित-कलेवर हो परस्पर लिपट गये। दोनोंके ही सुन्दर नेत्रोंसे आनन्दाश्रुका प्रवाह वह चला। बातें चीत होनेपर पता लगा कि भगवान् शिवको भी रात्रिमें स्मर हुआ, जिसमें उन्होंने विष्णुभगवान्को इसी रूपमें देखा और फिर उनसे मिलने चल दिये।

अब दोनों ही परस्पर अपने यहाँ लिवा लेजानेके लिये आग्रह करने लो। भगवान् शंकरसे नारायणने कहा—'वैकुण्ठ पवारिये' और भगवान् शम्भुने उन्हें कैलास प्रस्थान करनेके लिये कहा। दोनोंके ही आग्रह अलौकिक प्रेमसे परिपूर्ण थे, इसलिये यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय। इसी वीच वीणा बजाते हरिन्द्रुण गाते देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। नारदजीको आये देखकर दोनोंने ही उनसे यह निर्णय कर देनेके लिये अनुरोध किया कि कहाँ जाना चाहिये। नारदजी तो प्रेमी हैं ही, वे श्रीहरि-हरके इस अलौकिक मिळन-प्रेमको देखकर मुग्ध हो गये और दोनोंका गुणगान करने लगे। अब निर्णय कौन करे। अन्तमें इसका भार भगवती उमाको सौंपा गया—वे जो कह दें, वैसा ही किया जाय। कुछ देर तो भगवती उमा चुप रही। फिर दोनोंको लक्ष्य करके बोली—

यादशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव ।  
मन्ये तथा प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम् ॥  
यादशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव ।  
मन्ये तथा प्रमाणेन आत्मैकोऽन्यतनुसिध्यः ॥  
या प्रीतिर्दर्शिता देव युवाभ्यां नाथ केशव ।  
मन्ये तथा प्रमाणेन भार्ये आवां पृथड् न घाम् ॥  
यादशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव ।  
मन्ये तथा प्रमाणेन द्वेष पक्षस्य स द्वयोः ॥  
यादशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव ।  
मन्ये तथा प्रमाणेन अपूजैकस्य च द्वयोः ॥

‘हे नाथ ! हे केशव ! आपलोगोंके इस प्रकारके विलक्षण अनन्य और अचल प्रेमको देखकर यही निश्चय होता है कि आपके निवासस्थान पृथक् नहीं हैं । जो कैलास है, वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है, वही कैलास है । केवल नाममें ही मेद है । मुझे तो यह लगता है कि आपका आत्मा भी एक है, केवल शरीरसे आप दो दिखायी देते हैं । मुझे तो यह दीख रहा है कि आपकी भार्याँ भी एक ही हैं, दो नहीं । जो मैं हूँ, वही ये श्रीलक्ष्मी हैं और जो श्रीलक्ष्मी है, वही मैं हूँ । अतः आप लोगोंमेंसे जो एकके प्रति द्वेष करता है, वह दूसरेके प्रति ही करता है और जो एककी पूजा करता है, वह खाभाविक ही दूसरेकी भी करता है एवं जो एकको अपूज्य मानता है, वह दूसरेको भी अपूज्य ही मानता है ।’

‘मेरा तो यह निश्चय है कि आप दोनोंमें जो मेद मानता है, उसका निश्चय ही घोर पतन होता है । मैं देखती हूँ कि आपलोग मुझे इस प्रसङ्गमें मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवक्षना कर रहे हैं, मुझे भुलावा दे रहे हैं या बिनोद कर रहे हैं । मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप दोनों ही अपने-अपने लोकको पधारें । श्रीविष्णु यह समझें हम शिवरूपसे वैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूपसे कैलासको प्रस्थान कर रहे हैं ।’ भगवती उमाके इस निर्णयसे दोनों ही

परम प्रसन्न होकर भगवतीकी प्रशंसा करते हुए परसा प्रणामालिङ्गन करके अपने-अपने लोकको पवार गये ।

वैकुण्ठ पहुँचनेके बाद भगवान् नारायणने श्रीलक्ष्मीजीसे कहा—

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः ।

उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिच ॥

‘वस्तुतः मैं ही जनार्दन विष्णु हूँ और मैं ही महादेव हूँ । अलग-अलग दो घड़ोंमें रखले हुए जल्की भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है ।’

गोखामी श्रीतुलसीदासजीने भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवका सम्बन्ध निरूपण करते हुए वह ठीक कहा है—

सेवक स्वामि सखा सिय पीके ।

भगवान् महादेव कभी श्रीरामके साथ सेवककी ली करते हैं, कभी स्वामीकी और कभी सखाकी । कभी उन्हें पूजते हैं, कभी वे । तुलसीदासजीके भगवान् राम और सीता शिवपुराणके भगवान् शिव और शक्ति भाँति ही परात्पर परब्रह्म हैं । उन्होंने—

संभु विरंचि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंस तें जाना जासु अंस उपजहिं गुन खानी । अगनित लच्छि उमा व्रह्मानी

भगवान् शिव और भगवान् विष्णुकी अभिन्नता प्रसङ्ग प्रायः सभी पुराणोंमें हैं और इनमें भी माननेवालोंका नरकगामी होना बतलाया गया है । यह केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं—

घण्डपुराणमें भगवान् परात्पर रामरूपसे भगवान् शिवके प्रति कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहरु आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धिय ये भेदं विदधत्यद्वा आवयोरेकरूपयो कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम ये त्वज्ञकाः सदाऽऽसंस्ते मङ्गका धर्मसंयुता मङ्गका अपि भृयस्या भक्षया तव नर्तिकरा

'आप शिव मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें हूँ। हम दोनोंमें बुछ भी अन्तर नहीं है। मूँह तथा दुर्वुद्धि लोग ही हममें भेद मानते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, हममें भेदभावना करनेवाले मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाकादि नरकोंमें यन्त्रणा भोगते हैं। जो धर्मिक पुरुष आपके भक्त हैं, वे सदा ही मेरे भक्त हैं और जो मेरे भक्त हैं, वे महान् भक्तिसे आपको ही प्रणाम करते हैं।'

शिवपुराणमें परात्पर प्रतम भगवान् शिवरूपसे कहते हैं—

मैव हृदये विष्णुर्दिष्णोश्च हृदये हाहम् ।  
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम ॥  
( १।५५-५६ )

रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा ।  
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किञ्चन ॥  
( १०।६ )

रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति ।  
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्य भविष्यति ॥  
( १०।८ )

नरके पतनं तस्य त्वद्वेपात् पुरुषोत्तम ।  
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ॥  
( १०।९ )

त्वां यः समाधितो नूनं मामेव स समाधितः ।  
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम् ॥  
( १०।१४ )  
( शिव० ८० स० )

मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। मैं इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष रेय है। हे विष्णो ! आप रुद्रके ध्येय हैं और रुद्रपके ध्येय हैं। आपमें और रुद्रमें तनिक भी अन्तर नहीं है। जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर आपकी निन्दा रेगा, उसका सारा पुण्य तुरंत भस्य हो जायगा। रुद्रोत्तम विष्णो ! आपसे द्वेष करनेके कारण मेरी ज्ञानसे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा, यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। जो आपकी ज्ञानमें

शिव० पु० अ० २—

आ गया, वह निश्चय ही मेरी ज्ञानमें आ गया। जो मुझमें और आपमें भेद जानता है, वह अवश्य ही नरकमें गिरता है।'

ये ही प्रतम परात्पर ब्रह्म कल्पके आदिमें ( सदाशिव, महाविष्णु, राम-कृष्ण-शक्ति आदि ) अपने किसी रूपसे अपने ही अंश त्रिदेवोंको ( ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रका ) प्रकट करके अखिल विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारकी लीला करते हैं। इस सिद्धान्तका प्रायः सभी शैव और वैष्णव-पुराणोंमें प्रतिपादन किया गया है और सर्वत्र ही प्रतम परात्पर ब्रह्मसे प्रकट उन तीनों देवोंकी और उनसे प्रतम परात्पर ब्रह्मकी अभिन्नता बतलायी गयी है।

शिवपुराणमें इनका प्राकृत्य परात्पर ब्रह्म भगवान् शिवसे बतलाया गया है। शिवके दक्षिण भागसे ब्रह्माका, वाम भागसे विष्णुका और हृदयसे रुद्रका प्राकृत्य हुआ है। इन्हीं शिवके आदेशसे फिर ब्रह्माका भगवान् विष्णु-के नाभिकमलसे और रुद्रका ब्रह्माके मस्तकसे प्रकट होना बतलाया गया है। इन्हीं सदाशिवसे पराशक्तिका प्राकृत्य और फिर उनसे समस्त दैवी शक्तियोंका उदय होना बतलाया है। देवीभगवत् और ब्रह्मवैर्तपुराणमें परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिण भागसे भगवान् विष्णुका, वामभागसे भगवान् महेश्वरका और नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रकट होना बतलाया है और उन्हींसे आदिशक्तिका प्राकृत्य बतलाया गया है। यह सब लोलावैचित्र है। तत्त्व एक ही है। शिवपुराणमें परात्पर भगवान् शिवके परात्पर निरुणि स्वरूपको 'सदाशिव', सगुण स्वरूपको 'महेश्वर', विश्वका सृजन करनेवाले स्वरूपको 'ब्रह्मा', पालन करनेवाले स्वरूपको 'विष्णु' और संहार करनेवाले स्वरूपको 'रुद्र' कहा गया है।

श्रीमद्भागवतमें दक्षसे स्वयं भगवान् विष्णु कहते हैं—

अहं ब्रह्मा च शर्वध्य जगतः कारणं परम् ।  
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदंगविद्वेषणः ॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयी द्विज ।  
 सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्ने संहां क्रियोचिताम् ॥  
 तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।  
 ब्रह्मरूपौ च भूतानि भेदेनाथोऽनुपदयति ॥  
 यथा पुमान् स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु कञ्चित् ।  
 पारक्यवृद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥  
 ब्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।  
 सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥

( ४ । ७ । ५०—५४ )

‘जगत् का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और शिव हूँ । मैं ही सबका आत्मा, ईश्वर, उपदेश, स्वयम्प्रकाश और भेदरहित हूँ । विप्रवर । निगुणमयी अपनी मायाके द्वारा जब मैं सृजन, पालन और संहारकी लीला करता हूँ, तब तब मैं ही उस लीला-कार्यके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—इन नामोंको धारण करता हूँ । ऐसे मुझ केवल अद्वितीय विशुद्ध परमात्मासे अज्ञानी लोग ही ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूपसे देखते हैं । जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ-पैर आदि सुजाओंमें ये मुझसे भिन्न हैं—ऐसी बुद्धि नहीं करता, वैसे ही मत्परायण मेरा भक्त किसी प्राणीको मुझसे भिन्न नहीं देखता । ब्रह्मन् ! हम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनों स्वरूपतः एक ही हैं । हम सर्वभूतरूप हैं । अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है ।’

पद्मपुराणमें ( पातालखण्ड अ० २८ ) भगवान् शिव परत्पर भगवान्‌के रामरूपसे कहते हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे ।  
 यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥  
 अरुपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम् ।  
 एक एव त्रिधारुपं गृह्णासि कुहकान्वितः ॥  
 सृष्टौ विधातुरुपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः ।  
 प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वात्म्यतां गतः ॥

‘आप प्रकृतिसे पर साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकला ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप होकर विश्वका सृजन, पालन और संहार करते हैं । आप रूपरहित होते हुए भी विश्वके परम कारण हैं । आप एक

ही लीलासे त्रिविध रूप ग्रहण करते हैं—विश्वसृष्टिके समय ब्रह्मरूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय अपने प्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं थौर जगत् के प्रलयके समय साक्षात् मुझ शिवका रूप ले लेते हैं ।

शिवपुराणमें ही भगवान् शंकरके द्वारा सीतान्वेषणमें तत्पर दृढ़रथ-पुत्रके रूपमें भगवान् श्रीरामको प्रणाम किये जानेवाली कथा इस प्रकार आती है—

एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीलाविशारद भगवान् सद सतीके साथ बैलपर आरु हो इस भूतलपर भ्रमण कर रहे थे । घूमते-घूमते दण्डकारण्यमें आये । वहाँ उन्होंने लक्षणसहित भगवान् श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा छापूर्वक हरी गयी अपारी पक्षी सीताकी खोज कर रहे थे । वे ‘हा सीते ऐसा उच्चस्वरसे पुकारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारंबरोते थे । उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था लक्षणके साथ वनमें भ्रमण कर रहे थे और उनका कान्ति फीकी पड़ गयी थी । उस समय उदारचेता पूर्ण काम भगवान् शंकरने वडी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेव प्रकट नहीं किया । भगवान् शिवकी मोहमें डाढ़नेवाली ऐसी लीला देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ । वे उनकी मायां मोहित हो उनसे इस प्रकार बोलीं ।

सतीने कहा—देवदेव सर्वेश ! परब्रह्म परमेश्वर आप ही सबके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं; क्योंकि वेदान्त-शास्त्रके द्वारा यत्पूर्वक जानने योग्य निर्विका परम प्रभु आप ही हैं । नाथ ! ये दोनों पुरुष कौन हैं ? इनकी आकृति विरहव्यथासे व्याकुल दिखायी देती है । ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए क्षेत्रके भागी और दीन हो रहे हैं । इनमें जो ज्येष्ठ है, उसकी अङ्गकान्ति नील कमलके समान रूप है । उसे देखका किस कारणसे आप आनन्दमग्न हो उठे थे ? आपका

चित्त क्यों अत्यन्त प्रसन्न हो गया या ? स्वामिन् !  
कल्याणकारी शिव ! आप मेरे संशयको दूर कीजिये ।

इसपर भगवान् शिवने कहा—देवि ! ये दोनों  
भाई वीरोद्धारा सम्मानित हैं । इनके नाम हैं—श्रीराम  
और लक्ष्मण । इनका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है । ये  
दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र हैं । इनमें जो गोरे  
रंगके छोटे बन्धु हैं, वे साक्षात् शोषके अंश हैं । उनका  
नाम लक्ष्मण है । इनके बड़े भैयाका नाम श्रीराम है ।  
इनके रूपमें उपद्वारहित भगवान् विष्णु ही अपने सम्पूर्ण  
अंशसे प्रकट हुए हैं । ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हम-  
लोगोंके कल्याणके लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं—

ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णशो निरुपद्रवः ।  
अवतीर्णः थितौ साधुरक्षणाय भवाय नः ॥

( श्रीगोखामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें  
इसीके आधारपर सतीत्यागकी सुन्दर कथा लिखी है । )  
महाभारतकी गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने ख्यय ही अपनेको  
परात्पर व्रह्म तथा सबका आदि प्रकटकर्ता बतलाया है ।

किसी-किसी कल्पमें जीव भी ब्रह्माकी कोटिमें पहुँच  
जाते हैं, ऐसा माना जाता है । परंतु त्रिदेवगत ये ब्रह्मा  
भगवदरूप हैं और इनके लिये भी वही वात कही गयी है  
जो भगवान् शिव और भगवान् विष्णुके लिये कही गयी है ।

देवीपुराणमें ब्रह्माजीका स्तवन करते हुए कहा  
गया है—

जय देवाधिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे ।  
अव्यक्तव्यक्तरूपाय कारणाय महात्मने ॥  
पत्तित्तिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक ।  
रजोगुणगुणाविष्ट सूजसीदं चराचरम् ॥  
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम् ।  
( अध्याय ८३ )

‘देवाधिदेव ! ब्रह्मदेव ! आपकी जय हो । आप अव्यक्त-  
व्यक्त-स्वरूप, त्रिगुणमय, सर्वकारण, श्रेष्ठद्वाद्रि एवं विश्वकी  
सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और स्व-  
रूप तीनों भावोंसे भावित हैं । आप रजोगुणसे आविष्ट  
होकर मुखरूपसे इस चराचर जगद्का सृजन करते हैं,

सत्त्वगुणका प्रयोग करके विष्णुरूपसे पालन करते हैं  
और त्रूपरूप होकर अखिल विश्वका संहार करते हैं ।

विष्णुपुराणमें महर्षि पराशर परतम परात्पर भगवान्  
विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।

सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥

नमो हिरण्यगर्भाय हस्ये शंकराय च ।

वासुदेवाय तराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।

अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥

सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः ।

मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥

आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।

प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥

( १।२।१—५ )

विकाररहित नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप,  
सर्वव्यापी, सर्वविजयी, विष्णु, हिरण्यगर्भ ( ब्रह्म ), हरि,  
शंकर ( रुद्र ), वासुदेव, मायासे तरनेवाले, विश्वकी सृष्टि,  
स्थिति और अन्त करनेवाले, एक तथा अनेकरूप, स्थूल  
तथा सूक्ष्मरूप, अव्यक्त-व्यक्त-स्वरूप और मुक्तिप्रदाता  
भगवान् विष्णुके प्रति मेरा बारंबार नमस्कार है । इस जगत्का  
सृजन, पालन और विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और  
रुद्रके मूल कारण जगन्मय परमात्मा विष्णुभगवान्को  
मेरा नमस्कार है । विश्वके आधार, सूक्ष्मसे भी अति  
सूक्ष्म, समस्त भूतोंके अंदर स्थित अद्युत पुरुषोत्तम  
भगवान्को मेरा प्रणाम है ।

शिवपुराणमें स्थान-स्थानपर इसी सिद्धान्तका विविध  
प्रसङ्गोंमें विविध भौतिके उल्लेख है । कुछ उदाहरण  
देखिये ! एक स्थानपर शिवके चतुर्व्यूहका उल्लेख करते  
हुए कहा गया है कि गुणत्रयसे अतीत परात्पर भगवान्  
सदाशिव चारों व्यूहोंके रूपमें अभिष्यक्त हैं—श्रद्धा,  
काल, सुख और विष्णु । वे स्वयं सबके आधार और  
शक्तिके भी मूल हैं । कहा गया है—

देवो गुणत्रयतीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः ।

सकलः सकलावरशक्तेऽस्ति चतुर्पक्षिकारणम् ॥

सोऽयमात्मा वयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च ।  
लीलाकृतजगत्स्त्रिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः ॥  
यः सर्वसात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः ।  
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ॥  
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा ।  
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम् ॥

( शिव० वा० सं० पू० ख० १० । ९—१२ )

‘चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट देवाधिदेव महेश्वर तीनों गुणोंसे अतीत हैं; वे सर्वमय हैं, सबकी आधाररूपा शक्तिकी भी उत्पत्तिके कारण हैं। वे ही तीनों गुणोंको ( ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके ) विग्रहरूपमें धारण करनेवाले उनके आत्मरूप हैं, प्रकृति और पुरुष भी उन्हींके शरीर हैं और वे उन दोनोंके भी आत्मा हैं। लीलासे ही—खेल-ही-खेलमें वे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना कर देते हैं। जगन्नियन्ता ईश्वररूपसे भी वे ही स्थित हैं। जो सबसे परे, नित्य, निष्कल—अखण्ड अथवा कलना—कल्पनामें न आनेयोग्य परमेश्वर हैं, वे ही सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चके आधार, उसके आत्मा तथा अधिष्ठान भी हैं। सुतरां भगवान् सदाशिव ही महेश्वर हैं, वे ही प्रकृति-पुरुष भी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी वे ही हैं। वस्तुतः सब कुछ भगवान् सदाशिव ही हैं।’

परात्पर भगवान् शिव भगवान् विष्णु और ब्रह्मासे कहते हैं—

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ताहं सगुणोऽगुणः ।

परब्रह्म निर्विकारः सच्चिदानन्दस्तत्त्वणः ॥ २७ ॥

विद्या भिन्नो ह्याहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।

सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽहं सदा हरे ॥ २८ ॥

सुवर्णस्य यथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति ।

अलंकृतिकृते देव नामसेदो न वस्तुतः ॥ ३५ ॥

यथैकस्या मूढो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः ।

कारणस्यैव कार्येच संनिधानं निर्दर्शनम् ॥ ३६ ॥

वस्तुत्वत् सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम ।

अहं भवानजद्वैव रुद्रो योऽयं भविष्यति ॥ ३८ ॥

एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै वन्धनं भवेत् ।

तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम् ॥ ३९ ॥

मूलीभूतं सदोकं च सत्यज्ञानमनन्तकम् ।

पवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं मनसा चैव तत्त्वतः ॥ ४० ॥

( शिव० रुद्र० सृष्टि० अ० ९ )

‘विष्णो । मैं ही सृष्टि, पालन और प्रलयका कर्ता हूँ। मैं ही सगुण-निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्तत्त्वण निर्विका परब्रह्म परमात्मा हूँ। हे हरे ! सृष्टि, रक्षा और प्रलयका गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और हर ( रुद्र ) नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। वस्तुतः मैं सदा निष्कल हूँ। हे देव ! जैसे एक ही सुर्य के अनेक अलंकार बनते हैं, उनमें नाम तथा आकृति भेद है, वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जैसे मिट्ठीके विभिन्न प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है वास्तवमें कोई भेद नहीं है, सब मिट्ठी ही है। कार्यके रूपमें कारण ही रहता है। यही दृष्टान्त पर्याप्त है। अतः सबको वस्तुके समान शिवरूप ही मानना चाहिये यह मेरा मत है। मैं, आप और जो रुद्र प्रकट होंगे—सब एकरूप ही हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही वन्धन होगा। तथापि मेरा परात्पर शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपोंका मूलभूत कहा गया है। यह सत्य ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।’

विभिन्न कलरोंमें साक्षात् परतम परात्पर महेश्वरके विभिन्न स्वरूपोंसे त्रिदेवोंका प्राकृत्य होता है और विभिन्न प्रसङ्गोंपर परस्पर एक दूसरेका स्वावन किया जाता है। इससे न तो उनके मूल वास्तव रूपमें कोई भेद आता है और न कोई छोटा-बड़ा ही होता है। इस वातको भी शिवपुराणमें स्पष्टरूपसे स्वीकार किया गया है—

ब्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षात्महेश्वरात् ।

चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ॥ १३ ॥

परमेश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः ।

तच्छत्त्वयाधिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः ॥ १४ ॥

पित्रा नियमिताः पूर्वं चर्योऽपि चिषु कर्मसु ।

ब्रह्मा सर्गे हरिखाणे रुद्रः संहरणे तथा ॥ १५ ॥

लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादं परमेष्ठिनः ।

ब्रह्मनारथ्याणौ पूर्वं रुद्रः कल्पात्तरेऽसृजत् ॥ १६ ॥

कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः ।

विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्मणमसृजत्पुनः ॥ १८ ॥

नारायणं पुनर्व्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः ।  
एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९ ॥  
परस्परेण जग्नते परस्परहैतैरिणः ।  
तत्त्वत्कल्पन्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः ॥ २० ॥  
( शि० पु० वा० सं० पू० खं० २० १३ )

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों ही कारणात्मा हैं । वे क्रमशः चराचर जगतकी उत्पत्ति, पाठन और संहारके हेतु हैं और साक्षात् महेश्वर ( परात्पर परतम भगवान् ) से प्रकट हैं । उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है । वे परमेश्वरसे भावित और उनकी शक्तिसे अधिष्ठित हो नित्य उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं । पूर्वकालमें पिता महेश्वरने ही उन तीनोंको तीन कार्योंमें नियुक्त किया था । ब्रह्माकी सुष्टिकार्यमें, विष्णुकी पालनकार्यमें और रुद्रकी संहारकार्यमें नियुक्ति हुई थी । कल्पान्तरमें परमेश्वर शिवके प्रसादसे रुद्रदेवने ब्रह्मा और नारायणको प्रकट किया था । इसी प्रकार दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र तथा विष्णुको प्रकट किया, फिर कल्पान्तरमें भगवान् विष्णुने रुद्र तथा ब्रह्माको प्रकट किया । इसी प्रकार पुनः ब्रह्माने नारायणको और रुद्रदेवने ब्रह्माको प्रकट किया । इस तरह विभिन्न कर्त्तरोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परस्पर उत्पन्न होते और एक दूसरेका हित चाहते हैं । उन-उन कर्त्तरोंके वृत्तान्तको ( किस रूपसे किसी प्राकृत्य होता है, इस वर्णनको ) लेकर महर्षिगण उनके ( इसीके अनुसार उन-उन रूपोंके ) प्रभावका वर्णन करते हैं ।

इसी हेतुसे कहीं किसीको बड़ा बतलाया गया है, वहीं किसीको । इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये ।

॥ एते परस्परोत्पत्ता धरयन्ति परस्परम् ।  
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुवत्ताः ॥  
फच्चिद् ब्रह्मा कच्चिद्विष्णुः कच्चिद् रुद्रः प्रशस्यते ।  
नानेन तेपमाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥  
धर्यं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशनः ।  
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचात्य न संशयः ॥  
( शि० पु० वा० सं० पू० खं० २० ६-८ )

‘ये तीनों ( ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेसे बढ़ते रहते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं । कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, तो कहीं विष्णुकी और कहीं रुद्रकी । इससे उनके ऐश्वर्यमें कोई अधिकता या न्यूनता नहीं आती । जो लोग कोधवश ऐसा कहते हैं कि ‘अमुक श्रेष्ठ हैं, अमुक श्रेष्ठ नहीं हैं’—वे अगले जन्ममें राक्षस या पिशाच होते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं ।’

### शिव और शक्तिमें अभिन्नता

इस प्रकार तीनों महान् देवताओंकी अभिन्नता और उनसे परात्पर परतम ब्रह्मकी ( सदाशिव, महाविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्णकी ) अभिन्नता सर्वमुम्भव है । ये परात्पर ब्रह्म नित्य हीं स्वरूपभूता परा-शक्तिसे सम्बन्ध हैं । कभी वह शक्ति शक्तिमान्‌में छिपी निष्क्रिय रहती है, कभी प्रकट होकर क्रियाशील बन जाती है । भगवान्‌ने गीतामें प्रकृतिको ‘महद्योनि’ और अपनेको ‘बीजप्रद पिता’ कहा है । वास्तवमें शक्ति और शक्तिमान्‌का नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है । इसीसे शिवपुराणमें भी कहा गया है—

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता ।

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तया विना शिवः ॥

( शि० वा० सं० उत्तर० ४ )

‘इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान्‌को सदा एक दूसरेकी अपेक्षा रहती है । न तो शिव ( शक्तिमान् ) के बिना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके बिना शिव ही रह सकते हैं ।’ शक्तिमान् न हों तो शक्ति कहाँ रहे और शक्ति न हो तो शक्तिमान्‌का अस्तित्व ही न हो । इसीसे ‘इ’ कार ( शक्ति )हीन शिवको ‘शब्द’ कहा जाता है ।

शक्तिमान्‌के स्वरूपकी अभिन्नता उनकी शक्तिसे ही होती है । अतएव शक्तिका स्वरूप भी वही है, जो शक्तिमान्‌का है । शिवपुराणमें ही भगवती पराशक्ति उमादेवी इन्द्रादि देवोंसे खयं कहती है—

परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वपिणी ।

बहमेवास्मि सकलं मद्द्यो नास्ति कञ्जन ॥

निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी ।  
अप्रत्यक्षंगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी ॥  
कदाचिद्विषयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः ।  
कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी ॥  
विरक्षिः सृष्टिकर्ताहं जगद्भाताहमच्युतः ।  
रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविद्विमोहिती ॥  
कालिकामलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः ।  
मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः ॥  
मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युप्माभिर्दितिनन्दनाः ।  
तामविशाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः ॥  
यथा दारुमर्यां योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः ।  
तथैव सर्वभूतानि नर्तयस्यहमीश्वरी ॥  
मद्भयाद् वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक् ।  
लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माप्यनारतम् ॥  
कदाचिद्वेववर्गाणां कदाचिद्वितिजन्मनाम् ।  
करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया ॥  
अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम् ।  
श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि ॥  
सगुणं निर्गुणं चेति मद्भूषं द्विविधं मतम् ।  
मायाशब्दितं चैकं द्वितीयं तदत्माश्रितम् ॥  
एवं विशाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च ।  
भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम् ॥

( शिं० पु० उ० स० ४८ । २७—३१ )

‘मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणवरूपिणी तथा युगल-  
रूपधारिणी हूँ । मैं ही सब कुछ हूँ । मुझसे भिन्न कुछ  
भी पदार्थ नहीं है । मैं निराकार होकर भी साकार हूँ ।  
सर्वतत्त्वस्वरूपा हूँ । मेरे गुण अतक्षर हैं । मैं नित्यस्वरूपा  
तथा कार्यकारणरूपिणी हूँ । मैं ही कभी प्राणवद्धभा-  
नारीका आकार धारण करती हूँ और कभी प्राणवद्धभ  
पुरुषका । कभी एक साथ ली और पुरुष दोनों रूपोंमें  
( अर्धनारीश्वररूपमें ) प्रकट होती हूँ । मैं सर्वरूपिणी  
ईश्वरी हूँ । मैं ही सृष्टिकर्ता ब्रह्म हूँ, मैं ही जगत्पालक अच्युत  
विष्णु हूँ और मैं ही संहारकर्ता रुद्र हूँ । सम्पूर्ण विश्वको  
मोहमें डालनेवाली महामाया भी मैं ही हूँ । काली, लक्ष्मी  
और सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सभी कलाएँ  
भी मेरे ही अंशसे प्रकट हुई हैं । मेरे ही प्रभावसे

तुम देवताओंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय प्राप्त की है । मुझ सर्व-  
विजयिनीको न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेमे  
सर्वेश्वर मान रहे हो । जैसे इन्द्रजाल करनेवाला सूक्ष्मा-  
कठपुतलीको नचाता है, वैसे ही मैं ईश्वरी ही समस्त  
प्राणियोंको नचाती हूँ । मेरे भयसे हवा चलती है, मेरे  
भयसे अग्निदेव सबको जलाते हैं तथा मेरा भय मानकर  
ही लोकपालगण निरन्तर अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते  
हैं । मैं सर्वया स्वतन्त्र हूँ और अपनी लीलासे ही कभी  
देवसमुदायको विजयी बनाती हूँ, कभी दैत्यसमूहको ।  
मायासे अतीत जिस अविनाशी परात्पर धामका श्रुतियाँ  
वर्णन करती हैं, वह मेरा ही रूप है । सगुण और  
निर्गुण—मेरे ये दो रूप माने गये हैं । इनमें प्रथम  
मायायुक्त है, दूसरा मायारहित । देवताओं । ऐसा जान-  
कर गर्वका त्याग करो और मुझ सनातनी प्रकृति ( परा-  
त्परा शक्ति ) की प्रेमपूर्वक आराधना करो ।’

परमात्मा शिवकी ये पराशक्ति सर्वेश्वर सदाशिकं  
अनुरूप ही समस्त अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न उनके  
समर्थिणी हैं । इन शिव-शक्तिकी ही सारी लीला है । यह  
अनन्त विश्व केवल शक्ति-शक्तिमानका ही लीला-विस्ता  
है । जितने पुरुष हैं, सब शिव हैं और उनकी जो सह  
धर्मिणी जितना लियाँ हैं, वे सब शक्तिरूप हैं । इसी तत्त्वकं  
दिखलाते हुए शिवपुराणमें कहा गया है—‘शक्ति और  
शक्तिमानसे प्रकट होनेके कारण यह जगत् ‘शक्ति’ और  
‘शैव’ कहा गया है । जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म  
नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस  
चराचर जगत्की उत्पत्ति नहीं होती । ली और पुरुषसे  
प्रकट हुआ जगत् ली और पुरुषरूप ही है; यह ली,  
और पुरुषकी विभूति है, अतः ली और पुरुषसे अधिक्षित  
है । इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो ‘परमात्मा’ कहे  
गये हैं और लीरूपिणी शिवा उनकी ‘पराशक्ति’ । शिव  
सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी । शिवको  
महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती हैं ।  
परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति ।

महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी स्त्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया उम्मी। जब सुष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अर्द्धज्ञिनी उमा स्त्राहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्वति हैं और पार्वती नैर्वति। भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया शिवा। शिव यक्ष हैं और पार्वती सृद्धि। चन्द्रार्धशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रोहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा आर्या। नागराज अनन्तको वल्यरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी वल्लभा शिवा अनन्त। कालशन्त्रु शिव कालाग्नि रुद्र हैं और काली कालान्तकप्रिया हैं। जिनका दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा हैं। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही विद्वान् पुरुष आकृति कहते हैं। महादेवजी भूग्र हैं और पार्वती रुद्धाति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गङ्गाधर अङ्गिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरनाशक शिव पुलह हैं और पार्वती उनकी प्रिया हैं। यज्ञविद्वंसी शिव क्रतु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अत्रि हैं और साक्षात् उमा अनसुया। कालहृता शिव कश्यप हैं और मतेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव दूसिए हैं और साक्षात् देवी पार्वती अस्म्बती। भगवान् बृहदेव दी संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण द्वियों। अतः सभी खी-पुरुष उन्हींकी द्वियों हैं।

भगवान् शिव विष्णी हैं और परमेश्वरी उमा विषय। कुछ सुननेमें आता है, वह स्व उनका रूप है और

श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर हैं। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तुसमुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह बाल-चन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है। भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिखण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आसादन करनेवाले मङ्गलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पर्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्तव्य वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव उन वस्तुओंके मन्ता (मनन करनेवाले) हैं। भववल्लभा पार्वती बोद्धव्य (जानने योग्य) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशु-शशि-शेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके ज्ञाता हैं। सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी माता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वतीदेवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं, तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्ररूपमें स्थित होते हैं। शूलवारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणि प्रिया पार्वती रात्रि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकरप्रिया पार्वती पृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराजकन्या शिवा उसकी तटभूमि है। वृत्तमध्यज महादेव वृक्ष हैं तो विश्वेश्वरप्रिया उमा उसपर फैलनेयाली लता है। भगवान् त्रिपुरनाशक महादेव सम्पूर्ण पुँछिङ्गरूपको स्वयं धारण करते हैं और महादेवी मनोरमा देवी शिवा सारा श्रीलिङ्ग-रूप धारण करती हैं। दिववल्लभा शिवा समस्त शब्द-जालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुशेखर शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थका जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् प्रदेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा जो मङ्गलरूप है, उस-उस वस्तुको महाभाग महामायेनि उन्हीं दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे वित्तारको प्राप्त हुई क्रताया है।

जैसे जलते हुए दीपकदीप जिज्ञा समूचे वरदंगे

प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं; अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।'

(शिवपुराण, वायवीयसं० ल० ख० अध्याय ४)

कृष्णयजुर्वेदीय 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में इसी सिद्धान्तको इन शब्दोंमें व्यक्त किया गया है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ।  
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ॥  
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।  
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ॥  
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ।  
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥  
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।  
रुद्रो वहिरुमा खाहा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥  
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ।  
रुद्रो चृक्ष उमा चली तस्मै तस्यै नमो नमः ॥  
रुद्रः पुण्यमुमा गन्धस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।  
रुद्रोऽर्थ अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥  
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ।

इसी उपनिषद्‌में यह भी बतलाया गया है कि इन उमा-महेश्वरसे लक्ष्मी-विष्णुकी सर्वथा अभिन्नता है—‘जो भगवती उमा है, वही विष्णुभगवान् हैं; जो भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्की अर्चना करते हैं, वे वृषभव्यज शिवजी-की ही पूजा करते हैं। जितने पुँछिङ्ग प्राणी हैं, सब महेश्वर हैं; जितने खीलिङ्ग प्राणी हैं, सब भगवती उमा हैं। समस्त व्यक्त जगत् उमाका स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वरका स्वरूप है। उमा और शंकरका योग ही विष्णु कहलाता है—

‘या उमा सा स्वयं विष्णुः’

‘येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषभजम् ।’

‘पुँछिङ्गं सर्वमीशानं खीलिङ्गं भगवत्युमा ।’

‘व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं महेश्वरः ।’

‘उमाशंकरयोर्योगः स योगो विष्णुरुच्यते ।’

इसी सिद्धान्तका निरूपण समस्त शिवपुराणमें है।

शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य—ये पाँच सुग्रे देवता एक ही भगवान्‌के स्वरूप माने गये हैं। इन सर्वां एकता शिवपुराणमें प्रतिपादित है। शिव, विष्णु, शक्ति की बात संक्षेपमें ऊपर आ ही गयी है। गणेशका प्रसङ्ग शिवपुराणमें विस्तारसे है और सूर्यभगवान्‌को सबं भगवान् शिवने अपना स्वप्न बतलाकर उन्हें अर्धादि देवों पूजन करनेकी आज्ञा दी है (शिवपुराण, वायवीयसंहिता उत्तरखण्ड ३० ८)। इस प्रकार एक ही परम परात्मा भगवत्तत्त्वका निरूपण तथा व्याख्यान शिवपुराणमें है। यही शिवपुराणके ‘शिव’का स्वरूप है।

शिव सनातन ब्रह्म तथा लिङ्ग-पूजा भी सनातन

ये परात्मपर परतम भगवान् शिव न तो आधुनिक देवता हैं, न ये अवैदिक हैं और न अनायोंके ही देवता हैं। लिङ्गपूजा ही दूषित, आधुनिक या अनायसेवित है। किं अनादि परमात्मा परमह हैं। ये वैदिक देवता हैं। वेदोंमें शिव तथा रुद्रपरक प्रसङ्ग भरे हैं। रुद्राध्याय तो शिव भगवती के नामोंसे ही पूर्ण है। कपर्दिन्, पशुपति, सहस्र सद्योजात आदि नाम भी बहुत जगह आये हैं। लिङ्गोपासनाका प्रमाण भी वेदोंमें मिलता है। त्रा तथा आरण्यक प्रन्थोंमें भी शिवका निशाद वर्णन है।

उपनिषदोंमें इकेताश्वतरोपनिषद् आदि कई उपनिषद् तो केवल शिवपरक ही हैं। केन, कैवल्य, नारायण, रुद्रह जात्राल, बृहज्जावाल, दक्षिणामूर्ति, नीलरुद्रोपनिषद् आदि में भी उमा-शिव-विषयक प्रसङ्ग ही हैं। अतएव इस आधुनिकाल देना चाहिये कि शिव अनाय या अवैदिक देवता हैं और उनकी उपासना आधुनिक है।

इतना अवश्य है कि देवबुद्धिको छोड़कर ही अपने साथ इष्टस्वरूप तथा उसके साधनमें लगे रहे चाहिये। किसीको छोटा-बड़ा न मानकर सभी भगवत्तरुपोंको अपने ही इष्टदेवके विभिन्न नाम-रूपोंवाले वरुण उन्हींके स्वरूप मानकर अपने इष्ट-स्वरूपकी उपासन संलग्न रहना चाहिये और अन्य किसी भी भगवत्स्वरूप निन्दा नहीं करनी चाहिये। एक ही भगवान्‌के अनेक रूप तथा तदनुरूप उपासनाके लिये विभिन्न नियम हैं।

श्रीगणेशाय नमः

## श्रीशिवपुराण-माहात्म्य

भवाविधमग्नं दीनं भां समुद्रं भवार्णवात् । कर्मग्राहगृहीताङ्गं दासोऽहं तत्र शंकर ॥

शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवपुराणकी उत्कृष्ट महिमा सुनाना

श्रीशौनकजीने पूछा—महाशानी सूतजी ! आप सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके शास्त्र हैं । प्रभो ! मुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारात्मका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये । ज्ञान और वैराग्यसहित भक्तिसे प्राप्त होनेवाले विवेककी शुद्धि कैसे होती है ? तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-क्रोध आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं ? इस घोर कलिकालमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, उस जीवसमुदायको शुद्ध ( दैवी सम्पत्तिसे युक्त ) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है ? आप हैं इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो किल्याणकारी वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम मङ्गलकारी हो तथा पवित्र करनेवाले उपायोंमें भी सर्वोत्तम पवित्रकारक उपाय हो । तात ! वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मल उचितवाले पुरुषको सदाके लिये शिवकी प्राप्ति हो जाय ।

।

।



श्रीसूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनक ! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारे हृदयमें पुराण-कथा सुननेका विशेष प्रेम एवं लालसा है । इसलिये मैं शुद्ध बुद्धिसे विचारकर तुमसे परम उत्तम शास्त्रका वर्णन करता हूँ । चत्स ! वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तोंसे सम्पन्न, भक्ति आदिको बढ़ानेवाला तथा भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला है । कानोंके लिये रसायन—अमृतखलूप तथा दिव्य है, तुम उसे श्रवण करो । मुने । वह परम उत्तम शास्त्र है—शिवपुराण, जिसका पूर्वकालमें भगवान् शिवने ही प्रवचन किया था । यह कालरूपी सर्पसे प्राप्त होनेवाले महान् त्रासका विनाश करनेवाला उत्तम साधन है । गुरुदेव व्यासने सनकुमार मुनिका उपदेश पाकर वडे आदरसे संक्षेपमें ही इस पुराणका प्रतिपादन किया है । इस पुराणके प्रणवनका उद्देश्य है—कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके परम हितका साधन ।

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है । इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये । इसका पठन और श्रवण सर्वसाधनरूप है । इससे शिवभक्ति पाकर श्रेष्ठतम स्थितिमें पहुँचा हुआ मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है । इसलिये सम्पूर्ण यत्त करके मनुष्योंने इस पुराणको पढ़नेकी इच्छा भी है—अथवा इसके अध्ययनको अभीष्ट साधन माना है । इसी तरह इसका प्रेमपूर्वक श्रवण भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है । भगवान् शिवके इस पुराणको दुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इस जीवनमें वडे-वडे उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है ।

यह शिवपुराणनामक धन्य चौर्यान्त हजार श्लोकोंसे युक्त है । इसकी सात संहिताएँ हैं । मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और दर्शनसे सम्पन्न हो वडे आदरसे इसका श्रवण करे । सात संहितायोंने युक्त वह दिव्य शिवपुराण पञ्चास परमालाके समान द्विजमान है और सदसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है ।

जो निरन्तर अनुसंधानपूर्वक इस शिवपुराणको बाँचता है, अथवा नित्य प्रेमपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यात्मा है—इसमें संशय नहीं है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् महेश्वर उसे अपना पद ( धाम ) प्रदान करते हैं। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें समूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके पदको प्राप्त कर लेता है। जो प्रतिदिन

आलस्यरहित हो रहामी वज्र आदिके वेष्टनसे इन शिवपुराण का सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है। यह शिवपुराण निर्मल तथा भगवान् शिवका सर्वत्व है; जो इहलेक और परलोकमें भी सुख चाहता है, उसे आदरके साथ प्रयत्नरूप इसका सेवन करना चाहिये। यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षलय चारों पुरुषोंके देनेवाला है। अतः सदा प्रेमपूर्वक इसका श्रवण एवं विद्या पाठ करना चाहिये। ( अच्याव १ )

### शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति तथा चञ्चुलाका पापसे भय एवं संसारसे बँराग्य

श्रीशौनकजीने कहा—महाभग सूतजी ! आप धन्य हैं, परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता हैं, आपने कृपा करके हमलोगोंको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है। भूतलपर इस कथाके समान कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है; यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। सूतजी ! कलियुगमें इस कथाके द्वारा कौन-कौन-से पापी शुद्ध होते हैं ? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस जगत्को कृतार्थ कीजिये।

सूतजी बोले—मुने ! जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल तथा काम-क्रोध आदिमें निरन्तर छूटे रहनेवाले हैं, वे भी इस पुराणके श्रवण-पठनसे अवश्य ही शुद्ध हो जाते हैं। इसी विषयमें जानकार मुनि इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है।

पहलेकी बात है, कहाँ किरातोंके नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो ज्ञानमें अत्यन्त दुर्योग, दरिद्र, रस वैचेनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुक्त था। वह ज्ञान-संध्या आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैश्यवृत्तिमें तत्पर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर विश्वास करनेवाले लोगोंको ठगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक व्याहारोंसे मारकर उन-उनका धन हड्डप लिया था। परंतु उस पापीका थोड़ा-सा भी धन कभी धर्मके काममें नहीं लगा था। वह वैश्यगामी तथा सब प्रकारसे आचारभ्रष्ट था।

एक दिन घूमता-थामता वह दैवयोगसे प्रतिद्वन्द्व ( छुसी—प्रयाग ) में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक विश्वाल देखा, जहाँ वहुत-से साधु-महात्मा एकत्र हुए थे। देवराज उस शिवालयमें ठहर गया, किंतु वहाँ उस ब्राह्मणको ज्ञार न गया। उस ल्वरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। वहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुना रहे थे। ज्ञारमें पड़ हुआ देवराज ब्राह्मणके मुखारविन्दसे निकली हुई उस शिव कथाको निरन्तर सुनता रहा। एक मासके बाद वह ल्वर अत्यन्त पीड़ित होकर चल बसा। यमराजके द्रूत आये और उसे पाशोंसे बाँधकर वल्पूर्वक यमपुरीमें ले गये। इतनेमें शिवलोकसे भगवान् शिवके पार्षदगण आ गये। उनके अङ्ग कर्पूरके समान उज्ज्वल थे, हाथ त्रिशूलसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अङ्ग भस्तुते उद्घासित थे वे लंग रुद्राक्षकी मालाएँ उनके द्वारीकी शोभा बढ़ा रही थीं। सब-के-सब क्रोधपूर्वक यमपुरीमें गये और यमराजके दूर भार-पीटकर, वारंवार धमकाकर उन्होंने देवराजको उन चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अद्भुत विमानपर उजव वे शिवद्वृत कैलास जानेको उद्घात हुए, उस समय में बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उस कोलाहलको उधर धर्मराज अपने भवनसे बाहर आये। साक्षात् दूतरे समान प्रतीत होनेवाले उन चारों दूतोंको देखकर धर्मराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने भयके तीव्र भगवान् शिवके उन महात्मा दूतोंसे कोई बात नहीं,



उलटे उन सबकी पूजा एवं प्रार्थना की। तत्पश्चात् वे शिवदूत कैलासको चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस ग्रामणको दयासागर साम्र शिवके हाथोंमें दे दिया।

शौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी ! आप सर्वश्च हैं। महामते ! आपके कृपाप्रसादसे मैं वारंवार कृतार्थ हुआ। इस इतिहासको सुनकर मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो रहा है। अतः अब भगवान् शिवमें प्रेम वदानेवाली शिवसम्बन्धिनी दूसरी कथाको भी कहिये।

श्रीसूतजी बोले—शौनक ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने गोपनीय कथानक्षुला भी वर्णन करूँगा; क्योंकि तुम शिवभक्तोंमें अप्रगम्य तथा देववेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशमें एक वाष्पल नामक ग्राम है; जहाँ वैदिक धर्मसे विगुल महापापी द्विज निवास करते हैं। वे सब-के-सब घड़े हुए हैं; उन्होंना मन दूषित विषयभोगोंमें ही लगा रहता है। वे ऐसे देवताओंपर किशात् करते हैं न भाग्यपर; वे सभी कुटिल हैं। किनानी करते और भौति-भौतिके धातक अर्थ-प्रयोग रखते हैं। वे व्यभिचारी और गुल हैं। ज्ञान, वैराग्य और स्वर्गसंदर्भ सेवन ही ननुपरके लिये इस सुन्दर्य है—इस दृश्यतों से रिकूल नहीं जानते हैं। वे कभी पशुहुँसिताते हैं।

( जहाँके द्विज ऐसे हों, वहाँके अन्य वर्णोंके विषयमें क्या कहा जाय । ) अन्य वर्णोंके लोग भी उन्होंकी भौति कुस्तित विचार रखनेवाले, स्वधर्मविमुख एवं खल हैं; वे सदा कुर्कम्में लगे रहते और नित्य विषयभोगोंमें ही हूँचे रहते हैं। वहाँकी सब लिंगाँ भी कुटिल स्वभावकी, स्वेच्छान्वारिणी, पापासक्त, कुस्तित विचारबाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सद्व्यवहार तथा सदाचारसे सर्वथा शून्य हैं। इस प्रकार वहाँ दुष्टोंका ही निवास है।

उस वाष्पल नामक ग्राममें किसी समय एक विन्दुग नामधारी ब्राह्मण रहता था, वह बड़ा अधम था। दुरात्मा और महापापी था। यद्यपि उसकी स्त्री बड़ी सुन्दरी थी, तो भी वह कुमारपर ही चलता था। उसकी पत्नीका नाम चञ्चुला था; वह सदा उत्तम धर्मके पालनमें लगी रहती थी, तो भी उसे छोड़कर वह हुष्ट ब्राह्मण वेश्यागामी हो गया था। इस तरह कुर्कम्में लगे हुए उस विन्दुगके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी स्त्री चञ्चुला कामसे पीड़ित होनेपर भी स्वधर्मनाशके भयसे क्लेश सहकर भी दीर्घकालतक धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु दुरात्मारी पतिके आचरणसे प्रभावित हो आगे चलकर वह स्त्री भी दुराचारिणी हो गयी।

इस तरह दुराचारमें हूँचे हुए उन मूढ चित्तवाले पति-पत्नीका बहुत-सा समय व्यर्थ वीत गया। तदनन्तर शूद्रजातीय वेश्याका पति बना हुआ वह दूषित बुद्धिवाला हुए ब्राह्मण विन्दुग समयानुसार भृत्युको प्राप्त हो नरकमें जा पड़ा। बहुत दिनोंतक नरकके दुःख भोगकर वह मूढ़बुद्धि पापी विन्द्यपर्वतपर भर्यकर पिशाच हुआ। इधर, उस दुराचारी पति विन्दुगके मर जानेपर वह मूढ़हृदया चञ्चुला बहुत समयतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही।

एक दिन दैवयोगसे किसी पुण्य पर्वके आनेपर वह स्त्री भाई-नन्दुओंके साथ गोकर्णदेशमें गयी। तीर्प्यात्रिवोके सङ्गसे उसने भी उस समय जाकर किसी तीर्थके जलमें स्नान किया। फिर वह साधारणतया ( मेला देखनेकी दृष्टिसे ) वन्द्युजनोंके साथ वत्र-तत्र बूसने लगी। घूमती-ज्ञानी किसी दैवमन्दिरमें गयी और वहाँ उसने एक दैवज्ञ ब्राह्मणके मुखसे भगवान् शिवजी परम दक्षिण एवं मङ्गलकारिणी उत्तम पौराणिक कथा सुनी। कथाचाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि ‘जो लिंगों परसुचयोंके साथ व्यभिचार करती है, वे मरनेके बाद व्य वन्मलोंकमें जाती हैं; तब यमगड़के दूत उनकी योनिमें तमे हुए लेहेंका परिय डालने हैं।’ यीरागिक ब्राह्मणके

मुखसे यह वैराग्य बढ़ानेवाली कथा सुनकर चञ्चुला भयसे व्याकुल हो बहाँ कौपने लगी। जब कथा समाप्त हुई और सुननेवाले सब लोग बाहर चले गये, तब वह भयभीत नारी एकान्तमें शिवपुराणकी कथा बॉच्चनेवाले उन ब्राह्मणदेवतासे बोली।



चञ्चुलाने कहा—ब्रह्मन्। मैं अपने धर्मको नहीं

जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामिन्। मेरे ऊपर अनुपम कृपा करके आप मेरे उद्धार कीजिये। आज आपके वैराग्य-रससे ओतप्रेर इस प्रवचनको सुनकर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मैं कॉप उठी हूँ और मुझे इस संसारसे वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनीको धिक्कार है। मैं सर्वथा निन्दाके योग्य हूँ। कुत्सित विषयोंमें फँसी हुई हूँ और अपने धर्मसे विमुख हो गयी हूँ। हाय! न बोल किस-किस धोर कष्टदायक दुर्गतियमें मुझे पड़ना पड़ेगा और वहाँ कौन बुद्धिमान् पुरुष कुमारमें मन ल्यानेवाली मुझ पापिनीका साथ देगा। मृत्युकालमें उन भयंकर यमदूतोंको मैं कैसे देखूँगी? जब वे बलपूर्वक मेरे गलेमें फँदे डालकर मुझे बौंधेंगे, तब मैं कैसे धीरज घारण कर सकूँगी। नरकमें जब मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायेंगे उस समय विशेष दुःख देनेवाली उस महायातनाको मैं बां कैसे सहूँगी? हाय! मैं मारी गयी। मैं जल गयी। मेरे हृदय बिदीर्ण हो गया और मैं सब प्रकारसे नष्ट हो गयी क्योंकि मैं हर तरहसे पापमें ही हृदी रही हूँ। ब्रह्मन्। आप ही मेरे गुरु, आप ही माता और आप ही पिता हैं। आपकी शरणमें आयी हुई मुझ दीन अवलम्बन आप ही उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! इस प्रकार खेद और वैराग्यसे युक्त हुई चञ्चुला ब्राह्मणदेवताके दोनों चरणों पर पढ़ी। तब उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे उठाया और इस प्रकार कहा—

(अध्याय २, ३)

**चञ्चुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा चञ्चुलाका पार्वतीजीकी सखी एवं सुखी होना**

ब्राह्मण बोले—नारी! सौभाग्यकी बात है कि भगवान् शंकरकी कृपासे शिवपुराणकी इस वैराग्ययुक्त कथाको सुनकर तुम्हें समयपर चेत हो गया है। ब्राह्मणपती! तुम ढरे मर। भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। शिवकी कृपासे सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे भगवान् शिवकी कीर्तिकथासे युक्त उस परम वत्सुका वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें सदा सुख देनेवाली उत्तम गति प्राप्त होगी।

शिवकी उत्तम कथा सुननेसे ही तुम्हारी बुद्धि इस लं पश्चात्तापसे युक्त एवं शुद्ध हो गयी है। साथ ही उद्धमनमें विषयोंके प्रति वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पश्चात्तापसे उनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही समस्त पापोंका शिवताया है, पश्चात्तापसे ही पापोंकी शुद्धि होती है। जो पश्चात्त करता है, वही वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है;

सत्पुरुषोंने समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपदेश किया है, वह सब पश्चात्तापसे सम्पन्न हो जाता है।\* जो पुरुष विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके निर्भय हो जाता है, पर अपने कुकर्मके लिये पश्चात्ताप नहीं करता, उसे प्रायः उत्तम गति नहीं प्राप्त होती। परंतु जिसे अपने कुकुल्यपर ह्यादिक पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उत्तम गतिका भागी होता है—इसमें संशय नहीं। इस शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी चित्तशुद्धि होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। जैसे दर्पण साफ करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्योंके शुद्धचित्तमें जगदम्बा पार्वती-सहित भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। इससे वह विशुद्धात्मा पुरुष श्रीसाम्ब सदाशिवके पदको प्राप्त होता है।

इस उत्तम कथाका श्रवण समस्त मनुष्योंके लिये कल्पाणाका वीज है। अतः यथोच्चित (शास्त्रोक्त) मार्गसे इसकी आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। यह भव-वन्धनरूपी रोगका नाश करनेवाली है। भगवान् शिवकी कथाको सुनकर फिर अपने हृदयमें उसका मनन एवं निदिव्यासन करना चाहिये। इससे पूर्णतया चित्तशुद्धि हो जाती है। चेत्तशुद्धि होनेसे महेश्वरकी भक्ति अपने दोनों पुत्रों (शान और वैराग्य) के साथ निश्चय ही प्रकट होती है। तत्प्रश्नात् महेश्वरके अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो मुक्तिसे बहित है, उसे पशु-समझना चाहिये; क्योंकि उसका चित्त यायाके वन्धनमें आसक्त है। वह निश्चय ही संसारवन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता।

ब्राह्मणपत्री ! इसलिये तुम विषयोंसे मनको हटा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम पावन कथाको सुनो—परमात्मा शंकरकी इस कथाको सुननेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि होती और इससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। जो निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन

करता है, उसकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ।

**सूतजी कहते हैं—शौनक !** इतना कहकर वे श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण चुप हो गये। उनका हृदय करुणासे आर्द्ध हो गया था। वे शुद्धचित्त महात्मा भगवान् शिवके ध्यानमें मम हो गये। तदनन्तर विन्दुगकी पत्नी चञ्चुला मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वह ब्राह्मणपत्री चञ्चुला हर्षभरे हृदयसे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके दोनों चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—‘मैं कृतार्थ हो गयी।’ तत्पश्चात् उठकर वैराग्ययुक्त उत्तम शुद्धिवाली वह छी, जो अपने पापोंके कारण आतङ्कित थी, उन महान् शिव-भक्त ब्राह्मणसे हाथ जोड़कर गद्दद वाणीमें बोली।

**चञ्चुलाने कहा—ब्रह्मन् ! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ ! स्वामिन् !** आप धन्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकारमें लगे रहते हैं। इसलिये श्रेष्ठ साधु पुरुषोंमें प्रशंसा के योग्य हैं। साधो ! मैं नरकके समुद्रमें गिर रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक अर्थ-तत्त्वसे सम्पन्न जिस सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर मेरे मनमें समृद्ध विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उसी इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय मेरे मनमें वही थदा हो रही है।

**सूतजी कहते हैं—ऐमा कहकर हाथ जोड़ उनका अनुग्रह पाकर चञ्चुला उस शिवपुराणकी कथाको सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तत्पर हो वहाँ रहने लगी।** तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और शुद्ध शुद्धिवाले उन ब्राह्मणदेवताने उसी स्थानपर उस लीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनायी। इस प्रकार उस गोकर्ण नामक महाक्षेत्रमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे उन्होंने शिवपुराणकी वह परम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, शान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम उत्तम कथाको सुनकर वह ब्राह्मण-पत्री अत्यन्त कृतार्थ हो गयी। उसका चित्त शीम ही शुद्ध हो गया। जिस भगवान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयमें शिवके शुद्धरूपका चिन्तन होने लगा। इस प्रकार उन्हें भगवान् शिवने लगी रहनेवाली उत्तम शुद्धि पावर शिवके सम्बद्धानन्दनाम स्वरूपका चारंधार चिन्तन आरम्भ किया।

\* पद्मसारः पापशुला पापानं निकृतिः परा ।

स्वेषं वित्तं सद्ग्रीः सर्वपापविदोपनम् ॥

प्राप्तस्त्रेतेऽ शुद्धिः प्राप्तश्चित्तं वरोति सः ।

पर्वतस्त्रिः सद्ग्रीहि सर्वपापविदोपनम् ॥

( शिवपुराण-भारताम्ब ल० ३, संक्ष. ५-६ )

तत्पश्चात् समयके पूरे होनेपर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चञ्चुलने अपने शरीरको निना किसी काटके ल्याग दिया। इतनेमें ही त्रिपुरग्रन्थ भगवान् शिवका भेजा हुआ एक दिव्य विमान द्रुत गतिसे वहाँ पहुँचा, जो उनके अपने गणोंसे संयुक्त और भाँति-भाँतिके शोभा-साधनोंसे सम्पन्न था। चञ्चुला उस विमानपर आरूढ़ हुई और भगवान् शिवके छेष पार्षदोंने उसे तकाल शिवपुरीमें पहुँचा दिया। उसके सारे मल धुल गये थे। वह दिव्यरूप-धारिणी दिव्याङ्गना सारे मल धुल गये थे। हो गयी थी। उसके दिव्य अवयव उसकी शोभा बढ़ाते थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण किये वह गौराङ्गी देवी पहुँचकर उसने सनातन देवता त्रिनेत्रधारी महादेवजीको देखा। सभी मुख्य-मुख्य देवता उनकी सेवामें खड़े थे। गणेश, भृंगी, नन्दीश्वर तथा वीरभद्रेश्वर आदि उनकी सेवामें उत्तम भक्तिभावसे उपस्थित थे। उनकी अङ्गकान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। कण्ठमें नील चिह्न शोभा पाता था। पाँच सुख और प्रत्येक मुखमें तीन तीन नेत्र थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रकार मुकुट शोभा देता था। उन्हें अपने वासाङ्ग भागमें गौरी देवीको चिठा रखवा था, जो विद्युत-पुळके समान प्रकाशित थी। गौरीपति महादेवजीकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। उनका सार शरीर इवेत भसते भासित था। शरीरपर इवेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। इस प्रकार परम उज्ज्वल भगवान् शंकरका दर्शन करके वह ब्राह्मणपक्षी चञ्चुला बहुत प्रसन्न हुई। अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उसने बड़ी उतावलीके साथ भगवान्को घारंवार प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर वह बड़े प्रेम, आनन्द और संतोषसे युक्त हो विनीतभावसे खड़ी



हो गयी। उसके नेत्रोंसे आनन्दशुभ्रोंकी अविरल धारा बहे लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान् शंकरने उसे बड़ी करणावे साथ अपने पास बुलाया और सौम्य दृष्टिसे उसकी ओर देखा। पार्वतीजीने तो दिव्यरूपधारिणी विन्दुग्रन्थिया चञ्चुलावे प्रेमपूर्वक अपनी सुखी बना लिया। वह उस परमानन्दमें ज्योतिःस्वरूप सनातनधारमें अविचल निवास पाकर दिव्य सौम्यसे सम्पन्न हो अक्षय सुखका अनुभव करने लगी।

( अध्याय ४ )

चञ्चुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आङ्गा पाकर तुम्हुरुका विन्द्यर्पवतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर विन्दुग्राका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतिका शिवधारमें सुखी होना सूनजी बोले—शौनक! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चञ्चुलने उमादेवीके पास जाकर प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर वह उनकी स्तुति करने लगी।

चञ्चुला बोली—गिरिजाजनन्दिनी! स्वन्दमाता उमे! मनुष्योंने सदा आपका सेवन किया है। समस्त सुखोंको देनेवाली शम्भुप्रिये! आप ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। विष्णु और

ब्रह्म आदि देवताओंद्वारा सेव्य हैं। आप ही समुण्डा और निर्गुण हैं तथा आप ही सूखा सच्चिदानन्दस्वरूपिणी आप्रकृति हैं। आप ही संसारकी सुष्ठि, पालन और संकरनेवाली हैं। तीनों गुणोंका आश्रय भी आप ही हैं। ब्रह्मण्ड और महेश्वर—इन तीनों देवताओंका आवासक्ति आप ही हैं। तथा उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करनेवाली पराशक्ति आप ही हैं।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! जिसे सद्गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चञ्चुला इस प्रकार महेश्वरपती उमाकी सुति करके शिवकाये दुष्प हो गयी । उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये थे । तब करुणासे भरी हुई शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वतीदेवीने चञ्चुलाको सम्मोहित करके वहे प्रेमसे इस प्रकार कहा—

पार्वती बोली—सखी चञ्चुले ! सुन्दरि ! मैं तुम्हारी की हुई इस सुतिसे वहुत प्रसन्न हूँ । बोलो, क्या वर माँगती हो ? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ।

चञ्चुला बोली—निष्पाप गिरिराजकुमारी ! मेरे पति विन्दुग इस समय कहाँ हैं, उनकी कैसीं गति हुई है—यह मैं नहीं जानती । कल्याणमयी दीनवत्सले ! मैं अपने उन पतिदेवसे जिस प्रकार संयुक्त हो सकूँ, वैसा ही उपाय कीजिये । महेश्वरि ! महादेवि ! मेरे पति एक शृद्धजातीय वेद्याये प्रति आसक्त थे और पापमें ही छूटे रहते थे । उनकी मृत्यु मुझसे पहले ही हो गयी थी । न जाने वे किस गतिको प्राप्त हुए ।

गिरिजा बोली—वेदी ! तुम्हारा विन्दुग नामवाला पति वडा पापी था । उसका अन्तःकरण वडा ही दूषित था । वेद्याका उपभोग करनेवाला वह महामूढ़ मरनेके बाद नरकमें रहा । अगणित वर्षोंतक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह पापात्मा अपने शेष पापको भोगनेके लिये विन्यवर्तपतर पिशाच तुआ ऐ । इस समय वह पिशाच-अवस्थामें ही है और नाना प्रकारके क्लेश उठा रहा है । वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता और सदा नव प्रकारके कष्ट सहता है ।

सूरजी कहते हैं—शौनक ! गौरीदेवीकी वह वात सुन-कर उत्तम प्रतेका पालन करनेवाली चञ्चुला उत्त समय पतिके गदान् दुःखसे दुखी हो गयी । किर मनको स्थिर करके उत्त शाश्वतपतीने व्यधित हृदयसे महेश्वरीको प्रणाम करके उन्हें पूजा ।

चञ्चुला बोली—महेश्वरि ! महादेवि ! हृतपर कृष्ण दीजिये और दूसित इन्हें करनेवाले मेरे उत्त दुष्ट पतिका अथ दस्तर पर दीजियें । देवि ! शुसित दुष्टिवाले मेरे उत्त शाश्वत पतिको शिव उच्चदेवते उत्तम गति प्राप्त हों तकती हैं, न योग दस्तावेदे । आपको कमलकर है ।

पार्वतीने कहा—हमारा पति यदि शिवपुराणकी पूज्यमयी

उत्तम कथा सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उत्तम गतिका भागी हो सकता है ।

अमृतके समान मधुर अक्षरोंसे युक्त गौरीदेवीका वह वचन आदरपूर्वक मुनकर चञ्चुलाने हाथ जोड़ मस्तक छुकाकर उन्हें वारंवार प्रणाम किया और अपने पतिके समस्त पापोंकी दुष्टि तथा उत्तम गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे यह प्रार्थना की कि ‘मेरे पतिको शिवपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये ।’ उस ब्राह्मणपतीके वारंवार प्रार्थना करनेपर शिवप्रिया गौरीदेवीको वही दद्या आयी । उन भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले गन्धर्वराज तुम्हुरुको बुलाकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा—‘तुम्हुरो ! तुम्हारी भगवान् शिवमें प्रीति है । तुम मेरे मनकी वातोंको जानकर मेरे अभीष्ट कायोंको सिद्ध करनेवाले हो ।’ इसलिये मैं तुमसे एक वात कहती हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । तुम मेरी इस सखीके साथ शीघ्र ही विन्यवर्तपतर जाओ । वहाँ एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है । उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुनो । मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताती हूँ । पूर्वजन्ममें वह पिशाच विन्दुग नामक ब्राह्मण था । मेरी इस सखी चञ्चुलाका पति था । परंतु वह दुष्ट वेद्यागामी हो गया । स्तान-संव्या आदि नित्यकर्म छोड़िकर अपवित्र रहने लगा । कोयके कारण उसकी दुष्टिपर मृदत्ता द्या गयी थी—वह कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं कर पाता था । अभश्यमध्यग, सज्जनोंसे द्वेष और दूषित वस्तुओंका दान लेना—यही उसका स्वाभाविक कर्म दान गया था । वह अक्ल-दास लेकर हिंसा करता, वायं हाथसे खाता, दीनोंको सताता और कृतापूर्वक पराये धरोंमें आग लगा देता था । नाष्ठालंसे प्रेम करता और प्रतिदिन वेद्याके समर्कर्म रहता था । वडा दुष्ट था । वह पापी अपनी पतीका परित्याग करके दुष्टिकी सङ्गमें ही आनन्द मानता था । वह मृत्युपर्वत दुराचारमें ही कैसा रहा । किर अन्तकाल आनेपर उनकी मृत्यु हो गयी । वह पापियोंके भोगस्वान थे और वयपुरमें गवा और वहाँ द्वादश-नरकोंका उपभोग करके वह दुश्मना जीव इन कर्म विन्यवर्तपतर पिशाच बना हुआ है । वहीं वह दुष्ट विशाच धर्मने पापोंका कल भीग रहा है । तुम उनके आगे वत्सर्वक शिव-पुरुषकी उत्त दिव्य कलाका प्रदर्शन करो, जैसे इस दुर्लभमी तथा हमस्त पारेंता नहीं करनेवाली है । विन्दुगलाली दग्धता



अवण सबसे उत्कृष्ट पुण्यकर्म है। उससे उसका हृदय शीघ्र ही समस्त पापोंसे शुद्ध हो जायगा और वह प्रेतयोनिका परिस्थाग कर देगा। उस दुर्गतिसे मुक्त होनेपर बिन्दुग नामक पिशाचको मेरी आज्ञासे विमानपर बिठाकर तुम भगवान् शिवके समीप ढे आओ।'

सूतजी कहते हैं—शौनक! महेश्वरी उमाके इस प्रकार आदेश देनेपर गन्धर्वराज तुम्हुरु मन-ही-मन वडे प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने भायकी सराहना की। तत्पश्चात् उस पिशाचकी सती-साध्वी पनी चञ्चुलाके साथ विमानपर बैठकर नारदके प्रिय मित्र तुम्हुरु वेगपूर्वक विन्द्याचल पर्वतपर गये, जहाँ वह पिशाच रहता था। वहाँ उन्होंने उस पिशाचको देखा। उसका शरीर विशाल था। ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। वह कभी हँसता, कभी रोता और कभी उछलता था। उसकी आङ्कुश बड़ी विकराल थी। भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले महावली तुम्हुरुने उस अत्यन्त भयंकर पिशाचको पाशोद्धारा बाँध लिया। तदनन्तर तुम्हुरुने शिवपुराणकी कथा बाँचनेका निश्चय करके महात्सवयुक्त स्थान और मण्डप आदिकी रचना की। इतनेमें ही सम्पूर्ण लोकोंमें वडे वेगसे यह प्रचार ही गया कि देवी पार्वतीकी आज्ञासे एक पिशाचका उद्धार करनेके उद्देश्यसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनानेके लिये तुम्हुरु विन्यपर्वतपर गये हैं। फिर तो उस कथाको सुननेके लोभसे बहुतसे देवर्षि भी शीम ही वहाँ जा पहुँचे। आदरपूर्वक शिवपुराण सुननेके लिये आये हुए लोगोंका उस

पर्वतपर बड़ा अद्भुत और कल्याणकारी समाज जुट गया। फिर तुम्हुरुने उस पिशाचको पाशोंसे बाँधकर आउनार



बिठाया और हाथमें बीणा लेकर गौरीपतिकी कथाका गान वारम्भ किया। पहली अर्थात् विद्येश्वरसंहितासे लेकर सातवीं बायुसंहितातक माहात्म्यसंहित शिवपुराणकी कथाका उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया। सार्वे संहिताओंसहित शिवपुराणका आदर्श पूर्वक श्रवण करके वे सभी श्रोता पूर्णतः कृतार्थ हो गये। उस परम पुण्यमय शिवपुराणको सुनकर उस दिशाचने अपने सारे पापोंको धोकर उस पैशाचिक शरीरको स्थाग दिया। फिर तो शीघ्र ही उसका ल्प दिव्य हो गया। अङ्गकान्ति गौरवर्णने हो गयी। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा देने लगा। सब प्रकारके पुस्त्रोचित व्यामुषण उसके अङ्गोंको उद्धासित करने लगे। वह त्रिनैवधारी चन्द्रशेखरल्प हो गया। इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर श्रीमान् बिन्दुग अपनी प्राणवल्लभा चञ्चुलाने साथ स्वयं भी पार्वतीवल्लभ भगवान् शिवका गुणगान करने लगा। उसकी ल्लीको इस प्रकार दिव्यरूपसे सुखोभित हो गया। वे सभी देवर्षि वडे विस्मित हुए। उनका चित्त परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। भगवान् महेश्वरका वह अद्भुत चरित्र मुन कर वे सभी श्रोता परम कृतार्थ हो प्रेमपूर्वक श्रीदीपक यशोगान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये। दिल ल्पधारी श्रीमान् बिन्दुग भी सुन्दर विमानपर अपनी प्रियतमां देखनेके पास बैठकर सुखपूर्वक आकाशमें स्थित ही बड़ी शोभा पाने लगे हैं।

तदनन्तर महेश्वरके सुन्दर एवं मनोहर गुणोंका गत करता हुआ वह अपनी प्रियतमा तथा तुम्हुरुके साथ श्रीग्रह ही शिवधाममें जा पहुँचा । वहाँ भगवान् महेश्वर तथा पार्वती देवीने प्रसन्नतापूर्वक शिव्दुगका बड़ा सत्कार किया और उसे

अपना पार्षद बता लिया । उसकी पत्नी चञ्चुला पार्वतीजीकी सखी हो गयी । उस घनीभूत ज्योतिःस्खल्प परमानन्दमय सनातनधाममें अविचल निवास पाकर वे दोनों दम्पति परम सुखी हो गये । ( अध्याय ५ )

### शिवपुराणके श्रवणकी विधि तथा श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

श्रौतकज्जी कहते हैं—महाप्राज्ञ व्यासशिष्य सूतजी ! आपको नमस्कार है । आप धन्व हैं, शिवमक्तोंमें श्रेष्ठ हैं । आपके महान् गुण वर्णन करने योग्य हैं । अब आप कल्याणमय शिवपुराणके श्रवणकी विधि बतलाइये, जिससे सभी श्रोताओंको सम्पूर्ण उत्तम फलकी प्राप्ति हो सके ।

सूतजीने कहा—मुने श्रौतक ! अब मैं तुम्हें सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये शिवपुराणके श्रवणकी विधि बता रहा हूँ । पहले किसी उपोतिषेषको बुलाकर दान-मानसे संतुष्ट करके अपने महोगी लोगोंके साथ वैठकर बिना किसी विभवाधाके कथाकी नमाति होनेके उद्देश्यसे शुद्ध मुहूर्तका अनुसंधान कराये और प्रयत्नपूर्वक देश-देशमें—स्थान-स्थानपर यह संदेश भेजे कि ‘हमारे यहाँ शिवपुराणकी कथा होनेवाली है । अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको उसे सुननेके लिये अवश्य पधारना चाहिये ।’ कुछ लोग भगवान् श्रीहरकी कथासे बहुत दूर पढ़ गये हैं । कितने ही स्त्री, शुद्ध आदि भगवान् शंकरके कथा-कीर्तनसे बच्चित रहते हैं । उन सबको भी सूचना हो गय, ऐसा प्रवन्ध करना चाहिये । देश-देशमें जो भगवान् श्रेवके भक्त हों तथा शिवकथाके कीर्तन और श्रवणके लिये उत्सुक हों, उन सबको आदरपूर्वक बुलवाना चाहिये और आये हुए लोगोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार दिला चाहिये । शिवमदिरमें, तीर्थमें, चन्प्रान्तमें अथवा धरमें शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करना चाहिये । केलेदे खम्भोंसे सुशोभित एक ऊँचा कथामण्डप तैयार कराये । उसे सब और फल-पुण्य आदिसे तथा सुन्दर नैदोषिके अलंकृत करे और चारों ओर ध्वजा-पताका लगाकर उपर-तरहूँ लगानेसे नज़ार कर सुन्दर श्रोतासम्बन्ध बना दे । भगवान् शिवके प्रति सब प्रकारसे उत्तम भक्ति करनी चाहिये । वही सब तरहसे आनन्दका निधान फरनेवाली है । परमात्मा भगवान् श्रीबाबरके लिये दिव्य आननका निर्माण करना चाहिये अथवा कथामण्डपके लिये भी एक ऐसा दिव्य आगम बनाना चाहिये, जो सबके लिये शुद्ध हो । नके ! सुने ! नियमपूर्वक इस सुननेवाले श्रोताओंके लिये भी कथायोग्य सुन्दर सदानीकी विस्तर रखनी चाहिये । अन्य लोगोंके लिये साधारण स्थान में सबने लगाये । जिसके साथे लिखती हुई गणी श्रीरथिरिदेव किसे जानेवेतुं गमन असीष कल देनेवाली है ? उस पुण्यावित्त दिव्याद् वज्रके प्रति शुद्धतुद्वि-

कमी नहीं करनी चाहिये । संसारमें जन्म तथा गुणोंके कारण बहुत-से गुरु होते हैं । परंतु उन सबमें पुराणोंका शाता विद्वान् ही परम गुरु माना गया है । पुराणवेत्ता पवित्र, दक्ष, शान्त, ईर्ष्यापर विजय पानेवाला, साधु और दयालु होना चाहिये । ऐसा प्रवचनकुशल विद्वान् इस पुण्यमयी कथाको कहे । सूर्योदयसे आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक उत्तर बुद्धिवाले विद्वान् पुरुषको शिवपुराणकी कथा सम्ब्रक् रीतिसे बाँचनी चाहिये । मध्याह्नकालमें दो घड़ीतक कथा बंद रखनी चाहिये, जिससे कथा-कीर्तनसे अवकाश पाकर लोग भल-भृत्रका लाग कर सकें ।

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पहले व्रत प्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये । जिन दिनों कथा हो रही हो, उन दिनों प्रयत्नपूर्वक प्रातःकालका सारा नियम-कर्म संक्षेपसे ही कर लेना चाहिये । वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये एक दूसरा वैसा ही विद्वान् स्थापित करना चाहिये । वह भी सब प्रकारके संशयोंको निवृत्त करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो । कथामें आनेवाले विद्वानोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे । कथाके स्वामी भगवान् शिवकी तथा विशेषतः शिवपुराणकी पुस्तककी भक्तिभावसे पूजा करे । तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिवाला श्रोता तन-मनसे शुद्ध एवं प्रसन्न-चित्त हो आदरपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुने । जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकारके कर्मोंमें भटक रहे हैं, काम आदि छः विकारसे बुक्त हों, ज्ञामें आत्मकि रखते हों और पासण्डपूर्ण वातं कहते हों; वे पुण्यके भागी नहीं होते । जो लौकिक विन्ता तथा धन, यह एवं पुत्र आदिकी चिन्ताको छोड़कर कथामें मन लगाये रहते हैं, उन शुद्धतुद्वि पुण्योंको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । जो श्रोता श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होते हैं, दूसरे कर्मोंमें मन नहीं लगाते और मौत्त, पवित्र एवं उद्धरण-शून्य होते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं ।

सूतजी बोले—श्रौतज ! अब शिवपुराण सुननेका व्रत देनेवाले पुण्योंके लिये जो नियम हैं, उन्हें भन्निष्ठर्वक गुनों । नियमपूर्वक इन श्रेष्ठ कथाको सुननेमें दिना दिनी दिन-शायके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । जो देवदीवाले रहत है, उनका दृश्य-शरणसे अश्रित्वान नहीं है । अतः सुने ! यथा सुननेवाली इच्छादाते सब लोगोंको पहले वर्षासे दीक्षा श्रद्धन यस्ती

चाहिये । जो लोग नियमसे कथा सुनें, उनको व्रह्मन्यसे रहना, भूमिपर सोना, पत्तलमें खाना और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही अन्न ग्रहण करना चाहिये । जिसमें शक्ति हो, वह पुराणकी समाप्तिक उपचास करके शुद्धतापूर्वक भक्तिभावसे उत्तम शिवपुराणको सुने । इस कथाका ब्रत लेनेवाले पुरुषको प्रतिदिन एक ही बार हविष्यान्न भोजन करना चाहिये । जिस प्रकारसे कथा-श्रवणका नियम सुखपूर्वक सध सके, वैसे ही करना चाहिये । गरिष्ठ अन्न, दाल, जल, अन्न, सेम, मसूर, भावदूषित तथा वासी अन्नको खाकर कथा-ब्रती पुरुष कभी कथाको न सुने । जिसने कथाका ब्रत ले रखा हो, वह पुरुष प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जानेवाली वस्तुओंको त्याग दे । कथाका ब्रत लेनेवाला पुरुष काम, क्रोध आदि छः विकारोंको, ब्राह्मणोंकी निन्दाको तथा पतिव्रता और साधु-संतोंकी निन्दाको भी त्याग दे । कथाब्रती पुरुष प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा हर्दिक उदारता—इन सद्गुणोंको सदा अपनाये रहे । श्रोता निष्काम हो या सकाम, वह नियमपूर्वक कथा सुने । सकाम पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाको प्राप्त करता है और निष्काम पुरुष मोक्ष पा लेता है । दरिद्र, क्षयका रोगी, पापी, भाग्यहीन तथा संतानरहित पुरुष भी इस उत्तम कथाको सुने । काक-बन्धा आदि जो सात प्रकारकी दुष्टा स्त्रियाँ हैं, वे तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह—इन सभीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये । मुने ! स्त्री हो या पुरुष—सबको यत्पूर्वक विधि-विधानसे शिवपुराणकी यह उत्तम कथा सुननी चाहिये ।

महर्षे ! इस तरह शिवपुराणकी कथाके पाठ एवं श्रवण-सम्बन्धी यज्ञोत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रोताओंको भक्ति एवं प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिवकी पूजाकी भाँति पुराण-पुस्तककी भी पूजा करनी चाहिये । तदनन्तर विधिपूर्वक वक्ताका भी पूजन करना आवश्यक है । पुस्तकको आच्छादित करनेके लिये नवीन एवं सुन्दर वस्ता बनावे और उसे बाँधनेके लिये ढढ़ एवं दिव्य डोरी लगावे । फिर उसका विधिवत् पूजन करे । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार महान् उत्सवके साथ पुस्तक और वक्ताकी विधिवत् पूजा करके वक्ताकी सहायताके लिये स्थापित हुए पण्डितका भी उसीके अनुसार धन आदिके द्वारा उससे कुछ ही कम सत्कार करे । वहाँ आये हुए ब्राह्मणोंको अन्न-धन आदिका दान करे । साथ ही गीत, नाद और नृत्य आदिके द्वारा भगवान् उत्सव रचाये । मुने ! यदि श्रोता विरक्त हो तो उसके लिये कथासमाप्तिके दिन निशेषपूर्णसे उस गीताका पाठ करना चाहिये, जिसे श्रीरामनन्दजीके प्रति भगवान् शिवने कहा था ।

यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उस बुद्धिमानको उस श्रवण-क्रमसे शान्तिके लिये शुद्ध हविष्यके द्वारा होम करना चाहिये । मुने ! रुद्रसंहिताके प्रत्येक श्लोकद्वारा होम करना उचित है अथवा गायत्री-मन्त्रसे होम करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें यह पुराण गायत्रीमय ही है । अथवा शिवपञ्चाक्षर मूलमन्त्रसे हवन करना उचित है । होम करनेकी शक्ति न हो तो विद्वां पुरुष यथाशक्ति हवनीय हविष्यका ब्राह्मणको दान करे । न्यूनातिरिक्ततारूप दोषकी शान्तिके लिये भक्तिपूर्वक विधिसहून नामका पाठ अथवा श्रवण करे । इससे सब कुछ सह देता है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तीनों लोकोंमें उससे वट्टकर कोई वस्तु नहीं है । कथाश्रवणसम्बन्धी ब्रतकी पूर्णताकी सिद्धिके लिये न्यारह ब्राह्मणोंको मधुमिश्रित खीर भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे । मुने ! यदि शक्ति हो तो तीन तोले सोनेका एक सुन्दर सिंहासन बनवावे और उसपर उत्तम अक्षरोंमें लिखी अथवा लिखायी हुई शिवपुराणकी पोथी विधिपूर्वक स्थापित करे । तत्पश्च उसकी आवाहन आदि विविध उपचारोंसे पूजा करके दक्षिणा चढ़ाये । फिर जितेन्द्रिय आचार्यका वस्त्र आभूषण एवं गन्ध आदिसे पूजन करके दक्षिणासहित वह पुस्तक उन्हें समर्पित कर दे । उत्तम बुद्धिवाल श्रोता इच्छा प्रकार भगवान् शिवके संतोषके लिये पुस्तकका दान करे । शौनक ! इस पुराणके उस दानके प्रभावसे भगवान् शिवज्ञ अनुग्रह पाकर पुरुष भववन्धनसे मुक्त हो जाता है । इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सभूत फलको देनेवाला तथा भोग और मोक्षका दाता होता है ।

मुने ! शिवपुराणका यह सारा माहात्म्य, जो सभी अभीष्टको देनेवाला है, मैंने तुम्हें कह सुनाया । अब ऐसा क्या सुनना चाहते हो ? श्रीमान् शिवपुराण समस्त पुराणों भालका तिलक माना गया है । यह भगवान् शिवको अत्यधिय, रमणीय तथा भवरोगका निवारण करनेवाल है । सदा भगवान् शिवका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवगुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कम सुनते हैं, इस जीव-जगतमें उन्हेंका जन्म लेना सफल है वे निश्चय ही संसारसागरसे पार हो जाते हैं ॥५॥ भिन्न-भिन्न प्रकार समस्त गुण जिनके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका कभी सर्वतो न करते, जो अपनी भहिमासे जगतके बाहर और भीतर भासमान हैं तथा जो मनके बाहर और भीतर वाणी एवं मनोवृत्तिस्थिरमें प्रकाशित होते हैं, उन अनन्त धानलक्षणोंपरम शिवकी मैं शरण लेता हूँ । ( अथाप ५५ )

\* वे जन्मभाजः खलु जीवलोके ये वै सदा ध्यायन्ति विश्वनाथम् ।  
वाणी मुण्णान् स्तौति कथां शृणोति श्रोदर्यं ते भवमुत्तरन्ति ॥

श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः

श्रीगणेशाय नमः

# श्रीशिवमहापुराण

## विद्येश्वरसंहिता

प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका तुरंत पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-

मायं तमीशमजामरमाभद्रेवम् ।

पञ्चाननं प्रब्रलपञ्चविनोदशीलं

सम्भावये भनसि शंकरमन्त्रिकेशम् ॥

जो आदि और अन्तमें ( तथा भयमें भी ) नित्य मङ्गलमय है, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके लक्षणको प्रकाशित करनेवाले देवता ( परमात्मा ) हैं, जिनके पाँच मुख हैं, और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्की रचना, पालन और संहार तथा मुग्रह एवं तिरेभावरूप पाँच प्रब्रल कर्म करते रहते हैं, उन विशेष अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ ।

व्यासजी कहते हैं—जो धर्मका महान् क्षेत्र है और वहाँ गग्ना-अमुनाका संगम हुआ है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें, जो व्रहस्पदका मार्ग है, सत्यवत्तमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल शानदारका आयोजन किया । उस शानदारका समाचार मुनकर पौराणिकारितामणि व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन रखनेके लिये आये । सूतजीको आते देख वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्न निरामि उन्हेंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया । तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् सुनि परके निम्नार्दिक रथ जोड़कर उन्हें इन प्रकार कहा—

“तुरंत चिद्रान् रेनदर्शगजी ! आपका भाग्य वहा भारी है, इसीसे आपके शासकीके सुखके अर्थी प्रगतताके लिये भी अमर्द पुरानिया शास की । इसलिये आप आधर्यस्वरूप अमरोद के भंडार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रथारूप अमृत वहाँ से अस्त्रूल रखेगा आगार है । तीनों कोशोंमें

भूत, वर्तमान और भविष्य तथा और भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अशात नहीं है । आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ पवार गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता । हमने पहले भी आपसे शुभायुभ तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है; किंतु उससे वृत्ति नहीं होती, हमें उसे मुननेकी वारंवार इच्छा होती है ।

उत्तम बुद्धिवाले सूतजी ! इस समय हमें एक ही वात मुननी है । यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका वर्णन करें । धोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकामसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायेंगे और सद्व-के-सद्व सत्यभाषणसे मुँह फेर लेंगे, दूसरोंकी मिन्दामें तत्पर होंगे । पराये धनको हड्डप लेनेकी इच्छा करेंगे । उनका मन परायी छियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे । अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे । मूढ़, नास्तिक और पशुबुद्धि रखनेवाले होंगे, माता-पितासे द्वैप रखेंगे । ग्रासण लोभस्त्री ग्रहके ग्रास वन जायेंगे । वेद वेचकर जीविका चलायेंगे । धनका उपार्जन करनेके लिये ही विद्याका अभ्यास करेंगे और मदसे मोहित रहेंगे । अपनी जातिके कर्म छोड़ देंगे । प्रायः दूसरोंको ठगेंगे, तीनों कालकी संघोषणामासे दूर रहेंगे और व्रतशानसे शून्य होंगे । समस्त क्षमित्र भी त्वर्धर्मका त्याग करनेवाले होंगे । कुरुंगी, परी और व्यभिचारी होंगे । उनमें शीर्थका अभाव होगा । वे कुस्तित चौर्य-कर्मसे जीविका चलायेंगे, शूद्रोंका-ना वतांश करेंगे और उनका चित्र दामका किंवदं वना रहेगा । वैद्य भट्टकार-ब्रह्म, त्वर्धर्मलतागी, कुमारी, धनोग-जन-परादग तथा नारी-लहरमें अर्थी कुस्तित द्विलिङ्गा फरिच्चव देनेवाले होंगे । इनी तरह शुद्ध ग्रासणदे आचारमें तत्पर होंगे; उनकी आदृति उपलब्ध होंगी अर्थात् वे अनन्त कर्म-पर्व

छोड़कर उज्जवल वेश-भूषा से विभूषित हो व्यर्थ घूमेंगे । वे स्वभावतः ही अपने धर्म का त्याग करनेवाले होंगे । उनके विचार धर्म के प्रतिकूल होंगे । वे कुटिल और द्विज-निन्दक होंगे । यदि धनी हुए तो कुर्मर्म में लग जायेंगे । विद्वान् हुए तो बाद-विवाद करनेवाले होंगे । अपने को कुलीन मानकर चारों वर्णों के साथ वैदाहिक सम्बन्ध स्थापित करेंगे, समस्त वर्णों को अपने सम्पर्क से भ्रष्ट करेंगे । वे लोग अपनी अधिकार-सीमा से बाहर जाकर द्विजोचित सत्कंर्मों का अनुष्ठान करनेवाले होंगे । कलियुग की स्त्रियाँ प्रायः सदाचार से भ्रष्ट और पतिका अपमान करनेवाली होंगी । सास-ससुर से द्वोह करेंगी । किसी से भय नहीं मानेंगी । मलिन भोजन करेंगी । कुत्सित हाव-भाव में तत्पर होंगी । उनका शील-

खभाव बहुत बुरा होगा और वे अपने पतिकी सेवा से सदा ही विमुच्य रहेंगी । सूतजी ! इस तरह जिनकी त्रुदि नहीं हो गयी है, जिन्होंने अपने धर्म का त्याग कर दिया है, ऐसे लोगों को इहलोक और परलोक में उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी—इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है । परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है । अतः जिस छोटें से उपाय से इन सबके पापों का तत्काल नाश हो जाय, उसे इस समय कृपापूर्वक बताइये; क्योंकि आप समस्त सिद्धान्तों के बाताहाँ हैं।

व्यासजी कहते हैं—उन भावितात्मा मुनियों की यह बात सुनकर सूतजी मन-ही-मन भगवान् शंकरका सामने करके उनसे इस प्रकार बोले—  
( अध्याय १ )

### शिवपुराणका परिचय

सूतजी कहते हैं—साधु-महात्माओ ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है । आपका यह प्रश्न तीनों लोकों का हित करनेवाला है । मैं मुश्वदेव व्यासका स्मरण करके आपलोगों के स्नेहवश इस विषयका वर्णन करूँगा । आप आदरपूर्वक सुनें । सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोता का समस्त पापाश्रियों से उद्धार करनेवाला है । इतना ही नहीं, वह परलोक में परमार्थ वस्तु को देनेवाला है, कलिकी कल्मषराशिका विनाश करनेवाला है । उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है । ब्राह्मणो ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को देनेवाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभावकी दृष्टिसे बृद्धि या विस्तारको प्राप्त हो रहा है । विप्रवरो ! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अव्ययनमात्रसे वे कलियुगके पापासक जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो जायेंगे । कलियुगके महान् उत्पात तभीतक जगत् में निर्भय होकर विचरेंगे, जगतक यहाँ शिवपुराणका उदय नहीं होगा । इसे वेदके तुल्य माना गया है । इस वेदकल्प पुराणका सबसे पहले भगवान् शिवने ही प्रणयन किया था । विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादश-रुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—इस प्रकार इस पुराणके बारह भेद या खण्ड हैं । ये बारह संहिताएँ अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी हैं । ब्राह्मणो ! अब मैं उनके लोकों की संख्या बता रहा हूँ । आपलोग वह सब आदरपूर्वक सुनें । विद्येश्वरसंहितामें दस हजार श्लोक हैं । रुद्रसंहिता,

विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमें से प्रत्येकमें आठ-आठ हजार श्लोक हैं । ब्राह्मणो ! एकादशरुद्रसंहितामें तेरह हजार, कैलाससंहितामें छः हजार, शतरुद्रसंहितामें तीन हजार, कोटिरुद्रसंहितामें नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार, वायवीयसंहितामें चार हजार तथा धर्मसंहितामें बारह हजार श्लोक हैं । इस प्रकार मूल शिवपुराणकी श्लोकसंख्या एक-लाख है । परंतु व्यासजीने उसे चौबीस हजार श्लोकों संक्षिप्त कर दिया है । पुराणों की क्रमसंख्याके विचार से इस शिवपुराणका स्थान चौथा है । इसमें सात संहिताएँ हैं ।

पूर्वकालमें भगवान् शिवने श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे संकरोड़ श्लोकों का एक ही पुराणग्रन्थ ग्रथित किया था । सुष्ठिके आदिमें निर्मित हुआ एवं पुराण-साहित्य अत्यन्त विस्तृत था । फिर द्वापर आदि युगोंमें द्वैपायन ( व्यास ) आदि महर्षियोंने जब पुराणका अठारह भागोंमें विभाजन कर दिया । उस समय सम्पूर्ण पुराणोंका संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकों का रह गया । उस समय उन्होंने शिवपुराणका चौबीस हजार श्लोकोंमें प्रतिपादन किया । यही इसके श्लोकों की संख्या है । यह वेदतुल्य पुराण सात संहिताओंमें बँटा हुआ है । इसकी पहली संहिताका नाम विद्येश्वरसंहिता है, दूसरी द्वय संहिता समझनी चाहिये, तीसरीका नाम शतरुद्रसंहिता चौथीका कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवींका उमासंहिता, छठीका कैलाससंहिता और सातवींका नाम वायवीयसंहिता है । इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी हैं । इन सात संहिताओं से युक्त दिव्य शिवपुराण वेदके तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उच्च-

गति प्रदान करनेवाला है। यह निर्मल शिवपुराण भगवान् शिवके द्वारा ही प्रतिपादित है। इसे शैवशिरोमणि भगवान् व्यासने संक्षेपसे संकलित किया है। यह समस्त जीवसमुदायके लिये उपकारक, त्रिविध तापोंका नाश करनेवाला, तुल्यनरहित एवं सत्पुरुषोंकी कल्याण प्रदान करनेवाला है। इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कपट ( निष्काम ) धर्मका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईर्ष्यारहित अन्तःकरण-

वाले विद्वानोंके लिये जाननेकी वस्तु है। इसमें श्रेष्ठ मन्त्र-समूहोंका संकलन है तथा धर्म, अर्थ और काम-इस त्रिवर्गकी प्राप्तिके साधनका भी वर्णन है। यह उत्तम शिवपुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेदान्तसे विलम्बित परम वस्तु—परमात्माका इसमें गान किया गया है। जो वडे आदरसे इसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गतिको प्राप्त कर लेता है। ( अध्याय २ )

## साध्य-साधन आदिका विचार तथा श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

व्यासजी कहते हैं—सूतजीका यह वचन सुनकर वे सब महर्पि वोले—‘अब आप हमें वेदान्तसार-सर्वस्वरूप अद्भुत शिवपुराणकी कथा सुनाइये।’

सूतजीने कहा—आप सब महर्पिंश रोग-शोकसे हित कल्याणमय भगवान् शिवका सरण करके पुण्यप्रवर शेवपुराणकी, जो वेदके सारन्तर्ल्लसे प्रकट हुआ है, कथा निये। शिवपुराणमें भक्ति, शन और वैराग्य—इन तीनोंका नित्यपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तवेद सद्गुरुका वेदोपल्लसे वर्णन है। इस वर्तमान कल्याणमें जब सुष्टिकर्म भारम्भ हुआ था, उन दिनों छः कुलोंके महर्पि परस्पर वाद-वेयाद करते हुए कहने लगे—‘अमुक वस्तु सबसे उत्कृष्ट है और अमुक नहीं है।’ उनके इस विवादने अत्यन्त महान् तथा धारण कर लिया। तब वे सब-के-सब अपनी शक्तिके प्रयाप्तानके लिये सुष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास गये और एग जोड़कर विनश्यमरी चागीमें वोले—‘प्रभो ! आप परम्पर्ण जगन्मरो धारण-प्रेषण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। एम यह जानना चाहते हैं कि परम्पर्ण तत्त्वोंसे परं परात्मर पुराण पुरुष कौन है।’

प्रधाजीने कहा—जहाँसे मनमहित थागी उन्हें न पाकर हीट आती है तभी जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदिसे उत्तम परम्पर्ण जगन्-सामन्त भूतों एवं इन्द्रियोंके साथ पहले प्रकट हुए हैं, वे ती ये देवता, महादेव नर्वश एवं सम्पूर्ण जगत्-के भागी हैं। वे ती सबसे उत्कृष्ट हैं। भगिन्ने ही इनका साक्षात्कार होता है। दूसरे शिखे उनके रही इनका दर्शन नहीं होता।

रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर सदा उत्तम भक्तिभावसे उनका दर्शन करना चाहते हैं। भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-वन्धनसे मुक्त हो जाता है। देवताके कृपाप्रसादसे उनमें भक्ति होती है और भक्तिसे देवताका कृपाप्रसाद प्राप्त होता है—ठीक उसी तरह, जैसे यहाँ अद्भुरसे बीज और बीजसे अद्भुर पैदा होता है। इसलिये तुम सब व्रहर्पि भगवान् शंकरका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये भूतलपर जाकर वहाँ सहस्रों वर्षोंतक चालू रहनेवाले एक विशाल यज्ञका आयोजन करो। इन यज्ञपति भगवान् शिवकी ही कृपासे वेदोक्त विद्वाके सारभूत साध्य-साधनका ज्ञान होता है।

शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है। उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य नैमित्तिक आदि फलोंकी ओरसे निःस्वाह होता है, वही साधक है। वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करके उसके महान् फलको भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर देना ही परमेश्वरपदकी प्राप्ति है। वही सालोक्य आदिके क्रमसे प्राप्त होनेवाली मुक्ति है। उन-उन पुस्त्रोंकी भक्तिके अनुसार उन सबको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उन भक्तिके साधन अनेक प्रकारके हैं, जिनका यात्मान् महेश्वरने ही प्रतिपादन किया है। उनमेंसे सारभूत यात्मनको संक्षिप्त करके मैं बता रहा हूँ। यामसे भगवान्द्ये नाम-नुण और हीलाओंका श्रवण, चागीद्वारा उनका कीर्तन तथा मनके द्वारा उनका मनन—इन तीनोंको महान् साधन कहा गया है। १०

\* श्रेष्ठेष्य व्यवसं तद्यत वक्तव्य व्यवसं तद्यत ।

मनसा मनसे तद्यत मनसा-प्रसादहुक्तदेः ।

( शिव उपदेश ३ , ३३-३४ ;

तात्पर्य यह कि महेश्वरका श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये—यह श्रुतिका वाक्य हम सबके लिये प्रमाणभूत है। इसी साधनसे समूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिमें लगे हुए आपलोग परम साध्यको प्राप्त हों। लोग प्रत्यक्ष वस्तुको आँखेसे देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं। परंतु जिस वस्तुका कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रियद्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है। अतः पहला साधन श्रवण ही है। उसके द्वारा गुरुके मुखसे तत्त्वको सुनकर श्रेष्ठ बुद्धिवाला विद्वान् पुरुष अन्य साधन-कीर्तन एवं मननकी सिद्धि करे। क्रमशः मननपर्यन्त इस साधनकी अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदिके क्रमसे धीरे-धीरे भगवान् शिवका संयोग प्राप्त होता है। पहले सारे अङ्गोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। फिर सब प्रकारका लौकिक ध्यानन्द भी विलीन हो जाता है।

भगवान् शंकरकी पूजा, उनके नामोंके जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामोंका युक्तिपरायण चिन्तके द्वारा जौ निरन्तर परिशोधन या चिन्तन होता है, उसीको मनन कहा गया है; वह महेश्वरकी कृपादृष्टिसे उपलब्ध होता है। उसे समस्त श्रेष्ठ साधनोंमें प्रधान या प्रमुख कहा गया है।

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! इस साधनका माहात्म्य बतानेके प्रसङ्गमें मैं आपलोगोंके लिये एक प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करूँगा, उसे ध्यान देकर आप सुनें। पहलेकी बात है, परागर मुनिके पुत्र मेरे गुरु व्यासदेवजी सरस्वती भद्रीके सुन्दर तटपर तपस्या कर रहे थे। एक दिन सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए भगवान् सनत्कुमार अक्षसात् वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने मेरे गुरुको वहाँ देखा। वे ध्यानमें मग्न थे। उससे जगनेपर उन्होंने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीको अपने सामने उपस्थित देखा। देखकर वे वडे वेगसे उठे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके मुनिमें उन्हें अर्थ दिया और देवताओंके वैठने योग्य आखन भी अपित किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् सनत्कुमार विनीतभावसे वडे हुए व्यापत्तिसे गम्भीर चाणीमें बोले—



‘मुने ! तुम सत्य वस्तुका चिन्तन करो। वह सत्य पदार्थ भगवान् शिव ही हैं, जो तुम्हारे साक्षात्कारके विषय होंगे। भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन, मनन—ये तीन महत्तर साधन कहे गये हैं। ये तीनों ही वेदसम्मत हैं। पूर्वकालमें मैं दूसरे-दूसरे साधनोंके सम्बन्धमें पड़कर घूमक्ष चामत्ता मन्दराचलपर जा पहुँचा और वहाँ तपस्या करने लगा। तदनन्तर महेश्वर शिवकी आशासे भगवान् नन्दिकेश्वर वहाँ आये। उनकी मुद्दापर बड़ी दया थी। वे सबके साक्षी तथा शिवगणोंके स्वामी भगवान् नन्दिकेश्वर मुझे स्नेहार्थक मुक्तिका उत्तम साधन बताते हुए बोले—भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीन साधन वेदसम्मत हैं और मुक्तिके साक्षात् कारण हैं, वे बात स्वयं भगवान् शिवने मुद्दासे कही है। अतः ब्रह्मन् तुम श्रवणादि तीनों साधनोंका ही अनुष्ठान करो।’ व्यासजी बारंबार ऐसा कहकर अनुगमियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार परम सुन्दर ब्रह्मधामको चले गये। इस प्रकार पूर्वकालमें इस उत्तम वृत्तान्तका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है।

ऋषि बोले—सूतजी ! श्रवणादि तीन साधनोंको आप मुक्तिका उपाय बताया है। किंतु जो श्रवण आदि तीन साधनोंमें असमर्थ हो, वह मनुष्य किस उपायका अवलम्बन करके मुक्त हो सकता है ? किस साधनभूत कर्मके द्वारा व्यक्तके ही मोक्ष मिल सकता है ? ( अध्याय ३, १८८५ )

## भगवान् शिवके लिङ्ग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन

सूतजी कहते हैं—शौनक ! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनों साधनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिङ्ग एवं मूर्तिकी स्थापना करके नित्य उसकी पूजा करे तो संपार-सागरसे पार हो सकता है। वश्वना अथवा छल न करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार घनराशि ले जाय और उसे शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिकी सेवाके लिये अपित्त कर दे। साथ ही निरन्तर उस लिङ्ग एवं मूर्तिकी पूजा भी करे। उसके लिये भक्तिभावसे मण्डप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्रकी स्थापना करे तथा उत्सव रचाये। वस्त्र, गन्ध, पुण्य, धूप, दीप तथा पूआ और शाक आदि व्यज्ञनोंसे युक्त भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य अथवा नैवेद्यके रूपमें अपित्त करे। छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर तथा अन्य अङ्गोंसहित राजोपचारकी भाँति सब सामान भगवान् शिवके लिङ्ग एवं मूर्तिको चढ़ाये। प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा यथाशक्ति जप करे। आवाहनसे लेकर विसर्जनतक सारा कीर्य प्रतिदिन भक्तिभावसे सम्पन्न करे। इस प्रकार शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिमें भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाला पुरुष श्रवणादि साधनोंका अनुष्ठान न करे तो भी भगवान् शिवकी प्रणत्ततासे स्तिद्वि प्राप्त कर लेता है। पहलेके बहुतसे गणामा पुरुष लिङ्ग तथा शिवमूर्तिकी पूजा करनेमात्रसे भवनमध्यनसे मुक्त हो चुके हैं।

मृत्युंयोंने पूछा—मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है ( लिङ्गमें नहीं ), परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिङ्गमें भी क्यों की जाती है ?

सूतजीने कहा—मुनीश्वरो ! तुम्हारा यह प्रश्न तो बहु ऐसी पवित्र और अल्पन्त अद्भुत है। इस विषयमें भट्टादेवजी ही बता हो सकते हैं। दूसरा कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका प्रतिपादन नहीं कर सकता। इस प्रश्नके अमाधानके लिये भगवान् शिवने जो कुछ कहा है और उसी भें गुरुजीके मुन्दसे जित प्रकार तुना है; उसी तरह क्षमयः दर्शन करेंगा। एकमात्र भगवान् शिव ही प्रसादरूप ऐसेके दारण ‘निष्कल’ ( निराकार ) करे गये हैं। नृपवान् ऐसेके दारण उन्हें ‘व्यक्त’ नहीं कहा गया है। इसलिये वे व्यक्त हीरे निष्कल दोतों हैं। शिवके निष्कल—निराकार ऐसेके दारण ही उनकी पूजामा आपस्त्रूल लिङ्ग भी अपेक्षित ही प्रति तुला है। अपर्युक्त शिवलिङ्ग शिवके निराकार

स्वरूपका प्रतीक है। इसी तरह शिवके सकल या साकार होनेके कारण उनकी पूजाका आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिवका साकार विग्रह उनके साकार स्वरूपका प्रतीक होता है। सकल और अकल ( समस्त अङ्ग-आकार-सहित साकार और अङ्ग-आकारसे सर्वथा रहित निराकार ) रूप होनेसे ही वे ‘ब्रह्म’ शब्दसे कहे जानेवाले परमात्मा हैं। यही कारण है कि सब लोग लिङ्ग ( निराकार ) और मूर्ति ( साकार ) दोनोंमें ही सदा भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। शिवसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं। इसलिये कहाँ भी उनके लिये निराकार लिङ्ग नहीं उपलब्ध होता।

पूर्वकालमें बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने मन्दराच्छलपर नन्दिकेश्वरसे इसी प्रकारका प्रश्न किया था।

सनत्कुमार बोले—भगवन् ! शिवसे भिन्न जो देवता है, उन सबकी पूजाके लिये सर्वत्र प्रायः वेर ( मूर्ति ) मात्र ही अधिक संख्यामें देखा और सुना जाता है। केवल भगवान् शिवकी ही पूजामें लिङ्ग और वेर दोनोंका उपयोग देखनेमें आता है। अतः कल्याणमय नन्दिकेश्वर ! इस विषयमें जो तत्त्वकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझमें आ जाय।

नन्दिकेश्वरने कहा—निष्पाप ब्रह्मकुमार ! आपके इस प्रश्नका हम-जैसे लोगोंके द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिङ्ग साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है। तथापि आप शिवभक्त हैं। इसलिये इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ बताया है, उसे ही आपके समझ करता हूँ। भगवान् शिव ब्रह्मस्त्रूप और निष्कल ( निराकार ) हैं; इसलिये उन्होंकी पूजामें निष्कल लिङ्गका उपयोग होता है। समूर्ण वेदोंका वही मत है।

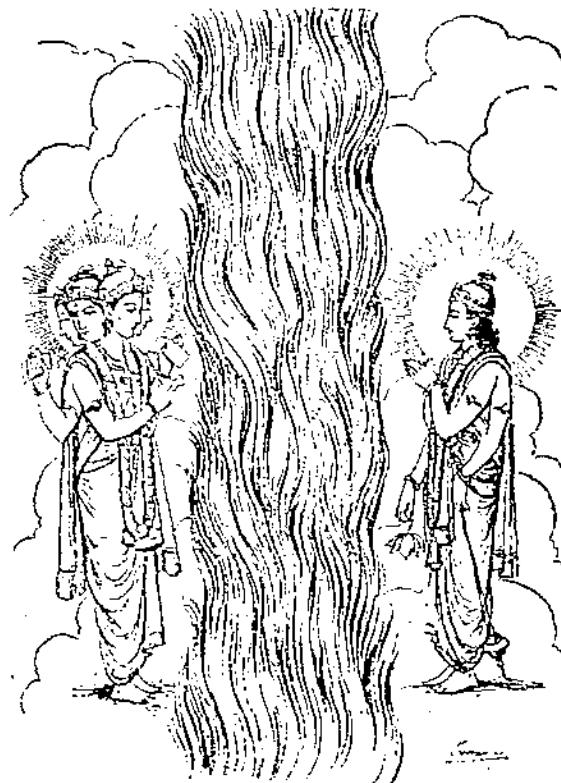
सनत्कुमार बोले—महाभाग वोगीन्द्र ! आपने भगवान् शिव तथा दूसरे देवताओंके पूजनमें लिङ्ग और वेरके प्रचारका जो रहस्य विभगायृत्वक बताया है, वह बयार्थी है। इसलिये लिङ्ग और वेरकी आदि उत्तमिक जो उत्तम इत्तम हैं; उसको नीं इस समय सुनना चाहता हूँ। लिङ्गके प्राकद्वयका रहस्य मूर्चित करनेवाला प्रतिलिङ्ग हुसे सुनाइये।

इसके उत्तरमें नन्दिकेश्वरने भगवान् महादेवके निष्कल स्वरूप लिङ्गके आविर्भावका प्रसन्न सुनाना आरम्भ किया। उन्होंने ब्रह्मा तथा विष्णुके विवाद, देवताओंकी व्याकुलता एवं चिन्ता, देवताओंका दिव्य कैलास-शिखरपर गमन, उनके द्वारा चन्द्रशेखर महादेवका स्वयम्, देवताओंसे प्रेरित हुए महादेवजीका ब्रह्मा और विष्णुके विवाद-स्थलमें आगमन

तथा दोनोंके वीचमें निष्कल आदि-अन्तरहित भीम अग्निस्तम्भके रूपमें उनका आविर्भाव आदि प्रसन्नोंकी कथा कही। तदनन्तर श्रीब्रह्मा और विष्णु दोनोंके द्वारा उन ज्योतिर्मय स्तम्भकी ऊँचाई और गहराईका थाह लेनेकी चेष्टा एवं केतकी-पुष्पके शाप-व्रदान आदिके प्रसन्न भी सुनाये। ( अथाय ५ से ८ तक )

### महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिङ्गपूजनका महत्त्व बताना

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर वे दोनों—ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शंकरको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ उनके दायें-वायें भागमें चुपचाप खड़े हो गये। फिर, उन्होंने वहाँ



साधारू प्रकट पूजनीय महादेवजीको श्रेष्ठ आसनपर स्थापित करके, पवित्र पुरुष-वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया। दीर्घकाल-तक अविकृतभावसे सुस्थिर रहनेवाली वस्तुओंको 'पुरुष वस्तु' कहते हैं और अल्पकालतक ही टिकनेवाली क्षणभङ्गर वस्तु 'प्राकृत वस्तु' कहलाती है। इस तरह वस्तुके ये दो भेद जानने चाहिये। ( किन पुरुष-वस्तुओंसे उन्होंने भगवान् शिवका पूजन किया, यह बताया जाता है—) हार, नूपुर,

केशर, किरीट, मणिमय कुण्डल, वज्रोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्पमाला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका, पुष्प, ताम्बूल, कपूर, चन्द्र एवं अगुरुका अनुलेप, धूप, दीप, श्वेतछन्द्र, व्यजन, धब्बा चॅवर तथा अन्यान्य दिव्य उपहारोंद्वारा, जिनका वैभव वार्षी और मनकी पहुँचसे परे था, जो केवल पशुपति ( परमात्मा ) के ही योग्य थे और जिन्हे पशु ( बद्र जीव ) कक्षापि नहीं पा सकते थे, उन दोनोंने अपने स्वामी महेश्वरका पूजन किया। सबसे पहले वहाँ ब्रह्मा और विष्णुने भगवान् शंकरकी पूजा की। इससे प्रसन्न हो भक्तिवर्द्धक भगवान् शिवने वहाँ नप्रभावते खड़े हुए उन दोनों देवताओंसे मुस्कराकर कहा—

महेश्वर बोले—मुत्रो ! आजका दिन एक महारूप दिन है। इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई है; इससे मैं तुमलोगोंपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसी कारण यह किंवदन्ति, परम पवित्र और महान्-से-महान् होगा। आजकी यह तिर्यक 'शिवरात्रि'के नामसे विख्यात होकर मेरे लिये परम प्रिय होगा। इसके समयमें जो मेरे लिङ्ग ( निष्कल—अङ्ग-आकृतिसे रहि निराकार स्वरूपके प्रतीक ) वेर ( सकल—साकाररूपके प्रतीक विग्रह ) की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत्की सुष्ठि और पाल आदि कार्य भी कर सकता है। जो शिवरात्रिको दिन-रात निरहुए एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी शक्तिके अनुसार निश्चलभावे मेरी यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलनेवाले फलका वर्ण सुनो। एक वर्षतक निरन्तर मेरी पूजा करनेपर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रिको मेरा पूजन करने वाले मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है। जैसे पूर्ण चन्द्रमाज्ञा समुद्रकी वृद्धिका अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि मेरे धर्मकी वृद्धिका समय है। इस तिथिमें मेरी स्थापना आदि का मङ्गलमय उत्सव होना चाहिये। पहले मैं जब

सम्भरुपसे प्रकट हुआ था, वह सभय मार्गशीर्षमासमें आद्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णमासी या प्रतिपदा है। जो पुरुष मार्गशीर्ष मासमें आद्रा नक्षत्र होनेपर पर्वतीसहित मेरा दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिङ्गकी ही झाँकी करता है, वह मेरे लिये कर्तिकमेसे भी अधिक प्रिय है। उस द्युम दिनको मेरे दर्शन-मात्रमें पूरा फल प्राप्त होता है। यदि दर्शनके साथ-साथ मेरा पूजन भी किया जाव तो इतना अधिक फल प्राप्त होता है कि उसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

वहाँपर मैं लिङ्गरूपसे प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः उस लिङ्गके कारण यह भूतल 'लिङ्गस्थान' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जगत्‌के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिये यह अनादि और अनन्त स्वोतिःसम्बन्ध अथवा ऊतिर्भव लिङ्ग अत्यन्त छोटा हो जायगा। यह लिङ्ग सब प्रकारके भोग मुलभ करनेवाला तथा भोग और मोक्षका एकमात्र साधन है। इसका दर्शन, स्पर्श और ध्यान किया जाय तो यह प्राणियोंको जन्म और मृत्युके कष्टसे छुड़ानेवाला है। अग्रिके पहाड़-जैला जो यह शिवलिङ्ग यहाँ प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान 'अरुणाचल' नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ अनेक प्रकारके चड़े-चढ़े तीर्थ प्रकट होंगे। इस स्थानमें निवास करने या मरने-में जीवोंका मोक्षतक हो जायगा।

मेरे दो रूप हैं—‘सकल’ और ‘निष्कल’। दूसरे किसीके ऐसे रूप नहीं हैं। पहले मैं सम्भरुपसे प्रकट हुआ; फिर अपने साक्षात्सूपसे। ‘ब्रह्मभाव’ मेरा ‘निष्कल’ रूप है और ‘गणेशरभाव’ ‘सकल’ रूप। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं। मैं भी पर्याप्त परमात्मा हूँ। कलायुक्त और अकल मेरे ही स्वरूप

हैं। ब्रह्मरूप होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवोंपर अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। ब्रह्मा और केशव ! मैं सबसे बहुत और जगत्‌की बृद्धि करनेवाला होनेके कारण ‘ब्रह्म’ कहलाता हूँ। सर्वत्र समरूपसे स्थित और व्यापक होनेसे मैं ही सबका आत्मा हूँ। सर्वसे लेकर अनुग्रहतक ( आत्मा या ईश्वरसे भिन्न ) जो जगत्-सम्बन्धी पाँच कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीके नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपताका दोष करानेके लिये ‘निष्कल’ लिङ्ग प्रकट हुआ था। किर अज्ञात ईश्वरत्वका साक्षात्कार करानेके निमित्त मैं साक्षात् जगदीश्वर ही ‘सकल’ रूपमें तत्काल प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईश्वर है, उसे ही मेरा सकलरूप जानना चाहिये तथा जो यह मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्मरूपका दोष करानेवाला है। यह मेरा ही लिङ्ग ( चिह्न ) है। तुम दोनों प्रतिदिन यहाँ रहकर इसका पूजन करो। यह मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। लिङ्ग और लिङ्गीमें नित्य अमेद होनेके कारण मेरे इस लिङ्गका महाद्-पुरुषोंको भी पूजन करना चाहिये। मेरे एक लिङ्गकी स्थापना करनेका यह फल बताया गया है कि उपासकको मेरी समानताकी प्राप्ति हो जाती है। यदि एकके बाद दूसरे शिवलिङ्गकी भी स्थापना कर दी गयी, तब तो उपासकको फलरूपसे मेरे साथ एकत्र ( सायुज्य मोक्ष ) रूप फल प्राप्त होता है। प्रधानतया शिवलिङ्गकी ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्तिकी स्थापना उक्तमें अपेक्षा गौण कर्म है। शिवलिङ्गके अभावमें सब ओरें स्वेच्छ ( मूर्तियुक्त ) होनेपर भी यह स्थान क्षेत्र नहीं कहलाता।

( अध्याय ९ )

### पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पञ्चाक्षर मन्त्रकी महत्ता, ब्रह्म-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान

गहा और विष्णुने पूछा—प्रभो ! सृष्टि आदि पाँच कृत्योंके लक्षण क्या हैं, वह दोनोंको बताइये ।

भगवान् शिव चोले—मेरे दर्जवांशोंसे समझना अत्यन्त शक्त है, तथा प्रिय मैं शूष्याद्युक्त हुए हैं तबके दिनमें दत्त रहा है। जला और अच्छा ! सृष्टि, ‘पात्र’; ‘महार’, द्विरिपात्र और ‘अनुग्रह’—ये शीज ही मेरे जगत्-सम्बन्धी शक्त हैं जो मिथ्यानियत हैं। संक्षरकी रचनाका जो आख्य है, उसकी भर्ता या ‘द्वारा’ बहने हैं। मुख्यमें शक्तिरूप होकर

सृष्टिया मुस्थिररूपसे रहना ही उक्तकी ‘वित्ति’ है। उक्तका दिनाया ही ‘मंदार’ है। प्राणोंके उक्तमण्डों ‘निरोपाव’ करद्दे हैं। इन नवमें द्युइन्द्रियोंमें जाना ही नेता ‘अनुग्रह’ है। इस प्रदान नेरे धैर्य कृत्य है। द्युषि आदि जो नार कृत्य है, वे संकारका विलाप करनेवाले हैं। पाँचवाँ दृत्य अनुग्रह मीठका हेतु है। यह सदा नृसमें ही अनुग्रह भवने मिल रहता है। नेरे भक्तवत्त इन धैर्यों कृत्योंके पांच भूतेमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति उट्टमें, नंदार अग्रिमें,

तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है। जलसे सबकी वृद्धि एवं जीवन-रक्षा होती है। आग सबको जला देती है। वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है। विद्वान् पुरुषोंको यह विषय इसी रूपमें जानना चाहिये। इन पाँच कृत्योंका भार वहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख हैं और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। पुत्रो! तुम दोनोंने तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वरसे सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य ग्रास किये हैं। वे दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरी विश्वातिस्वरूप 'रुद्र' और 'महेश्वर'ने दो अन्य उत्तम कृत्य— संहार और तिरोभाव मुक्षसे ग्रास किये हैं। परंतु अनुग्रह नामक कृत्य दूसरा कोई नहीं पा सकता। रुद्र और महेश्वर अपने कर्मको भूले नहीं हैं। इसलिये मैंने उनके लिये अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदिमें मेरे समान ही हैं। मैंने पूर्वकालमें अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया है, जो ओंकारके रूपमें प्रसिद्ध है। वह महामङ्गलकारी मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका वोध करनेवाले हैं। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका निरन्तर सरण करनेसे मेरा ही सदा स्मरण होता है।

मेरे उत्तरवर्ती मुखसे अकारका, पश्चिम मुखसे उकारका, दक्षिण मुखसे मकारका, पूर्ववर्ती मुखसे विन्दुका तथा मध्यवर्ती मुखसे नादका प्राकृत्य हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त ओंकारका विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवोंसे एकीभूत होकर वह प्रणव (ॐ) नामक एक अंधर हो गया। यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् तथा वेद उत्पन्न स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणवमन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका वोधक है। इसीसे पञ्चाक्षर मन्त्रकी उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूपका वोधक है। वह अकारादि क्रमसे और मकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया है (५ ॐ) नमः शिवाय यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। इस पञ्चाक्षर मन्त्रसे मातृका वर्ण प्रकट हुए हैं, जो पाँच भेदवाले हैं॥ उसीसे शिरोमन्त्रसहित त्रिपदा गायत्रीका प्राकृत्य हुआ

\* बृह च ऋ ल—ये पाँच मूलभूत स्वर हीं तथा व्यञ्जन भी पाँच-पाँच वर्णोंसे युक्त पाँच वर्गवाले हैं।

है। उन गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदों करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन-उन मन्त्रोंसे भिन्न-भिन्न कार्योंका सिद्धि होती है; परंतु इस प्रणव एवं पञ्चाक्षरसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मन्त्रसमुदायसे भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। मेरे सकल स्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाले सभी मन्त्रराज नाश्तात् भोग प्रदान करनेवाले और शुभकारक (मोक्षप्रद) हैं।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर जगद्भ्या पार्वतीं साथ वैठे हुए गुरुवर महादेवजीने उत्तराभिमुख वैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुको पर्दा करनेवाले वक्षसे आच्छादित करें उनके मस्तकपर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चार करके उन्हें उत्तम मन्त्रका उपदेश किया। मन्त्र-तन्त्रमें वरां हुई विधिके पालनरूपक तीन बार मन्त्रका उच्चारण करें भगवान् शिवने उन दोनों शिष्योंको मन्त्रकी दीक्षा दी। फिर उन शिष्योंने गुरुदक्षिणाके रूपमें अपने-आपको ही समर्पित कर दिया और दोनोंने हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े। उन देवेश्वर जगद्गुरुका स्वावन किया।

ब्रह्मा और विष्णु वोले—प्रभो! आप निष्कलरूप हैं आपको नमस्कार है। आप निष्कल तेजसे प्रकाशित होते हैं आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं। आप नमस्कार है। आप सर्वात्माको नमस्कार है अथवा सकलकल आप महेश्वरको नमस्कार है। आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं आपको नमस्कार है। आप प्रणवलिङ्गवाले हैं। आप नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके पाँच मुख हैं। आप परमेश्वरको नमस्कार है। पञ्चवक्षरस्वरूप पाँच कृत्य आपको नमस्कार है। आप सबके अत्मा हैं, ब्रह्म। आपके गुण और शक्तियाँ अनन्त हैं, आपको नमस्कार है। आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्गुरु शम्भु हैं, आपको नमस्कार है।॥

\* नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे।

नमः सकलनाथाय नमरते सकलात्मने॥

नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गाने।

नमः सृष्टचादिकौं च नमः पञ्चमुखाय ते॥

पञ्चवक्षरस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः।

आत्मने ब्रह्मणे तुम्ह्यमनन्तगुणशक्तये॥

सकलकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः।

( शिं० पु० विं० सं० १० । २८—३ )

इन पद्मोद्घारा अपने गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

**महेश्वर वोले—**‘आद्रा’ नक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रथमवार जप किया जाय तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। सूर्यकी संकान्तिसे युक्त महाआद्रा-नक्षत्रमें एक बार किया हुआ प्रणव-जप कोटिगुने जपका फल देता है। ‘मृगशिरा’ नक्षत्रका अन्तिम भाग तथा ‘पुनर्वसु’का आदिम भाग पूजा, होम और तर्पण आदिके लिये सदा आद्राके समान ही होता है—यह जनना चाहिये। मेरा या मेरे लिङ्गका दर्शन प्रभातकालमें ही—प्रातः और संग्रह (मथाहके पूर्व) कालमें करना चाहिये। मेरे दर्शन-पूजनके लिये चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी अथवा

प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; क्योंकि परवर्तिनी तिथिसे संयुक्त चतुर्दशीकी ही प्रशंसा की जाती है। पूजा करनेवालोंके लिये मेरी मूर्ति तथा लिङ्ग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्तिकी अपेक्षा लिङ्गका स्थान जँचा है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे वेर(मूर्ति)से भी श्रेष्ठ समझकर लिङ्गका ही पूजन करें। लिङ्गका ऊँकार मन्त्रसे और वेरका पञ्चाक्षरमन्त्रसे पूजन करना चाहिये। शिवलिङ्गकी स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरोंसे भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है।

इस प्रकार उन दोनों शिष्योंको उपदेश देकर भगवान् शिव वहाँ अन्तर्धान हो गये। (अस्याय १०)

## शिवलिङ्गकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा शिवपदको प्राप्ति करनेवाले सत्कर्मोंका विवेचन

**शूष्मियोंने पूजा—**सूतजी ! शिवलिङ्गकी स्थापना कैसे करनी चाहिये ? उसका लक्षण क्या है ? तथा उसकी पूजा कैसे करनी चाहिये, किस देश-कालमें करनी चाहिये और किस द्रव्यके हारा उसका निर्माण होना चाहिये ?

**सूतजीने कहा—**महर्षियो ! मैं तुमलोगोंके लिये इस विषयक वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो और समझो। अगुरुल एवं शुभ समयमें किसी पवित्र तीर्थमें नदी आदिके सटपर अपनी रुचिके अनुसार ऐसी जगह शिवलिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्श्व द्रव्यसे, जलमय द्रव्यसे अथवा तैजस पदार्थसे अपनी रुचिके अनुसार पार्श्वोत्तर लक्षणसे युक्त शिवलिङ्गका निर्माण करके उसकी पूजा परन्तु उपासको उस पूजनका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। परंपरा शुभ लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गकी यदि पूजा की जाय तो वह सत्ताग्रह पूजाका फल देनेवाला होता है। यदि चलप्रतिष्ठा गरमी हो तो इसके लिये ठोटाना शिवलिङ्ग अथवा विश्रह श्रेष्ठ भजा जाता है और यदि अचलप्रतिष्ठा करनी हो तो त्वयूल शिवलिङ्ग अथवा विश्रह अन्डा माना गया है। उत्तम लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गकी पीठमहित स्थापना करनी चाहिये। शिवलिङ्गय पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिशोण अथवा लालूके पायेशी भौति ऊपरनीचे मोटा और दीन्हने से खड़ा होना चाहिये। ऐसा लिङ्ग-पीठ महान् फल देनेवाला होता है। पहले मिट्टीसे, प्रसार आदिसे अथवा लौहे आदिने शिवलिङ्ग निर्माण परन्तु चाहिये। जिस द्रव्यमें शिवलिङ्गका

निर्माण हो, उससे उसका पीठ भी बनाना चाहिये। यही स्थावर (अचलप्रतिष्ठावाले) शिवलिङ्गकी विशेष वात है। चर (चलप्रतिष्ठावाले) शिवलिङ्गमें भी लिङ्ग और पीठका एक ही उपादान होना चाहिये। किंतु वाणलिङ्गके लिये यह नियम नहीं है। लिङ्गकी लंबाई निर्माणकर्ता या स्थापना करनेवाले यजमानके बारह अंगुलके बराबर होनी चाहिये। ऐसे ही शिवलिङ्गको उत्तम कहा गया है। इससे कम लंबाई हो तो फलमें कमी आ जाती है, अधिक हो तो कोई दोषकी वात नहीं है। चर लिङ्गमें भी वैसा ही नियम है। उसकी लंबाई कम-से-कम कर्ताके एक अंगुलके बराबर होनी चाहिये। उससे छोटा होनेपर अस्त्र फल मिलता है। किंतु उससे अधिक होना दोषकी वात नहीं है। यजमानको चाहिये कि वह पहले शिल्प-शास्त्रके अनुसार एक विमान या देवाल्य यनवाये, जो देवगणोंकी मूर्तियोंसे अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पणके समान स्वच्छ हो। उसे नी प्रकारके रत्नोंसे चिनूरित किया गया हो। उसमें पूर्व व्यौर पश्चिम दिशामें दो सुन्दर द्वार हों। जहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना करनी हो, उस स्थानके गतिमें नीलम, लाल, बैदूर्य, इशाम, मरकत, मोती, मैरांग, चोमेद और हीरा—इन नींदोंको नथा अन्य महत्वपूर्ण द्रव्योंसे वैटिक मन्त्रोंके साथ छोड़े। मरोदात आदि मौत्र वैटिक मन्त्रों ० हात शिवलिङ्गका पौन्त रखनेमें क्रमान्वय पूजन

\* अंगुलान्तं प्रस्तानि सर्वं जगत् द्यु दत्ते नमः ।

द्यु भौमाभिष्वे भवत्य द्यु वैतुदात नमः ॥

करके अभिमें हविध्यकी अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्यको धनसे तथा भाई-बन्धुओंको मनचाही वस्तुओंसे संतुष्ट करे। याचकोंको जड़ ( सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति ) तथा चेतन ( गौ आदि ) वैभव प्रदान करे।

स्थावर-जंगम सभी जीवोंको यज्ञपूर्वक संतुष्ट करके एक गड्ढमें सुवर्ण तथा नौ प्रकारके रक्त भरकर सद्योजातादि वैदिक मन्त्रोंको उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजीका ध्यान करे। तत्पश्चात् नादघोषसे युक्त महामन्त्र ओंकार ( ॐ ) का उच्चारण करके उक्त गड्ढमें शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसे पीठसे संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिङ्गकी स्थापना करके उसे निल्य-लेप ( दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले ) से जोड़कर स्थिर करे। इसी प्रकार वहाँ परम सुन्दर वेर ( मूर्ति ) की भी स्थापना करनी चाहिये। सारांश यह कि भूमि-संस्कार आदिकी सारी विधि जैसी लिङ्ग-प्रतिष्ठाके लिये कही गयी है, वैसी ही वेर ( मूर्ति )-प्रतिष्ठाके लिये भी समझनी चाहिये। अन्तर इतना ही है कि लिङ्गप्रतिष्ठाके लिये प्रणवमन्त्रके उच्चारणका विधान है, परंतु वेरकी प्रतिष्ठा पञ्चाक्षर मन्त्रसे करनी चाहिये। जहाँ लिङ्गकी प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सवके लिये बाहर सवारी निकालने आदिके नियमित वेर ( मूर्ति ) को रखना आवश्यक है। वेरको बाहरसे भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनसे ग्रहण करे। बाह्य वेर वही लेने योग्य है, जो साधु पुरुषोंद्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिङ्गमें और वेरमें भी की हुई महादेवजीकी पूजा शिवपद प्रदान करनेवाली होती है। स्थावर और जंगमके भेदसे लिङ्ग भी दो प्रकारका कहा गया है। ब्रह्म, लता आदिको स्थावर लिङ्ग कहते हैं और कृष्ण-कीट आदिको जंगम लिङ्ग। स्थावर लिङ्गकी सीचने आदिके द्वारा सेवा करनी चाहिये और जंगमलिङ्गको बाहर एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवोंको सुख

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः  
कालाय नमः कलविकरणाय नमो वलविकरणाय नमो वलाय नमो  
बलप्रभयनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः।

ॐ अधोरेभ्योऽथ धोरेभ्यो धोरधोरतेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो  
नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्धहे महादेवाय धीमहि तत्त्वे रुद्रः प्रचोदयात् ।  
ॐ ईशानः सर्वविधानां ईश्वरः सर्वभूतानां भ्रातिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति  
र्भ्रमा शिवो मेऽन्तु सदाशिवोम् ॥

पहुँचानेमें अनुरक्त होना भगवान् शिवदा पूजन है, ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। ( यां चराचर जीवोंको ही भगवान् दृश्यकरके प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिये । )

इस तरह महालिङ्गकी स्थापना करके विविध उपचारोंद्वारा उसका पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिये तथा देवालयके पास ध्यारोपण आदि करना चाहिये। शिवलिङ्ग साक्षात् शिवका पद प्रदान करनेवाला है। अथवा चालिङ्गमें पोडशोपन्नारोद्वारा यथोचित रीतिसे क्रमशः पूजन करे। यह पूजन भी शिवपद प्रदान करनेवाला है। आवाहन, आलंकृत अर्ध, पाद्य, पाद्याङ्ग आच्मन, अम्बज्ञपूर्वक स्नान, वन्ध एवं यज्ञोपवीत, गन्ध, पुप्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं। अथवा अर्धसे लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिष्रेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य करे। इस तरह किया हुआ शिवका पूजन शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है। अथवा किसी मनुष्यके द्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, अपने-आप प्रकट हुए स्वयम्भूलिङ्गमें तथा अपनेद्वारा नूतन स्थापित हुए शिवलिङ्गमें भी उपचार-समर्पण-पूर्वक जैसे-तैसे पूजन करनेसे या पूजनकी सामग्री देनेसे भी मनुष्य ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सारा फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवलिङ्ग शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिङ्गका दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गायके गोवर, फूल, कनेर-पुष्प, फल गुड़, मक्कलन, भस्म अथवा अन्तर्से भी अपनी सूचिके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करे अथवा प्रतिविद्या दस हजार प्रणवमन्त्रका जप करे अथवा दोनों संघार्थोंमें समय एक-एक सहस्र प्रणवका जप किया करे। यह क्रम में शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला है, ऐसा जानना चाहिये।

जपकालमें मकारान्त प्रणवका उच्चारण मनकी शुद्धि करनेवाला होता है। समाधिमें मानसिक जपका विशेष है। तथा अन्य सब समय भी उपांशु जप ही करना चाहिये। नाद और विन्दुसे युक्त ओंकारके उच्चारणके विद्वान् पुरुष ‘समानप्रणव’ कहते हैं। यदि प्रतिविद्या

१. मन्त्राक्षरोंका इतने धीमे स्वरमें उच्चारण करे कि उसे दूसरे कोई सुन न सके। ऐसे जपको उपांशु कहते हैं।

आदरपूर्वक दस हजार पञ्चाश अवधि का जर किया जाय अथवा दोनों संधार्योंके समय एक-एक सहस्रका ही जर किया जाय तो उसे शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला समझना चाहिये। ब्राह्मणोंके लिये आदिमें प्रणवसे युक्त पञ्चाश अवधि अच्छा बताया गया है। कलशसे किया हुआ स्तुति, मन्त्रकी दीक्षा, मानुकाओंका न्यास, सत्यसे पवित्र अन्तःकरणवाल्य व्रताग्नि तथा इनी गुरु—इन सबको उत्तम समान गया है। द्वितीयोंके लिये 'नमः शिवाय' के उच्चारणका विधान है। द्वितीयोंके लिये अन्तमें नमःपदके प्रयोगकी विधि है अर्थात् वे 'शिवाय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करें। स्त्रियोंके लिये भी कहें-कहों विधिपूर्वक नमोऽन्त उच्चारणका ही विधान है अर्थात् वे भी 'शिवाय नमः' का ही जप करें। कोई-कोई पृथ्वी व्राह्मणकी स्त्रियोंके लिये नमःपूर्वक शिवायके जपकी अनुमति देते हैं अर्थात् वे 'नमः शिवाय' का जप करें। पञ्चाश अवधि व्राह्मणकी पाँच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिवके समान हो जाता है। एक, दो, तीन अथवा चार करोड़ा जप करनेसे क्रमशः व्रता, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वरका पद प्राप्त होता है। अथवा मन्त्रमें जितने अक्षर हैं, उनका पृथक्-पृथक् एक-एक लाख जप करे अथवा समस्त अक्षरोंका एक गाथ ही जितने अक्षर हैं, उतने लाख जप करे। इस तरहके जपों शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला समझना चाहिये। यदि एक हजार दिनोंमें प्रतिदिन एक सहस्र जपके क्रमसे पञ्चाश अवधि दस लाख जप पूरा कर लिया जाय और प्रतिदिन व्राह्मण-भोजन कराया जाय तो उस मन्त्रसे अर्थात् पार्श्वी मिलि होने लगती है।

प्राप्तिको ज्ञाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ घण्टा गायत्रीजा जप करे। ऐसा होनेपर गायत्री समयः शिवा एवं प्रदान करनेवाली होती है। वेदमन्त्रों और देवियों वृत्तियोंमें भी नियमपूर्वक जप करना चाहिये। वैदिक वृत्तियोंमें भी शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला है, ऐसा जानना चाहिये। अन्यान्य जो बहुतसे मन्त्र हैं, उनका भी जितने अक्षर हैं, उनके लाख जप करे। इन प्रकार जो वधाशक्ति जप परता है, वह प्रत्ययः शिवरद (मोक्ष) प्राप्त कर देता है। अमृती रचिये अनुशार किन्तु एक मन्त्रको। अन्याशर शूलपूर्वक प्रतिदिन उत्तरा जप यत्ना चाहिये। अप्यत वैदिक (अै) इन सम्बन्ध स्पतिदिन एक महात्म एवं एक व्रता चाहिये। ऐसा दसेवर भगवान् शिवर्ती अस्त्रे अप्यत भवेत्तरंसे मिलि होती है।

जो मनुष्य भगवान् शिवके लिये फुलचाड़ी या वरीचे आदि ल्याता है तथा शिवके सेवाकार्यके लिये मन्दिरमें ज्ञाहिने-बुहारने आदिकी व्यवस्था करता है, वह इस पुण्य-कर्मको करके शिवपद प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके जो काशा आदि क्षेत्र हैं, उनमें भक्तिपूर्वक नित्य निवास करे। वह जड़, चेतन सभोंको भोग और मोक्ष देनेवाला होता है। अतः विद्वान् पुरुषको भगवान् शिवके क्षेत्रमें आमरण निवास करना चाहिये। पुण्यस्त्रेवमें स्थित वावड़ी, कुआँ और पोखरे आदिको शिवपद समझना चाहिये। भगवान् शिवका ऐसा ही वचन है। वहाँ स्तुति, दान और जर करके मनुष्य भगवान् शिवको प्राप्त कर लेता है। अतः मृत्युर्धन्त शिवके क्षेत्रका आश्रय लेकर रहना चाहिये। जो शिवके क्षेत्रमें अपने किसी मृत्ति सम्बन्धीका दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सप्तिष्ठीकरण अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिवके क्षेत्रमें अपने पितरोंको मिष्ठ देता है, वह तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता और अन्तमें शिवपद पाता है। अथवा शिवके क्षेत्रमें रात, पाँच, तीन वा एक ही रात निवास कर ले। ऐसा करनेसे भी क्रमशः शिवपदकी प्राप्ति होती है।

लोकमें अपने-अपने वर्णके अनुरूप सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदको प्राप्त कर लेता है। वर्णनु-कूल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने सत्कर्मका अतिशय फल पाता है, कामनापूर्वक किये हुए अपने कर्मके अपेक्षित फलको दीप्र ही पा लेता है। निकामवाप्तसे किया हुआ सार कर्म साक्षात् शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है।

दिनके तीन विभाग होते हैं—प्रातःः मध्याह्न और सायाह्न। इन तीनोंमें क्रमशः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है। प्रातःकालको आत्मविहित नित्यरूपके अनुशासन समय जानना चाहिये। मध्याह्नकाल सकाम कर्मके लिये उपवेशी है तथा सार्वकाल शान्तिकर्मके उपयुक्त है, ऐसा जानना चाहिये। इनी प्रकार रात्रिमें भी समवाय विभाजन किया जाय है। रात्रें चार प्रदर्शनिंदे को वैश्वके दो प्रदर्शनि, उन्हें निर्वायकाल कहा जाता है। विशेषतः उसी कालमें जो हुई भगवान् शिवत्री पूजा अमृत दृश्य ददेयाली होती है—ऐसा ज्ञातक दृश्य करनेवाला मनुष्य नभोक्त रहता है भगवी होता है। विशेषतः विश्वामित्र कर्मके सी पूजकी मिलि होती है। अपने अपने अप्यित्यरूपे अनुशार कर दें यद्य दिन की वर्ष व्याप्ति

ही युक्त होनेपर उसे 'द्विज' कहते हैं। जिसमें स्वत्पमात्रामें ही आचारका पालन देखा जाता है, जिसने वेदाध्ययन भी बहुत कम किया है तथा जो राजाका सेवक ( पुरोहित, मन्त्री आदि ) है, उसे 'क्षत्रिय-ब्राह्मण' कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि तथा वाणिज्य कर्म करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणेचित आचारका भी पालन करता है, वह 'वैश्य-ब्राह्मण' है तथा जो स्वयं ही खेत जोतता ( हल चलाता ) है, उसे 'शूद्र-ब्राह्मण' कहा गया है। जो दूसरोंके दोष देखनेवाला और परदोही है, उसे 'चाण्डाल-द्विज' कहते हैं। इसी तरह क्षत्रियोंमें भी जो पृथ्वीका पालन करता है, वह 'राजा' है। दूसरे लोग राजत्वहीन क्षत्रिय माने गये हैं। वैश्योंमें भी जो धान्य आदि वस्तुओंका क्रय-विक्रय करता है, वह 'वैश्य' कहलाता है। दूसरोंको 'वणिक' कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी सेवामें लगा रहता है, वही वास्तवमें 'शूद्र' कहलाता है। जो शूद्र हल जोतनेका काम करता है, उसे 'घृष्णल' समझना चाहिये। सेवा, शिल्प और कर्षणसे भिन्न वृत्तिका आश्रय लेनेवाले शूद्र 'दस्यु' कहलाते हैं। इन सभी वर्णोंके मनुष्योंको चाहिये कि वे ब्राह्मणमें मुहूर्तमें उठकर पूर्वाभिमुख हो सक्से पहले देवताओंका, फिर घरमें, अर्थका, उसकी प्राप्तिके लिये उठाये जानेवाले क्लेशोंका तथा आय और व्यक्ति भी चिन्तन करें।

रातके पिछले पहरको उषःकाल जानना चाहिये। उस अन्तिम प्रहरका जो आधा या मध्यभाग है, उसे संधि कहते हैं। उस संधिकालमें उठकर द्विजको मलभूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। घरसे दूर जाकर बाहरसे अपने शरीरको ढके रखकर दिनमें उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठनेमें कोई रुकावट हो तो दूसरी दिशाकी ओर मुख करके बैठे। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओंका सामना बचाकर बैठे। मल त्याग करके उठनेपर फिर उस मलको न देखे। तदनन्तर जलाशयसे बाहर निकाले हुए जलसे ही गुदाकी शुद्धि करे अथवा देवताओं, पितरों तथा कृष्णियोंके तीर्थोंमें उतरे चिना ही प्रात हुए जलसे शुद्धि करनी चाहिये। गुदामें सात, पाँच या तीन बार मिट्ठी लगाकर उसे घोकर शुद्ध करे। लिङ्गमें ककोड़ीके फलके बराबर मिट्ठी लेकर लगाये और उसे घोदे। परंतु गुदामें लगानेके लिये एक पसर मिट्ठीकी आवश्यकता होती है। लिङ्ग और गुदाकी शुद्धिके प्रभात उठकर अन्यत्र जाय और हाथ-पैरोंकी शुद्धि करके आठ बार कुल्दा करे। जिस किसी वृक्षके पत्तेसे अथवा उसके

पतले काष्ठसे जलके बाहर द्रुअन करना चाहिये। उस समय तर्जनी अंगुलिका उपयोग न करे। यह दन्त-शुद्धिया विधान बताया गया है। तदनन्तर जल-सम्बन्धी देवताओंको नमस्कार करके मन्त्रगाठ करते हुए जलाशयमें स्नान करे। यदि काठतक या कमरतक पानीमें खड़े होनेकी शक्ति न हो तो बुटनेतक जलमें खड़ा हो अग्ने ऊर वल छिड़कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान-कार्य सम्पन्न करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वहाँ तीर्थजलसे देवता आदिका स्नानाङ्ग-तर्पण भी करे।

इसके बाद धौतवस्त्र लेकर पाँच कम्ल करके उसे धारण करे। साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर ले; क्योंकि संध्या-वन्दन आदि सभी कर्मोंमें उसकी आवश्यकता होती है। नदी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेपर स्नान-सम्बन्धी उतार हुए बस्त्रको वहाँ न धोये। स्नानके पश्चात् विद्वान् पुरुष भी गे हुए उस बस्त्रको बावड़ीमें, कुएँके पास अथवा भर आदिमें ले जाय और वहाँ पत्थरपर, लकड़ी आदिपर, जलमें या स्तलमें अच्छी तरह धोकर उस बस्त्रको निचोड़े। द्विजो ! बस्त्रको निचोड़नेसे जो जल गिरता है, वह एक श्रेणीके पितरोंकी तृतिके लिये होता है। इसके बाद जावालि-उपनिषद्में बताये गये 'अग्निरिति' मन्त्रसे भस्म लेकर उसके द्वारा त्रिपुण्ड्र लगायेश्व॥

\* जावालि-उपनिषद्में भस्म-आणकी विधि इस प्रकार कही गयी है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म स्तलमिति भस्म' इस मन्त्रसे भस्मको अभिवन्नित करे।

'मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोयु भाने अद्वेषु रीरिषः। मा नो वीरानुद भामिनो वधीर्विभक्तः सदमित्त्वा हवामहे'॥

इस मन्त्रसे उठाकर जलसे मछे, तत्पश्चात्

'त्र्यायुपं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।'

वदेवेषु त्र्यायुपं तत्रोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

इत्यादि मन्त्रोत्तरे मस्तक, ललाट, वक्षःस्तल और कंचोंग त्रिपुण्ड्र करे।

'त्र्यायुपं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।'

वदेवेषु त्र्यायुपं तत्रोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

तथा—

'व्यन्तकं चजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।'

उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मासृताव्॥'

— इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखाएँ खीचे।

इस विधिका पालन न किया जाय, इसके पूर्व ही यदि जलमें भस्म गिर जाय तो गिरनेवाला नरकमें जाता है। 'आपो हि प्रा' इत्यादि मन्त्रसे पाच-शान्तिके लिये सिरपर जल छिड़के तथा 'पस्य क्षयाय' इस मन्त्रको पढ़कर पैरपर जल छिड़के। इसे संधिग्रोवण कहते हैं। 'आपो हि प्रा' इत्यादि मन्त्रमें तीन शृङ्खाणे हैं और प्रत्येक शृङ्खामें गायत्री छन्दके तीन-तीन चरण हैं। इनमेंसे प्रथम शृङ्खाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदयमें जल छिड़के। डूसरी शृङ्खाके तीन चरणोंको पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैरमें जल छिड़के तथा तीसरी शृङ्खाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तकका जलसे प्रोक्षण करे। ऐसे विद्वान् पुनः 'मन्त्रस्नान' मानते हैं। किसी अपवित्र स्तुते किंचित् स्वर्ण हो जानेपर, अपना स्वास्थ्य टीक न होनेपर, राजा और राष्ट्रपर भय उपस्थित होनेपर तथा ॥त्राकालमें जलकी उपलव्धि न होनेकी विवशता आ जानेपर मन्त्रस्नान' करना चाहिये। प्रातःकाल 'सूर्यश्च मा मन्युश्च' इत्यादि सूर्यनुवाकसे तथा सायंकाल 'अग्निश्च मा मन्युश्च' इत्यादि अग्नि-सम्बन्धी अनुवाकसे जलका आन्तमन करके तुमः जलसे अपने अङ्गोंका प्रोक्षण करे। मध्याह्नकालमें भी 'आपः पुनन्तु' इस मन्त्रसे आन्तमन करके पूर्ववत् प्रोक्षण गा मार्जन करना चाहिये।

प्रातःकालकी संध्योपासनामें गायत्री मन्त्रका जप करके तीन घर ऊपरकी ओर सूर्यदेवको अर्प्य देने चाहिये। ग्रामगो ! मध्याह्नकालमें गायत्री मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सूर्यको एक ही अर्प्य देना चाहिये। किंतु सायंकाल आनेपर पश्चिमकी ओर सुख नहीं के देट जाव और पृथ्वीपर ही सूर्यके लिये अर्प्य दे ( उग्रस्त्री और नहीं )। प्रातःकाल और मध्याह्नके समय अड्डाशिमें अर्प्यजल लेकर अंगुलियोंकी ओरसे गूदियोंके लिये अर्प्य दे। किंतु अंगुलियोंके छिद्रसे दूलते हुए सूर्यको देखे। तथा उनके लिये स्वाः प्रदक्षिणा दरके त्रिवर्त सामग्रन दरे। सायंकालमें नूरांलसे दो पड़ी पहुँचे ही हुई संपर्क निपत्त होती है; क्योंकि वह सायं कल्पका ज्याय नहीं है। टीक समझर संध्या करनी चाहिये, ऐसी गायत्री ज्याय है। यहि मंजोतामाला लिये दिन दिन चीत रात तो प्रत्येक अपारदे लिये अनन्तः प्राप्तिक्षय करना चाहिये। यहि एतद्विन दीते तो प्रत्येक दीते हुए मध्याह्नकालके और निति लियार्दे अर्तिरित नै तासकी मन्त्रका अधिक दरे। यहि लियार्दे उन हुए एउ दिनके अधिक

बीत जाय तो उत्के प्रायश्चित्तरूपमें एक लाख...मावनीका जप करना चाहिये। यदि एक मासतंक नित्यकर्म-कृट जाय तो पुनः अपना उपनयन-संस्कार कराये।

अर्थसिद्धिके लिये ईदा, गौरी, कर्तिकेय, विष्णु; ब्रह्मा, चन्द्रमा और यमका तथा ऐसे ही अन्य देवताओंका भी शुद्ध जलसे तर्पण करे। किंतु तर्पण क्रमको वहार्पण करके शुद्ध आन्तमन करे। तीर्थके दक्षिण प्रशस्त मठमें, मन्त्रालयमें, देवालयमें, धरमें अथवा अन्य किसी नियत स्थानमें आसनपर स्थिरतापूर्वक वैटकर विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिको द्विर करे और समर्पण देवताओंको नमस्कार करके वहले प्रणवका जप करनेके पश्चात् गायत्री मन्त्रकी आवृत्ति करे। प्रणवके 'अ', 'उ' और 'भ' इन तीनों अक्षरोंसे जीव और ब्रह्मकी एकत्राका प्रतिजादन होता है—इस बातको जानकर प्रणव ( ॐ ) का जप करना चाहिये। जपकालमें वह भावना करनी चाहिये कि 'हम तीनों लोकोंकी सुष्ठु उपनेवाले ब्रह्म, पालन करनेवाले विष्णु तथा संहार करनेवाले सूर्यकी—जो स्वयं-प्रकाश चिन्मय हैं—उपासना करते हैं। वह ब्रह्मखलूप औकार हमारी कर्मन्दियों और ज्ञानन्दियोंकी दृतियोंको, मनकी दृतियोंको तथा बुद्धि-दृतियोंको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले धर्म एवं ज्ञानकी ओर प्रेरित करे।' प्रणवके इस अर्थका बुद्धिके द्वारा चिन्तन करता हुआ जो इसका जप करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथवा अग्निनुसंवादके दिन भी प्रणवका नित्य जप करना चाहिये। इससे 'ब्राह्मणत्वकी पूर्ति' होती है। ब्राह्मणत्वकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहज गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। मध्याह्नकालमें गो वार और सायंकालमें अद्वाहत वार जपकी लियि है। अन्य वर्षके लोगोंको अग्नी-क्षत्रिय और देवको तीनों संवाद्रूपके समवयगामाय गायत्री-जप करना चाहिये।

शरीरके भीतर मूलधार, स्वाधिष्ठान, मणिगूर, अनाहत, आङ्ग और सहस्रार—ऐ छः चक्र हैं। इनमें मूलधारसे लेकर गहयारतक छहों स्थानोंमें त्रिमयः लियेकर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, ज्योत्स्ना और वसुभूत लियत हैं। इन स्थानमें ब्रह्मवृत्ति करके इनकी एकत्राका निश्चय करे और वह प्रत्येक मूर्ति लियेकर धूर्दल प्रत्येक भागके स्थान पर लोड़े। या इन धूर्दल भागोंको अग्नी-क्षत्रिय और देवको तीनों संवाद्रूपके समवयगामाय गायत्री-जप करना चाहिये। प्रदृशिदे लियेकर उन हुए एउ दिनके अधिक

पर्यन्त तत्त्वोंसे बना हुआ जो शरीर है, ऐसे सहस्रों शरीरोंका एक-एक अजपा गायत्रीके जपसे एक-एकके क्रमसे अतिकमण करके जीवको धीरे-धीरे परमात्मासे संयुक्त करे। यह जपका तत्त्व बताया गया है। सौ अथवा अष्टाईस मन्त्रोंके जपसे उतने ही शरीरोंका अतिकमण होता है। इस प्रकार जो मन्त्रोंका जप है, इसीको आदिक्रमसे वास्तविक जप जानना चाहिये। सहस्र वार किया हुआ जप ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होता है, ऐसा जानना चाहिये। सौ वार किया हुआ जप इन्द्रपदकी प्राप्ति करनेवाला माना गया है। ब्राह्मणेतर पुरुष आत्मरक्षाके लिये जो स्वल्पमात्रामें जप करता है, वह ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है। प्रतिदिन सूक्ष्मपस्थान करके उपर्युक्तरूपसे लघका अनुष्ठान करना चाहिये। वारह लाख गायत्रीका जप करनेवाला पुरुष पूर्णरूपसे 'ब्राह्मण' कहा गया है। जिस ब्राह्मणने एक लाख गायत्रीका भी जप न किया हो, उसे वैदिक कार्यमें न ल्याये। सत्तर वर्षकी अवस्थातक नियम-पालनपूर्वक कार्य करे। इसके बाद यह त्यागकर संन्यास ले ले। परिज्ञाजक या संन्यासी पुरुष नित्य प्रातःकाल वारह हजार प्रणवका जप करे। यदि एक दिन इस नियमका उल्लङ्घन हो जाय तो दूसरे दिन उसके बदलेमें उतना मन्त्र और अधिक जपना चाहिये और सदा इस प्रकार जपको चलानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि क्रमशः एक मास आदिका उल्लङ्घन हो गया तो छेड़ लाख जप करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। इससे अधिक समयतक नियमका उल्लङ्घन हो जाय तो पुनः नये सिरेसे गुरुसे नियम ग्रहण करे। ऐसा करनेसे दोपोकी शान्ति होती है, अन्यथा वह रैरव नरकमें जाता है। जो सकाम भावनासे युक्त यहस्य ब्राह्मण है, उसीको धर्म तथा अर्थके लिये यज्ञ करना चाहिये। मुमुक्षु ब्राह्मणको तो सदा ज्ञानका ही अभ्यास करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है। फिर उस भोगसे वैराग्यकी सम्भावना होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित हुए धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य धर्मसे धन पाता है, तपस्यासे उसे दिव्यरूपकी प्राप्ति होती है। कामनाओंका त्याग करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। उस शुद्धिसे ज्ञानका उदय होता है, इसमें संदर्भ नहीं है।

सत्ययुग आदिमें तपको ही प्रशास्त कहा गया है, जिस कलियुगमें द्रव्यसात्य धर्म ( दान आदि ) अच्छा माना गया है। सत्ययुगमें धानसे, त्रेतामें तपस्यासे और द्वापरमें करनेसे ज्ञानकी सिद्धि होती है; परंतु कलियुगमें प्रतिम ( भगवद्विग्रह ) की पूजासे ज्ञानलाभ होता है। अवधिसे हिंसा ( दुःख ) हृषि है और धर्म सुखहृषि है। अधर्मसे मनुष्य दुःख पाता है और धर्मसे वह सुख एवं अम्बुदयका भाव होता है। दुराचारसे दुःख प्राप्त होता है और सदाचारं सुख। अतः भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये। जिसके बरमें कम-से-कम चार मनुष्य हैं ऐसे कुटुम्बी ब्राह्मणको जो सौ वर्षके लिये जीविका ( जीवन निर्वाहकी सामग्री ) देता है, उसके लिये वह दान ब्रह्मलोक प्राप्ति करनेवाला होता है। एक सहस्र चान्द्रायण ब्रह्म अनुष्ठान ब्रह्मलोकदायक माना गया है। जो क्षत्रिय एवं सहस्र कुटुम्बको जीविका और आवास देता है, उसका वह के इन्द्रलोककी प्राप्ति करनेवाला होता है। दस हजार कुटुम्बों दिया हुआ आश्रय-दान ब्रह्मलोक प्रदान करता है। दान पुरुष जिस देवताको सामने रखकर दान करता है अर्थात् वह दानके द्वारा जिस देवताको प्रसन्न करना चाहता है, उसीके लोक उसे प्राप्त होता है—यह बात वेदवेत्ता पुरुष अर्जुन तरह जानते हैं। धन-हीन पुरुष सदा तपस्याका उपार्जन के क्षेत्रोंके तपस्या और तीर्थसेवनसे अक्षय सुख पाकर मनुष्य उसका उपभोग करता है।

अत्र मैं न्यायतः धनके उपार्जनकी विधि बता रहा हूँ। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर विशुद्ध प्रतिग्रह ( दान-ग्रहण ) तथा याजन ( यज्ञ कराने ) आदिसे धनका अर्जन करे। वह इसके लिये कहीं दीनता न दिखाये और न अत्यन्त कलेशदायक कर्म ही करे। क्षत्रिय वाहुवल्से धनका उपार्जन करे और वैद्य छृष्टि एवं गोरक्षासे। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि प्राप्त होती है। ज्ञानसिद्धिद्वारा सब पुरुषोंको गुरुद्वृण—मोक्षसिद्धि सुलभ होती है। मोक्षसे स्वल्पकी सिद्धि ( ब्रह्मरूपसे स्थिति ) प्राप्त होती है, जिससे मुक्त पुरुष परमानन्दका अनुभव करता है। यहलूपको चाहिये कि वह धन-धान्यादि सब वस्तुओंका दान करे। वह तृष्णा-निवृत्तिके लिये जल तथा क्षुधारूपी रोम ; शान्तिके लिये सदा अवका दान करे। खेत, धान्य, कृषि अन्न तथा भूम्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकार सिद्ध अन्न दान करने चाहिये। जिसके अन्नको संकर मनुष्य ही

जयतक वयम्-श्रवण आदि सद्गुर्मुका पालन करता है, उतने समयतक उसके किये हुए पुण्यफलका आधा भाग दाताको मिल जाता है—इसमें संशय नहीं है। दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान तथा तपस्या करके अपने प्रति-एत्तनित पापकी शुद्धि कर ले। अन्यथा उसे रौख नरकमें गेना पड़ता है। अपने धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग शुद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उप-सेवाके लिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके मर्म पर्मर्थ सभ्ये हुए धनसे करे। साधकको चाहिये कि वह शुद्धिके लिये रखते हुए धनसे ऐसा व्यापार करे, जिससे उस नक्षी शुद्धि हो तथा उपभोगके लिये रक्षित धनसे हितकारक, रिप्पित एवं पवित्र भोग भीरे। खेतीमें दैदा किये हुए धनका लब्धां अंश दान कर दे। इससे पापकी शुद्धि होती है। श्रेष्ठ धनसे धर्म, शुद्धि एवं उपभोग करें; अन्यथा वह रौख नरकमें इता है अथवा उसकी शुद्धि पापार्पण हो जाती है या खेती नीचैपट हो जाती है। शुद्धिके लिये किये गये व्यापारमें प्राप्त इए प्रगता छठा भाग दान कर देने चाहिये। शुद्धिमान् पुरुष सवक्ष्य उसका दान कर दे।

विद्वानको चाहिये कि वह दूसरोंके दोषोंका व्यापार न करे। ब्राह्मणो ! दोपवद्धा दूसरोंके सुने या देखे हुए छिद्रको भी प्रकट न करे। विद्वान् पुरुष ऐसी वात न कहे, जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें रोप दैदा करनेवाली हो। ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये दोनों संघातोंके समय अग्निहोत्रकर्म अवश्य करे। जो दोनों समय अग्निहोत्र करनेमें असमर्थ हो, वह एक ही समय सूर्य और अग्निको विधिपूर्वक दी हुई आहुतिसे संतुष्ट करे। चावल, धान्य, धी, फल, कंद तथा हविष्य—इनके द्वारा विधिपूर्वक स्थालीपाक बनाये तथा यथोचित रीतिसे सूर्य और अग्निको अर्पित करे। यदि हविष्यका अभाव हो तो प्रधान होममात्र करे। सदा सुरक्षित रहनेवाली अग्निको विद्वान् पुरुष अजस्तकी संज्ञा देते हैं। अथवा संध्याकालमें जपमात्र या सूर्य-की वन्दनामात्र कर ले। आत्मशानकी इच्छावाले तथा धनार्थी पुरुषोंको भी इस प्रकार विधिवत् उपासना करनी चाहिये। जो सदा व्रह्मयज्ञमें तत्पर होते हैं, देवताओंकी पूजामें लगे रहते हैं, नित्य अग्निपूजा एवं गुरुपूजामें अनुरक्त होते हैं तथा ब्राह्मणोंको तृप्त किया करते हैं, वे सब लोग स्वर्गलोकके भागी होते हैं। ( अथाय १३ )

### अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन

प्रसृष्टियोंने कहा—प्रभो ! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, शृणु ताग व्रग्नत्रितिका हमारे नमन करना: वर्णन कीजिये।

सृष्टजी घोले—गर्हणियो ! यहस्य पुरुष अग्निमें रैथनाल और प्रातःकाल जो चावल आदि द्रव्यकी आहुति ही है, उसीसे अग्नियज्ञ करते हैं। जो व्रजमर्च्य आधममें रैत है, उन व्रजनाचरियोंके लिये नमियाका अस्तान ही हैमित है। ये अस्तिगात ही अग्निमें रैत करें। ब्राह्मणो ! अग्नियज्ञमें नियाम रखनेवाले दिलोंवा जयतक विद्याह न हो जाय व्यैर वे वैतानकतामिती प्रतिष्ठा न छर लें, नदक न होये लिये अग्निमें अग्नियज्ञी आहुति. प्रत आदिका पालन ही मिश्र रैत आदि ०। कर्तव्य है ( यही इनके लिये हैमित है )। द्वितीयो ! द्वितीये वयम् अग्नियज्ञो दिलिङ्गिन करके हमें अस्तान ही अग्नियज्ञ रैतेव यह लिया है, ऐसे अग्नियज्ञे व्यैर में रैतियोंके लिये यही एतना या अग्नियज्ञ है वे निति अस्तवर इत्तर, नरिलिय और इत्तिव रैतना

भोजन कर लें। ब्राह्मणो ! गावंकाल अग्निके लिये दी हुई आहुति साप्तनि प्रदान करनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये और प्रातःकाल सूर्यदेवको दी हुई आहुति आयुर्का शुद्धि करनेवाली होती है; यह वात अच्छी तरह समस्त रेनी चाहिये। दिनमें अग्निदेव नूरमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अनः प्रातःकाल सूर्यको दी हुई आहुति भी अग्नियज्ञके ही अन्तर्गत है। इन प्रकार यह अग्नियज्ञका वर्णन किया गया।

इत्थ आदि नपत्र देवताओंके उद्देश्यसे अक्षिमें जो आहुतिं दी जाती है, उनमें देवददा नमस्कार चाहिये। मध्याह्नीरात्र आदि वर्षोंकी देवयज्ञ ही नमस्कार चाहिये। हाँकिल अक्षिमें प्रतिष्ठित जो चूदाकर्ता आदि नैदर्श्यनिर्मित्य दृष्ट्यन्तमें हैं, उन्हें भी देवपत्रने ही अन्तर्गत नमस्कार चाहिये। अन्य व्रह्मयज्ञमें वर्षन नहीं। द्वितीये नक्षिये कि यह देवताओंमें ही उत्तिष्ठ लिये निर्मात्र द्वारा करे। देवांशा ही नित्य अवश्यना या न्यायाम होता है, उसीसे द्वारा करा जाए। प्रतः

नित्यकर्मके अनन्तर सायंकालतक ब्रह्मयज्ञ किया जा सकता है। उसके बाद रातमें इसका विधान नहीं है।

अग्निके विना देवयज्ञ कैसे सम्पन्न होता है, इसे तुमलोग श्रद्धासे और आदरपूर्वक सुनो। सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञ, दयालु और सर्वसमर्थ महादेवजीने समस्त लोकोंके उपकारके लिये वारोंकी कल्पना की। वे भगवान् शिव संपाररूपी रोगको दूर करनेके लिये वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधोंके भी औषध हैं। उन भगवान्नने पहले अपने वारकी कल्पना की, जो आरोग्य प्रदान करनेवाला है। तत्पश्चात् अपनी मायाशक्तिका वार बनाया, जो सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। जन्मकालमें दुर्गति-ग्रस्त बालककी रक्षाके लिये उन्होंने कुमारके वारकी कल्पना की। तत्पश्चात् सर्वसमर्थ महादेवजीने आलस्य और पापकी निवृत्ति तथा समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे लोकरक्षक भगवान् विष्णुका वार बनाया। इसके बाद सबके स्वामी भगवान् शिवने पुष्टि और रक्षाके लिये आयुकर्ता त्रिलोक-स्थान परमेष्ठी ब्रह्माका आयुष्कारक वार बनाया, जिससे समूर्ज जगत्के आयुष्यकी सिद्धि हो सके। इसके बाद तीनों लोकोंकी वृद्धिके लिये पहले पुण्यपापकी रचना हो जानेपर उनके करनेवाले लोगोंको शुभाशुभ फल देनेके लिये भगवान् शिवने इन्द्र और यमके वारोंका निर्माण किया। ये दोनों वार क्रमशः भोग देनेवाले तथा लोगोंके मृत्युभयको दूर करनेवाले हैं। इसके बाद सूर्य आदि सात ग्रहोंको, जो अपने ही स्वरूपभूत तथा प्राणियोंके लिये सुख-दुःखके सूचक हैं, भगवान् शिवने उपर्युक्त सात वारोंका स्वामी निश्चित किया। वे सबके सब ग्रह-नक्षत्रोंके ज्योतिर्मय मण्डलमें प्रतिष्ठित हैं (शिवके वार या दिन-के स्वामी सूर्य हैं। शक्तिसम्बन्धी वारके स्वामी सोम हैं। कुमार-सम्बन्धी दिनके अधिपति मङ्गल हैं। विष्णुवारके स्वामी बुध हैं। ब्रह्माजीके वारके अधिपति बृहस्पति हैं। इन्द्रवारके स्वामी सूर्य और यमवारके स्वामी शनैश्चर हैं। अपने अपने वारमें की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने-अपने फलको देनेवाली होती है।

सूर्य आरोग्यके और चन्द्रमा सम्पत्तिके दाता हैं। मङ्गल व्याधियोंका निवारण करते हैं, बुध पुष्टि देते हैं। बृहस्पति आयुकी वृद्धि करते हैं। शुक्र भोग देते हैं और शनैश्चर मृत्युका निवारण करते हैं। ये सात वारोंके क्रमशः फल बताये गये हैं, जो उन-उन देवताओंकी प्रीतिसे प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंकी भी पूजाका फल देनेवाले भगवान् शिव

ही है। देवताओंके प्रसन्नताके लिये पूजाकी पाँच प्रकारों ही पद्धति बनायी गयी है। उन-उन देवताओंके मन्त्रोंजा जा यह पहला प्रकार है। उनके लिये होम करना दूसरा, दान करना तीसरा तथा तप करना चौथा प्रकार है। किंवी वेदीपर, प्रतिमामें, अग्निमें अथवा ब्राह्मणके शरीरमें आराध्य देवतासी भावना करके सोलह उपचारांते उनकी पूजा या आण्वन करना पाँचवाँ प्रकार है।

इनमें पूजाके उत्तरोत्तर आधार श्रेष्ठ हैं। पूर्व-शूर्व अभावमें उत्तरोत्तर आधारका अवलम्बन करना चाहिये। दोनों नेत्रों तथा मस्तकके रोगमें और कुष्ठ रोगकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर एक दिन, एक मास, एक वर्ष अथवा तीन वर्षत लगातार ऐसा साधन करना चाहिये। इससे वदि प्रक प्रारब्धका निर्माण हो जाय तो रोग एवं जरा आदि रोगोंका नाश हो जाता है। इष्टदेवके नाममन्त्रोंका जप आदि साक्ष वार आदिके अनुसार फल देते हैं। रघुवारको सूर्यदेवके लिये अन्य देवताओंके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये विशिष्ट फल अर्पित करे। यह साधन विशिष्ट फल देनेवाला होता है तथा इसके द्वारा विशेषरूपसे पापोंकी शान्ति होती है। सोमवारसे विद्वान् पुरुष सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मी आदिकी पूज करे तथा सप्तवीक ब्राह्मणोंको धृतपक्ष अन्नका भोजन कराये। मङ्गलवारको रोगोंकी शान्तिके लिये काली आदिकी पूजा करे तथा उड्ढ, मूँग एवं अरहरकी दाल आदिसे युक्त अन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराये। बुधवारको विद्वान् पुरुष दधिः अन्नसे भगवान् विष्णुका पूजन करे। ऐसा करनेसे सदा उमित्र और कल्प आदिकी पुष्टि होती है। जो दीर्घायु होने वाले इच्छा रखता है, वह गुरुवारको देवताओंकी पुष्टिके वस्त्र, यजोपवीत तथा धृतमिश्रित खीरसे यजन-पूजन करे। भोगोंकी प्राप्तिके लिये शुक्रवारको एकाग्रचित्त होकर देवताओंके पूजन करे और ब्राह्मणोंकी तृतीके लिये षड्ग्रस युक्त अन्न देवताओंके लिये सुन्दर वस्त्र वा विधान करे। शनैश्चर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है। उस दिन बुद्धिमान् पुरुष रुद्र आदिकी पूजा करे। विशेष से, दानसे देवताओंको संतुष्ट करके ब्राह्मणोंको तिलमिठी अन्न भोजन कराये। जो इस तरह देवताओंकी पूजा करेगा, वह आरोग्य आदि फलका भागी होगा।

देवताओंके नित्य-पूजन, विशेष पूजन, स्नान, दान,

दोष तथा ग्राहण-तर्पण आदिमें एवं रवि आदि वारोंमें विशेष स्तिथि वौर नवव्रतोंका योग प्राप्त होनेपर विभिन्न देवताओंके पूजनमें सर्वशः जगदीक्षर भगवान् शिव ही उन-उन देवताओंके सूपर्णे पूजित हो सब लोगोंको आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं। देश, काल, पात्र, द्रव्य, अद्वा एवं लोकके अनुसार उनके तारतम्य क्रमका ध्यान रखते हुए महादेवजी आराधना करनेवाले लोगोंको आरोग्य आदि फल देते हैं। शुभ (माझलिक कर्म) के आरम्भमें और अशुभ (अन्त्येष्ठि आदि कर्म) के अन्तमें तथा जन्म-नक्षत्रोंके आनेपर ग्रहस्थ पुरुष अपने घरमें आरोग्य आदिकी समृद्धिके लिये सूर्य आदि ग्रहोंका पूजन करे। इससे मिल्द है कि देवताओंका यज्ञ समर्पण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। ग्राहणोंका देवयज्ञ-कर्म वैदिक मन्त्रके लाभ होना चाहिये। ( वहाँ ग्राहण-शब्द धनिय और वैश्यका भी उपलक्षण है। ) शुद्ध आदि दूसरोंका देवयज्ञ तान्त्रिक विधि से होना चाहिये। शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको

सातों ही दिन अपनी शक्तिके अनुसार सदा देवपूजन करना चाहिये। निर्वन मनुष्य तपस्या ( व्रत आदिके कष्ट-सहन ) द्वारा और धनी धनके द्वारा देवताओंकी आराधना करें। वह वार-नार श्रद्धापूर्वक इस तरहके धर्मका अनुष्ठान करता है और वारंवार पुण्यलोकोंमें नाना प्रकारके फल भोगकर पुनः इस पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता है। धनवान् पुरुष सदा भोग-सिद्धिके लिये मार्गमें बृक्षादि लगाकर लोगोंके लिये छायाकी व्यवस्था करे। जलाशय ( कुँआ, बावली और पोखरे ) बनवाये। वैद-शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये पाठशालाका निर्माण करे तथा अन्यान्य प्रकारसे भी धर्मका संब्रह करता रहे। धनीको वह सब कार्य सदा ही करते रहना चाहिये। समयानुसार पुण्यकर्मोंके परिपाकसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है। द्विजो ! जो इस अध्यायको सुनता, पढ़ता अथवा सुननेकी व्यवस्था करता है, उसे देवयज्ञका फल प्राप्त होता है। ( अध्याय १४ )

### देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार

प्राप्तियोंने कहा—समस्त पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ सहजी ! अब आप क्रमशः देश-काल आदिका वर्णन करें।

सहजी बोले—गहर्पियो ! देवयज्ञ आदि कर्मोंमें अपना शुद्ध गृह समान फल देनेवाला होता है अर्थात् अपने घरमें किये हुए देवयज्ञ आदि शास्त्रोंके फलको सममात्रामें देनेवाले होते हैं। गोदावालका स्थान घटकी अपेक्षा दसगुना फल देता है। जलाशयका तट उससे भी दसगुना महत्व रखता है तथा उसी त्रैल, तुलसी एवं पीपलशूक्रका मूल निकट हो, वह स्थान जलाशयके तटसे भी दसगुना फल देनेवाला होता है। ऐसालग्यो उससे भी दसगुने महत्वका स्थान जानना चाहिये। ऐसालग्यसे भी दसगुना महत्व रखता है तीर्थभूमिका तट। उसमें दसगुना खेड़ ऐ नदीका किनारा। उससे दसगुना शुद्ध है तीर्थनदीका तट और उससे भी दसगुना महत्व रखता है। समग्रा जानक नदियोंका तीर्थ। गङ्गा, गोदावरी, यायेरी, गावरी, शिवु, नर्सू और नर्मदा—इन सात नदियोंको लेंगड़ा कहा जाता है। गङ्गाके नड़ावा स्थान इससे भी दसगुना है विष मात्रा मत्ता है और पर्वतके शिखरका प्रदेश सुनुद्दरुद्धरे की दसगुना पत्ता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह स्थान गङ्गाका जानिये, उसी मत्ता लग जाय।

पूर्वोत्तर देशका कर्म शुद्ध, उत्तर दालहरा कर्मन्त्र

वताया जाता है—सत्ययुगमें यज्ञ, दान आदि कर्म पूर्ण फल देनेवाले होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। व्रतायुगमें उसका तीन चौथाई फल मिलता है। द्वापरमें सदा आधे ही फलकी प्राप्ति कही गयी है। कलियुगमें एक चौथाई ही फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये और आधा कलियुग व्रीतनेपर उस चौथाई फलमेंसे भी एक चतुर्थांश कम हो जाता है। शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषको शुद्ध एवं पवित्र दिन सम फल देनेवाला होता है।

विद्वान् ग्राहणो ! मूर्य-संक्रान्तिके दिन किया हुआ सन्कर्म पूर्णोंका शुद्ध दिनकी अपेक्षा दसगुना फल देनेवाला होता है, यह जानना चाहिये। उससे भी दसगुना महत्व उस कर्मका है, जो विरुद्ध नामक वेगमें किया जाता है। दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन अर्थात् उसकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका महत्व दिनमें भी दसगुना भाग गया है। उसमें भी दसगुना महर-संक्रान्तिमें भी उससे भी दसगुना चन्द्र-

1. ज्योतिर्ने लक्ष्मीर द्वारा दृश्य दिया गया शिवपर रेतार सुनकर है और जिस दृश्य द्वारा देवों लक्ष्मीर समर्पण होते हैं। वर्तमान दृश्य जाता है—जहाँ को संतुष्ट निवासनीय लक्ष्मी किया जा रहे हैं। 2. सर्वदृश्य, और इसका संतुष्ट निवासनीय लक्ष्मी किया जा रहे हैं। 3. सिद्धमरुद्धरों।

ग्रहणमें किये हुए पुण्यका महत्व है। सूर्यग्रहणका समय सबसे उत्तम है। उसमें किये गये पुण्यकर्मका फल चन्द्रग्रहणसे भी अधिक और पूर्ण मात्रामें होता है, इस वातको विज्ञ पुरुष जानते हैं। जगदूर्लभी सूर्यका राहुरुपी विष्वसे संयोग होता है, इसलिये सूर्यग्रहणका समय रोग प्रदान करनेवाला है। अतः उस विषकी शान्तिके लिये उस समय खान, दान और जप करे। वह काल विषकी शान्तिके लिये उपयोगी होनेके कारण पुण्यप्रद माना गया है। जन्मनक्षत्रके दिन तथा व्रतकी पूर्तिके दिनका समय सूर्यग्रहणके समान ही समझा जाता है। परंतु महापुरुषोंके सङ्गका काल करोड़ों सूर्यग्रहणके समान पावन है, ऐसा ज्ञानी पुरुष जानते-मानते हैं।

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ यति—ये पूजाके पात्र हैं; क्योंकि ये पापोंके नाशमें कारण होते हैं। जिसने चौबीस लख गायत्रीका जप कर लिया हो, वह ब्राह्मण भी पूजाका उत्तम पात्र है। वह समूर्ण फलों और भोगोंको देनेमें समर्थ है। जो पतनसे त्राण करता अर्थात् नरकमें गिरनेसे बचाता है, उसके लिये इसी गुणके कारण शास्त्रमें 'पात्र' शब्दका प्रयोग होता है। वह दाताका पातकसे त्राण करनेके कारण 'पात्र' कहलाता है। गायत्री अपने गायकका पतनसे त्राण करती है; इसीलिये वह 'गायत्री' कहलाती है। जैसे इस लोकमें जो धनहीन है, वह दूसरेको धन नहीं देता—जो वहाँ धनवान् है, वही दूसरेको धन दे सकता है, उसी तरह जो स्वयं शुद्ध और पवित्रात्मा है, वही दूसरे मनुष्योंका ज्ञान या उद्धार कर सकता है। जो गायत्रीका जप करके शुद्ध हो गया है, वही शुद्ध ब्राह्मण कहलाता है। इसलिये दान, जप, होम और पूजा सभी कर्मोंके लिये वही शुद्ध पात्र है। ऐसा ब्राह्मण ही दान तथा रक्षा करनेकी पात्रता रखता है।

खी हो या पुरुष—जो भी भूखा हो, वही अन्नदानका पात्र है। जिसको जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना माँगे ही दे दी जाय तो दाताको उस दानका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है, ऐसी महर्षियोंकी मान्यता है। जो सबाल या याचना करनेके बाद दिया गया हो, वह दान आधा ही फल देनेवाला बताया गया है। अपने सेवकको दिया हुआ दान एक चौथाई फल देनेवाला होता है। विप्रवरो ! जो जाति-

<sup>८</sup> पतनात्माय इति पात्रं शाके प्रयुज्यते ।

दातुश पातकात्माणात्प्रमित्यभिर्भीयते ॥

( शिं० पु० विष्व० १५ । १५ )

मात्रसे ब्राह्मण है और दीनतापूर्ण वृत्तिसे जीवन विताता है उसे दिया हुआ धनका दान दाताको इस भूतलपर दस वर्षोंतक भोग प्रदान करनेवाला होता है। वही दान यदि वेदवेदां ब्राह्मणको दिया जाय तो वह स्वर्गलोकमें देवताओंके कर्म दस वर्षोंतक दिव्य भोग देनेवाला होता है। शिल और उच्च वृत्तिसे<sup>९</sup> लाया हुआ और गुरुदक्षिणामें प्राप्त हुआ अन्न-भूद्ध द्रव्य कहलाता है। उसका दान दाताको पूर्ण फल देनेवाला बताया गया है। धन्त्रियोंका धौर्यसे कमाया हुआ वैश्योंका व्यापारसे आया हुआ और शूद्रोंका सेवावृत्तिसे प्राप्त किया हुआ धन भी उत्तम द्रव्य कहलाता है। धर्मकी इच्छा रखनेवाली खियोंको जो धन पिता एवं पतिसे मिला हुआ है उनके लिये वह उत्तम द्रव्य है।

गौ आदि वारह वस्तुओंका चैत्र आदि वारह महीने क्रमशः दान करना चाहिये। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, चैत्र, धान्य, गुड़, चाँदी, नमक, कोहड़ा और कन्धा—ही वे वारह वस्तुएँ हैं। इनमें गोदानसे कार्यिक, वाचिक ये मानसिक पापोंका निवारण तथा कार्यिक आदि पुण्यकर्मों पुष्टि होती है। ब्राह्मणो ! भूमिका दान इहलोक और परलोक प्रतिष्ठा ( आश्रय ) की प्राप्ति करनेवाला है। तिलका दल बलवर्धक एवं मृत्युका निवारक होता है। सुवर्णका दल जठरामिको बढ़ानेवाला तथा वीर्यदायक है। धीका दान पुष्टिका होता है। वृक्षका दान आयुकी वृद्धि करनेवाला है, ऐसा जानना चाहिये। धान्यका दान अन्न-धनकी समृद्धिमें काल होता है। गुड़का दान मधुर भोजनकी प्राप्ति करनेवाला है। चाँदीके दानसे वीर्यकी वृद्धि होती है। लवणका दल पड़स भोजनकी प्राप्ति कराता है। सब प्रकारका दान ये समृद्धिकी सिद्धिके लिये होता है। विज्ञ पुरुष कूपाण दानको पुष्टिदायक मानते हैं। कन्ध्याका दान आजीवन भी देनेवाला कहा गया है। ब्राह्मणो ! वह लोक और परलोक भी समूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करनेवाला है।

\* कोशकार कहते हैं—

'उच्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम् ।'

अर्थात् खेत कट जाने या बाजार उठ जानेपर वहाँ पर्याप्त अन्नके एक-एक कणको चुनना और उससे जीविका का 'उच्छवृत्ति है तथा खेतकी फसल कट जानेपर वहाँ पर्याप्त आदिकी बालैं बीनना 'शिल' कहा गया है, और उससे बीन चलाना 'शिल'वृत्ति है।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन वस्तुओंसे अब्रण आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उनका सदा दान करे। श्रोत्र आदि दस इन्द्रियोंके जो शब्द आदि दस विषय हैं, उनका दान किया जाय तो वे भोगोंकी प्राप्ति करते हैं तथा दिशा आदि इन्द्रियदेवताओंको संतुष्ट करते हैं। वेद और शास्त्रको गुणात्मक ग्रहण करके गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं ही वोध प्राप्त वरनेके पश्चात् जो बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'कगोका फल अवश्य मिलता है', इसीको उच्चकोटिकी 'आस्तिकता' कहते हैं। भाई-बन्धु अथवा राजके भयसे जो आस्तिकता-बुद्धि या अद्वा होती है, वह कनिष्ठ श्रेणीकी आस्तिकता है। जो सर्वथा दरिद्र है, इसलिये जिसके पास सभी वस्तुओंका अभाव है, वह धाणी अथवा कर्म ( शरीर ) हारा यजन करे। मन्त्र, स्तोत्र और जप आदिको धाणीद्वारा

किया गया यजन समझना चाहिये तथा तीर्थयात्रा और वन आदिको विद्वान् पुरुष शारीरिक यजन मानते हैं। जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो वा बहुत, देवतार्पण बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करनेमें समर्थ होता है। तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये तथा ऐसे यहका दान करना चाहिये, जो अपने वर्ण ( चमक-दमक या सफाई ) और गुण ( सुख-सुविधा ) से सुशोभित हो। बुद्धिमान् पुरुष देवताओंकी तृप्तिके लिये जो कुछ देते हैं, वह अतिशय मात्रामें और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाला होता है। उस दानसे विद्वान् पुरुष इहलोक और परलोकमें उत्तम जन्म और सदा सुलभ होनेवाला भोग पाता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे यज्ञ-दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्षफलका भागी होता है। ( अध्याय १५ )

## पृथ्वी आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिङ्गके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन

ऋग्विष्योंने कहा—राधुशिरोमणे ! अब आप पार्थिव प्रतिमाकी पूजा का विधान बताइये, जिससे समस्त अभीष्ट वस्तुओंसी प्राप्ति होती है।

सहजी वोले—महर्षियो ! तुमलोगोंने बहुत उत्तम योग पूरी है। पार्थिव प्रतिमाका पूजन सदा सम्पूर्ण मनोरथों-में देनेवाला है तथा हुखका तत्काल निवारण करनेवाला है। मैं उग्रका वर्णन करता हूँ, तुमलोग उसके ज्यान देकर तुमो। पृथ्वी आदिकी वनी हुई देवप्रतिमाओंकी पूजा इस गृहलयर अभीष्टदायक मानी गयी है, निश्चय ही इसमें पुराणे और स्त्रियोंका भी अधिकार है। नदी, झीले अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी के खाने। सिर गन्ध-चूर्णके द्वारा उसका नंशोधन करे और इस भृत्यसमें रखकर उसे भट्टी पर्ने और साने। इसे याद रखनेमें प्रतिमा दानाये और दृप्तके उसका मुन्द्र लंगार करे। उस प्रतिमामें अद्व-प्रत्यक्ष अच्छी तरह प्रत्यक्ष हुए ताग रह गद प्रवारने अद्व-शरणमें नमस्क रक्षय गयी है। गदनकर उसे पश्चात्यन्तर तत्त्वित करके

आदरपूर्वक उसका पूजन करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, हुर्गा और शिवकी प्रतिमाका, शिवका एवं शिवलिङ्गका द्विजको सदा पूजन करना चाहिये। प्रोटशोपचारपूजनजनित फलकी बिद्धिके लिये सोलह उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। पुष्पसे प्रोक्षण और मन्त्र-पाठपूर्वक अभियंत करे। अगहनीके चावलसे नैवेद्य तैयार करे। सारा नैवेद्य एक कुडव ( लगभग पावभर ) होता चाहिये। घरमें पार्थिव-पूजनके लिये एक कुडव और बाहर किंवा मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके पूजनके लिये एक प्रस्तु ( धेरभर ) नैवेद्य तैयार करना आवश्यक है, ऐसा जानता चाहिये। देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये तीन सेर नैवेद्य अर्पित करना उचित है और न्यूने प्रत्यक्ष हुए स्वरूप-लिङ्गके लिये दोनों सेर। ऐसा करनेवार पूर्ण कलशी प्राप्ति समस्ती चाहिये। इस प्रकार सहज वार पूजा करनेमें द्वितीय स्वरूपको प्राप्त कर लिया है।

दूसरे अंगुष्ठ नींहा, इसमें दूसरा और एक अंगुष्ठ अधिक अधर्माद् वर्षीय अंगुष्ठ कंठ तथा दूसरा दंडह अंगुष्ठ

( १. मर्त्त्यविद्यसे देवता दिलाई, मैत्ररे दृढ़ लक्ष्मिके लक्ष्मिनेतुकर, राजदेवियसे दग्ध, वृत्तिविद्यारे लालू, दलितिविद्या-

चौड़ा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ पात्र होता है, उसे विद्वान् पुरुष 'शिव' कहते हैं। उसका आठवाँ भाग प्रस्थ कहलाता है, जो चार कुड़वके बराबर माना गया है। मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये दस प्रस्थ, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये सौ प्रस्थ और स्वयम्भू शिवलिङ्गके लिये एक सहस्र प्रस्थ नैवेद्य निवेदन किया जाय तथा जल, तैल आदि एवं गन्ध द्रव्योंकी भी यथायोग्य मात्रा रक्षी जाय तो यह उन शिवलिङ्गोंकी महापूजा बतायी जाती है।

देवताका अभिषेक करनेसे अत्मशुद्धि होती है, गन्धसे युण्यकी प्राप्ति होती है। नैवेद्य लगानेसे आशु वढ़ती और तृष्णि होती है। धूप निवेदन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। दीप दिखानेसे ज्ञानका उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करनेसे भोगकी उपलब्धि होती है। इसलिये स्नान आदि छः उपचारोंको यन्त्रपूर्वक अर्पित करे। नमस्कार और जप—ये दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाले हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको पूजाके अन्तमें सदा ही जप और नमस्कार करने चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सदा पहले मनसे पूजा करके फिर उन-उन उपचारोंसे करे। देवताओंकी पूजासे उन-उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा उनके अवान्तर लोकमें भी यथेष्ट भोगकी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।

अब मैं देवपूजा से प्राप्त होनेवाले विशेष लोकोंका वर्णन करता हूँ। द्विजो! तुमलोग श्रद्धापूर्वक सुनो। विष्वराज मणेशकी पूजासे भूलोकमें उत्तम अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। शुक्रवारको, श्रावण और भाद्रपद मासोंके शुक्लपक्ष-की चतुर्थीको और पौषमासमें शतभिषा नक्षत्रके आनेपर विष्णिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सौ या सहस्र दिनोंमें सौ या सहस्र बार पूजा करे। देवता और अग्निमें श्रद्धा रखते हुए किया जानेवाला उनका नित्य पूजन मनुष्योंको पुन एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। वह समस्त पापोंका शर्पन तथा भिन्न-भिन्न दुर्घटोंका विनाश करनेवाला है। विभिन्न वारोंमें की हुई शिव आदिकी पूजाको आत्मशुद्धि प्रदान करनेवाली समझना चाहिये। वार या दिन तिथि, नक्षत्र और योगोंका आधार है। समस्त कामनाओंको देनेवाला है। उसमें वृद्धि और क्षय नहीं होता। इसलिये उसे पूर्ण व्रहस्पद्य मानना चाहिये।

सूर्योदयकालसे लेकर सूर्योदयकाल अनेतक एक वास्त्र स्थिति मानी गयी है, जो ब्राह्मण आदि सभी क्षणोंके कर्मों का आधार है। विहित तिथिके पूर्व भागमें की हुई देवपूजा मनुष्योंको पूर्ण भोग प्रदान करनेवाली होती है।

यदि मर्यादके बाद तिथिका आरम्भ होता है तो रात्रियुक्त तिथिका पूर्वभाग पितरोंके श्राद्धादि कर्मके लिये उत्तम बताया जाता है। ऐसी तिथिका परभाग ही दिले युक्त होता है, अतः वही देवकर्मके लिये प्रशस्त मान गया है। यदि मर्यादकालतक तिथि रहे तो उदयव्याप्ति तिथिको ही देवकार्यमें ग्रहण करना चाहिये। इसी तरह शुभ तिथि एवं नक्षत्र आदि ही देवकार्यमें ग्राह्य होते हैं। बार आदिका भलीभाँति विचार करके पूजा और ज्ञानादि करने चाहिये। वेदोंमें पूजा-शब्दके अर्थकी इस प्रकार योजना की गयी है—पूर्जायते अनेन इति पूजा। क पूजा-शब्दकी व्युत्पत्ति है। 'पूः' का अर्थ है भोग और फलकी सिद्धि—वह जिस कर्मसे सम्पन्न होती है, उसका नाम पूजा है। मनोवाचित्त वस्तु तथा ज्ञान—ये ही अर्म वस्तुएँ हैं; सकाम भाववालेको अभीष्ट भोग अपेक्षित होता है और निष्काम भाववालेको अर्थ—पारमार्थिक ज्ञान ये दोनों ही पूजा-शब्दके अर्थ हैं; इनकी योजना करनें ही पूजा-शब्दकी सार्थकता है। इस प्रकार लोक और वेदों पूजा-शब्दका अर्थ विख्यात है। नित्य और नैमित्तिक कालान्तरमें फल देते हैं; किंतु काम्य कर्मका यदि भलीभाँति अनुष्ठान हुआ हो तो वह तत्काल फलद होता है। प्रतिदिन एक पक्ष, एक मास और एक वर्षतक लगातार पूजा करनेसे उन-उन कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और उन वेदों ही पापोंका क्रमशः क्षय होता है।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको की हुई मूल गणपतिकी पूजा एक पक्षके पापोंका नाश करनेवाली और एक पक्षतक उत्तम भोगरूपी फल देनेवाली होती है। चैत्रमास की चतुर्थीको की हुई पूजा एक मासतक किये गये पूजनका फल देनेवाली होती है और जब सूर्य सिंह राशिपर स्थित हो, वह समय भाद्रपद मासकी चतुर्थीको की हुई गणेशजीकी। एक वर्षतक मनोवाचित्त भोग प्रदान करती है—ऐसा जल चाहिये। श्रावणमासके रविवारको, हस्त नक्षत्रसे युक्त तिथिको तथा माघशुक्ल सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठ तथा भाद्रपद मासोंके बुधवारको,

नवमसे युक्त द्वादशी तिथिको तथा केवल द्वादशीको भी किया गया भगवान् विष्णुका पूजन अभीष्ट सम्पत्तिको देनेवाला माना गया है। आवणमासमें की जानेवाली श्रीहरिकी पूजा अभीष्ट मनोरथ और आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। अद्वैत एवं उपकरणोंमहित पूर्वोक्त गौ आदि वारह वसुओंका दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको द्वादशी तिथिमें आराधनाद्वारा श्रीविष्णुकी तृप्ति करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके वारह नामों-द्वारा वारह ब्राह्मणोंका पोडशोपचार पूजन करता है, वह उनकी प्रगतिका प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार समूर्ण देवताओंके विभिन्न वारह नामोंद्वारा किया हुआ, वारह ब्राह्मणोंका पूजन उन-उन देवताओंको प्रसन्न करनेवाला होता है।

कर्की संकालिसे युक्त श्रावणमासमें नवमी तिथिको शूरगिरा नक्षत्रके योगमें अग्निकांका पूजन करे। वे समूर्ण मनोरथाच्छित भोगों और फलोंको देनेवाली हैं। ऐश्वर्यकी इच्छा रसनेवाले पुरुषको उस दिन अवश्य उनकी पूजा करनी चाहिए। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि समूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। उसी मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको वदि रविवार पटा हो तो उस दिनका महात्म्य पिंडीय नष्ट जाता है। उसके साथ ही वदि आद्री और महाद्री ( सूर्योंकान्तिसे युक्त आद्री ) का योग हो तो उक्त अवसरोंपर भी हुई शिवपूजाका विशेष महत्व माना गया है। साथ हुए नारुदशीको की हुई शिवजीकी पूजा समूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। वह मनुष्योंसे आयु वदाती, मृतु-कृपाप्ति भूर इताती और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करती है। व्येष्ठ मासमें चतुर्दशीको वदि महाद्रीका योग हो अथवा मार्ग-शीर्य मासमें फिरी भी तिथिसे वदि आद्री नक्षत्र हो तो उन अवसरोंपर विभिन्न वसुओंकी वती हुई गूर्तिके रूपमें शिवजी को खोले उपचारोंसे पूजा करता है, उस पुण्यलक्ष्यके चरणोंका दर्शन करता चाहिए। भगवान् शिवकी पूजा मनुष्योंको भेग और भोग देनेवाली है; ऐसा जानता चाहिए। कालिका मासमें प्रलेश शार दैत तिथि व्याप्तिमें महादेवजीकी पूजाका विशेष महत्व है। प्रलिङ्ग मास अनेकर विष्णु, इश्वर दान, तस दैत, जूँ और जितम ज्ञातिके द्वाया समस्त देवताओंका विद्युतोंसे उड़न जै। उक्त दैतमें देव-प्रतिमाओं व विष्णु दैत व्याप्तिकर्ताने भावेन्द्र इश्वर दैत है। ज्ञातिके देवोंका दर्शन से भी हुई इश्वर-वर्म व्याप्ति उड़ता है। पूर्वजों का इतिहास

वह कामनाओंको त्यागकर पीड़ितहित ( शान्त ) हो देवाराधन-में तत्पर रहे।

कार्तिक मासमें देवताओंका यजन-पूजन समस्त भेगोंके देनेवाला, व्याधियोंको हर लेनेवाला तथा भूतों और घरोंका विनाश करनेवाला है। कार्तिक मासके रविशारीको भगवान् सूर्यकी पूजा करने और तेल तथा सूती वज्र देनेसे मनुष्योंके कोढ़ आदि रोगोंका नाश होता है। हैं, काली भिर्च, चब और खीरा आदिका दान और ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेसे क्षम्यके रोगका नाश होता है। दीप और सरसोंके दानसे मिरगीका रोग मिट जाता है। कृतिका नश्वरपे युक्त सोम-वारोंको किया हुआ शिवजीका पूजन मनुष्योंके महान् दारिद्र्य-को मिटानेवाला और समूर्ण समस्तियोंको देनेवाला है। वरकी आवश्यक सामग्रियोंके साथ यह और क्षेत्र आदिका दान करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। कृतिकायुक्त मङ्गल-वारोंको श्रीस्कन्दका पूजन करनेसे तथा दीपक एवं धृष्टा आदिका दान देनेसे मनुष्योंको शोब्र ही वाक्-सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उनके मुँहसे निकली हुई हर एक वात सत्य होती है। कृतिकायुक्त बुधवारोंको किया हुआ श्रीविष्णुजा यजन तथा दही-भातका दान मनुष्योंके उत्तम संतानकी प्राप्ति करनेवाला होता है। कृतिकायुक्त गुरुवारोंको धनवे व्राजजीजा पूजन तथा मधु, सोना और धीका दान करनेसे मनुष्योंके भोग-विभवकी वृद्धि होती है। कृतिकायुक्त शुक्रवारोंको गजनीन गणेशजीकी पूजा करनेसे तथा गम्य, पुण्य एवं अन्नसा दान देनेसे मानवोंके भोग्य पश्चात्यकी वृद्धि होती है। उस दिन सोना, चौंदी आदिका दान करनेवे वश्योंसे भी उत्तम पुत्रली प्राप्ति होती है। कृतिकायुक्त शनिवारोंको दिक्षालोकी वन्दन, दिग्मजों, नागों और सेतुबांधका पूजन, विनेवंती दृढ़, गर-हारी विष्णु तथा शानदाता व्रष्णाका आयोग और भन्त्तरि एवं दोनों अधिरोहुकारोंका पूजा करनेसे रोग, दुर्बुद्धि एवं असालमृत्युजा निवारण होता है तथा तात्पुरिक व्याधियोंकी यानि हो जाती है। नम्र लेश, नेत्र और उड़िद आदिद्य विलु ( लेठ, लीठ और नेत्र मिन ), कट, गन्ध और लड़ आदिका तथा धून आदि द्रवनशयोंजा और नुसर्ग, गंगी आदि रक्तों वस्त्रोंसे भी दान देनेसे शर्मदर्शने प्राप्ति

१. यहाँ दूसरे वर्षदर्शकोंदा दार भक्त २. विश्व शूर्ण-वटी व्यालदाकर्ताने भावेन्द्र भर्त भिर्च है। गम्यमास कृतिका व्याप्ति दैत दैत भर्त है।

होती है। इनमें से नमक आदिका मान कम-से-कम एक प्रथम ( सेर ) होना चाहिये और सुवर्ण आदिका मान कम-से-कम एक पल ।

धनकी संक्रान्ति से युक्त पौष मासमें उषःकालमें शिव आदि समस्त देवताओं का पूजन क्रमशः समस्त सिद्धियों की प्राप्ति करनेवाला होता है। इस पूजनमें अगहनी के चावल से तैयार किये गये हविष्यका नैवेद्य उत्तम बताया जाता है। पौष मासमें नाना प्रकार के अज्ञका नैवेद्य विशेष महत्व रखता है। मार्गशीर्ष मासमें केवल अज्ञका दान करनेवाले मनुष्यों को ही सम्पूर्ण अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो जाती है। मार्गशीर्ष मासमें अज्ञका दान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। वह अभीष्ट-सिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेदका सम्पूर्ण ज्ञान, उत्तम अनुष्ठानवा फल, इहलोक और परलोकमें महान् भोग, अन्तमें सनातन योग ( मोक्ष ) तथा वेदान्तज्ञानकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो भोगकी इच्छा रखनेवाला है, वह मनुष्य मार्गशीर्ष मास आनेपर कम-से-कम तीन दिन भी उषःकालमें अवश्य देवताओं का पूजन करे और पौष मासको पूजनसे खाली न जानें दे। उषःकालसे लेकर संग्रहकालतक ही पौष मासमें पूजनका विशेष महत्व बताया गया है। पौष मासमें पूरे महीनेपर जितेन्द्रिय और निराहार रहकर द्विज प्रातःकाल-से मध्याह्न कालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे। तत्पश्चात् रातको सोनेके समयतक पञ्चाक्षर आदि मन्त्रों का जप करे। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण ज्ञान पाकर शरीर छूटनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। द्विजेतर नरनारियों को त्रिकाल स्नान और पञ्चाक्षर मन्त्रके ही निरन्तर जपसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। हृष्मन्त्रों का सदा जप करनेसे बड़े-से-बड़े पारोंका भी नाश हो जाता है।

सारा चरणचर जगत् विन्दु-नादस्वरूप है। विन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्तिस्वरूप ही है। नाद विन्दुवा और विन्दु इस जगत् का आधार है, ये विन्दु और नाद ( शक्ति और शिव ) सम्पूर्ण जगत् के आधार-स्वरूपसे स्थित हैं। विन्दु और नादसे युक्त सब कुछ शिवस्वरूप है; क्योंकि वही सबका आधार है। आधारमें ही आधेयका समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरणकी स्थितिसे ही सृष्टिकालमें जगत् का प्रादुर्भाव होता है, इसमें संशय नहीं है। शिवलिङ्ग विन्दु-नादस्वरूप है। अतः उसे जगत् का कारण बताया जाता है। विन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनोंका संयुक्त स्वरूप ही शिवलिङ्ग कहलाता है।

अतः जगत् के संकटसे छुटकारा पानेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। विन्दुरूपा देवी उमा माता हैं और नादस्वरूप भगवान् शिव पिता। इन माता-पिताके पूजित होनेसे परमानन्द की ही प्राप्ति होती है। अतः परमानन्दका लाभ लेनेके लिये शिवलिङ्गका विदेश रूपसे पूजन करे। देवी उमा जगत् की माता हैं और भगवान् शिव जगत् के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी छपा निः अधिकाधिक वढ़ती रहती है॥। वह पूजकपर कृपा करे उसे अपना आनन्दरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अतः मुनीश्वरे आनन्दरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये, शिवलिङ्गको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भर्ग ( शिव पुरुषरूप है और भर्गा ( शिवा अथवा शक्ति ) प्रकृति कहलाता है। अव्यक्त आनन्दरिक अधिष्ठानरूप गर्भको पुरुष कहते हैं और सुधक आनन्दरिक अधिष्ठानभूत गर्भको प्रवृत्ति। पुरुष आदिगर्भ है, वह प्रकृतिरूप गर्भसे युक्त होनेके कारण गर्भवा है; क्योंकि वही प्रकृतिका जनक है। प्रकृतिमें जो पुरुषव संयोग होता है, यही पुरुषसे उसका प्रथम जन्म कहलाता है अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्वादिके क्रमसे जो जगत् का व्यक्त होने है, वही उस प्रकृतिका द्वितीय जन्म कहलाता है। जीव पुरुष से ही वारंवार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है। मायाद्वार अन्यरूपसे प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है, जीवका शरीर जन्मकालसे ही जीर्ण ( छः भावविकारोंसे युक्त ) होने लगता है, इसीलिये उसे 'जीव' संज्ञा दी गयी है। जो जन्म लेता और विविध पाशोंद्वारा तनाव ( वन्धन ) में पड़ता है, उसका नाम जीव है; जन्म और वन्धन जीव-शब्दका अर्थ ही है। अतः जन्म-मृत्युरूपी वन्धनकी निवृत्तिके लिये जन्मके अधिष्ठानभूत मातृ-पितृस्वरूप शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये।

गायका दूध, गायका दही और गायका घी—इन तीनों को पूजनके लिये शहद और शक्करके साथ पृथक्-पृथक् भी रखें और इन सबको मिलाकर सम्मिलितरूपसे पञ्चमृत भी तैयार कर ले। ( इनके द्वारा शिवलिङ्गका अभिषेक एवं स्नान

\* माता देवी विन्दुरूपा नादस्वरूपः शिवः पिता ॥

पूजिताभ्यां पितृस्यां तु परमानन्द एव हि ।

परमानन्दलभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥

सा देवी जगत् माता स शिवो जगतः पिता ।

पित्रोः शुश्रूषके भित्यं कृपाधिक्यं हि वर्तते ॥

( शिवपु० वि० १६ । ९१—९३ )

कराये), किन्तु गायके दूध और अम्बके मिलाये नैवेद्य तैयार करके प्रणव मन्त्रके उच्चारणशूर्वक उसे भगवान् शिवको अपित करं। समर्पण प्रणवको ध्वनिलिङ्ग कहते हैं। स्वयमभूलिङ्ग नाद-स्वरूप होनेके कारण नादलिङ्ग कहा गया है। यन्त्र या अर्था विन्दुत्खल्प होनेके कारण विन्दुलिङ्गके रूपमें विख्यात है। उसमें अचलरूपसे प्रतिष्ठित जो शिवलिङ्ग है, वह मकार-स्वरूप है, इसलिये मकारलिङ्ग कहलाता है। सनाती निकालने आदिके

लिये जो चरलिङ्ग होता है, वह उकारस्वरूप होनेसे उकारलिङ्ग कहा गया है तथा पूजाकी दीक्षा देनेवाले जो गुरु या आचार्य हैं, उनका विग्रह अकारका प्रतीक होनेसे अकारलिङ्ग माना गया है। इस प्रकार अकार, उकार, मकार, विन्दु, नाद और ध्वनिके रूपमें लिङ्गके छः भेद हैं। इन छहों लिङ्गोंकी नित्य पूजा करनेसे साधक जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। ( अध्याय १६ )

### पट्टलिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप ( उँकार ) और स्थूल रूप ( पञ्चाक्षर मन्त्र )का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यव्रजके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकोंतकका विवेचन करके कालातीत, पञ्चावरणविशिष्ट शिवलोकके अनिर्वचनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता

अ॒ष्टुपि वोले—प्रभो ! गहामुने ! आप हमारे लिये प्रमद्यः पट्टलिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य तथा शिवभक्तके पूजनमा प्रवार बताइये ।

सत्तजीने कहा—महापियो ! आपलोग तपत्याके धनी हैं, आपने यह वज्ञा सुन्दर प्रध उपस्थित किया है। किंतु इसपा टीक-टीक उत्तर महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। तथापि भगवान् शिवकी कृपासे ही मैं इस विषयका वर्णन करूँगा। मैं भगवान् शिव हमारी और आपलोगोंकी रक्षा भारी भार वारंवार स्वयं ही ग्रहण करूँ। 'प'नाम है प्रकृतिसे उत्तम संग्रामरूपी महात्मागरका। प्रणव इससे पार करनेके लिये दूसरी(नव) जात है। इसलिये इस वोकारको 'प्रणव'की पंख देते हैं। उँदार अपने जप करनेयादे साधकोंसे कहता है— 'प—प्रपञ्च, न—नहीं है, यः—तुम लोगोंके लिये ।' अतः इन भास्त्रोंलेकर भी इनी पुराय 'ओम'की 'प्रणव' नामसे जानते हैं। इन्होंना दूसरा भाव दों है—'प—प्रपञ्चेण, न—नयेत्, यः—तुमसाग् मोक्षम् इति या प्रणवः। अथात् यद तुम सब उत्तमात्मो दत्तद्वारक भोक्तक पूर्वजा देगा।' इन अभिशब्दोंमें भी इसे शृण्य-कुनि 'प्रणव' दर्शने हैं। अपना जप करनेयादे ऐसियोंके लिये अपने मन्त्री पूजा करनेयादे उपालकके समस्य यस्तोऽपि नाम परके यह दिव्य शूलन भाव देता है; इसलिये भी इसका नाम प्रणव है। उन मात्राहिनि नदेश्वरों ( नदा भूमी ) दूसरा यहाँ है। मैं पात्रात्मा प्रहृष्टत्वमें नद लगायूँ, उपालक दू. इसलिये प्रणव यहाँ है। प्रणव

साधकको नव अर्थात् नवीन ( शिवस्वरूप ) कर देता है। इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे प्रणवके नामसे जानते हैं। अथवा प्रकृत्यरूपसे नव—दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह प्रणव है।

प्रणवके दो भेद यताये गये हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो 'ओम' है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिये और 'नमः शिवाय' इस पाँच अक्षरवाले मन्त्रको स्थूल प्रणव गमणना चाहिये। जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पाँचों अक्षर सुष्टुप्-स्वरसे व्यक्त हैं, वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुषके लिये सूक्ष्म प्रणवके उपका विधान है। वही उनके लिये समरल गाभनोंका सार है। ( यथापि जीवन्मुक्तके लिये किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वह निरूपण है, तथापि दृग्संरीक्षणमें जयतक उनका द्वारीर रहता है, तदत्तर उसके द्वाय प्रणव-जपकी सद्भज साधना स्वतः होती रहती है। ) यह अपनी देहद्वा विलय होनेला सूक्ष्म प्रणव मन्त्रशा जप और उनके अर्थमूल परमात्मत्वका अनुनंदन करता रहता है। जब द्वारीर नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्णद्वाक्षरूप शिवसो प्राप्त रहता है—यह सुनिश्चित यत है। जो अर्थात् अनुनंदन न करने देवता मन्त्रवा द्वर रहता है, उसे निधन ही देगढी प्राप्ति होती है। इसलेह सीधे वर्णित मन्त्रवा जप यह लिया है, उसे अन्यत इसे लिया ग्राह ही जाता है। मूल प्रणवके भी इन द्वारा दीर्घ दीर्घदे भैस्त्रे दो लघ उपलेह जाते हैं। अतः, उपर, मन्त्र, विन्दु, नाद, इम्प, यज्ञ और यज्ञ—इनमें सुल दो प्रकार हैं, उन्हें 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। यह दीर्घिंश्च ही दृढ़दमें

स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्— इन तीन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'हस्त प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनोंकी एकता है। वह त्रितत्त्वरूप है, ऐसा समझकर हस्त प्रणवका जप करना चाहिये। जो अपने समस्त पापोंका क्षय करना चाहते हैं, उनके लिये इस हस्त प्रणवका जप अल्पतम् आवश्यक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि इनके पाँच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्योंकी कामनाके विषय हैं। इनकी आकाश मनमें लेकर जो कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न होते हैं, वे दस प्रकारके पुरुष प्रवृत्त (अथवा प्रवृत्तिमार्ग) कहलाते हैं तथा जो निष्काम भावसे शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त (अथवा निवृत्तिमार्ग) कहे गये हैं। प्रवृत्त पुरुषोंको हस्त प्रणवका ही जप करना चाहिये और निवृत्त पुरुषोंको दीर्घ प्रणवका। व्याहृतियों तथा अन्य मन्त्रोंके आदिमें इच्छानुसार शब्द और कलासे युक्त प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। वेदके आदिमें और दोनों संचायोंकी उपासनाके समय भी ओंकारका उच्चारण करना चाहिये।

प्रणवका नौ करोड़ जप करनेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़का जप करनेसे वह पृथ्वीतत्त्वपर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़का जप करके वह जल-तत्त्वको जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जपसे अभितत्त्वपर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़का जप करके वह वायुतत्त्वपर विजयी होता है। फिर नौ करोड़के जपसे आकाशको अपने अधिकारमें कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दपर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़का जप करके अहंकारको भी जीत लेता है। इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणवका जप करके उत्कृष्ट वोधको प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योगका लाभ करता है। शुद्ध योगसे युक्त होनेपर वह जीवनमुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। सदा प्रणवका जप और प्रणवरूपी शिवका स्थान करते-करते समाधिमें स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीरमें प्रणवके ऋणि, छन्द और देवता आदिका न्यास करके फिर जप आरम्भ

करना चाहिये। अकारादि मातृका वर्णोंसे युक्त प्रणवका अपने अङ्गोंमें न्यास करके मनुष्य ऋणि हो जाता है। मन्त्रोंके दृश्यविधि संस्कार, मातृकान्यास तथा

१. मन्त्रोंके दस संस्कार ये हैं—जनन, दोपन, वोधन, तापन, अभिपेचन, विगतीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन और आप्यावत। इनकी विधि इस प्रकार है—

भोजपत्रपर गोरोचन, कुङ्गम, चन्द्रनादिसे आत्मामिषुव त्रिकोण लिखे, फिर तीनों कोणोंमें छः-छः समान रेखाएँ खींची। ऐसा करनेपर ४९ त्रिकोण कोष्ठ बनेंगे। उनमें ईशानकोष्ठसे मातृकावर्ण लिखकर देवताका आवाहन-पूजन करके मन्त्र एक-एक वर्ण उद्धार करके अलग पत्रपर लिखे। ऐसा करनेपर 'जनन' नामका प्रथम संरक्षार होगा।

हंसमन्त्रका सम्पुट करनेसे एक हजार जपदारा मन्त्रका दूसरा 'दीपन' संस्कार होता है। यथा—हंसः रामाय नमः सोऽहन्।

हूँ-वीज-सम्पुटित मन्त्रका पाँच हजार जप करनेसे 'वोद्ध नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा—हूँ रामाय नमः हूँ।

फट्-सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'ताइः नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा—फट् रामाय नमः फट्।

भूर्जपत्रपर मन्त्र लिखकर 'रो हंसः ओ' इस मन्त्रसे जल्दी अभिमन्त्रित करे और उस अभिमन्त्रित जल्दी अद्वल-पत्रादिद्वारा मन्त्रका अभिषेक करे। ऐसा करनेपर 'अभिषेक' नामक पाँचवाँ संस्कार होता है।

'ओ ओ वपट्' इन वर्णोंसे सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'विगतीकरण' नामक छठा संस्कार होता है। यथा—ओ ओ वपट् रामाय नमः वपट् ओ ओ।

स्वथा-वपट्-सम्पुटित मूळमन्त्रका एक हजार जप करनेपर 'जीवन' नामक सातवाँ संस्कार होता है। यथा—स्वथा वपट् रामाय नमः वपट् स्वथा।

दुर्घ, जल एवं धूतके द्वारा मूलमन्त्रसे सौ बार तर्पण करना। 'तर्पण' संस्कार है।

हीं-वीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'गोपन' नाम नवम संस्कार होता है। यथा—हीं रामाय नमः हीं।

हीं-वीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'आप्यावत' नामक दसवाँ संस्कार होता है। यथा—हीं राम नमः हीं १०००।

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मन्त्र शोष सिद्धिप्रद होता है।

पूर्वाधोगत आदिके लाय समूर्ण न्यासफल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भाववाले पुष्टोंके द्विये स्थूल प्रणवका जय ही अभीष्ट साधक होता है।

किया, तप और जपके योगसे शिवयोगी तीन प्रकारके होते हैं—जो क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी और द्वयोगी बहलते हैं। जो धन आदि वैभवोंसे पूजा-आग्रहीय तंत्र वरके द्वाय आदि अहंसे नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी पूजामें लगा रहता है, वह ‘क्रियायोगी’ कहलाता है। पूजामें संटान रहकर जो परिमित भोजन करता, वाह्य इन्द्रियोंको जीतकर वशमें किये रहता और मनको भी वशमें वरके परदोह आदिसे दूर रहता है, वह ‘वशयोगी’ कहलाता है। इन सभी सद्गुणोंसे युक्त होकर सो सदा शुद्धभावसे रहता तथा समझ काम आदि दोपांसे रहित हो शान्तचित्तसे निरन्तर जप किया करता है; उसे गहराया पुण्य ‘अपयोगी’ मानते हैं। जो मनुष्य खोलद्व प्रसारके उपचारसे शिवयोगी महस्ताथोंकी पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्तिकी प्राप्त कर देता है।

दिलो ! अब मैं जपनेगका वर्णन करता हूँ । तुम सब  
लोग प्यास देकर सुनो । तपस्वा बरनेवालेके लिये जपका  
उपदेश किया गया है; व्योकि वह जब करते-करते अपने  
आपकी स्वभाव शुद्ध ( निष्पाप ) कर लेता है । ब्राह्मणो !  
पहले 'नमः' पढ़ हो, उसके बाद चतुर्थी विमत्तिमें 'शिव'  
मन्त्र हो हो पठत्स्वाताम 'नमः शिवाय' मन्त्र होता है ।  
इसे 'शिवपञ्चश्वर' कहते हैं । यह तारुल प्रणवरूप है ।  
इस पञ्चश्वरके जससे ही भुज्य समूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर  
सकते हैं । पञ्चश्वरमन्त्रके आदिग्रंथोंमार लगतकर ही नदा  
उडाय जर रखता चाहिए । दिलो ! शुद्धके कुलसे पञ्चश्वर-  
मन्त्रमा डरेगा पाठर जहाँ सुषुप्तदर्क निवास किया जा  
ता है, ऐसी उच्चम भूमितर भूमितेपूर्वाम ( शुद्ध ) में  
( महावर्थमें ) वासम वरके सुषुप्तमधर्दी न्युर्दशीतक  
स्थितत वह दरखल रहे । भार इसीर भारीके मर्टमें अल्पा

१८५ एवं उत्तराखण्ड की दौड़ियों का अनुसूचा है। इनमें  
प्रथम दौड़ियों का नियम संक्षेप सहित दिया है। इनमें सदृश विभिन्न  
दौड़ियों का नियम दिया है। इनमें सबसे पहली दौड़ियों का नियम दिया है। इनमें सबसे पहली दौड़ियों का नियम दिया है।

विद्याष्ट महत्त्व रखते हैं। यह समय तब समर्पिते उत्तमोत्तम माना गया है। साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियोंको वशमें रखें, अपने स्वामी एवं मत्ता-पिताजी नित्य सेवा करे। इस नियमसे रहकर जन करनेवाला पुरुष एक सहज जरसे ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह शुभ्री होता है। भगवान् शिवका निरन्तर चिन्तन करते हुए पञ्चाशर मन्त्रमा पाँच लाख जप करे। जपकालमें इस प्रकार ध्यान करे। कल्याणदाता भगवान् शिव कमलके आनन्दपर पिराजमान है। उनका मत्तक श्रीगङ्गाजी तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है। उनकी धारों जाँघपर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं। वहाँ खड़े हुए वडे-वडे गण भगवान् शिवजी शोभा घड़ा रहे हैं। महादेवजी अपने चार हाथोंमें मृगमुद्रा, टक्क तथा चर एवं अग्नयज्ञी मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। इस प्रकार सदा सद्बपर अनुश्रुत करनेवाले भगवान् सदाशिवमा वारंवार स्मरण करते हुए हृदय अधवा सूर्यमण्डलमें पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पञ्चाश्री विद्याला जप करे। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करे (और हुक्मसे बचा रहे)। जरकी समाप्तिके दिन कृष्ण-पञ्चती चतुर्दशीको प्रातःकाल नित्यकर्म करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थानमें शौचनन्तोत्यादि नियमोंसे युक्त हो शुद्ध हृदयसे पञ्चाशर मन्त्रमा वारह सहस्र जप करे। तत्पश्चात् पाँच समलीक व्रातांगोंका, जो थ्रेष्ट एवं शिवमक्त हों, वरण करे। इनके अतिरिक्त एक थ्रेष्ट आचार्यव्रतका भी वरण करे और उसे साम्य सदाशिवमा ल्लूप रमते। इंशान, तत्पुरुष, अन्द्रेर, वामदेव तथा नर्योजात—उन पाँचोंके प्रतीक ल्लूप वाँच ही थ्रेष्ट और शिवमन्त्र व्रातांगोंका वरण करनेके पश्चात् पूजन-सामग्रीओं एकत्र करके भगवान् शिवजा पूजन आरम्भ करे। विश्वरूप शिवजी पूजा छम्मल करते होम अरम्भ करे।

अन्य व्यापक के स्तर पर सुनिश्चित रूप से विद्युत  
परिवहन; उर्वरक संस्कारण और अवृद्धि—  
इन प्रमुख संस्कारणों परमाणु विद्युत व्यापक  
व्यापक व्यवस्था के अनुसार व्यवस्था अपनी  
व्यापकता व्यवस्था के अनुसार व्यवस्था के अनुसार  
पर। इसका लाभ एवं निष्ठा है कि यह विद्युत व्यापक  
प्रकार एक अवृद्धि के साथ ही है अपनी विद्युत व्यापक

होमकर्म समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणाके रूपमें एक गाय और बैल देने चाहिये । ईशान आदिके प्रतीकरूप जिन पाँच ब्राह्मणोंका वरण किया गया हो, उनको ईशान आदिका स्वरूप ही समझे तथा आन्वार्यको साम्ब सदाशिवका स्वरूप माने । इसी भावनाके साथ उन सबके चरण धोये और उनके चरणोदक्षसे अपने मस्तकको सोचे । ऐसा करनेसे वह साधक अगणित तीर्थोंमें तत्काल ज्ञान करनेका फल प्राप्त कर लेता है । उन ब्राह्मणोंको भक्ति-पूर्वक दशाङ्ग अन्न देना चाहिये । गुरुपत्रीको पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करे । ईशानादि-क्रमसे उन सभी ब्राह्मणोंका उत्तम अश्रसे पूजन करके अपने देवेशवि-स्तारके अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, बड़ा और पूआ आदि अर्पित करे । तदनन्तर दिक्पालादिको बलि देकर ब्राह्मणोंको भरपूर भोजन कराये । इसके बाद देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे । इस प्रकार पुरश्वरण करके मनुष्य उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है । फिर पाँच लाख जप करनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है । तदनन्तर पुनः पाँच लाख जप करनेपर अतलसे लेकर सत्यलोकतक चौदहों भुवनोंपर क्रमशः अधिकार प्राप्त हो जाता है ।

यदि अनुष्ठान पूर्ण होनेके पहले दीन्यमें ही साधककी मृत्यु हो जाय तो वह परलोकमें उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर पञ्चाक्षर मन्त्रके जपका अनुष्ठान करता है । समस्त लोकोंका एंश्वर्य पानेके पश्चात् वह मन्त्रको सिद्ध करनेवाला पुरुष यदि पुनः पाँच लाख जप करे तो उसे ब्रह्माजीका सामीप्य प्राप्त होता है । पुनः पाँच लाख जप करनेसे सार्वत्र नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है । सौ लाख जप करनेसे वह साक्षात् ब्रह्माके समान हो जाता है । इस तरह कार्य-ब्रह्म ( हिरण्यगर्भ ) का सायुज्य प्राप्त करके वह उस ब्रह्माका प्रलय होनेतक उस लोकमें यथेष्ट भोग भोगता है । फिर दूसरे क्लृप्तका आरम्भ होनेपर वह ब्रह्माजीका पुत्र होता है । उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेजसे प्रकाशित हो वह क्रमशः मुक्त हो जाता है । पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतोद्घारा पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माजीके चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं । सत्यलोकसे ऊपर क्षमालोकतक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णुके लोक हैं । क्षमालोकसे ऊपर शुचिलोकपर्यन्त अद्वैत भुवन स्थित हैं । शुचिलोकके अन्तर्गत कैलासमें प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेव विराजमान हैं । शुचिलोकसे

ऊपर अहिंसालोकपर्यन्त छण्ण भुवनोंकी स्थिति है । अहिंसालोकका आश्रय लेकर जो शानकैलास नामक नगर शोषा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं । अहिंसालोकके अन्तमें कालचक्रकी स्थिति है । यहाँतक महेश्वरके विराटस्वरूपका वर्णन किया गया । वहाँतक लोकोंका तिरोधान अथवा लय होता है । उससे नीचे कर्मोंका भोग है और उससे ऊपर ज्ञानका भोग । उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया ।

( अब में कर्ममाया और ज्ञानमायाका तात्पर्य वता रह हूँ— ) ‘मा’ का अर्थ है लक्ष्मी । उससे कर्मभोग यात—प्राप्त होता है । इसलिये वह माया अथवा कर्ममाया कहलाती है । इसी तरह मा अर्थात् लक्ष्मीसे ज्ञानभोग यात अर्थात् प्राप्त होता है । इसलिये उसे माया या ज्ञानमाया कहा गया है । उपर्युक्त सीमासे नीचे नक्षत्र भोग है और ऊपर नित्य भोग । उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर नहीं । वहाँसे नीचे ही कर्ममय पाशोद्घारा बन्धन होता है । ऊपर बन्धनका सद अभाव है । उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मोंका अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियोंमें चक्रर काटते हैं । उससे ऊपरके लोकोंमें निष्काम कर्मका ही भोग वताया गया है । विन्दुपूजामें तत्पर रहनेवाले उपासक वहाँसे नीचेके लोकोंमें ही घूमते हैं । उसके ऊपर तो निष्कामभावसे शिवलिङ्गकी पूजा करनेवाले उपासक ही जाते हैं । जो एकमात्र शिवकी ही उपासनामें तत्पर हैं, वे उससे ऊपरके लोकोंमें जाते हैं । वहाँसे नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि । नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त पुरुष । नीचे कर्मलोक है और ऊपर ज्ञानलोक । ऊपर मद और अहंकारका नाश करनेवाली नद्या है, वहाँ जन्मजनित तिरोधान नहीं है । उसका निवारण किये विना वहाँ किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है । इस प्रकार तिरोधानका निवारण करनेसे वहाँ ज्ञान-शब्दका अर्थ ही प्रकाशित होता है । आधिभौतिक पूजा करनेवाले लोग उसे नीचेके लोकोंमें ही चक्रर काटते हैं । जो आध्यात्मिक उपासना करनेवाले हैं, वे ही उससे ऊपरको जाते हैं ।

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मोंसे युक्त हो भगवान् शिवके पूजनमें तत्पर रहते हैं, वे कालचक्रकी पार कर जाते हैं । कालचक्रेश्वरकी सीमातक जो विराट महेश्वरलोक वताया गया है, उससे ऊपर वृषभके आकारमें धर्मकीं स्थिति है । वह ब्रह्मचर्यका मूर्त्तिमान् रूप है । उसके सत्य, शौच, अहिं-

और दो—वे चार पाद हैं। वह साक्षात् शिवलोकके द्वारपर नद्दा है। उमा उसके सींग हैं, शम कान हैं, वह वेदधनि-स्त्री शब्दसे विभूषित है। आस्तिकता उसके दोमों नेत्र हैं, शिखर ही उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है। क्रिया आदि धर्म-नष्टी जो वृपभ है, वे कारण आदिमें स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिये। उस क्रियास्त्र वृपभाकार धर्मपर कालातीत शिव आरूढ़ होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी जो अपनी-अपनी आयु है, उसीको दिन कहते हैं। जहाँ धर्मस्त्री वृपभकी स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है न रात्रि। वहाँ जन्म-मरण आदि भी नहीं हैं। वहाँ फिरसे कारणस्त्ररूप ब्रह्माके कारण सत्यलोक-पर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पाञ्चभौतिक गन्ध आदिसे परे हैं। उनकी सनातन स्थिति है। सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है। उनसे ऊपर फिर कारणस्त्र विष्णुके चौदह लोक स्थित हैं। उनसे भी ऊपर फिर कारणस्त्री इडके अष्टाइस लोकोंकी स्थिति मानी गयी है। फिर उनसे भी ऊपर कारणश शिवके छाप्पन लोक विद्यमान हैं। तदनन्तर शिवमम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वही पाँच थावरणोंसे युक्त शानमय कैलास है, जहाँ पाँच गण्डलों, पाँच ब्रह्मकलाओं और आदिशक्तिसे संयुक्त थादि-लिङ्ग प्रतिष्ठित है। उसे परमात्मा शिवका शिवालय कहा गया है। वही पराशक्तिसे युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे भूषि, पात्रा, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँचों कृत्योंमें प्रवीण हैं। उनका श्रीनिवार राजिशानन्दस्त्ररूप है। वे सदा गायत्री धर्ममें ही स्थित रहते हैं और तदा सद्वपर अनुग्रह दिया फरते हैं। वे स्वाम्माराम हैं और सग्धिरपी आसनपर जागीन ही नित्य विराजमान होते हैं। कर्म एवं ध्यान आदिका विद्युत्तम नरमेंसे प्रभावः साधनपर्यन्ते आगे वढ़नेपर उनका धर्मग नाम होता है। नित्य-वैभित्तिक आदि कर्मोद्धारा देखायी यज्ञ करनेसे भगवान् शिवके समानायनकर्ममें भी रहता है। किया आदि जो शिवगःश्वरी कर्म है, उनके द्वय भित्तिन मिश्र दरे। जिन्होंने शिवमन्त्रका गायत्रालक्षण दर दिया एवं भावया जिमरं शिवयी हुएटुके पड़ जूही है, के ८८ संखा ही है—इसमें गोपा नहीं है। शास्त्रमन्त्रभेदों को स्थिति देनी चुकी है। एतमाव अस्मे आमादेस्त्रय या अस्त्रमादा (उपर नस्ता ही भक्तिरा स्वरूप है) जो तुरन् किता, तस्मै रथ और अस्त्रमें भवीन्नोते भित्ति है, यह शिवया भवत्त्वात् वरेते शास्त्रमन्त्रमादा मेंकहों भी श्राव देते हैं। हैमे शूदरिर अस्ती विनाश उद्देश्य सूर्यके दूर देते हैं, रथी भवत इति वर्तमें हुएता जाताह शिव

अपने भक्तके अशानको मिट्ट देते हैं। अशानकी निवृत्ति हो जानेपर शिवशान स्वतः प्रकट हो जाता है। शिवशानसे अग्नि विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और अत्मा-रामत्वकी सम्मक् सिद्धि हो जानेपर मनुष्य कृत्यकृत्य हो जाता है।

इस तरह यहाँ जो कुछ बताया गया है; वह पहले मुद्दे गुरु-परम्परासे प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात् मैंने पुनः नन्दीश्वरके मुखसे इस विषयको सुना था। नन्दिस्थानसे परे जो स्वन्येद्य शिव-वैभव है, उसका अनुभव केवल भगवान् शिवको ही है। साक्षात् शिवलोकके उस वैभवका ज्ञान सबको शिवकी कृपासे ही हो सकता है, अन्यथा नहीं—ऐसा आस्तिक पुरुषोंका कथन है।

साधकको चाहिये कि वह पाँच लाख जर करनेके पश्चात् भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये महाभिप्रेर एवं नवेद्य निवेदन करके शिवभक्तोंका पूजन करे। भक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह साक्षात् शिवत्वरूप ही है। शिवभक्तका शरीर शिवरूप ही है। अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये। जो शिवके भक्त हैं, वे लोक और वेदों नारी क्रियाओंको जानते हैं। जो क्रमशः जितना-जितना शिवमन्दथां जर कर लेता है, उसके शरीरको उतनाही-उतना शिवका शामीप्र प्राप्त होता जाता है, इसमें संदाय नहीं है। शिवभक्त त्वीका रूप देवी पार्वतीका ही स्वरूप है। वह जितना गन्ध जरती है, उसे उतना ही देवीका तांत्रिक्य प्राप्त होता जाता है। भाशक द्वारा शिवत्वरूप देकर परायाकिक प्रज्ञन करे। शक्ति, देव तथा लिङ्गका चित्र बनाकर अपनी भिट्ठे आदिसे इनकी असृनिका निर्माण करके प्रागप्रनिगृहीत गिरावट भावसे इनका पूजन करे। शिवलिङ्गमें शिव नगरह, अस्मेती शक्तिरूप नमस्कर, शक्तिलिङ्गमें देवी नामहर श्रीर अस्मेती शिवरूप नमस्कर, शिवलिङ्गमें न दहन तथा शक्तिरूप शिवत्व नामहर परस्पर नटे हुए शक्तिलिङ्ग श्रीर शक्तिलिङ्गमें प्रति उत्तरायन और प्रगतिर्दीर्घ भवत्ता नटने हुए श्रीर और शक्तिया दृजन रहता है, वह नमस्कर ही शक्ति नामहर, शक्ति निवृत्त ही नमस्कर है। वे गोट्टू उत्तरायन अस्ती दृजन शक्तिरूप ही नमस्कर हैं। वे गोट्टू उत्तरायन अस्ती दृजन शक्ति निवृत्त ही नमस्कर हैं। वे गोट्टू उत्तरायन अस्ती दृजन शक्ति निवृत्त ही नमस्कर हैं।

शिवभक्तकी सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान्पर भगवान् शिव वडे प्रसन्न होते हैं। पाँच, दस वा सौ सप्तश्चक्षीक शिवभक्तोंको बुलावार भोजन आदिके द्वारा पञ्चीसहित उनका सदैव समादर करे। धनमें, देहमें और

मन्त्रमें शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव थौर शक्तिका स्वरूप जानकर निष्पक्ष भावसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष इस भूतल्यपर फिर जन्म नहीं लेता।

( अध्याय १७ )

**बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिङ्ग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका**

**निरूपण और महत्व, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा शिवके भस्मधारणका रहस्य**

**झूँझि दोले—**सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ सूतजी। बन्धन और मोक्षका स्वरूप क्या है ? यह हमें बताइये।

**स्तु जीने कहा—**महर्षियो ! मैं बन्धन और मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षके उपायका वर्णन करूँगा। तुमलोग आदर-पूर्वक सुनो। जो प्रकृति आदि आठ बन्धनोंसे बँधा हुआ है, वह जीव वद्ध कहलाता है और जो उन आठों बन्धनोंसे छूटा हुआ है, उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृति आदिको वशमें कर लेना मोक्ष कहलाता है। बन्धन आगन्तुक है और मोक्ष स्वतः-सिद्ध है। वद्ध जीव जब बन्धनसे मुक्त हो जाता है तब उसे मुक्तजीव कहते हैं। प्रकृति, बुद्धि ( महत्त्व ), त्रिगुणात्मक अहंकार और पाँच तन्मत्राएँ—इन्हें ज्ञानी पुरुष प्रकृत्याद्यष्टक मानते हैं। प्रकृति आदि आठ तत्त्वोंके समूहसे देहकी उत्पत्ति हुई है। देहसे कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्मसे नूतन देहकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बारंबार जन्म और कर्म होते रहते हैं। शरीरको स्थूल, सूक्ष्म और कारणके मेंदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। स्थूल शरीर ( जाग्रत् अवस्थामें ) व्यापार करनेवाला, सूक्ष्म शरीर ( जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें ) इन्द्रिय-भोग प्रदान करनेवाला तथा कारण-शरीर ( सुषुप्तावस्थामें ) व्यात्मानन्दकी अनुभूति बरनेवाला कहा गया है। जीवको उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार मुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वह अपने पुष्पकमोंके फलस्वरूप सुख और पापकमोंके फलस्वरूप दुःखका उपभोग करता है। अतः कर्मपाशसे बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीरसे हेनेवाले शुभ-शुभ कर्मोद्धारा सदा चक्रकी भाँति बारंबार बुमाया जाता है। इस चक्रवर्त् भ्रमणकी निवृत्तिके लिये चक्रकर्ताका स्वरूप एवं आराधन करना चाहिये। प्रकृति आदि जो आठ पाँच बतलाये गये हैं, उनका समुदाय ही महाचक्र है और जो प्रकृतिसे परे है, वह परमात्मा शिव है। भगवान् महेश्वर ही प्रकृति आदि महाचक्रके कर्ता हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे

हैं। जैसे वकायन नामक वृक्षका याला जलको पीता और उगलता है, उसी प्रकार शिव प्रकृति आदिको अपने वशमें करके उसपर शासन करते हैं। उन्होंने सबको वशमें कर लिया है, इसीलिये वे शिव कहे गये हैं। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निःस्वृह हैं। सर्वज्ञता, तृष्णि, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, निः अल्प शक्तिसे संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियोंको धारण करना—महेश्वरके इन छः प्रकारके मानसिक ऐश्वर्योंको केवल वेद जानता है। अतः भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही प्रकृति आदि आठों तत्त्व वशमें होते हैं। भगवान् शिवका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये उन्होंका पूजन करना चाहिये।

**यदि कहें—**शिव तो परिपूर्ण हैं, निःस्वृह हैं; उनकी पूजा कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर यह है कि भगवान् शिवके उद्देश्यसे—उनकी प्रसन्नताके लिये किया हुआ सल्कर्म उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करानेवाला होता है। शिवलिङ्गमें, शिवकी प्रतिमामें तथा शिवभक्तजनोंमें शिवकी भावना करके उनकी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। वह पूजन शरीरसे, मनसे, वाणीसे और धनसे भी किया जा सकता है। उस पूजासे महेश्वर शिव, जो प्रकृतिसे परे हैं, पूजकपर विशेष कृपा करते हैं और उनका वह कृपा-प्रसाद सत्य होता है। शिवकी कृपासे कर्म आदि सभी बन्धन अपने वशमें हो जाते हैं। कर्मसे लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ जब वशमें हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और स्वात्मारामल्पसे विराजमान होता है। परमेश्वर शिवकी कृपासे जब कर्मजनित शरीर अपने वशमें हो जाता है, तब भगवान् शिवके लोकमें निवासका सौभाग्य प्राप्त होता है। इसीको सालोक्य-मुक्ति कहते हैं। जब तन्मत्राएँ वशमें हो जाती हैं, तब जीव जगद्भास-सहित शिवका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्य मुक्ति है, उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिवके समान हो जाते हैं। भगवान् का महाप्रसाद प्राप्त होनेपर बुद्धि भी वशमें हो जाती

है। शुद्धि प्रकृतिका कार्य है। उसका वर्णन में होना सार्थिमुक्ति  
कहा गया है। पुनः भगवानका महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर  
प्रकृति वशमें ही जायगी। उस समय भगवान् शिवका मानसिक  
ऐश्वर्य विना यत्के ही प्राप्त ही जायगा। सर्वज्ञता और तृष्णि  
आदि जो शिवके ऐश्वर्य हैं, उन्हें पाकर मुक्त पुरुष अपने  
थात्मामें ही विराजमान होता है। वेद और शास्त्रोंमें विश्वास  
रखनेवाले विद्वान् पुरुष हसीको लायुज्य मुक्ति कहते हैं। इस  
प्रकार लिङ्ग आदिमें शिवकी पूजा करनेसे क्रमव्यः मुक्ति खतः  
प्राप्त हो जाती है। इसलिये शिवका कृपाप्रणाद प्राप्त करनेके  
लिये तत्समवन्धी किया आदिके द्वारा उन्हींका पूजन करना  
एिये। शिवक्रिया, शिवतप, शिवमन्त्र-जप, शिवज्ञान और  
विष्णुज्ञानके लिये सदा उत्तरोत्तर अन्यान् वदाना चाहिये।  
तिदिन प्रातःकालसे रातको सोने तमयतक और जन्मकालसे  
कर मृत्युर्पर्यन्त सारा उमय भगवान् शिवके निन्तनमें ही  
लाना चाहिये। सद्योजातादि मन्त्रों तथा नाना प्रकारके  
पंडितों जो शिवकी पूजा करता है, वह शिवको ही प्राप्त होगा।

धूपि चोले-उत्तम प्रकाश पालन करनेवाले सहजी !  
ज्ञानवारिने शिखजीकी पूजाका क्या विधान है, वह हमें  
दिये ।

। स्वतंजीनि फला-प्रिजो ! मैं लिङ्गोंके क्रमका वधवत्  
जीन पर रख दूँ । तुम सब लोग रुनो । वह प्रणव ही  
अता अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिङ्ग है । उसे दृश्य  
अस्य सासी । दृश्य लिङ्ग निष्कल होता है और स्वृल  
द्वि शब्द । प्रजापरमन्मतो ही स्वृल लिङ्ग कहते हैं । उन दोनों  
शब्दों लिङ्गोंचा पूजन तप कहलाता है । वे दोनों ही लिङ्ग  
आप भोग देनेवाले हैं । शेष लिङ्ग और प्रह्लनि-लिङ्गोंके  
बीच प्रयोग सिफ है । उन्हें भगवान् शिव ही विद्वानपूर्वक  
ही बताते हैं । दृश्य कोई नहीं जानता । पृथ्वीके विकासन्तर  
ही । इस काल है, उन-उनको मैं तुम्हें कहा रख दूँ । उनमें  
स्वृल अप्रथम है । दृश्य स्त्रियों, तीव्रता प्रतिष्ठित  
है, स्त्रीय वस्तुलिङ्ग और संभवते तुम्हें है । देवताओंमें स्त्री  
द्विष्टि ही है । उनके अभीष्ट प्रटट उन्मेंते लिंग पृथ्वीके  
प्राची ही वस्तुयों वाले हुए भगवान् शिव पृथ्वीके अस्तुत्यों  
में स्वृल ने विद्वानपूर्वक भावान्वयनके लकड़ी लकड़ी से बताते हैं ।  
वे एक तुरंत भी भव्य प्रटट उन्मेंते वास्तव अस्तुत्यों  
के बारे बताते हैं । अभीष्ट वही वस्तुन्वार्ताके गम्भीर  
होते हैं । उस स्वृलन्वार्ताकी दृश्योंके उत्तरवार्ता इन लकड़ी

ही बद्धने लगता है। सोने-चाँदी आदिके पत्रपर, भूमिपर अथवा वेदीपर अपने हाथसे लिखित जो शुद्ध प्रणव-मन्त्रलघु लिङ्ग है, उसमें तथा मन्त्रलिङ्गका अर्थेखम करके उसमें भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे। ऐसा विनुनाद-मय लिङ्ग स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकारका होता है। इसमें शिवका दर्शन भावनामय ही है, ऐसा निसंदेह कहा जा सकता है। जिनको जहाँ भगवान् शंखके प्रकट होनेका विश्वास हो, उसके लिये वहीं प्रकट होकर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। अपने हाथसे लिखे हुए यन्त्रमें अथवा अहुत्रिम स्थावर आदिमें भगवान् शिवका आवाहन करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेसे साधक खयं ही ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है और इस साधनके अध्याससे उसको ज्ञान भी होता है। देवताओं और ऋषियोंने वात्मसिद्धिके लिये अपने हाथसे वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक शुद्धमण्डलमें शुद्ध भावनाद्वारा जिस उत्तम शिवलिङ्गकी स्थापना की है, उसे पौरुष लिङ्ग कहते हैं। तथा वही प्रतिष्ठित लिङ्ग कहलाता है। उस लिङ्गकी पूजा करनेसे सदा पौरुष ऐश्वर्यको प्राप्ति होती है। महान् व्राहण और महाधनी राजा किंवा क्रारीगरसे शिवलिङ्गका निर्माण करकर जो मन्त्रपूर्वक उक्तकी स्थापना करते हैं, उसके द्वारा स्थापित हुआ वह लिङ्ग भी प्रतिष्ठित लिङ्ग कहलाता है। किंतु वह प्राकृत लिङ्ग है। इसलिये प्राकृत ऐश्वर्य-भोगको ही देनेवाला होता है। जो शक्तिशाली और नित्य होता है, उसे पौरुष दहते हैं तथा जो दुर्दल और अनित्य होता है, वह प्राकृत कहलाता है।

लिङ्ग, नामि, जिता; नानाप्रभाग और शिख के क्रमसे कटि, हृदय और मत्तक तीनों न्यानोंमें जो दिक्षकों भावना की गयी है, उन आप्यात्मिक विद्युतों ही चरणित्र बनते हैं। पवित्रको पौराणिक बताया गया है और भूगत से विद्रह, युद्ध प्राहृतिक भालते हैं। हृत आदिको पौराणिक अनन्त चतुर्दिव्य और युज्ञ अदिको प्राहृतिक। आठों नम्रक धन्यरो प्राहृतिक अनन्तन् चतुर्दिव्य और शक्ति ( अनाहती ) एवं गैरुन्यों पौराणित्र। अनिता अदिव आठों विद्युतोंको देनेवाला ही ऐश्वर्य है, उन्होंने दैवत ऐश्वर्य अनन्त चतुर्दिव्य। कुदूर एवं लाल अदिव दिव्योंसे वर्णित पुरुष प्राहृत देखर्य बनते हैं। जातियोंमें सर्वो प्रथम अम विद्युत वर्णन लिया गया है। रसायन विद्युतोंसे उत्तर चार अमरीष वसुवंश के देनेवाला है। दूसरा प्रथम विद्युत इविद्येशी सर्वात् उत्तमी प्रथम वर्णनेवाला है। तीसरी प्रथम

वैश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करनेवाला है तथा मुन्दर शिललिङ्ग शुद्धोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकमय लिङ्ग तथा वाणलिङ्ग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपनान हो तो दूसरेका स्फटिक या वाणलिङ्ग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। स्त्रियों, विशेषतः सधवाओंके लिये पर्थिव लिङ्गकी पूजाका विधान है। प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिङ्गकी पूजा बतायी गयी है। परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिङ्गकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियों ! वचपनमें, जवानीमें और बुद्धिमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिङ्गका पूजन स्त्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है। शृहासक्त स्त्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर समूर्ण अभीष्टको देनेवाली है।

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे। इष्टदेवका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए खीर आदि पकवानोंद्वारा नैवेद्य अर्पण करे। पूजाके अन्तमें शिवलिङ्गको सम्पुटमें पघराकर वरके मीतर पृथक् रख दे। जो निवृत्तिमार्ग पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिङ्ग-पूजाका विधान है। उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा अपने मस्तकपर धारण करें।

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और शिवाग्निजनित। लोकाग्निजनित या लौकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रखें। मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी भस्मसे शुद्धि होती है। कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी भस्मसे ही शुद्धि मानी गयी है। वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये वयायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये। वेदाग्निजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये। मन्त्र और त्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है। उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है। अचोर-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर वेल-

१. अचोर-मन्त्रको पृष्ठ ३६ की टिप्पणीमें देखिये।

की लकड़ीको जलाये। उस मन्त्रसे अभिमन्त्रित अग्निश्च शिवाग्नि कहा गया है। उसके द्वारा जले हुए आङ्गों वे भस्म हैं, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोवर अफ़ गायमात्रके गोवरको तथा शमी, पीपल, पलाश, बड़, थम्ल-तास और वेर—इनकी लकड़ीयोंको शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है। अथवा कुछाँ अग्निमें शिवमन्त्रके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उस भस्मको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये घड़ेमें भरकर रख दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या श्रोमात्री द्वारा लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं पूज्य होता है। पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म-शब्दका ऐसा अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत को ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सद्य आदिको जल (राँधकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जल नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी मात्रा ग्रहण करके जलाता, जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता है उस सारतर वस्तुसे खदेहका पोषण करता है, उसी प्रपञ्चकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेयरूपसे विकाप्रपञ्चको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण ही है। प्रपञ्चको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने शरे लगाया है। राख, भभूत पोतनेके वहाने जगत्के साक्षे ग्रहण किया है। अपने शरीरमें अपने लिये रल्स्वरूप भल इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे कैवल्याके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय, वृक्ष सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे धूटनेको धू किया है। इसी तरह उनके सारे अङ्ग विभिन्न वस्तुओंके रूप हैं। महेश्वरने अपने ललाटमें तिलकरूपसे जो विकाधारण किया है, वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका सारतत्त्व वे इन सब वस्तुओंको जगत्के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। भगवान् शिवने ही प्रपञ्चके सार-सर्वस्वको अपने वशमें ले लिया है। अतः इन्हें अपने वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जैसे समस्त मृगोंका हिंसक मृगहिंसक कहलाता है और वह हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उसे कहा गया है।

शकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द, अर्थ है पुरुष और वकारका अर्थ है अमृतस्वरूप शर्ण। सबका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस

भगवान् शिवको अपना आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये; अतः पहले अपने अङ्गोंमें भस्त्र भले। फिर ललाटमें उत्तम श्रियुग्म धारण करे। पूजाकालमें सबल भस्त्रका उपयोग प्रोत्ता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्त्रका। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर दूरने हैं, इसलिये वे सबके गुरुसप्तका आश्रय लेकर स्थित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके फिर उन्दें शिवतत्त्वका बोध करते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं। गुणकी पूजा परमात्मा शिवकी ही पूजा है। गुरुके उपयोगसे बचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है। गुणकी आशाके बिना उपयोगमें लाया हुआ नव कुछ वैसा ही है, जोसे चौर चोरी करके लायी हुई वस्तुआ उपयोग करता है। गुरुसे भी विशेष शानवान् पुरुष मिल जाय तो उसे भी अप्रभुक गुरु बना देना चाहिये। अज्ञानरूपी वन्धनसे छूटना ही जीवगात्रके लिये साध्य पुरुषार्थ है। अतः जो विशेष शानवान् है, वही जीवको उस वन्धनसे छुड़ा सकता है।

जन्म और मरणरूप द्वन्द्वको भगवान् शिवकी मायाने ही अर्पित किया है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह किरणरेखे कन्धनमें नहीं पड़ता। ज्यतक अतीर रहता है, वज्रक जो कियाके ही अधीन है, वह जीव बदल द्वलता है। रुद्र, सूर्य और कारण—तीनों शरीरको वयनं गर लेनेवाली विषया मोक्ष हो जाता है, ऐसा जानी पुरुषोंका अपम है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण

हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्दका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उद्दीको समर्पित कर देना चाहिये। जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा किया, जप, तप, शान और ध्यानमें से एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, शानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीक्षका लाभ-ये कर्माणः किया आदिके फल हैं। निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवभक्त पुरुष उसके वयोरुक्त फलको पाता है। शिव-भक्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य किया आदिका अनुष्ठान करे। न्यायोपार्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें स्थिति करे। जीव-हिंसा आदिसे रहित और धेन्यन्त कलेशशूल्य जीवन विताते हुए प्रशाशनमन्त्रके उपरे अभिषेन्द्रिय अन्न और जलको मुख-स्वरूप माना गया है। अथवा बहुत हैं कि दाखिल पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है। शिवभक्तको भिक्षाक्र प्राप्त हो तो वह शिवभक्तिको बदाजा है। शिव-योगी पुरुष भिक्षाको शूम्हनन्द कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-उहाँ भी भूतल्पर शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने राघवनका रास्त शिरीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समझं शिवके गाहात्म्यको ही प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रास्तको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूरगत नहीं।

पार्थिवलिङ्गके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोद्धारा उसके पूजनकी विशेष प्रवं  
संक्षिप्त विधिका वर्णन

नदनकर पर्यि र लिखी थी थेषुता तथा महिमाका  
प्रेरण परपरे सूतजी कहते हैं—महिमो ! अब मैं विदिक  
कर्त्ता के बाहर भास्त्र-भौतिक सम्बन्धों के लिये विदेश भारतीय  
प्रेरणा पूज्यामी प्रसिद्ध दर्शन करना है। यह पूज्य भगवान्  
प्रेरणा देखने के देश भारती है। आठवें शताब्दी ईस्ट  
इंडिया कम्पनी द्वारा लियिरूप साल और भौत्यों का एक दृश्य  
प्राप्ति था। तत्काल इसकी विविध विवरणों  
के लिये उत्तम गर्व है। असली विवरण इन्द्रिय  
के विवरणों से उत्तम है। असली विवरण इन्द्रिय  
के विवरणों से उत्तम है। असली विवरण इन्द्रिय  
के विवरणों से उत्तम है।

लिये उँची भक्तिवालतके साथ उनम् परमितिहारी केशीका  
दिलीये भवीत्मानी पूजा करे । नहीं या गल्लरुक्त दिलाने, पर्वत-  
पर, ददर्ति, दिक्षाकल्पमें अपाप्य भैरव किंतु परिव राजासौं पर्विध-  
पूजा कर्त्तव्य दियन है । गल्लते ! इन भावासें निराली हुए  
भिरुली दलदृशक लग्नर वही गल्लर्वाहि लग्नर दिर्विष्टा दा-  
लियांत दरे । गल्लकाळे लिये श्रीर, भवित्वाम् लिये लाल,  
कैलाये लिये लीली और घट्टाम् लिये चारों भिरुली दिर्विष्टा  
दलदृश लियाम् है असाम ज्ञाने हो भिरुली लिये लाल, उर्मिये

वेश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करनेवाला है तथा सुन्दर शिललिङ्ग शूद्रोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकमय लिङ्ग तथा वाणलिङ्ग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपना न हो तो दूसरेका स्फटिक या वाणलिङ्ग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। ख्रियों, विशेषतः सधवाओंके लिये पर्थिव लिङ्गकी पूजाका विधान है। प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिङ्गकी पूजा बतायी गयी है। परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिङ्गकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियों। वचनमें, जवानीमें और बुद्धापेमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिङ्गका पूजन ख्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है। गृहासक्त ख्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर समूर्ज अभीष्टको देनेवाली है।

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे। इष्टदेवका अभियेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए खीर आदि पकवानोंद्वारा नैवेद्य अर्पण करे। पूजाके अन्तमें शिवलिङ्गको सम्पुटमें पधराकर घरके भीतर पृथक् रख दे। जो निवृत्तिमार्गी पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिङ्ग-पूजाका विधान है। उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा अपने मस्तकपर धारण करें।

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—लोकान्जिजनित, वेदान्जिजनित और शिवान्जिजनित। लोकान्जिजनित या स्तैकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रखें। मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी भस्मसे शुद्धि होती है। कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी भस्मसे ही शुद्धि मानी गयी है। वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये वयायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये। वेदान्जिजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है। उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है। अत्रोर्-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर वेल-

की लकड़ीको जलाये। उस मन्त्रसे अभिमन्तित अग्निके शिवाग्नि कहा गया है। उसके द्वारा जले हुए काढ़ा रे भस्म है, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोवर अथवा गायमात्रके गोवरको तथा शामी, पीपल, पलाश, वड, थाल ताम और वेर—इनकी लकड़ीश्वरोंकी शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है। अथवा कुड़ी, अग्निमें शिवमन्त्रके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उसको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये बड़ेमें भरकर दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या शोभाकी गौंडी लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं श्रद्धिहोता है। पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म-दावद्वा ऐसा अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत को ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सस्य आहिको जूँ (रौंथकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जूँ नामा प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी ग्रहण करके जलाता, जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता। उस सारतर वस्तुसे खदेहका पोषण करता है, उसी प्रपञ्चकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेयहृपसे प्रपञ्चको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण है। प्रपञ्चको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने जूँ लगाया है। राजा, भभूत पोतनेके वहाने जगत्‌के सारे ग्रहण किया है। अपने शरीरमें अपने लिये रल्लस्वरूप भर इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे वायुके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय, सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे धूतनेको किया है। इसी तरह उनके सारे अङ्ग विभिन्न वस्तुओंमें लग हैं। महेश्वरने अपने ललाटमें तिलकरूपसे जो धारण किया है, वह व्रह्मा, विष्णु और स्वरका सारतत्त्व वे इन सब वस्तुओंको जगत्‌के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। वे भगवान् शिवने ही प्रपञ्चके सार-सर्वस्वको अपने वशमें ले ले है। अतः इन्हें अपने वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जैसे समस्त मुगोंका हिंसक मृगहिंसक कहलाता है और हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उन्हें कहा गया है।

शकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द।  
अर्थ है पुरुष और वकारका अर्थ है अमृतस्वरूप शक।  
सद्वका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस वकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द।

१. अघोर-मन्त्रको शुष्ठि ३६ की टिप्पणीमें देखिये।

भगवान् शिवको अपना आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये; अतः पहले अपने अङ्गोंमें भस्स मले। फिर ललाटमें उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकालमें सजल भस्सका उपयोग होता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्सका। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर हटाते हैं, इसलिये वे सबके गुरुरूपका आश्रय लेकर खित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके फिर उन्हें शिवतत्वका बोध कराते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं। गुरुकी पूजा परमात्मा शिवकी ही पूजा है। गुरुके उपयोगसे वचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है। गुरुकी व्याजाके बिना उपयोगमें लाया हुआ सब कुछ वैसा ही है, जैसे चोर चोरी करके लायी हुई वस्तुका उपयोग करता है। गुरुसे भी विशेष ज्ञानवान् पुरुष मिल जाय तो उसे भी यज्ञपूर्वक गुरु बना लेना चाहिये। अज्ञानरूपी वन्धनसे छूटना ही जीवमात्रके लिये साथ्य पुरुषार्थ है। अतः जो विशेष ज्ञानवान् है, वही जीवको उस वन्धनसे छुड़ा सकता है।

३ जन्म और मरणलूप द्वन्द्वको भगवान् शिवकी मायाने ही अर्पित किया है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह फिर शरीरके वन्धनमें नहीं पड़ता। जन्मतक शरीर रहता है, तबतक जो कियाके ही अधीन है, वह जीव बद्ध कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंको वशमें लिए लेनेवाला मोक्ष हो जाता है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका ज़ंगन है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण

हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्द्वका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उन्होंको समर्पित कर देना चाहिये। जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा क्रिया, जप, तप, ज्ञान और ध्यानमें सेष एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, ज्ञानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीप्यका लाभ-ये क्रमशः क्रिया आदिके फल हैं। निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवमत्त पुरुष उसके यथोक्त फलको पाता है। शिव-मत्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य क्रिया आदिका अनुष्ठान करे। न्यायोपार्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें निवास करे। जीव-हिंसा आदिसे रहित और अेत्यन्त क्लेशशूल्य जीवन विताते हुए पञ्चश्वरमन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित अन्न और जलन्दो सुख-स्वरूप माना गया है। अथवा कहते हैं कि दर्दि पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है। शिवमत्तको भिक्षान्न प्राप्त हो तो वह शिवभक्तिको बढ़ाता है। शिव-योगी पुरुष भिक्षान्नको शाम्भुसत्र कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-कहीं भी भूतलूप शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने साधनका रहस्य किसीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समझ शिवके माहात्म्यको ही प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रहस्यको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूसरा नहीं।

( अध्याय १८ )

### पार्थिवलिङ्गके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोद्घारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन

तदनन्तर पार्थिव लिङ्गकी श्रेष्ठता तथा महिमाका र्णन करके सूतजी कहते हैं—महर्पियो! अब मैं वैदिक र्णके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले लोगोंके लिये वेदोक्त मार्गसे। पार्थिव पूजाकी पद्धतिका वर्णन करता हूँ। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनोंको देनेवाली है। आहिकसूत्रोंमें वतायी हुई पर्थिके अनुसार विधिपूर्वक स्थान और संघोपासना करके पहले एथर्त करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋणियों, सनकादि मनुष्यों और पितरोंका तर्पण करे। अपनी रुचिके अनुसार समूर्ण तपकर्मको पूर्ण करके शिवसरणपूर्वक भस्स तथा रुद्राश्रण करे। तत्पश्चात् समूर्ण मनोवाञ्छित फलकी सिद्धिके

लिये ऊँची भक्तिभावनाके साथ उत्तम पार्थिवलिङ्गकी वेदोक्त विधिसे भलीभाँति पूजा करे। नदी या तालावके किनारे, पर्वत-पर, बनमें, शिवालयमें अथवा और किसी पवित्र स्थानमें पार्थिव-पूजा करनेका विवान है। ब्राह्मणो! शुद्ध स्थानसे निकाली हुई मिट्टीको वलपूर्वक लाकर वही साधारणीके साथ शिवलिङ्गका निर्माण करे। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीली और शूद्रके लिये काली मिट्टीसे शिवलिङ्ग बनानेका विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसीसे शिवलिङ्ग बनाये।

शिवलिङ्ग बनानेके लिये प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके

उस शुभ मृत्तिकाको अत्यन्त शुद्ध स्थानमें रख्ले । फिर उसकी शुद्धि करके जलसे सानकर पिण्ठी बना ले और वेदोक्त मार्गसे धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिवलिङ्गकी रचना करे । तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूपी फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे । उस पार्थिवलिङ्गके पूजनकी जो विधि है, उसे मैं विधान-पूर्वक वता रहा हूँ: तुम सब लोग सुनो । ‘ॐ नमः शिवाय’ इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए समरत पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करे—उसपर जल छिड़के । इसके बाद ‘भूरसि०’ इत्यादि मन्त्रसे क्षेत्रसिद्धि करे, फिर ‘आपोऽस्मै०’ इस मन्त्रसे जलका संस्कार करे । इसके बाद ‘नमस्ते रुद्र०’ इस मन्त्रसे स्फाटिका-बन्ध ( स्फटिक शिलाका धेरा ) बनानेकी वात कही गयी है । ‘नमः शम्भवाय०’ इस मन्त्रसे क्षेत्रशुद्धि और पञ्चमृतका प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् शिवभक्त पुरुष ‘नमः’ पूर्वक ‘नीलै-ग्रीवाय०’ मन्त्रसे शिवलिङ्गकी उत्तम प्रतिष्ठा करे । इसके बाद वैदिक रीतिसे पूजन-कर्म करनेवाला उपासक भक्तिपूर्वक ‘एत्तते रुद्रावस०’ इस मन्त्रसे रमणीय आसन दे । ‘मा नो मङ्हान्तम०’

१०. पूरा मन्त्र इस प्रकार है—भूरसि भूमिरस्यदितिरसि  
विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य खर्तीं पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृश्ये पृथिवीं  
मा हिन्दसीं । ( वज्र० १३ । १८ )

२. आपो असान् मातरः शुन्ध्यन्तु धृतेन नो धृतप्वः पुनन्तु ।  
विश्रृं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुद्दिदाम्यः शुक्रिरा पूत एषि । दीक्षा-  
तप्सोस्तनूरसि तर्ता त्वा शिवाऽशगमां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्ट्यन् ।  
( यज० ४ । २ )

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उत्तो त इष्वे नमः बाहुम्यासुत ते नमः ।  
 (यजु० १६।१३)

४. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मय-  
स्कराय च नमः शिवाय च शिवत्तराय च । ( यजु० १६ । ४१ )

५. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षय मीढुपे । अथो ये अस्य  
सत्त्वान्नोऽद्वै रेस्योऽकरं नमः । ( यजु० १६ । ८ )

६. एतते रुद्रावर्सं तेन परो मूजवतोऽतीहि । अवतत्थन्वा  
पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिःसन्नः शिवोऽतीहि । ( यजु०  
३ । ६१ )

७. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न  
उक्षित्तन् । मा नो वधीः पितॄं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र  
रौरिपः । ( यज० ३६ । १५ )

इस मन्त्रसे आवाहन करे, 'या ते' स्वरूप इस मन्त्रसे मात्रारूपिणी को आउनपर समाप्तीन करे। 'यैमियुं०' इस मन्त्रसे शिवके अङ्गोंमें न्यास करे। 'अव्यवोचत्०' इस मन्त्रसे प्रेम-पूर्वक अधिवासन करे। 'असौ यस्तामो०' इस मन्त्रसे शिवलिङ्गमें इष्टदेवता शिवका न्यास करे। 'आसौ०' योऽवसर्पति०' इस मन्त्रसे उपसर्पण ( देवताके सगीप गमन ) करे। इसके बाद 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०' इस मन्त्रसे इष्टदेवताको पाल्य समर्पित करे। 'रुद्रैगायत्री०' से अर्थ दे । 'च्यर्थकं०' मन्त्रसे आचमन कराये। 'पर्यः पृथिव्यां०' इस मन्त्रसे दुरुध्लाप कराये। 'दधिक्षाणो०' इस मन्त्रसे दधिस्मान कराये। 'धूतं०'  
धूत पात्रा० इस मन्त्रसे धूतस्नान कराये। 'मतु घाता०' पर्य

१०. या ते रुद्र शिवा तन्मूर्योराऽपापवत्तिशीनी । या नस्त्वं  
शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकरीहि । ( यजु० १६ । २ )

२. यामिपुं गिरिशन्त हस्ते विमर्घवत्त्वे । शिवां गिरित्र द  
कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् । ( यजु० १६ । ३ )

३. अद्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो मिष्ठक् । अहीऽश्च सर्वाज्ञन  
यन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधरान्योः परा सुव । ( यजु० १६ । ५ )

४. असौ यस्तान्मो अरण उत्त वन्नुः सुमङ्गलः । ये चैनरक्षा  
अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोडवैषाः हेठ ईमहे । ( यजू० १६ । १ )

५. असौ योऽवसर्पति नीलयीको विलोहितः । चतैनं गे  
अदृश्यन्नुश्रन्नुदहार्यः स दुष्टो मूढयाति नः । ( यजु० १६ । ५ )

६. यह सन्तु पहले दिया जा चका है।

२८ ब्रह्मद्वया विहारे महादेवाय धीरुं पदि क्षमो रुदः प्रवेष्टम्

८. राजुलनाम १५मह महादेवाप भानाह तना रम्भ नवदेव  
९. अस्मिकं यज्ञामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्यास्त्रमिव दद्व

न्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । व्यम्बकं यजामहे सुगान्धिं पतिवेदन्  
उर्चारकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मासुतः । ( यजु० ३ । ६० )

९. पयः पृथिव्यां पय ओपरीपु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो दि  
पयस्तीः प्रदिशः सन्तु मध्यम् । ( यजु० १८ । ३६ )

१०. दधिकाव्यो अकारिष्ठं जिष्ठोरम्भस्य वाजिनः । मु  
नो मुखा करत्वणामायूर्खपि तारिष्ठत् । ( यजु० २३ । ३२ )

११०. घृतं घृतपावानः पिवत वसां वसापावानः पिवतागरसि  
हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिश  
स्वाहा । ( वजु० ६ । १९ )

१२०. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । मधु भूमि व  
संप्रोपये । (संग. ४३. १२०)

१३. मधु नक्षत्रोषसो मधुमत्पार्थिवरर्जः । मधु वीरु  
नः अः ॥

नकं 'मधुमानो' इन तीन ऋचाओंसे मधुस्लान और शक्करा-स्लान कराये। इन दुग्ध आदि पाँच वस्तुओंको पञ्चामृत कहते हैं।

अथवा पाद-समर्पणके लिये कहे गये 'नमोऽस्तु नील-शीवाय०' इत्यादि मन्त्रद्वारा पञ्चामृतसे स्नान कराये। तदनन्तर 'मा नस्तोके०' इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक भगवान् शिवको कटिवन्ध (करघनी) अर्पित करे। 'नमो धृष्णवे०' इस मन्त्रका उच्चारण करके आराध्य देवताको उच्चरीय धारण कराये। 'यो ते हेतिः०' इत्यादि चार ऋचाओंको पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेमसे विधिपूर्वक भगवान् शिवके लिये वस्त्र (एवं यज्ञोपवीत) समर्पित करे। हसके बाद 'नमः श्वस्य०' इत्यादि मन्त्रको पढ़कर शुद्ध बुद्धिवाला भक्त पुरुष भगवान्को प्रेमपूर्वक गन्ध (सुगन्धित

१. मधुमानो वनस्पतिमधुमाँ अस्तु सर्व्यः । माध्योर्गांवो भवन्तु नः । ( यजु० १३ । २९ )

२. बहुत-से विद्वान् 'मधु वाना' आदि तीन ऋचाओंका उपयोग केवल मधुलानमें ही करते हैं और शक्करा-स्लान करते समय निशाङ्कित मन्त्र बोलते हैं—

अपाऽरसमुद्यस्तर दूर्ये सन्ताऽ समाहितम् । अपावरू रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णम्भुत्तमसुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिद्वय त्वा जुष्टमम् । ( यजु० ९ । ३ )

३. मा नस्तोकेतनये मा न आयुषि मा नो गोपु मा नो अश्वेषु रीरियः । मा नो वीरान् रुद्र भासिनो वरीहृषिभन्तः सदभित् त्वा हयगहे । ( यजु० १६ । १६ )

४. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निपङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तोऽषेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च मुष्मन्ते च । ( यजु० १६ । ३६ )

५. या ते हेतिर्मोहृष्टम् इस्ते वस्त्रे ते धनुः । तथासाम्निशत-त्वमयक्षया परि भुज । ( ११ ) परि ते भन्वनो हेतिरसान्वृणकु येततः । अयो य इपुभित्वारे असत्रि धेहि तम् । ( १२ ) अवतत्य धनुषः सर्प्याक शतेषुपे । निशीर्य शत्यानां मुखा शिवो न मुमन्त्र नव । ( १३ ) । नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाम्यामुत ते नमो चाहुम्यां तव धन्वने । ( १४ ) । ( यजु० १६ )

६. नमः श्वस्यः श्वसित्यश्व वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च । नमः श्वस्य च धृष्णवे च नमो नीलशीवाय च शितिक्षणाय च । ( यजु० १६ । २८ )

चन्दन एवं रोली ) चढ़ाये । 'नमस्तंश्वस्य०' इस मन्त्रसे अक्षत अर्पित करे। 'नमः धीर्याय०' इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये । 'नमः धैर्याय०' इस मन्त्रसे विल्वपत्र समर्पण करे। 'नमः कपर्दिने च०' इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक धूप दे । 'नमः अ॒शावे०' इस ऋचासे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दीप निवेदन करे । तत्पश्चात् ( हाथ धोकर नमो॑ ज्येष्ठाय०' इस मन्त्रसे उच्चम नैवेद्य अर्पित करे । फिर पूर्वोक्त व्यम्बक-मन्त्रसे आचमन कराये । 'इमा रु॑ द्राय०' इस ऋचासे फल समर्पण करे । फिर 'नमो व्रज्याय०' इस मन्त्रसे भगवान् शिवको अपना सब कुछ समर्पित कर दे । तदनन्तर 'मा नो महान्तम्०' तथा 'मा नस्तोके' इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोद्धारा केवल अक्षतोंसे ग्यारह रुद्रोंका

७. नमस्तक्षम्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नमो नमो निपादेभ्यः पुजिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः शनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः । ( यजु० १६ । २७ )

८. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चौत्तरणाय च नमस्तीर्याय च कूल्याय च नमः शष्पाय च फेनपाय च ।

( यजु० १६ । ४२ )

९. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चामिष्ठते च नम आखिदते च प्रतिदते च नम इपुकुङ्खयो धनुष्कुङ्खयश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाऽहृत्येभ्यो नमो विविन्तकेभ्यो नमो नम आनिहेतेभ्यः । ( यजु० १६ । ४६ )

१०. नमः कपर्दिने च ध्युपकेशाय च नमः सहस्राश्रव च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च शिपिविशाय च नमो शीतुष्टमाय चेषुमते च । ( यजु० १६ । २९ )

११. नम आशवे चाजिराय च नमः शीश्याय च शीम्याय च नम ऊर्म्याय चा वसन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ।

( यजु० १६ । ३१ )

१२. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो भव्यमाय चापगलमाय च नमो जवन्याय च मुव्याय च । ( यजु० १६ । ३२ )

१३. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे भतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं युष्टं ग्रामे असिन्ननातुरम् ।

( यजु० १६ । ४८ )

१४. नमो व्रज्याय च गोष्ठयाय च नमस्तल्वाय च गेश्याय च नमो छूट्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गद्वरेष्याय च ।

( यजु० १६ । ४८ )

पूजन करे । फिर 'हिरण्यगर्भः०' इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ऋचाओंके रूपमें पठित है, दक्षिणा चढ़ाये० । 'देवस्यै त्वा०' इस मन्त्रसे विद्वान् पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे । दीपके लिये वताये हुए 'नम आश्रवे०' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शिवकी नीरजना ( आरती ) करे । तत्पश्चात् 'इमा रुद्राय०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे भक्तिपूर्वक रुद्रदेवको पुष्पाङ्गलि अर्पित करे । 'मा नो महान्तम्०' इस मन्त्रसे विज्ञ उपासक पूजनीय देवताकी परिक्रमा करे । फिर उत्तम बुद्धिवाला उपासक 'मा नस्तोके०' इस मन्त्रसे भगवान्को साषाङ्ग प्रणाम करे । 'एवं ते०' इस मन्त्रसे शिवमुद्राका प्रदर्शन करे । 'यतो० यतः०' इस मन्त्रसे अभय नामक मुद्राका, 'व्यप्तकं०' मन्त्रसे ज्ञान नामक मुद्राका तथा 'नमः० सेना०' इत्यादि मन्त्रसे महामुद्राका प्रदर्शन करे । 'नमो० गोभ्यः०' इस ऋचा-द्वारा धेनुमुद्रा दिखाये । इस तरह पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करके शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे अथवा वेदज्ञ पुरुष 'शतं-

१: हिरण्यगर्भः समर्वतामे भूतस्य जातः पतिरेक आसीद् ।  
स दाधार एथिर्वां द्यामुतेमां करमै देवाय हविषा विधेम ।

\* यह मन्त्र यजुर्वेदके अन्तर्गत तीन स्थानोंमें पठित है और तीन मन्त्रोंके रूपमें परिगणित है । यथा—यजु० १३।४; २३।१ तथा २५।१० में ।

२. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूज्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्मैष्यज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिङ्गामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नायायाभि षिङ्गामीन्द्रस्येन्द्रियेण वलाय श्रियै यशसेऽस्मि षिङ्गामि । ( यजु० २०।३ )

३. एष ते रुद्र भागः सद्व स्वसान्विक्या तं ऊपस्त्व स्वाहा । एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पश्चुः । ( यजु० ३।५७ )

४. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाम्योऽभर्य नः पशुभ्यः ॥ ( यजु० ३६।२३ )

५. नमः सेनाम्यः सेनानिम्यश्च वो नमो नमो रथिम्यो धरयेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्रभ्यः संग्रहीत्यश्च वो नमो नमो महद्यस्यो धर्मकेभ्यश्च वो नमः ॥ ( यजु० १६।२६ )

६. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेवीभ्य एव च ।

नमो ब्रह्मसुनाभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥

( गोमतीविद्या )

७—यजुर्वेदका वह अंश, जिसमें रुद्रके सौ या उससे अधिक नाम आये हैं और उनके द्वारा रुद्रदेवकी स्तुति की गयी है । ( देखिये यजु० अध्याय १६ )

रुद्रिय' मन्त्रकी आवृत्ति करे । तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग पाठ करे । तदनन्तर 'देर्वा गातु०' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शंकरका विसर्जन करे । इस प्रकार शिवपूजाकी वैदिक विधि विस्तारसे प्रतिपादन किया गया ।

महर्षियो ! अब संक्षेपसे भी पार्थिवपूजनकी वैदिक विधि वर्णन सुनो । 'सद्यौ॑ जातं॒' इस ऋचासे पार्थिव लिङ्ग वनामेके स्त्रि मिट्टी ले आये । 'चामदेवाय॑०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसमें कड़ाले । ( जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाय, तब ) 'अवो॑०' मन्त्रसे लिङ्ग निर्माण करे । फिर 'तत्पुरुषाय॑०' इस मन्त्र विधिवत् उसमें भगवान् शिवका आवाहन करे । तदनन्तर 'ईशान॑०' मन्त्रसे भगवान् शिवको वेदीपर स्थापित करे । इन सिवा अन्य सब विधानोंको भी शुद्ध बुद्धिवाला उपासक संक्षेपसे ही सम्पन्न करे । इसके बाद विद्वान् पुरुष पञ्चाङ्ग मन्त्रसे अथवा गुरुके दिये हुए अन्य किसी शिवसम्बन्धी मन्त्रसे सोलह उपचारोंद्वारा विधिवत् पूजन करे अथवा—

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि ।  
उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ॥

( २०।१३ )

—इस मन्त्रद्वारा विद्वान् उपासक भगवान् शंकरकी हृ करे । वह भ्रम छोड़कर उत्तम भावभक्तिसे शिवकी आराध्य करे; क्योंकि भगवान् शिव भक्तिसे ही मनोर्वाणी फल देते हैं ।

८. देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित । मनस्त्वतः देव यश्च स्वाहा वाते धा: ॥ ( यजु० ८।२१ )

९. सदोजातं प्रपद्यामि सदोजाताय वै नमो नमः ।

मते भवेनातिभवे भवस्व मां भवोऽवाय नमः ॥

१०. अ॑ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय॑ कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय॑ वलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदम्भाय॑ मनोभूमधाय नमः ।

११. अ॑ अधोरेभ्योऽथ धोरेभ्यो धोरधोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः॑ नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॑ ।

१२. अ॑ तत्पुरुषाय विज्ञहे महादेवाय धीमहि तत्त्वे रुद्रः॑ ।

१३. अ॑ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मा॑ शक्ता शिवो मैऽस्तु सदा दिवोम् ॥

ब्राह्मणो ! यहाँ जो वैदिक विधिसे पूजनका क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूपसे आदर करता हुआ मैं पूजाकी एक त्रुटी विधि भी बता रहा हूँ, जो उत्तम होनेके साथ ही सर्वगाधारणके लिये उपयोगी है। मुनिवरो ! पार्थिवलिङ्गकी पूजा गवान् शिवके नामसे बतायी गयी है। वह पूजा सम्पूर्ण भीष्मीको देनेवाली है। मैं उसे बताता हूँ, सुनो ! हर, हिश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति और हाहादेव—ये क्रमशः शिवके आठ नाम कहे गये हैं। इनमेंसे अथ नामके द्वारा अर्थात् 'ॐहराय नमः' का उच्चारण करके पार्थिवलिङ्ग बनानेके लिये मिट्ठी लाये। दूसरे नाम अर्थात् 'ॐमहेश्वराय नमः' का उच्चारण करके लिङ्ग-निर्माण करे। फिर 'ॐशम्भवे नमः' दोलकर उस पार्थिव-लिङ्गकी प्रतिष्ठा करे। अत्यश्वात् 'ॐशूलपाणये नमः' कहकर उस पार्थिवलिङ्गमें गवान् शिवका आवाहन करे। 'ॐपिनाकधृषे नमः' कहकर उस शिवलिङ्गको नहलाये। 'ॐशिवाय नमः' बोलकर उसकी ज्ञा करे। फिर 'ॐपशुपतये नमः' कहकर क्षमा-प्रार्थना करे और अन्तमें 'ॐहाहादेवाय नमः' कहकर आराध्यदेवका सर्जन कर दे। प्रत्येक नामके आदिमें 'ॐ'कार और अन्तमें त्रुटी विभक्तिके साथ 'नमः'पद लगाकर बड़े आनन्द और किमावसे पूजनसम्बन्धी सारे कार्य करने चाहिये॥

षड्क्षर मन्त्रसे अङ्गन्यास और करन्यासकी विधि भलीभाँति प्रयत्न करके फिर नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे। जो कैलास तपर एक मुन्द्र सिंहासनके भव्यभागमें विराजमान हैं, जिनके भव्यभागमें भगवती उमा उनसे सटकर बैठी हुई हैं, रानक-निंदन आदि भक्तजन जिनकी पूजा कर रहे हैं तथा जो भक्तोंके दरूपी दावानल्को नष्ट कर देनेवाले अप्रमेयशक्तिशाली हार हैं, उन विश्वविभूषण भगवान् शिवका चिन्तुन करना चाहिये। भगवान् महेश्वरका प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करे—इकी अङ्गकान्ति चौंदीके पर्वतकी भाँति गौर है। वे अपने हायापर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं। रक्तोंके

- \* एतो महेश्वरः शम्भुः शूलपाणिः पिनाकधृक् ।
  - शिवः पशुपतिर्चैव महादेव इति क्रमाद् ॥
  - स्त्रावरुणतं धृप्रतिष्ठाहानमेव च ।
  - रुद्रं पूजनं चैव क्षमस्वेति वितर्जनन् ॥
  - अङ्गरादिचतुर्थन्तैर्नमोऽन्तैर्नामभिः क्रमात् ।
  - यत्क्ष्याद्य त्रिष्टुपः सर्वो भक्ष्या परमया मुदा ॥
- ( शिं पु० वि० २० । ४७-४९ )

आभूषण धारण करनेसे उनका श्रीअङ्ग और भी उद्धासित हो उठा है। उनके चार हाथोंमें क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमलके आसनपर बैठे हैं और देवतालोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। उन्होंने वस्त्रकी जगह व्याघ्रवर्म धारण कर रखदा है। वे इस विश्वके आदि हैं, बीज ( कारण ) रूप हैं तथा सबका समस्त भय हर लेनेवाले हैं। उनके पाँच भुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं। ॥

इस प्रकार ध्यान तथा उसम पार्थिवलिङ्गका पूजन करके गुरुके दिये हुए पञ्चाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक जप करे। विप्रवरो ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह देवेश्वर शिवको प्रणाम करके नाना प्रकारकी स्तुतियोदारा उनका स्तवन करे तथा शतरुद्रिय ( यजु० १६ वें अध्यायके मन्त्रों ) को पाठ

\* अङ्गन्यास और करन्यासका प्रयोग इस प्रकार समझना चाहिये। ॐ अङ्गुष्ठाम्यां नमः १ । ॐ नं तर्जनीम्यां नमः २ । ॐ मं मध्यमाम्यां नमः ३ । ॐ शिं अनामिकाम्यां नमः ४ । ॐ वां कनिष्ठिकाम्यां नमः ५ । ॐ यं करतलकरपृष्ठाम्यां नमः ६ । इति वरन्यासः । ॐ अङ्गदेवाय नमः १ । ॐ नं शिरसे स्वाहा २ । ॐ मं शिखायै वषट् ३ । ॐ शिं कवचाय हुम् ४ । ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् ५ । ॐ यं अङ्गाय फट् ६ । इति हृदयादिपृष्ठङ्गन्यासः। यहाँ करन्यास और हृदयादिपृष्ठङ्गन्यासके छः-छः वाक्य दिये गये हैं। इनमें करन्यासके प्रथम वाक्यको पढ़कर दोनों तर्जनी अंगुलियोंसे अङ्गुष्ठोंका स्पर्श करना चाहिये। शेष वाक्योंको पढ़कर अङ्गुष्ठोंसे तर्जनी आदि अंगुलियोंका स्पर्श करना चाहिये। इसी प्रकार अङ्गन्यासमें मी दाहिने हाथसे हृदयादि अङ्गोंका स्पर्श धारनेकी विधि है। केवल कवचन्यासमें दाहिने हाथसे वार्यी भुजा और वार्ये हाथसे दार्थी भुजा-का स्पर्श करना चाहिये। 'अङ्गाय फट्' इस अन्तिम वाक्यको पढ़ते हुए दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे ले आकर वार्यी हथेलीपर ताली बजानी चाहिये। ध्यानसम्बन्धी शोक, जिनके भाव उपर दिये गये हैं, इस प्रकार है—

कैलासपीठासनमध्यसंरथ मत्तैः सनन्दादिभिरन्व्यमानम् ।  
मक्तर्तिदावानलहाप्रमेयं ध्यायेदुपालिङ्गितविशभूषणम् ॥  
प्रायोन्तिर्यं महेशं रजतगिरिनिमं चारुचन्द्रवर्णसं  
रसाकल्पोज्ज्वलादं परशुभृगवरार्भातिहस्तं प्रतश्नम् ।  
पश्चासीनं समन्वात्स्तुतमन्तरगैव्यंग्रहर्त्ति वसानं  
विश्वायं विश्वदीनं निखिलभयद्वं पञ्चवद्वं त्रिनेत्रन् ॥

करे । तत्पश्चात् अज्ञालिमें अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्ति-भावसे निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रेम और प्रशंसनात्मक साथ भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

‘सबको सुख देनेवाले कृपानिधान भूतनाथ द्यिव । मैं आपका हूँ । आपके गुणोंमें ही मेरे प्राण वसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण—मेरे जीवनसर्वस्व हैं । मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा हुआ है । यह जानकर मुझपर ग्रसन होइये । कृपा कीजिये । शंकर ! मैंने अनजानमें अथवा जान-बूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि किया हो तो आपकी कृपासे वह सफल हो जाय । गौरीनाथ ! मैं आधुनिक युगका महान् पापी हूँ, पतित हूँ और आप सदासे ही परम महान् पतितपावन हैं । इस बातका विचार करके आप वैसा चाहें, वैसा करें । महादेव ! सदाशिव ! वेदों, पुराणों, नाना प्रकारके शास्त्रीय सिद्धान्तों और विभिन्न महर्षियोंने भी अवतक व्यापको पूर्णरूपसे नहीं जाना है । फिर

मैं कैसे जान सकता हूँ ? महेश्वर ! मैं जैसा हूँ, वैसा ही । रूपमें सम्पूर्ण भावसे आपका हूँ । आपके आश्रित हूँ, इसी आपसे रक्षा पानेके योग्य हूँ । परमेश्वर ! आप मुझपर प्रल होइये ।’॥

मुने ! इस प्रकार प्रार्थना करके हाथमें लिये हुए शंकर पुष्टको भगवान् शिवके ऊपर चढ़ाकर उन शमुद्र-भक्तिभावसे विधिपूर्वक सायान्त्र प्रणाम करे । तदनन्तर हृषीकेश बुद्धिवाला उपासक शास्त्रोक्त विधिसे इष्टदेवकी परिक्रमा करो । फिर श्रद्धापूर्वक सुतियोद्धारा देवेश्वर शिवकी लुटिये । इसके बाद गला बजाकर ( गलेसे अव्यक्त शब्दका उच्च करके ) पवित्र एवं विनीत चित्तवाला साधक भगवान्को प्रण करे । फिर आदरपूर्वक विज्ञाप्ति करे और उसके बाद विच्छेद मुनिवरो ! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिवपूजा वतायी करें वह भोग और मोक्ष देनेवाली तथा भगवान् द्यिवके भक्तिभावको बढ़ानेवाली है ।

( व्याय ११५ )

### पार्थिवपूजाकी महिमा, शिवनैवेद्यभक्षणके विषयमें निर्णय तथा विल्वका माहात्म्य

( तदनन्तर श्रृंगियोंके पूछनेपर किस कामनाकी पूर्तिके लिये कितने पार्थिवलिङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये, इस विषयका वर्णन करके ) सूतजी बोले—महर्षियो ! पार्थिवलिङ्गोंकी पूजा कोटि-कोटि वशोंका फल देनेवाली है । कलियुगमें लोगोंके लिये शिवलिङ्ग-पूजन जैसा श्रेष्ठ दिखायी देता है, वैसा दूसरा कोई साधन नहीं है—यह समस्त शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है । शिवलिङ्ग भोग और मोक्ष देनेवाला है । लिङ्ग तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम । जो चार अंगुल ऊँचा और देखनेमें सुन्दर हो तथा बैदीसे युक्त हो,

उस शिवलिङ्गको शास्त्रज्ञ महर्षियोंने ‘उत्तम’ कहा है । दो आधा ‘मध्यम’ और उससे आधा ‘अधम’ माना गया । इस तरह तीन प्रकारके शिवलिङ्ग कहे गये हैं, जो उन्हें श्रेष्ठ हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम रंग कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिङ्गकी प्रकारके कहे । ब्राह्मणो ! महर्षियो ! अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? शिवलिङ्गका पूजन करनेमें हियोंका तथा अन्य सब लोगोंके भी अधिकार है + । द्विजोंके लिये वैदिक पद्धतिसे ही किया जाना चाहिए ।

\* तावकस्त्वद्दृप्राणस्त्वचित्तोऽहं सदा सृष्टि । कृपानिधे इति शात्वा भूतनाथ प्रसीद मे ॥  
अज्ञानाधिदि वा शानाज्जपपूजादिकं मया । कृतं तदस्तु सफलं कृपया तत्र शंकर ॥  
अहं पापी महान्यथ पावनश्च मवान्महान् । इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु ॥  
वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्धर्षिभिर्विवैरपि । न शतोऽसि महादेव कुर्तोऽहं त्वां सदाशिव ॥  
यथा तथा त्वदीयोऽसि सवभावैर्हेश्वर । रक्षणोयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर ॥

† ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः । पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्त्वमन्त्रेण सादरम् ॥  
किं वहूचेन मुनयः क्षीणामपि तथान्यतः । अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः ॥

( शिं पु० वि० २० । ५५ )  
( शिं पु० वि० २१ । ३१ )

की पूजा करना श्रेष्ठ है; परंतु अन्य लोगोंके लिये वैदिक मार्गसे पूजा करनेकी सम्भवि नहीं है। वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये, अन्य मार्गसे नहीं—यह भगवान् शिवका कथन है। दधीचि और गौतम आदिके शापसे जिनका चित्त दम्प हो गया है, उन द्विजोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती। जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता। \*

इस प्रकार विधिपूर्वक भगवान् शंकरका नैवेद्यान्त पूजन करके उनकी विमुखनमयी आठ मूर्तियोंका भी वहीं पूजन करे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा वज्रमान—ये भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। इन मूर्तियोंके साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति—इन नामोंकी भी अर्चना करे। तदनन्तर चन्द्रन, अक्षत और विल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदिके कमसे भगवान् शिवके परिवारका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भूज्ञी, वृष्ण, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र—ये दस शिवके परिवार हैं, जो अमादः ईशान आदि दसों दिशाओंमें पूजनीय हैं। तत्पश्चात् गवान् शिवके समक्ष वीरभद्रका और पीछे कीर्तिमुखका जन करके विधिपूर्वक घ्यारह रुद्रोंकी पूजा करे। इसके बाद ज्ञाक्षर मन्त्रका जप करके शतरुद्रिय स्तोत्रका, नाना प्रकार-त्रे स्तुतियोंका तथा शिवपञ्चाङ्गका पाठ करे। तत्पश्चात् परिज्ञा और नमस्कार करके शिवलिङ्गका विसर्जन करे। इस इकार मैंने शिवपूजनकी सम्पूर्ण विधिका आदरपूर्वक वर्णन किया। रात्रिमें देवकार्यको सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना चाहिये। इसी प्रकार शिवपूजन भी पवित्र भावसे सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना उचित है। जहाँ शिवलिङ्ग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशाका आश्रय लेकर नहीं बैठना या खड़ा रहना चाहिये; क्योंकि वह दिशा भगवान् शिवके आगे या आगमने पड़ती है ( इष्टदेवका समाना रोकना ठीक नहीं )। शेषलिङ्गसे उत्तर दिशामें भी न बैठें; क्योंकि उधर भगवान् करका बामाङ्ग है, जिसमें शक्तिस्वरूपा देवी उमा विराजान है। पूजको शिवलिङ्गसे प्रश्निम दिशामें भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह अरात्यदेवका पृष्ठभाग है ( पीछेकी ओरने जा करना उचित नहीं है )। अतः अवशिष्ट दक्षिण दिशा

। १ ये वैदिकमन्त्रादृत्य कर्म स्वार्तमध्यापि च ।  
। २ एवं भगवान्मन्त्राः स लक्ष्यत्वक्तुं रमेत् ॥  
। ( द्वि० पृ० ३० च० ३१ । ११ । )

ही ग्राह्य है। उसीका आश्रय लेना चाहिये। तात्पर्य यह कि शिवलिङ्गसे दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख होकर बैठे थैर पूजा करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाकर, रुद्राक्षकी भाल लेकर तथा विल्वपत्रका संग्रह करके ही भगवान् शंकरकी पूजा करे, इनके बिना नहीं। मुनिवरो! शिवपूजन आरम्भ करते समय यदि भस्म न मिले तो मिट्टीसे भी ललटमें त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये।

ऋषि बोले—मुने! हमने पहलेसे यह बात सुन रखी है कि भगवान् शिवका नैवेद्य नहीं ग्रहण करना चाहिये। इस विषयमें शास्त्रका निर्णय क्या है, वह बताइये। साथ ही विल्वका माहात्म्य भी प्रकट कीजिये।

सूतजीने कहा—मुनियो! आप शिवसम्बन्धी ब्रतका पालन करनेवाले हैं। अतः आप सबको शतशः धन्ववाद है। मैं प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताता हूँ, आप सावधान होकर सुनें। जो भगवान् शिवका भक्त है, बाहर-भीतरसे पवित्र और शुद्ध है, उत्तम ब्रतका पालन करनेवाला तथा दृढ़ निश्चयसे युक्त है, वह शिव-नैवेद्यका अवश्य भक्षण करे। भगवान् शिवका नैवेद्य अग्राह्य है, इस भावनाको मनसे निकाल दे।

शिवके नैवेद्यको देख लेनेमात्रसे भी सारे पाप दूर भाग जाते हैं, उसको खा लेनेपर तो करोड़ों पुण्य अपने भीतर आ जाते हैं। आये हुए शिव-नैवेद्यको सिर छुकाकर प्रसन्नताके साथ ग्रहण करे और प्रयत्न करके शिव-स्मरणपूर्वक उसका भक्षण करे। आये हुए शिव-नैवेद्यको जो वह कहकर कि मैं इसे दूसरे समयमें ग्रहण करूँगा, लेनेमें विलम्ब कर देता है, वह मनुष्य निश्चय ही पापसे बँध जाता है। जिसने शिवकी दीक्षा ली हो, उस शिवभक्तके लिये यह शिव-नैवेद्य अवश्य भक्षणीय है—ऐसा कहा जाता है। शिवकी दीक्षासे युक्त शिव-भक्त पुरुषके लिये सभी शिवलिङ्गोंका नैवेद्य शुभ एवं 'महाप्रसाद' है; अतः वह उसका अवश्य भक्षण करे। परंतु जो अन्य देवताओंकी दीक्षासे युक्त हैं और शिवभक्तिमें भी मनको लगाये हुए हैं, उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणके विषयमें क्या निर्णय है—इसे आपलोग प्रेमपूर्वक मुनें। बाह्यणो! जहाँसे शालग्रामशिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, रस-लिङ्ग ( रशदलिङ्ग ) में, प्रापाण, रजत तथा सुवर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केसर-निर्मित लिङ्गमें, सफटिकलिङ्गमें, रुननिर्मित लिङ्गमें तथा नमस्त न्योतिलिङ्गमें विराजमान भगवान् शिवके नैवेद्यका भक्षण ज्ञानावय-ब्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्मदत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिर्माल्यका भक्षण करके उसे ( विरपर ) धारण करे तो उसका नारा पाप शीघ्र ही नष्ट

हो जाता है। पर जहाँ चण्डका अधिकार है, वहाँ जो शिवनिर्मात्य हो, उसे साधारण मनुष्योंको नहीं स्वाना चाहिये। जहाँ चण्डका अधिकार नहीं है, वहाँके शिव-निर्मात्यका सभीको भक्ति-पूर्वक भोजन करना चाहिये। वाणलिङ्ग ( नर्मदेश्वर ), लोह-निर्मित ( खण्डिवातुमय ) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग ( जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है अथवा जो मिद्दोंद्वारा स्थापित हैं वे लिङ्ग ), स्वयम्भूलिङ्ग—इन सब लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं ( मूर्तियों ) में चण्डका अधिकार नहीं है। जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आच्छान करता है, उसके कार्यक, वाचिक और मानसिक—तीनों प्रकारके पाप यहाँ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जो शिव-नैवेद्य, पत्र, पुण्य, फल और जल अग्राह्य है, वह सब भी शालग्रामशिलाके स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य हो जाता है। मुनीश्वरो ! शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ा हुआ जो द्रव्य है, वह अग्राह्य है। जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर शिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर चढ़ाया नहीं जाता, उसे अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये। मुनिश्वरो ! इस प्रकार नैवेद्यके विषयमें शास्त्रका निर्णय बताया गया।

अब तुमलोग सावधान हो आदरपूर्वक विल्वका माहात्म्य मुनो। यह विल्व वृक्ष महादेवका ही रूप है। देवताओंने भी इसकी सुति की है। फिर जिस किसी तरहसे इसकी महिमा कैसे जानी जा सकती है। तीनों लोकोंमें जितने पुण्य-तीर्थ प्रसिद्ध हैं, वे सम्पूर्ण तीर्थ विल्वके मूलभागमें निवास करते हैं। जो पुण्यात्मा मनुष्य विल्वके मूलमें लिङ्गस्वरूप अविनाशी महादेवजीका पूजन करता है, वह निश्चय ही शिवपदको प्राप्त होता है। जो विल्वकी जड़के पास जलसे अपने मस्तकको सीचता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्वानका फल पा लेता है और

वही इस भूतलपर पावन माना जाता है। इस विल्वकी जड़के परम उत्तम थालेको जलसे भरा हुआ देखकर महादेवजी पूर्णतया संतुष्ट होते हैं। जो मनुष्य गन्ध, पुण्य आदिसे विल्वके मूलभागका पूजन करता है, वह शिवलोकको पाता है और इस लोकमें भी उसकी मुख्य-संतति वढ़ती है। जो विल्वकी जड़के समीप आदरपूर्वक दीपावली जलाकर रखता है, वह तत्पश्चात्से सम्पन्न हो भगवान् महेश्वरमें मिल जाता है। जो विल्वकी शाला थामकर हाथसे उसके नये-नये पल्लव उतारता और उनसे उस विल्वकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो विल्वकी जड़के समीप भगवान् शिवमें अनुराग रखनेवाले एक भक्तको भी भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे कोंधियुना पुण्य प्राप्त होता है। जो विल्वकी जड़के पास शिवभक्तों खीर और-शूतसे युक्त अष्ट देता है, वह कभी दर्दि नहीं होता। ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने साङ्गेश्वर शिवलिङ्ग पूजनका वर्णन किया। यह प्रवृत्तिमार्गी तथा निवृत्तिमार्ग पूजकोंके भेदसे दो प्रकारका होता है। प्रवृत्तिमार्गी लोगों लिये पीठ-पूजा इस भूतलपर समूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको दें वाली होती है। प्रवृत्त पुरुष सुपात्र गुरु आदिके द्वारा ही सारी पूजा सम्पन्न करे और अभिषेकके अन्तमें अग्नहोरे चावलसे बना हुआ नैवेद्य निवेदन करे। पूजाके अन्तमें शिवलिङ्गको शुद्ध समुटमें विराजमान करके घरके भीतर ले अलग रख दे। निवृत्तिमार्गी उपासकोंके लिये हाथपर्ह शिवपूजनका विधान है। उन्हें भिक्षा आदिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित कर देना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिको पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा अपने मस्तक पराण करें।

( अध्याय २१-२२ )

### शिवनाम-जप तथा भस्त्रधारणकी महिमा, त्रिपुण्ड्रके देवता और स्थान आदिका प्रतिपादन

**ऋग्वेद-**महाभाग व्यासशिष्य सूतजी ! आपको नमस्कार है। अब आप उस परम उत्तम भस्त्र-माहात्म्यका ही वर्णन कीजिये। भस्त्र-माहात्म्य, रुद्राक्ष-माहात्म्य तथा उत्तम नाम-माहात्म्य—इन तीनोंका परम प्रसन्नतापूर्वक प्रतिपादन कीजिये और हमारे हृदयको आनन्द दीजिये।

**सूतजीने कहा—**महर्षियो ! आपने बहुत उत्तम वात

पूछी है। यह समस्त लोकोंके लिये हितकारक विषय है। जो लोग भगवान् शिवकी उपासना करते हैं, वे धन्य हैं। हैं; उनका देहधारण सफल है तथा उनके समस्त कुलका उप हो गया। जिनके मुख्यमें भगवान् शिवका नाम है, जो अभी सुखसे सदाशिव और शिव इत्यादि नामोंका उच्चारण करहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, कैसे उन्हें

बृहस्पति के अङ्गारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकते। 'हे श्रीशिव ! आपको नमस्कार है' ( श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम् ) ऐसी तात जब मुँहसे निकलती है, तब वह मुख समस्त पापों का विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणो ! शिवका नाम, विभूति ( भस्म ) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यमय माने गये हैं। जहाँ ये तीनों शुभतर वस्तुएँ सर्वदा रहती हैं, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य त्रिवेणीस्तानका फल पा लेता है। भगवान् शिवका नाम 'गङ्गा' है, विभूति 'यमुना' मानी गयी है तथा रुद्राक्षको 'सरस्वती' कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! इन तीनोंकी महिमाको सदसद्विलक्षण भगवान् महेश्वरके विना दूसरा कौन भलीभूति जानता है। इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह सब तो केवल महेश्वर ही जानते हैं।

विग्रहण ! मैं अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार संक्षेपसे भगवन्नामोंकी महिमाका कुछ वर्णन करता हूँ। तुम सब लोग प्रेमपूर्वक सुनो। यह नाम-माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला सर्वोत्तम साधन है। 'शिव' इस नामरूपी दावानल्से महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। शौनक ! पापमूलक जो नाना प्रकारके दुःख हैं, वे एकमात्र शिवनाम ( भगवन्नाम ) से ही नष्ट होनेवाले हैं। दूसरे साधनोंसे सम्भूर्ण यत्र करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं। जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही ल्या हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है। मुने ! जिनका शिवनाम-जपमें विश्वारा है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल उनके लिये उत्सुक हो जाते हैं। महर्षे ! भगवान् शिवके नामसे जिनने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर नहीं सकते। जो शिवनामरूपी नौकापर आरुद्ध हो तो संसाररूपी समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके क्लृप्त वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने !

\* भवन्ति विविध धर्मोत्तेषां सथः फलानुभवाः ।  
येषां भवनि विविधः शिवनामजपे मुने ॥  
पापदानि निवृद्यन्ति चावन्ति शिवनामतः ।  
शुद्धि सदन्ति पापानि किन्त्वे न वर्तन्ते ॥

( शिं पु० विं २३ । २६-२७ )

संसारके मूलभूत पातकरूपी पादपौका शिवनामरूपी कुठारमें निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अपृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले लोगोंको उस शिवनामरूपतके विना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टि-जनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके दीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते। जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी उहसा और सर्वथा मुक्ति होती है। \* मुनीश्वर ! जिसने अनेक जन्मोतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है।

जिसके मनमें भगवान् शिवके नामके प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसीके लिये मोक्ष सुलभ है—यह मेरा मत है। जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिवके नाम-जपमें आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो ही जाता है—इसमें संशय नहीं है। जैसे वनमें दावानलसे दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानलसे दग्ध होकर उस समयतकके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। शौनक ! जिसके अङ्ग नित्य भस्म लगानेसे पवित्र हो गये हैं तथा जो शिवनाम-जपका आदर करने लगा है, वह घोर संसार-सागरको भी पार कर ही लेता है। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसार-सागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है। मुनिकरो ! अधिंक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिवनामके सर्वपापापहारी माहात्म्यका एक ही श्लोकमें वर्णन करता हूँ। भगवान् शंकरके एक नाममें भी पाप हरणकी जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं

\* शिवनामतरीं प्राप्य संसारात्य तरन्ति ते ।

संसारमूलपापानि तानि नदयन्त्यसंशयम् ॥

संसारमूलभूतानां दावकानां महामुने ॥

शिवनामकुठार्णि विनाशो त्रयते त्रुतम् ॥

शिवनामामृतं प॑र्य पापदावानलादिनः ॥

पापशब्दाप्तिनामां शान्तिस्तेन विना न हि ॥

शिवेति नामर्पायूवर्गाभासपरिष्टुतः ॥

संसारदवमध्यऽपि न शोचन्ति कटानन् ॥

शिवनाम्नि महद्वक्तिनामा यंत्रं महात्मनाम् ॥

तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्वन्ति सर्वथा ॥

( शिं पु० विं २३ । २९-३३ )

सकता । \* मुने ! पूर्वकालमें महापापी राजा इन्द्रद्युम्नने शिव-  
नामके प्रभावसे ही उत्तम सहृति प्राप्त की थी । इसी तरह कोई  
ब्राह्मणी युवती भी जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिवनामके  
प्रभावसे ही उत्तम गतिको प्राप्त हुई । द्विजवरो ! इस प्रकार  
मैंने तुमसे भगवन्नामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है ।  
अब तुम भस्मका माहात्म्य सुनो, जो समस्त पात्रन वस्तुओंको  
भी पावन करनेवाला है ।

महर्षियो ! भस्म सम्पूर्ण मङ्गलोंके देनेवाला  
तथा उत्तम है; उसके दो भेद वताये गये हैं, उन  
भेदोंका मैं वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो । एकको  
'महाभस्म'जानना चाहिये और दूसरेको 'स्वल्पभस्म' । महाभस्मके  
भी अनेक भेद हैं । वह तीन प्रकारका कहा गया है—  
श्रौत, सार्वत्र और लौकिक । स्वल्पभस्मके भी बहुत-से भेदोंका  
वर्णन किया गया है । श्रौत और सार्वत्र भस्मको केवल द्विजोंके ही  
उपयोगमें अनेक योग्य कहा गया है । तीसरा जो लौकिक भस्म है,  
वह अन्य सब लोगोंके भी उपयोगमें आ सकता है । श्रेष्ठ महर्षियोंने  
यह बताया है कि द्विजोंको वैदिक मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भस्म  
धारण करना चाहिये । दूसरे लोगोंके लिये विना मन्त्रके ही केवल  
धारण करनेका विधान है । जले हुए गोवरसे प्रकट  
होनेवाला भस्म अग्नेय कहलाता है । महामुने ! वह भी  
त्रिपुण्ड्रका द्रव्य है, ऐसा कहा गया है । अग्निहोत्रसे उत्पन्न  
हुए भस्मका भी मनीषी पुरुषोंको संग्रह करना चाहिये ।  
अन्य यज्ञसे प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्र धारणके काममें  
आ सकता है । जावालोपनिषद्में आये हुए 'अग्निः इत्यादि  
सात मन्त्रोद्घारा जलमिश्रित भस्मसे धूलन ( विभिन्न अङ्गोंमें  
मर्दन या लेपन ) करना चाहिये । महर्षि जावालिने सभी  
वर्णों और आश्रमोंके लिये मन्त्रसे या विना मन्त्रके भी  
आदरणपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगानेकी आवश्यकता  
बतायी है । समस्त अङ्गोंमें सजल भस्मको मलना अथवा  
विभिन्न अङ्गोंमें तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना—इन कार्योंको मोक्षार्थी  
पुरुष प्रमादसे भी न छोड़े, ऐसा श्रुतिका आदेश है ।  
भगवान् शिव और विष्णुने भी तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण  
किया है । अन्य देवियोंसहित भगवती उमा और  
लक्ष्मीदेवीने भी वाणीद्वारा इसकी प्रशंसा की है । ब्राह्मणों,

क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरां तथा जातिभ्रष्ट पुरुषोंने  
भी उद्धृत एवं त्रिपुण्ड्रके स्पर्शमें भस्म धारण किया है ।

इसके पश्चात् भस्म-धारण तथा त्रिपुण्ड्रकी महिमा  
एवं विधि वताकर सूनजीने फिर कहा—प्रहर्षियो! इस  
प्रकार मैंने संक्षेपसे त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य बताया है । यह  
समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय रहस्य है । अतः तुम्हें मैं  
इसे गुप्त ही रखना चाहिये । मुनिवरो ! लल्लट आदि सभी  
निर्दिष्ट स्थानोंमें जो भस्मसे तीन तिरछी रेखाएँ बनायी  
जाती हैं, उन्हींको विद्वानोंने त्रिपुण्ड्र कहा है । भौंहोंके मन्त्र-  
भागसे लेकर जहाँतक भौंहोंका अन्त है, उतना वडा त्रिपुण्ड्र  
लल्लटमें धारण करना चाहिये । मध्यमा और अनामिका  
अंगुलीसे दो रेखाएँ करके बीचमें अङ्गुष्ठद्वारा प्रतिलोमभास्त्रे  
की गयी रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है । अथवा बीचकी तीन  
अंगुलियोंसे भस्म लेकर यत्त्रपूर्वक भक्तिभावसे लल्लटमें  
त्रिपुण्ड्र धारण करे । त्रिपुण्ड्र अत्यन्त उत्तम तथा भेद-  
और मोक्षको देनेवाला है । त्रिपुण्ड्रकी तीनों रेखाओंमेंसे प्रत्येकजै  
नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अङ्गोंमें स्थित हैं; मैं उनका  
परिचय देता हूँ । सावधान होकर सुनो । मुनिवरो ! प्रणवका  
प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण,  
ऋग्वेद, कियादक्षिणि, प्रातःस्वन तथा महादेव—ये  
त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखाके नौ देवता हैं, यह बात शिव-  
दीक्षापरायण पुरुषोंको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये ।  
प्रणवका दूसरा अक्षर उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुणः  
यजुर्वेद, मध्यांदेनस्वन, इच्छाशक्ति, अन्तरात्मा तथा  
महेश्वर—ये दूसरी रेखाके नौ देवता हैं । प्रणवका तीसरा  
अक्षर मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, शुल्क-  
ज्ञानशक्ति, सामवेद, तृतीयस्वन तथा शिव—ये तीन रेखाके  
नौ देवता हैं । इस प्रकार स्थान-देवताओंको उन  
भक्तिपूर्वक भस्मसे नित्य नमस्कार करके स्नान आदिसे शुद्ध हुँ  
पुरुष यदि त्रिपुण्ड्र धारण करे तो भोग और मोक्षको भी प्राप्त  
कर लेता है । मुनीश्वर ! ये सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्थान-देवता वर्ण  
गये हैं; अब उनके सम्बन्धी स्थान वताता हैं  
भक्तिपूर्वक सुनो । बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थान  
त्रिपुण्ड्रका न्यास करे । मस्तक, लल्लट, दोनों कान, दोनों नेक  
दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथ, दोनों कोहनी, दोनों  
कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अङ्गकोण, दोनों  
ऊर, दोनों गुल्फ, दोनों बुद्धने, दोनों पिंडली और दोनों पैर—  
ये बत्तीस उत्तम स्थान हैं, इनमें क्रमशः अग्नि, जल, पृथ्वी,

\* पापानां हरणे शम्भोर्नामः ऋक्षिर्हि वाचती ।

शकोति पातकं तावत् वर्तु नामि नरः कच्चित् ॥

( शिं० पु० वि० २३ । ४२ )

बायु, दस दिक्प्रदेश, दस दिक्पाल तथा आठ वसुओंका निवास है। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इन सबका नामान्व लेकर इनके स्थानोंमें विद्वान् पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करे।

अथवा एकाग्रचित्त हो सोलह स्थानमें ही त्रिपुण्ड्र धारण करे। मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कंधों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाइयोंमें, हृदयमें, नाभिमें, दोनों पसलियोंमें तथा पृष्ठभागमें त्रिपुण्ड्र लगाकर वहाँ दोनों अविनीकुमरियोंका शिव, शक्ति, रुद्र, ईश तथा नारदका और वामा आदि नौ शक्तियोंका पूजन करे। ये सब मिलकर सोलह देवता हैं। अविनीकुमर दो कहे गये हैं—नासत्य और दस्त। अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठभाग—इन सोलह स्थानोंमें सोलह त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तकमें शिव, केशमें चन्द्रमा, दोनों कानोंमें रुद्र और ब्रह्मा, मुखमें विश्वराज गणेश, दोनों भुजाओंमें विष्णु और लक्ष्मी, हृदयमें शम्भु, नाभिमें प्रजापति, दोनों ऊर्होंमें नारा और नारकन्याएँ, दोनों बुटनोंमें ऋषिकन्याएँ, दोनों पैरोंमें समुद्र तथा विशाल पृष्ठभागमें सण्ठी तीर्थ देवतास्पसे

विराजमान हैं। इस प्रकार सोलह स्थानोंका परिचय दिया गया। अब आठ स्थान बताये जाते हैं। गुह्य स्थान, ललाट, परम उत्तम कर्णयुगल, दोनों कंधे, हृदय और नाभि—ये आठ स्थान हैं। इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षि—ये आठ देवता बताये गये हैं। मुनीश्वरो ! भस्मके स्थानको जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह आठ स्थानोंका परिचय दिया है। अथवा मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंको भस्मवेत्ता पुरुषोंने भस्म धारणके बोग्य बताया है। यथासम्भव देश, काल आदिकी अपेक्षा रखते हुए उद्भूलन (भस्मको अभिमन्त्रित करना और जलमें मिलाना आदि कार्य) करे। यदि उद्भूलमें भी असमर्थ हो तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये। चिनेश्वरधारी, तीनों गुणोंके आधार तथा तीनों देवताओंके जनक भगवान् शिवका स्मरण करते हुए ‘नमः शिवाय’ कहकर ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये। ‘ईशाभ्यां नमः’ ऐसा कहकर दोनों पार्श्वभागोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। ‘श्रीजाभ्यां नमः’ यह बोलकर दोनों कलाइओंमें भस्म लगाये। ‘पितृभ्यां नमः’ कहकर नीचेके अङ्गमें, ‘उमेशाभ्यां नमः’ कहकर ऊपरके अङ्गमें तथा ‘भीमाय नमः’ कहकर पीठमें और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये।

( अथ्याय २३, २४ )

### रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महाप्राप्त ! महामते ! शिवरूप शैनक ! अब मैं संक्षेपसे रुद्राक्षका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो। रुद्राक्ष शिवको बहुत ही प्रिय है। इसे परम पावन समझना चाहिये। रुद्राक्षके दर्दनसे, स्पर्शसे तथा उसपर जप करनेसे वह समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला माना गया है। मुने ! पूर्वकालमें परमात्मा शिवने समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये देवी पार्वतीके भाग्मने रुद्राक्षसी महिमाका वर्णन किया था।

भगवान् शिव चेत्ते—महेश्वरि शिव ! मैं तुम्हारे प्रेयवद्य भक्तोंके हितकी कामनासे रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करता हूँ, सुनो। महेश्वरि ! पूर्वकालकी वात है, मैं मनको संयममें रक्षकर हजारों दिव्य घरोंतक घोर तपस्यामें लगा रहा। एक दिन सहस्र मेरा मन क्षुब्ध हो उठा। परमेश्वरि ! मैं समृद्ध लोकोंका उपकार करनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर हूँ। अतः उम्म लम्भ नैने लोलाशय ही अग्ने दोनों नैव लोले, लोलने ही भेरे मनोदर नैवपुर्यसे कुरु जलसी चूँदे गिरो।

आँखूकी उन बूँदोंसे वहाँ रुद्राक्ष नामक वृक्ष पैदा हो गया। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे अशुकिन्दु स्थावरभावको प्राप्त हो गये। वे रुद्राक्ष मैने विष्णुभक्तको तथा चारों वर्णोंके लोगोंको बाँट दिये। भूतलपर अपने प्रिय रुद्राक्षोंको मैने गौड़ देशमें उत्पन्न किया। मथुरा, अयोध्या, लङ्का, मलयान्वत, सहस्रिरि, कोली तथा अन्य देशोंमें भी उनके अङ्गुर लगाये। वे उत्तम रुद्राक्ष अमृत पापमृहोंका भेदन करनेवाले तथा श्रुतियोंके भी प्रेरक हैं। मेरी आज्ञासे वे व्राह्मण, धनिय, वैद्य और शूद्र जातिके भेदसे इस भूतलपर प्रकट हुए। रुद्राक्षोंकी ही जातिके शुभाश्र भी हैं। उन व्राह्मणादि जातियाले रुद्राक्षोंके वर्ण, द्रवेन, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि वे क्रमशः वर्णके अनुसार अपनी जातिका ही रुद्राक्ष धारण करें। भोग और मोक्षकी इच्छा रक्षनेवाले चारों वर्णोंके लोगों और शिशेपनः शिवभक्तोंको शिव-पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये रुद्राक्षके फलोंको ध्रवश्व धारण करना चाहिये। आँखेलेके कान्दे वरगद्य जो

रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ वताया गया है। जो बेरके फलके बराबर हो, उसे मध्यम श्रेणीका कहा गया है और जो चनेके बराबर हो, उसकी गणना निम्नकोटिमें की गयी है। अब इसकी उत्तमताको परखनेकी यह दूसरी उत्तम प्रक्रिया वतायी जाती है। इसे बतानेका उद्देश्य है भक्तोंकी हितकामना। पार्वती ! तुम भली-भौंति प्रेमपूर्वक इस विषयको सुनो।

महेश्वरि ! जो रुद्राक्ष बेरके फलके बराबर होता है, वह उतना छोटा होनेपर भी लोकमें उत्तम फल देनेवाला तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है। जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके बराबर होता है, वह समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला होता है तथा जो गुज्जाकलके समान वहुत छोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों और फलोंकी सिद्धि करनेवाला है। रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-ही-वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। एक-एक बड़े रुद्राक्षसे एक-एक छोटे रुद्राक्षको विद्वानोंने दसगुना अधिक फल देनेवाला वताया है। पापोंका नाश करनेके लिये रुद्राक्ष-धारण आवश्यक बताया गया है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंका साधक है। अतः अवश्य ही उसे धारण करना चाहिये। परमेश्वरि ! लोकमें मङ्गलमय रुद्राक्ष जैसा फल देनेवाला देखा जाता है, वैसी फलदायिनी दूसरी कोई माला नहीं दिखायी देती। देवि ! समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, मजबूत, स्थूल, कण्टक-युक्त ( उभरे हुए छोटे-छोटे दानोंवाले ) और सुन्दर रुद्राक्ष अभिलिप्ति पदार्थोंके दाता तथा सदैव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। जिसे कीड़ोंने दूषित कर दिया हो, जो दूटा-फूटा हो, जिसमें उभरे हुए दाने न हों, जो ब्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन पाँच प्रकारके रुद्राक्षोंको त्याग देना चाहिये। जिस रुद्राक्षमें अपने-आप ही डोरा पिरोनेके योग्य छिद्र हो गया हो, वही यहाँ उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छेद किया गया हो, वह मध्यम श्रेणीका होता है। रुद्राक्ष-धारण बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। इस जगत्‌में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्णोंमें भी नहीं किया जा सकता। भक्तिमान् पुरुष सदि पाँच सौ रुद्राक्षके दानोंका सुन्दर मुकुट बना ले और उसे सिरपर धारण करे। तीन लौ साठ दानोंको लंबे सूतमें मिरोकर एक हर बना ले। वैसे-वैसे तीन हर बनाकर भक्तिपरायग पुरुष उनका यज्ञोपवीत तैयार करे और उसे यथास्थान धारण किये रहे।

इसके बाद किस अङ्गमें कितने रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, यह बताकर सूतजी बोले—महर्षियो ! सिरपर ईशान-मन्त्रसे, कानमें तत्पुरुष-मन्त्रसे तथा गले और हृदयमें अधोरमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। विद्वान् पुरुष दोनों हाथोंमें अवोर-वीजमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करे। उत्तरप वामदेव-मन्त्रसे पंद्रह रुद्राक्षोंद्वारा गुंथी हुई माला धारण करे। अथवा अङ्गोंसहित प्रणवका पाँच बार लप करके रुद्राक्षकी तीन, पाँच या सात मालाएँ धारण करे। अथवा मूलमन ( 'नमः शिवाय' ) से ही समस्त रुद्राक्षोंको धारण करे। रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पानमें मदिरा, मांस, ल्लहुत्त प्याज़, सहिजन, लिसोडा आदियों त्याग दे। गिरिराजनन्दिनी उमे ! इवेत रुद्राक्ष केवल ब्राह्मणोंको ही धारण करना चाहिये। गहरे लाल रंगका रुद्राक्ष धत्रियोंके लिये हितकर बताया गया है। वैश्योंके लिये प्रतिदिन वारंवार पीले रुद्राक्षको धारण करना आवश्यक है और शूद्रोंको काले रंगका रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—यह वेदोक्त मार्ग है। ब्रह्माचारी, वानप्रस्थ, यहस्य और संन्यासी—ज्यवको नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना उचित है। इसे धारण करनेका सौभाग्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। उमे ! पहले आँवलेके बराबर और फिर उससे भी छोटे रुद्राक्ष धारण करे। जो रोगी हों, जिनमें दाने न हों, जिन्हें कीड़ोंने खा लिया हो, जिनमें पिरोनेयोग छेद न हों, ऐसे रुद्राक्ष मङ्गलाकाङ्क्षी पुरुषोंको नहीं धारण करने चाहिये। रुद्राक्ष मेरा मङ्गलमय लिङ्ग-विग्रह है। वह अन्तोगत्या चनेके बराबर लबुतर होता है। सूक्ष्म रुद्राक्षजे ही सदा प्रशस्त माना गया है। सभी आश्रमों, समस्त वर्णों खियों और शूद्रोंको भी भगवान् शिवकी आशाके अनुसार सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। यतियोंके लिये प्रणवके उच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष-धारणका विधान है। जिसके ललाटमें चिपुण्ड लगा हो और सभी अङ्ग रुद्राक्षसे विभूषित हों तथा जो मृत्युज्ञयमन्त्रका जप कर रहा हो, उसका दर्शन करनेपर सक्षात् रुद्रके दर्शनका फल प्राप्त होता है।

पार्वती ! रुद्राक्ष अनेक प्रकारके बताये गये हैं। मैं उनके भेदोंका वर्णन करता हूँ। वे भेद भोग और मोक्षलूप फल देनेवाले हैं। तुम उत्तम भक्तिमान्वासे उनका परिचय सुनो। एक सुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप है। वह भोग और

\* सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाशया ।

धार्याः सदैव रुद्राक्षा × × × × ॥

मोश्लृष्टी फल प्रदान करता है। जहाँ रुद्राक्षकी पूजा होती है, वहाँ से लक्ष्मी दूर नहीं जाती। उस स्थानके सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंकी समूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। दो मुखवाला रुद्राक्ष देवदेवेश्वर कहा गया है। वह समूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाला है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष सदा साक्षात् साधनका फल देनेवाला है, उसके प्रभावसे सारी विद्याएँ प्रतिष्ठित होती हैं। चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माका रूप है। वह दर्शन और स्पर्शसे शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्निरुद्र-रूप है। वह सब कुछ करनेमें समर्थ है। सबको मुक्ति देनेवाला तथा समूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है। पञ्चमुख रुद्राक्ष समस्त पार्थोंको दूर कर देता है। छः मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका रूप है। यदि दाहिनी बाँहमें उसे धारण किया जाय तो धारण करनेवाला मनुष्य ब्रह्मल्या आदि पार्थोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। महेश्वरि ! सात मुखवाला रुद्राक्ष अनङ्गरूप और अनङ्ग नामसे ही प्रसिद्ध है। देवेशि ! उसको धारण करनेसे दरिद्र भी ऐश्वर्यशाली हो जाता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरवरूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य पूर्णमु होता है और मृत्युके पश्चात् शूलधरी शंकर हो जाता है। नौ मुखवाले रुद्राक्षको भैरव तथा कपिलमुनिका प्रतीक माना गया है अथवा नौ लप धारण करनेवाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी है। जो मनुष्य भक्ति-धरायण हो अपने वायें हाथमें नवमुख रुद्राक्षको धारण करता है, वह निश्चय ही मेरे समान सर्वेश्वर हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। महेश्वरि ! दस मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् विष्णुका रूप है। देवेशि ! उसको धारण करनेसे मनुष्यकी समूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। परमेश्वरि ! शारह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह रुद्ररूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। वरह मुखवाले रुद्राक्ष-के शपदेशमें धारण करे। उसके धारण करनेसे मानो मस्तक-में आदित्य विराजमान हो जाते हैं। तेरह मुखवाला

रुद्राक्ष विश्वेदेवोंका स्वरूप है। उसको धारण करके मनुष्य समूर्ण अभीष्ठोंको पाता तथा सौभाग्य और मङ्गल लाभ करता है। चौदह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह परम शिवरूप है। उसे भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करे। इससे समस्त पार्थोंका नाश हो जाता है।

गिरिराजकुमारी ! इस प्रकार मुखोंके भेदसे रुद्राक्षके चौदह भेद बताये गये। अब तुम क्रमशः उन रुद्राक्षोंके धारण करनेके मन्त्रोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो। १. ॐ हीं नमः। २. ॐ नमः। ३. ॐ नमः। ४. ॐ हीं नमः। ५. ॐ हीं नमः। ६. ॐ हीं हुं नमः। ७. ॐ हुं नमः। ८. ॐ हुं नमः। ९. ॐ हीं हुं नमः। १०. ॐ हीं नमः। ११. ॐ हीं हुं नमः। १२. ॐ क्रौंक्षौरैं नमः। १३. ॐ हीं नमः। १४. ॐ नमः। इन चौदह मन्त्रोंद्वारा क्रमशः एकसे लेकर चौदह मुखवाले रुद्राक्षको धारण करनेका विधान है। साधकको चाहिये कि वह निद्रा और आलस्यका त्याग करके श्रद्धा-भक्तिसे सम्पन्न हो समूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये उक्त मन्त्रोंद्वारा उन-उन रुद्राक्षोंको धारण करे। रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले पुरुषको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं, वे सबके सब दूर भाग जाते हैं। जो कृत्रिम अभिचार आदि प्रयुक्त होते हैं, वे सब रुद्राक्षधारीको देखकर सशङ्क हो दूर खिसक जाते हैं। पार्वती ! रुद्राक्षमालाधारी पुरुषको देखकर मैं शिव, भगवान् विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। महेश्वरि ! इस प्रकार रुद्राक्षकी महिमाको जानकर धर्मकी दृढिके लिये भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा विधिवत् उसे धारण करना चाहिये।

मुनीश्वर ! भगवान् शिवने देवी पर्वतीके मामने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने कह सुनाया। मुनीश्वरो ! मैंने तुम्हारे समझ इस विद्येश्वर-संहिताका वर्णन किया है। यह संहिता समूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली तथा भगवान् शिवकी आशासे नित्य मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

( अच्याय २५ )

## रुद्रसंहिता ( प्रथम सृष्टिखण्ड )

**ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीका उन्हें नारदमांह-  
का प्रसङ्ग सुनाना; कामधिजयके गर्वसे युक्त हुए नारदका शिव, ब्रह्मा  
तथा विष्णुके पास जाकर अपने तपका ग्रभाव वताना**

**विश्वेश्वरस्थितिलघादिपु हेतुमेकं  
गौरीपति विदिततस्वमनन्तकीर्तिम् ।**  
**मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं  
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि ॥**

जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लग्न आदिके एकमात्र कारण हैं, गौरी गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं तथा जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन विमल बोधस्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ।

**बन्दे शिवं तं प्रकृतेनादिं  
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि ।**  
**स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सद्गु  
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥**

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, एकमात्र, पुरुषोत्तम शिवकी बन्दना करता हूँ, जो अपनी मायासे इस सम्भूज विश्वकी सुष्ठु करके आकाशकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित है ।

**बन्देऽन्तरस्थं निजगृहरूपं  
शिवं स्वतस्वप्नुमिदं विच्छेऽ ।**  
**जगन्ति नित्यं परितो असन्ति  
अत्सन्निधौ तुम्बकलोहवत्तम् ॥**

जैसे लोहा तुम्बकसे आकृष्ट होकर उसके पास ही लट्का रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत् सदा सब ओर जिसके आसपास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपनेसे ही इस प्रपञ्चको रचनेकी विधि वतायी थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विगजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गृद है, उन भगवान् शिवकी मैं सादर बन्दना करता हूँ ।

**न्यासजी कहते हैं—**जगन्तके पिता भगवान् शिव, जगन्माता कल्याणमयी पार्वती तथा उनके पुत्र गणेशजीको नगम्बाग करके हम इस पुराणका वर्णन करते हैं । एक मग्य-

की वात है, नैमित्पारम्परमें निवास करनेवाले द्यौनक व्यादि सर्वे मुनियोंने उत्तम भक्तिभावके साथ सूतजीसे पूछा—

**ऋषि बोले—**महाभाग सूतजी ! विश्वेश्वरसंहिताकी ओं साध्यसाधन-खण्ड नाभवाली शुभ एवं उत्तम कथा है अं हमलोगोंने सुन लिया । उसका आदिभाग बहुत ही सर्वोंम है तथा वह शिव-भक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-स्नेह प्रश्न करनेवाली है । निद्रन् ! अब आप भगवान् शिवके परम उत्तम स्वरूपका वर्णन कीजिये । साथ ही शिव और पार्वतीके द्विचरित्रोंका पूर्णरूपसे श्रवण कराइये । हम पूछते हैं, निर्दु महेश्वर लोकमें सगुणरूप कैसे धारण करते हैं ? हम सब द्वे विचार करनेपर भी शिवके तत्त्वको नहीं समझ पाते । सुष्ठिके पहले भगवान् शिव किस प्रकार अपने स्वरूपसे सिंह होते हैं ? फिर सुष्ठिके मध्यकालमें वे भगवान् किस तरह क्रीड़ करते हुए सम्यक् व्यवहार-वर्ताव करते हैं और सुष्ठिकल्प अन्त होनेपर वे महेश्वरदेव किस रूपमें स्थित रहते हैं ? लोक, कल्याणकारी शंकर कैसे प्रसन्न होते हैं ? और प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों तथा दूसरोंको कौन-सा उत्तम फल प्रदान करते हैं ? यह सब हमसे कहिये । हमने सुना है कि भास्तु शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं । वे महान् दयालु हैं, इसके अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते । ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीन देवता शिवके ही अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं । उनके प्राकृत्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंकी कीजिये । प्रभो ! आप उसके व्यावर्भाव और विवाहकी कथा कहिये । विशेषतः उनके गार्हस्थ्यधर्मका और अलीलाओंका भी वर्णन कीजिये । निष्पाप सूतजी ! ( हम प्रश्नके उत्तरमें ) आपको ये सब तथा दूसरी बातें भी अर्थकहनी चाहिये ।

**सूतजीने कहा—**सुनीश्वरो ! आपलोगोंने वही उन्हीं वात पूछी है । भगवान् सदाशिवकी कथामें आपलोगोंने आन्तरिक निष्ठा हुई है, इसके लिये आप धन्यवादके पात्र त्राहणो ! भगवान् शंकरका गुणानुवाद सत्त्विक, राजा-

तामस तीनों ही प्रकृतिके मनुष्योंको सदा आनन्द प्रदान करनेवाला है। पशुओंकी हिंसा करनेवाले निष्ठुर कर्साईके सिवा दूसरा कौन पुरुष उस गुणानुवादको सुननेसे ऊपर सकता है। जिनके मनमें कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् शिवके उन गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि वह गुणावली संसार-रूपी रौगकी दवा है, मन तथा कानोंको प्रिय लगानेवाली और सम्पूर्ण भनोरयोंको देनेवाली है॥ १। ब्राह्मणो ! आपलोगोंके प्रश्नके अनुसार मैं यथात्मुद्दि प्रयत्नपूर्वक शिवलीलाका वर्णन करता हूँ, आप आदरपूर्वक सुनें। जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार देवर्पिणी नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पितासे पूछा था। अपने पुत्र नारदका प्रश्न सुन- २ शिवभक्त ब्रह्माजीका चित्त प्रसन्न हो गया और वे उन नेशिरोमणिको हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् शिवके इका गान करने लगे।

एक समयकी बात है, मुनिशिरोमणि विग्रहर नारदजीने, ब्रह्माजीके पुत्र हैं, विनीतचित्त हो तपस्यामें मन लगाया। माल्य पर्वतमें कोई एक गुफा थी, जो बड़ी शोभासे सम्पन्न



॥ एम्भोगुणानुवादर यो विश्वेत पुमान् द्विजः ।  
दिना पशुमं विविभजनानन्दवतात् सरा ॥  
गीरदन्ते विश्वनेत्र भवतेनांपर्वेऽपि हि ।  
स्वार्थेऽप्यदिवनक्ष यतः सर्वार्ददः क्ष वै ॥  
(सिं० पृ० ३० खद० ३० १ । २३-२४ )

दिखायी देती थी। उसके निकट देवनदी गङ्गा निरन्तर वेग-पूर्वक बहती थीं। वहाँ एक महान् दिव्य आश्रम था, जो नाना प्रकारकी शोभासे सुशोभित था। दिव्यदर्शी नारदजी तपस्या करनेके लिये उसी आश्रममें गये। उस गुफाको देखकर मुनिवर नारदजी वहे प्रसन्न हुए और सुदीर्घकालतक वहाँ तपस्या करते रहे। उनका अन्तःकरण शुद्ध था। वे दृढ़तापूर्वक आसन बौधकर मौन हो प्राणायामपूर्वक समाधिमें स्थित हो गये। ब्राह्मणो ! उन्होंने वह समाधि लगायी, जिसमें ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाला ‘अहं ब्रह्मास्मि’ (मैं ब्रह्म हूँ) —यह विज्ञान प्रकट होता है। मुनिवर नारदजी जब इस प्रकार तपस्या करने लगे, उस समय यह समाचार पाकर देवराज इन्द्र कौप उठे। वे मानसिक संतापसे विहळ हो गये। ‘ये नारद मुनि मेरा राज्य लेना चाहते हैं’—मन-ही-मन ऐसा सोचकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रयत्न करनेकी इच्छा की। उस समय देवराजने अपने मनसे कामदेवका स्मरण किया। स्मरण करते ही कामदेव आ गये। महेन्द्रने उन्हें नारदजीकी तपस्यामें विघ्न डालनेका आदेश दिया। यह आत्मा पाकर कामदेव वसन्तको साथ ले वहे गर्वसे उस स्थानपर गये और अपना उपाय करने लगे। उन्होंने वहाँ शीघ्र ही अपनी सारी कलाएँ रच डालीं। वसन्तने भी मदमत्त होकर अपना प्रभाव अनेक प्रकारसे प्रकट किया। मुनिवरो ! कामदेव और वसन्तके अथक प्रयत्न करनेपर भी नारद मुनिके चित्तमें विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेवजीके अनुग्रहसे उन दोनोंका गर्व चूर्ण हो गया।

शौनक आदि महर्यियो ! ऐसा होनेमें जो कारण था, उसे आदरपूर्वक सुनो। महादेवजीकी कृपासे ही नारदमुनिपर कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पहले उसी आश्रममें कामशत्रु भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहीं उन्होंने मुनियोंकी तपस्याका नाश करनेवाले कामदेवको शीघ्र ही भस्त कर डाला था। उस समय रत्निने कामदेवको पुनः जीवित करनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना की। तब देवताओंने समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे याचना की। उनके याचना करनेपर वे बोले—‘देवताओ ! कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेव जीवित तो हो जायेंगे, परंतु वहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा। अमरण ! वहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतकरी भूमिको नेत्रोंसे देख पाते हैं, वहाँतक कामदेवके बाणोंका प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संदाय नहीं है।’ ३ भगवान् शंकरकी इस उक्तिके अनुसार उन समय वहाँ नारदजीके प्रति कामदेवका निजी

प्रभाव मिथ्या सिद्ध हुआ । वे शीघ्र ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास लौट गये । वहाँ कामदेवने अपना सारा वृत्तान्त और मुनिका प्रभाव कह सुनाया, तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वे बसन्तके साथ अपने स्थानको लौट गये । उस समय देवराज इन्द्रको बड़ा विसय हुआ । उन्होंने नारदजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे उस पूर्ववृत्तान्तको स्वरण न कर सके । वास्तवमें इस संसार-के भीतर सभी प्राणियोंके लिये शमुकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है । जिसने भगवान् शिवके चरणोंमें अपने आपको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सारा जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है<sup>\*</sup> । नारदजी भी भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँ चिरकालतक तपस्यामें लगे रहे । जब उन्होंने अपनी तपस्याको पूर्ण हुई समझा, तब वे मुनि उससे विरत हो गये । 'कामदेवपर मेरी विजय हुई' ऐसा मानकर उन मुनीश्वरके मनमें व्यर्थ ही गर्व हो गया । भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा । ( वे यह नहीं समझ सके कि कामदेव-के पराजित होनेमें भगवान् शंकरका प्रभाव ही कारण है । ) उस मायासे अत्यन्त मोहित हो मुनिशिरोमणि नारद अपना काम-विजय-सम्बन्धी वृत्तान्त बतानेके लिये तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये । उस समय वे विजयके मदसे उन्मत्त हो रहे थे । वहाँ रुद्रदेवको नमस्कार करके गर्वसे भरे हुए मुनिने अपने आपको महात्मा मानकर तथा अपने ही प्रभावसे कामदेवपर अपनी विजय हुई समझकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

वह सब सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने नारदजीसे, जो अपनी ( शिवकी ) ही मायासे मोहित होनेके कारण काम-विजयके यथार्थ कारणको नहीं जानते थे और अपने विवेकको भी खो बैठे थे, कहा—

रुद्र बोले—तात नारद ! तुम बड़े विद्वान् हो, धन्यवादके पात्र हो । परंतु मेरी यह बात ध्यान देकर सुनो । अबसे फिर कभी ऐसी बात कहीं भी न कहना । विशेषतः भगवान् विष्णुके सामने इसकी चर्चा कदापि न करना । तुमने मुझसे अपना जो वृत्तान्त बताया है, उसे पूछनेपर भी दूसरोंके सामने न कहना । वह सिद्धि-सम्बन्धी वृत्तान्त सर्वथा गुप्त रखने योग्य है, इसे कभी किसीपर प्रकट नहीं करना चाहिये । तुम सुझे विशेष प्रिय हो, इसीलिये अधिक जोर देकर मैं तुम्हें यह

\* दुर्जया शाम्भवी नाया सर्वेषां प्राणिनामिह ।

भक्तं विनार्पितात्मानं तथा सम्मोहने जगत् ॥

( शि० पु० रु० स० २ । २५ )

शिक्षा देता हूँ और इसे न कहनेकी आज्ञा देता हूँ; किंतु मुम भगवान् विष्णुके भक्त हो और उनके भक्त होते हुए ही गेरे अत्यन्त अनुगमी हो ।

इस प्रकार वहुत कुछ कहकर संतारकी सुष्ठि करनेवें भगवान् रुद्रने नारदजीको शिक्षा दी—अपने वृत्तान्तको युखनेके लिये उन्हें समझाया-वृश्चाया । परंतु वे तो शिक्षा मायासे मोहित थे । इसलिये उन्होंने उनकी दी हुई शिक्षाएं अपने लिये हितकर नहीं माना । तदनन्तर मुनिशिरोमणि तद व्रह्मलोकमें गये । वहाँ ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने ऋषिताजी ! मैंने अथेने तपोवलसे कामदेवको जीत लिया है । उनकी वह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवके चरणरविन्दोंका चिन्तन किया और सारा कारण जानकर अपने पुक्ष यह सब कहनेसे मना किया । परंतु नारदजी शिवकी माया से मोहित थे । अतएव उनके चित्तमें भद्रका अङ्कुर जम फूल था । उनकी बुद्धि भारी गयी थी । इसलिये नारदजी अह सारा वृत्तान्त भगवान् विष्णुके सामने कहनेके लिये कहे शीघ्र ही विष्णुलोकमें गये । नारद मुनिको अते देख भक्त विष्णु बड़े आदरसे उठे और शीघ्र ही आगे बढ़कर उसे



मुनिको ढूढ़यसे लगा लिया । मुनिके आगमनका क्या है इसका उन्हें पहलेसे ही पता था । नारदजीको अपने अल्प पर बिठाकर भगवान् शिवके चरणरविन्दोंका चिन्तन श्रीहरिने उनसे पूछा—

भगवान् विष्णु बोले—तात ! कहाँसे आते हैं ?

किसलिये तुम्हारा आगमन हुआ है ! मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो । तुम्हारे शुभागमनसे मैं पवित्र हो गया ।

भगवान् विष्णुका यह बचन सुनकर गर्वसे भरे हुए नारद-मुनिने मदसे मोहित होकर अपना सारा वृत्तात्म वडे अभिमान-के साथ कह सुनाया । नारद मुनिका वह अहंकारयुक्त बचन सुनकर मन-ही-मन भगवान् विष्णुने उनकी कामविजयके यथार्थ कारणको पूर्णरूपसे जान लिया ।

तत्पश्चात् श्रीविष्णु बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, तपस्याके तो भंडार ही हो । तुम्हारा हृदय भी बड़ा उदार है । मुने ! जिसके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं होते, उसीके मनमें समस्त दुःखोंको देनेवाले काम, मोह आदि विकार श्रीघ उत्पन्न होते हैं । तुम तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो और

**मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्का अपने रूपके साथ उन्हें वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्को बरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना**

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! जब नारदमुनि इच्छानुसार वहाँसे चले गये, तब भगवान् शिवकी इच्छासे मायाविशारद श्रीहरिने तत्काल अपनी माया प्रकट की । उन्होंने मुनिके मार्गमें एक विशाल नगरकी रचना की, जिसका विस्तार सौ योजन था । वह अद्भुत नगर बड़ा ही मनोहर था । भगवान्ने उसे अपने वैकुण्ठ लोकसे भी अधिक रमणीय बनाया था । नाना प्रकारकी वस्तुएँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं । वहाँ स्त्रियों और पुरुषोंके लिये वहुत-से विहार-स्थल थे । वह थ्रेषु नगर चारों दर्शनोंके लोगोंसे भरा था । वहाँ शीलनिधि नामक ऐश्वर्यशाली राजा राज्य करते थे । वे अपनी पुत्रीका स्वयंवर करनेके लिये उद्घत थे । अतः उन्होंने महान् उत्सवका आयोजन किया था । उनकी कन्याका बरण करनेके लिये उत्सुक ही चारों दिद्याओंसे वहुत-से राजकुमार प्रधारे थे, जो नाना प्रकारकी वेदाभूपा तथा सुन्दर शोभासे प्रकाशित हो रहे थे । उन राजकुमारोंसे वह नगर भरा-पूरा दिद्यायी देता था । ऐसे सुन्दर राजनगरको देख नारदजी मोहित हो गये । वे राजा शीलनिधिके द्वारपर गये । मुनिशिरोमणि नारदको शाम देख महाराज शीलनिधिने ध्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर विचार उनका पूजन किया । तत्पश्चात् अपनी सुन्दरी कन्याको, जिसका नाम धीमती था, तुल्याया और उससे नारदजीके चरणोंमें दीपांग फरवाया । उस कन्याको देखकर नारदमुनि स्वकृत हो गये और दोहे—राज्ञ ! वह देवकन्याके समान सुन्दरी रत्नमय कन्या दीन है ? उनकी यह दात सुनकर राजने तथा जोइकर कहा—हुने ! वह नैरी पुत्री है । इसका नाम

सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हो; फिर तुममें कामविकार कैसे आ सकता है । तुम तो जन्मसे ही निर्विकार तथा शुद्ध बुद्धिवाले हो ।

श्रीहरिकी कही हुई ऐसी बहुत-सी वातें सुनकर मुनिशिरोमणि नारद जोर-जोरसे हँसने लगे और मन-ही-मन भगवान्को प्रणाम करके इस प्रकार बोले—

नारदजीने कहा—स्वामिन् ! जब मुझपर आपकी कृपा है, तब वेचारा कामदेव अपना क्या प्रभाव दिखा सकता है ।

ऐसा कहकर भगवान्के चरणोंमें मस्तक छुकाकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारद मुनि वहाँसे चले गये ।

( अध्याय १-२ )

श्रीमती है । अब इसके विवाहका समय आ गया है । यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्स स्वयंवरमें जानेवाली है । इसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं । महर्षे ! आप इसका भाग्य बताइये ।



राजा के इस प्रकार पूछनेपर कामसे विहळ हुए मुनिश्रेष्ठ नारद उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा मनमें लिये राजाको सम्मोघित करके इस प्रकार बोले—‘भूपाल ! आपकी यह पुत्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है, परम सौभाग्यवती है। अपने महान् भारयके कारण यह धन्य है और साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति समस्त गुणोंकी आगार है। इसका भावी पति निश्चय ही भगवान् शंकरके समान वैभवशाली, सर्वेश्वर, किसीसे पराजित न होनेवाला, वीर, कामविजयी तथा समूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ होगा।’

ऐसा कहकर राजासे विदा ले इच्छानुसार विचरनेवाले नारद मुनि वहाँसे चल दिये। वे कामके बशीभूत हो गये थे। शिवकी मायाने उन्हें विशेष मोहमें डाल दिया था। वे मुनि मन-ही-मन सोचने ल्ये कि ‘मैं इस राजकुमारीको कैसे प्राप्त करूँ ? स्वयंवरमें आये हुए नरेण्योंमें सबको छोड़कर यह एकमात्र मेरा ही वरण करे, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? समस्त नारियोंको सौन्दर्य सर्वथा प्रिय होता है। सौन्दर्यको देखकर ही वह प्रसन्नतापूर्वक मेरे अधीन हो सकती है, इसमें संशय नहीं है।’

ऐसा विचारकर कामसे विहळ हुए मुनिवर नारद भगवान् विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये तत्काल उनके लोकमें जा पहुँचे। वहाँ भगवान् विष्णुको प्रणाम करके वे इस प्रकार बोले—‘भगवन् ! मैं एकान्तमें आपसे अपना सारा वृत्तान्त कहूँगा।’ तब ‘बहुत अच्छा’ कहकर लक्ष्मीपति श्रीहरि नारदजीके साथ एकान्तमें जा बैठे और बोले—‘मुने ! अब आप अपनी बात कहिये।’

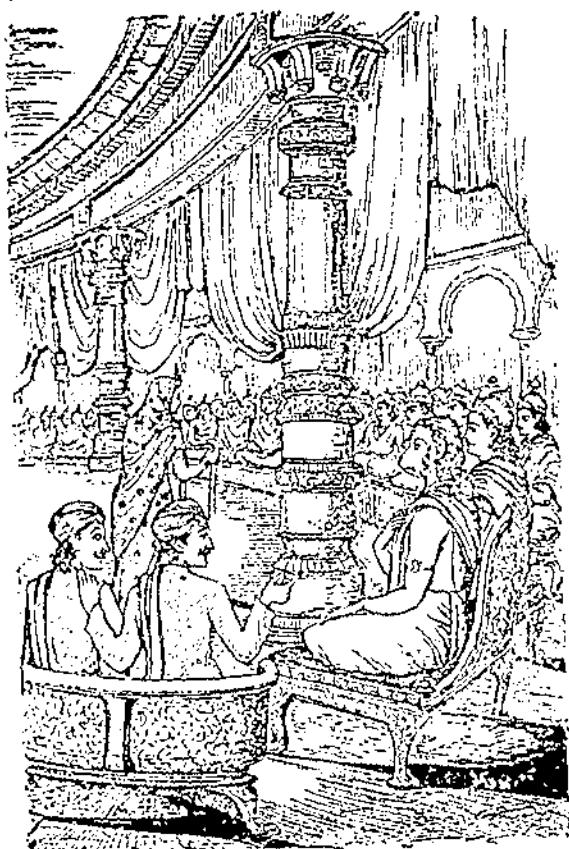
तब नारदजीने कहा—‘भगवन् ! आपके भक्त जो राजा शीलनिधि हैं, वे सदा धर्म-पालनमें तत्पर रहते हैं। उनकी एक विशाललोकना कन्या है, जो बहुत ही सुन्दरी है। उसका नाम श्रीमती है। वह विश्वमोहिनीके रूपमें विघ्नात है और तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी है। प्रभो ! आज मैं श्रीम ही उस कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ। राजा शीलनिधि अपनी पुत्रीकी इच्छासे स्वयंवर रचाया है। इसलिये चारों दिशाओंसे वहाँ महस्तों राजकुमार पधारे हैं।

नाथ ! मैं आपका प्रिय सेवक हूँ। अतः आप मुझे अप्म स्वरूप दे दीजिये, जिससे राजकुमारी श्रीमती निश्चय ही मुझे वर ले।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! नारद मुनिकी ऐसी बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और भगवान् शंकर के प्रभावका अनुभव करके उन दयालु प्रभुने उन्हें इस प्रका उत्तर दिया—

भगवान् विष्णु बोले—‘मुने ! तुम अपने यह स्थानको जाओ। मैं उसी तरह तुम्हारा हित-सविन कहाँ जैसे श्रेष्ठ वैद्य अत्यन्त धीङ्गि रोगीका करना है; मैं तुम मुझे विशेष प्रिय हो।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने नारदमुनिको मुख बानरका दे दिया और शोप अङ्गोंमें अपने-जैसा स्वरूप तो वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। भगवान्की पूर्वोक्त बात मुक्त और उनका मनोहर रूप प्राप्त हो गया समझकर नारदमुनि बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। भगवान् क्या प्रथम किया है, इसको वे समझ न सके। तदस्तु मुनिश्रेष्ठ नारद शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ श्रीलनिधिने राजकुमारोंसे भरी हुई स्वयंवर-समाप्ता आयोजित किया था। विप्रवरो ! राजपुत्रोंसे धिरी हुई वह दिव्य स्वरंज सभा दूसरी इन्द्रसभाके समान अत्यन्त शोभा पा रही थी। नारदजी उस राजपुत्रोंमें जा बैठे और वहाँ बैठकर प्रभु मनसे बार-बार वही सोचने लगे कि ‘मैं भगवान् विष्णु समान रूप धारण किये हुए हूँ। अतः वह राजकुमारी अवश्य मेरा ही वरण करेगी, दूसरेका नहीं।’ मुनिश्रेष्ठ नारदजी का ज्ञात नहीं था कि मेरा मुँह कितना कुरुक्षम है। उस मुँह से वैठे हुए सब मनुष्योंने मुनिको उनके पूर्वरूपमें ही देखा। राजकुमार आदि कोई भी उनके रूप-परिवर्तनके रहस्यमें जान सके। वहाँ नारदजीकी रक्षाके लिये भगवान् दो पार्षद आये थे, जो ब्राह्मणका रूप धारण करके गृहमें वहाँ बैठे थे। वे ही नारदजीके रूप-परिवर्तनके उत्तम में जानते थे। मुनिको कामावेशसे मूढ़ हुआ जान वे



पर्द उनके निकट गये और आपसमें वातचीत करते हुए नकी हँसी उड़ाने लगे। परंतु मुनि तो कामसे विहँल हो हे थे। अतः उन्होंने उनकी यथार्थ वात भी अनुसुनी करा। वे मोहित हो श्रीमतीको प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके गरमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

इसी शीघ्रमें वह सुन्दरी राजकन्या ज्ञियोंसे घिरी हुई भूतःपुरसे वहाँ आयी। उसने अपने हाथमें सोनेकी एक सुन्दर माला ले रखकी थी। वह शुभलक्षणा राजकुमारी खगंवरके सध्यभागमें लक्ष्मोके समान खड़ी हुई अपूर्व द्योभाग रही थी। उत्तम व्रतका पत्तन करनेवाली वह भूपकन्या गाथ हाथमें लेकर अपने मनके अनुरूप वरका अन्वेषण रती हुई सारी सभामें भ्रमण करने लगी। नारद भैरव भगवान् विष्णुके समान वरीर और वानरजैसा मुँह खिचकर वह कुपित हो गयी और उनकी ओरसे दृष्टि हटाकर गङ्गा मनसे दूसरी ओर चली गयी। खगंवर-सभामें अपने निशानित वरको न देखकर वह भयभीत हो गयी। श्रुमारी उस सभाके भीतर चुपचाप खड़ी रह गयी। उसने किसीके नहेमें ज्वमाला नहीं डाली। इतनेमें ही श्रुमारी समान देशनूपा धारण किये भगवान् विष्णु वहाँ आ गये। यिन्होंने दूसरे लेगोने उनको बहाँ नहीं देखा। केवल

उस कन्याकी ही दृष्टि उनपर पड़ी। भगवान् को देखते ही उस परमसुन्दरी राजकुमारीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने तल्काल ही उनके कण्ठमें वह माला पहना दी। राजा का रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु उस राजकुमारीको साथ लेकर तुरंत अदृश्य हो गये और अपने धाममें जा पहुँचे। इधर सब राजकुमार श्रीमतीकी ओरसे निराश हो गये। नारद मुनि तो कामवेदनासे आतुर हो रहे थे। इसलिये वे अत्यन्त विहँल हो उठे। तब वे दोनों विप्रस्पधारी ज्ञानविद्याराद रुद्रगण कामविहँल नारदजीसे उसी क्षण बोले—

रुद्रगणोंने कहा—हे नारद ! हे मुने ! तुम व्यर्थ ही कामसे मोहित हो रहे हो और सौन्दर्यके बलसे राजकुमारीको पाना चाहते हो। अपना वानरके समान वृणित मुँह तो देख लो।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! उन रुद्रगणोंका यह बचन सुनकर नारदजीको बड़ा विसय हुआ। वे शिवकी मायासे मोहित थे। उन्होंने दर्पणमें अपना मुँह देखा। वानरके समान अपना मुँह देख वे तुरंत ही क्रोधसे जल उठे और मायासे मोहित होनेके कारण उन दोनों शिवगणोंको वहाँ शाप देते हुए बोले—अरे ! तुम दोनोंने मुझ ब्राह्मणका



उपहास किया है। अतः तुम ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न राक्षस हो जाओ। ब्राह्मणकी संतान होनेपर भी तुम्हारे आकार राक्षसके समान ही होंगे।' इस प्रकार अपने लिये शाप सुनकर वे दोनों शानिशिरोमणि शिवगण मुनिको मोहित जानकर कुछ

नहीं बोले। ब्राह्मणों वे सदा सब घटनाओंमें भगवान् शिवजी ही इच्छा मानते थे। अतः उदासीन भावसे अपने सानों चले गये और भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।  
( अध्याय ३ )

### नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना; फिर मायाके दूर हो जानेका पश्चात्तापपूर्वक भगवान् के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-बुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! मायामोहित नारद मुनि उन दोनों शिवगणोंको यथोचित शाप देकर भी भगवान् शिवके इच्छावश मोहनिद्रासे जाग न सके। वे भगवान् विष्णुके किये हुए कपटको याद करके मनमें दुःसह क्रोध लिये विष्णुलोकको गये और समिधा पाकर प्रज्ञलित हुए अग्निदेवकी भाँति क्रोधसे जलते हुए बोले—उनका ज्ञान नष्ट हो गया था। इसलिये वे दुर्वचनपूर्ण व्यङ्ग सुनाने लगे।

नारदजीने कहा—हे ! तुम बड़े दुष्ट हो, कपटी हो और समस्त विश्वको मोहमें डाले रहते हो। दूसरोंका उत्साह या उत्कर्ष तुमसे सहा नहीं जाता। तुम मायाकी हो, तुम्हारा अत्तःकरण मलिन है। पूर्वकालमें तुम्हीने मोहिनीरूप धारण करके कपट किया, असुरोंको वास्ती मदिरा पिलायी, उन्हें अमृत नहीं पीने दिया। छल-कपटमें ही अनुराग रखनेवाले हो ! यदि महेश्वर रुद्र दया करके विष न पी लेते तो तुम्हारी सारी माया उसी दिन समाप्त हो जाती। विष्णुदेव ! कपटपूर्ण चाल तुम्हें अधिक प्रिय है। तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है, तो भी भगवान् शंकरने तुम्हें स्वतन्त्र बना दिया है। तुम्हारी इस चाल-दालको समझकर अब वे ( भगवान् शिव ) भी पश्चात्ताप करते होंगे। अपनी वाणीरूप वेदकी प्रामाणिकता स्थापित करनेवाले महादेवजीने ब्राह्मणको सर्वोपरि बताया है। हे ! इस बातको जानकर आज मैं वल्पपूर्वक तुम्हें ऐसी सीख दूँगा, जिससे तुम फिर कभी कहों भी ऐसा कर्म नहीं कर सकोगे। अबतक तुम्हें किसी शक्तिशाली यातेजस्ती पुरुषसे पाला नहीं पड़ा था। इसीलिये आजतक तुम निढ़र बने हुए हो। परंतु विष्णो ! अब तुम्हें अपनी करनीका पूरा-पूरा फल मिलेगा।

भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर मायामोहित नारद हुए अपने ब्रह्मतेजका प्रदर्शन करते हुए क्रोधसे लिना हो उठे हैं शाप देते हुए बोले—'विष्णो ! तुमने स्त्रीके लिये व्याकुल किया है। तुम इसी तरह सबको मोहमें डालते रहो। यह कपटपूर्ण कार्य करते हुए तुमने जिस स्वरूपसे मुझे किया था, उसी स्वरूपसे तुम मनुष्य हो जाओ और वियोगका दुःख भोगो। तुमने जिन वानरोंके समान मेरा बनाया था, वे ही उस समय तुम्हारे सहायक होंगे। तुम ( स्त्री-विरहका ) दुःख देनेवाले हो, अतः स्वयं भी तुम्हें वियोगका दुःख प्राप्त हो। अज्ञानसे मोहित मनुष्योंके तुम्हारी स्थिति हो !'

अज्ञानसे मोहित हुए नारदजीने भोहवश जब इस तरह शाप दिया, तब उन्होंने शम्भुकी प्रशंसा करते हुए उस शापको स्वीकार कर लिया। महालोला करनेवाले शम्भुने अपनी उस विश्वमोहिनी मार्जनाके कारण जानी नारद मुनि भी मोहित हो गये थे, लिया। उस मायाके तिरोहित होते ही नारदजी शुद्धबुद्धिसे युक्त हो गये। उन्हें पूर्ववत् ज्ञान प्राप्त हो और उनकी सारी व्याकुलता जाती रही। इससे उनके बड़ा विसय हुआ। वे अधिकाधिक पश्चात्ताप करते बारंबार अपनी निन्दा करने लगे। उस समय ज्ञानीको भी मोहमें डालनेवाली भगवान् शम्भुकी साराहना की। तदनन्तर यह जानकर कि मायाके कालमें भ्रममें पड़ गया था—यह सब कुछ मेरा मायाभ्रम ही था, वैष्णवशिरोमणि नारदजी भगवान् चरणोंमें गिर पड़े। भगवान् श्रीहरिने उन्हें उठाकर



दिया। उस समय अपनी दुर्बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण मैं बोले—‘नाथ ! मायासे मोहित होनेके कारण मेरी इच्छागड़ी गयी थी। इसलिये मैंने आपके प्रति बहुत चन कहे हैं, आपको शापतक दे डाला है। प्रभो ! उस को आप मिथ्या कर दीजिये। हाय ! मैंने बहुत बड़ा। किया है। अब मैं निश्चय ही नरकमें पड़ूँगा। हरे ! मैं इस दास हूँ। बताइये, मैं क्या उपाय—कौनसा प्रायश्चित्त जिससे मेरा पाप-समूह नष्ट हो जाय और मुझे नरकमें गिरना पड़े ?’ ऐसा कहकर शुद्ध बुद्धियाले मुनिशिरोमणि द्वंजी पुनः भक्तिभवसे भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिरा। उम समय उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। तब विष्णुने उन्हें उठाकर मधुर वाणीमें कहा—

भगवान् विष्णु बोले—तात ! खेद न करो। तुम ऐउ भक्त हो, इसमें संशय नहीं है। मैं तुम्हें एक यात दिया हूँ, तुमने। उससे निश्चय ही तुम्हारा परम हित होगा, और नरकमें नहीं जाना पड़ेगा। भगवान् शिव तुम्हारा ज्ञान दर्शने। तुमने मदसे मोहित होकर जो भगवान् द्वंजी यात नहीं जानी थी—उसकी अवहेलना कर दी थी, जी अपराधका भगवान् शिवने तुम्हें ऐसा फल दिया है; जोकि वे ही कर्मचालके दाता हैं। तुम अपने मनमें यह हृद

निश्चय कर लो कि भगवान् शिवकी इच्छासे ही यह सब कुछ हुआ है। सबके स्वामी परमेश्वर शंकर ही गर्वको दूर करनेवाले हैं। वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्हींका सच्चिदानन्दरूपसे बोध होता है। वे निर्गुण और निर्विकार हैं। सत्य, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे परे हैं। वे ही अपनी मायाको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन रूपोंमें प्रकट होते हैं। निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं। निर्गुण अवस्थामें उन्हींका नाम शिव है। वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनन्त और महादेव आदि नामोंसे कहे जाते हैं। उन्होंकी सेवासे ब्रह्माजी जगत्के स्वरूप हुए हैं और मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ। वे स्वयं ही रुद्ररूपसे सदा सबका संहार करते हैं। वे शिवस्वरूपसे सबके साक्षी हैं, मायासे भिन्न और निर्गुण हैं। स्वतन्त्र होनेके कारण वे अपनी इच्छाके अनुसार चलते हैं। उनका विहार—आचार-व्यवहार उत्तम है और वे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। नारदमुने ! मैं तुम्हें एक सुन्दर उपाय बताता हूँ, जो सुखद, समस्त पापोंका नाशक और सदा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। तुम उसे सुनो। अपने सारे संशयोंको त्यागकर तुम भगवान् शंकरके सुयशका गान करो और सदा अनन्य-भावसे शिवके शतनाम स्तोत्रका पाठ करो। मुने ! तुम निरन्तर उन्हींकी उपासना और उन्हींका भजन करो। उन्होंके यशको सुनो और गाओ। तथा प्रतिदिन उन्होंकी पूजा-अर्चा करते रहो। नारद ! जो शरीर, मन और वाणीद्वारा भगवान् शंकरकी उपासना करता है, उसे पण्डित या ज्ञानी जानना चाहिये। वह जीवन्मुक्त कहलाता है। ‘शिव’ इस नामरूपी दावानलसे वडे-वडे पातकोंके असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। जो भगवान् शिवके नामरूपी नौकाका आश्रय लेते हैं, वे संसार-सागरसे पार हो जाते हैं। संसारके मूलभूत उनके सारे पाप निस्तंदेह नष्ट हो जाते हैं। महामुने ! संसारके मूलभूत जो पातकरूपी बृक्ष हैं, उनका शिवनामरूपी कुटारसे निश्चय ही नाश हो जाता है।

\* शिवेनिनामदावानेमहापातकपर्वतः ।

भस्माभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥

( शिव पु ० द० द० ४ । ४५ )

+ शिवनामकर्त्ता प्राप्य संसारार्थं तरमिति ते ।

संसारमूलयागनि तेऽना नदयन्त्यसंशयन् ॥

संसारमूलभूतानां पातालानां नहामुने ।

शिवनामहुठरेण विनाशो जायदे भृत्य ॥

( शिव पु ० द० द० ४ । ४५-५६ )

जो लोग पापली दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापदावायिसे दग्ध हैनेवाले प्राणियोंको उस ( शिवनामामृत ) के बिना शान्ति नहीं मिल सकती। समूर्ण वेशोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती विद्वानोंने यही निश्चय किया है कि भगवान् शिवकी पूजा ही उत्कृष्ट साधन सथा जन्म-मरगल्पी संसारवन्धनके नाशका उपाय है। आजसे यज्ञपूर्वक सावधान रहकर विधिविधानके साथ भक्तिभावसे नित्य-निरन्तर जगदभ्या पर्वती-सहित महेश्वर सदाशिवका भजन करो, नित्य शिवकी ही कथा सुनो और कहो तथा अत्यन्त यज्ञ करके वारंवार शिव-भक्तोंका पूजन किया करो। सुनिश्चेष्ट ! अपने हृदयमें भगवान् शिवके उच्चबल चरणारविन्दोंकी स्थापना करके पहले शिवके तीर्थोंमें विचरो। सुने ! इस प्रकार परमात्मा शंकरके अनुपम माहात्म्यका दर्शन करते हुए अन्तमें आनन्दवन ( काशी ) को जाओ, वह स्थान भगवान् शिवको

बहुत ही प्रिय है। वहाँ भक्तिपूर्वक विश्वनाथजीका द्वयन पूजन करो। विशेषतः उनकी सुतिवन्दना करके तुम निर्विकल्प ( संघरणहित ) हो जाओगे, नारदजी ! इसके बारे तुम्हें मेरी आज्ञासे भक्तिपूर्वक अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये निश्चय ही ब्रह्मलोकमें जाना चाहिये। वहाँ अपने जित ब्रह्मजीकी विशेषरूपसे सुतिवन्दना करके तुम्हें प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे वारंवार शिव-महिमाके विषयमें प्रश्न करना चाहिये। ब्रह्मजी शिव-भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। वे तुम्हें अपने प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरका माहात्म्य और शतवास स्तोत्र मुनायेंगे। सुने ! आजसे तुम शिवाराधनमें लग रहनेवाले शिवभक्त हो जाओ और विशेषरूपसे मोक्षके मार्ग बनो। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रसन्न प्रसन्ननित्त हुए भगवान् विष्णु नारदमुनिको प्रेमपूर्वक उपर्युक्त देकर श्रीशिवका स्मरण, वन्दन और स्तवन करके वही अन्तर्धान हो गये। ( अध्याय १ )

## नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शायोद्वारकी वात बताना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्मजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! भगवान् श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर सुनिश्चेष्ट नारद शिवलिङ्गोंका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे। ब्रह्मणो ! भूमण्डल-पर बूम-फिरकर उन्होंने भोग और मोक्ष देनेवाले बहुतसे शिवलिङ्गोंका प्रेमपूर्वक दर्शन किया। दिव्यदर्शी नारदजी भूतलके तीर्थोंमें विचर रहे हैं और इस समय उनका चित्त शुद्ध है—यह जानकर वे दोनों शिवगण उनके पास गये। वे उनके दिये हुए शापसे उद्धारकी इच्छा रखकर वहाँ गये थे। उन्होंने अदरपूर्वक सुनिके दोनों पैर पकड़ लिये और मस्तक छुकाकर भलीभाँति प्रणाम करके शीघ्र ही इस प्रकार कहा—

शिवगण बोले—त्रह्मन् ! हम दोनों शिवके गण हैं। सुने ! हमने ही आपका अपराध किया है। राजकुमारी श्रीमतीके स्वयंवरमें आपका चित्त माश्रासे मोहित हो रहा था। उस समय परमेश्वरकी प्रेरणासे आपने हम दोनोंको शाप दें दिया। वहाँ कुसमय जानकर हमने चुप रह जाना ही अपनी जीवन-रक्षाका उपाय समझा। इसमें किसीका दोष नहीं है। हमें अपने कर्मका ही फल प्राप्त हुआ है। प्रभो ! अब आप प्रसन्न होइये और हम दोनोंपर अनुग्रह कीजिये।

नारदजीने कहा—अप दोनों महादेवजीके गण हैं और सत्पुरुषोंके लिये परम सम्माननीय हैं। अतः मेरे मोहरहित एवं सुखदायक यथार्थ वचनको सुनिये। पहले निश्चय ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, विगड़ गयी थी और मैं सर्वथा मोहके बग्गीभूत हो गवा था। इसीलिये आप दोनोंको मैंने

शाप दे दिया। शिवगणो ! मैंने जो कुछ कहा है, वह वैली होगा, तथापि मेरी वात सुनिये। मैं आपके लिये शापेदारी वात बता रहा हूँ। आपलोग आज मेरे अपराधको क्षमा दें। सुनिवर विश्रवाके वीयसे जन्म ग्रहण करके आप सम्प्रदिशाओंमें प्रसिद्ध ( कुम्भकर्ण-रावण ) राक्षसराजका पद प्रकार रखकर वे वल्लवान् वैभवसे युक्त तथा परम प्रतापी हैं। समस्त ब्रह्मणके राजा होकर शिवभक्त एवं जितेन्द्रिय होगे द्वय शिवके ही दूसरे स्वरूप श्रीविष्णुके हाथों मृत्यु पाकर फिर अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जायेंगे।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! महात्मा नारदमुनी यह वात सुनकर वे दोनों शिवगण प्रसन्न हो सानंद और स्थानको लौट गये। श्रीनारदजी भी अत्यन्त आनन्दित अनन्यभावसे भगवान् शिवका ध्यान तथा शिवतीर्थोंका दर्शन करते हुए वारंवार भूमण्डलमें विचरने लगे। अन्तमें वे उपर विराजमान शिवप्रिया काशीपुरीमें गये, जो एवं शिवको सुख देनेवाली है। काशीपुरीका दर्शन करने के लिये नारदजी कुतार्थ हो गये। उन्होंने भगवान् काशीनाथसे कुतार्थ की किया और परम प्रेम एवं परमानन्दसे युक्त हो उनकी कुतार्थ की। काशीका सानंद सेवन करके वे सुनिश्चेष्ट कुतार्थके अनुभव करने लगे और प्रेमसे विहृल हो उसका नमन, वे अपने तथा स्मरण करते हुए ब्रह्मलोकको गये। निरन्तर विष्णु सारण करनेसे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी। पहुँचकर शिवतत्त्वका विशेषरूपसे ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा

नारदजीने ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और नाम प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी सुति करके उनसे शिवतत्त्वके विषयमें पूछा । उस समय नारदजीका हृदय भगवान् शंकरके प्रति भक्तिभावनासे परिपूर्ण था ।



नारदजी बोले—ब्रह्मन् ! परब्रह्म परमात्माके स्वरूपको  
जाननेवाले पितामह ! जगत्प्रभो ! आपके कृपाप्रसादसे मैंने  
भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया  
है। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुर्स्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा  
तीर्थमार्गका भी वर्णन सुना है। परंतु शिवतत्त्वका ज्ञान मुझे अभी-  
तक नहीं हुआ है। मैं भगवान् शंकरकी पूजा-विधिको भी नहीं  
जानता। अतः प्रभो ! आप क्रमशः इन विषयोंको तथा  
भगवान् शिवके विविध चरित्रोंको तथा उनके स्वरूप-तत्त्व, प्राकद्वय,  
विवाह, गार्हस्थ्य धर्म—सब मुझे बताइये। निष्पाप पितामह ! ये  
सब बातें तथा और भी जो आवश्यक बातें हों, उन सबका आपको  
वर्णन करना चाहिये। प्रजानाथ ! शिव और शिवाके  
आविर्भाव एवं विवाहका प्रसङ्ग विशेषरूपसे कहिये—तथा  
कार्तिकेयके जन्मकी कथा भी मुझे सुनाइये। प्रभो ! पहले  
बहुत लोगोंसे मैंने ये बातें सुनी हैं, किंतु तृस नहीं हो सका  
हूँ। इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आप मुझपर कृपा  
कीजिये।

अपने पुत्र नारदकी यह वात सुनकर लोक-पितामह ब्रह्मा वहाँ इस प्रकार बोले— ( अध्याय ५ )

महाप्रलयकालमें केवल सद्व्रत्तकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति ( सदाशिव )-  
का प्राकृत्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूता शक्ति ( अम्बिका ) का प्रवटीकरण, उन दोनोंके द्वारा  
उत्तम क्षेत्र ( काशी या आनन्दवन ) का प्रादुर्भाव, शिवके वामाङ्गसे परम पुरुष  
( विष्णु ) का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी

क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन

प्रधाजीने कहा—त्रिस्तु ! देवशिरोमणे ! तुम सदा  
समस्त जगत्‌के उपकारमें ही ल्यो रहते हो । तुमने लोर्गोंके  
ऐपी कामनाते यह बहुत उत्तम वात पूछी है । जिसके  
उत्तमनेते समर्पण लोकोंके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, उस  
उत्तमय शिवतत्त्वका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ । शिवतत्त्वका  
वर्णन वडा एই उत्त्वष्ट और अद्वृत है । जिस समव  
उत्तम सम्भव जगत् नष्ट हो गया था, उर्द्धव देवल अन्धकार-ही-

अन्धकार था। न सूर्य दिखावी देते थे न कल्पमा। अन्धाल्य  
गहों और नक्षत्रोंका भी पता नहीं था। न दिन होता था; न  
रात; अनिः पृष्ठी, बायु और कल्पी भी मत्ता नहीं थी।  
प्रधान तत्त्व ( अव्याहृत प्रकृति ) से गहित सूता आज्ञारम्-  
शोप था, दूसरे किसी तेजर्की उत्तरदिव नहीं होती थी। अब  
आदिका भी अनिक्ष नहीं था। शब्द और हर्म भी नहीं होते।  
कुकेर। गूँव और हड्डी भी अनिक्ष होते हैं।

रसका भी अभाव हो गया था। दिशाओंका भी भान नहीं होता था। इस प्रकार सब और निरन्तर सूचीभेद धेर अन्यकार फैला हुआ था। उस समय 'तत्सद्गृह्ण' इस श्रुतिमें जो 'सत्' शुना जाता है, एकमात्र वही शेष था। जब 'यह', 'वह', 'ऐसा', 'जो' इत्यादि रूपसे निर्दिष्ट होनेवाला भावाभावात्मक जगत् नहीं था, उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था, जिसे योगीजन अपने हृदयाकाशके भीतर निरन्तर देखते हैं। वह सत्तत्त्व मनका विषय नहीं है। वाणीकी भी वहाँतक कभी पहुँच नहीं होती। वह नाम तथा रूप-रंगसे भी शून्य है। वह न स्थूल है न कृश, न हस्त है न दीर्घ तथा न लघु है न गुरु। उसमें न कभी वृद्धि होती है न हास। श्रुति भी उसके विषयमें चकितभावसे 'है' इतना ही कहती है, अर्थात् उसकी सत्तामात्रका ही निरूपण कर पाती है, उसका कोई विशेष विवरण देनेमें असमर्थ हो जाती है। वह सत्य, शानस्वरूप, अनन्त, परमानन्दमय, परम ज्योतिःस्वरूप, अप्रमेय, आधाररहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, सबका एकमात्र कारण, निर्विकल्प, निरारम्भ, मायाशून्य, उपद्रवरहित, अद्वितीय, अनादि, अनन्त, संकोच-विकाससे शून्य तथा चिन्मय है।

जिस परब्रह्मके विषयमें ज्ञान और अज्ञानसे पूर्ण उक्तियों-द्वारा इस प्रकार ( ऊपर बताये अनुसार ) विकल्प किये जाते हैं, उसने कुछ कालके बाद ( सृष्टिका समय आनेपर ) द्वितीय-की इच्छा प्रकट की—उसके भीतर एकसे अनेक होनेका संकल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्माने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्ति ( आकार ) की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, सर्वदर्शिनी, सर्वकारिणी, सबकी एकमात्र बन्दनीया, सर्वाद्या, सब कुछ देनेवाली और सम्पूर्ण संस्कृतियों-का केन्द्र थी। उस शुद्धरूपिणी ईश्वर-मूर्तिकी कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वप्रकाशक, चिन्मय, सर्वव्यापी और अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गया। जो मूर्तिरहित परम ब्रह्म है, उसीकी मूर्ति ( चिन्मय आकार ) भगवान्-सदाशिव हैं। अर्द्धचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हेंको ईश्वर-

कहते हैं। उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहर करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूप भूता शक्तिकी सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअङ्गसे कभी अला



होनेवाली नहीं थी। उस पराशक्तिको प्रधान, प्रकृति, गुणका-माया, बुद्धितत्त्वकी जननी तथा विकाररहित बताया गया है। वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसीको प्रकृति, सर्वेषं निदेवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं। सदाशिव-द्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिके आठ भुजाएँ हैं। उस लक्षणा देवीके मुखकी शोभा विचित्र है। वह अकेली ही मुखमण्डलमें सदा एक सहस्र चन्द्रमाओंकी कान्ति करती है। नाना प्रकारके आभूषण उसके श्रीअङ्गोंकी बढ़ाते हैं। वह देवी नाना प्रकारकी गतियोंसे सम्पन्न है। अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करती है। उसके खुले नेत्र सिले हुए कमलके समान जान पड़ते हैं। वह अर्द्धतेजसे जगमगाती है। वह सबकी योनि है और उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होनेपर भी वह माया वंशात् अनेक हो जाती है।

वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परम पुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और महेश्वर कहते हैं। वे अपने भस्तकपर आकाश-गङ्गाको धारण करते हैं। उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें लीन-तीन नेत्र हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। वे दस भुजाओंसे युक्त और विश्वलघुधारी हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कर्पूरके समान श्वेत-गौर है। वे अपने सारे अङ्गोंमें भस्त्र रमाये रहते हैं। उन कालरुपी ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्षका स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है। वे प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्रमें नित्य निवास करते हैं। काशीपुरी परमानन्दरुपिणी है। मुने ! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्रको अपने सानिध्यसे युक्त नहीं किया है। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'अविमुक्त धेत्र' के नामसे भी जानते हैं। वह क्षेत्र आनन्दका हेतु है। इसलिये पिनाकधारी शिवने पहले उसका नाम 'आनन्दवन' रखा था। उसके बाद वह 'अविमुक्त'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

देवर्षे ! एक समय उस आनन्दवनमें रमण करते हुए शिवा और शिवके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिये, जिसपर वह सृष्टि-संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचर्य और निर्वाण धारण करें। वही पुरुष हमारे अनुग्रहसे सदा सबकी सृष्टि करे, पालन करे और वही अन्तमें सबका संहार भी करे। यह चित्त एक समुद्रके समान है। इसमें चिन्ता-वी उत्ताल तरঙ्गे उठ-उठकर इसे चक्रल बनाये रहती हैं। इसमें सत्त्वगुणरुपी रूप, तमोगुणरुपी ग्राह और रजोगुणरुपी मौर्गे भरे हुए हैं। इस विशाल चित्त-समुद्रको संकुचित करके ऐ दोनों उस पुरुषके प्रसादसे आनन्द-कानन ( काशी ) में उत्पूर्वक निवास करें। यह आनन्दवन वह स्थान है, जहाँ एमारी गनोवृत्ति सब औरसे गिरिष्कर इसीमें लगी हुई है तथा जिसके बाहरका जगत् चिन्तासे आतुर प्रतीत होता है। ऐसा निष्ठय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने रामभरणके दरवें अङ्गपर अमृत मल दिया। किंतु तो वहाँसे एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें सदते अधिक सुन्दर



था। वह शान्त था। उसमें सत्त्वगुणकी अधिकता थी तथा वह गम्भीरताका अथाह सागर था। मुने ! क्षमा नामक गुणसे युक्त उस पुरुषके लिये हृङ्गनेपर भी कहीं कोई उपमा नहीं मिलती थी। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान श्वास थी। उसके अङ्ग-अङ्गसे दिव्य शोभा छिटक रही थी और नेत्र प्रकुञ्ज कमलके समान शोभा पा रहे थे। श्रीअङ्गोंपर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले दो सुन्दर रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहे थे। किसीसे भी पराजित न होनेवाला वह वीर पुरुष अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे सुशोभित हो रहा था। तदनन्तर उस पुरुषने परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा—‘त्वामिन् ! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बताइये।’ उस पुरुषकी यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे बोले—

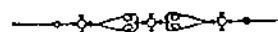
शिवने कहा—त्वम् ! व्यापक होनेके करण तुम्हारा विष्णु-नाम विख्यात हुआ। इसके सिवा और भी बहुत-से नाम होंगे, जो भक्तोंको मुख देनेवाले होंगे। तुम सुस्तिर उत्तम तप करो; क्योंकि वही समस्त काशीका नाथ है।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने शास्त्राग्रहि श्रीविष्णुके वेदोंका शान प्रदान किया। तदनन्तर अस्तीं मदिमाते कहीं

न्युत न होनेवाले श्रीहरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बड़ी भारी तपस्या करने लगे और शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी पार्षदगांगोंके साथ वहाँसे अदृश्य हो गये । भगवान् विष्णुने सुदीर्घ कालतक बड़ी कठोर तपस्या की । तपस्याके परिश्रमसे युक्त भगवान् विष्णुके अङ्गोंसे नाना प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगी । यह सब भगवान् शिवकी मायासे ही सम्भव हुआ । महामुने ! उस जलसे सारा सूना आकाश व्याप हो गया । वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्शमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला सिद्ध हुआ । उस समय थके हुए परम पुरुष विष्णुने स्वयं उस जलमें शयन किया । वे दीर्घकालतक बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें रहे । नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण ही उनका 'नारायण' यह श्रुतिसम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ । उस समय उन परम पुरुष नारायणके सिवा दूसरी कोई प्राकृत

वस्तु नहीं थी । उसके बाद ही उन महात्मा नारायणदेवसे यथा समय सभी तत्व प्रकट हुए । महामते ! विद्वन् । मैं ऊ तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार वता रहा हूँ । मुनो, प्रकृतिसे महत्त्व प्रकट हुआ और महत्त्वसे तीनों गुण । इन गुणोंके मेदसे ही विविध अहंकारकी उत्पत्ति हुई । अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ हुईं और उन तन्मात्राओंसे पाँच भूत प्रकट हुए । उसी समय ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका भी प्रादुर्भाव हुआ । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुम्हें तत्त्वोंकी मंख्या बतायी है । इनमें पुरुषको छोड़कर शैय सारे तत्व प्रकृतिसे प्रकट हुए हैं इसलिये सब-के-सब जड़ हैं । तत्त्वोंकी संख्या चौबीस है । उस समय एकाकार हुए चौबीस तत्त्वोंको ग्रहण करके वे परम पुरुष नारायण भगवान् शिवकी इच्छासे ब्रह्मरूप बदले सी गये ।

( अध्याय ६ )

—○——○—

**भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छावश ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमल-नालके उद्भवका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अग्नि-स्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना**

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे ! जब नारायणदेव जलमें शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभिसे भगवान् शंकरके इच्छावश सहसा एक उत्तम कमल प्रकट हुआ, जो बहुत बड़ा था । उसमें असंख्य नालदण्ड थे । उसकी कान्ति कनेरके पूलके समान पीले रंगकी थी तथा उसकी लंबाई और ऊँचाई भी अनन्त योजन थी । वह कमल करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहा था, सुन्दर होनेके साथ ही समूर्ण तत्त्वोंसे युक्त था और अत्यन्त अद्भुत, परम रमणीय, दर्शनके योग्य तथा सबसे उत्तम था । तत्पश्चात् कल्पणाकारी परमेश्वर साम्ब सदाशिवने पूर्ववत् प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अङ्गसे उत्पन्न किया । मुने ! उन महेश्वरने मुझे तुरंत ही अपनी मायासे मोहित करके नारायणदेवके नाभिकमलमें डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे वहाँसे प्रकट किया । इस प्रकार उस कमलसे पुत्रके रूपमें मुझ हिरण्यगर्भका जन्म हुआ । मेरे चार मुख हुए और शरीरकी कान्ति लाल हुई । मेरे मस्तक त्रिपुण्ड्रकी रेखासे अङ्गित थे । तात ! भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी ज्ञानशक्ति इतनी दुर्बल हो रही थी कि मैंने उस कमलके सिवा दूसरे किसीको अपने शरीरका जनक या नित्य नहीं जाना । मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा

कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ ? और किसने इस समय मेरा निर्माण किया है—इस प्रश्न संशयमें पढ़े हुए मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—मैं किसलिये मोहमें पड़ा हुआ हूँ ? जिसने मुझे उत्पन्न किया है, उसका पता लगाना तो बहुत सरल है । इस कमलपूर्ण का जो पत्रयुक्त नाल है, उसका उद्भवस्थान इस जलके भीतर नीचेकी ओर है । जिसने मुझे उत्पन्न किया है, वह पुरुष भी वहीं होगा—इसमें संशय नहीं है ।

ऐसा निश्चय करके मैंने अपनेको कमलसे नीचे उतारा । मुने ! मैं उस कमलकी एक-एक नालमें गया और सैकड़ वर्षोंतक वहाँ भ्रमण करता रहा, किंतु कहाँ भी उस कमलके उद्भवका उत्तम स्थान मुझे नहीं मिला । तब पुनः संशयमें पड़कर मैं उस कमलपूर्षपर जानेको उत्सुक हुआ और नालके मार्गसे उस कमलपर चढ़ने लगा । इस तरह बहुत ऊपर जानेपर भी मैं उस कमलके कोशको न पा सका । उस दशामें मैं और भी मोहित हो उठा । मुने ! उस समय भगवान् शिवकी इच्छासे परम मङ्गलमयी उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे मोहका विद्युत्स करनेवाली थी । उस वाणीकी कहा—'तप' ( तपस्या करो ) । उस आकाशवाणीको मुनस्पति

मैंने अपने जन्मदाता पिताका दर्शन करनेके लिये उस समय पुनः प्रथलपूर्वक वारह वर्षोंतक घोर तपस्या की । तब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे मुश्योभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये । उस परम पुरुषने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रख्ये थे । उनके सारे अङ्ग सजल जलधरके समान देखायामान्तिसे मुश्योभित थे । उन परम प्रभुने सुन्दर पीताम्बर पहन रखदा था । उनके मस्तक आदि अङ्गोंमें सुकुट आदि इमहामूल्यवान् आभूषण शोभा पाते थे । उनका मुखारविन्द दृप्रसन्नतासे खिला हुआ था । मैं उनकी छविपर मोहित हो गया था । वे मुझे करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर दिखायी देंदिये । उनका वह अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझे बहा अपार्थी हुआ । वे सौंबली और सुनहरी आभासे उद्घासित रहे थे । उस समय उन सदसत्त्वरूप, सर्वात्मा, चार भुजाएँ करनेवाले, महाशाहु नारायणदेवको वहाँ उस रूपमें अपने पर देखकर मुझे बहा हर्ष हुआ ।

तदनन्तर उन नारायणदेवके साथ मेरी वातचीत आरम्भ है । भगवान् शिवकी लीलासे वहाँ हम दोनोंमें कुछ विवाद दिया । इसी समय हमलोगोंके बीचमें एक महान नेस्तम्भ ( ज्योतिर्मय लिङ्ग ) प्रकट हुआ । मैंने और श्रीविष्णुने

क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि-अन्तका पता लगानेके लिये बहा प्रयत्न किया, परंतु हमें कहीं भी उसका ओर-छोर नहीं मिला । मैं थककर ऊपरसे नीचे लैट आया और भगवान् विष्णु भी उसी तरह नीचेसे ऊपर आकर मुझसे मिले । हम दोनों शिवकी मायासे मोहित थे । श्रीहरिने मेरे साथ आगे-पीछे और अगल-बगलसे परमेश्वर शिवको प्रणाम किया । फिर वे सोचने लगे—‘यह क्या वस्तु है ? इसके स्वरूपका निर्देश नहीं किया जा सकता; क्योंकि न तो इसका कोई नाम है और न कर्म ही है । लिङ्गरहित तत्त्व ही यहाँ लिङ्गभावको प्राप्त हो गया है । ध्यानमार्गमें भी इसके स्वरूप-का कुछ पता नहीं चलता । इसके बाद मैं और श्रीहरि दोनोंने अपने चित्तको स्वस्थ करके उस अग्निस्तम्भको प्रणाम करना आरम्भ किया ।

हम दोनों बोले—महाप्रभो ! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते । आप जो कोई भी क्यों न हों, आपको हमारा नमस्कार है । महेश्वान ! आप शीघ्र ही हमें अपने यथार्थ रूपका दर्शन कराइये ।

मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार अहंकारसे आविष्ट हुए हम दोनों ही वहाँ नमस्कार करने लगे । ऐसा करते हुए हमारे सौ वर्ष बीत गये ।

( अध्याय ७ )

### ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार हम ने देवता गर्वरहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे । हम दोनों-मनमें एक ही अभिलापा थी कि इस ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें हि हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन हैं । भगवान् शंकर हीनोंके तेपालक, भद्रकारियोंका गर्व चूर्ण करनेवाले तथा सबके नेनाशी प्रभु हैं । वे हम दोनोंपर दयालु हो गये । उस पर वहाँ उन सुरश्रेष्ठसे ‘ओ३म्, ओ३म्’ ऐसा शब्द-नाम प्रकट हुआ, जो स्पष्टरूपसे सुनायी देता था । वह रस्ते स्वर्गमें अभिव्यक्त हुआ था । जोरसे प्रकट होने-ही इस शब्दके विषयमें ‘यह क्या है’ ऐसा सोचते हुए उन देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णु मेरे साथ संतुष्ट-जने लड़े रहे । वे सर्वथा दैरभावसे रहित थे । उन्होंने हमें दिल्लि भागमें गनानन आदि वर्ण अकारका दर्शन करना । उत्तर भागमें उकारका, मध्यभागमें मकारका और नम्बे ‘ओ३म्’ इस नारदका साक्षात् दर्शन एवं अनुभव

किया । दक्षिण भागमें प्रकट हुए आदिवर्ण अकारको सूर्य-मण्डलके समान तेजोमय देखकर जब उन्होंने उत्तर भागमें दृष्टिपात किया, तब वहाँ उकार वर्ण अग्निके समान दीतिशाली दिखायी दिया । मुनिश्रेष्ठ ! इसी तरह उन्होंने मध्यभागमें मकारको चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल कान्तिसे प्रकाशमान देखा । तदनन्तर जब उसके ऊपर दृष्टि डाली, तब शुद्ध स्फटिक भणिके समान निर्मल प्रभासे युक्त, तुरीयातीत, अमल, निकल, निरुपद्रव, निर्दद्व, अद्वितीय, शून्यमय, वायु और आनन्दन्तर-के भेदसे रहित, वाह्याभ्यन्तर-भेदसे युक्त, जगत्के भीतर और बाहर स्वयं ही स्थित, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, आनन्दके आदि कारण तथा नवके परम व्याधव, मत्त, आनन्द एवं अमृतत्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार किया ।

उस समय श्रीहरि वह सोचने लगे कि ‘यह अग्निस्तम्भ यहाँ कहाँसे प्रकट हुआ है ? हम दोनों जिन इच्छी परीक्षा करें । मैं इस अनुभव अनलन्तमभके नीचे जाऊँगा ।’ ऐसा

विचार करते हुए श्रीहरिने वेद और शब्द दोनोंके आवेशसे युक्त विश्वात्मा शिवका चिन्तन किया। तब वहाँ एक शृंगि प्रकट हुए, जो शृंगिस्मूहके परम साररूप माने जाते हैं। उन्हीं शृंगिके द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णुने जाना कि इस शब्दत्रहामय शरीरवाले परम लिङ्गके रूपमें साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेवजी ही वहाँ प्रकट हुए हैं। ये चिन्तारहित ( अथवा अचिन्त्य ) रुद्र हैं। जहाँ जाकर मनसहित वाणी उसे प्राप्त किये त्रिना ही लैट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक एकाक्षर ( प्रणव ) ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं। वह परम कारण, शृंत, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म एकाक्षरका वाच्य है। प्रणवके एक अक्षर अकारसे जगत्के दीजभूत अण्डजन्मा भगवान् ब्रह्माका बोध होता है। उसके दूसरे एक अक्षर उकारसे परम कारणरूप श्रीहरिका बोध होता है और तीसरे एक अक्षर मकारसे भगवान् नीललोहित शिवका ज्ञान होता है। अकार सूषिकर्ता है, उकार मोहमें डालनेवाला है और मकार नित्य अनुग्रह करनेवाला है। मकार-बोध सर्वव्यापी शिव बीजी ( बीजमात्रके स्वामी ) हैं और 'अकार' संज्ञक मुक्त ब्रह्माको 'बीज' कहते हैं। 'उकार' नामधारी श्रीहरि योनि हैं। प्रधान और पुरुषके भी ईश्वर जो महेश्वर हैं, वे बीजी, बीज और योनि भी हैं। उन्हींको 'नाद' कहा गया है। ( उनके भीतर सबका समावेश है। ) बीजी अपनी इच्छासे ही अपनेको बीज, अनेक रूपोंमें विभक्त करके स्थित हैं। इन बीजी भगवान् महेश्वरके लिङ्गसे अकाररूप बीज प्रकट हुआ, जो उकाररूप योनिमें स्थापित होकर सब और बढ़ने लगा। वह सुवर्णमय अण्डके रूपमें ही बताने योग्य था। उसका और कोई विद्योग्य लक्षण नहीं लक्षित होता था। वह दिव्य अण्ड अनेक वांगोंतक जलमें ही स्थित रहा। तदनन्तर एक हजार वर्षके बाद उस अण्डके दो ढुकड़े हो गये। जलमें स्थित हुआ वह अण्ड अजन्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका स्थान था और साक्षात् महेश्वरके आधातसे ही पूटकर दो भागोंमें बँट गया था। उस अवस्थामें उसका ऊपर स्थित हुआ सुवर्णमय कपाल बड़ी शोभा पाने लगा। वही चुलोकके रूपमें प्रकट हुआ। तथा जो उसका दूसरा नीचेवाला कपाल था, वही यह पाँच लक्षणोंसे युक्त पृथिवी है। उस अण्डसे चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनकी 'क' संज्ञा है। वे समस्त लोकोंके स्वास्थ हैं। इस प्रकार वे भगवान् महेश्वर ही 'अ', 'उ' और 'म' इन त्रिविद्य रूपोंमें वर्णित हुए हैं। इसी अभिप्रायसे उन ज्योतिर्लिङ्ग-स्वरूप सदागिवने 'ओ३म्, ओ३म्' ऐसा कहा—यह वात

यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्र कहते हैं। यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्रोत्तम कथन मुनकर श्रुत्याओं और साममन्त्रोनि भी हमसे आप पूर्वक कहा—'हे हरे ! हे ब्रह्मन् ! यह वात ऐसी ही है।' इस तरह ईश्वरेश्वर शिवको जानकर श्रीहरिने शृंगिस्मूह मन्त्रोद्घारा उत्तम एवं महान् अम्बुदयसे शोभित होनेवाले द्व महेश्वरदेवका स्तवन किया। इसी वीचमें मेरे साथ त्रिपालक भगवान् विष्णुने एक और भी अद्भुत एवं मुद्रा देखा। मुने ! वह रूप पाँच मुखों और दस भुजाओंसे बना था। उसकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। वह नामाक्षर की छटाओंसे छविमान् और भाँति-भाँतिके आमूल्य विभूषित था। उस परम उदार महापराक्रमी और महाशुले लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त उत्कृष्ट रूपका दर्शन करके मैं श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये।

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो अपने शब्दमय रूपको प्रकट करके हँसते हुए खड़े हो गये। उनका मस्तक और आकार ललाट है। इकार दाहिना ईकार वायाँ नेत्र है। उकारको उनका दाहिना और छोड़कार वायाँ कान वताया जाता है। छोड़कार उन दायाँ कपोल है और छोड़कार वायाँ। लू और लू—ये नासिकाके दोनों छिद्र हैं। एकार उन सर्वव्यापी प्रभुका ओष्ठ है और ऐकार अधर। ओकार तथा औकार—ये क्रमशः उनकी ऊपर और नीचेकी दो दन्तपैक्कियाँ हैं। 'अः' उन देवाधिदेव शूलधारी शिवके दोनों ताळु हैं। कृपाँच अक्षर उनके दाहिने पाँच हाथ हैं और च अदि अक्षर वाँचे पाँच हाथ; उ आदि और त आदि पाँक अक्षर उनके पैर हैं। पकार पेट है। फकारको दाहिना वताया जाता है और वकारको वायाँ पाइर्व। भकारको कहते हैं। मकार उन योगी महादेव शम्भुका हृदय है। से लेकर 'स' तक सात अक्षर सर्वव्यापी शिवके शरीरकी सात धातुएँ हैं। हकार उनकी नाभि है और मेढ़ ( मूत्रेन्द्रिय ) कहा गया है। इस प्रकार निर्गुण स्वरूप परमात्माके शब्दमय रूपको भगवती उमाके देखकर मैं और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये। इस तरह व्रहमय-शरीरधारी महेश्वर शिवका दर्शन पाकर मेरे श्रीहरिने उन्हें प्रणास किया और पुनः ऊपरकी ओर देते उस समय उन्हें पाँच कलाओंसे युक्त उँचारजनिति साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् महादेवजीका 'ओं तत्त्वम्' महावाक्य दृष्टिगोचर हुआ, जो परम उत्तम मन्त्ररूप है। शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। फिर सम्पूर्ण धर्म और

प्राप्ति साधक तथा बुद्धिस्वरूप गायत्री नामक दूसरा महान् मन्त्र ग्रन्थित हुआ, जिसमें चौबीस अध्यात्र हैं तथा जो चारों पुरुषार्थ-ज्ञी फल देनेवाला है। तपश्चात् मृत्युंजय मन्त्र, फिर पञ्चाक्षर मन्त्र तथा दक्षिणामूर्तिसंजक चिन्तामणि मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार पाँच मन्त्रोंकी उपलब्धि करके भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे।

तदनन्तर श्रूक् यजुः और साम—ये जिनके रूप हैं, जो ईशोंके मुकुटमणि ईशान हैं, जो पुरातन पुरुष हैं,

जिनका हृदय अधोर अर्थात् सौम्य है, जो हृदयको प्रिय लगानेवाले सर्वगुह्य सदाशिव हैं, जिनके चरण वाम—परम सुन्दर हैं, जो महान् देवता हैं और महान् सर्पराजको आभूषणके रूपमें धारण करते हैं, जिनके सभी ओर पैर और सभी ओर नेत्र हैं, जो मुझ व्रजाके भी अधिपति, कल्याणकारी तथा सुष्ठि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं, उन वरदायक साम्ब्र शिवका मेरे साथ भगवान् विष्णुने प्रिय वचनोद्वारा संतुष्टिचित्तसे स्वान किया। (अध्याय ८)

## उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् विष्णुके द्वारा हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर वडे प्रसन्न है और उमादेवीके साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उस रूप उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र भी पाते थे। भालदेशमें चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित था। रपर जटा धारण किये गौरवर्ण, विशालनेत्र शिवने अपने पूर्ण अङ्गोंमें विभूति लगा रक्खी थी। उनके दस मुजाँ हैं। कण्ठमें नील चिह्न था। उनके श्रीअङ्ग समस्त आभूषणोंसे भूषित थे। उन सर्वाङ्गसुन्दर शिवके मस्तक भस्ममय [एण्डसे अङ्कित थे। ऐसे विशेषणोंसे युक्त परमेश्वर हादेवजीको भगवती उमाके माथ उपस्थित देख मैंने और भगवान् विष्णुने पुनः प्रिय वचनोद्वारा उनकी स्तुति की। तब पापहारी रुणाकर भगवान् महेश्वरने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णु-योगी श्वासरूपसे वेदका उपदेश दिया। मूने ! उनके बाद मैंने परमात्मा श्रीहरिको गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन रमात्माने रुपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया। वेदका ज्ञान मात्र करके कृतार्थ हुए भगवान् विष्णुने मेरे साथ हाथ जोड़े। ऐस्वरको नमस्कार करके पुनः उनसे पूजनकी विधि बताने था लकुपदेश देनेके लिये प्रार्थना की।

ब्रह्माजी कहते हैं—मूने ! श्रीहरिकी यह बात सुनकर अत्यन्त धृग्मन हुए कृपानिधान भगवान् शिवने प्रीतिर्वृक्ष एवं बात कही।

श्रीशिव वोले—तुरक्षेश्वर ! मैं तुम दोनोंकी भक्तिसे बोध्य ही बहुत प्रसन्न हूँ। तुमलोग मुझ महादेवकी ओर आये। इस समय तुम ही नेत्र स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे उनका प्रयत्नशूर्वक पूजन-चिन्तन बरना चाहिये। तुम

दोनों महावली हो और मेरी स्वरूपभूता प्रकृतिसे प्रकट हुए हो। मुझ सर्वेश्वरके दायें-बायें अङ्गोंसे तुम्हारा आविर्भाव हुआ है। ये लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने पाश्वसे उत्पन्न हुए हैं और तुम विष्णु मुझ परमात्माके बाम पाश्वसे प्रकट हुए हो। मैं तुम दोनोंपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ और तुम्हें मनोवाच्छित बर देता हूँ। मेरी आशासे तुम दोनोंकी मुझमें सुदृढ़ भक्ति हो। ब्रह्मन् ! तुम मेरी आशाका पालन करते हुए जगत्की सुष्ठि करो और वस्तु विष्णो ! तुम इस चराचर जगत्का पालन करते रहो।

हम दोनोंसे ऐसा कहकर भगवान् शंकरने हमें पूजाकी उत्तम विधि प्रदान की, जिसके अनुसार पूजित होनेपर वे पूजको अनेक प्रकारके फल देते हैं। शम्भुकी उपर्युक्त वात सुनकर मेरे सहित श्रीहरिने महेश्वरको हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा।

भगवान् विष्णु वोले—प्रभो ! यदि हमारे प्रति आपके हृदयमें प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हमें वर देना आवश्यक समझते हैं तो हम यही वर माँगते हैं कि आपमें हम दोनोंकी सदा अनन्य एवं अविचल भक्ति बनी रहे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मूने ! श्रीहरिकी यह बात सुनकर भगवान् हसने पुनः मस्तक छुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़े। तुम हुए उन नारायणदेवसे त्वर्य कहा।

श्रीमहेश्वर वोले—मैं दृष्टि, पालन और संहारका कर्ता हूँ, दग्ध और निर्दृश हूँ तथा सचिदानन्दस्वरूप निर्दिष्टकर परद्वय परमात्मा हूँ। विष्णो ! दृष्टि, रक्षा और प्रलयस्य हुआ

अथवा कायोंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। हरे ! वास्तवमें मैं सदा निष्कल हूँ। विष्णो ! तुमने और ब्रह्माने मेरे अवतारके निमित्त जो स्तुति की है, तुम्हारी उस प्रार्थनाको मैं अवश्य सच्ची करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ। ब्रह्मन् ! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीरसे इस लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे 'रुद्र' कहलायेगा। मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य सुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है। पूजाकी विधि-विधानकी दृष्टिसे भी सुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे ज्योतिका जल आदिके साथ सम्पर्क होनेपर भी उसमें स्पर्शदोष नहीं ल्पाता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्माको भी किसीके संयोगसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा शिवरूप है। जब रुद्र प्रकट होगे, तब वे भी शिवके ही तुत्प्य होंगे। महामुने ! उनमें और शिवमें परायेपनका भेद नहीं करना चाहिये। वास्तवमें एक ही रूप सब जगत्‌में व्यवहारनिर्वाहके लिये दो रूपोंमें विभक्त हो गया है। अतः शिव और रुद्रमें कभी भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें सारा दृश्य ही मेरे विचारसे शिवरूप है।

मैं, तुम, ब्रह्मा तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरा शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपोंका मूलभूत कहा गया है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।<sup>\*</sup> ऐसा जानकर सदा मनसे मेरे यथार्थ स्वरूपका दर्शन करना चाहिये। ब्रह्मन् ! सुनो, मैं तुम्हें एक गोपनीय बात बता रहा हूँ। मैं स्वयं ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे प्रकट होऊँगा। गुणोंमें भी मेरा प्राकृत्य कहा गया है। जैसा कि लोगोंने कहा है 'हर तामस प्रकृतिके हैं।' वास्तवमें उस रूपमें अहंकारका वर्णन हुआ है। उस अहंकारको केवल तामस ही नहीं, वैकारिक ( सात्त्विक ) भी समझना चाहिये ( क्योंकि सात्त्विक देवगण वैकारिक अहंकारकी ही सृष्टि हैं )। यह तामस और सात्त्विक आदि भेद केवल नाममात्रका है, वस्तुतः नहीं है। वास्तवमें 'हर'को तामस नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मन् ! इस कारणसे तुम्हें ऐसा करना चाहिये। तुम तो इस सृष्टिके निर्माता बनो और

श्रीहरि इसका पालन करें तथा मेरे अंशसे प्रकट होनेवे जो रुद्र हैं, वे इसका प्रलय करनेवाले होंगे। वे जो रुद्र नामसे विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हेंकी शरण, वारदेवी ब्रह्माजीका सेवन करेंगी। फिर इन प्रकृतिके बहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे लक्ष्मीरूपसे भवतः विष्णुका आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नामसे तीसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे निश्चय ही मेरे अंशभूत द्वारा प्राप्त होंगी। वे कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ ज्योतिस्त्रे रह होंगी। इस प्रकार मैंने देवीकी शुभस्वरूपा परिचय परिचय दिया। उनका आर्य क्रमशः सृष्टि, पालन और सम्पादन ही है। सुरथेष्ठ ! ये सब-की-सब मेरी प्रिया भक्तिकी अंशभूता हैं। हरे ! तुम लक्ष्मीका सहारा लेकर करो। ब्रह्मन् ! तुम्हें प्रकृतिकी अंशभूता वारदेवीको पाल आज्ञाके अनुसार भनसे सृष्टिकार्यका संचालन करना और मैं अपनी प्रियाकी अंशभूता परात्पर कालीका ले रुद्ररूपसे प्रलयसम्बन्धी उत्तम कार्य करूँगा। इन लोग अवश्य ही सम्पूर्ण आश्रमों तथा उनसे भिन्न विविध कायोद्वारा चारों वर्णोंसि भरे हुए लोककी सुधारक्षा आदि करके सुख पाओगे। हरे ! तुम शान्तिसम्पन्न तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितेषी हो। अतः अत आज्ञा पाकर जगत्‌में सब लोगोंके लिये सुकिदाता भी मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही तुम्हारे होनेपर भी होगा। मेरी यह बात सत्य है, सत्य है। संशयके लिये खान नहीं है। मेरे हृदयमें विष्णु विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं था वही मुझे विशेष प्रिय है।<sup>\*</sup> श्रीहरि मेरे वायें अङ्गते हुए हैं। ब्रह्माका दाहिने अङ्गसे प्राकृत्य हुआ है। महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदयसे प्रादुर्भूत है। विष्णो ! मैं ही सृष्टि, पालन और संहर करनेवाले रुद्र विविध गुणोद्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रनामसे प्रसिद्ध तीन रूपोंमें पृथक्-पृथक् प्रकट होता हूँ। साक्षात् शिव भी भिन्न हैं। वे प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं—अद्वितीय, अनन्त, पूर्ण एवं निरखन परब्रह्म परमात्मा तीनों लोकोंका पालन करनेवाले श्रीहरि भीतर तमेषु।

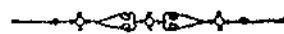
\* मैव हृदये विष्णुविष्णोऽश्च हृदये द्वाहम् ॥

उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम ।

( शिं० पु० ८० सू० ९ । ४० )

बाहर सत्यगुण धारण करते हैं, त्रिलोकीका संहार करनेवाले रुद्रदेव भीतर सत्यगुण और बाहर तमेगुण धारण करते हैं तथा निमुक्तनकी सुषिकरने वाले ब्रह्माजी बाहर और भीतरसे भी रजेगुणी ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—

इन तीन देवताओंमें गुण हैं, परंतु शिव गुणातीत माने गये हैं। विष्णो ! तुम मेरी आज्ञासे इन सृष्टिकर्ता पितामहका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो; ऐसा करनेसे तीनों लोकोंमें पूजनीय होओगे।  
(अध्याय ९)



## श्रीहरिको सृष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग-मोक्ष-दानका अधिकार दे भगवान् शिवका अन्तर्धान होना

**परमेश्वर शिव बोले—**उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले रे ! विष्णो ! अब तुम मेरी दूसरी आज्ञा मुनो। उसका पालन रनेसे तुम सदा समस्त लोकोंमें माननीय और पूजनीय बने होगे। ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये लोकमें जब कोई दुःख या कट उत्पन्न हो, तब तुम उन सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेके लिये सदा तत्पर रहना। तुम्हारे सम्पूर्ण दुस्सह कार्योंमें मैं महारी सहायता करूँगा। तुम्हारे जो दुर्जेय और अत्यन्त कठ शब्द होंगे, उन सबको मैं मार गिराऊँगा। हरे ! तुम ना प्रकारके अवतार धारण करके लोकमें अपनी उत्तम विर्तिया विस्तार करो और सबके उद्घारके लिये तत्पर रहो। म रुद्रके ख्येय हो और रुद्र तुम्हारे ख्येय हैं। तुमसे और द्रमें कुछ भी अन्तर नहीं है। \* जो मनुष्य रुद्रका भक्त किर तुम्हारी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तत्काल भसा जाय। पुरुषोंसम विष्णो ! तुमसे द्वेष करनेके कारण मेरी आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा। यह ब्रात सत्य है, सत्य। इसमें संदेश नहीं है। † तुम इस लोकमें मनुष्योंके लिये शिरतः भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तोंके ख्येय था पूज्य होकर प्राणियोंका निग्रह और अनुग्रह करो।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने मेरा हाथ पकड़ लिया और विष्णुसे साँपकर उनसे कहा—‘तुम संकटके समय सदा

\* रुद्रयेषो भवांश्चैव भवद्युयो हरस्तथा ।  
युर्योर्नन्दरं नैव तव रुद्रस्य किञ्चन ॥  
(शि० पु० २० र० ८० स० १० । ६ )

† रुद्रस्य नते यस्तु तव निन्दा करिष्यति ।  
अ॒ ए॑ पु॒र्णं च निदिलं वृत्तं भ॒ल भविष्यति ॥  
न॒रके दृ॑न्म न॒रम ल्वरुद्देशात्युर्योहम् ।  
भ॒गवद्य भ॒वेद्विष्णो ल्यं दृ॑न्म न॒संरयः ॥  
(शि० ५० र० ८० स० १० । ८९ )

शि० पु० २० र० १२—



इनकी सहायता करते रहना। सबके अध्यश्व होकर सभीको भोग और मोक्ष प्रदान करना तथा सर्वदा समस्त कामनाओंका साधक एवं सर्वध्रेषु बने रहना। जो तुम्हारी धारणमें था गया, वह निश्चय ही मेरी धारणमें था गया। जो मुझमें और तुम्हें अन्तर समझता है, वह अवश्य नरकमें गिरता है॥

**ब्रह्माजी कहते हैं—**देवर्ये ! भगवान् शिवका यद् वचन तुनकर मेरे लाय भगवान् विष्णुने मध्यको बद्धों करने-

\* त्वं यः समाधितो तृन् नामेव स समाधितः ।  
अन्तं दथ जानाति निरये पतति शुबर् ॥  
(शि० पु० २० र० ८० त० १० । १४ )

वाले विश्वनाथको प्रणाम करके मन्दस्वरमें कहा—

**श्रीविष्णु बोले—** करुणासिन्धो ! जगन्नाथ शंकर ! मेरी यह बात सुनिये । मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा । स्वामिन् ! जो मेरा भक्त होकर आपकी निन्दा करे, उसे आप निश्चय ही नरकवास प्रदान करें । नाथ ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है । जो ऐसा जानता है, उसके लिये सोध दुर्लभ नहीं है । \*

श्रीहरिका यह कथन सुनकर दुःखहारी हरने उनकी बात-का अनुसोदन किया और नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश देकर हम दोनोंके हितकी इच्छासे हमें अनेक प्रकारके वर दिये ।

इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु कृष्णपूर्वक हमारी द्वे देखकर हम दोनोंके देखते-देखते उहसा वहाँ अत्यधीन हो गये । तभीसे इस लोकमें लिङ्गपूजाका विधान चालू हुआ है । लिङ्गमें प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और भोक्ता देनेवाले हैं । शिवलिङ्गकी जो वेदी या अंग्री है, वह महादेवीका सर्वांगी और लिङ्ग साक्षात् महेश्वरका । ल्यका अविष्टान होनेके काळ भगवान् शिवको लिङ्ग कहा गया है; क्योंकि उन्होंमें लिङ्ग जगत्का ल्य होता है । महामुने ! जो शिवलिङ्गके सांकेतिकी कोई कार्य करता है, उसके एष्वफलका वर्णन करनेकी शक्ति मुक्तमें नहीं है ।

( अध्याय १० )

### शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल

**श्रुति बोले—** व्यासशिष्य भगवान् शूतजी ! आपको नमस्कार है । आज आपने भगवान् शिवकी बड़ी अद्भुत एवं परम पावन कथा सुनायी है । दयानिधे ! ब्रह्मा और नारदजीके संवादके अनुसार आप हमें शिवपूजनकी वह विधि बताइये, जिससे यहाँ भगवान् शिव, संतुष्ट होते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी शिवकी पूजा करते हैं । वह पूजन कैसे करना चाहिये ? आपने व्यासजीके सुखसे इस विषयको जिस प्रकार सुना हो, वह बताइये ।

महर्षियोंका वह कल्याणप्रद एवं श्रुतिसम्मत वचन सुनकर सूतजीने उन मुनियोंके प्रश्नके अनुसार सब वार्ता प्रसन्नतापूर्वक बतायी ।

**सूतजी बोले—** मुनीश्वरो ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है । परंतु वह रहस्यकी बात है । मैंने इस विषयको जैसा सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार आज कुछ कह रहा हूँ । जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी तरह पूर्वकालमें व्यासजीने समस्कुमारजीसे पूछा था । फिर उसे उपमन्युजीने भी सुना था । व्यासजीने शिवपूजन आदि जो भी विषय सुना था, उसे सुनकर उन्होंने लोकहितकी कामनासे मुझे पढ़ा दिया था । इसी विषयको भगवान् श्रीकृष्णने महात्मा उपमन्युसे सुना था । पूर्वकालमें ब्रह्मजीने नारदजीसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, वही इस समय मैं कहूँगा ।

ब्रह्मजीने कहा—नारद ! मैं संक्षेपसे लिङ्गपूजनकी विधि बता रहा हूँ, सुनो । जैसा पहले कहा गया है, वैसा जो भगवान् शंकरका सुखमय, निर्मल एवं सनातन रूप है, उसका उपर्युक्त भक्तिभावसे पूजन करे, इससे समस्त मनोवाचित्त फलोंकी प्राप्ति होगी । दरिद्रता, रोग, दुःख तथा शत्रुजनित पीड़ा—वे एवं प्रकारके पाप ( कष्ट ) तभीतक रहते हैं, जबतक मनुष्य भगवान् शिवका पूजन नहीं करता है । भगवान् शिवकी पूजा होती है । सारे दुःख विलीन हो जाते और समस्त सुखोंकी प्राप्ति होती है । तत्पश्चात् समय अनेपर उपासककी मुक्ति भी होती है । मानव शरीरका आश्रय लेकर सुख्यतया संदान-सुखकी कल्पना करता है, उसे चाहिये कि वह सम्पूर्ण कायों और मनोरूपों साधक महादेवजीकी पूजा करे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओं तथा प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिंगमें विधिके अनुसार भगवान् शंकरकी पूजा करे । प्रातःकाल ब्राह्मण मुहूर्तमें उठकर गुरु तथा शिवका सारण की तीर्थोंका चिन्तन एवं भगवान् विष्णुका ध्यान करे । फिर नैवेद्यवताओंका और मुनि आदिका भी सरण-चिन्तन करके सुनो । पाठपूर्वक शंकरजीका विधिपूर्वक नाम ले । उसके बाद शूद्र उठकर निवास-स्थानसे दक्षिण दिशामें जाकर मलतागम से मुने । एकान्तमें मलोत्सर्ग करना चाहिये । उससे शुद्र हो लिये जो विधि मैंने सुन रखी है, उसीको आज कहा । मनको एकाग्र करके सुनो ।

\* मम भक्तश्च यः स्वामिस्तव निन्दा करिष्यति । तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं धृत्वग् ॥

त्वद्गतो यो भवेत्स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः । एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा ॥

ब्राहण गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें पाँच बार शुद्ध मिट्टी-का लेप करे और धोये । क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार और शूद्र दो बार विधिपूर्वक गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें मिट्टी लगाये । लिङ्गमें भी एक बार प्रयक्षपूर्वक मिट्टी लगानी चाहिये । तत्पश्चात् वायं हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगाकर धोये । तात ! प्रत्येक पैरमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये । फिर दोनों हाथोंमें भी मिट्टी लगाकर धोये । स्त्रियोंको शूद्रकी ही भाँति अच्छी तरह मिट्टी लगानी चाहिये । हाथपैर धोकर पूर्ववत् शुद्ध मिट्टी ले और उसे लगाकर दाँत साफ करे । फिर अपने वर्णके अनुसार मनुष्य दत्तुअन करे । ब्राहण-को वारह अंगुलकी दत्तुअन करनी चाहिये । क्षत्रिय ग्यारह अंगुल, वैश्य दस अंगुल और शूद्र नौ अंगुलकी दत्तुअन करे । यह दत्तुअनका मान बताया गया । मनुस्मृतिके अनुसार कालदोपका विचार करके ही दत्तुअन करे या त्याग दे । तात ! पढ़ी, प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी, ब्रतका दिन, सूर्यास्तका समय, रविवार तथा श्राद्ध-दिवस—ये दत्तधावनके लिये वर्जित हैं—इनमें दत्तुअन नहीं करनी चाहिये । दत्तुअनके पश्चात् तीर्थ ( जलाशय ) आदिमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, विशेष देश, काल अनेपर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना उचित है । स्नानके पश्चात् पहले आचमन करके वह धुला हुआ बाल धारण करे । फिर सुन्दर एकान्त स्थलमें बैठकर संख्याविधिका अनुष्ठान करे । यथायोग्य संख्याविधिका पालन करें; पूजाका कार्य आरम्भ करे ।

मनको सुस्थिर करके पूजागृहमें प्रवेश करे । वहाँ पूजन-समग्री लेकर सुन्दर आसनपर बैठे । पहले न्यास आदि परसे क्रमशः महादेवजीकी पूजा करे । शिवकी पूजासे पहले गणेशजीकी, द्वारापालोंकी और दिक्षापालोंकी भी भलीभौति पूजा करके पीठे देवताके लिये पीठस्थानकी कल्पना करे । अथवा अष्टदशशत्रु बनाकर पूजाद्वयके समीप बैठे और उस कमल-पर ही भगवान् शिवको समासीन करे । तत्पश्चात् तीन आचमन परसे पुनः दोनों हाथ धोकर तीन प्राणायाम करके मध्यम प्राणायाम अर्धात् कुम्भक करते समय विनेत्रधारी भगवान् शिवसा एम प्रकार ध्यान करे—उनके पाँच मुख हैं, दस हुक्काएँ हैं, शुद्ध लकडिको समान उच्चल कान्ति हैं, सब प्रकारें आमरण उनके धीर्घान्तोंको विभूषित करते हैं तथा द्वयार्पणस्य चादर ओहे हुए हैं । इस तरह ध्यान करके पर भावना करे कि दुसे भी इनके समान ही रूप प्राप्त हो जाए । ऐसी भावना करके मनुष्य ददाके लिये अपने पापको

भस्म कर डाले । इस प्रकार भावनाद्वारा शिवका ही शरीर धारण करके उन परमेश्वरकी पूजा करे । शरीरशुद्धि करके मूलमन्त्रका क्रमशः न्यास करे अथवा सर्वत्र प्रणवसे ही पठन्न न्यास करे । ‘ॐ अद्येत्यादि’० खपसे संक्षेप-वाक्यका प्रयोग करके फिर पूजा आरम्भ करे । पाद, अर्ध्य और आचमनके लिये पात्रोंको तैयार करके रखें । बुद्धिमान् पुरुष विधिपूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकारके नौ कलश स्थापित करे । उन्हें कुशायोंसे ढककर रखें और कुशायोंसे ही जल लेकर उन सबका प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् उन-उन सभी पात्रोंमें शीतल जल डाले । फिर बुद्धिमान् पुरुष देख-भालकर प्रणवमन्त्रके द्वारा उनमें निष्पाक्षित द्रव्योंको डाले । खस और चन्दनको पाद्यपात्रमें रखें । चमेलीके फूल, शीतलचीनी, कागूर, बड़की जड़ तथा तमाल—इन सबको यथोचितलूपसे कूट-पीसकर चूर्ण बना ले और आचमनीयके पात्रमें डाले । इलायची और चन्दनको तो सभी पात्रोंमें डालना चाहिये । देवाधिदेव महादेवजीके पार्श्वभागमें नन्दीश्वरका पूजन करे । गन्ध, धूप तथा भाँति-भाँतिके दीपोंद्वारा शिवकी पूजा करे । फिर लिङ्गशुद्धि करके मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक मन्त्रसमूहोंके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें ‘नमः’ पद जोड़कर उनके द्वारा इष्टदेवके लिये यथोचित आसनकी कल्पना करे । फिर प्रणवसे पद्मासनकी कल्पना करके यह भावना करे कि इस कमलका पूर्वदल साक्षात् अणिमा नामक ऐश्वर्यरूप तथा अविनाशी है । दक्षिणदल लघिमा है । पश्चिमदल महिमा है । उत्तरदल प्राप्ति है । अग्निकोणका दल प्राकाम्य है । नैऋत्यकोणका दल ईशित्य है । वायव्यकोणका दल वशित्य है । ईशानक्षेत्रका दल सर्वशत्य है और उस कमलकी कर्णिकाको सोम कहा जाता है । सोमके नीचे सूर्य है, सूर्यके नीचे अग्नि है और अग्निके भी नीचे धर्म आदिके स्थान हैं । क्रमशः ऐसी कल्पना करनेके पश्चात् चारों दिशायोंमें अच्छक, महत्त्व, अद्विकार तथा उनके विकारोंकी कल्पना करे । सोमके अन्तमें यज्ञ, रज और तम—इन तीनों गुणोंकी कल्पना करे । इनके बाद ‘यज्ञोऽज्ञातं प्रपद्यामि’ इत्यादि मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आशाद्वय उठके ‘ॐ वामदेवाय नमः’ इत्यादि वामदेव-मन्त्रसे उन्हें आननदर विराजमान करे । तिर ‘ॐ तत्सुमित्रद विद्वद्’ इत्यादि स्त्र-गायत्रीद्वारा इष्टदेवका लानित्य प्राप्त उठके उन्हें ‘अथेऽर्पण्योऽथ’ इत्यादि अवैरसन्ध्येते वहाँ निश्च उठे । तिर ईशानः दर्श विद्यानाम् इत्यादि मन्त्रसे आमरणदेवका पूजन करे ।

पाद और आचमनीय अर्द्धस्त्र ऋत्स्त्र करके अर्ध्य दे । ११६

गत्य और चन्दनमिश्रित जलसे विधिपूर्वक रुद्रदेवको स्नान कराये । फिर पञ्चगव्यनिर्माणकी विधिसे पाँचों द्रव्योंको एक पाचमं लेकर प्रणवसे ही अभिमन्त्रित करके उन मिश्रित गव्य-पदार्थोंद्वारा भगवान्‌को नहलाये । तत्पथात् पृथक्-पृथक् दूध, दही, मधु, गन्नेके रस तथा धीसे नहलाकर समस्त अभीष्टोंके दाता और हितकारी पूजनीय महादेवजीका प्रणवके उच्चारण-पूर्वक पवित्र द्रव्योंद्वारा अभिषेक करे । पवित्र जलपात्रोंमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल डाले । डालनेसे फहले साधक इवेत वस्तुसे उस जलको यथोचित रीतिसे छान ले । उस जलको तवतक दूर न करे, जबतक इष्टदेवको चन्दन न चढ़ा ले । तब सुन्दर अक्षतोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीकी पूजा करे । उनके ऊपर कुश, अपामार्ग, कपूर, चमेली, चम्पा, गुलाब, इवेत कनेर, वैला, कमल और उत्पल आदि भाँति-भाँतिके अपूर्व पुष्प एवं चन्दन आदि चढ़ाकर पूजा करे । परमेश्वर शिवके ऊपर जलकी धारा गिरती रहे, इसकी भी व्यवस्था करे । जलसे भरे भाँति-भाँतिके पात्रोंद्वारा महेश्वरको नहलाये । मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये । वह समस्त फलोंको देनेवाली होती है ।

तात ! अब मैं तुम्हें समस्त मनोवाच्छित कामनाओंकी सिद्धिके लिये उन पूजासम्बन्धी मन्त्रोंको भी संक्षेपसे बता रहा हूँ, सावधानीके साथ सुनो । पावामानमन्त्रसे, 'वाघ्मे०' इत्यादि मन्त्रसे, रुद्रमन्त्र तथा नीलरुद्रमन्त्रसे, सुन्दर एवं शुभ पुरुष-सूक्तसे, श्रीसूक्तसे, सुन्दर अर्थवर्शीष्ठके मन्त्रसे, 'आ नो भद्रा०' इत्यादि शान्तिमन्त्रसे, शान्तिसम्बन्धी दूसरे मन्त्रोंसे, भारुण्डमन्त्र और अरुणमन्त्रोंसे, अर्थाभीष्टसाम तथा देवव्रतसामसे, 'अभित्वा०' इत्यादि रथन्तरसामसे, पुरुषसूक्तसे, मृत्युंजयमन्त्रसे तथा पञ्चाक्षरमन्त्रसे पूजा करे । एक सहस्र अथवा एक सौ एक जलधाराएँ गिरानेकी व्यवस्था करे । यह सब वैदमार्गसे अथवा नाममन्त्रोंसे करना चाहिये । तदनन्तर भगवान् शंकरके ऊपर चन्दन और फूल आदि चढ़ाये । प्रणवसे ही सुखवास (ताम्बूल) आदि अपित करे । इसके बाद जो स्फटिकमणिके समान निर्मल, निष्कल, अविनाशी, सर्वलोककारण, सर्वलोकमय परमदेव हैं; जो व्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और विष्णु आदि देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते; वेदवेत्ता विद्वानोंने जिन्हें वेदान्तमें मनवाणीके अगोचर बताया है; जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित तथा समस्त रोगियोंके लिये औषधघृष्ण हैं; जिनकी शिवतत्त्वके नामसे ख्याति है तथा जो शिवलिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन भगवान् शिवका शिवलिङ्गके मख्तकपर प्रणवमन्त्रसे ही

पूजन करे । धूप, दीप, नींवद्वा, मुन्द्र ताम्बूल एवं मुम आरतीद्वारा यथोक्त विधिसे पूजा करके स्तोत्रों तथा अब नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा उन्हें नमस्कार करे । फिर अर्थ देकर भगवान्‌के चरणोंमें फूल विरेंद्र और सात्राङ्ग प्रगल्भ करके देवेश्वर शिवकी आराधना करे । फिर हाथमें फूल लेकर खड़ा हो जाय और दोनों हाथ लोड़कर निम्नाङ्कित मन्त्र सर्वेश्वर शंकरकी पुनः प्रार्थना करे—

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपूजादिकं मया ।

कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर ॥

'कल्याणकारी शिव ! मैंने अनजानमें अथवा जानवृद्ध जो जप-पूजा आदि भक्तिकर्म किये हों, वे आपकी ज्ञान सफल हों ।'

इस प्रकार पढ़कर भगवान् शिवके ऊपर प्रसन्नतामूळे फूल चढ़ाये । स्वस्तिवाचन करके नाना प्रकारकी अंदर प्रार्थना करे । फिर शिवके ऊपर मार्जन करना चाहिए मार्जनके बाद नमस्कार करके अपराधके लिये क्षमा-ग्राहण करते हुए पुनरागमनके लिये विसर्जन करना चाहिये । इस बाद 'अर्द्धा०' से आरम्भ होनेवाले मन्त्रका उच्चारण ज्ञनमस्कार करे । फिर सम्पूर्ण भावसे विभोर हो इस प्रार्थना करे—

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवे भवे ।

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं भम ॥

१. ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्वाः स्वस्ति नः पूरा विश्वेऽस्ति न त्वास्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधतु ॥१॥ इन्द्रो स्वस्तिवाचनसम्बन्धी मन्त्र है । २. 'काले वर्णतु पर्जन्मः शूरेण शस्यशालिनी । देवोऽयं क्षेमरहितो ब्राह्मणः सन्तु निर्भयाः ॥ सूर्यः शुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि परम्पर्युक्ताः कथिद् दुःखमाग्भवेत् ॥' इत्यादि आशीःप्रार्थनाएँ हैं । ३. 'आपो हि भास्योभुवः' ( यजु० ११ । ५०-५२ ) इत्यादि देव मार्जन-मन्त्र कहे गये हैं । इन्हें पढ़ते हुए इष्टदेवपर जल छिपा 'मार्जन' कहलाता है । ४. अपराधसहस्राणि क्रियनेऽप्यन्ते मया । तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्वं परमेश्वर ॥' इत्यादि देव मार्जन-मन्त्र सम्बन्धी श्लोक है । ५. 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजनात् मामिकाम् । अभीष्टफलद्वानाय पुनरागमनाय च ॥' इत्यादि विवरण सम्बन्धी श्लोक है । ६. 'ॐ अथ देवा उद्दिता सर्यम्य तिरस्ति पिष्ठा निरव्यात् । तन्मो मित्रो वस्त्रो मामहन्तामदितिः लिङ्गं पृथिवी उत धीः ।' ( यजु० ३३ । ४२ )

‘प्रत्येक जन्ममें मेरी शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो। शिवके सिवा दूसरा कोई मुझे शरण देने-वाला नहीं। महादेव ! आप ही मेरे लिये शरणदाता हैं।’

इस प्रकार प्रार्थना करके सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता देवेश्वर शिवका पराभक्तिके द्वारा पूजन करे। विशेषतः गलेकी आवाजसे भगवान्को संतुष्ट करे। किर सपरिवार नमस्कार करके अनुपम प्रसन्नताका अनुभव करते हुए समस्त लौकिक कार्य सुखपूर्वक करता रहे।

जो इस प्रकार शिवभक्तिपरायण हो प्रतिदिन पूजन करता है, उसे अवश्य ही परा-परापर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त

होती है। वह उत्तम वक्ता होता है तथा उसे मनोवाञ्छित फलकी निश्चय ही प्राप्ति होती है। रोग, दुःख, दूसरोंके निमित्तसे होनेवाला उद्देश, कुटिलता तथा विष आदिके रूपमें जो-जो कष्ट उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी परम शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं। उस उपासकका कल्याण होता है। भगवान् शंकरकी पूजासे उसमें अवश्य सदृशोंकी बुद्धि होती है—ठीक उसी तरह, जैसे शुक्रपक्षमें चन्द्रमा बदलते हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार मैंने शिवकी पूजाका विधान बताया। अब तुम क्या सुनना चाहते हो ? कौन-सा प्रश्न पूछनेवाले हो ?

( अध्याय ११ )

### भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन

नारदजी बोले—ब्रह्मन् ! प्रजापते ! आप धन्य हैं; मैं वयोंकि आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। विधे ! आप पुनः इसी विषयका सम्पूर्ण प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—तात ! एक समयकी बात है, मैं उस ओरसे वृत्तियों तथा देवताओंको बुलाकर उन सबको रसायनके तटपर ले गया, जहाँ सबका हित-साधन

करनेवाले भगवान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ देवताओंके पूछनेपर भगवान् विष्णुने सबके लिये शिवपूजनकी ही श्रेष्ठता बतलाकर यह कहा कि ‘एक मुहूर्त या एक क्षण भी जो शिवका पूजन नहीं किया जाता, वही हानि है, वही महान् छिद्र है, वही अंधापन है और वही मूर्खता है। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर हैं, जो मनसे उन्होंको प्रणाम और उन्होंका चिन्तन करते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते ॥’। जो महान् सौभाग्यशाली पुरुष मनोहर भवन, सुन्दर आभूषणसे विभूषित लियाँ, जिननेसे मनको संतोष हो उतना धन, पुत्र-पौत्र आदि संतानि, आरोग्य, सुन्दर शरीर, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्गीय सुख, अन्तमें मोक्षरूपी फल अथवा परमेश्वर शिवकी भक्ति नाहते हैं, वे पूर्वजन्मोंके महान् पुण्यसे भगवान् सदाशिवकी पूजा-अर्चामें प्रस्तृत होते हैं। जो पुरुष नित्य-भक्तिपरायण हो शिवलिङ्गकी पूजा करता है, उसको सफल सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह पापोंके चक्करमें नहीं पड़ता।

भगवान्के इस प्रकार उपदेश देवताओंने उन श्रीहरिको प्रणाम किया और मनुष्योंकी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये उनसे शिवलिङ्ग देनेके लिये प्रार्थना की। मुनि-श्रेष्ठ ! उस प्रार्थनाको सुनकर जीवोंके द्वारामें तरह रहनेवाले भगवान् विष्णुने विश्वकर्माको बुलाकर कहा—‘विश्वकर्मा ! तुम मेरी आशाते सम्पूर्ण देवताओंको सुन्दर शिवलिङ्ग निर्माण करके दो।’ तब विश्वकर्मनि मेरी और श्रीहरिकी आशाके



अनुसार उन देवताओंको उनके अधिकारके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर दिये ।

मुनिश्रेष्ठ नारद । किस देवताको कौन-सा शिवलिङ्ग प्राप्त हुआ, इसका वर्णन आज मैं कर रहा हूँ; उसे सुनो । इन्द्र पद्मराग मणिके बने हुए शिवलिङ्गकी और कुवेर सुवर्णमय लिङ्गकी पूजा करते हैं । धर्म पीतमणिमय ( पुखराजके बने हुए ) लिङ्गकी तथा वरुण श्यामवर्णके शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं । भगवान् विष्णु इन्द्रनीलमय तथा ब्रह्म हेममय लिङ्गकी पूजा करते हैं । मुने ! विश्वेदेवगण चाँदीके शिवलिङ्गकी, वसुगण पीतलके बने हुए लिङ्गकी तथा दोनों अधिनीकुमार पार्थिव लिङ्गकी पूजा करते हैं । लक्ष्मीदेवी स्फटिकमय लिङ्गकी, आदित्यगण ताम्रमय लिङ्गकी, राजा सोम मेतीके बने हुए लिङ्गकी तथा अग्निदेव वज्र ( हीरे ) के लिङ्गकी उपासना करते हैं । श्रेष्ठ ब्रह्मण और उनकी पत्नियाँ मिट्ठीके बने हुए शिवलिङ्गका, मयासुर चन्द्रनिर्मित लिङ्गका और नागगण मूँगेके बने हुए शिवलिङ्गका आदरपूर्वक पूजन करते हैं । देवी मक्खनके बने हुए लिङ्गकी, योगीजन भस्ममय लिङ्गकी, यक्षगण दधिनिर्मित लिङ्गकी, छायादेवी अटोंसे बनाये हुए लिङ्गकी और ब्रह्मपत्नी रक्षमय शिवलिङ्गकी निश्चितरूपसे पूजा करती हैं । वाणसुर पारद या पार्थिव लिङ्गकी पूजा करता है । दूसरे लोग भी ऐसा ही करते हैं । ऐसे-ऐसे शिवलिङ्ग बनाकर विश्वकर्मीने विभिन्न लोगोंको दिये तथा वे सब देवता और श्रृंगि उन लिङ्गोंकी पूजा करते हैं । भगवान् विष्णुने इस तरह देवताओंको उनके हितकी कामनासे शिवलिङ्ग देकर उनसे तथा मुझ ब्रह्मासे पिनाकपाणि महादेवके पूजनकी विधि भी बतायी । पूजन-विधिसम्बन्धी उनके वचनोंको सुनकर देव-शिरोमणियोंसहित मैं ब्रह्म हृदयमें हर्ष लिये अपने धाममें आ गया । मुने ! वहाँ आकर मैंने समस्त देवताओं और श्रृंगियोंको शिवपूजाकी उत्तम विधि बतायी, जो समर्पण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है ।

उस समय मुझ ब्रह्माने कहा—देवताओंसहित समस्त श्रृंगियो ! तुम प्रेमपरायण होकर सुनो; मैं प्रसन्नतापूर्वक त्रुमसे शिवपूजनकी उस विधिका वर्णन करता हूँ, जो भोग और भोक्ष देनेवाली है । देवताओं और मुनीश्वरो ! समस्त जन्तुओंमें मनुष्य-जन्म प्राप्त करना प्रायः दुर्लभ है । उनमें भी उत्तम कुलमें जन्म तो और भी दुर्लभ है । उत्तम कुलमें भी आचारवान् ब्राह्मणोंके यहाँ उत्पन्न होना उत्तम पुण्यसे ही सम्भव है । यदि वैसा जन्म सुलभ हो जाय तो भगवान् शिवके संतोष-

के लिये उस उत्तम कर्मका अनुग्रहन करे, जो अपने वर्ण और आश्रमके लिये शास्त्रोद्धारा प्रतिपादित है । जिस जातिके लिये जो कर्म ब्रह्मण गया है, उसका उल्लङ्घन न करे । जिस सम्पत्ति हो, उसके अनुसार ही दान करे । कर्मय सहस्रों यज्ञोंसे तपोयज्ञ बढ़कर है । राहस्यों तपोयज्ञोंसे जपयज्ञका महात्म अधिक है । ध्यानयशसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है । ध्यानका साभन है; क्योंकि योगी ध्यानके द्वारा अपने इसे समरस शिवका साक्षात्कार करता है । ॥ ध्यानयज्ञमें जरहनेवाले उपासकके लिये भगवान् शिव सदा ही संनिहित । जो विज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन पुरुषोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त आदिकी आवश्यकता नहीं है ।

मनुष्यको जबतक ज्ञानकी प्राप्ति न हो, तबतक वह विदिलानेके लिये कर्मसे ही भगवान् शिवकी आरा करे । जगत्के लोगोंको एक ही परमात्मा वरूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा है । एकमात्र भगवान् सूर्य ज्ञानमें रहकर भी जलाशय आदि विभिन्न वस्तुओंमें अनेदीखते हैं । देवताओ ! संसारमें जो-जो सत् या असत् देखी या सुनी जाती है, वह सब परब्रह्म शिवरूप ही है—समझो । जबतक तत्त्वज्ञान न हो जाय, तबतक प्रतिमाकी आवश्यक है । ज्ञानके अभावमें भी जो प्रतिमा-पूजाकी अवहेलन करता है, उसका पतन निश्चित है । इसलिये ब्राह्मणों यथार्थ वात सुनो । अपनी जातिके लिये जो कर्म बताता है, उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये । जहाँ-जहाँ यथा भक्ति हो, उस-उस आराध्यदेवका पूजन अद्वितीय अवश्य का चाहिये; क्योंकि पूजन और दान आदिके विना पातक नहीं होते । नैसे मैले कपड़ोंमें रंग बहुत अच्छा चढ़ता है किंतु जब उसको धोकूर स्वच्छ कर लिया जाता तब उसपर सब रंग अच्छी तरह चढ़ते हैं, उसी प्रदेवताओंकी भलीभाँति पूजासे जब विविध शरीर पूर्णतया भिंहो जाता है, तभी उसपर ज्ञानका रंग चढ़ता है और विज्ञानका प्राकृत्य होता है । जब विज्ञान हो जाता है ॥

\* ध्यानयशात्परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ।

यतः समरसं स्वेष्ट योगी ध्यानेन पश्यति ॥

( शि० पु० रु० स० खं० १२ । ५१

+ यत्र यत्र यथाभक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम् ।

विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः ॥

( शि० पु० रु० स० खं० १३ । ५१

भेदभावकी निवृत्ति हो जाती है। भेदकी सम्पूर्णतया निवृत्ति हो जानेपर द्वन्द्व-हुःख दूर हो जाते हैं और द्वन्द्व-हुःखसे रहित पुण्य शिवलय हो जाता है।

मनुष्य जन्मतक गृहस्थ-आश्रममें रहे, तबतक पाँचों देवताओंकी तथा उनमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरकी प्रतिमाका उत्तम प्रेमके साथ पूजन करे। अथवा जो सबके एकमात्र मूल हैं,

उन भगवान् शिवकी ही पूजा सबसे बढ़कर है; क्योंकि मूलके सांचे जानेपर शासास्थानीय सम्पूर्ण देवता स्वतः दृढ़ हो जाते हैं। अतः जो सम्पूर्ण मनोशांघिष्ठ फलोंको पाना चाहता है, वह अपने अभीष्टकी निषिद्धिके लिये समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहकर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरका पूजन करे।

( अध्याय १२ )

### शिव-पूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं पूजाकी सर्वोत्तम विधि यता रहा हूँ, जो समस्त अभीष्ट तथा सुखोंको सुलभ करानेवाली है। देवताओं तथा ऋूपियों। तुम ध्यान देकर सुनो। उपासकोंको चाहिये कि वह त्राहा मुहूर्तमें शयनसे उठकर जगदम्भा पार्वतीसहित भगवान् शिवका सारण करे तथा दृश्य जोड़ मरुतक झुकाकर भक्तिपूर्वक उनसे प्रार्थना करे—‘देवेश्वर ! उठिये, उठिये ! मेरे हृदय-मन्दिरमें शयन करने—। बाले देवता ! उठिये ! उमाकान्त ! उठिये और ब्रह्माण्डमें सबका मङ्गल कीजिये। मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु मेरी उठामें प्रवृत्ति नहीं होती। मैं अर्थमें जानता हूँ, परंतु मैं उठाए दूर नहीं हो पाता। महादेव ! आप मेरे हृदयमें स्थित होकर मुझे जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ।’ इस प्रकार भक्तिपूर्वक कहकर और गुरुदेवकी चरणपादुकाओंवा सारण करके गाँवसे बाहर दक्षिण दिशामें मलमूत्रका त्याग करनेके लिये जाय। मलत्याग करनेके बाद मिठी और जलसे धोनेके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके दोनों हाथों और पैरोंको धोकर दहुअन करें, सूर्योदय होनेसे पहले ही दहुअन करके मैंहोंको सोलह घार ललकी अङ्गुलियोंसे धोये। देवताओं तथा पृथिव्यो ! पष्ठों, प्रतिपदा, अमावास्या और नवमी तिथियों तथा रविवारके दिन शिवभक्तको यत्नपूर्वक दहुअनको त्याग देना चाहिये। अवकाशके अनुसार नदी आदिमें जाकर अपना धर्में ही भली-भाँति स्नान करे। मनुष्यको देवा और जलके विच्छ द्वारा स्नान नहीं करना चाहिये। रविवार, श्राद्ध, रंगान्ति, गण, भृदान, तीर्थ, उपवास-दिवस अथवा आरोग्य प्राप्त होनेपर मनुष्य गरम जलसे स्नान न करे। शिव-भक्त मनुष्य तीर्थ आदिमें प्रथाहके सम्मुख होकर स्नान करे। जो गहनोंके पहले तेल लगाना चाहे, उसे विहित एवं निषिद्ध दिनोंका विचार करके ही तैलमध्यम फरना चाहिये। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तेल लगाता हो, उसके लिये किसी दिन भी दैत्यकल्प पूरित नहीं है अथवा जो तेल इत्र आदिसे

वासित हो, उसका लगाना किसी दिन भी दूषित नहीं होता। इस तरह देश, कालका विचार करके ही विधि-पूर्वक स्नान करे। स्नानके समय अपने मुखको उत्तर अथवा पूर्वकी ओर रखना चाहिये।

उच्चिष्ठ वस्त्रका उपयोग कभी न करे। शुद्ध वस्त्रसे इष्टदेवके स्मरणपूर्वक स्नान करे। जिस वस्त्रको दूसरेमें धारण किया हो अथवा जो दूसरंके पहननेकी वस्तु हो तथा जिसे स्वयं रातमें धारण किया गया हो, वह वस्त्र उच्चिष्ठ कहलाता है। उससे तभी स्नान किया जा सकता है, जब उसे धो लिया गया हो। स्नानके पश्चात् देवताओं, ऋूपियों तथा पितरोंको तृप्ति देनेवाला स्नानाङ्ग तर्पण करना चाहिये। उसके बाद धुला हुआ वस्त्र पहने और आचमन करे। द्विजोत्तमो ! तदनन्तर गोवर आदिमें लीप-पीतकर स्वच्छ किये हुए शुद्ध स्थानमें जाकर वहाँ मुन्द्र आसनकी व्यवस्था करे। वह आसन विशुद्ध काष्ठका बना हुआ, पूरा फैला हुआ तथा विचित्र होना चाहिये। ऐसा आसन सम्पूर्ण अभीष्ट तथा फलोंको देनेवाला है। उसके ऊपर विद्वानेके लिये यथायोग्य मृगचर्म आदि ग्रहण करे। शुद्ध-बुद्धिवाला एक शुद्ध आसनपर बैठकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगायें। त्रिपुण्ड्रसे जप-तप तथा दान मफल होता है। भस्मके अभावमें त्रिपुण्ड्रका साधन जल आदि बताया गया है। इन तरह त्रिपुण्ड्र करके मनुष्य रुद्राङ्ग धारण करे और अपने नित्यकर्मका गम्पादन करके जिर शिवकी आरुधना करे। तथम्भान् तीन चार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आचमन करे। जिस बहाँ शिवकी पूजा-के लिये अस्त्र और जल लाकर रखने। दूरसी कोई भी जो वस्तु आवश्यक हो, उसे यथावति तुलयकर अपने पास लें। इस प्रदार पूजन-सामग्रीका संग्रह करके वहाँ भी दैत्यकल्प के निर भावसे रहें। जिस दृढ़, शर्व और वृद्धानमें कुक्कु छक अर्द्ध-पात्र लेकर उने दादिमें भगवं लगाएं। उनसे उत्तमात्मा निषिद्ध

अनुसार उन देवताओंको उनके अधिकारके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर दिये ।

सुनिश्चेष्ट नारद । किस देवताको कौन-सा शिवलिङ्ग प्राप्त हुआ, इसका वर्णन आज मैं कर रहा हूँ; उसे सुनो । इन्द्र पद्मराग मणिके बने हुए शिवलिङ्गकी और कुवेर सुवर्णमय लिङ्गकी पूजा करते हैं । धर्म पीतमणिमय ( पुखराजके बने हुए ) लिङ्गकी तथा वरुण श्यामवर्णके शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं । भगवान् विष्णु इन्द्रनीलमय तथा ब्रह्मा हेममय लिङ्गकी पूजा करते हैं । मुने ! विश्वेदेवगण चाँदीके शिवलिङ्गकी, वसुगण पीतलके बने हुए लिङ्गकी तथा दोनों अश्विनीकुमार पार्थिव लिङ्गकी पूजा करते हैं । लक्ष्मीदेवी स्फटिकमय लिङ्गकी, अदित्यगण ताम्रमय लिङ्गकी, राजा सोम मोतीके बने हुए लिङ्गकी तथा अग्निदेव वज्र ( हीरे ) के लिङ्ग-की उपासना करते हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ मिट्टीके बने हुए शिवलिङ्गका, मयासुर चन्द्रनिर्मित लिङ्गका और नागगण भूमि के बने हुए शिवलिङ्गका आदरपूर्वक पूजन करते हैं । देवी मक्षवनके बने हुए लिङ्गकी, योगीजन भस्ममय लिङ्गकी, यक्षगण दधिनिर्मित लिङ्गकी, छायादेवी आदेसे बनाये हुए लिङ्गकी और ब्रह्मपत्नी रक्षमय शिवलिङ्गकी निश्चितरूपसे पूजा करती हैं । वाणासुर पारद या पार्थिव लिङ्गकी पूजा करता है । दूसरे लोग भी ऐसा ही करते हैं । ऐसे-ऐसे शिवलिङ्ग बनाकर विश्वकर्मने विभिन्न लोगोंको दिये तथा वे सब देवता और श्रृंगि उन लिङ्गोंकी पूजा करते हैं । भगवान् विष्णुने इस तरह देवताओंको उनके हितकी कामनासे शिवलिङ्ग देकर उनसे तथा मुक्त ब्रह्मासे पिनाकपाणि महादेवके पूजनकी विधि भी बतायी । पूजन-विधिसम्बन्धी उनके वचनोंको सुनकर देव-शिरोमणियोंसहित मैं ब्रह्मा द्वदयमें हर्ष लिये अपने धाममें आ गया । मुने ! वहाँ आकर मैंने समस्त देवताओं और श्रृंगियोंको शिवपूजाकी उत्तम विधि बतायी, जो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है ।

उस समय मुझ ब्रह्माने कहा—देवताओंसहित समस्त श्रृंगियो ! तुम प्रेमपरायण होकर सुनो; मैं प्रसन्नतापूर्वक तुमसे शिवपूजनकी उस विधिका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है । देवताओं और मुनीश्वरो । समस्त जन्मोंमें मनुष्य-जन्म प्राप्त करना प्रायः दुर्लभ है । उनमें भी उत्तम कुलमें जन्म तो और भी दुर्लभ है । उत्तम कुलमें भी आचारवान् ब्राह्मणोंके यहाँ उत्पन्न होना उत्तम पुण्यसे ही सम्भव है । यदि वैसा जन्म सुलभ हो जाय तो भगवान् शिवके संतोष-

के लिये उस उत्तम कर्मका अनुष्ठान करे, जो अपने वर्ण और आथर्मके लिये शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित है । जिस जातिके लिये जो कर्म ब्रह्मा गया है, उसका उल्लङ्घन न करे । किंतु सम्पत्ति हो, उसके अनुसार ही दान करे । कर्ममय सद्दो यज्ञोंसे तपोयज्ञ बढ़कर है । सहस्रों तपोयज्ञोंसे जपयज्ञका महत अधिक है । ध्यानयज्ञसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है । ज्ञानशानका साधन है; क्योंकि योगी ध्यानके द्वारा अपने इन्द्रियोंसे समरस शिवका साक्षात्कार करता है ॥५॥ ध्यानयज्ञमें तत्त्व रहनेवाले उपासकके लिये भगवान् शिव सदा ही संनिहित है । जो विज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन पुरुषोंकी शुद्धिके लिये किंतु प्रायश्चित्त आदिकी आवश्यकता नहीं है ।

मनुष्यको जन्मतक ज्ञानकी प्राप्ति न हो, तबतक वह निर्दिलानेके लिये कर्मसे ही भगवान् शिवकी आख्य करे । जगत्के लोगोंको एक ही परमात्मा अंते रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा है । एकमात्र भगवान् सूर्य द्वारा स्थानमें रहकर भी जलाशय आदि विभिन्न वस्तुओंमें अंते दीखते हैं । देवताओं ! संसारमें जो-जो सत् या असत् देखी या सुनी जाती है, वह सब परब्रह्म शिवरूप ही है—से समझो । जन्मतक तत्त्वज्ञान न हो जाय, तबतक प्रतिभावी आवश्यक है । ज्ञानके अभावमें भी जो प्रतिमा-पूजाकी अस्तेल करता है, उसका पतन निश्चित है । इसलिये ब्राह्मणों ! वयथार्थ वात सुनो । अपनी जातिके लिये जो कर्म बताया है, उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये । जहाँ-जहाँ यथा भक्ति हो, उस-उस आराध्यदेवका पूजन आदि अवश्य कर चाहिये; क्योंकि पूजन और दान आदिके विना पालन नहीं होते । + जैसे मैले कपड़ेमें रंग वहुत अच्छा चढ़ता है किंतु जब उसको धोकर स्वच्छ कर लिया जाता है, तब उसपर सब रंग अच्छी तरह चढ़ते हैं, उसी प्रकार देवताओंकी भलीभाँति पूजासे जब विविध शरीर पूर्णतया प्रिय हो जाता है, तभी उसपर ज्ञानका रंग चढ़ता है और विज्ञानका प्राकृत्य होता है । जब विज्ञान हो जाता है,

\* ध्यानयज्ञात्परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ।

यतः समरसं स्वेष्टं योगी ध्यानेन परयति ॥

( शि० पु० रु० स० खं० १२ ॥५॥

+ यत्र यत्र यथाभक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम् ।

विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः ॥

( शि० पु० रु० स० खं० १२ ॥५॥

भेदभावकी निवृत्ति हो जाती है। भेदकी सम्पूर्णतया निवृत्ति हो जानेपर हृद्दन्दनुःख दूर हो जाते हैं और हृद्दन्दनुःखसे रहित पुरुष शिवलय हो जाता है।

मनुष्य जवतक गृहस्थ-आश्रममें रहे, तबतक पाँचों देवताओंकी तथा उनमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरकी प्रतिमाका उत्तम प्रेमके साथ पूजन करे। अथवा जो सबके एकमात्र मूल हैं,

उन भगवान् शिवकी ही पूजा सबसे बढ़कर है; क्योंकि मूलके सांचे जानेपर शाश्वासानीय सम्पूर्ण देवता खतः त्रुप हो जाते हैं। अतः जो सम्पूर्ण मनोवाचित फलोंको पाना चाहता है, वह अपने अभीष्टकी मिलिके लिये समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहकर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरका पूजन करे।

( अध्याय १२ )

### शिव-पूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं पूजाकी सर्वोत्तम विधि बता रहा हूँ, जो समस्त अभीष्ट तथा सुखोंको सुखम करानेवाली है। देवताओं तथा ऋणियों ! तुम ध्यान देकर सुनो। उपासकको चाहिये कि वह ब्राह्म मुहूर्तमें शयनसे उठकर जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिवका सरण करे तथा अथ जोड़ मरतक छुकाकर भक्तिपूर्वक उनसे प्रार्थना करे—देवेश्वर ! उठिये, उठिये ! मेरे हृदय-मन्दिरमें शयन करनेले देवता ! उठिये। उमाकान्त ! उठिये और ब्रह्माण्डमें विका मङ्गल कीजिये। मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु मेरी समें प्रवृत्ति नहीं होती। मैं अधर्मको जानता हूँ, परंतु मैं प्रस्तु दूर नहीं हो पाता। महादेव ! आप मेरे हृदयमें रूपत होकर मुझे जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ।’ इस प्रकार भक्तिपूर्वक कहकर और गुरुदेवकी चरणपादुकाओंग सरण करके गाँयसे वाहर दक्षिण दिशामें मलमूत्रका त्याग गरनेके लिये जाय। मलत्याग करनेके बाद मिठी और जलसे घोंसेके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके दोनों हाथों और पैरोंको धोकर दत्तव्यन करे, सूर्योदय होनेसे पहले ही दत्तव्यन करके गुंडों सेव्ह घार जलकी अखलियोंसे धोये। देवताओं तथा ऋणियों ! एषी, प्रतिपदा, अमावास्या और नवमी तिथियों पांच रविवारके दिन शिवभक्तको यत्नपूर्वक दत्तव्यनको त्याग देना चाहिये। अवकाशके अनुसार नदी आदिमें जाकर अथवा परमें ही भली-भाँति स्नान करे। मनुष्यको देश और पालके विश्व स्नान नहीं करना चाहिये। रविवारु आद्व, एकान्ति, ग्रहण, महाश्राम, तीर्थ, उपवास-दिवस अथवा आरोग्य प्राप्त होनेपर मनुष्य गरम जलसे स्नान न करे। शिव-भक्त मनुष्य तीर्थ आदिमें प्रवाहके समुख होकर स्नान करे। ऐ गर्होंके पाले तेल लगाना चाहे, उसे चिह्नित एवं निषिद्ध रितेना दिचार करके ही तैलाभ्यङ्ग करना चाहिये। जो अतिरिक्त शिवमपूर्येण नेल लगाता हो, उसके लिये किसी दिन भी वैलाभ्यङ्ग कर्त्ता नहीं है। उसे विश्वासित नहीं है अपका जो तेल हन आदिसे

वासित हो, उसका लगाना किसी दिन भी दूषित नहीं है। सरसोंका तेल ग्रहणको छोड़कर दूसरे किसी दिन भी दूषित नहीं होता। इस तरह देश, कालका विचार करके ही विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय अपने मुखको उत्तर अथवा पूर्वकी ओर रखना चाहिये।

उच्छिष्ट वस्त्रका उपयोग कभी न करे। शुद्ध वस्त्रसे इष्टदेवके स्मरणपूर्वक स्नान करे। जिस वस्त्रको दूसरेने धारण किया हो अथवा जो दूसरंके पहननेकी वस्तु हो तथा जिसे स्वयं रातमें धारण किया गया हो, वह वस्त्र उच्छिष्ट कहलाता है। उससे तभी स्नान किया जा सकता है, जब उसे धो लिया गया हो। स्नानके पश्चात् देवताओं, ऋणियों तथा पितरोंको तुसि देनेवाला स्नानाङ्ग तर्पण करना चाहिये। उसके बाद धुला हुआ वस्त्र पहने और आच्मन करे। द्विजोत्तमो ! तदनन्तर गोव्र आदिसे लीप-पोतकर स्वच्छ किये हुए शुद्ध स्थानमें जाकर वहाँ सुन्दर आसनकी व्यवस्था करे। वह आसन विशुद्ध काष्ठका बना हुआ, पूरा कैला हुआ तथा शिवित्र होना चाहिये। ऐसा आसन सम्पूर्ण अभीष्ट तथा फलोंको देनेवाला है। उसके ऊपर विछानेके लिये यथायोग्य भृगचर्म आदि ग्रहण करे। शुद्ध-बुद्धियाला पुरुष उत्त आसनपर बैठकर भस्सासे त्रिपुण्ड्रसे जप-तप तथा दान ग्रहण होता है। भस्सके अभायमें त्रिपुण्ड्रका साधन जल आदि वस्तावा गया है। इन तरह त्रिपुण्ड्र करके मनुष्य रुद्राभ धारण करे और अपने नित्यकर्मका नम्मादन करके फिर शिवकी आराधना करे। तत्पश्चात् तीन बार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आच्मन करे। फिर जल शिवकी पूजा के लिये अम और जल लाकर रखें। दूसरी दोउ भी जो वस्तु आवश्यक हो, उसे यथायान्ति लायकर अपने पान रखें। इस प्रकार पूजन-भास्तीका संग्रह करके दो यैश्वर्यक शिव भावसे बैठें। फिर जल, रसय और अमादनमें युक्त रुक्त अष्टपात्र स्फेद उन्हें दर्शिने स्थानमें रखें। उसमें उपजार्ही विर्द्ध

होती है। फिर गुरुका स्मरण करके उनकी आशा लेकर विधिवत् संकल्प करके अपनी कामनाको अलग न रखते हुए पराभक्तिसे सपरिवार शिवका पूजन करे। एक मुद्रा दिखाकर सिन्दूर आदि उपचारोंद्वारा सिद्धि-बुद्धिसहित विन्द्रहारी गणेशका पूजन करे। लक्ष और लाभसे युक्त गणेशजीका पूजन करके उनके नामके आदिमें ग्रणव तथा अन्तमें नमः जोड़कर नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए नमस्कार करे। (यथा—ॐ गणपतये नमः अथवा ॐ लक्ष्माभयुताय सिद्धि-बुद्धिसहिताय गणपतये नमः) तदनन्तर उनसे क्षमा-प्रार्थना करके पुनः भाई कार्तिकेयसहित गणेशजीका पराभक्ति-से पूजन करके उन्हें बारंबार नमस्कार करे। तत्पत्रात् सदा द्वारपर खड़े रहनेवाले द्वारपाल महोदयका पूजन करके सती-साध्वी गिरिराजनन्दिनी उमाकी पूजा करे। चन्दन, कुङ्कुम तथा धूप, दीप आदि अनेक उपचारों तथा नाना प्रकारके नैवेद्योंसे शिवाका पूजन करके नमस्कार करनेके पश्चात् साधक शिवजीके समीप जाय। यथासम्भव अपने घरमें मिट्टी, सोना, चाँदी, धातु या अन्य पारे आदिकी शिव-प्रतिमा बनाये और उसे नमस्कार करके भक्तिपरायण हो उसकी पूजा करे। उसकी पूजा हो जानेपर सभी देवता पूजित हो जाते हैं।

मिट्टीका शिवलिङ्ग बनाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना करे। अपने घरमें रहनेवाले लोगोंको स्थापनासम्बन्धी सभी नियमोंका सर्वथा पालन करना चाहिये। भूतशुद्धि एवं मातृकान्यास करके प्राणप्रतिश्वाकरे। शिवालयमें दिक्पालों-की भी स्थापना करके उनकी पूजा करे। घरमें सदा मूलमन्त्र-का प्रयोग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये। वहाँ द्वारपालों-के पूजनका सर्वथा नियम नहीं है। भगवान् शिवके समीप ही अपने लिये आसनकी व्यवस्था करे। उस समय उत्तराभिमुख बैठकर फिर आचमन करे, उसके बाद दोनों हाथ जोड़कर तद् प्राणायाम करे। प्राणायामकालमें मनुष्यको मूलमन्त्रकी दस आवृत्तियाँ करनी चाहिये। हाथोंसे पाँच मुद्राएँ दिखाये। यह पूजाका आवश्यक अङ्ग है। इन मुद्राओंका प्रदर्शन करके ही मनुष्य पूजा-विधिका अनुसरण करे। तदनन्तर वहाँ दीप निषेद्ध करके गुरुको नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन वाँधकर बैठे अथवा उत्तानासन या पर्यङ्कसनका आश्रय लेकर सुखपूर्वक बैठे और पुनः पूजनका प्रयोग करे। फिर अर्वपात्रसे उत्तम शिवलिङ्गका प्रक्षालन

करे। मनको भगवान् शिवसे अन्यत्र न ले जाकर पूजा-सामग्रीको अपने पास रखकर निमाङ्कित मन्त्रसमूहसे महादेव जीका आवाहन करे।

### आवाहन

कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम् ॥ ४३ ॥  
यथोक्तरुपिणं शरभुं निर्गुणं गुणरूपिणम् ।  
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं वृपभध्वजम् ॥ ४४ ॥  
कर्पूरगोरं दिव्याङ्गं चन्द्रमांलिं कपर्दिनम् ।  
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्मांवरं शुभम् ॥ ४५ ॥  
वासुक्यादिपरीताङ्गं पिताकाद्यायुधान्तिम् ।  
सिंद्योदघों च यस्याद्ये नृत्यन्तीह निरन्तरम् ॥ ५० ॥  
जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुञ्जकैः ।  
तेजसा दुस्सहैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम् ॥ ५१ ॥  
शरण्यं सर्वसत्त्वानां प्रसन्नमुखपङ्कजम् ।  
वेदैः शास्त्रैर्यथागीतं विष्णुवस्तुतं सदा ॥ ५२ ॥  
भक्तवत्सलमानन्दं शिवमावाहयाम्यहम् ।

( अध्याय ८ )

‘जो कैलासके शिखरपर निवास करते हैं, पार्वतीदेवी पति हैं, समस्त देवताओंसे उत्तम हैं, जिनके स्वरूपका शब्द यथावत् वर्णन किया गया है, जो निर्गुण होते हुए एवं गुणरूप है, जिनके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुख मण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं, जिनकी ध्यापर वृपमका लिंग अङ्कित है, अङ्ककान्ति कर्पूरके समान गौर है, जो दिव्य धारी, चन्द्रमालपी मुकुटसे सुशोभित तथा सिरपर जयद्वारण करनेवाले हैं, जो हाथीकी खाल पहनते और व्यक्ति ओढ़ते हैं, जिनका स्वरूप शुभ है, जिनके अङ्गोंमें वर्ण आदि नाग लिपें रहते हैं, जो पिनाक आदि आयुध धार करते हैं, जिनके आगे आठों सिद्धियाँ निरन्तर नृत्य करती हैं, भक्तसमुदाय जय-जयकार करते हुए जिनकी सेवा लगे रहते हैं, दुस्सह तेजके कारण जिनकी धोर देखा कठिन है, जो देवताओंसे सेवित तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको दृष्टि देनेवाले हैं, जिनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है, घोड़ों और शास्त्रोंने जिनकी महिमाका यथावत् गान किया है, विष्णु और ब्रह्मा भी सदा जिनकी सुन्ति करते हैं तथा उपरमानन्दस्वरूप हैं, उन भक्तवत्सल शम्भु शिवका मैं भावांकरता हूँ।’



इस प्रकार साम्य शिवका ध्यान करके उनके लिये आसन । चतुर्थन्त पदसे ही क्रमशः सब कुछ अर्पित करे ( यथा—म्याय सदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि—इत्यादि ) । गमनये पश्चात् भगवान् शंकरको पाद और अर्थ दे । फिर उमर्मा शम्भुको आचमन कराकर पञ्चमूत्रसम्बन्धी द्रव्यों-शरा प्रसन्नतापूर्वक शंकरको स्नान कराये । वेदमन्त्रों अथवा अमन्त्रक चतुर्थन्त नामपदोंका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक प्रधारण समस्त द्रव्य भगवान्को अर्पित करे । अभीष्ट द्रव्यको शंखरके ऊपर चढ़ाये । फिर भगवान् शिवको गण्ड-स्नान कराये । स्नानके पश्चात् उनके श्रीअङ्गोंमें उग्नित चन्दन तथा अन्य द्रव्योंका यल्पूर्वक लेप करे । फिर उग्नित जलसे ही उनके ऊपर जलधारा गिराकर अभिषेक करे । घटमन्त्रों, पठ्ठों अथवा शिवके न्यारह नामोद्घारा द्विप्राप्तामा जलधारा चढ़ाकर वहसे शिवलिङ्गको अच्छी तरह भिजे । ऐसे अचम्नापूर्वक जल दे और वहसे समस्तिं बरो । नाना द्रव्यों-शरा भगवान् शिवसी तिल, जौ, गेहूँ, दूँग और इन अन्योंपरे । फिर पाँच दुखघालं परमात्मा शिवको इन अन्योंपरे । प्रत्येक मुखरर रक्षनके धनुलार कभीचिह्न अनिष्टिक नहीं देते, रक्षनके दहुपुष्प, कुमुदुप्स, धनुरु, इन अन्य द्रव्योंपर ( गूम ), दलभीदल तथा विलापन चढ़ाकर

पराभक्तिके साथ भक्तवत्सल भगवान् शंकरकी विशेष पूजा करे । अन्य सब वस्तुओंका अभाव होनेपर शिवको केवल विलापन ही अर्पित करे । विलापन समर्पित होनेसे ही शिवकी पूजा सफल होती है । तत्पश्चात् सुगन्धित चूर्ण तथा सुवासित उत्तम तैल ( इत्र आदि ) विविध वस्तुएँ वडे हार्षके साथ भगवान् शिवको अर्पित करे । फिर प्रसन्नतापूर्वक गुग्गुल और अगुरु आदिकी धूप निवेदन करे । तदनन्तर शंकरजीको धीसे वरा हुआ दीपक दे । इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुनः अर्थ दे और भावभक्तिसे बलाद्वारा उनके मुखका मार्जन करे ।

### अर्व्यमन्त्र

रुपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शंकर ।  
भुक्तिसुक्तिफलं देहि गृहीत्वार्थं नमोऽस्तु ते ॥

‘प्रभो ! शंकर ! आपको नमस्कार है । आप इस अर्वको स्वीकार करके मुझे रूप दीजिये, यथा दीजिये, भोग दीजिये तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान कीजिये ।’

इसके बाद भगवान् शिवको भौति-भौतिके उत्तम नैवेद्य अर्पित करे । नैवेद्यके पश्चात् प्रेमपूर्वक आचमन कराये । तदनन्तर साङ्गोपाङ्ग ताम्बूल वनाकर शिवको समर्पित करे । फिर पाँच वस्तीकी आरती वनाकर भगवान्को दिखाये । उसकी संख्या इस प्रकार है—पैरोंमें चार बार, नाभिमण्डलके सामने दो बार, मुखके समझ एक बार तथा सर्पूर्ण अङ्गोंमें सात बार आरती दिखाये । तत्पश्चात् नाना प्रकारके स्तोत्रोद्घारा प्रेमपूर्वक भगवान् द्वृष्टभृजकी सुति करे । तदनन्तर धीरे-धीरे शिवकी परिक्रमा करे । परिक्रमाके बाद भक्त पुरुष पाण्डुलिपि प्रणाम करे और निम्नाङ्कित मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुष्पाङ्गालि दे—

### पुष्पाङ्गलिमन्त्र

अन्नानाथादि वा शानाथयत्पूजादिकं गवा ।  
कृतं तदस्तु सफलं हृपया तत्र शंकर ॥  
तावकस्त्वद्वत्प्राणस्त्वद्वित्तोऽहं सदा मृड ।  
दृति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसीद ने ॥  
भूर्मी स्वलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।  
त्वयि जातापराधानां त्वनेव दरणं प्रसाद ॥

( अथवा १३ )

‘शंकर ! मैंने भद्रनके का जल-धूसार दे दृढ़न भासि किया है, वह आपकी दृप्ति दृढ़न है । मृड़ , मैं आपना हूँ, मैंने प्राण द्वारा भासि कर दृढ़ है, मैंने दृप्ति दृढ़ दृढ़ ही किनारे रखा है—ऐसा जाहर है मैंने दृढ़ ! नैवेद्य : अब सुमस्त दृप्ति दृढ़ है । त्रयी : भक्तवत्सल ।

पैर लड़खड़ा जाते हैं, उनके लिये भूमि ही सहार है; उसी प्रकार जिन्हेंने आपके प्रति अपराध किये हैं, उनके लिये भी आप ही शरणदाता हैं।'

—इत्यादि रूपसे बहुत-बहुत प्रार्थना करके उत्तम विधिसे पुष्टाङ्गलि अर्पित करनेके पश्चात् पुनः भगवान्को नमस्कार करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे विसर्जन करना चाहिये।

### विसर्जन

स्वस्थानं गच्छ देवेश परिवारयुतः प्रभो ।  
पूजाकाले पुनर्नाथ त्वयाऽगन्तव्यमादरात् ॥

‘देवेश्वर प्रभो! अब आप परिवारमहित अपने स्थाने पथरें। नाथ! जब पूजाका समय हो, तब पुनः आप वहाँ यहाँ पदार्पण करें।’

इस प्रकार भक्तवत्सल दंकरकी वारंवार प्रार्थना जड़े उनका विसर्जन करे और उस जलको अपने हृदयमें लाने तथा मस्तकपर चढ़ाये।

ऋग्यियो! इस तरह मैंने शिवपूजनकी सारी विधि की, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है। अब और क्या दुन चाहते हो? ( अध्याय ११ )

### विभिन्न पूजों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य

**ब्रह्माजी बोले**—नारद! जो लक्ष्मीप्राप्तिकी इच्छा करता है, वह कमल, विल्वपत्र, शतपत्र और शङ्खपुष्टसे भगवान् शिवकी पूजा करे। ब्रह्मन्! यदि एक लाखकी संख्यामें इन पुष्टोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा सम्भव हो जाय तो सारे पापोंका नाश होता है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन पुरुषोंने वीस कमलोंका एक प्रस्तु बताया है। एक सहस्र विल्वपत्रोंको भी एक प्रस्तु कहा गया है। एक सहस्र शतपत्रसे आधे प्रस्तुकी परिभाषा की गयी है। सोलह पलोंका एक प्रस्तु होता है और दस टक्कोंका एक पल। इनी मानसे पत्र, पुष्ट आदिको तौलना चाहिये। जब पूर्वोक्त संख्यावाले पुष्टोंसे शिवकी पूजा हो जाती है, तब सकाम पुरुष अपने सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। यदि उपासकके मनमें कोई कामना न हो तो वह पूर्वोक्त पूजनसे शिवस्वरूप हो जाता है।

मृत्युञ्जय मन्त्रका जब पाँच लाख जप पूरा हो जाता है, तब भगवान् शिव प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। एक लाखके जपसे शरीरकी शुद्धि होती है, दूसरे लाखके जपसे पूर्वजन्मकी वातोंका स्वरण होता है, तीसरा लाख पूर्ण होनेपर सम्पूर्ण काम्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। चौथे लाखका जप होनेपर स्वस्थमें भगवान् शिवका दर्शन होता है और पाँचवें लाखका जप व्यों ही पूरा होता है, भगवान् शिव उपासकके सम्मुख तत्काल प्रकट हो जाते हैं। इसी मन्त्रका दस लाख जप हो जाय तो सम्पूर्ण फलकी सिद्धि होती है। जो मोक्षकी अभिलाषा रखता है, वह ( एक लाख ) दर्भोद्वारा शिवका पूजन करे। मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र लाखकी ही संख्या समझनी चाहिये। आयुकी

इच्छावाला पुरुष एक लाख दूर्वाओंद्वारा पूजन करने जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह धतूरेके एक लाख फूलोंपूजा करे। लाल डंठलवाला धतूरा पूजनमें शुभदायक हो गया है। अगस्त्यके एक लाख फूलोंसे पूजा करने पुरुषको महान् यशकी प्राप्ति होती है। यदि तुलसीलं शिवकी पूजा करे तो उपासकको भोग और मोक्ष दोनों दुन होते हैं। लाल और सफेद आक, अपामार्ग और कमलके एक लाख फूलोंद्वारा पूजा करनेसे भी उसीके ( भोग और मोक्ष ) की प्राप्ति होती है। जपा ( अङ्गहुल ) एक लाख फूलोंसे की हुई पूजा शत्रुओंको मृत्यु देनेवाली होती है। करघीरके एक लाख फूल यदि शिवपूजके उपयोगमें लाये जायें तो वे यहाँ रोगोंका उच्चाटन करनेवाले होते हैं। बन्धुक ( दुष्प्रसिद्धि ) के फूलोंद्वारा पूजन करने अभूषणकी प्राप्ति होती है। चमेलीसे शिवकी पूजा की मनुष्य वाहनोंको उपलब्ध करता है, इसमें संशय नहीं है। अलसीके फूलोंसे महादेवजीका पूजन करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुको प्रिय होता है। शमीपत्रोंसे पूजा करके मनुष्य के प्राप्त कर लेता है। बेलाके फूल चढ़ानेपर भगवान् यि अस्त्वन्त शुभलक्षण पक्षी प्रदान करते हैं। जूहोंके फूलोंकी जाय तो धरमें कभी अन्नकी कमी नहीं होती। कलं फूलोंसे पूजा करनेपर मनुष्योंको वस्त्रकी प्राप्ति होती। सेहुआरि या शेफालिकाके फूलोंसे शिवका पूजन किया तो मन निर्मल होता है। एक लाख विल्वपत्र चढ़ानेमें मनुष्य अपनी सारी काम्य वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है। शक्ति हार ( हरसिंगार )के फूलोंसे पूजा करनेपर सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है।

है। वर्तमान श्रुतुमें पैदा होनेवाले फूल यदि शिवकी सेवामें समर्पित किये जायें तो वे मोक्ष देनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है। राईके फूल शत्रुओंको मरत्यु प्रदान करनेवाले होते हैं। इन फूलोंको एक-एक लाखकी संख्यामें शिवके ऊपर चढ़ाया जाय तो भगवान् शिव प्रचुर फल प्रदान करते हैं। चमा और केवड़ोंको छोड़कर शेष सभी फूल भगवान् शिवको चढ़ाये जा सकते हैं।

विष्वधर ! महादेवजीके ऊपर चावल चढ़ानेसे मनुष्योंकी लक्ष्मी वढ़ती है। ये चावल अखण्डित होने चाहिये और इन्हे उत्तम भक्तिभावसे शिवके ऊपर चढ़ाना चाहिये। रुद्रप्रधान मन्त्रसे पूजा करके भगवान् शिवके ऊपर बहुत सुन्दर चम्र चढ़ाये और उसीपर चावल रखकर समर्पित करे तो उत्तम है। भगवान् शिवके ऊपर गन्ध, पुण्य आदिके साथ एक श्रीफल चढ़ाकर धूप आदि निवेदन करे तो पूजाका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। वहाँ शिवके समीप वारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इससे मन्त्रपूर्वक साङ्घोपाङ्ग लक्ष पूजा सम्पन्न होती है। जहाँ सौ मन्त्र जपनेकी विधि हो, वहाँ एक सौ आठ मन्त्र जपनेका विधान किया गया है। तिलोंद्वारा शिवजीको एक लाख आहुतियाँ दी जायें अथवा एक लाख तिलोंसे शिवकी पूजा की जाय तो वह वडे-वडे पातकोंका नाश करनेवाली होती है। जीद्वारा वी हुई शिवकी पूजा स्वर्गीय सुखकी वृद्धि करनेवाली है, ऐसा भृपियोंका कथन है। गेहूँके बने हुए पकवानसे की हुई शंकरजीकी पूजा निश्चय ही बहुत उत्तम मानी गयी है। यदि उससे लाख वार पूजा हो तो उससे संतानकी वृद्धि होती है। यदि कोई नपुंसकताको प्राप्त हो तो वह धीसे शिवजीकी भलीभौति पूजा करे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। साथ ही उसके लिये मुनीश्वरोंने ग्राजापत्य व्रतका भी विधान किया है। यदि वृद्धि जड हो जाय तो उस अवस्थामें पूजको केवल शर्करामिश्रित दुधकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर उसे वृहस्पतिके समान उत्तम वृद्धि प्राप्त हो जाती है। जबतक दस हजार मन्त्रोंका जप पूरा न हो जाय, तबतक पूर्णोऽस्तु दुधधाराद्वारा भगवान् शिवका उत्कृष्ट पूजन चालू रखना चाहिये। जब तनमनमें अकारण ही उच्चाटन होने लगे—जी उच्चट जाय, कहीं भी प्रेस न रहे, दुःख वड़ जाय और अपने परमें सदा कलह रहने लगे, तब पूर्वोक्तरूपसे दूधकी धारा चढ़ानेसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है। सुयानित तेलसे पूजा करनेपर भोगोंकी वृद्धि होती है। यदि मधुसे शिवकी पूजा की जाय तो राजत्रयमात्रा रोग दूर हो जाता है। यदि शिवर इनके रसकी धारा चढ़ायी जाय तो वह भी नम्रवा आनन्दकी प्राप्ति करनेवाली होती है। गङ्गाकल्पकी धारा तो भोग और भोव्य दोनों कल्पको देनेवाली है। वे सब जै-जौ धारणाएँ वतायी गयी हैं; इन नवको मृत्युजयमन्त्रसे चढ़ाना चाहिये, उनमें भी उक्त मन्त्रसे विशानुक: दत्त हजार जप करना चाहिये और न्याय द्रावदोंके भोजन करना चाहिये। (अन्तम् १५)

भक्तिभावसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करके भक्तोंको पीछे जलधारा समर्पित करना चाहिये। ज्वरमें मनुष्य जो प्रलयप करने लगता है, उसकी शान्तिके लिये जलधारा शुभकारक वतायी गयी है। शतरुद्रिय मन्त्रसे, रुद्रीके ध्यारह पठोसे, रुद्रमन्त्रोंके जपसे, पुरुषसूक्तसे, छः शृङ्गाचाले रुद्ररूपसे, महामृत्युजयमन्त्रसे, गायत्रीमन्त्रसे अथवा शिवके शास्त्रोक्त नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर बने हुए मन्त्रोद्वारा जलधारा आदि अर्पित करनी चाहिये। सुख और संतानकी वृद्धिके लिये जलधाराद्वारा पूजन उत्तम वताया गया है। उत्तम भस्म धारण करके उपासकको प्रेमपूर्वक नामा प्रकारके शुभ एवं दिव्य द्रव्योद्वारा शिवकी पूजा करनी चाहिये और शिवपर उनके सहस्रनाम मन्त्रोंसे धीकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर वंशका विस्तार होता है, इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार यदि दस हजार मन्त्रोद्वारा शिवजीकी पूजा की जाय तो प्रमेह रोगकी शान्ति होती है और उपासकको भनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई नपुंसकताको प्राप्त हो तो वह धीसे शिवजीकी भलीभौति पूजा करे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। साथ ही उसके लिये मुनीश्वरोंने ग्राजापत्य व्रतका भी विधान किया है। यदि वृद्धि जड हो जाय तो उस अवस्थामें पूजको केवल शर्करामिश्रित दुधकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर उसे वृहस्पतिके समान उत्तम वृद्धि प्राप्त हो जाती है। जबतक दस हजार मन्त्रोंका जप पूरा न हो जाय, तबतक पूर्णोऽस्तु दुधधाराद्वारा भगवान् शिवका उत्कृष्ट पूजन चालू रखना चाहिये। जब तनमनमें अकारण ही उच्चाटन होने लगे—जी उच्चट जाय, कहीं भी प्रेस न रहे, दुःख वड़ जाय और अपने परमें सदा कलह रहने लगे, तब पूर्वोक्तरूपसे दूधकी धारा चढ़ानेसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है। सुयानित तेलसे पूजा करनेपर भोगोंकी वृद्धि होती है। यदि मधुसे शिवकी पूजा की जाय तो राजत्रयमात्रा रोग दूर हो जाता है। यदि शिवर इनके रसकी धारा चढ़ायी जाय तो वह भी नम्रवा आनन्दकी प्राप्ति करनेवाली होती है। गङ्गाकल्पकी धारा तो भोग और भोव्य दोनों कल्पको देनेवाली है। वे सब जै-जौ धारणाएँ वतायी गयी हैं; इन नवको मृत्युजयमन्त्रसे चढ़ाना चाहिये, उनमें भी उक्त मन्त्रसे विशानुकः दत्त हजार जप करना चाहिये और न्याय द्रावदोंके भोजन करना चाहिये। (अन्तम् १५)

### सृष्टिका वर्णन

**तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी बोले—**  
 मुने ! हमें पूर्वोक्त आदेश देकर जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये, तब मैं उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ध्यान-गमन हो कर्तव्यका विचार करने लगा । उस समय भगवान् शंकरको नमस्कार करके श्रीहरिसे ज्ञान पाकर परमानन्दको प्राप्त हो मैंने सृष्टि करनेका ही निश्चय किया । तात ! भगवान् विष्णु भी वहाँ सदाशिवको प्रणाम करके मुझे आवश्यक उपदेश दे तत्काल अदृश्य हो गये । वे ब्रह्माण्डसे बाहर जाकर भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करके वैकुण्ठ-धाममें जा पहुँचे और सदा वहाँ रहने लगे । मैंने सृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिव और विष्णुका स्वरण करके पहलेके रचे हुए जलमें अपनी अङ्गलि ढालकर जलको ऊपरकी ओर उछाला । इससे वहाँ एक अण्ड प्रकट हुआ, जो चौबीस तत्त्वोंका समूह कहा जाता है । विप्रवर ! वह विराट् आकारवाला अण्ड जड़रूप ही था । उसमें चेतनता न देखकर मुझे बड़ा संशय हुआ और मैं अत्यन्त कठोर तप करने लगा । बारह वर्षोंतक भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहा । तात ! वह समय पूर्ण होनेपर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेमसे मेरे अङ्गोंका स्वर्ण करते हुए मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

**श्रीविष्णुने कहा—ब्रह्मन् । तुम वर माँगो । मैं प्रसन्न हूँ । मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है । भगवान् शिवकी कृपासे मैं सब कुछ देनेमें समर्थ हूँ ।**

**ब्रह्मा बोले—**( अर्थात् मैंने कहा—) महाभाग ! आपने जो मुझपर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ही है; क्योंकि भगवान् शंकरने मुझे आपके हाथोंमें सौंप दिया है । विष्णो ! आपको नमस्कार है । आज मैं आपसे जो कुछ माँगता हूँ, उसे दीजिये । प्रभो ! यह विराट्-रूप चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ अण्ड किसी तरह चेतन नहीं हो रहा है, जड़ीभूत दिखायी देता है । हरे ! इस समय भगवान् शिवकी कृपासे आप वहाँ प्रकट हुए हैं । अतः शंकरकी सृष्टि-शक्ति या विभूतिसे प्राप्त हुए इस अण्डमें चेतनता लाइये ।

मेरे ऐसा कहनेपर शिवकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले महाविष्णुने अनन्तरूपका आश्रय ले उस अण्डमें प्रवेश किया । उस समय उन परम पुरुषके सहस्रों भस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर थे । उन्होंने भूमिको सब ओरसे धेरकर उस अण्डको व्याप्त कर लिया । मेरे द्वारा भलीभाँति सृति की जानेपर जब श्रीविष्णुने उस अण्डमें प्रवेश किया, तब वह चौबीस तत्त्वोंका विकाररूप अण्ड सचेतन हो गया । पातालसे लेकर सत्यलोक-तककी अवधिवाले उस अण्डके रूपमें वहाँ साक्षात् श्रीहरि ही विराजने लगे । उस विराट् अण्डमें व्यापक होनेसे ही वे

प्रभु 'वैराज पुरुष' कहलाये । पञ्चमुख महादेवने केवल अपने रहनेके लिये गुरम्य कल्याण-नगरम् निर्माण किया, जो अलोकोंसे ऊपर सुशोभित होना है । देवर्ण ! समर्पण ब्रह्माण्डम् नाश हो जानेपर भी वैकुण्ठ और कैलास—इन दो धारोंमें यहाँ कभी नाश नहीं होता । मुनिश्रेष्ठ ! मैं सत्यलोका आश्रय लेकर रहता हूँ । तात ! महादेवजीकी आज्ञासे ही मुझमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है । वेदा ! जब सृष्टिकी इच्छासे चिन्तन करने लगा, उस समय पहले मुझ अनजानमें ही पापपूर्ण तमोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुय जिसे अविद्या-पञ्चक ( अथवा पञ्चपर्वा अविद्या ) कहते हैं तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर शम्भुकी आज्ञासे मैं फुअनासक भावसे सृष्टिका चिन्तन करने लगा । उस रूप मेरे द्वारा स्थावर-संज्ञक वृक्ष आदिकी सृष्टि हुई जिसे मुख्य-सर्ग कहते हैं । ( वह पहला सर्ग है । ) उसे देखतथा वह अपने लिये पुरुषार्थका साधक नहीं है, यह जाति सृष्टिकी इच्छावाले मुझ ब्रह्मासे दूसरा सर्ग प्रकट हुय जो दुःखसे भरा हुआ है; उसका नाम है—तिर्यक्षोत्ती वह सर्ग भी पुरुषार्थका साधक नहीं था । उसे भी पुरुषा साधनकी शक्तिसे रहित जान जब मैं पुनः सृष्टिका चिन्तन करने लगा, तब मुझसे शीघ्र ही तीसरे साल्विकसर्गका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'जर्ध्यस्तोता' कहते हैं । यह देवसर्गके नाम विख्यात हुआ । देवसर्ग सत्यवादी तथा अत्यन्त सुखद है । उसे भी पुरुषार्थसाधनकी सृचि एवं व्यधिकारसे रही मानकर मैंने अन्य सर्गके लिये अपने स्वामी श्रीशिवका चिन्ता आरम्भ किया । तब भगवान् शंकरकी आज्ञासे एक रजेणु सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अर्वाक्षोत्ता कहा गया है । इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं, जो पुरुषार्थ-साधनके ऊंच अधिकारी हैं । तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे भूत आदिसे सृष्टि हुई । इस प्रकार मैंने पाँच तरहकी वैकृत सृष्टिका वर्णन किया है । इनके सिवा तीन प्राकृत सर्ग भी कहे गये हैं जो मुझ ब्रह्माके सांनिध्यसे प्रकृतिसे ही प्रकट हुए हैं । इन पहला महत्त्वका सर्ग है, दूसरा सूक्ष्म भूतों अपार तन्मात्राओंका सर्ग है और तीसरा वैकारिकसर्ग कहलाता है । इस तरह ये तीन प्राकृत सर्ग हैं । प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकारके सर्गोंको मिलानेसे आठ सर्ग होते हैं । इनके लिये नवाँ कौमारसर्ग है, जो प्राकृत और वैकृत भी है । इन सर्गों अवान्तर भेदका मैं वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि उसका उपयोग बहुत थोड़ा है ।

१. पञ्च, पक्षी आदि तिर्यक्षोत्ता कहलाते हैं । वायुकी भौति तिरछा चलनेके कारण ये तिर्यक् अथवा 'तिर्यक्षोत्ता' कहे गये हैं ।

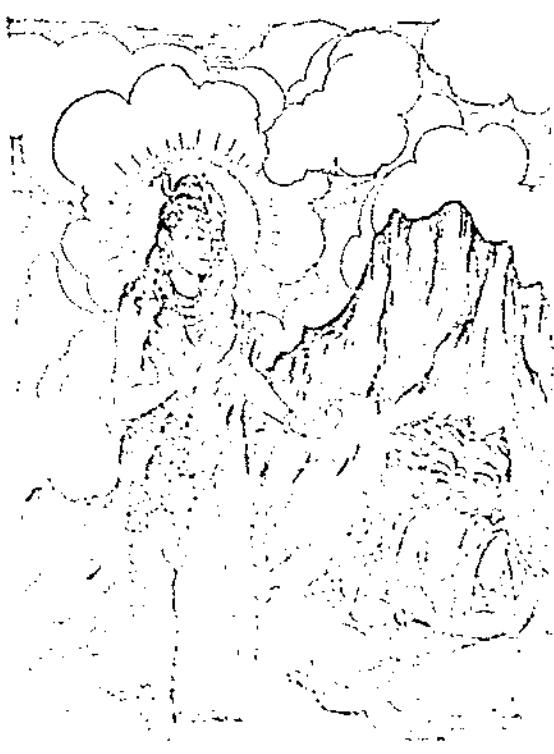
अब द्विजात्मक सर्गका प्रतिपादन करता हूँ। इसीका दूसरा नाम कौमारसर्ग है, जिसमें सनक-सनन्दन आदि कुमारोंकी महत्वपूर्ण सुष्ठु हुई है। सनक आदि मेरे चार भानय पुत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके ही समान हैं। वे महान् वेराघ्यसे सम्पन्न तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हुए। उनका मन सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें ही लगा रहता है। वे संगारसे विमुख एवं ज्ञानी हैं। उन्होंने मेरे आदेश देनेपर भी सुष्ठुके कार्यमें मन नहीं लगाया। मुनिश्रेष्ठ नारद ! अमकादि कुमारोंके दिये हुए नकारात्मक उत्तरको मुनकर मैंने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया। उस समय मुशपर मोह छा गया। उस अवसरपर मैंने मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण किया। वे शीघ्र ही आ गये और उन्होंने समक्षाते हुए मुझसे कहा—‘तुम भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करो।’ मुनिश्रेष्ठ ! श्रीहरिने जब मुझे के ऐसी शिक्षा दी, तब मैं महावीर एवं उत्कृष्ट तप करने लगा। मैं सुष्ठुके लिये तपस्या करते हुए मेरी दोनों भाँहों और नाहिक्षके मध्यभागसे, जो उनका अपनाही अविमुक्त नामक स्थान है, महेश्वरकी तीन मूर्तियोंमेंसे अन्यतम पूर्णोदा, सर्वेश्वर एवं दयालागर भगवान् शिव अर्वनारीश्वररूपमें प्रकट हुए।

जो जन्मसे रहित, तेजकी राशि, सर्वज्ञ तथा सर्वस्त्रष्टा हैं, उन नीलल्येहित-नामधारी साक्षात् उमावल्लभ शंकरको सामने देख बड़ी भक्तिसे मस्तक छुका उनकी सुति करके मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उन देवदेवेश्वरसे बोला—‘प्रभो ! आप भौति-भौतिके जीवोंकी सुष्ठु कीजिये।’ मेरी यह बात सुनकर उन देवाधिदेव महेश्वर रुद्रने अपने ही समान बहुत-से रुद्रगणोंकी सुष्ठु की। तब मैंने अपने स्वामी महेश्वर महा-



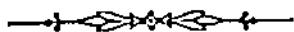
रुद्रसे फिर कहा—‘देव ! आप ऐसे जीवोंकी सुष्ठु कीजिये, जो जन्म और मृत्युके भवते उक अदोभन जीदोंकी सुष्ठु नहीं करेगा। क्योंकि दे कसोंके अधीन हो दुःखके कहुद्वारे दूदे रहेंगे। मैं को हुम्हारे नगरमें हूदे हुए उन जीवोंका उड़ानगाम रहैगा, युद्ध के लड़ाक जाने उनमें नहीं रुद्रगण।

महादेवजीने कहा—‘यिवानः ! मैं जन्म और मृत्युके भवते उक अदोभन जीदोंकी सुष्ठु नहीं करैगा। क्योंकि दे कसोंके अधीन हो दुःखके कहुद्वारे दूदे रहेंगे। मैं को हुम्हारे नगरमें हूदे हुए उन जीवोंका उड़ानगाम रहैगा, युद्ध के लड़ाक जाने उनमें नहीं रुद्रगण।



उन सबको संसार-सागरसे पार करूँगा । प्रजापते ! दुःखमें दूषे हुए सारे जीवकी सुष्टि तो तुम्हीं करो । मेरी आज्ञासे इस कार्यमें प्रवृत्त होनेके कारण तुम्हें माया नहीं वाँध सकेगी ।

मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान् भगवान् नीललोहि महादेव मेरे देखते-देखते अपने पार्वदोंके साथ वहाँसे तक्षण तिरोहित हो गये । ( अध्याय १५ )



## स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी, ऋषियोंकी तथा दक्षकन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्त्वाका प्रतिपादन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मैंने शब्द-तन्मात्रा आदि सूक्ष्मभूतोंको स्वयं ही पञ्चीकृत करके अर्थात् उन पाँचोंका परस्पर सम्मिश्रण करके उनसे स्थूल आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीकी सुष्टि की । पर्वतों, समुद्रों और वृक्षों आदिको उत्पन्न किया । कलासे लेकर युगपर्यन्त जो काल-विभाग हैं, उनकी रचना की । मुने ! उत्पत्ति और विनाश-बाले और भी बहुतसे पदार्थोंका मैंने निर्माण किया । परंतु इससे मुझे संतोष नहीं हुआ । तब साम्ब शिवका ध्यान करके मैंने साधनपरायण पुरुषोंकी सुष्टि की । अपने दोनों नेत्रोंसे मरीचिको, हृदयसे भगुको, सिरसे अङ्गिराको, व्यानवायुसे मुनिश्रेष्ठ पुलहको, उदानवायुसे पुलस्त्यको, समानवायुसे वसिष्ठको, अपानसे क्रतुको, दोनों कानोंसे अचिको, प्राणोंसे दक्षको, गोदसे तुमको, छायासे कर्दम मुनिको तथा संकल्पसे समस्त साधनोंके साधन धर्मको उत्पन्न किया । मुनिश्रेष्ठ ! इस तरह इन उत्तम साधकोंकी सुष्टि करके महादेवजीकी दृष्टि से मैंने अपने आपको कृतार्थ माना । तात ! तत्पश्चात् संकल्पसे उत्पन्न हुए धर्म मेरी आज्ञासे मानवरूप धारण करके साधकोंकी प्रेरणासे साधनमें लग गये । इसके बाद मैंने अपने विभिन्न अङ्गोंसे देवता, असुर आदिके रूपमें असंख्य पुत्रोंकी सुष्टि करके उन्हें भिन्न-भिन्न शरीर प्रदान किये । मुने ! तदनन्तर अन्तर्यामी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके मैं दो रूपवाला हो गया । नारद ! अधे शरीरसे मैं ऊँ हो गया और अधेरे पुरुष ।



उस पुरुषने उस लीके गर्भसे सर्वसाधनसमर्थ उत्तम जीव उत्पन्न किया । उस जोड़ेमें जो पुरुष था, वही स्वायम्भुव मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ । स्वायम्भुव मनु उच्चकोटिके साथ हुए तथा लो ल्ली हुई, वह शतरूपा कहलायी । वह योगी एवं तपस्विनी हुई । तात ! मनुने वैवाहिक विधि असुर सुन्दरी शतरूपाका पाणिग्रहण किया और उससे वे मैथुनजिनी सुष्टि उत्पन्न करने लगे । उन्होंने शतरूपासे प्रियत्रत वाले उत्तानपाद नामक दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं । कन्याओंके नाम थे—आकूति, देवहूति और प्रसूति । मूले आकूतिका विवाह प्रजापति सचिके साथ किया । मशली फूँ-

देवहृति कर्दमको व्याह दी और उत्तानपादकी सबसे छोटी वहिन प्रगृहि प्रजापति दक्षको दे दी । उनकी संतान-परम्पराओंसे समस्त चराचर जगत् व्यास है ।

दक्षिणे आकृतिके गर्भसे यज्ञ और दक्षिणा नामक रुदी-  
पुरुषवा जोड़ा उत्पन्न हुआ। यज्ञके दक्षिणासे आरह पुत्र हुए।  
मुने ! कर्दमद्वारा देवहृतिके गर्भसे ब्रह्मत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न  
हुईं। दक्षके प्रसुतिसे चौबीस कन्याएँ हुईं। उनमेंसे अद्वा  
आदि तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने धर्मके साथ कर दिया।  
मुनीश्वर ! धर्मकी उन पवित्रियोंके नाम मुनो—अद्वा, लक्ष्मी,  
पृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति,  
सिद्धि और कीर्ति—ये सब तेरह हैं। इनसे छोटी जो शेष  
आरह मुलोचना कन्याएँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—  
ख्याति, सती, सम्भूति, सृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनसूया,  
कर्जा, स्वाहा तथा स्वधा। भृगु, दिव, मरीचि, अङ्गिरा  
मुनि, पुलस्त्य, पुलह, मुनिश्रेष्ठ कठु, अञ्जि, वसिष्ठ, अग्नि और  
पितरोंने क्रमशः इन ख्याति आदि कन्याओंका पाणिग्रहण  
किया। भृगु आदि मुनिश्रेष्ठ साधक हैं। इनकी संतानोंसे  
चराचर प्राणियोंसहित सारी त्रिलोकी भरी हुई है।

इस प्रकार अस्थिकापति महादेवजीकी आशासे अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार वहुत-से प्राणी असंख्य श्रेष्ठ हिंडीके रूपमें उत्पन्न हुए। कल्पभेदसे दक्षके साठ कन्याएँ वतावी गयी हैं। उनमेंसे दस कन्याओंका विवाह उन्होंने धर्मके साथ किया। यत्तदैश्वर्य कन्याएँ चन्द्रमाको ज्याह दीं और विधिर्वृद्धक तेरह कन्याओंद्वारा एथ दक्षने कवशपके हाथमें दे दिये। नारद ! उन्होंने चार कन्याएँ श्रेष्ठ रूपवाले तार्ह्य (अरिष्टनेमि) को विवाह दीं तथा भृगु, अङ्गिरा और कुशाश्वरको दो-दो कन्याएँ विवर्तित कीं। उन स्त्रियोंसे उनके पतियोंद्वारा वहुत-खुल्क भराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। मुनिश्रेष्ठ ! दक्षने महात्मा दसरसरों जिन तेरह कन्याओंका विधिर्वृद्धक दान दिया है, उनकी संतानोंते सारी त्रिलोकी व्याप्त है। स्याचर पैर बंगम कोई भी लौटे ऐसी नहीं है, जो कश्चन्पन्नी

५ यदादत्तनुमारको भगवान् शिवकी कृपासे कुवेरप  
६ स्तरजी पहलने हैं—कुनीश्वरे ! इत्तमीयी यह दात  
७ देवता नारदनीनि लिप्तरर्द्धक उन्हों प्रभाम किंवा और एक  
८ है—कुनीश्वर ! भगवान् शिव भगवान् शंकर देवता पर्वतर  
९ है वह एक महाज्ञ द्वैरेक लाघ उन्हीं भेदी यह एक

संतानोंसे शून्य हो । देवता, भूमि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा तृण-लता आदि सभी कश्यपपत्नियोंसे पैदा हुए हैं । इस प्रकार दक्ष-कन्याओंकी संतानोंसे सारा चराचर जगत् व्याप्त है । पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड निश्चय ही उनकी संतानोंसे सदा भरा रहता है, कमी खाली नहीं होता ।

इस तरह भगवान् शंकरकी आज्ञासे व्रह्णाजीने भलीभाँति सुषिटि की। पूर्वकालमें सर्वव्यापी शम्भुने त्रिन्हें तपस्याके लिये प्रकट किया था तथा रुद्रदेवने चिशूलके अग्रभागपर रखकर जिनकी सदा रक्षा की है, वे ही सतीदेवी लोकहितका कार्य सम्पादित करनेके लिये दक्षसे प्रकट हुई थीं। उन्होंने भक्तोंके उद्धारके लिये अनेक लीलाएँ कीं। इस प्रकार देवी शिवा ही सती होकर भगवान् शंकरसे व्याही गयीं। किंतु दिताके वज्रमें पतिका अपमान देख उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया और फिर उसे ग्रहण नहीं किया। वे अपने परमपदको प्राप्त हो गयों। फिर देवताओंकी प्रार्थनासे वे ही शिवा पार्वतीरूपमें प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके पुनः भगवान् शिवको उन्होंने प्राप्त कर लिया। मुनीश्वर ! इस जगत्में उनके अनेक नाम प्रसिद्ध हुए। उनके कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मूढानी और सर्वमहला आदि अनेक नाम हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। ये सभी नाम उनके गुण और कर्मोंके अनुसार हैं।

मुनिश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार मैंने सुषिक्षका तुमसे वर्णन किया है। ब्रह्मण्डका यह नारा भाग भगवान् शिवकी आशासे मेरेद्वारा रखा गया है। भगवान् शिवको परब्रह्म परमात्मा कहा गया है। मैं, विष्णु तथा चतुर्थ—वे तीन देवता शुणभेदसे उत्पन्नके रूप वतलाये गये हैं। वे मनोरम शिव-लोकमें शिवाके साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। भगवान् शिव स्वतन्त्र परमात्मा है। निर्मुण और लग्न भी वे ही हैं।

( अन्तर्गत १६ )

सरिएँ भाष्यकारी भाष्यकारीने दर्शा करा दिया ? वह  
एवं सुन्न बोलते । ऐसे उत्तरमें लिखे गए वाक्यों द्वारा  
चौदहवाँ है ।

प्रदानीं द्वा—सह । यह, कृति समूह

शंकरके चरित्रका वर्णन करता हूँ । वे कैसे कैलास पर्वतपर गये और कुबेरकी उनके साथ किस प्रकार मैत्री हुई, यह सब सुनाता हूँ । काम्पिल्य नगरमें यशदत्त नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो घड़े सदाचारी थे । उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम गुणनिधि था । वह बड़ा ही दुराचारी और जुआरी हो गया था । पिताने अपने उस पुत्रको त्याग दिया । वह घरसे निकल गया और कई दिनोंतक भूखा भटकता रहा । एक दिन वह नैवेद्य चुराने-की इच्छासे एक शिवमन्दिरमें गया । वहाँ उसने अपने बछको जलाकर उजाला किया । यह मानो उसके द्वारा



भगवान् शिवके लिये दीपदान किया गया । तत्पश्चात् वह चोरीमें पकड़ा गया और उसे प्राणदण्ड मिला । अपने कुकरोंके कारण वह यमदूतोंद्वारा बाँधा गया । इतनेमें ही भगवान् शंकरके पार्षद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उसे उनके बन्धनसे छुड़ा दिया । शिवगणोंके सङ्गसे उसका हृदय शुद्ध हो गया था । अतः वह उन्हें साथ तत्काल शिवलोकमें चला गया । वहाँ सारे दिव्य भोगोंका उपभोग तथा उमामहेश्वरका सेवन करके कालान्तरमें वह कलिङ्गराज अरिंदम-का पुत्र हुआ । वहाँ उसका नाम था दम । वह निरन्तर

भगवान् शिवकी सेवामें लगा रहता था । बालक होनेपर भी वह दूसरे बालकोंके साथ शिवका भजन किया करता था । वह क्रमशः युवावस्थाको प्राप्त हुआ और पिताके परलोकगमनके पश्चात् राजसिंहासनपर बैठा ।

राजा दम वडी प्रसन्नताके साथ सब ओर शिवधर्मोंका प्रचार करने लगे । भूपाल दमका दमन करना दूसरोंके लिये सर्वथा कठिन था । ब्रह्मन् ! समस्त शिवालयोंमें दीपदान करनेके अतिरिक्त दूसरे किसी धर्मको नहीं जानते थे । उन्होंने अपने रथों रहनेवाले समस्त ग्रामाध्यक्षोंको बुलाकर यह आज्ञा दे दी थी



‘शिवमन्दिरमें’ दीपदान करना सबके लिये अनिवार्य होगा । जिस-जिस ग्रामाध्यक्षके गाँवके पास जितने शिवालय है वहाँ-वहाँ बिना कोई विचार किये सदा दीप जलायें चाहिये ।’ आजीवन इसी धर्मका पालन करनेके कारण एवं दमने बहुत वडी धर्मसम्पत्तिका संचय कर लिया । किंतु काल-धर्मके अधीन हो गये । दीपदानकी वासनासे युक्त होने के कारण उन्होंने शिवालयोंमें बहुत-से दीप जलाये औ उसके फलस्वरूप जन्मान्तरमें वे रत्नमय दीपोंकी प्रमाण आश्रय हो अलकापुरीके स्वामी हुए । इस प्रकार मात्र शिवके लिये किया हुआ थोड़ा-सा भी पूजन या आप

समयानुमार महान् फल देता है, ऐसा जानकर उत्तम सुखकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिवका भजन अवश्य करना चाहिये । वह दीक्षितका पुत्र, जो सदा सब प्रकारके अभिमोर्मे ही रचा-पचा रहता था, दैवयोगसे शिवालयमें धन चुरानेके लिये गया और उसने स्वार्थवद्ध अपने कपड़ेको दीपकी बत्ती बनाकर उसके प्रकाशसे शिवलिङ्गके ऊपर-का अँधेरा दूर कर दिया; इस सत्कर्मके फलस्वरूप वह कलिङ्गदेश-का राजा हुआ और धर्ममें उसका अमुराग हो गया । फिर दीप-की वासनाका उदय होनेसे शिवालयोंमें दीप जलवाकर उसने यह दिक्षगलका पद पा लिया । सुनीश्वर ! देखो तो सही, कहाँ उसका वह कर्म और कहाँ यह दिक्षपालकी पदवी, जिसका यह मानवधर्मा प्राणी, इस समय वहाँ उपभोग कर रहा है । तात ! यह तो उसके ऊपर शिवके संतुष्ट होनेकी वात बतायी गयी । अब एकचित्त होकर यह सुनो कि किस गवार उदाके लिये उसकी भगवान् शिवके साथ मित्रता हो गयी । मैं इस प्रसङ्गका तुमसे वर्णन करता हूँ ।

नारद ! पहलेके पाद्मकल्पकी बात है, मुझ ब्रह्माके मानस पुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ और विश्रवाके पुत्र वैश्वण (कुवेर) हुए । उन्होंने पूर्वकालमें अल्पन्त उग्र तपस्याके द्वारा विनेश्वरारी महादेवकी आराधना करके विश्वधर्माकी बनायी हुई इस अल्कापुरीका उपभोग किया । जब वह रत्न व्यतीत हो गया और मेववाहनकल्प (आरम्भ हुआ), उस समय वह यज्ञदत्तका पुत्र, जो प्रकाशका दान परनेवाल था, कुवेरके रूपमें अत्यन्त दुस्सह तपस्या परने लगा । दीपदानमात्रसे मिलनेवाली विषभक्तिके प्रभावसे जामतार वह शिवकी चित्प्रकाशिका काशिकापुरीमें गया और अपने चित्तरूपी रत्नमय प्रदीपोंसे ग्यारह रुद्रोंके उप्रिति घरके अनन्यभक्ति एवं स्नेहसे सम्पन्न हो वह निश्चयान्तरके द्वारा एकत्रित हो गया । जो भिस्ती एकत्रित हो गया, तपरूपी अग्निसे दृष्टि हुआ है, जाम-ओभादि महानिष्ठरूपी पतञ्जलिके आशात्मक रूप है, प्राणनिर्दिशरूपी वायुसूत्र स्थानमें निश्चलभावसे उपरित्वा, निमंत्र दृष्टिये कास्य त्वरणसे भी निर्मल है तथा शरीरमें पुष्पोंमें विनाशी पूजा की गयी है, ऐसे शिवलिङ्गकी अपेक्षा वह एवं तपतक नमस्कारमें लगा रहा, जपनक शब्दों वर्तमानमें उपर अनेक और कर्मभाव ही अपरिण नहीं हैं नहीं । एवं प्रत्यक्ष उन्हें यह दृष्टार दग्धोंका नरसम्बन्ध है ।

तदनन्तर विशालाक्षी पार्वतीदेवीके साथ भगवान् विश्वनाथ कुवेरसे पास आये । उन्होंने प्रसन्नचित्तसे अलकापतिकी ओर देखा । वे शिवलिङ्गमें मनको एकाग्र करके दूँठे काठकी भाँति स्थिरभावसे बैठे थे । भगवान् शिवने उनसे कहा— ‘अलकापते ! मैं वर देनेके लिये उद्यत हूँ । तुम अपना मनोरथ बताओ ।’

वह बाणी सुनकर तपस्याके धनी कुवेरने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, त्यों ही उमावल्लभ भगवान् श्रीकण्ठ सामने खड़े दिखायी दिये । वे उदयकालके सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजसी थे और उनके मस्तकपर चन्द्रमा अपनी चाँदनी विलेर रहे थे । भगवान् शंकरके तेजसे उनकी आँखें चौंधिया गयीं । उनका तेज प्रतिहत हो गया और वे नेत्र बंद करके मनोरथसे भी परे विरजमान देवदेवेशवर शिवसे बोले— नाथ ! मेरे नेत्रोंको वह दृष्टिशक्ति दीजिये, जिससे आपके चरणारविन्दोंका दर्शन हो सके । स्वामिन् । आपका प्रत्यक्ष दर्शन हो, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है । ईश ! दूसरे किसी वरसे मेरा क्या प्रयोजन है । चन्द्रशेखर ! आपको नमस्कार है ।’

कुवेरकी यह बात सुनकर देवाधिदेव उमायतिने अपनी हयेलीसे उनका स्वर्ग करके उन्हें देखनेकी दक्षि प्रशान्ति की । दृष्टिशक्ति मिल जानेपर यज्ञदत्तके उन पुत्रने आँखें फाड़-फाड़कर पहले उमाकी ओर ही देखता आरम्भ किया । वह मन-ही-मन सोचने लगा, ‘भगवान् शंकरके तमोप वह सर्वाङ्गसुन्दरी कौन है ? इसने कौनन्या ऐसा तप किया है, जो मेरी भी तपस्याये वह गया है । वह लप, यद् प्रेम, वह गौभार्य और वह असीम दीपा—सभी अद्भुत हैं ।’ वह द्राघिग्रुमार वार-वार यही कहने लगा । जब यार्यार यही रुद्रता हुआ वह दूर दृष्टिये उनकी ओर देखने लगा, तब यासाके अब्लेक्सनसे उनकी बायी आँख पूछ गयी । नदनन्तर देवी पार्वतीने महादेवजीसे कहा—‘प्रभो ! वह दुष्ट तपस्यी यज्ञदत्त मेरी ओर देखकर क्या दक रहा है ? आप नहीं नश्वरादेव तेजसों प्रकट कीजिये ।’ देवीरी वह नह नश्वर भजनन्तर शिवने हैम्ने हुए उन्हें दक—‘मुझे ! यह कृमारुप हूँ । वह हृषीकेश वर्षा-वर रहा है ।’ देवीसे ऐसा जवाब भजनन्तर दिया गया उस ग्रामग्रुमारमें दीर्घ—महाम । वे ग्रुमारी सप्तमी

शंकरके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वे कैसे कैलास पर्वतपर गये और कुबेरकी उनके साथ किस प्रकार मैत्री हुई, यह सब सुनाता हूँ। काम्पिल्य नगरमें यज्ञदत्त नामसे प्रसिद्ध एक ग्राहण रहते थे, जो वडे सदाचारी थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम गुणनिधि था। वह वडा ही दुषाचारी और जुआरी हो गया था। पिताने अपने उस पुत्रको त्याग दिया। वह घरसे निकल गया और कई दिनोंतक भूखा भटकता रहा। एक दिन वह नैवेद्य तुरन्ते की इच्छासे एक शिवमन्दिरमें गया। वहाँ उसने अपने बछ्रको जलाकर उजाला किया। यह मानो उसके द्वारा



भगवान् शिवके लिये दीपदान किया गया। तत्पश्चात् वह चोरीमें पकड़ा गया और उसे प्राणदण्ड मिला। अपने कुकरोंके कारण वह यमदूतोंद्वारा वाँधा गया। इतनेमें ही भगवान् शंकरके पार्षद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उसे उनके बन्धनसे छुड़ा दिया। शिवगणोंके सङ्गसे उसका हृदय छुड़ हो गया था। अतः वह उन्होंके साथ तत्काल शिवलोकमें चला गया। वहाँ सारे दिव्य भोगोंका उपभोग तथा उमामहेश्वरका सेवन करके कालान्तरमें वह कलिङ्गराज अरिंदमका पुत्र हुआ। वहाँ उसका नाम था दम। वह निरन्तर

भगवान् शिवकी सेवामें लगा रहता था। बालक होनेपर सौ वह दूसरे बालकोंके साथ शिवका भजन किया करता था। वह क्रमशः युवावस्थाको प्राप्त हुआ और पिताके पर्लेफ गमनके पश्चात् राजसिंहासनपर बैठा।

राजा दम वडी प्रसन्नताके साथ सब और शिवधर्मोंका प्रत्याकरने लगे। भूपाल दमका दमन करना दूसरोंके लिये सर्वथा कठिन था। व्रह्मन् ! समस्त शिवालयोंमें दीपदान करनेके अतिरिक्त दूसरे किसी धर्मको नहीं जानते थे। उन्होंने अपने राहनेवाले समस्त ग्रामाध्यक्षोंको बुलाकर वह आज्ञा दे दी



‘शिवमन्दिरमें दीपदान करना सबके लिये अनिवार्य हो। जिस-जिस ग्रामाध्यक्षके गाँवके पास जितने शिवालय वहाँ-वहाँ बिना कोई विचार किये सदा दीप जलायेहो।’ आजीवन इसी धर्मका पालन करनेके कारण वह दमने बहुत बड़ी धर्मसम्पत्तिका संचय कर लिया। ऐसा काल धर्मके अधीन हो गये। दीपदानकी वासनासे युक्त होनेके कारण उन्होंने शिवालयोंमें बहुत-से दीप जलाये थे। उसके फलस्वरूप जन्मान्तरमें वे रत्नमय दीपोंकी प्रमाण आश्रय हो अलकापुरीके स्वामी हुए। इस प्रकार भगवान् शिवके लिये किया हुआ धोड़ा-सा भी पूजन या आण-

समयानुसार महान् फल देता है, ऐसा जानकर उत्तम सुखकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिवका भजन अवश्य करना चाहिये । वह दीक्षितका पुत्र, जो सदा सब प्रकारके अधर्मोंमें ही रचा-पचा रहता था, दैवयोगसे शिवाल्यमें धन बुरानेके लिये गया और उसने स्वार्थवश अपने कपड़ेको दीपककी वत्ती बनाकर उसके प्रकाशसे शिवलिङ्गके ऊपर-का अँधेरा दूर कर दिया; इस सत्कर्मके फलस्वरूप वह कलिङ्गदेश-का राजा हुआ और धर्ममें उसका अनुराग हो गया । फिर दीप-की वासनाका उदय होनेसे शिवाल्यमें दीप जलवाकर उसने यह दिक्पालका पद पा लिया । मुनीश्वर ! देखो तो सही, कहाँ उसका वह कर्म और कहाँ यह दिक्पालकी पदवी, जिसका यह मानवधर्मा प्राणी, इस समय यहाँ उपभोग कर रहा है । तात ! यह तो उसके ऊपर शिवके संतुष्ट होनेकी बात बतायी गयी । अब एकचित्त होकर यह सुनो कि किस भार सदाके लिये उसकी भगवान् शिवके साथ मित्रता हो री । मैं इस प्रसङ्गका तुमसे वर्णन करता हूँ ।

नारद ! पहलेके पाइकल्पकी बात है, मुझ ब्रह्माके निस पुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ और विश्रवाके त्रैवेश्वरण ( कुबेर ) हुए । उन्होंने पूर्वकालमें अत्यन्त ग्र तपस्याके द्वारा त्रिनेत्रधारी महादेवकी आराधना करके देवकर्माकी बनायी हुई इस अलकापुरीका उपभोग किया । विं वह कल्प व्यतीत हो गया और मेघवाहनकल्प भारम्भ हुआ, उस समय वह यशदत्तका पुत्र, जो प्रकाशका राज करनेवाला था, कुबेरके रूपमें अत्यन्त दुर्सह तपस्या करने लगा । दीपदानमात्रसे मिलनेवाली शिवभक्तिके भावको जानकर वह शिवकी चित्पकाशिका काशिकापुरीमें गया और अपने चित्तरूपी रूपमय प्रदीपोंसे ग्यारह रुद्रोंको उद्योगित करके अमन्यभक्ति एवं स्नेहसे सम्पन्न हो वह तन्मयतापूर्वक शिवके ध्यानमें मग्न हो निश्चलभावसे बैठ गया । जो शिवकी एकत्राका महान् पात्र है, तपरूपी अभिन्नसे यहाँ हुआ है, काम-क्रोधादि महाविघ्नरूपी पतञ्जलीके आधातसे शत्रु है, प्राणनिरोधरूपी वायुशूल्य स्थानमें निश्चलभावसे प्रकाशित है, निर्मल दृष्टिके कारण स्वरूपसे भी निर्मल है तथा निदानरूपी सुषेष्ठे लिसकी पूजा की गयी है, ऐसे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करके वह तथतक तपस्यामें लगा रहा, जयतक उन्हें शरीरमें केवल अस्थि और चर्ममात्र ही अवशिष्ट नहीं रह गये । इस प्रकार उन्हें दस हजार वर्षोंतक तपस्या की ।

तदनन्तर विशालाक्षी पार्वतीदेवीके साथ भगवान् विश्वनाथ कुबेरके पास आये । उन्होंने प्रसन्नचित्तसे अलकापतिकी ओर देखा । वे शिवलिङ्गमें मनको एकाग्र करके ढूँठे काठकी भाँति स्थिरभावसे बैठे थे । भगवान् शिवने उनसे कहा—‘अलकापते ! मैं वर देनेके लिये उद्वत हूँ । तुम अपना मनोरथ बताओ ।’

यह वाणी सुनकर तपस्याके धनी कुबेरने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, त्यों ही उमावल्लभ भगवान् श्रीकण्ठ सामने खड़े दिखायी दिये । वे उदयकालके सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी थे और उनके मस्तकपर चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिलेर रहे थे । भगवान् शंकरके तेजसे उनकी आँखें चौंथिया गयीं । उनका तेज प्रतिहत हो गया और वे नेत्र बंद करके मनोरथसे भी परे विरजमान देवदेवेश्वर शिवसे बोले—‘नाथ ! मेरे नेत्रोंको वह दृष्टिशक्ति दीजिये, जिससे आपके चरणरविन्दीका दर्शन हो सके । स्वामिन् ! आपका प्रत्यक्ष दर्शन हो, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है । ईश ! दूसरे किसी वरसे मेरा क्या प्रयोजन है । चन्द्रशेखर ! आपको नमस्कार है ।’

कुबेरकी यह बात सुनकर देवाधिदेव उमापतिने अपनी हथेलीसे उनका स्पर्श करके उन्हें देखनेकी शक्ति प्रदान की । दृष्टिशक्ति मिल जानेपर यशदत्तके उस पुत्रने आँखें फाड़-फाइकर पहले उमाकी ओर ही देखना आरम्भ किया । वह मन-हीमन सोचने लगा, ‘भगवान् शंकरके समीप यह सर्वाङ्गसुन्दरी कौन है ? इसने कौनसा ऐसा तप किया है, जो मेरी भी तपस्याले बढ़ गया है । यह रूप, यह प्रेम, यह सौभाग्य और यह असीम शोभा—सभी अद्भुत हैं ।’ वह त्रास्तगुमार बार-बार यही कहने लगा । जब वारंवार यही कहता हुआ वह कूर दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा, तब वामाके अवलोकनसे उसकी वायीं आँख फूट गयी । तदनन्तर देवी पार्वतीने महादेवजीसे कहा—‘प्रभो ! वह दुष्ट तपस्यी बारंबार मेरी ओर देखकर क्या बक रहा है ? आप मेरी तपस्याके तेजको प्रकट कीजिये ।’ देवीकी वह बात नुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए उनसे कहा—‘उमे ! यह तुम्हारा पुत्र है । यह तुम्हें कूर दृष्टिसे नहीं देखता, अपितु तुम्हारी तपःस्मृतिका वर्णन कर रहा है ।’ देवीसे ऐसा कहकर भगवान् शिव पुनः उस ब्राह्मणगुमासे बोहे—‘वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्याले



संतुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ। तुम निधियोंके स्वामी और गुह्यकोंके राजा हो जाओ। सुन्त्रत! यक्षों, किन्नरों और राजव्योंके भी राजा होकर पुण्यजनोंके पालक और सबके लिये

धनके दाता बनो। मेरे साथ तुम्हारी सदा मैत्री बनी रहो और मैं नित्य तुम्हारे निकट निवास करूँगा। मित्र! तुम्हारी प्रीति बढ़ानेके लिये मैं अलकाके पास ही रहूँगा। आओ, इन उमादेवीके चरणोंमें साधान्न प्रणाम करो। क्योंकि ये तुम्हारी माता हैं। महाभक्त यशदत्त-कुमार। तुम अल्ल प्रसन्नचित्तसे इनके चरणोंमें गिर जाओ।<sup>१</sup>

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार वरके भगवान् शिवने पार्वती देवीसे फिर कहा—‘देवेश्वरी! इह कृपा करो। तपस्विनि! यह तुम्हारा पुत्र है।’ भगवान् शंकर यह कथन सुनकर जगदम्भा पार्वतीने प्रसन्नचित्त हो यशदत्त कुमारसे कहा—‘वत्स! भगवान् शिवमें तुम्हारी सदा की भक्ति बनी रहे। तुम्हारी वार्यों आँख तो फूट ही मार्ह इसलिये एक ही पिङ्गलनेत्रसे युक्त रहो। महादेवजीने वर दिये हैं, वे सब उसी रूपमें तुम्हें सुलभ हों। वे मेरे रूपके प्रति ईर्ष्या करनेके कारण तुम कुवेर के प्रसिद्ध होओगे।’ इस प्रकार कुवेरको वर देकर भगवान् महेश्वर पार्वती देवीके साथ अपने विश्वेश्वर-धाममें चले गे इस तरह कुवेरने भगवान् शंकरकी मैत्री प्राप्त की और अलकापुरीके पास जो कैलास पर्वत है, वह भगवान् शंकर निवास हो गया। ( अध्याय १७—११ )

### भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सृष्टिरवण्डका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मुने! कुवेरके तपोबलसे भगवान् शिवका जिस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर शुभागमन हुआ, वह प्रसङ्ग सुनो। कुवेरको वर देनेवाले विश्वेश्वर शिव जब उन्हें निधिपति होनेका वर देकर अपने उत्तम स्थानको छले गये, तब उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—‘ब्रह्माजीके ललाटसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो प्रलयका कार्य संभालते हैं, वे रुद्र मेरे पूर्ण स्वरूप हैं। अतः उन्हींके रूपमें मैं गुह्यकोंके निवासस्थान कैलास पर्वतको जाऊँगा। उन्हींके रूपमें मैं कुवेरका मित्र बनकर उसी पर्वतपर विलासपूर्वक रहूँगा और वहाँ भारी तप करूँगा।’

शिवकी इस इच्छाका चिन्तन करके उन रूपसे कैलास जानेके लिये उत्सुक हो अपनी उत्तम गति देनेवाले उनादस्वरूप डमरुको बजाया। डमरुकी वह ध्वनि, जो उन बढ़ानेवाली थी, तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। उन विचित्र एवं गम्भीर शब्द आहानकी गतिसे युक्त था अर्थ सुननेवालोंको अपने पास आनेके लिये प्रेरणा दे रहा था। उस ध्वनिको सुनकर मैं तथा श्रीविष्णु आदि सभी देवता, शृष्टि, मूर्तिमान् आगम, निगम और सिद्ध वहाँ आ पहुँचे देवता और अमुर आदि सब लोग वहे उत्साहमें भक्त रूप आये। भगवान् शिवके समस्त पार्वद तथा सर्वलोकवर्गी

महाभाग गणपाल जहाँ कहीं भी थे, वहाँसे आ गये।

इतना कहकर ब्रह्मजीने वहाँ आये हुए गणपालोंका नामोल्लेखपूर्वक विस्तृत परिचय दिया, फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया। वे बोले—वहाँ असंख्य महावली गणपाल पधारे। वे सब-के-सब सहस्रों भुजाओंसे युक्त थे और मस्तकपर जटाका ही मुकुट धारण किये हुए थे। सभी चन्द्रचूड़, नीलकण्ठ और त्रिलोचन थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे। वे भेरे, श्रीविष्णुके तथा इन्द्रके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। अणिभा आदि आठों सिद्धियोंसे घिरे थे तथा करोड़ों सूर्योंके समान उद्गसित हो रहे थे। उस समय भगवान् शिवने विश्वकर्मीको उस पर्वतपर निवासस्थान बनानेकी आशा दी। अनेक भक्तोंके साथ अपने और दूसरोंके रहनेके लिये यथायोग्य आवास तैयार करनेका आदेश दिया।

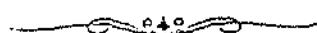
मुने ! तब विश्वकर्माने भगवान् शिवकी आशाके अनुसार उस पर्वतपर जाकर शीघ्र ही नामा प्रकारके गृहोंकी रचना की। फिर श्रीहरिकी प्रार्थनासे कुवेरपर अनुग्रह करके भगवान् शिव सामन्द कैलास पर्वतपर गये। उत्तम मुहूर्तमें अपने स्थानमें प्रवेश करके भक्तवत्सल परमेश्वर शिवने सबको प्रेमदान दे सनाथ किया, इसके बाद आनन्दसे भरे हुए श्रीविष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों और सिद्धोंने शिवका प्रसन्नतापूर्वक अभिषेक किया। हाथोंमें नाना प्रकारकी मेंटें लेकर सबने क्रमशः उनका पूजन किया और वडे उत्सवके साथ उनकी आरती उतारी। मुने ! उस समय आकाशसे कूलोंकी वर्षा हुई, जो मङ्गलसूचक थी। सब और

जय-जयकार और नमस्कारके शब्द गूँजने लगे। महान् उत्साह कैला हुआ था, जो सबके सुखको बढ़ा रहा था। उस समय सिंहासनपर बैठकर श्रीविष्णु आदि सभी देवताओं-द्वारा की हुई ध्योनित सेवाको बारंबार ग्रहण करते हुए भगवान् शिव बड़ी शोभा पा रहे थे। देवता आदि सब लोगोंने सार्थक एवं प्रिय वचनोद्धारा लोकल्याणकारी भगवान् शंकरका पृथक्-पृथक् स्तवन किया। सर्वेश्वर प्रभुने प्रसन्नचित्तसे वह स्तवन सुनकर उन सबको प्रसन्नतापूर्वक मनोवाञ्छित वर एवं अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान कीं। मुने ! तदनन्तर श्रीविष्णुके साथ मैं तथा अन्य सब देवता और मुनि मनोवाञ्छित वस्तु पाकर आनन्दित हो भगवान् शिवकी आशासे अपने-अपने धामको चले गये। कुवेर भी शिवकी आशासे प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको गये। फिर वे भगवान् शम्भु, जो सर्वथा स्वतन्त्र हैं, योगपरायण एवं ध्यानतपर हो पर्वतप्रवर कैलासपर रहने लगे। कुछ काल विना पलीके ही विताकर परमेश्वर शिवने दक्षकन्या सतीको पलीरूपमें ग्रास किया। देवर्षे ! फिर वे महेश्वर दक्षकुमारी सतीके साथ विहार करने लगे और लोकाचारपरायण हो सुखका अनुभव करने लगे। मुनीश्वर ! इस प्रकार मैंने तुमसे यह रुद्रके अवतारका वर्णन किया है, साथ ही उनके कैलासपर आगमन और कुवेरके साथ मैत्रीका भी प्रसङ्ग सुनाया है। कैलासके अन्तर्गत होनेवाली उनकी ज्ञानवर्दिनी लीलाका भी वर्णन किया, जो इहलोक और परलोकमें सदा संमूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। जो एकाग्रचित्त हो इस कथाको सुनता था पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग पाकर परलोकमें मोक्ष लाभ करता है।

( अध्याय २० )



॥ रुद्रसंहिताका सुषिखण्ड सम्पूर्ण ॥



## रुद्रसंहिता ( द्वितीय सतीखण्ड )

**नारदजीके ग्रन्थ और ब्रह्माजीके द्वारा उनका उत्तर, सदाशिवसे त्रिदेवोंकी उत्पत्ति तथा ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सृष्टिके पथात् एक नारी और एक पुरुषका ग्राकथ्य**

नारदजी बोले—महाभग ! महाप्रभो ! विधातः । आपके मुखारविन्दसे मङ्गलकारिणी शम्भुकथा सुनते-सुनते मेरा जी नहीं भर रहा है । अतः भगवान् शिवका सारा शुभ चरित्र मुक्षसे कहिये । सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मदेव ! मैं सतीकी कीर्तिसे युक्त शिवका दिव्यचरित्र सुनना चाहता हूँ । शोभाशालिनी सती किस प्रकार दक्षपत्रीके गर्भसे उत्पन्न हुई ? महादेवजीने विवाहका विचार कैसे किया ? पूर्वकालमें दक्षके प्रति रोष होनेके कारण सतीने अपने शरीरका ल्याग कैसे किया ? चेतनाकाशको प्राप्त होकर वे फिर हिमालयकी कन्या कैसे हुई ?



पार्वतीने किस प्रकार उग्र तपस्या की और कैसे उनका विवाह हआ ? कामदेवका नाश करनेवाले भगवान् शंकरके आधे

शरीरमें वे किस प्रकार स्थान पा सकीं ? महामते ! इन वातोंको आप विस्तारपूर्वक कहिये । आपके समान दूसरा संशयका निवारण करनेवाला न है न होगा ।

ब्रह्माजीने कहा—मुझे ! देवी सती और भग शिवका शुभ यश परमपावन, दिव्य तथा गोपनीयसे भी अलग गोपनीय है । तुम वह सब मुक्षसे सुनो । पूर्वकालमें भग शिव निर्मुण, निर्विकल्प, निराकार, शक्तिरहित, चिन्मय, सत् और असत्से विलक्षण स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे । कि ही प्रभु सगुण और शक्तिमान् होकर विशिष्ट स्वप धारण के स्थित हुए । उनके साथ भगवती उमा विराजमान, विप्रवर ! वे भगवान् शिव दिव्य आकृतिसे सुशोभित हो थे । उनके मनमें कोई विकार नहीं था । वे अपने सभ स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे । मुनिश्रेष्ठ ! उनके बायें अङ्गसे भग विष्णु, दायें अङ्गसे मैं ब्रह्मा और मध्य अङ्ग अर्थात् हृद रुद्रदेव प्रकट हुए । मैं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हुआ, भगवान् विजगत्का पालन करने लगे और स्वयं रुद्रने संहारका व संभाल । इस प्रकार भगवान् सदाशिव स्वयं ही तीव्र धारण करके स्थित हुए । उन्हींकी आराधना करके लोकपितामह ब्रह्माने देवता, असुर और मनुष्य आदि सभी जीवोंकी सृष्टि की । दक्ष आदि प्रजापतियों और देवशिरोमयोंकी सृष्टि करके मैं बहुत प्रसन्न हुआ तथा अपनेको सभ अधिक ऊँचा मानने लगा । मुझे ! जब मरीचि अपुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, कतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष और मृण—इन महान् प्रभावशाली मानसपुत्रोंको मैंने उत्पन्न किया मेरे हृदयसे अत्यन्त मनोहर रूपवाली एक सुन्दरी न उत्पन्न हुई, जिसका नाम ‘संघ्या’ था । वह दिनमें क्षीण ।



तपस्यनी सतीके सामने शिवका प्राकद्वय

[ पृष्ठ १२८





जाती, परंतु सायंकालमें उसका रूप-सौन्दर्य खिल उठता था। वह मूर्तिमती सायं-संध्या ही थी और निरन्तर किसी मन्त्रका जप करती रहती थी। सुन्दर भैंहोंवाली वह नारी सौन्दर्यकी चरम सीमाको पहुँची हुई थी और मुनियोंके भी मनको मोहे लेती थी।

इसी तरह मेरे मनसे एक मनोहर पुरुष भी प्रकट हुआ, जो अत्यन्त अद्भुत था। उसके शरीरका मध्यभाग (कटिप्रदेश) पतल था। दाँतोंकी पंक्तियाँ वडी सुन्दर थीं।

उसके अङ्गोंसे मतवाले हाथीकी-सी गन्ध प्रकट होती थी। नेत्र प्रकुण्ड कमलके समान शोभा पाते थे। अङ्गोंमें केसर लगा था, जिसकी सुगन्ध नासिकाको तृप्त कर रही थी। उस पुरुषको देखकर दक्ष आदि मेरे सभी पुत्र अत्यन्त उत्सुक हो उठे। उनके मनमें विस्मय भर गया था। जगत्की सृष्टि करनेवाले सुझ जगदीश्वर ब्रह्माकी ओर देखकर उस पुरुषने विनयसे गर्दन छुका दी और मुझे प्रणाम करके कहा।

वह पुरुष चोला—ब्रह्मन् ! मैं कौन-सा कार्य करूँगा ? मेरे योग्य जो काम हो, उसमें मुझे लगाइये; क्योंकि विधाता ! आज आप ही सबसे अधिक माननीय और योग्य पुरुष हैं। यह लोक आपसे ही शोभित हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा—भद्रपुरुष ! तुम अपने इसी स्वरूपसे तथा फूलके बने हुए पाँच वाणोंसे छियों और पुरुषोंको मोहित करते हुए सृष्टिके सनातन कार्यको चलाओ। इस चराचर त्रिभुवनमें ये देवता आदि कोई भी जीव तुम्हारा तिरस्कार करनेमें समर्थ नहीं होंगे। तुम छिपे रूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके सदा स्वयं उनके सुखका हेतु बनकर सृष्टिका सनातन कार्य चालू रखलो। समस्त प्राणियोंका जो मन है, वह तुम्हारे पुष्पमय वाणका सदा अनायास ही अद्भुत लक्ष्य बन जायगा और तुम निरन्तर उन्हें मदमत्त किये रहोगे। यह मैंने तुम्हारा कर्म बताया है, जो सृष्टिका प्रवर्तक होगा और तुम्हारे ठीक-ठीक नाम क्या होंगे, इस बातको मेरे ये पुत्र बतायेंगे।

सुरश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर अपने पुत्रोंके सुखकी ओर दृष्टिपात करके मैं क्षणभरके लिये अपने कमलमय आसनपर चुपचाप बैठ गया। ( अव्याय १-२ )

### कामदेवके नामोंका निर्देश, उसका रतिके साथ विवाह तथा कुमारी संध्याका चरित्र— वसिष्ठ मुनिका चन्द्रभाग पर्वतपर उसको तपस्याकी विधि बताना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर मेरे अभिप्रायको लिनेवाले मरीचि आदि मेरे पुत्र तभी मुनियोंने उन रक्षा उनि । नाम रक्षा । दक्ष आदि प्रजापतियोंने उसका

मुँह देखते ही परोक्षके भी सारे वृत्तान्त जानकर उसे रहनेके लिये स्थान और पली प्रदान की। मेरे पुत्र मरीचि आदि द्विजोंने उसे पुरुषके नाम निश्चित करके उससे यह युक्ति-दुक्त बात कही।



**ऋषि बोले—**तुम जन्म लेते ही हमारे मनको भी मथने लगे हो । इसलिये लोकमें ‘मन्मथ’ नामसे विख्यात होओगे । मनोभव ! तीनों लोकोंमें तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हो, तुम्हारे समान सुन्दर दूसरा कोई नहीं है; अतः कामरूप होनेके कारण तुम ‘काम’ नामसे भी विख्यात होओ । लोगोंको मदमत्त बना देनेके कारण तुम्हारा एक नाम ‘मदन’ होगा । तुम बड़े दर्पसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये ‘दर्पक’ कहलाओगे और सदर्प होनेके कारण ही जगत्‌में ‘कंदर्प’ नामसे भी तुम्हारी ख्याति होगी । समस्त देवताभोंका सम्मिलित बल-पराक्रम भी तुम्हारे समान नहीं होगा । अतः सभी स्थानोंपर तुम्हारा अधिकार होगा और तुम सर्वव्यापी होओगे । जो आदि प्रजापति हैं, वे ही ये पुरुषोंमें श्रेष्ठ दक्ष तुम्हारी इच्छाके अनुरूप पत्नी स्वयं देंगे । वह तुम्हारी कामिनी (तुममें अनुराग रखनेवाली) होगी ।

**ब्रह्माजीने कहा—**मुने ! तदनन्तर मैं वहाँसे अदृश्य हो गया । इसके बाद दक्ष मेरी बातका सरण करके कंदर्पसे बोले—‘कामदेव ! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई मेरी यह कन्या सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे सुशोभित है । इसे तुम अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करो । यह गुणोंकी दृष्टिसे सर्वथा

तुम्हारे योग्य है । महातेजस्वी मनोभव ! यह सदा तुम्हारे साथ रखनेवाली और तुम्हारी रुचिके अनुसार चलनेवाला होगी । धर्मतः यह सदा तुम्हारे अधीन रहेगी ।

ऐसा कहकर दक्षने अपने शरीरके पसीनेसे प्रकट हुई लक्ष्याका नाम ‘रति’ रखकर उसे अपने आगे बैठाया और कंदर्पको संकरपूर्वक सौंप दिया । नारद ! दक्षकी वह पुत्रीकी



बड़ी रमणीय और सुनियोके मनको भी मोह लेनेवाली थी । उसके साथ विवाह करके कामदेवको भी बड़ी प्रसन्नता हुई । अपनी रति नामक सुन्दरी खीको देखकर उसके हावर्में आदिसे अनुरक्षित हो कामदेव मोहित हो गया । तात । दूसरमय बड़ा भारी उत्सव होने लगा, जो सबके सुखको बढ़ावाला था । प्रजापति दक्ष इस बातको सोचकर बड़े प्रसन्न कि मेरी पुत्री इस विवाहसे सुखी है । कामदेवको भी वह सुख मिला । उसके सारे दुःख दूर हो गये । दक्षकन्या भी कामदेवको पाकर बहुत प्रसन्न हुई । जैसे “कामनोहारिणी विद्युन्मालाके साथ मेघ शोभा पाता है, उसी भ्रतिके साथ प्रिय वचन बोलनेवाला कामदेव वही शोभा पाता है । इस प्रकार रतिके प्रति भारी मोहसे युक्त कामदेवने उसे उसी तरह अपने हृदयके सिंहासनपर बैठा

जैसे योगी पुरुष योगविद्याको हृदयमें धारण करता है। इसी प्रकार पूर्ण चन्द्रमुखी रति भी उस श्रेष्ठ पतिको पाकर उसी तरह सुशोभित हुई, जैसे श्रीहरिको पाकर पूर्णचन्द्रानना लक्ष्मी शोभा पाती हैं।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् चंकरका सरण करके हर्षपूर्वक बोले—‘महाभाग! विष्णुशिष्य! महामते! विधातः! आपने चन्द्रमौलि शिवकी यह अद्भुत लीला कही है। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि विवाहके श्वात् जब कामदेव प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चला गया, त्थं भी अपने घरको पधारे तथा आप और आपके मानस-त्र भी अपने-अपने धामको छले गये, तब पितरोंको उत्पन्न रनेवाली ब्रह्मकुमारी संघ्या कहाँ गयी? उसने क्या किया और किस पुरुषके साथ उसका विवाह हुआ? संघ्याका यह न चरित्र विशेषरूपसे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! संघ्याका वह सारा शुभ चरित्र तीनों, जिसे सुनकर समस्त कामनियाँ सदाके लिये सती-साक्षी रूपकी हैं। वह संघ्या, जो पहले भेरी मानस-पुत्री थी, तपस्या द्विके शरीरको ल्यागकर मुनिश्रेष्ठ मेधातिथिकी बुद्धिमती पुत्री द्विकर अस्त्वतीके नामसे विख्यात हुई। उत्तम ब्रतका पालन द्विके उस देवीने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके कहनेसे श्रेष्ठ तत्वार्थी महात्मा वसिष्ठको अपना पति चुना। वह सौम्य स्वरूप-गाली देवी सबकी बन्दनीया और पूजनीया श्रेष्ठ पतिव्रताके रूपमें विख्यात हुई।

नारदजीने पूछा—भगवन्! संघ्याने कैसे किसलिये और कहाँ तप किया? किस प्रकार शरीर ल्यागकर वह मेधातिथिकी पुत्री हुई? ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंके बताये हुए श्रेष्ठ तत्वार्थी महात्मा वसिष्ठको उसने पिता तरह अपना पति बनाया? पितामह! यह सब मैं पितारके नाथ मुनना चाहता हूँ। अस्त्वतीके इस कौतूहलपूर्ण चरित्रका आप वधार्यरूपसे वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! संघ्याके मनमें एक बार मन्त्राम-निय आ गया था, इसलिये उस साक्षीने यह निश्चय किया कि

‘वैदिकमार्गके अनुसार मैं अग्निमें अपने इस शरीरकी आहुति दें दूँगी। आजसे इस भूतलपर कोई भी देहधारी उत्पन्न होते ही कामभावसे युक्त न हों, इसके लिये मैं कठोर तपस्या करके मर्यादा स्थापित करूँगी ( तस्णावस्थासे पूर्व किसीपर भी कामका प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसी सीमा निर्धारित करूँगी )। इसके बाद इस जीवनको त्याग दूँगी।’

मन-ही-मन ऐसा विचार करके संघ्या चन्द्रभाग नामक उस श्रेष्ठ पर्वतपर चली गयी, जहाँसे चन्द्रभाग नदीका प्रादुर्भाव हुआ है। मनमें तपस्याका दृढ़ निश्चय ले संघ्याको श्रेष्ठ पर्वतपर गयी हुई जान मैंने अपने समीप बैठे हुए वेद-वेदाङ्गों-के पारंगत विद्वान्, सर्वज्ञ, जितात्मा एवं ज्ञानयोगी पुत्र वसिष्ठसे कहा—‘वेटा वसिष्ठ! मनस्विनी संघ्या तपस्याकी अभिलाषासे चन्द्रभाग नामक पर्वतपर गयी है। तुम जाओ और उसे विधिपूर्वक दीक्षा दो। तात! वह तपस्याके भावको नहीं जानती है। इसलिये जिस तरह तुम्हारे यथोचित उपदेशसे उसे अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति हो सके, वैसा प्रयत्न करो।’

नारद! मैंने दयापूर्वक जब वसिष्ठको इस प्रकार आज्ञा दी, तब वे ‘जो आज्ञा’ कहकर एक तेजस्वी ब्रह्मचारीके रूपमें संघ्याके पास गये। चन्द्रभाग पर्वतपर एक देवसरोवर है, जो जलाशयोचित गुणोंसे परिपूर्ण हो मानसरोवरके समान शोभा पाता है। वसिष्ठने उस सरोवरको देखा और उसके तटपर बैठी हुई संघ्यापर भी दृष्टिपात किया। कमलोंसे प्रकाशित होनेवाला वह सरोवर तटपर बैठी हुई संघ्यासे उपलक्षित हो उसी तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे प्रदोषकालमें उदित हुए चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे युक्त आकाश शोभा पाता है। सुन्दर भाववाली संघ्याको वहाँ बैठी देख मुनिने कौतूहलपूर्वक उस वृहत्योहित नामवाले सरोवरको अच्छी तरह देखा। उसी प्रकारभूत पर्वतके द्विकरसे दक्षिण समुद्रकी ओर जाती हुई चन्द्रभाग नदीका भी उन्होंने दर्शन किया। जैसे गङ्गा हिमालयसे निकलकर समुद्रकी ओर जाती है, उसी प्रकार चन्द्रभाग-के पश्चिम शिखरका भेदन करके वह नदी समुद्रकी ओर जा रही थी। उस चन्द्रभाग पर्वतपर वृहत्योहित नरोवरके किनारे बैठी हुई संघ्याको देखकर वनिष्ठजीने आदरपूर्वक पूछा।



**वसिष्ठजी बोले—** मद्रे ! तुम इस निर्जन पर्वतपर किस-  
लिये आयी हो ? किसकी पुत्री हो और तुमने यहाँ क्या करने-  
का विचार किया है ? मैं यह सब सुनना चाहता हूँ । यदि  
छिपाने योग्य वात न हो तो बताओ ।

महात्मा वसिष्ठकी यह बात सुनकर संध्याने उन महात्मा-  
की ओर देखा । वे अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निके समान  
प्रकाशित हो रहे थे । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था,  
मानो ब्रह्मचर्य देह धारण करके आ गया हो । वे मस्तकपर  
जटा धारण किये बड़ी शोभा पा रहे थे । संध्याने उन तपोधन-  
को आदरपूर्वक प्रणाम करके कहा ।

**संध्या बोली—** ब्रह्मन् ! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ । मेरा  
नाम संध्या है और मैं तपस्या करनेके लिये इस निर्जन पर्वतपर  
आयी हूँ । यदि मुझे उपदेश देना आपको उचित जान

पड़े तो आप मुझे तपस्याकी विधि बताइये । मैं यही कल  
चाहती हूँ । दूसरी कोई भी गोपनीय वात नहीं है । मैं तपष्णि-  
के भावको—उसके करनेके नियमको बिना जाने ही त्योक्तने  
आ गयी हूँ । इसलिये चिन्तासे सूखी जा रही हूँ और मेरे  
हृदय काँपता है ।

संध्याकी वात सुनकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीने जै  
स्वर्ण सारे कायोंके ज्ञाता थे, उससे दूसरी कोई वात नहीं  
पूछी । वह मन-ही-मन तपस्याका निश्चय कर चुकी थी और  
उसके लिये अत्यन्त उत्थमशील थी । उस समय वही  
मनसे भक्तवत्सल भगवान् शंकरका स्वरण करके  
प्रकार कहा ।

**वसिष्ठजी बोले—** शुभानने ! जो सबसे महान्  
उत्कृष्ट तेज हैं, जो उत्तम और महान् तप हैं तथा जो उप-  
स्थानाध्य परमात्मा हैं, उन भगवान् शम्भुको तुम ही  
धारण करो । जो अकेले ही धर्म, अर्थ, काम और मेरे  
आदिकारण हैं, उन त्रिलोकीके आदिक्षेषण, अद्वितीय पु-  
त्रम् शिवका भजन करो । आगे बताये जानेवाले मन्त्रसे हीं  
शम्भुकी आराधना करो । उससे तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा  
इसमें संशय नहीं है । ॐ नमः शंकराय ॐ इस मन-  
निरन्तर जप करते हुए मौन तपस्या आरम्भ करो और उप-  
स्थिति नियम बताता हूँ, उन्हें सुनो । तुम्हें मौन रहकर ही  
करना होगा, मौनालम्बनपूर्वक ही महादेवजीकी पूजा करनी ही  
प्रथम दो बार छठे समयमें तुम केवल जलका पूर्ण अ-  
कर सकती हो । जब तीसरी बार छठा समय आये, तब तेरे  
उपवास किया करो । इस तरह तपस्याकी समाप्तिक  
कालमें जलाहार एवं उपवासकी किया होती रहेगी । दों  
इस प्रकार की जानेवाली मौन तपस्या ब्रह्मचर्यका फल देनेवा-  
तथा सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली होती है ।  
सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है । अपने चित्तमें शुभ  
उद्देश्य लेकर इच्छानुसार शंकरजीका चिन्तन करें  
प्रसन्न होनेपर तुम्हें अवश्य ही अभीष्ट फल प्रदान करेंगे ।

इस तरह संध्याको तपस्या करनेकी विधिका उपर  
दे मुनिवर वसिष्ठ यथोचितरूपसे उससे बिदा ले वहीं अनन्त  
हो गये । ( अध्याय ३—)

—♦—<308>—♦—

**संध्याकी तपस्या, उसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उससे संतुष्ट हुए**

**शिवका उसे अभीष्ट वर दे मेधातिथिके यज्ञमें भेजना**

ब्रह्माजी कहते हैं—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ महाप्राज्ञ नारद !  
तपस्याके नियमका उपदेश दे जब वसिष्ठजी अपने घर चले गये,  
तब तपके उस विधानको समझकर संध्या मन-ही-मन बहुत प्रसन्न  
हुई । फिर तो वह सानन्द भनसे तपस्विनीके योग्य वेष बनाकर

वृहल्लोहित सरोवरके टटपर ही तपस्या करने लगी । वसिष्ठजी  
तपस्याके लिये जिस मन्त्रको साधन बताया था, उसीसे उपर  
भक्तिभावके साथ वह भगवान् शंकरकी आराधना करने लगी ।  
उसने भगवान् शिवमें अपने चित्तको लाँगा दिया और

मनसे वह वड़ी भारी तपस्या करने लगी। उस तपस्यामें लगे हुए उसके चार युग व्यतोत हो गये। तब भगवान् शिवं उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो वडे प्रसन्न हुए तथा बाहर-भीतर और आकाशमें अपने स्वरूपका दर्शन कराकर जिस रूपका वह चिन्तन करती थी, उसी रूपसे उसकी आँखोंके सामने प्रकट हो गये। उसने मनसे जिनका चिन्तन किया था, उन्हीं प्रसु शंकरको अपने सामने खड़ा देख वह अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो गयी। भगवान्का मुखारविन्द वडा प्रसन्न दिखायी देता था। उनके स्वरूपसे शान्ति वरसरही थी। वह सहसा भय-भीत हो सोचने लगी कि 'मैं भगवान् हरसे क्या कहूँ ? किस तरह इनकी स्तुति करूँ ?' इसी चिन्तामें पड़कर उसने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये। नेत्र बंद कर लेनेपर भगवान् शिवने उसके हृदयमें प्रवेश करके उसे दिव्य ज्ञान दिया, दिव्य वाणी और दिव्य दृष्टि प्रदान की। जब उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि और दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी, तब वह कठिनाईसे शात होनेवाले जगदीश्वर शिवको प्रत्यक्ष देखकर उनकी स्तुति करने लगी।



संघ्या पोली—जो निराकार और परम ज्ञानगम्य है, न ले रख है, न सूझ रहे और न उच्च ही है तथा जिनके

प्रिय ५० अं० १५—

स्वरूपका योगीजन अपने हृदयके भीतर चिन्तन करते हैं, उन्हीं लोकस्था आप भगवान् शिवको नमस्कार है। जिन्हें शर्व कहते हैं, जो शान्तस्वरूप, निर्मल, निर्विकार और ज्ञान-गम्य हैं, जो अपने ही प्रकाशमें स्थित हो प्रकाशित होते हैं, जिनमें विकारका अत्यन्त अभाव है, जो आकाशमार्गकी भाँति निर्गुण, निराकार बताये गये हैं तथा जिनका रूप अशानान्धकार-मार्गसे सर्वथा परे है, उन नित्यप्रसन्न आप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करती हूँ। जिनका रूप एक ( अद्वितीय ), शुद्ध, विना मायाके प्रकाशमान, सच्चिदानन्दमय, सहज निर्विकार, नित्यानन्दमय, सत्य, ऐश्वर्यसे युक्त, प्रसन्न तथा लक्ष्मीको देनेवाला है, उन आप भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनके स्वरूपकी ज्ञानरूपसे ही उद्घावना की जा सकती है, जो इस जगत्से सर्वथा भिन्न है एवं सत्त्वप्रधान, ध्यानके योग्य, आत्मस्वरूप, सारभूत, सद्वको पार लगानेवाला तथा पवित्र वस्तुओंमें भी परम पवित्र है, उन आप महेश्वरको मेरा नमस्कार है। आपका जो स्वरूप शुद्ध, मनोहर, रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा स्वच्छ कर्याक्रेसे समान गौरवर्ण है, जिसने अपने हाथोंमें वर, अभय, शूल और मुण्ड धारण कर रखा है, उस दिव्य, चिन्मय, सगुण, साकार विग्रहसे सुशोभित आप योगयुक्त भगवान् शिवको नमस्कार है। आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, जल, तेज तथा काल—ये जिनके रूप हैं, उन आप परमेश्वरको नमस्कार है। \*

#### \* संघ्योवाच—

निराकारं ज्ञानगम्यं परं चन्तैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्म् ।  
अन्तश्चिन्त्य योगिभित्तस्य रूपं तस्मै तुम्यं लोकत्रये नमोऽस्तु ॥  
शर्वं शान्तं निर्मलं निर्विकारं ज्ञानगम्यं स्वप्रकाशोऽविकारम् ।  
खात्वप्रस्त्रं ध्वान्तमार्गात्परस्ताद् रूपं यस्य त्वां नमामि प्रतन्नम् ॥  
एकं शुद्धं दीप्यमानं विनाजां चिदानन्दं सहजं चाविकारि ।  
नित्यानन्दं सत्यभूतिप्रसन्नं यस्य श्रीदेवं रूपमस्मै नमस्ते ॥  
विधाकारोऽरावनीयं प्रभिन्नं सत्त्वच्छन्दं ध्येयनामस्वरूपम् ।  
सतरं पारं पावनानां पवित्रं तस्मै रूपं यस्य चैवं नमस्ते ॥  
यत्त्वाकारं शुद्धरूपं मनोहरं रत्नकर्त्त्वं स्वच्छकर्मण्गारम् ।  
इष्टाभीतीं शूलमुण्डे दधानं हस्तेन्दो योगयुक्ताय तुव्यन् ॥  
गमनं भृद्दिशश्वेतं सहितं स्वेतिरेतं च ।  
पुनः कालशं रूपाणि यस्य तुम्यं नमोऽन्तु ते ॥  
( प्रिय ५० रु० १० सं० स० लं० ६ । १२-१७ )

प्रधान ( प्रकृति ) और पुरुष जिनके शरीररूपसे प्रकट हुए हैं अर्थात् वे दोनों जिनके शरीर हैं, इसीलिये जिनका यथार्थ रूप अव्यक्त ( बुद्धिआदिसे परे ) है, उन भगवान् शंकर को वारंवार नमस्कार है। जो ब्रह्मा होकर जगत्की सुषिकरते हैं, जो विष्णु होकर संसारका पालन करते हैं तथा जो रुद्र होकर अन्तमें इस सुषिका संहार करेंगे, उन्हीं आप भगवान् सदाशिवको वारंवार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण हैं, दिव्य अमृतरूप ज्ञान तथा अणिमा आदि ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, समस्त लोकान्तरोंका वैभव देनेवाले हैं, स्वयं प्रकाशरूप हैं तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन परमेश्वर शिवको नमस्कार है, नमस्कार है। यह जगत् जिनसे भिन्न नहीं कहा जाता, जिनके चरणोंसे पृथ्वी तथा अन्यान्य अङ्गोंसे समूर्ण दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, कामदेव एवं अन्य देवता प्रकट हुए हैं और जिनकी नाभिसे अन्तरिक्षका आविर्भाव हुआ है, उन्हीं आप भगवान् शम्भुको मेरा नमस्कार है। प्रभो ! आप ही सबसे उत्कृष्ट परमात्मा हैं, आप ही नाना प्रकारकी विद्याएँ हैं, आप ही हर ( संहारकर्ता ) हैं, आप ही सद्ब्रह्म तथा परब्रह्म हैं, आप सदा विचारमें तत्पर रहते हैं। जिनका न आदि है, न मर्य है और न अन्त ही है, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है तथा जो मन और धाणीके विषय नहीं हैं, उन महादेवजीकी सुति में कैसे कर सकूँगी ? \*

ब्रह्मा आदि देवता तथा तपस्याके धनी मुनि भी जिनके रूपोंका वर्णन नहीं कर सकते, उन्हों परमेश्वरका वर्णन अथवा स्तवन में कैसे कर सकती हूँ ? प्रभो ! आप निरुण हैं, मैं मूढ़

\* प्रधानपुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ ।  
तस्माद्व्यतरूपाय शंकराय नमो नमः ॥  
यो ब्रह्मा कुरुते सर्वे यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् ।  
संहस्रिष्यति यो रुद्रस्तर्सै तुम्यं नमो नमः ॥  
नमो नमः कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ।  
समस्तलोकान्तरभूतिदाय प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥  
यस्यापरं तो जगदुच्यते पदात् शितिरिद्यः सर्व इन्द्रुमनोजः ।  
वहिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं तस्मैतुर्थं शम्भवे मे नमोऽस्तु ॥  
त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः ।  
सद्ब्रह्म च परं ब्रह्म विचारणपरायणः ॥  
यस्य नादिर्न मध्यं च नान्तमस्ति जगद्यतः ।  
कथं स्तोष्यामि तं देवमवाहूमनसगोचरम् ॥

( शिं० १० ल० १० स० १० ल० ६ । १६—३३ )

स्त्री आपके गुणोंको कैसे जान सकती हूँ ? आपका स्वरूप ऐसा है, जिसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और अमुर भी नहीं जानते हैं। महेश्वर ! आपको नमस्कार है। तपोमय ! आपके नमस्कार है। देवेश्वर शम्भो ! मुक्तपर प्रसन्न होइये। शार्दूल वारंवार मेरा नमस्कार है। \*

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! संध्याका यह लुक़ीं वचन सुनकर उसके द्वारा भलीभाँति प्रशंसित हुए भक्तजन परमेश्वर शंकर वहुत प्रसन्न हुए। उसका शरीर बलदः मृगचर्मसे ढका हुआ था। मस्तकपर पवित्र जटाजट थे पारहा था। उस समय पालेके भारे हुए कमलके समान रुक्मलाये हुए मुँहको देखकर भगवान् हर दयासे द्रक्षि उससे इस प्रकार बोले ।

महेश्वरने कहा—भद्रे ! मैं तुम्हारी इस उत्तमतावहुत प्रसन्न हूँ। शुद्ध बुद्धिवाली देवि ! तुम्हारे इस स्वभी मुझे बड़ा संतोष प्राप्त हुआ है। अतः इस स अपनी इच्छाके अनुसार कोई वर माँगो। जिस बलें प्रयोजन हो तथा जो तुम्हारे मनमें हो, उसे मैं यहाँ अवश्य करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे ब्रतमित्र वहुत प्रसन्न हूँ।

प्रसन्नादित्त महेश्वरका यह वचन सुनकर अर्थ हर्षसे भरी हुई संध्या उन्हें वारंवार प्रणाम करोली—महेश्वर ! यदि आप मुझे प्रसन्नतारूपके देना चाहते हैं, यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, यदि फू शुद्ध हो गयी हूँ तथा देव ! यदि इस समय आपसे तपस्यासे प्रसन्न हैं तो मेरा माँगा हुआ यह पहला वर मार्ग करें। देवेश्वर ! इस आकाशमें पृथ्वी आदि किती भी स्थान जो प्राणी हैं, वे सब-के-सब जन्म लेते ही कामभावसे युक्त हो जायें। नाथ ! मेरी सकाम दृष्टि कहों न पढ़े। मेरे बोर्ड हों, वे भी मेरे अत्यन्त सुहृद हों। पतिके अतिरिक्त मैं पुरुष मुझे सकामभावसे देखें, उसके पुरुषत्वका नाम जाय—वह तत्काल नपुंसक हो जाय।

\* यस्य ब्रह्मादयो देवा सुनयश्च तपोथाः ।  
न विष्णवन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे ॥  
लिया मया ते कि शेषा निरुणस गुणाः प्रभो ।  
नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरसुरः ॥  
नमस्तुभ्यं महेशान नमस्तुभ्यं तपोमय ।  
प्रसीद शम्भो देवेश भूयो भूयो नमोऽस्तुते ॥  
( शिं० १० ल० १० स० १० ल० ६ । २४—३३ )

निष्पाप संध्याका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए  
भक्तवत्सल भगवान् शंकरने कहा—देवि संधे ! मुनो ।  
भद्रे ! तुमने जो-जो वर माँगा है, वह सब तुम्हारी तपस्यासे  
संतुष्ट होकर मैंने दे दिया । प्राणियोंके जीवनमें मुख्यतः चार  
अवस्थाएँ होती हैं—पहली शैशवावस्था, दूसरी कौमावस्था,

सरी यौवनावस्था और चौथी वृद्धावस्था । तीसरी अवस्था  
म होनेपर देहधारी जीव कासभावसे युक्त होंगे । कहाँ-कहाँ  
सरी अवस्थाके अन्तिम भागमें ही प्राणी सकाम हो जायेंगे ।  
म्हारी तपस्याके प्रभावसे मैंने जगतमें सकामभावके उदयकी  
ह मर्यादा स्थापित कर दी है, जिससे देहधारी जीव जन्म  
तो ही कामसक्त न हो जाय । तुम भी इस लोकमें वैसे दिव्य  
तीभावको प्राप्त करो, जैसा तीमों लोकोंमें दूसरी किसी खीके  
अथे सम्भव नहीं होगा । पाणिग्रहण करनेवाले पतिके सिवा  
गे कोई भी पुरुष सकाम होकर तुम्हारी ओर देखेगा, वह  
ल्काल नपुंसक होकर दुर्वलताको प्राप्त हो जायगा । तुम्हारे  
ति भग्नन् तपस्वी तथा दिव्यरूपसे सम्पन्न एक महाभाग  
महिं होंगे, जो तुम्हारे साथ सात कल्योंतक जीवित रहेंगे । तुमने  
मुझसे जो-जो वर माँगे थे, वे सब मैंने पूर्ण कर दिये । अब  
मैं तुमसे दूसरी बात कहूँगा, जो पूर्वजन्मसे सम्बन्ध रखती  
है । तुमने पहलेसे ही यह प्रतिशा कर रखी है कि मैं अग्निमें  
अपने शरीरको त्याग दूँगी । उस प्रतिज्ञाको सफल करनेके  
लिये मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ । उसे निसंदेह करो ।  
मुनिवर मेधातिथिका एक यज्ञ चल रहा है, जो बारह वर्षोंतक  
चल रहेवाला है । उसमें अग्नि पूर्णतया प्रज्वलित है । तुम  
गिना विलम्ब किये उसी अग्निमें अपने शरीरका उत्सर्ग कर  
दो । इसी पर्वतकी उपत्यकामें चन्द्रभागा नदीके तटपर  
तापसाश्रममें मुनिवर मेधातिथि महायज्ञका अनुष्ठान करते हैं ।  
तुम त्वच्छन्दतपूर्वक वहाँ जाओ । मुनि तुम्हें वहाँ देख नहीं

सकेंगे । मेरी कृपासे तुम मुनिकी अग्निसे प्रकट हुई पुत्री  
होओगी । तुम्हारे मनमें जिस किसी स्वामीको प्राप्त करनेकी  
इच्छा हो, उसे हृदयमें धारणकर, उसीका चिन्तन करते हुए  
तुम अपने शरीरको उस बजकी अग्निमें होम दो । संधे !  
जब तुम इस पर्वतपर चार युगोंतकके लिये कठोर तपस्या  
कर रही थी, उन्हीं दिनों उस चतुर्थीगीका सत्ययुग बात जानेपर  
त्रेताके प्रथम भागमें प्रजापति दक्षके बहुतसी कन्याएँ हुईं ।  
उन्होंने अपनी उन सुशीला कन्याओंका यथायोग्य वरोंके साथ  
विवाह कर दिया । उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका विवाह उन्होंने  
चन्द्रमाके साथ किया । चन्द्रमा अन्य सब पलियोंको छोड़कर  
केवल रोहिणीसे प्रेम करने लगे । इसके कारण क्रोधसे भरे हुए  
दक्षने जब चन्द्रमाको शाप दे दिया, तब समस्त देवता तुम्हारे  
पास आये । परंतु संधे ! तुम्हारा मन तो मुझमें लगा हुआ  
था, अतः तुमने ब्रह्माजीके साथ आये हुए उन देवताओंपर  
दृष्टिपात ही नहीं किया । तब ब्रह्माजीने आकाशकी ओर  
देखकर और चन्द्रमा पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त करें, यह उद्देश्य  
मनमें रखकर उन्हें शापसे छुड़ानेके लिये एक नदीकी सुषि  
की, जो चन्द्र या चन्द्रभागा नदीके नामसे विख्यात हुई ।  
चन्द्रभागाके प्रादुर्भावकालमें ही महिं मेधातिथि यहाँ  
उपस्थित हुए थे । तपस्याके द्वारा उनकी समानता करनेवाल  
न तो कोई हुआ है, न है और न होगा ही । उन महिंने  
महान् विधि-विधानके साथ दीर्घकालतक चलनेवाले ज्योतिष्योग-  
नामक यज्ञका आरम्भ किया है । उसमें अग्निदेव पूर्णरूपसे  
प्रज्वलित हो रहे हैं । उसी अग्नमें तुम अपने शरीरको डाल  
दो और परम पवित्र हो जाओ । ऐसा करनेसे इस समय  
तुम्हारी वह प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी ।

इस प्रकार संध्याको उसके हितका उपदेश देकर देवेश्वर  
भगवान् शिव वहाँ अन्तर्धान हो गये । ( अध्याय ६ )

**संध्याकी आत्माहृति, उसका अरुन्धतीके रूपमें अवतीर्ण होकर मुनिवर वसिष्ठके साथ विवाह करना,  
ब्रह्माजीका रुद्रके विवाहके लिये प्रयत्न और चिन्ता तथा भगवान् विष्णुका उन्हें  
'शिवा' की आराधनाके लिये उपदेश देकर चिन्तामुक्त करना**

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब वर देकर भगवान्  
रुद्रके अन्तर्धान हो गये, तब संध्या भी उसी स्थानपर गयी,  
जहाँ मुनि मेधातिथि यज्ञ कर रहे थे । भगवान् शंकरकी कृपासे  
उसे किसीने वहाँ नहीं देखा । उसने उस तेजस्वी ब्रह्मचारीका  
स्मरण किया, जिसने उसके लिये तपस्याकी विधिका उपदेश  
दिया था । मरमुने ! पूर्वकालमें महिं वसिष्ठने मृदु परमेश्वीकी

आशासे एक तेजस्वी ब्रह्मचारीका वेग धारण करके उसे तपस्या  
करनेके लिये उपयोगी नियमोंका उपदेश दिया था । संध्या  
अपनेको तपस्याका उपदेश देनेवाले उन्हीं ब्रह्मचारी ब्रह्मण  
वसिष्ठके पतिरूपसे मनमें रखकर उस महायज्ञमें प्रज्वलित  
अग्निके समीप गयी । उस दमय भगवान् शंकरकी कृपासे  
मृनियोंने उसे नहीं देखा । ब्रह्मचारी वर युश्मी दंडे एवं

साथ उस अग्निमें प्रविष्ट हो गयी। उसका पुरोडौशमय शरीर तत्काल दृश्य हो गया। उस पुरोडौशकी अलक्षित गन्ध सब और फैल गयी। अग्निने भगवान् शंकरकी आज्ञासे उसके सुवर्ण-जैसे शरीरको जलाकर शुद्ध करके पुनः सूर्यमण्डलमें पहुँचा दिया। तब सूर्यने पितरों और देवताओंकी तृष्णिके लिये उसे दो भागोंमें विभक्त करके अपने रथमें स्थापित कर दिया।

मुनीश्वर ! उसके शरीरका ऊपरी भाग प्रातःसंध्या हुआ, जो दिन और रातके वीचमें पड़नेवाली आदिसंध्या है तथा उसके शरीरका शेष भाग सायंसंध्या हुआ, जो दिन और रातके मध्यमें होनेवाली अन्तिम संध्या है। सायंसंध्या सदा ही पितरोंको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली होती है। सूर्योदयसे पहले जब अरुणोदय हो—प्राचीके ध्यातिजमें लाली छा जाय, तब प्रातःसंध्या ग्रकट होती है, जो देवताओंको प्रसन्न करनेवाली है। जब लाल कमलके समान सूर्य अस्त हो जाते हैं, उसी समय सदा सायंसंध्याका उदय होता है, जो पितरोंको आनन्द प्रदान करनेवाली है। परम दयालु भगवान् शिवने उसके मनसहित प्राणोंको दिव्य शरीरसे युक्त देहवारी वना दिया। जब मुनिके यज्ञकी समाप्तिका अवसर आया, तब वह अग्निकी ज्वालामें महर्षि मेधातिथिको तपाये हुए सुवर्णकी-सी



१. यज्ञमाण ।

कान्तिशाली पुत्रीके हृष्में प्राप्त हुई। मुनिने वडे आमोदके सप्त उस समय उस पुत्रीको ग्रहण किया। मुने ! उन्होंने वक्तके लिये उसे नह्याकर आपनी गोदमें विठा लिया। शिव्योंसे विरुद्ध महामुनि मेधातिथिको वहाँ बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने उसका नाम 'अरुणधती' रखा। वह किसी भी कारणसे शर्म का अवरोध नहीं करती थी; अतः उसी गुणके कारण उन्हें स्वयं यह त्रिमुखनविश्वात नाम प्राप्त किया। देवर्षि ! वक्त्र समाप्त करके कुतक्त्य हो वे मुनि पुत्रीकी प्राप्ति होनेसे वक्त्र प्रसन्न थे और अपने शिव्योंके साथ आश्रममें रहकर उसीका लालन-पोलन करते थे। देवी अरुणधती चन्द्रभाग के तटपर तापसारण्यके भीतर मुनिवर मेधातिथिके उस आमें धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। जब वह विवाहके योग्य हो, तब मैने, विष्णु तथा महेश्वरने मिलकर मुझ ब्रह्माके पुत्र वर्ण के साथ उसका विवाह करा दिया। ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं के हाथोंसे निकले हुए जलसे शिपा आदि सात परम पानदियाँ उत्पन्न हुईं।

मुने ! मेधातिथिकी पुत्री महात्माजी अरुणधती उपतिव्रताओंमें श्रेष्ठ थी, वह महर्षि वसिष्ठको पतिष्ठप्तमें उनके साथ बड़ी शोभा पाने लगी। उससे शक्ति आदि एवं श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठ ! वह प्रियतम् वसिष्ठको पाकर विशेष शोभा पाने लगी। मुनिशिरोमणे ! प्रकार मैने तुम्हारे समक्ष संध्याके पवित्र चरित्रका वर्णन किया है, जो समस्त कामनाओंके फलोंको देनेवाला, परम धर्म और दिव्य है। जो स्त्री या शुभ व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष इस प्रसङ्गको सुनता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति लेता है। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

प्रजापति ब्रह्माजीकी यह वात सुनकर नारदजीका प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन् ! आपने अरुणधतीकी वृप्तजन्ममें उसकी स्वरूपभूता संध्याकी बड़ी उत्तम दिक्षा कथा सुनायी है, जो शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाली है। धर्मश ! अब आप भगवान् शिवके उस परम पर्वत चरित्रका वर्णन कीजिये, जो दूररोके पापोंका विनाश करनेवाला उत्तम एवं मङ्गलदायक है। जब कामदेव रतिसे विवाह कर्त्तव्यपूर्वक चला गया, दक्ष आदि अन्य मुनि भी जब अपने स्थानको पधारे और जब संध्या तपस्या करनेकी चली गयी, उसके बाद वहाँ कथा हुआ।

ब्रह्माजीने कहा—विग्रहर नारद ! तुम धन्य हो, भगवान् शिवके सेवक हो; अतः शिवकी लीलासे युक्त जो उनका शुभ चरित्र है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। तात ! पूर्वकालमें मैं एक बार जब मोहमें पड़ गया और भगवान् शंकरने मेरा उपहास किया, तब मुझे बड़ा शोभ हुआ था। वस्तुतः शिवकी मायाने मुझे मोह लिया था, इसलिये मैं भगवान् शिवके प्रति ईर्ष्या करने लगा। किस प्रकार, सो बताता हूँ; सुनो। मैं उस स्थानपर गया, जहाँ दक्षराज मुनि उपस्थित थे। वहाँ रतिके साथ कामदेव भी था। नारद ! उस समय मैंने बड़ी प्रसन्नताके साथ दक्ष तथा दूसरे पुत्रोंको सम्मोहित करके वार्तालाप आरम्भ किया। उस वार्तालापके समय मैं शिवकी मायासे पूर्णतया मोहित था; अतः मैंने कहा—‘पुत्रो ! तुम्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे महादेवजी किसी कमनीय कान्तिवाली स्त्रीका पाणिग्रहण करें।’ इसके बाद मैंने भगवान् शिवको मोहित करनेका भार रतिसहित कामदेवको सौंपा। कामदेवने मेरी आज्ञा मानकर कहा—‘प्रभो ! सुन्दरी स्त्री ही मेरा अख्ल है, अतः शिवजीको मोहित करनेके लिये किसी नारीकी सूष्टि कीजिये।’ यह सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया और लंबी सौंस खांचने लगा। मेरे उस निःश्वाससे रात्रि-रात्रि पुष्पें सि विभूषित वसन्तका प्रादुर्भाव हुआ। वसन्त और मलयानिल—ये दोनों मदनके सहायक हुए। इनके साथ जाकर कामदेवने वामदेवको मोहनेकी बारंबार चेष्टा की, परंतु उसे सफलता न मिली। जब वह निराश होकर लौट आया, तब उसकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरे मुखसे जो निःश्वासायु चली, उससे मारणोंकी उत्पत्ति हुई। उन्हें मदनकी सहायताके लिये आदेश देवर मैंने पुनः उन सबको शिवजीके पास मेजा, परंतु महान् प्रयत्न करनेपर भी वे भगवान् शिवकी मोहमें न डाल सके। काम समरिवार लौट आया और सुसे प्रणाम करके अपने स्थानको छला गया।

उसके चले जानेपर मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि निर्विकार तथा मनको वशमें रखनेवाले योगपरायण भगवान् शंकर किसी स्त्रीको अपनी सहधर्मिणी बनाना कैसे स्वीकार करेंगे। यदी सोचते-सोचते मैंने भक्तिभावसे उन भगवान् शीरिका सरण किया, जो सक्षात् शिवस्वरूप तथा मेरे शीरिके जन्मदाता हैं। मैंने दीन वचनोंसे युक्त शुभ स्तोत्रों-द्वारा उनकी स्तुति की। उस स्तुतिको सुनकर भगवान् शीर्ष ही मेरे लाभने प्रयत्न हो गये। उनके चार भुजाएँ शोभा पाती थीं। नेत्र प्रकृत्य कमलके समान सुन्दर थे। उन्होंने हाथोंमें रात्रि-रक्त गदा और पदा हे रखे थे। उनके रथाम दरीर-

पर पीताम्बरकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे भगवान् श्रीहरि भक्तप्रिय हैं—अपने भक्त उन्हें बहुत प्यारे हैं। सबके उत्तम शरणदाता उन श्रीहरिको उस रूपमें देखकर मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली और मैं गद्दद कण्ठसे बारंबार उनकी स्तुति करने लगा। मेरे उस स्तोत्रको सुनकर अपने भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और शरणमें आये हुए मुक्त ब्रह्मासे बोले—‘महाप्राज्ञ विधातः ! लोकस्त्रष्टा ब्रह्मन् ! तुम धन्य हो। बताओ, तुमने किसलिये आज मेरा समरण किया है और किस निमित्ससे यह स्तुति की जा रही है ? तुमपर कौन-सा महान् दुःख आ पड़ा है ? उसे मेरे सामने इस समय कहो। मैं वह सारा दुःख मिटा दूँगा। इस विषयमें कोई संदेह या अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।’

तब ब्रह्माजीने सारा प्रसङ्ग सुनकर कहा—‘केशव ! यदि भगवान् शिव किसी तरह पलीको ग्रहण कर लें तो मैं सुखी हो जाऊँगा, मेरे अन्तःकरणका सारा दुःख दूर हो जायगा। इसीके लिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ।’

मेरी यह बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और मुझ लोकस्त्रष्टा ब्रह्माका हर्ष बढ़ाते हुए मुक्तसे शीघ्र ही यों बोले—‘विधातः ! तुम मेरा बचन सुनो। वह तुम्हारे भ्रमका निवारण करनेवाला है। मेरा बचन ही वेद-शास्त्र आदिका वास्तविक सिद्धान्त है। शिव ही सबके कर्ता-भर्ता ( पालक ) और हर्ता ( संहारक ) हैं। वे ही परात्पर हैं। परब्रह्म, परेता, निर्गुण, नित्य, अनिदेश्य, निर्विकार, अद्वितीय, अन्युत, अनन्त, सबका अन्त करनेवाले, स्वामी और सर्वव्यापी परमात्मा एवं परमेश्वर हैं। सूष्टि, पालन और संहारके कर्ता, तीनों गुणोंको आश्रय देनेवाले, व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामसे प्रसिद्ध, रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे परे, मायासे ही भेद-युक्त प्रतीत होनेवाले, निरीह, मायारहित, मायाके स्वामी या प्रेरक, चतुर, सगुण, स्वतन्त्र, आत्मानन्दस्वरूप, निर्विकल्प, आत्माराम, निर्दन्द, भक्तपरवश, सुन्दर विग्रहसे सुशोभित, योगी, मित्र योगपरायण, योगमार्गदर्शक, गर्वहरी, लोकेश्वर और सदा दीनवत्सल हैं। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। सर्वात्मना शम्भुका भजन करो। इससे संतुष्ट होकर वे तुम्हारा कल्याण करेंगे। ब्रह्मन् ! यदि तुम्हारे मनमें वह विचार हो कि शंकर पलीका पाणिग्रहण करें तो शिवको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे शिवका सरण करते हुए उत्तम तपत्या करो। अपने उस मनोरभको दृद्धने रखते हुए देवी शिवाका प्याज़ दरो।

वे देवेश्वरी यदि प्रसन्न हो जायें तो सारा कार्य सिद्ध कर देंगी। यदि शिवा सगुणरूपसे अवतार ग्रहण करके लोकमें किसीकी पुत्री हो मानव-शरीर ग्रहण करें तो वे निश्चय ही महादेवजीकी पत्नी हो सकती हैं। ब्रह्मन्! तुम दक्षको आज्ञा दो, वे भगवान् शिवके लिये पत्नीका उत्पादन करनेके निमित्त स्वतः भक्तिभावसे प्रयत्नपूर्वक तपस्या करें। तात! शिवा और शिव दोनोंको भक्तके अधीन जानना चाहिये। वे निर्गुण परब्रह्मस्वरूप होते हुए भी स्वेच्छासे सगुण हो जाते हैं।

“विधे ! भगवान् शिवकी इच्छासे प्रकट हुए हम दोनोंने अब उनसे प्रार्थना की थी, तब पूर्वकालमें भगवान् शंकरने जो बात कही थी, उसे याद करो। ब्रह्मन्! अपनी शक्तिसे सुन्दर लीला-विहार करनेवाले निर्गुण शिवने स्वेच्छासे सगुण होकर मुक्षको और तुमको प्रकट करनेके पश्चात् तुम्हें तो सुष्टुप्तिकार्य करनेका आदेश दिया और उमालहित उन अविनाशी सुष्टुप्तिर्ता प्रभुने मुझे उस सुष्टुप्तिके पालनका कार्य सौंपा। फिर नाना-लीला-विशारद उन दयालु स्वामीने हँसकर आकाशकी ओर देखते हुए बड़े प्रेमसे कहा—‘विष्णो ! मेरा उत्कृष्ट रूप इन विधाताके अङ्गसे इस लोकमें प्रकट होगा, जिसका नाम रुद्र होगा। रुद्रका रूप ऐसा ही होगा, जैसा

मेरा है। वह मेरा पूर्णरूप होगा, तुम दोनोंको सदा उसकी पूजा करनी चाहिये। वह तुम दोनोंके सम्पूर्ण मनोरथोंवाली सिद्धि करनेवाला होगा। वही जगत्का प्रलय करनेवाला होगा। वह समस्त गुणोंका द्रष्टा, निर्विदोष एवं उत्तम योगदान पालक होगा। यद्यपि तीनों देवता मेरे ही रूप हैं, तथापि विशेषतः रुद्र मेरा पूर्णरूप होगा। पुत्रो ! देवी उमाके मेरी तीन रूप होंगी। एक रूपका नाम लक्ष्मी होगा, जो ज्ञ श्रीहरिकी पत्नी होंगी। दूसरा रूप ब्रह्मपत्नी सरस्वती है। तीसरा रूप सतीके नामसे प्रसिद्ध होगा। सती उमाका पूर्णरूप होंगी। वे ही भावों रुद्रकी पत्नी होंगी।”

“ऐसा कहकर भगवान् महेश्वर हमपर कृपा करने पश्चात् वहाँसे अन्तर्धान हो गये और हम दोनों सुसमूह अपने-अपने कार्यमें लग गये। ब्रह्मन्! समय पाकर मैं तुम दोनों सपल्लीक हो गये और साक्षात् भगवान् शंकर रुद्रम् अवतीर्ण हुए। वे इस समय कैलास पर्वतपर निवास कर रहे हैं। प्रजेश्वर ! अब शिवा भी सती नामसे अवतीर्ण होनेवाले हैं। अतः तुम्हें उनके उत्पादनके लिये ही यत्न करना चाहिये।

ऐसा कहकर मुक्षपर बड़ी भारी दया करके भगव विष्णु अन्तर्धान हो गये और मुझे उनकी बातें सुनकर व आनन्द प्राप्त हुआ। ( अध्याय ७—१० )

## दक्षकी तपस्या और देवी शिवाका उन्हें वरदान देना

नारदजीने पूछा—पूज्य पिताजी ! दृढ़तापूर्वक उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले दक्षने तपस्या करके देवीसे कौन-सा वर प्राप्त किया तथा वे देवी किस प्रकार दक्षकी कर्त्या हुईं ?

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! तुम धन्य हो ! इन सभी मुनियोंके साथ भक्तिपूर्वक इस प्रसन्नको सुनो। मेरी आज्ञा पाकर उत्तम बुद्धिवाले महाप्रजापति दक्षने क्षीरसागरके उत्तर तटपर स्थित हो देवी जगद्मिकाको पुत्रीके रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा तथा उनके प्रत्यक्ष दर्शनकी कामना लिये उन्हें हृदयमन्दिरमें विराजमान करके तपस्या प्रारम्भ की। दक्षने मनको संयममें रखकर दृढ़तापूर्वक कठोर ब्रतका पालन करते हुए शौच-संतोषादि नियमोंसे युक्त हो तीन हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया। वे कभी जल पीकर रहते, कभी हवा पीके

और कभी सर्वथा उपवास करते थे। भोजनके नामपर का सूखे पत्ते चवा लेते थे।

मुनिश्रेष्ठ नारद ! तदनन्तर यम-नियमादिसे युक्त जगद्म्याकी पूजामें लगे हुए दक्षको देवी शिवाने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। जगन्मयी जगद्म्याका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रजार्ह दक्षने अपने आपको कृतकृत्य माना। वे कालिका देवी रिंग आलू थीं। उनकी अङ्गकान्ति श्याम थी। मुख बड़ा ही मनोहर था। वे चार भुजाओंसे युक्त थीं और हाथोंमें वर्ण अभय, नील कमल और खड्ग धारण किये हुए थीं। उनकी मूर्ति बड़ी मनोहारिणी थी। नेत्र कुछ-कुछ लाल थे। खुले हुए केश बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। उत्तम प्रभासे प्रकाशित होनेवाली उन जगद्म्याको भलीभांति प्रणाम करके उन्हें विचित्र बचनावल्म्योद्वारा उनकी स्तुति करने लगे।



दक्षने कहा—जगदम्य ! महामाये ! जगदीशो !  
महेश्वर ! आपको नमस्कार है। आपने कृपा करके मुझे  
अपने स्वरूपका दर्शन कराया है। भगवति ! आये ! मुझपर  
प्रसन्न होइये। शिवरूपिणि ! प्रसन्न होइये। भक्तवरदायिनि !  
प्रसन्न होइये। जगन्माये ! आपको मेरा नमस्कार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! संयत चित्तवाले दक्षके  
इस प्रकार स्तुति करनेपर महेश्वरी शिवाने स्वर्य ही उनके  
अभिप्रायको जान लिया तो भी दक्षसे इस प्रकार कहा—दक्ष !  
तुम्हारी इस उत्तम भक्तिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुम अपना  
मनोवाञ्छित घर मौंगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय  
नहीं है।

जगदम्यकी यह वात मुनकर प्रजापति दक्ष बहुत प्रसन्न  
हुए और उन शिवाको बारंबार प्रणाम करते हुए बोले।

दक्षने कहा—जगदम्य ! महामाये ! यदि आप मुझे  
वर देनेके लिये उथत हैं तो मेरी वात मुनिये और प्रसन्नता-

पूर्वक मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। मेरे स्वामी जो भगवान् शिव  
हैं, वे रुद्रनाम धारण करके ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए  
हैं। वे परमात्मा शिवके पूर्णवितार हैं। परंतु आपका कोई  
अवतार नहीं हुआ। किर उनकी पत्नी कौन होगी ? अतः  
शिवे ! आप भूतलपर अवतीर्ण होकर उन महेश्वरको अपने  
रूप-लावाप्यसे मोहित कीजिये। देवि ! आपके सिवा दूसरी  
कोई स्त्री रुद्रदेवको कभी मोहित नहीं कर सकती। इसलिये  
आप मेरी पुत्री होकर इस समय महादेवजीकी पत्नी होइये।  
इस प्रकार सुन्दर लीला करके आप हरमोहिनी ( भगवान्  
शिवको मोहित करनेवाली ) बनिये। देवि ! वही मेरे लिये  
वर है। यह केवल मेरे ही स्वार्थकी वात हो, ऐसा नहीं सोचना  
चाहिये। इसमें मेरे ही साथ सम्पूर्ण जगत्का भी हित है।  
ब्रह्मा, विष्णु और शिवमेंसे ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मैं यहाँ आया हूँ।

प्रजापति दक्षका यह वचन सुनकर जगदम्बिका शिवा  
हूँस पड़ीं और मनही-मन भगवान् शिवका स्वरण करके  
यों बोलीं।

देवीने कहा—तात ! प्रजापते ! दक्ष ! मेरी उत्तम  
वात मुनो। मैं सत्य कहती हूँ, तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न  
हो तुम्हें सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तु देनेके लिये उथत हूँ।  
दक्ष ! यद्यपि मैं महेश्वरी हूँ, तथापि तुम्हारी भक्तिके अधीन  
हो तुम्हारी पत्नीके गर्भसे तुम्हारी पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण  
होऊँगी—इसमें संदेश नहीं है। अनघ ! मैं अत्यन्त तुस्तह  
तपस्या करके ऐसा प्रथलन करूँगी जिससे महादेवजीका वर  
पाकर उनकी पत्नी हो जाऊँ। इसके सिवा और किसी उपायसे  
कार्य सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि वे भगवान् सदाशिव  
सर्वथा निर्विकार हैं, ब्रह्मा और विष्णुके भी सेव्य हैं तथा  
नित्य परिपूर्णरूप ही हैं। मैं सदा उनकी दासी और प्रिया हूँ।  
प्रत्येक जन्ममें वे नानालप्यधारी दम्भु ही नेरे स्वामी होते  
हैं। भगवान् सदाशिव अपने दिये हुए वरके प्रभावसे ब्रह्माजी-  
की भ्रुकुटिसे रुद्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं। मैं भी उनके वरसे  
उनकी आशाके अनुसार वहाँ अवतार लौंगी। तात ! अब तुम  
अपने घरको जाओ। इस कार्यमें जो मेरी दूसी अथवा  
सहायिका होगी, उसे मैंने जान लिया है। अब शीम ही मैं  
तुम्हारी पुत्री होकर महादेवजीकी पत्नी दर्तूंगी।

दक्षसे यह उत्तम वचन लेकर मनही-मन शिवकी आशा  
प्राप्त करके देवी शिवाने शिवके चरनारविन्देश्वरा निन्दन करते  
हुए किर कहा—प्रजापते ! परंतु मेरा एक प्रश्न है, उसे

\* एकीर भगवत्यासे प्रसीद शिवरूपिणि ।

\*\* असीर मन्त्ररद्दे जगन्माये जन्मेऽस्तु ते ॥

( विं९ पृ० ८० द३० स० ८० ख० ८० ३१ १४ )

तुम्हें सदा मनमें रखना चाहिये । मैं उस प्रणको सुना देती हूँ । तुम उसे सत्य समझो, मिथ्या न मानो । यदि कभी मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब उसी समय मैं अपने शरीर-को त्याग दूँगी, अपने स्वरूपमें लीन हो जाऊँगी अथवा दूसरा शरीर धारण कर लूँगी । मेरा यह कथन सत्य है । प्रजापते ! प्रत्येक सर्ग या कल्पके लिये तुम्हें यह वर दे दिया गया—

मैं तुम्हारी पुत्री होकर भगवान् शिवकी पत्नी होऊँगी ।

मुख्य प्रजापति दक्षसे ऐसा कहकर महेश्वरी विवा उके देखते-देखते वर्हा अन्तर्धान हो गया । दुर्गाजीके अन्तर्धान होनेपर दक्ष भी अपने आश्रमको लौट गये और वह सेवन प्रसन्न रहने लगे कि देवी विवा मेरी पुत्री होनेवाली हैं ।

( अथाय ११-१२ )

### ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सृष्टिका आरम्भ, अपने पुत्र हर्यश्वों और शवलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप ढेना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! प्रजापति दक्ष अपने आश्रमपर जाकर मेरी आज्ञा पा हर्षभरे मनसे नाना प्रकारकी मानसिक सृष्टि करने लगे । उस प्रजासृष्टिको बढ़ती हुई न देख प्रजापति दक्षने अपने पिता मुक्त ब्रह्मासे कहा ।

दक्ष बोले—ब्रह्मन् ! तात ! प्रजानाथ ! प्रजा बढ़ नहीं रही है । प्रभो ! मैंने जितने जीवोंकी सृष्टि की थी, वे सब उतने ही रह गये हैं । प्रजानाथ ! मैं क्या करूँ ? जिस उपायसे ये जीव अपने-आप बढ़ने लगें, वह मुझे बताइये । तदनुसार मैं प्रजाकी सृष्टि करूँगा, इसमें संशय नहीं है ।

ब्रह्माजीने ( मैंने ) कहा—तात ! प्रजापते दक्ष ! मेरी उत्तम बात सुनो और उसके अनुसार कार्य करो । सुरश्रेष्ठ भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे । प्रजेश ! प्रजापति पञ्चजन ( वीरण ) की जो परम सुन्दरी पुत्री असिक्नी है, उसे तुम पक्षीरूपसे ग्रहण करो । छोके साथ मैथुन-धर्मका आश्रय ले तुम पुनः इस प्रजासर्गको बढ़ाओ । असिक्नी-जैसी कामिनीके गर्भसे तुम बहुत-सी संतानें उत्पन्न कर सकोगे ।

तदनन्तर मैथुन-धर्मसे प्रजाकी उत्पत्ति करनेके उद्देश्यसे प्रजापति दक्षने मेरी आज्ञाके अनुसार वीरण प्रजापतिकी पुत्रीके साथ विवाह किया । अपनी पक्षी वीरिणीके गर्भसे प्रजापति दक्षने दस हजार पुत्र उत्पन्न किये, जो हर्यश्व कहलाये । मुने ! वे सब-के-सब पुत्र समान धर्मका आचरण करनेवाले हुए । पिताकी भक्तिमें तत्पर रहकर वे सदा वैदिक मार्गपर ही चलते थे । एक समय पिताने उन्हें प्रजाकी सृष्टि करनेका आदेश दिया । तात ! तब वे सभी

दाक्षायण-नामधारी पुत्र सृष्टिके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिए पश्चिम दिशाकी ओर गये । वहाँ नारायण-सर नामक परम षष्ठी तीर्थ है, जहाँ दिव्य सिन्धु नद और समुद्रका संगम हुआ है । उस तीर्थ-जलका ही निकटसे स्पर्श करते उनका यज्ञ-करण शुद्ध एवं ज्ञानसे सम्पन्न हो गया । उनकी आत्महत्या मलराशि धूल गयी और वे परमहंस-धर्ममें स्थित हो गये । उन्हें वे सभी पुत्र पिताके आदेशमें वैधे हुए थे । अतः म सुसिर करके प्रजाकी वृद्धिके लिये वहाँ तप करने लगे सभी सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे ।

नारद ! जब तुम्हें पता लगा कि हर्यश्वगण सृष्टिके तपस्या कर रहे हैं, तब भगवान् लक्ष्मीपतिके हाँ अभिप्रायको जानकर तुम स्वयं उनके पास गये और आ पूर्वक यों बोले—‘दक्षपुत्र हर्यश्वगण ! तुमलोग पृथ्वे अन्त देखे विना सृष्टि-रचना करनेके लिये कैसे उ हो गये ?’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हर्यश्व आलस्यसे रहनेवाले थे और जन्मकालसे ही वडे बुद्धिमान् थे । सब-के-सब तुम्हारा उपर्युक्त कथन सुनकर स्वयं उसपर विचार करने लगे । उन्होंने यह विचार किया कि ‘जो उ शास्त्ररूपी पिताके निवृत्तिपरक आदेशको नहीं समझता, केवल रज आदि गुणोंपर विश्वास करनेवाला पुरुष वी निर्माणका कार्य कैसे आरम्भ कर सकता है ।’ ऐसा विश्वास करके वे उत्तम बुद्धि और एकचित्तवाले दक्षकुमार नारद, मणाम और उनकी परिक्षण करके ऐसे पथपर चले गए ।

जहाँ जाकर कोई वापस नहीं लौटता । नारद ! तुम भगवान् शंकरके मन हो और मुने ! तुम समस्त लोकोंमें अकेले विचरा करते हो । तुम्हारे मनमें कोई विकार नहीं है; क्योंकि तुम सदा महेश्वरकी मनोवृत्तिके अनुसार ही कार्य करते हो । जब बहुत समय वीत गया, तब मेरे पुत्र प्रजापति दक्षको यह पता लगा कि मेरे सभी पुत्र नारदसे शिक्षा पाकर नष्ट हो गये ( मेरे हाथसे निकल गये ) । इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ । वे वार-वार कहने लगे—उत्तम संतानोंका पिता होना शोकका ही स्थान है ( क्योंकि श्रेष्ठ पुत्रोंके विछुड़ जानेसे पिताको वहाँ कष्ट होता है ) । शिवकी मायासे मोहित होनेसे दक्षको पुत्र-वियोगके कारण बहुत शोक होने लगा । तब मैंने आकर अपने बड़े दक्षको बड़े प्रेमसे समझाया और सान्त्वना दी । दैवका विधान प्रवल होता है—इत्यादि बातें वताकर उनके मनको शान्त किया । मेरे सान्त्वना देनेपर दक्षने पुनः पञ्चजन-कल्या अस्तिकीके गम्भीर शब्दलक्ष्म नामके एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये । पिताका आदेश पाकर वे पुत्र भी प्रजासुषिके लिये दृढ़तार्थक प्रतिशापालनका नियम ले उसी स्थानपर गये, जहाँ उनके सिद्धिको प्राप्त हुए वडे भाई गये थे । नारायण-सरोकरके जलका स्पर्श होनेमात्रसे उनके सरे पाप नष्ट हो गये, अन्तःकरणमें शुद्धता आ गयी और वे उत्तम ब्रतके पालक शब्दलक्ष्म व्रह ( प्रणव ) का जप करते हुए वहाँ वही भारी तपस्या करने लगे । उन्हें प्रजासुषिके लिये उद्यत जान तुम पुनः पहलेकी ही भाँति ईश्वरीय गतिका समरण करते हुए उनके पास गये और वही बात कहने लगे, जो उनके भाइयोंसे पहले कह चुके थे । मुने ! तुम्हारा दर्शन अमोघ है, इसलिये तुमने उनको भी भाइयोंका ही मार्ग दिखाया । अतएव वे भाइयोंके ही पथपर उर्ध्वगतिको प्राप्त हुए । उसी समय प्रजापति दक्षसे बहुतसे उत्पात दिखायी दिये । इससे मेरे पुत्र दक्षसे वहाँ विस्तय हुआ और वे मन-ही-मन दुखी हुए । फिर उन्होंने पूर्वकृत तुम्हारी ही करतृतसे अपने पुत्रोंका नाश हुआ तुमना । इससे उन्हें वहाँ आश्रय हुआ । वे पुत्रोंके सृष्टिन ऐ अल्पत उपकार अनुभव करने लगे । फिर दक्षने उपर वहाँ झोप दिया और कहा—‘यह नारद वहाँ हुए है’ । दैवका उसी समय तुम दक्षर अनुश्रृत करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे । उन्हें देखते ही शोकविदासे मुक्त हुए दक्षके

बोठ रोषसे फड़कने लगे । तुम्हें सामने पाकर वे धिक्कारने और निन्दा करने लगे ।



दक्षने कहा—ओ नीच ! तुमने यह क्या किया ? तुमने शृङ्खल साधुओंका वाना पहन रखवा है । इसीके द्वारा ठगकर हमारे भोले-भाले वालकोंको जो तुमने भिक्षुओंका मार्ग दिखाया है, वह अच्छा नहीं किया । तुम निर्दय और शठ हो । इसीलिये तुमने हमारे इन वालकोंके, जो अभी ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋणसे मुक्त नहीं हो पाये थे, लोक और परलोक दोनोंके श्रेयका नाश कर डाला । जो पुरुष इन तीनों ऋणोंको उतारे बिना ही मोक्षकी इच्छा मनमें लिये माता-पिताको ल्यागकर प्रसन्न निकल जाता है—संन्यासी हो जाना है, वह अथेगतिको प्राप्त होता है । तुम निर्दय और वडे निर्लब्ध हो । वहोंकी उद्दिमें भेद-पैदा

१-३. अप्तवर्यसालनपूर्वक येद-शास्त्रोंके स्वाम्यादले शृणि-पूरण, वह और पूजा कादिसे देव-ऋण तथा पुत्रके उत्तादनसे पितृ-ऋणका निवारण होता है ।

करनेवाले हो और अपने सुयशको स्वयं ही नए कर रहे हो । मूढ़मते ! तुम भगवान् विष्णुके पार्षदोंमें वर्य ही घूमते-फिरते हो । अधमाधम ! तुमने बारंबार मेरा अमङ्गल किया है । अतः आजसे तीनों लोकोंमें विचरते हुए तुम्हारा पैर कहीं स्थिर नहीं रहेगा । अथवा कहीं भी तुम्हें ठहरनेके लिये सुस्थिर ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा ।'

नारद ! यद्यपि तुम साधु पुरुषोद्धारा सम्मानित हो,

तथापि उस समय दक्षने शोकवश तुम्हें वैना शाय देंदिया । वे ईश्वरकी इच्छाको नहीं समझ सके । शिवकी मायाने उन्हें अल्यन्त मोहित कर दिया था । मुने ! तुमने उस शापके दुष्प्राप्ति प्रहण कर लिया और अपने चित्तमें विकार नहीं आने दिया । यही व्रताभाव है । ईश्वरकोटि के महात्मा पुण्य स्वयं शापको मिटा देनेमें जर्मर्थ होनेपर भी उसे सह ऐते हैं ।

( अथाय १३ )

### दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्ष और वीरिणीके यहाँ देवी शिवाका अवतार, दक्षद्वारा उनकी स्तुति तथा सतीके सद्गुणों एवं चेष्टाओंसे माता-पिताकी प्रसन्नता

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे ! इसी समय दक्षके इस वर्ताविको जानकर मैं भी वहाँ आ पहुँचा और पूर्ववत् उन्हें शान्त करनेके लिये सान्त्वना देने लगा । तुम्हारी प्रसन्नताको बढ़ाते हुए मैंने दक्षके साथ तुम्हारा सुन्दर स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराया । तुम मेरे पुत्र हो, मुनियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण देवताओंके प्रिय हो । अतः वडे प्रेमसे तुम्हें आश्वासन देकर मैं फिर अपने स्थानपर आ गया । तदनन्तर प्रजापति दक्षने मेरी अनुनयके अनुसार अपनी पत्नीके गर्भसे साठ सुन्दरी कन्याओंको जन्म दिया और आलस्यरहित हो वर्ष आदिके साथ उन सबका विवाह कर दिया । मुनीश्वर ! मैं उसी प्रसङ्गको बड़े प्रेमसे कह रहा हूँ, तुम सुनो । मुने ! दक्षने अपनी दस कन्याएँ विधिपूर्वक धर्मको व्याह दीं, सेरह वन्याएँ कश्यप मुनियोंको दे दीं और सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ वर दिया । भूत ( या बहुपुत्र ), अङ्गिरा तथा कृशाश्वको उन्होंने दो-दो कन्याएँ दीं और शेष चार कन्याओंका विवाह तार्द्य ( या अरिष्णनेमि ) के साथ वर दिया । इन सबकी संतान-परम्पराओंसे तीनों लोक भरे पड़े । अतः विस्तार-भयसे उनका वर्णन नहीं किया जाता । कुछ लोग शिवा या सतीको दक्षकी उपेष्ठ पुत्री बताते हैं । दूसरे लोग उन्हें महली पुत्री कहते हैं तथा कुछ अन्य लोग सबसे छोटी पुत्री मानते हैं । कल्प-मेदसे ये तीनों मत ठीक हैं । पुत्र और पुत्रियोंकी उत्पत्तिके पश्चात् पत्नी-सहित प्रजापति दक्षने वडे प्रेमसे मन-ही-मन जगद्मिकाका ध्यान किया । साथ ही गद्ददचार्णीसे प्रेमपूर्वक उनकी सुति श्री की । बारंबार अङ्गलि बाँध, नमस्कार करके वे विनीत-



भावसे देवीको मस्तक छुकाते थे । इससे देवी शिवा संतुष्ट ! और उन्होंने अपने प्रणक्षी पूर्तिके लिये मन-ही-मन यह विच किया कि अब मैं वीरिणीके गर्भसे अवतार लूँ । ऐसा विचार वे जगद्ममा दक्षके द्वदयमें निवास करने लगी । मुनिश्रेष्ठ उस समय दक्षकी बड़ी शोभा होने लगी । फिर उत्तम शंख देखकर दक्षने अपनी पत्नीमें प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान किया

तब दयालु शिवा दक्ष-पत्नीके चित्तमें निवास करने लगीं। उनमें गर्भधारणके सभी चिह्न प्रकट हो गये। तात ! उस अवस्थामें वीरिणीकी शोभा बढ़ गयी और उसके चित्तमें अधिक हर्ष छा गया। भगवती शिवाके निवासके प्रभावसे वीरिणी महामङ्गलरूपिणी हो गयी। दक्षने अपने कुल-सम्प्रदाय, वेदज्ञान और हार्दिक उत्साहके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक पुंसवन आदि संस्कारसम्बन्धी श्रेष्ठ कियाएँ सम्पन्न कीं। उन कर्मोंके अनुष्ठानके समय महान् उत्सव हुआ। प्रजापतिने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दिया।

उस अवसरपर वीरिणीके गर्भमें देवीका निवास हुआ जानकर श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। राघवने वहाँ आकर जगदम्भाका स्तबन किया और समस्त जीवोंका उपकार करनेवाली देवी शिवाको वारंवार प्रणाम य। वे सब देवता प्रसन्नचित्त हो दक्ष प्रजापति तथा रेणीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके अपने-अपने स्थानको दी गये। नारद ! जब नौ महीने वीत गये, तब लैकिक जैका निर्वाह कराकर दसवें महीनेके पूर्ण होनेपर चन्द्रमा दि ग्रहों तथा ताराओंकी अनुकूलतासे युक्त सुखद मुहूर्तमें वी शिवा शीर्ष ही अपनी माताके सामने प्रकट हुई। उनके गतर लेते ही प्रजापति दक्ष वडे प्रसन्न हुए और उन्हें गुन् तेजसे देवीपूर्वक देख उनके मनमें यह विश्वास हो गा कि साक्षात् वे शिवादेवी ही मेरी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुई हैं। उन् समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और पृथिवी परसने लगे। मुनीश्वर ! सतीके जन्म लेते ही गूर्ज दिवाओंमें तत्काल शान्ति छा गयी। देवता आकाशमें है ही माझलिक वजे वजाने लगे। अग्निशालाओंकी शी तुई अभियाँ सहना प्रज्ञलित हो उठीं और सब कुछ स मङ्गलमय हो गया। वीरिणीके गर्भसे साक्षात् जगदम्भाप्रकट हुई देख दक्षने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया और वहे भक्ति-भावसे उनकी बड़ी स्तुति की।

इसिगान् दक्षके स्तुति करनेपर जगन्माता शिवा उस-

समय दक्षसे इस प्रकार घोर्णी, जिसमें माता वीरिणी न सुन सके।

देवी बोर्णी—प्रजापते ! तुमने पहले पुत्रीरूपमें मुझे प्राप्त करनेके लिये मेरी आराधना की थी, तुम्हारा वह मनोरथ आज सिद्ध हो गया। अब तुम उस तपस्याके फलको ग्रहण करो।

उस समय दक्षसे ऐसा कहकर देवीने अपनी माथासे शिशुरूप धारण कर लिया और शैशवमाव प्रकट करती हुई वे वहाँ रोने लगीं। उस वालिकाका रोदन सुनकर सभी त्रियाँ और दातियाँ वडे वेसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। असिक्तीकी पुत्रीका अलौकिक रूप देखकर उन सभी त्रियोंको वडा हर्ष हुआ। नगरके सब लोग उस समय जय-जयकार करने लगे। गीत और वाद्योंके साथ वडा भारी उत्सव होने लगा। पुत्रीका मनोहर मुख देखकर सबको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। दक्षने वैदिक और कुलोचित आचारका विधिरूपक अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंको दान दिया और दूसरोंको भी धन बांटा। सब ओर यथोचित गान और नृत्य होने लगे। भाँति-भाँतिके मङ्गल-कृत्योंके साथ वहुत-से वाजे वजने लगे। उस समय दक्षने समस्त सहुणोंकी सत्तासे प्रशंसित होनेवाली अपनी उस पुत्रीका नाम प्रसन्नतापूर्वक ‘उमा’ रखा। तदनन्तर संसारमें लोगोंकी ओरसे उसके और भी नाम प्रचलित किये गये, जो सब-के-सब महान् मङ्गलदायक तथा विशेषतः समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले हैं। वीरिणी और महात्मा दक्ष अपनी पुत्रीका पालन करने लगे तथा वह शुद्धपक्षकी चन्द्रकलाके समान दिनों-दिन वढ़ने लगी। द्विजश्रेष्ठ ! वाल्यावस्थामें भी समस्त उत्तमोत्तम गुण उसमें उसी तरह प्रवेश करने लगे, जैसे शुद्धपक्षके वाल चन्द्रमामें भी समस्त मनोहारिणी कलाएँ प्रविष्ट हो जाती हैं। दक्षकन्या सती सत्यियोंके दीन वैठी-वैठी जब अपने भावमें निमग्न होती थी, तब वारंवार भगवान् शिवकी मूर्तिको चिनित करने लगती थी। मङ्गलमयी सती जब वाल्योचित सुन्दर गीत गाती, तब व्याणु, हर एवं द्वं नाम लेकर समर्थानु शिवका स्मरण किया करती थी।

( अव्याय २४ )

### सतीकी तपस्यासे संतुष्ट देवताओंका कैलासमें जाकर भगवान् शिवका स्तबन करना

प्रलोभी कहते हैं—नारद ! एक दिन मैंने तुम्हारे अप जात्र रितके पान खड़ी हुई सतीको देखा। वह तीनों लोगों गरमदा सुन्दरी थी। उसके पिताने मुरो नमस्कार

करके तुम्हारा भी सत्कार किया। यह देख लेकर चलकर अनुसरण करनेवाली सतीने भक्ति और प्रलक्षनके नाय मुश्कें और तुमको भी प्रणाम किया। नारद ! तदनन्तर सतीद्वा-

ओर देखते हुए हम और उम दक्षके दिये हुए शुभ आसनपर बैठ गये । तत्पश्चात् मैंने उस चिन्यशीला वालिकासे कहा—  
‘सती ! जो केवल तुम्हें ही चाहते हैं और तुम्हारे मनमें भी एकमात्र जिनकी ही कामना है, उन्हीं सर्वज्ञ जगदीश्वर महादेवजीको तुम पतिरूपमें प्राप्त करो । शुभे ! जो तुम्हारे सिवा दूसरी किसी स्त्रीको पवीरूपमें न तो ग्रहण कर सके हैं, न करते हैं और न भविष्यमें ही ग्रहण करेंगे, वे ही भगवान् शिव तुम्हारे पति हों । वे तुम्हारे ही योग्य हैं, दूसरेके नहीं ।’

नारद ! सतीसे ऐसा कहकर मैं दक्षके घरमें देरतक रहरा रहा । फिर उनसे विदा ले मैं और तुम दोनों अपने-अपने स्थानको छले आये । मेरी बातको सुनकर दक्षको बड़ी प्रसन्नता हुई । उनकी सारी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी और उन्होंने अपनी पुत्रीको परमेश्वरी समझकर गोदमें उठा लिया । इस प्रकार कुमारोचित सुन्दर लीला-विहारोंसे मुश्वित होती हुई भक्तवत्सल सती, जो स्वेच्छासे मानवरूप धारण करके प्रकट हुई थीं, कौमारवस्था पार कर गयीं । वाल्यावस्था विताकर किंचित् युवावस्थाको प्राप्त हुई सती अत्यन्त तेज एवं शोभासे सम्पन्न हो सम्पूर्ण अङ्गोंसे भनोहर दिखायी देने लगीं । लोकेश दक्षने देखा कि सतीके शरीरमें युवावस्थाके लक्षण प्रकट होने लगे हैं । तब उनके मनमें यह चिन्ता हुई कि मैं महादेवजीके साथ इनका विवाह कैसे करूँ । सती स्वयं भी महादेवजीको पानेकी प्रतिदिन अभिलाषा रखती थीं । अतः पिताके मनोभावको समझकर वे माताके निकट गयीं । विशाल बुद्धिवाली सतीरूपिणी परमेश्वरी शिवाने अपनी माता चीरिणीसे भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके निमित्त तपस्या करनेके लिये आज्ञा माँगी । माताकी आज्ञा मिल गयी । अतः दृढ़ता-पूर्वक व्रतका पालन करनेवाली सतीने महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये अपने घरपर ही उनकी आराधना अरम्भ की ।

आश्चिन मासमें नन्दा ( प्रतिपदा, घष्टी और एकादशी ) तिथियोंमें उन्होंने भक्तिपूर्वक गुड़, भात और नमक चढ़ाकर भगवान् शिवका पूजन किया और उन्हें नमस्कार करके उसी नियमके साथ उस मासको व्यतीत किया । कार्तिक मासकी चतुर्दशीको सजाकर रखे हुए मालपूओं और सीरसे परमेश्वर शिवकी आराधना करके वे निरन्तर उनका चिन्तन करने लगीं । मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको तिल, जौ और चावलसे हरकी पूजा करके ज्योतिर्मय दीप दिखाकर अथवा आरती करके सती दिन विताती थीं । पौष

मासके शुक्रपक्षकी सप्तमीको रातभर जागरण करके प्रातःकाल शिवचीका नैवेद्य लगा वे शिवकी पूजा करती थीं । मार्गशीर्ष पूर्णिमाको रातमें जागरण करके सबैरे नदीमें नहाती और दूर बछरसे ही तटपर बैठकर भगवान् शंकरकी पूजा करती थीं । फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिल को रातमें जागरण करके उस रात्रिके चारों ओर्डर्से शिवजीकी विशेष पूजा करतीं और नदींद्वारा नदी भी कराती थीं । चैत्र मासके शुक्रपक्षकी चतुर्दशी वे दिन-रात शिवका स्मरण करती हुई समय वितातीं । ढाकके फूलों तथा दवानोंसे भगवान् शिवकी पूजा करती बैठात्स शुक्रा तृतीयाको सती तिलका आहार करके रहती नये जौके भातसे रुद्रदेवकी पूजा करके उस महीनेको थीं । द्येषुकी पूर्णिमाको रातमें सुन्दर बछरों तथा भट्टे फूलोंसे शंकरजीकी पूजा करके वे निराहार रहकर ही वह व्यतीत करती थीं । अपादके शुक्रपक्षकी चतुर्दशीको बस्त्र और भट्टकट्टैयाके फूलोंसे वे रुद्रदेवका पूजन करती थीं । श्रावण मासके शुक्रपक्षकी अष्टमी एवं चतुर्दशीको वे पचीतीं, बछरों तथा कुशके पवित्रोंसे शिवकी पूजा किया थीं । भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिको नाम प्रफूल्ये और फूलोंसे शिवका पूजन करके सती चतुर्दशी तिलके बैठात्स जलका आहार करतीं । भाँति-भाँतिके फूले, पूर्व उस समय उत्पन्न होनेवाले अज्ञोदारा वे शिवकी पूजा और महीनेभर अत्यन्त नियमित आहार करके केवल लगी रहती थीं । सभी महीनोंमें सारे दिन सती वे आराधनामें ही संलग्न रहती थीं । अपनी इच्छासे मात्र धरण करनेवाली वे देवी दृढ़तापूर्वक उत्तम क्रतुका करती थीं । इस प्रकार नन्दाब्रतको पूर्णरूपसे समाप्त भगवान् शिवमें अनन्यभाव रहनेवाली सती एकाश्रिति वहे प्रेमसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं तथा उसपर ही निश्चलभावसे स्थित हो गयीं ।

मुने ! इसी समय सब देवता और ऋषि भगवान् वे और मुक्तको आगे करके सतीकी तपस्या देखनेके लिये हैं वहाँ आकर देवताओंने देखा, सती मूर्तिमती दूसरी ही समान जान पड़ती हैं । वे भगवान् शिवके ध्यानमें निरुद्ध उस समय सिद्धावस्थाको पहुँच गयी थीं । समस्त देवता बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दोनों हाथ जोड़कर सतीको किया, मुनियोंने भी मस्तक झुकाये तथा श्रीहरि आदिके प्रीति उमड़ आयी । श्रीचिष्णु आदि सब देवता और

याश्रयचकित हो सती देवीकी तपस्याकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने



लगे। फिर देवीको प्रणाम करके वे देवता और मुनि दुरंत ही ने रिश्टेष्ठ कैलारको गये, जो भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय

है। सावित्रीके साथ मैं और लक्ष्मीके साथ भगवान् वासुदेव भी प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके निकट गये। वहाँ जाकर भगवान् शिवको देखते ही वडे वेगसे प्रणाम करके सब देवताओंने दोनों हाथ जोड़ विनीत भावसे नाना प्रकारके स्तोत्रोद्घारा उनकी सुति करके अन्तमें कहा—

प्रभो ! आपकी सत्त्व, रज और तम नामक जो तीन शक्तियाँ हैं, उनके राग आदि वेग असहा हैं। वेदव्रथी अथवा लोकत्रयी आपका स्वरूप है। आप शरणागतोंके पालक हैं तथा आपकी शक्ति बहुत बड़ी है—उसकी कहीं कोई सीमा नहीं है; आपको नमस्कार है। दुर्गापते ! जिनकी इन्द्रियाँ दुष्ट हैं—वशमें नहीं हो पातीं, उनके लिये आपकी प्राप्तिका कोई मार्ग सुलभ नहीं है। आप सदा भक्तोंके ढङ्गारमें तत्पर रहते हैं, आपका तेज छिपा हुआ है; आपको नमस्कार है। आपकी मायाशक्तिरूपा जो अहंबुद्धि है, उससे आत्माका स्वल्प ढक गया है; अतएव यह मूढ़बुद्धि जीव अपने स्वल्पको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार पाना अत्यन्त कठिन ( ही नहीं, सर्वथा असम्भव ) है। हम आप महाप्रभुको मस्तक छुआते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार महादेवजीकी सुति करके श्रीविष्णु आदि सब देवता उत्तम भक्तिसे मस्तक छुआये प्रभु शिवजीके आगे चुपचाप खड़े हो गये।

( अध्याय १५ )

### ब्रह्माजीका रुद्रदेवसे सतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, श्रीविष्णुद्घारा अनुमोदन और श्रीरुद्रकी इसके लिये स्वीकृति

ब्रह्माजी कहते हैं—श्रीविष्णु आदि देवताओंद्घारा पी एई उस स्तुतिको सुनकर सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत भगवान् जोकर वडे प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे हँसने लगे। उस गता और विष्णुको असनी-अपनी पत्नीके साथ आया हुआ देव भगवान्देवजीने हमलोगोंसे यथोचित वार्तालाप किया और एगरे आगमनका कारण पूछा।

“ रुद्र, योले—हे हरे ! हे विष्णे ! तथा हे देवताओं विष्णु भगवेशो ! आज निर्भय होकर यहाँ अपने अनेका टीक-टीक रात्मा बताओ। तुमलोग किस लिये यहाँ आये हो ? अस्ति चैत्यसा कार्य आ पड़ा है ? वह तब मैं सुनना चाहता हूँ। इरंकि तुम्हारे द्वारा यी नवी लुकिसे मेरा मन बहुत प्रभावित है। ”

मुने ! महादेवजीके इस प्रकार पृथ्वेनपर भगवान् विष्णुकी आशासे मैंने वार्तालाप आरम्भ किया।

सुझ ब्रह्माने कहा—देवदेव ! महादेव ! कश्चना-रागर ! प्रभो ! हम दोनों इन देवताओं और शृण्यियोंके साथ जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसे सुनिये। द्वयमव्यज ! विशेषतः आपके ही लिये हमारा यही आगमन हुआ है; क्योंकि हम तीनों सहार्थी हैं—सुश्रिवकके संचालकहर प्रयोगसकी सिद्धिके लिये एक-दूसरेके नहावक हैं। सहार्थीको सदा परस्पर यथाक्रम नहवान करना चाहिये। अन्यथा यह जगत् टिक नहीं लकड़ा। महेश ! कुछ ऐसे अनुर उत्पन्न होंगे, जो मेरे हाथमें मार जायेंगे। कुछ भगवान् विष्णुके और कुछ आखे हाथमें नह रहेंगे। महापन्नो ! कुछ

असुर ऐसे होंगे, जो आपके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रके हाथसे ही मारे जा सकेंगे । प्रभो ! कभी कोई विरले ही असुर ऐसे होंगे, जो मायाके हाथोंद्वारा वधको प्राप्त होंगे । आप भगवान् शंकरकी कृपासे ही देवताओंको सदा उत्तम सुख प्राप्त होगा । और असुरोंका विनाश करके आप जगत्को सदा स्वास्थ्य एवं अभय प्रदान करेंगे । अथवा यह भी सम्भव है कि आपके हाथसे कोई भी असुर न मारे जायँ; क्योंकि आप सदा योग-युक्त रहते हुए राग-द्वेषसे रहित हैं तथा एकमात्र दया करनेमें ही लगे रहते हैं । ईश ! यदि वे असुर भी आराधित हों—आपकी दयासे अनुगृहीत होते रहें तो सुष्ठु और पालनका कार्य कैसे चल सकता है । अतः वृपच्छज ! आपको प्रतिदिन सुष्ठु आदिके उपयुक्त कार्य करनेके लिये उच्चत रहना चाहिये । यदि सुष्ठु, पालन और संहाररूप कर्म न करने हों तब तो हमने मायासे जो भिन्न-भिन्न शरीर धारण किये हैं, उनकी कोई उपयोगिता अथवा औचित्य ही नहीं है । वास्तवमें हम तीनों एक ही हैं, कार्यके भेदसे भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं । यदि कार्यभेद न सिद्ध हो, तब तो हमारे रूपभेदका कोई प्रयोजन ही नहीं है । देव ! एक ही परमात्मा महेश्वर तीन स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए हैं । इस रूपभेदमें उनकी अपनी माया ही कारण है । वास्तवमें प्रभु स्वतन्त्र हैं । वे लीलाके उद्देश्यसे ही ये सुष्ठु आदि कार्य करते हैं । भगवान् श्रीहरि उनके बौद्धेये अङ्गसे प्रकट हुए हैं, मैं व्रह्मा उनके दायें अङ्गसे प्रकट हुआ हूँ और आप रुद्रदेव उन सदाशिवके हृदयसे आविर्भूत हुए हैं; अतः आप ही शिवके पूर्ण रूप हैं । प्रभो ! इस प्रकार अभिन्नरूप होते हुए भी हम तीन रूपोंमें प्रकट हैं । सनातनदेव ! हम तीनों उन्हीं भगवान् सदाशिव और शिवाके पुत्र हैं, इस यथार्थ तत्त्वका आप हृदयसे अनुभव कीजिये । प्रभो ! मैं और श्रीविष्णु आपके आदेशसे प्रसन्नतापूर्वक लोककी सुष्ठु और पालनके कार्य कर रहे हैं तथा कार्य-कारणवदा सपनीक भी हो गये हैं; अतः आप भी विश्वहितके लिये तथा देवताओंको सुख पहुँचानेके लिये एक परम सुन्दरी स्मणीको अपनी पल्ली बनानेके लिये ग्रहण करें । महेश्वर ! एक बात और है, उसे सुनियें; मुझे पहलेके वृत्तान्तका स्मरण हो आया है । पूर्वकालमें आपने ही शिवरूपसे जो बात हमारे सामने कही थी, वही इस समय सुना रहा हूँ । आपने कहा था, ‘व्रह्मन् ! मेरा ऐसा ही उत्तम रूप तुम्हारे अङ्गविशेष—ललाटसे प्रकट होगा, जिसकी लोकमें रुद्रनामसे प्रसिद्धि होगी । तुम व्रह्मा

सुष्ठिकर्ता हो गये, श्रीहरि जगत्का पालन करनेवाले हुए और मैं सगुण रुद्ररूप होकर संहार करनेवाला होऊँगा । एक ब्रौं के साथ विवाह करके लोकके उत्तम कार्यकी सिद्धि कर्हूँगा । अपनी कही हुई इस वातको याद करके आप अपनी ही पूर्ण प्रतिज्ञाको पूर्ण कीजिये । स्वामिन् ! आपका यह आदेश है कि मैं सुष्ठु करूँ, श्रीहरि पालन करें और आप स्वयं संहार कर्त्ताके रूपमें प्रकट हुए हैं । आपके विना हम दोनों अलग अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं; अतः आप एक ऐसे कामिनीको स्वीकार करें, जो लोकहितके कार्यमें तत्पर रहे शम्भो ! जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी और सावित्रीमें सहधर्मिणी हैं, उसी प्रकार आप इस समय अपनी जीव सहचरी प्राणवल्लभाको ग्रहण करें ।

मेरी यह बात सुनकर लोकेश्वर महादेवजीके मुद्रा सुरकराहट दौड़ गयी । वे श्रीहरिके सामने मुझसे इन प्रकार बोले ।

ईश्वरने कहा—व्रह्मन् ! हरे ! तुम दोनों मुझे सदार्थ अत्यन्त प्रिय हो । तुम दोनोंको देखकर मुझे बहा आदर मिलता है । तुमलोग समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ तथा त्रिलोकांग स्वामी हो । लोकहितके कार्यमें मन लगाये रहनेवाले तुम दोनोंका बचन मेरी दृष्टिमें अत्यन्त गौरवपूर्ण है । श्री सुरश्रेष्ठगण ! मेरे लिये विवाह करना उचित नहीं होता क्योंकि मैं तपस्यमें संलग्न रहकर सदा संसारसे विरक्त हूँ रहता हूँ और योगीके रूपमें मेरी प्रसिद्धि है । जो निवृत्ति सुन्दर मार्गपर स्थित है, अपने आत्मामें ही रमण करता आनन्द मानता है, निरञ्जन ( मायासे निर्लिप्त ) है, जिन्हे शरीर अवधूत ( दिग्मव्र ) है, जो ज्ञानी, आत्मदर्शी वैकामनासे शून्य है, जिसके मनमें कोई विकार नहीं है वे भोगोत्ते दूर रहता है तथा जो सदा अपवित्र और अग्रजतेमें धारी है, उसे संसारमें कामिनीसे क्या प्रयोजन है—यह समय मुझे बताओ तो सही ! \* मुझे तो सदा केवल योंले लगे रहनेपर ही आनन्द आता है । ज्ञानहीन पुरुष ही यों

\* ये निवृत्तिसुन्दरार्थः स्वात्मारामो निरञ्जनः ।

अवधूततनुर्दर्शनी स्वद्रष्टा कामवर्जितः ॥

अविकारी शमोगी च सदा शुचिरमहलः ।

तस्य प्रयोजनं लोके कामिन्या किं वदाशुना ॥

( शिं० पु० रु० स० स० स० ख० १५ । ३१-३२ )

छोड़कर भोगको अधिक महत्व देता है। संसारमें विवाह करना पराये बन्धनमें बँधना है। इसे बहुत बड़ा बन्धन समझना चाहिये। इसलिये मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, विवाहके लिये मेरे मनमें थोड़ी-सी भी अभिरुचि नहीं है। आत्मा ही अपना उत्तम अर्थ या स्वार्थ है। उसका भलीभाँति चिन्तन करनेके कारण मेरी दैकिक स्वार्थमें प्रवृत्ति नहीं होती। तथापि जगत्के हितके लिये तुमने जो कुछ कहा है, उसे करूँगा। तुम्हारे वचनको गरिष्ठ मानकर अथवा अपनी कही हुई बातको पूर्ण करनेके लिये मैं अवश्य विवाह करूँगा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके वशमें रहता हूँ। परंतु मैं जैसी नारीको प्रिय पत्नीके रूपमें ग्रहण करूँगा और जैसी शर्तके साथ करूँगा, उसे सुनो। हरे ! ब्रह्मन् ! मैं जो कुछ कहना हूँ, वह सर्वथा उचित ही है। जो नारी मेरे तेजको विभागार्थीक ग्रहण कर सके, जो योगिनी तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली हो, उसीको तुम पत्नी बनानेके लिये मुझे चाहतो। जब मैं योगमें तत्पर रहूँ, तब उसे भी योगिनी बनकर रहना होगा। और जब मैं कामासक्त होऊँ, तब उसे भी भागिनीके रूपमें ही मेरे पास रहना होगा। वेदवेत्ता विद्वान् जिन्हें अविनाशी बतलाते हैं, उन ज्योतिःस्वरूप सनातन शिवका मैं सदा चिन्तन करता हूँ और करता रहूँगा। ब्रह्मन् ! उन सदाशिवके चिन्तनमें जब मैं न लगा होऊँ, तभी उस भागिनीके साथ मैं समागम कर सकता हूँ। जो मेरे शिवचिन्तनमें विनाशक दालेवाली होगी, वह जीवित नहीं रह सकती, उसे आपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा। तुम, विष्णु और मैं तीनों ही गणरात्रूप शिवके अंशभूत हैं। अतः महाभागगण ! हमारे लिये उनका निरन्तर चिन्तन करना ही उचित है। ब्रह्मासन ! उनके चिन्तनके लिये मैं विना विवाहके भी रह देंगा। ( विनु उनका चिन्तन छोड़कर विवाह नहीं करूँगा। ) अतः तुम सुसे ऐसी पत्नी प्रदान करो, जो सदा मेरे कर्मके अनुकूल चल सके। ब्रह्मन् ! उसमें भी मेरी एक और शर्त है: उसे तुम सुनो; यदि उस लीका मुझपर और मेरे वचनपर असिंगा होगा तो मैं उसे त्याग दूँगा।

उनकी यह बात सुनकर मैंने और श्रीहरिने भन्द मुखकानके साथ मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव किया; फिर मैं बिनम्ब्र होकर बोला—‘नाथ ! महेश्वर ! प्रभो ! आपने जैसी नारीकी खोज आरम्भ की है, वैसी ही स्त्रीके विषयमें मैं आपको प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। साक्षात् सदाशिवकी धर्मपत्नी जो उमा हैं, वे ही जगत्का कार्य सिद्ध करनेके लिये भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट हुई हैं। प्रभो ! सरस्वती और लक्ष्मी—ये दो रूप धारण करके वे पहले ही यहाँ आ चुकी हैं। इनमें लक्ष्मी तो श्रीविष्णुकी प्राणवल्लभा हो गयी और सरस्वती मेरी। अब हमारे लिये वे तीसरा रूप धारण करके प्रकट हुई हैं। प्रभो ! लोकहितका कार्य करनेकी इच्छावाली देवी शिवा दक्षपुत्रीके रूपमें अवतारी हुई है। उनका नाम सती है। सती ही ऐसी भार्या हो सकती है, जो सदा आपके लिये हितकारिणी हो। देवेश ! महाते जस्तिनी सती आपके लिये, आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये हृष्टापूर्वक कठार व्रतका पालन करती हुई तपस्या कर रही हैं। महेश्वर ! आप उन्हें वर देनेके लिये जाइये, कृपा कीजिये और वडी प्रसन्नताके साथ उन्हें उनकी तपस्याके अनुरूप वर देकर उनके साथ विवाह कीजिये। शंकर ! भगवान् विष्णुकी, मेरी तथा इन सम्पूर्ण देवताओंकी यही इच्छा है। आप अपनी शुभ दृष्टिसे हमारी इस इच्छाको पूर्ण कीजिये, जिससे हम आदरपूर्वक इस उत्सवको देख सकें। ऐसा होनेसे तीनों लोकोंमें सुख देनेवाला परम मङ्गल होगा और सबकी सारी चिन्ता मिट जायगी, इसमें संशय नहीं है।’

तदनन्तर मेरी बात समाप्त होनेपर लीलाविग्रह धारण करनेवाले भक्तवत्सल महेश्वरसे मधुसूदन अन्युत्तमे इसीका समर्थन किया।

तब भक्तवत्सल भगवान् शिवने हँसकर कहा, ‘वहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।’ उनके ऐसा कहनेपर हम दोनों उनसे आज्ञा ले अपनी पत्नी तथा देवताओं और मुनियोंके साथ अत्यन्त प्रशंसन हो अपने अभीष्ट स्थानको चले आये।

( अव्याय १६ )

सतीको शिवसे वरकी प्राप्ति तथा भगवान् शिवका ब्रह्माजीको दृथके पास भेजकर सतीका वरण करना

प्रगाढ़ी कहते हैं—‘नुने ! उधर सतीने आश्विन मालके दृढ़स्थी असी तिथिको उपवास करके भक्तिभावसे नवेश्वर विनाश पूजा किया। इन प्रकार नन्दावत पूर्ण होनेपर नवनी दिनमें प्रातःस्नान हुई सतीको भगवान् शिवने प्रत्यक्ष दर्शन

दिया। उनका श्रीविग्रह उच्चाङ्गनुन्दर एवं गौत्मण्डल था। उनके पाँच सुख थे और प्रत्येक सुखमें तीन-कीन नेत्र थे। मालदेशमें चन्द्रमा शोभा दे रहा था। उनका निर्ग्रह विनाश था और दण्डमें नील चिद्ध हण्डिगोचर होता था। उनके चार

मुजाएँ थीं। उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल, भ्रष्टकपाल, वर तथा अभय धारण कर रखवे थे। भस्मय अङ्गरागसे उनका सारा शरीर उद्धासित हो रहा था। गङ्गाजी उनके मस्तकवी शोभा बढ़ा रही थीं। उनके सभी अङ्ग बड़े मनोहर थे। वे महान् लावण्यके धाम जान पड़ते थे। उनके मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान एवं आहादजनक थे। उनकी अङ्गकान्ति करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत कर रही थी तथा उनकी आङ्गति छियोंके लिये सर्वथा ही प्रिय थी। सतीने ऐसे सौन्दर्यमाखुर्यसे युक्त प्रभु महादेवजीको प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणोंकी घन्दना की। उस समय उनका मुख लज्जासे छुका हुआ था। तपस्याके पुञ्चका फल प्रदान करनेवाले महादेवजी उन्हींके लिये कठोर व्रत धारण करनेवाली सतीको पक्षी बनानेके लिये प्रात करनेकी इच्छा रखते हुए भी उनसे इस प्रकार बोले।

**महादेवजीने कहा—**उत्तम व्रतका पालन करनेवाली दक्षनन्दिनि ! मैं तुम्हारे इस व्रतसे बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिये कोई वर माँगो। तुम्हारे मनको जो अभीष्ट होगा, वही वर मैं तुम्हें दूँगा।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**मुने ! जगदीश्वर महादेवजी यथापि सतीके मनोभावको जानते थे, तो भी उनकी वात सुननेके लिये बोले—‘कोई वर माँगो’। परंतु सती लज्जाके अधीन हो गयी थीं; इसलिये उनके हृदयमें जो वात थी, उसे वे स्पष्ट शब्दोंमें कह न सकीं। उनका जो अभीष्ट मनोरथ था, वह लज्जासे आच्छादित हो गया। प्राणवङ्गम शिवका प्रिय वचन सुनकर सती अत्यन्त प्रेममें मग्न हो गयीं। इस वातको जानकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और शीघ्रतापूर्वक बारंबार कहने लगे—‘वर माँगो, वर माँगो’। सत्पुरुषोंके आश्रयभूत अन्तर्यामी शम्भु सतीकी भक्तिके बशीभूत हो गये थे। तब सतीने अपनी लज्जाको रोककर महादेवजीसे कहा—‘वर देनेवाले प्रभो ! मुझे मेरी इच्छाके अनुसार ऐसा वर दीजिये, जो टल न सके।’ भक्तवत्सल भगवान् शंकरने देखा सती अपनी वात पूरी नहीं कह पा रही है, तब वे स्वयं ही उनसे बोले—‘देवि ! तुम मेरी भार्या हो जाओ।’ अपने अभीष्ट फलको प्रकट करनेवाले उनके इस वचनको सुनकर आनन्दमग्न हुईं सती चुपचाप खड़ी रह गयीं; क्योंकि वे मनोवाञ्छित वर पा चुकी थीं। फिर दक्षकन्या प्रसन्न हो दोनों हाथ जोड़ मस्तक छुका भक्तवत्सल शिवसे बारंबार कहने लगीं।

**सती बोली—**देवाधिदेव महादेव ! प्रभो ! जगत्पते ! अप मेरे पिताको कहकर वैवाहिक विधिसे मेरा पाणिभ्रण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! सतीकी यह वात सुनकर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रेमसे उनकी ओर देखकर कहा—‘प्रिये ! ऐसा ही होगा।’ तब दक्षकन्या सती भी भगवान् शिवजो प्रणाम करके भक्तिपूर्वक विदा माँग—जानेकी आशा प्राप्त करके मोह और आनन्दसे युक्त हो माताके पास लैट गयीं। इस भगवान् शिव भी हिमालयपर अपने आश्रममें प्रवेश करके दक्षकन्या सतीके वियोगसे कुछ कष्टका अनुभव करते हुए उन्हींका चिन्तन करने लगे। देवर्पं ! फिर मनको एकाधक लैकिक गतिका आश्रय ले भगवान् शंकरने मन-ही-मन समरण किया। त्रिशूलवारी महेश्वरके सरण करनेपर उसिंद्रियसे प्रेरित हो मैं तुरंत ही उनके सामने जा खड़ा हुए तात ! हिमालयके शिखरपर जहाँ सतीके वियोगका अनु करनेवाले महादेवजी विद्यामान थे, वही मैं सरस्वतीके उपस्थित हो गया। देवर्पं ! सरस्वतीसहित मुझे आया। सतीके प्रेमपाशमें बैधे हुए शिव उत्सुकतापूर्वक बोले।

**शम्भुने कहा—**ब्रह्मन् ! मैं जबसे विवाहके ज्ञानस्वार्थवुद्धि कर वैठा हूँ, तबसे अब मुझे इस स्वार्थमें स्वत्व-सा प्रतीत होता है। दक्षकन्या सतीने वड़ी भक्तिरेति आराधना की है। उसके नन्दाव्रतके प्रभावसे मैंने अभीष्ट वर देनेकी घोषणा की। ब्रह्मन् ! तब उसुक्षसे यह वर माँगा कि आप मेरे पति हो जाइये। सुनकर सर्वथा संतुष्ट हो मैंने भी कह दिया कि ‘तुम मेरे पक्षी हो जाओ।’ तब दाक्षायणी सती मुझसे बोली—‘जगत्पते आप मेरे पिताको सूचित करके वैवाहिक विधिसे मुझे ग्रह करें।’ ब्रह्मन् ! उसकी भक्तिसे संतोष होनेके कारण मैं उसका वह अनुरोध भी स्वीकार कर लिया। विधातः ! तब मैं अपनी माताके घर चली गयी और मैं यहाँ चला आया। इसलिये अब तुम मेरी आशासे दक्षके घर जाओ और ऐसा यज्ञ करो। किंतु प्रजापति दक्ष शीघ्र ही मुझे अपनी कन्याका दान कर दें।

उनके इस प्रकार आशा देनेपर मैं कृतकृत्य और प्रसन्न हो गया तथा उन भक्तवत्सल विश्वायसे इस प्रकार बोला।

**मुख ब्रह्माने कहा—**भगवन् ! शम्भो ! अपने दो कुछ कहा है, उसपर भलीभांति विचार करके हमलोगोंपर हले ही उसे सुनिश्चित कर दिया है। वृषभध्वज ! इसने मुख्यतः देवताओंका और मेरा भी स्वार्थ है। दक्ष स्वयं ही

आपको अपनी पुत्री प्रदान करेंगे, किंतु आपकी आज्ञासे मैं भी उनके सामने आपका संदेश कह दूँगा।

सर्वेश्वर महाप्रभु महादेवजीसे ऐसा कहकर मैं अत्यन्त वेगशाली रथके द्वारा दक्षके घर जा पहुँचा।

नारदजीने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग ! विधातः ! वताइये—जब सती धरपर लौटकर आयीं, तब दक्षने उनके लिये क्या किया ?

ब्रह्माजीने कहा—तपस्या करके मनोवाञ्छित वर पाकर सती जब धरको लौट गयीं, तब वहाँ उन्होंने पिता-माताको प्रणाम किया। सतीने अपनी सखीके द्वारा माता-पिताको



प्रणामन्मध्यमीनद समाचार कहलाया। सखीने यह भी सूचित किया कि पतीको मरेश्वरले वरकी प्राप्ति हुई है, वे सतीकी भविते चहुए संतुष्ट हुए हैं। सखीके मुँहसे साता वृक्षान्त शुगर भात-पिताको यहाँ आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने गहाये उल्लङ्घन किया। उदारतेन दक्ष और महामनस्तिनी भविते भासतीको उनकी इच्छाके अनुसार द्रव्य दिया तथा

अन्यान्य अंधों और दीनोंको भी धन वैद्य। प्रसन्नता वडानेवाली अपनी पुत्रीको हृदयसे लगाकर माता वीरिणीने उसका मस्तक सूँधा और आनन्दमग होकर उसकी वारंवार प्रशंसा की। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ दक्ष इस चिन्तामें पड़े कि ‘मैं अपनी इस पुत्रीका विवाह भगवान् शंकरके साथ किस तरह करूँ ? महादेवजी प्रसन्न होकर आये ये, पर वे तो चले गये। अब मेरा पुत्रीके लिये वे फिर कैसे यहाँ आयेंगे ? यदि किसीको शीघ्र ही भगवान् शिवके निकट भेजा जाय तो यह भी उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि यदि वे इस तरह अनुरोध करनेपर भी मेरी पुत्रीको ग्रहण न करें तो मेरी याचना निष्कल हो जायगी।’

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए प्रजापति दक्षके सामने मैं सरस्वतीके साथ सहसा उपस्थित हुआ। मुझ पिताको आया देख दक्ष प्रणाम करके विनीतभावसे खड़े हो गये। उन्होंने मुझ स्वयम्भूको यथायोग्य आसन दिया। तदनन्तर दक्षने जब मेरे आनेका कारण पूछा, तब मैंने सब बातें वताकर उनसे कहा—‘प्रजापते ! भगवान् शंकरने तुम्हारी पुत्रीको प्राप्त करनेके लिये निश्चय ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है; इस विषयमें जो श्रेष्ठ कृत्य हो, उसका निश्चय करो। जैसे सतीने नाना प्रकारके भावोंसे तथा सात्त्विक व्रतके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की है, उसी तरह वे भी सतीकी आराधना करते हैं। इसलिये दक्ष ! भगवान् शिवके लिये ही संकल्पित एवं प्रकट हुई अपनी इस पुत्रीको तुम अविलम्ब उनकी सेवामें सौंप दो, इससे तुम कृतकृत्य हो जायेंगे। मैं नारदके साथ जाकर उन्हें तुम्हारे घर ले आऊँगा। फिर तुम उन्हें लिये उत्तम हुई अपनी यह पुत्री उनके हाथमें दे दो।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेरी यह यात सुनकर मेरे पुत्र दक्षको वडा हर्ष हुआ। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—‘पिताजी ! ऐसा ही होगा।’ सुने ! तब मैं अत्यन्त दर्पित हो चहुएसे उस स्थानको लौटा, जहाँ लोककल्याणमें तत्त्वर रहनेवाले भगवान् शिव वडी उल्लङ्घनसे नेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद ! मेरे लौट आनेपर रुठी और पुत्रीनहिं प्रजापति दक्ष भी पूर्णशाम हो गये। वे इतने संतुष्ट हुए, मातों अमृत पीकर अया गये हैं। (अन्तर्य १३)

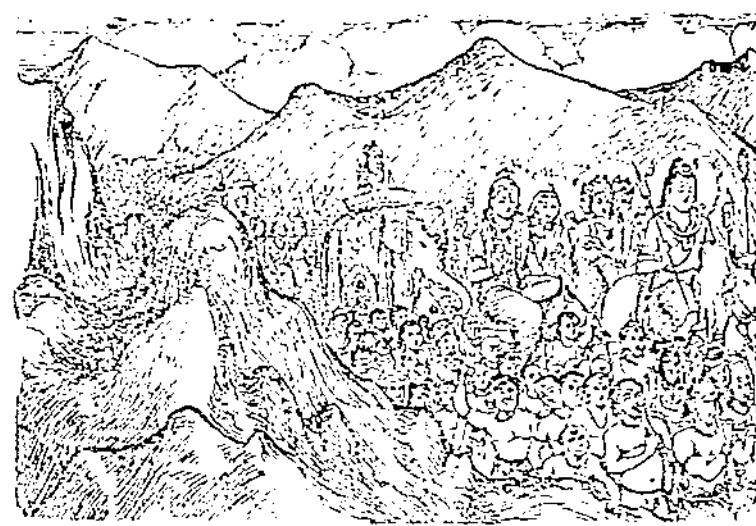
## ब्रह्माजीसे दक्षकी अनुमति पाकर देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार तथा सती और शिवका विवाह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मैं हिमालयके कैलास-शिखरपर रहनेवाले परमेश्वर महादेव शिवको लानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके पास गया और उससे इस प्रकार बोला—“वृषभ्यज ! सतीके लिये मेरे पुत्र दक्षने जो बात कही है, उसे सुनिये और जिस कार्यको वे अपने लिये असाध्य मानते थे, उसे सिद्ध हुआ ही समझिये। दक्षने कहा है कि ‘मैं अपनी पुत्री भगवान् शिवके ही हाथमें दूँगा; क्योंकि उन्हींके लिये यह उत्पन्न हुई है। शिवके साथ सतीका विवाह हो यह कार्य तो मुझे स्वतः ही अभीष्ट है; फिर आपके भी कहनेसे इसका महत्व और अधिक बढ़ गया। मेरी पुत्रीने स्वयं इसी उद्देश्यसे भगवान् शिवकी आराधना की है और इस समय शिवजी भी मुझसे इसीके विषयमें अन्वेषण (पूछताछ) कर रहे हैं; इसलिये मुझे अपनी कन्या अवश्य ही भगवान् शिवके हाथमें देनी है। विधातः ! वे भगवान् शंकर शुभ लग्न और शुभ मुहूर्तमें यहाँ पधरें। उस समय मैं उन्हें शिक्षाके तौरपर अपनी यह पुत्री दे दूँगा।’ वृषभ्यज ! मुझसे दक्षने ऐसी बात कही है। अतः आप शुभ मुहूर्तमें उनके घर चलिये और सतीको ले आइये।”

मुने ! मेरी यह बात सुनकर भक्तवत्सल रुद्र लौकिक गतिका आश्रय ले हैंते हुए मुझसे बोले—“संसारकी सूषि करनेवाले ब्रह्माजी ! मैं तुम्हारे और नारदके साथ ही दक्षके घर चलूँगा। अतः नारदका स्मरण करो। अपने मरीचि आदि मानस पुत्रोंको भी बुला लो। विधे ! मैं उन सबके साथ दक्षके निवासस्थानपर चलूँगा। मेरे पार्षद भी मेरे साथ रहेंगे।”

नारद ! लोकाचारके निर्वाहमें लगे हुए भगवान् शिवके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने तुम्हारा और मरीचि आदि पुत्रोंका भी स्मरण किया। मेरे याद करते ही तुम्हारे साथ मेरे सभी मानस पुत्र भनमें आदरकी भावना लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उस समय तुम सब लोग हर्षसे उत्कुल्ल हो रहे

थे। फिर रुद्रके स्मरण करनेपर शिवभक्तोंके समाट् भजन, विष्णु भी अपने सैनिकों तथा कमलदेवीके साथ गद्दार आरूढ़ हो तुरंत वहाँ आ गये। तदनन्तर चैत्रमाहे शुक्रपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें, रविवारको पूर्वाकाल्युनी नक्षत्रमें मुक्त ब्रह्मा और विष्णु आदि समस्त देवताओंके समहेश्वरने विवाहके लिये यात्रा की। मार्गमें उन देवता



और ऋषियोंके साथ यात्रा करते हुए भगवान् शंकर व शोभा पा रहे थे। वहाँ जाते हुए देवताओं, मुनियों व आनन्दमय मनवाले प्रमथगणोंका रास्तेमें बड़ा उत्तम है। था। भगवान् शिवकी इच्छासे वृषभ, व्याघ्र, सर्व, जटा, चन्द्रकला आदि सब-के-सब उनके लिये यथायोग्य आरूढ़ बन गये। तदनन्तर वेगसे चलनेवाले बलवान् वर्ण नन्दिके श्वरपर आरूढ़ हुए महादेवजी श्रीविष्णु आदि देवताओं साथ लिये क्षणभरमें प्रसन्नतापूर्वक दक्षके घर जा पहुँचे।

वहाँ विनीतचित्तवाले प्रजापति दक्ष समस्त भास्तु जनोंके साथ भगवान् शिवकी अग्रवानीके लिये उनके शंकर आये। उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें हर्षजनित रोमांच आया था। स्वयं दक्षने अपने द्वारपर आये हुए शंकर देवताओंका सत्कार किया। वे सब लोग सुरश्रेष्ठ विद्वान् विटाकर उनके पार्श्वभागमें स्वयं भी मुनियोंके साथ शंकर बैठ गये। इसके बाद दक्षने मुनियोंसहित समस्त देवताओं व परिकमा की और उन सबके साथ भगवान् विष्णु घरके भीतर ले आये। उस समय दक्षके

बहुती प्रतन्नता थी। उन्होंने सर्वेश्वर शिवको उत्तम आकृत देकर स्वयं ही विधिपूर्वक उनका पूजन किया। तत्प्रश्नात् श्रीविष्णुका, मेरा, ब्राह्मणोंका, देवताओंका और समस्त शिवगणोंका भी यथोचित विधिसे उत्तम भक्तिभावके साथ पूजन किया। इस तरह पूजनीय पुरुषों तथा अन्य लोगोंसहित उन सबका यथोचित आदर-सत्कार करके दक्षने मेरे मानस पुनर मरीचि आदि मुनियोंके साथ व्यावस्थक सलाह की। इसके बाद मेरे पुनर दक्षने मुझ पितासे मेरे चरणोंमें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘प्रभो! आप ही वैवाहिक कार्य करयें।’

तब मैं भी हर्षपरे हृदयसे ‘वहुत अच्छा’ कहकर उठा और वह सारा कार्य करने लगा। तदनन्तर ग्रहोंके घलसे युक्त

शुभ लम्ब और सुहृत्तमें दक्षने हर्षपूर्वक अपनी पुत्री सतीका हाथ भगवान् शंकरके हाथमें दे दिया। उस समय हर्षसे भरे हुए भगवान् वृषभभवजने भी वैवाहिक विधिसे सुन्दरी दक्षकन्याका पाणिग्रहण किया। फिर मैंने, श्रीहरिने, तुम तथा अन्य मुनियोंने, देवताओं और प्रमथगणोंने भगवान् शिवको प्रणाम किया और सबने नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उन्हें संतुष्ट किया। उस समय नाच-गानके साथ महान उत्सव मनाया गया। समस्त देवताओं और मुनियोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान् शिवके लिये कन्यादान करके मेरे पुनर दक्ष वृत्तार्थ हो गये। शिवा और शिव प्रसन्न हुए तथा सारा तंसार मङ्गलका निकेतन बन गया।

( अध्याय १८ )

### सती और शिवके द्वारा अग्निकी परिक्रमा, श्रीहरिद्वारा शिवतत्त्वका वर्णन, शिवका ब्रह्माजीको दिये हुए वरके अनुसार बेदीपर सदाके लिये अवस्थान तथा शिव और सतीका विदा हो कैलासपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! कन्यादान करके दक्षने भगवान् शंकरको नाना प्रकारकी वस्तुएँ दहेजमें दीं। यह सब परके बै बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने ब्राह्मणोंको भी नाना प्रकारके घन बौंटे। तत्प्रश्नात् लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु शम्भुके पात आ हाथ जोड़कर खड़े हुए और यों बोले—‘देवदेव गहादेव ! दयासागर ! प्रभो ! कात ! आप सभूर्ण चपत्तके पिता हैं और सती देवी सरसी नाता हैं। आप दोनों शतपुरुषोंके कल्पण तथा दुर्गोंके दग्नके लिये सदा लीलापूर्वक अवतार भरण करते हैं—मह उनातन शुतिका कथन है। आप चिकने नील अङ्गनके समान शोभावली सतीके साथ चिल प्रकार शोभा पा रहे हैं, मैं उससे उलटे लक्ष्मीके समान शोभा पा रहा हूँ—अर्थात् सती नीलवर्णा तथा आप गौरवर्ण हैं। उपसे उलटे मैं नीलवर्ण तथा लक्ष्मी गौरवर्ण हूँ।

नारद ! मैं देवी सतीके पास आकर रुद्रपूर्वक विधिसे लिया पूर्वक बारा अग्निकार्य कराने लगा। मुझ आचार्य ने यथा ग्रामणोंसे अशाले शिवा और शिवने वहै हर्षके नाथ त्रिपूरुषक अग्निकी परिक्रमा की। उत लक्ष्य वहाँ बड़ा अद्भुत उत्तर भवाना गया। गजे, याजे और हृत्यके लाभ ऐसे लक्ष्य नहीं उत्तर लगाने वहाँ दुखद जान पड़ा।

तदनन्तर भगवान् विष्णु बोले—सदाशिव ! मैं आपकी आज्ञासे यहाँ शिवतत्त्वका वर्णन करता हूँ। समस्त देवता तथा दूसरे-दूसरे मुनि अपने ममको एकाग्र करके इस विषयको सुनें। भगवन् ! आप प्रधान और अप्रधान ( प्रकृति और उससे अतीत ) हैं। आपके अनेक भगवान् हैं। फिर भी आप भागरहित हैं। ज्योतिर्मय स्वरूपवाले आप परमेश्वरके ही हम तीनों देवता अंश हैं। आप कौन, मैं कौन और ब्रह्मा कौन हैं ? आप परमात्माके ही ये तीन अंश हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण एक दूसरसे भिन्न प्रतीत होते हैं। आप अपने स्वरूपका चिन्तन कीजिये। आपने स्वयं ही लीला-पूर्वक दरीर धारण किया है। आप निर्मुग ब्रह्मलभ्ये एक हैं। आप ही सतुण ग्रहहैं और हम ब्रह्मा, विष्णु तथा शृणु—तीनों आपके अंश हैं। जैसे एक ही दरीरके भिन्न-भिन्न अवयव मत्तक, ब्रीवा आदि नाम धारण करते हैं तथापि उन भासीसे वै भिन्न नहीं हैं, उनी प्रकार हम तीनों अंश आप परमेश्वरके ही अज्ञ हैं। जो ज्योतिर्मयः आकाशके समान वर्यवदारी एवं निलंघ, स्वयं ही अनन्त धाम, पुरानः हृष्टस्य, अवश्य, अनन्तः नित्य तथा दीर्घ आदि विदेश्योंसे रहित निर्दिशर ग्रन्थ हैः यह आप दिये हैं। उन्हें आप ही सब हुए हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर ! भगवान् विष्णुकी

यह बात सुनकर महादेवजी वडे प्रसन्न हुए। तदनन्तर उस विवाह-यज्ञके स्वामी ( यजमान ) परमेश्वर शिव प्रसन्न हो लौकिकी गतिका आश्रय ले हाथ जोड़कर खडे हुए सुझ ब्रह्मसे प्रेमपूर्वक बोले ।

शिवने कहा—ब्रह्म ! आपने सारा वैवाहिक कार्य अच्छी तरह सम्पन्न करा दिया । अब मैं प्रसन्न हूँ । आप मेरे आचार्य हैं । बताइये, आपको क्या दक्षिणा दूँ? सुरज्येष्ठ !

आप उस दक्षिणाको माँगिये । महाभाग !

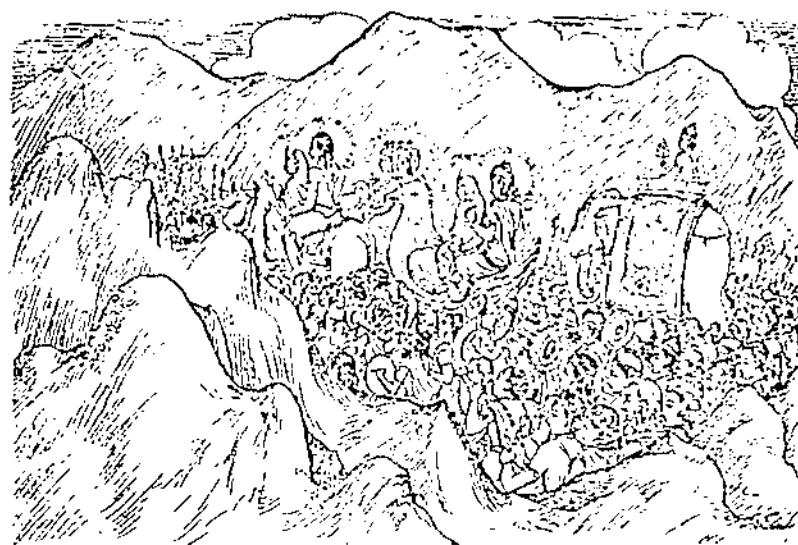
यदि वह अत्यन्त दुर्लभ हो तो भी उसे शोध कहिये । मुझे आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।

मुने ! भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर मैं हाथ जोड़ चित्तसे उन्हें बारंबार प्रणाम करके बोला—‘देवेश ! यदि आप प्रसन्न हों और महेश्वर ! यदि मैं वर पानेके योग्य होऊँ तो प्रसन्नतापूर्वक जो ब्रह्म कहता हूँ, उसे आप पूर्ण कीजिये । महादेव ! आप इसी रूपमें इसी वेदीपर सदा विराजमान रहें, जिससे आपके दर्शनसे मनुष्योंके पाप धूल जायें । चन्द्रशेखर ! आपका सांनिध्य होनेसे मैं इस वेदीके समीप आश्रम बनाकर तपस्या करूँ—यह मेरी अभिलाषा है । चैत्रके शुक्रपक्षकी त्रयोदशीको पूर्वाफालगुनी नक्षत्रमें रविवारके दिन इस भूतलपर जो मनुष्य भक्तिभावसे आपका दर्शन करे, उसके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जायें, विपुल पुण्यकी वृद्धि हो और समस्त रोगोंका सर्वथा नाश हो जाय । जो नारी दुर्भगा, बन्ध्या, कानी अथवा रूपहीना हो, वह भी आपके दर्शनमात्रसे ही अवश्य निर्दोष हो जाय ।’

मेरी यह बात उनकी आत्माको सुख देनेवाली थी । इसे सुनकर भगवान् शिवने प्रसन्नचित्तसे कहा—‘विवातः ! ऐसा ही होगा । मैं तुम्हारे कहनेसे सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये अपनी पक्षी सतीके साथ इस वेदीपर सुस्थिरभावसे स्थित रहूँगा ।’

ऐसा कहकर पक्षीसहित भगवान् शिव अपनी अंशारूपिणी मूर्तिको प्रकट करके वेदीके मध्यभागमें विराजमान हो गये । तपश्चात् स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाले परमेश्वर शंकर दक्षसे विदा ले अपनी पक्षी सतीके साथ कैलास जानेको उद्यत हुए ।

उस समय उत्तम दुदिवाले दक्षने चिनयसे मस्तक सुख हाथ जोड़ भगवान् वृपभक्षजकी प्रेमपूर्वक सुति की । और श्रीविष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों और शिवाणोंने नमस्कारपूर्वक नाना प्रकारकी सुति करके वडे आनन्दसे जय-जयकार किया । तदनन्तर दक्षकी आज्ञासे भगवान् शिवसे प्रसन्नतापूर्वक सतीको वृपभक्षी पीठपर विठाया और स्वयं भी उसपर आरूढ़ हो वे प्रभु हिमालय पर्वतकी ओर चले ।



भगवान् शंकरके समीप वृपभपर वैठी हुई सुन्दर दाँत औ मनोहर हासवाली सती अपने नीलश्याम वर्णके कारण चन्द्रमां नीली रेखाके समान शोभा पा रही थीं । उस समय उन न दम्पतिकी शोभा देख श्रीविष्णु आदि समस्त देवता, मरीनि आदि महर्षि तथा दूसरे लोग उग्रसे रह गये । हिल-हुल भी न सके तथा दक्ष भी मोहित हो गये । ततश्चात् कोई वज्र बजाने लोग और दूसरे लोग मधुर खरसे गीत गने लो । कितने ही लोग प्रसन्नतापूर्वक शिवके कल्याणमय उज्ज्वल यशका गान करते हुए उनके पीछे-पीछे चले । भगवान् शंकरने बीच रास्तेसे दक्षको प्रसन्नतापूर्वक लौटा दिया और स्वयं प्रेमाकुल हो प्रमथगणोंके साथ अपने धामको जा पहुँचे । यद्यपि भगवान् शिवने विष्णु आदि देवताओंको भी विदा कर दिया था, तो भी वे बड़ी प्रसन्नता और भक्तिके साथ पुक उनके साथ हो लिये । उन सब देवताओं, प्रमथगणों तथा अपनी पक्षी सतीके साथ हर्षमरे शम्भु हिमालय पर्वतसे सुशोभित अपने कैलासधाममें जा पहुँचे । वहाँ जाकर उहाँमें देवताओं, मुनियों तथा दूसरे लोगोंका बहुत आदर-उमान करके उन्हें प्रसन्नतापूर्वक विदा किया । शम्भुकी आज्ञा ले वे

विष्णु आदि सब देवता तथा मुनि नमस्कार और स्तुति करके मुखपर प्रसन्नताकी छाप लिये अपने-अपने धामको चले गये । सदाचित्यका चिन्तन करनेवाले भगवान् शिव भी अत्यन्त आनन्दित हो हिमालयके शिखरपर रहकर अपनी पत्नी दक्षकन्या सतीके साथ विहार करने लगे ।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्त्रन्तरमें भगवान् शंकर और सतीका जिस प्रकार विवाह हुआ, वह सारा प्रसङ्ग मैंने तुमसे कह दिया । जो विचाहकालमें,

यज्ञमें अथवा किसी भी शुभ कार्यके आरम्भमें भगवान् शंकरकी पूजा करके शान्तचित्तसे इस कथाको सुनता है, उसका सारा कर्म तथा वैवाहिक आयोजन विना किसी विघ्न-वाधाके पूर्ण होता है और दूसरे शुभ कर्म भी सदा निर्विघ्न पूर्ण होते हैं । इस शुभ उपाख्यानको प्रेमपूर्वक सुनकर विवाहित होनेवाली कन्या भी सुख, सौभाग्य, सुशीलता और सदाचार आदि सद्गुणसे सम्पन्न साक्षी छी तथा पुत्रवती होती है । ( अध्याय १९-२० )

### सतीका प्रश्न तथा उसके उत्तरमें भगवान् शिवद्वारा ज्ञान एवं नवधाभक्तिके खलूपका विवेचन

कैलासं तथा हिमालय पर्वतपर श्रीशिव और सतीके विविध विहारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके पश्चात् ब्रह्मजीने कहा—मुने ! एक दिनकी शात है, देवी सती एकान्तमें भगवान् शंकरसे मिलीं और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ खड़ी हो गयीं । प्रभु शंकरको पूर्ण प्रसन्न जान नमस्कार करके विनीत भावसे खड़ी हुई दक्षकुमारी सती भक्तिभावसे अड़लि बैठे थोली ।

सतीने कहा—देवदेव महादेव ! कस्तुरासागर ! प्रभो ! दीनोदारपरायण ! महायोगिन् ! मुक्षपर कृपा कीजिये । आप परम पुरुष हैं । सबके स्वामी हैं । रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणसे परे हैं । निर्गुण भी हैं, सर्गुण भी हैं । सबके साक्षी, निर्विकार और महाप्रभु हैं । हर ! मैं धन्य हूँ, जो आपकी शामिनी और आपके साथ सुन्दर विहार करनेवाली आपकी प्रिया हुई । स्वामिन् ! आप अपनी भक्तवत्सलतासे ही प्रेरित होकर मेरे पति हुए हैं । नाथ ! मैंने बहुत वर्णोत्तक आपके साथ विहार किया है । महेश्वान ! इससे मैं बहुत संतुष्ट हुई हूँ और अब मेरा मन उधरसे हट गया है । देवेश्वर हर ! अब नो मैं उस परम तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, जो निरतिशय सुख प्रदान करनेवाला है तथा जिसके द्वारा जीव रोकास-दुर्घटसे अनागमी ही उद्धार पा सकता है । नाथ ! जिस वर्षा भग्नान फरके विषयी जीव भी परम पदको प्राप्त करे और संगास्यन्धनमें न बैठे, उने अपन बताइये, मुखपर उपा यीजिये ।

प्रभाजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार आदिभक्ति भरेखी यत्तीने देवता जीवोंके उद्धारके लिये जब उत्तम भक्ति-भवनके लिये भगवान् शंकरसे प्रसन्न मिला, तब उसके उत्त प्रसारे उनसे स्पेच्छासे रातेर भारत दरनेवाले तथा योगके

द्वारा भोगसे विरक्त चित्तवाले स्वामी शिवने अत्यन्त प्रसन्न होकर सतीसे इस प्रकार कहा ।

शिव बोले—देवि ! दक्षनन्दिनि ! महेश्वर ! सुनो ; मैं उसी परमतत्त्वका वर्णन करता हूँ, जिससे वासनावद्ध जीव तत्त्वाल मुक्त हो सकता है । परमेश्वर ! तुम विज्ञानको परमतत्त्व जानो । विज्ञान वह है, जिसके उदय होनेपर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है, ब्रह्मके सिवा दूसरी किसी वस्तुका स्मरण नहीं रहता तथा उस विज्ञानी पुरुषकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध हो जाती है । प्रिये ! वह विज्ञान दुर्लभ है । इस निलोकीमें उसका ज्ञाता कोई विरल्य ही होता है । वह जो और जैसा भी है, सदा मेरा स्वरूप ही है, साक्षात्परात्पर ब्रह्म है । उस विज्ञानकी माता है मेरी भक्ति, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली है । वह मेरी कृपासे मुलभ होती है । भक्ति नौ प्रकारकी ब्रतायी गयी है । सती ! भक्ति और ज्ञानमें कोई भेद नहीं है । भक्त और ज्ञानी दोनोंको ही सदा सुख प्राप्त होता है । जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं ही होती । देवि ! मैं सदा भक्तके अर्थात् रहता हूँ और भक्तिके प्रभावसे जातिहीन नीच मनुष्योंके धरांमें भी चला जाता हूँ, इसमें संशय नहीं है । ५ नती ! यह भक्ति दो प्रकारकी है—समुग्ना और निर्गुणा । जो वंधी ( शाक्तविधिसे प्रेरित ) और स्वाभाविकी ( हृदयके नहर अनुरागसे प्रेरित ) भक्ति होती है, वह श्रेष्ठ है तथा इससे मिश्र जो कामनामृद्ग

\* सती दाने न भेदे दि लक्ष्मुः सर्वा दुर्गमः ।

दिदाने न भवन्त्येऽस्ति भक्तिविदेतिनः ॥

भन्त्येतः सदाहृ व नद्यन्नदाद चृत्यपि ॥

नोदरनो लक्ष्मिन्नामौ ददिते देवि न सदादः ॥

( शिं पु० ४, ल० ३० स० ८० न० ३३, १२-१३ )

भक्ति होती है, वह निम्नकोटिकी मानी गयी है। पूर्वोक्त सगुणा और निर्गुणा—ये दोनों प्रकारकी भक्तियाँ नैषिकी और अनैषिकी के भेदसे दो भेदवाली हो जाती हैं। नैषिकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अनैषिकी एक ही प्रकारकी कही गयी है। विद्वान् पुरुष विहिता और अविहिता आदि भेदसे उसे अनेक प्रकारकी मानते हैं। इन द्विविध भक्तियोंके बहुत-से भेद-प्रभेद होनेके कारण इनके तत्त्वका अन्यत्र वर्णन किया गया है। प्रिये ! मुनियोंने सगुणा और निर्गुणा दोनों भक्तियोंके नौ अङ्ग बताये हैं। दक्षनन्दिनि ! मैं उन नवों अङ्गोंका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमसे सुनो। देवि ! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सदा मेरा बन्दन, सख्य और आत्मसमर्पण—ये विद्वानोंने भक्तिके नौ अङ्ग माने हैं ॥

शिवे ! भक्तिके उपाङ्ग भी बहुत-से बताये गये हैं ।

देवि ! अब तुम मन लगाकर मेरी भक्तिके पूर्वोक्त नवों अङ्गोंके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो; वे लक्षण भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो स्थिर व्यासनसे वैठकर तन-मन आदि-से मेरी कथा-कीर्तन आदिका नित्य सम्मान करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक अपने श्रवणपुटोंसे उसके अमृतोपम रसका पान करता है, उसके इस साधनको 'श्रवण' कहते हैं। जो हृदय-काशके द्वारा मेरे दिव्य जन्म-कर्मोंका चिन्तन करता हुआ प्रेमसे वाणीद्वारा उनका उच्चस्वरसे उच्चारण करता है, उसके इस भजन-साधनको 'कीर्तन' कहते हैं। देवि ! मुक्ष नित्य महेश्वरको सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर जो संसारमें निरन्तर निर्भय रहता है, उसीको 'स्मरण' कहा गया है। अरुणोदयसे लेकर हर समय सेव्यकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियोंसे जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही 'सेवन' नामक भक्ति है। अपनेको प्रभुका किंकर समझकर हृदयमृतके भोगसे स्वामीका सदा प्रिय सम्पादन करना 'दास्य' कहा गया है। अपने धन-वैमवके अनुसार शाखीय विधिसे मुक्ष परमात्माको सदा पाद्य आदि सोलह उपचारोंका जो समर्पण करना है, उसे 'अर्चन' कहते हैं। मनसे ध्यान और वाणीसे बन्दनात्मक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक आठों अङ्गोंसे भूतल-का स्पर्श करते हुए जो इष्टदेवको नमस्कार किया जाता है,

\* श्रवण कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा ।  
दास्यं तथार्चनं देवि बन्दनं मम सर्वदा ॥

सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्दुधाः ।

( शि० पु० र० स० स० ख० २३ । २२५ )

उसे 'बन्दन' कहते हैं। ईश्वर मङ्गल या अमङ्गल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मङ्गलके लिये ही है। ऐसा दृढ़ विश्वास रखना 'सख्य' भक्तिका लक्षण है ॥४ देह आदि जो कुछ भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान्की प्रसन्नताके लिये उन्हींको समर्पित करके अपने निर्वाहके लिये भी कुछ बचाकर न रखना अथवा निर्वाहकी चिन्तासे भी रहत है जाना 'आत्मसमर्पण' कहलाता है। ये मेरी भक्तिके नौ अङ्ग हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे शास्त्र प्राकृत्य होता है तथा ये सब साधन मुझे अत्यन्त प्रिय "मेरी भक्तिके बहुत-से उपाङ्ग भी कहे गये हैं, जैसे ६ आदिका सेवन आदि। इनको विचारसे समझ लेना चाहि

प्रिये ! इस प्रकार मेरी साङ्गोपाङ्ग भक्ति सबसे उ है। यह शान-वैराग्यकी जननी है और मुक्ति इसकी दासी यह सदा सब साधनोंसे ऊपर विराजमान है। इसके सम्पूर्ण कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है। यह भक्ति मुझे तुम्हारे समान ही प्रिय है। जिसके चित्तमें नित्य-निरन्तर भक्ति निवास करती है, वह साधक मुझे अत्यन्त प्यार देवेश्वरि ! तीनों लोकों और चारों युगोंमें भक्तिके समान दृ कोई सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुगमें तो यह वि सुखद एवं सुविधाजनक है ॥५ देवि ! कलियुगमें प्रायः और वैराग्यके कोई ग्राहक नहीं हैं। इसलिये वे दोनों इस्तानशून्य और जर्जर हो गये हैं। परंतु भक्ति कलियु तथा अन्य सब युगोंमें भी प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। भक्ति प्रभावसे मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ, इसमें संतुष्ट है। संसारमें जो भक्तिमान् पुरुष है, उसकी मैं सदा सह करता हूँ, उसके सारे विघ्नोंको दूर हटाता हूँ। उस भक्ति जो शत्रु होता है, वह मेरे लिये दण्डनीय है—इसमें संशयः है ॥६ देवि ! मैं अपने भक्तोंका रक्षक हूँ। भक्तकी रक्षा

\* मङ्गलमङ्गलं यद् यत् करोतीतीक्षरो हि मे ।

सर्वं तग्मङ्गलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम् ॥

( शि० पु० र० स० स० ख० २३ । ३

+ वैलोकये भक्तिसद्गः पन्था नाति सुखावहः ।

चतुर्दुर्गेषु देवेशि वलौ तु सुविशेषतः ॥

( शि० पु० र० स० स० स० ख० २३ । ३८

† यो भक्तिमानुमालोके सदाहं तत्सहयश्च ।

विघ्नहर्ता रिपुसत्य दण्डयो नात्र च संशयः ॥

( शि० पु० र० स० स० स० ख० २३ । ४१ )

लिये ही मैंने कृपित हो थपने नेत्रजनित अग्निसे कालको भी दृध कर ढाला था । प्रिये ! भक्तके लिये मैं पूर्वकालमें सूर्यपर भी अत्यन्त कुद्ध हो उठा था और शूल लेकर मैंने उन्हें भार भगाया था । देवि ! भक्तके लिये मैंने सैन्यसंहित रावणको भी क्रोधपूर्वक त्याग दिया और उसके प्रति कोई पक्षपात नहीं किया । सती ! देवेश्वरि ! बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं सदा ही भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्ति करनेवाले पुरुषके अत्यन्त वशमें ही जाता हूँ ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार भक्तका महत्त्व सुनकर दक्षकन्या सतीको बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवको मन-ही-मन प्रणाम किया । मुने ! राती देवीने पुनः भक्तिकाण्डविषयक शास्त्रके विषयमें भक्तिपूर्वक पृष्ठा । उन्होंने जिज्ञासा की कि जो लोकमें सुखदायक तथा जीवोंके उद्धारके साधनोंका प्रतिपादक है, वह शास्त्र कौन-सा है । उन्होंने यन्त्रमन्त्र, शास्त्र, उसके माहात्म्य तथा अन्य जीवोद्धारक धर्ममय साधनोंके विषयमें विशेषरूपसे जाननेकी

इच्छा प्रकट की । सतीके इस प्रश्नको सुनकर शंकरजीके मनमें वड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने जीवोंके उद्धारके लिये सब शास्त्रोंका प्रेमपूर्वक वर्णन किया । महेश्वरने पाँचों अङ्गोंसंहित तन्त्र-शास्त्र, यन्त्रशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न देवेश्वरोंकी महिमाका वर्णन किया । मुनीश्वर ! इतिहास-कथासंहित उन देवताओंके भक्तोंकी महिमाका, वर्णाश्रम धर्मोंका तथा राजधर्मोंका भी निख्यण किया । पुत्र और स्त्रीके धर्मकी महिमाका, कभी नष्ट न होनेवाले वर्णाश्रमधर्मका और जीवोंको सुख देनेवाले वैद्यकशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्रका भी वर्णन किया । महेश्वरने कृपा करके उत्तम सामुद्रिक शास्त्रका तथा और भी बहुतसे शास्त्रोंका तत्त्वतः वर्णन किया । इस प्रकार लोकोपकार करनेके लिये सद्गुणसम्पन्न शरीर धारण करनेवाले, त्रिलोकसुखदायक और सर्वज्ञ सती-शिव हिमालयके कैलसशिखरपर तथा अन्यान्य स्थानोंमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे । वे दोनों दम्पति साक्षात् परब्रह्मस्वल्प हैं ।

( अध्याय २१-२३ )

## दण्डकारण्यमें शिवको श्रीरामके प्रति मस्तक झुकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा श्रीरामकी परीक्षा

नारदजी घोले—ब्रह्मन् ! विधे ! प्रजानाथ ! महाप्राप्त ! निधे ! आपने भगवान् शंकर तथा देवी सतीके मङ्गलकारी शक्ति शक्त्या कराया है । अब इस समय पुनः प्रेमपूर्वक ने उत्तम यशका वर्णन कीजिये । उन शिव-दम्पतिने वहाँ र जीन-सा चरित्र किया था ?

ब्रह्माजीने कहा—मुने ! तुम मुझसे सती और शिवके त्रितीय प्रेमसे श्रवण करो । वे दोनों दम्पति वहाँ लौकिकी का आश्रय ले नित्य-निरन्तर कीड़ा किया करते थे । नितर महादेवी सतीको अपने पति शंकरका वियोग प्राप्त ॥। ऐसा कुछ ऐसा दुखिनाले विद्वानोंका कथन है । परंतु

! वास्तवमें उन दोनोंका परस्पर वियोग कैसे प्राप्त है । दोनोंकि वे दोनों वाणी और अर्थके समान एक ऐसी उद्यम मिले-जुले हैं, शक्ति और शक्तिमान् हैं तथा दूरस्त्र ॥। तिर भी उनमें लीला-विषयक रस्ते होनेके लिये यह सब कुछ अपेक्षित हो सकता है । सती और शिव नीर ईश्वर हैं, तो भी लौकिक रस्तिया अनुसरण करके वे जी लौकिक रस्ते हैं; वे सब नम्भव हैं । दक्षयन्त्रा सतीने ॥ ऐसा कि नीर पत्नी तुमे लक्षण दिला है, तदे दे अपने

पिता दक्षके यज्ञमें गर्वी और वहाँ भगवान् शंकरका अनादर देख उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया । वे ही सती पुनः हिमालयके घर पार्वतीके नामसे प्रकट हुई और वड़ी भारी तपस्या करके उन्होंने विवाहके द्वारा पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया ।

सूतजी कहते हैं—मदर्पियो ! ब्रह्माजीकी यह वात सुनकर नारदजीने विधातासे शिवा और शिवके भगवान् यशके विषयमें इस प्रकार पृष्ठा ।

नारदजी घोले—महाभाग विष्णुशिष्य ! विधाता ! आप मुझे शिवा और शिवके भाव तथा आनन्दसे सम्बन्ध रखनेवाले उनके चरित्रको विस्तारपूर्वक शुनाइये । नाम ! भगवान् शंकरने अपने प्राणसे भी प्यारी भर्मसनी सतीका किसलिये स्वाम किया ? वह, पठना तो मुझे वड़ी विचित्र जान ददृशी है । अतः इसे आप अवश्य कहें । अब ! आपके पुत्र दक्षके यज्ञमें भगवान् शिवका अनादर कैसे हुआ ? और वहाँ रिताके यज्ञमें जाकर महाने अपने शरीरका त्याग किस प्रकार किया ? उसके बाद वहाँ क्या हुआ ? भगवान् शंकरने क्या किया ? वे सब जाते सुनके कहिये । इन्हें हुमनें के लिये नीर मनमें वड़ी अद्दा है ।

**ब्रह्माजीने कहा—** मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ ! महाप्राज्ञ ! तात नारद ! तुम महर्षियोंके साथ बड़े प्रेमसे भगवान् चन्द्रमौलिका यह चरित्र सुनो । श्रीविष्णु आदि देवताओंसे सेवित परब्रह्म महेश्वरको नमस्कार करके मैं उनके महान् अद्भुत चरित्रका वर्णन आरम्भ करता हूँ । मुने ! यह सब भगवान् शिवकी लीला ही है । वे प्रभु अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले, स्वतन्त्र और निर्विकार हैं । देवी सती भी वैसी ही हैं । अन्यथा वैसा कर्म करनेमें कौन समर्थ हो सकता है । परमेश्वर शिव ही परब्रह्म परमात्मा है ।

एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीला विशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ बैलपर आरुढ़ हो इस भूतलपर भ्रमण कर रहे थे । धूमते-धूमते वे दण्डकारण्यमें आये । वहाँ उन्होंने लक्षणसहित भगवान् श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा छलपूर्वक हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी सीताकी लोज कर रहे थे । वे 'हा सीते !' ऐसा उच्चस्वरसे पुक्कारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारंबार रोते थे । उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था । सूर्यवंशमें उत्पन्न, वीर भूपाल, दशरथ-नन्दन, भरताग्रज श्रीराम आनन्दरहित हो लक्षणके साथ वनमें भ्रमण कर रहे थे और उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी । उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने वहाँ प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके चैदूसरी ओर चल दिये । भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट नहीं किया । भगवान् शिवकी मोहमें डालनेवाली ऐसी लीलां देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ । वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार बोलीं ।

**सतीने कहा—** देवदेव सर्वेश ! परब्रह्म परमेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता आपकी ही सदा सेवा करते हैं । आप ही सबके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं । सबको आपका ही सर्वदा सेवन और ध्यान करना चाहिये । वेदान्त-शास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जाननेयोग्य निर्विकार परमप्रभु आप ही हैं । नाथ ! ये दोनों पुरुष कौन हैं ; इनकी आकृति विरहव्यथासे व्याकुल दिखायी देती है । ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए कलेशके भागी और दीन हो रहे हैं । इनमें जो ज्येष्ठ है, उसकी अङ्गकान्ति नील कमलके समान श्याम है । उसे देखकर किस कारणसे आप आनन्दविभोर हो उठे थे ? आपका चित्त क्यों अत्यन्त प्रसन्न हो गया था ? आप इस समय भक्तके समान विनम्र क्यों हो गये थे ? स्वामिन् ! कल्याणकारी शिव ! आप

मेरे संशयको सुनें । प्रभो ! सेव्य स्वामी अपने सेवकको प्रणाम करे, वह उचित नहीं जान पड़ता ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—** नारद ! कल्याणमयी परमेश्वर आदिशक्ति सती देवीने शिवकी मायाके वशीभूत होकर ल भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब सतीकी वह का सुनकर लीलाविशारद परमेश्वर शंकर हँसकर उनसे ज प्रकार बोले ।

**परमेश्वरने कहा—** देवि ! मुनो, मैं प्रसन्नताम् यथार्थ वात कहता हूँ । इसमें छल नहीं है । वरदानके प्रम ही मैंने इन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया है । प्रिये ! ये द भाई वीरोद्धारा सम्मानित हैं । इनके नाम हैं—श्रीराम लक्ष्मण । इनका प्राकृत्य सूर्यवंशमें हुआ है । ये दोनों दशरथके विद्वान् पुत्र हैं । इनमें जो गोरे रंगके छोटे बन देसाक्षात् शेषके अंश हैं । उनका नाम लक्ष्मण है । वहाँ देखे भैयाका नाम श्रीराम है । इनके रूपमें भगवान् विष्णु अपने सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं । उपद्रव इनसे दूर रहते हैं । ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके क्षय लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं ।

ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता भगवान् शाम्भु उप हो ग भगवान् शिवकी ऐसी वात सुनकर भी सतीके मनको इ विश्वास नहीं हुआ । क्यों न हो, भगवान् शिवकी माया प्रबल है, वह सम्पूर्ण शिलोकीको मोहमें डाल देनेवाली सतीके मनमें मेरी वातपर विश्वास नहीं है, यह जानकर दै विशारद प्रभु सनातन शम्भु यों बोले ।

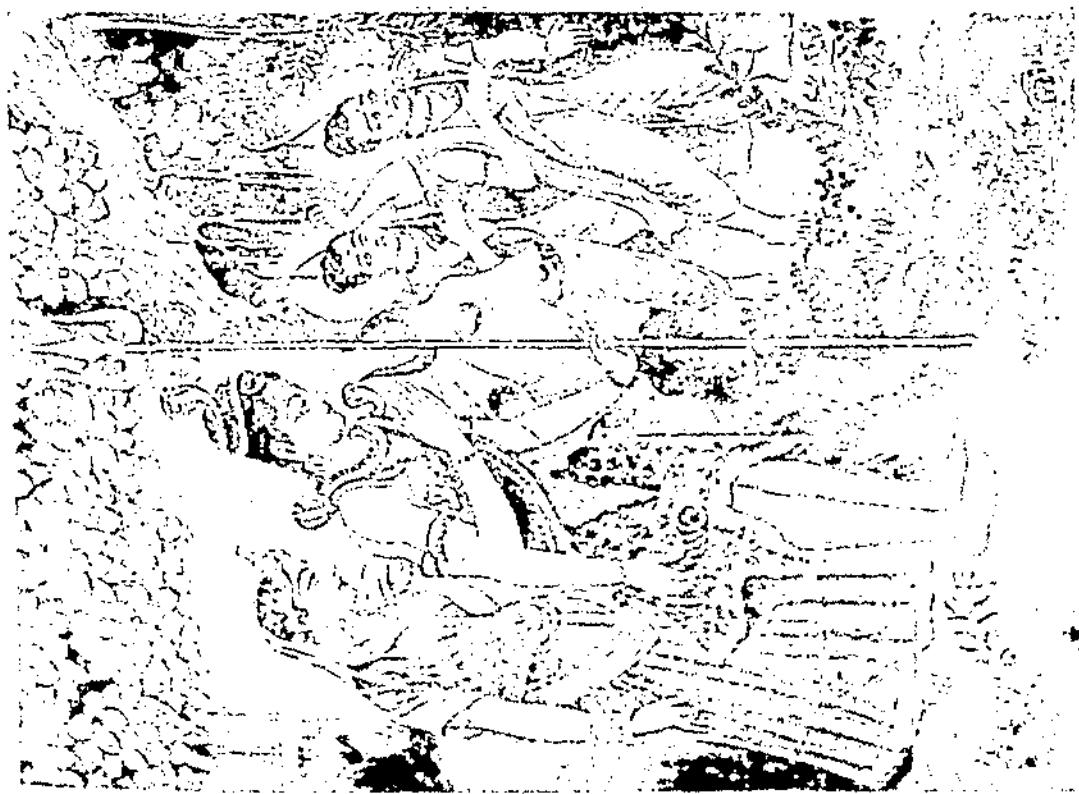
**शिवने कहा—** देवि ! मेरी वात सुनो । यदि तु मनमें मेरे कथनपर विश्वास नहीं है तो तुम वहाँ जाकर अ ही बुद्धिसे श्रीरामकी परीक्षा कर लो । प्यारी सती ! प्रकार तुम्हारा मोह या भ्रम नष्ट हो जाय, वह करो । तुम जाकर परीक्षा करो । तबतक मैं इस वरादके नीचे सहाँ

**ब्रह्माजी कहते हैं—** नारद ! भगवान् शिवकी अङ्ग ईश्वरी सती वहाँ गयीं और मन-हीमन यह सोचने ली । मैं वनचारी रामकी कैसे परीक्षा करूँ 'अङ्ग', मैं उसे रूप धारण करके रामके पास चलूँ । यदि राम साक्षात् है, तब तो सब कुछ जान लेंगे; अन्यथा वे मुझे नहीं पहचानें ऐसा विचार सती सीता बनकर श्रीरामके समीप उनकी पह लेनेके लिये गयीं । वास्तवमें वे मोहमें पड़ गयी थीं । सीताके रूपमें सामने आयी देख शिव-शिवका जप करते

राम-परीक्षाके लिये सतीका सीतारूप धारण [ श २३७



भगवान् रामको शिवजीके गारा नमस्कार [ श २३६



6

एकुलनन्दन श्रीराम सब कुछ लान गये और हँसते हुए उन्हें नमस्कार करके बोले ।

श्रीरामने पूछा—सतीजी ! आपको नमस्कार है । आप प्रेमपूर्वक वत्यार्थ, भगवान् शम्भु कहाँ गये हैं ? आप पतिके मिना अकेली ही इस बनमें क्योंकर आयों ? देवि ! आपने अपना रूप त्यागकर किसलिये यह नूतन रूप धारण किया है ? मृक्षपर कृपा करके इसका कारण बताइये ।

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर सती उस समय आकर्ष्यचकित हो गयी । वे शिवजीकी कही हुई वातका सारण करके और उसे यथार्थ समझकर बहुत लजित हुई । श्रीरामको साक्षात् विष्णु जान अपने रूपको प्रकट करके मन-ही-मन भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन कर प्रसन्न चित्त हुई सती उनसे इस तरह बोली—खुनन्दन । स्वतन्त्र परमेश्वर भगवान् शिव मेरे तथा अपने पार्वदोंके साथ पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए इस बनमें आ गये थे । यहाँ उन्होंने सीताकी खोजमें लो हुए लक्षणसहित तुमको देखा । उस समय सीता-के लिये तुम्हारे मनमें बड़ा क्लेश था और तुम विरहशोकसे पीड़ित दिखायी देते थे । उस अवस्थामें तुम्हें प्रणाम करके वे चले गये और उस बटवृक्षके नीचे अभी खड़े ही हैं । भगवान् शिव वडे आनन्दके साथ तुम्हारे बैर्धव

रूपकी उक्तपृष्ठ महिमाका गान कर रहे थे । यद्यपि उन्होंने तुम्हें चतुर्भुज विष्णुके रूपमें नहीं देखा, तो भी तुम्हारा दर्शन करते ही वे आनन्दविभोर हो गये । इस निर्मल रूपकी ओर देखते हुए उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । इस विषयमें मेरे पूछनेपर भगवान् शम्भुने जो बात कही, उसे सुनकर मेरे मनमें भ्रम उत्पन्न हो गया । अतः राघवेन्द्र ! मैंने उनकी आज्ञा लेकर तुम्हारी परीक्षा की है । श्रीराम ! अब मुझे जात हो गया कि तुम साक्षात् विष्णु हो । तुम्हारी सारी प्रभुता मैंने अपनी आँखों देख ली । अब मेरा संशय दूर हो गया । तो भी महामते ! तुम मेरी बात सुनो । मेरे सामने यह सच-सच यताओं कि तुम भगवान् शिवके भी बन्दनीय कैसे हो गये ? मेरे मनमें यही एक संदेह है । इसे निकाल दो और जीव ही मुझे पूर्ण शान्ति प्रदान करो ।

सतीका यह बचन सुनकर श्रीरामके नेत्र प्रकुप्त कमलके समान खिल उठे । उन्होंने मन-ही-मन अपने प्रभु भगवान् शिवका समरण किया । इससे उनके हृदयमें प्रेमकी बढ़ आ गयी । मुने ! आज्ञा न होनेके कारण वे सतीके साथ भगवान् शिवके निकट नहीं गये तथा मन-ही-मन उनकी महिमाका वर्णन करके श्रीखुनाथजीने सतीसे कहना प्रारम्भ किया । (अध्याय २४)

### श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक तथा उनके प्रति प्रणामका प्रसङ्ग सुनाकर श्रीरामका सतीके मनका संदेह दूर करना, सतीका शिवके द्वारा मानसिक त्याग

श्रीराम बोले—देवि ! प्राचीनकालमें एक समय परम सदा भगवान् शम्भुने अपने परात्पर धारममें विश्वकर्माको बुलाकर उनसे द्वारा अपनी गोशालामें एक रमणीय भवन बनवाया, जो यहुत ही विस्तृत था । उसमें एक श्रेष्ठ सिंहासनका भी निर्माण पराया । उस सिंहासनपर भगवान् शंकरने विश्वकर्मा-ज्ञान एक दृष्ट बनवाया, जो बहुत ही दिव्य, मदाके लिये अद्भुत और परम उत्तम था । तत्पक्षात् उन्होंने यथा ओरसे इन आदि देवगणों, भिद्वों, गन्धवों, नागादिकों तथा सम्पूर्ण लपेतोंसे भी दीप यहाँ दुलवाया । यमसु वेदों और आगमों-में, एकुलहित ब्राह्मणोंके, सुनिश्चिकों तथा अप्तवादोंकहित गाया देवियोंके, जो नाना प्रकारकी बस्तुओंसे कमज़ थीं, अलगिदा किया । इनके जिवा देवताओं, शूरियों, भिद्वों एवं नागीयों एवं अन्यत्रोंके भी दुलवाया, जिनके आप्तवादोंमें भूमिका दिलाया गया ।

प्रकारके वाचोंको बजवाकर सुन्दर गीतोंद्वारा महान् उत्सव रचाया । सम्पूर्ण ओषधियोंके साथ रज्याभियेकके योग्य द्रव्य एकत्र किये गये । प्रत्यक्ष तीर्थोंके जलोंसे भरे हुए पाँच कलश भी मङ्गवाये गये । इनके सिवा और भी बहुत-सी दिव्य सामग्रियोंको भगवान् शंकरने अपने पार्वदोंद्वारा मङ्गवाया और वहाँ उच्चस्थरमें नेदमन्त्रोक्त धोय करवाया ।

देवि ! भगवान् विष्णुकी पूर्ण भक्तिसे महेश्वर देव गता प्रसन्न रहते हैं । इनलिये उन्होंने प्रीतियुक्त दृष्टकों श्रीरामिने वैकुण्ठसे दुलवाया; और मुझ मुहूर्में श्रीरामिने उन शेष मिहानस्त्र दिटाकर भद्रदिवर्जिन न्यून ही प्रभूर्द्धि रखते मन प्रकारके आनुभवोंने दिव्यानुषिद्धि किया । उनके मनामध्ये रहने वाले शुद्ध दौषित राजा और उनके सद्गुरु-कौतुक रहते गये । वह एवं ही जानेके बाद मेरेहमें न्यून ग्राहन-उत्तम-प्रसन्नमें श्रीरामिने अभिषेक किया और उन्हें अनन्त रह गया । ऐस्यं प्रदान

किया, जो दूसरोंके पास नहीं था । तदनन्तर स्वतन्त्र ईश्वर भक्तवत्सल शम्भुने श्रीहरिका स्तवन किया और अपनी पराधीनता ( भक्तपरवशता ) को सर्वत्र प्रसिद्ध करते हुए वे लोककर्ता ब्रह्मासे इस प्रकार बोले ।

**महेश्वरने कहा—लोकेश !** आजसे मेरी आशाके अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे बन्दनीय हो गये । इस वातको सभी सुन रहे हैं । तात ! तुम सम्पूर्ण देवता आदिके साथ इन श्रीहरिको प्रणाम करो और ये वेद मेरी आशासे मेरी ही तरह इन श्रीहरिका वर्णन करें ।

**श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—देवि !** भगवान् विष्णुकी शिवभक्ति देखकर प्रसन्नचित्त हुए वरदायक भक्तवत्सल रुद्र-देवने उपर्युक्त वात कहकर स्वयं ही श्रीगरुद्ध्वजको प्रणाम किया । तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनियों और सिद्ध आदिने भी उस समय श्रीहरिकी बन्दना की । इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने देवताओंके समक्ष श्रीहरिको बड़े-बड़े वर प्रदान किये ।

**महेश बोले—हरे !** तुम मेरी आशासे सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता, पालक और संहारक होओ । धर्म, अर्थ और कामके दाता तथा दुर्नीति अथवा अन्याय करनेवाले दुष्टोंको दण्ड देनेवाले होओ; महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, जगतूज्य जगदीश्वर बने रहो । समराङ्गणमें तुम कहीं भी जीते नहीं जा सकोगे । मुझसे भी तुम कभी पराजित नहीं होओगे । तुम मुझसे मेरी दी हुई तीन प्रकारकी शक्तियाँ ग्रहण करो । एक तो इच्छा आदिकी सिद्धि, दूसरी नाना प्रकारकी लीलाओंको प्रकट करनेकी शक्ति और तीसरी तीनों लोकोंमें नित्य स्वतन्त्रता । हरे ! जो तुमसे द्वेष करनेवाले हैं, वे निश्चय ही मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक दण्डनीय होंगे । विष्णो ! मैं तुम्हारे भक्तोंको उत्तम मोक्ष प्रदान करूँगा । तुम इस मायाको भी ग्रहण करो, जिसका निवारण करना देवता आदिके लिये भी कठिन है तथा जिससे मोहित होनेपर यह विश्व जड़रूप हो जायगा । हरे ! तुम मेरी बायीं भुजा हो और विधाता दाहिनी भुजा हैं । तुम इन विधाताके भी उत्पादक और पालक होओगे । मेरा हृदयरूप जो रुद्र है, वही मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है । वह रुद्र तुम्हारा और ब्रह्मा आदि देवताओंका भी निश्चय ही पूज्य है । तुम यहाँ रहकर विशेषरूपसे सम्पूर्ण जगत्का पालन करो । नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले विभिन्न अवतारोंद्वारा सदा सबकी रक्षा करते रहो । मेरे चिन्मय धाममें तुम्हारा जो यह परम वैभवशाली

और अत्यन्त उज्ज्वल सान है, वह गोलोक नामसे विस्थाय होगा । हरे ! भूतलपर जो त्रुम्हारे अवतार होंगे, वे सबके रक्ष और मेरे भक्त होंगे । मैं उनका अवश्य दर्शन करूँगा । वे मेरे वरसे सदा प्रसन्न रहेंगे ।

**श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—देवि !** इस प्रकार श्रीहरि को अपना अखण्ड ऐश्वर्य सौंपकर उमावल्लभ भगवान् ही स्वयं कैलास पर्वतपर रहते हुए अपने पार्षदोंके साथ सञ्चर कीड़ा करते हैं । तभीसे भगवान् लक्ष्मीपति वहाँ गोपवेष करके आये और गोप-गोपी तथा गोआँके अधिपति होकर व प्रसन्नताके साथ रहने लगे । वे श्रीविष्णु प्रसन्नचित्त ही सम जगत्की रक्षा करने लगे । वे शिवकी आशासे नाना प्रश्न अवतार ग्रहण करके जगत्का पालन करते हैं । इस सम ही श्रीहरि भगवान् शंकरकी आशासे चार भाइयोंके ल्य अवतीर्ण हुए हैं । उन चार भाइयोंमें सबसे बड़ा मैं रम । दूसरे भरत हैं, तीसरे लक्ष्मण हैं और चौथे भाई शत्रुघ्न हैं । मैं पिताकी आशासे सीता और लक्ष्मणके साथ वह आया था । यहाँ किसी निशाचरने मेरी पक्षी सीताको हारजि है और मैं विरही होकर भाईके साथ इस बनमें अपनी प्रियत अन्वेषण करता हूँ । जब आपका दर्शन प्राप्त हो गया, तब जैर मेरा कुशल-मङ्गल ही होगा । मा सती ! आपकी कुपासे हैं होनेमें कोई संदेह नहीं है । देवि ! निश्चय ही आपकी थोड़े मुझे सीताकी प्राप्तिविषयक वर प्राप्त होगा । आपके अनुरुद्ध उस दुःख देनेवाले पापी राक्षसको मारकर मैं सीताको अनु प्राप्त करूँगा । आज मेरा महान् सौभाग्य है जो आप दोनों मुझपर कृपा की । जिसपर आप दोनों दयालु हो जायेंगे पुरुष धन्य और श्रेष्ठ है ।

इस प्रकार बहुत-सी वातें कहकर कल्याणमयी सती देवी प्रणाम करके रघुकुलशिरोमणि श्रीराम उनकी आशासे लंबनमें विचरने लगे । पवित्र हृदयवाले श्रीरामकी यह ही सुनकर सती मन-ही-मन शिवभक्तिपरायण रघुनाथजीकी प्रसंग करती हुई बहुत प्रसन्न हुई । पर अपने कर्मको याद करके उन मनमें बड़ा शोक हुआ । उनकी अङ्गकान्ति फीकी पद गंगा वे उदास होकर शिवजीके पास लैटीं । मार्गमें जाती हुई ही सती वारंवार चिन्ता करने लगीं कि मैंने भगवान् शिवजी नहीं मानी और श्रीरामके प्रति कुत्सित बुद्धि कर ली । अशंकरजीके पास जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगी । इस प्राप्त वारंवार चिन्चार करके उन्हें उस समय बड़ा पश्चात्तप हुआ ।

शिवके समीप जाकर सतीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया । उनके मुखपर विपाद छा रहा था । वे शोकसे व्याकुल और नित्तेज हो गयी थीं । सतीको दुखी देख भगवान् इरने उनका कुशल-समाचार पूछा और प्रेमपूर्वक कहा—‘तुमने किस प्रकार परिशा ली ?’ उनकी यह बात सुनकर सती मस्तक छुकाये उनके पास खड़ी हो गयीं । उनका मन शोक और विषादमें ढूँढ़ा हुआ था । भगवान् महेश्वरने ध्यान लगाकर सतीका सारा चरित्र जान लिया और उन्हें मनसे त्याग दिया । वेदघर्मका प्रतिपालन करनेवाले परमेश्वर शिवने अपनी पहलेकी की हुई प्रतिशक्ति नष्ट नहीं होने दिया । सतीका मनसे त्याग करके वे अपने निवासभूत कैलास पर्वतपर चले गये । मार्गमें महेश्वर और सतीको सुनाते हुए आकाशवाणी बोली—‘परमेश्वर ! तुम धन्य हो और तुम्हारी यह प्रतिशक्ति भी धन्य है । तीनों लोकोंमें तुम्हरे-जैसा महायोगी और महाप्रभु दूसरा कोई नहीं है ।’

वह आकाशवाणी सुनकर देवी सतीकी कान्ति फीकी पड़ गयी । उन्होंने भगवान् शिवसे पूछा—‘नाथ ! मेरे परमेश्वर ! आपने कौन-सी प्रतिशक्ति की है ? बताइये ।’ सतीके इस प्रकार पूछनेपर भी उनका हित चाहनेवाले प्रभुने पहले अपने विवाह-के विषयमें भगवान् विष्णुके सामने जो प्रतिशक्ति थी, उसे नहीं बताया । मुने ! उस समय सतीने अपने प्राणबलभ पति भगवान् शिवका ध्यान करके उस समस्त कारणको जान लिया, जिससे उनके प्रियतमने उन्हें त्याग दिया था । ‘शम्भुने मेरा त्याग कर दिया’ इस यातको जानकर दक्षकन्या सती शीघ्र ही अल्पन्त शोकमें दूँख गयीं और वारंवार सिसकने लगीं । सती-के मनोभावको जानकर शिवने उनके लिये जो प्रतिशक्ति थी, उसे गुप ही रखा और वे दूसरी-दूसरी बहुत-सी कथाएँ कहने लगे । नाना प्रकारकी कथाएँ कहते हुए वे सतीके साथ कैलास-पर जा पहुँचे और श्रेष्ठ आसनपर रित हो चित्तवृत्तियोंके निरोपपूर्वक समाधि लगा अपने त्वल्यका ध्यान करने लगे । भवी मनमें अल्पन्त विपाद हो अपने उस धाममें रहने लगीं । मने ! शिवा और शिवके उस चरित्रको कोई नहीं जानता था । भराकुने ! स्पैच्छासे धरीर धारण करके लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले उन दोनों प्रभुदोंका हम प्रशार दर्शाएँ रहते हुए दीर्घ बहुत लगीन हो गया । तत्पश्चात् उत्तम सील करनेवाले

महादेवजीने ध्यान तोड़ा । वह जानकर जगदरुपा रती नाहै आयी और उन्होंने व्यथित हृदयसे शिवके चरणोंमें प्रणाम किया । उदारचेता शम्भुने उन्हें अपने सामने बैठनेके लिये आसन



दिया और वडे प्रेमसे बहुत-सी मनोरम कथाएँ कहीं । उन्होंने वैसी ही लीला करके सतीके शोकको तत्काल दूर कर दिया । वे पूर्ववत् सुखी हो गयीं । किं भी शिवने अपनी प्रतिशक्ति नहीं छोड़ा । तात ! परमेश्वर शिवके विषयमें यह कोई आश्वर्य-की बात नहीं समझनी चाहिये । मुने ! मुनिलोग शिवा और शिवकी ऐसी ही कथा कहते हैं । कुछ मनुष्य उन दोनों-में वियोग मानते हैं । परंतु उनमें वियोग कैसे सम्भव है । शिवा और शिवके चरित्रको वासविलयसे कौन जानता है । वे दोनों सदा अपनी इन्द्रजिले जैलते और माँनि-भाँकियी लीलाएँ करते हैं । सती और शिव याथी और अर्थकी भाँति एक दूसरेले नित्य संयुक्त हैं । उन दोनोंमें वियोग हैना अनुमत है । उनकी इन्द्रजिले दी उनमें लीलालिदेग है गहरा है ।

— अन्त अंक २५ —

प्रयागमें समरत महात्मा मुनियोंद्वारा किये गये यज्ञमें दक्षका भगवान् शिवको तिरस्कारपूर्वक शाप देना  
तथा नन्दीद्वारा ब्राह्मणकुलको शाप-प्रदान, भगवान् शिवका नन्दीको शान्त करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पूर्वकालमें समस्त महात्मा मुनि प्रयागमें एकत्र हुए थे । वहाँ सम्मिलित हुए उन सब महात्माओंका विधि-विद्यानसे एक बहुत बड़ा यश हुआ । उस यज्ञमें सनकादि सिद्धगण, देवर्षि, प्रजापति, देवता तथा ब्रह्म-का साक्षात्कार करनेवाले शानी भी पधारे थे । मैं भी भूर्तिमान् महातेजस्वी निगमों और आगमोंसे युक्त हो सपरिवार वहाँ गया था । अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ वहाँ उनका विचित्र समाज जुटा था । नाना शास्त्रोंके सम्बन्धमें शानचर्चा एवं वादविवाद हो रहे थे । मुने ! उसी अवसरपर सती तथा पार्षदोंके साथ त्रिलोकहितकारी, सृष्टिकर्ता एवं सबके स्वामी भगवान् रुद्र भी वहाँ आ पहुँचे । भगवान् शिवको आया देख सम्पूर्ण देवताओं, सिद्धों तथा मुनियोंने और मैंने भी भक्ति-भावसे उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की । फिर शिव-की आशा पाकर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक यथास्थान बैठ गये । भगवान्का दर्शन पाकर सब लोग संतुष्ट हो और अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे । इसी वीचमें प्रजापतियोंके भी पति प्रभु दक्ष, जो बड़े तेजस्वी थे, अकस्मात् धूमते हुए प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये । वे मुझे प्रणाम करके मेरी आशा ले वहाँ बैठे । दक्ष उन दिनों समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति बनाये गये थे, अतएव सबके द्वारा सम्माननीय थे । परंतु अपने इस गौरवपूर्ण पदको लेकर उनके मनमें बड़ा अहंकार था; क्योंकि वे तत्त्वज्ञानसे शून्य थे । उस समय समस्त देवर्षियोंने नतमस्तक हो स्तुति और प्रणामके द्वारा दोनों हाथ जोड़कर उत्तम तेजस्वी दक्षका आदर-सत्कार किया । परंतु जो नानाप्रकारके लीलाविहार करनेवाले, सबके स्वामी और उत्कृष्ट लीलाकारी स्वतन्त्र परमेश्वर हैं, उन महेश्वरने उस समय दक्षको मस्तक नहीं छुकाया । वे अपने आसनपर बैठे ही रह गये ( जब देखकर दक्षका स्वागत नहीं किया ) । महादेवजीको वहाँ मस्तक छुकाते न देख मेरे पुत्र प्रजापति दक्ष मन-ही-मन अप्रसन्न हो गये । उन्हें रुद्रपर सहसा क्रोध हो आया, वे शानशून्य तथा महान् अहंकारी होनेके कारण महाप्रभु रुद्रको कूर दृष्टिसे देखकर सबको सुनाते हुए उच्चस्वरसे कहने लगे ।

दक्षने कहा—ये सब देवता, असुर, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा भृषि मुझे विशेषरूपसे मस्तक छुकाते हैं । परंतु वह जो प्रेतों और पिशाचोंसे चिरा हुआ महामनस्वी बनकर बैठा है, वह

दुष्ट मनुष्यके समान कर्यों मुझे प्रणाम नहीं करता ? इमशाने निवास करनेवाला यह निर्लेख जो मुझे इस समय प्रणाम नहीं करता, इसका क्या कारण है ? इसके वेदोक्त कर्म लुप्त हो गये हैं । यह भूतों और पिशाचोंसे सेवित हो भतवाला बना फिला है और शास्त्रीय विधिकी अवहेलना करके नीतिमार्गको छोड़ कलंकित किया करता है । इसके साथ रहनेवाले या इसका अनुसरण करनेवाले लोग पाखण्डी, दुष्ट, पापाचारी तथा ब्राह्मणको देखकर उद्दण्डतापूर्वक उसकी निन्दा करनेवाले होते हैं । यह स्वयं ही स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला तथा रतिकर्मी है दक्ष है । अतः मैं इसे शाप देनेको उद्यत हुआ हूँ । यह स्त्री चारों वर्णोंसे पृथक् और कुलप है । इसे यज्ञसे बहिष्कृत कर दिया जाय । यह इमशानमें निवास करनेवाला तथा उसका कुल और जन्मसे हीन है । इसलिये देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पाये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! दक्षकी कही हुई यह शब्द सुनकर भृगु आदि बहुत-से महर्षि रुद्रदेवको दुष्ट मानकर देवताओंके साथ उनकी निन्दा करने लगे ।

दक्षकी बात सुनकर नन्दीको बड़ा रोष हुआ । उठे नेत्र चश्चल हो उठे और वे दक्षको शाप देनेके विचारसे उत्तर इस प्रकार बोले ।

नन्दीश्वरने कहा—अरे रे महामूढ ! दुष्टबुद्धि शब्द ! तूने मेरे स्वामी महेश्वरको यज्ञसे बहिष्कृत क्यों कर दिया ? जिनके स्मरणमात्रसे यज्ञ सफल और तीर्थ पंचित हो जाते हैं, उन्हीं महादेवजीको तूने शाप कैसे दे दिया ! दुर्बुद्धि दक्ष ! तूने ब्राह्मणजातिकी चपलतासे प्रेरित हो इन रुद्रदेवको व्यर्थ ही शाप दे डाला है । महाप्रभु रुद्र सर्वथा निर्दोष हैं, तथापि तूने व्यर्थ ही इनका उपहास किया है । ब्राह्मणाधम ! जिन्होंने इस जगत्की सृष्टि की, जो इसका पालन करते हैं और अन्तमें जिनके द्वारा इसका संहार होगा, उन्हीं इन महेश्वर-रूपको तूने शाप कैसे दे दिया ?

नन्दीके इस प्रकार फटकारनेपर प्रजापति दक्ष रोपते आग बबूला हो गये और उन्हें शाप देते हुए बोले—अरे रुद्रगणो ! तुम सब लोग वेदसे बहिष्कृत हो जाओ । वैदिक मार्गी

भ्रष्ट तथा महर्षियोद्धारा परित्यक्त हो पालण्डवादमें लग जाओ और शिष्याचारसे दूर रहो । सिरपर जटा और शरीरमें भस्म एवं इड्डियोंके अभूप्रण घारण करके मद्यपानमें आसक्त रहो ।'

जब दक्षने शिवके पार्षदोंको इस प्रकार शाप दे दिया, तब उस शापको सुनकर शिवके प्रियभक्त नन्दी अत्यन्त रोपके बशीभूत हो गये । शिलादपुत्र नन्दी भगवान् शिवके प्रिय पार्षद और तेजस्वी हैं । वे गवर्से भरे हुए महादुष्ट दक्षको तल्काल इस प्रकार उत्तर देने लगे ।



नन्दीभव घोले—अरे शठ ! दुर्बुद्धि दक्ष ! तुम्हे शिव-कर्मका दिल्लुल जान नहीं है । अतः तुम्हे शिवके परिवारे तर्ही ही शार दिला है । अहंकारी दक्ष ! तुम्हे जिसमें तुम्हारा भरी है, उस भगु आदि शिवाणोंकी भी अप्यवजे अग्निमानमें आकर मद्यप्रयुक्त भट्टकरा शाप लिया है । अतः यहाँ को भगवान् छद्रमें दिल्लुल होने वाले हुए प्राण्या जिसमान हैं, उनको मैं स्टोरेजमें रखूँगा ताकि रात्रि १०

प्रशंसक वेदवादमें फँसकर वेदके तत्त्वज्ञानसे शून्य हो जायें । वे ब्राह्मण सदा भोगोंमें तन्मय रहकर स्वर्गको ही सदसे बहा पुरुषार्थ भानते हुए स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है । ऐसा कहते रहें तथा क्रोध, लोभ और मदसे युक्त हो निर्लज्ज भिक्षुक बने रहें । कितने ही ब्राह्मण वेदमार्गको सामने रखकर शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले और दख्दि होंगे । सदा दान लेनेमें ही लगे रहेंगे, दूषित दान ग्रहण करनेके कारण वे सब-के-सब नरकगामी होंगे । दक्ष ! उनमेंसे कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्मराक्षस भी होंगे । जो परमेश्वर शिवको सामान्य देवता समझकर उनसे द्वेष करता है, वह दुष्ट दुद्धियाला प्रजापति दक्ष तत्त्वज्ञानसे विमुख हो जाय । यह विषय-सुखकी इच्छासे कामनारूपी कपटसे युक्त धर्मवाले यहस्याश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डका तथा कर्मफलकी प्रशंसा करनेवाले सनातन वेदवादका ही विस्तार करता रहे । इसका आनन्ददायी मुख नष्ट हो जाय । यह आत्मज्ञानको भूलकर पश्चुके समान हो जाय तथा यह दक्ष कर्मभ्रष्ट हो शीम ही बकरेके मुखसे युक्त हो जाय ।

इस प्रकार कुपित हुए नन्दीने जब ब्राह्मणोंको और दक्षने महादेवजीको शाप दिया, तब वहाँ महान् हाहाकार मच गया । नारद ! मैं वेदोंका प्रतिपादक होनेके कारण शिवतत्त्वको जानता हूँ । इसलिये दक्षका वह शाप सुनकर मैंने धारंधार उसकी तथा भगु आदि ब्राह्मणोंकी भी निन्दा की । सदाशिव महादेवजी भी नन्दीकी वह वात सुनकर हँसते हुए-से मधुर वाणीमें घोले—वे नन्दीको गमज्ञाने लगे ।

सदाशिवने कहा—नन्दिन् ! मेरी वात सुनो । तुम तो परम ज्ञानी हो । तुम्हें क्रोध नहीं वरना चाहिये । तुमने भ्रमने वह समझकर कि मुझे शाप दिया गया, वर्य ही ब्राह्मणकुलको शाप दे दाया । यात्क्षमें मुझे किसीका शाप नहीं नहीं नकला; अतः तुम्हें उसेजित नहीं होना चाहिये । वेद मन्त्राद्यग्रन्थ और मूलग्रन्थ है । उसके प्रत्येक मूलग्रन्थ देश्यस्थिरोंके आत्मा (प्रत्यक्षमा) प्रतिष्ठित हैं । अतः उन मन्त्रोंके आत्मा किसी अत्यादेना है । इनमें दुय रोशय उन्हें शाप न दो । किसीकी दुद्धि किसीकी ही दुर्दीय को न हो । वह कर्मी वेदोंसे शार नहीं है बल्कि । उस गमय मूले शाप नहीं लिया है । एव वातडे तरीं ही दीदीनीक गमयना चाहिये । गमयने । तुम गमय किसीको

यहाँ नहीं बुलाया है। अतः दधीचजी। आपको फिर कर्मी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि आप सब लोग मिलकर मेरे इस महान् यज्ञको सफल बनायें।

दक्षकी यह बात सुनकर दधीचने समस्त देवताओं और मुनियोंके सुनते हुए यह सारगम्भित बात कही।

**दधीच बोले**—दक्ष! उन भगवान् शिवके बिना यह महान् यज्ञ अव्यक्त हो गया—अब यह यज्ञ कहलानेयोग्य ही नहीं रह गया। विशेषतः इस यज्ञमें तुम्हारा बिनाश हो जायगा।

ऐसा कहकर दधीच दक्षकी यज्ञशालासे अकेले ही निकल पड़े और तुरंत अपने आश्रमको चल दिये। तदनन्तर जो मुख्य-मुख्य शिवभक्त तथा शिवके मतका अनुसरण करनेवाले थे, वे भी दक्षको वैसा ही शाप देकर तुरंत वहाँसे निकले और अपने आश्रमोंको छले गये। मुनिवर दधीच तथा दूसरे श्रृंगियोंके उस यज्ञमण्डपसे निकल जानेपर दुष्टबुद्धि शिवद्वेषी दक्षने उन मुनियोंका उपहास करते हुए कहा।

**दक्ष बोले**—जिन्हें शिव ही प्रिय हैं, वे नाममात्र ब्राह्मण दधीच चले गये। उन्होंके समान जो दूसरे थे, वे एं मेरी यज्ञशालासे निकल गये। यह बड़ी शुभ बात हुई। क्षेत्र सदा यही अभीष्ट है। देवेश! देवताओं और मुनियों। मैंको कहता हूँ—जिनके चित्तकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी है, वे मन्दबुद्धि हैं और मिथ्यावादमें लगे हुए हैं, ऐसे वेदविद्या दुराचारी लोगोंको यज्ञकर्ममें त्याग ही देना चाहिये। किंतु आदि आप सब देवता और ब्राह्मण वेदवादी हैं। अतः मैं इस यज्ञको शीघ्र ही सफल बनायें।

**ब्रह्माजी कहते हैं**—दक्षकी यह बात सुनकर वे मायासे मोहित हुए समस्त देवर्षि उस यज्ञमें देवता पूजन और हवन करने लगे। मुनीश्वर नारद! इस प्रकार यशको जो शाप मिला, उसका वर्णन किया गया। अब वे विघ्नसकी घटनाको बताया जाता है, आदरपूर्वक मुनो।

( अध्याय ४ )

## दक्ष-यज्ञका समाचार पा सतीका शिवसे वहाँ चलनेके लिये अनुरोध, दक्षके शिवद्वेषको जानकर भगवान् शिवकी आज्ञासे देवी सतीका पिताके यज्ञमण्डपकी ओर शिवगणोंके साथ प्रस्थान

**ब्रह्माजी कहते हैं**—नारद! जब देवर्षिगण बड़े उत्साह और हर्षके साथ दक्षके यज्ञमें जा रहे थे, उसी समय दक्षकन्या देवी सती गन्धमादन पर्वतपर चँदोवेसे युक्त धारागृहमें सखियोंसे श्री हुई भौति-भौतिकी उत्तम कीडाएँ कर रही थीं। प्रसन्नतापूर्वक कीडामें लगी हुई देवी सतीने उस समय रोहिणीके साथ दक्षयज्ञमें जाते हुए चन्द्रमाको देखा। देखकर वे अपनी हितकारिणी प्राणप्यारी श्रेष्ठ सखी बिजयासे बोलीं—‘मेरी सखियोंमें श्रेष्ठ प्राणप्रिये विजये। जल्दी जाकर पूछ तो आ, ये चन्द्रदेव रोहिणीके साथ कहाँ जा रहे हैं?’

सतीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर विजया तुरंत उनके पास गयी और उसने यथोचित शिष्याचारके साथ पूछा—‘चन्द्रदेव! आप कहाँ जा रहे हैं?’ विजयाका यह प्रश्न सुनकर चन्द्रदेवने अपनी यात्राका उद्देश्य आदरपूर्वक बताया। दक्षके यहाँ होनेवाले यज्ञोत्सव आदिका सारा वृत्तान्त कहा। यह सब सुनकर विजया बड़ी उत्ताप्तीके साथ देवीके पास

आयी और चन्द्रमाने जो कुछ कहा था, वह सब उसे न सुनाया। उसे सुनकर कालिका सती देवीको बड़ा बिल हुआ। अपने यहाँ सूचना न मिलनेका क्या कारण है? वहुत सोचने-विचारनेपर भी उनकी समझमें नहीं आया। उन्होंने पार्षदोंसे घिरे अपने स्वामी भगवान् शिवके पास अक्ष भगवान् शंकरसे पूछा।

**सती बोलीं**—प्रभो! मैंने सुना है कि मेरे शिव यहाँ कोई बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। उसमें बहुत से उत्सव होगा। उसमें सब देवर्षि एकत्र हो रहे हैं। देवर्षेश पिताजीके उस महान् यज्ञमें चलनेकी रुचि आपको मिली हो रही है? इस विषयमें जो बात हो, वह सब बताइ। महादेव! सुहृदोंका यह धर्म है कि वे सुहृदोंके साथ निः जुलें। यह मिलन उनके महान् प्रेमको बढ़ानेवाला होता। अतः प्रभो! मेरे स्वामी! आप मेरी प्रार्थना मानकर प्रयत्न करके मेरे साथ पिताजीकी यज्ञशालामें आज ही चलिए।

सतीकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वरदेव, जिनका हृदय दक्षके वाचाणीसे धायल हो चुका था, मधुर वाणीमें बोले—  
देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गये हैं । जो प्रमुख देवता और प्राणी अभिमानी, मूँह और शानशूल्य है, वे ही यह तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हैं । जो लोग दिना बुलाये दूसरेके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर कष्टदायक है । अतः प्रिये ! तुमको और मुझको तो विशेषरूपसे दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये (क्योंकि वहाँ हमें बुलाया नहीं गया है) । यह मैंने कच्ची बात कही है ।

महात्मा महेश्वरके पेसा कहनेपर सती रोपपूर्वक बोली—श्रमो ! आप सबके ईश्वर हैं । जिनके जानेसे यह सफल होता है, उन्हीं आपको गेरे हुए पिताने इस समय आमनित नहीं किया है । प्रभो ! उस दुरात्माका अभिप्राय क्या है, वह सब मैं जानना चाहती हूँ । साथ ही वहाँ आये हुए यमूर्ण दुरात्मा देवर्षियोंके मनोभावका भी मैं पता लगाना चाहती हूँ । अतः प्रभो ! मैं आज ही पिताके यज्ञमें जाती हूँ । नाथ ! महेश्वर ! आप मुझे वहाँ जानेकी आशा दे दें ।

देवी सतीके पेसा कहनेपर सर्वदा, सर्वदृष्टि, सुषिकर्ता एवं कल्याणस्वरूप साधात् भगवान् रुद्र उनसे इस तार बोले ।

शिवने कहा—उत्तम प्रतका पालन करनेवाली देवि ! इस प्रकार तुम्हारी गच्छि वहाँ अवश्य जानेके लिये हो ॥ ही तो मेरी आशासे तुम शीघ्र अपने पिताके यज्ञमें जाओ । नन्दी युग्म गुसजित है, तुम एक महारानीके अनुरूप दोस्तानाथ के सामने इसपर सवार हो वहुसंख्यक प्रसथगणोंके पास चढ़ो । प्रिये ! इस विभूषित पृथगपर आरूप होयो ।

रुद्रे इस प्रकार अदेश देनेपर मुन्द्र आनन्दगांगासे ऐसा कही देनी रात गामनोले युक्त हो पिताके पीछे और चली । परमात्मा जिनसे उन्हें मुन्द्र बन्द,



आभूषण तथा परम उज्ज्वल हृषि, चामर आदि महाराजोंचित उपचार दिये । भगवान् शिवकी आशासे साठ हजार रुद्रगण वड़ी प्रसलता और महान् उत्ताहके साथ कीरूलपूर्वक सतीके साथ गये । उस समय वहाँ यज्ञके लिये यात्रा करने गम्य गम्य और महान् उत्तम होने लगा । महादेवजीके गमने में शिवप्रिया सतीके लिये बड़ा भारी उत्तम रचाया । वे गम्य कीरूलपूर्ण कार्य करने तथा सती और शिवके यशकों गमने लगे । शिवके प्रिय और महान् दीर्घ प्रमथगण प्रमदतापूर्वक उठलते कहरते चल रहे थे । जगदभ्याने यात्रामानमें सब प्रकारसे वड़ी भारी शोभा हो रही थी । उस समय जो मुन्द्र चब-चपकार आदित्य दृष्टि प्रकट हुआ; उससे तीनों लोक दौँज उठे ।

( अन्तर २८ )

**यद्यशालामें शिवका भाग न देखकर सतीके रोपपूर्ण वचन, दक्षद्वारा शिवकी निन्दा युन दक्ष सतीद्वारा अपने प्राणन्त्यगका निश्चय**

प्रदानी नहीं है—नरद ! दक्षसन्द्याकली उस खगदर देवता नहीं है वह महान् देवता हो रहा है रात्रि । वहाँ देवता, देवता ही शिविरे हासा कीरूलपूर्ण वार्ष रो रहे हैं ।

सतीने वहाँ अपने शिवने भवनकी नसा प्रतरहीं प्रमधर्मदान रुद्रजीवे लगायद, उत्तम दृष्टि दरियाँ, द्वन्द्व दृष्टि दृष्टि दृष्टि और शुद्धिरहीं रुद्रादि । एवं युद्ध दृष्टि दृष्टि दृष्टि दृष्टि

द्वारपर जाकर खड़ी हुई और अपने वाहन नन्दीसे उत्तरकर अकेली ही शीघ्रतापूर्वक यज्ञशालके भीतर चली गयी। सतीको आयी देख उनकी यशस्विनी माता अग्निकनी ( वीरिणी ) ने और बहिनोंने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। परंतु दक्षने उन्हें देखकर भी कुछ आदर नहीं किया तथा उन्होंके भवसे शिवकी मायासे मोहित हुए दूसरे लोग भी उनके प्रति आदर-का भाव न दिखा सके। मुने ! सब लोगोंके द्वारा तिरस्कार प्राप्त होनेसे सती देवीको बड़ा विसाय हुआ, तो भी उन्होंने अपने माता-पिताके चरणोंमें समस्त कुलकाया। उस यज्ञमें सतीने विष्णु आदि देवताओंके भाग देखे। परंतु शम्भुका भाग उन्हें कहीं नहीं दिखायी दिया। तब सतीने दुस्तह क्रोध प्रकट किया। वे अपमानित होनेपर भी रोपरो भरकर सब लोगोंकी ओर क्रूर हृषिसे देखती और दक्षको जलाती हुई-सी बोलीं।

**सतीने कहा—प्रजापते !** आपने परम मङ्गलकारी भगवान् शिवको इस यज्ञमें क्यों नहीं बुलाया ? जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पवित्र होता है, जो स्वयं ही यज्ञ, यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, यज्ञके अङ्ग, यशकी दक्षिणा और यशकर्ता यज्ञमान हैं, उन भगवान् शिवके विना यज्ञकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? अहो ! जिनके स्मरण करनेमात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है, उन्होंके विना किया हुआ यह सारा यज्ञ अपवित्र हो जायगा। द्रव्य, मन्त्र आदि, हृष्ट और कथ्य—ये सब जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् शिवके विना इस यज्ञका आरम्भ कैसे किया गया ? क्या आपने भगवान् शिवको सामान्य देवता समझकर उनका अनादर किया है ? आज आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। इसलिये आप पिता होकर भी मुझे अवम जँच रहे हैं। अरे ! वे विष्णु और ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनि अपने प्रभु भगवान् शिवके आये विना इस यज्ञमें कैसे चले आये ?

ऐसा कहनेके बाद शिवस्थरूपा परमेश्वरी सतीने भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवताओंको तथा समस्त ऋषियोंको बड़े कड़े शब्दोंमें फटकारा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार क्रोधसे भरी हुई जगद्गवा सतीने वहाँ व्यथित हृदयसे अनेक प्रकारकी बातें कहीं। श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और मुनि जो वहाँ उपस्थित थे, सतीकी बात सुनकर चुप रह गये। अपनी पुत्रीके बैसे उन्नत सुनकर कुपित हुए दक्षने सरीरी और क्रूर हृषिसे देखा और इस प्रकार कहा।

**दक्ष बोले—गद्वे !** तुम्हारे बहुत कहनेसे क्या लाभ। इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम जाओ वृषभरो, यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। तुम यहाँ आयी हैं क्यों ? यामस्त विद्वान् जानते हैं कि तुम्हारे पति विव अम्हङ्कर रूप हैं। वे कुलीन भी नहीं हैं। वेदसे वहिष्ठृत हैं और भूत-प्रेतों तथा पिशाचोंके स्वामी हैं। वे बहुत ही कुत्रिय थाव किये रहते हैं। इसीलिये रुद्रको इस यज्ञके लिये नहीं बुलाया गया है। वेदी ! मैं रुद्रको अच्छी तरह जानता हूँ। आज जान-बूझकर ही मैंने देवपिंग्योंकी समाजे उनको आमन्ति नहीं किया है। रुद्रको याम्भके अर्थका ज्ञान नहीं है। वे द्वा और दुरात्मा हैं। मुझ मूढ़ पापीने ब्रह्माजीके कहनेसे उनके तुम्हारा विवाह कर दिया था। अतः शुचिसिते ! तुम वृषभोंका स्वास्थ ( शान्त ) हो जाओ। इस यज्ञमें तुम ही गयी तो स्वयं अपना भाग ( या दहेज ) ग्रहण करो।

दक्षके ऐसा कहनेपर उनकी त्रिसुचनपूर्जिता पुत्री सतीनेमि निन्दा करनेवाले अपने पिताकी और जय दृष्टिपात किया। उनका रोष और भी बढ़ गया। वे मन-ही-मन सोचने लगीं। ‘अथ मैं शंकरजीके पास कैसे जाऊँगी ? यदि शंकरजीके दर्शन इच्छासे वहाँ गयी और उन्होंने वहाँका समाचार पूछा तो उन्हें कथा उत्तर दूँगी !’ तदनन्तर तीनों लोकोंकी जननीं रीषावेशसे युक्त हो लंबी सौंस खींचती हुई अपने दुर्दृष्टि पिता दक्षसे बोलीं।

**सतीने कहा—जो महादेवजीकी निन्दा करता है अब जो उनकी होती हुई निन्दाको सुनता है, वे दोनों द्वा नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं। अतः तात ! मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगी, क्योंकि समर्थ हो तो वह स्वयं विशेष यत्न करके शम्भुकीनि करनेवाले पुरुषकी जीभको बलपूर्वक काट डाले। तर्वा-शिव-निन्दा-श्रवणके पापसे शुद्ध हो सकता है, इसमें ही नहीं है। यदि कुछ कर सकनेमें असमर्थ हो तो उन्हें पुरुषको चाहिये कि वह दोनों कान बंद करके वहाँसे निकल जाय। इससे वह शुद्ध रहता है—दोषका भागी नहीं है। ऐसा श्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं।**

\* ये निन्दति महादेवं नित्यमानं शृणोति वा।

तावुभौ नरां थातो यावच्चन्द्रिवाकरौ॥

( शिं पु० ४० सं० ८० सं० ३० लं० २१॥)

इन प्रकार धर्मनीति वतानेपर सतीको अपने आनेके कारण इन पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने व्यथित चित्तसे भगवान् शंकरके उच्चनका समरण किया। फिर सती अत्यन्त कुपित हो दंकसे, उन विष्णु आदि समस्त देवताओंसे तथा मुनियोंसे भी निडर रोक बोली।

सतीने कहा—तात ! तुम भगवान् शंकरके निन्दक हो। इसके लिये तुम्हें पश्चात्ताप होगा। यहाँ महान् दुःख मोगम, अन्तमें तुम्हें यातना भोगनी पड़ेगी। इस लोकमें जिनके लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय, उन निर्वर परमात्मा शिवके प्रतिकूल तुम्हारे गिरा दूसरा कौन चल सकता है। जो दुष्ट लोग हैं, वे सदा ईर्ष्यापूर्वक यदि महापुरुषोंकी निन्दा करें तो उनके लिये वह कोई आश्रयकी वात नहीं है। परंतु जो महात्माओंके चरणोंकी रसो अपने अशानन्दकारको दूर कर चुके हैं, उन्हें महापुरुषोंकी निन्दा शोभा नहीं देती। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम कभी वातचीतके प्रसङ्गसे मनुष्योंकी नामी-दूरा एक बार भी उच्चारित हो जाय तो वह समूर्ण पापराशिको शीत्र ही नष्ट कर देता है, उन्हीं पवित्र कीर्तिवाले निर्मल शिवसे ऊप्र देख करते हो ! आश्रय है। वास्तवमें तुम अशिव (वामद्रल) सूर हो। महापुरुषोंके मनस्थी मधुकर ब्रह्मानन्दसमय रथ्या पान करनेकी इच्छासे जिनके सर्वार्थदायक चरणकम्ळोंपर निरन्तर सेवन किया करते हैं, उन्होंसे तुम मूर्खतावश द्रोह हो हो ! जिन्हें तुम नामसे शिव और कामसे अशिव बताते, उन्हें वह तुम्हारे रिवा दूसरे निदान् नहीं जानते ? तो आदि देवता, गनक आदि गुनि तथा अन्य जानी क्या कि रक्षको नहीं रागासते ? उदार-बुद्धि भगवान् शिव या फैलंघ, कमाल भारण लिये दमशानमें घृतोंके साथ गत्तालार्द्यक रहते तथा भस्त्र एवं नरमुण्डोंकी माला भारण रहते हैं—इस चाहकी जानकर भी जो मुनि थोर देवता उनके रक्षणमें गिर गए, निर्मलको वह आदरके नाथ अपने गत्तक-रक्षणते हैं, इसका क्या कारण है ? यही कि वे भगवान् जो ही साक्षत् परमेश्वर हैं। प्रश्निः ( यज्ञ-यागादि ) और

निष्ठिः—( शम-दम आदि )—दो प्रकारके कर्म वताये गये हैं। मनीषी पुरुषोंको उनका विचार करना चाहिये। वेदमें विवेचन-पूर्वक उनके रागी और विरागी—दो प्रकारके अलग-अलग अधिकारी वताये गये हैं। परस्पर विरोधी होनेके कारण उन्होंने प्रकारके कर्मोंका एक साथ एक ही कर्ताके द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता। भगवान् शंकर तो परब्रह्म परमात्मा हैं, उनमें इन दोनों ही प्रकारके कर्मोंका प्रवेश नहीं है। उन्हें कोई कर्म प्राप्त नहीं होता, उन्हें किसी भी प्रकारके कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है। पिताजी ! हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है। उसका कोई लक्षण व्यक्त नहीं है, सदा आत्मजानी महापुरुष ही उसका सेवन करते हैं। तुम्हारे पास वह ऐश्वर्य नहीं है। यहशालाओंमें इक्कर वहाँके अन्से तृप्त होनेवाले कर्मठ लोगोंको जो भोग प्राप्त होता है, उससे वह ऐश्वर्य बहुत दूर है। जो महापुरुषोंकी निन्दा करनेवाला और दुष्ट है, उसके बन्मको विशेषस्पसे प्रयत्न करके त्याग दे। जिस समय भगवान् शिव तुम्हारे साथ येरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुसे दाखायणी कहकर पुकारेंगे, उस समय येरा मन सद्या अत्यन्त दुखी हो जायगा। हयालिये तुम्हारे अङ्गसे उत्पन्न हुए सदा शवके बुल्य नृणांत इस शरीरको इस समय में निश्चय ही त्याग दूँगी और ऐसा करके सुखी हो जाऊँगी। हे देवताओं और गुनियो ! द्वय रान लोग मेरी जात मुझों। तृष्णारे द्वदशमें दुष्टता आ गयी है। तुमलोगोंका यह कर्म उर्वशा अनुचित है। तुम सब लोग भूद हो; क्योंकि यिहाँकी निन्दा और नदर तृष्णे प्रिय है। अतः भगवान् एसे तुम्हें इस कुरामें निश्चय ही गृह-पूरा दण्ड मिलेगा।

त्रिलोकी कहते हैं—नारद ! उम यज्ञमें इति यथा देवताओंने ऐसा कहकर नहीं देखा हो गया। और मन-ही-मन अपने प्राण-बल्लभ द्यमुका स्तरग करने वाली।

( अथाप २१ )

सतीका योगाद्यिसे अपने शरीरको भन्न कर देना, दर्शकोंका हाहाकार, शिवपापिदोंका प्राणन्याय  
तथा दद्यपर आक्रमण, ऋभुओंद्वारा उनका भगवान् जाना तथा दंवताओंकी चिन्ता।

प्रद्याजी बहुते हैं—नारद ! मैंने तुम् दस्तीदेवी अपने लिया हार रस्ते परके शालमन्त्रित हो सूर्य उद्धर दिया है। उद्धर किस विनाश वर्ती तृष्णे के देवताओंमें लिया है। उन्होंने असन्दोः विद्युत व्रातापापद्य लाया है।

भास्मान् अर्दे वस्त्र अंड लिपा दीर्घ वृषभ-वाही चूँ।  
दैदूर विद्युत विनाश वर्ती तृष्णे के देवताओंमें लिया है।  
गर्व ! उन्होंने असन्दोः विद्युत व्रातापापद्य लाया है।

अपानको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थित किया। फिर उदान वायुको बलपूर्वक नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया। तत्पश्चात् शंकरकी प्राणवल्लभा अनिन्दिता सती उत्त हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयी। इस प्रकार दक्षपर कुपित हो सहसा अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छासे सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें योगमार्गके अनुसार वायु और अग्निकी धारणा की। तदनन्तर अपने पतिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई सतीने अन्य सब वस्तुओंका ध्यान सुला दिया। उनका चित्त योगमार्गमें स्थित हो गया था। इसलिये वहाँ उन्हें पतिके चरणोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी दिया। मुनिश्रेष्ठ! सतीका निष्पाप शरीर तत्काल गिरा और उनकी इच्छाके अनुसार योगमार्गसे जलकर उसी कण भस्स हो गया। उस समय वहाँ आये हुए देवता आदिने जब यह घटना देखी, तब वे बड़े जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका वह महान्, अद्भुत, विचित्र एवं भयंकर हाहाकार आकाशमें और पृथ्वीतलपर सब ओर फैल गया। लोग कह रहे थे— ‘हाय! महान् देवता भगवान् शंकरकी परम प्रेयसी सती देवीने किस दुष्टके हुर्व्यवहारसे कुपित हो अपने प्राण त्याग दिये। अहो! ब्रह्माजीके पुत्र इस दक्षकी वडी भारी दुष्टता तो देखो। सारा चराचर जगत् जिसकी संतान है, उसीकी पुत्री मनस्विनी सती देवी, जो सदा ही मान पानेके योग्य थीं, उसके द्वारा ऐसी निरादत हुई कि प्राणोंसे ही दृश्य थोड़ी थीं। भगवान् वृषभधनकी प्रिया सती सदा सभी सत्युरुद्धोंके द्वारा निरन्तर सम्मान पानेकी अविकारिणी थीं। वास्तवमें उसका हृदय बहा ही असहिष्णु है। वह प्रजापति दक्ष ब्राह्मणद्वेषी है। इसलिये सारे संसारमें उसे महान् अप्यश प्राप्त होगा। उसकी अपनी ही पुत्री उसीके अपराधसे जब प्राणत्याग करनेको उचित हो गयी, तब भी उस महानरकमोगी शंकरद्वेषीने उसे रोकातक नहीं।’

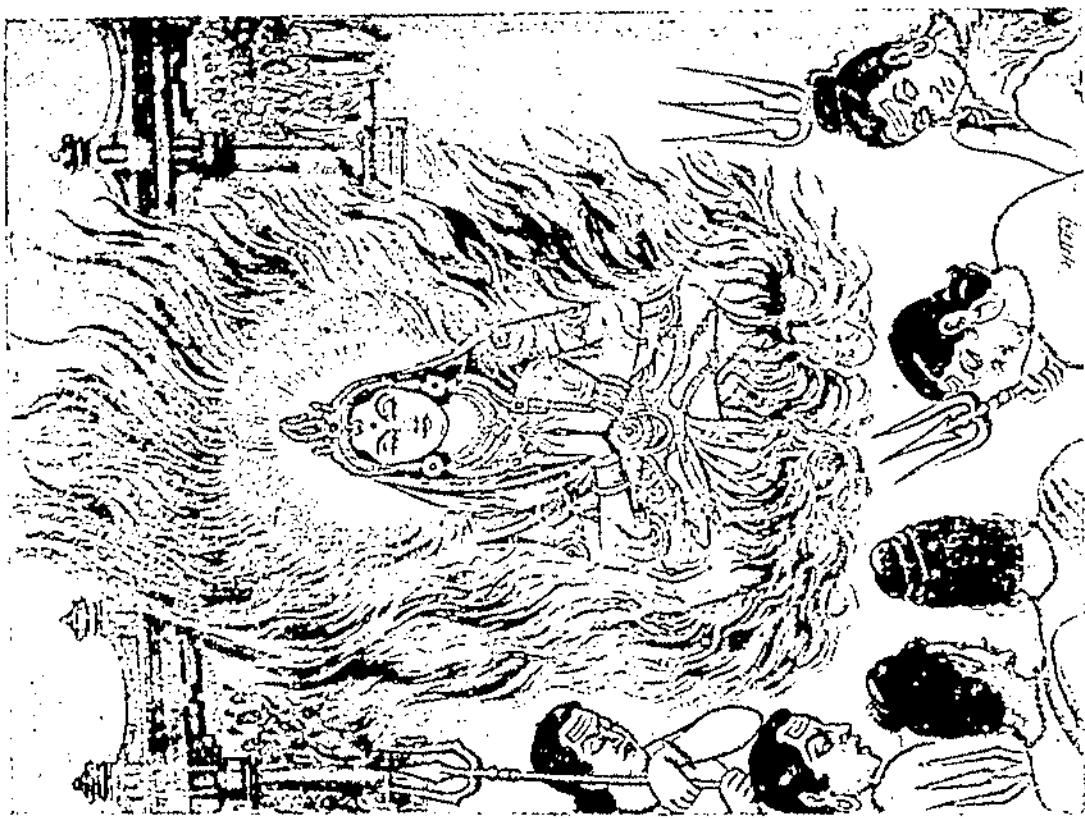
जिस समय सब लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिवजीके पार्षद सतीका यह अद्भुत प्राणत्याग देख तुरंत ही क्रोधपूर्वक अख-शस्त्र ले दक्षको मारनेके लिये उठ खड़े हुए। यजमण्डपके द्वारपर खड़े हुए वे भगवान् शंकरके समस्त साठ हजार पार्षद, जो वडे भारी बलवान् थे, अत्यन्त रोपसे भर गये और ‘हमें धिक्कार है, धिक्कार है’, ऐसा कहते हुए भगवान् शंकरके गर्भोंके बे सभी बीर यूधपति बारंवार उच्च स्वरसे हाहाकार करने लगे। देवये! कितने ही पार्षद

तो वहाँ शोकसे ऐसे व्याकुल हो गये कि वे अत्यन्त तीव्र प्राणनाशक शस्त्रोदारा अपने ही मस्तक और मुख आदि अङ्गोंपर आवात करने लगे। इस प्रकार वीस हजार पार्षद उस समय दक्षकल्या सतीके साथ ही नष्ट हो गये। वह अद्भुत-सी यात हुई। नष्ट होनेसे वचे हुए महात्मा शंकर वे प्रमथगण प्रोष्ठयुक्त दक्षको मारनेके लिये हथियार लिये उठ खड़े हुए। मुने। उन व्याकमणकारी पार्षदोंके देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विष्णु हालनेवालोंका नाम करनेके लिये नियत ‘अपहता असुराः रक्षाःसि वेदितः’ इस यजुर्मन्त्रसे दक्षिणायिमें आहुति दी। भृगुके आहुति देते ही यज्ञकुण्डसे श्रुभु नामक सहस्रों महान् देवता, जो वे प्रदल बीर थे, वहाँ प्रकट हो गये। मूनीश्वर! उन वक्ते हाथमें बलती हुई लकड़ियाँ थीं। उनके साथ प्रमथगण



अत्यन्त विकट युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंके भी रोग हो ले कर देनेवाला था। उन ब्रह्मतेजसे समस्त महावीर श्रुभु एवं सब ओरसे ऐसी मार पड़ी, जिससे प्रमथगण विना अपि प्रयासके ही भाग खड़े हुए। इस प्रकार उन देवताओं उन शिवगणोंको तुरंत मार भगाया। यह अद्भुत-सी भगवान् शिवकी महाशक्तिगती इच्छासे ही हुई। वह

सतीका योगाविसे शशीर ल्याग [ छ २४८



द्युमर शतीका क्रीध [ छ २५६





देवतार मृषि, इन्द्रादि देवता, मरुदण, विश्वेदेव, अश्विनी-  
कुमार और लोकपाल चुप ही रहे। कोई सब ओरसे था-आकर  
यहाँ भगवान् विष्णुने प्रार्थना करते थे कि किसी तरह विश्व  
ठल जाय। वे उद्दिष्ट हो बारंबार विष्णु-निवारणके लिये  
आपसमें सलाह करने लगे। प्रमथगणके नाम होने और

भगवे जानेसे जो भावी परिणाम होनेवाला था, उसका  
भलीभौति विचार करके उत्तम बुद्धिवाले श्रीविष्णु आदि  
देवता अत्यन्त उद्धिम हो उठे थे। मुने। इस प्रकार दुरात्मा  
शंकर-द्वेषी ब्रह्मावन्धु दक्षके यशमें उस समय बड़ा भारी विष्णु  
उपस्थित हो गया। (अध्याय ३०)

### आकाशवाणीद्वारा दक्षकी भत्सना, उनके विनाशकी सूचना तथा समस्त देवताओंको यज्ञमण्डपसे निकल जानेकी प्रेरणा

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर ! इसी वीचमें वहाँ दक्ष  
तथा देवता आदिके सुनते हुए आकाशवाणीने यह यथार्थ  
यात कही—“रे-रे दुराचारी दक्ष ! ओ दम्भाचारपरायण  
महामूढ ! यह तूने कैसा अनर्थकारी कर्म कर ढाला ? ओ  
मूर्ख ! विष्वभक्तराज दधीचके कथनको भी तूने प्रामाणिक  
नहीं माना, जो सेरे लिये सब प्रकारसे आनन्ददायक और  
गङ्गालकारी था। वे ब्राह्मण देवता तुम्हे दुर्सह शाप देकर तेरी  
पश्चालगते निकल गये, तो भी तुम्ह सूझने अपने मनमें कुछ  
भी नहीं यमसा। उसके बाद तेरे घरमें महालमयी उत्ती  
देवी स्वतः पवारी, जो तेरी अपनी ही पुत्री थी; किंतु तूने  
उन्हाँ भी परम आदर नहीं किया। ऐसा क्यों हुवा ? शान-  
दुर्बल दक्ष ! तूने सती और महादेवजीकी पूजा नहीं की, यह  
क्या किया ? पर्यंत ब्रह्माजीका वेदा हूँ ऐसा समझकर तू  
नर्थकी भग्नांगों भरा रहता है और इसीलिये त्रुपस्थर मोह छा  
गया है। वे उत्ती देवी ही सत्पुरुषोंकी आराध्या देवी हैं  
व्यापता एवा आराधना करनेके योग्य हैं, वे समस्त पुण्योंका  
फल देनेवाली, तीनों लोकोंकी माता, कल्याणस्वरूपा और  
भगवान् शंकरके आपे अङ्गमें निवास करनेवाली हैं। वे उत्ती  
देवी ही पूजित होनेपर यदा समूर्ण सौभग्य प्रदान  
करनेवाली हैं। वे ही महेश्वरसी शक्ति हैं और  
उनमें उत्तीर्णोंसे नव प्रशारके महान् देती हैं। वे उत्ती  
देवी ही पूजित होनेपर कदा संतारका भय दूर  
करती हैं, मनोशक्तिरुक्त फल देती हैं तथा वे ही स्पृह  
प्रदानके बहु यशोवाली देती हैं। वे उत्ती ही यदा  
उत्तीर्णोंकी जीवनी और स्वरूपि प्रदान करती हैं। वे ही  
प्रशारके नव रूप भीर मंत्र प्रशान उत्तेजनी प्रशानकरी  
हैं। उत्ती ही उत्तीर्णोंकी जीवनी माता-जगत् की स्तु  
प्रशानकी जीवनी भीहि वैर प्रशानकरी यज्ञ-दूत संसार  
करती हैं। वे उत्तीर्णोंकी ही भगवान् विष्णु

माताहृष्मसे सुशोभित होनेवाली तथा ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि  
एवं सूर्यदेव आदिकी जननी मानी गयी हैं। वे सती ही  
तप, धर्म और दान आदिका फल देनेवाली हैं। वे ही शम्भु-  
शक्ति महादेवी हैं तथा दुष्टोंका हनन करनेवाली परात्मर शक्ति  
है। ऐसी महिमावाली सती देवी जिनकी सदा प्रिय शर्मपत्नी  
हैं, उन भगवान् महादेवको तूने यशमें भाग नहीं दिया।  
अरे ! तू कैसा मूढ़ और कुविचारी है !

“भगवान् शिव ही सबके स्वामी तथा परात्मर परमेश्वर हैं। वे समस्त देवताओंके सम्यक् सेव्य हैं और मनका कल्याण  
करनेवाले हैं। इन्हींके दर्शनकी इच्छासे सिद्ध पुण्य तपस्या  
करते हैं और इन्हींके साक्षात्कारकी अभिलापा मनमें लेहर  
योगीलोग योग-साधनामें प्रवृत्त होते हैं। अनन्त धन-धान्य और  
यश-याग आदिका सबसे मदान् फल यही बताया गया है कि  
भगवान् शंकरका दर्शन मुलभ हो। शिव ही जगत्का धारण-  
पोषण करनेवाले हैं। वे ही समस्त विश्वाओंके पति एवं यश  
कुछ करनेमें समर्थ हैं। आदिनियाके श्रेष्ठ स्वामी और  
समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गल वे ही हैं। दुष्ट दक्ष ! तूने  
उनकी शक्तिका आज गत्सार नहीं किया है। इसीलिये उम्म  
यशामा विनाश ही जायगा। पूजनीय व्यक्तिर्वाही पूजा न  
करनेमें अग्रदूत होता ही है। दुष्ट यश पूजन विनाशना  
कीसी भूल नहीं किया है। देवनाम अस्ते यहन यज्ञमार्गी  
प्रतिदिन प्रत्यक्षापूर्वक जिन्हें जर्दोंही रुद्र भरता रहते हैं,  
उन्हीं भगवान् विष्णुकी शक्ति स्वीकृत हो जाती है। जिन्हें जर्द  
करनकरी यज्ञ-दूत और नदीरुद्र यज्ञ-दूत जर्द-  
करनकरी होती है। जिन्हें जर्द भरता यज्ञ-दूत यज्ञ-दूत  
करनकरी यज्ञ-दूत अद्वि जर्द-करनकरी यज्ञ-दूत यज्ञ-दूत  
करनकरी प्राप्त हुए हैं वे भगवान् विष्णु जर्द-करनकरी यज्ञ-

हैं और शक्तिस्वरूपा सती देवी जगत् की माता कही गयी हैं। गूढ़ दक्ष ! तूने उन माता-पिता का सल्कार नहीं किया, किर तेरा कल्याण कैसे होगा ।

‘तुम्हार पुरुषका आक्रमण हो गया और विपक्षियाँ दूट पड़ीं; क्योंकि तूने उन भवानी सती और भगवान् शंकर की भक्तिभावसे आराधना नहीं की ।’ कल्याणकारी शम्भुका पूजन न करके भी मैं कल्याणका भागी हो सकता हूँ, यह तेरा कैसा गर्व है ? वह दुर्वार गर्व आज नष्ट हो जायगा । इन देवताओंमें से कौन ऐसा है, जो सर्वेश्वर शिवसे विमुख होकर तेरी सहायता करेगा ? मुझे तो ऐसा कोई देवता नहीं दिखायी देता । यदि देवता इस समय तेरी सहायता करेंगे तो जलती आगसे खेलनेवाले पतझोंके समान नष्ट हो जायेंगे । आज तेरा मुँह जल जाय, तेरे यज्ञका नाश हो जाय और जितने

तेरे सहायक हैं, वे भी आज शीघ्र ही जल मरें । इस दुरुत्त दक्षकी जो सहायता करनेवाले हैं, उन समस्त देवताओंने लिये अज शपथ है । वे तेरे अमन्त्रलक्षणके लिये ही तेरे सहायतासे विरत हो जायें । समस्त देवता आज इस शमण्डपसे निकलकर अपने-अपने स्थानको चले जायें, अन्य सब लोगोंका सब प्रकारसे नाश हो जायगा । अब सब मुनि और नाग आदि भी इस यज्ञसे निकल जायें, अन्य आज सब लोगोंका मर्वशा नाश हो जायगा । श्रीहे ! और विधाता ! आपलोग भी इस शमण्डपसे शीघ्र निः जाइये ।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! समूर्ण यज्ञाल वैठे हुए लोगोंसे ऐसा कहकर सबका कल्याण करनेवाली आकाशवाणी मौन हो गयी । ( अध्याय ३ )

### गणोंके मुखसे और नारदसे भी सतीके दग्ध होनेकी बात सुनकर दक्षपर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको ग्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करने और विरोधियोंको जला डालनेकी आज्ञा देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! वह आकाशवाणी सुनकर सब देवता आदि भयभीत तथा विसित हो गये । उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली । वे इस तरह खड़े था वैठे रह गये, मानो उनपर विशेष मोह छा गया हो । शम्भुके मन्त्रबलसे भाग जानेके कारण जो धीर शिवगण नष्ट होनेसे बच गये थे, वे भगवान् शिवकी शरणमें गये । उन सबने अमिततेजस्वी भगवान् रुद्रको भलीभाँति सादर प्रणाम करके वहाँ यज्ञमें जो कुछ हुआ था, वह सारी घटना उनसे कह सुनायी ।

गण बोले—महेश्वर ! दक्ष बड़ा दुरात्मा और घमंडी है । उसने वहाँ जानेपर सतीदेवीका अपमान किया और देवताओंने भी उनका आदर नहीं किया । अत्यन्त गर्वसे भरे हुए उस दुष्ट दक्षने आपके लिये यज्ञमें भाग नहीं दिया । दूसरे देवताओंके लिये दिया और आपके विषयमें उच्चस्वरसे तुर्वचन कहे । प्रभो ! यज्ञमें आपका भाग न देखकर सतीदेवी कुपित हो उठीं और पिताकी बारंबार निन्दा करके उन्होंने तत्काल अपने शरीरको योगाग्निद्वारा जलाकर भस्म कर दिया । यह देख दस हजारसे अधिक पार्षद लज्जावश शब्दोद्वारा अपने ही अङ्गोंको काट-काटकर वहाँ मर गये । शेष हमलोग दक्षपर कुपित हो उठे और सबको भय पहुँचाते हुए वेगपूर्वक उस

यज्ञका विध्वंस करनेको उद्यत हो गये; परंतु विरोधी भ अपने प्रभावसे हमें तिरस्कृत कर दिया । हम उनके मन्त्र का सामना न कर सके । प्रभो ! विष्वम्भर । वे ही हमें आज आपकी शरणमें आये हैं । दयालो । वहाँ प्राप्त हुए भ से आप हमें बचाइये, निर्भय कीजिये । महाप्रभो ! उत यह दक्ष आदि सभी हुष्टोंने धर्मदंडमें आकर आपका विशेष अपमान किया है । कल्याणकारी शिव । इस प्रकार हम अपना, सतीदेवीका और मूढ़ बुद्धिवाले दक्ष आदिका भी वृत्तान्त कह सुनाया । अब आपकी जैसी इच्छा है वैसा करें ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! अपने पार्षदोंकी यह व सुनकर भगवान् शिवने वहाँकी सारी घटना जाननेके लिये शीघ्र ही तुम्हारा स्मरण किया । देवर्षे ! तुम दिव रहे सम्पन्न हो । अतः भगवान् के सारण करनेपर तुम तुरंत जा आ पहुँचे और शंकरजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके खड़े गये । खामी शिवने तुम्हारी प्रशंसा करके तुमसे दक्षयमें गयी हुई सतीका समाचार तथा दूसरी घटनाओंको सुनाता । शम्भुके पूछनेपर शिवमें मन लगाये रखनेवाले तुम्हे शीघ्र ही वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जो दक्षयमें प्रहि-

हुआ था । मुने ! तुम्हारे मुखसे निकली हुई बात सुनकर उन गगय महान् दौद्र पराक्रमसे सम्पन्न सर्वेश्वर रुद्रने तुरंत ही वडा भारी क्रोध प्रकट किया । योक्तसंहारकारी रुद्रने अपने निस्ते एक जटा उखाई थीं और उसे रोपपूर्वक उग पर्वतके ऊपर दे गाय । मुने ! भगवान् शंकरके पटकनेसे उस जटाके दो दृष्टिये हो गये और महाप्रलयके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ । देवर्ण ! उस जटाके पूर्वभागसे महाभयंकर महावली धीरभद्र प्रकट हुए; जो समस्त शिवगणोंके अगुआ है । वे भूगण्डलको नव धोरसे व्यात करके उनसे भी दस अंगुल अधिक होकर खड़े हुए । वे देखनेमें प्रलयाम्निके समान जान पड़ते थे । उनका शरीर बहुत ऊँचा था । वे एक हजार



शरीरमें हुआ थे । उन चौरायी भाटार्डके द्वेषपूर्वक प्राप्त १५ निष्ठानसे गी प्रवरपै रक्त और लेप प्रवरहो संजिगत हो रहे हैं गये । आज ! उस जटाने दूसरे भरसे महाकाली इसकी ले दी भारी दिलाते देखते थे । वे अरेको दृष्टि नहीं हुई थी । ऐसे रक्त दैया हुए, वे गहराये रहे थे और उसकी दृष्टि भी नहीं हुई थी । उसे देखने के बाद वे अरेको दृष्टि नहीं हुई थी । वे रक्त दैया हुए, वे गहराये रहे थे और उसकी दृष्टि भी नहीं हुई थी ।

प्रतीत होते थे । धीरभद्र बातचीत करनेमें वहे कुशल थे । उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा ।

**धीरभद्र वोले—** महाश्वद्र ! सोम, सूर्य और अग्नियों तीन नेत्रोंके लिये धारण करनेवाले प्रभो । शीघ्र आशा दीजिये । मुझे इस समय कौन-रा कार्य करना होगा ? ईशान ! क्या मुझे आधे ही क्षणमें सारे समुद्रोंको सुखा देना है ? या इतने ही नमयमें समर्पण पर्वतोंको पीय डालना है ? हर ! मैं एक ही क्षणमें ग्रहाण्डको भस्स कर डालूँ या समस्त देवताओं और मुनीश्वरोंको जलाकर रात्रि कर दूँ ? शंकर ! ईशान ! क्या मैं समस्त लोकोंको उलट-पलट दूँ या समर्पण प्राणियोंवा विनाश कर डालूँ ? महेश्वर ! आपकी कृपासे कहीं कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जिसे मैं न कर सकूँ । पराक्रमके द्वारा मेरी समानता करनेवाला वीर न पहले कभी हुआ है और न आगे होगा । शंकर ! आप किसी तिनकेको भेज दें तो वह भी विना किसी वस्तुके क्षणभरमें वहे-से-वडा कार्य सिद्ध कर सकता है, इनमें संशय नहीं है । शम्भो ! यद्यपि आपनी लीलामात्रसे सारा कार्य रिद्द हो जाता है, तथापि जो मुझे भेजा जा रहा है, वह सुश्यपर आपका अनुग्रह ही है । शम्भो ! मुझमें भी जो ऐसी शक्ति है, वह आपकी कृपासे ही प्राप्त हुई है । शंकर ! आपकी कृपाके विना किसीमें भी कोई शक्ति नहीं हो सकती । वास्तवमें आपनी आशाके विना कोई तिनके आदियों भी हिलानेमें समर्थ नहीं है, वह निस्संदेह कहा जा सकता है । महादेव ! मैं आपके चरणोंमें वारंवार प्रणाम करता हूँ । हर ! आप अपने अमीष कार्यकी गिरिके लिये आज मुझे शीघ्र भेजिये । शम्भो ! मैं दाहिने थाल वारंवार पकड़ करूँ हूँ । इन्होंने यक्षित होता है कि मेरी विद्या अवश्य होगी । अह : प्रभो ! मुझे भेजिये । शंकर ! आज मुझे कोई अनुपूर्व एवं विद्येपर्याप्त नहीं उत्तमाद्यग्र असुखमें रहा है और मेरा निर्माण आपके चरणमें लगा हुआ है । अह : एवं-नवार से लिये शुभ पर्वतामाला विलाप होगा । शम्भो ! अप शुभ व्याप्त है । जिसकी आपमें नुट्टि भवित्व है, उसकी सदा विलाप शुभ होती है और उसीता दिनेदिन शुभ होता है ।

**प्रह्लादी पहुँचे हैं—** नवद ! उमर्दि दर दल दुर्दल वर्दलद्वाराये परि भस्त्राद्यगिर रुद्र शुभ हुए वीर भर्तुद्वार ! गुरुद्वी जर हैं एवं अर्द्धीदंद देवता वे लिये देते ।

**गोपद्वारने दला—** मैं दर्दिमें ऐसे दीर्घ ! दर्दिमें ऐसे दीर्घ ! दर्दिमें ऐसे दीर्घ ! दर्दिमें ऐसे दीर्घ !

हो गया है। अतः इन दिनों वह विशेषरूपसे मेरा विरोध करने लगा है। दक्ष इस समय एक यज्ञ करनेके लिये उद्यत है। तुम याग-परिवारसहित उस यज्ञको भस्म करके फिर शीघ्र मेरे स्थानपर लौट आओ। यदि देवता, गन्धर्व, यथ अथवा अन्य कोई तुम्हारा सामना करनेके लिये उपयत हों तो उन्हें भी आज ही शीघ्र और सहसा भस्म कर डालना। दधीचकी दिलायी हुई मेरी शपथका उल्लङ्घन करके जो देवता आदि वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें तुम निश्चय ही प्रयत्नपूर्वक जलाकर भस्म कर देना। जो मेरी शपथका उल्लङ्घन करके गर्वसुक्त हो वहाँ ठहरे हुए हैं, वे सब-के-सब मेरे द्वेषी हैं। अतः उन्हें अग्निमयी मायासे जला डालो। दक्षकी यज्ञशालमें जो अपनी पत्नियों

और सारभूत उपकरणोंके साथ बैठे हो, उन सबको उल्लङ्घन कर देनेके पश्चात् फिर शीघ्र लौट आना। तुम्हारे द्वे जानेपर त्रिश्वेदेव आदि देवगण भी यदि सामने आ तुम्हारा दादर सुति करें, तो भी तुम उन्हें शीघ्र आगकी जलाकर ही छोड़ना। धीर ! वहाँ दक्ष आदि सब लोगोंपर तीव्र और बन्धु-वान्यवौंशहित जलाकर ( कल्पांग से हुए ) जलको लीलापूर्वक पी जाना।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जो वैदिक मण्डङ्ग पालक, कालके भी शत्रु तथा सबके ईश्वर हैं, वे भगवान् रोपसे लाल झाँखें किये महावीर वीरभद्रसे ऐसा चुप हो गये। ( अथवा

### प्रमथगणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विवरणके लिये प्रस्थान, दक्ष तथा देवताओंको अपशकुन एवं उत्पातसूचक लक्षणोंका दर्शन एवं भय होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! महेश्वरके इस वचनको आदरपूर्वक सुनकर वीरभद्र बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने महेश्वर-को ग्रणाम किया। तत्पश्चात् उन देवाधिदेव शूलीकी उपर्युक्त आशाको शिरोधार्य करके वीरभद्र वहाँसे शीघ्र ही दक्षके यज्ञ-मण्डपकी ओर चले। भगवान् शिवने केवल शोभाके लिये उनके साथ करोड़ों महावीर गणोंको भेज दिया, जो प्रलयग्निके समान तेजस्वी थे। वे कौतूहलकारी प्रवल वीर प्रमथगण वीरभद्रके आगे और पीछे भी चल रहे थे। कालके भी काल भगवान् रुद्रके वीरभद्रसहित जो लाखों पार्श्वदण्ड थे, उन सबका स्वरूप रुद्रके ही समान था। उन गणोंके साथ महात्मा वीरभद्र भगवान् शिवके समान ही वेश-भूषा धारण किये रथपर बैठकर यात्रा कर रहे थे। उनके एक सहस्र भुजाएँ थीं। शरीरमें नागराज लिपटे हुए थे। वीरभद्र वडे प्रवल और भयंकर दिखायी देते थे। उनका रथ बहुत ही विशाल था। उसमें दस हजार सिंह जोते जाते थे, जो प्रयत्नपूर्वक उस रथको खींचते थे। उसी प्रकार बहुत-से प्रवल सिंह, शार्दूल, मगर, मत्स्य और सहस्रों हाथी उस रथके पार्श्वमण्डलीकी रक्षा करते थे। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—इन नवदुर्गाओंके साथ तथा समस्त भूतगणोंके साथ महाकाली दक्षका विनाश करनेके लिये चली। डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्वट, चट्टक, ब्रह्मराक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल आदि—ये सभी वीर भगवान् शिवकी आशाका पालन एवं दक्षके यज्ञका

विनाश करनेके लिये तुरंत चल दिये। इनके सिवा गणोंके साथ योगिनियोंका मण्डल भी सहसा कुप्रिय है यज्ञका विनाश करनेके लिये वहाँसे प्रस्थित हुआ। इस कोटि-कोटि गण एवं विभिन्न प्रकारके गणाचाली वीरभद्रके चले। उस समय भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। प्रकारके शब्द करनेवाले शङ्ख बज उठे। भिन्न-भिन्न ग्रसींग बजने लगीं। महामुने ! सेनातहित वीरभद्रकी य समय वहाँ बहुत-से सुखद स्वप्न होने लगे।

इस प्रकार जब प्रमथगणोंसहित वीरभद्रने प्रस्थान दितव उधर दक्ष तथा देवताओंको बहुत-से अशुभ लक्षण दिये देने लगे। देवर्ण ! यज्ञविवरणकी सूचना देनेवाले उत्पात प्रकट होने लगे। दक्षकी वार्षी औंख, वार्षी भुज, वार्षी जाँच फड़कने लगी। तात ! वाम अङ्गोंका वह फँस सर्वथा अशुभसूचक था और नाना प्रकारके कष्ट फँस सूचना दे रहा था। उस समय दक्षकी यज्ञशालमें दोलने लगी। दक्षको दोपहरके समय दिनमें ही भूतारे दीखने लगे। दिशाएँ मलिन हो गयीं। सूर्य-चितकबरा दीखने लगा। उसपर हजारों घेरे पड़ गये। वह भयंकर जान पड़ता था। बिजली और अग्निके दीसिमान् तारे दूष-दूषकर गिरने लगे तथा और भी बहुत भयानक अपशकुन होने लगे।

इसी वीचमें वहाँ आकाशवाणी प्रकट हुई, जो देवताओं और विशेषतः दक्षको अपनी वात सुनाने लाए

आकाशवाणी बोली—ओ दश ! आज तेरे जन्मको  
शिष्टाचार है ! तू महामृदु और पापात्मा है। भगवान् दूरकी  
थोरसे आज तुम्हे महान् दुःख प्राप्त होगा, जो किसी तरह  
दश नहीं सकता। अब यहाँ तेरा हाहाकार भी नहीं सुनायी  
देगा। जो मृदु देवता आदि तेरे जन्ममें स्थित हैं, उनको भी  
महान् दुःख होगा—इसमें संदेश नहीं है।

ब्रह्माजी वहते हैं—मुने ! अकाशवाणीकी वह बात

मुनकर और पूर्वोक्त अद्युभस्तुचक लक्षणोंको देखकर इन  
तथा दूसरे देवता आदिको भी अव्यन्त भय प्राप्त हुआ।  
उस समय दक्ष मन-ही-मन अल्यन्त व्याकुल हो कौपने लगे  
और अपने प्रभु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये।  
वे भयसे अधीर हो बेसुध हो रहे थे। उन्होंने स्वजनकर्त्तव्य  
देवाधिदेव भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और उनकी सुति  
करके कहा। (अध्याय ३३-३४)

( अध्याय ३३-३४ )

दक्षकी यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवान्का शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें  
अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन

दक्ष याले—देवदेव ! हरे ! विष्णो ! दीनवन्धो !  
 शृणनिभे ! आपको मंरी और मेरे यज्रकी रक्षा करनी चाहिये ।  
 प्रभो ! आप ही यज्रके रक्षक हैं, यज्र ही आपका कर्म है  
 और आप यज्रस्त्रय हैं। आपको ऐसी कृपा चरनी चाहिये,  
 जैसे यशका निनाश न हो ।

मनमें ध्वराहट आ गयी थी, उन प्रजापति दक्षको उड़ाकर और उनकी पूर्वोक्त बात सुनकर भगवान् विष्णुने देवधिदेव शिवका स्मरण किया। अपने प्रभु एवं महान् ऐश्वर्यसे युक्त परमेश्वर शिवका स्मरण करके शिवतत्त्वके शता श्रीहरि दक्षको समझाते हए बोले ।

ध्रीहरिने कहा—दक्ष ! मैं तुमसे तत्कर्त्ता वाल बता  
रहा हूँ । तुम मेरी वात ध्यान देकर सुनो । मेरा यह बचन  
तुम्हारे लिये सर्वथा हितकर तथा महामन्त्रके समान सुखदायक  
होगा । दक्ष ! तुम्हें तत्का शान नहीं है । इसलिये तुमने  
सबके अधिपति परमात्मा दंकरकी अवहेलना की है । ईश्वर-  
की अवहेलनासे सारा कार्य सर्वथा निफल हो जाता है ।  
केवल इतना ही नहीं, पण-प्रगपर विपक्षि भी आती है ।  
जहाँ अपूर्ज्य पुरुषोंकी पूजा होती है और पूजनीय पुरुषोंकी  
पूजा नहीं की जाती, वहाँ दरिद्रता, मृत्यु तथा भय—ये  
तीन संकट अवश्य प्राप्त होगेण । इनलिये नार्यों प्रयत्नमें  
तुम्हें भगवान् इश्वरभक्त नन्मान बरना चाहिये । मेरे दरदरा  
अपनान करनेसे ही तुझसे उत्तर उत्तर भय डरपरिन हुआ  
है । एम सब लोग प्रभु होते हुए, मैं आज कुछुमि कुनौनि के  
कारण जै संकट आया है, उने आजनमें नमर्थ नहीं है । एक  
मैं तुमसे कही वात कहता हूँ ।

ब्रह्मजी कहते हैं—गाहुः गाहुः गाहुः गाहुः

卷之三十一

ਵਿਕਾਨੀ ਏਹਾਂ ਸੰਗ ਵਿਚਿਤ੍ਰ ਹੋ ਜਾਂ

प्राचीन विद्यालयों का नाम

संगीत एवं नृत्य कलाओं का विवरण

After  $\pi_1$  the  $\pi_2$  the  $\pi_3$  the  $\pi_4$  the  $\pi_5$  the  $\pi_6$  the  $\pi_7$



वचन सुनकर दक्ष चिन्तामें डूब गये । उनके चेहरेका रंग उड़ गया और वे चुपचाप पृथ्वीपर लड़े रह गये । इसी समय भगवान् रुद्रके भेजे हुए गणनायक वीरभद्र अपनी सेनाके साथ यज्ञस्थलमें जा पहुँचे । वे सब-के-सब वडे इत्यतीर, निर्भय तथा रुद्रके समान ही पराक्रमी थे । भगवान् शंकरकी आज्ञासे आये हुए उन गणोंकी गणना असम्भव थी । वे वीर-शिरोमणि रुद्रसैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे । उनके उस महानादसे तीनों लोक गूँज उठे । आकाश धूलसे ढक गया और दिशाएँ अन्धकारसे आवृत हो गयी । सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी अत्यन्त भयसे व्याकुल हो पर्वत, घन और काननोंसहित काँपने लगी तथा सम्पूर्ण समुद्रोंमें ज्वार आ गया । इस प्रकार समस्त लोकोंका विनाश करनेमें समर्थ उस विश्वाल सेनाको देखकर समस्त देवता आदि चक्रित हो गये । सेनाके उद्योगको देख दक्षके मुँहसे खून निकल आया । वे अपनी स्त्रीको साथ ले भगवान् विष्णुके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और इस प्रकार बोले ।

**दक्षने कहा—**विष्णो ! महाप्रभो ! आपके बलसे ही मैंने इस महान् यज्ञका आरम्भ किया है । सत्कर्मकी सिद्धिके लिये आप ही प्रभाण माने गये हैं । विष्णो ! आप कर्मोंके साक्षी तथा यज्ञोंके प्रतिपालक हैं । महाप्रभो ! आप वेदोक्त धर्म तथा ब्रह्माजीके रक्षक हैं । अतः प्रभो ! आपको मेरे इस यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि आप सबके प्रभु हैं ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**दक्षकी अत्यन्त दीनतापूर्ण बात सुनकर भगवान् विष्णु उस समय शिवतत्त्वसे विमुख हुए दक्षको समझानेके लिये इस प्रकार बोले ।

**श्रीविष्णुने कहा—**दक्ष ! इसमें संदेह नहीं कि मुझे उम्हरे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि धर्म-परिवालनविषयक जो मेरी सत्य प्रतिका है, वह सर्वत्र विख्यात है । परंतु दक्ष ! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे तुम सुनो । इस समय अपनी कूरतापूर्ण बुद्धिको त्याग दो । देवताओंके क्षेत्र नैमित्तिरण्यमें

जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, उसका तुम्हें सारा नहीं हो रहा है । क्या तुम अपनी कुबुद्धिके कारण उसे भूल गये ? यहाँ कौन भगवान् रुद्रके कोपसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ है । दक्ष ! तुम्हारी रक्षा किसको अभिमत नहीं है ? परंतु जो तुम्हारी रक्षा करनेको उद्यत होता है, वह अपनी दुर्बुद्धि ही परिचय देता है । दुर्मते ! क्या कर्म है और क्या अकर्म इसे तुम नहीं समझ पा रहे हो । केवल कर्म ही कभी कुछ करनेमें समर्थ नहीं हो सकता । जिसके सहयोगसे कर्ममें करनेकी सामर्थ्य अतीती है, उसीको तुम स्वर्कर्म समझो भगवान् शिवके विना दूसरा कोई कर्ममें कल्पण करने शक्ति देनेवाला नहीं है । जो शान्त हो ईश्वरमें मन ला उनकी भक्तिनृवक कार्य करता है, उसीको भगवान् तत्काल उस कर्मका फल देते हैं । जो मनुष्य केवल शून्य सहारा ले अनीश्वरवादी हो जाते या ईश्वरको नहीं मान हैं, वे शतकोटि कल्पोंतक नरकमें ही पड़े रहते हैं ॥५॥ ये कर्मपाशमें बँधे हुए जीव प्रत्येक जन्ममें नरकोंकी यात्रा भोगते हैं; क्योंकि वे केवल सकाम कर्मके ही स्वरूपका आलेनेवाले होते हैं ।

ये शत्रुमर्दन वीरभद्र, जो यज्ञशालाके आँगनमें आ फूँह है, भगवान् रुद्रकी क्रोधाग्निसे प्रकट हुए हैं । इस समस्त रुद्रगणोंके नायक ये ही हैं । ये हमलोगोंके विनाश लिये आये हैं, इसमें संशय नहीं है । कोई भी कार्य स्थै हो, वस्तुतः इनके लिये कुछ भी अशक्य है ही नहीं । महान् सामर्थ्यशाली वीरभद्र सब देवताओंको अवश्य जलयत्वं शान्त होंगे—इसमें संशय नहीं जान पड़ता । मैं भ्रम महादेवजीकी शापथका उल्लङ्घन करके जो यहाँ ठहरा रहा उसके कारण तुम्हारे साथ मुझे भी इस कष्टका सामना कर ही पड़ेगा ।

भगवान् विष्णु इस प्रकार कह ही रहे थे कि वीरभद्र साथ शिवगणोंकी सेनाका समुद्र उमड़ आया । समस्त देवता आदिने उसे देखा । ( अथाय ३॥

देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर वृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता वताना, वीरभद्रका  
देवताओंको सुदृढ़के लिये ललकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी वातचीत तथा विष्णु  
आदिका अपने लोकमें जाना एवं दक्ष और यज्ञका विनाश करके  
वीरभद्रका कैलासको लौटना

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उस समय देवताओंके नाथ विवरणोंका और सुदृढ़ अरम्भ हो गया । उसमें सारे देवता पराजित हुए और भागने लगे । वे एक दूसरेका साथ छोड़कर खर्गलोकमें चले गये । उस समय केवल महावली इन्द्र आदि लोकपाल ही उस दाशण संग्राममें धैर्य धारण करके उत्सुकतापूर्वक खड़े रहे । तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता मिलकर उग गमराङ्गमें चृहस्पतिजीको विनीतभावसे नमस्कार करके पूछने लगे ।

लोकपाल बोले—गुरुदेव वृहस्पते ! तात ! महाप्राज्ञ ! दयानिधे ! शीघ्र वताहये, हम जानना चाहते हैं कि हमारी विजय कैसे होगी ?

उनकी यह वात सुनकर वृहस्पतिने प्रयत्नपूर्वक भगवान् गमधुका स्मरण किया और ज्ञानदुर्बल महेन्द्रसे कहा ।

वृहस्पति बोले—इन्द्र ! भगवान् विष्णुने पहले जो गुण दिया था, वह सब इस समय घटित हो गया । मैं उसीको धैर्य नह रहा हूँ । सावधान होकर मुझे । गमल कमोंका कर देनेवाला जो कोई ईश्वर है, वह कर्त्ता ही आश्रय लेता है—कर्म करनेवालोंको ही उस कर्मका फल देता है । जो कर्म करता ही नहीं, उसको फल देनेमें वह भी गमर्थ नहीं है (अतः योईप्रत्येक जानकार उसका आश्रय लेकर तत्कर्म करता है; उसीको उस कर्मका फल मिलता है, ईश्वरकोहीको नहीं) । न मन्त्र, न शोभित्रियों, न गमल आभिचारिक कर्म, न लौकिक पुरुष, न पर्म, न वेद, न पूर्व और उत्तर भीमांगा तथा न नामा देशेमें पूर्ण अस्याम्य शान्त ही ईश्वरको जाननेमें लमर्थ होते हैं—ऐसा मानीमि विज्ञानोक्त नहीं है । अनन्यरूप भक्तीको छोड़कर दूषी लोग गम्भीर देवोंका दृश्य एजार नार स्वाधार करते भी नहीं हैं भक्तीमें नहीं जान सकते—यह नहामुक्तिया कर्मन है । अस्य भगवान् शिष्यके भ्रमन्तरसे ही गमर्थ रहता, विष्णु एवं उत्तर उपर्युक्त शिष्योंके लक्षण भगवान् रहता है । ही नहीं है । लोकर ! वह कर्त्ता है और वह अपनी इच्छाने चाहते हैं । शीर्षिकी उत्तरके लिये उत्तर देवता शकुनदंडवैतर्यदः जो यीर प्रवत्यगतामें स्थित हुए हैं, उन्हें वैतर्यिक भगवान् विष्णुकी दौट्टी लगे ।

हितके लिये उसे ध्यान देकर मुझे । इन्द्र ! तुम लोकपालोंके साथ आज नादान वनकर दक्ष-यज्ञमें आ गये । वताओं तो, यहाँ क्या पराक्रम करेंगे ? भगवान् रुद्र जिनके सहायक हैं, ऐसे ये परम क्रोधी रुद्रगण इस यज्ञमें विष्णु डालनेके लिये आये हैं और अपना काम पूरा करेंगे—इसमें संशय नहीं है । मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि इस वज्रके विष्णुका निवारण करनेके लिये वस्तुतः तुमसंसे किसीके पास भी सर्वथा कोई उपाय नहीं है ।

वृहस्पतिकी यह वात सुनकर वे इन्द्रसंहित समस्त लोकपाल वडी चिन्तामें पड़ गये । तब महावीर रुद्रगणोंसे घिरे हुए वीरभद्रने मन-ही-मन भगवान् शंकरका सरण करके इन्द्र आदि लोकपालोंको ढाँचा और इसके पश्चात् रुद्रगणोंके नायक वीरभद्रने रोपसे भरकर तुरंत ही सम्पूर्ण देवताओंको तीसे वाणोंसे धायल कर दिया । उन वाणोंकी चोट खाकर इन्द्र आदि समस्त सुरेश्वर भागते हुए दमों दिशाओंमें चले गये । जब लोकपाल चले गये और देवता भाग खड़े हुए, तब शीर्ष भद्र अपने गणोंके साथ यज्ञालोक समीप गये । उस समय वहाँ विद्युतान गमल शूष्य अस्त्वल भवर्भीत हो परमभर श्रीहरिसे रक्षाकी प्रार्थना करनेके लिये नहाया नतमन्तक हो जीघ लोके—देवदेव ! रमानाथ ! नवेश्वर ! गदाप्रभो ! आप दक्षके वशकी रक्षा कीजिये । आप ही यज्ञ हैं, उम्में गमय नहीं हैं । यज्ञ आपका दर्म, नप और दम्प है । आप यज्ञके रक्षक हैं । अतः दक्षयज्ञी रक्षा कीजिये । आपके लिया दूर्या कोई इसका रक्षक नहीं है ।

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! शूष्यिको वह वज्र उत्तर से नहिं भगवान् विष्णु वीरभद्रके गम सुन करनेकी इच्छाने चाहते हैं । शीर्षिकी उत्तरके लिये उत्तर देवता शकुनदंडवैतर्यदः जो यीर प्रवत्यगतामें स्थित हुए हैं, उन्हें वैतर्यिक भगवान् विष्णुकी दौट्टी लगे ।

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! शीर्षिकी उत्तर देवता शकुनदंडवैतर्यदः देवेन्द्र विष्णु देवों प्रवत्यगतामें स्थित होने वाले दौट्टी ।

शीर्षिकी उत्तर—नारद ! शकुनदंडवैतर्यदः देवता शकुनदंडवैतर्यदः

जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो—मैं भगवान् शंकरका सेवक हूँ, तुम मुझे रुद्रदेवसे विमुख न कहो। दक्ष अशानी है। कर्म-काण्डमें ही इसकी निष्ठा है। इसने मूढ़तावद प्रहले मुझसे बारंबार अपने यज्ञमें चलनेके लिये प्रार्थना की थी। मैं भक्तके अधीन ठहरा, इसलिये चला अत्या। भगवान् महेश्वर भी भक्तके अधीन रहते हैं। तात ! दक्ष मेरा भक्त है। इसीलिये मुझे यहाँ आना पड़ा है। रुद्रके कोधसे उत्पन्न हुए वीर ! तुम रुद्र-तेजःस्वरूप हो, उत्तम प्रतापके अश्रय हो, मेरी प्रतिज्ञा सुनो। मैं तुम्हें आगे बढ़नेसे रोकता हूँ और तुम मुझे रोको। परिणाम वही होगा, जो होनेवाला होगा। मैं पराक्रम करूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर महावाहु वीरभद्र हँसकर बोला—‘आप मेरे प्रभुके प्रिय भक्त हैं, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।’ इतना कहकर गणनाथके वीरभद्र हँस पड़ा और विनयसे नतमस्तक हो बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीविष्णुदेवसे कहने लगा।

वीरभद्रने कहा—महाप्रभो ! मैंने आपके भावकी परीक्षाके लिये कड़ी बातें कही थीं। इस समय यथार्थ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। हरे ! जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं। जैसे आप हैं, वैसे शिव हैं। ऐसा वेद कहते हैं और वेदोंका यह कथन शिवकी आशाके अनुसार ही है। \* रमानाथ ! भगवान् शिवकी आशासे हम सब लोग उनके सेवक ही हैं; तथापि मैंने जो बात कही है, वह इस वादविवादके अवसरके अनुरूप ही है। आप मेरी हर बातको आपके प्रति आदरके भावसे ही कही गयी समझिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—वीरभद्रका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीहरि हँस पड़े और उसके लिये हितकर वचन बोले।

श्रीविष्णुने कहा—महावीर ! तुम मेरे साथ निःशङ्क होकर युद्ध करो। तुम्हारे अन्धोंसे शरीरके भर जानेपर ही मैं अपने आश्रमको जाऊँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये और युद्धके लिये कमर कसकर डट गये। महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके साथ युद्धके लिये तैयार हो गये।

\* यथा शिवस्तथा त्वं हि चथा त्वं च तथा शिवः।

स्ति चेदा वर्णयन्ति शिवशासनतो प्रे॥

( गिरि पुस्तक १० तृष्ण ३५० ३६ । ३६ )

नारद ! तदनन्तर भगवान् विष्णु और वीरभद्रमें बीच युद्ध हुआ। अन्तमें वीरभद्रने भगवान् विष्णुके चक्षे गतिभित कर दिया तथा शार्ङ्गधनुपरके तीन ढुकड़े चढ़ाले। तब मेरे द्वारा एवं सरवतीद्वारा वोयित हुए श्रीविष्णुने उस महान् गणनाथके वीरभद्रको अमङ्ग तेजसे मुख जानकर वहाँसे अन्तर्याम होनेका विचार किया। दूसरे देवता भी यह जान गये कि नतीके प्रति जो अत्याय हुआ है, उसीका यह सब भावी परिणाम है। दूसरोंके लिये इस संकटका सामना करना अत्यन्त कठिन है। वह जानकर वे सब देवता अपने सेवकोंके साथ स्वतन्त्र सर्वेश्वर शिवका स्मरण करके अपने-अपने लोकोंके नाम गये। मैं भी पुनर्के दुःखसे पीड़ित हो गतवलोकमें चला आया और अत्यन्त दुःखसे अनुर हा सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये। मेरे तथा श्रीविष्णुके चले जानेर मुनियोंसहित समस्त यज्ञके आधार रहनेवाले देवता शिवगणोंद्वारा पराजित हो भाग गये। उस उपद्रवसे देखकर और उस महामखका विघ्नसे निकट जानकर वह यह भी अत्यन्त भयभीत हो मृगका लप धारण करके वहाँसि भाग। मृगके रूपमें आकाशकी ओर भागते देख वीरभद्रने उसे पकड़ लिया और उसका मस्तक काट डाला। किंतु उन्होंने मुनियों तथा देवताओंके अङ्ग भङ्ग कर दिये और वहुतोंको मार डाला। प्रतापी मणिभद्रने भृगुको उड़ान पटक दिया और उनकी छातीको पैरसे दबाकर तत्काल उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच ली। चण्डने वडे वेगसे पूर्ण दौँत उखाड़ लिये; क्षोणकि पूर्वकालमें जित समय महादेवीको दक्षके द्वारा गालियाँ दी जा रही थीं, उस समय वे दौँत दिखा-दिखाकर हँसे थे। नन्दीने भगको रोपूर्ख पृथ्वीपर दे मारा और उनकी दोनों आँखें निकाल लीं क्षोणकि जब दक्ष शिवजीको शाप दे रहे थे, उस समय वे आँखोंके संकेतसे अपना अनुमोदन सूचित कर रहे थे। वहाँ रुद्र-गणनाथकोने स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा देवियोंकी बड़ी विडम्बना ( दुर्दशा ) की। वहाँ जो मन्त्र-तत्त्व तथा दूसरे लोग थे, उनका भी बहुत तिरस्कार किया। व्रह्मपुर दक्ष भवके मारे अन्तर्वेदीके भीतर छिप गये थे। वीरभद्र उनका पता लगाकर उन्हें वल्लभूर्धक पकड़ लाये। किंतु उनके दोनों गाल पकड़कर उन्होंने उनके मस्तकपर तत्काल से आशात किया। परंतु योगके प्रभावसे दक्षका लिये अभेद्य हो गया था, इसलिये कट नहीं सका। जब धीरसे

को जान हुआ कि नमूर्ण अस्त्र-शब्दोंसे इनके मत्तकला भेदन करने हो नकता; तब उन्होंने दक्षकी छातीपर पैर शिवार दवाया और दोनों हाथोंसे गर्दन सरोड़कर तोड़ लेंदार्ही। किं शिवदेही कुष दक्षके उस सिरको गणनायक शिवरम्भने आगे कुण्डमें ढाल दिया। तदनन्तर जैसे सूर्य क्षिप्तम् अस्थकार-राशिका नाथ करके उदयाचलपर आहुढ़

होते हैं, उसी प्रकार धीर धीरमद्र दक्ष और उनके वक्ता विघ्नम करके कुतकार्य हो तुरंत ही वहाँसे उत्तम कैलाल पर्वतको चले गये। धीरमद्रको काम पूरा करके आया देस परमेश्वर यिथ मन-ही-मन बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने उन्हें धीर प्रमथगणोंका अव्यक्त बना दिया।

( अन्वय ३६-३७ )

श्रीविष्णुकी पराजयमें दधीच मुनिके शापको कारण बताते हुए दधीच और क्षुब्धके विवादका इतिहास, मृत्युजय-मन्त्रके अनुग्रहसे दधीचकी अवध्यता तथा श्रीहरिका क्षुब्धको दधीचकी पराजयके लिये यत्न करनेका आश्वासन

मृतजी कहते हैं—महियो ! अमितवुद्धिमान् व्रत्याजी-  
। कही हुँ यह कथा मुनकर द्विजमेष्ठ नारद विस्यमें  
इ गये । उल्लेने प्रसन्न गायुर्वक प्रभ किया ।

नारदजीने पूछा—पिताजी ! भगवान् विष्णु द्युति की  
इक्षु अन्व देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें क्यों चले  
थे , जिनके कारण वहाँ उनका तिरस्कार हुआ ? क्या  
प्रद्युम्नाजी परामर्शदाते भगवान् दांकरको नहीं जानते  
? फिर उन्होंने अशानी पुरुषकी भाँति स्त्रियोंके साथ  
क्यों लिया ? कल्पणानिधे ! मेरे मनमें यह बहुत वड़ा  
है । आय इस करके मेरे इस संशयको नष्ट कर  
जाने और प्रभो ! मममें उत्पाद दिदा करनेवाले द्युति-  
स्त्रियों का हित ।

मायाजीने कहा—नारद ! पूर्वकालमें तजा ध्रुवकी  
एवं उसमें भी दिको दधीच तुम्हें शाप देदिया  
था। किंतु उस समय में एस वामपो भूत गये और थे  
वे ऐदामीसोंकी लाप के दलके वशमें जँड़ गये। दधीचने  
वे आप दिया था तुम्हे। प्राचीन वालमें खुब नाममें  
उप एस भास्तरवी तजा हो गये हैं। वे नहाप्रभवतात्त्वी  
देवता दीर्घीके दिन में वीर्यालयी तास्त्रयके प्रवत्तमान  
में वैष्णव दीपीनके दिनाद आरम्भ हो गया, जो तीनों  
में सबसे अनार्थकरी हो जाते दिल्लान तुम्हारा। इन  
दिनों वैष्णव दिल्लान दधीच कहरे के लिए  
पौर एवं एवं एवं—उन तीनों कर्त्त्वोंके सामने ही भेद  
इन्हें दिया गया है। नहुमि इर्ष्याकी एवं एवं  
एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं  
एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं एवं

**श्रुत घोले-राजा इन्द्र आदि आठ लोकपालोंके स्वरूपों**  
धारण करता है। वह समस्त वर्णों और आश्रमोंका पालक  
एवं प्रभु है। इसलिये राजा ही सबसे श्रेष्ठ है। राजाकी  
श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेवाली श्रुति भी कहती है कि राजा  
सर्वदेवमय है। मुने! इस श्रुतिके कथनानुसार जो सबसे बड़ा  
देवता है, वह मैं ही हूँ। इस विवेचनसे व्रातग्रन्थकी अपेक्षा  
राजा ही श्रेष्ठ लिंद्र होता है। व्यवनन्वन्दन! आप इस  
विग्रहमें विचार करें और मेरा अनादर न करें; क्योंकि  
मैं नवैया आपके लिये पृजनीय हूँ।

राजा धुयका यह मन श्रुतियों और सूत्रियोंके विवर  
था। इसे सुनकर भगुकृलभूमण सुनिधेष्ट दधीनको बड़ा  
बोध हुआ। हुने ! अपने गोवका विचार करके कुपित  
हुए महातेजस्वी दधीनने धुयके ममकर वामे हुक्केसे  
प्रहार किया। उनके सुखेशी गार ल्लाल ग्रामान्दके  
अधिपति कुमित दुदिवाई धुव अव्यय कुमित हो गरज  
उठे और उन्होंने वज्जसे दधीनहो बाट आय। उस दहरां  
आहुत हो भगुवंशी दधीन पुर्णीपर गिर पडे। भगुवं-  
शीपर दधीनने गिरते समय युद्धानन्दना स्मरण किया।  
योगी सुकालकालने बहार दधीनके घर्सारते गिरे कुमित  
काट आय था, हुरन झेंट दिय। दधीनने अर्द्धेशे  
पूर्ववर्ष लीडवर गिरभक्तिरेवति वधा सूर्यविद्याने  
मन्त्रहृष्ट उच्छवार्द्धने वधके थए।

शुक्र देवता—वायु दर्शन के लिए रात्रें जल नदी के दूसरे तट से उत्तरी दिश में विश्वामित्र का अवस्थान करते हुए शुक्र देवता का दर्शन करना।

〔五〕 〔六〕 〔七〕 〔八〕 〔九〕 〔十〕 〔十一〕 〔十二〕

( आराधन ) करते हैं। व्यम्बकका अर्थ है—तीनों लेकोके पिता प्रभावशाली शिव। वे भगवान् सूर्य, सोम और अग्नि—तीनों मण्डलोंके पिता हैं। सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके महेश्वर हैं। आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीन तत्त्वोंके; आहवनीय, गाहृपत्य और दक्षिणामि—इन तीनों अग्नियोंके; सर्वत्र उपलब्ध होनेवाले पृथ्वी, जल एवं तेज—इन तीन मूर्त्त भूतोंके ( अथवा सात्त्विक आदि भेदसे त्रिविध भूतोंके ), त्रिदिव ( सर्व ) के, त्रिमुजके, त्रिधामूत सदके तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवताओंके महान् ईश्वर महादेवजी ही हैं। ( यहाँतक मन्त्रके प्रथम चरणकी व्याख्या हुई। ) मन्त्रका द्वितीय चरण है—‘सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्’—जैसे पूलोंमें उत्तम गन्ध होती है, उसी प्रकार वे भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंमें, तीनों गुणोंमें, समस्त कृत्योंमें, इन्द्रियोंमें, अन्यान्य देवोंमें और गणोंमें उनके प्रकाशक सारभूत आत्माके रूपमें व्याप्त है, अतएव सुगन्धयुक्त एवं सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं। ( यहाँतक ‘सुगन्धिम्’ पदकी व्याख्या हुई। अब ‘पुष्टिवर्धनम्’ की व्याख्या करते हैं—) उत्तम ग्रन्तका पालन करनेवाले द्विजश्रेष्ठ ! महामुने नारद ! उन अन्तर्यामी पुरुष शिवसे प्रकृतिका पोषण होता है—महत्तत्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकल्पोंकी पुष्टि होती है तथा मुक्त ब्रह्माका, विष्णुका, मुनियोंका और इन्द्रियोंसहित देवताओंका भी पोषण होता है, इसलिये वे ही ‘पुष्टिवर्धन’ हैं। ( अब मन्त्रके तीसरे और चौथे चरणकी व्याख्या करते हैं। ) उन दोनों चरणोंका स्वरूप यों है—उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्—अर्थात् ‘प्रभो ! जैसे खरबूजा पक जानेपर लताबन्धनसे छूट जाता है, उसी तरह मैं मृत्युरूप बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ, अमृतपद ( मोक्ष ) से पृथक् न होऊँ । ’ वे रुद्रदेव अमृत-स्वरूप हैं; जो पुण्यकर्मसे, तपस्यासे, स्वाव्यायसे, योगसे अथवा ध्यानसे उनकी आराधना करता है, उसे नृतन जीवन प्राप्त होता है। इस सत्यके प्रभावसे भगवान् शिव स्वयं ही अपने भक्तको मृत्युके सूक्ष्म बन्धनसे मुक्त कर देते हैं; क्योंकि वे भगवान् ही बन्धन और मोक्ष देनेवाले हैं—ठीक उसी तरह, जैसे उर्वारुक अर्थात् कड़ीका पौधा अपने फलको स्वयं ही लताके बन्धनमें बाँधे रखता है और पक जानेपर स्वयं ही उसे बन्धनसे मुक्त कर देता है।

यह मृतसंजीवनी मन्त्र है, जो मेरे मतसे सर्वोत्तम है। तुम प्रेमपूर्वक नियमसे भगवान् शिवका स्मरण करते हुए इस मन्त्रका जप करो। जप और हृवनके पश्चात् इसीसे

अभिमन्त्रित किये हुए जलको दिन और रातमें पीत्रोंक शिवविग्रहके समीप वैठकर उन्होंका ध्यान करते रहो। इन कहीं भी मृत्युका भय नहीं रहता। न्यास आदि स्वस्त्र करके विधिवत् भगवान् शिवकी पूजा करो। यह सब ज्ञानान्तभावसे वैठकर भक्तवत्सल शंकरका ध्यान करना चाहिए में भगवान् शिवका ध्यान बता रहा हूँ, जिसके अनुसार ज्ञानितन करके मन्त्र-जप करना चाहिये। इस तरह नित जप करनेसे बुद्धिमान् पुरुष भगवान् शिवके प्रभावेव मन्त्रको सिद्ध कर लेता है।

### मृत्युंजयका ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुदधत्य तोयं शिरः

सिङ्गन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ श्वैः

अक्षस्त्रङ्गुहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्त्रव-

त्पीयूपाद्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम्।

जो अपने दो करकमलोंमें रखके हुए दो छड़े जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा उन मस्तकको संचिते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो धड़े उन्हें अपनी गोदमें रखके हुए हैं तथा शेष दो छड़े एवं मृगमुदा धारण करते हैं, कमलके आले बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अंजिनका सारा शरीर भींगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युंजयका, जिसके गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन ( नित ) करता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—तात ! मुनिश्चेष्ट दधीच्चै प्रकार उपदेश देकर शुक्रचार्य भगवान् शंकरका साल हुए अपने स्थानको लौट गये। उनकी वह वत् महामुनि दधीच वड़े प्रेमसे शिवजीका सूरण करे तपस्याके लिये बनमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने महामृत्युंजय मन्त्रका जप और प्रेमपूर्वक भगवान् चिन्तन करते हुए तपस्या प्रारम्भ की। दीर्घकाल मन्त्रका जप और तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी अवकरके दधीचने महामृत्युंजय शिवको संतुष्ट किया। फिर उस जपसे प्रसन्नचित्त हुए भक्तवत्सल भगवान् शिव प्रेमबद्ध उनके सामने प्रकट हो गये। अपने प्रभु शिव साक्षात् दर्शन करके मुनीश्वर दधीचको बड़ी प्रसन्नता उन्होंने विधिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ भर्त

रहेंकरता नवन किया । तात ! गुण ! लदनन्तर सुनिके प्रेमसे । लक्ष्मीश्वर हुए शिवने च्यवनकुमार दधीचसे कहा—‘नुम वर कृपांगी ।’ भगवान् शिवका वह वचन सुनकर भक्तशिरोमणि गोप्योच थाँगों दाथ जाँड़ नमस्कक हो भक्तवत्सल शंकरसे कृपांग ।



‘धीरने कहा—देवदेव महादेव ! गुण तीम वर किये । मेरी इटी यश एं जाप । कोइ भी भेंग कप न कर के लोर मैं तर्पन अधीन रहूँ—कभी गुणमें दीनता न आये ।

‘धीरना यह वचन सुनकर प्रगत हुए परमेश्वर शिवने अपने चक्रवर्त उठे पे तीमों वर दे दिये । शिवजीमे नीन आहर पैद्यमध्यमे प्रतिहित महामुनि दधीच अनन्दमय हो चौंही रही राजा धुरके सततमें गये । महादेवजीमे दधीच रहनकर अर्थि भीर अग्निता पाहर दधीचने राजेन्द्र के समानम याता भयी । सिर के राजा धुरमे भी शेष रहे एवं शर, वहसे प्रतर किया । दे भगवान् शिवके अपनी यशमि भी हुए थे । परंतु धुरका चरणात्मा हुआ अपने राजेन्द्र शिवके पूर्णमध्यमे बहुता शरीक राजा न हुए । उनकी राजेन्द्र धुरके राजा दिनार हुआ ।

मुनीश्वर दधीचकी अवध्यता अदीनता तथा वज्रसे भी बड़-चढ़ कर प्रभाव देखकर ब्रह्मकुमार धुरके मनमें बड़ा आश्रय हुआ । उन्होंने शीघ्र ही वनमें जाकर इन्द्रके लोटे भाई मुकुन्दकी आराधना अरम्भ दी । वे शरणागतपालक नरेश मृत्युंजयसेवक दधीचसे पराजित हो गये थे । धुरको पूजासे गरुडध्वज भगवान् मधुसूदन वहुत संतुष्ट हुए । उन्होंने राजाको दिव्यहृषि प्रदान की । उस दिव्यहृषिसे ही जनार्दन देवका दर्शन करके उन गरुडध्वजको धुरने प्रणाम किया और प्रिय वचनोंद्वारा उनकी सुति की । इस प्रकार देवेश्वर आदिसे प्रशंसित उन अजेय ईश्वर श्रीतारायणदेवका पूजन और स्वनत करके राजाने भक्तिभावसे उनकी ओर देखा तथा उन जनार्दनके चरणमें मस्तक रखकर प्रणाम करनेके पश्चात् उन्हें अपना अभिप्राय सूचित किया ।

राजा बोले—भगवन् ! दधीच नामसे प्रसिद्ध एक आद्याण है, जो धर्मके शाता है । उनके हृदयमें विनयका भाव है । वे पहले मेरे मित्र थे । इन दिनों रोग-शोकसे रहित मृत्युंजय महादेवजीकी आराधना करके वे उन्हीं कल्याणकारी शिवके प्रभावसे समस्त अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सदाके लिये अवध्य हो गये हैं । एक दिन उन महातपस्त्री दधीचने भरी सभामें आकर अपने वावे देरसे मेरे मस्तकपर वडे वेगसे अवदेशनापूर्वक प्रदार किया और वडे गर्वसे कहा—‘मैं किसीसे नहीं डरता ।’ हरे ! वे मृत्युंजयसे उत्तम वर पावर अतुपम गर्वसे भर गये हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! महात्मा दधीचजी अवध्यताका समचर जानकर श्रीरत्ने महादेवजीके अगुलित प्रभावका स्मरण किया । सिर वे द्रव्यपुत्र राजा धुरमे कोहे—प्रान्तिक ! ब्रातांकोंका वही थोड़ा-सा भी भय नहीं है । भूतन ! विदेशपत्रः गदमन्त्रेण लिये तो भय नामकी कोई वस्तु है थी नहीं । यदि मैं तुम्हारी ओरसे कुछ कर्म तो ब्रातान दधीचको हुएव होगा और यह सुरक्षामे देवदाम दिये भी शापदा व्याप दन जायगा । गोकुम्भ ! दधीचने यातसे कल्पे यहाँ सुरेश्वर शिवमे सरी प्राज्ञव होगी और यह माता उत्तरान भी होगा । महात्मा ! इन्द्रियोंमें तुम्हारे यथा राजेन्द्र कुछ कर्म नहीं जाता, मैं अर्द्धांशी ही कुम्भांशी यह दधीचकी ईश्वरीय प्रभाव कर्मसा ।

महात्मा दिनार वह दक्षम सुदर्शन धुर को—‘हाहाहाह ! यह है राजा धुर ! देख कहाने के इन दर्शकों की दृष्टि दर्शन देखना उत्तम दृष्टिमन्त्रदर्शक यही दाता है ।’ अताम ३८

## श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचका उनके लिये शाप और क्षुब्धपर अनुग्रह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भक्तवत्सल भगवान् विष्णु राजा क्षुब्धका हित-साधन करनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारण कर दधीचके आश्रमपर गये । वहाँ उन जगद्गुरु श्रीहरिने शिवभक्तशिरोमणि ब्रह्मार्थि दधीचको प्रणाम करके क्षुब्धके कार्यकी सिद्धिके लिये उच्चत हो उनसे यह बात कही ।

**श्रीविष्णु बोले**—भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले अविनाशी ब्रह्मार्थि दधीच ! मैं तुमसे एक बर माँगता हूँ । उसे तुम मुझे दे दो ।

क्षुब्धके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले देवाधिदेव श्रीहरिके इस प्रकार याचना करनेपर शैवशिरोमणि दधीचने शीघ्र ही भगवान् विष्णुसे इस प्रकार कहा ।

**दधीच बोले**—ब्रह्मन् ! आप क्या चाहते हैं, यह मुझे ज्ञात हो गया । आप क्षुब्धका काम बनानेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही ब्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आये हैं । इसमें संदेह नहीं कि आप पूरे मायावी हैं । किंतु देवेश ! जनार्दन ! मुझे भगवान् रुद्रकी कृपासे भूत, भविष्य और वर्तमान-तीनों कालोंका शान सदा ही बना रहता है । सुन्दर ! मैं आपको जानता हूँ । आप पापहारी श्रीहरि एवं विष्णु हैं । यह ब्राह्मणका वेश छोड़िये । दुष्टबुद्धिवाले राजा क्षुब्ध आपकी आराधना की है । (इसीलिये आप पधारे हैं ।) भगवान् ! हरे ! आपकी भक्तवत्सलताको भी मैं जानता हूँ । यह छल छोड़िये । अपने रूपको ग्रहण कीजिये और भगवान् शंकरके स्मरणमें मन लगाइये । मैं भगवान् शंकरकी आराधनामें लगा रहता हूँ । ऐसी दशामें भी यदि मुझसे किसीको भय हो तो आप उसे यत्नपूर्वक सर्वकी शापथके साथ कहिये । मेरा मन शिवके स्मरणमें ही लगा रहता है । मैं कभी झट्ठ नहीं बोलता । इस संसारमें किसी देवता या दैत्यसे भी मुझे भय नहीं होता ।

**श्रीविष्णु बोले**—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दधीच ! तुम्हारा भय सर्वत्र नष्ट ही है; क्योंकि तुम शिवकी आराधनामें तत्पर रहते हो । इसीलिये सर्वज्ञ हो । परंतु मेरे कहनेसे तुम एक बार अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा क्षुब्धसे जाकर कह दो कि ‘राजेन्द्र ! मैं तुमसे डरता हूँ ।’

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी शैवशिरोमणि महामुनि दधीच निर्भय ही रहे और हँसकर बोले ।

**दधीचने कहा**—मैं देवाधिदेव जिनकामणि भास्त शम्भुके प्रसादसे कहाँ, कभी, किसीसे और किंचित्कर नहीं डरता—सदा ही निर्भय रहता हूँ ।

इसपर श्रीहरिने मुनिको दवानेकी चेष्टा की । देखकर भी उनका राथ दिया । किंतु रथके सभी अन्न कुरुते गये । तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने अगणित गणोंकी शृणि परंतु महर्षिने उनको भी भस्त कर दिया । तब मालूम अपनी अनन्त विष्णुमूर्ति प्रकट की । यह सब देखकर चल कुमारने वहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुसे कहा ।

**दधीच बोले**—महावाहो ! मायाको त्यग दीजो विचार करनेसे यह प्रतिभासमात्र प्रतीत होती है । माफ़! मैंने सहस्रों दुर्विज्ञेय वस्तुओंको जान लिया है । आप क्षुब्ध अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को देखिये । निरालय हँसकर कुरु ब्रह्मा एवं रुद्रका भी दर्शन कीजिये । मैं आपके द्विदृष्टि देता हूँ ।

ऐसा कहकर भगवान् शिवके तंजसे पूर्ण दर्शकवलेष्ट कुमार दधीच मुनिने अपनी देहमें समस्त ब्रह्माण्डका संकरण कराया । तब भगवान् विष्णुने उनपर पुनः कोष कला चढ़ा इतनेमें ही मेरे साथ राजा क्षुब्ध वहाँ आ पहुँचे । मैंनेनिच्छेदे हुए भगवान् पद्मनाभको तथा देवताओंको क्रोध करनेमें भी मेरी बात सुनकर इन लोगोंने ब्राह्मण दधीचको पराहत किया । श्रीहरि उनके पास गये और उन्होंने मुनिके प्रकट किया । तदनन्तर क्षुब्ध अत्यन्त दीन हो उन मुनीश्वर दर्शने निकट गये और उन्हें प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।

**क्षुब्ध बोले**—मुनिश्रेष्ठ ! शिवभक्तशिरोमणे ! क्षुब्ध प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! आप दुर्जनांकी दृष्टिसे दूर रहें हैं । मुझपर कृपा कीजिये ।

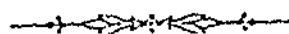
**ब्रह्माजी कहते हैं**—नारद ! राजा क्षुब्धकी यह सुनकर तपस्याकी निधि ब्राह्मण दधीचने उनपर अनुग्रह किया तपश्चात् श्रीविष्णु आदिको देखकर वे मुनि क्रोधसे वार्ष हो गये और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विष्णु देवताओंको शाप देने लगे ।

**दधीचने कहा**—देवराज इन्द्रसहित देवताओं के मुनीश्वरो ! तुमलोग रुद्रकी क्रोधग्निसे श्रीविष्णु तथा गणोंसहित पराजित और ध्वस्त हो जाओ ।

देवताओंको इस तरह शाप दे क्षुब्धकी ओर देख

यनाओं और यज्ञोंके पूजनीय द्विजथेष्ट द्वीचने कहा—  
गंजन्म ! ब्राह्मण ही वली और प्रभावशाली होते हैं।' ऐसा  
प्रश्नमें कल्पक ब्राह्मण द्वीच अपने आश्रममें प्रविष्ट  
गये। किर दधीचको नमस्कार मात्र करके ध्रुव अपने धर  
रहे गये। तपश्चात् भगवान् विष्णु देवताओंके माथ जैसे  
जाये, उनी तरह अपने वैकुण्ठलोकको लौट गये। इस  
स्थान पर म्यान म्यानेश्वर नामक तीर्थके हृष्मणे प्रसिद्ध हो  
गया। भानेश्वरकी शाढ़ा करके मनुष्य शिवका भायुज्य प्राप्त  
गया। भानेश्वरकी शाढ़ा करके मनुष्य शिवका भायुज्य प्राप्त

कर लेता है। तात ! मैंने तुम्हें संक्षेपसे ध्रुव और दधीचके  
विवादकी कथा सुनायी और भगवान् शंकरको छोड़कर  
केवल ब्रह्मा और विष्णुको ही जो धाय प्राप्त हुआ, उसका भी  
वर्णन किया। जो ध्रुव और दधीचके विवादसम्बन्धी इस  
प्रश्नका नित्य पाठ करता है, वह अपमूलुको जीतकर  
देहस्तागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाता है। जो इसका पाठ करके  
रणभूमिमें प्रवेश करता है, उसे कभी मृत्युका भय नहीं होता  
तथा वह निश्चय ही विजयी होता है। ( अध्याय ३९ )



### देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, श्रीविष्णुका उन्हें शिवसे धर्म माँगनेकी अनुमति दे उनको साथ ले कैलासपर जाना तथा भगवान् शिवसे मिलना

तारदत्तीने कहा—विभानः ! महाप्राप्त ! आप श्रिव-  
रन्मान भगवान्कार करनेवाले हैं। आपने वह वडी अद्भुत  
दृश्य स्मरणीय विवरलीला सुनायी है। तात ! वीर वीरभद्र जब  
प्रत्येक यज्ञका विसाम करके कैलास पर्वतपर चढ़े गये; तब  
वह तुम सब लोग शुद्ध हृष्मणसे दीप ही प्रसन्न होनेवाले उन  
भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो। उनसे धर्म  
माँगो।

भ्रगाजी बोले—नारद ! रुद्रदेववे सेनिकोंने जिनके  
प्राणहर गर लिये पै, ने समस्त पराजित देवता और मुनि उम  
सब में लोकों आये। यहाँ सुषा स्वयम्भूतो नमस्त्वार करके  
वैष्णव भारतवर में आयन दिया। किर अपने विशेष वक्तेष्ट-  
पूर्वकाम सुनाया। उसे गुमयर में पुच्छोकमे पीड़ित हो  
गया और अल्पल लग हो व्यथित नित्यसे वडी चिन्ना  
में रहा। भिर यैसे भस्त्रियामें भगवान् विष्णुका स्मरण  
हो। इसे गृहे यज्ञोनित शान प्राप्त हुआ। नदनन्दर  
और मनिषोंके साथ मैं विष्णुलोकमें गया और वहाँ  
पूर्विको नमस्त्वार एवं नाना प्रश्नारके न्योन्नदार  
प्रश्नोंपरके उपर्युक्त अपना दुःख निवेदन किया। मैंने  
—ऐत ! दिव नारद भी यह पूर्व हो, पञ्चान ईश्विन  
और भगवान् देवता कम सुनी हो जायें, वैना उपर्युक्त  
हो। देवतो ! मध्यसाथ ! वैष्णवका कियो ! एस  
एवं भूते निश्चय ही भारती शरणमें आये हैं।

—ऐत ! नारद वासुदेव भगवान्, भगवान्निति विष्णु,  
मैं एवं तुम विष्णुके देवता रहते हैं, वैष्णव कियो उपर्युक्त  
प्रश्नोंकी जायी, विष्णव स्मरण उपर्युक्त एस प्रश्नर देवते।

—विष्णुने देवता—ऐत ! एस सभी नित्यहृत  
की दैव भगवान् तर आप जै वै उम्हे दृष्टीके

अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये वह अपराध मङ्गलकारी नहीं  
हो सकता। विभातः ! समस्त देवता परमेश्वर शिवके अपराधी  
हैं; क्योंकि इन्हेंने भगवान् शम्भुको यज्ञका भाग नहीं दिया।  
अब तुम सब लोग शुद्ध हृष्मणसे दीप ही प्रसन्न होनेवाले उन  
भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो। उनसे धर्म  
माँगो। जिन भगवान्के कुपित होनेपर वह यारा जगत् नष्ट  
हो जाता है तथा जिनके शासनसे लोकपालेसहित यज्ञका जीवन  
शीघ्र ही स्फास हो जाता है, वै भगवान् महादेव इस गाय  
अपनी प्राणवह्निभा नर्नासे विद्युत गये हैं तथा अत्यन्त तुरन्तमा  
दधने अपने हुर्वननसुरी वाणोंने उनके दृष्टयकी पहलेसे ही  
शायद कर दिया है; अतः तुमलोग दीप ही जागत उनसे अपने  
अपराधोंके लिये धर्म माँगो। तिथे ! उन्हें शान रक्षणा  
केवल यही सबसे बड़ा उपाय है। मैं स्मरणता हूँ ऐसा करनेमें  
भगवान् शंकरकी संलोप होगा। यह मैंने शर्दी शान कही है।  
घटान ! मैं भी तुम सब लोगोंके साथ शिवदे निदास ग्रानपा-  
न्दैर्या और उनसे धर्म माँगूँगा।

देवता आदि नहिं सुन ब्रह्मादी इस प्रश्नर आदेश देवत  
कीतरिने देवगलोंके साथ वैष्णव रक्षणा ज्ञानक निवार  
किया। नदनन्दर देवता, मुनि और प्रजाती आदि जिनके  
स्वरूप ही हैं, वे श्रीहृषि इस स्वरूपी स्वरूप अपने रुद्राद्युम्ह-  
से भगवान् विष्णु युव विष्णव विष्णुप्रिय विष्णुप्रियों देवते।  
वैष्णव भगवान् विष्णुकी जाय ही भगवान् दिये हैं। मनुष्योंके  
प्रिय जिन्हें अग्नर्ह और वैष्णव वैष्णव सभी  
जागत भूतेभूते वैष्णव हैं? एस यह जै वै उपर्युक्त है  
क्षेत्र है। उसके जिन्हें रुद्राद्युम्हे विष्णु दूष्टर्वास्त्राद्युम्ह-  
स्त्रैर्विष्णु यह वैष्णव है, जिन्हें एवं देवताओंके देवते,

## श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचका उनके लिये शाप और क्षुब्धि अनुग्रह

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नरद ! भक्तवत्सल भगवान् विष्णु राजा क्षुब्धका हित-आधान करनेके लिये व्राह्मणका रूप धारण कर दधीचके आश्रमपर गये । वहाँ उन जगदगुरु श्रीहरिने शिवभक्तशिरोमणि ब्रह्मर्थि दधीचको प्रणाम करके क्षुब्धके कार्यकी सिद्धिके लिये उद्यत हो उनसे यह वात कही ।

**श्रीविष्णु बोले—**भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले अविनाशी ब्रह्मर्थि दधीच ! मैं तुमसे एक वर माँगता हूँ । उसे तुम मुझे दे दो ।

क्षुब्धके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले देवाखिदेव श्रीहरिके इस प्रकार याचना करनेपर शैवशिरोमणि दधीचने शीघ्र ही भगवान् विष्णुसे इस प्रकार कहा ।

**दधीच बोले—**ब्रह्मन् ! आप क्या चाहते हैं, यह मुझे शात हो गया । आप क्षुब्धका काम बनानेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही व्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आये हैं । इसमें संदेह नहीं कि आप पूरे मायाबी हैं । किंतु देवेश ! जनार्दन ! मुझे भगवान् रुद्रकी कृपासे भूत, भविष्य और वर्तमान-तीनों कालोंका ज्ञान सदा ही बना रहता है । मुन्नत ! मैं आपको जानता हूँ । आप पापहारी श्रीहरि एवं विष्णु हैं । यह व्राह्मणका वेश छोड़िये । दुष्टबुद्धिवाले राजा क्षुब्धने आपकी आराधना की है । (इसीलिये आप पधारे हैं ।) भगवन् ! होरे ! आपकी भक्तवत्सलताको भी मैं जानता हूँ । यह छल छोड़िये । अपने रूपको ग्रहण कीजिये और भगवान् शंकरके सरणमें मन लगाइये । मैं भगवान् शंकरकी आराधनामें लगा रहता हूँ । ऐसी दशामें भी यदि मुझसे किसीको भय हो तो आप उसे यत्नपूर्वक सत्यकी शपथके साथ कहिये । मेरा मन शिवके सरणमें ही लगा रहता है । मैं कभी झूट नहीं बोलता । इस संसारमें किसी देवता या दैत्यसे भी मुझे भय नहीं होता ।

**श्रीविष्णु बोले—**उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले दधीच ! तुम्हारा भय सर्वत्र नष्ट ही है; क्योंकि तुम शिवकी आराधनामें तत्पर रहते हो । इसीलिये सर्वशः हो । परंतु मेरे कहनेसे तुम एक बार अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा क्षुब्धसे जाकर कह दो कि ‘राजेन्द्र ! मैं तुमसे डरता हूँ ।’

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी शैवशिरोमणि महामुनि दधीच निर्भय ही रहे और हँसकर बोले ।

दधीचने कहा—मैं देवाखिदेव पिनाकमणि मात् यमसुके प्रगाढ़से कहा, कभी, किसीसे और किसीमरहं नहीं डरता—नदा ही निर्भय रहता हूँ ।

इसपर श्रीहरिने मुनिको दयानेकी चेष्टा की । देवकहं भी उनका गाथ दिया । किंतु सबके सभी अन्न कुलिहं गये । तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने अगणित गणंकी सूर्य परंतु महर्षिने उनको भी भस्त कर दिया । तब मह अपनी अनन्त विष्णुमूर्ति प्रकट की । यह सब देखकर चुम्मारने वहाँ जगशीवर भगवान् विष्णुसे कहा ।

**दधीच बोले—**महावाहो ! मायाको त्वग यदि विचार करनेसे यह प्रतिमासमात्र प्रतीत होती है । मह मैंने सहस्रां दुर्विशेष वस्तुओंको ज्ञान लिया है । आह अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को देखिये । निरालस्य हेतु स ब्रह्म एवं रुद्रका भी दर्शन कीजिये । मैं आपको हृषि देता हूँ ।

ऐसा कहकर भगवान् शिवके तेजसे पूर्ण चरीखलेख कुमार दधीच मुनिने अपनी देहमें समस्त ब्रह्माङ्काद कराया । तब भगवान् विष्णुने उनपर पुनः कोप करना दृ इतनेमें ही मेरे साथ राजा क्षुब्ध वहाँ आ पहुँचे । मैंनेनिरेख हुए भगवान् पद्मनाभको तथा देवताओंको क्रोध करनेरहे मेरी बात सुनकर इन लोगोंने व्राह्मण दधीचको पछड़ किया । श्रीहरि उनके पास गये और उन्होंने मुनिके मृ किया । तदनन्तर क्षुब्ध अत्यन्त दीन हो उन मुनीश्वर दर्शनिकट गये और उन्हें प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।

**क्षुब्ध बोले—**मुनिश्रेष्ठ ! शिवभक्तशिरोमणे ! मैं प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! आप दुर्जनोंकी दृष्टिसे दूर रहें हैं । मुझपर कृपा कीजिये ।

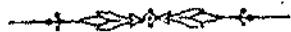
**ब्रह्माजी कहते हैं—**नरद ! राजा क्षुब्धकी यह सुनकर तपस्याकी निधि व्राह्मण दधीचने उनपर अनुग्रह तपश्चात् श्रीविष्णु आदिको देखकर वे मुनि क्रोधसे बर्ह हो गये और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विष्णु देवताओंको शाप देने लगे ।

**दधीचने कहा—**देवराज इन्द्रसहित देवताओं सुनीश्वरो । तुमलोग रुद्रकी क्रोधाग्निसे श्रीविष्णु तथा अगरोंसहित पराजित और ध्वस्त हो जाओ ।

देवताओंको इस तरह शाप दे क्षुब्धकी ओर देल

देवताओं और राजाओंके पूजनीय द्विजप्रेष्ठ दधीच्छने कहा—  
“राजेन्द्र ! ब्राह्मण ही बली और प्रभावशाली होते हैं ।” ऐसा स्पृहसप्तसे कहकर ब्राह्मण दधीच्छ अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये । फिर दधीच्छको नमस्कार मात्र करके क्षुब्ध अपने घर चले गये । तत्पश्चात् भगवान् विष्णु देवताओंके साथ जैसे आये थे, उसी तरह अपने वैकुण्ठलोकको लौट गये । इस प्रकार वह स्थान स्थानेश्वर नामक तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गया । स्थानेश्वरकी यात्रा करके मनुष्य शिवका सायुज्य प्राप्त

कर लेता है । तात ! मैंने तुम्हें संक्षेपसे क्षुब्ध और दधीच्छके विवादकी कथा सुनायी और भगवान् शंकरको छोड़कर केवल ब्रह्मा और विष्णुको ही जो शाप प्राप्त हुआ, उसका भी वर्णन किया । जो क्षुब्ध और दधीच्छके विवादसम्बन्धी इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, वह अपमृत्युको जीतकर देहस्थागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाता है । जो इसका पाठ करके रणभूमिमें प्रवेश करता है, उसे कभी मृत्युका भय नहीं होता तथा वह निश्चय ही विजयी होता है । ( अध्याय ३९ )



### देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, श्रीविष्णुका उन्हें शिवसे क्षमा माँगनेकी अनुमति दे उनको साथ ले कैलासपर जाना तथा भगवान् शिवसे मिलना

नारदजीने कहा—विधातः ! महाप्राप्त ! आप शिवका साक्षात्कार करनेवाले हैं । आपने यह बड़ी अद्भुत वं रमणीय शिवलीला सुनायी है । तात ! वीर वीरभद्र जवासके यज्ञका विनाश करके कैलास पर्वतपर चले गये, तब ग हुआ ? यह हमें बताइये ।

ब्रह्माजी बोले—नारद ! सद्देवके सैनिकोंने जिनके क्रमङ्ग कर दिये थे, वे समस्त पराजित देवता और मुनि उस पर्व मेरे लोकमें आये । वहाँ मुक्त स्वयम्भूको नमस्कार करके तो वारंवार मेरा स्वावन किया । फिर अपने विशेष क्लेश-पूर्णसप्तसे सुनाया । उसे सुनकर मैं पुत्रशोकसे पीड़ित हो ग और अत्यन्त व्यग्र हो व्यथित नित्यसे बड़ी चिन्ता रने लगा । फिर मैंने भक्तिभावसे भगवान् विष्णुका स्वरण शा । इससे मुझे रामयोचित ज्ञान प्राप्त हुआ । तदनन्तर देवताओं और मुनियोंके साथ मैं विष्णुलोकमें गया और वहाँ भगवान् विष्णुको नमस्कार एवं नाना प्रकारके स्तोत्रोद्धारा की स्तुति करके उनसे अपना दुःख निवेदन किया । मैंने ॥—“देव ! जिस तरह भी यज्ञ पूर्ण हो, यजमान जीवित और समस्त देवता तथा मुनि सुखी हो जायें, वैसा उपाय जेये । देवदेव ! रमानाथ ! देवसुखदायक विष्णो ! हम तो और मुनि निश्चय ही आपकी शरणमें आये हैं ।”

गुप्त ब्रह्माकी यह वात सुनकर भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु, जो मन सदा शिवमें लगा रहता है और जिनके हृदयमें दीनता नहीं आती, शिवका स्वरण करके इस प्रकार घोले ।

श्रीविष्णुने कहा—देवताओं ! एस समर्थ तेजस्वी होइ अपराध वन जाय तो भी उसके बदलेमें

अपराध करनेवाले भनुष्योंके लिये वह अपराध मङ्गलकारी नहीं हो सकता । विधातः ! समस्त देवता परमेश्वर शिवके अपराधी हैं; क्योंकि इन्होंने भगवान् शम्भुको यज्ञका भाग नहीं दिया । अब तुम सब लोग शुद्ध हृदयसे शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले उन भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो । उनसे क्षमा माँगो । जिन भगवान्के कुपित होनेपर यह सारा जगत् नष्ट हो जाता है तथा जिनके शासनसे लोकपालोंसहित यज्ञका जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, वे भगवान् महादेव इस समय अपनी प्राणवल्लभा सतीसे विछुड़ गये हैं तथा अत्यन्त दुरात्मा दक्षने अपने दुर्वचनरूपी बाणोंसे उनके हृदयको पहलेसे ही धायल कर दिया है; अतः तुमलोग शीघ्र ही जाकर उनसे ध्याने अपराधोंके लिये क्षमा माँगो । विधे ! उन्हें शान्त करनेका केवल यही सबसे बड़ा उपाय है । मैं समझता हूँ ऐसा करनेसे भगवान् शंकरको संतोष होगा । यह मैंने सज्जी बात कही है । ब्रह्मन् ! मैं भी तुम सब लोगोंके साथ शिवके निवास स्थानपर चलूँगा और उनसे क्षमा माँगूँगा ।

देवता आदि सहित मुक्त ब्रह्माको इस प्रकार आदेश देकर श्रीहरिने देवगणोंके साथ कैलास पर्वतपर जानेका विचार किया । तदनन्तर देवता, मुनि और प्रजापति आदि जिनके स्वरूप ही हैं, वे श्रीहरि उन सबको साथ ले अपने वैकुण्ठघास-से भगवान् शिवके श्रुभ निवास गिरिश्रेष्ठ कैलासको गये । कैलास भगवान् शिवको सदा ही अत्यन्त प्रिय है । मनुष्योंसे भिन्न किनर, असराएँ और योगमिद्व महात्मा पुरुष उसका भलीभांति सेवन करते हैं तथा वह पर्वत चढ़त ही ऊँचा है । उसके निकट नद्रदेवके मिथ कुनेरकी अलका नामक महादिव्य एवं रमणीय पुरी है, जिसे सब देवताओंने देखा ।

उस पुरीके पास ही सौगन्धिक वन भी देवताओंकी दृष्टिमें आया, जो सब प्रकारके वृक्षोंसे हरा-भरा एवं दिव्य था। उसके भीतर सर्वत्र सुगन्ध कैलानेवाले सौगन्धिक नामक कमल खिले हुए थे। उसके बाहरी भागमें नन्दा और अलकनन्दा—ये दो अत्यन्त पावन दिव्य सरिताएँ वहती हैं, जो दर्शनमात्रसे प्राणियोंके पाप हर लेती हैं। यक्षराज कुवेरकी अलकापुरी और सौगन्धिक वनको पीछे छोड़कर आगे बढ़ते हुए देवताओंने थोड़ी ही दूरपर शंकरजीके बटवृक्षको देखा। उसने चारों ओर अपनी अविच्छल छाया फैला रखी थी। वह बृक्ष सी योजन ऊँचा था और उसकी शाखाएँ पच्छहतर योजनतक फैली हुई थीं। उसपर कोई धोसला नहीं था और श्रीष्मका ताप तो उससे सदा दूर ही रहता था। बड़े पुण्यात्मा पुरुषोंको ही उसका दर्शन हो सकता है। वह परम रमणीय और अत्यन्त पावन है। वह दिव्य बृक्ष भगवान् शम्भुका योगस्थल है। योगियोंके द्वारा सेव्य और परम उत्तम है। मुसुक्षुओंके व्याश्रयभूत उस महायोगमय बटवृक्षके नीचे विष्णु आदि सब देवताओंने भगवान् शंकरकी विराजमान देखा। मेरे पुत्र महासिंह सनकादि, जो सदा शिव-भक्तिमें तत्पर रहनेवाले और शान्त हैं, वही प्रसन्नताके साथ उनकी सेवामें बैठे थे। भगवान् शिवका श्रीविग्रह परम शान्त दिवायी देता था। उनके सखा कुवेर, जो गुह्यकों और राक्षसोंके स्वामी हैं, अपने सेवकगणों तथा कुदुम्बीजनोंके साथ सदा विशेषरूपसे उनकी सेवा किया

करते हैं। वे परमेश्वर शिव उस समय तपस्यीजनोंके परम प्रिय लगनेवाला सुन्दर रूप धारण किये बैठे थे। भस्म आकिं उनके अङ्गोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। भगवान् शिव वसे बत्सुल स्वभावके कारण सारे संसारके सुहृद हैं। नाद। उस दिन वे एक कुद्यासनपर बैठे थे और सब संतोंके मुन्त्र हुए तुम्हारे प्रश्न करनेपर तुम्हें उत्तम शानका उपदेश दे रहे थे। वे ब्राह्म चरण अपनी दायीं जाँघपर और बाँध ही बायें शुटनेपर रखते, कलाईमें रुद्राशकी माला ढाले मुद्दल मुद्रासे विराजमान थे।

इस स्थाने भगवान् शिवका दर्शन करके उस समय विष्णु आदि सब देवताओंने दोनों हाथ जोड़ मस्तक छुकाकर गुंते उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मेरे साथ भगवान् विष्णु आया देख सत्पुरुषोंके आश्रयदाता भगवान् रुद्र उठकर थे हो गये और उन्होंने सिर छुकाकर उन्हें प्रणाम भी किया। किर विष्णु आदि सब देवताओंने जब भगवान् शिव प्रणाम कर लिया, तब उन्होंने मुझे नमस्कार किया—ठीक लंग तरह, जैसे लोकोंकी उत्तम गति प्रदान करनेवाले भगवान् किं प्रजापति कश्यपको प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात् देवताओंके गणाधीशों और महर्षियोंसे नमस्कृत तथा स्वयं भी ( श्रीकृष्ण को एवं मुद्दलको ) नमस्कार करनेवाले भगवान् शिवसे भीती आदरपूर्वक वार्तालाप आरम्भ किया। ( अध्याय ४० )

### देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, भगवान् शिवका देवता आदिके अङ्गोंके ठीक होने और दक्षके जीवित होनेका वरदान देना, श्रीहरि आदिके साथ यज्ञमण्डपमें पधारकर शिवका दक्षरो जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिके द्वारा उनकी स्तुति

देवताओंने भगवान् शिवजीकी अत्यन्त विनयके साथ स्तुति करते हुए अन्तमें कहा—आप पर (उत्कृष्ट), परमेश्वर, परात्पर तथा परात्परतर हैं। आप सर्वव्यापी विश्वमूर्ति महेश्वरको नमस्कार है। आप विष्णुकलत्र, विष्णुक्षेत्र, भानु, भैरव, शरणागतवस्तुल, ऋष्वक तथा विहरणशील हैं। आप मृत्युञ्जय हैं। शोक भी आपका ही रूप है, आप त्रिषुण एवं गुणात्मा हैं। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि आपके नेत्र हैं। आप सबके कारण तथा धर्ममर्यादास्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आपने अपने ही तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप कर रखा है।

१. तर्जनीको अँगठेसे जोड़कर और अन्य अँगुलियोंको आपसमें मिलाकर फैला देनेसे जो बन्ध सिद्ध होता है, उसे 'तर्जुमा' ही इसीका नाम 'ज्ञानमुद्रा' भी है।

आप निर्विकार, प्रकाशपूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, परब्रह्म पर्व हैं। महेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और चन्द्र आदि देवता तथा मुनि आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। चूँकि आपके शरीरको आठ भागोंमें विभक्त करके समस्त संसारको करते हैं, इसलिये अध्यमूर्ति कहलाते हैं। आप ही सबके कारण करुणामय ईश्वर हैं। आपके भयसे यह वायु चलती है। आपके भयसे अग्नि जलानेका काम करती है, आपके सूर्य तपता है और आपके ही भयसे मृत्यु सब और किरती है। दयासिन्धो ! महेश्वान ! परमेश्वर ! प्रणन्न हों।

हम नष्ट और अचेत हो रहे हैं। अतः सदा ही हमारी रक्षा जैजिये, रक्षा कीजिये। नाथ ! करुणनिधि ! शम्भो ! आपने मृतक नाना प्रकारकी आपत्तियोंसे जिस तरह हमें सदा सुरक्षित रखा है, उसी तरह आज भी आप हमारी रक्षा कीजिये। अथ ! दुर्गेश ! आप शीघ्र कृपा करके इस अपूर्ण यशका तौर प्रजापति दक्षका भी उद्धार कीजिये। भगवान् अपनी दौँख मिल जायें, यजमान दक्ष जीवित हो जायें, पूषा के दौँत म जायें और भृगुकी दाढ़ी-मूँछ पहले जैसी हो जाय। कर ! आयुधों और पथरोंकी वर्षायें जिनके अङ्ग भङ्ग हो गये। उन देवता अदिपर आप सर्वथा अनुग्रह करें, जिससे नहें पूर्णतः आरोग्य लाभ हो। नाथ ! यशकर्म पूर्ण होनेपर ! कुछ शेष रहे, वह सब आपका पूरा-पूरा भाग हो (उसमें और कोई हस्तक्षेप न करे)। रुद्रदेव ! आपके भागसे ही वह पूर्ण हो, अन्यथा नहीं।

ऐसा कहकर मुझ ब्रह्माके साथ सभी देवता अपराध क्षमा रानेके लिये उद्धत हो हाथ जोड़ भूमिपर दण्डके समान इ गये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मुझ ब्रह्मा, लोकपाल, जापति तथा मुनियोंसहित श्रीपति विष्णुके अनुनय-विनय लेपर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये। देवताओंको आश्वासन हँसकर उनपर परम अनुग्रह करते हुए करुणानिधान मेश्वर शिवने कहा।

श्रीमहादेवजी बोले—मुरश्रेष्ठ ब्रह्मा और विष्णुदेव ! आप दोनों सामधान होकर मेरी बात सुनें, मैं सच्ची बात कहता हूँ। तात ! आप दोनोंकी सभी बातोंको मैंने सदा माना है। आपके यज्ञका वह विव्यंस मैंने नहीं किया है। दक्ष स्वयं ही दूसरोंसे द्वेष करते हैं। दूसरोंके प्रति जैसा वर्तावि किया जायगा, द अपने लिये ही फलित होगा। अतः ऐसा कर्म कभी नहीं खरा चाहिये, जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला हो॥। दक्षका स्तक जल गया है, इसलिये इनके सिरके स्थानमें वकरेका फेर जोड़ दिया जाय; भग देवता मित्रकी अँखेसे अपने रेखागोंको देखें। तात ! पूषा नामक देवता, जिनके दौँत छूट गये हैं, यजमानके दौँतोंसे भलीभौति पिसे गये यज्ञान्तका भक्षण है। यह मैंने सच्ची बात बतायी है। मेरा विरोध करनेवाले युद्धी शार्दूलके स्थानमें वकरेकी दाढ़ी लगा दी जाय। शैष मी देवताओंके, जिन्होंने मुझे यज्ञमागके रूपमें यज्ञकी

\* त देहि परेण यद्यत्मनस्तद्विष्वति ॥  
परेण हृदनं कर्म न कार्यं तत्कदाचन ।  
(शिं प० १० र० १० स० १० ल० ४३-४५)

अवशिष्ट वस्तुएँ दी हैं, सारे अङ्ग पहलेकी भौति ठीक हो जायें। अध्वर्यु आदि यज्ञिकोंमेंसे, जिनकी भुजाएँ छूट गयी हैं, वे अधिनीकुभारोंकी भुजाओंसे और जिनके हाथ नष्ट हो गये हैं, वे पूपके हाथोंसे अपने काम चलायें। यह मैंने आपलोंगोंके प्रेमवश कहा है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वेदका अनुसरण करनेवाले मुरस्माट् चराचरपति दयालु परमेश्वर महादेवजी चुप हो गये। भगवान् शंकरका वह भाषण सुनकर श्रीविष्णु और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो उन्हें तत्काल साधुवाद देने लगे। तदनन्तर भगवान् शम्भुको आमन्त्रित करके मुझ ब्रह्मा और देवर्षियोंके साथ श्रीविष्णु अत्यन्त इर्ष-पूर्वक पुनः दक्षकी यज्ञशालाकी ओर चले। इस प्रकार उनकी प्रार्थनासे भगवान् शम्भु विष्णु आदि देवताओंके साथ कनाखलमें स्थित प्रजापति दक्षकी यज्ञशालामें पधारे। उस समय रुद्रदेवने वहाँ यज्ञका और विशेषतः देवताओं तथा शृष्टियोंका जो वीरभद्रके द्वारा विव्यंस किया गया था, उसे देखा। स्वाहा, स्वघा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती, अन्य समस्त प्रृथिवी, पितर, अग्नि तथा अन्यान्य बहुतसे यज्ञ, गन्धवं और राक्षस वहाँ पड़े थे। उनमेंसे कुछ लोगोंके अङ्ग तोड़ डाले गये थे,



कुछ लोगोंके बाल नोच लिये गये थे और कितने ही उस समराङ्गणमें अपने प्राणोंसे हाथ धो देठे थे । उस यज्ञकी वैसी दुरवस्था देखकर भगवान् शंकरने अपने गणनाथक महापराक्रमी वीरभद्रको बुलाकर हँसते हुए कहा—‘महावाहु वीरभद्र ! यह तुमने कैसा काम किया ? तात ! तुमने योड़ी ही देरमें देवता तथा शृंगि आदिको बड़ा भारी दण्ड दे दिया । वत्स ! जिसने ऐसा द्रोहपूर्ण कार्य किया, इस विलङ्घण यज्ञका आयोजन किया और जिसे ऐसा फल मिला, उस दक्षको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ ।’

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वीरभद्रने वड़ी उत्तावलीके साथ दक्षका धड़ लाकर उनके सामने डाल दिया । दक्षके उस शब्दको सिरसे रहित देख लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरने अपो खड़े हुए वीरभद्रसे हँसकर पूछा—‘दक्षका सिर कहाँ है ?’ तब प्रभावशाली वीरभद्रने कहा—‘प्रभो शंकर ! मैंने तो उसी समय दक्षके सिरको आगमें होम दिया था ।’ वीरभद्रकी वह बात सुनकर भगवान् शंकरने देवताओंको प्रसन्नतापूर्वक वैसी ही आशा दी, जो पहले दे रखी थी । भगवान् भवने उस समय जो कुछ कहा, उसकी मेरे द्वारा पूर्ति कराकर श्रीहरि आदि सब देवताओंने भगु आदि सबको शीघ्र ही ठीक कर दिया । तदनन्तर शम्भुके आदेशसे प्रजापतिके धड़के साथ यज्ञपशु बकरेका सिर जोड़ दिया गया । उस सिरके जोड़े जाते ही शम्भुकी शुभ हष्टि पहनेसे प्रजापतिके शरीरमें प्राण आ गये और वे तत्काल सो कर जगे हुए पुरुषकी भाँति उठकर खड़े हो गये । उठते ही उन्होंने अपने सामने कहणानिधि भगवान् शंकरको देखा । देखते ही दक्षके हृदयमें प्रेम उमड़ आया । उस प्रेमने उनके अन्तःकरणको निर्मल एवं प्रसन्न कर दिया । पहले महादेवजीसे द्वेष करनेके कारण उनका अन्तःकरण मलिन हो गया था । परंतु उस समय शिवके दर्शनसे वे तत्काल शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति निर्मल हो गये । उनके मनमें भगवान् शिवकी स्तुति करनेका विचार उत्पन्न हुआ । परंतु वे अनुरागाधिक्यके कारण तथा अपनी मरी हुई पुत्रीका समरण करके व्याकुल हो जानेके कारण तत्काल उनका स्थवन न कर सके । योड़ी देर बाद मन स्थिर होनेपर दक्षने लजित हो लोकशंकर शिवशंकरको प्रणाम किया और उनकी स्तुति आरम्भ की । उन्होंने भगवान् शंकरकी महिमा गाते हुए वारंवार उन्हें प्रणाम किया । फिर अन्तमें कहा—

‘परमेश्वर ! आपने ब्रह्म होकर सबसे पहले आम तत्त्वका शान प्राप्त करनेके लिये आपने मुखसे विद्या न और व्रत धारण करनेवाले व्राह्मणोंको उत्पन्न किया था । वै व्याला लाटी लेकर गाँओंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार महं का पालन करनेवाले आप परमेश्वर दण्ड धारण किये द साधु व्राह्मणोंकी सभी विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं । मैंने दुर्ल स्त्री वाणोंसे आप परमेश्वरको वीथ ढाला था । पिर भी अ मुझपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आ गये । थव मेरी तरह अत्यन्त देव्यपूर्ण आशावाले इन देवताओंपर भी इ कीजिये । भक्तवत्सल ! दीनवन्धो ! शम्भो ! मुझमें आप प्रसन्न करनेके लिये कोई गुण नहीं है । आप पद्मिष्ठ ऐसर्व सम्पन्न परापर परमात्मा हैं । अतः आपने ही वहु उदारतापूर्ण वत्तावसे मुझपर संतुष्ट हों ।’

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार लोककल्याणम् महाप्रभु महेश्वर शंकरकी स्तुति करके विनीतचित्त प्रज्ञ दक्ष चुप हो गये । तदनन्तर श्रीविष्णुने हाथ जोड़ भक्त वृषभध्वजको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्ण हृदय और वाणी वाणीद्वारा उनकी स्तुति प्रारम्भ की ।

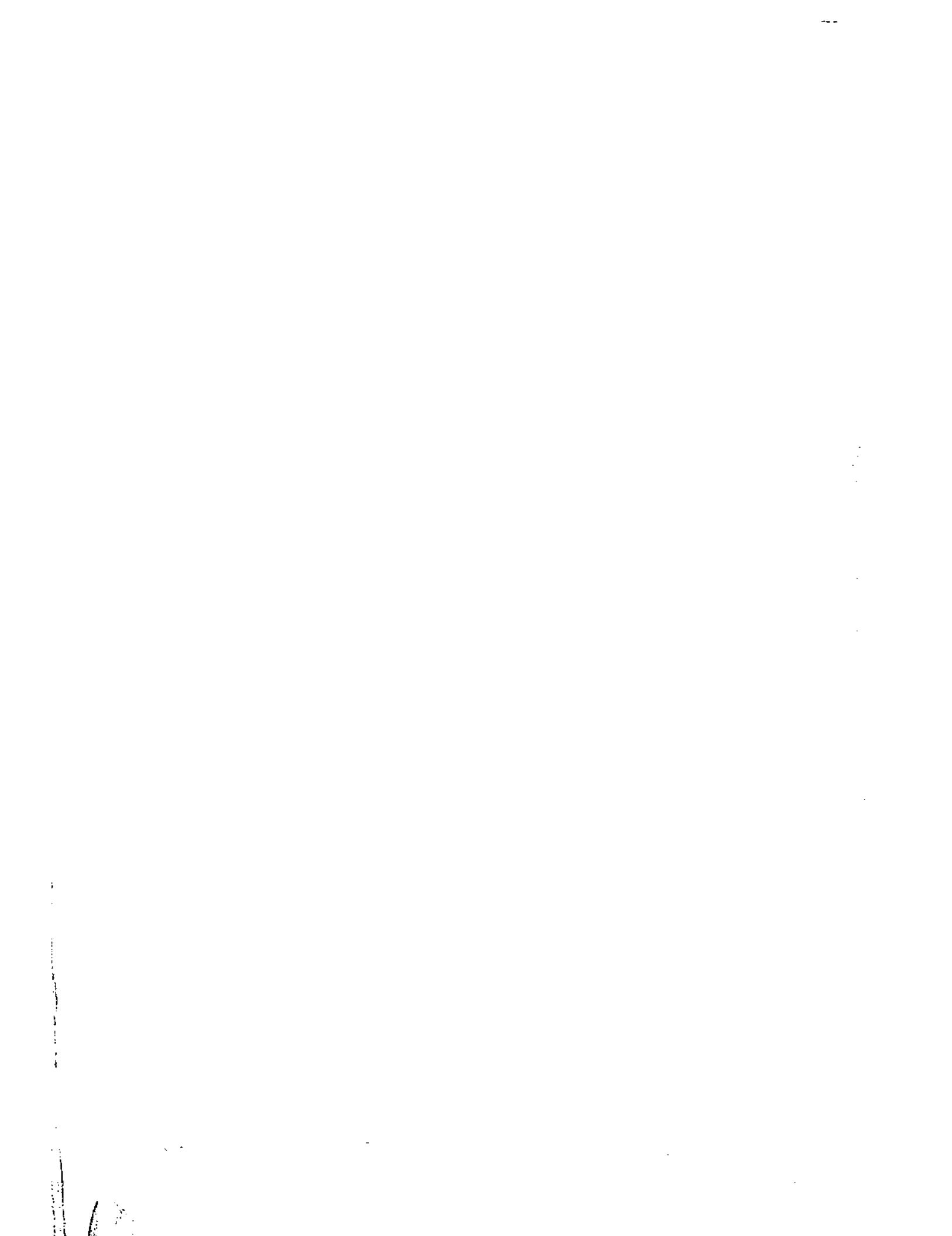
तदनन्तर मैंने कहा—देवदेव ! महादेव ! करुणालिप्त प्रभो ! आप स्वतन्त्र परमात्मा हैं, अद्वितीय एवं अलिप्त परमेश्वर हैं । देव ! ईश्वर ! आपने मेरे पुत्रपर अनुग्रह किया अपने अपमानकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर दक्षके गल उद्धार कीजिये । देवेश्वर ! आप प्रसन्न होइये और मह शारीरको दूर कर दीजिये । आप सज्जन हैं । अतः आप मुझे कर्तव्यकी ओर प्रेरित करनेवाले हैं और आप ही अकर्त रोकनेवाले हैं ।

महामुने ! इस प्रकार परम महेश्वरकी स्तुति करने दोनों हाथ जोड़ मस्तक छुकाकर खड़ा हो गया । तब उ विचार रखनेवाले इन्द्र आदि देवता और लोकपाल शंकरको स्तुति करने लगे । उस समय भगवान् शिवका मुख्यलिंग प्रसन्नतासे खिल उठा था । इसके बाद प्रसन्नचित्त हुए ल देवताओं, दूसरे-दूसरे सिद्धों, ऋषियों और प्रजापतियों शंकरजीका सहर्ष रूपवन किया । इसके अतिरिक्त उन्हें नगों, सदस्यों तथा व्राह्मणोंने पृथक्-पृथक् प्रणामरूप भक्तिभावसे उनकी स्तुति की । ( अध्याय ४१-४२ )



शिवजीके द्वारा दक्षके वकरेका सिर लगाना

[ पृष्ठ १६४



भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, ह्रानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवताओंकी एकता वताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, सब देवता आदिका अपने-अपने खानको जाना,

सतीखण्डका उपसंहार और माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार श्रीविष्णुके, मेरे, देवताओं और ऋषियोंके तथा अन्य लोगोंके स्तुति करनेपर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन शम्भुने समस्त ऋषियों, देवता आदिको कृपादृष्टिसे देखकर तथा मुझ ब्रह्मा और विष्णुका समाधान करके दक्षसे इस प्रकार कहा ।

महादेवजी घोले—प्रजापति दक्ष ! मैं जो कुछ कहता हूँ, सुनो । मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । यद्यपि मैं सबका ईश्वर और स्वतन्त्र हूँ, तो भी सदा ही अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ । चार प्रकारके पुण्यात्मा पुरुष मेरा भजन करते हैं । दक्ष प्रजापते ! उन चारों भक्तोंमें पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं । उनमें पहला आर्त, दूसरा जिजासु, तीसरा अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है । पहलेके तीन तो सामान्य श्रेणीके भक्त हैं । किंतु चौथेका अपना विशेष महत्व है । उन सब भक्तोंमें चौथा ज्ञानी ही मुझे अधिक प्रिय है । वह मेरा रूप माना गया है । उससे बढ़कर दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥५८॥ मैं आत्मज्ञ हूँ । वेद-वेदान्तके पारागामी विद्वान् ज्ञानके द्वारा मुझे जान सकते हैं । जिनकी बुद्धि मन्द है, वे ही ज्ञानके निना-मुझे पानेका प्रयत्न करते हैं । कर्मके अधीन हुए भूदि मानव मुझे वेद, यज्ञ, दान और तपस्या-द्वारा भी कभी नहीं पा सकते ।

अतः दक्ष ! आजसे तुम बुद्धिके द्वारा मुझ परमेश्वरको जानकर ज्ञानका आश्रय ले समाहित-चित्त होकर कर्म करो । प्रजापते ! तुम उत्तम बुद्धिके द्वारा मेरी दूसरी वात भी सुनो । मैं अपने सुगुण स्वरूपके विषयमें भी इस गोपनीय रूपको धर्मकी दृष्टिसे तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ ।

\* चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा ।

चतुरोत्तरतः षेषात्सेषां दक्ष प्रजापते ॥

आतों जिजासुर्पर्णीं ज्ञानी चैव चतुर्थकः ।

पूर्वे श्रवद्वच सामान्यादच्छुभों हि जिजिभ्यते ॥

तत्र ज्ञानीं प्रियतरे नम रूपं च स स्तृतः ।

तत्त्वात्प्रियतरे जान्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

( शिं पु० रु० सं० स० खं० ४३ । ४--६ )

जगत्का परम कारणरूप मैं ही ब्रह्मा और विष्णु हूँ । मैं सबका आत्मा ईश्वर और साक्षी हूँ । स्वयम्प्रकाश तथा निर्विशेष हूँ । मुने ! अपनी विष्णुस्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्की सुष्ठि, पालन और संहार करता हुआ उन क्रियाओंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करता हूँ । उस अद्वितीय ( भेदरहित ) केवल ( विशुद्ध ) मुझ परब्रह्म परमात्मामें ही अज्ञानी पुरुष ब्रह्म, ईश्वर तथा अन्य समस्त जीवोंके भिन्नरूपसे देखता है । जैसे मनुष्य अपने सिर और हाथ आदि अङ्गोंमें 'ये मुझसे भिन्न हैं' ऐसी परकीय बुद्धि कभी नहीं करता; उसी तरह मेरा भक्त प्राणिमात्रमें सुखसे भिन्नता नहीं देखता । दक्ष ! मैं, ब्रह्मा और विष्णु तीनों स्वरूपतः एक ही हैं तथा हम ही समूर्ण जीवरूप हैं—ऐसा समझकर जो हम तीनों देवताओंमें भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है । जो नराधम हम तीनों देवताओंमें भेदबुद्धि रखता है, वह निश्चय ही जगत्क चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तवतक नरकमें निवास करता है । ॥५९॥ दक्ष ! यदि कोई विष्णुभक्त होकर मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त होकर विष्णुकी निन्दा करेगा तो तुम्हें दिये हुए पूर्वोक्त सारे शाप उन्हीं दोनोंको प्राप्त होंगे और निश्चय ही उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! भगवान् महेश्वरके इस

\* सर्वभूतात्मनामेकमावानां यो न पदयति ।

विसुराणा मिद्दा दक्ष त श्यामित्सिंघच्छति ॥

यः करोति निदेवेषु भेदबुद्धि नराधमः ।

नरके स वसेन्नूनं वावदाचन्द्रतारकम् ॥

( शिं पु० रु० सं० स० खं० ४३ । १६-१७ )

† हरिभक्तो हि मां निन्देत्था श्रेष्ठो भवेद्यदि ।

तयोः शापा भवेयुन्दे तत्त्वज्ञासिर्भवेद्यदि ॥

( शिं पु० रु० सं० स० खं० ४३ । २१ )

सुखदायक बचनको सुनकर सब देवता, मुनि आदिको उस अवसरपर बड़ा हर्ष हुआ । कुटुम्बसहित दक्ष बड़ी प्रभवताके साथ शिवभक्तिमें तत्पर हो गया । वे देवता आदि भी शिवको ही सर्वेश्वर जानकर भगवान् शिवके भजनमें लग गये । जिसने जिस प्रकार परमात्मा शम्भुकी स्तुति की थी, उसे उसी प्रकार संतुष्टचित्त हुए शम्भुने वर दिया । मुने ! तदनन्तर भगवान् शिवकी आशा पाकर प्रसन्नचित्त हुए शिवभक्त दक्षने शिवके ही अनुग्रहसे अपना यज्ञ पूरा किया । उहाँने देवताओंको तो यज्ञभाग दिये ही, शिवको भी पूर्णभाग दिया । साथ ही ब्राह्मणोंको दान दिया । इस तरह उन्हें शम्भुका अनुग्रह प्राप्त हुआ । इस प्रकार महादेवजीके उस महान् कर्मका विधिपूर्वक वर्णन किया गया । प्रजापतिने ऋत्विजोंके सहयोगसे उस यज्ञकर्मको विधिवत् समाप्त किया । मुनीश्वर । इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप शंकरके प्रसादसे वह दक्षका यज्ञ पूरा हुआ । तदनन्तर सब देवता और ऋषि संतुष्ट हो भगवान् शिवके यशका वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये । दूसरे लोग भी उस समय वहाँसे सुखपूर्वक बिदा हो गये । मैं और श्रीविष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् शिवके सर्वमङ्गलदायक सुविशका निरन्तर गान करते हुए अपने-

अपने स्थानको सानन्द चले आये । सत्पुरुषोंके आश्रयभूत महादेवजी भी दक्षसे समानित हो प्रति और प्रसन्नताके साथ गणोंसहित अपने निवासस्थान कैलास पर्वतको छले गये । अपने पर्वतपर आकर शम्भुने अपनी प्रिया सर्वत्र सारण किया और प्रधान-प्रधान गणोंसे उनकी कथा कही ।

इस प्रकार दक्षकन्या सती यज्ञमें अपने शरीरको लान कर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे उत्तम हुई वह व्रात प्रसिद्ध है । फिर वहाँ तपस्या करके गौरी विजय भगवान् शिवका पतिलूपमें वरण किया । वे उनके बामाङ्गमें खान पाकर अद्भुत लीलाएँ करने लगीं । नारद ! इस तरह मैंने तुमसे सतीके परम अद्भुत दिव्य चरित्र वर्णन किया है, जो भोग और मोक्षको देनेवाला या सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । वह उग्रात्मा पापको दूर करनेवाला, पवित्र एवं परम पावन है । सर्व यज्ञ तथा आयुको देनेवाला तथा पुत्र-पौत्र स्वरूप फल प्रदान करनेवाला है । तात ! जो भक्तिमान् पुरुष भक्तिमते लोगोंको यह कथा सुनाता है, वह इस लोकमें समूर्ण कर्मोंका फल पाकर परलोकमें परमगतिको प्राप्त कर लेता है ।

( अध्याय ४२ )

॥ रुद्रसंहिताका सतीखण्ड सम्पूर्ण ॥







## रुद्रसंहिता, तृतीय ( पार्वती ) स्वण्ड

**हिमालयके स्थावर-जंगम द्विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनका विवाह तथा  
मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए सनकादिके शाप एवं वरदानका कथन**

**नारदजीने पूछा—**ब्रह्मन् ! पिताके यज्ञमें अपने शरीर-का परित्याग करके दक्षकन्या जगदम्बा सती देवी किस प्रकार गिरिराज हिमालयकी पुत्री हुई ? किस तरह अत्यन्त उत्तमस्या करके उन्होंने पुनः शिवको ही पतिरूपमें प्राप्त किया ? यह मेरा प्रश्न है, आप इसपर भलीभांति और विशेषरूपसे प्रकाश डालिये ।

**ब्रह्माजीने कहा—**मुने ! नारद ! तुम पहले पार्वतीकी माताके जन्म, विवाह और अन्य भक्तिवर्द्धक पावन चरित्रसुनो । मुनिश्रेष्ठ ! उत्तर दिशमें पर्वतोंका राजा हिमवान् नामक महान् पर्वत है, जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है । उसके दो रूप प्रसिद्ध हैं—एक स्थावर और दूसरा जंगम । मैं संक्षेपसे उसके स्वरूप (स्थावर) स्वरूपका वर्णन करता हूँ । वह रमणीय पर्वत नाना प्रकारके रखोंका आकर (खान) है और पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके भीतर प्रवेश करके इस तरह खड़ा है, मानो भूमण्डल-को नापनेके लिये कोई मानदण्ड हो । वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है और अनेक शिवरोंके कारण विचित्र शोभासे समृद्ध दिखायी देता है । सिंह, व्याघ्र आदि पशु सदा सुख-पूर्वक उसका सेवन करते हैं । हिमका तो वह भंडार ही है, इसलिये अत्यन्त उत्तम पड़ता है । भौति-भौतिके आश्रय-जनक दृश्योंसे उसकी विचित्र शोभा होती है । देवता, प्रृष्ठि, सिद्ध और मुनि उस पर्वतका आश्रय लेकर रहते हैं । भगवान् शिवको वह बहुत ही प्रिय है, तपस्या करनेका स्थान है । स्वरूपसे ही वह अत्यन्त पवित्र और महात्माओंको भी पावन करनेवाला है । तपस्यामें वह अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है । अनेक प्रकारके धातुओंकी खान और शुभ है । वही दिव्य शरीर धारण करके सर्वाङ्गसुन्दर रमणीय देवताके रूपमें भी स्थित है । भगवान् विष्णुका अविकृत अंश है, इसीलिये वह शैलराज साधु-संतोंको अधिक प्रिय है ।

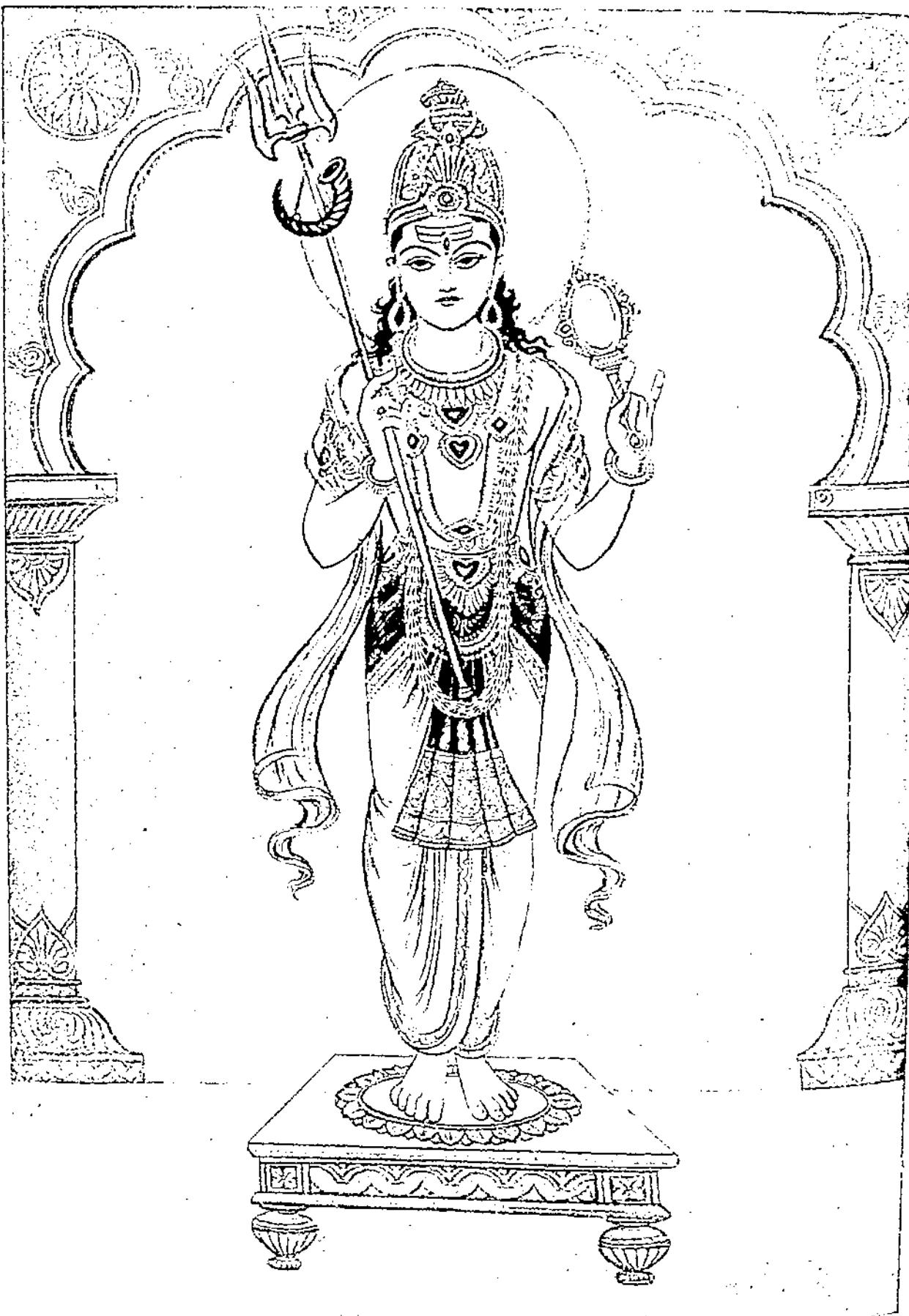
एक समय गिरिर विवर हिमवान्ने अपनी कुल-परम्पराकी स्थिति और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताओं तथा पितरोंका हित यत्नेकी अभिलापाते अपना विवाह करनेकी इच्छा की । मुनीश्वर ! उन अवसरपर समूर्ण देवता अपने स्वार्थका विचार करके दिव्य पितरोंके पास आकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

**देवताओंने कहा—**पितरो ! आप सब लोग प्रसन्नचित्त होकर हमारी बात सुनें और यदि देवताओंका कार्य सिद्ध करना आपको भी अभीष्ट हो तो शीघ्र बैसा ही करें । आपकी ज्येष्ठ पुत्री जो मेना नामसे प्रसिद्ध है, वह मङ्गलरूपिणी है । उसका विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमवान् पर्वतसे कर दें । ऐसा करनेपर आप सब लोगोंको सर्वथा महान् लाभ होगा और देवताओंके हुँसोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा ।

**देवताओंकी** यह बात सुनकर पितरोंने परस्पर विचार करके स्वीकृति दे दी और अपनी पुत्री मेनाको विधिपूर्वक हिमालयके हाथमें दे दिया । उस परम मङ्गलमय विवाहमें बड़ा उत्सव मनाया गया । मुनीश्वर नारद ! मेनाके साथ हिमालयके शुभ विवाहका यह सुखद प्रसङ्गः मैंने तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहा है । अब और क्या सुनना चाहते हो ?

**नारदजीने पूछा—**विधे ! विद्वन् ! अब आदरपूर्वक मेरे सामने मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये । उसे किस प्रकार शाप प्राप्त हुआ था, यह कहिये और मेरे संदेहका निवारण कीजिये ।

**ब्रह्माजी बोले—**मुने ! मैंने अपने दक्ष नामक जिस पुत्रकी पहले चर्चा की है, उनके साठ कन्या एँ हुई थीं, जो सुष्टिकी उत्पत्तिमें कारण बनी । नारद ! दक्षने कश्यप आदि श्रेष्ठ मुनियोंके साथ उनका विवाह किया था, यह सब वृत्तान्त तो हुम्हें विदित ही है । अब प्रस्तुत विषयको सुनो । उन कन्याओंमें एक स्वधा नामकी कन्या थी, जिसका विवाह उन्होंने पितरोंके साथ किया । स्वधाकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो सौभाग्यशालिनी तथा धर्मकी मूर्ति थीं । उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रीका नाम 'मेना' था । मङ्गली 'धन्या'के नामसे प्रसिद्ध थी और सबसे छोटी कन्याका नाम 'कलावती' था । ये सारी कन्याएँ पितरोंकी मानसी पुत्रियाँ थीं—उनके मनसे प्रकट हुई थीं । इनका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ था, अतएव ये अयोनिजा थीं । केवल लोकव्यवहारसे स्वधाकी पुत्री मानी जाती थीं । इनके सुन्दर नामोंका कीर्तन करके मनुष्य समूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है । ये सदा समूर्ण जगत्‌की वन्दनीया लोकमाताएँ हैं और उत्तम अम्बुद्यसे मुश्वोभित



वर-वेष्मे भगवान् शिव

## रुद्रसंहिता, तृतीय ( पार्वती ) स्वप्न

**हिमालयके स्थावर-जंगम द्विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनका विवाह तथा  
मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए सनकादिके शाप एवं वरदानका कथन**

**नारदजीने पूछा—**त्रिभूत ! पिताके यज्ञमें अपने शरीर-  
का परिच्छाग करके दक्षकन्या जगदम्बा सती देवी किस प्रकार  
गिरिराज हिमालयकी पुत्री हुई ? किस तरह अत्यन्त उग्र  
तपस्या करके उन्होंने पुनः शिवको ही पतिरूपमें प्राप्त किया ?  
यह मेरा प्रश्न है, आप इसपर भलीभाँति और विशेषरूपसे  
प्रकाश डालिये ।

**ब्रह्मजीने कहा—**मुने ! नारद ! तुम पहले पार्वतीकी  
माताके जन्म, विवाह और अन्य भक्तिवर्द्धक पावन चरित्र सुनो ।  
मुनिश्रेष्ठ ! उत्तर दिशामें पर्वतोंका राजा हिमवान् नामक महान्  
पर्वत है, जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है । उसके दो रूप  
प्रसिद्ध हैं—एक स्थावर और दूसरा जंगम । मैं संक्षेपसे उसके  
सूक्ष्म (स्थावर) स्वरूपका वर्णन करता हूँ । वह रमणीय पर्वत नाना  
प्रकारके रनोंका आकर (खान) है और पूर्व तथा पश्चिम  
समुद्रके भीतर प्रवेश करके इस तरह खड़ा है, मानो भूमप्ल-  
को नापनेके लिये कोई मानदण्ड हो । वह नाना प्रकारके  
वृक्षोंसे व्याप्त है और अनेक शिवरोंके कारण विचित्र शोभासे  
सम्पन्न दिखायी देता है । सिंह, व्याघ्र आदि पश्चु सदा सुख-  
पूर्वक उसका सेवन करते हैं । हिमका तो वह भंडार ही है,  
इसलिये अत्यन्त उग्र जान पड़ता है । भौति-भौतिके आश्रय-  
जनक दृश्योंसे उसकी विचित्र शोभा होती है । देवता, ऋषि,  
सिद्ध और मुनि उस पर्वतका आश्रय लेकर रहते हैं । भगवान्  
शिवको वह बहुत ही प्रिय है, तपस्या करनेका स्थान है ।  
स्वरूपसे ही वह अत्यन्त पवित्र और महात्माओंको भी पावन  
करनेवाला है । तपस्यामें वह अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता  
है । अनेक प्रकारके धातुओंकी खान और शुभ है । वही दिव्य  
शरीर धारण करके सर्वाङ्गसुन्दर रमणीय देवताके रूपमें भी  
रिथित है । भगवान् विष्णुका अविकृत अंश है, इसीलिये वह  
शैलराज साधु संतोंको अधिक प्रिय है ।

एक समय गिरिवर हिमवानने अपनी कुल-परम्पराकी  
स्थिति और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताओं तथा पितरोंका हित  
करनेकी अभिलाप्तासे अपना विवाह करनेकी इच्छा की ।  
उनीश्वर ! उत्तम अवसरपर समूर्ण देवता अपने स्वार्थका विचार  
करके दिव्य पितरोंके पात्र आकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

**देवताओंने कहा—**पितरो ! आप सब लोग प्रसन्नचित्त  
होकर हमारी बात सुनें और यदि देवताओंका कार्य सिद्ध करना  
भापको भी अभीष्ट हो तो शीघ्र वैसा ही करें । आपकी ज्येष्ठ  
पुत्री जो मेना नामसे प्रसिद्ध है, वह मङ्गलरूपिणी है । उसका  
विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमवान् पर्वतसे कर  
दें । ऐसा करनेपर आप सब लोगोंको सर्वथा महान् लाभ होगा  
और देवताओंके दुःखोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा ।

**देवताओंकी** यह बात सुनकर पितरोंने परस्पर विचार करके  
स्वीकृति दे दी और अपनी पुत्री मेनाको विधिपूर्वक हिमालयके  
हाथमें दे दिया । उस परम मङ्गलमय विवाहमें बड़ा उत्सव  
मनाया गया । मुनीश्वर नारद ! मेनाके साथ हिमालयके शुभ  
विवाहका यह सुखद प्रसङ्ग मैंने तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहा है ।  
अब और क्या सुनना चाहते हो ?

**नारदजीने पूछा—**विधे ! विद्वन् ! अब आदरपूर्वक  
मेरे सामने मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये । उसे किस प्रकार  
शाप प्राप्त हुआ था, यह कहिये और मेरे संदेहका निवारण  
कीजिये ।

**ब्रह्माजी बोले—**मुने ! मैंने अपने दक्ष नामक जिस  
पुत्रकी पहले चर्चा की है, उनके साठ कन्याएँ हुई थीं, जो  
सूषिकी उत्पत्तिमें कारण वर्णी । नारद ! दक्षने कश्यप आदि  
श्रेष्ठ मुनियोंके साथ उनका विवाह किया था, वह सब वृत्तान्त  
तो तुम्हें विदित ही है । अब प्रस्तुत विषयको सुनो । उन  
कन्याओंमें एक स्वधा नामकी कन्या थी, जिसका विवाह  
उन्होंने पितरोंके साथ किया । स्वधाकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो  
सौभाग्यशालिनी तथा धर्मकी मूर्ति थीं । उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रीका  
नाम ‘मेना’ था । मङ्गली ‘धन्या’के नामसे प्रसिद्ध थी और  
सबसे छोटी कन्याका नाम ‘कलावती’ था । ये सारी कन्याएँ  
पितरोंकी मानसी पुत्रियाँ थीं—उनके मनसे प्रकट हुई थीं ।  
इनका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ था, अतएव ये  
अयोनिजा थीं । केवल लोकव्यवहारसे स्वधाकी पुत्री मानी जाती  
थीं । इनके सुन्दर नामोंका कीर्तन करके मनुष्य समूर्ण  
अभीष्टको प्राप्त कर लेता है । ये सदा समूर्ण जगत्‌दी  
वन्दनीया लोकमाताएँ हैं और उत्तम अन्युदयने सुदोभित



हुआ। मेरी सारी भूमि धन्य हुई। मेरा कुल धन्य हुआ। मेरी जी तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सब महान् देवता एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक समझकर प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें।

हिमगिरिका यह वचन सुनकर वे सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और अपने कार्यकी सिद्धि मानते हुए बोले।

**देवताओंने कहा—**महाप्राण हिमाचल ! हमारा तकारक वचन सुनो। हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं। गिरिराज ! पहले। जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुई थीं और रुद्रपती होकर सुदीर्घकालतक इस भूतलपर कीड़ा करती हैं, वे ही अभिका सती अपने पितासे अनादर पाकर अपनी तिशाका सरण करके यशमें शरीर त्याग अपने परम धामको भार गयीं। हिमगिरे ! वह कथा लोकमें विख्यात है और मैं भी विदित है। यदि वे सती पुनः दुष्टरे घरमें प्रकट। जायें तो देवताओंका महान् लाभ हो सकता है।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**श्रीविष्णु आदि देवताओंकी यह गत सुनकर गिरिराज हिमालय मन-ही-मन प्रसन्न हो आदरसे क गये और बोले—‘प्रभो ! ऐसा हो तो बड़े सौभाग्यकी बात।’ तदनन्तर वे देवता उन्हें बड़े आदरसे उमाको प्रसन्न करनेकी धि यताकर स्वयं सदाशिव-पती उमाकी शरणमें गये। एक दर स्थानमें स्थित हो समस्त देवताओंने जगदम्बाका सरण ज्ञा और वारंवार प्रणाम करके वे वहाँ श्रद्धापूर्वक उनकी श्रुति करने लगे।

**देवता बोले—**शिवलोकमें निवास करनेवाली देवि ! मे ! जगदम्बे ! सदाशिवप्रिये ! दुर्यों ! महेश्वरि ! हम गपको नमस्कार करते हैं। आप पावन शान्तस्वरूप श्रीशक्ति ! परमपावन पुष्टि है। अव्यक्त प्रकृति और महत्त्व—ये गपके ही रूप हैं। हम भक्तिपूर्वक आपको नमस्कार करते हैं।

आप कल्याणमयी शिवा हैं। आपके हाथ भी कल्याणकारी हैं। आप शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म और सबका परम आश्रय हैं। अन्तर्विद्या और सुविद्यासे अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाली आप देवीको हम प्रणाम करते हैं। आप श्रद्धा हैं। आप धृति हैं। आप श्री हैं और आप ही सबमें व्याप्त रहनेवाली देवी हैं। आप ही सूर्यकी किरणें हैं और आप ही अपने प्रपञ्चको प्रकाशित करनेवाली हैं। ब्रह्माण्डलम् शरीरमें और जगत्के जीवोंमें रहकर जो ब्रह्मासे लेकर तृष्णपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्की पुष्टि करती हैं, उन आदिदेवीको हम नमस्कार करते हैं। आप ही वेदमाता गायत्री हैं, आप ही सावित्री और सरस्वती हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के लिये बार्ता नामक वृत्ति हैं और आप ही धर्मस्वरूप वेदनयी हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंमें निद्रा बनकर रहती हैं। उनकी क्षुधा और तृप्ति भी आप ही हैं। आप ही तृष्णा, कान्ति, छवि, तुष्टि और सदा सम्पूर्ण आनन्दको देनेवाली हैं। आप ही पुण्यकर्ताओंके यहाँ लक्ष्मी बनकर रहती हैं और आप ही पापियोंके घर सदा ज्येष्ठा (लक्ष्मीकी बड़ी बहिन दरिद्रिता) के रूपमें वास करती हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्की शान्ति हैं। आप ही धारण करनेवाली धात्री एवं प्राणोंका पोषण करनेवाली शक्ति हैं। आप ही पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूप हैं। आप ही तीतिज्ञोंकी नीति तथा व्यवसायरूपिणी हैं। आप ही सामवेदकी गीति हैं। आप ही ग्रन्थि हैं। आप ही यजुर्मन्त्रोंकी आहुति हैं। ऋग्वेदकी मात्रा तथा अर्थवेदकी परम गति भी आप ही हैं। जो प्राणियोंके नाक, कान, नेत्र, मुख, मुजा, वक्षःस्थल और हृदयमें धृतिलम्पसे स्थित हो सदा ही उनके लिये सुखका विस्तार करती हैं, जो निद्राके रूपमें संसारके लोगोंको अत्यन्त सुभग प्रतीत होती हैं, वे देवी उमा जगत्की स्थिति एवं पालनके लिये हम सबपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार जगजननी सती-साध्यी महेश्वरी उमाकी सुति करके अपने हृदयमें विशुद्ध प्रेम लिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ लड़े हो गये। ( अध्याय ३ )

**उमा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिग्राय निवेदन करना और देवीका अवतार लेनेकी बात स्थीकार करके देवताओंको आश्वासन देना**

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! देवताओंके इस प्रकार अति करनेवर दुर्गम पीड़िका नादा करनेवाली जगजननी देवी माँ दनके ज्ञानमें प्रकट हुई। वे परम अद्वृत दिव्य रत्नमय

रथपर दैठी हुई थीं। उस श्रेष्ठ रथमें दुँबुरु लगे हुए थे और मुलायम विस्तर विछेथे। उनके श्रीविग्रहका एक-एक अन्न करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान और रमणीय था। ऐसे

रहती हैं। सब-की-सब परम योगिनी, ज्ञाननिभि तथा तीनों लोकोंमें सर्वत्र जा सकनेवाली हैं। मुनीश्वर ! एक समय वे तीनों वहिनें भगवान् विष्णुके निवासस्थान श्वेतद्वीपमें उनका दर्शन करनेके लिये गयीं। भगवान् विष्णुको प्रणाम और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करके वे उन्होंकी आज्ञासे वहाँ ठहर गयीं। उस समय वहाँ संतोंका बड़ा भारी ममाज एकत्र हुआ था।

मुने ! उसी अवसरपर मेरे पुत्र सनकादि सिद्धगण भी वहाँ गये और श्रीहरिकी स्तुतिअन्दना करके उन्होंकी आज्ञासे वहाँ ठहर गये। सनकादि मुनि देवताओंके आदिपुरुष और सम्पूर्ण लोकोंमें वनिदित हैं। वे जब वहाँ आकर खड़े हुए, उस समय श्वेतद्वीपके सब लोग उन्हें देख प्रणाम करते हुए उठकर खड़े हो गये। परंतु वे तीनों वहिनें उन्हें देखकर भी वहाँ नहीं उठीं। इससे सनत्कुमारने उनको (मर्यादा-खार्ष) उन्हें स्वर्गसे दूर होकर नर-स्त्री बननेका आप दे दिया। फिर उनके प्रार्थना करनेपर वे प्रसन्न हो गये और बोले।

**सनत्कुमारने कहा—**पितरोंकी तीनों कन्याओ ! तुम प्रसन्नचित होकर मेरी बात सुनो। वह तुम्हारे शोकका नाश करनेवाली और सदा ही तुम्हें सुख देनेवाली है। तुममेंसे जो व्येष्ट है, वह भगवान् विष्णुके अंशभूत हिमालय शिरिकी पदी हो। उससे जो कन्या होगी, वह ‘पार्वती’के नामसे विघ्नात होगी। पितरोंकी दूसरी प्रिय कन्या, योगिनी धन्या राजा जनक-की पक्षी होगी। उसकी कन्याके रूपमें महालक्ष्मी अवतीर्ण होगी, जिनका नाम ‘सीता’ होगा। इसी प्रकार पितरोंकी छोटी

पुत्री कलावती द्वापरके अन्तिम भागमें वृपभानु वैद्यकी की होगी और उसकी प्रिय पुत्री ‘राधा’ के नामसे विघ्नात होगी। योगिनी मेनका (मेना) पार्वतीजीके वरदानसे अपने पतिके साथ उन्हीं शरीरसे कैलाय नामक परमपदको प्राप्त हो जायगी। वन तथा उनके पति, जनककुलमें उत्पन्न हुए जीवन्मुक्त महायोग राजा सीराज, लक्ष्मीस्त्रया सीताके प्रभवसे वैकुण्ठ धर्म जायेंगे। वृपभानुके साथ वैवाहिक मङ्गलकृत्य ममगत होनेके कारण जीवन्मुक्त योगिनी कलावती भी अपनी कल राघवके साथ गोलोक धारमें जायगी—इसमें संदेश नहीं है। विपत्तिमें पढ़े विना कहाँ किनकी महिमा प्रकट होती है। उत्तर कर्म करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंका संकट जब टल जाता है तब उन्हें दुर्लभ सुखकी प्राप्ति होती है। अब तुमलोग प्रश्नक-पूर्वक मेरी दूसरी बात भी सुनो, जो सदा मुख देनेवाली है। मेनाकी पुत्री जगदम्या पार्वती देवी अत्यन्त दुखद तप करने भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी बनेगी। धन्याकी पुत्री सीता भगवान् श्रीरामजीकी पत्नी होंगी और लेकान्नाराका आश्रय श्रीरामके साथ विहार करेंगी। साक्षात् गोलोकधारमें विचार करनेवाली राधा ही कलावतीकी पुत्री होंगी। वे गुप्त स्तेष्ठ वैष्णवकर श्रीकृष्णकी प्रियतमा बनेंगी।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! इस प्रकार शापके व्यापे दुर्लभ वरदान देकर सबके द्वारा प्रशंसित भगवान् सनत्कुमार मुनि भाइयोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। तात ! पितरों मानसी पुत्री वे तीनों वहिनें इस प्रकार चापमुक्त हो मुख पाकर तुरंत अपने घरको चली गयीं। (अध्याय १२)

### —३३५६—

## देवताओंका हिमालयके पास जाना और उनसे सत्कृत हो उन्हें उमाराधनकी विधि वता स्थं भी एक सुन्दर स्थानमें जाकर उनकी स्तुति करना

**नारदजी बोले—**महामते ! आपने मेनाके पूर्वजन्मकी यह शुभ एवं अद्भुत कथा कही है। उनके विवाहका प्रसङ्ग भी मैंने सुन लिया। अब आपके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये।

**ब्रह्माजीने कहा—**नारद ! जब मेनाके साथ विवाह करके हिमवान् अपने प्ररको गये, तब तीनों लोकोंमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। हिमालय भी अत्यन्त प्रसन्न हो मेनाके साथ अपने सुखदायक सदनमें निवास करने लगे। मुने ! उस समय श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनि पास गये। उन सब देवताओंको आया देख महान्

हिमगिरिने प्रशंसापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपने भावकी सराहना करते हुए भक्तिभावसे उन सबको आदर-संतुष्टि किया। हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर वे बड़े प्रेमसे स्तुति करने को उद्यत हुए। शैलराजके शरीरमें महान् रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे प्रेमके अँसू बहने लगे। मुने ! हिमगिरि प्रसन्न मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और विनीतभावे लड़े हो श्रीविष्णु आदि देवताओंसे कहा।

**हिमाचल बोले—**आज मेरा जन्म सफल हो गया, मैं बड़ी भारी तपस्या सफल हुईं। आज मेरा जन्म सफल हुआ और आज मेरी सारी क्रियाएँ सफल हो गयीं। आज मैं

हुआ । मेरी सारी भूमि धन्य हुई । मेरा कुल धन्य हुआ । मेरी छी तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सब महान् देवता एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं । मुझे अपना सेवक समक्षकर प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें ।

हिमरिरिका यह वचन सुनकर वे सब देवता वडे प्रसन्न हुए और अपने कार्यकी सिद्धि मानते हुए बोले ।

**देवताओंने कहा—**महाप्राज्ञ हिमाचल ! हमारा हेतकारक वचन सुनो । हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं । गिरिराज ! पहले जो जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुई थीं और रुद्रपत्नी होकर सुदीर्घकालतक इस भूतलपर क्रीड़ा करती हैं, वे ही अभिका सती अपने पितासे अनादर पाकर अपनी प्रतिशक्ति का सरण करके यज्ञमें शारीर त्याग अपने परम धामको धार गयी । हिमारे । वह कथा लोकमें विख्यात है और उग्हे भी बिदित है । यदि वे सती पुनः तुम्हारे घरमें प्रकट हो जायें तो देवताओंका महान् लाभ हो सकता है ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**श्रीविष्णु आदि देवताओंकी यह पात सुनकर गिरिराज हिमाल्य मन-ही-मन प्रसन्न हो आदरसे हँक गये और बोले—प्रभो ! ऐसा हो तो वडे सौभाग्यकी बात । तदनन्तर वे देवता उन्हें वडे आदरसे उमाको प्रसन्न करनेकी विधि बताकर स्वयं सदाशिवपत्नी उमा की शरणमें गये । एक दूसर स्थानमें स्थित हो समस्त देवताओंने जगदम्बाका सरण किया और वारंवार प्रणाम करके वे वहाँ श्रद्धापूर्वक उमाकी मुत्ति करने लगे ।

**देवता बोले—**शिवलोकमें निवास करनेवाली देवि ! हमारे ! जगदम्बे ! सदाशिवपिये ! हुर्मै ! महेश्वर ! हम आपको नमस्कार करते हैं । आप पावन शान्तस्वरूप श्रीशक्ति गमपावन पुष्टि हैं । अव्यक्त प्रकृति और महत्त्व—ये के ही रूप हैं । हम भक्तिपूर्वक आपको नमस्कार करते हैं ।

आप कल्याणमयी शिवा हैं । आपके हाथ भी कल्याणकारी हैं । आप शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म और सबका परम व्याश्रय हैं । अन्तर्विद्या और सुविद्यासे अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाली आप देवीको हम प्रणाम करते हैं । आप श्रद्धा हैं । आप धृति हैं । आप श्री हैं और आप ही सबमें व्याप्त रहनेवाली देवी हैं । आप ही सूर्यकी किरणें हैं और आप ही अपने प्रपञ्चको प्रकाशित करनेवाली हैं । ब्रह्माण्डरूप शरीरमें और जगत्के जीवोंमें रहकर जो ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्की पुष्टि करती हैं, उन आदिदेवीको हम नमस्कार करते हैं । आप ही वेदमाता गायत्री हैं, आप ही सावित्री और सरस्वती हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत्के लिये वार्ता नामक वृत्ति हैं और आप ही वर्षस्वरूपा वेदन्तवी हैं । आप ही सम्पूर्ण भूतोंमें निद्रा बनकर रहती हैं । उनकी क्षुधा और तुम्हि भी आप ही हैं । आप ही तृष्णा, कान्ति, छवि, तुष्टि और सदा सम्पूर्ण आनन्दको देनेवाली हैं । आप ही पुण्यकर्ताओंके वहाँ लक्ष्मी बनकर रहती हैं और आप ही पापियोंके घर सदा व्येष्ठा ( लक्ष्मीकी बड़ी बहिन दरिद्रता ) के रूपमें वास करती हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत्की शान्ति हैं । आप ही धारण करनेवाली धात्री एवं प्राणोंका पोषण करनेवाली शक्ति हैं । आप ही पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूपा हैं । आप ही नीतिशीकी नीति तथा व्यवसायलिपिणी हैं । आप ही सामवेदकी गीति हैं । आप ही ग्रन्थि हैं । आप ही यजुर्मन्त्रोंकी आहुति हैं । ऋग्वेदकी मात्रा तथा अथर्ववेदकी परम गति भी आप ही हैं । जो प्राणियोंके नाक, कान, नेत्र, मुख, मुजा, वक्षःस्थल और हृदयमें धृतिरूपसे स्थित हो सदा ही उनके लिये सुखका विस्तार करती हैं, जो निद्राके रूपमें संसारके लोगोंको अत्यन्त मुभग प्रतीत होती हैं, वे देवी उमा जगत्की स्थिति एवं पालनके लिये हम सबपर प्रसन्न हों ।

इस प्रकार जगजननी सती-साथी महेश्वरी उमाकी स्तुति करके अपने हृदयमें विशुद्ध प्रेम लिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खड़े हो गये । ( अध्याय ३ )

### उमा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करना और देवीका अवतार लेनेकी वात स्वीकार करके देवताओंको आश्वासन देना

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! देवताओंके इस प्रकार उनपर दुर्गम पीड़िका नाश करनेवाली जगजननी देवी उनके रानने प्रकट हुई । वे परम अद्भुत दिव्य रूपमय

रथपर दैठी हुई थीं । उस श्रेष्ठ रथमें बुँधुल ल्यो हुए वे और मुल्यम वित्तर विठ्ठे थे । उनके श्रीविश्वका एक-एक वक्ष करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान और रमणीय था । ऐसे

अवयवोंसे वे अत्यन्त उद्धासित हो रही थीं। सब और फैली हुई अपनी तेजोरशि के मध्यभागमें वे विराजमान थीं। उनका



रूप बहुत ही सुन्दर था और उनकी छविकी कहीं तुलना नहीं थी। सदाशिवके साथ विलास करनेवाली उन महामायाकी किसीके साथ समानता नहीं थी। शिवलोकमें निवास करनेवाली वे देवी त्रिविघ्न चिन्मय गुणोंसे युक्त थीं। प्राकृत गुणोंका अभाव होनेसे उन्हें निर्गुण कहा जाता है। वे नित्यलूप हैं। वे दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण चण्डी कहलाती हैं, परंतु स्वल्पसे शिवा (कल्याणमयी) हैं। सबकी सम्पूर्ण पीड़ाओंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्की माता हैं। वे ही प्रलयकालमें महानिद्रा होकर सबको अपने अङ्कमें सुला लेती हैं तथा वे समस्त स्वजनों (भक्तों) का संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं। शिवा देवीकी तेजोरशि के प्रभावसे देवता उन्हें अच्छी तरह देख न सके। तब उनके दर्शनकी अभिलाषा-से देवताओंने फिर उनका स्तवन किया। तदनन्तर दर्शनकी इच्छा रखनेवाले विष्णु आदि सब देवता उन जगदम्बाकी कृपा पाकर वहाँ उनका सुस्पष्ट दर्शन कर सके।

इसके बाद देवता बोले—अन्धिके ! महादेवि ! हम सदा आपके दास हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक हमारा निवेदन

मुनें। पहले आप दक्षकी पुत्रीलूपसे अवतीर्ण हो लेकर रुद्रदेवकी वल्लभा हुई थीं। उस समय आपने ब्रह्माजीके तथा दूसरे देवताओंके महान् दुःखका निवारण किया था। तदनन्तर पितासे अनादर पाकर अपनी की हुई प्रतिजड़ अनुसार आपने शरीरको त्याग दिया और स्वधाममें पक्ष आयी। इससे भगवान् हरको भी बड़ा दुःख हुआ। महेश्वरि ! आपके चले आनेसे देवताओंका कार्य पूरा नहीं हुआ। अतः हम देवता और मुनि व्याकुल होकर व शरणमें आये हैं। महेश्वानि ! शिवे ! आप देवता मनोरथ पूर्ण करें, जिससे सनत्कुमारका वचन सफल देवि। आप भूतलपर अवतीर्ण हो पुनः रुद्रदेवकी होइये और यथायोग्य ऐसी लीला कीजिये, जिससे देव को सुख प्राप्त हो। देवि ! इससे वैलास पर्वतपर कलनेवाले रुद्रदेव भी सुखी होंगे। आप ऐसी कृपा जिससे सब सुखी हों और सबका सारा दुःख नष्ट हो जा-

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर आदि सब देवता प्रेममें मन्न हो गये और विनम्र होकर चुपचाप खड़े रहे। देवताओंकी यह सुनकर शिवादेवीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके विचार करके अपने प्रसु शिवका स्मरण करती हुई बत्सला दयामयी उमादेवी उस समय विष्णु आदि देवोंको सम्बोधित करके हँसकर बोलीं।

उमाने कहा—हे हरे ! हे विष्णे ! और हे देव तथा मुनियो ! तुम सब लोग अपने मनसे व्यथाको निदो और मेरी बात सुनो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसमें नहीं है। सब लोग अपने-अपने स्थानको जाओयो और निरक्षा सुखी रहो। मैं अवतार ले मेनाकी पुत्री होकर उन्हें दृँगी और रुद्रदेवकी पत्नी हो जाऊँगी। यह मेरा अगुप्त मत है। भगवान् शिवकी लीला अद्भुत है। वह शा को भी मोहमें डालनेवाली है। देवताओं ! उस वर्षमें पिताके द्वारा अपने स्वामीका अनादर देख बरते दक्षजनित शरीरको त्याग दिया है, तभीसे वे मेरे कालाग्नि रुद्रदेव तत्काल दिग्म्बर हो गये। वे मैं चिन्तामें छूटे रहते हैं। उनके मनमें यह विचार करता है कि धर्मको ज्ञानेवाली सती मेरा रोप है। पिताके यज्ञमें गयी और वहाँ मेरा अनादर देख मुझमें होनेके कारण उसने अपना शरीर त्याग दिया। यही वे घर-बार छोड़ अलौकिक वेष धारण करके योगी हो गए। मेरी स्वरूपभूता सतीके वियोगको वे महेश्वर सहन न

सके । देवताओं ! भगवान् रुद्रकी भी यह अत्यन्त इच्छा है कि भृतलपर मैना और हिमाचलके घरमें मेरा अवतार हो; क्योंकि वे पुनः मेरा पाणिग्रहण करनेकी अधिक अभिलाषा रखते हैं । अतः मैं रुद्रदेवके संतोषके लिये अवतार लैंगी और लैकिक गतिका आश्रय लेकर हिमालय-पल्ली मैनाकी पुत्री होलेंगी ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर जगदम्बा शिवा उस समय समस्त देवताओंके देखते-देखते ही अटश्य हो गयी और तुरंत अपने लोकमें चली गयी । तदनन्तर हथसे भरे हुए विष्णु आदि समस्त देवता और भुनि उस दिशा-को प्रणाम करके अपने-अपने धाममें चले गये ।

( अध्याय ४ )

## मैनाको प्रत्यक्ष दर्शन देकर शिवा देवीका उन्हें अभीष्ट वरदानसे संतुष्ट करना तथा मैनासे मैनाकका जन्म

नारदजीने पूछा—पिताजी ! जब देवी दुर्गा अन्तर्धान हो गयी और देवगण अपने-अपने धामको छले गये, उसके बाद क्या हुआ ?

ब्रह्माजीने कहा—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ विष्वर नारद ! जब विष्णु आदि देवसमुदाय हिमालय और मैनाको देवीकी आराधनाका उपदेश दे चले गये, तब गिरिराज हिमाचल और मैना दोनों दम्पतिने वही भारी तपस्या आरम्भ की । वे दिन-रात शम्भु और शिवाका चिन्तन करते हुए भक्तियुक्त चित्तसे नित्य उनकी सम्यक् रीतिसे आराधना करने ले । हिमवान्सी पल्ली मैना वही प्रसन्नतासे शिवसंहित शिवा देवीकी पूजा करने लगी । वे उन्होंके संतोषके लिये सदा ग्राहणोंको दान देती रहती थीं । मनमें संतानकी कामना ले मैना चैत्रमासके आरम्भसे लेकर सत्ताईस वर्षों-तक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक शिवा देवीकी पूजा और आराधना-में लगी रहीं । वे अष्टमीको उपवास करके नवमीको लहू, बलि-सामग्री, पीठी, खीर और गन्ध-पुष्प आदि देवीको भेट करती थीं । गङ्गाके किनारे ओषधिप्रसामें उमाकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ समर्पित करके उसकी पूजा करती थीं । मैना देवी कभी निराहार रहतीं, कभी व्रतके नियमों-का पालन करतीं, कभी जल पीकर रहती और कभी हवा पीकर हीरे रट जाती थीं । विशुद्ध तेजसे दमकती हुई दीसिमती मैनाने प्रेमपूर्वक शिवामें चित्त लगाये सत्ताईस वर्ष व्यतीत कर दिये । सत्ताईस वर्ष पूरे होनेपर जगम्भयी शंकरकामिनी जगदम्बा उमा अत्यन्त प्रसन्न हुई । मैनाकी उत्तम भक्तिसे उन्होंने वे परमेश्वरी देवी उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके नामने प्रकट हुई । तेजोमण्डलके धीर्घमें विराजमान तथा दिव्य अवधीनसे संयुक्त उमादेवी प्रत्यक्ष दर्शन दे मैनासे उत्तीर्ण हुई दोलीं ।



देवीने कहा—गिरिराज हिमालयकी रानी महामात्ती मैना ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो । मैना ! तुमने तपस्या, व्रत और समाधिके द्वारा जिस-जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, वह सब मैं तुम्हें देंगी । तब मैनाने प्रत्यक्ष प्रकट हुई कालिका देवीको देखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा ।

मैना योली—देवि ! इस समय मुझे आपके त्यक्ता

प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। अतः मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। कालिके ! इसके लिये आप प्रसन्न हों।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! मेनाके ऐसा कहनेपर सर्वमोहिनी कालिकादेवीने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी दोनों बाँहेसे खींचकर मेनाको हृदयसे लगा लिया। इससे उन्हें तत्काल महाशानकी प्राप्ति हो गयी। फिर तो मेना देवी प्रिय बच्नोद्धारा भक्तिभावसे अपने सामने खड़ी हुई कालिकाकी स्तुति करने लगी।

**मेना बोली—**जो महामाया जगत्को धारण करनेवाली चण्डिका, लोकधारिणी तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको देनेवाली हैं, उन महादेवीको मैं प्रणाम करती हूँ। जो नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली माया, योगनिद्रा, जगज्जननी तथा सुन्दर कमलोंकी मालासे अलंकृत हैं, उन नित्यसिद्धा उमा देवीको मैं नमस्कार करती हूँ। जो सबकी मातामही, नित्य आनन्दमयी, भक्तोंके शोकका नाश करनेवाली तथा कल्प-पर्यन्त नारियों एवं प्राणियोंकी बुद्धिरूपिणी हैं, उन देवीको मैं प्रणाम करती हूँ। आप यतियोंके वशानमय बन्धनके नाशकी देहभूता ब्रह्मविद्या हैं। फिर मुझ-जैसी नारियों आपके प्रभावका क्या वर्णन कर सकती हैं। अर्थवैदेही जो हिंसा ( मारण आदिका प्रयोग ) है, वह आप ही है। देवि ! आप मेरे अभीष्ट फलको सदा प्रदान कीजिये। भावहीन ( आकाररहित ) तथा अदृश्य नित्यनित्य तन्मात्रायोंसे आप ही पञ्चभूतोंके समुदायको संयुक्त करती हैं। आप ही उनकी शाश्वत शक्ति हैं। आपका स्वरूप नित्य है। आप समय-समय-पर योगशुक्त एवं समर्थ नारीके रूपमें प्रकट होती हैं। आप ही जगत्की योनि और आधारशक्ति हैं। आप ही प्राकृत तत्त्वोंसे परे नित्य प्रकृति कही गयी हैं। जिसके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको वशमें किया जाता ( जाना जाता ) है, वह नित्य विद्या आप ही हैं। मातः ! आज मुझपर प्रसन्न होइये। आप ही अग्निके भीतर व्याप उग दाहिका शक्ति हैं। आप ही सूर्य-किरणोंमें स्थित प्रकाशिका शक्ति हैं। चन्द्रमामें जो आहादिका शक्ति है, वह भी आप ही हैं। ऐसी आप चण्डी देवीका मैं स्वतन और बन्दन करती हूँ। आप छियोंको बहुत प्रिय हैं। ऊर्जारेता ब्रह्मचारियोंकी स्वेयभूता नित्या व्रक्षशक्ति भी आप ही हैं। सम्पूर्ण जगत्की वाञ्छा तथा श्रीहरिकी माया भी आप ही हैं। जो देवी इच्छानुसार रूप धारण करके सृष्टि, पालन और संहारमयी हो उन कार्योंका समादन करती हैं

तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी देहभूता हैं वे आप ही हैं। देवि ! आज आप मुझपर प्रसन्न हों। याकै पुनः मेरा नमस्कार है।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! मेनाके इस प्रकार लुप्त करनेपर दुर्गा कालिकाने पुनः उन मेना देवीसे कहा—**अ**पना मनोवाञ्छित वर माँग लो। हिमाचलप्रिये। मुझे प्राणोंके समान प्यारी हो। तुम्हारी जो इच्छा हो माँगो। उसे मैं निश्चय ही दे दूँगी। तुम्हारे लिये मूले मैं भी अदेय नहीं हैं।

महेश्वरी उमाका यह अमृतके समान मुरुर कुनकर हिमगिरिकामिनी मेना बहुत संतुष्ट हुई थौँ। प्रकार बोली—**शिवे !** आपकी जय हो, जय हो। मैं ज्ञानवाली महेश्वरि ! जगदम्भिके ! यदि मैं वर पानेके हूँ तो फिर आपसे श्रेष्ठ वर माँगती हूँ। जगदम्भे ! पहले मुझे सौ पुत्र हों। उन सबकी बड़ी आयु हो। वे बलशान से सुक्त तथा कृद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हों। उन पुत्रोंके ए मेरे एक पुत्री हो, जो स्वरूप और गुणोंसे सुशोभित होने वाली हो; वह दोनों कुलोंको आनन्द देनेवाली तथा तीनोंके पूजित हो। जगदम्भिके ! शिवे ! आप ही देवताओंके सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री तथा रुद्रदेवकी पत्नी होइये। तदनुसार लीला कीजिये।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! मेनकाकी बात मूल प्रसन्नदृढ़दया देवी उमाने उनके मनोरथको पूर्ण करनेके मुस्कराकर कहा।

**देवी बोली—**पहले तुम्हें सौ बलवान् पुत्र ग्रास हैं उनमें भी एक सबसे अधिक बलवान् और प्रधान होगा। सबसे पहले उत्पन्न होगा। तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो मैं। तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी और उन देवताओंसे सेवित हो उनका कार्य सिद्ध करूँगी।

ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका निमेनकाके देखते-देखते वहीं अदृश्य हो गयी। तात ! महेश्वर से अभीष्ट वर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ। उन तपस्याजनित सारा क्लेश नष्ट हो गया। मुने। जिस क्रमसे मेनाके गर्भ रहा और वह प्रतिदिन बढ़ने वा समयानुसार उसने एक उत्तम पुत्रको उत्पन्न किया, कि नाम मैनाक था। उसने समुद्रके साथ उत्तम मैत्री बनाई वह अद्भुत पर्वत नागवधुओंके उपभोगका स्थल बना।

है। उसके समस्त अङ्ग श्रेष्ठ हैं। हिमालयके सौ पुत्रोंमें वह से या अपने बाद प्रकट हुए समस्त पर्वतोंमें एकमात्र मैनाक सबसे श्रेष्ठ और महान् चल-पराक्रमसे सम्पन्न है। अपने- ही पर्वतराजके पदपर प्रतिष्ठित है। (अथाय ५)

### देवी उमाका हिमवानुके हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, उनका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे बातचीत तथा नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मेना और हेमालय आदरपूर्वक देव-कार्यकी सिद्धिके लिये कन्याप्राप्ति के हेतु वहाँ जगजननी भगवती उमाका चिन्तन करने लगे। जो प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं, वे प्रहेश्वरी उमा अपने पूर्ण अंशसे गिरिराज हिमवानुके चित्तमें प्रविष्ट हुईं। इससे उनके शरीरमें अपूर्व एवं सुन्दर प्रभा उत्तर आयी। वे आनन्दमग्न हो अत्यन्त प्रकाशित होने लगे। उस अद्भुत तेजोराशिसे सम्पन्न महामाया हिमालय अग्निके समान अधृप्य हो गये थे। तत्पश्चात् सुन्दर कल्याणकारी समयमें गिरिराज हिमालयने अपनी प्रिया मेनाके उदरमें शिवाके उस परिपूर्ण अंशका आधान किया। इस तरह गिरिराजकी पद्मी मेनाने हिमवानुके हृदयमें विराजमान करुणानिधान देवीकी कृपासे सुखदायक गर्भ धारण किया। सम्पूर्ण जगत्की निवासभूता देवीके गर्भमें आनेसे गिरिप्रिया मेना सदा तेजोमण्डलके वीचमें स्थित होकर अधिक शोभा पाने लगी। अपनी प्रिया दुधाङ्गी मेनाको देखकर गिरिराज हिमवान् वही प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। गर्भमें जगद्माके था जानेसे वे महान् तेजसे सम्पन्न हो गयी थीं। मुने। उस अवसरमें विष्णु आदि देवता और मुनियोंने वहाँ आकर गर्भमें निवास करनेवाली शिवादेवीकी स्तुति की और तदनन्तर महेश्वरीकी नाना प्रकारसे स्तुति करके प्रसन्नचित्त हुए वे सब देवता अपने-अपने धामको चले गये। जब नवों गढ़ीना बीत गया और दसवाँ भी पूरा हो चला, तब जगद्मा फलिकाने समय पूर्ण होनेपर गर्भस्थ शिद्युकी जो गति होती है, उसीको धारण किया अर्थात् जन्म ले लिया। उस अवसर-पर आद्याशक्ति सती-नाथी शिवा पहले मेनाके सामने अपने ही रूपसे प्रकट हुई। वसन्त शृतुमें चैत्र मासकी नवमी तिथिको मृगशिर नक्षत्रमें आधी रातके समय चन्द्रमण्डलसे आवायगङ्गाकी भौति मेनाको उदरसे देवी शिवाका अपने ही स्वरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। उस समय सम्पूर्ण संसारमें प्रसन्नता था गयी। अनुकूल एवं चलने लगी, जो सुन्दर, सुर्यापूर्त एवं गम्भीर थी। उस समय जलकी वर्षकी साथ

फूलोंकी वृष्टि हुई। विष्णु आदि सब देवता वहाँ आये। सबने सुखी होकर प्रसन्नताके साथ जगद्माके दर्शन किये और शिवलोकमें निवास करनेवाली दिव्यरूपा महामाया शिवकामिनी मङ्गलमयी कालिका माताका स्तवन किया।

नारद ! जब देवतालोग स्तुति करके चले गये, तब मेनाका उस समय प्रकट हुई नील कमल-दलके समान कान्तिवाली श्यामवर्णा देवीको देखकर अतिशय आनन्दका अनुभव करने लगीं। देवीके उस दिव्य रूपका दर्शन करके गिरिप्रिया मेनाको शान प्राप्त हो गया। वे उन्हें परमेश्वरी समझकर अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो उठीं और संतोषपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—जगद्मे ! महेश्वर ! आपने वही कृपा की, जो मेरे सामने प्रकट हुई। अग्निके ! आपकी बड़ी शोभा हो रही है। शिव ! आप सम्पूर्ण शक्तियोंमें आद्याशक्ति तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। देवि ! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे प्रशंसित पराशक्ति हैं। महेश्वर ! आप कृपा करें और इसी रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ। साथ ही मेरी पुत्रीके अनुरूप प्रत्यक्ष दर्शनीय रूप धारण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पर्वत-पल्ली मेनाकी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई शिवादेवीने उन गिरिप्रियाको इस प्रकार उत्तर दिया।

देवी बोलीं—मेना ! तुमने पहले तत्परतापूर्वक मेरी बड़ी सेवा की थी। उस समय तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हो मैं वर देनेके लिये तुम्हारे निकट आयी। ‘वर माँगो’ मेरी इस बाणीको सुनकर तुमने जो वर माँगा, वह इस प्रकार है—‘महादेवि ! आप मेरी पुत्री हो जायें और देवताओंका हित साधन करें।’ तब मैंने ‘तथास्तु’ कहकर तुम्हें सादर यह वर दे दिया और मैं अपने धामको छली गयी। गिरिकामिनि ! उस वरके अनुसार समय पाकर आज मैं तुम्हारी पुत्री हुई हूँ। आज मैंने जो दिव्यरूपका दर्शन कराया है, इसका उद्देश्य इतना ही है कि तुम्हें मेरे स्वरूपका स्मरण हो जाय; अन्यथा मनुष्यरूपमें प्रकट होनेपर मेरे विषयमें तुम धनञ्जान ही

बनी रहती । अब तुम दोनों दम्पति पुत्रीभावसे अथवा  
दिव्य-भावसे मेरा निस्तर चिन्तन करते हुए मुझमें स्नेह  
रखतो । इससे तुम्हें मेरी उत्तम गति प्राप्त होगी । मैं पृथ्वीपर  
अद्भुत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी । भगवान्

शम्भुकी पल्नी होऊँगी और सज्जनोंका संकटसे उदार करेंगी।

ऐसा कहकर जगन्माता शिवा चुप हो गयीं और उनके माताके देखते-देखते प्रसन्नतापूर्वक नवजात पुत्रोंके रूपमें परिवर्तित हो गयीं । ( अवायव ६ )

पार्वतीका नामकरण और विद्याध्ययन, नारदका हिमवानुके यहाँ जाना, पार्वतीका हाथ देखका  
भावी फल बताना, चिन्तित हुए हिमवानुको आश्वासन दे पार्वतीका विवाह शिवजीके  
साथ करनेको कहना और उनके संदेहका निवारण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मैनके सामने महा-  
तेजस्विनी कन्या होकर लौकिक गतिका आशय ले वह रोने  
लगी । उसका मनोहर रुदन सुनकर घरकी सब खियाँ इर्षसे  
खिल उठीं और बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं ।  
नील कमल-दलके समान श्याम कान्तिवाली उस परम तेज-  
स्विनी और मनोरम कन्याको देखकर गिरिराज हिमालय अति-  
शय आनन्दमें निमग्न हो गये । तदनन्तर सुन्दर मुहूर्तमें  
मुनियोंके साथ हिमवान्नने अपनी पुत्रीके काली आदि मुख-  
दायक नाम रखवे । देवी शिवा गिरिराजके भवनमें दिनोंदिन  
बढ़ने लगीं—ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाके समयमें गङ्गाजीकी  
जलराशि और शरद-ऋतुके शुक्लपक्षमें चाँदनी बढ़ती है ।  
सुशीलता आदि गुणोंसे संयुक्त तथा बन्धुजनोंकी प्यारी उस  
कन्याको कुटुम्बके लोग अपने कुलके अनुरूप पार्वती नामसे  
पुकारने लगे । माताने कालिकाको ‘उ मा’ ( अरी ! तपस्या  
मत कर ) कहकर तप करनेसे रोका था । मुने ! इसलिये वह  
सुन्दर मुखवाली गिरिराजनन्दिनी आगे चलकर लोकमें उमाके  
नामसे विख्यात हो गयी । नारद ! तदनन्तर जब विद्याके  
उपदेशका समय आया, तब शिवा देवी अपने चिन्तको एकाग्र  
करके बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रेष्ठ गुरुसे विद्या पढ़ने लगीं । पूर्व-  
जन्मकी सारी विद्याएँ उन्हें उसी तरह प्राप्त हो गयीं, जैसे शरत्-  
कालमें हँसीकी पाँत अपने-आप स्वरङ्गाके तटपर पहुँच जाती  
है और रात्रिमें अपना प्रकाश स्वतः महौषधियोंको प्राप्त हो जाता  
है । मुने ! इस प्रकार मैंने शिवाकी किसी एक लीलाका ही  
वर्णन किया है । अब अन्य लीलाका वर्णन करूँगा, सनो ।

एक समयकी बात है तुम भगवान् शिवकी प्रेरणासे  
प्रसन्नतापूर्वक हिमाचलके घर गये। मुने ! तुम शिवतत्वके  
शाता और उनकी लीलाके जानकारोंमें श्रेष्ठ हो। नारद ! गिरि-  
राज हिमालयने तुम्हें घरपर आया देख प्रणाम करके तुम्हारी  
पूजा की और अपनी पुत्रीको छुलाकर उससे तुम्हारे चरणोंमें  
प्रणाम करवाया। मुनीश्वर ! फिर स्वयं भी तुम्हें नमस्कार करके

हिमाचलने अपने सौभाग्यकी सराहना की और अल्पत मुझ  
झुका हाथ जोड़कर तमसे कहा ।

हिमालय चोले—हे मुने नारद ! हे ब्रह्मपुत्रोंगे श्री  
शानवान् प्रभो ! आप सर्वशं हैं और कृपापूर्वक दूसरों  
उपकारमें लगे रहते हैं । मेरी पुनीकी जन्मकुण्डलीमें जो पुर-  
दोष हो, उसे बताइये । मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवर्ती प्रिया  
पत्नी होगी ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! तुम वातचीरमें झड़  
और कौतुकी तो हो ही, गिरिराज हिमालयके ऐसा बहते  
तुमने कालिकाका हाथ देखा और उसके सम्पूर्ण अंद्रोत



विशेषरूपसे दृष्टिपात करके हिमालयसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ।

नारद बोले—शैलराज और मेना ! आपकी यह पुत्री चन्द्रमाकी आदि कलाके समान वढ़ी है । समस्त शुभ लक्षण इसके अङ्गोंकी शोभा वढ़ाते हैं । यह अपने पति के लिये अत्यन्त सुखदायिनी होगी और माता-पिताकी भी कीर्ति वढ़ायेगी । संसारकी समस्त नारियोंमें यह परम साध्वी और स्वजनोंको सदा महान् अनन्द देनेवाली होगी । गिरिराज ! तुम्हारी पुत्रीके हाथमें सब उत्तम लक्षण ही विद्यमान हैं । अब एक रेखा विलक्षण है, उसका यथार्थ फल सुनो । इसे सा पति प्राप्त होगा, जो योगी, नंग-धड़ंग रहनेवाला, निर्गुण और निष्काम होगा । उसके न माँ होगी न बाप । उसे मान-मानका भी कोई ख्याल नहीं रहेगा और वह सदा अमङ्गल प घारण करेगा ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तुम्हारी इस बातको सुन और सत्य मानकर मेना तथा हिमाचल दोनों पति-पत्नी बहुत खित हुए, परंतु जगदम्बा शिवा तुम्हारे ऐसे बचनको लिकर और लक्षणोंद्वारा उस भावी पतिको शिव मानकर मन-मन हृषी सिल उठाएं । 'नारदजीकी बात कभी छूट नहीं । सकती' यह सोचकर शिवा भगवान् शिवके युगलचरणोंमें गम्भीर हृदयसे अत्यन्त स्लेह करने लगे । नारद ! उस समय मन-ही-मन दुखी हो हिमवान्‌ने तुमसे कहा—'मुने ! उस खाका फल सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है । मैं अपनी पुत्रीको उससे बचानेके लिये कशा उपाय करूँ ?'

मुने ! तुम महान् कौतुक करनेवाले और वार्तालाप-विशारद हो । हिमवान्‌की बात सुनकर अपने मङ्गलकारी चन्द्रोंद्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए तुमने इस प्रकार कहा ।

नारद बोले—गिरिराज ! तुम स्नेहपूर्वक सुनो, मेरी बात सची है । वह शूट नहीं होगी । हाथकी रेखा ब्रह्माजीकी लिपि है । निश्चय ही यह मिथ्या नहीं हो सकती । अतः शैल-प्रधार ! इस कन्याको बैसा ही पति मिलेगा, इसमें संशय नहीं । परंतु इस रेखाके कुफलसे बचनेके लिये एक उपाय भी है, उसे प्रेमपूर्वक सुनो । उसे करनेसे तुम्हें सुख मिलेगा । मैंने कैसे बरका सिरुपण किया है, वैसे ही भगवान् शंकर है । वे गर्भसमर्प हैं और लीलाके लिये अनेक स्पष्ट घारण करते रहते हैं । उनमें समस्त कुलज्ञ सद्गुणोंके समान हो जायेंगे । समर्थ पुरुषमें कोई दोष भी हो तो वह उसे दुःख नहीं देता । अमर्थके लिये ही वह दुःखदायक होता है । इस विषयमें सूर्य, अग्नि और गग्नाका द्वान्त सामने रखना चाहिये ।

इसलिये तुम विवेकपूर्वक अपनी कन्या शिवाको भगवान् शिवके हाथमें सौंप दो । भगवान् शिव सबके ईश्वर, सेव्य, निर्विकार, सामर्थ्यशाली और अविनाशी हैं । वे जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं । अतः शिवाको अहण कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है । विशेषतः वे तपस्यासे वशमें हो जाते हैं । यदि शिवा तप करे तो सब काम ठीक हो जायगा । सर्वेश्वर शिव सब प्रकारसे समर्थ हैं । वे इन्द्रके बज्रका भी विनाश कर सकते हैं । ब्रह्मा-जी उनके अधीन हैं तथा वे सद्वको सुख देनेवाले हैं । पार्वती भगवान् शंकरकी प्यारी पत्नी होगी । वह सदा रुद्रदेवके अनुकूल रहेगी; क्योंकि यह महासाध्वी और उत्तम ग्रतका पालन करनेवाली है तथा माता-पिताके सुखको बढ़ानेवाली है । यह तपस्या करके भगवान् शिवके मनको अपने वशमें कर लेगी और वे भगवान् भी इसके सिवा किसी दूसरी त्रिसे विवाह नहीं करेंगे । इन दोनोंका प्रेम एक दूसरेके अनुरूप है । वैसा उच्चकोटिका प्रेम न तो किसीका हुआ है, न इस समय है और न आगे होगा । गिरिश्रेष्ठ ! इन्हें देवताओंके कार्य करने हैं । उनके जो-जो काम नष्टप्राय हो गये हैं, उन सबका इनके द्वारा पुनः उजीवन या उद्धार होगा । अद्विराज ! आपकी कन्याको पाकर ही भगवान् हर अर्द्धनारीश्वर होंगे । इन दोनोंका पुनः हर्षपूर्वक मिलन होगा । आपकी यह पुत्री अपनी तपस्याके प्रभावसे सर्वेश्वर महेश्वरको संतुष्ट करके उनके शरीरके आधे भागको अपने अधिकारमें कर लेगी, उनका अर्धाङ्ग बन जायगी । गिरिश्रेष्ठ ! तुम्हें अपनी यह कन्या भगवान् शंकरके सिवा दूसरे किसीको नहीं देनी चाहिये । यह देवताओंका गुप्त रहस्य है, इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये ।

हिमालयने कहा—जानी मुने नारद ! मैं आपको एक बात बता रहा हूँ, उसे प्रेमपूर्वक सुनिये और आनन्दका अनुभव कीजिये । सुना जाता है, महादेवजी सब प्रकारकी आसक्तियोंका ल्याग करके अपने मनको संयममें रखते हुए नित्य तपस्या करते हैं । देवताओंकी भी इष्टिमें नहीं आते । देवर्षे ! ध्यानमार्गमें स्थित हुए वे भगवान् शम्भु परजलमें लगाये हुए अपने मनको कैसे हटायेंगे ? ध्यान ठोड़कर विवाह करनेको कैसे उद्यत होंगे ? इस विषयमें मुझे महान् संदेह है । दीपककी लौके समान प्रकाशमान, अविनाशी, प्रवृत्तिसे पर, निर्विकार, निर्गुण, सत्त्व, निर्विद्येष और निरीद जो परब्रह्म है, वही उनका अपना सदाद्यिव नामक स्वरूप है । अतः वे उनीका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं, किसी बाह्य—अनात्मवस्तुपर दृष्टि नहीं डालते । मुने ! यहाँ आये हुए

किंवरोके मुखसे उनके विषयमें नित्य ऐसी ही बात सुनी जाती है। क्या वह बात मिथ्या ही है। विशेषतः यह बात भी सुननेमें आती है कि भगवान् हरने पूर्वकालमें सतीके समक्ष एक प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कहा था—‘दक्षकुमारी प्यारी लती। मैं तुम्हारे लिवा दूसरी किसी छीका अपनी पत्नी बनानेके लिये न वरण करूँगा न ग्रहण। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।’ इस प्रकार सतीके साथ उन्होंने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है। अब सतीके मर जानेपर वे दूसरी किसी छीको कैसे ग्रहण करेंगे?

यह सुनकर तुम (नारद) ने कहा—महामते! गिरिराज! इस विषयमें दुर्भेद चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम्हारी यह पुत्री काली ही पूर्वकालमें दक्षकन्या सती हुई थी। उस समय इसीका सदा सर्वमङ्गलदायी सती नाम था। वे सती दक्षकन्या होकर रुद्रकी प्यारी पत्नी हुई थीं। उन्होंने पिताके यज्ञमें अनादर पाकर तथा भगवान् शंकरका भी अपमान हुआ देख क्रोधपूर्वक अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही

### मेना और हिमालयकी बातचीत, पार्वती तथा हिमवान्के सम्पन्न तथा भगवान् शिवसे ‘मङ्गल’ ग्रहकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब तुम स्वर्गलोकको छले गये, तबसे कुछ काल और व्यतीत हो जानेपर एक दिन मेनाने हिमवान्‌के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर खड़ी हो वे गिरिकामिनी मेना अपने पतिसे विनयपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—प्राणनाथ! उस दिन नारद मुनिने जो बात कही थी, उसको छी-स्वभावके कारण मैंने अच्छी तरह नहीं समझा; मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप कन्याका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर दीजिये। वह विवाह सर्वथा अपूर्व सुख देनेवाला होगा। गिरिजाका वर शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और कुलीन होना चाहिये। मेरी बेटी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। वह उत्तम वर पाकर जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, वैसा कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है।

ऐसा कहकर मेना अपने पतिके चरणोंपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा वह रही थी। प्राश-शिरोमणि हिमवान्‌ने उन्हें उठाया और यथावत् समझाना आरम्भ किया।

सती फिर तुम्हारे घरमें उत्पन्न हुई है। तुम्हारी पुत्री मात्र जगदम्भा शिवा है। यह पार्वती भगवान् हरकी पत्नी हैं। इसमें संशय नहीं है।

नारद! ये सब बातें तुमने हिमवान्‌को विसार्पित बतायी। पार्वतीका वह पूर्वस्वप्न और चरित्र प्रीतिको बढ़ानेवाला है। कालीके उस समृद्ध पूर्व वृत्तान्तको तुम्हारे मुखसे मुक्त हिमवान् अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तल्काल सदेहरहित हो गए। इसी तरह तुम्हारे मुखसे अपनी उस पूर्वकथाको मुनकर ब्रह्मलज्जाके मारे मस्तक छुका लिया और उसके मुखर मुख्यानकी प्रभा कैल गयी। गिरिराज हिमालय पार्वतीके चरित्रको सुनकर उसके माथेपर हाथ फेरने लगे और महसूस घृणकर उसे अपने आसनके पास ही बिठा लिया।

नारद! इसके पश्चात् तुम उसी क्षण प्रसन्नताः स्वर्गलोकको छले गये और गिरिराज हिमवान् भी मनहीं मनोहर आनन्दसे युक्त हो अपने सर्वसम्पत्तिशाली भू प्रविष्ट हो गये। (अध्याय ७-८)



हिमालय बोले—देवि मेनके। मैं यथार्थ और कृत-

बात बताता हूँ । सुनो । भ्रम छोड़ो । मुनिकी नात कभी इर्दी नहीं हो सकती । यदि वेटीपर तुम्हें स्नेह है तो उसे सादर शिक्षा दो कि वह भक्तिपूर्वक सुस्थिर चित्तसे भगवान् शंकरके लिये तप करे । मैनके । यदि भगवान् शिव प्रसन्न होकर कालीका पाणिग्रहण कर लेते हैं तो सब शुभ ही होगा । नारदजीका बताया हुआ अमङ्गल या अशुभ नष्ट हो जायगा । शिवके समीप सारे अमङ्गल सदा मङ्गलरूप हो जाते हैं । इसलिये तुम पुत्रीको शिवकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेकी शीघ्र शिक्षा दो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हिमवान्‌की यह बात सुनकर मैनको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे तपस्यामें रुचि उत्पन्न करनेके लिये पुत्रीको उपदेश देनेके निमित्त उसके पास गयीं । परंतु वेटीके सुकुमार अङ्गपर दृष्टिपात करके मैनके मनमें बड़ी व्यथा हुई । उनके दोनों नेत्रोंमें तुरंत आँसू भर आये । फिर तो गिरिप्रिया मैनमें अपनी पुत्रीको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रह गयी । अपनी माताकी उस चेष्टाको पार्वतीजी शीघ्र ही ताढ़ गयीं । तब वे सर्वज्ञ परमेश्वरी कालिका देवी माताको धारंवार आश्वासन दे तुरंत बोलीं ।

पार्वतीने कहा—मा ! तुम बड़ी समझदार हो । मेरी यह बात सुनो । आज पिछली रात्रिके समय ब्राह्मसुहृत्तीमें मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे बताती हूँ । माताजी ! स्वप्नमें एक दयालु एवं तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवकी प्रसन्नताके लिये उत्तम तपस्या करनेका प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया है ।

नारद ! यह सुनकर मैनकाने शीघ्र अपने पतिको बुलाया और पुत्रीके देखे हुए स्वप्नको पूर्णतः कह सुनाया । मैनकाके मुखसे पुत्रीके स्वप्नको सुनकर गिरिराज हिमालय घड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रिय पत्नीको समझाते हुए बोले ।

गिरिराजने कहा—प्रिये ! पिछली रातमें मैंने भी एक स्वप्न देखा है । मैं आदरपूर्वक उसे बताता हूँ । तुम प्रेमपूर्वक उसे सुनो । एक बड़े उत्तम तपस्वी थे । नारदजीने वरके जैसे लक्षण बताये थे, उन्होंने लक्षणोंसे युक्त शरीरको उन्होंने धारण पर रखा था । वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मेरे नगरके निकट तपस्या करनेके लिये आये । उन्हें देखकर मुझे यहाँ हर्ष हुआ और मैं अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनके पास गया । इस समय मुझे शात हुआ कि नारदजीके बताये हुए कर-

भगवान् शम्भु ये ही हैं । तब मैंने उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी पुत्रीको उपदेश देकर उनसे भी प्रार्थना की कि वे इसकी सेवा स्वीकार करें । परंतु उस समय उन्होंने मेरी बात नहीं मानी, इतनेमें ही वहाँ सांख्य और वेदान्तके अनुसार बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया । तदनन्तर उनकी आशासे मेरी वेटी वहाँ रह गयी और अपने हृदयमें उन्हींकी कामना रखकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी । सुमुखि ! वही मेरा देखा हुआ स्वप्न है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया । अतः प्रिये मैंने ! कुछ कालतक इस स्वप्नके फलकी परीक्षा या प्रतीक्षा करनी चाहिये, इस समय यही उचित जान पड़ता है । तुम निश्चित समझो, यही मेरा विचार है ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर नारद ! ऐसा कहकर गिरिराज हिमवान् और मैनका शुद्ध हृदयसे उस स्वप्नके फलकी परीक्षा एवं प्रतीक्षा करने लगे ।

देवर्षे ! शिवभक्तशिरोमणे ! भगवान् शंकरका यश परम पावन, मङ्गलकारी, भक्तिवर्धक और उत्तम है । तुम इसे आदरपूर्वक सुनो । दक्षन्यश्चसे अपने निवासस्थान कैलास पर्वतपर आकर भगवान् शम्भु प्रियाविरहसे कातर हो गये और प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सती देवीका हृदयसे चिन्तन करने लगे । अपने पार्षदोंको बुलाकर सतीके लिये शोक करते हुए उनके प्रेमवर्द्धक गुणोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वर्णन करने लगे । यह सब उन्होंने सांसारिक गतिको दिखानेके लिये किया । फिर गृहस्थ आश्रमकी सुन्दर स्थिति तथा नीति-शिक्षा परिव्याग करके वे दिग्म्बर हो गये और सब लोकोंमें उन्मत्तकी भाँति भ्रमण करने लगे । लीलाकुशलै होनेके कारण विरही-की अवस्थाका प्रदर्शन करने लगे । सतीके विरहसे दुःखित हो कहीं भी उनका दर्शन न पाकर भक्तकल्याणकारी भगवान् शंकर पुनः कैलासगिरिपर लौट आये और मनको यत्नपूर्वक एकाम्र करके उन्होंने समाधि लगा ली, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाली है । समाधिमें वे अविनाशी स्वरूपका दर्शन करने लगे । इस तरह तीनों गुणोंसे रहित हो वे भगवान् शिव चिरकालतक बुल्हिर भावसे तमाधि ल्याये बैठे रहे । वे प्रभु स्वयं ही मायाके अधिष्ठिति निर्विकार परब्रह्म हैं । तदनन्तर जब असंख्य वर्ष ब्रह्मतीत हो गये, तब उन्होंने तमाधि छोड़ी । उनके बाद तुरंत ही जो चत्विंत्र हुआ, उसे मैं तुम्हें बताता हूँ ।

भगवान् शिवके ललाटसे उस समय श्रमजनित परीनेकी एक बूँद पृथ्वीपर गिरी और तत्काल एक शिशुके ल्पमें परिणत हो गयी। मुने ! उस बालकके चार भुजाएँ थीं, शरीरकी कान्ति लाल थी और आकार मनोहर था। दिव्य वृत्तिसे दीसिमान् वह शोभाशाली बालक अत्यन्त दुस्सह तेजसे सम्पन्न था, तथापि उस समय लोकाचारपरायण परमेश्वर शिवके आगे वह साधारण शिशुकी भाँति रोने लगा। यह देख पृथ्वी भगवान् शंकरसे भय मान उत्तम बुद्धिसे विचार करनेके पश्चात् सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके वहीं प्रकट हो गयी। उन्होंने उस सुन्दर बालकको तुरंत उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और अपने ऊपर प्रकट होनेवाले दूधको ही स्तन्यके रूपमें उसे पिलाने लगीं। उन्होंने स्त्रेहसे उसका मुँह चूमा और अपना ही बालक मान हँस-हँसकर उसे खेलाने लगीं। परमेश्वर शिवका हित-साधन करनेवाली पृथ्वी देवी सच्चे भावसे स्वयं उसकी माता बन गयीं।

संसारकी सुष्ठि करनेवाले, परम कौतुकी एवं विद्वान् अन्तर्यामी शम्भु वह चरित्र देखकर हँस पड़े और पृथ्वीको पहचानकर उनसे बोले—‘धरणि ! तुम धन्य हो ! मेरे इस

पुत्रका प्रेमपूर्वक पालन करो। वह श्रेष्ठ शिशु मुझ महातेजसं शम्भुके श्रमजल ( परीने ) से तुम्हारे ही ऊपर उत्तम है। वसुधे ! यह प्रियकारी बालक यद्यपि मेरे श्रमजलसे प्रकट हुआ है, तथापि तुम्हारे नामसे तुम्हारे ही पुत्रके रूपमें इसी ख्याति होगी। यह सदा विविध तापोंसे रहित होगा। अब गुणवान् और भूमि देनेवाला होगा। यह मुझे भी सुख प्रदान करेगा। तुम इसे अपनी रुचिके अनुसार ग्रहण करो।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर भगवान् चुप हो गये। उनके हृदयसे विरहका प्रभाव कुछ आ गया। उनमें विरह क्या था, वे लोकाचारका पालन कर रहे। वास्तवमें सत्पुरुषोंके प्रिय श्रीरुद्रदेव निर्विकार शम्भु ही हैं। शिवकी उपर्युक्त आज्ञाको शिरोधार्य करके पुर्वजी पृथ्वीदेवी शीघ्र ही अपने स्थानको छली गयां। उन्हें आलंबि सुख मिला। वह बालक ‘भौम’ नामसे प्रसिद्ध हो युवाशेष तुरंत काशी चला गया और वहाँ उसने दीर्घकालतक भगवान् शंकरकी सेवा की। विश्वनाथजीकी कृपासे ग्रहकी पद्मनाभ वे भूमिकुमार शीघ्र ही श्रेष्ठ एवं दिव्य लोकमें चले गए। शुक्लोकसे परे हैं।

( अव्याय ११० )

### भगवान् शिवका गङ्गावतरण तीर्थमें तपस्याके लिये आना, हिमवान्द्वारा उनका स्वागत, पूजन और स्तवन तथा भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार उनका उस स्थानपर दूसरोंको न जाने देनेकी व्यवस्था करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हिमवान्की पुत्री लोक-पूजित शक्तिस्वरूपा पार्वती हिमालयके घरमें रहकर बढ़ने लगीं। जब उनकी अवस्था आठ वर्षकी हो गयी, तब सतीके विरहसे कातर हुए शम्भुको उनके जन्मका समाचार मिला। नारद ! उस अद्भुत बालिका पार्वतीको हृदयमें रखकर वे मन-ही-मन बड़े आनन्दका अनुभव करने लगे। इसी वीचमें लौकिक गतिका आश्रय ले शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये तप करनेका विचार किया। नन्दी आदि कुछ शान्त पार्षदोंको साथ ले वे हिमालयके उत्तम शिखरपर गङ्गावतार नामक तीर्थमें चले आये, जहाँ पूर्वकालमें ब्रह्माधामसे च्युत होकर समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये चली हुई परम पात्रनी गङ्गा पहले-पहल भूतलपर अवतीर्ण हुई थीं। जितेन्द्रिय

हरने वहीं रहकर तपस्या आरम्भ की। वे आलस्यहिती चेतन, ज्ञानस्वरूप, नित्य, ज्योतिर्मय, निरामय, जलम-चिदानन्दस्वरूप, द्वैतहीन तथा आश्रयरहित अपने आलम परमात्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करने लगे। भगवान् हँस ध्यानपरायण होनेपर नन्दी-भूजी आदि कुछ अन्य पार्षद भी ध्यानमें तत्पर हो गये। उस समय कुछ ही प्रसन्न परमात्मा शम्भुकी सेवा करते थे। वे सबके सब मौन रहे और एक शब्द भी नहीं बोलते थे। कुछ द्वारपाल ही गये हैं।

इसी समय गिरिराज हिमवान् उस ओषधिवृद्धुल शिखर भगवान् शंकरका शुभागमन सुनकर उनके प्रति आदरकी मान वहाँ आये। आकर सेवकोंसहित गिरिराजने भगवान् रुद्रको प्रसन्न किया, उनकी पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़ उन्हें सुन्दर स्तवन किया। किर हिमालयने कहा—‘प्रभो !



सौभाग्यका उदय हुआ है, जो आप यहाँ पधारे हैं। आपने मुझे प्रिनाथ कर दिया। क्यों न हो, महात्माओंने यह ठीक ही वर्णन किया है कि आप दीनवत्सल हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया। पाज मेरा जीवन सफल हुआ और आज मेरा सब कुछ सफल हो गया; क्योंकि आपने यहाँ पदार्पण करनेका कष्ट उठाया है। महेश्वर ! आप मुझे अपना दास समझकर आन्तमावसे मैंसे सेवाके लिये आशा दीजिये। मैं बड़ी प्रसन्नतासे अनन्य-चेत्त होकर आपकी सेवा करूँगा।'

६ व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! गिरिराजका यह वचन द्विनकर महेश्वरने किंचित् औँखें खोलीं और सेवकोंसहित भैमवान्को देखा। सेवकोंसहित गिरिराजको उपस्थित देख आनयोगमें सित हुए जगदीश्वर वृषभध्वजने मुस्कराते एसे ददा।

महेश्वर घोले—शैलराज ! मैं तुम्हारे शिखरपर इसात्में तपस्या करनेके लिये आया हूँ। तुम ऐत्त प्रबन्ध करो, जिससे कोई भी मेरे निकट न आ सके। तुम महात्मा, तरस्यारे धाम हो तथा सुनियो, देवताओं, राक्षसों और मैं गरालाओंको भी सदा आश्रय देनेवाले हो। द्विज

आदिका तुम्हारे ऊपर सदा ही निवास रहता है। तुम गङ्गासे अभिष्रित होकर सदके लिये पवित्र हो गये हो। दूसरोंका उपकार करनेवाले तथा सम्पूर्ण पर्वतोंके सामर्थ्यशाली राजा हो। गिरिराज ! मैं यहाँ गङ्गावतरण-स्थलमें तुम्हारे आश्रित रहकर आत्मसंयमपूर्वक बड़ी प्रसन्नताके साथ तपस्या करूँगा। शैलराज ! गिरिश्रेष्ठ ! जिस साधनसे यहाँ मेरी तपस्या विना किसी विभ्राधारके चालू रह सके, उसे इस समय प्रयत्नपूर्वक करो। पर्वत-प्रवर ! मेरी यही सबसे बड़ी सेवा है। तुम अपने घर जाओ और मैंने जो कुछ कहा है, उसका उत्तम प्रीतिसे यत्पूर्वक प्रबन्ध करो।

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर सुषिकर्ता जगदीश्वर भगवान् शम्भु चुप हो गये। उस समय गिरिराजने शम्भुसे प्रेमपूर्वक यह बात कही—‘जगन्नाथ ! परमेश्वर ! आज मैंने अपने प्रदेशमें स्थित हुए आपका स्वागतपूर्वक पूजन किया है, यही मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात है। अब आपसे और क्या प्रार्थना करूँ। महेश्वर ! कितने ही देवता बड़े-बड़े वत्का आश्रय ले महान् तप करके भी आपको नहीं पाते। वे ही आप यहाँ स्वयं उपस्थित हो गये। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि आप मेरे पृष्ठभागपर तपस्याके लिये उपस्थित हुए हैं। परमेश्वर ! आज मैं अपनेको देवराज इन्द्रसे भी अधिक भाग्यवान् मानता हूँ; क्योंकि सेवकोंसहित आपने यहाँ आकर मुझे अनुग्रहका भागी बना दिया। देवेश ! आप स्वतन्त्र हैं। यहाँ विना किसी विभ्राधारके उत्तम तपस्या कीजिये। प्रभो ! मैं आपका दास हूँ। अतः सदा आपकी आशाके अनुसार सेवा करूँगा।’

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय तुरंत अपने घरको लैट आये। उन्होंने अपनी शिया मेनाको घड़े आदरसे वह सारा बृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् शैलराजने साथ जानेवाले परिजनों तथा समस्त सेवकगणोंको बुलाकर उन्हें ठीक-ठीक समझाया।

हिमालय घोले—आजसे कोई भी गङ्गावतरण नामक स्थानमें, जो मेरे पृष्ठभागमें ही है, मेरी आशा मानवर न जाय। यह मैं लज्जी बात कहता हूँ। वहि कोई वहाँ जायगा तो उस महादुष्को मैं विशेष दण्ड दूँगा। मुने ! इस प्रकार अपने समस्त गणोंको शीघ्र ही नियन्त्रित करके हिमयान्ते विभ्राधारालके लिये जो तुम्हर व्रयत दिया, वह तुम्हें बताता हूँ, मुनो। ( अथाय ११ )

## हिमवान्‌का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर शैलराज हिमालय उत्तम फल-फूल लेकर अपनी पुत्रीके साथ हर्षपूर्वक भगवान् छृके समीप गये । वहाँ जाकर उन्होने ध्यानपरायण त्रिलोकीनाथ शिवको प्रणाम किया और अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उनकी सेवामें अर्पित कर दिया । फल-फूल आदि सारी सामग्री उनके सामने रखकर पुत्रीको आगे करके शैलराजने शम्भुसे कहा—‘भगवन् ! मेरी पुत्री आप भगवान् चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये उत्सुक है । अतः आपके आराधनकी इच्छासे मैं इसको साथ लाया हूँ । यह अपनी दो सत्त्वियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवामें रहे । नाथ ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो इस कन्याको सेवाके लिये आज्ञा दीजिये ।’

तब भगवान् शंकरने उस परम मनोहर कामरूपिणी कन्याको देखकर आँखें मूँद लीं और अपने विगुणातीत, अविनाशी परमतत्त्वमय उत्तम रूपका ध्यान आरम्भ किया । उस समय सर्वेश्वर एवं सर्वद्यापी जटाजूटधारी वैदान्तवेद्य चन्द्रकला-विभूषण शम्भु उत्तम आसनपर बैठकर नेत्र बंद किये तप ( ध्यान ) में ही लग गये । यह देख हिमाचलने मरतक छुकाकर पुनः उनके चरणोंमें प्रणाम किया । यद्यपि उनके हृदयमें दीनता नहीं थी, तो भी वे उस समय इस संशयमें पड़ गये कि न जाने भगवान् मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे या नहीं । वक्ताओंमें श्रेष्ठ गिरिराज हिमवान्‌ने जगत्‌के एकमात्र बन्धु भगवान् शिवसे इस प्रकार कहा ।

**हिमालय बोले—देवदेव ! महादेव ! करुणाकर ! शंकर ! विभो !** मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आँखें खोलकर मेरी ओर देखिये । शिव ! शर्व ! महेश्वान ! जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो ! महादेव ! आप सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । स्वामिन् ! प्रभो ! मैं अपनी इस पुत्रीके साथ प्रतिदिन आपका दर्शन करनेके लिये आँखें आँखें खोलकर आज्ञा दीजिये ।

उनकी यह बात सुनकर देवदेव महेश्वरने आँखें खोलकर ध्यान छोड़ दिया और कुछ सोच-विचारकर कहा ।

**महेश्वर बोले—गिरिराज !** तुम अपनी इस कुमारी कन्याको घरमें रखकर ही नित्य मेरे दर्शनको आ सकते हो, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं हो सकता ।

महेश्वरकी ऐसी बात सुनकर शिवके पिता हिमवान् मरतक छुकाकर उन भगवान् शिवसे बोले—‘प्रभो ! यह तो बताइये, किस कारणसे मैं इस कन्याके साथ आपके दर्शनके लिये नहीं आ सकता । क्या यह आपकी सेवाके योग्य नहीं है ? किस

इसे नहीं लानेका क्या कारण है, यह मेरी समझमें नहीं आता ।’

यह सुनकर भगवान् वृपभध्वन शम्भु हँसने लो थे विशेषतः दुष्ट योगियोंको लोकाचारका दर्शन कराते हुए वे हिमालयसे बोले—‘शैलराज ! यह कुमारी सुन्दर क्षयित्वे सुशोभित, तन्वही, चन्द्रमुखी और शुभ लक्षणसे समाझे । इसलिये इसे मेरे समीप तुम्हें नहीं लाना चाहिये । इसके नीं मैं तुम्हें वारंवार रोकता हूँ । वैदके पारंगत विद्वानेनि नाई मायारूपिणी कहा है । विशेषतः युवती स्त्री तो तपस्वीजैं तपमें विद्वन डालनेवाली ही होती है । गिरिश्रेष्ठ ! मैं ताह योगी और रादा मायासे निर्लिप्त रहनेवाला हूँ । मुझे युक्तिसे क्या प्रयोजन है ? तपस्त्रियोंके श्रेष्ठ आश्रव हिमलय इसलिये फिर तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये; स्त्रीकि वैदेशक धर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विद्वान् है अचलराज ! स्त्रीके सङ्गसे मनमें शीघ्र ही विषयवासन उत्तर हो जाती है । उससे वैराग्य नष्ट होता है और वैराग्य न होने पुरुष उत्तम तपस्यासे भ्रष्ट हो जाता है । इसलिये यह तपस्वीको सङ्ग नहीं करना चाहिये; योकि ।



महाविषय-वासनाकी जड़ एवं ज्ञान-वैराग्यका विनाश करनेवाली होती है । ५

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस तरहकी बहुत-सी बातें कहकर महायोगिशिरोभणि भगवान् महेश्वर चुप हो गये । देवपं ! शम्भुका यह निरामय, निःस्थृ और निष्ठुर वचन

सुनकर कालीके पिता हिमवान् चकित, कुछ-कुछ व्याकुल और चुप हो गये । तपस्वी शिवकी कही हुई बात सुनकर और गिरिराज हिमवान्को चकित हुआ जानकर भवानो पार्वती उस समय भैगवान् शिवको प्रणाम करके विशद वचन बोली ।

( अध्याय १२ )

## पार्वती और शिवका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना तथा पार्वतीद्वारा भगवान्की प्रतिदिन सेवा

भवानीने कहा—योगिन् ! आपने तपस्वी होकर गिरि-जसे यह क्या बात कह डाली । प्रभो ! आप ज्ञानविश्वारद हैं, तो भी अपनी बातका उत्तर सुझासे सुनिये । शम्भो ! आप पश्यक्षिसे सम्भव होकर ही वड़ा भारी तप करते हैं । उस ग्रन्थके कारण ही आप महात्माको तपस्या करनेका विचार हुआ है । सभी कर्मोंको करनेकी जो वह शक्ति है, उसे ही प्रकृति जानना चाहिये । प्रकृतिसे ही सबकी सृष्टि, पालन और रंहार होते हैं । भगवन् ! आप कौन हैं ? और सूक्ष्म प्रकृति क्या है ? इसका विचार कीजिये । प्रकृतिके विना लिङ्गरूपी रहेश्वर कैसे हो सकते हैं ? आप सदा प्राणियोंके लिये जो अर्चनीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं, वह प्रकृतिके ही कारण है । इस बातको हृदयसे विचारकर ही आपको जो कहना हो, वह सब कहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीजीके इस वचनको सुनकर महती लील करनेमें लो हुए प्रसन्नचित्त सहेश्वर हँसते हुए बोले ।

महेश्वरने कहा—मैं उच्छृ तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाम करता हूँ और तत्त्वतः प्रकृतिरहित शम्भुके रूपमें स्थित होता हूँ । अतः सत्पुरुषोंको कभी या कहीं प्रकृतिका संप्रह नहीं करना चाहिये । लोकाचारसे दूर एवं निर्विकार रहना चाहिये ।

नारद ! जय शम्भुने लैकिक व्यवहारके अनुसार यह बात यही, तब काली मन-ही-मन हँसकर मधुर वाणीमें बोली ।

कालीने कहा—कल्याणकारी प्रभो ! योगिन् ! आपने को दात यही है, क्या यह वाणी प्रकृति नहीं है ? फिर आप

उससे परे क्यों नहीं हो गये ? ( क्यों प्रकृतिका सहारा लेकर बोलने लगे ? ) इन सब बातोंको विचार करके तात्त्विक दृष्टिसे जो यथार्थ बात हो, उसीको कहना चाहिये । यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है । इसलिये आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना—सब व्यवहार प्राकृत ही है । आपअपनी बुद्धिसे इसको समझिये । आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है । जूठे वाद-विवाद करना व्यर्थ है । प्रभो ! शम्भो ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किसलिये करते हैं ? हर ! प्रकृतिने आपको निगल लिया है । अतः आप अपने स्वरूपको नहीं जानते । ईश ! आप यदि अपने स्वरूपको जानते हैं तो किस लिये तप करते हैं ? योगिन् ! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है ? प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर विद्वान् पुरुष अनुमान प्रमाणको नहीं मानते । जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये । योगीश्वर ! बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मेरी उत्तम बात सुनिये । मैं प्रकृति हूँ । आप पुरुष हैं । यह सत्य है, सत्य है । इसमें संशय नहीं है । मेरे अनुग्रहसे ही आप समुण्ड एवं साकार माने गये हैं । मेरे यिन तो आप निरीह हैं । कुछ भी नहीं कर सकते हैं । आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो सदा नाना प्रकारके कर्म करते रहते हैं । फिर निर्विकार कैसे है ? और मुक्षसे लिप्स कैसे नहीं ! शंकर ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका यह कथन सत्य है तो आपको मेरे समीप रहनेपर भी डरना नहीं चाहिये ।

\* भवत्पर्पत तत्त्वाद् विपरोत्पत्तिरात् वै ।

भगतपरिना शैल न वाणी लंगु संगतिः । महाविष्यमूलं तत् शर्वतान्यनामिनो ॥

## हिमवान्‌का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर शैलराज हिमालय उत्तम फल-फूल लेकर अपनी पुत्रीके साथ हर्षपूर्वक भगवान् हरके समीप गये । वहाँ जाकर उन्होंने ध्यानपरायण त्रिलोकीनाथ शिवको प्रणाम किया और अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उनकी सेवामें अर्पित कर दिया । फल-फूल आदि सारी सामग्री उनके सामने रखकर पुत्रीको आगे करके शैलराजने शम्भुसे कहा—‘भगवन् ! मेरी पुत्री आप भगवान् चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये उत्सुक है । अतः आपके आराधनकी इच्छासे मैं इसको साथ लाया हूँ । यह अपनी दो सखियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवामें रहे । नाथ ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो इस कन्याको सेवाके लिये आज्ञा दीजिये ।’

तब भगवान् शंकरने उस परम मनोहर कामरूपिणी कन्याको देखकर आँखें मँद लीं और अपने निरुणातीत, अविनाशी परमतत्त्वमय उत्तम रूपका ध्यान आरम्भ किया । उस समय सर्वेश्वर एवं सर्वव्यापी जटाजूटधारी वेदान्तवेद्य चन्द्रकला-विभूषण शम्भु उत्तम आसनपर बैठकर नेत्र बंद किये तप (ध्यान) में ही लग गये । यह देख हिमाचलने मस्तक छुकाकर पुनः उनके चरणोंमें प्रणाम किया । यद्यपि उनके हृदयमें दीनता नहीं थी, तो भी वे उस समय इस संशयमें पड़ गये कि न जाने भगवान् मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे या नहीं । वक्ताओंमें श्रेष्ठ गिरिराज हिमवान्ने जगत्‌के एकमात्र बन्दु भगवान् शिवसे इस प्रकार कहा ।

**हिमालय बोले—देवदेव ! महादेव ! करुणाकर ! शंकर ! विमो !** मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आँखें खोलकर मेरी ओर देखिये । शिव ! शर्व ! महेश्वान ! जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो ! महादेव ! आप सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । स्वामिन् ! प्रभो ! मैं अपनी इस पुत्रीके साथ प्रतिदिन आपका दर्शन करनेके लिये आऊँगा । इसके लिये आदेश दीजिये ।

उनकी यह बात सुनकर देवदेव महेश्वरने आँखें खोलकर ध्यान छोड़ दिया और कुछ सोच-विचारकर कहा ।

**महेश्वर बोले—गिरिराज !** तुम अपनी इस कुमारी कन्याको धरमें रखकर ही नित्य मेरे दर्शनको आ सकते हो, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं हो सकता ।

महेश्वरकी ऐसी बात सुनकर शिवके पिता हिमवान् मस्तक छुकाकर उन भगवान् शिवसे घोले—‘प्रभो ! यह तो बताइये, किस कारणसे मैं इस कन्याके साथ आपके दर्शनके लिये नहीं आ सकता । क्या यह आपकी सेवाके योग्य नहीं है ? किस

इसे नहीं लानेका क्या कारण है, यह मेरी समझमें नहीं आता।’

यह सुनकर भगवान् वृषभधन शम्भु हँसने लो द्दे विशेषतः दुष्ट योगियोंको लोकाचारका दर्शन करते हुए वे हिमालयसे बोले—‘शैलराज ! यह कुमारी सुन्दर कथितके मुशोभित, तन्वद्वी, चन्द्रमुखी और शुभ लक्षणसे सम्पन्न है । इसलिये इसे मेरे समीप तुम्हें नहीं लाना चाहिये । इसके मैं तुम्हें चारंवार रोकता हूँ । वेदके पारंगत विद्वान्मै न मायारूपिणी कहा है । विशेषतः युवती ली तो तपसी तपमें विघ्न डालनेवाली ही होती है । गिरिश्रेष्ठ ! मैं ज्ञ योगी और सदा मायासे निलिप्त रहनेवाला हूँ । मुझे उस्सीसे क्या प्रयोजन है ? तपस्वियोंके श्रेष्ठ आश्रय हिमाल इसलिये फिर तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि वेदोक्त धर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विद्वान् । अचलराज ! खीके सङ्गसे मनमें शीम ही विषयवाला रह ही जाती है । उससे वैराग्य नष्ट होता है और वैराग्य न हो पुरुष उत्तम तपस्यासे भ्रष्ट हो जाता है । इसलिये उस तपस्वीको सङ्ग नहीं करना चाहिये; क्योंकि



शिवपय-वासनाकी जड़ एवं ज्ञान-वैराग्यका विनाश करनेवाली ही है । ॥

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस तरहकी बहुत-सी बातें हकर महायोगिशिरोमणि भगवान् महेश्वर चुप हो गये । ये ! शम्भुका यह निरामय, निःस्थृत और निष्ठुर बचन

सुनकर कालीके पिता हिमवान् चकित, कुछ-कुछ व्याकुल और चुप हो गये । तपस्वी शिवकी कही हुई बात सुनकर और गिरिराज हिमवान्को चकित हुआ जानकर भवानी पार्वती उस समय भैगवान् शिवको प्रणाम करके विशद बचन बोली ।

( अध्याय १२ )

## पार्वती और शिवका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना तथा पार्वतीद्वारा भगवान्की प्रतिदिन सेवा

भवानीने कहा—योगिन् ! आपने तपस्वी होकर गिरि-जसे यह क्या बात कह डाली । प्रभो ! आप ज्ञानविशारद हैं, । भी अपनी बातका उत्तर मुझसे सुनिये । शम्भो ! आप पश्चात्स्त्वसे सम्बन्ध होकर ही बड़ा भारी तप करते हैं । उस तक्तिके कारण ही आप महात्माको तपस्या करनेका विचार द्या है । सभी कर्मोंको करनेकी जो वह शक्ति है, उसे ही कृति जानना चाहिये । प्रकृतिसे ही सबकी सृष्टि, पालन और दंहर होते हैं । भगवन् ! आप कौन हैं ? और सूक्ष्म प्रकृति या है ? इसका विचार कीजिये । प्रकृतिके बिना लिङ्गरूपी हेश्वर कैसे हो सकते हैं ? आप सदा प्राणियोंके लिये जो पर्वतीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं, वह प्रकृतिके ही कारण है । इस बातको दृढ़यसे विचारकर ही आपको जो कहना हो, वह सब कहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीजीके इस बचनको सुनकर महती लीला करनेमें लो हुए प्रसन्नचित्त महेश्वर हैंसे हुए बोले ।

महेश्वरने कहा—मैं उत्कृष्ट तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाश करता हूँ और तत्त्वतः प्रकृतिरहित शम्भुके रूपमें स्थित होता हूँ । अतः सत्पुरुषोंको कभी या कहीं प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये । लोकाचारसे दूर एवं निर्विकार रहना चाहिये ।

नारद ! जब शम्भुने लौकिक व्यवहारके अनुसार यह शरण कही, तब काली मन-ही-मन हृसकर मधुर वाणीमें बोली ।

कालीने कहा—कल्याणकारी प्रभो ! योगिन् ! आपने जो बात कही है, क्या वह वाणी प्रकृति नहीं है ? फिर आप

उससे परे क्यों नहीं हो गये ? ( क्यों प्रकृतिका सहारा लेकर बोलने लगे ? ) इन सब बातोंको विचार करके तात्त्विक दृष्टिसे जो यथार्थ बात हो, उसीको कहना चाहिये । यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है । इसलिये आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना—सब व्यवहार प्राकृत ही है । आप अपनी बुद्धिसे इसको समझिये । आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है । शूठे वाद-विवाद करना व्यर्थ है । प्रभो ! शम्भो ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किसलिये करते हैं ? हर ! प्रकृतिने आपको निगल लिया है । अतः आप अपने स्वल्पको नहीं जानते । ईश ! आप यदि अपने स्वल्पको जानते हैं तो किस लिये तप करते हैं ? योगिन् ! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है ? प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर विद्वान् पुरुष अनुमान प्रमाणको नहीं मानते । जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये । योगीश्वर ! बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मेरी उत्तम बात सुनिये । मैं प्रकृति हूँ । आप पुरुष हैं । यह सत्य है, सत्य है । इसमें संशय नहीं है । मेरे अनुग्रहसे ही आप सुरुण एवं साकार माने गये हैं । मेरे बिना तो आप निरीह हैं । कुछ भी नहीं कर सकते हैं । आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो सदा नाना प्रकारके कर्म करते रहते हैं । फिर निर्विकार कैसे है ? और मुझसे लिस कैसे नहीं ? शंकर ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका यह कथन सत्य है तो आपको मेरे समीप रहनेपर भी डरना नहीं चाहिये ।

\* भद्रत्यपल तत्त्वज्ञान विप्रयोत्पत्तिरात्म वै ।  
नवतत्पत्तिरित्वा शैल च वाणी लोपु संगतिः । नहाविप्रयनूलं

विनद्यति च वैराग्यं ततो भ्रद्यति सत्त्वः ॥  
सा शानवैराग्यनाशिनी ॥

ब्रह्माजी कहते हैं—पार्वतीका यह सांख्यशास्त्रके अनुसार कहा हुआ वचन सुनकर भगवान् शिव वेदान्तमतमें स्थित हो उनसे थों थोले ।

श्रीशिवने कहा—सुन्दर भाषण करनेवाली गिरिजे ! यदि तुम सांख्य मतको धारण करके ऐसी वात कहती हो तो प्रतिदिन मेरी सेवा करो; परंतु वह सेवा शास्त्रनिपिद्ध नहीं होनी चाहिये ।

गिरिजासे ऐसा कहकर भक्तोंपर अनुग्रह और उनका मनोरक्षण करनेवाले भगवान् शिव हिमवान्से थोले ।

शिवने कहा—गिरिराज ! मैं यहीं तुम्हारे अत्यन्त रमणीय श्रेष्ठ शिखरकी भूमिपर उत्तम तपस्या तथा अपने आनन्दमय परमार्थस्वरूपका विचार करता हुआ विचर्लँगा । पर्वतराज ! आप मुझे यहाँ तपस्या करनेकी अनुमति दें । आपकी अनुज्ञाके बिना कोई तप नहीं किया जा सकता ।

देवाधिदेव शूलधारी भगवान् शिवका यह कथन सुनकर हिमवान्से उन्हें प्रणाम करके कहा—‘महादेव ! देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् तो आपका ही है । मैं तुम्हें होकर आपसे क्या कहूँ ?’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! गिरिराज हिमवान्से ऐसा कहनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकर हँस पड़े और आदरपूर्वक उनसे थोले—‘अब तुम जाओ ।’ शंकरकी आज्ञा पाकर हिमवान् अपने घर लौट गये । वे गिरिजाके साथ प्रतिदिन उनके दर्शनके लिये आते थे । काली अपने पिताके बिना भी दोनों सखियोंके साथ नित्य शंकरजीके पास जातीं और भक्तिपूर्वक उनकी सेवामें लगी रहतीं । नन्दीश्वर आदि कोई भी गण उन्हें रोकता नहीं था । तात ! महेश्वरके आदेशसे ही ऐसा होता था । प्रत्येक गण पवित्रतापूर्वक रहकर उनकी आज्ञाका पालन करता था । जो विचार करनेसे परस्पर अभिन्न सिद्ध होते हैं, उन्हीं शिवा और शिवने सांख्य और वेदान्तमतमें स्थित हो जो कल्याणदायक संवाद किया, वह सर्वदा सुख देनेवाला है । वह संवाद मैंने यहाँ कह सुनाया । इन्द्रियातीत भगवान् शंकरने गिरिराजके कहनेसे उनका गौरव मानकर उनकी पुत्रीको अपने पास रहकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया ।

काली अपनी दो सखियोंके साथ चन्द्रशेखर

महादेवजीकी सेवाके लिये प्रतिदिन आती-जाती रहती थीं । भगवान् शंकरके चरण धोकर उस चरणामृतका पान करती थीं । आगसे तपाकर शुद्ध किये हुए वस्त्रसे ( अथवा पर जलसे धोये हुए वस्त्रके द्वारा ) उनके शरीरका मर्जन शर्क उसे मलती-पांछती थीं । किर सौलह उपचारोंसे विकिर हरकी पूजा करके धारंवार उनके चरणोंमें प्रणाम करनेके पश्च प्रतिदिन पिताके घर लौट जाती रहतीं । मुनिश्रेष्ठ ! इस ग्रन्थानपरायण शंकरकी सेवामें लगी हुई शिवाका महान् एवं व्यतीत हो गया, तो भी वे अपनी इन्द्रियोंको संबंधमें ख पूर्ववत् उनकी सेवा करती रहतीं । महादेवजीने जब फ्रिद अपनी सेवामें निला तत्त्व देखा, तब वे दयासे द्रवित होः और इस प्रकार विचार करने लगे—‘यह काली जब तपश्च व्रत करेगी और इसमें गर्वका वीज नहीं रह जायगा, तर्म इसका पाणिग्रहण करूँगा ।’

ऐसा विचार करके महालीला करनेवाले महायोगी भगवान् भूतनाथ तत्काल ध्यानमें स्थित हो गये । मूँ परमात्मा शिव जब ध्यानमें लग गये, तब उनके हृदयमें दृ कोई चिन्ता नहीं रह गयी । काली प्रतिदिन महात्मा यि रूपका निरन्तर चिन्तन करती हुई उत्तम भक्तिभावसे ऊ सेवामें लगी रही । ध्यानपरायण भगवान् हर शुद्ध म वहाँ रहती हुई कालीको नित्य देखते थे । फ्रिद पूर्व चिन्ताको भुलाकर उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते ।

इसी वीचमें इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने ब्रह्म आज्ञासे कामदेवको वहाँ आदरपूर्वक भेजा । वे कामकी प्रेर कालीका रुद्रके साथ संयोग कराना चाहते थे । उनके करनेमें कारण यह था कि महापराक्रमी तारकामुरसे वे व पीड़ित थे ( और शंकरजीसे किसी महान् वल्लभ फु उत्पत्ति चाहते थे ) । कामदेवने वहाँ पहुँचकर अपने उपायोंका प्रयोग किया । परंतु महादेवजीके मनमें तनिं श्वोभ नहीं हुआ । उल्टे उन्होंने कामदेवको जलाकर भस दिया । मुने ! तब सती पार्वतीने भी गर्वहित हो ऊ आज्ञासे बहुत बड़ी तपस्या करके शिवको पतिलम्बे उ किया । फिर वे पार्वती और परमेश्वर परस्पर अत्यन्त और प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे । उन दोनोंने परोपकारमें रहकर देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया । ( अथाय १ )

तारकासुरसे सताये हुए देवताओंका ब्रह्माजीको अपनी कष्टकथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन्हें पार्वतीके साथ शिवके विवाहके लिये उद्योग करनेका आदेश देना, ब्रह्माजीके समझानेसे तारकासुरका स्वर्गको छोड़ना और देवताओंका वहाँ रहकर लक्ष्यसिद्धिके लिये यत्नशील होना।

सूरजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर पार्वतीके विवाहके विस्तृत प्रसङ्गको उपस्थित करते हुए ब्रह्माजीने तारकासुरकी उत्पत्ति, उसके उग्र तप, मनोवाञ्छित वरप्राप्ति तथा देवता और अमुर—सबको जीतकर स्वयं इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हो जानेकी कथा सुनायी।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—तारकासुर तीनों लोकोंको अपने वशमें करके जब स्वयं इन्द्र हो गया, तब उसके समान दूसरा कोई शासक नहीं रह गया। वह जितेन्द्रिय अमुर भिमुक्तनका एकमात्र त्वामी होकर अद्भुत ढंगसे राज्यका संचालन करने लगा। उसने संमस्त देवताओंको निकालकर उनकी जगह दैत्योंको स्थापित कर दिया और विद्याधर आदि देवयोनियोंको स्वयं अपने कर्ममें लगाया। मुने! तदनन्तर तारकासुरके सताये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अत्यन्त व्यकुल और अनाय होकर मेरी शरणमें आये। उन सबने सुझ प्रजापतिको प्रणाम करके बड़ी भक्तिसे मेरा स्तवन किया और अपने दारुण दुखकी वातें बताकर कहा—प्रभो! आप ही हमारी गति हैं। आप ही हमें कर्तव्यका उपदेश देनेवाले हैं और आप ही हमारे धाता एवं उद्धरक हैं। हम सब देवता तारकासुर नामक अमिमें जलकर अत्यन्त व्यकुल हो रहे हैं। इसे संनिपात रोगमें प्रवल औषधें भी निर्बल हो जाती हैं, उन्ती प्रकार उस अमुरने हमारे सभी बूर उपायोंको बलहीन बना दिया है। भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रपर ही हमारी विजय की आशा अवलम्बित रहती है। परंतु वह भी उसके कण्ठपर उपिष्ठ हो गया। उसके गलेमें पड़कर वह ऐसा प्रतीत होने लगा या, मानो उस अमुरको फूलकी माला पहनायी गयी हो।

मुने! देवताओंका वह कथन सुनकर मैंने उन सबसे मध्योक्ति वात कही—देवताओं! मेरे ही वरदानते देवता तारकासुर इतना बढ़ गया है। अतः मेरे हाथों ही उसका वध होना उचित नहीं। जो जिससे पलकर बढ़ा हो, उसका उसीके लिये वध होना योग्य कार्य नहीं है। विष्णुके दृष्टको भी यदि लक्ष्य चौक्तवर बढ़ा दिया गया हो तो उत्ते स्वयं काटना बहुतुचित माना गया है। मुमलोंका तारा कार्य करनेके योग्य अंगरेज रहते हैं। चिन्ह वे तुम्हारे कहनेपर भी स्वयं उन-

अमुरका सामना नहीं कर सकते। तारक दैत्य स्वयं अपने पापसे नष्ट होगा। मैं जैसा उपदेश करता हूँ, तुम वैसा कार्य करो। मेरे वरके प्रभावसे न मैं तारकासुरका वध कर सकता हूँ, न भगवान् विष्णु कर सकते हैं और न भगवान् शंकर ही उसका वध कर सकते हैं। दूसरा कोई वीर मुरुष अथवा सारे देवता मिलकर भी उसे नहीं मार सकते, यह मैं सत्य कहता हूँ। देवताओं! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो तो वही तारक दैत्यका वध कर सकता है, दूसरा नहीं। सुरश्रेष्ठगण! इसके लिये जो उपाय मैं बताता हूँ, उसे करो। महादेवजीकी कृपासे वह उपाय अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकालमें जिस दक्षकन्या सतीने दक्षके यज्ञमें अपने शरीरको त्याग दिया था, वही इस समय हिमालयपती मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुई है। यह बात तुम्हें भी विदित ही है। महादेवजी उस कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि देवताओं! तुम स्वयं भी इसके लिये प्रयत्न करो। तुम अपने यज्ञसे ऐसा उद्योग करो, जिससे मेनकाकुमारी पार्वतीमें भगवान् शंकर अपने वीर्यका आधान कर सकें। भगवान् शंकर ऊर्ध्वरेता हैं (उनका वीर्य ऊपरकी ओर उठा हुआ है)। उनके वीर्यको प्रस्तुतिकरनेमें केवल पार्वती ही समर्थ हैं। दूसरी कोई अवला अपनी शक्तिसे ऐसा नहीं कर सकती। गिरिराजकी पुत्री वे पार्वती इस समय युद्धावस्थामें प्रवेश कर चुकी हैं और हिमालयपर तपस्यामें लगे हुए महादेवजीकी प्रतिदिन सेवा करती हैं। अपने पिता हिमवानके कहनेसे काली शिवा अपनी दो सतियोंके साथ ध्यानपरायण परमेश्वर शिवकी साग्रह सेवा करती हैं। तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी पार्वती शिवके तामने रहकर प्रतिदिन उनकी पूजा करती हैं, तथापि वे ध्यानमग्न महेश्वर मनसे भी ध्यानहीन स्थितिमें नहीं आते। अर्थात् ध्यान भङ्ग करके पार्वतीकी ओर देखनेका विचार भी मनमें नहीं लाते। देवताओं! चन्द्रशेखर शिव जिस प्रकार कालीको अपनी भार्या बनानेकी इच्छा करें, वैसी चैषा तुमलोग शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक करो। मैं उस देवते स्वानपर जाकर तारकासुरको बुरे हड्डेसे इटानेकी चैषा करूँगा। अतः अब तुमलोग अपने स्वानको जाओ।

नारद! देवताओंसे ऐसा कहकर मैं शीम ही तारकासुरसे मिला और वडे प्रेमसे दुलक्षण नीने उड़ते इस प्रकार कहा—

तारक ! यह स्वर्ग हमारे तेजका सारतत्त्व है। परंतु तुम यहाँके राज्यका पालन कर रहे हो। जिसके लिये तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे अधिक चाहने लगे हो। मैंने तुम्हें इससे छोटा ही वर दिया था। स्वर्गका राज्य कदापि नहीं दिया था। इसलिये तुम स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर राज्य करो। असुरश्रेष्ठ ! देवताओंके योग्य जितने भी कार्य है, वे सब तुम्हें वहीं सुलभ होंगे। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।<sup>१</sup>

ऐसा कहकर उस असुरको समझानेके बाद मैं शिवा और शिवका स्मरण करके वहाँसे अदृश्य हो गया। तारकासुर भी

स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर आ गया और शोणितपुरमें दूर वह राज्य करने लगा। फिर सब देवता भी मेरी बात मुझ मुझे प्रणाम करके इन्द्रके साथ प्रसन्नतापूर्वक वड़ी सावधानीके सूर इन्द्रलोकमें गये। वहाँ जाकर परस्पर मिलकर आपसमें लड़ करके वे सब देवता इन्द्रसे प्रेमपूर्वक बोले—‘भगवन् ! किंवद्धि विवाहमें जैसे भी काममूलक रुचि हो, वैसा ब्रह्माजीव द्वय दुया सारा प्रयत्न आपको करना चाहिये।’

इस प्रकार देवराज इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन द्वारा देवता प्रसन्नतापूर्वक सब और अपने अपने स्वामीर बोले।

( अध्याय १४—१ )

### इन्द्रद्वारा कामका स्मरण, उसके साथ उनकी वातचीत तथा उनके कहनेसे कामका शिवको मोहनेके लिये प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! देवताओंके चले जानेपर दुर्घट्या तारक दैत्यसे पीड़ित हुए इन्द्रने कामदेवका स्मरण किया। कामदेव तत्काल वहाँ आ पहुँचा। तब इन्द्रने मित्रताका धर्म बतलाते हुए कामसे कहा—‘मित्र ! कालवशात् मुझपर असाध्य दुःख आ पड़ा है। उसे तुम्हारे बिना कोई भी दूर नहीं कर सकता। दाताकी परीक्षा दुर्भिक्षमें, शूरवीरकी परीक्षा रणभूमिमें, मित्रकी परीक्षा आपत्तिकालमें तथा स्त्रियोंके कुलकी परीक्षा पतिके असमर्थ हो जानेपर होती है। तात ! संकट पड़नेपर विनयकी परीक्षा होती है और परोक्षमें सत्य एवं उत्तम स्नेहकी, अन्यथा नहीं। यह मैंने सच्ची बात कही है॥। मित्रवर ! इस समय मुझपर जो विपत्ति आयी है, उसका निवारण दूसरे किसीसे नहीं हो सकता। अतः आज तुम्हारी परीक्षा हो जायगी। यह कार्य केवल मेरा ही है और मुझे ही सुख देनेवाला है, ऐसी बात नहीं। अपितु यह समस्त देवता आदिका कार्य है, इसमें संशय नहीं है।’

इन्द्रकी यह बात सुनकर कामदेव मुस्कराया और प्रेमपूर्ण गम्भीर वाणीमें बोला।

\* दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे एवे शूरस्य जाथते ।

आपल्काले तु मित्रसाशक्तौ ल्लीणां कुलस्य हि ॥

विनतेः संकटे प्राप्तेऽवित्थस्य परोक्षतः ।

सुखेहस्य तथा तत नन्यथा सत्यमीरितम् ॥

( शिं० पु० रु० सं० पा० खं० १७ । १२-१३ )



कामने कहा—देवराज ! आप ऐसी बात करों हैं ! मैं अपको उत्तर नहीं दे रहा हूँ ( आवश्यक निवेदन कर रहा हूँ )। लोकमें कौन उपकारी मित्र है और बनावटी—यह स्वयं देखनेकी वस्तु है, कहनेकी नहीं। संकटके समय बहुत बातें करता है, वह काम क्या करें

तथापि महाराज ! प्रभो ! मैं कुछ कहता हूँ, उसे मुनिये । मित्र ! जो आपके इन्द्रपदको छीननेके लिये दाश्ण तपस्या कर रहा है, आपके उस शत्रुको मैं सर्वथा तपस्यासे भ्रष्ट कर दूँगा । जो काम जिससे पूरा हो सके, बुद्धिमान् पुरुष उसे उसी काममें लगाये । मेरे योग्य जो कार्य हो, वह सब आप मेरे जिम्मे कीजिये ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**कामदेवका यह कथन सुनकर इन्द्र वडे प्रसन्न हुए । वे कामिनियोंको सुख देनेवाले कामको प्रणाम करके उससे इस प्रकार बोले ।

इन्द्रने कहा—तात ! मनोभव ! मैंने अपने मनमें जिस कार्यको पूर्ण करनेका उद्देश्य रखा है, उसे सिद्ध करनेमें केवल तुम्हीं समर्थ हो । दूसरे किंगीसे उस कार्यका होना सम्भव नहीं है । मित्रवर ! मनोभव काम ! जिसके लिये आज तुम्हारे सहयोगकी अपेक्षा हुई है, उसे टीक-ठीक बता रहा हूँ; सुनो । तारक नामसे प्रसिद्ध जो महान् दैत्य है, वह ग्रहाजीका अद्भुत वर पाकर अजेय हो गया है और सभीको दुःख दे रहा है । वह सारे संसारको पीड़ा दे रहा है । उसके शारा चारंचार धर्मका नाश हुआ है । उससे सब देवता और तमस्त शृणि दुखी हुए हैं । सम्पूर्ण देवताओंने पहले उसके जग्थ धार्मी पूरी शक्ति लगाकर शुद्ध किया था; परंतु उसके ऊपर सबके अल्प-शत्रु निष्फल हो गये । जलके स्वामी वरुण-ग पाश टूट गया । श्रीहरिका सुर्यनन्दक भी वहाँ सफल रही हुआ । श्रीविष्णुने उसके कण्ठपर चक्र चलाया, किन्तु

वह वहाँ कुण्ठित हो गया । ब्रह्माजीने महायोगीश्वर भगवान् शम्भुके वीर्यसे उत्पन्न हुए वालके हाथसे इस दुरात्मा दैत्यकी मृत्यु बतायी है । यह कार्य तुम्हें अच्छी तरह और प्रयत्न-पूर्वक करना है । मित्रवर ! उसके हो जानेसे हम देवताओंको बड़ा सुख मिलेगा । भगवान् शम्भु गिरिराज हिमालयपर उत्तम तपस्यामें लगे हैं । वे हमारे भी प्रभु हैं, कामनाके बद्यमें नहीं हैं, स्वतन्त्र परमेश्वर हैं । मैंने सुना है कि गिरिराज-नन्दिनी पार्वती पिताकी आज्ञा पाकर अपनी दो सखियोंके साथ उनके समीप रहकर उनकी सेवामें रहती हैं । उनका यह प्रयत्न महादेवजीको पतिल्पमें प्राप्त करनेके लिये ही है । परंतु भगवान् शिव अपने मनको संयम-नियमसे बद्यमें रखते हैं । मार ! जिस तरह भी उनकी पार्वतीमें अत्यन्त रुचि हो जाय, तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये । यही कार्य करके तुम कृतार्थ हो जाओगे और हमारा सारा दुःख नष्ट हो जायगा । इतना ही नहीं, लोकमें तुम्हारा स्थायी प्रताप फैल जायगा ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेवका मुख्यारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा । उसने देवराज-से प्रेमपूर्वक कहा—‘मैं इस कार्यको करूँगा । इसमें संशय नहीं है ।’ ऐसा कहकर शिवकी मायसे मोहित हुए कामने उस कार्यके लिये स्त्रीकृति दे दी और शीघ्र ही उसका भार ले लिया । वह अपनी पत्नी रति और वसन्तको साथ ले वड़ी प्रसन्नताके साथ उस स्थानपर गया, जहाँ साक्षात् योगीश्वर शिव उत्तम तपस्या कर रहे थे । ( अध्याय १७ )

### रुद्रकी नेत्रामिसे कामका भस्स होना, रतिका विलाप, देवताओंकी प्रार्थनासे शिवका कामको द्वापरमें प्रद्युम्नरूपसे नूतन शरीरकी प्राप्तिके लिये वर देना और रतिका शम्वरनगरमें जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! काम अपने साथी वसन्त प्रादिन्ते लेकर वहाँ पहुँचा । उसने भगवान् शिवपर अपने साप चलाये । तब शंकरजीके मनमें पार्वतीके प्रति अकर्पण होने लगा और उनका धैर्य दूटने लगा । अपने धैर्यका हास लौटा देस महायोगी महेश्वर अत्यन्त विसित हो मन-ही-मन ले प्रकार चित्तम बदले लगे ।

शिव योगे—मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें क्यों है आ गये ? किन कुकर्माने वहाँ मेरे चित्तमें विकार पैदा किया ?

एवं नारद रिचार करके सत्पुरुषोंके आश्रवदाता महायोगी क्षमेश्वर द्विर लहानुक हो चम्पूर्ण दिव्याओंकी ओर देवताने

लगे । इसी समय वामभागमें वाण खोने लड़े हुए कामपर उनकी दृष्टि पड़ी । वह नृद्वन्द्वि मदन अपनी शक्तिके घमंडमें शंकर पुनः अपना वाण छोड़ना ही चाहता था । नारद ! एस अवस्थामें कामपर दृष्टि पड़ते ही परमात्मा गिरीशको नक्काल रोप चढ़ आया । मुने ! उधर आकाशमें वाणसहित धनुष लिये लड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना धमोव अल्प छोड़ दिया, जिसका निशारण करना बहुन चाहिन था । परंतु परमात्मा शिवपर वह अमोव अल्प भी नोच ( अर्ध ) हो गया; दुमित हुए प्रसेश्वरके पास जाते ही शम्भु तो नया । भगवान् शिवपर अपने अल्प अर्ध हो जानेर समय ( जास ) दो बड़ा भव दुआ । भगवान् शम्भुद्वयको सामने देखतर दूर

कौप उठा और इन्द्र आदि समस्त देवताओंवा स्वरण करने लगा । मुनिश्वेष्ठ ! अपना प्रशास निकल हो जानेपर काम भयसे व्याकुल हो उठा था । मुनीश्वर ! कामदेवके स्वरण करने पर वे इन्द्र आदि सब देवता वहाँ आ पहुँचे और शम्भुको प्रणाम करके उनकी स्फुटि करने लगे ।

देवता स्फुटि कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् द्वारके ललाटके मध्यभागमें स्थित तृतीय नेत्रसे बड़ी भारी आग तत्काल प्रकट होकर निकली । उसकी ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं । वह आग धू-धू करके जलने लगी । उसकी प्रभा प्रलयामिके समान जान पड़ती थी । वह आग तुरंत ही ध्याकाशमें उछली और पृथ्वीपर गिर पड़ी । फिर अपने चारों ओर चक्रर काटती हुई धराशायिनी हो गयी । सातो ! 'भगवन् ! धमा कीजिये, धमा कीजिये' यह बात जवतक



देवताओंके मुखसे निकले, तबतक ही उस आगने कामदेवको जल्दीकर भस्म कर दिया । उस दीर कामदेवके मारे जानेपर देवताओंको बड़ा दुःख हुआ । वे व्याकुल हो 'हाय ! यह क्या हुआ ?' ऐसा कह-कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए रोने-विलोकने लगे ।

उस समय विकृतचित्त हुई पार्वतीका सारा शरीर सफेद पड़ गया—काटो तो खूब नहीं । वे सखियोंको साथ ले अपने भवनको चली गयीं । कामदेवके जल जानेपर रति वहाँ एक क्षणतक अचेत पड़ी रही । पतिकी मृत्युके दुःखसे वह इस तरह पड़ी थी, मानो मर गयी हो । थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब अत्यन्त व्याकुल हो रति उस समय तरह-तरहकी वार्ते कह-कर विलाप करने लगी ।

रति बोली—हाय ! मैं क्या करूँ ? कहाँ लाँ ? देवताओंने यह क्या किया ? मेरे उद्दण्ड स्वामीको बुझ नष्ट करा दिया । हाय ! हाय ! नाथ ! सर ! स्वामि ! प्राणघ्रिय ! हा गुड़ी तुल देनेवाले प्रियतम ! हा ग्राहक ! यह यहाँ क्या हो गया ?

ब्रह्माजी कहते हैं—तारद ! इस प्रकार रोती, किञ्चिं और अनेक प्रकारकी वार्ते कहती हुई रति हाथ-पैर पकड़े और अपने तिरके बालोंको नोचने लगी । उसके उम्रका विलाप सुनकर वहाँ रहनेवाले समस्त बनवारी तथा ब्रुक्ष आदि स्वावर प्राणी भी बहुत दुखी हो गये । वीचमें इन्द्र आदि समृद्धि देवता महादेवजीका सरण हुए रतिको आश्रामन दे इस प्रकार बोले ।

देवताओंने कहा—तुम कामके शरीरका थोड़ा भस्म लेकर उसे यत्पूर्वक रक्खो और छोड़ो । हम सबके स्वामी महादेवजी कामदे पुनः जीवित कर देंगे और तुम मिर प्रियतमको प्राप्त कर लोगी । कोई किञ्चिं तो सुख देनेवाला है और न कोई हुख देनेवाला है । सब लोग अपनी-अपनी इस फल भोगते हैं । तुम देवताओंको दो वे व्यर्थ ही दोक करती हो ।

इस प्रकार रतिको आश्रामन दे देवता भगवन् शिवके पास आये । उन्हें भक्तिभवसे प्रसन्न करके यों बोले ।

देवताओंने कहा—भगवन् ! शरणागतवत्सल महेश आप कृपा करके हमारे इस द्युम वचनको सुनिये । शंक आप कामदेवकी करतूलपर भलीभाँति प्रसन्नतापूर्वक तिन कीजिये । महेश्वर ! कामने जो यह कार्य किया है, उसका कोई स्वार्थ नहीं था । दुष्ट तारकासुरसे पीड़ित हुए हम सब देवताओंने मिलकर उससे यह काम कराया है नाथ ! शंकर ! इसे आप अन्यथा न समझें । सब कुछ देवाले देव ! गिरीश ! सती-साध्वी रति अकेली अति दुखी हो विलाप कर रही है । आप उसे सान्त्वना प्रदान करें । शंक यदि इस कोधके द्वारा आपने कामदेवको मर डाला । हम यही समझेंगे कि आप देवताओंसहित समस्त प्राणियों अभी संहार कर डालना चाहते हैं । रतिका दुःख देख

देवता नष्टप्राय हो रहे हैं; इसलिये आपको रतिका शोक दूर कर देना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! समूर्ण देवताओंका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उनसे इस प्रकार बोले ।

शिवने कहा—देवताओं और ऋषियो ! तुम सब आदरपूर्वक मेरी वात सुनो। मेरे क्रोधसे जो कुछ हो गया है, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रतिका शक्ति-शाली पति कामदेव तभीतक अनङ्ग (शरीररहित) रहेगा, जबतक रुक्मिणीपति श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता। जब श्रीकृष्ण द्वारकामें रहकर पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे, तब वे रुक्मिणीके गर्भसे कामको भी जन्म देंगे। उस कामका ही नाम उस समय 'प्रयुम्न' होगा—इसमें संशय नहीं है। उस पुत्रके जन्म लेते ही शम्भरासुर उसे हर लेगा। हरणके पश्चात् दानवदियोरोमणि शम्भर उस शिशुको समुद्रमें डाल देगा। फिर वह भूहू उसे मरा हुआ समझकर अपने नगरको लैट जायगा। रते ! उस समयतक तुम्हें शम्भरासुरके नगरमें युखपूर्वक निवास करना चाहिये। वहाँ तुम्हें अपने पति प्रयुम्नकी प्राप्ति होगी। वहाँ तुमसे मिलकर काम युद्धमें शम्भरासुरका वध करेगा और मुखी होगा। देवताओं ! प्रयुम्न-नामधारी काम अपनी कामिनी रतिकी तथा शम्भरासुरके

धनको लेकर उसके साथ पुनः नगरमें जायगा। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शिवकी यह वात सुनकर देवताओंके चित्तमें कुछ उद्घास हुआ और वे उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ विनीतभावसे बोले ।

देवताओंने कहा—देवदेव ! महादेव ! करुणासागर ! प्रभो ! आप कामदेवको शीघ्र जीवन-दान दें तथा रतिके प्राणोंकी रक्षा करें।

देवताओंकी यह वात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव पुनः प्रसन्न होकर बोले—‘देवताओं ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं कामको सबके हृदयमें जीवित कर दूँगा। वह सदा मेरा गण होकर विहर करेगा। अब अपने स्थानको जाओ। मैं तुम्हारे हुँखका सर्वथा नाश करूँगा।’

ऐसा कहकर रुद्रदेव उस समय सुनिति करनेवाले देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। देवताओंका विस्मय दूर हो गया और वे सबके-सब प्रसन्न हो गये। मुने ! तदनन्तर रुद्रकी वातपर भरोसा करके स्थिर रहनेवाले देवता रतिको उनका कथन सुनाकर आश्चासन दे अरने-अपने स्थानको चले गये। मुनीश्वर ! कामपत्नी रति शिवके वताये हुए शम्भरासुरको चली गयी तथा रुद्रदेवने जो समय बताया था, उसकी प्रतीक्षा करने लगी।

( अध्याय १८-१९ )

**ब्रह्माजीका शिवकी क्रोधाभिन्निको वडवानलकी संज्ञा दे समुद्रमें स्थापित करके संसारके भयको दूर करना, शिवके विरहसे पार्वतीका शोक तथा नारदजीके द्वारा उन्हें तपस्याके लिये उपदेशपूर्वक पञ्चाश्वर मन्त्रकी प्राप्ति**

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब भगवान् रुद्रके तीसरे नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको शीघ्र जलाकर भस्म कर दिया, तब वह विना किसी प्रश्नेजनके ही प्रज्वलित हो सब थोर फैलने लगी। इससे चरचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें गराम-शुद्धाशार मच गया। तात ! समूर्ण देवता और प्रभुपि तुरत भरी शरणमें आये। उन सबने अल्पन्त व्याकुल होकर मलक छुंसा दोनों हाथ जोड़ मुखे प्रणाम किया और मंथि सुनि परके वह हुँख निवेदन किया। वह भुमकर में अग्नाय विद्या सम्म दरके उम्हे ऐक्य कलीमांति विचार-पूर तीनों लोकोंदी रक्षाएँ लिये विनीतभावसे वहाँ पहुँचा। अपूर्व विन उत्तमामात्रारेति अल्पन्त उदीप हो उगम्हको जला हुआ

देनेके लिये उथत थी। परंतु भगवान् शिवकी कृपासे प्राप्त हुए उत्तम तेजके द्वारा मैंने उसे तत्काल सम्भित कर दिया। मुने ! चिलोकीको दम्भ करनेकी इच्छा रखनेवाली उस क्रोधमय अग्निको मैंने एक ऐसे घोड़ेके स्वरमें परिणत कर दिया, जिसके मुखसे सौम्य ज्वाला प्रकट हो रही थी। भगवान् शिवकी इच्छासे उस घाड़व-शरीर (धोड़े) वाली अग्निको लेकर मैं लोकहितके लिये समुद्रतटपर गया। मुने ! दुसे आदा देवत समुद्र एक दिव्य पुरुषका हर धरण करके हाथ जोड़े हुए भेरे पास आया। मुस नन्दूर्ग लोकोंके रितामहात्मी भद्री-गौति विधिवत् स्तुनिकन्द्रना करके सिन्दुरं सुदूरं प्रसदना-पूर्वक कहा।

सागर बोला—सर्वेश्वर व्रह्मन् ! आप यहाँ किसलिये पधारे हैं ? मुझे अपना सेवक समझकर इस बातको प्रीति-पूर्वक कहिये ।



सागरकी बात सुनकर भगवान् शंकरका स्परण करके लोकहितका ध्यान रखते हुए मैंने उससे प्रसन्नतपूर्वक कहा—  
‘तात समुद्र ! तुम वडे बुद्धिमान् और सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी हो । मैं शिवकी इच्छासे प्रेरित हो हार्दिक प्रीतिपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ । यह भगवान् महेश्वरका क्रोध है, जो महान् शक्तिशाली अश्वके रूपमें यहाँ उपस्थित है । यह कामदेवको दर्घ करके तुरंत ही सम्पूर्ण जगत्को भस्म करनेके लिये उद्यत हो गया था । यह देख पीड़ित हुए देवताओंकी प्रार्थनासे मैं शंकरेच्छावश वहाँ गया और इस अग्निको स्तम्भित किया । फिर इसने धोड़ेका रूप धारण किया और इसे लेकर मैं यहाँ आया । जलाधार ! मैं जगत्पर दया करके तुम्हें यह आदेश दे रहा हूँ—इस महेश्वरके क्रोधको, जो वाङ्मयका रूप धारण करके मुखसे ज्वला प्रकट करता हुआ खड़ा है, तुम प्रलय-कालपर्यन्त धारण किये रहो । सतिसते ! जब मैं यहाँ आकर बास करूँगा, तब तुम भगवान् शंकरके इस अद्भुत क्रोधको

धोड़ देना । तुम्हारा जल ही प्रतिदिन इसका भोजन होगा । तुम यत्नपूर्वक इसे ऊपर ही धारण किये रहना, जिससे तुम्हारी अनन्त जलगायिके भीतर न चला जाय ।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेरे ऐसा कहनेपर उम्रे स्त्रीकी क्रोधान्विषय वड्यानल्को धारण करना संश्लेषित कर लिया, जो दूसरेके लिये असम्भव था । तदनन्त वह वड्याग्नि समुद्रमें प्रविष्ट हुई और ज्यालामालाओंसे प्रेरित हो सागरकी जलरायिका दहन करने लगी । मूने । इसे संतुष्टचित्त होकर मैं अपने लोकको चला आया और वह दिव्यलूपधारी गमुद्र मुझे ग्रणाम करके अद्वय हो गया महामुने ! स्त्रीकी उस क्रोधान्विके भयसे छूटकर समूर्ण जल स्वस्थताका अनुभव करने लगा और देवता तथा मूर्ति सुखी हो गये ।

नारदजी बोले—दयानिधे ! मदनदहनके पश्चात् र्जननन्दनी पार्वती देवीने क्या किया ? वे अपनीसे सखियोंके साथ कहाँ गयीं ? यह सब मुझे बताइये ।

ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्तम ! आगने जब कामदेवको दर्घ किया, तब वहाँ महान् अश्वद प्रकट हुआ, जिससे सारा आकाश गैंड उठ उस महान् श्वदके साथ ही कामदेवको दर्घ हुआ ; भयभीत और व्याकुल हुई पार्वती दोनों सखियोंके साथ थे घर चली गयीं । उस श्वदसे परिवारसहित हिमवान् भी विसमयमें पड़ गये और वहाँ गयी हुई अपनी पुत्रीका संकरके उन्हें बड़ा कलेजा हुआ । इतनेमें ही पार्वती दूरसे हुई दिखायी दीं । वे शम्भुके विरहसे रो रही थीं । वे पुत्रीको अत्यन्त विहळ हुई देख शैलराज हिमवान्को शोक हुआ और वे शीघ्र ही उसके पास जा पहुँचे । वे हाथसे उसकी दोनों ओँखें पौँछकर बोले—‘शिव ! इसे रोओ मत ।’ ऐसा कहकर अचलेश्वर हिमवानने अत्यर्थ हुई पार्वतीको शीघ्र ही गोदमें उठा लिया और उसे सांदेते हुए वे अपने घर ले आये ।

कामदेवका दाह करके महादेवजी अद्वय हो गये । अतः उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । उन्हें कहीं भी सुख या शान्ति नहीं मिलती पिताके घर जाकर जब वे अपनी मात्रासे मिलते समय पार्वती शिवाने अपना नया जन्म हुआ । वे अपने रूपकी निन्दा करने लगीं और बोलीं—‘मैं मारी गयी ।’ सखियोंके समझानेपर भी वे तिनि

कुमारी कुछ समझ नहीं पाती थीं । वे सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और सखियोंके बीचमें खड़े होते समय भी कभी किंचिन्मात्र भी सुखका अनुभव नहीं करती थीं । 'मेरे स्वरूपको तथा जन्म-कर्मको भी धिक्कार है' ऐसा कहती हुई वे सदा महादेवजीकी प्रत्येक चेष्टाका चिन्तन करती थीं । इस प्रकार पार्वती भगवान् शिवके विरहसे मन-शीमन अत्यन्त कलेशका अनुभव करती और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाती थीं । वे सदा 'शिव, शिव' का जप किया करती थीं । शरीरसे पिताके धरमें रहकर भी वे चित्तसे पिनाक-शाणि भगवान् शंकरके पास पहुँची रहती थीं । तात ! शिवा शोकमन हो वारंवार मूर्छित हो जाती थीं । दौलराज हिमवान् उनकी पली मैनका तथा उनके मैनाक आदि सभी पुत्र, जो इंड उदारचेता थे, उन्हें सदा सन्त्वना देते रहते थे । तथापि 'भगवान् शंकरको भूल न सकीं ।

बुद्धिमात् देवर्ण ! तदनन्तर एक दिन इन्द्रकी प्रेरणासे आनुसार घृमते हुए तुम हिमालय पर्वतपर आये । उस एव महात्मा हिमवान् ने तुम्हारा स्वागत-सल्कार किया और शल-मङ्गल पूछा । फिर तुम उनके दिये हुए उत्तम आसन-

वैटे । तदनन्तर दौलराजने अपनी कन्याके चरित्रका रग्मसे ही वर्णन कियां । किस तरह उसने महादेवजीकी ॥ आरम्भ की और किस तरह उनके द्वारा कामदेवका दहन था—यह सब कुछ वताया । मुने ! यह सब सुनकर तुमने रिंगसे वहा—धौलेश्वर ! भगवान् शिवका भजन करो । र उनसे शिदा लेकर तुम उठे और मन-ही-मन शिवका रण करके शैलराजको छोड़ शीघ्र ही एकान्तमें कालीके से आ गये । मुने ! तुम लोकोपकारी, शानी तथा शिवके य भक्त हो; लग्न सामवानोंके शिरोमणि हो, अतः काली-पास आ उसे सम्मोहित करके उसीके हितमें स्थित हो गए यादर वह सत्य वचन बोले ।

नारदजीने ( तुमने ) कहा—जालिके ! तुम मेरे बान नो । मैं दयावदा यज्ञी बान कह रहा हूँ । मेरा वचन तुम्हारे ये सर्वधा हिंदूर, निर्दोष तथा उत्तम काम्य वसुआंको देनें-एगा । तुमने यहाँ नहादेवजीकी सेवा अवदय की थी; ऐसे दृष्टि तांस्त्रोके गर्भयुक्त होकर की थी । दीनांगर कुम्ह फर्नेवाले शियमे तुम्हारे उच्ची गर्भयों नष्ट किया है । ऐसे ! तुम्हारे लाली भैलेश्वर दिल्ली और महारोगी हो । उन्हें उत्तम वर्षादेवसे जलाशय जो हुमें स्कुदाल छोड़ दिया है;

उसमें वही कारण है कि वे भगवान् भक्तवत्सल हैं । अतः तुम उत्तम तपस्यामें संलग्न हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो । तपस्यासे तुम्हारा संस्कार हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनायेंगे और तुम भी कभी उन कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करेगी । देवि ! तुम हठपूर्वक शिवको अपनानेका यत्न करो । शिवके सिवा दूसरे किसीको अपना पति स्वीकार न करना ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तुम्हारी यह बात सुनकर मिरिराजकुमारी काली कुछ उल्लम्भित हो तुमसे हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक बोलीं ।

शिवाने कहा—प्रभो ! आप सर्वज्ञ तथा जगत्‌का उपकार करनेवाले हैं । मुने ! मुझे रुद्रदेवकी आराधनाके लिये कोई मन्त्र दीजिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीका यह वचन सुनकर तुमने पञ्चाक्षर शिवमन्त्र ( नमः शिवाय ) का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश किया । साथ ही उस मन्त्रराजमें शदा उत्तमन करनेके लिये तुमने उसका सबसे अधिक प्रभाव बताया ।

नारद ( तुम ) बोले—देवि ! इस मन्त्रका परम अद्भुत प्रभाव मुझो । इसके श्रवणमात्रसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं । यह मन्त्र सब मन्त्रोंका राजा और मनोवाचित्त कल्पके देनेवाला है । भगवान् शंकरको बहुत ही प्रिय है तथा साधकको भोग और मोक्ष दोनों देनेमें समर्थ है । सौभाग्य-शालिनि ! इस मन्त्रका विधिपूर्वक जप करनेसे तुम्हारे द्वारा आराधित हुए भगवान् शिव अवश्य और शीघ्र तुम्हारी औंगोंके सामने प्रकट हो जायेंगे । शिवि ! शीच-संतोषादि नियमोंमें तत्पर रहकर भगवान् शिवके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पञ्चाक्षरमन्त्रका जर करो । इससे आराध्यदेव शिव शीघ्र ही संतुष्ट होंगे । काली ! इस तरह तपस्या करो । तपस्यासे भैलेश्वर वशमें हो जाकरो है । तपस्यासे ही यत्को मनोवाचित्त कल्पकी प्राप्ति होनी है; अन्यथा नहीं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तुम भगवान् शिवके प्रिय भक्त और इच्छानुभार विचरनेवाले हो । तुमने कालीसे उत्तर्युक्त बात बदलकर देवताओंके हितमें तत्पर हो न्यर्गलेकको प्रसन्नन किया । तुम्हारी बात सुनकर उस मन्त्र पार्वती वहुत प्रभाव हुई । उन्हें परम उनम सज्जाक्षरमन्त्र प्राप्त हुई बता था ।

## श्रीशिवकी आराधनाके लिये पार्वतीजीकी दुष्कर तपस्या

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्म ! तुम्हरे चले जानेपर प्रफुल्लचित्त हुईं पार्वतीने महादेवजीको तपस्यासे ही साथ माना और तपस्याके लिये ही मनमें निश्चय किया । तब उन्होंने अपनी सखी जया और विजयाके द्वारा पिता हिमाचल और माता मेनासे आज्ञा भाँगी । पिताने तो स्वीकार कर लिया; परंतु माता मेनाने स्नेहवश अनेक प्रकारसे समझाया और घरसे दूर बनमें जाकर तप करनेसे पुत्रीको रोका । मेनाने तपस्याके लिये बनमें जानेसे रोकते हुए 'उ' 'मा' ( बाहर न जाओ ) ऐसा कहा; इसलिये उस समय शिवाका नाम उमा हो गया । मुने ! शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने रोकनेसे शिवाको हुखी हुई जान अपना विचार बदल दिया और पार्वतीको तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दी । मुनिश्रेष्ठ ! माताकी वह आज्ञा पाकर उत्तम ब्रतका पालन करनेवाली पार्वतीने भगवान् शंकरका स्वरण करके अपने मनमें बड़े सुखका अनुभव किया । माता-पिताको प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करके शिवके स्वरणपूर्वक दोनों सखियोंके साथ वे तपस्या करनेके लिये चली गयीं । अनेक प्रकारके प्रिय बल्लोंका परित्याग करके पार्वतीने कटि-प्रदेशमें सुन्दर मूँजकी मेखला बाँध शीघ्र ही बल्कल धारण कर लिये । हारका परिहार करके उत्तम मृगचर्मको हृदयसे लगाया । तत्पश्चात् वे तपस्याके लिये गङ्गावतरण ( गङ्गोत्री ) तीर्थकी ओर चलीं ।

जहाँ ध्यान लगाते हुए भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध किया था, हिमालयका वह शिखर गङ्गावतरणके नामसे प्रसिद्ध है । वहाँ परस उत्तम शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने तपस्या प्रारम्भ की । गौरीके तप करनेसे ही उसका 'गौरी-शिखर' नाम हो गया । मुने ! शिवाने अपने तपकी परीक्षाके लिये वहाँ बहुतसे सुन्दर एवं पवित्र बृक्ष लगाये, जो फल देनेवाले थे । सुन्दरी पार्वतीने पहले भूमि-शुद्धि करके वहाँ एक चेदीका निर्माण किया । तदनन्तर ऐसी तपस्या आरम्भ की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी । वे मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शीघ्र ही काढ़ूमें करके उस वेदीपर उच्चकोटिकी तपस्या करने लगीं । ग्रीष्म ऋतुमें अपने चारों ओर दिन-रात आग जलाये रखकर वे बीचमें वैठतीं और निरन्तर पञ्चाक्षर

मन्त्रका जप करती रहती थीं । वर्षे ऋतुमें वेदीपर हुई असनसे बैठकर अथवा किसी पत्थरकी चट्टानपर ही अद्द लगाकर वे निरन्तर वर्षाकी जलधारासे भीगती हड़ी हैं । शीतकालमें निराहार रहकर भगवान् शंकरके भजनमें लगारं वे सदा शीतल जलके भीतर खड़ी रहती तथा रातभर वर्ष चट्टानोंपर बैठा करती थीं । इस प्रकार तप करती हुए पञ्चाक्षर मन्त्रके अपमें भंलान हो शिवा सम्पूर्ण मनोरोह फलोंके दाता शिवका ध्यान करती थीं । प्रतिदिन अद्द मिलनेपर वे मखियोंके साथ अपने लगाये हुए छाँ प्रसन्नतापूर्वक सांचर्तां और वहाँ पथरे हुए अर्कों आतिथ्य-सत्कार भी करती थीं ।

शुद्ध चित्तवाली पार्वतीने प्रचण्ड औँवी, कङ्किनी जै अनेक प्रकारकी वर्षा तथा दुर्सह धूपका भी सेवन किए । उनके ऊपर वहाँ नाना प्रकारके दुःख आये, परंतु लद्द उन सबको कुछ नहीं गिना । मुने ! वे केवल निम्नलगाकर वहाँ सुस्थिरभावसे खड़ी या बैठी रहती थीं । लद्द पहला वर्ष फलहारमें बीता और दूसरा वर्ष उन्होंने अप्ते चवाकर विताया ! इस तरह तपस्या करती हुईं हैं पार्वतीने क्रमशः असंख्य वर्ष व्यतीत कर दिये । लद्दन हिमवान्‌की पुत्री शिवा देवी अप्ते खाना भी छोड़कर छाँ निराहार रहने लगीं, तो भी तपश्चर्यामें उनका अनुगम ही गया । हिमाचलपुत्री शिवाने भोजनके लिये फर्जामें परित्याग कर दिया । इसलिये देवताओंने उनका नाम 'आदि रख दिया । इसके बाद पार्वती भगवान् शिवके सलाहाएं एक पैरसे खड़ी हो पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करती हुई हैं भारी तपस्या करने लगीं । उनके अङ्ग चीर और बल्कमें थे । वे मस्तकपर जटाओंका समूह धारण किये रहती थीं । प्रकार शिवके चिन्तनमें लगी हुई पार्वतीने अपनी तपस्या द्वारा मुनियोंको जीत लिया । उस तपेवनमें महेश्वरं चिन्तनपूर्वक तपस्या करती हुई कालीके तीन हजार गीत गये ।

तदनन्तर जहाँ महादेवजीने साठ हजार वर्षोंतक किया था, उस स्थानपर क्षणभर ठहरकर शिवा देवी है ।

प्रकार चिन्ता करने लगीं—‘क्या महादेवजी इस समय वह नहीं जानते कि मैं उनके लिये नियमोंके पालनमें तत्पर हो तपस्या कर रही हूँ ? फिर क्या कारण है कि सुदीर्घकालसे तपस्यामें लगी हुई मुड़ा सेविकाके पास वे नहीं आये ? लोकमें, वेदमें और मुनियोंद्वारा सदा गिरीशकी महिमाका गान किया जाता है। सब यहीं कहते हैं कि भगवान् शंकर तत्त्वज्ञ, सर्वात्मा, सर्वदशी, समस्त ऐश्वर्योंके दाता, दिव्य शक्ति-सम्पन्न; एवके मनोभावोंकी समझ लेनेवाले, भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तु देनेवाले और सदा समस्त क्लेशोंका निवारण करनेवाले हैं। यदि मैं समस्त कामनाओंका परित्याग करके भगवान् ब्रूपभव्यजमें अनुरक्त हुई हूँ तो वे कल्याणकारी भगवान् शिव यहाँ मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैंने नारदतन्त्रोक्त विवप्तकाश्रमन्त्रका सदा उसम भक्तिभावसे विधिपूर्वक जप किया हो तो भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैं अवश्वर शिवकी भक्तिसे युक्त एवं निर्विकार होऊँ तो भगवान् शंकर मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हों।’

इस तरह निल चिन्तन करती हुई जटा-बल्कलधारिणी पर्विकारा पार्वती मुँह नीचे किये सुदीर्घकालतक तपस्यामें लगी हीं। उन्होंने ऐसी तपस्या की, जो मुनियोंके लिये भी हुएकरी ही। वहाँ उस तपस्याका सारण वरके पुरुषोंको बड़ा विस्मय हुआ। सर्वथे ! पार्वतीकी तपस्याका जो दूसरा प्रभाव पड़ा था, उसे भी इस समय सुनो। जगदम्या पार्वतीका वह महान् परम आश्चर्यजनक था। जो स्वभावतः एक दूसरेके भैरोधी थे, ऐसे प्राणी भी उस आश्रमके पास जाकर उनकी प्रत्यक्षे प्रभावसे विरोधरहित हो जाते थे। सिंह और गौणादि सदा रागादि दोपोंसे संयुक्त रहनेवाले पशु भी पार्वती-



के तपकी महिमासे वहाँ परस्पर वाधा नहीं पहुँचाते थे। मुनिश्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त जो स्वभावतः एक दूसरेके वैरी हैं, वे चूहे-विल्डी आदि दूसरे-दूसरे जीव भी उस आश्रमपर कभी रोप आदि विकारोंसे युक्त नहीं होते थे। वहाँके सभी वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते थे। भौंति-भौंतिके तृण और विचित्र पुष्प उस वनकी शोभा बढ़ाते थे। वहाँका सारा वन-प्रान्त कैलासके समान हो गया। पार्वतीके तपश्ची मिदिका साकार रूप बन गया।

( अव्याय २२ )

### पार्वतीकी तपस्याविषयक दृढ़ता, उनका पहलेसे भी उत्तम तप, उससे त्रिलोकीका संतप्त होना तथा समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा और विष्णुका भगवान् शिवके स्थानपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर ! शिवकी प्रातिके लिये श्वर तपस्या करती हुई पार्वतीके बहुत वर्ष बीत गये, तो भगवान् शंकर प्रकट नहीं हुए। तब हिमाचलः भेना, र और गणशान्त अदिने आकर पार्वतीको समराजा और इसी प्राप्तिदो अवस्था हुएकर यताकर उनसे कह अनुरोध किया कि इस जपस्या दोइकर फस्को लौट चलो।

तब उन स्ववकी वात सुनकर पार्वतीने कहा— पिताजी ! माताजी ! तथा मेरे नभी बान्धव ! मैंने पहले जो वात कही थी, उसे क्या आपलोगोंने सुला दिया है ? अल्लु, इस समय भी भैरी जो प्रक्षिप्त है, उने असरन्त्र चुन लें। जिन्होंने रेखसे दामदेवको लगाकर भला कर दिया है, वे महादेवजी वरपरि विरक्त हैं, तो वे मैं वरनी नमस्कारसे उन-

भक्तवत्सल भगवान् शंकरको अवश्य संतुष्ट कर्हँगी । आप सब लोग प्रमन्तपूर्वक अपने-अपने घरको जायें; महादेवजी संतुष्ट होंगे ही, इसमें अन्यथा विचारकी आवश्यकता नहीं है । जिन्होंने कामदेवको जलाया है, जिन्होंने इस पर्वतके बनको भी जलाकर भस्म कर दिया है, उन भगवान् शंकरको मैं केवल तपस्यासे यहीं बुलाऊँगी । महाभागगण ! आप यह जान लें कि महान् तपोवल्लसे ही भगवान् सदाशिवकी सेवा सुलभ हो सकती है । यह मैं आपलोंसे मत्य, मत्य कहती हूँ ।

सुमधुर भाषण करनेवाली पर्वतराजकुमारी शिवा माता मेनका, भाई मैनाक, पिता हिमालय और मन्दराचल आदिसे उपर्युक्त वात कहकर शीघ्र ही चुप हो गयीं । शिवाके ऐसा कहनेपर वे चतुर-चालाक पर्वत, गिरिराज सुमेरु आदि गिरिजाकी बारंबार प्रदांसा करते हुए अत्यन्त विस्मित हो जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये । उन सबके चले जानेपर सखियोंसे घिरी हुई पर्वती मनमें यथार्थ निश्चय करके पहलेसे भी अधिक उग्र तपस्या करने लगीं । मुनिश्रेष्ठ ! देवताओं, असुरों, मनुष्यों और चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी उस महती तपस्यासे संतुष्ट हो उठी । उस समय समस्त देवता, असुर, यक्ष, किंनर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, प्रजापति, गुह्यक तथा अन्य लोग महान्-से-महान् कष्टमें पड़ गये । परंतु इसका कोई कारण उनकी समझमें नहीं आया । तब इन्द्र आदि सब देवता मिलकर गुरु बृहस्पतिसे सलाह ले बड़ी विहृलताके साथ सुमेरु पर्वतपर मुक्त विधाताकी शरणमें आये । उस समय उनके सारे अङ्ग संतुष्ट हो रहे थे । वहाँ आ सुक्षे प्रणामकर उन सभी व्याकुल और कान्तिहीन देवताओंने मेरी सुन्ति करके एक साथ ही मुझसे पूछा—‘प्रभो ! जगत् के संतुष्ट होनेका क्या कारण है ?’

उनका यह प्रश्न सुनकर मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विचारपूर्वक मैंने सब कुछ जान लिया । इस समय विश्वमें जो दाह उत्पन्न हो गया है, वह गिरिजाकी तपस्याका फल है—यह जानकर मैं उन सबके साथ शीघ्र ही क्षीरसागरको गया । वहाँ जानेका उद्देश्य भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताना था । वहाँ पहुँचकर देखा भगवान् श्रीहरि सुखद आसनपर विराजमान है । देवताओंके साथ मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम-पूर्वक उनकी स्तुति की और कहा—‘महाविष्णो ! तपस्यामें

लगी हुई पर्वतीके परम उग्र तपसे संतुष्ट हो हम सब आपकी शरणमें आये हैं । आप हमें बचाइये, वनज्ञों हम सब देवताओंकी यह वात सुनकर शेषश्वास नहीं है भगवान्, लक्ष्मीपति हमसे बोले ।

**श्रीविष्णुने कहा—देवताओं !** मैंने आज शर्करां तपस्याका सारा कारण जान लिया है । अतः तुम्हें साथ अब परमश्वर शिवके समीप चलता हूँ । हम सब मिलकर यह प्रार्थना करेंगे कि वे गिरिजाकी व्याहार वहाँ ले आयें । अमरो ! इस समय समस्त संसारके कल्प लिये भगवान्से शिवके पाणिग्रहणके लिये अनुरोध है । देवताविदेव पिनाकवारी भगवान् शिव शिवाको बढ़ावे लिये जैसे भी वहाँ उनके आश्रमपर जायें, इस सम्बन्धसे ही प्रथक करेंगे । अतः परम मङ्गलमय महाप्रभु जहाँ उग्र तपस्यामें लगे हुए हैं, वहाँ हम सब लोग चढ़ें ।

भगवान् विष्णुकी यह वात सुनकर समस्त देवता अहंकारी, क्रोधी और जलानेके लिये उद्यत रहनेवाले ग्रन्थ रुद्रसे अत्यन्त भयभीत हो बोले ।

**देवताओंने कहा—भगवन् !** जो महामां कालभिके समान दीसिमान् और भयानक नेत्रोंसे युक्त उन रोपमरे महाप्रभु रुद्रके पास हमलोग नहीं जा सकें क्योंकि जैसे पहले उन्होंने कुपित हो दुर्जय कामको मैर्द दिया था, उसी प्रकार वे हमें भी दग्ध कर डालें—रुद्रसंदाय नहीं है ।

मुने ! इन्द्रादि देवताओंकी वात सुनकर लक्ष्मीपति श्रीहरि उन सबको सान्त्वना देते हुए कहा ।

**श्रीहरि बोले—हे देवताओं !** तुम सब लोग प्रेम और आदरके साथ मेरी वात सुनो । भगवान् शिव देवतार्थ स्वामी तथा उनके भयका नाश करनेवाले हैं । वे हुए दग्ध करेंगे । तुम सब लोग बड़े चतुर हो । अतः इन शम्भुको कल्याणकारी मानकर हमारे साथ सबके उत्तम उन महादेवजीकी शरणमें चलना चाहिये । भगवान् विष्णुपुरुष, सर्वेश्वर, वरणीय, परात्म, तपसी और परम स्वरूप हैं; अतः हमें उनकी शरणमें अवश्य चलना चाहिए ।

प्रभावशाली विष्णुके ऐसा कहनेपर सब देवता अंग साथ पिनाकपणि शिवका दर्शन करनेके लिये गये । मैंने पर्वतीका आश्रम पहले पड़ता था । अतः उन गिरिजानदिनीकी तपस्या देवतानेके लिये विष्णु आदि सब दे-

कौतूहलपूर्वक उनके आश्रमपर गये । पार्वतीके श्रेष्ठ तपको देखकर सब देवता उनके उत्तम तेजसे व्याप हो गये । उन्होंने तपस्यामें लगी हुई उन तेजोमयी जगदस्वाको नमस्कार किया और साक्षात् सिद्धिस्वरूपा शिवा देवीके तपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् ब्रह्मभव्यज विराजमान थे । मुने ! वहाँ पहुँचकर सब देवताओंने पहले तुम्हें उनके पास मैजा और स्वयं वे मदन-दहनकारी भगवान् हरसे दूर ही खड़े रहे । वे कहींसे यह देखते रहे कि भगवान् शिव कृपित हैं या प्रसन्न । नारद ! तुम तो सदा निर्भय रहनेवाले और विशेषतः शिवके भक्त

हो । अतः तुमने भगवान् शिवके स्थानपर जाकर उन्हें सर्वथा प्रसन्न देखा । फिर वहाँसे लौटकर तुम श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको भगवान् शिवके स्थानपर ले गये । वहाँ पहुँचकर विष्णु आदि सब देवताओंने देखा भक्तवत्सल मगवान् शिव सुखपूर्वक प्रसन्न मुद्रामें बैठे हैं । अपने मणोंसे घिरे हुए शम्भु तपस्वीका रूप धारण किये योगपद्मपर आसीन थे । उन परमेश्वररूपी शंकरका दर्शन करके मेरे सहित श्रीविष्णु तथा अन्य देवताओं, सिद्धों और मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम करके बैदें और उपनिषदोंके सूक्तोंद्वारा उनका स्तवन किया ।

( अध्याय २३ )

## देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्का विवाहके दोष वताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! देवताओंने वहाँ पहुँचकर भगवान् रुद्रको प्रणाम करके उनकी सुति की । तब नन्दिकेश्वरने भगवान् शिवसे उनकी दीनवन्धुता एवं भक्तवत्सलताकी प्रशंसा करते हुए कहा—‘प्रभो ! देवता और मुनि संकटमें पहकर आपकी शरणमें आये हैं । सर्वेश्वर ! आप उनका उद्धार करें ।’

दयालु नन्दीके इस प्रकार सूचित करनेपर भगवान् शम्भु धीर-धीरे और्ख्यें खोलकर ध्यानसे उपरत हुए । समाधिसे चिरत हो परम ज्ञानी परमात्मा एवं ईश्वर शम्भुने समझ देवताओंसे इस प्रकार कहा ।

शम्भु बोले—श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वरो ! तुम सब लोग मेरे समीप कैसे आये ? तुम अपने आनेका जो भी कारण हो, वह शीम घताओ ।

भगवान् शंकरका यह बचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो कारण घतानेके लिये भगवान् विष्णुके मुँहकी ओर देखने लगे । तब शिवके महान् भक्त और देवताओंके हितकारी श्रीविष्णु मेरे घताये हुए देवताओंके महत्तर कार्यको सूचित रखने लगे । उन्होंने कहा—‘शम्भो ! तारकासुरने देवताओंको भयन्त अस्तु एवं महान् कष्ट प्रदान किया है । यही घतानेके लिये तद देवता यहाँ आये हैं । भगवन् ! आपके औरस पुच्छसे ही जारक दैत्य गारा जा सकता, और किसी प्रकारसे नहीं । ऐसा यह वर्थन चर्वथा सत्त्व है । महादेव ! इस प्रकार विचार करके आप रुपा करें । आपको नमस्कार है । स्वामिन् ! उत्तरायुरें प्राय उपस्थित किये गये इस कठ्ठे अप-

देवताओंका उद्धार कीजिये । देव ! शम्भो ! आप दाहिने हाथसे गिरिजाका पाणिग्रहण करें । गिरिजा इमवान्के द्वारा दी हुई महानुभावा पार्वतीको पाणिग्रहणके द्वारा ही अनुगृहीत कीजिये ।’

श्रीविष्णुका यह बचन सुनकर योगपरायण भगवान् शिवने उन सबको उत्तम गतिका दर्शन कराते हुए इस प्रकार कहा—‘देवताओं ! ज्यों ही मैंने सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिजा देवीको स्वीकार किया, त्यों ही समस्त मुरेश्वर तथा शृणि-मुनि सकाम हो जायेंगे । फिर तो वे परमार्थपथपर चलनेमें समर्थ न हो सकेंगे । दुर्गा अपने पाणिग्रहणमात्रसे ही कामदेवको जीवित कर देंगी । त्रिधो ! मैंने कामदेवको जलाकर देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है । आजसे सब लोग मेरे साथ सुनिश्चितरूपसे निष्काम होकर रहें । देवताओं ! जैसे मैं हूँ, उसी तरह तुम सब लोग पृथक्-पृथक् रहकर कोई विदेश प्रवास किये चिना ही अत्यन्त दुष्कर एवं उत्तम तपस्या कर सकोगे । अब उस मदनके न होनेसे तुम सब देवता समाधिके द्वारा परमानन्दका अनुभव करने हुए निर्विकार हो जाओ; क्योंकि काम नरककी ही प्राप्ति करनेवाला है । कामसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तपस्या नष्ट होती है । अतः तुम नभी श्रेष्ठ देवताओंको काम और क्रोधका परित्याग कर देना चाहियें, मेरे इन कथनको कर्मा अन्यथा नहीं नहना चाहियें ।

\* यानो हि नरकाद्व तप्याद् ग्रेहेऽभिन्नदेवः ।

त्रेषु इव तप्याद् नेतारं भृत्यं ततः ॥

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ब्रूपभके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले भगवान् महादेवने इस प्रकारकी बातें सुनाकर ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं तथा मुनियोंको निष्क्राम धर्मका उपदेश दिया । तदनन्तर भगवान् शम्भु पुनः ध्यान ल्याकर चुप हो गये और पहलेकी ही भाँति पार्वतीदेवीसे घिरे हुए सुखिरभावसे बैठ गये । वे अपने मनमें ही स्थिर आत्मस्वरूप, निरञ्जन, निराभास, निर्विकार, निरामय, परात्पर, नित्य ममतारहित, निरवग्रह, शब्दातीत, निर्गुण, शानगम्य एवं प्रकृतिसे पर परमात्माका चिन्तन करने लगे । इस प्रकार परम स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे ध्यानमें स्थित हो गये । बहुतसे प्राणियोंकी सुष्ठुपि करनेवाले भगवान् शिव ध्यान करते-करते ही परमानन्दमें निमग्न हो गये । श्रीहरि एवं इन्द्र आदि देवताओंने जब परमेश्वर शिवको ध्यानमग्न देखा, तब उन्होंने नन्दीकी सम्मति ली । नन्दीने पुनः दीनभावसे स्तुति करनेके लिये कहा । उनकी इस सत्सम्मतिके अनुसार देवता स्तुति करने लगे । वे बोले— ‘देवदेव ! महादेव ! करुणासागर प्रभो ! हम आपकी शरणमें आये हैं । आप महान् बलेशसे हमारा उद्धार कीजिये ।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार बहुत दीनतापूर्ण उकिसे देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की । इसके बाद वे सब देवता प्रेमसे व्याकुलचित्त हो उच्च स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे । मेरे साथ भगवान् श्रीहरि उत्तम भक्तिभावसे युक्त हो मन-ही-मन भगवान् शम्भुका स्मरण करते हुए अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणीद्वारा उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करने लगे ।

देवताओंके, मेरे तथा श्रीहरिके इस प्रकार बहुत स्तुति करनेपर भगवान् महेश्वर अपनी भक्तवत्सलताके कारण ध्यानसे विरत हो गये । उनका मन अत्यन्त प्रसन्न था । वे भक्तवत्सल शंकर श्रीहरि आदिको करुणादृष्टिसे देखकर उनका हृष्ट बढ़ाते हुए बोले—‘विष्णो ! ब्रह्मन् ! तथा इन्द्र आदि देवताओं ! तुम सब लोग एक साथ यहाँ किस अभिप्रायसे आये हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ ।’

श्रीहरिने कहा—महेश्वर ! आप सर्वज्ञ हैं, सबके अन्तर्यामी ईश्वर हैं । क्या आप हमारे मनकी बात नहीं

कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्विः स्त्रुतस्त्वमैः ।

सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्राक्षं नान्यथा कच्चित् ॥

( शिं पु० १० सं० पा० खं० २४ । २७-२८ )

जानते ? अवश्य जानते हैं, तथापि आपकी आशासे मैं क्षी भी कहता हूँ । सुखदायक शंकर ! हम सब देवताओं तारकासुरसे अनेक प्रकारका दुःख प्राप्त हुआ है । इसीके देवताओंने आपको प्रसन्न किया है । आपके लिये ही उन्हें गिरिराज द्विमालयसे शिवाकी उत्पत्ति करायी है । जिन्हें गर्भसे आपके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीसे तारकासुर मृत्यु होगी, दूसरे किसी उपायसे नहीं । ब्रह्माजीने उस दृढ़त्वे वही वर दिया है । इस कारण दूसरेसे उसकी मृत्यु हो पारही है । अतएव वह निंदर होकर सारे संसारके देरहा है । इधर नारदजीकी आशासे पार्वती कठोर तर कर रही हैं । उनके तेजसे उमस्त चंगचर प्राणियों निलोकी आच्छादित हो गयी है । इसलिये परमेश्वर ! आप यह वर देनेके लिये जाइये । स्वामिन् ! देवताओंके मिटाइये और हमें सुख दीजिये । शंकर ! मेरे तथा देवता हृदयमें आपके विवाहका उत्सव देखनेके लिये वहाँ उत्साह है । अतः आप यथोचित रीतिसे विवाह कीजि परात्पर परमेश्वर ! आपने रत्नको जो वर दिया था, पूर्तिका अवसर आ गया है । अतः अपनी प्रतिशक्ति सफल कीजिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कह प्रणाम करके श्रीविष्णु आदि देवताओं और महानाना प्रकारके स्तोत्रोद्वारा पुनः उनकी स्तुति की । सब-के-सब उनके सामने खड़े हो गये । भक्तोंके रहनेवाले भगवान् शंकर भी, जो वेदमर्यादाके रह देवताओंकी बात सुन हँसकर बोले—‘हे हरे ! हे और हे देवताओ ! तुम सब लोग आदरपूर्वक मुझे यथोचित, विशेषतः विवेकपूर्ण बात कह रहे हैं । करना मनुष्योंके लिये उचित कार्य नहीं है । विवाह हृदत्तापूर्वक बाँध रखनेवाली एक बहुत वह है । जगत्में बहुतसे कुसङ्ग हैं; परंतु स्त्रीका सङ्ग सबसे बढ़कर है । मनुष्य सारे बन्धनोंसे छुटकारा पा है, परंतु स्त्रीसङ्गरूपी बन्धनसे वह मुक्त नहीं पाता । लोहे और काठकी बनी हुई वेडियोंमें हड़ बैंधा हुआ पुरुष भी एक दिन उस कैदसे छुटकारा पा है, परंतु स्त्री-पुत्र आदिके बन्धनमें बैंधा हुआ कभी छूट नहीं पाता । महान् बन्धनमें डाल विषय सदा बढ़ते रहते हैं । जिसका मन विषयोंके हो गया है, उसके लिये मोक्ष स्वरूपमें भी दुर्लभ

बिदान् पुरुष यदि मुख चाहता है तो वह विषयोंको विधि-पूर्वक त्याग दे। विषयोंको विषयके समान बताया गया है, जिनके द्वारा मनुष्य मारा जाता है। विषयीके साथ वार्ता करनेमात्रसे मनुष्य क्षणभरमें पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयको मिथ्री मिलायी हुई वारुणी(मदिरा) कहा है॥ १४ । यद्यपि मैं इस वातको जानता हूँ और यद्यपि विषयोंके इन सारे दोषोंको मुझे विशेष ज्ञान है, तथापि मैं तुम्हारी प्रार्थनाको सफल करूँगा; क्योंकि मैं भक्तोंके अधीन रहता हूँ और भक्तवत्सलतायश उचित-अनुचित सारे कार्य करता हूँ। इसीलिये तीनों लोकोंमें 'अयथोचित-कर्ता' के रूपमें मेरी प्रसिद्धि है। भक्तोंके लिये मैंने अनेक बार वहुतसे प्रयत्न करके कष्ट सहन किये हैं, ऐहपति होकर विश्वानर मुसिका दुःख दूर किया है। हरे ! विष्णे ! अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे

तुम सब लोग अच्छी तरह जानते हो। मैं यह सत्य कहता हूँ कि जब-जब भक्तोंपर कहीं विपत्ति आती है, तब-तब मैं तत्काल उनके सारे कष्ट हर लेता हूँ। तारकासुरसे तुम सब लोगोंको जो दुःख प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ और उसका हरण करूँगा, यह भी सत्य-सत्य बता रहा हूँ। यद्यपि मेरे मनमें विवाह करनेकी कोई रुचि नहीं है तथापि मैं पुत्रोत्पादनके लिये गिरिजाके साथ विवाह करूँगा। तुम सब देवता अब निर्भय होकर अपने-अपने घर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा। इस विषयमें अब कोई विचार नहीं करना चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हो समाधिमें स्थित हो गये और विष्णु आदि सभी देवता अपने-अपने धामको चले गये।

( अध्याय २४ )

### भगवान् शिवकी आज्ञासे सप्तर्णियोंका पार्वतीके आश्रमपर जा उनके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और भगवान् को सब वृत्तान्त बताकर स्वर्गको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओंके अपने आश्रममें चले जानेपर पार्वतीके तपकी परीक्षाके लिये भगवान् शंकर समाधित हो गये। वे स्वयं अपने आपमें, अपने ही परात्पर, स्वस्य, मायारहित तथा उपद्रवशृन्य स्वरूपका चिन्तन करने लगे। उस ध्येय वस्तुके रूपमें साक्षात् भगवान् महेश्वर ही विराजमान है। उनकी गतिका किसीको ज्ञान नहीं होता। वे भगवान् वृषभध्वज ही सबके साथ—परमेश्वर हैं।

तात ! उन दिनों पार्वतीदेवी वडी भारी तपस्या कर रही थीं। उस तपस्यासे रुद्रदेव भी वडे विस्यमें पड़ गये। भगवानीन होनेके कारण ही वे समाधिसे विचलित हो गये, और किसी कारणसे नहीं। तदनन्तर सूषिकर्ता हरने वसिष्ठ आदि सप्तर्णियोंका सरण किया। उनके सरण करते ही

वे सातों ऋषिशीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उनके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी तथा वे सबके-सब अपने सौभाग्यकी अधिक सराहना करते थे। उन्हें आया देख भगवान् शिवके नेत्र प्रसन्नतासे प्रकृष्ट कमलके समान खिल उठे और वे हँसते हुए बोले—‘तात सप्तर्णियो ! तुम सब लोग मेरे हितकारी तथा सर्वो वस्तुओंके ज्ञानमें निपुण हो। अतः शीघ्र मेरी बात सुनो। गिरिराजकुमारी देवेश्वरी पार्वती इस समय सुस्थिर-चित्त हो गीरी-शिवर नामक पर्वतपर तपस्या कर रही हैं। मुझे पतिरूपमें प्राप्त करना ही उनकी तपस्याका उद्देश्य है। द्विजो ! इस समय केवल सप्तर्णी उनकी सेवामें हैं। मेरे सिवा दूसरी समत्व कामनाओंका परित्याग करके वे एक उत्तम निश्चयपर पहुँच जुकी हैं। मुनिवरो ! तुम सब लोग मेरी आशासे वहाँ जाओ और

\* उत्तरा वहवो लोके गोपकल्प नाभिकः । उद्दरेत्सकलैर्वर्णने गोपकलै ग्रन्थते ॥  
लोहशरमयैः पार्श्वद्वयं वदोऽपि दुर्घटे । रुद्यादिसामद्वत्सरद्वे दुर्घटे न वदान्तः ॥  
दुर्घटे विषयाः शशमदाद्यनकारिणः । विषयतान्तनननः स्वन्ते मोहोऽपि दुर्घटः ॥  
द्वारनिर्चिति चेत् धर्मे विष्वद् विष्वास्त्वदेव । विष्वद् विष्वान्तरुद्योपर्वदेवन्तर्वदः ॥  
धर्मे विष्विता सर्वं वासनः प्रति क्षणाद् । विष्वद् प्रातुराचार्यः विष्वालिङ्गद्वर्णान् ॥

प्रेमपूर्ण हृदयसे उनकी दृढ़ताकी परीक्षा करो। वहाँ तुम्हें सर्वथा छलयुक्त बातें कहनी चाहिये। उत्तम व्रतधारी महर्षियो! मेरी आशासे ऐसा करना है। इसलिये तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये।'

भगवान् शंकरकी यह आशा पाकर वे सातों ऋषि तुरंत ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ दीसिमती जगन्माता पार्वती विराजमान थीं। सप्तर्षियोंने वहाँ शिवाको तपस्याकी मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान देखा। उनका तेज महान् था। वे अपने उत्तम तेजसे प्रकाशित हो रही थीं। उन उत्तम व्रतधारी सप्तर्षियोंने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और उनके द्वारा विशेषतः पूजित हो वे मस्तक छुकाये इस प्रकार बोले।

ऋषियोंने कहा—देवि! गिरिराजनन्दनि! हमारी यह बात मुनो। हम जानना चाहते हैं कि तुम किस लिये तपस्या करती हो? तथा इसके द्वारा किस देवताको और किस फलको पाना चाहती हो?

उन द्विजोंके इस प्रकार पूछनेपर गिरिराजकुमारी देवी शिवाने उनके सामने अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी सच्ची बात बतायी।

**पार्वती बोली—**मुनीश्वरो! आपलोग प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे मेरी बात सुनें। मैंने अपनी बुद्धिसे जिसका चिन्तन किया है, अपना वह विचार मैं आपके सामने रखती हूँ। आपलोग मेरी असम्भव बातें सुनकर मेरा उपहास करेंगे, इसलिये उन्हें कहनेमें संकोच ही होता है, तथापि कहती हूँ। क्या करूँ? मेरा यह मन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक एक उत्कृष्ट कर्मके अनुष्ठानमें लगा है और ऐसा करनेके लिये विवश हो गया। यह पानीके ऊपर बहुत बड़ी और ऊँची दीवार खड़ी करना चाहता है। देवर्षिका उपदेश पाकर मैं 'भगवान् रुद्र मेरे पति हैं' इस मनोरथको मनमें लिये अत्यन्त कठोर तप कर रही हूँ। मेरा मनरूपी पक्षी विना पाँखके ही हठपूर्वक आकाशमें उड़ रहा है। मेरे स्वामी करुणानिधान भगवान् शंकर ही उसके इस आशाकी पूर्ति कर सकते हैं।

पार्वतीका यह वचन सुनकर वे मुनि हँस पड़े और गिरिजाका सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक छलयुक्त मिथ्या वचन बोले।

ऋषियोंने कहा—गिरिराजनन्दनि! देवर्षि नारद व्यर्थ ही अपनेको पण्डित मानते हैं। उनके मनमें क्रूरता भरी रहती है। आप समझदार होकर भी क्या उनके चरित्रको नहीं

जानतीं। नारद छल-कपटकी बातें करते हैं और दूसरें चित्तको मोहर्णे डालकर मथ डालते हैं। उनकी बातें मुनोंसे सर्वथा हानि ही होती है। व्रह्मपुत्र दक्षके पुत्रोंको नारदने वे छलपूर्ण उपदेश दिया, उसका फल वह हुआ कि वे सबके-मध्य अपने पिताके वर लौटकर न आ सके। यही हाल उन्होंने दक्षके दूसरे पुत्रोंका भी किया। वे भी उनके चक्रमें आकर भिखारी बन गये। विद्याधर चित्रकेन्द्रको इन्होंने ऐसा दण्ड दिया कि उसका धर ही उजड़ गया। प्रहारको अपने नेत्र बनाकर इन्होंने हिरण्यकशिमुसे वडे-वडे दुःख दिलाये। वे सदा दूसरोंकी बुद्धिमें भेद पैदा किया करते हैं। नारदमुनि कानोंको पसंद आनेवाली अपनी विद्या जिस-जिसको मुना देते हैं, वही अपना धर छोड़कर तत्काल भीख माँगने लगता है। उनका मन मलिन है। केवल शरीर ही नदा उज्ज्वल दिखा देता है। हम उन्हें विशेष रूपसे जानते हैं; क्योंकि उन्होंने साथ रहते हैं। उनका उपदेश पाकर वडे-वडे विद्वानोंद्वारा सम्मानित होनेवाली तुम भी व्यर्थ ही भुलावें आ गयी अंग मूर्ख बनकर दुष्कर तपस्या करने लगीं।

वाले! तुम जिनके लिये वह भारी तपस्या कर हो, वे रुद्र सदा उदासीन, निर्विकार तथा कामके शत्रु हैं—इस संशय नहीं है। वे अमाङ्गलिक वस्तुओंसे युक्त शरीर धारण कर हैं, लज्जाको तिलाज्जलि दे चुके हैं, उनका न कहीं धर हैनदार वे किस कुलमें उत्तम हुए हैं, इसका भी किसीको पता नहै। कुस्तित वेष धारण किये भूतों तथा प्रेत आदिके साथ रहते हैं और नंग-धड़िंग हो शूल धारण किये धूमते हैं। धूल नारदने अपनी मायासे तुम्हारे सारे विज्ञानको नष्ट कर दिया युक्तिसे तुम्हें मोह लिया और तुमसे तप करवाया। देवेशी गिरिराजनन्दनि! तुम्हों विचार करो कि ऐसे वरको पक्ष तुम्हें कथा सुख मिलेगा। पहले रुद्रने बुद्धिसे खूब सोच-विचार कर साध्यी सतीसे विवाह किया। परंतु वे ऐसे सूख हैं कि कुछ दिन भी उनके साथ निवाह न सके। उस वेचारीको वैसे ही दो देकर उन्होंने त्याग दिया और स्वयं स्वतन्त्र हो अपने निष्ठा और शोकरहित स्वरूपका ध्यान करते हुए उसीमें सुखपूर्वक रम गये। देवि! जो सदा अकेले रहनेवाले, शान्त, सङ्गरहित और अद्वितीय हैं, उनके साथ किसी लक्षीका निवाह कैसे होगा! आज भी कुछ नहीं विगड़ा है। तुम हमारी आशा मानकर घर लौट चलो और इस दुर्बुद्धिको त्याग दो। महाभागे! इससे तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे योग्य वर हैं भगवान् विष्णु, वो समस्त सद्गुणोंसे युक्त हैं। वे वैकुण्ठमें रहते हैं, लक्ष्मीके सामने



पर्वती और मसमि



तामामधी पर्वती



है और नाना प्रकारकी कीड़ाएँ करनेमें कुशल हैं। उनके साथ हम तुम्हारा विवाह करा देंगे और वह विवाह तुम्हारे लिये समझ सुखोंको देनेवाला होगा। पार्वती ! तुम्हारा जो रुद्रके पाप विवाह करनेका हठ है, ऐसे हठको छोड़ दो; और सुखी हो जाओ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उनकी ऐसी बात सुनकर नगदमिका पार्वती हँस पड़ी और पुनः उन ज्ञानविशारद मुनिशंसे बोलीं।



पार्वतीने कहा—मुनीधरो ! आपने अपनी समझसे ठीक करा रहे। परंतु द्विजो ! मेरा हठ भी छूटनेवाला नहीं है। यह शरीर पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण चुहमें स्वाभाविक दोला दिरामान है। अपनी तुद्धिसे ऐसा विचारकर आपने सूरी तरफसे दोकनेका कष्ट न करें। देवर्पिका उपदेश-रसमें लिये परम हितकरक है। इसलिये मैं उसे कर्मी नहीं दूभी। ऐदेला भी यह समझते हैं कि शुरुजनोंका वचन उत्तरक होता है। गुरुओंका वचन सब होता है। ऐसा नहीं हठ दिचार है, उन्हें इच्छेक और परत्तेमें परम दृष्टि प्राप्त होती है और दुःख करनी नहीं होता। गुरुओंका

वचन सत्य होता है। यह विचार जिनके हृदयमें नहीं है, उन्हें इहलोक और परलोकमें भी दुःख ही प्राप्त होता है, सुख कभी नहीं मिलता। अतः द्विजो ! गुरुओंके वचनका कभी किसी तरह भी त्याग नहीं करना चाहिये। मेरा घर बसे या उजड़ जाय, मुझे तो यह हठ ही सदा सुख देनेवाला है। मुनिवरो ! आपने जो बातें कही हैं, मैं उनका आपके कहे हुए तात्पर्यसे भिन्न वर्थ समझती हूँ और उनका यहाँ संक्षेपसे विवेचन प्रस्तुत करती हूँ। आपने यह ठीक कहा कि भगवान् विष्णु सद्गुणोंके धाम तथा लीलाविहारी हैं। साथ ही आपने सदाचित्रको निर्गुण कहा है। इसमें जो कारण है, वह बताया जाता है। भगवान् शिव साक्षात् परब्रह्म हैं, अतएव निर्विकार हैं। वे केवल भक्तोंके लिये शरीर धारण करते हैं, फिर भी लैकिकी प्रभुताको दिखाना नहीं चाहते। अतः परमहस्योंकी जो प्रिय गति है, उसीको वे धारण करते हैं; क्योंकि वे भगवान् शम्भु परमानन्दसमय हैं, इसीलिये अवधूतरूपसे रहते हैं। मायालित जीवोंको ही भूषण आदिकी रुचि होती है, ब्रह्मको नहीं। वे प्रभु गुणातीत, अजन्मा, मायारहित, अलश्यगति और विराट हैं। द्विजो ! भगवान् शम्भु किसी विशेष धर्म या जाति आदिके कारण किसीपर अनुग्रह नहीं करते। मैं गुरुकी कृपासे ही शिवको यथार्थस्वप्नसे जानती हूँ। ब्रह्मर्पियो ! यदि शिव मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे तो मैं सदा कुमारी ही रह जाऊँगी, परंतु दूसरेके साथ विवाह नहीं करूँगी। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। यदि सूर्य पश्चिम दिशामें उगने लगें, मेर-पर्वत अपने स्थानसे विचलित हो जाय, अग्रि शीतलताको अपना ले तथा कमल पर्वतशिवरकी शिलाके ऊपर सिलने लगे, तो भी मेरा हठ छूट नहीं सकता। यह मैं कभी बात कहती हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कह उन मुनियोंको प्रणाम करके गिरिराजकुमारी पार्वती निर्विकार चित्तमें शिवका सरण करती हुई चुर हो गयी। इउ प्रकार गिरिजाके उस उत्तम निश्चयको जानकर वे समर्पिये भी उनकी ज्य-ज्यवार करने लगे और उन्होंने पार्वतीको उत्तम आर्योदय दिया। मुझे ! गिरिजादेवीकी परीका दरनेवाले वे मानों अमृत उन्हें प्रणाम करके प्रकृत्यन्ति हो शीघ्र ही भगवान् शिवके स्वामयों नहीं गये। वहाँ पूँछदर शिवों मन्त्र नदा उन्हें नदा इत्तम निवेदन उठके, उनकी अग्नि के पुनः नदर सर्वंकरते नहीं गये।

**भगवान् शंकरका जटिल तपस्वी ब्राह्मणके रूपमें पार्वतीके आथ्रमपर जाना, उनसे सत्कृत हो उनकी तपस्याका कारण पूछना तथा पार्वतीजीका अपनी सखी विजयासे सब कुछ कहलाना**

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन सप्तरिंश्योंके अपने लोकमें चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले साक्षात् भगवान् शंकरने देवीके तपस्वी परीक्षा लेनेका विचार किया । वे मन-ही-मन पार्वतीसे बहुत संतुष्ट थे । परीक्षाके ही वहाने पार्वतीजीको देखनेके लिये जटाधारी तपस्वीका रूप धारण करके भगवान् शम्भु 'उनके बनमें गये । अपने तेजसे प्रकाशमान अत्यन्त बृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके प्रसन्नचित्त हो वे दण्ड और छत्र लिये वहाँ-से प्रस्थित हुए । आश्रममें पहुँचकर उन्होंने देखा देवी शिवा सखियोंसे घिरी हुई वेदीपर बैठी हैं और चन्द्रमाकी विद्युद्द कला-सी प्रतीत होती हैं । ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किये भक्तवत्सल शम्भु पार्वती देवीको देखकर प्रीतिपूर्वक उनके पास गये । उन अद्भुत तेजस्वी ब्राह्मणदेवताको आया देख उस समय देवी शिवाने समस्त पूजन-सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा की । जब उनका भलीभाँति सत्कार हो गया, सामग्रियों-द्वारा उनकी पूजा सम्पन्न कर ली गयी, तब पार्वतीने वडी प्रसन्नता और प्रेमके साथ उन ब्राह्मणदेवसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा ।

**पार्वती बोली—**ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण करके आये हुए आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं ? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर ! आप अपने तेजसे इस बनको प्रकाशित कर रहे हैं । मैंने जो कुछ पूछा है, उसे बतलाइये ।

**ब्राह्मणने कहा—**मैं इच्छानुसार विचरनेवाला बृद्ध ब्राह्मण हूँ । पवित्रबुद्धि, तपस्वी, दूसरोंको सुख देनेवाला और परोपकारी हूँ—इसमें संशय नहीं है । तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो और इस निर्जन बनमें किसलिये ऐसी तपस्या कर रही हो, जो पंजेके बलपर खड़ी हो तप करनेवाले मुनियोंके लिये भी दुर्लभ है । तुम न बालिका हो न बृद्धा ही हो, सुन्दरी तरुणी जान पढ़ती हो । फिर किस लिये पतिके बिना इस बनमें आकर कठोर तपस्या करती हो ? भद्रे ! क्या तुम किसी तपस्वीकी सहचारिणी तपस्त्रिनी हो ? देवि ! क्या वह

तपस्वी तुम्हारा पालन-पोषण नहीं करता, जो तुम्हें दीक्षा अन्यत्र चला गया है ? योलो, तुम किसके कुलमें दलत हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारा नाम क्या ? तुम महान्‌भाग्यरूपा जान पड़ती हो । तुम्हारा जल अनुराग व्यर्थ है । क्या तुम वेदमाता गावत्री हो, अर्थ अथवा क्या सुन्दर लयवाली सरस्वती हो ? इन तीव्रों कौन हो—यह मैं अनुमानसे निश्चय नहीं कर पाता ।

**पार्वती बोली—**विप्रवर ! न तो मैं वेदमाता म हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न सरस्वती ही हूँ । इस मैं हिमाचलकी पुत्री हूँ और मेरा नाम पार्वती है । पूर्वों इससे पहलेके जन्ममें मैं प्रजापति दक्षकी पुत्री थी । उस मेरा नाम सती था । एक दिन पिताने मेरे पतिकी निःश्री, जिससे कुपित हो मैंने योगके द्वारा शरीरको लाग था । इस जन्ममें भी भगवान् शिव मुझे मिल गया । परंतु भाग्यवश कामको भस्म करके वे मुझे भी छोड़ दिये । ब्रह्मन् ! शंकरजीके चले जानेपर मैं विरहित हो उठी और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके पिताने यहाँ गङ्गाजीके तटपर चली आयी । यहाँ दीर्घकालिक तपस्या करके भी मैं अपने प्राणबलभको न पा सकी । अग्रिमें प्रवेश कर जाना चाहती थी । इतनेमें ही आज्ञे देख मैं क्षणभरके लिये ठहर गयी । अब आप जहाँ अग्रिमें प्रवेश करूँगी; क्योंकि भगवान् शिवने मुझे नहीं किया । किंतु जहाँ-जहाँ मैं जन्म लूँगी; वहाँ-वहाँ ही पतिरूपमें वरण करूँगी ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! ऐसा कहकर पर्व ब्राह्मण देवताके सामने ही अग्रिमें समा गयी, यद्यपि देव सामनेसे उन्हें बारंबार ऐसा करनेसे रोक रहे थे । प्रवेश करती हुई पर्वतराजकुमारी पार्वतीकी तपस्याके वह आग उसी क्षण चन्द्रन-पङ्कके समान शीतल हो गया । क्षणभर उस आगके भीतर रहकर जब पार्वती आक्रमण-



रे और उठने लगीं, तब ब्राह्मणरूपधारी शिवने सहसा हँसते ए उनसे पुनः पूछा—‘अहो भद्रे ! तुम्हारा तप क्या है, हु कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया । इधर अग्रिसे तुम्हारा रीर नहीं जला, यह तो तपस्याकी सफलताका सूचक है; हु अवतक तुम्हें अपना मनोरथ प्राप्त नहीं हुआ, इससे शक्ति विफलता प्रकट होती है । अतः देवि ! सबको आनन्द मिलाले मुझ थ्रेष्ट ब्राह्मणके सामने तुम अपने अभीष्ट गनोरथके असच वताओ ।’

‘ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ब्राह्मणके इस प्रकार

पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली अम्बिकाने अपनी सखीको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया । पार्वतीसे प्रेरित हो उनकी विजयानामक प्राणप्यारी सखीने, जो उत्तम व्रतको जाननेवाली थी, जटाधारी तपस्वीसे कहा ।

सखी बोली—साधो ! तुमसे पार्वतीके उत्तम चरित्रका और इनकी तपस्याके समस्त कारणोंका वर्णन करती हूँ । आप सुनना चाहते हों तो सुनिये । मेरी सखी गिरिराज हिमाचलकी पुत्री है । वे पार्वती और काली नामसे विख्यात हैं तथा माता मैनकाकी कन्या हैं । अवतक किसीने इनके साथ विवाह नहीं किया है । वे भगवान् शिवके सिवा दूसरे किसीको चाहती भी नहीं । उन्हींके लिये तीन हजार वर्षोंसे तपस्या कर रही हैं । भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये ही मेरी इन सखीने ऐसा तप प्रारम्भ किया है । विप्रवर ! इसमें जो कारण है, उसे बताती हूँ; सुनिये । वे पर्वतराजकुमारी ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हैं और नारदजीके आदेशसे यह कठोर तपस्या कर रही हैं । द्विजश्रेष्ठ ! आपने जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सखीका मनोरथ बता दिया । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! विजयाका यह यथार्थ वचन सुनकर जटाधारी तपस्वी रुद्र हँसते हुए बोले—‘मुझीने यह जो कुछ कहा है, उसमें मुझे परिहासका अनुमान होता है । यदि यह सब ठीक हो तो पार्वती देवी अपने मुँहसे कहें ।’

जटिल ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर पार्वती देवी अपने मुँहसे ही यों कहने लगीं । (अध्याय २६)

### पार्वतीकी वात सुनकर जटाधारी ब्राह्मणका शिवकी निन्दा करते हुए पार्वतीको उनकी ओरसे मनको हटा लेनेका आदेश देना

पार्वती बोली—जटाधारी विप्रवर ! मेरा सारा बुत्तान्त मैंने । मेरी सखीने जो कुछ कहा है, वह ज्यो-कान्तों सत्य और्ज्ञानमें असत्य कुछ भी नहीं है । मैं मन, वाणी और किंवा-किंवा यहीं यहीं हैं, अगल्य नहीं । मैंने जाज्ञात् पतिभावनें अपने नंगरेशी ही वरण किया है । यद्यपि जानती हूँ; वह अपने यथु गति सुरों के से प्राप्त हो जाती है; तथापि मनहीं परामर्श दिया है । मैं जपस्या कर रही हूँ ।

ब्राह्मणसे ऐसी वात कहकर पार्वती देवी उम समय सुप हो रही । तब उनकी वह वात सुनकर ब्राह्मणने कहा ।

ब्राह्मण बोले—इस समयकक नेरे मनमें यह ज्ञाननेकी प्रदल इच्छा थी कि वे देवी यित्त दुर्लभ वल्लुको चाहती हैं ? किसके लिये ऐसा भगवान् तर यह रहा है । किन्तु देवि ! तुम्हारे सुखारविद्वत्ते सब कुछ हुत्तर उम अर्मण वल्लुको जान हेनेके बाद अब मैं पहुँचि जा रहा हूँ; दुर्मारु जैसी इच्छा है,

बैसा करो । यदि तुम मुझसे न कहती तो मित्रता निष्फल होती । अब जैसा तुम्हारा कार्य है, बैसा ही उसका परिणाम होगा । जब तुम्हें इसीमें सुख है, तब मुझे कुछ नहीं कहना है ।

वहाँ ऐसी वात कहकर ब्राह्मणने ज्यों ही जानेका विचार किया, ज्यों ही पार्वती देवीने प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा ।

**पार्वती बोली—**विप्रवर ! आप क्यों जाएँगे ? ठहरिये और मेरे हितकी वात बताइये ।

पार्वतीके ऐसा कहनेपर दण्डधारी ब्राह्मणदेवता रुक गये और इस प्रकार बोले—**देवि !** यदि मेरी वात सुननेका मन है और मुझे भक्तिभावसे ठहरा रही हो तो मैं वह सब तत्त्व बता रहा हूँ, जिससे तुम्हें हिताहितका ज्ञान हो जायगा । महादेवजीके प्रति मेरे मनमें गौरव-बुद्धि है, अतः मैं उनको सब प्रकारसे जानता हूँ; तो भी यथार्थ वात कहता हूँ, तुम सबधान होकर सुनो । वृषभके चिह्नसे अङ्कित ध्वजा धारण करनेवाले महादेवजी सारे शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, सिरपर जटा धारण करते हैं, घोटीकी जगह वाघका चाम पहनते और चादरकी जगह हाथीकी खाल ओढ़ते हैं । हाथमें भीख माँगनेके लिये एक खोपड़ी लिये रहते हैं । हुँड-के-हुँड सौँप उनके सारे अङ्गोंमें लिपटे देखे जाते हैं । वे विष साकर ही पुष्ट होते हैं, अमक्ष्यभक्षी हैं, उनके नेत्र बड़े भद्दे हैं और देखनेमें डरावने लगते हैं । उनका जन्म कव कहाँ और किससे हुआ, यह आजतक प्रकट नहीं हुआ । घर-गृहस्थीके भोगसे वे सदा दूर ही रहते हैं, नंग-धड़िंग धूमते हैं और भूत-प्रेतोंको सदा साथ रखते हैं । उनके एकदो नहीं, दस भुजाएँ हैं । **देवि !** मैं समझ नहीं पाता कि किस कारणसे तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो । तुम्हारा ज्ञान कहाँ चला गया, इस वातको आज सोच-विचारकर मुझे बताओ । दक्षने अपने यशमें अपनी ही पुत्री सतीको केवल यही सोचकर नहीं बुलाया कि वह कपालधारी भिक्षुकी भार्या है । इतना ही नहीं, उन्होंने यशमें भाग देनेके लिये सब देवताओंको बुलाया, किंतु रामसुको छोड़ दिया । सती उसी अपमानके कारण अत्यन्त क्रोधसे व्याकुल हो उठी । उसने अपने प्यारे प्राणोंको तो छोड़ा ही, शंकरजीको भी त्याग दिया ।

‘तुम तो स्त्रियोंमें रक्ष हो, तुम्हारे पिता समस्त पर्वतोंके राजा हैं । किर तुम क्यों इस उम्र तपस्याके द्वारा वैसे पतिको

पानेकी अभिलापा करती हो ? तोनेकी मुद्रा (अग्रर्ण)के बदलेमें उतना ही बड़ा काढ़ लेना चाहती हो ! उन्न चन्दन छोड़कर अपने अङ्गमिं कीचड़ लपेटना चाहती हो । शूर्यके तेजका परित्याग करके चुगुनूकी चमक पाना चाहती हो ? महीन वस्त्र त्यागकर अपने शरीरको चमड़ेसे ढक्के इच्छा करती हो । घरमें रहना छोड़कर वनमें धूनी स्त्री चाहती हो ? तथा देवेश्वरि । यदि तुम इन्द्र आदि लोकोंके त्यागकर शिवके प्रति अनुरक्त हो तो अवश्य ही खड़ोंके भंडारको त्यागकर लोहा पानेकी इच्छा करती हो । वे इस वातको अच्छा नहीं कहा गया है । शिवके सभ तुम तम्भन्व मुझे इस समय परस्परविरुद्ध दिलार्वा देता है । वे तुम, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान दोष पसीं और कहाँ वे रुद्र, जो तीन भद्री आँखें धारण करते हैं । उन तो चन्द्रमुखी हो और शिव पञ्चमुख कहे गये हैं । तुम सिरपर दिव्य वेणी सर्पिणी-सी शोभा पा रही हैं परंतु किं मस्तकपर जो जटाजट बताया जाता है, वह प्रथिद है । तुम्हारे अङ्गमें चन्दनका अङ्गरण होगा और शिवके खड़े चिताका भस्म ! कहाँ तुम्हारी सुन्दर मूदुल साझी और शंकरजीके उपयोगमें आनेवाली हाथीकी खाल ? कहाँ तुम अङ्गोंमें दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्वाङ्गमें लिये हुए सर्प ? कहाँ तुम्हारी सेवाके लिये उद्यत रहनेवाले समूर्ण तो और कहाँ भूतोंकी दी हुई बलिको पसंद करनेवाले किं कहाँ तो मृदज्जन्मकी भधुर ध्वनि और कहाँ ढमलकी डिमिनि कहाँ भैरियोंके समूहकी गड़गड़ाहट और कहाँ अशुभ नाद ? कहाँ ढक्काका शब्द और कहाँ अशुभ गत्वा तुम्हारा यह उत्तम रूप शिवके योग्य कदापि नहीं । यदि उनके पास धन होता तो वे दिग्म्बर (नी) रहते ? सधारीके नामपर उनके पास एक बूढ़ा बैठ रहे दूसरी कोई भी सामग्री उनके पास नहीं है । क्योंकि दूँढ़े जानेवाले बरोंमें जो नारियोंको मुख देनेवाले गुण देते हैं, उनमेंसे एक भी गुण भद्री आँखवाले लोगोंमें है । तुम्हारे परम प्रिय कामको भी उन हर देवताने दर्शन दिया और तुम्हारे प्रति उनका अनादर तो तभी देता है ।

१. अङ्गोंकी संशाओंमें चन्द्रमाको एक संख्याका बोला गया है । एक मुखवाले पुरुष और स्त्रियाँ ही सुन्दर माने जाते हैं एकसे अधिक मुखवाले नहीं । इस प्रकार पक्षुव और पश्चिम भी तुलना की गयी है । ‘चन्द्रमुखी’ पदका दूसरा सब तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान मनोहर है और वे पश्चिम के समान भयंकर हैं ।

# कल्याण



रघुसामयी पार्वतीके साथ इदू भाजणके स्वप्नमें शिवकी बातचीनि

Fig.

गया, वब वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये। उनकी कोई जाति नहीं देखी जाती। उनमें विद्या तथा शानका भी पता नहीं चलता। पिद्याच्च ही उनके सहायक हैं और विष तो उनके कण्ठमें ही दिखायी देता है। वे सदा अकेले रहनेवाले और विषेशालपसे विरक्त हैं। इसलिये तुम्हें हरके साथ अपने मनको नहीं जोड़ना चाहिये। कहाँ तुम्हारे कण्ठमें सुन्दर हार और कहाँ उनके गलेमें नरमुण्डोंकी माला ? देवि ! तुम्हारे और दूसरे रूप आदि तब एक दूसरे के विशद्ध हैं। अतः मुझे

तो यह सम्बन्ध नहीं रखता। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैषा करो। संसारमें जो कुछ भी असद्गुण है, वह सब तुम स्वयं चाहने लगी हो। अतः मैं कहता हूँ कि तुम उस असत्की ओरसे अपने मनको हटा लो। अन्यथा जो चाहे, वह करो; मुझे कुछ नहीं कहना है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यह बात सुनकर पार्वती शिवकी निन्दा करनेवाले उस ब्राह्मणपर मन-ही-मन कुशित हो उठों और उससे इस प्रकार बोलो। ( अध्याय २७ )

### पार्वतीजीका परमेश्वर शिवकी महत्त्वाका प्रतिपादन करना, रोपपूर्वक जटिल ब्राह्मणको फटकारना, सखीद्वारा उन्हें फिर बोलनेसे रोकना तथा भगवान् शिवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दे अपने साथ चलनेके लिये कहना

पार्वती बोली—बाबाजी ! अव्रतक तो मैंने यह समझा था कि कोई दूसरे ज्ञानी महात्मा आ गये हैं। परंतु अब सब शत ही गया—आपकी कलई खुल गयी। आपसे क्या कहूँ—विशेषतः उस दशामें, जब आप अवश्य ब्राह्मण हैं ? ब्राह्मण देवता ! अपने जो कुछ कहा है, वह सब भुजे जाते हैं। परंतु वह सब शूद्र ही है, सत्य कुछ नहीं है। आपने कहा था कि मैं शिवको जानता हूँ। यदि आपकी यह बात टीक ऐती तो आप ऐसी युक्ति एवं बुद्धिके विशद्ध बात नहीं देखते। यह टीक है कि कमी-कमी महेश्वर अपनी लीलाशक्तिसे प्रेरित है तथाकथित अद्गुत वेप धारण कर लिया करते हैं। परंतु चास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्होंने स्पृच्छामें ही शरीर धारण किया है। आप ब्रह्मचारीका स्वरूप धारणकर गुसे टगनेके लिये उपत हो यहाँ आये हैं और अगुचित एवं असंगत युक्तियोंशा सहारा ले छल-कपटसे युक्त बातें कोल रहे हैं। मैं भगवान् शंकरके स्वरूपको भलीभौति जानती हूँ। इसलिये यथावोग्य दिचार करके उनके तत्त्वका दर्शन करती हूँ। यालवदमें शिव निर्दुर्ग ब्रह्म है, कारणवश यमुन ही गये हैं। जो निर्दुर्ग है, समस्त युग जिनके स्वरूप-पूर्ण हैं उनमें ज्ञाति कैसे हो सकती है ? वे भगवान् सदाशिव एवं ब्रह्म विश्वामित्रे आपहर हैं। किर उन पूर्ण परमात्माओं किसी विषयमें बदल नहीं ! पूर्वदालने करनके आरम्भमें भगवान् उन्हें प्रीरिष्युद्दीप्त उत्तर्यामस्तसे कम्भूर्य देप्र प्रदान किये थे। उन्हें उत्तर्यामस्तन उत्तर्याम्भुदूर्या कौन है ? जो नदें दृढ़ि नदय है, उमरी वरदस्त्र अपदा असुरा नारन्तर दृढ़ि है एवं उत्तर्याम्भुदूर्य है। प्रदानि उन्हें उत्तर्याम्भुदूर्य है। किर उनको

शक्तिका दूसरा क्या कारण हो सकता है ? जो लोग सदा प्रेमपूर्वक शक्तिके स्वामी भगवान् शंकरका भजन करते हैं, उन्हें भगवान् शम्भु प्रभुद्वाक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—ये तीनों अक्षय शक्तियाँ प्रदान करते हैं। भगवान् शिवके भजनसे ही जीव मृत्युको जीत लेता और निर्भय हो जाता है। इसलिये तीनोंलोकोंमें उनका 'मृत्युन्यज्य' नाम प्रसिद्ध है। उन्हींके अनुग्रहसे विष्णु विष्णुत्वको, वृषा व्रतस्त्वको और देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं। शिवजीका पक्ष लेकर बहुत बोलनेसे क्या लाभ ? वे भगवान् स्वयं ही महाप्रभु हैं। कल्याणलभी शिवकी सेवासे यहाँ कौन-का मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता ? उन महादेवजीके पास किस बातकी कमी है, जो वे भगवान् सदाशिव स्वयं मुझे धानेकी इच्छा करें ? यदि शंकरकी सेवा न करे तो मनुष्य जात जन्मोतक दर्शि होता है और उन्हींकी सेवाये सेवको लोकमें कमी मष न होनेवाली लम्ही प्राप्त होती है। जिनके सामने आद्रीं सिद्धियाँ निव आकर जिर नीचा किंते इन इन्द्रियसे कृप्य करती हैं कि वे भगवान् इसपर मंत्रपूर्ण हो जायें, उनके लिये कोई भी हितकर वलु दुर्लभ कैसे हो सकती है ? यद्यपि यद्यों माहालिक कही जानेवाली वस्तुएँ शंकरका सेवन नहीं करती, तथापि उनके सारणाश्रमें ही यद्या महार्द भूत है। जिनकी पूजाके प्रभावसे उत्तराकर्त्ता नमूद जानाएँ लिख दे जाती है, यदा निर्विकर इन्द्रियोंउन नमामण्य निर्विकर दर्शने आ रुक्त हैं। जिस उत्तराकर्त्ता कुर्वमें लिखाया गया है महाकर्मन तात्त्व निर्विकर है, उनके दर्शनाश्रमें ही अन्य तद मद्दा पदिद्र हैं। जिस दि अपने बहु रुक्त है।

चिताका भस्त लगते हैं। परंतु यदि उनका लगाया हुआ भस्त अविव्र होता तो उनके शरीरसे झड़कर गिरे हुए उस भस्तको देवतालोग सदा अपने सिरपर कैसे धारण करते ? (अतः शिवके अङ्गोंके स्थानसे अविव्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है।) जो महादेव सगुण होकर तीनों लोकोंके कर्ता-भर्ता और हर्ता होते हैं तथा निर्गुणलूपमें शिव कहलाते हैं, वे बुद्धिके द्वारा पूर्णरूपसे कैसे जाने जा सकते हैं ? परब्रह्म परमात्मा शिवका जो निर्गुण रूप है, उसे आप-जैसे बहिर्मुख लोग कैसे जान सकते हैं ? जो दुरचारी और पापी हैं, वे देवताओंसे बहिष्कृत हो जाते हैं। ऐसे लोग निर्गुण शिवके तत्त्वको नहाँ जानते। जो पुरुष तत्त्वको न जाननेके कारण यहाँ शिवकी निन्दा करता है, उसके जन्मभरका सारा संचित पुण्य भस्त हो जाता है। आपने जो यहाँ अमित तेजस्वी महादेवजीकी निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, उससे मुझे पापकी भागिनी होना पड़ा है। शिवद्वौहीको देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, शिवद्वौहीका दर्शन हो जानेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये।

**इतना कहकर पार्वतीजी उस ब्रह्मणपर अधिक रुष्ट होकर बोली—** अरे रे दुष्ट ! तूने कहा था कि मैं शंकरको जानता हूँ, परंतु निश्चय ही दूने उन सनातन शिवको नहाँ जाना है। भगवान् रुद्रको तू जैसा कहता है, वे वैसे ही क्यों न हों, उनके-जैसे भी बहुसंख्यक रूप क्यों न हों, सत्पुरुषोंके प्रियतम नित्य-निर्विकार वे भगवान् शिव ही मेरे अभीष्टतम देव हैं। ब्रह्मा और विष्णु भी कभी उन महात्मा हरके समान नहीं हो सकते; फिर दूसरे देवताओंकी तो वात ही क्या है ? क्योंकि वे सदैव कालके अधीन हैं। इस प्रकार अपनी शुद्ध बुद्धिसे तत्त्वतः विचारकर मैं शिवके लिये वनमें थाकर बड़ी भारी तपस्या कर रही हूँ। वे भक्तवत्सल सर्वेश्वर शिव ही हम सबके परमेश्वर हैं। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले उन महादेवको ही प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा है।

**ब्रह्माजी कहते हैं—** नारद ! ऐसा कहकर गिरिराज-नदिनी गिरिजा चुप हो गयीं और निर्विकार चित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं। देवीकी वात सुनकर वह ब्रह्मचारी ब्रह्मण ज्यों ही कुछ फिर कहनेके लिये उपत हुआ, त्यों ही शिवमें आसक्तचित्त होनेके कारण उनकी निन्दा सुननेसे विमुख हुईं पार्वती अपनी सखी विजयासे शीघ्र बोलीं।

**पार्वतीने कहा—सखी !** इस अधम ब्रह्मणको यत्नपूर्वक

रोको, यह फिर कुछ कहना चाहता है। वह केवल शिवर्णनिन् एकी करेगा। जो शिवकी निन्दा करता है, केवल उसीके द्वारा नहीं लगता, जो उस निन्दाको गुनता है, वह भी वहाँ पाप भागी होता है। ३४ भगवान् शिवके उपासकोंको चाहिये किंवदि शिवकी निन्दा करनेवालेका सर्वथा वय करें। यदि वह ब्रह्म हो तो उसे अवश्य ही त्याग दें और स्वयं उस निन्दाके साथ से शीघ्र दूर चले जायें। यह दुष्ट ब्राह्मण फिर शिवकी निन्दा करेगा। ब्राह्मण होनेके कारण यह वय तो है नहीं, अतः वह देने योग्य है। किसी तरह भी इसका मुँह नहीं देखना चाहिये। इस स्थानको छोड़कर हमलोग आज ही किसी दूसरे साथें शीघ्र चली चलें, जिससे फिर इस अन्नार्नीके साथ करनेका अवकर न मिले।

**ब्रह्माजी कहते हैं—** नारद ! ऐसा कहकर उमाने लोहे अन्यत्र जानेके लिये पैर उठाया, त्यों ही भगवान् शिवने आप साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हो प्रिया पार्वतीका हाथ पकड़ लिया। शिवा जैसे स्वरूपका ध्यान करती थीं, वैसा ही सुन्दर स धारण करके शिवने उन्हें दर्शन दिया। पार्वतीने लतामु अपना मुँह नीचेकी ओर कर लिया।

**तब भगवान् शिव उनसे बोले—** प्रिये ! मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी ? अब मैं फिर कभी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो। मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेव नहीं है। देवि ! आजसे मैं तपस्याके मोल खरीदा हुआ तुम्हारा यह हूँ। तुम्हारे सौन्दर्यने भी मुझे मोह लिया है। अब तुम्हे बिना मुझे एक क्षण भी युगके समान जान पड़ता है। लता छोड़ो। तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो। गिरिराजनदिनि ! भगवान् ! मैंने जो कुछ कहा है, उसपर श्रेष्ठ बुद्धिसे विज्ञा करो। सुस्थिर चित्तवाली पार्वती ! मैंने नाना प्रकारसे तुम्हारे वारंवार परीक्षा ली है। लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले मुझ स्वजनके अपराधको क्षमा कर दो। शिवे ! तीनों लोकों तुम्हारी-जैसी अनुरागिणी मुझे दूसरी कोई नहीं दिखायी देंगी। मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। प्रिये ! मेरे पास आओ। तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा वर हूँ। तुम्हारे साथ मैं शीघ्र ही अपने निवासस्थान उत्तम पर्व कैलासको चलूँगा।

\* न केवल भवेत् पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि ।

यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदित ॥

( शिं पु० रु० सं० पा० ख० २८। ३७ )

ब्रह्माजी कहते हैं—देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी अनन्दमग्न हो उठीं। उनका तपस्या-जनित पहलेका सारा कष्ट मिट गया। मुनिश्रेष्ठ ! सती-साथी

पार्वतीकी सारी शकाचट दूर हो गयी; क्योंकि परिश्रमका फल प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पहलेवाला सारा श्रम नष्ट हो जाता है। (अध्याय २८)

## शिव और पार्वतीकी बातचीत, शिवका पार्वतीके अनुरोधको स्वीकार करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! परमात्मा हरकी यह वात सुनकर और उनके अनन्ददायी रूपका दर्शन पाकर पार्वतीको बड़ा हर्ष हुआ। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बहुत मुखवा अनुभव करने लगीं। फिर उन महामात्मी शिवाने अपने पास ही खड़े हुए भगवान् शिवसे कहा।

पार्वती बोली—देवेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं। प्रभो ! पूर्वकालमें आपने जिसके लिये हर्षपूर्वक दक्षके यज्ञका विनाश किया था, उसे क्यों भुला दिया था ? वे ही आप हैं और वही मैं हूँ। देवदेवेश्वर ! इस समय मैं तारकासुरसे हुम्ला पानेवाले देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये रानी मेनाके गमसे उत्पन्न हुई हूँ। देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझापर कृपा करने हैं तो मेरे पति हो जाइये। ईशान ! प्रभो ! मेरी यह वात मान लीजिये, आपकी आशा लेकर मैं पिताके घर जाती हूँ। अब आप अपने विवाहस्थ परम उत्तम विष्णु यशों भर्वत्र विख्यात कीजिये। नाथ ! प्रभो ! आप तो लीला करनेमें कुशल हैं। अतः मेरे पिता हिमवान् के पास चलिये और वाचक बनकर उनसे मेरी वाचना कीजिये। लोकमें मेरे पिताके यशको फैलाते हुए आपको ऐसा ही करना चाहिये। इस तरह आप मेरे सम्पूर्ण ईश्वराभानके सफल बनाइये। जब आप प्रसन्नतापूर्वक प्रृथियों-में मेरे पिताको मत्र वातोंकी ज्ञानकारी करायेंगे, तब मेरे लिये आपने भई-यन्मुखोंके साथ आपकी आशाका पालन परेंगे—इसमें गंदेह नहीं है। जब मैं पहले प्रजापति दक्षकी पृथ्या भी और मेरे पिताने अपके लाभमें नेहा हाथ दिया, इस समय आपने आत्मोक्त विभिन्ने विवाहका कार्य पूर्य नहीं किया। मेरे पिता दक्षमें छहोंसी पूजा नहीं की। अतः उमा नियमें एहसानविषयक यही भरो छुटि रह गयी। इसीलिये ! मरादेह ! व्यापती चर देवताओंके कार्यकी विद्युति लिये चर वातोंका विभिन्न विवाहका विवाह करें। विवरी वैष्णी रीति है, उमारा पालन आपके विवरी विवाह कराया जाएँगे। मेरे पिता विवाहका वैष्णी

तरह शात हो जाना चाहिये कि मेरी पुत्रीने शुभकारक तपस्या की है।

पार्वतीकी ऐसी वात सुनकर भगवान् सदाचित्र वडे प्रसन्न हुए और उनसे हँसते हुए-से प्रेमपूर्वक बोले।

शिवने कहा—देवि ! महेश्वरि ! मेरी यह उत्तम वात सुनो, यह उचित मङ्गलकारक और निर्दोष है। इसे सुनकर बैसा ही करो। वरानने ! ब्रह्म आदि जितने भी प्राणोंहैं, वे सब अनित्य हैं। भास्मिनि ! यह यत्र जो कुछ दिलायी देता है, इसे नश्वर समझो। मैं निर्गुण परमात्मा ही गुणोंसे युक्त हो एकसे अनेक हो गया हूँ। जो अपने प्रकाशते प्रकाशित होता है, वही परमात्मा मैं दूसरेके प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला हो गया। देवि ! मैं स्वतन्त्र हूँ, परंतु तुमने मुझे परतन्त्र बना दिया। समस्त कर्मोंको करनेवाली प्रकृति एवं महागाया तुम्हों हो। यह सम्पूर्ण जगत् मायामय ही रक्षा गया है। मुझ सर्वात्मा परमात्माने अपनी उत्तम ब्रह्मिके द्वारा इसे धारणमात्र कर रखवा है। सर्वत्र परमात्मभाव रखनेवाले सर्वात्मा पुण्यवानोंने इसे अपने भीतर संचाला है तथा यह तीनों गुणोंसे आयोग्यित है। देवि ! वरयणिनि ! कौन मुख्य वह है ? कौनसे ऋतु-गम्भीर हैं ? अथवा कौन दूसरे-दूसरे उपग्रह हैं ? इस समय तुमने शिवके लिये दवा लगा दी—किस कर्तव्यका विधान किया है ? गुण और कार्यके भेदमें इस दोनोंने इस जगतमें भज्जवलत्वताके कारण भनतोंको सुख देनेके लिये अशतार महण किया है। तुम्हाँ रजःक्षमात्रोमयी ( अग्निगुणात्मिका ) नूस्म प्रदूषित हो, सदा व्यापासकृद्यक संगुणा और निर्वृगा भी हो। हुमस्में ! मैं नहीं सम्पूर्ण भूतोंका भ्रात्वा, निर्विकरण एवं निर्विद्युत हूँ। भज्जवल इन्द्रामें मैंने दर्शन भारण किया है। ईश्वरि ! मैं दृढ़तरे पिता हिमाल्यके पास नहीं जा सकता तथा निरुक्त हिमाल हरह तुम्हारी उनसे पालता भी नहीं कर सकता। मिरिगांठ, नन्दिनि ! सदाचार तुम्हें भ्रात्वा, निर्विकरण, भज्जवल एवं भूती अपने छुंदने वेदेह ( दी ) दर लाल मिरामेल भज्जवल लक्ष्मीके प्राप्त हो जाता है ; नन्दिनि ! ऐसा लाल

हमारे लिये क्या कहती हो ? भद्रे ! तुम्हारी आशासे मुझे सब कुछ करना है। अतः जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।

महादेवजीके ऐसा कहनेपर भी सती-गांवी कमललोचना गहादेवी शिवाने उन भगवान् शंकरको वारंवार भक्तिभावसे प्रणाम करके कहा।

**पार्वती बोली—**नाथ ! आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति। इस विषयमें विचार करनेकी कोई वात नहीं है। हम दोनों स्वतन्त्र और निर्गुण होते हुए भी भक्तोंके अधीन होनेके कारण सगुण हो जाते हैं। शम्भो ! प्रभो ! आपको प्रथलपूर्वक मेरी प्रार्थनाके अनुसार कार्य करना चाहिये। शंकर ! आप मेरे लिये याचना करें और हिमवान्को दाता बननेका सौभाग्य प्रदान करें। महेश्वर ! मैं सदा आपकी भक्ता हूँ; अतः मुझपर कृपा कीजिये। नाथ ! सदा जन्म-जन्ममें मैं ही आपकी पली होती रही हूँ। आप परब्रह्म परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, प्रकृतिसे परे हैं, निविकार, निरीह एवं स्वतन्त्र परमेश्वर हैं; तथापि भक्तोंके उद्धारमें संलग्न होकर वहाँ सगुण भी हो जाते हैं, स्वात्माराम होकर भी लीलाविहारी बन जाते हैं; क्योंकि आप नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें

कुशल हैं। महादेव ! गहेश्वर ! मैं ये प्रकासे अद्य जानती हूँ। सर्वंग ! अब बहुत कहनेसे क्या लाभ ! मूँह दया कीजिये। नाथ ! गहान् अद्युत लीला करके लेखने श्रद्ध मुख्याका विस्तार कीजिये, जिसे गा-गाकर लोग अद्य दी भवत्यगरसे पार हो जायें।

**व्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! ऐसा कहकर लिखे महेश्वरको वारंवार प्रणाम किया और मन्त्रक बुजाकर हं जोड़ वे चुप हो गयीं। उनके ऐसा कहनेपर महामा महेश्वरोक्तीलाला अनुशरण करनेके लिये वैसा करना सीखा। लिया। पार्वतीने जो कुछ कहा था, उसीको प्रसन्नकरने करनेके लिये उच्चत होकर वे हँसने लगे। तदनन्तर ही भरे हुए शम्भु अन्तर्धान हो कैलासको चले गये। उसमय कालीके निरहसे उनका चित्त उद्दृढ़ी ओर तित्व गया। कैलासपर जाकर परमानन्दमें निमग्न हुए महेश्वरने नन्दी आदि गणोंसे वह सारा बृत्तान्त कह दुनाया। वे आदि सभी गण भी वह सब समाचार सुनकर अत्यन्त ही हो गये और महान् उत्सव करने लगे। नारद ! उस उत्सव ही महान् मञ्जूल होने लगा। सबके दुःख नष्ट हो गये। रुद्रदेवको भी पूर्ण आनन्द प्राप्त हुआ। (अब्द २३)

### पार्वतीका पिताके घरमें सत्कार, महादेवजीकी नटलीलाका चमत्कार, उनका मेना आदिसे पार्वतीको माँगना और माता-पिताके इनकार करनेपर अन्तर्धान हो जाना

**ब्रह्माजी कहते हैं—**नारद ! भगवान् शंकरके अपने स्थानको चले जानेपर सखियोंसहित पार्वती भी अपने रूपको सफल करके महादेवजीका नाम लेती हुई पिताजीके घर चली गयी। पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमाचल दिव्य रथपर आरूढ़ हो हर्षसे विहृल होकर उनकी अगवानीके लिये चले। पुरोहित, पुरवासी, अनेकानेक सखियों तथा अन्य सब सम्बन्धी भी आ पहुँचे। पार्वतीके सारे भाई मैनाक आदि वडे हर्षके साथ जय-जयकार करते हुए उन्हें घर ले आनेके लिये गये।

इसी बीचमें पार्वती अपने नगरके निकट आ गयी। नगरमें प्रवेश करते समय शिवा देवीने माता-पिताको देखा, जो अत्यन्त प्रसन्न और हर्षसे विहृलचित्त होकर दौड़े चले आ रहे थे। उन्हें देखकर हर्षसे भरी हुई कालीने सखियों-सहित प्रणाम किया। माता-पिताने पूर्णरूपसे आशीर्वाद दे पुरीकी छातीसे लगा लिया और ‘ओ, मेरी बच्ची !’ ऐसा

कहकर प्रेमसे विहृल हो रेने लगे। तत्सनात व वरकी दूसरी-दूसरी लियों तथा भाभियोंने भी वडी प्रसन्न साथ प्रेमपूर्वक उन्हें झुजाओंमें भरकर भेड़। ‘देवि ! हे अपने कुलका उद्धार करनेवाले उत्तम कार्यकी अच्छी तरह सिद्ध किया है। तुम्हारे सदाचरणसे हम सद लोग परिवर्ती गये’ ऐसा कहकर सब लोग हर्षके साथ पार्वतीकी भूरिदृश्यांसा करते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे। लोगोंने उद्द और सुन्दर फूलोंसे शिवादेवीका सानन्द पूजन किया। उससे अवसरपर विमानपर दैठे हुए देवताओंने पार्वतीको नस्कर करके उनपर फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति की। नारद ! उस समय तुम्हें भी एक सुन्दर रथपर चिठाकर ब्राह्मण भी सब लोग नगरमें ले गये। जिन ब्राह्मणों, सखियों तथा दूसरी स्त्रियोंने वडे आदरके साथ शिवाका घरके भीतर प्रवेश कराया। स्त्रियोंने उनके ऊपर बहुत-सी वस्तुएँ निछारवी ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। मुनीश्वर ! पिता हिमवान् ३

माता मेनकाको बढ़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने गृहस्थ-  
में आश्रमको सफल माना और वह अनुभव किया कि कुपुत्रकी  
क्षम थोक्षा सुपुत्री ही थेष्ठ है। गिरिजाजे ब्राह्मणों और बन्धी-  
कों जनोंको धन दिया और ब्राह्मणोंसे मङ्गलपाठ करवाया।

युने ! इस प्रकार पार्वतीके साथ हर्षभरे माता-पिता, भाव  
रहे, तथा भौजाइयाँ भी घरके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठे।

स्त्री तदनन्तर हिमवान् प्रसन्ननित्तसे सबका आदर-सत्कार  
देखकरके गङ्गा-स्नानके लिये गये। इसी दीनमें सुन्दर लीला  
इत्तकरनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शाम्भु एक अच्छा नाचनेवाला  
होनेट बनकर मेनकाके पास गये। उन्होंने वायें हाथमें सींग  
द्वारा और दाहिने हाथमें डमरु ले रखवा था। पीठपर कथरी रख  
ज्ञेयेहोड़ी थी। लाल बक्क पहने वे भगवान् रुद्र नाच और  
दंगेणामें अपनी निपुणताका परिचय दे रहे थे। सुन्दर नटका



स्त्री हिये हुए भगवान् दिवने मेनकाके पास दैदी  
दिलोंकी दैदीये लम्बि सुन्दर हृषि लिता और अस्तक  
कला प्रशरदे दीज जाये। उर्देमि दहौं सुन्दर अस्ति  
देहों प्रश्न रहैं रसस्तो भी रजता लज्जा नक्का प्रशरदी  
! राजेन्द्रिनि राजा रही ! लट्टराही हृषि नीराही देहोंको

लिये नगरके सभी स्त्री-पुरुष एवं बालक और बृद्ध भी  
सहसा वहाँ आ पहुँचे। सुने ! उस सुमधुर गीतको सुनकर  
और उस मनोहर उत्तम नृत्यको देखकर वहाँ आये हुए  
सब लोग तस्काल मोहित हो गये। मेना भी मोही गयी।  
उधर पार्वतीने अपने हृदयमें भगवान् शंकरका साक्षात् दर्शन  
किया। वे त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अल्पत्त सुन्दर  
दिखायी देते थे। उनका सारा अङ्ग विभूतिसे विभूषित था।  
वे हङ्गियोंवी मालसे अलंकृत थे। उनका मुख सूर्य, चन्द्र  
एवं अग्निलिप तीन नेत्रोंसे उद्घासित था। उन्होंने नागका  
यजोपवीत धारण किया था। उनके उस सुरभ्य रूपको देखकर  
दुर्गा प्रेमावेशसे मूर्छित हो गयी। गौरवर्णविभूषित दीनवन्धु  
दयासिन्धु और सर्वथा मनोहर महेश्वर पार्वतीसे कह रहे थे  
कि 'वर माँगो।' अपने हृदयमें विराजमान महादेवजीको इस  
रूपमें देखकर पार्वती देवीने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-  
मन यह वर माँगा कि 'आप मेरे पति हो जाइये।' प्रीतियुक्त  
हृदयसे द्विवाको वैसा कल्याणकारी वर देकर वे पुनः अत्तर्धीन  
हो गये और वहाँ पूर्ववत् भिक्षा भाँगनेवाला नट बनकर  
उत्तम चत्य करने लगे।

उस समय मेना सोनेवी थालीमें रख्ये हुए वहुत-से  
सुन्दर रस्ते उन्हें प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिये गयों। उनका  
वह ऐश्वर्य देखकर भगवान् शंकर मन-ही-मन वहै प्रमाण  
हुए। परंतु उन्होंने उन रस्तोंको स्वीकार नहीं किया। वे  
गिरामें उनकी पुत्री शिवाको ही माँगने लगे और उनः  
औतुकवश सुन्दर हृषि एवं गन चरनेको उणत हुए।  
मेना उन भिक्षुक नटकी वात सुनकर अस्तका कुपित हो उठी  
और उसे डॉटने-फड़कारने लगी। उनके मनमें उसे बाहर  
निकाल देनेकी इच्छा हुई। इसी दीनमें गिरिजा दिवाम  
गङ्गावीसे नहाकर लौट आये। उन्होंने अपने लागते उप  
निकार गिरुक्षों अँगनमें राजा देखा। मेनाके सुखने  
लाई वाते सुनकर उनको भी बद्ध लौग गुश्चा। उन्होंने अपने  
सेवकोंको दाढ़ा दी कि इस तटको बाहर निकाल दो।  
हुलियेष्ठ ! वे नद्याक विश्वासदय अस्तियी भैंसि अस्ति  
उसम तेजसे प्रवर्षित हो रहे थे। उन्हें घूसा भी बढ़िया  
था। इसकिये दौरे भी उम्हे बाहर न नियाय दिया। दाढ़ा !  
किर हो कला प्रशरदी दीलामें लियारा उन भिक्षु-  
दिलेनहिने दीलतहरे अस्ता अस्तन प्रशर लियाका अस्तम  
किया। दिल्लामें ऐसा, भिक्षुत यों दीप्तर ही अस्तम  
दिल्लामें अस्त अस्त यों दीप्तर ही। उसके तटकाल दिल्ला-

कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीतवस्त्र शोभा पाते हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। हिमवान्से पूजाके समय गदाधारी श्रीहस्तिको जो-जो पुण्य आदि चढ़ाये थे, वे सब उन्होंने भिक्षुके शरीर और मस्तकपर देखे। तत्पश्चात् गिरिराजने उन भिक्षु-शिरोमणिको जागत्स्थान चतुर्मुख व्रहाके रूपमें देखा। उनके शरीरका वर्ण लाल था और वे वैदिक सूक्तका पाठ कर रहे थे। तदनन्तर शैलराजने उन कौतुककारी नटराजको एक क्षणमें जगत्के नेत्ररूप सूर्यके आकारमें देखा। तात। इसके बाद वे महान् अद्भुत रुद्रके रूपमें दिखायी दिये। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। वे उत्तम तेजसे सम्पन्न रमणीय रुद्र धीरे-धीरे हँस रहे थे। फिर वे केवल तेजोमय रूपमें हृषिगोचर हुए। उनका वह स्वरूप निराकार, निरञ्जन, उपाधिशूल्य, निरीह एवं अत्यन्त अद्भुत था। इस प्रकार

हिमवान्से उनके बहुत-से रूप देखे। इससे उन्हें वज्र तिळ हुआ और वे तुरंत ही परमानन्दमें निपम हो गये। तबल सुन्दर लीला करनेवाले उन भिक्षु-शिरोमणिने हिमवत् की मेनासे हुर्गाको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। हूसरी छोड़ ग्रहण नहीं की। परंतु शिवकी मायासे भोहित होनेके द्वारा शैलराजने उनकी उस प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। ही भिक्षुने कोई वस्तु नहीं ली और वे वहाँसे अत्तर्वास होने के तब मेना और शैलराजकी उत्तम ज्ञान हुआ औ सोचने लगे—‘भगवान् शिव हमें अपनी मायासे ह अपने स्थानको छले गये।’ यह विचारकर उन दे भगवान् शिवमें पराभक्ति हुई, जो महान् मोक्षकी प्राप्ति वाली, दिव्य तथा सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करनेवाली (अध्याय

### देवताओंके अनुरोधसे वैष्णव ब्राह्मणके वेपमें शिवजीका हिमवान्से घर जाना और शिवकी निन्दा करके पार्वतीका विवाह उनके साथ न करनेको कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेना और हिमवान्सीकी भगवान् शिवके प्रति उच्चकोटिकी अनन्य भक्ति देख इन्द्र आदि सब देवता परस्पर विचार करने लगे। तदनन्तर गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजीकी सम्मतिके अनुसार सभी मुख्य देवताओंने शिवजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता चोले—देवदेव ! महादेव ! करणाकर ! शंकर ! हम आपकी शरणमें आये हैं, कृपा कीजिये। आपको नमस्कार है। स्वामिन् ! आप भक्तवत्सल होनेके कारण सदा भक्तोंके कार्य सिद्ध करते हैं। दीनोंका उद्धार करनेवाले और दयाके सिन्धु हैं तथा भक्तोंको विपत्तियोंसे छुड़ानेवाले हैं।

इस प्रकार महेश्वरकी स्तुति करके इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने मेना और हिमवान्सी अनन्य शिवभक्तिके विषयमें सारी बातें आदरपूर्वक बतायीं। देवताओंकी वह बात सुनकर महेश्वरने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हँसते हुए उन्हें आश्वासन देकर विदा किया। तब सब देवता अपना कार्य सिद्ध हुआ मानकर भगवान् सदाशिवकी प्रशंसा करते हुए शीघ्र अपने धरको लैटकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वर भगवान् शम्भु, जो मायाके स्वामी हैं, निर्विकार चित्तसे शैलराजके यहाँ गये। उस समय गिरि-

राज हिमवान् सभाभवनमें बन्धुवग्से निरे हुए पाँड़ी प्रसन्नतापूर्वक घैठे थे। इसी अवसरपर वहाँ सदाशिवने प्रक्रिया। वे हाथमें दण्ड, छत्र, शरीरपर दिव्य वस्त्र, लंउ उच्च्यल तिलक, एक हाथमें स्फटिककी माला और शालग्राम धारण किये भक्तिपूर्वक हरिनामका जप कर और देखनेमें साधुवेशधारी ब्राह्मण जान पड़ते थे। उन्हें देख सपरिवार हिमवान् उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अपूर्व अतिथिदेवताको भूतलपर दण्डके समान पड़कर भावसे साधाङ्ग प्रणाम किया। देवी पार्वती ब्राह्मणल प्राणेश्वर शिवको पहचान गयी थीं। अतः उन्होंने भी उमस्तक छुकाया और मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताके साथ उस्तुति की। ब्राह्मणरूपधारी शिवने उन सबको ऐसा आशीर्वाद दिया। किंतु शिवाको सबसे अधिक मतोंमें शुभाशीर्वाद प्रदान किया। शैलधिराज हिमवान्से उन्हें से उन्हें मधुपूर्वक आदि पूजन-सामग्री-मैट की और ग्राम बड़ी प्रसन्नताके साथ वह सब ग्रहण किया। तत्पश्चात् गिरि हिमाचलने उनका कुशल-समाचार पूछा। मुने ! अत्यन्त पूर्वक उन द्विजराजकी विधिवत् पूजा करके शैलराजने पूछे—‘आप कौन हैं ?’ तब उन ब्राह्मणशिरोमणिने गिरिजने ही आदरपूर्वक कहा।



वे थेष्ठ व्राण्णण बोले—गिरिश्रेष्ठ ! मैं उत्तम विद्वान्  
व वालाण हूँ और ज्ञातिपीढ़ी वृत्तिका आश्रय लेकर भूतलपर  
य वरला रहला हूँ । मनके समान मेरी गति है । मैं सर्वत्र  
मैं सर्वथा और गुरुकी दी हुई शक्तिसे सर्वशः हूँ । परेपकारी,  
प्राण, दयालिन्धु और विकारनाशक हूँ । मुझे शात हुआ  
है, तुम महादेवजीको अपनी पुच्छी देना चाहते हो । इस  
मैरीसी उन्दर रूपवाली दिव्य एवं सुलक्षणा कल्याको एक  
प्रसरित, अवाक्षः तुरुप और गुणहीन वरके हाथमें देना  
होते हैं । वे रुद्र देवला मरणघटमें यास करते, शरीरमें सौंप  
हैं ।

मैताका कोपभवनमें प्रवेश, भगवान् शिवका हिमवानुके पास सप्तर्षियोंको भेजना तथा हिमवानुद्वारा  
उनका सत्कार, सप्तर्षियों तथा अरुन्धतीका और महापि वसिष्ठका मैता और हिमवानुका

### समझाकर पार्वतीका विवाह भगवान् शिवके साथ करनेके लिये कहना

प्रलोकी रहते हैं—ग्रामपालपाती शिवजीके वक्तव्यों  
में वे लाल रुद्र प्रभाव पड़ा और उन्हें तुम्हीं होकर  
मैरीसी उन्दर ! ऐ देखत्वा व्याघ्रते शिवजीकी  
विद्या की है, वे तुम्हर भेद नह उन्हीं लोकसे दूर  
हैं इसलिये गम्भीर हैं । रुद्र ! रुद्र है लाल, हाल  
मैरी उन्हें उल्लिख है । मैं उन्हे अपनी हुनरका एकी  
दृष्टि हूँ । वही ज्ञान मेरे द्वारा नह है, कहाँसे है वे

लपेटे रहते और योग साधते फिरते हैं । उनके पास पहननेके  
लिये एक वस्त्र भी नहीं है । वैसे ही नंग-धड़ंग घूमते हैं ।  
थाभूपणकी जगह सर्प धारण करते हैं । उनके कुलका नाम  
आजतक किसीको ज्ञात नहीं हुआ । वे कुपात्र और कुशील  
हैं । स्वभावतः विहारसे दूर रहते हैं । सारे शरीरमें भस्त्र स्नाते  
हैं । क्रोधी और अविवेकी हैं । उनकी अवस्था कितनी है,  
यह किसीको ज्ञात नहीं है । वे अत्यन्त कुत्सित लटाका बोक्ष सदा  
सिरपर धारण किये रहते हैं । वे भलेन्हुरे सबको आश्रय देने-  
वाले, भ्रमणशील, नागहारधारी, भिक्षुक, कुमार्गमरायण तथा  
हृष्टपूर्वक वैदिकमार्गिका स्वाग करनेवाले हैं । ऐसे अयोग्य वरको  
आप अपनी वेदी व्याहना चाहते हैं ? अचलराज ! अवश्य ही  
आपका यह विचार मङ्गलदायक नहीं है । नारायणकुलमें  
उत्तम ! शानियोंमें श्रेष्ठ गिरिराज ! मेरे कथनका मर्म समझो ।  
तुमने जिस पात्रको हूँढ़ रखा है, वह इस योग्य नहीं है कि  
उसके हाथमें पार्वतीका हाथ दिया जाय । श्रीलराज !  
तुम्हीं देखो, उनके एक भी भाई-बन्धु नहीं हैं ।  
तुम तो वडे-वडे रत्नोंकी खान हो । किंतु उनके घरमें भूजी  
भाँग भी नहीं है—वे सर्वथा निर्धन हैं । गिरिराज ! तुम श्रीग  
ही अपने भाई-बन्धुओंसे, मैतादेवीसे, सभी वैदंसे और पण्डितोंसे  
भी प्रवल्पूर्वक पूछ लो । किंतु पार्वतीसे न पूछना; क्योंकि  
उन्हें शिवके गुण-दोषकी परत नहीं है ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वे नालण-  
देवता, जो नाना प्रकारकी लीला करनेवाले शान्तस्वरूप शिव ही  
थे, श्रीम सा-पीकर आनन्दपूर्वक वहाँसे अपने घरको  
चल दिये । ( अध्याय ३१ )

निर्दिशेह मर जाइयी, अनी इस शरणे द्वारा दूरी क्षमद  
विद ला देयी, सार्वतीक नामें कौनी लगान्त लाज दर्शनमें जारी  
जाइयी अपना उसे महात्मामने तुम्हे हृषीक रुद्र इत्यर्थी  
दर्शयो रुद्रके नाम सही नहीं । ऐसा बहुत ज्ञान तुम्हें  
जो समझमें नहीं नहीं और अपने इसके इनमें से तीन हूँ  
पर्वतीर लौट सकीं ।

इपर भगवन् दिवसे इस दाता द्वारा यहाँ, दूसरे दिवसे

ब्रह्मा, विष्णु और हर नाम धारण करती है, उन्हें कौन निर्धन अथवा दुखी कह सकता है ? ब्रह्मलोकमें निवास करनेवाले ब्रह्मा, क्षीरसागरमें रहनेवाले विष्णु तथा कैलासधासी हर—ये सब शिवकी ही विभूतियाँ हैं । शिवसे प्रकट हुई प्रकृति भी अपने अंशसे तीन प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करती है । जगत्‌में लोलाशक्तिसे प्रेरित हो वह अपनी कलासे बहुत-सा रूप धारण करती है । समस्त वाढ़्मयकी अधिष्ठात्री देवी वाणी उनके मुखसे प्रकट हुई हैं और सर्वसम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मी वक्षःस्थल-से आविर्भूत हुई हैं तथा शिवाने देवताओंके एकत्र हुए तेजसे अपनेको प्रकट किया था और सम्पूर्ण दानवोंका वध करके देवताओंको स्वर्णकी लक्ष्मी प्रदान की थी ।

देवी शिवा कल्पान्तरमें दक्षपत्रीके उदरसे जन्म ले सती नामसे प्रसिद्ध हुई और हरको उन्होंने पतिके रूपमें प्राप्त किया । दक्षने स्वयं ही भगवान् शिवको अपनी पुत्री दी थी । सतीने पतिकी निन्दा सुनकर योगवल्से अपने शरीरको त्याग दिया था । वे ही कल्याणमयी सती अब तुम्हारे वीर्य और मेनाके गर्भसे प्रकट हुई हैं । शैलराज ! ये शिवा जन्म-जन्ममें शिवकी ही पक्षी होती हैं । प्रत्येक कल्पमें बुद्धिरूपा दुर्गा ज्ञानियोंकी श्रेष्ठ माता होती हैं । ये सदा सिद्ध, सिद्धिदायिनी और सिद्धिरूपिणी हैं । भगवान् हर चिताभस्के रूपमें सतीके अस्थिचूर्णको ही स्वयं प्रेमपूर्वक अपने अङ्गोंमें धारण करते हैं ।

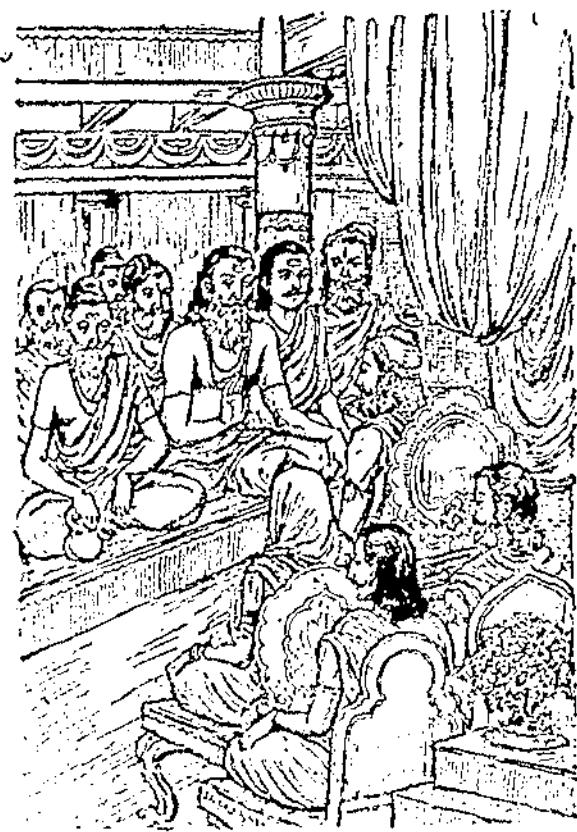
अतः गिरिराज ! तुम स्वेच्छासे ही अपनी मङ्गलमयी कन्याको भगवान् इसके हाथमें दे दो । तुम यदि नहीं दोगे तो क्ष स्वयं प्रियतमके स्थानमें चली जायगी । देवेश्वर शिव तुम्हारे पुत्रीका अनन्त कलेश देखकर ब्राह्मणके रूपमें इसकी तरसाके स्थानपर थाये वे और इसके साथ विवाहकी प्रतिज्ञा करके इसे अश्वासन एवं वर देकर अपने आवास-स्थानको लौट गये थे । गिरे ! पार्वतीकी प्रार्थनासे ही शम्भुने तुम्हारे पास आकर इसके लिये याचना की और तुम दोनोंने शिवभक्तिमें मन लालू उनकी उस याचनाको स्वीकार कर लिया था । गिरेश ! बताओ, फिर किस कारणसे तुम्हारी बुद्धि निपरीत हो गयी ? भगवान् शिवने देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित होकर हम सभ ग्रुणियोंको और अरुन्धती देवीको भी तुम्हारे पास भेजा है । हम तुम्हें यही शिक्षा देते हैं कि तुम पार्वतीको रुद्रके हाथों दे दो । गिरे ! ऐसा करनेपर तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा शैलेन्द्र ! यदि तुम स्वेच्छासे अपनी देवी शिवाको शिवके हाथमें नहीं दोगे तो भावीके बलसे ही इन दोनोंका विवाह हो जायगा । तात ! भगवान् शंकरने तपस्यामें लगी हुई पार्वती ऐसा ही वर दिया है । ईश्वरकी की हुई प्रतिज्ञा कभी पल नहीं सकती । गिरिराज ! ईश्वरके वशमें रहनेवाले समस्त मानुषयोंकी भी प्रतिज्ञाका संसारमें किसीके द्वारा उल्लङ्घन होने कठिन है । फिर साक्षात् ईश्वरकी प्रतिज्ञाके लिये तो क्षति ही क्या है ? ( अध्याय ३२-३३ )

—————  
सप्तर्षियोंके समझाने तथा मेरु आदिके कहनेसे पतीसहित हिमवान्नका शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना तथा सप्तर्षियोंका शिवके पास जा उन्हें

सब बात बताकर अपने धामको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर वसिष्ठने ग्राचीन कालमें राजा अनरण्यके द्वारा अपनी कन्या पचाका पिप्पलदके साथ विवाह करनेकी तथा धर्मके वरदानसे पिप्पलदके तश्ण अवस्था, रूप, गुण, सदा स्थिर रहनेवाले यौवन, कुवेर और इन्द्रसे भी चढ़कर धन-ऐश्वर्य, भक्ति, सिद्धि एवं समता प्राप्त

करनेकी तथा पद्माके स्थिर यौवन, सौभाग्य, सम्पत्ति एवं भर्तु द्वारा परम गुणवान् दस पुत्रोंके प्राप्त करनेकी कथा तुम्हारा कहा—शैलेन्द्र ! तुम मेरे कथनके सारतत्त्वको समझकर अपनी पुत्री पार्वतीका हाथ महादेवजीके हाथमें दे दो और मैनाशहि तुम्हारे मनमें जो कुरोष है, उसे त्याग दो । आजसे एक साल



व्यतीत हेमेपर अत्यन्त शुभ और दुर्लभ मुहूर्त आनेवाला है। उस समय चन्द्रमा लग्नके स्वामी होकर अपने पुत्र बुधके साथ लग्नमें ही स्थित होंगे। उनका रोहिणीनक्षत्रके साथ योग देणा। चन्द्रमा और तारे शुद्ध होंगे। मार्गशीर्षमासके अन्तर्गत समर्ण दोपोसे रहित सोमवारको, जब कि लग्नपर समर्ण शुभ-महीनी दृष्टि होगी, पापग्राहोंकी दृष्टि नहीं होगी तथा बृहस्पति ऐसे स्थानपर स्थित होंगे, जहाँसे वे उत्तम संतान और पतिका गौभाग्य देनेमें समर्थ होंगे। ऐसे मुहूर्तमें तुम अपनी कन्या बूलप्रयत्नि ईश्वरी जगदग्न्या पर्वतीको जगत्-पिता भगवान् द्विरक्त हाथमें देकर कृतार्थ हो जाओ।'

ऐसा कहकर शानिशिरोमणि मुनिदर वसिष्ठ नाना प्रकारकी शिला दरनेदाले भगवान् शिवका स्वरण करके ऊपर हो गये। वसिष्ठशीली शत सुनकर खेयकी और पलीसहित गिरिराज दिग्गंबर देवे प्रिसित हुए और दूसरे-दूसरे पर्वतोंसे लोले।

हिमालयने कहा—गिरिराज नेह, लद्ध, गग्नवान्, भद्रवान्, मैत्रार और विष्णवान् आदि पदोंशरे ! अब ऐसे दृष्टि देख सुनें। यसिहजी ऐसी दृष्टि कर दें रहे हैं। ऐसे हुऐ कर यस्ता लाइदें, इस दृष्टि यस्ता विष्वर दृष्टि है। ऐसों रसों भवते कर यहाँसा विष्वर दृष्टि इन दृष्टि दें, दें हो।

हिमाचलकी वह बात सुनकर सुमेरु दिव पर्वत भली-भौंति निर्णय करके उनसे प्रसन्नतापूर्वक घोले।

पर्वतोंने कहा—महाभाग ! इस समय विचार करनेसे क्षमा लाभ ? जैसा ऋूपिलोग कहते हैं, उसके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। वास्तवमें वह कन्या देवतायोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुई है। इसने शिवके लिये ही अवतार लिया है, इसलिये यह दिवको ही दी जानी चाहिये। यदि इसने रुद्रदेवकी आराधना की है और रुद्रने आकर इसके साथ वार्तालाप किया है तो इसका विवाह उन्होंके साथ होना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन मेर आदि पर्वतोंकी वह बात सुनकर हिमाचल वडे प्रसन्न हुए और गिरिजा भी मन-ही-मन हँसने लगी। अरुन्धतीने भी अनेक कारण वताकर, नाना प्रकारकी वातें सुनाकर और विविध प्रकारके इतिहासोंका वर्णन करके मैनादेवीको समझाया। तब शैलपती गेमका सब कुछ समझ गया और प्रसन्नचित्त हो उन्होंने मुनियोंको, अरुन्धतीजीको और हिमाचलको भी भोजन कराकर स्वयं भोजन किया। तदनन्तर ज्ञानी गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उन मुनियोंकी भलीभौंति सेवा की। उनका मन प्रसन्न और सारा अम दूर हो गया था। उन्होंने हाथ बोइ प्रसन्नतापूर्वक उन महर्णियोंसे कहा।

हिमालय घोले—महाभाग रक्षणियो ! आपलोग नेरी बात सुनें। मेरा सारा संदेह दूर हो गया। मैंने शिव-पर्वतीके चरित्र सुन लिये। अब मेरा शरीर, मेरी पक्षी नेता, मेरे पुत्र-पुत्री, ऋद्धि-सिद्धि तभा अन्य गति वसुएँ भगवान् दिवर्दी ही हैं, दूसरे किनीकी नहीं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा नारद हिमाचलने अपनी पुत्रीकी और आदर्शर्थक देवता और उसे वर्णयन्तीं विभूतिन करके ऋूपिणीकी दोदर्शे दिवा दिवा। वरदान्, वै शैलपती पुनः प्रसन्न हो उन भूतिदोसे देह—यह भगवान्, रुद्रा भाग है। इसे मैं उठाऊंगे दृश्य, ऐसा निःसंकर लिजाएँ।

ऋग्विद्यों—गिरिराज ! नारद, दैवत यमों वर्णन में, तुम हरे उमरेदार हो रहे, आरोहिते ही गिरि हो। इसके दृश्य और वरा हो, बदल हो ! हिमाचल ! तुम गग्न दर्शक हो, गग्न, गदामें ऐसे दृश्य लाल हो। अब रुद्रने

शिखरोंकी सामान्य गति है—तुम्हारे सभी शिखर सामान्यरूपसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर निर्मल अन्तःकरणवाले उन मुनियोंने गिरिराजकुमारी पार्वतीको हाथसे छूकर आशीर्वाद देते हुए कहा—“शिव ! तुम भगवान् शिवके लिये सुखदायिनी होओ। तुम्हारा कल्पणा होगा। जैसे शुद्धप्रक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे गुणोंकी वृद्धि हो।” ऐसा कहकर सब मुनियोंने गिरिराजको प्रसन्नतापूर्वक फल-फूल दे विवाहके पक्के होनेका दृढ़ विश्वास कर लिया। उस समय परम सती सुमुखी अरुन्धतीने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवके गुणोंका व्याख्या करके मेनाको लुभा लिया। तदनन्तर गिरिराज हिमवान्ने परम उत्तम माझलिक लोकाचारका आश्रय ले हल्दी और कुद्दुमसे अपनी दाढ़ी-मूँछका मार्जन किया। तत्पश्चात् चौथे दिन उत्तम लग्नका निश्चय करके परस्पर संतोष दे, वे सत्पर्मि भगवान् शिवके पास चले गये। वहाँ जाकर शिवको नमस्कार और विविध सूक्तियोंसे उनका स्वयन करके वे वसिष्ठ आदि सब मुनि परमेश्वर शिवसे बोले।

ऋषियोंने कहा—देवदेव ! महादेव ! परमेश्वर ! महाप्रभो ! आप प्रेमपूर्वक हमारी वात सुनें। आपके इन सेवकोंने जो कार्य किया है, उसे जान लें। महेश्वर ! हमने नाना प्रकारके सुन्दर वचन और इतिहास सुनाकर गिरिराज और मेनाको समझा दिया है। गिरिराजने आपके लिये पार्वतीका वास्तवन कर दिया है। अब इसमें कोई ननु-नन्च नहीं है। अब आप

अपने पार्वदों तथा देवताओंके साथ उनके यहाँ विवाहके लिये आइये। महादेव ! प्रभो ! अब थीम हिमाचलके घर पवारिये और वेदोक्त रीतिके अनुसार पार्वतीका व्यवने लिये पाणिशङ्का कीजिये।

सत्पर्मियोंका यह वचन सुनकर लोकाचारपरम्परा ग्रन्थ प्रसन्नचित हो हँसते हुए इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—महाभाग सत्पर्मियो ! विवाहके तो मैंने न कभी देखा है और न सुना ही है। तुमलोगनि फँडे जैसा देखा हो, उसके अनुसार विवाहकी विशेष विधिय वर्णन करो।

महेश्वरके उस लौकिक शुभ वचनको सुनकर वे श्रुति हँसते हुए देवाधिदेव भगवान् सदाशिवसे बोले।

ऋषियोंने कहा—प्रभो ! आप फहले तो भगवान् विष्णुको, विशेषतः उनके पार्वदोंसहित शीघ्र बुल लें। मैं पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको, देवराज इन्द्रको, समस्त ऋषियोंके यथ, गन्धर्व, किंनर, सिद्ध, विद्यावर और अप्सरोंके प्रसन्नतापूर्वक आमन्त्रित करें। इनको तथा अन्य सब लोगोंने वहाँ सादर बुलवा लें। वे सब मिलकर आपके कर्तव्य साधन कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वे यह ऋषि उनकी आशा ले भगवान् शंकरकी स्थितिका वर्णन करते हुए वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको चले गये।

( अध्याय ३४-३६ )

हिमवान्नका भगवान् शिवके पास लग्नपत्रिका भेजना, विवाहके लिये आवश्यक सामान जुटाना,  
मङ्गलाचारका आरम्भ करना, उनका निमन्त्रण पाकर पर्वतों और नदियोंका दिव्यरूपमें  
आना, पुरीकी सजावट तथा विश्वकर्माद्वारा दिव्यमण्डप एवं देवताओंके निवासके  
लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करवाना

नारदजीने पूछा—तात ! महाप्राज्ञ ! प्रभो ! आप कृपापूर्वक यह बताइये कि सत्पर्मियोंके चले जानेपर हिमाचलने क्या किया।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वर ! अरुन्धतीसहित उन सत्पर्मियोंके चले जानेपर हिमवान्ने जो कार्य किया, वह तुम्हें बता रहा हूँ। सत्पर्मियोंके जानेके बाद अपने मेरु आदि भाई-बन्धुओंको आमन्त्रित करके पुत्र और पत्नीसहित

महामनस्वी गिरिराज हिमवान् घडे हर्षका अनुभव करने ले। तदनन्तर ऋषियोंकी आशाके अनुसार हिमवान्ने अने पुरोहित गर्गजीसे बड़ी प्रसन्नताके साथ लग्न-पत्रिका लिखवाई। उस पत्रिकाको उन्होंने भगवान् शिवके पास मेजा। पर्वतवर्षी वहुतसे आत्मीयजन प्रसन्नमनसे नाना प्रकारकी सामग्री लेकर वहाँ गये। कैलासपर भगवान् शिवके समीप पहुँचने उन लोगोंने शिवको तिलक लगाया और वह लग्नपत्र उन-

दाखर्म में दिया। वहाँ भगवान् शिवने उन सबका वथायोग्य विशेष सत्कार किया। फिर वे सब लोग प्रसन्नचित हो गौल्याजके पास लैट आये। महेश्वरके द्वारा विशेष सम्मानित शेषकर वडे हर्षके साथ लैटे हुए उन लोगोंको देखकर हिमवान्के हृदयमें अल्पत्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् आनन्दित हो गौल्याजने नाना देशोंमें रहनेवाले अपने बन्धुओंको लिखित निमन्त्रण भेजा, जो उन सबको मुख देनेवाला था। इसके बाद वे वडे आदर और उत्साहके साथ उत्तम अन्न एवं नाना प्रकारकी विवाहेचित सामग्रियोंका संग्रह करने लगे। उन्होंने चावल, गुड़, शक्कर, आटा, दूध, दही, घी, मिठाई, नमकीन पदार्थ, मक्खन, पकवान, महान् स्वादिष्ट रस और नाना प्रकारके व्यंजन इतने अधिक एकत्र किये कि सूखे राशोंके पदार्थ लड़े हो गये और द्रव पदार्थोंकी वावड़ियाँ रन गयीं। शिवके पार्षदों और देवताओंके लिये हितकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ, भौंति-भौंतिके वहुमूल्य वस्त्र, आगमें तगाकर शुद्ध किये हुए सुवर्ण, रजत और विभिन्न प्रकारके पणिरत्न—इनका तथा अन्य उपयोगी द्रव्योंका विधिपूर्वक पंगड़ करके गिरिराजने मङ्गलकारी दिनमें माङ्गलिक कृत्य परना असम्भ किया। पर्वतपराजके धरकी लियोंने पार्वतीका संस्वार करवाया। भौंति-भौंतिके आभूषणोंसे विसृष्टि दुर्दृश राजभवनकी उन सुन्दरी स्त्रियोंने सानन्द मङ्गलकार्यका सम्पादन किया। नगरके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने स्वयं वडे हर्षके साथ श्रीयाचारका अनुष्ठान किया। उसमें मङ्गलपूर्वक भौंति-भौंतिके इत्यत्र मनाये गये। हर्षभरे हृदयसे उत्तम मङ्गलाचारका सम्पादन करके हिमालय भी सर्वतोभावेन वडे प्रसन्न हुए भौंति अपने निगमित बन्धुजनोंके आगमनकी उत्सुकतापूर्वक श्रीया करने लगे।

५८ इसी वीचमें उनके निमन्त्रित बन्धु-नाभय आने लगे  
ही माझे के निरासगृह गिरिजा मुगेश दिव्य रूप पारण करके  
जिस प्रशंसने मणियों तथा महारलोंको पत्रमूर्क क साथ ले धरने  
में पुक्के के भाष्य हिमालयसे घर आये। मन्त्राच्छवि, अस्तान्त्र  
प्रियानन, भवान, दर्ता, निरद, गन्धमादन, लक्ष्मी, गणेश,  
विष्णु, शैव, पुरुषोक्तमर्याद, नील, विश्वठ, विश्वठ, विश्वठ  
विश्वठ, शोभामुख, नारद, लिङ्ग, वाहन, वैद्यन, वाप  
देवी, वृत्ति दिव्य रूप पारणकर असने स्त्रीपुक्के के भाष्य  
ही देखा गया था कि वही उन्मित्त दूर। हृषे द्वारा भी  
इस वक्ता में जो कहा गया है, वे यद्य प्रियतावत घर चलने।  
द्वितीय ५९ प्रियता लिखा है, वह राजवार लगाए दर्दी

प्रसन्नताके साथ वहाँ पदार्पण किया । शोणभद्र आदि नदी और समूर्ण नदियाँ दिव्य नर-नारियोंके रूप धारणकर नाना प्रकारके अलंकारेसे अलंकृत हो शिव-पार्वतीका चिवाह देखनेके लिये आये । गोदावरी, यमुना, सरस्वती, वेणी, गङ्गा, नर्मदा तथा अन्य श्रेष्ठ सरिताएँ भी वडी प्रसन्नताके साथ हिमवान्के यहाँ आयीं । उन सबके आनेसे हिमालयकी दिव्य पुरी सब ओरसे भर गयी । वह सब प्रकारकी शोभाओंसे समज्ज्ञ थी । वहाँ बड़े-बड़े उत्सव हो रहे थे । ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं । वंदनघारोंसे उसकी अधिक शोभा होती थी । चारों ओर चौंदोबे तने होनेसे वहाँ सूर्यका दर्शन नहीं होता था । भाँति-भाँतिकी नीली, पीली आदि प्रभा उस पुरीकी शोभा बढ़ाती थी । हिमालयने भी वडी प्रसन्नताके साथ अपने वहाँ पधारे हुए सभी स्त्री-पुरुषोंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और सबको अलग-अलग सुन्दर स्थानोंमें ठहराया । अनेकानेक उपशुक्र सामग्री देकर सबको पूर्ण संतुष्ट किया ।

मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर शैलराज हिमवानने प्रसन्न हो गहान  
उत्सवसे परिपूर्ण अपने नगरको विच्छिन्न रीतिसे नजाना  
आरम्भ किया । सड़कोंको झाड़-बुद्धरकर उनपर छिद्रकाव  
कराया । उन्हें वहमूल्य याधनोंसे नुगजित एवं शोषित  
किया । प्रत्येक प्रके दरवाजेपर केले आदि मान्त्रिक वृक्ष  
लगाये और उन्हें मान्त्रिक द्रव्योंसे संयुक्त किया । औंगनको  
केलेके संभोगे सजाया । रेखामकी ऊरोंमें असके पहच  
वाँधकर बंदनशारे कनवारी और उन्हें उन संभोगोंके चारों ओर  
लगाया दिया । मालतीके फूलोंकी मालाएँ उन ( औंगन ) के  
सब ओर लटका दी गईं । सुन्दर तोरणोंते पह औंगनका  
भाग अस्त्रिय प्रदानमान जान पड़ा था । चारों दिशाओंमें  
मन्त्रालयक बुम द्रव्य रखे गये थे, जो उस प्राकृतिकी दोनों  
वहाँ रहे थे । इनी प्रकार अस्त्रिय प्रस्तुतासे भैं तुम गिरिसुन  
दिमायादे महान् प्रभावशाली गर्वमुनिको अंगे करके भरनी  
पुर्वीदि लिंगे प्रस्तुत करनेकेर न्याय उनम् मानवतावं  
करनय किया । उन्होंने दिलकर्मीदे तुलसी अदरमें एक  
संगठर दगदाया, जिसका दिलास दहुत अद्वित था । वही  
अदिव्य करता पह भवित्व बहुत मनोरं दगदा था ।  
देखें ! पह भवित्व एवं विद्वन दिल्ली थे । उमेर दहुत  
लगानीने तुक गम्भीर नाय लगाये अद्वितीय लंगमूर्ति ।  
दो शगवर ऐसे देखन मरी दम्भुरौ दृष्टिक दरी थीं एवं दहुत  
प्रदर्श दम्भुरौ के भवित्व दरी थीं । उमेर तुलसी दगदा देखायी  
मनोरं दहुत दरी थीं । दरी दहुत देख देख दम्भुरौ दम्भुरौ

जो उस मण्डपका सर्वेस्व जान पड़ती थीं। नाना प्रकारकी निराले वस्तुओंका चमत्कार वहाँ छा रहा था। वहाँकी स्थावर वस्तुओंसे जंगम और जंगम वल्युओंसे स्थावर पराजित हो रहे थे अर्थात् वे एक दूसरेरे बढ़कर शोभाशाली और चमत्कारपूर्ण दिखायी देते थे। उस मण्डपकी खलभूमि जलसे पराजित हो रही थी अर्थात् चतुर-से-चतुर मनुष्य भी यह नहीं जान पाते थे कि इसमें कहाँ जल है और कहाँ स्थल। कहीं कृत्रिम सिंह बने थे और कहीं सारसोंकी पंक्तियाँ। कहीं वनावटी मोर थे, जो अपनी सुन्दरतासे मनको मोहे लेते थे। कहीं कृत्रिम स्त्रियाँ थीं, जो पुरुषोंके साथ नृत्य करती हुई देखी जाती थीं। वे कृत्रिम होनेपर भी सब लोगोंकी ओर देखतीं और उनके मनको मोहमें डाल देती थीं। उसी विधिसे मनोहर द्वारपाल बने थे, जो स्थावर होनेपर भी जंगमोंके समान जान पड़ते थे। वे अपने हाथोंसे घनुष उठाकर उन्हें खींचते देखे जाते थे।

द्वारपर कृत्रिम महालक्ष्मी खड़ी थीं। जिनकी रचना अद्भुत थी। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त दिखायी देती थीं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो क्षीरसागरसे साक्षात् लक्ष्मी ही आ गयी हों। उस मण्डपमें स्थान-स्थानपर सजे-सजाये कृत्रिम हाथी खड़े किये गये थे, जो असली हाथियोंके समान ही प्रतीत होते थे। शुड्सवारोंसहित घोड़े और हाथीसवारोंसहित हाथी बनाये गये थे। जहाँ-तहाँ रथियोंसहित रथ बने थे, जो कृत्रिम अश्वोंसे ही खींचे जाते थे। उन्हें देखकर लोगोंको बड़ा आश्र्वय होता था। इनके सिवा दूसरे-दूसरे कृत्रिम वाहन भी वहाँ खड़े थे। दैदल सिपाहियोंकी कृत्रिम सेना भी वहाँ मौजूद थी। मुने ! प्रसन्न चित्तवाले विश्वकर्मने देवताओं और मुनियोंको भी मोह ( आश्र्वय ) में डालनेके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचनाएँ की थीं। मण्डपके सबसे बड़े फाटकपर कृत्रिम नन्दी खड़ा था, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल क्रान्तिसे मुशोभित होता था। भगवान् शिवके वाहन नन्दीकी जैसी आकृति है, ठीक वैसा ही वह भी था। उस कृत्रिम नन्दीके ऊपर रत्नभूषित महादिव्य पुष्टक शोभा पाता था, जो पहड़वाँ तथा श्वेत चामरोंसे सजाया गया था। उसके बाम पार्श्वमें दो कृत्रिम हाथी खड़े थे, जिनका रंग विशुद्ध केसरके समान था। वे चार दाँतवाले बनाये गये थे और साठ वर्षके पाठोंके समान दीखते थे। वे परस्पर स्लेह करते-से प्रतीत होते थे। उनमें वही चमक थी। इसी प्रकार सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशमान दो दिव्य अश्व भी विश्वकर्मने

बनाये थे, जो चैवरसे अलंकृत और दिवा धामपूर्ण विभूषित थे। श्रेष्ठ रत्नमय धामपूर्णसे सम्बन्ध, करचर्वा लोकपाल तथा सम्पूर्ण देवता भी वहाँ विश्वकर्माद्वारा त्वे से थे, जो ठीक उन्हीं लोकपालों और देवताओंसे मिलते-जुले थे। इसी तरह भगु आदि समस्त तपोवन शृणि, अन्यान उपदेवता और मिद्र भी उनके द्वारा वहाँ निर्मित हुए थे।

गरुड आदि समस्त पार्षदोंसे युक्त भगवान् विष्णुज कृत्रिम विप्रह भी विश्वकर्मने बनाया था, जिसका सह साक्षात् श्रीहरिके समान ही आश्र्वयज्ञनक था। नारद ! उस प्रकार पुत्रों, वेदां और सिद्धांसे घिरे हुए मुझ ब्रह्मत भी प्रतिमा वहाँ बनायी गयी थी, जो मेरे समान ही वैदि सूक्तोंका पाठ कर रही थी। ऐरावत हाथीपर चढ़े हुए देवत इन्द्र भी वहाँ दल-बलके साथ खड़े थे, वे भी कृत्रिम। बनाये गये थे और परिपूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित हैं थे। देवों ! वहुत कहनेसे क्या लाभ ? हिमचलसे प्रेरि हुए विश्वकर्मने वहाँ शीघ्र ही सम्पूर्ण देवसमाजके कृत्रिम विग्रहोंका निर्माण कर लिया था। इस प्रकार उन्होंने मण्डपकी रचना की थी। वह मण्डप अनेक आश्र्वयोंसे युक्त महान् तथा देवताओंको भी मोह लेनेवाला था।

तदनन्तर गिरिराज हिमवान्की आशासे परम बुद्धिम विश्वकर्मने देवता आदिके निवासके लिये उन-उनके कृत्रिम लोकोंका भी यत्नपूर्वक निर्माण किया। उन्हें लोकोंमें उन्हें उन देवताओंके लिये अत्यन्त तेजस्वी, परम अद्भुत और सुखदायक बड़े-बड़े दिव्य मञ्चों ( सिंहासनों ) की रचना की। इसी तरह उन्होंने मुझ स्वयम्भू ब्रह्माके निवासके लिये क्षणभरमें शुद्ध सत्यलोककी रचना कर डाली, जो उत्तम दीर्घिते उद्दीप्त रहा था। साथ ही भगवान् विष्णुके लिये भी क्षणभरमें शुद्ध दिव्य वैकुण्ठधामका निर्माण कर दिया, जो परम उन्नत तथा नाना प्रकारके आश्र्वयोंसे परिपूर्ण था। इसी तरह विश्वकर्मने देवराज इन्द्रके लिये भी दिव्य, अद्भुत, उल्लेखन एवं समस्त ऐश्वर्योंसे सम्बन्ध गृहकी रचना की। अन्य लोकोंपालोंके लिये भी उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बड़े सुन्दर दिव्य अद्भुत एवं बड़े-बड़े भवन बनाये। फिर क्रमशः सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी उन्होंने क्रमशः विचित्र गृहोंका निर्माण किया। परम बुद्धिमत् विश्वकर्माको भगवान् शंकरका महावर प्राप्त था, इसीलिये उन्होंने शिवके संतोषके लिये क्षणभरमें इन सब वस्तुओंकी रचना कर डाली। तदनन्तर उसी प्रा-

गवान् शंकरके लिये भी उन्होंने एक शोभाशाली गृहका मरण किया, जो शिवके चिह्नसे युक्त तथा शिवलोकवर्ती द्य भगवनके समान ही अनुपम था । श्रेष्ठ देवताओंने उसकी रिन्द्रिप्रशंसा की थी । वह परम उच्चल, महान् प्रभापुञ्ज-उद्घासित, उत्तम और अद्भुत था । विश्वकर्मने भगवान् शक्ती प्रसन्नताके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचना की थी, जो

परम उच्चल होनेके साथ ही साक्षात् महादेवजीको भी आकर्ष्यमें डालनेवाली थी । इस प्रकार यह सारा लौकिक व्यवहार करके हिमाचल वड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शम्भुके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगे । देवर्पे ! हिमालय-का यह सारा आनन्ददायक वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ( अध्याय ३७-३८ )

## भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना

नारदजी घोले—विष्णुशिष्य भगवान् शंकरके लिये विधातः । प्रकारो नमस्कार है । कृपानिधे ! आपके मुँहसे यह अद्भुत भा मुझे मुननेको मिली है । अब मैं भगवान् चन्द्रमौलिके रूप मङ्गलमय तथा समस्त पापराशिके विनाशक वैवाहिक त्रिशो सुनना चाहता हूँ । मङ्गलपत्रिका पाकर महादेवजी-का किया । परमात्मा शंकरकी वह दिव्य कथा सुनाइये ।

ग्रहान्नीने कहा—वेदा । तुम वडे बुद्धिमान हो । गवान् शंकरके उत्तम यशको सुनो । मङ्गलपत्रिका पाकर गवान् शंकरने जो कुछ किया, वह बताता हूँ । भगवान् उत्तम मङ्गलपत्रिकाको प्रसन्नतापूर्वक हाथमें लेकर हृदयमें ईर्षका अनुभव करते हुए दृग्मने लगे । फिर उन गत्तने उसे धनेनालेंका सम्मान किया । तत्त्वशात् उसे वर विभिन्नरूप स्वीकार किया । इसके बाद हिमाचलके ईर्षे हुए लोगोंको वडे आदर-सम्भानके साथ विद्या । । तदनन्तर उन मुनियोंसे कहा—आपलोगोंने मेरे शर्वका भलीभौति समादन किया, अब मैंने विवाह गत पर लिया है । अतः आपलोगोंको मेरे विवाहमें जाएं ।

भगवान् शंकरसा यह वचन सुनकर वे शूष्पि वडे प्रसन्न हों रहे प्रश्नाम् एवं उनकी परिमता वरके अपने ईर्षयोंकी प्रश्नाएः सुनाया रखते हुए अपने भास्त्रोंको चढ़ा गये । गवान् शंकर भूतीला वसेनाहि देवेश भगवान् शम्भुने ईर्षया उत्तम हृदयल द्यु तुराय सरस्य लिया । ईर्षोंकी प्रश्नायोंकी प्रश्नाया रहते हुए वही शक्तिकार्योंको वर्णन करते हुए भगवान् शम्भुजों प्रश्नाम् वर्षते हुए वही शक्तिकार्योंको वर्णन करते हुए थे ।

भगवान् शिवने कहा—मारु । तुम्हरे उत्तर-

से देवी पार्वतीने वडी भारी तपस्या की और उससे संतुष्ट होकर मैंने उन्हें यह वर दिया कि मैं पतिलूपसे तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा । पार्वतीकी भक्ति देखकर मैं उनके वशमें हो गया हूँ । इसलिये उनके साथ विवाह करूँगा । सप्तर्षियोंने लग्नका साधन और शोधन कर दिया है । अतः आजसे सातवें दिन मेरा विवाह होगा । उस अवसरयर लौकिक रीतिका आश्रय ले मैं महान् उत्तम करूँगा । मूने ! तुम विष्णु आदि सब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंको तथा अन्य लोगोंको भी मेरी ओरसे निमन्त्रित करो । सब लोग मेरे शाशनकी गुरुताको समक्षकर प्रसन्नता और उत्साहके साथ सब प्रकारमें सज-धजकर ज्ञो-पुत्रोंको साथ लिये वहाँ आयें ।

ब्रह्मजी कहते हैं—मूने ! भगवान् शंकरकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके तुमने शीम ही उर्वरा जाकर उन सबको निमन्त्रण दे दिया । तत्त्वशात् शम्भुद्ये परस आदर उनकी आज्ञाके अनुसार तुम वही ठहर गये । भगवान् शिव भी उन सब देवताओंके आगमनकी उल्कापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए अपने गणोंकी साथ वही रहे । उनके सभी गण मम्मां दिशाओंमें नाचते हुए वहाँ वहा भारी उत्तम मना रहे थे । इसी शीक्षमें भगवान् विष्णु सुन्दर वेष धरन दिये थाएंगी पश्चीम और दक्षयन्त्रके आप शीम ही दैलान पर्वतर अपि और भविभासने भगवान् विष्णुको प्रश्नाम् रखते उनकी आज्ञा धरन प्रसन्नतापूर्वक उनम् स्वतन्त्रे ठहर नये । इसी प्रदर्श में अपने गणोंकी साथ त्वरितवापूर्वक ईंट ही ईंटत गण और भगवान् शम्भुजों प्रश्नाम् वर्षते वहाँ वैतर्णीमन्त्रि भगवान् वहाँ ठहरा । दक्षयन्त्र इन्द्र वरदि वैतर्णी और उनकी सिद्धी भविभास उसकाने नार रक्षा करभवतर वही अपौर्वी देवताके उत्तर उम्भु भवते हैं । भगवान् शुक्रि गण, विष्णु, उत्तरेश्वा रथ धर्म गंगा भी दिल्लीदर से उत्तर-

मनाते हुए वहाँ आये । उस समय महेश्वरने वहाँ आये हुए सब देवता आदिका पृथक्-पृथक् सहर्ष खागत-सत्कार किया । फिर तो कैलास पर्वतपर बड़ा अद्भुत और महान् उत्सव होने लगा । देवाङ्गनाओंने उस अवसरपर यथायोग्य नृत्य आदि किया । विष्णु आदि जो देवता भगवान् शम्भुकी वैवाहिक यात्रा सम्पन्न करनेके लिये इस रामय वहाँ आये थे, वे सब यथास्थान टहर गये । भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर सब लोग उनके प्रत्येक कार्यको अपना ही कार्य समझकर नियन्त्रित रूपसे करने लगे और इसे शिवकी रेता मानने लगे । उस समय सातों मातृकाएँ वहाँ वड़ी प्रसन्नताके साथ शिवको यथायोग्य आभूषण पहिनाने लगीं । मुनिश्रेष्ठ ! परमेश्वर भगवान् शिवका जो स्वाभाविक वेष था, वही उनकी इच्छासे उनके लिये आभूषणकी सामग्री बन गया । उस समय चन्द्रमा स्वर्य उनके मुकुटके स्थानपर जा चिराजे । उनका जो सुन्दर ललाटवर्ती तीसरा नेत्र था, वही शुभ तिळक बन गया । मुने ! कानोंके आभूषणोंके रूपमें जो दो रथ बताये गये हैं, वे नाना प्रकारके रत्नोंसे युक्त दो कुण्डल बन गये । अन्यान्य अङ्गोंमें स्थित सर्प उन-उन अङ्गोंके अति रमणीय नाना रक्षमय आभूषण हो गये । उनके शरीरमें जो भस्म लगा हुआ था, वही चन्द्रन आदिका अङ्गराग बन गया और उनके जो गजचर्म आदि परिधान थे, वे सुन्दर दिव्य दुकूल बन गये ।

इस प्रकार उनका रूप इतना सुन्दर हो गया कि उसका बर्णन करना कठिन है । वे साक्षात् ईश्वर तो थे ही, उन्होंने पूरा-पूरा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया । तदनन्तर समस्त देवता, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षिगण मिलकर भगवान् शिवके समीप गये और महान् उत्सव मनाते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोले—‘महादेव ! महेश्वर ! अब आप महादेवी गिरिजाको व्याह लानेके लिये हमलोगोंके साथ चलिये, चलिये । हमपर कृपा कीजिये ।’ तत्पश्चात् विश्वानसे प्रसन्न दृढ़यवाले भगवान् विष्णुने भगवान् शंकरको भक्तिभावसे प्रणाम करके उपर्युक्त प्रस्तावके अनुरूप ही बात कही ।

भगवान् विष्णु बोले—शरणागतवत्सल देवदेव ! महादेव ! प्रभो ! आप अपने भक्तजनोंका कार्य सिद्ध करनेवाले

हैं; अतः मेरा एक निवेदन सुनिये । कल्याणकारी श्रमो ! आप गृह्यगत्रोक्त विधिके अनुसार गिरिजाकुमारे जैव देवीके साथ अपने विवाहका कार्य कराइये । हर ! आप द्वारा विवाहकी विधिका सम्पादन होनेपर वही लोकमें जैव विश्वात ही जायगी, अतः नाथ ! आप कुलधर्मके अनुज्ञा प्रेमपूर्वक मण्डपस्थापन और नान्दीमुख श्राद्ध कराइये वा लोकमें अपने यशका विस्तार कीजिये ।

व्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् विष्णुके रूप कहनेपर लोकान्नारायण परमेश्वर शम्भुने विधिपूर्वक कार्य किया । उन्होंने यारा आभ्युदयिक कार्य करनेके लिये मुझको ही अधिकार दे दिया था । अतः वहाँ मुनियों साथ ले भैने आदर और प्रसन्नताके साथ वह सबके सम्पन्न किया । महामुने ! उस समय कश्यप, अत्रि, वैद्यत, गौतम, भागुरि, गुरु, कण्ठ, वृहसप्ति, त्रिकि, ज्वर्ण पराशर, मर्कण्डेय, शिल्यापाक, अरुणगाल, अङ्गर, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमनु, भद्र, अङ्गृतव्रण, शिष्यलाद, कुशिक, कौत्स तथा शिष्योंकी व्यास—ये और दूसरे वहुतसे ऋषि जो भगवान् विष्णुसे समीप आये थे, मेरी प्रेरणासे विधिपूर्वक वहाँ आमुखी कर्म कराने लगे । वे सब-के सब वेदोंके पारंगत विद्वान् हैं । अतः वेदोक्त विधिसे वैवाहिक मङ्गलाचार करके शैव यजुर्वेद और सामवेदके विविध उत्तम रूपोद्घार मर्देश्वर रक्षा करने लगे । उन सब ऋषियोंने वड़ी प्रसन्नताके लिये वहुत-से मङ्गलकार्य कराये । मेरी और शम्भुजी भैने उन्होंने विज्ञोंकी शान्तिके लिये प्रीतिपूर्वक ग्रहोंका और छह मण्डलवर्ती देवताओंका पूजन किया । वह सब लैकिंग कर्म यथोचित रीतिसे करके भगवान् शिव वहुत संतुष्ट हैं । और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक व्रात्याणोंको प्रणाम किया । वे सर्वेश्वर महादेव देवताओं और व्रात्याणोंको आगे नहीं उस गिरिश्रेष्ठ कैलाससे हर्षपूर्वक निकले । कैलासे जाकर देवताओं और व्रात्याणोंके साथ भगवान् शम्भुजी नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, सानन्द सहे हैं । उस समय वहाँ महेश्वरके संतोषके लिये देवता आदिने वहुत बड़ा उत्सव मनाया । बाजे बजे तथा गत नृत्य हुए । (अथवा)

भगवान् शिवका वारात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर भगवान् व्यमुने  
ही आदि सब गणोंको अपने साथ हिमाचलपुरीको चलनेकी  
द्रवदार्घ्यक आशा देते हुए कहा—‘तुमलोग योङ्गेसे गणोंको  
सख्तकर शोप सभी लोग मेरे साथ बड़े उत्साह और आनन्द-  
युक्त हो गिरिराज हिमवानके नगरको चलो ।’ फिर तो  
भानुजी आज्ञा पाकर गणेश्वर शङ्खकर्ण, केकराक्ष, विक्रृत,  
शत्रुघ्न, पारिजात, विक्रतानन, दुन्दुभि, कथाल, संदारक,  
दुक, कुण्डक, विष्टम्भ, पिष्टल, सनादक, आवेशन,  
षट्, पर्वतक, चन्द्रतापन, वत्तल, कालक, महाकाल, धनिक,  
नेसुल, आदिव्यमूर्द्धा, धनावह, सेनाह, कुमुद, अमोघ,  
किल, मुमन्त्र, काकपादोदर, संतानक, मधुपिङ्ग, कोकिल,  
भैश्रु, नील, चतुर्वक्त्र, करण, अहिरोमक, यज्ञाक्ष,  
गन्तु, भेवमन्तु, काशागृह, विरुपाक्ष, सुकेश, वृषभ,  
गानन, तालकेतु, पण्मुख, चैव, स्वयम्प्रसु, लकुलीश,  
गान्तक, दीपात्मा, दंत्यान्तक, भृङ्गिरिठि, देवदेवप्रिय,  
परिज, भनुक, प्रमथ तथा वीरभद्र अपने असंख्य कोटि-कोटि  
गों तथा भूतोंको साथ लेकर चले । नन्दी आदि गणराज असंख्य  
गोंसे फिर चले तथा द्वेषपाल और भैरव भी कोटि-कोटि  
गोंसे लेकर उत्सव मनाते हुए प्रेम और उत्साहके साथ चले । । वे सब नहए साँबेंसे सुक्त थे । गिरर उद्यका मुकुट  
रण किये हुए थे । उन नववेदे भस्त्रवाहर चन्द्रमा और गलेमें  
ए निष्ठा में लगा थे नव-कंस-सव विनेश्वरी थे । उन सरथने  
प्रभं आग्रहण पद्म रखते थे । सभी उत्सम भस्म भारण  
ते थे और हाथ, कुण्डल, रोगूर तथा गुहुट आदिते  
हुए थे । इस प्रकार देवताओं नथा दूर्मन्त-द्युमन्त गणोंको  
तो भगवान् शंखर अपने विवादके लिये हिमवानके नगर-  
क्षेत्र को । चार्दीर्थी गद्वैश्वरी लहिन कलकर लूप उत्सव  
पूर्ण हुई दर्दी प्रसन्नजलके साथ वहाँ आ गयीं । वे द्यनुवृत्तीं  
प्रभाएँ भय देखाती थीं । उन्होंने चौरोहि असंख्य  
प्रियोंसे जर रक्षा था । उनका गान ऐसा था ।  
‘उत्सव रहतः है । इसमें मारेदर लक गोजेता भय छुआ  
किये जाते ही हो । वह वल्लभ भगवान् प्रभापुरुषने  
हैं । दिल्ली जा ।

है तो । वही दर्शक हिंदू भूमाल देखते हैं, जिसमें  
दिल्ली राजा का राम भी अनेक प्राचारके  
साथ उपर्युक्त दिव्यताओं के साथ, अवश्यक निष्पत्ति-  
की रक्षा के लिए दिल्ली के लिए देख दिया गया है ।

हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान  
दुन्दुभियोंकी धनिसे महान् कोलाहल हो रहा था । वह जगत्-  
का मङ्गल करता हुआ अमङ्गलका नाश करता था । देवता  
लोग शिवगणोंके पीछे होकर वही उत्सुकताके साथ वारातका  
अनुसरण करते थे । समूर्ण सिद्ध और लोकपाल आदि भी  
देवताओंके साथ थे । देवमण्डलीके मच्चभागमें गरुड़के  
आशनपर वैठकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु चल रहे थे ।  
मुने ! उनके ऊपर महान् छब्ब तना हुआ था, जो उनकी  
शोभा बढ़ाता था । उनपर चौकर हुलाये जा रहे थे और वे  
अपने गणोंसे घिरे हुए थे । उनके शोभाद्याली पार्पदेंमें उन्हें  
अपने दंगसे आभृपण आदिके द्वारा विभूषित किया था ।  
इसी प्रकार मैं भी मूर्तिमान् बेदों, शालों, पुराणों, व्यागमों,  
सनकादि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों तथा अन्यत्व परिजनोंके  
साथ मार्गमें चलता हुआ वही शोभा पा रहा था और शिवकी  
सेवामें तत्पर था । देवराज इन्द्र भी नाना प्रकारके आभृपणोंमें  
विभूषित हो एराक्त हाथीपर आरुड़ होकर अपनी सेनाके  
वीनसे न्यूते हुए अत्यन्त मुश्किलित हो रहे थे । उस समय  
वारातके साथ वाचा करते हुए वहुतसे शूष्पि भी अमने तेजसे  
प्रकाशित हो रहे थे । वे शिवजीका विचार देखनेके लिये बहुत  
उत्सुकित थे । शासिनी, यातुवान, वेताल, ब्रह्मराजन, भूत,  
प्रेत, पित्राच, प्रमथ आदि गण; तुम्हुक, नारद, हाहा और  
हृष्ट आदि श्रेष्ठ गणवर्ष तथा विनर भी वही हर्षमें भरकर वाचा  
वाचाते हुए चले । समूर्ण जगन्माताएँ, भारी देवतान्माणें,  
गायत्री, ऋद्धिमी और अन्य देवानामाणें—ये तथा  
दूसरों देवतानियों जो समूर्ण जगत्की मानाएँ हैं, शंखरङ्गजीका  
विचार है, यह गोचरकर वही प्रमदताके साथ उसमें मन्महिन  
दानेदें लिये गये । बेदों, शालों, किंदों और मरुसिंहानु  
जे साथत् शर्मसा द्वारा दाया हुया जिन्होंने अहलका  
हुद रक्षितके मामले उत्त्वक है, यह असीक्षिकुर इसमें  
भागवद् विषय वाला है । शर्मसा शर्मिद्धिनी इन हृषकस  
आनन्द होनेके साथ वाचा करते हुए दर्दी दीमां करते हैं ।  
देवर्षीनीके समुद्रमें हड्डी भियामें उम्मिल है । इन सद  
देवर्षीओं और भर्तिर्षीओं द्वारा हुए अनुदर्शन महेश्वरी दर्दी  
दीमां हो गई हैं । उदाहरण यहां श्रावण विषय में था । दू  
सिंहाना शर्मिद्धिन, अस्त्रेने जिसे विज्ञापनदि भ्रम्मते हुए रहे  
हैं । यहां (इस प्रकार विवरणीय वाचानामें दृश्य दृश्य  
में सुना गयहुआ चर्चित जाता रहा । अब विज्ञापनदर्शनमें  
से हुए दृश्य विविध गुणों उन्हें । दृश्य दृश्य ॥

## हिमवानुद्वारा शिवकी वारातकी अगवानी तथा सबका अभिनन्दन एवं वन्दन, मेनाका नारदजीको बुलाकर उनसे वरातियोंका परिचय पाना तथा शिव और उनके गणोंको देखकर भयसे मूर्छित होना

**ब्रह्माजी कहते हैं—**तदनन्तर भगवान् शिवने नारदजी-को हिमाचलके घर भेजा। वे वहाँकी विलक्षण सजावट देखकर दंग रह गये। विश्वकर्मने जो विष्णु, ब्रह्म आदि समस्त देवताओं तथा नारद आदि ऋषियोंकी चेतन-सी प्रतीत होनेवाली भूर्तियाँ बनायी थीं, उन्हें देखकर देवर्पि नारद चकित हो उठे। तत्पश्चात् हिमाचलने देवर्पिको वारात बुला लानेके लिये भेजा। साथ ही उस वारातकी अगवानीके लिये मैनाक आदि पर्वत भी गये। तदनन्तर विष्णु आदि देवताओं तथा अनन्दित हुए अपने गणोंके साथ भगवान् शिव हिमालय-नगरके समीप सानन्द आ पहुँचे।

गिरिराज हिमवानन्दे जब यह सुना कि सर्वव्यापी शंकर मेरे नगरके निकट आ पहुँचे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उन्होंने बहुत-सा सामान एकत्र करके पर्वतों और ब्राह्मणोंको महादेवजीके साथ वार्तालाप करनेके लिये भेजा। स्वयं भी बड़ी भक्तिके साथ वे प्राणप्यारे महेश्वरका दर्शन करनेके लिये गये। उस समय उनका दृदय अधिक प्रेमके कारण द्रवित हो रहा था और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे। उस समय समस्त देवताओंकी सेनाको उपस्थित देख विमवान्को बड़ा विसय हुआ और वे अपनेको धन्य मानते हुए उनके सामने गये। देवता और पर्वत एक दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने आपको कृतकृत्य मानने लगे। महादेवजीको सामने देखकर हिमालयने उन्हें प्रणाम किया। साथ ही समस्त पर्वतों और ब्राह्मणोंने भी सदाशिवकी बन्दना की। वे वृषभपर आरूढ़ थे। उनके मुख-पर प्रसन्नता छा रही थी। वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे और अपने दिव्य अङ्गोंके लावण्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनका श्रीअङ्ग अत्यन्त महीन, नूतन और सुन्दर रेशमी वस्त्रसे सुशोभित था। उनके मस्तकका मुकुट उत्तम रस्तोंसे जटित होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वे अपनी पावन प्रभाका प्रसार करते हुए हँस रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग भूषण वने हुए सर्पोंसे युक्त था तथा उनकी अङ्गकान्ति बड़ी अद्भुत दिखायी देती थी। दिव्य कान्तिसे सम्पन्न उन महेश्वरकी सुरेश्वरण हाथमें च्छर लिये सेवा कर रहे थे। उनके बायें भागमें भगवान् विष्णु थे और

दाहिने भागमें थे शिव। पीछे देवराज इन्द्र थे और अन्तर्द्देश आदि भी पीछे तथा अगल-वगलमें विद्यमान थे। नामांग्ल के देवता आदि उन लोक-कल्पाणकारी भगवान् व्यंगरब्र करते जाते थे। उन्होंने स्वेच्छासे ही दिव्य शरीर धार रखदा था। वास्तवमें वे साक्षात् परव्रह्म परमात्मा ईश्वर, उपासकोंको मनोवाचित्त वर देनेवाले, कल्याणम् युक्त, प्राकृत गुणसे सहित, भक्तोंके अर्थीन रहनेवाले। कृष्ण करनेवाले, प्रकृति और पुच्छसे भी विलक्षण तथा नन्दस्त्वरूप हैं। उनके दर्शनके पश्चात् हिमवानने शिवके वासमाणमें अन्युन श्रीहरिका दर्शन किया, जो प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो विनतानन्दन गवइन्हीं विराजमान थे। मुने ! भगवान्के दाहिने भागमें उहाँसे मुखोंसे युक्त, महाश्वेभावाली तथा अपने परिवारसे संयुक्त ब्रह्माको देखा। भगवान् शिवके सदा ही अत्यन्त प्रियशः देवेश्वरोंका दर्शन करके परिवारसहित गिरिराजने अस्य प्रणाम किया।

इसी प्रकार भगवान् शिवके पीछे तथा अगल-वगलमें हुए दीप्तिमान् देवता आदिको भी देखकर गिरिराजः सबके सामने मस्तक कुकाया। तत्पश्चात् शिवजी वह आगे होकर हिमवान् अपने नगरको गये। उनके महादेवजी, भगवान् विष्णु तथा स्वयम्भू ब्रह्म भी दूर और देवताओंसहित शीघ्रतापूर्वक चलने ले। उस अवसरपर मैनाके मनमें भगवान् शिवके दर्शनश्च हुई। इसलिये उन्होंने तुमको बुलवाया। उस समय शिवसे प्रेरित होकर उनका हार्दिक अभिप्राय पूर्ण इच्छासे तुम वहाँ गये।

मैना तुम्हें प्रणाम करके बोली—मुने ! हैनेवाले पतिको पहले मैं देखूँगी। शिवका कैसा है। जिनके लिये मेरी बेटीने ऐसी उत्कृष्ट तपत्वा की है।

तात ! उस समय भगवान् शिव भी मैनाके अहंकारको जानकर श्रीविष्णु और मुझसे अहंकार करते हुए बोले।

शिवने कहा—तात ! याप दोनों मेरी आशाते हैं

त अलग-अलग होकर गिरिजाके द्वारपर चलिये । हम ते आयेंगे ।

यद सुनकर भगवान् श्रीद्विने सब देवताओंको बुलाकर उत्तरनेके लिये कहा । शिवके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले । देवताओंनि शीघ्र कर्त्ता ही व्यवस्था करके उत्सुकता-  
वाहीमें पृथक्-पृथक् यात्रा की । मुने ! मैना अपने कि लक्ष्ये ऊपरी भवनमें उम्हारे साथ खड़ी थीं । उम्ह भगवान् विवेश्वरने अपनेको ऐसी वेप-भूषामें ग, जिसमें मैनाके हृदयको ठेस पहुँचे । सबसे पहले के शुद्धतमें विविध वाहनोंपर विराजित खूब सजे-धने-जिके साथ पताकाएँ फहराते हुए बसु आदि गन्धर्व  
किर मणिग्रीवादि वध, तदनन्तर क्रमसे यमराज, औ, वरुण, वायु, कुवेर, ईश्वान, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, गृहु आदि मुनीश्वर तथा व्रह्मा आये । ये सब एक-से-एक विशेष सुन्दर शोभामय रूप-गुणसे थे । इनमें से प्रत्येक दलके स्वामीको देखकर मैना थी कि 'क्या ये ही शिव हैं ?' नारदजी कहते—'यह तो सेवक हैं ।' मैना यद सुनकर वही प्रसन्न होती और रार मन-ही-मन कहती—'ये उनके सेवक ही जब उन्दर हैं, तब वे सबके स्वामी शिव तो पता नहीं हुन्दर हंगे ।

३ सीनमें वहीं भगवान् विष्णु पधारे । वे समूर्ण शम्भव, श्रीमान्, नृतन उल्लभरके समान शम्भव औ भुवाओंसे लंगुल है । उनका लावण्य करोड़ों लक्षित कर रहा था । वे पीताम्बर धारण करके रव प्रभाते प्रदासित हो रहे थे । उनके उन्दर के कर्त्तव्यी शोभाओं द्वारा लेते हैं । उनकी शान्ति नहरा रही थी । पवित्राज्ञ गच्छ उनके । यह, यह आदि लक्षणोंसे युक्त, सुकृद अद्वितीय स्वरूपमें शीघ्रत्वमें शीघ्रत्वमा दिह धारण किये वे विष्णु उनने अपनी प्रभाषुद्धसे प्रवाहउमान में । मैं तो मैनाके मैत्र चकित हो जाये । वे दृढ़ एकी कृपा वे ही मेरी हिकाके पक्षी लालू भगवान् अपने संहार नहीं हैं ।

४ इन वीं लोक परमेश्वरी ही टरे । लोक मैत्री इनकी वाही होते हैं—ऐसि । वे विस्तीर्ण ही दृढ़ कृपा, एकीकृत ही है । भगवान् उनके

समूर्ण कावोंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं । पार्वतीके पति जो बूलद शिव हैं, उन्हें इनसे भी बड़कर समझना चाहिये । उनकी शोभाका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता । वे ही समूर्ण ब्रह्माण्डके अधिगति, सर्वेभर तथा स्वयम्भकाश परमात्मा हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उम्हारी इस बातको सुनकर मैनाने उन शुभलक्षणा उमाको महान् धन-वैभवसे सम्पन्न, सौभाग्यवती तथा तीनों कुलोंके लिये सुखदायिनी माना । वे मुखपर प्रसन्नता लाकर प्रीतियुक्त हृदयसे अपने सर्वाधिक सौभाग्यका वारंवार वर्णन करती हुई बोलीं ।

मैनाने कहा—इस समव में पार्वतीको जन्म देनेके कारण सर्वथा धन्य हो गयी । ये गिरीश्वर भी धन्य हैं तथा मेरा सब कुछ परम धन्य हो गया । जिन-जिन अस्यन्त तेजस्वी देवताओं और देवेश्वरोंका मैने दर्शन किया है, इन सबके जो पति हैं, वे मेरी पुत्रीके पति होंगे । उसके सौभाग्यका क्या वर्णन किया जाय ? भगवान् शिवको पतिरूपमें जानेके कारण पार्वतीके सौभाग्यका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मैनाने प्रेमपूर्ण हृदयसे ज्यों ही उपर्युक्त बात कही, लों ही अद्भुत लीला उत्तरनेवाले भगवान् रुद्र सामने आ गये । तात ! उनके सभी गम अद्भुत तथा मैनाके अहंकारको चूर्ण करनेवाले थे । भगवान् शिव अपने-आपको नायाते निवित एवं निवितार दिलाने हुए वहाँ आये । मुने ! उन्हें आया यान उमने मैनाको शिवाके पतिका दर्शन कराने हुए उनसे एक प्रश्न उठा—'कुन्दरि ! देखो, वे कालान् भगवान् गंकर हैं, विनाशी प्राप्तिके लिये शिवाने बनाने वर्षी भरी गत्तवा की थी ।'

तुम्हारे ऐसा उत्तरनेर मैनाने वर्षी प्रमाणान्तर सम्भव अद्भुत अद्वितीयाले भगवान् मर्मस्तुति देव देखा । वे स्वयं तो अद्भुत हैं एवं, उनके अद्भुतर भी ऐसे अद्भुत हैं । उत्तरनेमें ही उद्देश्यी पक्ष अद्भुत किया जाए वा उद्देश्यी, जो भूत-भेद अद्वितीय उद्भुत तथा सदा मर्मान्तर अद्भुत हैं । उनमेंमें दिलाने ही उद्देश्यी स्व प्राप्त दर्शन अद्वितीय है । विनाशी प्राप्ति के लिये उद्देश्यी उद्देश्यी है । उद्देश्यी देव देव ही वर्षी भरी गत्तवा है । उद्देश्यी

और पाश धारण किये हुए थे तो किन्हींके हाथोंमें मुद्रर थे । कितने ही अपने वाहनोंको उलटे चला रहे थे । कोई सींग, कोई डमरु और कोई गोमुख बजाते थे, गणांमेंसे कितनेके तो मुँह ही नहीं थे । कितनोंके मुख पीठकी ओर लगे थे और बहुतोंके बहुतेरे मुख थे । इसी तरह कोई किना हाथके थे । किन्हींके हाथ उलटे लग रहे थे और कितनोंके बहुत-से हाथ थे । कितने ही नेत्रहीन थे, किन्हींके बहुत-से नेत्र थे । किन्हींके सिर ही नहीं थे और किन्हींके बहुत खराब सिर थे, किन्हींके कान ही नहीं थे और किन्हींके बहुत-से कान थे । इस तरह सभी गण नाना प्रकारकी वेश-भूषा धारण किये हुए थे । तात ! वे विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण बड़े बीर और भयंकर थे । उनकी कोई संख्या नहीं थी । मुने ! तुमने अङ्गुलीद्वारा रुद्रगणोंको दिखाते हुए मेनासे कहा—‘वरानने ! तुम पहले भगवान् हरके सेवकोंको देखो, फिर उनका भी दर्शन करना ।’ उन असंख्य भूत-प्रेत आदि गणोंको देखकर मेना तत्काल भयसे व्याकुल हो गया । उन्हेंके बीचमें भगवान् शंकर भी थे, जो निर्गुण होते

हुए भी परम गुणवान् थे । वे ब्रह्मभर सवार थे । उन्हें पौँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र । उन्होंनारे अङ्गोंमें विभूति लगी हुई थी, जो उनके लिये भूक्षण काम देती थी । महाकपर जयन्त्र और चन्द्रमाका मुख दस हाथ और उनमेंसे एकमें कपाल लिये, शरीरपर वांगता दुपट्टा और हाथमें पिनाक एवं त्रिशूल, आँखें भयानक, गङ्गा विकराल और हाथीकी खालका वल । वह सब देवता-शिवाकी माता बहुत डर गया, चकित हो गया, बहुत शोकर कौँमने लगा और उनकी बुद्धि चकरा गयी । उन अवश्यमें तुमने अङ्गुलीसे दिखाते हुए उनसे कहा—‘ही ही हैं भगवान् शिव ।’ तुम्हारी वह वात सुनकर सीमे दुःखसे भर गया और हवाके झोंक खाकर गिरे हुए लताके समान तुरंत भूमिपर गिर पड़ी । ‘यह कैसा विश्व दश्य है ? मैं दुराघ्रहमें पड़कर ठगी गयी ।’ यों कहकर मैं उसी क्षण भूचिंचित हो गया । तदनन्तर सखियोंने जब गंद प्रकारके उपाय करके उनकी समुचित सेवा की, तब गिरिण्य प्रिया मेना धोरे-धोरे होशमें आया । (अव्याय ४१-४३)

### मेनाका विलाप, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, देवताओं तथा श्रीविष्णुका उन्हें समझाना तथा उनका सुन्दर रूप धारण करनेपर ही शिवको कन्या देनेका विचार ग्रकट करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब हिमाचलप्रिया सती मेनाको चेत हुआ, तब वे अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप एवं तिरस्कार करने लगीं । पहले तो उन्होंने अपने पुत्रोंकी मिन्दा की, इसके बाद वे तुम्हें और अपनी पुत्रीको दुर्वचन सुनाने लगीं ।

मेना बोली—मुने ! पहले तो तुमने यह कहा कि ‘शिव शिवका वरण करेगी,’ पीछे मेरे पति हिमवान्का कर्तव्य बताकर उन्हें आराधना-पूजामें लगाया । परंतु इसका यथार्थ फल क्या देखा गया ? विपरीत एवं अनर्थकारी ! दुर्बुद्धि देवर्षे ! तुमने मुझ अधम नारीको सब तरहसे ठग लिया । फिर मेरी बेटीने ऐसा तप किया, जो मुनियोंके लिये भी दुःकर है; उसकी उस तपस्याका यह फल मिला, जो देखनेवालोंको भी दुःखमें डालता है । हाय ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मेरे दुःखको दूर करेगा ? मेरा कुल आदि नष्ट हो गया, मेरे जीवनका भी नाश हो गया । कहाँ गये वे दिव्य शृष्टि ? पाँऊं तो मैं उनकी दाढ़ी-

मूँछ नोच लूँ । वसिष्ठकी वह तपस्यिनी पल्नी भी वडी धूणी वह स्वयं इस विवाहके लिये अगुआ बनकर आयी थी । जानें किन-किनके अपराधसे इस समय मेरा सब छुट गया ।

ऐसा कहकर मेना अपनी पुत्री शिवाकी ओर देख उन्हें कटुवचन सुनाने लगी—‘अरी दुष्ट लड़की ! तेरे कौन-सा कर्म किया, जो मेरे लिये हुँखदायक सिद्ध हुआ ? तुझ दुष्टाने स्वयं ही सोना देकर कौच खरीदा है, जो छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़का ढेर पोत लिया । हाय ! ही हंसको उड़ाकर तूने पिंजड़ेमें कौआ पाल लिया । गङ्गाका दूर फेंककर कुएँका जल पीया । प्रकाश पानेकी इच्छा सूर्यको छोड़कर यत्नपूर्वक जुगनूको पकड़ा । चाबल छोड़ भूसी खा ली । घी फेंककर मोमके तेलका आदर्शरूपका देखा गया । सिंहका आश्रय छोड़कर सियारका सेवन किया । ब्रह्मविद्या छोड़कर कृत्स्नित गाथाका श्वरण किया । देवीर-

शिवकी विकट चरात







परमें रखी दुई यशको मन्महलमयी विभूतिको दूर हटाकर निजाती अमन्महलमयी राख अपने पहले बाँध ली; क्योंकि भाग्य ऐप देवताओं और विष्णु आदि परमेश्वरोंको छोड़कर आपनी शुभविदिके वारण दिनको पानेके लिये ऐसा तपर किया ! दूसरों, मेरी तुम्हारी, तेरे सप्तयो और तेरे चरित्रको भी वारं-वार धियार है । तुम्हे तपस्याका उरदेव देनेयाले नासदको तथा तेरी भाग्यता परसेयाली दीनीं ससियोंको भी धियार है । तेरी ! एग दीनीं नातापितामो भी धियार है, जिन्होंने तुम्हे उन्म पिया । नासद ! तुम्हारी तुरियोंमो भी धियार है । सुदुरिदं दीनोंमो उन गम्भिरियोंमो भी धियार है । तुम्हारे कुलको धियार है । तुम्हारी मिता-दधिताको भी धियार है तथा तुम्हने जो तुम्ह तिक्क डूब कदमो धियार है । तुम्हने को नित्य पर ही ज्ञान धिया । इस लो मेरा मरण ही है । वे परंदोंके एजा लाल मेरे धियार न लावें । छतरिं लोग स्त्रीय तुम्हे अपना उत्तर धियार है । इन घटनों नित्यार क्या खाय ! मेरे दुल्हन, तुम्ह वह धिया । राय ! मैं हौस करे जरी हूं तदे ! मेरा यह बड़े नहीं भला गया । मैं अपना मेरी पुरी ही करी नहीं हूं यही । अपना रात्रि लालें ही अलालों से लकड़ हैं । ही यह या इस । जहाँसी ! बाज मैं हैर धिर हाट

डाल्हृगी, परंतु ये शरीरके ढुकड़े लेकर क्या कहँगी ? हाय ! हाय ! तुझे छोड़कर कहाँ चली जाऊँ ? मेरा तो जीवन ही नष्ट हो गया ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यह कहकर मेना नूच्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी । शोक-रोग आदिसे व्याकुल होनेके कारण वे पतिके समीप नहीं गयीं । देवर्ण ! उस समय सब देवता क्रमशः उनके निकट गये । सबसे पहले मैं पहुँचा । मुनिश्रेष्ठ ! मुझे देखकर तुम स्वयं मेनासे नोले ।

नारदने कहा—यतिक्रते ! तुम्हें पता नहीं है, वारतव्यमें भगवान् शिवका लूप बड़ा सुन्दर है । उन्होंने लीलाले ऐसा लूप धारण कर लिया है, वह उनका वर्यार्थ लूप नहीं है । इसलिये तुम क्रोध छोड़कर स्वस्त हो जाओ । एठ छोड़कर विवाहका कार्य करो और अपनी शिवाका हाथ शिवके हाथोंमें दे दो ।

तुम्हारी यह वात सुनकर मेना तुमसे दोली—उठो, यहाँमे दूर चले जाओ । तुम दुश्म और अपमांकि शिरोमणि हो ।' मेनाके ऐसा कहनेपर मेरे साथ इन्द्र आदि सब देवता एवं दिक्षाल क्रमशः आकर यों बोले—पितरोंकी कन्या मेने ! तुम हमारे वचनोंको प्रसन्नतापूर्वक तुलो । वे शिव निश्चय ही सबसे उत्कृष्ट देवता है और सबको उत्तम तुल देनेवाले हैं । आपकी पुत्रीके अत्यन्त उत्तम तपसी देखकर इन भक्तवत्सल प्रसुते कुणपूर्वक उन्हें दर्शन और थ्रृष्ण वर दिया था ।'

यह सुनकर मेनाने देवताओंसे वारतवार अवस्था विलाप वरके कहा—शिवका लूप कश्च भव्यकर है, मैं उन्हें अपनी पुत्री नहीं दूँगी । आप सब देवता प्रसन्न करने कीं मेरी इन कन्याको उत्कृष्ट तरहों वर्ग करतेके लिये उपत है ।'

कुनीरत ! उनके ऐसा दर्शनर यामिष आदि नामिषोंने वहाँ आकर यह बात कही—तितों हि यत्ता स्था मितिगदही रहनी मेने ! इसलोंग कुशशय दार्य लिल रखनें रिये अस्य है । जो पर्य गर्वित उमित और उत्तरोंहै, उन्हे तुम्हारे छाले जाल इस धिरर्ण देते मन में । भगवान् शंखकर दर्शन करते यह व्यक्त है । वे दर्शनर हित सर्व तुम्हारे पर रखते हैं ।'

उनके ऐसा दर्शनर मैं अद्वैत भेदभेद उत्तीर्ण किए हूं और यह हीरर उत्तम दर्शन है—मैं इस अर्थमें भर्ती रहौंगी इसे इसे इसे इसे इसे इसे इसे इसे इसे

हाथमें नहीं दूँगी; तुम सब लोग दूर हट जाओ, किसीको गेरे  
पास नहीं आना चाहिये ।

ऐसा कह अत्यन्त विहृल हो विलाप करके मेना चुप हो  
गयी । मुने ! वहाँ उनके इस वर्तावसे हालाकार मच गया ।  
तब हिमालय अत्यन्त व्याकुल हो वहाँ आये और मेनाको  
समझानेके लिये प्रेमपूर्वक तत्त्व दर्शाति हुए बोले ।



हिमालयने कहा—प्रिये मेने ! मेरी वात सुनो, तुम  
इतनी व्याकुल क्यों हो गयी ? देखो तो, कौन-कौनसे महात्मा  
तुम्हारे घर पधारे हैं । तुम इनकी निन्दा क्यों करती हो ?  
भगवान् शंकरको तुम भी जानती हो, किंतु नाना नामरूपवाले  
शम्भुके विकट रूपको देखकर घबरा गयी हो । मैं शंकरजीको  
भलीभांति जानता हूँ । वे ही सबके प्रतिपालक हैं, पूजनीयोंके  
भी पूजनीय हैं तथा अनुग्रह एवं निग्रह करनेवाले हैं । निष्पाप  
प्राणप्रिये । हठ न करो, मानसिक हुँख छोड़ो । सुनते ! शीघ्र  
उठो और सब कार्य करो । पहली बार विकटरूपघारी शम्भुने  
मेरे द्वारपर आकर जो नाना प्रकारकी लीलाएँ की थीं, मैं  
उनका आज तुम्हें समरण दिला रहा हूँ । उनके उस परम  
माहात्म्यको देसा और समस्कर उस समय मैंने और तुमने

उन्हें कन्धा देना स्तीकार किया था । प्रिये ! अमीन  
वातको प्रमाण मानकर सार्थक करो ।

इस वातको सुनकर शिवाकी माता मैना हिमालय  
से बोली—नाथ ! मेरी वात मुनिये और सुनकर अहं  
वैगा ही करना चाहिये । आप अमीन पुत्री पार्वतीके नामे  
रस्ती वाँधकर इसे वेष्टके पर्वतसे नीचे गिर दीजिये ।  
मैं इसे एके द्वारमें नहीं दूँगी । अथवा नाथ ! अमीन  
वेदीको ले जाकर निर्दयतापूर्वक गमुद्रमें हुवा दीजिये । गिरिए  
ऐसा करके आप पूर्ण सुदूरी हो जाइये । स्वामिन् ! यदि कि  
रूपघारी रुद्रको आप पुत्री दे देंगे तो मैं निश्चय ही व  
जीरी ल्याग दूँगी ।

मैनाने जब हठपूर्वक ऐसी वात कही, तब पार्वती उ  
आकर यह रमणीय वचन बोली—माँ ! तुम्हारी बुद्धि तो  
शुभकारक है । इस समय विपरीत कैसे हो गयी ? क  
अवलम्बन करनेवाली होकर भी तुम धर्मको कैसे छोड़ रही ?  
ये रुद्रदेव सबकी उत्पत्तिके कारणभूत साक्षात् ईश्वर  
इनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है । समस्त श्रुतिवर्णमें यह व  
है कि भगवान् शम्भु सुन्दर ल्पवाले तथा सुन्दर  
कल्याणकारी महेश्वर समस्त देवताओंके स्वामी वप्ता उ  
प्रकाश हैं । इनके नाम और रूप अनेक हैं । माता  
श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि भी इनकी सेवा करते हैं । ये उ  
अधिष्ठान हैं, कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं । विकारोंकी इन  
पहुँच नहीं है । ये तीनों देवताओंके स्वामी, अविनाशी  
सनातन हैं । इनके लिये ही सब देवता किंकर होकर हु  
द्वारपर पधारे हैं और उत्सव मना रहे हैं । इससे वह  
सुखकी वात और क्या हो सकती है ? अतः यन्मूर्खक  
और जीवन सफल करो । मुझे शिवके हाथमें सौंप दो  
अपने गृहस्थाश्रमको सार्थक करो । माँ ! मुझे परमेश्वर यह  
सेवामें दे दो । मैं स्वयं तुमसे यह वात कहती हूँ । तुम  
इतनी-सी ही विनती मान लो । यदि तुम इनके हाथमें  
नहीं दोगी तो मैं दूसरे किसी वरका वरण नहीं करूँगी । मैं  
जो सिंहका भाग है, उसे दूसरोंको ठगनेवाला सियार करें  
सकता है । माँ ! मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा  
हरका वरण किया है, हरका ही वरण किया है । अब तुम  
जैसी इच्छा हो, वह करो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीकी यह वात तुम  
को लेवरप्रिया मैना बहुत ही उत्सेजित हो गयी और पार्वती

डॉटी हुई दुर्बलता कदकर रोने तथा विलाप करने लगी। तदनन्तर स्वयं मैने तथा नमकादि सिद्धोंने भी मेनाको बहुत नमङ्गाया। परंतु वे किसीकी वात न मानकर स्पष्टको डॉटी नहीं। इनी वीचमें उनके नुद्द एवं महान् हृदकी वात मुग्धर शिवप्रिय भगवान् विष्णु भी तुरंत वहाँ आ पहुँचे और इन प्रकार बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवि ! तुम पितारोंकी माननी पुन्ही एवं उन्हें बहुत ही प्यारी हो; नाथ ही गिरिराज हिमालयकी गुणवत्ती पत्नी हो। इन प्रकार तुम्हारा सम्बन्ध साक्षात् ब्रह्माजीके उच्चम युद्धने हैं। संगारमें तुम्हारे सहायक भी ऐसे ही हैं। तुम अब यहे। मैं तुमसे बता कहूँ ? तुम तो धर्मकी आधारभूत हो, मिर धर्मका त्याग किमे करती हो ? तुम्हीं अच्छी तरह सोचो लो यही। मातृर्ण देवता, शूलि, ब्रह्माजी और मैं—सभी लोग शिरील वात ही कहेंगे ? तुम शिवको नहीं जानती। वे निर्मुग भी हैं और शुण भी हैं। कुरुप भी हैं और सुरुप भी। सबके सेव्य तथा गत्तुकारोंके आश्रय हैं। उन्हींने मूल-प्रकृतिया ऐवी ईक्षरीका निर्गण किया और उसके घगलमें पुण्योत्तमका निर्माण करके विठाया। [उन्हीं दोनोंसे लगुण-स्पष्टमें गये गया ब्रह्माको उत्पत्ति हुई। किर लोकोंका हित दरमेंके लिये वे स्वयं भी एवं स्पष्टके प्रकट हुए। तदनन्तर वेद, ऐतिहासिक शाश्वर-जंगमस्त्रपते जो कुछ दिखायी देता है, वह शाश्वर भी भगवान् शंकरसे ही उत्पन्न हुआ। उनके

स्पष्टका ठीक-ठीक वर्णन अवश्यक कौन कर सका है ? अथवा कौन उनके स्पष्टको जानता है ? मैने और ब्रह्माजीने भी जिसका अन्त नहीं पाया, उनका पार दूसरा कौन पा सकता है ? ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यंत जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिवका ही ल्प है—ऐसा जानो। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। वे ही अपनी लीलासे ऐसे स्पष्टमें अवतीर्ण हुए हैं और शिवके तपके प्रभावसे तुम्हारे द्वारपर आये हैं। अतः हिमाचलकी पत्नी ! तुम हुःख छोड़ो और शिवका भजन करो। इसमें तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा और तुम्हारा सारा क्षेत्रा मिट जायगा।

ब्रह्माजी कहते हुए—नारद ! श्रीविष्णुके हारा इस प्रकार समझायी जानेपर गेनाज्ञ मन कुछ कोमल हुआ। परंतु शिवको कन्वा न देनेका हठ उन्होंने तथ भी नहीं छोड़ा। शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण ही उन्होंने ऐसा दुराग्रह किया था। उस समय मेनाने शिवके महस्तको स्तीकार कर लिया। कुछ शान ही जानेपर उन्होंने श्रीहरिते कह—अदि भगवान् शिव सुन्दर शरीर भारण कर लें, तथ मैं उन्हें अपनी पुंछी दे सकती हूँ; अन्यथा क्षेत्र उपाय करतेपर भी नहीं ढूँगी। यह वात मैं नचाई और हृदयाके याथ कए रही हूँ।

ऐसा कहकर हृदयापूर्वक उत्तम व्रतका पात्रम करनेवाली मैना शिवकी इच्छासे प्रेरित हो जात हो गयी। भल है शिवकी माया, जो नवव्रो मालमें डाल देती है। ( अन्याय ४४ )

भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य स्पष्टको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और ध्रुमा-ग्रार्यना तथा पुरायासिनी खियोंका शिवके स्पष्टका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना



चन्द्रदेव मस्तकका मुकुट बनकर उनकी शोभा बढ़ा रहे थे । इन सब साधनोंसे भगवान् शंकर सर्वथा रमणीय जान पड़ते थे । उनका वाहन भी अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था । उसकी महाशोभाका वर्णन नहीं हो सकता था । गङ्गा और यमुना भगवान् शिवको मुन्दर चौंबर हुला रही थीं और आठों सिद्धियाँ उनके आगे नाच रही थीं । उस समय में, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वेषको भलीभाँति विभूषित करके पर्वतवासी भगवान् शिवके साथ चल रहे थे । नानारूपधारी शिवके गण खूब सज-धजकर अत्यन्त आनन्दित हो शिवके आगे-आगे चल रहे थे । सिद्ध, उपदेवता, समस्त मुनि तथा अन्य सब लोग भी महान् सुखका अनुभव करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शिवके साथ यात्रा कर रहे थे । इस प्रकार देवता आदि सब लोग विवाह देखनेके लिये उत्कण्ठित हो सूब सज-धजकर अपनी पक्षियोंके साथ परब्रह्म शिवका यशोगान करते हुए जा रहे थे । विश्वावसु आदि गन्धर्व अप्सरायोंके साथ ही शंकरजीके उत्तम यशका गान करते हुए उनके आगे-आगे चल रहे थे । मुनिश्रेष्ठ ! महेश्वरके शैलराजके द्वारपर पधारते समय इस प्रकार वहाँ नाना प्रकारका महान् उत्सव हो रहा था । मुनीश्वर । उस समय

वहाँ परगात्मा शिवकी जैसी शोभा हो रही थी, उसका द्वितीय रूपसे वर्णन करनेमें कीन समर्थ हो सकता है ? वहेंके विलक्षण रूपमें देखकर मेना क्षणभरके लिये चिन्हितीनेहै गर्याँ । फिर वही प्रसन्नताके साथ बोली—‘महेश्वर ! मैं पुत्री भन्य है, जिसने वहाँ भारी तप किया और उस लिए प्रभावरो आप मेरे इस धरमें पधारे । पहले जो मैंने आपकी अद्यम्य निन्दा की है, उसे मेरी शिवाके स्वामी शिव ! श धमा करें और इस समय पूर्णतः प्रसन्न हो जाओ ।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार वह उन्हें चन्द्रगीलि शिवकी सुन्ति करती हुई शैलधिया मेनाने ले द्वारा जोड़ प्रणाम किया, फिर वे लजित हो गयाँ । इतनें ही वहुत-सी पुराणिनी स्त्रियाँ भगवान् शिवके दर्शनकी लकड़ी अनेक प्रकारके काम छोड़कर वहाँ आ पहुँचाँ । जो वैतांक वैसे ही अस्त्रव्यलुप्तरूपमें दौड़ आत्राँ । भगवान् शंकर वै मनोहर रूप देखकर वे सब मोहित हो गयाँ । शिवके दर्शक हर्षको प्राप्त हो प्रेमपूर्ण हृदयवाली वे नारियाँ महेश्वरकी सूर्तिको अपने मनोमन्दिरमें विठाकर इस प्रकार बोली ।

पुरवासिनियोंने कहा—अहो ! हिमवान्के वर्तमान निवास करनेवाले लोगोंके नेत्र आज सफल हो गये । कि जिस व्यक्तिने इस विद्य रूपका दर्शन किया है, निश्चर्वै उसका जन्म सार्थक हो गया है । उसीका जन्म सफल है क्योंकि उसीकी सारी क्रियाएँ सफल हैं, जिसने समूर्ण पाण्पांड दूर करनेवाले साक्षात् शिवका दर्शन किया है । पर्वतीने शिवके दर्शन को जपता था, उसके द्वारा उन्होंने अपना साय मारा दिया । शिवको पतिके रूपमें पाकर ये शिवा वै और कृतकृत्य हो गयी । यदि विधाता शिवा और शिवतीर्थ युगल जोड़ीको सानन्द एक-दूसरेसे मिला न देते तो उस सारा परिश्रम निष्पल हो जाता । इस उत्तम जोड़ीको मिलन ब्रह्माजीने वहुत अच्छा कार्य किया है । इससे सबके लिए कार्य सार्थक हो गये । तपस्याके विना मनुष्योंके लिये शहू दर्शन दुर्लभ है । भगवान् शंकरके दर्शनमात्रसे ही सबके कृतार्थ हो गये । जो-जो सर्वेश्वर गिरिजापति शंकरका दर्शन करते हैं, वे सारे पुरुष श्रेष्ठ हैं और हम सभी स्त्रियाँ भन्य हैं ।

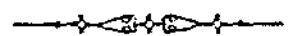
ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसी वात कहकर उन्होंने चन्द्रन और अक्षतसे शिवका पूजन किया और वहेंके उनके कपर खीलोकी बर्पा की । वे सब स्त्रियाँ मैनाने





भगवती पार्वती-विवाह-शृंगार

उनके होकर लड़ी रही और मेना तथा गिरिजाजके भूरि-  
भाष्यकी गगड़ा करती रही । मुने ! लियोके मुखसे वैसी शुभ  
वार्ता सुनकर विष्णु आदि सब देवताओंके साथ भगवान्  
शिवको बड़ा हर्ष हुआ । (अथाय ४५)



**मेनाद्वारा द्वारपर भगवान् शिवका परिछन, उनके रूपको देखकर संतोषका अनुभव, अन्यान्य सुवित्तियों-  
द्वारा वरकी प्रशंसा, पार्वतीका अमिकापूजनके लिये बाहर निकलना तथा देवताओं और  
भगवान् शिवका उनके सुन्दर रूपको देखकर प्रसन्न होना**

ग्रन्थाजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर भगवान् शिव  
प्रसन्नचित्त हो अपने गणों, समस्त देवताओं तथा अन्य लोगोंके  
साथ कौतुकल्पक गिरिराज हिमवानुदे धाममें गये ।  
हिमाचलकी ऐष पर्वी मेना भी उन लियोंके साथ घरके भीतर  
गयी और शामुकी आरती उतारनेके लिये हाथमें दीपकोसे  
उक्ती हुई थाली लेकर सभी भृपिपिकियों तथा अन्य लियोंके  
साथ आदरण्यक द्वारपर आयीं । वहाँ आकर मेनाने समूर्ज  
तिराओंसे भैतित गिरिजापति भद्रेश्वर शंकरजो, जो द्वारपर  
प्रशित हैं, वहें प्यासे देखा । उनकी अङ्गुष्ठान्ति मनोहर  
समके नमान थी । उनके एक सुख और तीन नेत्र थे ।  
अप्र मुखारविन्दपर मन्द सुखकानकी छटा छा रही थी । वे  
ज और मुर्ण आदिते विभूषित थे । गलेमें सालतीकी माला  
है तुए पे । सुन्दर रूपमय सुकुट धारण करनेसे उनका  
प्रभाव उत्तम असाधित हो रहा था । यष्टमें  
उ आदि नुन्दर आगरण शोभा दे रहे थे । सुन्दर कहे और  
हुई उनकी सुशाश्वीको विभूषित यह रहे थे । अग्रिमे  
मान विर्माण हुई अनुसम अत्यन्त सूक्ष्म मनोहर विच्छिन्न पूर्व  
द्रुमाय सुख धरमें उनकी दृढ़ी शोभा हो रही थी । अन्दम,  
साथ पर ही सभा मनोहर कुद्रुमके अद्वितीय उनके अद्भुत  
भूषित हैं । उन्होंने एकमें रूपमय दर्शन के रूपमें या अंतर  
में दोनों देव पञ्चामे सुमोमित हैं । उन्होंने उनकी प्रभासमें  
रहे अनुभवोंमें इस लिया था तथा वे अन्दम मनोहर

गिरिराज हिमवानुकी और उनके समस्त कुलकी भूरि-भूरि  
प्रशंसा करने लगीं । उन्होंने अपने आपको दृतार्थ माना और वे  
वारंवार हर्षका अनुभव करने लगीं । सती मेनाका सुख  
प्रसन्नतासे खिल उठा था । वे अपने दामादवी शोभाका  
सानन्द अवलोकन करती हुई उनकी आरती उतारने लगीं ।  
गिरिजाकी कही हुई वातको वारंवार बाद वरके मेनाको बड़ा  
विस्मय हो रहा था । वे हाथोंकुल सुखारायिन्द्रसे नुक्त हो गन-ही-मन  
यों कहने लगीं—“पार्वतीने मुखसे पहले बेसा बताया था, उससे  
भी अधिक सौदर्य में इन परमेश्वर शिवके अन्नोंमें देख रही  
हूं । भद्रेश्वरका मनोहर लायण्य इस समय अवर्गनीय है ।” ऐसा  
सोन्चकर आश्र्वयन्त्रित हुई मेना अपने वरके भीतर आयीं ।

वहाँ आयी हुई सुवित्तियोंमें भी वर्णे मनोहर रूपकी भूरि-  
भूरि प्रशंसा की । वे बोली—“गिरिजाजनन्दिनी शिव भव्य है,  
धन्य है ।” कुछ कल्पाएँ कहने लगीं—“तुमांसे तो सालत  
भगवती है ।” कुछ दूसरी कल्पाएँ महारानी मेनामि शोरी—  
“एगने की कमी ऐसा कर नहीं देखा ।” और न कमी भवनी  
ही ऐसे दरमा अवलोकन किया है । इसे पालर गिरिजा भव्य  
ही नहीं । भगवान् विश्वका तह स्तर देवतायर समान ऐसा  
एप्पेंट खिल रहे । ऐसे गमर्य उनका यह गम गमे लगे और  
अप्पताएँ शृत्य कर्मे लगीं । याजा दलसे गमे लंग सुन  
पर्वतमें अनेक प्रदक्षिणी रात्र दिवसे तुए अद्वितीय अप्पेंट  
खोलिए दृष्टे दृष्टे गमे हैं । गिरिजामें भी उपर्युक्त ऐसा

क्या नहीं, इसका तुम्हें पता ही नहीं है। बास्तवमें तुम वडे वहिर्गुल हो। तुमने इस समय साक्षात् दूरसे उनका गोत्र पृथा है और उसे बतानेके लिये उन्हें प्रेरित किया है। तुम्हारी यह बात अत्यन्त उपहासजनक है। पर्वतराज ! इनके गोत्र, कुल और नामको तो विष्णु और ब्रह्म आदि भी नहीं जानते, फिर दूसरोंकी क्या चर्चा है ? शैलराज ! जिनके एक दिनमें बरोड़ीं ब्रह्माओंका लय होता है, उन्हीं भगवान् शंकरको तुमने आज कालीके तपोव्यालसे प्रत्यक्ष देखा है। इनका कोई रूप नहीं है, ये प्रकृतिसे परे निर्गुण, परब्रह्म परमात्मा हैं। निराकार, निर्विकार, मायाधीश एवं परात्म हैं। गोत्र, कुल और नामसे रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। साथ ही अपने भक्तोंके प्रति वडे दयालु हैं। भक्तोंकी इच्छासे ही ये निर्गुणसे सगुण हो जाते हैं, निराकार होते हुए भी सुन्दर शरीर धारण कर लेते हैं और अनामा होकर भी बहुत-से नामवाले हो जाते हैं। ये गोत्रहीन होकर भी उत्तम गोत्रवाले हैं, कुलहीन होकर भी कुलीन हैं, पार्वतीकी तपस्यासे ही ये आज तुम्हारे जामाता बन गये हैं, इसमें संशय नहीं है। गिरिश्रेष्ठ ! इन लीलायिहारी परमेश्वरने चराचर जगत्को मोहमें डाल रखता है। कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, वह भगवान् शिवको अच्छी तरह नहीं जानता ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**मुने ! ऐसा कहकर शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले तुम ज्ञानी देवर्पिने शैलराजको अपनी वाणीसे हर्ष प्रदान करते हुए फिर इस प्रकार उत्तर दिया ।

**नारद बोले—**शिवाको जन्म देनेवाले तात महाशैल ! मेरी बात सुनो और उसे सुनकर अपनी पुत्री शंकरजीके हाथमें दे दो। लीलापूर्वक रूप धारण करनेवाले सगुण महेश्वरका गोत्र और कुल केवल नाद ही है, इस बातको अच्छी तरह समझ लो। शिव नादस्य है और नाद शिवस्य है—यह सर्वधा सच्ची बात है। नाद और शिव—इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। शैलेन्द्र ! सृष्टिके समय सबसे पहले लीलाके लिये सगुण रूप धारण करनेवाले शिवसे नाद ही प्रकट हुआ था। अतः वह सबसे उत्कृष्ट है। हिमाल्य ! इसीलिये मन-ही-मन सर्वेश्वर शंकरके द्वारा प्रेरित हो मैंने आज अभी बीणा बजाना आरम्भ कर दिया था ।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**मुने ! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराज हिमाल्यको संतोष प्राप्त हुआ और उनके मनका सारा विस्मय जाता रहा। तदनन्तर श्रीविष्णु आदि देवता तथा

गुनि गव-के-सब विसमयरहित हो नारदको मायुवाद देते ले। गोदाश्रवकी गर्भारता जानकर गमी विद्वान् आश्रवन्ति व वही प्रगत्रनामके साथ परस्पर बोले—‘अहो ! जिन्हीं अहे इस विद्वाल जगत्का प्राकृत्य हुआ है, जो परात्मतुम् श्वर्ण वोधवास्य, त्वतन्त्र लीला करनेवाल तथा उत्तम मन्त्री जाननेयोग्य हैं, उन विलोकनाथ भगवान् शास्त्रका अद्वैत लोगोंने भवीभौति दर्शन किया है ।’

तदनन्तर हिमाल्यने विधिके द्वारा प्रेरित हो भगवान् किं अपनी कन्याका दान कर दिया। कन्यादान करते समय बोले—

हमां कन्यां तुम्यमहं ददामि परमेश्वर।  
भार्यार्थं परिगृहीत्वं प्रसीदि सकलेश्वर ॥

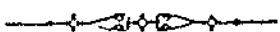
‘परमेश्वर ! मैं अपनी यह कन्या आपको देता हूँ। इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये अहण करें। सर्वेषं कन्यादानसे आप संतुष्ट हों ।’

इन मन्त्रका उच्चारण करके हिमाचलने अपनी विलोकजननी पार्वतीको उन महान् देवता द्वारे हाथ दिया। इस प्रकार शिवाका हाथ शिवके हाथमें रखकर शैल मन-ही-मन वडे प्रसन्न हुए। उस समय वे अपने मनों महात्मागरको पार कर गये थे। परमेश्वर महादेवजीने प्रकृतेवदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक गिरिजाके करकमलके चीमः हाथमें ले लिया। मुने ! लोकाचारके पालनकी आवश्यक दिखाते हुए उन भगवान् शंकरने पृथ्वीका सर्वशक्ति दात् ॥ इत्यादि समसे कामसम्बन्धी मन्त्रका पाठ किया। समय बहँ सब ओर महान् आनन्ददायक महोत्सव होने पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें तथा स्वर्गमें भी जय-जयनारक गूँजने लगा। सब लोग अत्यन्त हर्षसे भरकर सायुवाद देने नमस्कार करने लगे। गन्धर्वगण प्रेमपूर्वक गाने ले अप्सराएँ तृत्य करने लगीं। हिमाचलके नगरके लोग भी मनमें परम आनन्दका अनुभव करने लगे। उस समय उत्सवके साथ परम मङ्गल मनाया जाने लगा। मैं, विष्णु, देवगण तथा सम्पूर्ण मुनि हर्षसे भर गये। हम सबके मु

\* विवाहमें कन्या-प्रतिव्रहके पश्चात् वर इस क्षमता पाठ करता है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—कोऽशत्कालसा अरावदात्कामायादत्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतते। (शु०८ संहिता ७ । ४८ )

ग्रन्थ प्रमाणतासे लिल उठे । तदनन्तर शैवराज हिमाचलने अन्यत्र प्रमाण ही शिवके लिये कन्यादानकी वशेच्छित साक्षता प्रदान की । तत्पश्चात् उनके वन्धुजननें भक्तिगृह्यक शिवका पूजन करके नामा विधि-विधानसे भगवान् शिवको उत्तम द्रव्य गमीत किया । हिमालयने देहेजमें अनेक प्रकारके द्रव्य, रक्त, पात्र, एक लाख सुग्रन्थि गोईँ, एक लाख नज़ेरनज़ारे घोड़े, घोड़े इत्याभी और उनमें ही मुख्यवित्तिन रथ आदि वस्तुएँ दीं; इस परमात्मा शिवको विधिगृह्यक अपनी पुजी कल्पणामयी

पार्वतीका दान करके हिमालय कृतार्थ हो गये । इसके बाद शैवराजने वन्धुरेकी माध्यंदिनी शालामें वर्णित सोत्रके द्वारा दोनों हाथ जोड़ प्रमाणतापूर्वक उत्तम व्राणीमें परमेश्वर शिवकी सूति की । तत्पश्चात् वेदवेत्सा हिमाचलके आशा देनेपर मुनियोंने वडे उत्ताहके साथ शिवके सिरपर अभिषेक किया और महादेवजीका नाम लेकर उस अभिषेककी विधि पूरी की । सुने ! उस समय वडा आनन्ददायक महोत्सव हो रहा था । ( अध्याय ४८ )



शिवके विवाहका उपसंहार, उनके द्वारा दक्षिणा-वितरण, वर-वधूका कोहवर और वासमन्त्रमें जाना, वहाँ स्त्रियोंका उनसे लोकाचारका पालन कराना, रतिकी प्रार्थनासे शिवद्वारा कामको जीवनदान एवं वर-प्रदान, वर-वधूका एक-दूसरंको मिटान भोजन कराना और शिवका जनवासेमें लौटना

आजाजी कहते हैं—जारद । तदनन्तर मेरी आशा र मैथिरने ब्रात्योदयग अग्निकी श्यापना करवाकी और तीव्री आने आगे पिटानर वहाँ प्रहृष्टेद, वन्धुरेक तथा विदेशी गन्धोदाया अग्निमें आहुतियाँ दीं । तात ! उन समय मैंने भाई भनाकने लायाकी अड़ालि दी और कानी तथा १ दोनों आहुति देकर लोकाचारका आवध ले प्रगतात्र अग्निरेत्रकी परिमाण की ।

जारद ! तदनन्तर शिवकी आशाने स्त्रियोंनहित भीने व शिव-रियात्ये देव तार्ये प्रगतलाद्वारक पूरा किया । इ उन दोनों अग्निको मनाकरा अग्निरेत्र दुख । ब्रात्योंने विद्युत्सर्वक एवं दृष्टि द्वारा देखा । तत्पश्चात् उत्तर-भगवान् वापरे तुला । भिर देवे उत्तरके नाम स्त्रियोंभगवन् देखा । इ देवे, व्यापत् लालचीकी विद्याविद्यामें विद्याविद्या एवं विद्युत्सर्व किया । उस समय शिविरमन्तरानी शीर्ष देव असुर की विद्यालक्षणीय विद्यो व विद्यालक्षणी एवं उत्तर-भगवन् विद्यामन्तरा ही होती है । इसकी असुर रूपी विद्यालक्षणी एवं उत्तर-भगवन् विद्यामन्तरा ही होती है । १ । उत्तर-भगवन् विद्यालक्षणी उत्तर-भगवन् विद्या-

मेरी आशा पाकर अपने स्थानपर आ गंतव्यवादान किया । इस प्रकार विभिन्नरूपक उस विवाहिक वशके पूर्ण ही जानेपर भगवान् शिवने मुख लोकग्राम ब्रह्मके पूर्णसाव दान किया । फिर शम्भुने आचार्यको गोदान किया । महालदायक जो वर्षेन्द्रेद दान वलये गये हैं, वे भी महर्य भगवन् किये । तत्पश्चात् उत्तरने वन्धुतने ब्रात्योंको पृथक्-पृथक् गीनी मुख्य मुद्राएँ दीं । तरोदो रक्त दान किये और अनेक प्रकारके द्रव्य दीं । उस समय नद देवता तथा दक्ष-वृषभं नगर जीव मनमें देव प्रभव दुष्ट और जैव-जीवके जननारपतीर्थी अवनि तेजे तरी । नद और आद्यतिर अवनि और दूष दीमे तरी । काष्ठोंठी भगवान् जन्मे कर्णि शालकरी दानमि तरी । इतने देव श्वेतिष्ठु, श्वी देवता, श्वेत नद उम्बु देव दीमा विशिष्युकमि भगवन् देवी प्रात्यक्षरे नद दीमे विश्वेत-भगवन् दीमे दान दीमे । उस समय विद्यालक्षणी विद्यालक्षणीय विद्यामन्तरा ही दिया और उत्तर-भगवन् विद्यामन्तरा ही दियी ।

१. असुर विद्यालक्षणी उत्तर-भगवन् विद्या एवं उत्तर-भगवन् विद्यालक्षणी होती है । २. उत्तर-भगवन् विद्यामन्तरा ही होती है । ३. उत्तर-भगवन् विद्यामन्तरा ही होती है । ४. उत्तर-भगवन् विद्यामन्तरा ही होती है ।

वहाँ उन सबने आदरपूर्वक वर-वधूसे लोकान्नारका सम्मादन कराया । उस समय सब और परगानन्ददायक मद्दान, उत्साह छा रहा था । तदनन्तर वे स्त्रियाँ उन लोककल्पाणीकारी दम्पतिको साथ ले परम दिव्य वासभवन ( कीरुकागार ) में गयीं और वहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक लोकान्नारका सम्मादन किया । इसके बाद गिरिराजके नगरकी स्त्रियोंने समीप आकर गद्गल-कृत्य करके उन नवदम्पतीको केलिगृहमें पहुँचाया और जय-ध्वनि करती हुई उनके गाँठवन्धनकी गाँठ सोलने आदिका कार्य सम्पन्न किया ।

उस समय उन नूतन दम्पतिको देखनेके लिये सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ शीशतापूर्वक वहाँ आयीं । उनके नाम इस प्रकार हैं—सरखती, लक्ष्मी, सावित्री, गद्गा, अदिति, शन्मी, लोपामुद्रा, अश्वन्धती, अहस्या, तुलसी, त्वादा, रोहिणी, पृथिवी, शतरूपा, संजा तथा रति । ये देवाङ्गनाएँ तथा मनोहारिणी देवकन्या, नागकन्या और मुनि-कन्याएँ भी वहाँ आ पहुँचीं । वहाँ जितनी स्त्रियाँ उपस्थित थीं, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है ? उनके दिये हुए रत्नमय सिंहसनपर भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे । उस समय उन्होंने शिवसे नाना प्रकारकी विनोदपूर्ण वार्ते कहीं । तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए महेश्वरने अपनी पत्नीके साथ मिष्ठान भोजन और आचमन करके कपूर डाला हुआ पान खाया ।

इसी अवसरपर अनुकूल समय जान प्रसन्न हुई रतिने दीनवत्सल भगवान् शंकरसे कहा—‘भगवन् ! पर्वतीका पाणिग्रहण करके आपने अत्यन्त हुर्लभ सौभग्य प्राप्त किया है । बताइये, मेरे प्राणनाथको, जो सर्वथा स्वार्थरहित थे, आपने क्यों भस्त कर डाला ? अब यहाँ मेरे पतिको जीवित कीजिये और अपने अन्तःकरणमें कामसम्बन्धी व्यापारको जगाइये । आपको और मुझको जो समानलूपसे वियोगजनित संताप प्राप्त हुआ है, उसे दूर कीजिये । महेश्वर ! आपके इस विवाहोत्सवमें सब लोग सुखी हुए हैं । केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुःखमें हूबी हुई हूँ । देव ! शंकर ! प्रसन्न होइये और मुझे सनाथ कीजिये । दीनवन्धो ! परम प्रभो ! अपनी कही हुई बातको सत्य कीजिये । चराचर प्राणियों सहित तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कौन है, जो मेरे दुःखका नाश करनेमें समर्थ हो ? ऐसा जानकर आप मुझपर दया कीजिये । दीनोपर दया करनेवाले नाथ ! सबको आनन्द प्रदान करनेवाले अपने इस विवाहोत्सवमें मुझे भी उत्सव-

सम्बन्ध बनावये । मेरे प्राणनाथके जीवित होनेतर ही क्यों पिया पर्वतीके याय आपका मुद्र विद्वर परिष्येहा । इसमें गंधर्व नहीं है । सर्वेश्वर ! आप सब कुछ क्षैति समर्थ हैं; क्योंकि आप ही परमेश्वर हैं । वहाँ प्रवेश क्षैति क्या लाभ ? सर्वेश्वर ! आप शीघ्र मेरे पतिको जीत्ति क्षैति ।



ऐसा कहकर रतिने गाँठमें बँधा हुआ कामदेवके भस्त शम्भुको दे दिया और उनके सामने हानाथ । हानाथ कहकर रोने लगी । रतिका रोदन सुनकर सरखती दीन देवियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वाणीमें बोली—‘आपका नाम भक्तवत्सल है । आप दीनवन्धु और दान हैं । अतः कामको दीनन-दान दीजिये और रतिके कीजिये । आप—

ब्रह्माजी क  
सुनकर महेश्वर न  
ही रतिपर क  
पहले  
मू  
पति

[त] देव रत्ने महेश्वरको प्रणाम किया । वह कृतार्थ हो गयी । उन्हें प्राणवायकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिवका अपने शिवित पतिके साथ हाथ जोड़कर वारंवार स्वयन किया । श्रीशहित कामकी की हुई सुतिको सुनकर दयार्द्ध-दद्य गगवान् शंकर अल्पन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले ।

शंकरने कहा—मनोभव । पक्षीसहित तुमने जो सुति मैं हूं उपरे मैं वहुत प्रसन्न हूं । स्वयं प्रकट होनेवाले काम ॥ वर मौंगो । मैं तुम्हें मनोवाचित वसु दूँगा ।

शम्भुका यह बचन सुनकर कामदेव भगवान् आनन्दमें गया हो गया और हाथ जोड़ मस्तक सुकाकर गद्दद वाणी बोला ।

कामदेवने कहा—देवदेव महादेव । करुणासागर प्रभो ! देवदेव प्रसन्न हैं तो मेरे लिये आनन्ददायक होइये । मैं । पूर्वदातमें भीने जो अपराध किया था, उसे क्षमा दिये । स्वजनोंके प्रति परम प्रेम और अपने चरणोंकी के दीजिये ।

पापदेवका यह कथन सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो ॥—यहुत अच्छा ॥ इसके बाद उन करुणानिधिने हँसकर ॥—भगवानने थापदेव ! मैं तुमपर प्रसन्न हूं । तुम अपने मेरे भवती नितान हो । भगवान् विष्णुके पास जाओ और ॥ परमे बाहर ही रहो ॥

तदनन्तर काम शिवजीको प्रणाम करके बाहर आ गया । विष्णु आदि देवताओंने उसे आशीर्वाद दिया । इसके बाद भगवान् शंकरने उस वासभवनमें पार्वतीको दायें विटाकर मिठान भोजन कराया और पार्वतीने भी प्रसन्नतापूर्वक उनका मुँह भीटा किया । तदनन्तर वहाँ लोकाचारका पालन करते हुए आवश्यक कृत्य करके भेना और हिमवान्की आशा ले भगवान् शिव जनवासेमें चले गये । मुने । उस समय मदान् उत्सव हुआ और वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी । लोग चारों प्रांकारके बाजे बजाने लगे । जनवासेमें अपने स्थानपर पहुँच कर शिवने लोकाचारवश मुनियोंको प्रणाम किया । श्रीहरिको और मुखे भी मस्तक छुकाया । फिर सब देवता आदिने उनकी बन्दना की । उस समय वहाँ जय-जयकार, नमस्कारतथा संमल विष्णोंका विनाश करनेवाली शुभदायिनी वेदध्वनि भी होने लगी । इसके बाद मैंने, भगवान् विष्णुने तथा इन्द्र, प्राणि और सिद्ध आदिने भी शंकरजीकी सुति की । गिरिजानायक महेश्वरकी सुति करके वे विष्णु आदि देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी वधोच्चित सेवामें लग गये । ततःशान् लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाले महेश्वर शम्भुने उन सबको सम्मान दिया । फिर उन परमेश्वरकी आशा पाकर वे विष्णु आदि देवता अल्पन्त प्रगत हो अपने अपने विधाम-स्थानों गये ।

( अप्पाय ४०—५१ )

## रातको परम सुन्दर सजे हुए वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनवासेमें आगमन

माताजी योहते हैं—जात ! तदनन्तर भाव्यवानोंमें श्रेष्ठ ऐ शर गिरिजल गिरानने वागविदोंद्वारा भोजन करानेये हैं जोकि भैयनदी शुद्ध रुक्षते भवान तथा अपने पुत्रों व अपाल वर्द्धनोंद्वारा भेषजर गिरिजरि नद देवताओं । गोपको लिये बुद्धाना । जद नद लोग आ गये, गद अपै एवे अपर्युपे चाप लगानेका भेष्य वरामोग

भोजन कराया । भोजनके वथान् ताप-सुहृद भो, इत्या करके विष्णु आदि नद देवता विभावते लिये व्रस्तावार्दय अपने अपने उत्तरमें गते । मेलाई अपने लाली लियोंने भगवान् विष्णुसे भक्षिर्दृढ़ प्राप्ति करके उन्हें भावन उत्तर-में परिष्कृत शुद्ध वाक्यवानमें ठाराय । नितांद दिः पूर्व शमनांद वर्गितानांद देवता अपनिया हुए शमनदेव अ

वहाँ उन सबने आदरपूर्वक वर-धधूसे लोकान्नारका सम्मानन कराया। उस समय सब और परमानन्ददायक महान् उत्साह छा रहा था। तदनन्तर वे लियाँ उन लोककल्याणकारी दम्पतिको साथ ले परम दिव्य वाराभवन ( कौतुकागार ) में गयीं और वहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक लोकान्नारका सम्मान दिया। इसके बाद गिरिराजके नगरकी लियोंने सभीय आकर मन्दिल-कृत्य करके उन नवदम्पतीको केलिगृहमें पहुँचाया और जय-धनि करती हुई उनके गाँठबन्धनकी गाँठ खोलने आदिका कार्य सम्पन्न किया।

उस समय उन नृत्य दम्पतिको देखनेके लिये सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ शीशतापूर्वक वहाँ आयीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, अदिति, शनी, लोपासुदा, अरुन्धती, अहस्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, पृथिवी, शतरूपा, संज्ञा तथा रति। ये देवाङ्गनाएँ तथा मनोहारिणी देवकन्या, नागकन्या और मुनि-कन्याएँ भी वहाँ आ पहुँचीं। वहाँ जितनी लियाँ उपस्थित थीं, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उनके दिये हुए रत्नमय सिंहासनपर भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे। उस समय उन्होंने शिवसे नाना प्रकारकी विनोदपूर्ण चातें कहीं। तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए महेश्वरने अपनी पल्लीके साथ मिठाज भोजन और आच्चमन करके कपूर डाला हुआ पान खाया।

इसीं अवसरपर अनुकूल समय जान प्रसन्न हुई रति ने दीनवत्सल भगवान् शंकरसे कहा—‘भगवन्! पार्वतीका पाणिघण करके आपने अत्यन्त दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है। बताइये, मेरे प्राणनाथको, जो सर्वथा स्वार्थरहित थे, आपने क्यों भस्त कर डाला? अब यहाँ मेरे पतिको जीवित कीजिये और अपने अन्तःकरणमें कामसम्बन्धी व्यापारको जगाइये। आपको और मुझको जो समानरूपसे वियोगजनित संताप प्राप्त हुआ है, उसे हूर कीजिये। महेश्वर! आपके इस विवाहोत्सवमें सब लोग सुखी हुए हैं। केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुःखमें हूबी हुई हूँ। देव! शंकर! प्रसन्न होइये और मुझे सनाथ कीजिये। दीनबन्धो! परम प्रभो! अपनी कही हुई वालको सत्य कीजिये। चराचर प्राणियों-सहित तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कौन है, जो मेरे दुःखका नाश करनेमें समर्थ हो? ऐसा जानकर आप मुख्यपर दया कीजिये। दीनोपर दया करनेवाले नाथ! सबको आनन्द प्रदान करनेवाले अपने इस विवाहोत्सवमें मुझे भी उत्सव-

रम्यत बनाइये। मेरे प्राणनाथके जीवित होनेर हीले प्रिया पार्वतीके साथ आपका मुन्द्र विद्वर पर्याप्त है। इसमें गंगाय नहीं है। सर्वेश्वर! आप सब कुछ इस समर्थ हैं; क्योंकि आप ही परमेश्वर हैं। वहाँ अविद्या क्या लाभ? सर्वेश्वर! आप शीघ्र मेरे पतिको जीवित रखें।



ऐसा कहकर रति ने गाँठमें बँधा हुआ कामदेवके रूप भस्त शम्भुको दे दिया और उनके सामने छा नाय। हाँ, कहकर रोने लगी। रतिका रोदन सुनकर सरस्वती भरि है देवियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वाणीमें बोली—हाँ आपका नाम भक्तवत्सल है। आप दीनबन्धु और दयेश हैं। अतः कामको जीवन-दान दीजिये और रतिको उत्तीर्ण कीजिये। आपको नमस्कार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उन सबकी परि सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन करुणागार तत्काल ही रतिपर कृपा की। भगवान् शूल्याणिकी हाथि पहले ही पहले-जैसे रूप, वेष और चिह्नसे उक्त मूर्तिधारी सुन्दर कामदेव उस भस्तसे प्रकट हो गया। पतिको वैसे ही रूप, आकृति, मन्द मुस्कान और उत्तम-

इ देवता रतिने महेश्वरको प्रणाम किया । वह कृतार्थ हो गयी । जै प्राणमाथकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिवका अपने वित्त पतिके साथ हाथ जोड़कर बारंबार स्तवन किया । गिरिहि कायकी की हुई स्तुतिको सुनकर दयाद्वृद्धदय गवान् द्वंद्व अल्पन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले ।

शंकरने कहा—गनोभव ! पञ्चासहित तुमने जो स्तुति । है उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ । स्वयं प्रकट होनेवाले काम । वर याँगो । मैं तुम्हें मनोवाञ्छित बलु दृग्गा ।

शमुका यह बचन सुनकर कामदेव महान् आनन्दमें गम हो गया और हाथ जोड़ मस्तक छुकाकर गद्गद बाणी बोला ।

पामदेवने कहा—देवदेव महादेव ! करुणासागर प्रभो ! ये आप मुदापर प्रसन्न हैं तो मेरे लिये आनन्ददायक होइये । जै ! पूर्वदात्ममें मैंने जो अपराध किया था, उसे क्षमा किये । यज्ञोंके प्रति परम प्रेम और अपने जरणोंकी किं धीजिये ।

पामदेवया यह कथन सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये—‘बहुत अच्छा ।’ इसके बाद उन करुणानिधिने हँसकर दा—‘गदामले वामदेव ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । तुम अपने को मध्यस्थी नियाल दो । भगवान् विष्णुके पास जाओ और मैं पन्ने लाए ही रहो ।’

तदनन्तर काम शिवजीको प्रणाम करके बाहर आ गया । विष्णु आदि देवताओंने उसे आशीर्वाद दिया । इसके बाद भगवान् शंकरने उस वासमवनमें पार्वतीको बायें विडाकर मिट्ठाज भोजन कराया और पार्वतीने भी प्रसन्नतापूर्वक उनका मुँह मीठा किया । तदनन्तर वहाँ लोकान्नारका पालन करते हुए आवश्यक कृत्य करके मैना और हिमवान्की आशा ले भगवान् शिव जनवासेमें चले गये । मूने । उस समय महान् उत्सव हुआ और वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी । लोग जारों प्रैकारके बाजे बजाने लगे । जनवासेमें अपने स्थानपर पहुँचकर विवरने लोकान्नारवदा मुनियोंको प्रणाम किया । श्रीहरिको और मुझे भी मस्तक छुकाया । फिर सब देवता आदिने उनकी वन्दना की । उस समय वहाँ जय-जयकारु नमस्कारतथा मंगल विवरोंका विनाश करनेवाली शुभदशायिनी वेदध्वनि भी दोने लगी । इसके बाद मैंने, भगवान् विष्णुने तथा हनु, प्रगृहि और निद्र आदिने भी शंकरजीकी लृति की । निरिजानामन भेदेश्वरकी सुति करके वे विष्णु आदि देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी वधोन्नित सेवामें लगा गये । तत्प्रशान् लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाले महेश्वर शम्भुने उन सभाओं गम्भान दिया । फिर उन परमेश्वरकी बाजा पारर दे विष्णु आदि देवता अल्पन्त प्रसन्न हो अपने अपने विभाग-स्थानको गये ।

( अध्याय ४०—५१ )

## रातको परम सुन्दर सजे हुए वासरुहमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनवासेमें आगमन

प्रियांडी कहते हैं—जल ! नदनन्तर भान्धारानीमें श्रेष्ठ मैं जहार गिरियाँ दिमालने दातातिलोंको भोजन करानेके लिए अप्यं शैवानी शुद्धर दंगमें रक्षाय तथा अपने पुत्रीं के प्रश्नाय पठाकरों भेजनर गिरिहित भद्र देवताओं—हैं भेदभाव लिये हुएराय । जब यह लोग अपने घर आये हैं तो अरुदेव नाय उत्तरोत्तम भेदभाव वरदध्योरा

भोजन करता । भोजनके पश्चात् शाम-हुए खें, शुद्ध जलके विष्णु आदि यह देवता दिमालके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने हेतुमें गये । लीलागी अपने माली विवरने भगवान् शिवने भविष्यतपूर्वक दर्शन करते हुए महान् उत्सव में उत्तिर्हीं सुन्दर वासमवनमें दायर ह । भेदभाव द्वारा यह शुद्ध शम्भुने उपर

वासमन्दिरका निरीक्षण किया । वह भवन प्रज्ञित हुए सैकड़ों रक्षमय प्रदीपोंके कारण अद्भुत प्रभासे उम्मा सित हो रहा था । वहाँ रक्षमय पात्र तथा रक्षोंके छी कलश रक्खे गये थे । माती और मणियोंसे सारा भवन जगमगा रहा था । रक्षमय दर्पणकी शोभासे सम्पन्न तथा इवेत चौंबोंसे अलंकृत था । मुक्तामणियोंकी मुन्द्र मालाओं ( वंदनवारी ) से आवेषित हुआ वह वासभवन बड़ा समुद्दिशाली दिखायी देता था । उसकी कर्दी उपमा नहीं थी । वह महादिव्य, अतिविचित्र, परम सनोहर तथा मनको आह्वाद प्रदान करनेवाला था । उसके फर्शपर नाना प्रकारकी रचनाएँ की गयी थीं—बैल-बूटे निकाले गये थे । शिवजीके दिये हुए वरका ही महान् एवं अनुपम प्रभाव दिखाता हुआ वह शोभाशाली भवन शिवलोकके नामसे प्रसिद्ध किया गया था । नाना प्रकारके सुगन्धित श्रेष्ठ द्रव्योंसे सुवासित तथा सुन्दर प्रकाशसे परिपूर्ण था । वहाँ चन्दन और अगर-की समिलित गन्ध फैल रही थी । उस भवनमें फूलोंकी सेज बिछी हुई थी । विश्वकर्माका बनाया हुआ वह भवन नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे सुसज्जित था । श्रेष्ठ रक्षोंकी सारभूत मणियोंसे निर्मित सुन्दर हारोंद्वारा उस वासगृहको अलंकृत किया गया था । उसमें विश्वकर्माद्वारा निर्मित कृत्रिम वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, कैलास, इन्द्रभवन तथा शिवलोक आदि दीख रहे थे । ऐसे आदर्शर्यजनक शोभासे सम्पन्न उस वासभवनको देखकर गिरिराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए भगवान् महेश्वर बहुत संतुष्ट हुए । वहाँ अति रमणीय रत्नजटित उत्तम पलंगपर परमेश्वर शिव बड़ी प्रसन्नतासे लीलापूर्वक सोये । इधर हिमालयने बड़ी प्रसन्नतासे अपने समस्त भाई-बन्धुओं एवं दूसरे लोगोंको भी भोजन कराया तथा जो कार्य शेष रह गये थे, उन्हें भी पूर्ण किया ।

शैलराज हिमालय इस प्रकार आवश्यक कार्यमें लगे हुए थे और प्रियतम परमेश्वर शिव शयन कर रहे थे ।

चतुर्थीकर्म, वारातका कई दिनोंतक ठहरना, समर्पियोंके समझानेसे हिमालयका वारातको  
विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा  
वारातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना

ब्रह्मजी कहते हैं—तदनन्तर विष्णु आदि देवता तथा ऋषि कैलास लौटनेका विचार करने लगे । तब हिमालयने जनवासेमें आकर सबको भोजनके लिये निमन्त्रित

इतनेमें ही शारी रात बीत गयी और प्रातःकाल होला प्रभातात्माल शेनेवर धैर्यवान् और उत्ताही पुष्ट ल प्रकारके बाजे बजाने लगे । उस समय श्रीविष्णु अदित देवता सानन्द उठे और अपने इष्टदेव देवेश तिक्त स्वरण करके वहाँ कैलासको चलनेके लिये बत्तीज्ज्ञ तैयार हो गये । उन्होंने अपने बादन मी सुखित स लिये । तत्पश्चात् धर्मको शिवके समीप मेजा । वोहरै सम्पन्न धर्म नारायणकी आशासे वासगृहमें पहुँचकर देव शंकरसे समयोचित बात बोले—‘प्रमथगणोंके स्वामी महेश उठिये, उठिये; आपका कल्याण हो । आप हमारे लिए कल्याणकारी होइये; जनवासेमें चलिये और वहाँ सददेव को कृतार्थ कीजिये ।’

धर्मकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वर हृष्ट उन्होंने धर्मको कृपाद्विसे देखा और शब्द लगाया । इसके बाद धर्मसे हैतते हुए कहा—‘तुम आगे क में भी वहाँ शीघ्र ही आऊँगा, इसमें संशय नहीं है ।’

भगवान् शिवके ऐसा कहनेवर धर्म जनवासेमें तत्पश्चात् शम्भु भी स्वयं वहाँ जानेको उद्यत हुए । जानकर महान् उत्तम भनाती हुई लियाँ वहाँ आगे भगवान् शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन कर्त्त मङ्गलगान करने लगीं । तदनन्तर लोकाचारका पाल हुए शम्भु प्रातःकालिक कृत्य करके मेना और हिमाल आज्ञा ले जनवासेको गये । मुने ! उस समय वहाँ उत्सव हुआ । वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी और लोकाचारवश मुनियोंको, विष्णुको और मुझको प्रणाम दि फिर देवता आदिने उनकी बन्दना की । उस समय जयकार, नमस्कार तथा वेदमन्त्रोच्चारणकी मङ्गलदायिनी होने लगी । इससे सब और कोलाहल छा गया ।

( अथाव ।

किया । तत्पश्चात् देवेश्वर शिवको आमन्त्रित करके हि अपने घरको गये और नाना प्रकारके विधानसे नाना की तैयारी करने लगे । उन्होंने प्रसन्नता और उत्स

जय भोजनके लिये परिचारकहित भगवान् शिवको वयोचित हीतने अनने घर बुलवाया। शम्भुके, विष्णुके, मेरे, अन्य एव देवताओंके, मुनियोंके तथा वर्णों आदि हुए अन्य नव दोषोंके भी चरणोंको वडे आदरके साथ धोकर उन भवको गिरिजाने मण्डपके भीतर मुन्द्र आउनांपर विठाया। पिर अनने भाई-बन्धुओंको साथ लेकर उनके वहयोगसे उन सब अनिधियोंको नाना प्रकारके सरख पदार्थोद्धारा पूण्यता तृप्त किया। मेरे, विष्णुके तथा शम्भुके साथ सब दोषोंने अच्छी तरह भोजन किया। नारद ! विधित् भोजन वौर आचमन करके तृप्त और प्रसन्न हुए सब ऐसे हिमालये आका ले अपने-अपने डेरेपर गये। मुने ! हमी प्रश्न तीमरे दिन भी गिरिजाने विधित् दान, मान और आदर आदिके द्वारा उन सबका सत्कार किया। जीपा दिन अनेक शुद्धतापूर्वक सविधि चतुर्थी कर्म हुआ, जिसके क्रिता विवाह-न्यज्ञ अभूता ही रह जाता है। उन समय नाना प्रकारका उल्लंघ हुआ। नामुदाद और जन-जपानारथी धनि हुई। वहुतसे मुन्द्र दान दिये गये। गोति-गोतिके मुन्द्र गान और रूप्त्व हुए। पौन्त्रे दिन सब देवताओंने वडे हर्ष और अत्यन्त प्रेमके साथ शैलराजको मृणित किया कि अब हमलेग वहसि जाना चाहते हैं। आप आसा प्रदान करें। उनसी वह बात मुन गिरिजा दिग्धान दृप जोदार बोले—देवगण ! आपलोग हुए दिन और ठहरे तभा युक्तार कुरा रहें। वो एवर उन्हें खेलके साथ उन देवताओंसे, भगवान् गिरिजा, रिष्युदी, मुरादे तथा अन्य दोषोंसे वहुत दिलोक दरासा और प्रतिदिन विशेष आदृत-नियमहित।

इस प्रकार देवताओंके वह रहते हुए बहुत दिन हीं रहे, जब उन भद्रों गिरिजारे पाप स्फुरियोंसे मेल। समर्थियोंने हिमालय और भैलौ महासौचित दान दिया है। यहसारा अरम (दानार)। अर्थ किया

तथा प्रलवतापूर्वक उनके सौभाग्यकी सराहना की। मुने। उनके समझानेये नितिराजने यारक्तको विदा करना खोकर कर लिया। तत्सञ्चात् भगवान् शम्भु यामाके लिये उच्चत ही देवता आदिके साथ शैलराजके पास आये। देवेश शिव देवताओंसहित कलापकी याचके लिये जब उच्चत हुए, उन सभ्य मेना उच्चतरसे रोने लगी और उन हृगनिधानसे बोली।

मैनने कहा—कृपानिये ! कृपा करके मेरी शिवाज्ञ भट्टीमाँति लालन-पालन कीजियेगा। आप आत्मतोष हैं। पार्वतीके लहरों अमरावीको नीचमा कीजियेगा। मेरी बसी जन्म-जन्ममें थापके नरणारविन्दीते भक्त रही है और रहेगी। उसे माँते और जागते समय भी अस्मे स्थानी महादेवके तिका दूररी किसी वलुकी तुम नहीं रहती। मृत्युजय ! आपके प्रति भक्तिभावकी नाँते मुनते ही यह एषके ओर वहाँ तुम्हें पुलकिन हो। उठनी है और भ्रातासी निन्दा सुनकर ऐसा मैन लाप लेती है। मानो गर रही नहीं हो।

ब्रह्मानी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर मैनको अगमी रेटी शिवको लौप दी और उन दोषोंके नामने ही उच्चतरसे रोगी हुई यह सूक्ष्मित ही गयी। तब महादेवजीमें निमाको भवसाच बनेत किता और उको शिश ले देवताओंके साथ महान् उत्तरर्थक याचा की। ऐसे सब देवता अरने क्यासी धित तथा सेवनकोंके द्वाप तुम्हार कैलात पर्वतर्गी और प्रसिद्ध हुए। वे मम-हीमन शिवजा शिवाज्ञ रह रहे हैं। इमाम-जूर्मिदे दरहरी दर्सियों अत्यन्त दिलमहित गर देखा है और उच्चतरे साथ ठहर गर और शिवाज्ञ श्रद्धामन। इसीपर उम्ही कहे। मर्हीम ! इन दरहर देवताओंसहित धर्मार्थी ऐसे बाह्यत वर्गम शिव तथा। अब रिषाकी कराता दर्शन भैलौ, औ भैलौ ग्राम नीम विश्वामित्र विश्वामित्र विश्वामित्र।

मैनकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मण-पत्राज्ञ विश्वामित्र उपदेश देना

उत्सव मनाये । किर उन्होंने नाना प्रकारके रुजटित मुन्द्र वस्त्रों और बारह आभूषणोंद्वारा राजोचित् शङ्कार करके पार्वतीको विभूषित किया । तत्प्रश्नात् मेनाके मनोभावको जानकर एक सती-साध्वी ब्राह्मणपत्नीने गिरिजाको उत्तम पातिव्रत्यकी शिक्षा दी ।

**ब्राह्मणपत्नी घोली—गिरिजाकिशोरी !** तुम प्रेम-पूर्वक मेरा यह वचन सुनो । यह धर्मको बद्धनेवाला, इहलोक और परलोकमें भी आनन्द देनेवाला तथा श्रोताओंको भी सुखकी प्राप्ति करनेवाला है । संसारमें पतिव्रता नारी ही धन्य है, दूसरी नहीं । वही विशेषरूपसे पूजनीय है । पतिव्रता सब लोगोंको पवित्र करनेवाली और समस्त पापराशिको नष्ट कर देनेवाली है । शिव ! जो पतिको परमेश्वरके समान मानकर प्रेमसे उसकी सेवा करती है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें कल्याणमयी गतिको पाती है ॥  
सावित्री, लोपामुद्रा, अस्त्वधती, शाण्डिली, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वघा, सती, संशा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा—ये तथा और भी बहुत-सी स्त्रियाँ साध्वी कही गयी हैं । यहाँ विस्तारभयसे उनका नाम नहीं लिया गया । वे अपने पातिव्रत्यके बलसे ही सब लोगोंकी पूजनीया तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सुनीश्वरोंकी भी माननीया हो गयी हैं । इसलिये तुम्हें अपने पति भगवान् शंकरकी सदा सेवा करनी चाहिये । वे दीनदयालु, सबके सेवनीय और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं । श्रुतियों और स्मृतियोंमें पतिव्रता-धर्मको महान् वताया गया है । इसको जैसा श्रेष्ठ वताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है ।

पातिव्रत्यधर्ममें तत्पर रहनेवाली स्त्री अपने प्रिय पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करे । शिव ! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्रीको भी खड़ी ही रहना चाहिये । शुद्धदुद्धिवाली साध्वी स्त्री प्रतिदिन अपने पतिके सो जानेपर सोये और उसके जागनेसे पहले ही जग जाय । वह छल-कपट छोड़कर सदा उसके लिये हितकर कार्य ही करे । शिव ! साध्वी स्त्रीको चाहिये कि जबतक वस्त्राभूषणोंसे विभूषित न हो ले तबतक

\* धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः ।

पावनी सर्वलोकानां सर्वपार्पणनाशिनां ॥

सेषते या पर्ति प्रेणा परते भरवच्छिवे ।

एवं भुज्जवादिलान्मोगानन्ते पत्या शिवां गतिर् ॥

( शिं० पृ० ५० स० ३० पा० ख० ५४ । ९-१० )

वह अपनेको पतिकी दृष्टिके सम्मुख न लाये । यदि पति किंतु कार्यसे परदेशमें गया हो तो उन दिनों उसे कदापि शङ्कर नहीं करना चाहिये । पतिव्रता स्त्री कभी पतिका नाम न ले । पतिके कदुबचन कष्टनेपर भी वह वद्वेषमें कड़ी ज्ञ न करे । पतिके बुलनेपर वह वसके सारे कार्य छोड़ तुरंत उसके पास नली जाय और हाथ जोड़ प्रेमसे मन्त्र शुकाकर पूछे—“नाय ! किसलिये इस दासीको बुलाया है ? मुझे सेवाके लिये आदेश देकर अपनी छापसे अनुरूप कीजिये ।” किर पति जो आदेश दे, उसका वह प्रल हृदयसे पालन करे । वह श्रके दरवाजेपर देरतक उड़ी रहे । दूरगरके घर न जाय । कोई गोपनीय वात जान तर एकके नामने उसे प्रकाशित न करे । पतिके शिला वृही उसके लिये पूजन-सामग्री स्वयं जुटा दे तथा उनके हि साधनके यथोचित अवसरकी प्रतीका करती रहे । पति आशा लिये विना कहों तीर्थ-यात्राके लिये भी न वाप लोगोंकी भीड़ने भरी हुई नभा या मेले आदिके उसको देखना वह दूरसे ही ल्यां दे । जिस नारीको तीर्थयात्रा कफल पानेकी इच्छा हो, उसे अपने पतिका चरणोद्धरण चाहिये । उसके लिये उसीमें सारे तीर्थ और क्षेत्र ही इसे संशय नहीं है ॥

पतिव्रता नारी पतिके उच्छिष्ट अन्न आदिको परम प्रिय भोजन मानकर भ्रहण करे और पति जो कुछ दे, उसे पहल प्रसाद मानकर शिरोधार्य करे । देवता, पिता, आर्तिक सेवकवर्ग, गौ तथा भिक्षुसमुदायके लिये अन्नका भाग दिये विना कदापि भोजन न करे । पातिव्रत-धर्ममें त्वर रहनेवाली शृदेवीको चाहिये कि वह धरकी सम्प्रीको संबंध एवं सुरक्षित रखें । शृहकार्यमें कुशल हो, सदा प्रश्न रहे और खर्चकी ओरसे हाथ खींचे रहे । पतिकी आठ लिये विना उपवास-ब्रत आदि न करे, अन्यथा उसे उव्वल कोई कफल नहीं मिलता और वह परलोकमें नरकगामिनी होती है । पति सुखपूर्वक वैठा हो या इच्छानुसार कीड़ानिर अथवा मनोरञ्जनमें ल्या हो, उस अवस्थामें कोई आत्मानि कार्य आ पढ़े तो भी पतिव्रता स्त्री अपने पतिको कदापि न उठाये । पति नपुंसक हो गया हो, दुर्गतिमें पड़ा हो या रोगी हो, चूढ़ा हो, सुखी हो अथवा दुखी हो, किसी भूमि

\* नीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदर्कं पितृत ।

नमिन् सर्वाणि नीर्थानि श्रेत्राणि च न संशयः ॥

( शिं० पृ० ५० स० ३० पा० ख० ५४ । १५ )

दग्धने नारी अपने उस एकमात्र पतिका उल्लङ्घन न करे । उत्तम्या देनेवर वह तीन राशितक पतिको अपना मुँहन दिलाये अवांत् उसे अलग रहे । जबतक स्नान करके शुद्ध न हो शय, तबतक अपनी कोई बात भी वह पतिके कानोंमें न पढ़ने दे । अच्छी तरह स्नान करनेके पश्चात् सबसे पहले वह अपने पतिके मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका मुँह कदापि न देखे अथवा मन-री-मन पतिका चिन्तन करके सूर्यका दर्शन करे । पतिकी आयु बढ़नेवाली अभिलापा रखनेवाली पतिव्रता नारी हृदी, खेली, किन्दूर, काजल आदि; चोली, पान, माझलिक आभूषण आदि; बेड़ोंका सँवारता, चोटी गूँथना तथा दाय-फानके आभूषण—इन सबको अपने शरीरसे दूर न करे । योद्धिम, छिनाल या हुलदा, संम्यासिनी और भाष्यकीना दियोंको वह कभी अपनी सखी न बनाये । पतिसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीका वह कभी धादर न करे । कहीं अकेली न रहनी हो । कभी तंगी देशर न नहाये । सती ही थोड़वाली, मूँगल, झाइ, सिल, जाँत और द्वारके नौकरके नीचेवाली लकड़ीपर कभी न बैठे । मेहुनकालके रिया और किसी समयमें वह पतिके सामने भृष्टता न करे । जिस-जिस यसमें पतिकी रुचि हो, उससे वह स्वयं भी प्रेम पूरे । पतिगता देवी सदा पतिका इति चाहनेवाली होती है । वह पतिके दर्पणे दर्पणे भाने । पतिके मुखपर विशदकी आया देस स्वयं भी तिशब्दमें दूध आय कगा वह प्रियतम पतिके प्रति ऐसा बताय करे, जिससे दह उन्हें प्यारी हों । पुष्पाल्पा विशिता भी सम्पति और विस्तिमें भी पतिके लिये एकनी है । अपने गम्भीर वज्री विद्वर न आने दे और नदा पीर्य प्यास पिने रहे । पी, नमक, तेल आदिके समास हो जोकि भी पतिगता भी पतिसे भरका वह न करे कि उनके वह नहीं है । वह पतिको कह का निनामें न दर्शे ।

है, वह गाँवमें कुतिया और निर्बन बनमें लियारिन होती है । नारी पतिसे कैंचे आसनपर न बैठे, दुष्ट पुरुषके निकट न जाय और पतिसे कभी कातर बच्चन न खोले । किसीकी निन्दा न करे । कलहको दूरसे ही त्याग दे । शुरुजनोंके निकट न तो उच्च ल्लरसे खोले और न हैसे । जो बाहरसे पतिको आते देख तुरंत अम, जल, भोज्य वस्तु, पान व्यौर वस्त्र आदिसे उनकी सेवा करती है, उनके दोनों चरण दबाती हैं, उनसे भीटे बच्चन खोलती है तथा प्रियतमके लेदको दूर करनेवाले अन्यान्य उपायेसि प्रसन्नतापूर्वक उन्हें संतुष्ट करती है, उनसे मानो तीनों लोकोंको तृप्त एवं संतुष्ट कर दिया । पिता, भाई और पुत्र परिमित सुख देते हैं, परंतु पति असीम सुख देता है । अतः नारीको सदा अपने पतिका पूजन—आदर-उत्तरार करना चाहिये । पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है; इसलिये सबको छोड़कर एकमात्र पतिकी ही आराधना करनी चाहिये\* ।

जो दुर्बुद्धि नारी अपने पतिको लागकर एकान्तमें विचरती है (या अभिन्नार करती है), वह शूद्रके सालकेभैं शब्दन करनेवाली फूर उद्दीप्ती होती है । जो पगाये पुरायासे कर्यालयमें दृष्टिसे देखती है, वह एंचातानी देखनेवाली होती है । जो पतिको थोड़कर अकेले मिठाई करती है, वह गाँवमें संकरी होती है अथवा बदरी होकर अपनी ही विद्या लाती है । जो पतिरि दूर यात्रा देखती है, वह खूबी होती है । जो कैरोले सदा ईर्ष्या रखती है, वह कुमारपत्नी होती है । जो पतिरि अपना दबावर जिन्हे दूसरे पुरुषपर दृष्टि दातती है, वह बदरी होती है जिसकी जगह कर्मा होती है । जो निर्जन गाँव

उत्सव मनाये । किर उन्होंने नाना प्रकारके रुजाटित मुल्क बच्छों और वारह अभूपणेद्वारा राजोन्नित शृङ्खर करके पार्वतीको विभूषित किया । तत्वश्रात् मैनाके मनोभावको जानकर एक सती-साधी ब्रात्तणपत्नीने गिरिजाको उत्तम पातिव्रत्यकी शिक्षा दी ।

**ब्रात्तणपत्नी बोली—गिरिजाकियोरी !** तुम प्रेम-पूर्वक मेरा यह बचन सुनो । यह धर्मको बहनेवाला, इहलोक और परलोकमें भी आनन्द देनेवाला तथा श्रोताओंको भी सुखकी प्राप्ति करनेवाला है । संसारमें पतिव्रता नारी ही धन्य है, दूसरी नहीं । वही विशेषरूपसे पूजनीय है । पतिव्रता सब लोगोंको पवित्र करनेवाली और समस्त पापराशिको नष्ट कर देनेवाली है । शिवे ! जो पतिको परमेश्वरके समान मानकर प्रेमसे उसकी सेवा करती है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें कल्याणमयी गतिको पाती है ॥५॥ सावित्री, लोपामुद्रा, अरुचती, शार्णिडली, शतल्पा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संशा, सुमति, अदा, मैना और स्वादा—ये तथा और भी बहुत-सी क्लियाँ साधी कही गयी हैं । यहाँ विस्तारभ्यसे उनका नाम नहीं लिया गया । वे अपने पातिव्रत्यके बलसे ही सब लोगोंकी पूजनीयता व्रता, विष्णु, शिव एवं मुनीश्वरोंकी भी माननीय हो गयी हैं । इसलिये तुम्हें अपने पति भगवान् शंकरकी सदा सेवा करनी चाहिये । वे दीनदयालु, सबके सेवनीय और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं । श्रुतियों और स्मृतियोंमें पतिव्रता-धर्मको महान् व्रताया गया है । इसको जैसा श्रेष्ठ व्रताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है ।

**पतिव्रत्य-धर्ममें** तत्पर रहनेवाली छी अपने प्रिय पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करे । शिवे ! जब पति खड़ा हो, तब साधी छीको भी खड़ी ही रहना चाहिये । शुद्धदुद्धिवाली साधी छी प्रतिदिन अपने पतिके सो जानेपर सोये और उसके जागनेसे पहले ही जग जाय । वह छल-कपट छोड़कर सदा उसके लिये हितकर कार्य ही करे । शिवे ! साधी छीको चाहिये कि जबतक वस्त्राभूपणोंसे विभूषित न हो ले तबतक

\* धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः ।

पावनी मर्वलोकानां सर्वपापैवनाशिनां ॥

सेवते या पति प्रेमा परमेश्वरविच्छिवे ।

४४ मुक्तवादिलाभ्योगानन्ते पत्य शिवां गतिभ् ॥

( शिं प० ५० र० म० पा० खं० ५४ । १-१० )

वह अपनेको पतिकी हस्तिके सम्मुख न लाये । यदि पति किं कापरी परदेशमें गया हो तो उन दिनों उसे कदमि शृङ्खला नहीं करना चाहिये । पतिव्रता छी कभी पतिका नाम न ले । पतिके कदुबन्धन कदनेपर भी वह बदलेमें कहा जून न करे । पतिके बुलनेपर वह वरके सारे कार्य छोड़ तुरंत उसके पास नली जाय और हाथ जोड़ प्रेमसे महज शुकान्तर पूछे—‘नाश !’ किसलिये इस दानीको बुलाये युझे येवाके लिये आदेश देकर अपनी कृपासे अनुरूप शीघ्रिये । किर पति जो आदेश दे, उसका वह प्रभ हृदयसे पालन करे । वह वरके द्रव्याजेपर देरतक बड़ी रहे । दूसरे के वर न जाय । कोई गोपनीय वत वाल हर एकके नामने उसे प्रकाशित न करे । पतिके विनाः छी उसके लिये पूजन-मामग्री स्वरं जुटा दे तथा उनके विषयके यथोन्नित अवसरकी प्रतीक्षा करती रहे । पर आद्या लिये विना कहाँ तीर्थ-यात्राके लिये भी न वह लोगोंकी भीड़से भरी हुई सभा या मेले आदिके उसके देखना वह दूरसे ही त्याग दे । जिस नारीको तीर्थयात्रा का फल पानेकी इच्छा हो, उसे अपने पतिका चरणोदय पूजा चाहिये । उसके लिये उसीमें सारे तीर्थ और क्षेत्र हैं । इसंशय नहीं है ॥

**पतिव्रता नारी पतिके उच्छिष्ट अन्न आदिको प्रसाद** भोजन मानकर भ्रहण करे और पति जो कुछ दे, उसे प्रसाद मानकर शिरोधार्य करे । देवता, पितर अति सेवकर्वा, गौ तथा भिक्षुसमुदायके लिये अन्नका दिये विना कदापि भोजन न करे । पतिव्रत-धर्ममें वह रहनेवाली घृदेवीको चाहिये कि वह धरकी साम्राज्ञी है एवं सुरक्षित रखदे । घृकर्यमें कुशल हो, सदा प्ररहे और खर्चकी ओरसे हाथ खोन्ने रहे । पतिकी उल्लिये विना उपवास-व्रत आदि न करे, अन्यथा उसे उकोई फल नहीं मिलता और वह परलोकमें नरकर्गी होती है । पति सुखपूर्वक वैठा हो या इच्छानुसार क्रीडाविअथवा मनोरञ्जनमें लगा हो, उस अवस्थामें कोई अता कार्य आ पड़े तो भी पतिव्रता छी अपने पतिको कर्दा उठाये । पति नपुंसक हो गया हो, दुर्गतिमें पड़ा रोगी हो, चूढ़ा हो, सुखी हो अथवा दुखी हो, किसी

\* नीर्धारिणी तु या नारी पतिपादोदकं विदेव ।

प्रसिन् सर्वाणि नीर्धारिणि शेषाणि च न संशयः ॥

( शिं प० ५१ र० म० पा० खं० ५५ । १५ )

दशामें नारी अपने उस एकमात्र पतिका उल्लङ्घन न करे । रजस्वला होनेपर वह तीन राधितक पतिको अपना मुँहन दिखाये अर्थात् उससे अल्पा रहे । जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तबतक अपनी कोई बात भी वह पतिके कानोंमें न पढ़ने दे । अच्छी तरह स्नान करनेके पश्चात् सबसे पहले वह अपने पतिके मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका मुँह कदापि न देखे अथवा मन-ही-मन पतिका चिन्तन करके सूर्यका दर्शन करे । पतिकी आयु वहनेकी अभिलाषा रखनेवाली पतिव्रता नारी हृदी, गेली, सिन्दूर, काजल आदि; चोली, पान, माझलिक आभूषण आदि; केशोंका सँवारना, चोटी गैंथना तथा हाथ-कानके आभूषण—इन सबको अपने शरीरसे दूर न करे । धोविन, छिनाल या दुल्टा, संन्यासिनी और भाग्यहीना स्त्रियोंको वह कभी अपनी सर्वी न बनाये । पतिसे देष रखनेवाली स्त्रीका वह कभी आदर न करे । कहों अकेली न खड़ी हो । कभी नंगी होकर न नहाये । सती स्त्री ओखली, मूसल, झाड़, सिल, जौत और द्वारके चौखटके नीचेवाली लकड़ीपर कभी न बैठे । मैथुनकालके सिवा और किसी समयमें वह पतिके सामने धृष्टा न करे । जिस-जिस वस्तुमें पतिकी सच्चि हो, उससे वह स्वयं भी प्रेम करे । पतिव्रता देवी सदा पतिका हित चाहनेवाली होती है । वह पतिके हृष्में हृष्म माने । पतिके मुखपर विपादकी छाया देख स्वयं भी विपादमें छूब जाय तथा वह प्रियतम पतिके प्रति ऐसा वर्ताव करे, जिससे वह उन्हें प्यारी लगे । पुण्यात्मा पतिव्रता स्त्री सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके लिये एक-सी रहे । अपने मनमें कभी विकार न आने दे और सदा धैर्य धारण किये रहे । धी, नमक, तेल आदिके समाप्त हो जानेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे सहसा यह न कहे कि अमुक वस्तु नहीं है । वह पतिको कष्ट या चिन्तामें न डाले । देवेश्वर ! पतिव्रता नारीके लिये एकमात्र पति ही ब्रह्मा, यिणु और शिवसे भी अधिक माना गया है । उसके लिये अरना पति द्विवृप ही है ॥ १०० ॥ जो पतिकी आशाका उल्लङ्घन परें प्रति और उपचास आदिये नियमका पालन करती है, वह पतिकी आयु एर लेती है और मरनेपर नरकमें जाती है । धी एं पतिके कुछ कहनेपर क्रोधपूर्वक कठंर उत्तर देती

है, वह गाँवमें कुतिया और निर्जन बनमें सियारिन होती है । नारी पतिसे ऊँचे आसनपर न बैठे, दुष्ट पुरुषके निकट न जाय और पतिसे कभी कातर बचन न बोले । किसीकी निनदा न करे । कलहको दूरसे ही त्याग दे । गुरुजनोंके निकट न तो उच्च स्वरसे बोले और न हँसे । जो बाहरसे पतिको आते देख तुरंत अब, जल, भोज्य वस्तु, पान और वस्त्र आदिसे उनकी सेवा करती है, उनके दोनों चरण दबाती है, उनसे मीठे बचन बोलती है तथा प्रियतमके खेदको दूर करनेवाले अन्यान्य उपायोंसे प्रसन्नतापूर्वक उन्हें संतुष्ट करती है, उसने मानो तीनों लोकोंको तृप्त एवं संतुष्ट कर दिया । पिता, भाई और पुत्र परिमित सुख देते हैं, परंतु पति असीम सुख देता है । अतः नारीको सदा अपने पतिका पूजन—आदर-सत्कार करना चाहिये । पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं ब्रत है; इसलिये सबको छोड़कर एकमात्र पतिकी ही आराधना करनी चाहिये\* ।

जो दुर्बुद्धि नारी अपने पतिको लागकर एकान्तमें विचरती है (या व्यभिचार करती है), वह वृक्षके खोखलेमें शयन करनेवाली क्रूरउल्की होती है । जो पराये पुरुषको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती है, वह ऐचातानी देखनेवाली होती है । जो पतिको छोड़कर अकेले मिठाई खाती है, वह गाँवमें सुअरी होती है अथवा बकरी होकर अपनी ही बिड़ा खाती है । जो पतिको तू कहकर बोलती है, वह गूँगी होती है । जो सौतसे सदा ईर्ष्या रखती है, वह दुर्भाग्यवती होती है । जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुषपर दृष्टि डालती है, वह कानी, टेढ़े मुँहवाली तथा कुरुरुपा होती है । जैसे निर्जीव शरीर तत्काल अपशिष्ट हो जाता है, उसी तरह पतिहीना नारी भलीभांति ल्नान करनेपर भी सदा अपशिष्ट ही रहती है । सोकमें वह माता धन्य है, वह जन्मदाता पिता धन्य है तथा वह पति भी धन्य है; जिसके नरमें पतिव्रता देवी नाम करती है । पतिव्रताके पुण्यते पिता, माता और पतिके कुलीनी

\* निर्विद्योहराणापि पतिरेकोऽस्मि नः ।

पतिव्रतः उपेति लक्ष्मिः दिव एव च ॥

तीन-सीन पीढ़ियोंके लोग स्वर्गलोकमें सुख भोगते हैं\* । जो दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील भड़ कर देती हैं, वे अपने माता-पिता और पति तीनोंके कुलोंको नीचे गिराती हैं तथा इसलोक और परलोकमें भी दुःख भोगती है । पतिव्रताका देर जहाँ-जहाँ पृथ्वीका स्पर्श करता है, वहाँ-वहाँकी भूमि पापहारिणी तथा परम पावन बन जाती है ॥† भगवान् सूर्य, चन्द्रमा तथा वायुदेव भी अपने-आपको पवित्र करनेके लिये ही पतिव्रताका स्पर्श करते हैं और किसी दृष्टिसे नहीं । जल भी सदा पतिव्रताका स्पर्श करना चाहता है और उसका स्पर्श करके वह अनुभव करता है कि आज मेरी जड़ताका नाश हो गया तथा आज मैं दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन गया । भार्या ही गृहस्थ-आश्रमकी जड़ है, भार्या ही सुखका मूल है, भार्यासे ही धर्मके फलकी प्राप्ति होती है तथा भार्या ही संतानकी वृद्धिमें कारण है ॥‡

क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली छियाँ नहीं हैं ? परंतु पतिव्रता स्त्री तो विश्वनाथ शिवके प्रति भक्ति होनेसे ही प्राप्त होती है । भार्यासे इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पायी जा सकती है । भार्या हीन पुरुष देवयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ करनेका अधिकारी नहीं होता । वास्तवमें गृहस्थ वही है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है । दूसरी स्त्री तो पुरुषको उसी तरह अपना प्राप्त ( भोग्य ) बनाती है, जैसे जरावस्या एवं राक्षसी । जैसे गङ्गास्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर सब कुछ पावन हो जाता है४ । पतिको ही इष्टदेव माननेवाली सती नारी और गङ्गामें कोई मेद नहीं है । पतिव्रता और उसके पतिदेव उमा और महेश्वरके समान हैं, अतः

\* सा धन्या जन्मी लोके स धन्यो जनकः पिता ।

धन्यः स च पतिर्थस्य गृहे देवी पतिव्रता ॥

पितृवंश्या मातृवंश्या: पतिवंश्याक्षयस्यः ।

पतिव्रतायाः पुण्येन स्वां सौख्यानि भुजते ॥

( शि० पु० र० स० पा० ख० ५४ । ५८-५९ )

† पतिव्रतायाश्वरणो यत्र यत्र स्त्रैहुवम् ।

तत्र तत्र भवेत् सा हि पापहन्त्री सुपावनी ॥

( शि० पु० र० स० पा० ख० ५४ । ६१ )

‡ भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।

भार्या धर्मफलावास्त्री भार्या संतानवृद्धये ॥

( शि० पु० र० स० पा० ख० ५४ । ५४ )

§ यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ।

तथा पतिव्रता वृद्धा सकलं पावनं भवेत् ॥

( शि० पु० र० स० पा० ख० ५४ । ५४ )

विद्रान् मनुष्य उन दोनोंका पूजन करे । पति प्रणव है औ नारी वेदकी पश्चात्ता; पति तप है और स्त्री क्षमा; नारी स्त्री है और पति उग्रका कल । शिवे ! सती नारी और उग्रे पति---दोनों दम्पती धन्य हैं\* ।



गिरिराजकुमारी ! इस प्रकार मैंने तुमसे पतिव्रतायां वर्णन किया है । अब तुम सावधान हो आज मुझसे प्रसवता पूर्वक पतिव्रताके मेदोंका वर्णन सुनो । देवि ! पतिव्रता नारियाँ उत्तमा आदि भेदसे चार प्रकारकी बतायी गयी हैं जो अपना सरण करनेवाले पुरुषोंका सारा पाप हर कर्त्ता हैं । उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और अतिनिकृष्टा—ये पतिव्रताके चार भेद हैं । अब मैं इनके लक्षण बताता हूँ । धूल देकर सुनो । भद्रे ! जिसका मन सदा स्वर्ममें भी अने पतिको ही देखता है, दूसरे किसी परपुरुषको नहीं, वह ही उत्तमा या उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता कही गयी है । शैलेष !

\* तारः पतिः श्रुतिनारी क्षमा सा स स्वयं तपः ।

कलं पतिः सत्कृत्या सा धन्यो तौ दम्पती शिवे ॥

शि० पु० र० स० पा० ख० ५४ । ५० !

जो दूसरे पुरुषको उत्तम बुद्धिसे पिता, भाई एवं पुत्रके उमान देखती है; उसे मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। पार्वती ! जो मनसे अपने धर्मका विचार करके श्रभिचार नहीं करती, सदाचारमें ही स्थित रहती है, उसे निकृष्टा अथवा निम्नश्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। जो शतिके भयसे तथा कुलमें कलङ्क लगानेके डरसे व्यभिचारसे वचनेका प्रश्नन करती है, उसे पूर्वकालके विद्वानोंने अतिनिकृष्टा अथवा निम्नतम कोटिकी पतिव्रता बताया है। शिव ! वे चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ समस्त लोकोंका पाप नाश करनेवाली और उन्हें पवित्र बनानेवाली हैं। अत्रिकी स्त्री अनसूया-ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंकी प्रार्थनासे शतिव्रतके प्रभावका उपभोग करके बाराहके शापसे भरे हुए

एक ब्राह्मणको जीवित कर दिया था। शैलकुमारी शिवे। ऐसा जानकर तुम्हें नित्य प्रसन्नतापूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिसेवन सदा समस्त अपीष्ट फलोंको देनेवाला है। तुम साक्षात् जगदम्बा महेश्वरी हो और तुम्हारे पति साक्षात् भगवान् शिव हैं। तुम्हारा तो चिन्तनमात्र करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायेंगी। देव ! यद्यपि तुम्हारे आगे यह सब कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि आज लोकाचारका आश्रय ले मैंने तुम्हें सती-धर्मका उपदेश दिया है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वह ब्राह्मण-पत्नी शिवादेवीको मस्तक छुका चुप हो गयी। इस उपदेशको सुनकर शंकरप्रिया पार्वती देवीको बड़ा हर्ष हुआ।

( अध्याय ५४ )

## शिव-पार्वती तथा उनकी बारातकी विदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको विदा करके कैलासपर रहना और पार्वतीखण्डके श्रवणकी भहिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ब्राह्मणीने देवी पार्वतीको वतधर्मकी शिक्षा देनेके पश्चात् मेनाको बुलाकर कहा—  
 तुमनीजी ! अब अपनी पुत्रीकी यात्रा कराइये—इसे विदा देये ! तब ‘बहुत अच्छा’ कहकर वे प्रेमके वशीभूत हो गए। फिर धैर्य धारण करके उन्होंने कालीको बुलाया और वे वियोगके भयसे ब्याकुल हो गए वे वेदीको बारंबार से ल्पाकर अत्यन्त उच्चतरसे रोने लगे। फिर पार्वती भी जाजनक यात्रा कहती हुई जोर-जोरसे रो पड़ी। मेना ८ शिवा दोनों ही विरह-शोकसे पीड़ित हो मूर्छित हो गये। तोके रोनेसे देवपल्लियाँ भी अपनी मुख-घुथ खो बैठी। वे स्त्रियाँ बढ़ौं सोने लगीं। वे सब-की-सब अचेतनी हो गए। उस यात्राके समय परम प्रभु साक्षात् योगीश्वर शिव रो पड़े, फिर दूसरा कौन कुप रह सकता था ? इसी समय गे समस्त पुत्रों, ननियों और उत्तम श्रावणोंके नाथ शाल्य शोभ घड़े थे पहुँचे और मोहवद अपनी दशीको इसने लगाकर रोने लगे। ऐटी ! तुम तुम्हें होड़कर रहों जो जो रही हो ? ऐसा कहकर वे जगत्को नूतन भावने हुए उत्तर शिवान करने लगे। तब शानियोंमें भेष पुरुषहितने अपनायी भास्योंमें धूप-धूप अध्यात्मविद्याका उपदेश दिया गया है। उसके अन्तर्में शुद्ध-शुद्धि भवनीकी भनिताया गया है।

से माता-पिता तथा गुरुको प्रणाम किया। वे महामाया हीकर भी लोकाचारवश बारंबार रो उठती थीं। पार्वतीके रोनेसे ही सब स्त्रियाँ रोने लगती थीं। माता मेना तो बहुत रोयी। भौजाइयाँ भी रोने लगीं। यही दशा भाइयोंकी थी। शिवाकी माँ, भाभियाँ तथा अन्य युवतियाँ बारंबार रोदन करने लगीं। भाई और पिता भी प्रेम और जौहाईवश रोये विना न रह सके। उस समय ब्राह्मणोंने मिलकर सबको आदरपूर्वक समझाया और यह गूचित किया कि यात्राके लिये यही सबसे उत्तम तथा सुविद लग है।

तब द्विमाल्य और मेनाने विषेक्युर्वक धैर्य धारण करके शिवाके बैठनेके लिये पालकी भेंगवायी, श्रावणोंकी पत्नियोंने शिवाको उत्तम चड़ाया और उन्होंने मिलकर आशीर्वाद दिया। पिता-माता और ब्राह्मणोंने भी अपनी शुभ कामना प्रकट की। नेना और द्विमाल्यने पार्वतीको ऐसें-ऐसे नामान दिये, जो बहारनीके नाम्य हैं। नाना प्रकारके द्रव्योंकी शुभ राशि भेट फूंके जो दूसरोंके लिये चरम दुर्योग है। लिंगने समस्त गुरुजनोंको, माता-पिताको, उर्मिला और शास्त्रदेवी कथा भूजाइयों और दूसरी किसीके प्रकार चर्चाये जाना की। पुरुषहित दुष्क्रियान् द्विमाल्य भी देखहुए दर्दाभूत हो गये। और उस समय दूसरी, उसी देवताश्रौप्यहित

भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे । वहाँ सब लोग बड़े प्रेम और आनन्दसे परस्पर मिले । उन सबने भगवान् को प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए वे पुरीको लौट गये ।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर भगवान् शिवने पार्वतीसे कहा—‘देवेश्वरि ! तुम सदासे ही मेरी प्राणधिका हो । तुम्हें लीलापूर्वक इस वातकी याद दिला रहा हूँ । तुम्हें पूर्वजन्मकी वातोंका स्मरण है । अतः मेरे और अपने नित्य सम्बन्धका यदि तुम्हें स्मरण हो तो यताओ ।’ अपने प्राणनाथ महेश्वरकी यह वात सुनकर शंकरकी नित्य प्रिया पार्वती मुस्कराती हुई बोली—‘प्राणेश्वर ! मुझे सब वातोंका स्मरण है, किंतु इस समय आप चुप रहिये और इस अवसरके अनुरूप जो कार्य हो, उसीको शीघ्र पूर्ण कीजिये ।’

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! प्रिया पार्वतीके सैकड़ों सुधाधारोंके समान मधुर वचनको सुनकर लोकाचार-परायण भगवान् विश्वनाथ बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र करके नारायण आदि देवताओंको भाँति-भाँतिकी मनोहर भोज्य वस्तुएँ खिलायीं । इसी तरह अपने विवाहमें पधारे हुए दूसरे लोगोंको भी भगवान् शंकरने प्रेम-पूर्वक सुमधुर रससे युक्त नाना प्रकारका अन्न भोजन कराया । भोजन करनेके पश्चात् उन सब देवताओंने नाना रूपोंसे विभूषित हो अपनी स्त्रियों और सेवकगणोंके साथ आकर प्रभु चन्द्रशेखरको प्रणाम किया । फिर प्रिय वचनोद्घारा प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति एवं परिक्षमा करके शिव-विवाह-की प्रशंसा करते हुए वे सब लोग अपने-अपने धामको चले गये । मुने ! साक्षात् भगवान् शिवने लोकाचारवश भगवान् विष्णुको और मुङ्गको भी प्रणाम किया—ठीक उसी तरह, जैसे वामनरूपधारी श्रीहरिने महर्षि कश्यपको नमस्कार किया था । तब मैंने और श्रीविष्णुने शिवको हृदयसे लगाकर उनको आशीर्वाद दिया । तदनन्तर श्रीहरिने उन्हें परब्रह्म

परब्रह्मा मानकर उनकी उत्तम स्तुति की । इसके बादसे अग्रिम भगवान् विष्णु शिवसे विदा ले शिव और किं प्रसन्नतापूर्वक शाश्वत जोद उनके विवाहकी प्रयत्ना छंटे । अपने उत्तम धामको गये । भगवान् शिव भी पार्वतीके द्वासानन्द निहार करते हुए अपने निवासभूत कैवल्यके रहने लगे । समस्त शिवगणोंको इस विवाहसे बड़ा हु मिला । वे अत्यन्त भक्तिग्रन्थक शिव और शिवकी शरण करने लगे ।

तात ! इस प्रकार मैंने परम मङ्गलमय शिवकी वर्णन किया । यह शोकनाशक, आनन्ददायक तथा सभा आयुक्ती वृद्धि करनेवाला है । जो पुरुष भगवान् शिव शिवामें मन लगाकर पवित्र हो प्रतिदिन इस प्रसङ्गके अथवा नियमपूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह शिवलोक प्रवेश लेता है । यह अद्भुत आख्यान कहा गया, जो मां आवासस्यान है । यह समूर्ण विद्वानोंको शान्त करके रोगोंका नाश करनेवाला है । इसके द्वारा सर्व, यथा तथा पुष्प और पौत्रोंकी प्राप्ति होती है । यह समूर्ण काम को पूर्ण करता, इस लोकमें भोग देता और पर्लोकमें प्रदान करता है । इस शुभ प्रसङ्गको सुननेसे अपमुख्य होता है और परम शान्तिकी प्राप्ति होती है । यह दुःखनालोंका नाशक तथा वृद्धि एवं विवेक आदिका है । अपने शुभकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिव सभी उत्सवोंमें प्रसन्नताके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ चाहिये । यह भगवान् शिवको संतोष प्रदान करनेवां विशेषतः देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय तथा शिव सभी कार्योंके प्रसङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक इसका पाठ करता अथवा पवित्र हो शिव-पार्वतीके इस कल्याणकारी च श्रवण करना चाहिये । ऐसा करनेसे समस्त कार्य होते हैं । यह सत्य है, सत्य है । इसमें संशय नहीं । (अध्याय ५)

## रुद्रसंहिता, चतुर्थ (कुमार) स्वण्ड

देवताओंद्वारा स्कन्दका शिव-पार्वतीके पास लाया जाना, उनका लाड़-प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका  
उन्हें तारक-वधके लिये स्वामी कार्तिकको देना, कुमारकी अध्यक्षतामें देवसेनाका प्रस्थान,  
मही-सागर-संगमपर तारकासुरका आना और दोनों सेनाओंमें मुठभेड़, वीरभद्रका  
तारकके साथ घोर संग्राम, पुनः श्रीहरि और तारकमें भयानक युद्ध

बन्दे बन्दन्तुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं  
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।  
सत्यं सत्यमर्थं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं  
विष्णुघ्रहानुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम् ॥

बन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें न अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णनिन्दमय, कोकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, समूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र वासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, सत्यमय हैं, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालवाधित है, जो सत्यप्रिय वं सत्य-प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, अच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन भगवान् शंकरकी बन्दना करता हूँ ।

श्रीनारदजीने पूछा—देवताओंका मङ्गल करनेवाले इ ! परमात्मा शिव तो सर्वसमर्थ हैं । आत्माराम होकर भी नहोने लिस पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पार्वतीके साथ विवाह किया ।, उनके वह पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? तथा तारकार्या वध कैसे हुआ ? ब्रह्मन् ! मुझपर कृपा करके यह सारा ज्ञान पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये ।

इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कथाप्रसङ्ग उनाकर कुमारके प्राप्ति उत्तम दोनों तथा कृत्तिका आदि छः स्त्रियोंके द्वारा उनके पाले जाने, उन छहोंकी संतुष्टिके लिये उनके छः मुख रण करने और कृतिकाओंके द्वारा पाले जानेके कारण उनका विविधेय नाम देनेकी धात कही । तदमन्तर उनके शंकर-दिव्यजीवी जैवमें लाये जानेकी कथा सुनायी । फिर ब्रह्माजीने इ—भगवान् शंकरने कुमारको गोदमें देठाकर अत्यन्त स्नेह ला । देवताओंने उन्हें जाना प्रकारके पदार्थ, विद्याएँ, दासि । अब तरादि प्रदान किये । पार्वतीके हृदयमें प्रेम नमाता है । उन्होंने एत्यूर्वक सुनकराकर कुमारको परमोक्तम् ऐसा किया, अथ री निरजीवी भी दना दिया । उन्होंने दिव्य एवं जीव एवं विशाल एवं मनोरं द्वारा अर्हित किया ।

सावित्रीने प्रसन्न होकर सारी सिद्धविद्याएँ प्रदान कीं । मुनिश्रेष्ठ । इस प्रकार वहाँ महोत्सव मनाया गया । सभीके मन प्रसन्न थे । विशेषतः शिव और पार्वतीके आनन्दका पार नहीं था । इसी बीच देवताओंने भगवान् शंकरसे कहा—प्रभो ! यह तारकासुर कुमारके हाथों ही मारा जानेवाला है, इसीलिये ही यह ( पार्वती-परिणय तथा कुमारोत्पत्ति आदि ) उत्तम चरित घटित हुआ है । अतः हमलोगोंके सुखार्थ उसका काम तमाम करनेके हेतु कुमारको आशा दीजिये । हमलोग आज ही अख-शत्रुसे सुसज्जित होकर तारकको मारनेके लिये रण-यात्रा करेंगे ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यह मुनकर भगवान् शंकरका हृदय दयार्द्र हो गया । उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारकका वध करनेके लिये अपने पुत्र कुमारको देवताओंको सौंप दिया । फिर तो शिवजीकी आशा मिल जाने-पर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता एकत्र होकर गुहको आगे करके तुरंत ही उस पर्वतसे चल दिये । उस समय श्रीदिवि आदि देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास था ( कि ये अवश्य तारकका वध कर डालेंगे ); वे भगवान् शंकरके तेजसे भावित हो कुमारके सेनापतित्वमें तारकका संहार करनेके लिये ( रणक्षेत्रमें ) आये । उधर महावली तारकने जब देवताओंके इय युद्धोद्योगको देखा, तब वह भी एक विशाल सेनाके साथ देवोंसे युद्ध करनेके लिये तलाल ही चल पड़ा । उसकी उस विशाल बाटिनीको आती देख देवताओंको परम विसर्य हुआ । फिर तो वे यत्पूर्वक वरंदार भिन्नाद करने लगे । उसी समय तुरंत ही भगवान् शंकरकी प्रेरणासे विष्णु आदि समूर्ण देवताओंके प्रति आशाद्यनार्थी हुए ।

आकाशदावाणीने कहा—यह—देवताय ! दूसरदेव जूँ कुमारके अभिनाश्यकतामें युद्ध करनेके लिये उत्तम दूर दूर इन्हें उम्मन्दामन्द देवताओंकी दीसकर दियायी होड़ेगी ।

ब्रह्माजी कहते हैं—ही ! इस उत्तमादर्शकी उनकर वही देवताओंकी दीसकर दियायी होड़ेगी ।

और वे वीरोचित गर्जना करने लगे। उनकी युद्ध-कामना बलवती हो उठी और वे सब-के-सब कुमारको अग्नी वगाकर बड़ी उतावलीके साथ मही-गागर-संगमके गये। उधर वह संख्यक असुरोंसे घिरा हुआ वह तारक भी बहुत बड़ी सेनाके साथ शीघ्र ही वहाँ आ धमका, जहाँ वे सभी देवता खड़े थे। उस असुरके आगमन-कालमें प्रलयकालीन भेदोंके समान गर्जना करनेवाली रणभैरियाँ तथा अन्यान्य कर्कश शब्द करनेवाले रणवाद्य वज रहे थे। उस समय तारकासुरके साथ अनेकाले दैत्य ताल ठोकते हुए गर्जना कर रहे थे। उनके पदावातसे पृथ्वी काँप उटती थी। उस अत्यन्त भयंकर कोलाहलको मुनकर भी सभी देवता निर्भय ही बने रहे। वे एक साथ मिलकर तारकासुरसे लोहा लेनेके लिये डटकर खड़े हो गये। उस समय देवराज इन्द्र कुमारको गजराजपर बैठाकर लवसे आगे खड़े हुए। वे लोकपालोंसे घिरे हुए थे और उनके साथ देवताओंकी महसी सेना थी। तत्पश्चात् कुमारने उस गजराजको तो महेन्द्र-को हीदे दिया और वे स्वयं एक ऐसे विमानपर आरूढ़ हुए, जो परमाश्रव्यजनक तथा नाना प्रकारके रक्षोंसे सुशोभित था। उस समय उस विमानपर सवार होनेसे सर्वगुणसम्बन्ध महायशस्वी शंकर-पुत्र कुमार उच्छृष्ट शोभासे संयुक्त होकर सुशोभित हो रहे थे। उनपर परम प्रकाशमान चँचर डुलाये जा रहे थे। इसी वीच बलभिमानी एवं महावीर देवता और दैत्य क्रोधसे विहृल होकर परस्पर युद्ध करने लगे। उस समय देवताओं और दैत्योंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ। क्षणभरमें ही सारी रणभूमि रुण्ड-मुण्डोंसे व्याप हो गयी।

तब महावली तारकासुर बहुत बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़ा। उस रणदुर्मद तारक-को युद्धकी कामनासे आगे बढ़ते देखकर इन्द्र आदि देवता तुरंत ही उसके सामने आये। फिर तो दोनों सेनाओंमें महान् कोलाहल होने लगा। तत्पश्चात् देवों तथा असुरोंका विनाश करनेवाला ऐसा द्वन्द्ययुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसे देखकर वीरलोग हृष्णोऽकृष्ण हो गये और कायरोंके मनमें भय समा गया। इसी समय वीरभद्र कुपित होकर महावली प्रमथगणोंके साथ वीरभिमानी तारकके समीप आ पहुँचे। वे बलवान् गणनायक भगवान् शिवके कोपसे उत्पन्न हुए थे, अतः समस्त देवताओंको पीछे करके युद्धकी अभिलाशासे तारकके सम्मुख हट गये। उस समय प्रमथगणों तथा सारे असुरोंके मनमें परमोङ्गास

था, अतः वे उस गहासमरमें परस्पर गुत्थमगुत्थ होकर हो लगे। तदनन्तर वीरभद्रसे तारकका भयानक युद्ध हुआ। ही वीच अगुरेंकी सेना। रणसे विमुख हो भगवंशी। इन झट्ट अपनी सेनाको तितर-वितर हुई देख उसका नायक बालक क्रोधसे भर गया और दस हजार भुजाएँ धारण करके जित सवार हो देवगणोंको मार डालनेके लिये वेगपूर्वक उत्तरदान द्वापद्य। वह युद्धके मुहानेपर देवों तथा प्रमथगणोंते भरकर गिराने लगा। तब प्रमथगणोंके नेता महावली के उसके उस कर्मको देखकर उसका वध करनेके लिये ज्ञ कुपित हो उठे। फिर तो उन्होंने भगवान् शिवके नेतृत्व का ध्यान करके एक ऐसा श्रेष्ठ विशूल हाथमें लिया, जितेजसे जारी दिशाएँ और आकाश प्रकाशित हो उठे। अवग्रहपर महान कौतुक प्रदर्शन करनेवाले सामिक्षातिक्षेपे ही वीरवाहुद्वारा कहलाकर उस युद्धको रोक दिया। लामीकी आजाते वीरभद्र उस युद्धसे हट गये। वह के अमुर-सेनापति महावीर तारक कुपित हो उठा। वह युद्ध तथा नाना प्रकारके अल्पोंका जानकार था, अतः देख ललकार-ललकरकर उनपर दाणोंकी वृष्टि करने लगा। समय बलवानोंमें श्रेष्ठ असुरराज तारकने ऐसा महान कर्म कि सारे देवता मिलकर भी उसका सामना न कर सके। भयभीत देवताओंको वों पिट्टे हुए देखकर भगवान् अनुक्रोध हो आया और वे शीघ्र ही युद्ध करनेके लिये तैयार गये। उन भगवान् श्रीहरिने अपने आयुध सुर्दर्शनकः शार्द्ध धनुषको लेकर युद्धस्थलमें महादेत्य तारकर आश्रित किया। मुने ! तदनन्तर सबके देवते-देवते श्रीहरी तारकासुरमें अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी महायुद्ध हो गया। इसी वीच अन्युतने कुपित होकर महान् विहार ने और धधकती हुई ज्वलाओंके-से प्रकाशवाले अपने के उठाया। फिर तो श्रीहरिने उसी चक्रसे दैत्यराज वर्त प्रहार किया। उसकी चोटसे अत्यन्त व्यथित होकर वह अपूर्योपर गिर पड़ा। परंतु वह असुरनायक तारक अनुवलवान् था, अतः तुरंत ही उठकर उस दैत्यराजने अपने शक्तिसे चक्रके दुकड़े-दुकड़े कर दिये। मुने ! भल विष्णु और तारकासुर दोनों बलवान् थे और दोनोंमें अभल था, अतः युद्धस्थलमें वे परस्पर ज्झूँने लगे।

( अध्याय १८ )

ब्रह्माजीकी आज्ञासे कुमारका युद्धके लिये जाना, तारकके साथ उनका भीषण संग्राम और उनके द्वारा तारकका वध, तत्पथात् देवोंद्वारा कुमारका अभिनन्दन और स्तवन, कुमारका उन्हें वरदान देकर कैलासपर जा शिव-पार्वतीके पास निवास करना

तब ब्रह्माजीने कहा—शंकर-सुवन स्वामी कार्तिक ! तुम तो देवाधिदेव हो । पार्वती-सुत ! विष्णु और तारक-सुरका यह व्यर्थ युद्ध शोभा नहीं दे रहा है; क्योंकि विष्णुके हाथों इस तारककी मृत्यु नहीं होगी । यह मुझसे वरदान पाकर अत्यन्त व्यलगान् हो गया है । यह मैं विलकुल सत्य बात कह रहा हूँ । पार्वती-नन्दन ! तुम्हारे अतिरिक्त इस पापीको मानेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसलिये महाप्रभो ! तुम्हें मेरे कथनानुसार ही करना चाहिये । परंतु ! तुम शीघ्र ही उस दैत्यका वध करनेके लिये तेगार हो जाओ; क्योंकि पार्वती-पुत्र ! तारकका संहार करनेके निमित्त ही तुम शंकरसे उत्तम हुए हो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यों मेरा कथन सुनकर शंकरनन्दन कुमार कार्तिकेय ठाठाकर हँस पड़े और प्रसन्नता-पूर्वक बोले—‘तथास्तु—ऐसा ही होगा ।’ तब महान् एश्वर्यथाली शंकर-सुवन कुमार तारक-सुरके वधका निश्चय करके विमानसे उत्तर पड़े और पैदल हो गये । जिस समय महाबली शिव-पुत्र कुमार अपनी अत्यन्त चमकीली शक्तिको,



जो लगभग सौ दसकती हुई एक बड़ी उल्का-सी जान पड़ती थी, हाथमें लेकर पैदल ही दौड़ रहे थे, उस समय उनकी अद्वृत शोभा हो रही थी । उनके मनमें तनिक भी व्यकुलता नहीं थी । वे परम प्रचण्ड और अप्रमेय बलशाली थे । उन पञ्चमुखको अपनी ओर आते देखकर तारक मुरश्रेष्ठोंसे बोला—‘क्या शत्रुओंका संहार करनेवाला कुमार यही है ? मैं अकेला वीर इसके साथ युद्ध करूँगा और मैं ही समस्त वीरों, प्रमथगणों, लेकपालों तथा श्रीहरि जिनके नायक हूँ, उन देवोंको भी मार डालूँगा ।’

तदनन्तर देवताओंको दुर्वचन कहकर वह असुर तारक भीषण युद्ध करने लगा । उस समय बड़ा विकट संग्राम हुआ । तब शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले कुमारने शिवजीके चरण-कमलोंका सरण करके तारकके वधका विचार किया । फिर तो महातेजस्वी एवं महाबली कुमार रोपवेदमें आकर गर्जना करने लगे और बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्धके लिये डटकर खड़े हो गये । उस समय समस्त देवताओंने जय-जयकारका शब्द किया और देवर्पिणी ने इष्ट-बाजीद्वारा उनकी स्तुति की । तब तारक और कुमारका संग्राम प्रारम्भ हुआ, जो अत्यन्त दुर्सुह, महान् भयंकर और समूर्ज प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था । कुमार और तारक दोनों ही शक्तियुद्धमें परम प्रवीण थे, अतः अत्यन्त रोपवेदमें वे परस्पर एक दूसरेपर प्रहार करने लगे । परम पराक्रमी वे दोनों नाना प्रकारके धैतरे बदलने हुए गर्जना कर रहे थे और अनेक प्रकारके दाव-पैचनमें एक-दूसरेपर आश्रित कर रहे थे । उस समय देवता, गन्धर्व और किंवर—उसी तुमचार खड़े होकर वह दृश्य देखते रहे । उन्हें परम विस्वाव हुआ—यहैतन कि वायुका चलना वंद हो गया; सर्वशी प्रभा फूँसी पड़ गयी और पर्वत एवं दन्त-दानन्दनहित गर्भी इच्छी बौंबौ उठी । इच्छी अवसरपर हिमालय अदि पर्वत द्वेषमित्त द्वितीय कुमारकी रक्षारे लिये रही अस्ये । तब उन नमीं पर्वतोंद्वे भवर्भूत द्वितीय दंकर एवं निर्विजय युद्ध कुमार उर्द्देश्यता देने लगे थे ।

कुमारने कहा—गरानग पर्वतो ! तुमद्वेष नेत्र न्य

करो । तुम्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । मैं आज तुम सब लोगोंकी औँखोंके सामने ही इस पारीका काम तमाम कर दूँगा । यां उन पर्वतों तथा देवगणोंको ढाढ़स बँधाकर कुमारने गिरिजा और शम्भुको प्रणाम किया तथा अपनी कान्तिमती शक्तिको हाथमें लिया । शम्भुपुत्र कुमार महावली तथा महान् ऐश्वर्यशाली तो थे ही । जब उन्होंने तारकका वध करनेकी इच्छासे शक्ति हाथमें ली, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हुई । तदनन्तर शंकरजीके तेजसे सम्बन्ध कुमारने उस शक्तिसे तारकामुख्यर, जो समस्त लोकोंको कष्ट देनेवाला था, प्रहर किया । उस शक्तिके आघातसे तारकासुरके सभी अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और सम्पूर्ण असुरगणोंका अधिपति वह महावीर उहसा धराशायी हो गया । मुने ! सबके देखते-देखते वहीं कुमारद्वारा मारे गये तारकके प्राणपखेल उड़ गये । उस उद्घट धीर तारकको महासमरमें प्राणरहित होकर गिरा हुआ देखकर वीरवर कुमारने पुनः उसपर बार नहीं किया । उस महावली दैत्यराज तारकके मारे जानेपर देवताओंने वहुत-से असुरोंको मौतके घाट उतार दिया । उस युद्धमें कुछ असुरोंने भयभीत होकर हाथ जोड़ लिये, कुछके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और हजारों दैत्य मृत्युके अतिथि बन गये । कुछ शरणार्थी दैत्य अङ्गलि बाँधकर भाहि-पाहि—रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये यों पुकारते हुए कुमारके शरणापन्न हो गये । कुछ मार डाले गये और कुछ मैदान छोड़कर भाग गये । सहस्रों दैत्य जीवनकी आशासे भागकर पातालमें धुस गये । उन सबकी आशाएँ भग्न हो गयी थीं और मुखपर दीनता छायी हुई थीं ।

मुनीश्वर ! इस प्रकार वह सारी दैत्यसेना विनष्ट हो गयी । देवगणोंके भयसे कोई भी वहाँ ठहर न सका । उस दुरात्मा तारकके मारे जानेपर सभी लोक निष्कण्ठ हो गये और इन्द्र आदि सभी देवता आनन्दमम हो गये । यों कुमारको विजयी देखकर एक साथ ही सम्पूर्ण देवताओं तथा त्रिलोकीके समस्त प्राणियोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ । उस समय भगवान् शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार पाकर प्रसन्नतासे भर गये और पार्वतीजीके साथ गणोंसे घिरे हुए वहाँ पधारे । तब जिनके हृदयमें रुहे समाता नहीं था, वे पार्वतीजी परम प्रेमपूर्वक सूर्यके समान तेजसी थपने पुनः कुमारको अपनी गोदमें लेकर लाइ-

प्यार करने लगीं । उसी अवसरपर अपने पुत्रसि श्रीहुर्दिमालयने बन्धुनान्वयों तथा अनुग्रहियोंके साथ शब्द शम्भु, पार्वती और गुहका स्तवन किया । ततश्चात् उन् देवगण, मुनि, गिरि और चारणोंने शिवनन्दन दुःख शम्भु और परम प्रसन्न हुई पार्वतीकी सुति की । उस समय उपदेवोंने वहुत वड़ी पुण्यन॰पा की । सभे फ़क्त वज्रे बजने लगे । विशेषतासे जयकार और नमस्कार शब्द वारंवार उच्चस्वरसे गूँजने लगे । उस समय उन् एक महान् विजयोत्तम नाम गया, जिसमें श्रीता विद्येषता थी और वह स्वाम गाने-बजानेके शब्द उन् अधिकाधिक ग्रन्थोंसे व्याप्त था । मुने ! समस्त देवताओं प्रसन्नतापूर्वक गा-बजाकर तथा हाथ जोड़कर भाव जगन्नाथकी सुति की । ततश्चात् सबसे प्रशंसित उन् अपने गणोंसे घिरे हुए भगवान् रुद्र जगत्रनी प्रवर्णी साथ अपने नियामस्थान केलास पर्वतको चढ़े गये ।

इधर तारकको मारा गया देखकर सभी देवताओं तथा अन्य समस्त प्राणियोंके चेहरेपर हँसी खेलने लगीं वे भक्तिपूर्वक शंकर-मुख्य कुमारकी सुति करने लो—‘देव ! तुम दानवश्रेष्ठ तारकका हनन करनेवाले हो उन् नमस्कार है । शंकर-नन्दन ! तुम वाणामुखके प्राणोंका अहर करनेवाले तथा प्रलभ्यामुखके विनाशक हो । तुम्हारा कृपा परम पवित्र है, तुम्हें हमारा अभिवादन है ।’

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब विष्णु आदि देवताओं इस प्रकार कुमारका स्तवन किया, तब उन प्रभुने उन् देवोंको ऋषिशः नया-नया वर प्रदान किया । उनसभी पर्वतोंको सुति करते देखकर वे शंकर-तनय परम पर्वत हुए और उन्हें वर देते हुए बोले ।

स्कन्दने कहा—भूधरो ! तुम सभी पर्वत तरीकोंपर पूजनीय तथा कर्मठ और ज्ञानियोंके लिये सेवनीय होप्रेर्वे । ये जो मेरे मातामह ( नाना ) पर्वतश्रेष्ठ हिमवत् हीं महाभाग आजसे तपस्वियोंके लिये फलदाता होंगे ।

तब देवता बोले—कुमार ! यों असुराज तरीकोंमारकर तथा देवोंको वर प्रदान करके तुमने हम उन् तथा चराचर जगत्को सुखी कर दिया । अब उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अपने माता-पिता पार्वती और शंकरको करनेके लिये शिवके निवासभूत कैलासपर चला चढ़े ।



ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर सब देवताओंके साथ विमानपर चढ़कर कुमार स्कन्द शिवजीके समीप कैलास पहुँच गये । उस समय शिव-शिवाने बड़ा आनन्द मनाया । देवताओंने शिवजीकी स्तुति की । शिवजीने उन्हें बरदान तथा अभयदान देकर विदा किया । मुने ! उस अवसरपर देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ । वे शिव, पार्वती तथा शंकरनन्दन कुमारके रमणीय यशका व्यखान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये । इधर परमेश्वर शिव भी शिव, कुमार तथा गणोंके साथ आनन्दपूर्वक उस पर्वतपर निवास करने लगे । मुने ! इस प्रकार जो शिव-भक्तिसे ओतप्रोत, सुखदायक एवं दिव्य है, कुमारका वह सारा चरित्र मैंने तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ( अध्याय १—१२ )

शिवाका अपनी मैलसे गणेशको उत्पन्न करके द्वारपाल-पदपर नियुक्त करना, गणेशद्वारा शिवजी-  
के रोके जानेपर उनका शिवगणोंके साथ भयंकर संग्राम, शिवजीद्वारा गणेशका शिरश्छेदन,  
कुपित हुई शिवाका शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना,  
देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, उनके द्वारा  
पुत्रको जिलाये जानेकी बात कही जानेपर शिवजीके आज्ञानुसार  
हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से  
जोड़कर उन्हें जीवित करना

सूतजी कहते हैं—तास्तारि कुमारके उत्तम एवं अद्भुत उत्तमतामें सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्हें पुनः  
भग्नरूपक घाजाजीसे पूछा ।

नारदजी चोले—ऐवदेव ! आप तो द्यिवसम्बन्धी ज्ञानके अध्यात्म नाशर हैं । प्रजानाथ ! मैंने स्वामी कार्तिकके सद्बृत्तात्म-  
रूपे जो अद्भुतसे भी उत्तम हैं, सुन लिया । अब गणेशका उत्तम  
उत्तम सुनना चाहता हूँ । आप उनका उत्तम-वृत्तात्म तथा  
दिव्य चरित्र, जो समर्पण-मन्त्रोंके लिये भी मन्त्रलक्षण है,  
मैंने लीटिये ।

सूतजी पहते हैं—महामुनि नारदजा ऐसा वक्तन

सुनकर ब्रह्माजीका मन दृष्टिसे गद्गद हो गया । वे शिवजीका स्मरण करके बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! पहले जो मैंने विधिर्वक गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन किया था कि द्यनिकी दृष्टि पहलेमें गणेशका मन्त्रक कठ गया था, तब उसपर हाथीका मुळ लगा दिया गया था, वह कल्यानरूपकी कृपा है ! अब इनकलमें श्रद्धित हुई गणेशकी कल्यानरूपका वर्णन करता हूँ, जिसमें इन्द्रगद्य शामरने ही उनका मन्त्रक कठ दिया था । मुने ! इन विवरणमें उन्हें गंदैह नहीं जाना चाहिये; क्योंकि भगवान् यमनु कल्यानरूपी, द्वारिश्वरी और मन्त्रक व्यक्ति है । वे ही

सगुण और निर्गुण भी हैं। उन्हींकी लीलासे सारे विश्वकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है। मुनिश्रेष्ठ ! अब प्रस्तुत विषयको आदरपूर्वक श्रवण करो।

एक समय पार्वतीजीकी जया-विजया नामवाली सखियों उनके पास आकर विचार करने लगी—‘सखी ! सभी गण रुद्रके ही हैं। नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी शिवके हीं आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं। जो असंख्य प्रमथगण हैं, उनमें भी हमारा कोई नहीं है। वे सभी शिवाज्ञापरायण होकर द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि उनसे हमारा मन नहीं मिलता; अतः पापरहिते ! आपको भी हमारे लिये एक गणकी रचना करनी चाहिये।’

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब सखियोंने पार्वतीजीसे ऐसा सुन्दर वचन कहा, तब उन्होंने उसे हितकारक माना और बैसा करनेका विचार भी किया। तदनन्तर किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, तब सदाशिव नन्दीको डराधमकाकर घरके भीतर चले आये। शंकरजीको आते देखकर स्नान करती हुई जगञ्जननी पार्वती उठकर खड़ी हो गयी। उस समय उनको वही लज्जा आयी। वे आश्चर्यचकित हो गयीं। उस अवसरपर उन्होंने सखियोंके वचनको हितकारक तथा सुखप्रद माना। उस समय ऐसी घटना घटित होनेपर परमाया परमेश्वरी शिवपत्नी पार्वतीने मनमें ऐसा विचार किया कि मेरा कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल और मेरी ही आज्ञामें तत्पर रहनेवाला हो; उससे तनिक भी विचलित होनेवाला न हो। यों विचारकर पार्वती देवीने अपने शरीरकी मैलसे एक ऐसे चेतन पुरुषका निर्माण किया, जो समूर्ण शुभलक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग सुन्दर एवं दोपरहित थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे समन्वय था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-सा उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—‘तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।’ पार्वतीके ऐसा कहनेपर वह पुरुष उन्हें नमस्कार करके बोला।

गणेशने कहा—‘मौं ! आज आपको कौन-सा कार्य आ पड़ा है ? मैं आपके कथनानुसार उसे पूर्ण करूँगा।’ गणेशके पछनेपर पार्वतीजी अपने पुत्रको उत्तर देते हुए बोलीं।



शिवाने कहा—तात ! तुम मेरे पुत्र हो, मेरे आ हो। अतः तुम मेरी बात सुनो। आजसे तुम मेरे द्वारा हो जाओ। सत्पुत्र ! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी इर्दगिर्द मेरे महलके भीतर प्रवेश न करने पाये, चाहे वह कहीसे आये, कोई भी हो। बेटा ! यह मैंने तुमसे विलकुल सब बां कही है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर पार्वतीने गोरे के हाथमें एक सुट्ट छड़ी दे दी। उस समय उनके सुदरूपको निहारकर पार्वती हर्षमग्न हो गयीं। उन्होंने परम पूर्वक अपने पुत्रका मुख चूमा और कृपापरवश हो छाँड़ लगा लिया। फिर दण्डधारी गणराजको अपने द्वारपर खाली कर दिया। बेटा नारद ! तदनन्तर पार्वतीनन्दन महारूप गणेश पार्वतीकी हितकामनासे हाथमें छड़ी लेकर द्वारपर पहरा देने लगे। उधर शिवा अपने पुत्र गणेशको अपने दरबाजेपर नियुक्त करके स्वयं सखियोंके साथ स्नान करूँ लगीं। मुनिश्रेष्ठ ! इसी समय भगवान् शिव, जो परम कैर्त्त तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ रचनेमें निपुण है, द्वारपर अपहुँचे। गणेश उन पार्वतीपतिको पहचानते तो थे नहीं, अन्त बोल उठे—‘देव ! माताकी आज्ञाके बिना तुम अभी शीत न जाओ। माता स्नान करने वैठ गयी हैं। तुम कहाँ जाएं

वाहते हो ? इस समय वहाँसे हट जाओ !' यों कहकर गणेश-  
ने उन्हें रोकनेके लिये छड़ी हाथमें ले ली । उन्हें ऐसा करते  
देव शिवजी थोले—'मूर्ख ! तू किसे रोक रहा है ? दुरुद्धे !  
क्या तू मुझे नहीं जानता ? मैं शिवके अतिरिक्त और  
कोई नहीं हूँ ।'

फिर महेश्वरके गण उसे समझाकर हटानिके  
लिये वहाँ आये और गणेशसे बोले—सुनो, हम मुख्य  
शिवगण ही द्वारपाल हैं और सर्वव्यापी भगवान् शंकरकी  
आज्ञासे तुम्हें हटानेके लिये यहाँ आये हैं । तुम्हें भी गण  
समझकर हमलोगोंने मारा नहीं है, अन्यथा तुम कबके  
मारे गये होते । अब कुशल इसीमें है कि तुम स्वतः ही  
दूर हट जाओ । क्यों व्यर्थ अगली मृत्यु बुला रहे हो ?

श्रावजी कहते हैं—मुने ! यों कहे जानेपर भी  
गोरिजानन्दन गणेश निर्भय ही बने रहे । उन्होंने शिवगणोंको  
हटाकर और दरवाजेको नहीं छोड़ा । तब उन सभी शिव-  
गणोंने शिवजीके पास आकर सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया ।  
नि ! उनसे सब वास्ते सुनकर संसारके गतिस्वरूप अद्भुतलीला-  
हारी महेश्वर अपने उन गणोंको डॉटकर कहने लगे ।

महेश्वरने कहा—'गणो ! यह कौन है, जो इतना  
चूर्चल हेकर शब्दुकी भाँति वक रहा है ? इस नवीन  
रपालको दूर भगा दो । तुमलोग नपुंसककी तरह खड़े  
कर उसका वृत्तान्त सुनो क्यों सुना रहे हो ?' विचित्र लीला  
चनेवाले अपने स्वामी शंकरके यों कहनेपर वे गण पुनः  
ही लौट आये । तदनन्तर गणेशद्वारा पुनः रोके जानेपर  
गणजीने गणोंको आज्ञा दी कि 'तुम पता लगाओ, वह कौन  
और क्यों ऐसा वक रहा है ?' गणोंने पता लगाकर  
कहा कि 'वे श्रीगिरिजादे पुत्र हैं तथा द्वारपालके रूपमें  
ठै है ।' तब लीलारूप शंकरने विचित्र लीला करनी चाही  
तथा भरने गणोंका गर्भ भी गलित करना चाहा । इन्हाँले  
कहीं कहा देवताओंको बुलाकर गणेशजीसे भीप्रश्न उठ  
पड़ा । दूर दे दोई भी गणेशको परालित न घर सजे ।  
वे सब धूमगूण भगेश्वर आये । गणेशजीने मात्राये  
ऐसी सरप कित्ता तद लक्षिते उन्हें दह प्रदान कर  
दिए । एवीं देवता गिरिजादेवी परामी आ गये, दूर उद्द  
मिल । भस्तुत्रैष्टम्य सर्व धूमगूण भगेश्वरने आहर विशु-



से गणेशजीका सिर काट दिया । जब यह समाचार पार्वतीजी-  
को मिला, तब वे कुद्द हो गयीं और बहुत सी शक्तियोंको  
उत्पन्न करके उन्होंने विना बिचारे उन्हें प्रलय करनेकी आशा  
दे दी । फिर तो शक्तियोंके द्वारा प्रलय मचायी जाने लगी ।  
उन शक्तियोंका वह जाग्वल्यमान तेज उभी दिवाओंको दृग्भ-  
सा किये डालता था । उसे देवतकर वे सभी शिवगण भयभीत  
हो गये और भागकर दूर जा खड़े हुए ।

मुने ! इसी समय तुम दिव्यदर्शन नारद वहाँ आ पहुँचे ।  
तुम्हारा वहाँ आनेका अभिप्राय देवगणोंको तुम्ह पहुँचाना था ।  
तब तुमने मुझ देवताओंसहित शंकरको प्रणाम करके कहा  
कि इस विषयमें सधारो मिलकर विनाद करना चाहिये । तब  
वे सभी देवता तुम्ह भवामनाके नाम सलाद करने लगे कि  
इस दुःखका शमन कैसे हो सकता है । जिस उन्होंने वही  
निश्चय किया कि जदतक गिरिजादेवी छाग नहीं करेगी, तब-  
तक तुम्ह नहीं प्राप्त हो सकेगा । अब इस विषयमें और  
विचार करना व्यर्थ है । ऐसी भारती करके तुम्हारे भहित  
सभी देवता और श्रुति भगवती गिरिजाके निकट गये और  
पूर्वक उन्हें प्रसन्न घरने हुए अनेकी नामोंदार उनकी दूरी  
परके दारदार उमड़े चरान्तमें अद्विद्वद्व दिया । जिस देवताम-  
की भावने कहरे दें ।

देवरियोंने कहा—'नारद ! एहै नामन्

शिवपति । तुम्हें प्रगाम है । चण्डिके । तुम्हें हमारा अभिवादन प्राप्त हो । कल्पणि । तुम्हें वारंवार प्रणाम है । अम्भे ! तुम्हीं आदिशक्ति हो । तुम्हीं सदा सारी सुषिकी निर्माणकर्त्ता, पालिकाशक्ति और संहार करनेवाली हो । देवेशि ! तुम्हारे कोपसे सारी विलोकी विकल हो रही है, अतः अब प्रसन्न हो जाओ और क्रोधको शान्त करो । देवि ! हमलोग तुम्हारे चरणोंमें संस्कार मिलते हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नरद ! यों नारद आदि प्रृथियों-द्वारा स्तुति किये जानेपर भी परादेवी पार्वतीने उनकी ओर क्रोधभरी दृष्टिसे ही देखा, किंतु कुछ कहा नहीं । तब उन प्रृथियोंने पुनः उनके चरणकमलोंमें सिर छुकाया और भक्ति-पूर्वक हाथ जोड़कर पार्वतीजीसे निवेदन किया ।

प्रृथियोंने कहा—देवि ! अभी संहार होना चाहता है; अतः क्षमा करो, क्षमा करो । अभ्यिके ! तुम्हारे स्वामी शिव भी तो यहीं स्थित हैं, तनिक उनकी ओर तो दृष्टिपात करो । हमलोग, ये ब्रह्मा विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—सब तुम्हारे ही हैं और व्याकुल होकर अचलि बाँधे तुम्हारे सामने खड़े हैं । परमेश्वरि ! इन सबका अपराध क्षमा करो । शिवे ! अब इन्हें शान्ति प्रदान करो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! सभी देवर्षि यों कहकर अत्यन्त दीनभावसे व्याकुल हो हाथ जोड़कर चण्डिकाके सम्मुख खड़े हो गये । उनका ऐसा कथन सुनकर चण्डिका प्रसन्न हो गया । उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया । तब वे प्रृथियोंसे बोलें ।

देवीने कहा—प्रृथियो ! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह तुमलोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा । जब तुमलोग उसे 'सर्वाधिक्ष'का पद प्रदान कर दोगे तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो सकता ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! पार्वतीके यों कहनेपर तुम सभी प्रृथियोंने उन देवताओंके पास आकर सारा बृत्तान्त कह सुनाया । उसे सुनकर इन्द्र आदि सभी देवताओंके चेहरे-पर उदासी छा गयी । वे शंकरजीके पास गये और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके सारा समाचार निवेदन कर दिया । देवताओंका कथन सुनकर शिवजीने कहा—'ठीक है, जिस प्रकार सारी विलोकीको सुख मिल सके, वही करना चाहिये । अतः अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस वालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर शिवजीकी आज्ञा-पालन करनेवाले उन देवताओंने वह सारा कार्य सम्पन्न

किया । उन्होंने उस शिशु-शरीरको धो-पौष्टक विक्षिप्त उसकी पूजा की । फिर वे उत्तर दिशाकी ओर गये । जैसे उन्हें पहले-पहल एक दाँतवाला एक हाथी मिला । दबो उसका सिर लाकर उस शरीरपर जोड़ दिया । हाथीके ल सिरको संयुक्त कर देनेके पश्चात् सभी देवताओंने भाजन शिव आदिको प्रणाम करके कहा कि दूसरोंने अत काम पूरा कर दिया । अब जो करना शेष है, उसे आज्ञा पूर्ण करें ।

ब्रह्माजी कहते हैं—तब शिवाजी-पालनसमिति देवताओंकी वात सुनकर सभी देवों और पर्वदंपोंके अनन्द हुआ । तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि उभी दे अपने स्वामी निर्गुणस्वरूप भगवान् शंकरको प्रणाम दें—'स्वामिन् ! आप महात्माके जिस तेजसे हम हम उसन्न हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रके अभिन्न इस वालकमें प्रवेश करे ।' इस प्रकार सभी देवताओं मिलकर वेदमन्त्रद्वारा जलको अभिमन्त्रित किया, कि शिव का सरण करके उस उत्तम जलको वालकके शरीरपर हि दिया । उस जलका स्पर्श होते ही वह वालक शिवेह शीम ही चेतनायुक्त होकर जीवित हो गया और सोये हुए तरह उठ दैठा । वह सौभाग्यशाली वालक अत्यन्त हु



था । उसका मुख हाथीकासा था । शरोरका रंग हरा लाल था । चेहरेपर प्रसन्नता खेल रही थी । उसकी आकृति कमनीय थी और उसकी सुन्दर प्रभा फैल रही थी । मुनीश्वर ! पार्वतीनन्दन उस बालकको जीवित देखकर वहाँ

उपस्थित सभी लोग आनन्दमग्न हो गये और सारा दुःख विलीन हो गया । तब हर्ष-विभोर होकर सभी लोगोंने उस बालकको पार्वतीजीको दिखाया । अपने पुत्रको जीवित देखकर पार्वतीजी परम प्रसन्न हुई । (अध्याय १३—१८)

### १४९

## पार्वतीद्वारा गणेशजीको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वध्यक्ष-पद प्रदान और गणेश-चतुर्थीव्रतका वर्णन, तत्पश्चात् सभी देवताओंका उनकी स्तुति करके हर्षपूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट जाना

ब्रह्मजी कहते हैं—मुने ! जब विकृत स्वल्पवाले गिरिजा-पुत्र गजानन व्यग्रतरहित होकर जीवित हो उठे, तब गणेशक देवोंने उनका अभिप्रेक किया । अपने पुत्रको देखकर पार्वतीदेवी आनन्दमग्न हो गयी और उन्होंने हर्षातिरेक से उस बालकको दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया । किर अभियकाने प्रसन्न होकर अपने पुत्र गणेशको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये । तदनन्तर सिद्धियोंने अनेक विधिविधानसे उनका पूजन किया और माताने अपने एवं दुःखहारी हाथसे उनके अङ्गोंका सर्व किया । इस प्रकार शिव-पत्नी पार्वतीदेवीने अपने पुत्रका सत्कार करके उसका मुख चूसा और प्रेमपूर्वक उसे वरदान देते हुए कहा—  
‘ये ! इस समय तुम्हे वडा कष्ट झेलना पड़ा है । किन्तु तू तू कृतकृत हो गया है । तू धन्य है । अबसे समूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुम्हे कभी दुःखका शामना नहीं करना पड़ेगा । चूँकि इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीन रहा है, इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा परनो नहिये । जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नीरें, समानीय आत्मी, ताम्रकूल और दानासे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधिवूर्वक तेरी पूजा करेगा; उसे भारी विद्वित्ये द्वारा दी जायेगी और उसके सभी प्रकारके विधि दी जायेगे—इनमें देवतामध्य भी संशय नहीं है ।’

गणेशजी कहते हैं—मुने ! मेरेहरी देवोंने अपने पुत्र गणेशके द्वारा उन्हें नाना प्रसार्यी प्रसुरुएं प्रदान करके उन्हें वरदान अनिवार्य दिया । निम्न ! नव मिरिदली वृत्तिमें उन्हें शृणु ऐस्याद्वै और विश्वगोक्त्र नम दिवि रक्षामें

शान्त हो गया । तदनन्तर इन्द्र आदि देवताओंने हर्षातिरेकसे शिवाकी सुति की और उन्हें प्रसन्न करके वे भक्तिभावित चित्तसे गणेशदेवको लेकर शिवजीके समीप चले । वहाँ पहुँचकर उन्होंने विलोक्तीकी कल्याण-कामनासे भवानीके उस बालकको शिवजीकी गोदमें बढ़ा दिया । तब शिवजी भी उस बालकके मस्तकपर अपना करकमल केरते हुए देवताओंसे बोले—‘यह मेरा दूसरा पुत्र है ।’ तत्पश्चात् गणेशने भी उठकर शिवजीके चरणोंमें अभिवादन किया । किर पार्वतीको, मुझको, विष्णुको और नारद आदि सभी ऋषियोंको प्रणाम करके आगे खड़े होकर उन्होंने कहा—‘यो अभिमान करना मनुष्योंका ल्यभाव ही है; अतः आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें ।’ तब मैं, शंकर और विष्णु—इन तीनों देवताओंने एक साथ ही प्रेमपूर्वक उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—‘मुरवरो ! जैसे विश्वेनीमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये । मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा करके तत्पश्चात् दम्भलोगोंका पूजन करें । ऐसा करनेते दम्भलोगोंकी पूजा समझ हो जायगी । देवताओं ! यदि कहीं इनकी पूजा पर्यंत न करके धन्य देवता पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—उसमें अन्यथा विचार करनेवाली अव्यवहार्यता नहीं है ।’

ब्रह्मजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर शाम, विष्णु और शंकर आदि देवों देवताओंने मिठायर दार्विनी प्रसाद परनेके लिये उन्हें नाना विद्वित्ये दीर्घित दी दिया । उन्हीं मन्दिर दिविजी द्वारा प्रसाद किया गया उन्हें रात्रें रात्रें दीर्घित संदेश द्वारा देवताओंके द्वारा दीर्घित दी दिया गया ।



**शिवजीने कहा—**गिरिजानन्दन ! निस्तंदेह में तुझपर परम प्रसन्न हूँ । मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्‌को ही प्रसन्न हुआ समझ । अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता । तू शक्तिका पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है । बालक होनेपर भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है, इसलिये तू सदा सुखी रहेगा । विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सबसे श्रेष्ठ होगा । तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा ।

इतना कहनेके पश्चात् महात्मा शंकर अत्यन्त प्रसन्नताके कारण गणेशको पुनः वरदान देते हुए बोले—  
**गणेश्वर !** तू भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है । जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था । इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये । वह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता है । वर्षके अन्तमें जब पुनः वही चतुर्थी आ जाय, तबतक मेरे कथनानुसार तेरे व्रतका पालन करना चाहिये । जिन्हें संसारमें अनेकों प्रकारके अनुपम सुखोंकी कामना हो, उन्हें चतुर्थीके दिन भक्तिपूर्वक विधिसंहित

तेरा पूजन करना चाहिये । जब मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्ष चतुर्थी आये, तब उस दिन प्रातःकाल स्नान करके श्वेते व्रताणोंसे निवेदन करे । पूर्णोक्त विधिसे उपराज हो । फिर धातुकी, मूँगेकी, इवेत मदारकी अथवा जिंदि मृति वनाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे और भक्तिके नाम प्रकारके द्विव्य गन्यों, चन्दनों और पुराणे लंब पूजा करे । पुनः रात्रिका प्रथम प्रहर बीत ब्रह्मेरात् करके दूर्वादलोंसे पूजन करना चाहिये । वह दूर्वा जड़ीबूँ वारह अंगुल लम्बी और तीन गाँठोंवाली होनी चाहिए । ऐसी एक सौ एक अभन्ना इकीस दूर्वासे उन साति प्रतिमाकी पूजा करे । तत्पश्चात् धूप, दीप, अनेक श्वेत नैवेद्य, ताम्बूल, अर्च और उत्तम-उत्तम पश्चात् गणेशकी पूजा करे और स्नान करके उसके आगे प्रतिटि करे । वो गणेशकी पूजा करनेके पश्चात् बालबद्रके पूजन करे । तत्पश्चात् हर्षपूर्वक व्रात्याणीकी पूजा करके उन मिष्ठानका भोजन कराये । उनके भोजन कर लेनेके बाद स्वयं भी नमकरहित मिष्ठानका ही प्रसाद पाये । फिर मोहन स्मरण करके अपने सभी नियमोंका विसर्जन कर दे । प्रकार करनेसे वह शुभमत्र पूर्ण होता है ।

**वेदा !** यों व्रत करते-करते जब वर्ष पूर्ण हो जाय तब व्रती मनुष्यको चाहिये कि वह व्रतकी पूर्तिके लिये ब्रतोदाक कार्य भी सम्पन्न करे । इसमें मेरे आशानुसार वारह अवाहन भोजन कराना चाहिये । व्रतीको चाहिये कि वह एक छोड़ स्थापित करके उसपर तेरी मूर्तिकी पूजा करे । जल वेदविधिके अनुसार वेदीका निर्माण करके उसपर अद्य कमल बनाये, फिर उसीपर धनकी कंजसी छोड़कर ही करे । पुनः मूर्तिके सामने दो स्त्रियों और दो बालों विठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और सार देव भोजन कराये । गतमें जागरण करे । प्रातःकाल पुनः ही भोजन कराये । गतमें जागरण करे । प्रातःकाल पुनः ही करके पुनरागमनके लिये विसर्जन कर दे । छोड़ करके आशीर्वाद ग्रहण करे, स्वस्तिवाचन कराये और उन पूर्तिके लिये पुष्पाङ्गुलि निवेदित करे । फिर नमस्कार ही नाना प्रकारके कार्योंकी कल्पना करे । इस प्रकार ही व्रतको पूर्ण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । गणेश ! जो श्रद्धासहित अपनी शक्तिके अनुसार ही तेरी पूजा करेगा, उसके सभी मनोरथ सफल हो जायें । मनुष्योंको सिन्दूर, चन्दन, चावल, केतकी-पुण्य अनेकों उपचारोंद्वारा गणेश्वरका पूजन करना चाहिए ।

जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी पूजा करेंगे, उनके विज्ञोंका सदाके लिये नाश ही जायगा और उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर ब्रिंशोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अम्बुदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। मत्ती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे विश्व वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी भिलाया हो, उसे अवश्य तेरी सेवा करनी चाहिये।

ब्रह्मजी कहते हैं—मुने ! जब शिवजीने महात्मा गणेशको इस प्रकार वर प्रदान किया, तब सम्पूर्ण देवताओं, और ऋग्यिंगों और शिवके प्यारे समस्त गणोंने 'तथास्तु' द्वारा उसका समर्थन किया और अत्यन्त विधिपूर्वक गणाधीश-ज पूजन किया। तत्पश्चात् शिवगणोंने आदरपूर्वक नाना कारकी पूजनसामग्रीसे गणेशकी विशेषतासे अर्चना की और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनीभर ! उस समय गिरिजा त्वीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन मेरे चारों मुखोंसे नहीं हो सकता; तब फिर मैं उसे कैसे बताऊँ । उस प्रवसरपर देवताओंकी हुन्दुभियाँ बजने लगीं। अप्सराएँ मृत्यु उन्हें लगीं। गन्धर्वश्रेष्ठ गान करने लगे और पुष्पोंकी वर्षा शैमे लगी । इस प्रकार गणेशके गणाधीश-पदपर प्रतिष्ठित होनेपर वहाँ महान् उत्सव मनाया गया। सारे जगत्में शान्ति लापित हो गयी और सारा दुःख जाता रहा। नारद ! शिव और पार्वतीको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ और सर्वत्र अनेक प्रकारके सुखदायक मङ्गल होने लगे। तदनन्तर सम्पूर्ण देवगण

और ऋग्यिंग जो वहाँ पधरे हुए थे, वे सभी शिवकी आज्ञा-से अपने-अपने स्थानको छले। उस समय वे शिवजीकी स्तुति करके गणेश और पार्वतीकी वारंवार प्रशंसा कर रहे थे और 'फैसा अद्भुत युद्ध हुआ' यो परस्पर वार्तालाप करते हुए छले जा रहे थे। इधर जब गिरिजादेवीका क्रोध शान्त हो गया, तब शिवजी भी, जो स्वात्माराप होते हुए भी सदा भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत रहते हैं, गिरिजाके संनिकट गये और लोकोंकी हितकामनासे पूर्ववत् नाना प्रकारके सुखदायक कार्य करने लगे। तब मैं बहा और विष्णु दोनों भक्तिपूर्वक शिव-शिवाकी सेवा करके शिवकी आज्ञा ले अपने-अपने धाम-को लौट आये। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस परम माहात्मिक आख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंका भागी होकर मङ्गल-भवन हो जाता है। इसके श्रवणसे पुञ्चहीनको पुञ्चकी, निर्धनकी धनकी, भार्याओंकी भार्याकी, प्रजार्थीकी प्रजाकी, रोगीको आरोग्यकी और अभागेको सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। जिस छीका पुञ्च और धन नष्ट हो गया हो और पति परदेश चला गया हो, उसे उसका पति मिल जाता है। जो शोक-सागरमें डूब रहा हो, वह इसके श्रवणसे निस्तंदेह शोकरहित हो जाता है। यह गणेश-चरितसम्बन्धी ग्रन्थ जिसके घरमें सदा वर्तमान रहता है, वह मङ्गलसम्बन्ध होता है—इसमें तनिक भी संदर्भकी गुंजाइश नहीं है। जो यात्राके अवसरपर अथवा किसी भी पुष्पपर्वपर इसे मन लगाकर सुनता है, वह श्रीगणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।

( अध्याय १९ )

स्थामिकातिंक और गणेशकी वाल-लीला, दोनोंका परस्पर विवाहके विषयमें विचार, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिष्मारका आदेश, कातिंकेयका प्रस्थान, गणेशका माता-पिताकी परिक्रमा करके उनसे पृथ्वी-परिक्रमा स्वीकृत कराना, विश्वरूपकी सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओंके साथ गणेशका विवाह और उनसे ध्येम तथा लाभ नामक पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमारका पृथ्वी-परिक्रमा करके लौटना और क्षुब्ध होकर क्रोश पर्वतपर चला जाना, कुमारवण्डके श्रवणकी महिमा

नारदजीने पूछा—जात ! भैं गणेशके जन्मसम्बन्धी उनमें इसलिए उपर्युक्त तथा परम प्राप्ति से विनृपित उनका दिव्य भूलि नहीं सुन दिया। तुम्हार ! उसके बाद जैनकी शृणा पर्याप्त नहीं दर्शन करनीशक्ति करनीशक्ति ! यिन और शर्मिद्वारा उत्तरना या भएन् असमर प्रथम उत्तरने शक्ता है।

व्रद्याजीने कहा—मुनिशेष ! हुन तो यहै वार्तालाप है। हुनमें वड़ा उत्तर दाना दूरी है। पूर्वसिंहम ! अच्छा, अब मैं उत्तरार्द्ध करना चाहता हूँ, हुन उत्तर व्याप्त नहीं। दिव्यद ! दिव्य और धर्मसे इनमें दौर्देश हुन्होंकी वार्तालाप देस-देशकर नहाद-देशमें मन रहने लगे। पुर्वोदय वाइ-

प्यार करनेके कारण माता-पिताका सुख दिनांदिन बढ़ता जाता था और वे दोनों कुमार प्रीतिपूर्वक अनन्दके साथ तरह-तरहकी लीलाएँ करते थे। मुनीश्वर ! वे दोनों वालक स्वामि कार्तिक और गणेश भक्तिपूर्ति चित्तसे रादा माता-पिताकी परिचर्या किया करते थे। इससे माता-पिताका महान् स्नेह बष्मुख और गणेशपर शुक्रपक्षके चन्द्रमाकी भौंति दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। एक समय शिव और शिवा दोनों प्रेमपूर्वक एकान्तमें बैठकर यों विचार करने लगे कि 'हमारे ये दोनों पुत्र विवाहके बोग्य हो गये, अब इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे सम्भव हो। हमें तो जैसे प्रदानन प्यारा है, वैसे ही गणेश भी है।' ऐसी चिन्तामें पड़कर वे दोनों लीलावश आनन्दमग्न हो गये। मुने ! माता-पिताके विचारको जानकर उन दोनों पुत्रोंके मनमें भी विवाहकी इच्छा जाग उठी। वे दोनों 'पहले मैं विवाह करूँगा, पहले मैं विवाह करूँगा'— यों बारंबार कहते हुए परस्पर विवाद करने लगे। तब जगत्-के अधीश्वर वे दोनों दम्पति पुत्रोंकी वात सुनकर लैकिक आचारका आश्रय ले परम विस्तायको प्राप्त हुए। कुछ समय बाद उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा।

**शिव-पर्वती बोले—**सुपुत्रो ! हमलोगोंने पहलेसे ही एक ऐसा नियम बना रखा है, जो तुम दोनोंके लिये सुखदायक होगा। अब हम यथार्थरूपसे उसका वर्णन करते हैं, तुमलोग प्रेमपूर्वक सुनो। प्यारे बच्चो ! हमें तो तुम दोनों पुत्र समान ही प्यारे हो; किसीपर विशेष प्रेम हो—ऐसी वात नहीं है; अतः हमने तुमलोगोंके विवाहके विषयमें एक ऐसी शर्त बनायी है, जो दोनोंके लिये कल्याणकारिणी है, ( वह शर्त यह है कि ) जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लैट आयेगा, उसीका शुभ विवाह पहले किया जायगा।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**मुने ! माता-पिताकी यह वात सुनकर शरजन्मा महाबली कार्तिकेय तुरंत ही अपने स्थानसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये चल दिये। परंतु अगाध-बुद्धि-सम्भव गणेश वहीं खड़े रह गये। वे अपनी उत्तम बुद्धिका आश्रय ले बारंबार मनमें विचार करने लगे कि 'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी; क्योंकि कोसभर चलनेके बाद आगे मुझसे चला जायगा नहीं। फिर सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके मैं कैसे सुख प्राप्त कर

सकूँगा ?' ऐसा विचारकर गणेशने जो कुछ किया, उसे सुने। उन्होंने अपने घर लैटकर विधिपूर्वक स्नान किया और महा-पितासे इस प्रकार कहा।

**गणेशजी बोले—**पिताजी एवं माताजी ! मैंने आलोगोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ दो आसन स्थानि किये हैं। आप दोनों इसपर विराजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**मुने ! गणेशकी वात सुनकर पार्वती और परमेश्वर उनकी पूजा प्रहण करनेके लिये आसन विराजमान हो गये। तब गणेशने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और वारंवार प्रणाम करते हुए उनकी सात वार प्रदक्षिणा की। वेदा नारद ! गणेश तो बुद्धिसागर वे ही, वे हाय लोहर प्रेममग्न माता-पिताकी वहुत प्रकारसे स्तुति करके बोले।

**गणेशजीने कहा—**हे माताजी ! तथा हे पिताजी ! आपलोग मेरी उत्तम वात सुनिये और शीघ्र ही मेरा श्वेत विवाह कर दीजिये।

**ब्रह्माजी कहते हैं—**मुने ! महात्मा गणेशजी ऐसे वचन सुनकर वे दोनों माता-पिता महाबुद्धिमान् गणेशसे बोले।



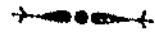


पार्वतीका जैसा मनोरथ था, उसीके अनुसार विश्वकर्मने वह विवाह किया। उसे देखकर ऋषियों तथा देवताओंको परम हर्ष प्राप्त हुआ। मुने ! गणेशको भी उन दोनों पत्नियोंके मिलनेसे जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ कालके पश्चात् महात्मा गणेशके उन दोनों पत्नियोंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेशपत्नी सिद्धि-के गर्भसे 'क्षेम'नामक पुत्र पैदा हुआ और बुद्धिके गर्भसे जिस परम सुन्दर पुत्रने जन्म लिया, उसका नाम 'लाभ' हुआ। इस प्रकार जब गणेश अचिन्त्य सुखका भोग करते हुए निवास करने लगे, तब दूसरे पुत्र स्वामिकार्तिक पुरुषी-की परिकर्मा करके लौटे। उस समय नारदजीने आकर कुमार स्कन्दको सब समाचार सुनाये। उन्हें सुनकर कुमारके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और वे माता-पिता शिव-शिवके द्वारा ऐसे जानेपर भी न रुककर कौञ्चपर्वतकी ओर चले गये।

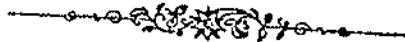
देवर्षे ! उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व

( कुअँरपना ) प्रसिद्ध हो गया। उनका नाम विलोक्येमें विश्व हो गया। वह शुभद्रायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्तम व्रहणवर्ती शक्ति प्रदान करनेवाला है। कार्तिकी पूर्णिमाद्वे सप्त देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीधर सदा कुमारका दर्शन करनेके लिए ( कौञ्चपर्वतपर ) जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमाके लिए कृतिका नक्षत्रका योग होनेपर स्वामि कार्तिकी दर्शन इच्छा है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोकान्ति फलकी प्राप्ति होती है। इधर स्कन्दका विद्योह हो जानेर उमाको महान् दुःख हुआ। उन्होंने दीनभावसे अपने हाथ शिवजीसे कहा—‘प्रभो ! आप मुझे साथ लेकर वहाँ चलिये तब प्रियाजो सुख देनेके निमित्त स्वयं भगवान् शंकर या एक अंद्रासे उस पर्वतपर गये और सुखद्रायक महिलाजीनाम उपोतिरिक्तके रूपमें वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे सत्यकी गति तथा अपने राभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। आज भी शिवाके सहित उस पर्वतपर विराजमान है।

वैद्य नारद ! वे दोनों शिवा-शिव भी पुनर्लेहसे द्विद्व होकर प्रत्येक पर्वपर कुमारको देखनेके लिये जाते हैं। अमावास्याके दिन वहाँ स्वयं शम्भु पधारते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वतीजी जाती है। मुनीधर ! तुमने स्वामिकार्तिक और गणेशका जो-जो वृत्तान्त मुक्षसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। इसे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हैं जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्संदेह उसके सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं। यह अनुपम आख्यान पापनाशक कीर्तिप्रद, सुखवर्धक, आयु वृद्धानेवाला, सर्वगंगी श्रति करनेवाला, पुत्र-पौत्रकी बृद्धि करनेवाला, मोक्षप्रद, शिवजी के उत्तम ज्ञानका प्रदाता, शिव-पार्वतीमें प्रेम उत्पन्न करनेवाला और शिवभक्तिवर्धक है। यह कल्याणकारक, शिवजीके अद्वैत ज्ञानका दाता और सदा शिवमय है; अतः मोक्षज्ञामी एवं निष्काम भक्तोंको सदा इसका श्रवण करना चाहिये। (अथापरं)



॥ रुद्रसंहिताका कुमारखण्ड सम्पूर्ण ॥



शिवा-शिवने कहा—ब्रेदा ! तू पहले काननोंतहित इस सभी पृथ्वीकी परिक्रमा तो कर आ । कुमार गया हुआ है, तू भी जा और उससे पहले लौट आ ( तब तेरा विवाह पहले कर दिया जायगा ) ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! नियमपरायण गणेश माता-पिता की ऐसी बात सुनकर कुपित हो तुरंत बोल उठे ।

गणेशजीने कहा—हे माताजी ! तथा हे पिताजी ! आप दोनों सर्वश्रेष्ठ, धर्मरूप और महाबुद्धिमान् हैं, अतः धर्मानुषार मेरी बात सुनिये । मैंने सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है, फिर आपलोग ऐसी बात क्यों कह रहे हैं ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! शिव-पार्वती तो वडे लीलानुन्दी ही ठहरे, वे गणेशका कथन सुन लौकिक गतिका अश्रय लेकर बोले ।

शिव-पार्वतीने कहा—पुत्र ! तूने समुद्रपर्यन्त विस्तारवाली, वडे-वडे काननोंसे युक्त इस सप्तद्वीपवती विश्वाल पृथ्वीकी परिक्रमा कब कर ली ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब शिव-पार्वतीने ऐसा कहा, तब उसे सुनकर महान् बुद्धिसम्पन्न गणेश बोले ।

गणेशजीने कहा—माताजी एवं पिताजी ! मैंने अपनी उद्दिष्टे आप दोनों शिव-पार्वतीकी पूजा करके प्रदक्षिणा कर ली है, अतः मैंने उसुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी हो गयी । अमैंने संधर्घृत वेदों और शास्त्रोंमें जो ऐसे वचन मिलते हैं, वे सब हैं अपना असल ? ( वे वचन हैं कि ) जो पुन भाता-पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है उसे उसी परिक्रमा विनियोग करने कुलभ द्वे जाता है । जो माता-पिता-पर्वत और लोकपालोंके लिये जाता है, वह माता-पिता-पर्वत और लोकपालोंके वात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली । तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर उक्ता है । हमने तेरी वह बात मान ली, अब इनके विवरण नहीं करंगे ।

असत्त्व हो जायगा तो ) निस्पंदेह वेद भी आपत्त्व हो जायगा और वेदद्वाय वर्णित आपका यह स्वरूप भी सुठा समझा जायगा । इसलिये या तो शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये अथवा यों कह दीजिये कि वेद-शास्त्र छूटे हैं । आप दोनों धर्मरूप हैं, अतः भलीभाँति विचार करके इन दोनोंमें जो परमोत्तम प्रतीत हो, उसे प्रथलपूर्वक करना चाहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तब जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, उसम बुद्धिसम्पन्न तथा महान् ज्ञानी हैं, वे पार्वतीनन्दन गणेश इतना कहकर चुप हो गये । उधर वे दोनों पति-पत्नी जगदीधर शिव-पार्वती गणेशके वचन सुनकर परम विस्मित हुए । तदनन्तर वे यथार्थभाषी एवं अद्भुत बुद्धिवाले अपने पुन गणेशकी प्रशंसा करते हुए बोले ।

शिवा-शिवने कहा—ब्रेदा ! तू महान् आत्मवलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है । तूने जो बात कही है, वह विल्कुल सत्य है, अन्यथा नहीं है । दुःखका अवसर आनेपर जिसकी बुद्धि विद्यिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होते ही अन्धकार । जिसके पास बुद्धि है, वही वलवान् है; बुद्धिहीन-के पास वल कहाँ है । पुत्र ! वेद-शास्त्र और पुराणोंमें वालको लिये धर्म-पालनकी जीती बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली । तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर उक्ता है । हमने तेरी वह बात मान ली, अब इनके विवरण नहीं करंगे ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नरद ! जो नरद उन दोनों बुद्धिवाल गणेशको नानवना दी और निर वे उनके विवाह के सम्बन्धमें उत्तम विचार कर्ते रहे । इनी कमल ज्यू धन्तम बुद्धिवाले प्रजापति विवाहीं द्विवर्तीं उथेगत्र ज्या चत्य, तब उत्तर विचार करके उर्द्धे भरा दुष भास दुध । उन प्रजापति विवाहके विवरणमध्य एवं नवाहारोज्य के दुर्दर्श उत्तरदेखी, जिनम नग निर्देश दीर्घ बुद्धि रह । नाहत् दीर्घ दीर्घ विवाहीं उन विवाह नाम उत्तरदेख गणेशरा विवाहके विवरणमध्य एवं उन विवाहके विवरणमध्य एवं नगर्त्त दीर्घ विवाह विवाह । उन विवाह विवाह दीर्घ



पार्वतीका जैसा मनोरथ था, उसीके अनुसार विश्वकर्मि वह विवाह किया। उसे देखकर भृपिंशुं तथा देवताओंको परम हर्ष प्राप्त हुआ। सुने ! गणेशको भी उन दोनों पतियोंके मिलनेसे जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ कालके पश्चात् महात्मा गणेशके उन दोनों पतियोंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेशपत्नी सिद्धि-के गर्भसे 'क्षेम'नामक पुत्र दैदा हुआ और दुद्धिके गर्भसे जिस परम सुन्दर पुत्रने जन्म लिया, उसका नाम 'लाभ' हुआ। इस प्रकार जब गणेश अचिन्त्य सुखका भोग करते हुए निवास करने लगे, तब दूसरे पुत्र स्वामिकार्तिक पृथ्वी-की परिक्रमा करके लैटे। उस समय नारदजीने आकर कुमार स्कन्दको सब समाचार सुनाये। उन्हें सुनकर कुमारके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और वे माता-पिता शिव-शिवके द्वारा रोके जानेपर भी न रुककर क्रौञ्चपर्वतकी ओर चले गये।

देवर्णे ! उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारल

( कुओराना ) प्रतिद्वंद्व हो गया। उनका नाम विश्वेशीमें निलम्ब हो गया। वह शुभदर्शक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और द्वंद्व ब्रह्मनर्थी शक्तिप्रदान करनेवाला है। कार्तिकी पूर्णिमाद्वय समे देवता, भृषि, तीर्थ और मुनीश्वर सदा कुमारका दर्शन करनेके लिए ( क्रौञ्चपर्वतार ) जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमाके लिए दृक्षिणा नदिवाला योग होनेपर स्वामि कार्तिकका दर्शन करते हैं उनके गम्भीर पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छि फलती प्राप्ति होती है। इधर स्कन्दका विद्युत हो जाना उमाकी महान् दुःख हुआ। उन्होंने दीनमात्रसे अपने लंबे शिवजीसे कथा—‘प्रभो ! आप मुझे साथ लेकर वहाँ चलिये। तब प्रियानो सुख देनेके निमित्त स्वयं भगवान् द्वंद्व और एक अंशसे उस पर्वतपर गये और सुखदायक महिलाहृष्णनामक द्योतिर्थके लगां वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे स्वरूपों गति तथा अपने सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। वे आज भी शिवाके सहित उस पर्वतपर विराजमान हैं।

वेदा नारद ! वे दोनों शिव-शिव भी पुनर्लेहो विद्व होकर प्रत्येक पर्वपर कुमारको देखनेके लिये जाते हैं। अमावास्याके दिन वहाँ स्वयं शम्भु पधारते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वतीजी जाती है। मुनीश्वर ! तुमने स्वामिकार्तिक और गणेशका जो-जो वृत्तान्त मुझसे पूछा था, वह सब मैंने दुर्लभ हुआ। इसे सुनकर दुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्सदेह उसके सभी मोक्ष सफल हो जाते हैं। यह अनुपम आल्यान पापाशम्भ कीर्तिप्रद, सुखवर्धक, आयु वदानेवाला, सर्वाशी प्राप्ति करनेवाला, पुत्र-पौत्रकी दृद्धि करनेवाला, मोक्षप्रद, शिवके उत्तम ज्ञानका प्रदाता, शिव-पार्वतीमें प्रेम उत्तम करनेवाला और शिवभक्तिवर्धक है। यह कल्याणकारक, शिवजीके और ज्ञानका दाता और सदा शिवमय है; अतः मोक्षकामी एवं ज्ञानका दाता और सदा शिवमय है। (अथवा ये निष्काम भक्तोंको सदा इसका श्रवण करना चाहिये।)

॥ रुद्रसंहिताका कुमारखण्ड सम्पूर्ण ॥

वे शुंड-के-शुंड मदमत्त गजराजोंसे, सुन्दर-मुन्दर बोडोंसे, जाना प्रकारके आकार-प्रकारस्थाले रथों एवं शिविकाओंसे अलंकृत थे । उनमें समयानुसार पृथक्-पृथक् क्रीडास्थल वने वे और वेदाध्ययनकी पाठशालाएँ भी भिन्न-भिन्न निर्मित हुई थीं । वे पाणी पुष्पोंके लिये मन-वाणीसे भी अगोचर थे । उन्हें सदाचारी पुण्यदील महात्मा ही देख सकते थे । पति-गैयापाण तथा कुधर्मसे विमुख रहनेवाली पतिनीता नारियोंने ज्ञ नगरोंके उत्तम स्थलोंको सर्वत्र पवित्र कर रखा था । इनमें महापाण शूर्वीर दैत्य और श्रुति-स्मृतिके अर्थके तत्त्वस एवं स्वर्णपरायण व्राह्मण अपनी स्त्रियों तथा पुत्रोंके साथ नेशास करते थे । उनमें सथद्वारा सुरक्षित ऐसे मुद्दे पराक्रमी निर भरे हुए थे, जिनके केश नील कमलके समान नीले और

बुँधराले थे । वे सभी सुशिक्षित थे, जिससे उनमें सदा युद्धकी लालसा भरी रहती थी । वे बड़े-बड़े समरोंसे प्रेम वरनेवाले थे, ब्रह्मा और शिवका पूजन करनेसे उनके पराक्रम विशुद्ध थे; वे सूर्य, मक्षदण और महेन्द्रके समान बली थे और देवताओं-के मथन करनेवाले थे । वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म और शिवके प्रेमी देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे । उन नगरोंमें प्रवेश करके वे दैत्य सदा शिवमक्तिनिरत होकर सारी चिलोकीको वाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे । मुने ! इस प्रकार वहाँ निवास करनेवाले उन पुण्यात्माओंके सुख एवं प्रीतिपूर्वक उत्तम राज्यका पालन करते हुए बहुत लंबा काल व्यतीत हो गया । (अथाय १)

### तारक-पुत्रोंके प्रभावसे संतप्त हुए देवोंकी ब्रह्माके पास करण पुकार, ब्रह्माका उन्हें शिवके पास भेजना, शिवकी आज्ञासे देवोंका विष्णुकी शरणमें जाना और विष्णुका उन देव्योंको मोहित करके उन्हें आचार-भ्रष्ट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! तदनन्तर तारक-पुत्रोंके प्रभावसे दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दुखी हो गए रसायन सदाए करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये । वहाँ सम्मूर्ण देवताओंने दीन होकर प्रेमपूर्वक पितामहको प्रणाम किया और प्रवगर देखकर उनसे अपना दुखदा सुनाते हुए कहा ।

‘देवता चोले—धातः ! त्रिपुरोंके स्वामी तारक-पुत्रोंने अपा गगनसुने समस्त स्वर्गवासियोंको संतप्त कर दिया है । अपार ! इसेलिये इमलोग दुखी होकर आपकी शरणमें आये हैं । आप उनके परमा कोई उपाय कीजिये, जिससे इमलोग दुखमें रह नहीं ।

‘ब्रह्माजीने कहा—देवता ! तुम्हें उन दाम्योंसे हुआपैर या नहीं कहा चाहिये । मैं उनके वरपत्र उपाय दृष्टिपात्र हूँ । भगवन्, यिन तुम्हारा कल्याण करेंगे । मैंने ही तृष्णीयोंसे बद्धया हु अतः मेरे दौर्भी इमत्ता क्य होता है ? तार ही त्रिपुरमें इन्हाँ पुण्य भी वृद्धिगत दृष्टिपात्र है । भले इन्द्रादित सभी देवता शिवजीसे प्राप्तता है । वे भर्तीयोंसे भी अपाय ते जानेगे तो ये ही तुम्हारों हैं । तुम्हारी दृष्टि ।

‘तारक-पुत्रजी कहते हैं—देवता ! त्रिपुरकी दृष्टि है । तारक इन्द्रादित सभी देवता हुने ही इस समान-

पर गये, जहाँ ब्रुपभवज शिव आसीन थे । तब उन सबने अजलि बाँधकर देवेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कंधा शुकाकर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकरका स्वावन किया । मुने ! इस प्रकार नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंदारा विश्वलभारी परमेश्वरकी लुति करके स्वार्थ-साधनमें निषुण इन्द्र आदि देवताओंने दीनभावसे कंधा शुकाये हुए दृश्य जोड़कर प्रस्तुत स्वार्थको निवेदन करना आरम्भ किया ।

‘देवताओंने कहा—महादेव ! तारकने पुन तीनों भाइयोंने मिलकर इन्द्रादित वस्त्र देवताओंको पराहा कर दिया है । भगवन् ! उन्होंने विलोक्तीको तथा तुमीश्वरोंको असम्मेवन कर दिया है और समूर्य निद खाते ही नष्ट-प्रस्तुत करके नार त्रात्-हो उत्साहित ले रखता है । मैं दायर दैत्य उत्तमन्त यशमार्गोंको स्वयं भ्रह्म करते हैं । उन्होंने अस्ति-पर्मता निवारण करके अस्ति-तिलार ले रखता है । शंकर ! त्रिभव ती वे तारक-पुत्र वस्त्रा प्राप्तिरौद्र शिव अपाय हैं । इसीलिये वे देवेश्वरमुगर कभी दार्त्त बने रहे हों । प्रभो ! मैं त्रिपुरसिद्धी आद्य दैत्य उत्तम उत्तम त्रिपुरा निवारण करके, उनके सहे हुए उत्तर दिल्ली दर्शनात विद्यम लें, जिसे इन्हीं नहीं हो सके ।

‘सनत्कुमारजी कहते हैं—ते ! मैं दायर दैत्य

सनकुमारजी कहते हैं—महें ! उन तपस्थी देवोंकी यह बात सुनकर ब्रह्मा अपने स्त्रामी गिरिशारी भगवान् शंकर का ध्यान करके बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—अमुरो ! अमरत्व राभीको नहीं मिल सकता, अतः तुमलोग अपना यह विचार छोड़ दो । इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर जो तुम्हें रचता हो, माँग लो । क्योंकि देवों ! इस भूतलपर जहाँ कहीं भी जो प्राणी जन्मा है अथवा जन्म लेगा, वह जगत्में अजर-अमर नहीं हो सकता । इसलिये पापरहित अमुरो ! तुमलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार कर मृत्युकी बञ्चना करते हुए कोई ऐसा हुर्लभ एवं दुस्साध्य वर माँग लो, जो देवता और अमुरोंके लिये अशक्य हो । उस प्रसङ्गमें तुमलोग अपने बलका आश्रय लेकर पृथक्-गुरुथक् अपने मरणमें किसी द्वेषको माँग लो, जिससे तुम्हारी रक्षा हो जाय और मृत्यु तुम्हें वरण न कर सके ।

सनकुमारजी कहते हैं—महें ! ब्रह्माजीके ऐसे बचन सुनकर वे दो घड़ीतक ध्यानस्थ हो गये, फिर कुछ सोच-विचारकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीसे बोले ।

देव्योंने कहा—भगवन् ! यद्यपि हमलोग प्रवल पराक्रमी हैं, तथापि हमारे पास कोई ऐसा धर नहीं है, जहाँ हम शत्रुओं-से सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक निवास कर सकें; अतः आप हमारे लिये ऐसे तीन नगरोंका निर्माण करा दीजिये, जो अत्यन्त अद्भुत और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सम्पन्न हों तथा देवता जिनका प्रधर्षण न कर सकें । लोकेश ! आप तो जगद्गुरु हैं । हमलोग आपकी कृपासे ऐसे तीनों पुरोंमें अधिष्ठित होकर इस पृथ्वीपर विचरण करेंगे । इसी बीच तारकाशने कहा कि विश्वकर्मा मेरे लिये जिस नगरका निर्माण करें, वह स्वर्णमय हो और देवता भी उसका भेदन न कर सकें । तत्पश्चात् कमलाक्षने चाँदीके बने हुए अत्यन्त विशाल नगरकी याचना की और विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर वज्रके समान कठोर लोहे-का बना हुआ बड़ा नगर माँगा । ब्रह्मन् ! वे तीनों पुर मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तमें चन्द्रमाके पुष्य नक्षत्रपर स्थित होनेपर एक स्थानपर मिला करें और आकाशमें नीले बादलोंपर स्थित होकर ये क्रमशः एकके ऊपर एक रहते हुए लोगोंकी दृष्टिसे ओङ्कार रहें । फिर पुष्करावर्त नामक कालमेघोंके बर्षा करते समय एक सहस्र बर्षोंके बाद ये तीनों नगर परस्पर मिलें और एकीभावको प्राप्त हों, अन्यथा नहीं । उस समय कृत्तिवासा भगवान् शंकर, जो वैरमात्रसे रहित, सर्वदेव-

मय और सरके देव है, लीलापूर्वक राम्यौ जामिनेवें कुएँ अगम्भीर रथार ऐठकर एक अग्नेवे वामपे शांते पुरोंका भेदन करें । मिंतु भगवान् शंकर ददा हृष्णेवे वन्दनीय, पूज्य और अभिवादनके पात्र हैं; अतः वे हृष्णेवे को कैसे भस्म करेंगे—मतमें ऐसी धारणा करके व्याख्ये हुल्मा बरतों माँग रहे हैं ।

सनकुमारजी कहते हैं—व्यापत्री ! उन दैत्योंके कथन सुन हार सुकिर्ती लेन्निगामह ब्रह्माने शिवव्रीजा सह करके उनसे कहा कि ‘अन्धा, ऐसा ही होगा ।’ फिर महें भी आशा देते हुए उन्हें कहा—‘हे मय ! तुम क्षेत्रों नाँदी और लैटेके तीन नगर बना दो ।’ यो मयको अपे देकर ब्रह्माजी उन तारक-पुत्रोंके देवते-देवते अपने प्रखण्डको चले गये । तदनन्तर वैर्यशाली मयने अपने लोक नगरोंका निर्माण करना आरम्भ किया । उसने तारक लिये हार्णमय, कमलाक्षके लिये रजतमय और विद्युन्मालीके लैटेमय—तीन तीन प्रकारके उत्तम दुर्ग तैयार किये । वे क्रमशः द्वर्ग, अन्तरिक्ष और भूतलपर निर्मित हुए थे । उनके हितमें तत्पर रहनेवाला मय उन तीनों पुरोंको तर आदि अनुरोदित हुआ करके त्वयं भी उसीमें प्रवेश कर । इस प्रकार उन तीनों पुरोंको पाकर महान् ब्रह्म-पराक्रमसे वे तारकामुरके लड़के उनमें प्रविष्ट हुए और समस्त उपभोग करने लगे । वे नगर कल्पवृक्षोंसे व्याप्त तथा घोड़ोंसे सम्पन्न थे । उनमें मणिनिर्मित जालियोंसे आवहनुते रहे महल बने हुए थे । वे पझरागके बने हुए ए मण्डलके समान चमकीले विमानोंसे, जिनमें चारोंओर लगे थे, शोभायमात्र थे । कैलास-शिखरके समान ऊँचनदमाके समान उज्ज्वल दिव्य प्रासादों तथा गोपुरों अद्भुत शोभा हो रही थी । वे अप्सराओं, गन्धर्वों तथा चारोंसे खचाखच भरे थे । प्रत्येक महलमें तथा अम्बिहोत्रशालाकी प्रतिष्ठा हुई थी । उनमें द्विपरायण शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सदा निवास करते थे । वे कूप, तालाव और घड़ी-घड़ी तलैयोंसे तथा समूह स्वर्गसे च्युत हुए वृक्षोंसे युक्त उद्यानों और वनोंसे थे । घड़ी-घड़ी नदियों, नदों और छोटी-छोटी झीं जिनमें कमल खिले हुए थे, उनकी शोभा और वड़ उनमें सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अनेकों फलों लदे हुए बृक्ष लगे थे, जिनसे वे नगर विशेष मत्तोहर ।

वे शुंड-के-शुंड मदमत्त गजराजोंसे, सुन्दर-मुन्दर घोड़ोंसे, नाना प्रकारके आकार-प्रकारवाले रथों एवं शिविकाओंसे अल्पकृत थे । उनमें समयानुसार पृथक्-पृथक् कीडास्थल वने वे और वेदाव्यवनकी पाठशालाएँ भी मिन्न-भिन्न निर्मित हुई थीं । वे पाणी पुद्धोंके लिये मन-बाणीसे भी अगोचर थे । उन्हें सदाचारी पुण्यधील महात्मा ही देख सकते थे । पति-रेताव्यायण तथा कुधर्मसे विमुख रहनेवाली पतिव्रता नारियोंने उन नगरोंके उत्तम स्थलोंको सर्वथ पवित्र कर रखा था । उनमें महाभग शूरवीर दैत्य और श्रुति-स्मृतिके अर्थके तत्त्वज्ञ एवं स्थर्यारायण त्रावण अपनी छियों तथा पुत्रोंके साथ निवास करते थे । उनमें मयद्वारा सुरक्षित ऐसे सुदृढ़ पराक्रमी और भरे हुए थे, जिनके केवा नील कमलके समान नीले और

बुँधराले थे । वे सभी सुशिक्षित थे, जिससे उनमें सदा युद्धकी लालसा भरी रहती थी । वे वडे-वडे समरोंसे प्रेम वरनेवाले थे, ब्रह्मा और शिवका पूजन करनेसे उनके पराक्रम विशुद्ध थे; वे सूर्य, महाद्वारा और महेन्द्रके समान वली थे और देवताओं-के मरण करनेवाले थे । वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन घर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म और शिवके प्रेमी देवता वहाँ चारों ओर व्याप थे । उन नगरोंमें प्रवेश करके वे दैत्य सदा शिवभक्तिनिरत होकर सारी विलोकीको वाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे । मुने ! इस प्रकार वहाँ निवास करनेवाले उन पुण्यात्माओंके सुख एवं प्रीतिगूर्वक उत्तम राज्यका पालन करते हुए बहुत लंबा काल ब्यतीत हो गया । (अध्याय १)

### तारक-पुत्रोंके प्रभावसे संतप्त हुए देवोंकी ब्रह्माके पास करुण पुकार, ब्रह्माका उन्हें शिवके पास भेजना, शिवकी आज्ञासे देवोंका विष्णुकी शरणमें जाना और विष्णुका उन दैत्योंको मोहित करके उन्हें आचार-भ्रष्ट करना

सनलुमारजी कहते हैं—महर्पे ! तदनन्तर तारक-ओंके प्रभावसे दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दुखी हो रखा सलाह करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये । वहाँ सम्पूर्ण वित्ताओंने दीन होकर प्रेमपूर्वक पितामहको प्रणाम किया और अपगर देखकर उनसे अपना दुखदङा सुनाते हुए कहा ।

देवता चोले—धातः ! चिपुरोंके स्वामी तारक-पुत्रोंने आप मयादुखो एमल स्वर्गवासियोंको संतप्त कर दिया है । धातु ! इसीलिये इमलोग दुखी होकर आपकी शरणमें आये । धातु उनके वपता कोइ उपाय कीजिये, जिससे इमलोग रुक्षे रह सकें ।

ब्रह्माजीने कहा—देवगणो ! हुंडे उन दानवोंसे भैंसेर भर नहीं रखा चाहिये । मैं उनके व्यक्ति उभाव देखता हूँ । भगवन्, शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे । मैंने ही उन दैत्योंपे देखा हूँ अतः भैंसेर हायों इनका वय इन्द्रा नहीं नहीं । लाल ही चिह्नमें इनका भुज भी उद्दिष्ट नहीं देखा । इस इद्रसहित नहीं रेता शिवर्ति प्रार्थना है । उन दैत्योंपे भैंसेर प्रकर हो जायेगे तो ये ही तुम्हारोंने । उन्हें हो देंगे ।

ब्रह्माजी रहते हैं—देवता ! नमान्तरि वर इन्द्र इद्रसहित भैंसेर रेता तुम्हीं हो उस दैत्य-

पर गये, जहाँ वृषभघञ्ज शिव आसीन थे । तब उन रथने अजलि वाँधकर देवेश्वर शिवको भक्तिगूर्वक प्रणाम किया और कंधा झुकाकर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकरका स्वयम लिया । मुने ! इस प्रकार नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंदारा विश्वलयारी परमेश्वरकी सुति करके स्वार्थ-साधनमें निपुण इन्द्र आदि देवताओंने दीनभावसे कंधा झुकाये हुए हाथ जोड़कर प्रसुत स्वार्थको निवेदन करना आरम्भ किया ।

देवताओंने कहा—महादेव ! तारकके पुत्र तीनों भाइयोंने मिलकर इन्द्रसहित अमला देवताओंने परात्मा कर दिया है । भगवन् ! उन्होंने विलोकीयों तथा मुनोश्चर्यों अन्ने अपीन कर लिया है और अनुर्ग मिद सानोंद्यों नए प्रथ अरके भार अगद्यों उर्गादिन तर रखता है । वे दादू देवता उमला यशमालोंको स्वयं अहा रखते हैं । उन्होंने अनुर्ग-पर्यटा नियारम दरके अमरीता दिनदर तर रखता है । गंगा ! निधन ही वे तारक-पुत्र अमन प्राप्तिकर दिये असूर हैं, इन्हींलिये ५ होस्तामुख रुपी याँ रुपे रहे हैं । अमो ! ये चिह्नजियाँ द्यादय देवता देवता राज्य-व्यवस्था न तर ताँके उन्हें ही असूर दिनी येती हैं ताँका दिव्य वर्ण, जिससे इन्हीं का देवता हो जाता ।

तत्त्वलुमारजी कहते हैं—हुंडे ! इन दैत्य-

हुए उन स्वर्गवासी इन्द्रादि देवोंकी बात सुनकर शिवजी उत्तर देते हुए थोड़े ।

**शिवजीने कहा—**देवगण ! इस समय वे त्रिपुराधीश महान् पुण्य-कार्योंमें लगे हुए हैं; और ऐसा नियम है कि जो पुण्यतमा हो, उसपर विद्वानोंको किसी प्रकार भी प्रहर नहीं करना चाहिये । मैं देवताओंके सारे महान् कर्त्त्वोंको जानता हूँ; किर भी वे देव्य वडे प्रवल हैं, अतः देवता और अमुर भिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते । वे तारक-पुत्र सब-के-सब पुण्यसमन्व हैं, इसलिये उन सभी त्रिपुराधीशोंका वध दुस्साध्य है । यथापि मैं रणकर्कश हूँ, तथापि जान-बूझकर मैं मित्र-द्रोह कैसे कर सकता हूँ; क्योंकि पहले किसी समय ब्रह्माजीने कहा था कि मित्रद्रोहसे बढ़कर दूसरा कोई वडा पाप नहीं है । सत्पुरुषोंने ब्रह्माहत्यारे, शराची, चोर तथा ब्रत-भङ्ग करनेवालेके लिये प्रायश्चित्तका विवान किया है; परंतु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है ॥११ देवताओ ! तुमलोग भी तो धर्मज्ञ हो, अतः धर्मदृष्टिसे विचार-कर तुम्हीं वताओ कि जब वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं

उन्हें कैसे मार रक्खा हूँ । इसलिये अपरो ! अबतक वे भैं मेरी भक्तिमें तहार हैं, तबतक उनका वध असम्भव है। तथापि तुमलोग विष्णुके पाप जाकर उनसे यह ग्रस निवेदन करो ।

तदनन्तर देवगण भगवान् विष्णुके समीप गेहौ उनके द्वारा ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिससे वे असुर-वै-प्रायश्चित्त धर्मसे विमुख होन्हर सर्वथा अनाचारणरण हो जाए। वैदिक धर्मका नाश होनेसे वहाँ लियोंने पातिवत-धर्म छोड़ा। पुरा इन्द्रियोंके ब्रह्म हो गये । याँ छो-पुरुष सभी दुर्जन हो गये । देवाराधन, आदृ, वृत्त, व्रत, तीर्थ, शिव-विष्णुसंगणेश आदिका पूजन, स्नान, दान आदि तभी शुभ शक्त नष्ट हो गये । तब माया तथा अलश्मी उन एर्हमें व पहुँचीं । तपसे प्राप लक्ष्मी वहाँसे चली गयी । इस प्रल वहाँ अर्थमत्ता निलार हो गया । मुने ! तब शिवेज्ञे भाइयोंसहित उस दैत्यराजकी तथा मयकी भी शक्ति कुर्ती हो गयी । ( अच्याय २-१ )

**देवोंका शिवजीके पास जाकर उनका स्तवन करना, शिवजीके त्रिपुर-वधके लिये उद्यत न होनेपर त्रै और विष्णुका उन्हें समझाना, विष्णुके वतलाये हुए शिव-मन्त्रका देवोंद्वारा तथा विष्णुद्वारा जप, शिवजीकी प्रसन्नता और उनके लिये विश्वकर्माद्वारा सर्वदेवमय रथका निर्माण**

**व्यासजीने पूछा—**सनत्कुमारजी ! जब भाइयों तथा पुरवासियोंसहित उस दैत्यराजकी बुद्धि विशेषरूपसे मोहाच्छन्न हो गयी, तब उसके बाद कौन-सी घटना घटी ? विभो ! वह सारा वृत्तान्त वर्णन कीजिये ।

**सनत्कुमारजीने कहा—**महर्षे ! जब तीनों पुरोंकी पूर्वोक्त दशा हो गयी, दैत्योंने शिवार्चनका परित्याग कर दिया, सम्पूर्ण छो-धर्म नष्ट हो गया और चारों ओर दुराचार फैल गया, तब भगवान् विष्णु और ब्रह्माके साथ सब देवता कैलास पर्वतपर गये और सुन्दर शब्दोंमें शिवकी स्तुति करने लगे—‘महेश्वर देव ! आप परमोल्कृष्ट आत्मवलसे सम्पन्न हैं; आप ही सुष्ठिके कर्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहर्ता स्वर हैं; परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है ।’ यों महादेवजीका स्तवन करके देवोंने उन्हें साधाङ्ग प्रणाम किया । फिर भगवान् विष्णुने जलमें खड़े होकर अपने स्वामी परमेश्वर शिवका मन-

ही-मन स्मरण करके तन्मय हो दक्षिणामूर्तिके प्रकटित रुद्रमन्त्रका डेढ़ करोड़की संख्यातक जप ज्ञा तबतक सभी देवता उन महेश्वरमें मन लगाकर यों अस्तुति करते रहे ।

**देवोंने कहा—**प्रभो ! आप समस्त प्राणियों आत्मस्वरूप, कल्याणकर्ता और भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं आपके गलेमें नीला चिह्न है, जिससे आप निर्वह कहलाते हैं । आप चिद्रूप एवं प्रचेता हैं, आप रुद्रोल्ल प्रणाम हैं । असुरनिकन्दन ! आप ही हमारी सारी आपित्ते निवारण करनेवाले हैं, अतः सदासे आप ही हमारी गर्वीं और आप ही सर्वदा हमलोगोंके बन्दनीय हैं । आप नहीं आदि हैं और आप ही अनादि भी हैं । आप ही आनन्दका अव्यय, प्रभु, प्रकृति-पुरुषके भी साक्षात् स्था और जागीर हैं । आप ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके अव्यय-

ता, विष्णु और कद्र होकर जगत्‌के कर्ता, भर्ता और संहारक नहीं हैं। आप ही इस भवसागरसे तारनेवाले हैं। आप समस्त प्राणियोंके स्थामी, अधिनायी, वरदाता, बाह्य-तत्त्वरूप, वेद-तिशय और वाच्य-वाचकतासे रहित हैं। योगवेत्ता योगी आप शानसे मुक्तिकी याचना करते हैं। आप योगियोंके हृदय-भरकी कर्णिकापर विराजमान रहते हैं। वेद और संतजन जहाँ हैं कि आप परव्रह्मस्वरूप, तत्त्वरूप, तेजोराशि और गतर हैं। शर्व ! आप सर्वव्यापी, सर्वात्मा और त्रिलोकीके प्रियति हैं। गव ! इस जगत्‌में जिसे परमात्मा कहा जाता है, ह आप ही हैं। जगद्गुरु ! इस जगत्‌में जिसे देखने, सुनने, ज्ञान करने तथा जानने योग्य यताता जाता है और जो ऐसे भी मुक्तम तथा महानसे भी महान्‌है, वह आप हैं। आप चारों ओर हाथ, पैर, नेत्र, सिर, मुख, कान और नाकवाले हैं; अतः आपको चारों ओरसे नमस्कार है। श्वासिन ! आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत और विश्वरूप हैं; आप विश्वाक्षरको गव ओरसे अभिवादन है। आप सर्वेश्वर, गत्याधी, गत्याग्रय, कल्याणकर्ता, अनुपमेव और करोड़ों विंशें गमान गमानशाली हैं; आपको हम चारों ओरसे दण्डवत् गाम करते हैं। विश्वाराघ्य, आदि-अन्तशून्य, छब्बीसवें व्य, निशामकरहित तथा समस्त प्राणियोंको अपने-अपने गतोंमें प्रवृत्त करनेवाले आपको हमारा सब ओरसे प्रणाम है। आप प्रशुतिके भी प्रवर्तक, सबके प्रमितामह और समस्त द्विरोगे व्यास हैं; आप परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। जिसी तथा भूति-तत्त्वके शता विज्ञन आपको वरदायक, मम भूतोंमें विवाह करनेवाला, स्वयम्भू और भ्रुति-तत्त्वव जलावे हैं। नाथ ! आपने जगत्‌में अनेकों ऐसे धार्य किये हैं जो एकारी समझे परे हैं; इनीष्ठिये देवता, असुर, वृद्ध और अन्यान्य स्थानस-बद्धम भी आपकी ही लुति मिले हैं। नमस्ते ! विशुद्धार्थी द्विलोने द्वे प्रायः नष्ट-ना-प्रियता हैं। आप इस सीम ही उन अनुरोधों किनाश करें हमारे रक्षा विधियों कोकि देखवान्तः। हम देवोंके लियों लक्ष ले गये हैं। नरेश्वर ! इन कमय वे आपकी विधिये नहीं। हो गये हैं अतः प्रणो ! ने भगवान् विष्णु-विधि। वे दृष्टि सुनिधि वर्त्ती दूसरा भूता र्हाई-र्हम छोड़ दीर ! कर्त्तव्यत ! हारे नैतिकदर्ता इन कमय उन विधिये चुनौती भरी। विश्वास नह दिया है और विनिट विश्वास दूसरे ते सहन है। वरदानह ! वृद्ध नदीने द्वारा नदी दूसरे ते लोकोंहैं, इन्होंने इन्हें विश्वास नह दूसरोंस

आपके शरणापन्न हुए हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! इन प्रकार महेश्वरका स्थान करके देवगण दीनभागसे अञ्जलि वृंदाकर सामने खड़े हो गये । उस समय उनके मल्लक द्वाके हुए थे ।



इस प्रकार जब सुरेन्द्र आदि देवोंने महाभारती लुप्ति की और  
विष्णुने ईशान-गम्भीरी भन्दाजा जा किया, तब गर्वभार  
भगवान् दिव्य प्रसन्न हो गये और ब्रह्माद्वारा उपरोक्त वासी प्रकृत  
हो गये। उस समय पार्वतीपति शिवजा मन प्रसन्न था।  
उन्होंने नव्यीकरणी पौष्टि उत्तराद्वारा विष्णुका आविष्टन  
किया और तिर दे कर दीप धूप देवताद्वारा देखे गए और  
समृद्ध देवताओंकी ओर हुआ अपनी इकट्ठिए देवताद्वारा गम्भीर वार्ताएँ  
चौपाँचिं बोले।

सिवतीनि काला—पैरभेड़। यह अस्थीयुक्त हड्डीमें  
हीलों पुरुषों में जट वर आद्यम—इसी नाम से इसी दीवार  
पर्शी विकल्पद्रव्य में जट वर और उसका नाम गुदूद विक्षी  
दुसरे में जट वर रखा गया था वहाँ से यह नाम बदल दिया  
जायदर्शन एवं वर्णन दर्शाया जाता है इसी विक्षी विक्षी का  
पैरभेड़ की छाप विक्षी विक्षी है इसी विक्षी विक्षी विक्षी का  
पैरभेड़ की छाप विक्षी विक्षी है इसी विक्षी विक्षी विक्षी का

वे विष्णु अपना अन्य कोई ही उन्हें क्यों नहीं मारते ? मुनीश्वर ! शम्भुके ये वचन सुनकर उन समस्त देवताओंका तथा श्रीहरिका भी मन उदास हो गया । तब सुषिकर्ता ब्रह्माने देखा कि देवताओं और विष्णुके मुख्यार उदासी था गयी है, तब उन्होंने हाथ जोड़कर शम्भुसे कहा आरम्भ किया ।

**ब्रह्माजी बोले—** परमेश्वर ! आप योगदेवताओंमें श्रेष्ठ, परब्रह्म तथा सदासे देवों और भूमियोंकी रक्षामें तत्पर हैं; अतः पाप आपका सर्व नहीं कर सकता । गाथ ही आपके अदेशमें ही तो उन्हें मोहमें डाला गया है । इनके प्रेरक तो आप ही हैं । इस समय अवश्य ही उन्होंने अपने धर्मका परित्याग कर दिया है और वे आपकी भक्तिसे विमुख हो गये हैं; तथापि आपके सिवा दूसरा कोई उनका वधनहीं कर सकता । देवों और भूमियोंके प्राणस्तक महादेव ! जातुओंकी रक्षाके लिये आपके द्वारा उन म्लेच्छोंमां वध उचित है । आप तो राजा हैं, अतः राजाको धर्मानुसार पापियोंका वध करनेसे पाप नहीं लगता; इसलिये इस कॉटिको उखाड़कर सातु-त्रासाणोंकी रक्षा कीजिये । राजा यदि अपने राज्य तथा सर्वलोकाधिपत्यको स्थिर रखना चाहता हो तो उसे अपने राज्यमें एवं अन्यत्र भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये । इसलिये आप देवगणोंकी रक्षाके लिये उद्यत हो जाइये, विलम्ब मत कीजिये । देवदेवेश ! बड़े-बड़े मुनीश्वर, यज्ञ, सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, मैं और विष्णु भी निश्चय ही आपकी प्रजा हैं । प्रभो ! आप देवताओंके सर्वभौम सम्प्राट् हैं । ये श्रीहरि आदि देवगण तथा सारा जगत् आपका ही कुमुख है । अजन्मा देव ! श्रीहरि आपके शुवराज हैं और मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले शक्ति राजकार्य सम्भालनेवाले मन्त्री हैं । सर्वेश ! अन्य देवता भी आपके शासनके नियन्त्रणमें रहकर सदा अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं । यह विलक्षुल सत्य है ।

**सनत्कुमारजी कहते हैं—** व्यासजी ! ब्रह्माकी यह वात सुनकर सुरपालक परमेश्वर शिवका मन प्रसन्न हो गया । तब उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा ।

**शिवजी बोले—** ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे देवताओंका सम्प्राट् यत्ता रहे हैं तो मेरे पास उस पदके योग्य कोई ऐसी सामग्री तो है नहीं, जिससे मैं उस पदको ग्रहण कर सकूँ; क्योंकि तो मेरे पास कोई महान् दिव्य रथ है, न उसके उपयुक्त

यारथि है और न संग्राममें विजय दिलानेवाले वैष्णव वाणी हैं कि जिन्हें लेकर मैं मतेष्वेष्टुं रांगाममें उन प्रथल देवोंका वध कर सकूँ । वैष्णव ये तुम हो गये । परंतु शिवजीको शीघ्र प्रलुब्ध होते न देख समस्त देवता, कश्यप आदि भूमिपि अत्यन्त ब्याकुल व्युत्थी हो गये । तब भगवान् हरिने उनसे कहा ।

**भगवान् विष्णु बोले—** देवों तथा मुनियो ! तुम्हें दुखी हो रहे हो ? तुम्हें अपने तारे दुखका परिवार कैना जाहिंथे । अब तुम तत्र योग आदरणूर्वक मेरी वत ! देवगण ! तुम्हां लोग विचार करो कि महान् पुरुष आराधना सुखलाभ्य नहीं होती । मैंने ऐसा सुना है कि दाराधनमें पहले महान् कष्ट झेलना पड़ता है । पीछे पड़दाता देखकर इधरेव अवश्य प्रतन्न होते हैं । परंतु तुम्हां समस्त गणोंके अवश्य तथा परमेश्वर हैं । ये तो आज्ञाठहरे । अतः पहले ३००का उच्चारण करके तिन् 'नमः' करे । किर 'शिवाय' कहकर दो बार 'शुभं'का उच्चारण उसके बाद दो बार 'कुरु'का प्रयोग करके तिन् 'नमः' ३०० जोड़ दे । (ऐसा करनेसे ३०० नमः शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ३०० यह मन्त्र वर्तु बुद्धिविशारदो ! यदि तुमलोग शिवकी प्रत्यन्ततके मन्त्रका पुनः एक करोड़ जप करेंगे तो शिवजी तुम्हारा कार्य पूर्ण करेंगे ।) मुने ! प्रभावशाली श्रीहर्ष यों कहा, तब सभी देवता पुनः शिवाराधनमें आत्मश्वात् श्रीहरि भी देवों तथा मुनियोंके कार्यकी देतु शिवमें मन लगाकर विशेषरूपसे विविर्बूर्वक ज्ञ हो गये । मुनिश्रेष्ठ ! इधर देवगण धैर्यसम्पन्न हो 'शिव' 'शिव' यों उच्चारण करते हुए एक करोड़ सामने लड़ते हो गये । इसी समय स्वयं साक्षात् शिवरूप धारण करके प्रकट हो गये और यों कहने लगे

**श्रीशिवजी बोले—** हरे ! ब्रह्मन् ! देवगण त्रितका पालन करनेवाले मुनियो ! मैं तुमलोगके प्रसन्न हो गया हूँ, अतः अब तुमलोग अपना मंवर सौंग लो ।

**देवताओंने कहा—** देवाधिदेव ! कल्याणकर्ता ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो देवोंकी विकल्पता करके श्रीम ही त्रिपुरका संहार कर दीजिये । परमे दीनवन्धु तथा कृपाकी खान हैं । आपने

हम देवताओंकी धारंवार विपत्तियोंसे रक्षा की है, अतः इस लभय भी आप हमारी रक्षा कीजिये ।

सन्दकुमारजी कहते हैं—प्रहान् ! तब ब्रह्मा और निषुग्दित देवोंकी वह बात सुनकर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और पुनः इस प्रकार बोलें ।

महेश्वरने कहा—हरे ! ब्रह्मन् ! देवगण ! तथा  
मुनियो ! अब त्रिपुरको नष्ट हुआ ही समझो। तुमलोग आदर-  
पूर्वक मेरी बात मुत्तो ( और उसके अनुसार कार्य करो )।  
मैंने पहले त्रिस दिव्य रथ, सारथि, धनुष और उत्तम वाणको  
अप्रीकार किया है, वह सब शीघ्र ही तैयार करो। त्रिष्ठो  
तथा त्रिधे ! निश्चय ही तुम दोनों त्रिलोकीके अधिपति हो;—  
इनलिये तुम्हें चाहेंगे कि मेरे लिये प्रयत्नपूर्वक समाटूके योग्य  
भाष्य उपकरण प्रस्तुत कर दो। तुम दोनों सुषिके सज्जन और  
पालन-पार्थमें नियुक्त हो, अतः त्रिपुरको नष्ट हुआ समझकर

देवताओंकी सहायताके लिये यह कार्य अवश्य करो । यह शुभ मन्त्र ( जिसका तुमस्योग्ने जप किया है ) महान् पुण्यमय, तथा मुझे प्रसन्न करनेवाला है । यह भुक्ति-मुक्तिका द्रष्टा, समृद्धि कामनाओंका पूरक और शिव-भक्तोंके लिये आमन्द-प्रद है । यह स्वर्गकामी पुरुषोंके लिये धन, यश और आयु-की वृद्धि करनेवाला है । यह निष्कामके लिये मोक्ष तथा साधन करनेवाले पुरुषोंके लिये भुक्ति-मुक्तिका साधक है । जो मनुष्य पवित्र होकर तदा इस मन्त्रका कीर्तन करता है, सुनता है, अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी तारी अभिलाप्त एवं पूर्ण हो जाती है ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुझे ! परमात्मा शिवकी  
यह बात मुनकर सभी देवता परम प्रसन्न हुए और व्रता तथा  
विष्णुको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ । उस समय विश-  
कर्मने शिवके आशानुसार विश्वके हितके लिये एक सर्वदेवमय  
तथा परम शोभन दिव्य रथका निर्माण किया ।

( अध्याय ६—८ )

सर्वदेवमय रथका वर्णन, शिवजीका उस रथपर चढ़कर युद्धके लिये ग्रस्थान, उनका पशुपति  
नाम पड़नेका कारण, शिवजीद्वारा गणेशका पूजन और त्रिपुर-दाह,  
मयदानवका त्रिपुरसे जीवित वच निकलना

व्यासजीने कह—शेषप्रबर सनस्तुमारजी ! आपकी  
दि वसी उत्तम है, आप सर्वधृ हैं । तात ! आपने पर्देश्वर  
जी को कभा मुनाफ़ी है, वह अत्यन्त अद्भुत है । अब  
जिमान् विश्वस्थापन शिवजीके लिये जिस देवस्थ एवं पर-  
म्पर्य इष्य रथा निर्गण दिया था, उसम् वर्णन धीरिये ।

स्त्रीजी कहते हैं—मुझे ! वासिनीजी वह बत नुकसान  
नियर नक्काशार शिवजीकि धरणमलोका सरण भरके  
हैं।

मनकुमारजीने कहा—गरुदुदिमान् भूतिकर व्याप-  
ए। मैं तो आपसमें लाख तरके अली उद्दिन  
लाख लाख मिस्रीय रुपया दर्जन रुपया हूँ  
हूँ। अपने लियकामि इदरेहो जिसे बड़े नमस्ते अदरक-  
वाली अपनी दिव रखते रखता हूँ। वह नहीं कहत  
कि एक रुपया सभी गुरुत्व का है या। उठके दृष्टि  
में नहीं कि अपने नमस्ते लियकामि दिवालीमें है। अदिव  
की ओर तरे जो दूर है, जिसने दरहो नूर प्रतिष्ठित  
किया था। वही जीवन की दूरी जो उच्च या, जिसमें जीवनकी  
दूरी नहीं। दूरावधि या। उसका नाम दूरावधि जीवन की दूरी

विप्रेन्द ! सत्ताईसों नक्षत्र मी उस वामचक्की ही शोभा बढ़ा  
रही थीं । विप्रेन्द ! छहों ब्लूटुएं उन दोनों परियों की नेमि  
थर्नी । अन्तरिक्ष रथमा अप्रभाग हुआ और मन्दग्ननद्यो रणकी  
बैठक का स्थान प्रह्लय किया । उदयानल और अलानल—ये  
दोनों उस रफ्ते फूटर हुए । मध्यमें अस्थिति हुआ और  
शास्त्रार्थीत उनके आध्यात्मिक हुए । मंकुर उन रथों पर  
उत्तरायण और अस्तिभासन—दोनों को इधर रख, तुम्हरे इम्प्रूर  
(रस्य), राजाएं उनकी दिव्यहुई आत्माएं उनका राजा (नामितानन्द  
अप्रभाग), उत्तम अस्तरेण निमित्त अत्युपर्याप्त (मनितानाथ)  
और अस्तरेण इम्प्रूर । युद्ध के रथों का नाम है इसी रथी ।  
क्षमा स्वर्ग और सेवा इम्प्रूर हुई । अस्तम् (कृष्ण जीवी दीनी) और  
सम्मेन हुए दो अस्तिम लोक इम्प्रूर । अस्तम् (प्रह्लय)  
उक्त रथ इम्प्रूर त्रिकुटि मद्ग्राम, अहर त्रिकुटि और रथ महाकृष्ण  
उक्त रथ का नाम है । इक्किसी रथी रथी अस्तम् (स्मृतिम्)  
इस रथी की ओर लक्षा उन रथों का नाम ही । उन रथों  
के नाम की ओर लक्षा ने लगाए खूबी और लुटाए खूबी, लौटाए  
खूबी लगाए खूबी लाए खूबी । लौटाए खूबी लौटाए खूबी लौटाए  
खूबी लौटाए खूबी ।

आथम उसके पाद बने । गद्ध कणोंसे सुशोभित शोणाग वन्धनरज्जु हुए और दिशाएँ तथा उपदिशाएँ उसके पाद बनीं । पुष्कर आदि तीर्थोंने रद्दजट्टि स्वर्णमय पताकाओंना स्थान ग्रहण किया और चारों समुद्र उग रथके आच्छादन बना बने । गङ्गा आदि सभी श्रेष्ठ भरिताओंने मुन्दरी लिंगोंना रूप धारण किया और समस्त आभूपणोंसे विभूषित हो हाथमें नैवर ले यत्र-तत्र स्थित होकर वे रथकी शोभा बढ़ाने लगीं । अबह आदि सातों वायुओंने स्वर्णमय उत्तम सोपानका काम संभाला । लोकालोक पर्वत उसके चारों ओरका उपसोपान और मानस आदि सरोवर उसके सुन्दर बाहरी विषपस्थान हुए । नारे वर्षाचल उसके चारों ओरके पास बने और नीचे के लोकोंके निवासी उस रथका तल भाग हुए । देवाधिदेव भगवान् ब्रह्म लगाम पकड़नेवाले सारथि हुए और ब्रह्मदेवत ॐकार उन ब्रह्मदेवका चाबुक हुआ । अकारने विशाल छवका रूप धारण किया । मन्दराचल पार्श्व भागका दण्ड हुआ । शैलराज हिमालय धनुष और स्वर्ण नागराज शेष उसकी प्रत्यक्षा बने । श्रुतिरूपिणी सरस्वती देवी उस धनुषकी धण्डा हुई और महातेजस्वी विष्णु बाण तथा अभिउ उस बाणके नोक बने । मुने ! चारों वेद उस रथमें जुतनेवाले चार धोड़े कहे गये हैं । इसके बाद शेष बची हुई ज्योतियाँ उन अधोंकी आभूपण हुईं । विपसे उत्पन्न हुई बस्तुओंने सेनाका रूप धारण किया, वायु वाजा बजानेवाले और व्यास आदि मुख्य-मुख्य ऋषि बाहवाहक हुए । मुनीश्वर ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं संक्षेपमें ही बतलाता हूँ कि ब्रह्माण्डमें जो कुछ बस्तु थी, वह सब उस रथमें विद्यमान थी । इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वकर्मने ब्रह्मा और विष्णुकी आज्ञासे उस शुभ रथका तथा रथसामग्रीका निर्माण किया था ।

सनकुमारजी कहते हैं—महर्ष ! इस प्रकारके महान् दिव्य रथमें, जो अनेकविध आश्वयोंसे युक्त था, वेदरूपी अधोंकी जोतकर ब्रह्माने उसे शिवको समर्पित कर दिया । शम्भुको निवेदित करनेके पश्चात् जो विष्णु आदि देवोंके सम्माननीय एवं त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, उन देवेश्वरकी प्रार्थना करके ब्रह्माजी उन्हें उस रथपर चढ़ाने लगे । तब महान् ऐश्वर्यशाली सर्वदेवमय शम्भु रथ-सामग्रीसे युक्त उस दिव्य रथपर आरूढ़ हुए । उस समय ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, लोकपाल और ब्रह्म-विष्णु भी उनकी स्तुति कर रहे थे । गानविद्याविशारद अप्सराओंके गण उन्हें धेरे हुए थे । सारथि-स्थानपर ब्रह्माको देखकर उन वरदायक शम्भुकी विशेष “ हुई । लोककी सारी वस्तुओंसे कल्पित उस रथपर शिवजी

नहीं ही रहे थे फिं वेदसम्भूत वे धोड़े सिरके बल भूमित्रि पड़े । पृथ्वीमें भूकम्प आ गया । मारे पर्वत डगमाने ले । गङ्गा शोणाग शिवजीका भार न सह सकनेके काल छु हो कौप उठे । तब उसी धरण भगवान् धरणीवरने दग्ध नन्दीश्वरका रूप धारण किया और रथके नीचे जाह जे जारहो उठाया; परंतु नन्दीश्वर भी रथालद महेश्वर न उत्तमतेजको बहन न कर सके, अतः उन्होंने तकलाल ही तुनी शुटने टेक दिये । तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने शिवजीकी हाथमें चाबुक ले धोड़ोंको उठाकर उस श्रेष्ठ रथोंके दिया । लदनन्तर महेश्वद्वारा अधिष्ठित उस उत्तम रथे हुए ब्रह्माजीने रथमें जुते हुए मन और वायुके समान वेग वेदमय अधोंकी उन तपस्यी दानवोंके आकाशादित तीनोंपु लक्ष्य करके आगे बढ़ाया । तत्पश्चात् लोकोंके कल्पण भगवान् नद देवोंकी ओर दृष्टिप्राप्त करके कहने लगे—“ श्रेष्ठो ! यदि तुमलोग देवों तथा अन्य प्राणियोंके विषयमें पृथक् पशुलक्षी कल्पना करके उन पशुओंका आधिक्य प्रदान करेगे, तभी मैं उन असुरोंका संहर कहाँगा कं वे दैत्यश्रेष्ठ तभी मारे जा सकते हैं, अन्यथा उनका असम्भव है । ”

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! अगाध बुद्धिमत्ता देवाधिदेव भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सभी देव पशुलक्षीके प्रति सशक्ति हो उठे, जिससे उनका मन तिन गया । तब उनके भावको समझकर देवदेव अस्तिकायति शर्म करवार्द्ध हो गये । फिर वे हँसकर उन देवताओंसे इस प्रकार बोले ।

शम्भुने कहा—देवश्रेष्ठो ! पशुभाव प्राप्त होनेवाले तुमलोगोंका पतन नहीं होगा । मैं उस पशुभावसे विमुक्त होनेवाले उपाय बतलाता हूँ, सुनो और वैसा ही करो । समाहित महान् देवताओं ! मैं तुमलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि ये देव दिव्य पाशुपत-ब्रतका पालन करेगा, वह पशुलक्षी सुखदे जायगा । सुरश्रेष्ठो ! तुम्हारे अतिरिक्त जो अन्य प्राणी मैंहों पाशुपत-ब्रतको करेंगे, वे भी निस्संदेह पशुलक्षी दूष जायेंगे । जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बाहू वर्षतक वर्षतक अथवा तीन वर्षतक मेरी सेवा करेगा अथवा कर्यालय वह पशुलक्षी से विमुक्त हो जायगा । इसलिये श्रेष्ठ देवताओं तुमलोग भी जब इस परमोक्तष्ट दिव्य ब्रतका पालन करेंगे उनसी समय पशुलक्षी से मुक्त हो जाओगे—इसमें कुछ भी कम नहीं है ।

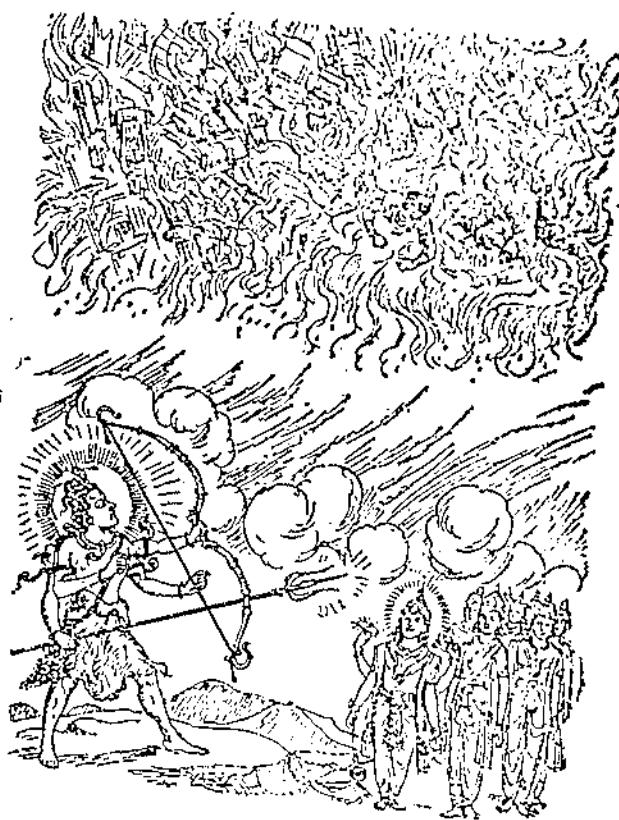
सननुमारजी कहते हैं—महये ! परमात्मा महेश्वर-  
त वचन मुनकर विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—  
तथा तथा अन्य—वहुत अच्छा, ऐसा ही होगा । इसीलिये वडे-वडे  
देवता तथा अमुर भगवान् शंकरके पशु बने और पशुत्वली  
पासे विमुक्त करनेवाले दद्र पशुपति हुए । तभीसे महेश्वरका  
‘पशुपति’ वह नाम विश्वमें विख्यात हो गया । यह नाम समस्त  
शंकरोंमें कल्पाण प्रदान करनेवाला है । उस समय समूर्ण देवता  
तथा आपि हर्षमय होकर जय-जयकर करने लगे और देवेश्वर  
ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य प्राणी भी परमानन्दमय हो गये ।  
उन अवसरपर महात्मा शिवका जैसा रूप प्रकट हुआ था,  
उसका वर्णन ऐसकड़ीं वर्णोंमें भी नहीं हो सकता । तदनन्तर जो  
शिवा तथा समूर्ण जगत्के खासी और समस्त प्राणियोंके सुख  
प्रदान करनेवाले हैं, वे महेश्वर यों सुसज्जित होकर विषुका  
पाठ वर्णनके लिये प्रसित हुए । जिस समय देवदेव  
पशुपति विषुका विनाश करनेके लिये चले, उस अवसरपर  
देवराज आदि सभी प्रधान-प्रधान देवता भी उनके साथ  
प्रसित हुए । पर्वतके समान विशालकाय उन सुरेश्वरोंका मन  
प्रभाव था, वे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे । वे सभी  
दाखियोंमें इल, शाल, मुखल, भुग्निंदि और नाना प्रकारके पर्वत-  
धों विशाल आयुरोंको धारण करके राथी, घोड़े, चिंह,  
रुप और वैदेशी वाहर हो चल रहे थे । उन समय जिनके  
पारे परम प्राप्तामान थे और मन महान् उत्साहसे सम्पन्न  
में वह जो नाना प्राप्तारके अल-शालोंसे सुसज्जित थे, वे इन्द्र,  
जला और रिष्णु आदि देव यमुकी जय-जयकर बोलते हुए  
प्रेषित अप्यें आये आये जले । सभी दण्डी एवं जटाधारी मुनि  
इनी भगवने लगे और आत्मशक्तिरी निज तथा नारण पुण्योंमें  
दृष्टि कर्म सम्पूर्ण । विषेन्द्र ! विषुकी वाता करने कामय जिनके  
पारे वह विषेन्द्री काम थे, उसकी गवाना करके जैन पार पा  
कर्त्ता ही कर्त्ता ही तुक्ता वर्णन करता है । शेषिन् !  
विषेन्द्र भगवान्में वेष्ट रक्षी गणेशत्वों तथा इतगांगें विषुक  
अवसरपर हुए ही देवदी जौलि विषुका जित्य वर्णनके  
लिये रहे । उसके वापनाव रूप, विषुक, नदीदेता,  
निमातु, उपेन्द्र, विषुकर्ता, नेतार, नवर, सोनभू, सूर्य-रक्षी,  
देवदी-कर्ता, सूर्योदय, वृक्षान, सुर, सुशूल, परस्पर, दुर्दूर,  
दुर्विष्णु, वृक्षदेव, वृक्षी-देव, इन्द्र, दद्रदेव, रक्षक, विषुक,  
देवदी-कर्ता, देवदी-कर्ता, नदी-देव, नदी-देव, विषुक, विषुक, रक्षक,  
देवदी-कर्ता, देवदी-कर्ता, नदी-देव, नदी-देव, विषुक, विषुक, रक्षक,

वल्द्वाली वीर गणाध्यक्ष लक्ष्य-लक्षणकी परवाह न करते हुए  
महेश्वरको बेरकर चल रहे थे ।

ब्रातजी ! तदनन्तर महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियों-  
सहित उस रथपर स्थित हो उन सुरद्वोहियोंके तीनों पुरोंको  
पूर्णतया दग्ध करनेके लिये उत्थत हुए । उन्होंने रथके शीर्ष-  
स्थानपर स्थित हो उस महान् अद्वृत धनुषपर प्रत्यज्ञा चढ़ायी  
और उसपर उत्तम वाणका संधान करके वे रोपावेशसे  
होठको चाटने लगे । किंविषुकको मूठको दद्रतापूर्वक पकड़-  
कर और दृष्टिमें दृष्टि मिलाकर वे वहाँ अचलभावसे लड़े हो  
गये । परंतु उनके अंगोंके अग्रभागमें स्थित होकर गणेश  
निरस्तर पीड़ा ही पहुँचाते रहे, जिससे वे तीनों पुर विश्वलघारी  
शंकरका लक्ष्य नहीं बन सके । तब धनुष-वाणधारी  
मुञ्जकेवा विल्पाक्ष शंकरने परम शोभन आकाशवाणी सुनी ।  
(उस व्योमवाणीने कहा—) ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर ! जबतक  
आप इन गणेशकी अर्चना नहीं कर लें, तबतक इन  
तीनों पुरोंका संहरा नहीं कर सको । तब ऐसी बात  
सुनकर अन्धकासुरके निहत्ता भगवान् दिवने भद्रकालीको  
बुलाकर गजाननवा पूजन किया । जब दृष्टिपूर्वक विधि-विधान-  
सहित अग्रभागमें स्थित उन विनायककी पूजा की गयी, तब  
वे प्रसन्न हो गये । किंतु तो भगवान् शंकरको उन तारक-पुत्र  
महामनसी दैत्योंकि तीनों नगर वधोक्तरपने आकाशमें स्थित  
दीस्य पड़े । इन विषयमें कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उन  
शिवजी तथ्यं त्वतन्त्र, परब्रह्म, यमुण, निर्मुण, नवके द्वारा  
अलक्ष्य, स्वामी, परमात्मा, निरङ्गन, पश्चदेवमय, पश्चदेवोंके  
उत्पाल और प्रातरप्रमुह हैं, वे ही तत्काल उपास हैं । उनसे  
उपास्य कोई नहीं है, तब तत्काल नन्दीप तत्काल नन्दी  
उद्देश्यरक्त विषयमें यह वह नन्दी नहीं जैन नन्दी है  
कि उनसी नन्दीमेंदि अन्यती इमान अपवाहन है । तरु  
मुने ! उन देवतिरेख दरदरी नन्दीरक्त विषयमें नन्दीप  
तथ्य कुछ परिणाम हो सकता है । अब ! इन प्रत्यर वह  
प्रजापिता दृश्य दरक्त नन्दीरक्ती हित हुए, वह वे नन्दी  
पुर वापन्य दीम ही शराबी प्रथा हो गये । युगे !  
उन विषुक्ते दरदर भित्ति इन हृषि वर्ण वर्णन  
अन्धकासे गमनमें देवदीको नलन हुए हैं । तरु नन्दी  
देवमय, भित्ति वर्ण अमरि भद्रुतीकर्ता विषुक्ते वर्णन इन्द्र  
उद्देश्यरक्त विषुक्ते वर्ण (वर्ण) । उन वर्णों दृश्य, वर्ण  
उद्दीर्णरक्त विषुक्ते वर्ण—भद्रुती (वर्ण) । उद्देश्यरक्त विषुक्ते वर्ण

त्रिपुरनिवासी देव्योंके वधका समय भी आ गया है। विमो ! इसीलिये ये पुर एकताको प्राप्त ही गये हैं। अतः देवेश ! जबतक ये त्रिपुर पुनः विलग हों उके पहले ही आप बाण छोड़कर इन्हें भस्म कर डालिये और देवताओं का कार्य सिद्ध कीजिये ।

मुने ! तदनन्तर शिवजीने धनुषकी ढोरी चढ़ाकर उपर पूज्य पाशुपताख नमक वाणका संधान किया और उसे वे त्रिपुरपर छोड़नेका विचार करने लगे । शंकरजीने जिस समय अपने अद्भुत धनुषको खींचा था, उस समय अभिजित् मुहूर्त चल रहा था । उन्होंने धनुषकी टंकार तथा दुसाह सिंहनाद करके अपना नाम वोपित किया और उन महामुरों को ललकारकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उग्मीषण वाणको उपर छोड़ दिया । तब जिसके नोकपर अभि-



देव प्रतिष्ठित ये और जो विशेषरूपसे पापका विनाशक तथा विष्णुमय था, उस महान् जाग्वत्यमान शीघ्रगामी बाणने उन त्रिपुरनिवासी देव्योंको दग्ध कर दिया । तत्पश्चात् वे तीनों

पुर भी भस्म हो गये और एक साथ ही चारों सुरोंने गेशाद्यवाली भूमिपर गिर पड़े । उस समय शिवजीकी पूज्य अतिकर्मण कर देनेके कारण सैकड़ों देव्य उस वासिता अभिरो जलकर हायग्नार मन्त्रा रहे थे । जब भाव्यांशुके तारकाश जलने लगा, तब उसने अपने स्वामी भक्तलु भगवन् शंकरका सरण किया और मन-ही-मन महामै देखकर परम भक्तिपूर्वक नाना प्रकारसे विलाप करता वह उनसे कहने लगा ।

तारकाश वोला—“मत ! आप हमपर प्रसन्न हैं दमें जात हो गया है । इन सत्यके प्रभावसे आप सिरः भाइयो-गृहित हमानो द्रष्टव करेंगे । भगवन् ! जो देवता असुरोंके लिये अप्राप्य है, वह (आपके हाथसे मरणला दुर्लभ लाभ दमें प्राप्त हो गया । अब जिस-जिस वोनिमे है जन्म धरण करें, वहाँ हमारी बुद्धि आपकी भक्तिसे भर्ति रहे ।” मुने ! यों वे देव्य विलाप कर ही रहे थे कि शिवजी आशासे उन्हें अद्भुत रीतिसे जलाकर राजकी द्वेष वना दिया । व्याकुली ! और भी जो बालक और बृद्ध ग्रन्थ थे, वे शिवाशानुग्राह उस अभिदारा शीघ्र ही जलज भस्म हो गये । यहाँतक कि उन त्रिपुरोंमें जितनी बिर्याँ और गुरु थे, वे सब-के-सब उस अभिसे उसी प्रकार दग्ध होने जैसे कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है । उस समय उभीषण अभिसे कोई भी स्थावर-जंगम विना जले नहीं क्या किंतु असुरोंका विश्वकर्मा आविनाशीं मय वच ग्रह क्योंकि वह देवोंका अविरोधी, दाम्भुके तेजसे सुरक्षित और सद्भक्त था । विपत्तिके अवसरपर भी वह महेश्वरका दृश्यमान वना रहता था । जिन देव्यों तथा अन्य प्राणियोंका भर्ता अभाव अथवा कृत-अकृतके प्राप्त होनेपर नाशकारक पतन नहीं होता, वे विनाशसे बचे रहते हैं । इसलिये सुरुरुद्धे अत्यन्त सम्भावित—उत्तम कर्मके लिये ही प्रयत्न अव्याहिते; क्योंकि निन्दित कर्म करनेसे प्राणीका विनाश हो जाता है । अतः गर्हित कर्मका आचरण भूलकर भी न करें । जल समय भी जो देव्य बन्धु-वान्यवो-सहित शिवजीकी पूज्य तत्पर थे, वे सब-के-सब शिव-पूजाके प्रभावसे (दूसरे जन्मों) गणोंके अधिपति हो गये । (अध्याय १३०)

\* तस्माद् यतः सुसम्भाव्यः सम्भिः कर्तव्य एव हि । गर्हणात् क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत् ॥

देवोंके स्तवनसे शिवजीका कोप शान्त होना और शिवजीका उन्हें वर देना, मय  
दानवका शिवजीके समीप आना और उनसे वर-न्याचना करना,  
शिवजीसे वर पाकर मयका वितललोकमें जाना

व्यासजीने पूछा—महावुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! आप  
तो ग्रन्थाके पुत्र और शिवभक्तोंमें सर्वथेष्ठ हैं, अतः आप धन्य  
हैं। अब वह वत्याइये कि त्रिपुरके दग्ध हो जानेपर सम्भूर्ण  
देवताओंने क्या किया ? मय कहाँ गया और उन त्रिपुराव्यक्षों-  
की क्या गति हुई ? यदि वह वृत्तान्त शम्भुकी कथासे सम्बन्ध  
नहीं रखता तब हो तो वह मत्र विस्तारपूर्वक मुत्तसे वर्णन कीजिये ।

सूतजी कहते हैं—नुने ! व्यासजीका प्रश्न सुनकर  
सूष्टिलोऽग्रन्थाके पुत्र भगवान् सनत्कुमार शिवजीके युगल  
चरणोंका सारण करके बोले ।

सनत्कुमारजीने कहा—महावुद्धिमान् व्यासजी ! जब  
मैं श्वरसे दत्तेष्वे खन्नावच भेर हुए सम्भूर्ण त्रिपुरको भस्म  
कर दिया, तब सभी देवताओंको महान् आश्र्वय हुआ ।  
उन सभ्य शंकरजीके गहान् भव्यकर रौद्र रूपको, जो करोड़ों  
भूमोंके भगान प्रश्नाशगान और प्रलयकालीन अमिकी भाँति  
तिरसी या तथा जिमके तेजसे दनों दिशाएँ प्रचलित-सी  
हीं रही थीं, देवतर याथ ही हिमान्द-सुन्दी पार्वतीदीपीकी  
हिंकर रथित करके सम्भूर्ण देवता भयभीत हो गये । तब मुख्य-  
पृथ्वी रेतता गिर गयी देवत यामने लदे हो गये । उन अवगतपर  
हीमस्त्रे भूमि भी देवताओंकी वाहिनीको भयभीत देवतर  
हीमस्त्रे रह गये, कुछ देल न सके । वे चारों ओरसे शम्भुकी  
झूर्णागतसे लगे । तत्प्रात् व्रता भी शिवजीके उस लक्ष्ये  
झूर्णागत भयभल हो गये । वह उन्हें उरे हुए विष्णु तथा  
तीर्थोंके नाम प्रत्यक्ष भनते शायपालीर्द्वय उन गिरिजान्दिन  
हीमस्त्रमें देवोंकी भी देवत भय तथा हस्तामते प्रतिष्ठ  
हीमस्त्रकर्मण रहनेके बाहर निरहस्त हैं, लग्ज हिंग ।  
ब्रह्मान्द गती इन्द्रजीत देवताओंके भगवान् पितृसी सुन्दी ही ।  
तीर्थोंकी लंगे उपर लोगोंके लड़ानालीं मेंहर प्रस्त्र

देवताओंने कहा—भगवन् ! देवदेवेश ! वहि आप  
हमपर प्रसन्न हैं और हम देवगणोंको आना दात समझकर  
वर देना चाहते हैं तो देवतत्त्व ! जव-जव देवताओंपर  
दुःखकी सम्भावना हो, तब-तब आप प्रकट होकर उदा  
उनके दुःखोंका विनाश करते रहें ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्ण ! जन व्रहा, विष्णु  
और देवताओंने भगवान् रुद्रसे ऐसी प्रार्थना की, तब  
वे शान्त तथा प्रत्यक्ष होकर एक साथ ही दक्षसे बोले—‘अन्त्य  
सदा ऐसा ही होगा ।’ ऐसा कहकर शंकरजीने, जो सदा  
देवोंका हुँख हरण करनेवाले हैं, प्रत्यक्षतपूर्वक देवोंको  
जो कुछ अभीष्ट था, वह सार-नासारा उन्हें प्रदान कर  
दिया । इसी समय मय दानव, जो शिवजीकी कुशके वलसे  
जलनेसे वच गया था, शम्भुकी प्रत्यक्ष देवतर हर्षित मनसे  
वहाँ आया । उसने विनीत भावसे हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक  
इर तथा भव्यान्व देवोंको भी प्रणाम किया । किंव वह  
शिवजीके चरणोंमें लौट गया । तत्प्रात् दानवप्रेत मयनी  
उठकर शिवजीकी ओर देता । उस नम्बूद्ध दानव  
उसका गला भर आया और वह भक्तिशुभ्र निराम उन्हीं  
सुन्दी करने लगा । द्वितीये ! मयदाना जिसे मय लाभन्ती  
उसद्वार परनेभर शिव प्रत्यक्ष है मय और आद्यतन्त्र  
उससे बोले ।

शिवजीने कहा—दानवप्रेत मय ! मैं गुरुद्वार प्रवक्ष  
हूँ, अजः तृ वर भवि के । इस नम्बूद्ध जो दृढ़ मीतर  
मयनी अनियत है, उस मैं अवश्य पूर्व लक्ष्य ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—हाँ ! शम्भुर य दानव  
मय कमनते कुम्भ दानवप्रेत मयनी प्रकाश वीरद्व

न हो । नाथ ! निरन्तर आपके गुप्त भजनमें तहीन रुद्र का निर्भय बना रहा है ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! शंकर तो सबके स्वामी तथा भक्तवत्सल हैं । मयने जब इस प्रकार उन परमेश्वरकी प्रार्थना की, तब वे प्रसन्न होकर मयसे बोले ।

महेश्वरने कहा—दानवसत्तम ! तू मेरा भक्त है, तुझमें कोई भी विकार नहीं है; अतः तू धन्य है । अब मैं तेग जो कुछ भी अभीष्ट वर है, वह सारा-का-सारा तुम्हे प्रदान करता हूँ । अब तू मेरी आशासे अपने परिवारगहित वितल लोकों चला जा । वह स्वर्गसे भी रमणीय है । तू वहाँ प्रसन्नचित्तसे मेरा भजन करते हुए निर्भय होकर निवास कर । मेरी आशासे कभी भी तुझमें आमुर भावका प्राकृत्य नहीं होगा ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! मयने महात्मा

शंकरकी उठा आशाओं तिर छुकाकर लीकर लिए हैं उन्हें तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम करके वह विलङ्घके नला गया । तदनन्तर मध्यदेवजी देवताओंके उपरुद कार्योंमें पूर्ण करके देवी पार्वती, अपने पुत्र और जन्म गणांशहित अन्तर्भूत हो गये । जब परिवारमें जल्द शंकर अन्तर्भूत हो गये, तब वह धनुष, वाह, खड़ी रारा डाकरण भी अदृश्य हो गया । तत्क्षण ग्रहोंपुत्र तथा अन्यान्य देव, मुनि, गन्धर्व, हिंदुर, नाग, सर्व, अश्रुद्वारा गमन्योंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ । वे सभी शंकरजीके ज्ञान वस्त्रान उस्ते हुए अनन्दपूर्वक अपने अपने लकड़ चले गये । वहाँ पहुँचकर उन्हें परम तुल्यकी प्राप्ति हुई । महर्षे ! इस प्रकार मैंने शशिमौलि शंकरजीका विशाल चले जो विपुर-विनाशका सूचित करनेवाला तथा परमोद्गुणोंके सुक्ष्म है, सारा-का-सारा तुम्हें सुना दिया । (अन्याय ११-१३)

दम्भकी तपस्या और विष्णुद्वारा उसे पुत्र-ग्रासिका वरदान, शङ्खचूड़का जन्म, तप और उसे वरप्राप्ति, ब्रह्माजीकी आशासे उसका पुष्करमें तुलसीके पास आना और उसके साथ वार्तालाप, ब्रह्माजीका पुनः वहाँ ग्रकट होकर दोनोंको आशीर्वाद देना और शङ्खचूड़का गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण करना

तदनन्तर जलन्धरकी उत्पत्तिसे लेकर उसके व्यवहारको प्रसङ्ग सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—मुने ! अब शम्भुका दूसरा चरित्र प्रेमपूर्वक श्रवण करो । उसके सुनने मात्रसे शिवमक्ति सुदृढ़ हो जाती है । व्यासजी ! शङ्खचूड नामक एक महावीर दानव था, जो देवोंके लिये कण्टकस्वल्प था । उसे शिवजीने रणके सुहानेपर चिश्शलसे भार डाला था । शिवजीका वह दिव्य चरित्र परम पावन तथा पापनाशक है । तुमपर अधिक स्नेह होनेके कारण मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमपूर्वक उसे श्रवण करो । ब्रह्माके पुत्र जो महर्षि मरीचि थे, उनके पुत्र कश्यप हुए । ये मननशील, धर्मिष्ठ, सुषिकर्ता, विद्यासम्पन्न तथा प्रजापति थे । दक्षने प्रसन्न होकर अपनी तेरह कन्याओंको विवाह इनके साथ कर दिया । उनकी संतानोंका इतना अधिक विस्तार हुआ कि उसका वर्णन करना कठिन है । उन कश्यप-पत्नियोंमें एकका नाम दनु था । वह श्रेष्ठ सुन्दरी तथा महारूपवती थी । उस साध्यीका सौभाग्य बढ़ा हुआ था । मुने ! उस दनुके बहुतन्से महावली पुत्र उत्पन्न हुए । विस्तार-यसे उनके नाम नहीं गिनाये जा रहे हैं । उनमें एकका

नाम विप्रनिति था, जो महान् वल-पराक्रमसे समाप्त था । उसका पुत्र दम्भ हुआ, जो जितेन्द्रिय, धार्मिक विष्णुभक्त था । जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तो उन वीरोंके चिन्ता व्याप्त हो गयी । उसने शुक्रार्थीपुत्र वनाकर उनसे श्रीकृष्ण-मन्त्र प्राप्त किया और पुष्करमें उन घोर तप करना आरम्भ किया । वहाँ सुदृढ़ आरन लकड़ कृष्ण-मन्त्रका जप करते हुए उसके एक लाख वर्गदंड गये । तब उस तपस्थीके मस्तकसे एक जात्यज्ञान देने किलकर सर्वत्र व्याप्त हो गया । वह तेज इतना उत्तम होकर अपना सम्पूर्ण देवता, मुनि तथा मतु जन्माया कि उससे सम्पूर्ण देवता, मुनि तथा मतु जन्माया । उठे । तब वे इन्द्रको अगुआ बनाकर ब्रह्मोंके शरण में हुए । वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता विश्वामित्र प्रणाम करके उनकी स्तुति की और फिर विश्वपत्नसे वर्द्ध होकर अपना सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया । उन्होंने सब सुनकर ब्रह्मा भी उन्हें साथ लेकर वह सारा उद्गत विष्णुको सुनानेके लिये वैकुण्ठको चले । वहाँ पहुँचने सब लोगोंने चिलोकीके अधीक्षर तथा रक्षक परमात्मा विष्णु-

विनीतभावसे प्रणाम किया और किर हाथ जोड़कर उनकी लति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव ! हमें पता नहीं कि यहाँ कौन-  
सा कारण उत्तम हो गया है। हम किसके तेजसे संतप्त हो  
उठे हैं, वह आप ही बतलाइये। दोनोंनव्यो ! अपने दुखी  
सेवकोंके रक्षक तो आप ही हैं; अतः शरणदाता ! रमानाथ !  
हम शरणगतोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्मा आदि देवताओं-  
के वचनको मुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णु मुस्कराये  
और प्रभार्यक थोड़े ।

विष्णुने कहा—अमरो ! शान्त रहो, ध्वराओं मत,  
भयभीत न होओ। कोई उलट-पलट नहीं होगा; क्योंकि  
अभी प्रत्यक्ष समय नहीं आया है। (यह तेज तो)  
दम नामक दानवका है, जो मेरा भक्त है और पुत्रकी  
शासनसे तप कर रहा है। मैं उसे वरदान देकर शान्त  
कर दूँगा।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! भगवान् विष्णुकृ  
यों काहेपर ब्रह्मा आदि देवताओंकी व्यग्रता जाती रही,  
ये तभी पैरें परत्य करके अपने-अपने धामको लौट गये ।  
इस भगवान् अस्युत भी घर प्रदान करनेके लिये पुष्करको  
चल गए, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था ।  
वहाँ पुंजवर श्रीरामने आगमे मन्दिर जप करनेवाले  
भगवान् दम्भसे सात्सना देते हुए मधुर वाणीमें कहा—  
तर भौंग ! तब विष्णुकृ उपर्युक्त वचन सुनकर और उन्हें  
सभे उपर्युक्त देवतार दम्भ वडी भक्तिके साथ उनके चरणों-  
पर लैटे गए और वारंवार लूति करने हए योंला ।

परम्परे कहा—देवाभिदेव ! कमलवन ! आपको  
मत्तु नहीं है। रमानाथ ! मुझपर कुशा कीजिये। बिलेक्षण !  
तू एक ऐसा धीर पुरुष शीर्खे को अपना भक्त तभा  
नहीं, कमलवनका तौ सामना हो। यह बिलेक्षण जीत ले,  
स्वयं देवता उन्हें सूजिता न हरनहो।

सकाकुमारजी कहते हैं—मुझे ! इन सब दम्भियों के द्वारा मैं उसे बदल दिया और उन से उनके लिए नियत बदले जाते रहे हैं। इन सब दम्भियों के लिए यह बुरी खबर है, विष्णु उसका भवान रख देंगे वह यह नहीं बोले जाएगा कि वह उन सब दम्भियों के लिए अपने लिए बदल दिया है। यह ही

समझके उपरान्त उसकी भाग्यवती पत्नी गर्भवती हो गयी । वह अपने तेजसे वरके भीतरी भागको प्रकाशित करती हुई शोभा पाने लगी । मुने ! श्रीकृष्णके पार्वतीज्ञ अपर्णी जो सुदामा नामक गोप था, जिसे राधाजीने शाप दे दिया था, वही उसके गर्भमें प्रविट हुआ था । तदनन्तर उमय आनेपर साढ़ी दम्भपत्नीने एक तेजस्वी बालकको जन्म दिया । तब पिताने वहुत-से मुनीश्वरोंको बुलाकर उसका विधिर्विक जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया । द्वितीयतम ! उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर वहुत बड़ा उत्सव मनाया गया । फिर युधिष्ठिर अनेपर पिताने उस बालकका 'शशुचूड' ऐना नामकरण किया । वह अपने पिताके घरमें शुक्रलग्नके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगा । वह अव्यन्त तेजस्वी था, अतः उसने वचनमें ही सारी विद्याएँ सीख लीं । वह नित्य बालकीड़ा करके अपने माता-पिताका हर्ष बढ़ाने लगा और अपने उमस्त कुटुम्बियोंका तो वह विदोपस्थिति प्रेम-भावन हो गया ।

तदनन्तर जब शशुचूड़ वडा हुआ, तब वह जैगीपथ  
मुनिके उपदेशसे पुक्करमें जाकर ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके  
लिये भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगा। उस समय वह एकप्र-  
मन हो आगमी इन्द्रियोंको काथुमें करके गुस्सादिष्ट ब्रह्माविद्या का  
जप करता रहा। वो पुक्करमें तपस्या करते हुए दामोदराच  
शशुचूड़को वर देनेके लिये लोकगुरु एवं ऐश्वर्याली ब्रह्मा  
शीघ्र ही वहाँ पधारे और उस दामोदरसे बोल—“यर मागि!”  
ब्रह्माजीको देखकर उसने अल्पन्त नववापि उन्हें अनिश्चादन  
किया और किर उत्तम वार्गिसे उनकी रुपनि वां। वस्त्राधार  
उसने ब्रह्मासे वर माँगते हुए कहा—“मगान्।” वे देखताओंके  
लिये अज्ञय हो जाऊँ। कर ब्रह्माजी राम प्रसन्न होकर बोल—  
“तथातु—ऐसा ही होगा।” किर उसीने शशुचूड़से वाक्य  
भीहुम्बलवच प्रदान किया, जो अनन्दि समयमें गुरुकरा  
भी महान् और अवश्य विद्या प्रदान करनेवाला। सद्गुर  
ब्रह्माविनि उन्हें आवा दी दि जून वर्दीमध्ये आओ। ही  
भर्मधिवती कमरा तुम्ही नदिमध्यमें दरख्त कर रही हो।  
तुम उसके नाम निराकरण की। जो एक ब्रह्माजी जो  
इष्य उसके नाममें ही तुम्ही भक्तिपूर्वक हो जाओ। कर ब्रह्मादि  
शशुचूड़ने जी, किन्तु जीरे मारीपृथक्किंवद्य ही ही है इन  
में और नुस्ख फ्रजन निराकरण की जी तुम्हरी है उम  
शशुचूड़ नदिकीके जी महान्द्रवदि रक्षणे जीमें जी  
हो एक नदिके जाह्नवी नदि नदिवाहा नदिवाहा नदिवाहा  
एक नदि। जी दमद शशुचूड़ एक जीव नदिवाहा ॥

पहुँचा जहाँ धर्मव्यजकी पुत्री तुलसी तप कर रही थी । सुन्दरी तुलसीका रूप अत्यन्त कमानीय और मनोहर था । वह उत्तम शीलसे सम्पन्न थी । उम गतीको देखकर शश्चूट उसके समीप ही ठहर गया और मधुर वाणीमें उमसे बोला ।



शश्चूटने कहा—सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? तुम यहाँ चुपचाप बैठकर क्या कर रही हो ? यह सारा रहस्य मुझे बतलाओ ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! शश्चूटके ये सकाम बचन सुनकर तुलसीने उससे कहा ।

तुलसी बोली—मैं धर्मव्यजकी तपस्विनी कन्या हूँ और यहाँ तपोवनमें तप कर रही हूँ । आप कौन हैं ? सुख-पूर्वक अपने अभीष्ट स्थानको चले जाइये; क्योंकि नारीजाति व्रहा आदिको भी मोहमें डाल देनेवाली होती है । यह विप-तुल्य, निन्दनीय, दोष उत्पन्न करनेवाली, मायारूपिणी तथा विचारशीलोंको भी शृङ्खलके समान जकड़ लेनेवाली होती है ।

सनकुमारजी कहते हैं—महर्ष ! तुलसी जब इस प्रकार रसभरी बातें कहकर चुप हो गयी, तब उसे मुस्कराती देखकर शश्चूटने भी कहना आरम्भ किया ।

शश्चूट बोला—देवि ! तुमने जो बात कही है,

तब सारी-नी-गारी मिथा हो, ऐसी बात नहीं है । उनमें कुछ सत्य है और कुछ असत्य भी । इसका विवरण मुझे मुनो । शोभने ! जगन्में जिसी प्रतिक्रिया नारियाँ हैं, उनमें तुम अमाणी हो । मेरा तो ऐसा विचार है कि जैसे मैं गम्भुदि कामी नहीं हूँ, उनी प्राप्त तुम भी काम-परायीना नहीं हो । किर भी इस तमव में ग्रन्थार्जीकी आज्ञासे तुम्हारे नक्षे आया हूँ और गम्भवे विवाहकी विधिसे तुम्हें ग्रहण करें । भग्ने ! त्या तुम सुने नहीं जानती हो अथवा तुमने कभी मेरा नाम भी नहीं सुना है ? अर ! देवताओंमें भगव शालंवाला शश्चूट में ही हूँ । मैं दतुका वंशज तथा दम नामक दमनवाला पुत्र हूँ । पूर्वजातमें मैं श्रीहरिका पार्षद था । मेरा नाम तुदामा गोप था । इस तमव में ग्रन्थार्जीकी शारे दानवराज शश्चूट होकर उत्पन्न हुआ हूँ । वे लंग बातें सुने शारे हैं क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे मुझे अने पूर्वजन्मका सारण बना हुआ है ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! तुलसीके तमव यां कहकर शश्चूट उप हो गया । जब दानवराजने आर-पूर्वक तुलसीसे ऐसा सत्य बचन कहा, तब वह परम प्रब्ल हुई और मुक्तकराकर कहने लगी ।

तुलसी बोली—भद्र पुरुष ! आज आपने अने सात्त्विक विचारसे मुझे पराजित कर दिया है । जो पूर्व श्रीदारा परास्त न हो सके, वह संतारमें धन्ववाद्य भर है; क्योंकि जिसे ही जीत लेती है, वह पुरुष उदाचारी हो हुए भी सदा अपावन बना रहता है । देवता, पितर और समस्त मानव उसकी निन्दा करते हैं । जननायौव तथा मरणशौचमें व्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय वारह दिनोंमें और वैश्य पंद्रह दिनोंमें शुद्ध हो जाता है तथा शूद्रकी शुद्धि क्षमा मासमें हो जाती है—ऐसा वेदका अनुशासन है; परंतु क्षमा पराजित हुए पुरुषकी शुद्धि चितादाहके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे सम्भव ही नहीं है । इसी कारण उन्हें पितर उसके द्वारा दिये गये पिण्ड-तर्पण आदिको इच्छाका ग्रहण नहीं करते तथा देवता भी उसके द्वारा अर्पित ही नहीं करते । जिसका तर्फ गये पुष्प-फल आदिको स्वीकार नहीं करते । जिसका तर्फ विष्णोद्वारा आहत हो जाता है, उसके ज्ञान, उत्तम तप, ज्ञान, होम, पूजन, विद्या और दानसे क्या लाभ ? अर्थात् उन्हें ये सभी निष्फल हो जाते हैं । मैंने आपके विद्या, ज्ञान और ज्ञानकी जानकारीके लिये ही आपकी परीक्षा की है,

क्योंकि कामिनीको चाहिये कि वह अपने मनोनीत कानूनकी परंपरा करके ही उसे पतिलुप्ति वरण करे।

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जिस समव्युत्पन्नी यो वाराल्यप कर रही थी, उसी संमय सुषिक्तो ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे ।

ग्रहाजीने कहा—शङ्खचूड ! तुम इसके साथ क्या व्यर्थमें यद्यविद्याद कर रहे हो ? तुम गम्धर्व-विचाहकी विधिसे इसका शाणिग्रहण करो; क्योंकि निश्चय ही तुम पुरुषरत्न हो और यद्य उत्ती-साध्यों नारियोंमें रक्तस्वल्पा है। ऐसी दशामें निषुणाका निषुणके साथ समागम गुणवारी ही होगा। (फिर तुलसीकी ओर लक्ष्य करके बोले—) उत्ती-साध्यों तुलसी ! तू ऐसे

गुणवान् कान्तकी क्या परीक्षा ले रही है ? वह तो देवताओं, अमुरों तथा दानवोंका मान मर्दन करनेवाला है। सुन्दरी ! तू इनके साथ सम्भूर्ण लोकोंमें सर्वदा उत्तम-उत्तम स्वानोंपर चिरकालतक वयेष्ट्र विहार कर। शरीरान्त हाँनेपर वह पुनः गोलोकमें श्रीकृष्णको ही प्राप्त होगा और इसकी मृत्यु हो जानेपर तू भी वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवानको प्राप्त करेगी।

सनकुमारजी कहते हैं—मुझे ! इन प्रकार आर्थिर्वाद देकर व्रजा अपने धामको छले गये । तब शनव शहूचूड़ने गान्धर्व-विवाहकी विधि से तुलसीका पाणिमण्डल किया । यां तुलसीके साथ विवाह करके वह अपने पिताके स्थानको चला गया और मनोरम भवनमें उन सणीके साथ विदार करने लगा । (अव्याय १३—२९)

( અન્યાય ૧૩—૨૦ )

शङ्खचूड़का असुरराज्यपर अभिषेक और उसके द्वारा देवोंका अधिकार छीना जाना, देवोंका ब्रह्माकी  
शरणमें जाना, ब्रह्माका उन्हें साथ लेकर विष्णुके पास जाना, विष्णुद्वारा शङ्खचूड़के जन्मका  
रहस्योदयाटन और फिर सबका शिवके पास जाना और शिवसभामें उनकी  
झाँकी करना तथा अपना अभिप्राय प्रकट करना।

समकुमारजी कहते हैं—मर्हे ! जब शहूचूड़ने  
वा करके वर प्राप्त कर लिया और वह विवाहित होकर अपने  
पर लौट आया, तब दानों और दैत्योंको वड़ी प्रशंसना हुई।  
ये भभी अमुर तुरंत ही अपने लोकसे निकलकर अपने मुद  
धुमान्यरोगी गाम ले दल बनाकर उसके निकट आये और  
विकार्यांक उसे प्रशंसन करके अपनी प्रकास्ते आदर प्रदर्शित  
करने लगे उसका काम करने लगे। फिर उसे अमाते जली स्थामी  
मायत धर्मण्य प्रेमगायसे उसके पास ही लेके ले गये। उधर  
रामहुआर शहूचूड़ने भी अपने कुछ गुद युवत्यानीं आया  
इसे लेकर वह आदर और भक्ति के गाम उन्हें साझा कर  
करता हिंग। उसक्तर मुख युवत्यानीं तमना अनुग्रह कर  
करके उनसे अमाती गमत्वित शहूचूड़से अनरो लगा  
अद्वितीय अस्तित्व स्था दिया। इनमुख शहूचूड़ प्रत्यार्थी  
उपरके वाले वह तो उन आदर भक्तुरुपवार अदरित  
एवं वस्त्र एवं घुण्ड विसर्जनसे लंगमा गये रहा।  
जब उन्हें लक्ष्मी देवीकेर वस्त्राभ्य लगाकर शहूचूड़ उनका  
पर वस्त्र अस्त्रम दिया। कम्हूरी देवी विकासकर ऐसे  
उनके लक्ष्मी देवीको लग न लग नहे, वहाँ वे अस्त्राभ्यसे  
उन लक्ष्मी देवी देवी रखा। उन लक्ष्मीको लियो वह नहीं।

उनकी स्वतन्त्रता जाती रही। वे शून्यूड़ के विवरों हेतु के लाल  
प्रभावी हो गये। इसके बाद वे दम्भुगार दानवराज  
शश्वच्छृंखले भी नगूण लेकर जाकर देसाओं का गति  
अधिकार छीन लिया। वह त्रिशूली हो आगे आगे उत्तर करके  
समूर्ण लोकोंपर शामन करने लगा और सर्व एक लकड़ खारे  
यशभागोंको भी हड्डाने लगा तथा आगे गतिहार कुदेर, चोग,  
सूर्क अदि, वम और गायु अदिके भवितव्यों की पात्रता  
पर्यने लगा। उन गम्भीर महान् वर्ष गम्भीर नवाज़ महात्मा  
शून्यूड़ नमल देसाओं, अमृत, धात्वों, गुणों, घटारों,  
नायों, लियों, सदुभावों व वृथ किंवदिके भवत्वर गतिहार  
एकल्पन गढ़ा था। इन प्रदर्श भवत्वर गम्भीर शून्यूड़  
बुद्धा वर्षों के शून्यूड़ भवत्वों व वर्षों व उनके लगवा रहा।  
उनके गम्भीर व वर्षों व वर्षों भवत्वर जो भवत्वों जो भवत्वों  
भवत्वों हुई प्रदर्श देख लग गतिहार होते ही वे व्रजा भवत्वर  
हुई जाए रहती थीं। ऐसी कठिनता लग गुरु गतिहार  
शून्यूड़ लिया दिया हुआ भवत्वर देशों व वर्षों उनका लकड़ी की  
वाला प्रदर्श हो गतिहार उनका उत्तम लकड़ी की प्रदर्श नहीं हुआ  
था। उनका उत्तम वाली देशों व वर्षों व वर्षों लकड़ी की प्रदर्श  
देशों व वर्षों व वर्षों लकड़ी की प्रदर्श हुआ। उनका उत्तम वाला  
वाला वाला वाला वाला वाला वाला वाला वाला वाला

देवताओंके अतिरिक्त सभी जीव मुखी थे । उनमें किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न होता था । चारों वर्णों और आश्रयोंके सभी लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित रहते थे । इस प्रकार जब वह त्रिलोकीका शासन कर रहा था, उस समय कोई भी दुखी नहीं था; केवल देवता भ्रातृ-द्वैदेवता तुःस उठा रहे थे । मुने ! महाबली शङ्खचूड़ गोलोकनिवारी श्रीकृष्णका परम मित्र था । साधुस्वभाववाला वह सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें निरत रहता था । पूर्वशायवश उसे दानवकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था, परंतु दानव होनेपर भी उसकी बुद्धि दानवकी-सी नहीं थी ।

प्रिय व्यासजी ! तदनन्तर जो पराजित होकर राज्यसे हाथ धो वैठे थे, वे सभी सुराण तथा भूपि परस्पर मन्त्रगा करके ब्रह्माजीकी समाको चले । वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्माजीका दर्शन किया और उनके चरणोंमें अभिवादन करके विशेषरूपसे उनकी स्तुति की । फिर आकुलतापूर्वक अपना सारा ब्रृत्तान्त उन्हें कह सुनाया । तब ब्रह्मा उन सभी देवताओं तथा मुनियोंको ढाढ़स बैधाकर उन्हें साथ ले सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले वैकुण्ठलोकको चल पड़े । वहाँ पहुँचकर देवगणों-सहित ब्रह्माने रमापतिका दर्शन किया । उनके मस्तकपर किरीट सुशोभित था, कानोंमें कुण्डल श्लमला रहे थे और कण्ठ बनमालसे विभूषित था । वे चतुर्भुज देव अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे । श्रीविग्रहपर पीताम्बर शोभा दे रहा था और सनन्दनादि सिद्ध उनकी सेवामें नियुक्त थे । ऐसे सर्वव्यापी विष्णुकी झाँकी करके ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम किया और फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे ।

देवता बोले—सामर्थ्यशाली वैकुण्ठाधिपते ! आप देवोंके भी देव और लोकोंके स्वामी हैं । आप त्रिलोकीके गुरु हैं । श्रीहरे ! हम सब आपके शरणापन्न हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये । अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले ऐश्वर्यशाली त्रिलोकेश ! आप ही लोकोंके पालक हैं । गोविन्द ! लक्ष्मी आपमें ही निवास करती हैं और आप अपने भक्तोंके प्राणस्वरूप हैं, आपको हमारा नमस्कार है । इस प्रकार स्तुति करके सभी देवता श्रीहरिके आगे रो पड़े । उनकी वात सुनकर भगवन् विष्णुने ब्रह्मासे कहा ।

विष्णु बोले—ब्रह्म ! यह वैकुण्ठ योगियोंके लिये भी दुर्लभ है । तुम यहाँ किस लिये आये हो ? तुमपर कौन-सा ... आ पड़ा है ? वह यथार्थरूपसे मेरे सामने वर्णन करो ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! श्रीहरिका कल मुनकर ब्रह्माजीने विनाशभावसे सिर शुकाकर उन्हें बांधकर प्रणाम किया और अद्वालि बाँधकर परमात्मा विष्णुके अप्तव्यस्थित हो देवताओंके कथ्यों भरी हुई शङ्खचूड़ीयाँ उत्तर छढ़ गुनायी । तब ब्रह्मान्त श्राणियोंके भावोंके ज्ञाता भगवन् श्रीहरि उप वातानो मुनकर हुए पड़े और ब्रह्मासे उस रक्षापर उद्यान करते हुए चौंले ।

श्रीभगवान् ने कहा—कमलयोनि ! मैं शङ्खचूड़म सारा ब्रृत्तान्त जानता हूँ । पूर्वजन्ममें वह महातेजती गोप था जो गेरा भक्त था । मैं उसके ब्रृत्तान्तसे सम्बन्ध रखनेवाले इन पुरातन इतिहासमा वर्णन करता हूँ, मुनो । इसमें किंतु प्रद्वान का नंदेह नहीं करना चाहिये । भगवान् बंकर सब छल करेंगे । गोलोकमें मेरे ही रूप श्रीकृष्ण रहते हैं । उन्हें श्रीराधा नामसे चिल्यात है । वह जगत्रनी तथा प्रद्वान परमोक्त पौचर्यी मूर्ति है । वही वहाँ तुन्द्रलासे प्रिय करनेवाली है । उनके अद्वासे उद्भूत वहुत-से गोप ३ गोपियों भी वहाँ निवास करती हैं । वे नित्य गोप-कृष्ण अनुवर्तन करते हुए उत्तम-उत्तम क्रीड़ाओंमें तत्पर रहते हैं वही गोप इस समय शम्भुकी इस लीलासे मोहित होकर शप्त अपनेको तुःस देनेवाली दानवी योनिको प्राप्त हो गया है श्रीकृष्णने पहलेसे ही चद्दके विश्वलसे उसकी मृत्यु नियाँ कर दी है । इस प्रकार वह दानव-देहका परित्याग करके कुछ कृष्ण-पार्षद हो जायगा । देवेश ! ऐसा जानकर तुम्हें भय न करना चाहिये । चलो, हम दोनों शंकरका शरणमें चलें शीघ्र ही कल्याणका विधान करेंगे । अब हमें तुम्हें क समस्त देवोंको निर्भय हो जाना चाहिये ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर ब्रह्माजी विष्णु शिवलोकको चले । मार्गमें वे मन-ही-मन भक्तत्व सर्वेश्वर शम्भुका स्वरण करते जा रहे थे । व्यासजी ! इ प्रकार वे रमापति विष्णु ब्रह्माके साथ उसी समय उ शिवलोकमें जा पहुँचे, जो महान् दिव्य, निरधार तथा भौतिकतासे रहित है । वहाँ पहुँचकर उन्होंने शिवजीकी सम का दर्शन किया । वह ऊँची एवं उत्कृष्ट प्रभाववाली सम प्रकाशयुक्त शरीरोंवाले शिव-पार्षदोंसे घिरी होनेके कारण विश्वरूपसे शोभित हो रही थी । उन पार्षदोंका स्वरुपान्तिसे युक्त महेश्वरके रूपके सदृश था । उनके दस भूर्णों, पाँच सुख और तीन नेत्र थे । गलेमें नील चिह्न तथा शरीरका वर्ण अत्यन्त गौर था । वे सभी श्रेष्ठ लोगोंके

द्राशु और भस्म के आभरण से विभूषित थे। वह सतोहर सभा नवीन चन्द्रमाड़लके समान आकार साली और चौकोर थी। उत्तम-उत्तम मणियों तथा हीरोंके हारोंसे वह सजायी गयी थी। अमूल्य रत्नोंके बने हुए कमल-पत्रोंसे सुशोभित थी। उसमें मणियोंकी जालियोंसे उक्त गयात्र बने थे, जिससे वह चित्र-चिन्हित दील रही थी। धंकरकी इच्छासे उसमें पद्मराग मणि बड़ी हुई थी, जिससे वह अद्भुत-सी लग रही थी। वह स्थमन कर मणियोंके बनी हुई सेंकड़ी शीढ़ियोंसे युक्त थी। उसमें जारी और इन्द्रनील मणियोंके खंभे लगे थे, जिनपर स्वर्णसूत्र से प्रधान चन्द्रम के सुन्दर पहचान लगकर रहे थे, जिससे वह मनको मोह लेती थी। वह भलीभांति संस्कृत तथा सुगन्धित बायु से भूगर्भित थी। एक सद्यु वो जन विस्तार साली वह सभा बहुत-में फिरते था चालू च भरी थी। उसके मध्यभाग में अमूल्य रत्नोदय निर्मित एक चित्रित चिह्नित था, उसीपर उमापाहृत धंकर मिहरमान थे। उन्हें सुन्दर चिठ्ठुने देखा। वे तारधारोंसे पिरे हुए चन्द्रम के समान लग रहे थे। वे चिठ्ठ, कुण्डल और रत्नोंकी मलाओंसे विभूषित थे। उनके पार अप्रमाणी भस्म रसायी हुई थी और वे लौटा-कमल घाटण

किये हुए थे । महान् उल्लास से भरे हुए उमाकान्तका नम  
शान्त तथा प्रसन्न था । देवी पार्वतीने उन्हें सुवासित ताम्बूल  
प्रदान किया था, जिसे वे चवा रहे थे । शिवगण हाथ में शंख  
चौपर लेकर परमभक्तिके नाथ उनकी सेवा कर रहे थे और  
सिद्ध भक्तिवद्य तिर छुकाकर उनके लावनमें लगे थे । वे  
गुणातीत, परेशान, विदेशोंके जनक, सर्वव्यापी, विविकल्प,  
निराकर, स्वेच्छानुगार लाकार, कल्याणत्वज्ञ, मायारहित,  
अजन्मा, आद्य, मायाके अधीश्वर, प्रकृति और पुद्रसे भी  
परात्पर, सर्वतमर्थ, परिषुष्टिम और समतायुक्त हैं । ऐसे  
विशिष्ट गुणसे युक्त शिवको देखकर व्रहा और विष्णुने हाथ  
जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे लुति करने लगे ।  
विविध प्रकारसे लुति करके अन्तमें वे बोले—“भगवन् !  
आप दीनों और अनाथोंके सहायक, दीनोंके प्रतिगालक,  
दीनवन्धु, त्रिलोकीके अधीश्वर और दशगतवत्तलाल हैं ।  
मैंरोश ! हमारा उदार कीजिये ! परमेश्वर ! इमरर कुपा कीजिये ।  
नाथ ! हम आपके ही अधीन हैं ; अब आप ही कैरो इच्छा  
हो, कैना करें । ( अन्याय २१-३० )

( अल्पाय २१-३० )

सताओंका रुद्रके पास जाकर अपना दुःख निवेदन करना, रुद्रदारा उन्हें आयासन और चित्ररथके शहूचूड़के पास भेजना, चित्ररथके लौटनेपर रुद्रका मणों, पुत्रों और भद्रकालीसहित युद्धके लिये प्रस्थान, उधर शहूचूड़का सेनासहित पुष्पभद्रके तटपर पड़ाव डालना तथा दानवराजके दृत और शिवकी वातचीन

समन्युमारजी कहते हैं—मुने ! तद्दननर जो अनन्त  
किलोग्राम हो गये थे, उन वज्ञा और विष्णुस वज्ञ  
में सर लिए जी मुराराहे और लेपवर्जिस के बमान नहीं  
मिलने ले दें।

सियर्जने कहा—ऐ हे ! हे बाल ! उमडेग शहर  
उमड़ा उपर पूरे भवंतो सर्वांग लाग दो । मिथुदेह  
उमड़ा करकर होगा । मैं बहुबृद्धि वय बुलान कर्त्तव्य  
दिये जाना है । एव दूरजन्में इन दिन या, जि ऐसीवार्ता  
उमड़ा, उमड़ा भवति या । इन दिन याम चुरुक्षि या । अर्था-  
त यह यह दिन याम याम याम याम याम होता है । एव यस दूरजन्में ऐसे वर्षे  
होते हैं । एव दूरजन्म यामे उमड़ रहे हैं भवंते वर्षे वर्षे  
कर्त्तव्य दिनों को हो रहा है । एव युरोप यैराफ्टि यामे  
हो रहे हैं जैसे दूरजन्म याम याम याम याम याम

केवल भारतीय दृष्टिकोण समीकर जाओ। यह व्यवस्था में भी उपर्युक्त पूर्णता है। मैं ही देव-सार्वती चिकित्से के लिए बुधवार का व्यवस्था अनुसार करके वहाँ प्रवक्ष्य दुश्मान हूँ। भला यह व्यवस्था ऐसी गति परिवर्तनम् है। हरि ! इन्हीं विशेषज्ञों में भवती देव सभी-मृतों से दृष्टिकोण-पर्याप्तर मात्रा लियावृत्त करता है।

सर्वत्र केवल बहुमूल दिवालीने का नाम भृगु  
सुपि यो उपर भृगुमें रहा—विवाह। भृगु की दूरी के अनुसार  
है। उनका उपर वायन का प्रसाद दखल होता है। यद्यपि इनका वायन बहुमूल का वायन दर्शक इसकी उत्तरी दृश्य से बहु-  
कालिक और देखने के लिए उत्तरी दृश्य से बहुमूल का वायन दर्शक है। यद्यपि इनका वायन बहुमूल का वायन दर्शक है।

पर्याप्त रूप से विद्या—विद्या की उत्तमता के लिए जो विद्या।

सैनिकोंसहित शङ्खचूड़का वध कर डालेंगा । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजो ! महेश्वरके उस अमृतसाही वचनको सुनकर सम्पूर्ण देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ । उस समय उन्होंने समझ लिया कि अब दानव शङ्खचूड़ मरा हुआ ही है । तब महेश्वरके चरणोंमें प्रणियत करके विष्णु वैकुण्ठको और व्रहण सल्लोकको चले गये तथा सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने स्थानको प्रस्थित हुए । इधर उन महारुद्धने, जो परमेश्वर, दुष्टोंके लिये कालरूप और सत्पुरुषोंकी गति हैं, देवताओंकी इच्छासे अपने मनमें शङ्खचूड़के वधका निश्चय किया । तब उन्होंने प्रसवतापूर्वक अपने प्रेमी गन्धर्वराज चित्ररथको दूत बनाकर शीघ्र ही शङ्खचूड़के पास भेजा । चित्ररथने वहाँ जाकर शङ्खचूड़को खूब समझाकर कहा, परंतु उसने विना युद्ध किये देवताओंको राज्य लौटाना सीकार नहीं किया और कहा—मैंने ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया है कि महेश्वरके साथ युद्ध किये विना न तो मैं राज्य ही वापस लौटूँगा और न अधिकारोंको ही लौटाऊँगा । तू कल्याणकर्ता रुद्रके पास लौट जा और मेरी कही हुई वात यथार्थलूपसे उनसे कह दे । वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा करेंगे । तू व्यर्थ बकवाद मत कर ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! यों कहे जानेपर वह शिवदूत पुष्पदन्त ( चित्ररथ ) अपने स्वामी महेश्वरके पास लौट गया और उसने सारी वातें ठीक-ठीक कह दीं । तब उस दूतके वचनको सुनकर देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरको क्रोध आ गया । उन्होंने अपने वीरभद्र आदि गणोंसे कहा ।

रुद्र बोले—हे वीरभद्र ! हे नन्दिन ! क्षेत्रपाल ! आठों भैरव ! मैं आज शीघ्र ही शङ्खचूड़का वध करनेके निमित्त चलता हूँ, अतः मेरी आशासे मेरे सभी बलशाली गण आयुधोंसे लैस होकर तैयार हो जायें और अभी-अभी कुमारों ( स्वामि कार्तिक और गणेश ) के साथ रणयात्रा करें । भद्रकाली भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! ऐसी आशा देकर शिवजी अपनी सेनाके साथ चल पड़े । फिर तो सभी वीरगण हर्षमग्न होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे । इसी समय सम्पूर्ण सेनाओंके अध्यक्ष स्कन्द और गणेश भी इसीसे भरे हुए कवच भारण करके सशस्त्र शिवजीके निकट आ पहुँचे । फिर वीरभद्र,

नन्दी, महाकाल, सुभद्रा, विशालाद, वण, पितॄयज्ञ विष्णुपान, वित्ता, विशुलि, मणिमद, वाष्कल, कपिल, शीर्षकु विश्वर, ताप्रांचन, कालेश, कलोमद, कालजिङ्गि, दुर्योजु कलोन्मत्त, रणपत्ताय, दुर्जय तथा दुर्गम आदि गणजाक वे प्रधान-प्रधान रोगापति थे, शिवजीके साथ चले । ये गणोंने दंज्ञा फरोधों करोड़ थी । आठों भैरव एकत्र भयंकर कद, आठों बनु, इन्द्र, वारहों आदित्य, अमि चन्द्र विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुवेर, यम, निर्मलि, नष्ट वायु, वरण, तुथ, मङ्गल तथा अन्यान्य ग्रह, यह कामदेव, उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोट तथा कोटम आदि शीम ही महेश्वरका अनुगमन किया । त्वयं महेश्वरे भद्रकाली भी ती भुजा धारण करके शिवजीके साथ चले वे उत्तमोत्तम रक्षांशि वरो हुए विमानवर आलड़ थीं । अशरीर लाल चन्दनका अनुलेप लगा था और लड़कों दोभापा पा रहा था । वे हर्षमग्न होकर हँसती, नाचती और उत्तम त्वरसे गान करती हुई अपने भक्तोंको अपने गव शत्रुओंको भय प्रदान कर रही थीं । उनकी एक योजन वे भीषणाकार जिह्वा ल्पलपा रही थी । वे अपने हाथोंमें गङ्गा चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, वण, एक योजन विस्तारवाला गहरा गोलाकार खण्डर, गमनजुमी विश्व एक योजन लंबी शक्ति, मुद्रगर, मुसल, वज्र, बड़, जैव फलक, वैष्णवाक्ष, वारणाक्ष, वायव्याक्ष, नारायाक्ष, नारायणाक्ष, गन्धर्वाक्ष, व्रहाल, गारडाल, पर्जन्याक्ष, पशुदण्डाक्ष, जृम्भणाक्ष, पर्वताक्ष, महान् पराक्रमी सूर्याक्ष, चन्द्राक्ष, महानल, महेश्वराक्ष, यमदण्डाल, सम्मोहनाक्ष तथा अन्य दिव्य अस्त्र और अन्यान्य सैकड़ों दिव्याक्ष धारण किये थीं । करोड़ों योगिनियाँ तथा डाकिनियाँ उनके साथ फिर भूत, प्रेत, पिशाच, कूप्याण्ड, व्रहराशुप्त, वेताल, रुद्र यक्ष और किंवर आदिसे श्रिये हुए स्फन्दने पितोंके आकर उन चन्द्रशेखरको प्रणाम किया और उनकी अह पार्श्वभागमें स्थित होकर सहायकका स्थान ग्रहण किये तदनन्तर रुद्रलूपधारी शम्भु अपनी सभी सेनाको इसके करके शङ्खचूड़के साथ लोहा लेनेके लिये निर्भयतापूर्वक बड़े और देवताओंका उद्धार करनेके लिये चन्द्रमणा ॥१०॥ तटपर मनोहर बटवृक्षके नीचे खड़े हो गये ।

व्यासजी ! उधर जब शिवदूत चल गया, तब यह शङ्खचूड़ने महलके भीतर जाकर तुलसीसे वह सारी कह सुनावी ।

शङ्खचूडने कहा—‘देवि ! शम्भुके दूतके मुखसे  
( रणनिमन्त्रण मुनकर ) मैं युद्धके लिये उद्यत हुआ हूँ और  
उनसे ज़ज़ानेके लिये मैं निश्चय ही जाऊँगा । तुम इसके लिये  
मुझे आज्ञा दो ।’ यों कहकर उस ज्ञानेने अपनी प्रियाको नाना  
प्रश्नार्थ समझाया । फिर ब्राह्ममुद्भूतमें उठकर प्रातःकृत्य  
समाप्त किया और पहले नित्यकर्म पूरा करके बहुतसा दान  
दिया । ततश्चात् अपने पुत्रको समूर्ण दानवोंके राज्यपर  
अभिषिक्त करके उसे अपनी भास्या, राज्य और सारी सम्पत्ति  
गमित कर दी । पुनः जब उतकी प्रिया तुलसी रोती हुई  
उसकी रागयात्राका निमित्य कले लगी, तब राजा शङ्खचूडने  
नाना प्रकारकी कथाएं कहकर उसे ढाढ़क बैधाया । तदनन्तर  
उन भग्नादत दानवराजने कवच धारण करके युद्ध करनेके  
लिये उद्यत हो अपने बीर सेनापतिको बुलाकर उसे आदेश  
देते हुए कहा ।

शहूचूड वोला—सेनापते ! मेरे सभी बीर, जो  
मृगी कामोंमें कुदाल और समरमें शोभा पानेवाले हैं, आज  
मिय भारण करके युद्धके लिये प्रस्तान करें । शूर्यीर दानवों  
और देवोंकी छिपायी टुकड़ियाँ तथा वलशाली कङ्कोंकी निर्भाक  
आए अत्रय-यात्रते मुसाइत होकर नगरसे बाहर निकलें ।  
सोहों प्रकारसे पराक्रम यकट दरनेवाले जो अमुरंके पचास  
कुल हैं, वे भी देवोंकी पक्षपाती शम्भुसे युद्ध करनेके लिये  
मिलिए हों । मैरी आशासे भौंगोंके सौ कुल भी कवचसे  
मिलिए हो शम्भुके गम लोह लेनेके लिये दीम ही निकलें ।  
मार्दों, मीरों, दीर्घों तथा कालशोंको भी मेरी गह आशा  
कुल दो किमे गढ़के गम नंव्राम वरनेके लिये रण-सामर्ग्रीसे  
मुखिया हो जालें ।

उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला था । पुण्यक्षेत्र भारतमें वह कपिलका तपःस्वान कहलता था । वह भूभाग पश्चिम समुद्रते पूर्व, मलयपर्वतसे पश्चिम, श्रीरामसे उत्तर और गंगमादनसे दक्षिण था । उसकी चौड़ाई पाँच योजन और लंबाई पाँच सौ योजन थी । भारतके उत्तर भागमें उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली तथा शुद्ध स्फटिकके समान खन्द जलसे परिपूर्ण पुण्यभद्रा और सरस्वती नामकी हो रमणीय नदियाँ बहती हैं । सदा सौभाग्यसे संयुक्त रहनेवाली लवणसामग्री प्रिया भार्या पुण्यभद्रा सरस्वतीके साथ हिमालयसे निकली है और गोमन्तपर्वतको बायें करके पश्चिम समुद्रमें जा मिली है । वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नी द्वारा शिवजीकी सेनाको देखा ।

मुने ! उनने पहले शिवजीके पास एक दानबेशरसों  
दूतके रूपमें भेजा । उनने शिवजीसे युद्ध न करनेके लिये  
कहा और शिवजीने उसे देवताओंका राज्य लौटा देनेकी बात  
कही । अन्तमें महेश्वरने कहा—“दूत ! हम किसीका भी पश्च  
नहीं लेते; क्योंकि हम तो कभी स्वतन्त्र रहते ही नहीं, सदा  
भक्तोंके अधीन रहते हैं और उनकी इच्छासे उन्होंका कार्य  
करते रहते हैं । देखो, पूर्णकालमें व्रजामी प्रार्थनासे परदेश-पहल  
प्रलय-तनुद्रमें श्रीहरि और देवताओंमधु-देवभूत भी युद्ध हुआ  
था । पुनः भक्तोंके हितकारी उन्हीं श्रीपिण्डियुने देवताओंके  
प्रार्थना करनेपर प्रहारके तारण द्विषयतायितुमा कथ दिया  
था । तुमने यह भी कुना होगा कि पहले जो जीव जियुरोंके  
काय युद्ध करके उन्हें भला कर आया था, वह भी देवताओं  
प्रार्थनापर ही हुआ था । पूर्णकालमें उर्मिये वरमनमीमा वो  
युम्भ आदिके काय युद्ध हुआ था और जिसमें उन्होंने उन  
देवताओंका कथ कर आया था, वह भी देवताओंके प्रार्थना  
करनेपर ही पठित हुआ था । वे ही जीव देवता अता भी  
प्रश्नाकि यसकामना हुए थे । तब उन देवताओं द्वारा प्रार्थनाके  
नाम सेरीं वरदानमें असैं थे । हाँ ! यह प्रत्यक्ष हमारा, जिस  
और देवताओंकी प्रार्थनाके वर्णीय हो देती अपेक्षा हमें  
रखता है जीव कुदूर द्वारा असैं है । युम भी जीव महाभा  
ष्माकालमें जो वरदान होता है । असैं जीव ही देवता भी है,  
उसमें जो देवता भी हुआ है वह असैं । जीवित  
समझा । देवता ही जीवित है तब उन्होंने काय युद्ध करनेमें  
भूमि लिननी रक्षा करनी चाही । जीवित हुआ जीव करनक  
में हितहर है और देवता जीव है तब जीव है । जीव  
यह जीव और यह युद्धमें भूमि हड्ड नहीं है । जीव

उचित समझेगा, वैसा करेगा। मुरे तो देवताओंका जारी करना ही है।<sup>१</sup> यां कहर कल्याणकर्ता महेश्वर जुरा हो गये।

तब शशुचूड़ना वह दूत उठा और उसके पास चल दिया।  
(अथवा ३१—३२)

देवताओं और दानवोंका युद्ध, शशुचूड़के साथ वीरभद्रका संग्राम, पुनः उसके साथ भद्रकालीका भयंकर युद्ध करना और आकाशवाणी सुनकर निवृत्त होना, शिवजीका शशुचूड़के साथ युद्ध और आकाशवाणी सुनकर युद्धसे निवृत्त हो विष्णुको ग्रेरित करना, विष्णुद्वारा शशुचूड़के कवच और तुलसीके शीलका अपहरण, किर रुद्रके हाथों विश्वलद्वारा शशुचूड़का वध, शशुकी उत्पत्तिका कथन

सनकुमारजी कहते हैं—महरें ! जब उस दूने शशुचूड़के पास जाकर विस्तारपूर्वक शिवजीका वचन कह सुनाया तथा तत्वतः उनके यथार्थ निश्चयको भी प्रकट दिया, तब उसे सुनकर प्रतापी दानवराज शशुचूड़ने भी परम प्रसन्नतापूर्वक युद्धको ही अङ्गीकार किया। किर तो वह तुरंत ही मन्त्रियोंसहित रथपर जा वैठा और उसने अपनी सेनाको शंकरके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश दिया। इधर असिलेश्वर शिवजीने भी तल्काल ही अपनी सेनाको तथा देवोंको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी और स्वयं भी लीलावश युद्धके लिये संनद्ध हो गये। किर तो शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो गया। उस समय वे दोनों सेनाएँ धर्मपूर्वक जूझने लगीं। स्वयं महेन्द्र वृपपर्वके साथ लड़ने लगे और विप्रचित्तिके साथ सूर्यका धर्मयुद्ध होने लगा। विष्णु दध्मके साथ भीषण संग्राम करने लगे। कालासुरसे काल, गोकर्णसे अग्नि, कालकेयसे कुवेर, मध्यसे विश्वकर्मा, भयंकरसे मृत्यु, संहारसे यम, कालम्बिकसे वरुण, चञ्चलसे वायु, घटपृष्ठसे वृध, रक्ताक्षसे शनैश्चर, रक्षासे जयन्त, वर्चागणोंसे वसुगण, दोनों दीतिमानोंसे दोनों अश्विनीकुमार, धूप्रसे नलकूवर, धुरंधरसे धर्म, गणकाक्षसे मङ्गल, शोभाकरसे वैश्वानर, पिपिट्से मन्मथ, गोक्कामुख, चूर्ण, खड़, धूम्र, संहल, प्रतापी विश्व और पलाश नामक असुरोंसे बारहों आदित्य धर्मपूर्वक लोहा लेने लगे। इस प्रकार शिवकी सहायताके लिये आये हुए अमरोंका असुरोंके साथ युद्ध होने लगा। ग्यारहों महारुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न ग्यारह भयंकर असुर-वीरोंसे भिड़ गये। उग्र और चण्ड आदिके साथ महामणि, राहुके साथ चन्द्रमा और शुक्राचार्यके

साथ वृद्धता धर्मयुद्ध करने लगे। इस प्रकार उस महाद्वं नन्दीकर आदि सभी शिवगण श्रेष्ठ दानवोंके वाप संख्य करने लगे। विस्तारभयते उनका प्रभक् वर्णन नहीं किया गया है। मुने ! उस समय तारी सेनाएँ निरन्तर युद्धमें द्वं धीं और शम्भु काल्यसुतके साथ वटवृक्षके नीचे निराकरण हो। उधर शशुचूड़ भी रक्षाभरणोंसे विमूर्ति हो जाने वाले दानवोंके साथ समर्णाय रक्षित्यात्मनपर वैठा हुआ था। तो देवताओं तथा असुरोंमें चिरकालतक अत्यन्त भयकर युद्ध होता रहा। तदनन्तर शशुचूड़ भी आकर उस भीषण छेन में जुट गया। इसी वीच महावली वीर वीरभद्र उसरूपी बलशाली शशुचूड़से जा भिड़े। उस युद्धमें दानवराज जिजिन अखोंकी वर्षा करता था, उन-उनको वीरभद्र लेहर्ही खेलमें अपने वाणोंसे काट डालते थे।

व्यासजी ! इसी समय देवी भद्रकालीने समरभूमिमें बड़ा भयंकर सिंहास किया। उनके उस शब्दने के सभी दानव मूर्च्छित हो गये। उस समय देवीने वह अद्विष्ट किया और मधुपान करके वे रणके मुहोंपर करने लगीं। उनके साथ ही उग्रदृष्टा, उग्रदण्डा और केने भी मधुपान किया तथा अन्यान्य देवियोंने भी त्वं पीकर युद्धस्थलमें नाचना आरम्भ किया। उस समय विष्णु तथा देवोंके दलोंमें महान् कोलाहल मच गया। सारा समुदाय वहुत प्रकारसे गर्जना करता हुआ हर्षमन होकर तदनन्तर कालीने शशुचूड़के ऊपर प्रलयकालीन अंदर शिखाके समान उद्दीप्त आग्नेयाखं चलाया, परंतु दानव वैष्णवाख्यसे उसे शीघ्र ही शान्त कर दिया। तब वह भद्रकालीने उसपर नारायणाख्यका प्रयोग किया। वह दानव-शत्रुको देखकर बढ़ने लगा। तब प्रलयकालीन द्वं समान उद्दीप्त होते हुए नारायणाख्यको देखकर वह

उसकी भौति भूमिपर लौट गया और वारंवार प्रणाम करने लगा। तब उन दानवों नम्ब हुआ देखकर वह अब निवृत्त हो गया। ततश्चात् देवीने उसपर मन्त्राघूर्धक व्रशाल्य ठोड़ा। उन अस्त्रोंको प्रज्वलित होता हुआ देखकर दानवराजने भूमि-पर बढ़ देकर उने प्रणाम किया और व्रशाल्यसे ही उसका नियामन कर दिया। तदमन्तर वह दानवराज कुपित हो उठा और वैग्यूर्धक अपने धनुषको खाँचकर देवीके ऊपर मन्त्र-ए फरंत हुए। दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। भद्रकाली भरभूमिने अपने विस्तृत मुखको फैलाकर उन अस्त्रोंको भल गयी और अशृण्यपूर्वक गर्वना करने लगी, जिससे उनमें भवशीत हो गये। तब शङ्खचूड़ने कालीके ऊपर एक बड़ी दानव लंबी वक्तिले वार किया; परंतु देवीने अपने देवास्थानमूर्त्ये उसके नीचे झुकड़े फर दिये। वो उन दोनोंमें वरयाप्तक युद्ध होता रहा और सभी देवता तथा दानव द्वारा उसके ऊपर उसे देखते रहे। अन्तमें देवीने महान् कौपविश-उपर वैग्यूर्धक मुण्डि-प्रहर किया। उसकी चोट्से वह निराज चाहर काटने लगा और उसी क्षण मूर्छित हो गया। तत्र धणगरमें ही उसकी चेतना लौट आयी और नह उसका हुआ एसु उन प्रतापीने गतद्वाद्विं हेनेके कारण ऐसे क्षण चाहुनुहोर नहीं हिला। तब देवीने उन दानवोंपर बहार उसे वारंवार युगाया और वेंडे कोपसे वैग्यूर्धक दस्तों उठाकर दिया। प्रतापी शङ्खचूड़ यैगमें ऊसको लगा और गुणीपर गिरकर खुनः उठ खड़ा हुआ। उस दानवद्वयों पर लक्षित भी आनन्द नहीं हुआ था। वहिक इसके बल फैला था। तत्प्रधान् वह भद्रकालीसे प्रणाम एवं शुभमूर्त्य रजोधूम निर्मित भरने परम मनोहर दिमाग्मर बनवाए। इधर चालिया भूम्यसे शिख लंकर दानवोंसे रक्षा नह लक्षित होय। इनी भ्रस्तराम वर्णीयों आत्मादल्ली हुई—इष्ट। इनी रस्तूगिमें निरामर उत्तमसूर्ये ऐह वैग्यूर्धक दृष्टियों द्वारा देखे जाए वहे उत्तम हैं। वह तुम उर्दृष्ट वैग्यूर्धक दृष्टि वहो जी। वस्तु देख। चंद्रमामें आत्मादल्ली वैग्यूर्धक दृष्टियों द्वारा देखे जाए तो तुम वैग्यूर्धक दृष्टि देखो। वह तुम्हारे दृष्टियों द्वारा देखे जाए तो तुम वैग्यूर्धक दृष्टि देखो। तुम्हारे दृष्टियों द्वारा देखे जाए तो तुम वैग्यूर्धक दृष्टि देखो।

कालीका वह कथन सुनकर मंदिरने उन नवय क्या कहा  
और कौन-सा कार्य किया ? उसे आप धर्म करनेकी कृपा  
करें; क्योंकि मेरे मनमें उसे सुननेकी प्रवल उत्तरण्ठा जाग  
उटी है।

उस कार्यके लिये प्रेरित किया । फिर तो शिवजीकी इच्छामि विष्णु वहाँसे चल पड़े । वे तो मायाविंगमें भी थ्रेषु मायार्ची ठहरे । अतः उन्होंने एक दृढ़ व्राजणामा वेष धारण हिया और शङ्खचूड़के निकट जाकर उन्होंने यों कहा ।

दृढ़ व्राजण बोले—‘दानवेन्द्र ! इस समय मैं यानक होकर तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मुझे गिरा दो । दीन-वत्सल ! अभी मैं अपने मनोरथको प्रकट नहीं कहूँगा । ( जब तुम देना स्वीकार कर लोगे, तब ) ‘गीर्घे मैं उसे वताऊँगा और तब तुम उसे पूर्ण करना ।’ व्राजणामी चात सुनकर राजेन्द्र शङ्खचूड़का मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे । जब उसने ‘ओम्’ कहकर उसे स्वीकार कर लिया, तब व्राजणने छलपूर्वक कहा—‘मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ ।’ वह सुनकर ऐश्वर्यशाली दानवराज शङ्खचूड़ने, जो व्राजणमन्त और सत्यवादी था, वह दिल्ल कवच जो उसे प्राप्तके समान था,



व्राजणको दे दिया । इस प्रकार श्रीहरिने मायाद्वारा उससे वह कवच ले लिया और फिर शङ्खचूड़का रूप धारण करके वे तुलसीके पास पहुँचे । वहाँ जाकर सबके आत्मा एवं तुलसीके नित्य स्वामी श्रीहरिने शङ्खचूडरूपसे उसके शीलका कर लिया ।

इनी वस्त्र विष्णुमन्तने शाम्भुसे अपनी सही रुप ही मुगारी । तब शिवजीने शङ्खचूड़के वधके मिष्ठि अथ उदीप विशुल द्वारा मैं लिया । परमात्मा शंकरका वह त्रिलोक नामक विशुल आपनी उत्तम प्रभा विवेर रहा था । ज्ञे नारी दिशाएँ, युवती और आनन्द प्रकाशित हो उठे । वह मध्याह्नासीन फरोदों दूर्यों तथा प्रलयमिहीं शिवके रूप नमाशीय था । उग्रता निवारण करना अत्यन्त था । दुर्गम, कभी व्यर्थ न होनेवाला और शबुद्धोंका संहार । नह नेंद्रोंका अलान्त उप्र यमूद, नमूर्ण शशांकोंका वह भक्तहर, और गारे देवताओं तथा अनुरोदके लिये दुल्ह । नह एक ही द्यानपर ऐता दमक रहा था, मात्रे ले आश्रय किए हर समूर्ण व्रहाण्डका नंहार करनेके लिये उत्तम । उनकी लंघाई एक हजार धनुष और चौड़ाई सौ हृष्ट । उन जीव-व्रातस्वलय शूलका किसीके द्वारा निर्माण नहीं । था । उसका रूप नित्य था । आकाशमें चक्र चक्र । वह विशुल शिवजीकी आशासे शङ्खचूड़के ऊपर गिर और उसी धूण उने राखकी देरी बना दिया । विग्र ! महेत वह शूल मनके समान बेग़शाली था । वह शीघ्र ही अ कार्य पूर्ण करके शंकरके पास आ पहुँचा और छिअ मार्गते चला गया । उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बड़ने ले गन्धर्व और किंशर गान करने लगे । देवों तथा जूँ स्तुति करना आरम्भ किया और अस्तराएँ नृस करने ले शिवजीके ऊपर लगातार पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और वह विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण उनकी प्रशंसा लगे । दानवराज शङ्खचूड भी शिवजीकी कृपासे अह ही गया और उसे उसके पूर्व ( श्रीकृष्ण-पार्षद ) लम्ही प्रवृग्या गयी । शङ्खचूडकी हङ्कियोंसे शङ्ख-जातिका प्रादुर्भाव हुआ । शङ्खका जल शंकरके अतिरिक्त समस्त देवताओंके लिये ल माना जाता है । महामुने ! श्रीहरि और लक्ष्मीको त्या ल सम्बन्धियोंको भी शङ्खका जल विदोषरूपसे अस्तर किंतु शिवके लिये नहीं । इस प्रकार शङ्खचूडोंके ल शंकर उमा, स्कन्द और गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक नदी पर सवार हो शिवलोकको चले गये । भगवान् विष्णुने वैदुष लिये प्रस्थान किया और देवगण परमानन्दमन ही अपने लोकको चले गये । उस समय जगत्में ज्ञाते ही परम शान्ति छा गयी । सबको निर्विघ्नल्पसे मुक्त हो लगा । आकाश निर्मल हो गया और सारी पृथ्वीर छ

इतम् भद्रलकार्यं हेने द्ये । मुने ! इस प्रकार जैने तुमसे सर्वदुःखहारी, दक्षीप्रद और नग्नूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने-भैंधांक त्रिपि चारथका वर्णन किया है, वह आनन्ददायक,

सर्वदुःखहारी, दक्षीप्रद और नग्नूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने-याला है। (अध्याय ३६—३०)

### विष्णुद्वारा तुलसीके शीलहरणका वर्णन, कुपित हुई तुलसीद्वारा विष्णुको शाप, शम्भुद्वारा तुलसी और शालग्राम-शिलाके माहात्म्यका वर्णन

फिर व्यासजीके पूछनेपर सनकुमारजीने कहा—महों ! शम्भुमिमें आकाश-वाणीको सुनकर अब ऐसेवर शम्भुने श्रीहरिको प्रेरित किया, तब वे दूर ही अपनी गायसे ग्राहणका द्वा धारण करके गद्यनृष्टके पास जा पहुँचे और उन्होंने उससे परमोक्तपृष्ठ कार्य गाँग लिया। किं शशुचूड़का रूप बनाकर वे तुलसीके परस्मी ओर चढ़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुलसीके महलके द्वारके निश्चट नगरा बजाया और जन-जनकारसे सुन्दरी शुभ्रीसे आने आगमगमी सूचना दी। उसे सुनकर सती-पापी तुलसीने वहें आदरके साथ शरोखेके यस्ते राजगार्भी और जौता और अपने पतिको आया हुआ जानकर वह अरथानन्दमें गिरा गयी। उसने तत्काल ही ग्राहणोंको पन दान भरके उससे मद्रलाचार कराया और किं अपना धन्दार किया। इपर देवताओंवा कार्य गिर्द करनेके लिये भवामें वद्यचूड़म ल्प्य धारय करेगावाले भगवान् विष्णु वहें उत्तर देवी तुलसीके भवगमें गये। तुलसीने पतिलप्यमें जौये हुए भगवन्ना पूजन किया, वहुत जी याते थीं, ग्रीष्मकाले ज्वर नाप सक्ष किया। तब उन खप्तीने शुप, शम्भर्य और आपरिमें व्यतिक्रम देवतार मन्त्रर विष्णर लिये हैं (उत्तर उत्तर होगर) वह नहीं किन है ? वे

चौंकि तुम पापाश-सदका कठोर, द्यारहित और तुष हो, इन्हिये अब तुम मेरे शारसे पापाश-स्वल्प ही हो जाओगे।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! यो कहर शशुचूड़की वह यती-साज्वी पल्ली तुलसी पूठ-कूड़कर रोने लगी और शोकार्त होकर वहुत तरद्दुसे बिलाप करने लगी। इन्होंने वहाँ भक्तवत्तल भगवान् शंकर प्रकट हो गये और उन्होंने समझाकर कहा—देवि ! अब तुम तुलसी दूर करनेवाली गरी शात लुनो और श्रीहरि भी त्वय भवते उन धारण कर्तु क्योंकि तुम दोनोंके लिये जो कुरकारक होगा, वही मैं कहूँगा। भद्रे ! तुमने ( त्रिपि गोपरेखी केर ) तार किया था, वह उसी तपस्यासा फल है। भवा, वह अस्याया हैं हो सकता है ? इन्हिये तुम्हें उनके अमुख ती कह प्राप्त हुआ है। अब तुम इस शर्मीलो लागतर दिव देह धारण कर लो और दक्षीके समन छोड़तर निल श्रीहरिके साथ ( वैकुण्ठमें ) विहर करती रहो। कुरुप वृद्धरिति किए तुम छोड़ दोती, नदीदेव ल्पने परियस्ति ही जापय। नदीनदी भारतवर्षमें पुष्परत्ना गण्डविनि जामने प्रभिन्न रहती। गण्डविनि ! कुरु वृद्धरिति लाना, वृद्ध वर्तक वृद्धरिति लाना, जामनीमें तुलसीना प्रभग लाने ही जापय। कुरुमी ! एक हमर्दिते हैं, सुलुप्तिमें वज्ज जामनमें यद्य जीवित हिन्द

वहुत प्रकारके पुण्योंकी गृहिणी करनेवाला होगा । भाव ! जो शालग्राम-शिलाके ऊपरसे तुलशीचो दूर करेगा, उसे जन्मान्तरमें स्त्रीनियोगकी प्राप्ति होगी तथा जो यहुतो दूर करके तुलसी-पत्रको हटायेगा, वह भी भाव्यादिन होगा और यात जन्मोंतक रोगी बना रहेगा । जो महाशानी पुढ़ शालग्राम-शिला, तुलसी और शङ्खको एकत्र रखकर उनमें रक्षा करता है, वह श्रीहरिका प्यारा होता है ।<sup>1</sup>

**सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी!** इस प्रकार कहकर शंकरजीने उस समय शालग्राम-शिला और तुलसीके परम पुण्यदायक माहात्म्यका वर्णन किया । तत्पश्चात् वे श्रीहरिको तथा तुलसीको आनन्दित करके अन्तर्धान हो गये । इस प्रकार सदा सत्पुरुषोंका कल्याण करनेवाले शम्भु अपने स्थानको छले गये । इधर शम्भुका कथन सुनकर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने अपने उस शरीरका परित्याग करके

दिल स्था भारण कर लिया । तब कमलपति विष्णु उसे लेकर धृकृष्णको चले गये । उसके द्वाइ द्वृए तृष्णे गण्डकी नदी प्रकट हो गयी और भगवान् अच्युत भी उसे तथार मनुष्योंको पुण्यप्रदान करनेवाली विलाके लिये दौल हो गये । मुने ! उनमें द्वाइ अनेक प्रकारके द्वितीय रहते हैं । उनमें जो विलालैं गण्डकीके जलमें गिरते हैं वे परम पुण्यप्रद होती हैं और जो स्वल्पर ही है जारी है उन्हें विलाला कहा जाता है और वे प्राणिवंके लिये संतुष्ट होती हैं । व्यासजी ! इस प्रकार तुम्हारे प्रसन्नके लिया मृग्नि भीने शम्भुका नारा चरित, जो पुण्यप्रदान तथा मुक्तें तारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, उस्हें तुम दिल । वह पुण्य आल्यान, जो विष्णुके माहात्म्यसे संयुक्त भोग और मोक्षका प्रदाता है, तुमसे वर्णन कर दिल । और क्या तुमना चाहते हो ? (अध्याय ५)

**उमाद्वारा शम्भुके नेत्र मूँद लिये जानेपर अन्धकारमें शम्भुके पर्सीनिसे अन्धकासुरकी उत्पत्ति, हिरण्य की पुत्रार्थ तपस्या और शिवका उसे पुत्ररूपमें अन्धकको देना, हिरण्यासुका त्रिलोकीको जीतकर पृथ्वीको रसातलमें ले जाना और वराहरूपधारी विष्णुद्वारा उसका वध**

**सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी !** अब जिस प्रकार अन्धकासुरने परमात्मा शम्भुके गणाधक्ष-पदको प्राप्त किया था, महेश्वरके उस मङ्गलमय चरितको श्रवण करो । मुनीश्वर ! अन्धकासुरने पहले शिवजीके साथ बड़ा घोर संग्राम किया था, परंतु पीछे बारंबार सत्यिक भावके उद्वेषकसे उसने शम्भुको प्रसन्न कर लिया; क्योंकि नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले शम्भु शरणागतरक्षक तथा परम भक्तवत्सल हैं । उनका माहात्म्य परम अद्भुत है ।

**व्यासजीने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुनिवर !** वह अन्धक कौन था और भूतल्यपर किस वीर्यवान्के कुलमें उत्पन्न हुआ था ? देवतोंमें प्रधान तथा महामनस्वी उस बलवान् अन्धकका स्वरूप कैसा था और वह किसका पुत्र था ? उसने परम तेजसी शम्भुकी गणाधक्षताको कैसे प्राप्त किया ? यदि अन्धक गणेश्वर हो गया तब तो वह परम धन्यवादका पात्र है ।

**सनकुमारजीने कहा—मुने !** पूर्वकालकी बात है, एक समय भक्तोंपर कृपा करनेवाले तथा देवताओंके चक्रवर्ती भगवान् शंकरको विहार करनेकी इच्छा हुई । तब वे और गणोंको साथ ले अपने निवासभूत कैलास-

पर्वतसे चलकर काशीपुरीमें आये । वहाँ उन्होंने उर्जुज अपनी राजधानी बनाया और भैरव नामक धोरको उसका द्वे नियुक्त किया । फिर पार्वतीजीके साय रहते हुए वे भक्तजन्म सुख देनेवाली अनेक प्रकारकी लीलाएँ करने लगे । समय वे उसके वरदानके प्रभाववश अनेकों वीर गणेश्वरों और शिवके साथ मन्दराचलपर गये और भी तरह-तरहकी नीड़ाएँ करने लगे । एक दिन जब ! पराक्रमी कपदों शिव मन्दराचलकी पूर्व दिशामें वैठे वे समय गिरिजाने नर्मकीडावश उनके नेत्र वंद कर इस प्रकार जब पार्वतीने मँगो, मुर्वण और कमलकी अपने करकमलोंसे हरके नेत्र वंद कर दिये, तब उनके मूँद जानेके कारण वहाँ क्षणभरमें ही धोर कैल गया । पार्वतीके हाथोंका महेश्वरके शरीरसे स्थित शम्भुके ललाटमें स्थित अग्निसे संतप्त होकर प्रकट हो गया और जलकी बहुत-सी बूँदें ट

तदनन्तर उन बूँदोंने एक गर्भका हृप धारण उससे एक ऐसा जीव प्रकट हुआ, जिसका मु था । वह अत्यन्त भयंकर, कोर्धी, कृतम, जटाधारी, काले रंगका, मनुष्यसे भिन्न, वेडौल

प्राणीशल्य था । उसके कण्ठसे बोर घर-घर दृश्य निकल रहा था । वह कभी गता, कभी हँसता और कभी रोने लगता था था । त्रिवृंशीके चाटते हुए नाच रहा था । उस अद्भुत दृश्यवाले अपने प्रकट होनेपर शिवजी सुमुकराकर पार्वतीजीसे बोले ।

श्रीमहेश्वरने कहा—प्रिये ! मेरे नेत्रोंको मूँदकर गुण ही तो यह कर्म किया है, फिर तुम उससे यह क्यों बर रही हो ?! शंकरजीके उस वचनको सुनकर गौरी हँस पड़ी और उनके नेत्रोंपरसे उन्होंने अपने हाथ हटा लिये । फिर तो गौरी प्रसाद आ गया, परंतु उस प्राणीका रूप भयंकर ही रहा रहा और अन्धकारसे उत्पन्न होनेके कारण उसके नेत्र भी अर्धे थे । तब वैसे प्राणीको प्रकट हुआ देखकर गौरीने परेशारने पूछा ।

गौरीने कहा—मात्रम् ! मुझे सच-सच बताइये कि एसेमोंके समाने प्रस्तु हुआ वह वेडोल प्राणी कौन है । यह तो अत्यन्त भयंकर है । किस निगित्तको लेकर किसने इसी दृष्टि की है और यह किसका पुत्र है ?

सत्यकुमारजी कहते हैं—मूर्ख ! जब लीला रचने-गती तथा लीनी लेकरकी जननी गौरीने सुषिकर्ताकी उस की दृष्टिके नियममें यों प्रश्न किया, तब लीला-विहारी नगरानं और आसी प्रियाके उम वचनको सुनकर हुठे मूर्खोंने और इस प्रश्नार बोले ।

तंतनाथे तपश्चर्याके लिये प्रेरित किया था । वहाँ वह कश्यपमन्दन हिरण्याद वनका आश्रय ले पुत्र-प्राप्तिके लिये धोर तर करने लगा । उसके मनमें मैदैवरके दक्षीनकी इच्छा थी, अतः वह क्रोध आर्द दोषोंका अमाने कानूमें करके ठूँड़ी भौंति लिद्दचल होकर समाप्तिल हो गया । द्वितीन्द्र ! तथ शिमसी धज्जामें ब्रूपका चिह्न बर्तमान है तथा जो शिनाक धारण करनेवाले हैं, वे मैदैव उन्होंने तपस्यासे पूर्णतया प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान करनेके लिये चढ़े और उम लगानपर पहुँचकर दैत्यप्रवर हिरण्यादने दीये ।

महेशने कहा—देवतनाथ ! अब तू अपनी इन्द्रियोंका विनाश मत कर । किसलिये तूने इस वनात आश्रय लिया है ? तू अपना मनोरथ तो प्रकट कर । मैं वरदाता शंकर हूँ। अतः तेरी जो अभिलापा होगा, वह तब मैं तुम प्रदान कहूँगा ।

सत्यकुमारजी कहते हैं—मूर्ख ! मौर्खके दृश्य सरस वचनको सुनकर दत्यराज हिरण्याद परम प्रसन्न हुआ । उसने गिरीशके चरणोंमें नमस्कार करके अपेक्ष प्रसारी उन्हीं लुटी थीं; फिर वह अद्भुत दृष्टि लिये तिर दुर्वाला छूटे लगा ।

हिरण्यदाने कहा—नमस्कार ! मेरे उपम अग्रनन्द ममकल तथा देवताओंके असुखपर कोई पुत्र नहीं है, इसलिये



जोसे पुत्र प्राप्त करके वह महामनस्वी दैत्य परम प्रसन्न हुआ। उसने अनेकों स्तोत्रोद्धारा रुद्रकी पूजा करके प्रदक्षिणा की और फिर वह अपने राज्यको चला गया। गिरीशसे पुत्र प्राप्त कर लेनेके बाद वह प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर

इग पुरीमें आने देश सतालमें उठा ले गया। तब देखकर मुनियों और विद्वानें अमर्ता पराक्रमी विष्णुकी आगमन देखे। फिर तो भगवान् विष्णु सनात्मक व्यवमय विकराल वाहृकर्णा वाराणीसर थ्रुमनके अनेकों प्रदारिंगे पृथ्वीको विश्वा छोड़ गाताल-देवतामें जा दुये। वहाँ उन्होंने कभी न दूरनेवाले अलं अगमी दाढ़ीसे तथा थ्रुमनसे सेन्हड़ी दैत्योंका कच्चमर निकल कर आने वाल-वाल एवं कठोर पाद-प्रहारोंसे निशाचरोंकी छेत्रो मध्य आल। तत्त्वात् अद्वृत एवं प्रचण्ड तेजोंकी विष्णु अर्होंमें गृह्णाके गमन प्रकाशमान मुदर्दीन-नक्से हिष्पालके प्रज्ञालित गिरको काट लिया और दुष्ट दैत्योंको विकर मल न दिया। वह देवतान् देवराज इन्द्रको बड़ी प्रसन्नत हुए। उन्होंने उन असुर-राज्यकर अन्धकरों अभियन्त कर दिया। फिर महात्मा इद्य विष्णुको अपनी दाढ़ीद्वारा पातलक्ष्में पृथ्वीको लाते हुए देखकर परम प्रसन्न हुए और अने दाम पर आकर पूर्णत र्ख्या और भूतलकी रक्षा करने ले। इवाहृल्प धारण करके उत्तम कार्य करनेवाले उग्रत्यधारी भीरु प्रसन्नचित्त हुए समस्त देवों, मुनियों और पद्मयोनि व्रजाल प्रशंसित होकर अपने लोकों चले गये। इस प्रकार वाहृकर्ण धारी विष्णुद्वारा असुरराज हिष्पालके मारे जानेपर समस्त देव मुनि तथा अन्यान्य सभी जीव सुखी हो गये। (अथाव ४२)

### हिरण्यकशिष्ठुकी तपस्या और ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! इधर वराहरूप-धारी श्रीहरिके द्वारा इस प्रकार माईके मारे जानेपर हिरण्यकशिष्ठु शोक और क्रोधसे संतप्त हो उठा। श्रीहरिके साथ वैर करना तो उसे रुचता ही था, अतः उसने संहारप्रेमी वैर असुरोंको प्रजाका विनाश करनेके लिये आज्ञा दे दी। तब वे संहारप्रिय असुर स्वामीकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर देवताओं और प्रजाओंका विनाश करने लगे। इस प्रकार जब उन दुष्ट-चित्तवाले असुरोद्धारा सारा देवलोक तहस-नहस कर दिया गया, तब देवता स्वर्गको छोड़कर गुप्तरूपसे भूतल्पर विचरने लगे। उधर भाईकी मृत्युसे दुखी हुए हिरण्यकशिष्ठुने भाईको जलाञ्छलि देकर उसकी स्त्री आदिको ढाहस बैधाया। तत्त्वात् उस दैत्यराजने अपने लिये विचार किया कि ‘मैं अजेय, अजर और अमर हो जाऊँ। मेरा ही एकच्छब्द साम्राज्य रहे और प्रतिद्वन्द्वी कोई न रह जाय।’ यों धारणा बनाकर वह

मन्दराचलपर गया और वहाँ एक गुफामें अस्वन्त घो तत्त्व करने लगा। उस समय वह दैरके अङ्गठेके बल लक्षण। उसकी भुजाएँ ऊपरको उठी थीं और हाथ आकाशनी और लगी थीं। उसकी तपस्यासे संतप्त होकर देवताओंका मुख विद्ध हो उठा। वे स्वर्गको छोड़कर ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और उन्हें ब्रह्मासे अपना दुखद्वा कह सुनाया। व्यासजी ! उन देवताओं इस प्रकार कहनेपर स्वयम् ब्रह्म भृगु, दक्ष आदिके साथ न दैत्येश्वरके आश्रमपर गये। तब जिसने अपने तपसे लम्ब लोकोंको संतप्त कर दिया था, उस हिरण्यकशिष्ठुने वह देवों लिये आये हुए पद्मयोनि ब्रह्माको अपने सामने उपस्थित देता। उधर पितामहने भी उससे कहा—‘वर माँग।’ तब विर्ज बुद्धि मोहित नहीं हुई थी, उस असुरने विधाताकी उप सुनाणीको सुनकर इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिष्ठु बोला—ऐश्वर्यशाली प्रजापति ! मैं

मह ! मैं जाहता हूँ कि स्वर्गमें, भूतलपर, दिनमें, रातमें, ऊर अथवा नीचे—कहीं भी शब्द, अन्धा, पाश, वज्र, शुष्क वृक्ष, अद्यत, इन, अग्रिमे लघुमें शशुके प्रहरसे, देवता, देवता, मुनि, लिङ्ग निवहुना आगद्वारा संन्य हुए जीवोंके हाथों सुझे कर्मी भी मृत्युका भय न हो ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! हिरण्यकशिषुके वैसे उनमन नुगकर पदवोनि व्रद्धाके मनमें दयाका भाव जाप्रत् हो उठा । उर्हेन सन-ही-मन निष्ठुको प्रश्नाम करके उससे कहा—“इतेन्द्र ! मैं तुम्हार प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें खारी वस्तुएँ प्राप्त होंगी । तूने छिनानवे हजार क्षोत्रक तप किया है, अब मेरी बातमा पूर्ण हो चुकी है; अतः तपसे विरत होकर उठ और दानवोंके साथका उपभोग कर ।” व्रद्धार्ही वाणी सुनकर हिरण्यकशिषुता मुख प्रसन्नताने खिल उठा । इस प्रकार जब प्राप्तिमहसु उसे दानव-राज्यपर अभिप्रिक कर दिया, तब वह उग्रता ही उठा और निलोकीको नष्ट करनेका विचार करने लगा । पिछे तो उनमे मण्डूर्ण धर्मोंका उच्छेद करके संग्राममें लड़ता रहताओंसे भी जीत लिया । तब देवता भागकर विष्णु-के पास पहुँचे । वर्दी धीहरिने देवताओं और मुनियोंकी दुःख-गायत्रा गुनकर उन्हें आशानन दिया और दीप ही उन देवतोंके क्षम नामेका बनना दिया । तब देवता अपने स्थानको लौट हृष्णमें । नदकतर गद्धाना विष्णुने ऐसा रूप धारण किया, जो जीव भिन्न और अथवा भनुपक्षा था । वह अल्पत भद्रकर जीव विकाल दीप लगा था । उसका मुख शूद्र वैद्य तुच्छ अथवा नामिता वशी मुन्द्र थी और नस लीसे थे । गद्धानपर निराज लगा रही थी । वास्तु ही आयुष थे । उसके करण्यों

करके आपके नगरमें प्रत्येष्ट हुए हैं; कोंकि मुझे इनकी नूतन वडी विकाल दीप रही है । अतः आप युद्धसे हटकर इनकी दारणमें जाइये । इनमे वडकर विलोक्तमें दूसरा नौरे कोद्धा नहीं है, इसलिये आप इन मृगेन्द्रके नामने युक्तकर अपने राज्यका उपभोग कीजिये । अपने पुत्रकी यात दुनकर उस दुरात्माने उनसे कहा—“व्यथा ! क्या तू भयभीत हो गया ?” अपने पुत्रसे यों कहकर देलोंके अधिपति राजा हिरण्यकशिषुने महावली देलोंको आजा देने लगा कहा—“कीरो ! तुम्हेंग इन वैदौल भ्रकुटि और नेत्रवाले भित्तो पकड़ लो ।” तब स्वामीकी आशाने उन मृगेन्द्रको पकड़नेकी इच्छासे ये मरी वैदैनदे देत्य रणनुभिमें थुने; परंतु जैन लृपकी अभिव्याप्ति अग्रिमे प्रवेश करनेवाले परिणे जल-सुन जाते हैं, उनीं तरह ये सर्व-के सब धर्मभरमें ही बढ़कर भभा हो गये । इन्होंके इष्ट हो जानेपर भी वह देत्यराज नमृद्ध इच्छ, अत्र, शक्ति, भूषित, पाप्य, अद्युद्य और पापक आदिने उन मृगेन्द्रके भाष लेता लेता ही रहा । इस प्रद्यार वहुत कालतक भयानक युद्ध हुआ । अन्तमें उन नृमिलने वज्रके नामन कठोर आमी अपेक्षी मुजाहेसे उस देलोंके पकड़ लिया और उसे अपने जामुद्दीर लियकर दानीके गर्भोंके निदीर्थ करनेवाले नमातुरेसि उन ती छाली चीर ढाली तथा शूद्रसे लयाय दुए उसके दुष्काम्लको निकाल लिया । तिर सो उसी भव उनके प्राप्तसंकर उपर्युक्त गये । तब भगवान् नृमिले वारंदारके आपत्तिमें गिरके भर्त अप्त नूर-नूर ही गमि भे, उस जाग्रभूत देवतों की । विज । उस नमव उस देवद्वारुके मरि अपेक्ष उसी वासी प्रक्षमा हुई । उनीं अद्यनरात्र धूमादें आद्य उमर्दे भरण्यामै उपर्युक्त

भाइयोंके उपालम्भसे अन्धकका तप करना और वर पाकर विलोकीको जीतकर स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना,  
उसके मन्त्रियोंद्वारा शिव-परिवारका वर्णन, पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर अन्धकका दृश्य  
जाना और नन्दीश्वरके साथ युद्ध, अन्धकके ग्रहारो नन्दीश्वरकी मृच्छी, पार्वतीके आवाहन  
हनसे देवियोंका प्रकट होकर युद्ध करना, शिवका आगमन और युद्ध, शिवद्वारा  
शुक्राचार्यका निगला जाना, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धरण  
करके दानवोंके रक्तका पान करना, शिवका अन्धकको अपने  
विशुलमें पिरोना और युद्धकी रामायनि

सनकुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! एक गमय हिरण्याक्षका पुत्र अन्धक अपने भाइयोंके राथ निहारमें गंभीर था । उसी समय उसके कामामक्त मद्रास्य भाइयोंने उससे कहा—‘अरे उड़ो ! तुम्हें तो अब राज्यसे क्या प्रयोजन है ? हिरण्याक्ष तो गूर्ख था, जो उसने घोर तपदारा शंकरजीको प्रमद लकड़े भी तुम-जैसे कुरुप, वेदौल, कलिप्रिय और नेत्रीनको प्राप्त किया । ऐसे तुम राज्यके भागी तो हो नहीं सकते; क्योंकि भल्ला, तुम्हीं विचार करो कि कहाँ दूसरेसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी राज्य पाता है ? सच यूठो तो निश्चय ही इस राज्यके भागी हमीं-लोग हैं ।’

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! उन लोगोंकी वह बात सुनकर अन्धक दीन हो गया । फिर उसने स्वयं ही बुद्धिपूर्वक विचार करके तरह-तरहकी बातेसे उन्हें शान्त किया और रातके समय वह निर्जन वनमें चला गया । वहाँ उसने हजारों वर्षोंतक घोर तप करके अपने शरीरको मुख्य डाला और अन्तमें उस शरीरको अस्त्रिमें होम देना चाहा । तब ब्रह्माजीने उसे बैसा करनेसे रोककर कहा—‘दानव ! अब तू यह माँग ले । सारे संसारमें जिस दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करनेकी तेरी अभिलाषा हो, उसे तू मुझसे ले ले ।’ पद्मयोनि ब्रह्माके वचन-को सुनकर वह दैत्य दीनता एवं नम्रतापूर्वक बहने लगा—‘भगवन् ! जिन निष्ठुरोने मेरा राज्य छीन लिया है, वे सब दैत्य आदि मेरे भूत्य हो जायें, मुझ अधेको दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाय, इन्द्र आदि देवता मुझे कर दिया करें और देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग, मनुष्य, दैत्योंके शत्रु नारायण, सर्वमय शंकर तथा अन्यान्य किन्हीं भी प्राणियोंसे मेरी मृत्यु न हो ।’ उसके उस अत्यन्त दारुण वचनको सुनकर ब्रह्माजी सशङ्कित हो उठे और उससे बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्येन्द्र ! ये सारी बातें तो हो जायें, किंतु तू अपने विनाशका कोई कारण भी तो स्थिकार

कर नहीं जानते कोई ऐसा प्राणी न हुआ है और उसे आगे होगा ही, जो कालके गालमें न गया हो । जिस तरीके मानुषीयोंको तो अत्यन्त लंबे जीवनका विचार लाग ही रहे जातिये ; त्रिपाति इन अनुग्रामभरे वचनको सुनकर वह कैसे पुगा योद्धा ।

अन्धकने कहा—प्रभो ! तीनों कालोंमें जो उत्तम मध्यम और नीच नारियाँ होती हैं, उन्हीं नारियोंमें कोई रुद्रता नहीं भी जननी होगी । वह मनुष्यलोके लिये दुर्लभ तथा शरीर, मन और वचनसे भी अग्रव्य है । उसमें एक भावके कारण जब मेरी काम-भावना उत्पन्न हो जाय, वहींहे नाश हो । उसकी बात सुनकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माके महाआश्रय हुआ । वे शंकरजीके चरणकमलोंका साल बढ़ लगे । तब शामुकी आज्ञा पाकर वे उस अन्धकसे बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यवर ! तू जो कुछ चाहते हो तेरे वे सभी सकाम वचन पूर्ण होंगे । दैत्येन्द्र ! अब तू यह अपना अपीष प्राप्त कर और सदा वीरोंके साथ युद्ध कर रह । मुनीश ! हिरण्याक्षपुत्र अन्धकके शरीरमें नहीं है हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं । वह ब्रह्माके ऐसे वक्त दृश्यमान शुनकर शीघ्र ही भक्तिपूर्वक उन लोकेश्वरके चरणोंमें लेगा और इस प्रकार बोला ।

अन्धकने कहा—विभो ! जब मेरे शरीरमें नहीं है हड्डियाँ मात्र ही शेष रह गयी हैं, तब भल्ला इस देहसे ही सेनामें प्रवेश करके मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा; अतः अब मैं अपने पवित्र हाथसे मेरा स्पर्श करके इस शरीरसे भगवना दीजिये ।

सनकुमारजी कहते हैं—महर्षे ! अन्धकर्ण श्री सुनकर ब्रह्माजीने अपने हाथसे उसके शरीरका सर्वक्षिणी किए, फिर वे मुनिगणों तथा सिद्धसमूहोंसे भलीभांति श्रीनाथ देवताओंके साथ अपने धामको छले गये ।

संयुक्त हो उप दैस्यगजका शरीर भय-पूरा हो गया, जिससे उसमें बदला संचार हो आया तथा नेत्रोंकि प्रात हो जानेसे वह मुन्द्र धृष्टनं लगा। तब उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें प्रवेश किया। उस समय प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ दानवोंने जब उसे वरदान प्राप्त करके आया हुआ जाना, तब वे साह राज्य उसे समर्पित करके उसके वशवर्ती भूत्य हो गये। तदनन्तर अन्यक सेना और भूत्यर्गको साथ ले सर्वको जीतनेके लिये गया। वहाँ संघातमें समस्त देवताओंको पराजित करके उसने विद्यायी इन्द्रों आवा करद बना लिया। उसने वच-तत्त्व शूल-की वदाश्याँ लड़कर नागों, मुमणों, श्रेष्ठ राक्षसों, मन्यवों, यज्ञों, मनुष्यों, वडे-वडे पर्वतों, वृक्षों और सिंह आदि पापमा जीवायोंमें भी जीत लिया। यहाँतक कि उसने चराचर विद्येशीको अपने वशमें कर लिया। तदनन्तर वह रसातलमें, भूत्यार तथा त्वर्गमें जितनी मुन्द्र रूपवाली नारियाँ थीं, उनमें द्वारोहितों, जो अव्यक्त दर्शनीय तथा अपने अनुकूल थीं, वाय ऐसर विभिन्न पर्वतोंपर तथा नदियोंके रमणीय तटों-पर विद्वर करने लगा। देवताज अन्धक सदा दुर्घट्या ही सज्ज रखा था। उगसी बुद्धि मदसे अंधी हो गयी थी, जिससे उस पृथ्वी राया गुछ भी शन नहीं रह गया कि परलोकमें शायामों द्वार देनेवाला भी कोई कर्म करना चाहिये। इस प्रवार वह महामन्त्री दैत्य उन्मत्त हो अपने सारे प्रधान-प्रधान पुरोंसे मुक्तकर्त्ता-स्ते पराजित करके दैत्योंसहित मण्डण-पौरिक भयोंपर निपाता करता हुआ विचरण करने लगा। वह परोंसे मदसे अभिभूत हो नेत, देवता, व्राताप और गुरु आदि कीर्तियोंमें भी नहीं मानता था। प्रारम्भपर उसमें अग्रु समाप्त

हुए हैं। खोयाइयोंकी माला ही उस जयशरीका अनुकूल है। उसके हाथमें त्रिशूल है तथा एक विशाल धनुर, वाण और तृणीर भी वह धारण किये हुए है। उसका अस्तरू लाल दीख रहा है। उसके चार भुजाएँ तथा लंबी-लंबी जयाएँ हैं। वह खड़, त्रिशूल और लकुट धारण किये हुए है। उसकी आङ्गति अल्पन्त गौर है और उसपर भसाका अनुलेप लगा हुआ है। वह अपने उत्कृष्ट तेजसे सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार उस श्रेष्ठ तपस्वीका सारा वेष ही अद्भुत है। उससे थोड़ी ही दूरपर हमने एक और पुरानो देखा है जो विक्राल वानर-सा है। उसका मुख बड़ा भवंतर है। वह सभी आगुप पारण किये हुए है, परंतु उसका हाथ लक्ष है। वह उस लाल्वीकी रक्षामें तत्पर है। उसके पान ही एक बूढ़ा सोहद रंगमा बैल भी बैठा है। उन बैठे हुए तास्तीके पासवामाने इसमें एक शुभलक्षणमन्त्रा नारीको भी देखा है। वह भूत्यार रखत्यरूपा है। उसका रूप बड़ा मनोरम है और तदनी हमेंन जाते वह मनको मोड़े लेती है। बूँगे, गंती, मणि, मुद्रण, रस और उत्तम श्रक्षणे वह सुमित्रित है। उसके गंतमें मुन्द्र मालाएँ लटक रही हैं। ( कद्दीतक रुद्ध वह इसी मुन्द्री दृष्टिको ) जिसने उसे एक वार देख लिया, उन्हींना नेत वारण करना नफल है। उसे जिस इस लोकमें अन्य वस्तुओंके दैत्योंमें क्षा प्रयोजन। वह दिव्य नायि पुण्याद्या मुग्निर गम्भीरी गम्भा एवं प्रियतमा नायोंहै। देवताप ! जहाँ से उन्होंनम् रसोंना उत्तमेष करनेवाले हैं, वहाँ उसे वही दुर्घार देखिये। वह अद्वितीयोंदेखने केरप है।

समलकुमारजी रहते हैं—मुमिनेष ! गम्भीरोंदे उन-

सा मुखवाला डरपोक निशाचर, जिसके सारे अङ्ग उड़ापें से जर्जर हो गये हैं ! कहाँ मेरा वह स्वल्प और कहाँ तेरी मन्दभाष्यता ! तेरी सेना भी तो नहींके वरावर ही है। फिर भी यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो युद्धके लिये तैयार हो जा और आकर कुछ अपनी करत्त दिखा। मेरे पास तुम जैसे पापियोंका विनाश करनेवाला बज्र-सरीखा भयंकर शब्द है और तेरा शरीर तो कमलके समान कोमल है। ऐसी दशामें विचार करके तुझे जो रुचिकर प्रतीत हो, वह कर !'

**सनकुमारजी कहते हैं—मुनिवर !** मन्त्रियोंकी बात सुनकर (माता) पार्वतीपर मोहित हुआ वह कामान्ध राघुस विशाल सेना लेकर चल दिया और वहाँ पहुँचकर नन्दीश्वरसे युद्ध करने लगा। वहाँ भयानक युद्ध हुआ। उस समय युद्धस्थलमें चर्वी, मज्जा, मांस और रक्तकी कीच मच गयी। वहाँ सिर कटे हुए धड़ नाच रहे थे और कच्छा मांस खानेवाले जानवर चारों ओर व्याप्त हो गये थे, जिससे वह बड़ा भयंकर लग रहा था। थोड़ी ही देरमें दैत्य भाग लड़े हुए। तब पिनाकधारी भगवान् शंकर दक्ष-कन्या सतीको भलीभाँति धीरज बँधाते हुए बोले—‘प्रिये ! मैंने जो पहले अत्यन्त भयंकर महान् पाण्डुपत-ब्रतका अनुष्ठान किया था, उसमें रात-दिन तुम्हारे प्रसंगवश जो हमारी सेनाका विनाश हुआ है, यह विष-सा प्रसंगवश जो हमारी सेनाका विनाश हुआ है, यह विष-सा आ पड़ा है। देवि ! मरणधर्मा प्राणियोंका जो अमरोपर आक्रमण हुआ है, यह मानो पुण्यका विनाश करनेवाला कोई ग्रह प्रकट हो गया है। अतः अब मैं पुनः किसी निर्जन वनमें जाकर उस परम अद्भुत दिव्य व्रतकी दीक्षा करूँगा और उस कठिन व्रतका अनुष्ठान करूँगा। सुन्दरि ! तुम्हारा शोक और भय दूर हो जाना चाहिये !’

**सनकुमारजी कहते हैं—मुने !** इतना कहकर उग्र प्रभाशाली महात्मा शंकर धीरेसे अपना सिंगा बजाकर एक अत्यन्त भयंकर पावन वनमें चले गये। वहाँ थे एक हजार वधोंके लिये पाण्डुपत-ब्रतके अनुष्ठानमें तत्पर हो गये। इस व्रत-का निभाना देवों और असुरोंकी शक्तिके बाहर है। इधर शीलगुणसे सम्बन्ध पतिव्रता देवी पार्वती मन्दराच्चलपर ही रह-कर शिवजीके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। यद्यपि पुत्रस्थानीय वीरकगण उनकी सुरक्षामें तत्पर थे, तथापि उस गुहाके भीतर अकेली रहनेके कारण वे सदा भयभीत रहती थीं, जिससे उन्हें बड़ा दुःख होता था। इसी वीच वरदानके प्रभावसे उन्मत्त हुआ वह दैत्य अन्धक, जिसका वैर्य कामदेवके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गया था, अपने सुख्य-मुख्य

योधाओंको गाय ले पुनः उस गुफापर चढ़ आया। वह एनिर्मिसहित उसने वीरकगणके साथ अत्यन्त अद्भुत किया। उस समय वही दीर्घने अब, जल और देख परिलगा कर दिया था। इस प्रकार वह युद्ध लगाकर सी पाँच दिन-एकतर करता रहा। अन्तमें दैलोंगे मुझे से दूटे हुए आयुधोंके प्रदारसे नन्दीश्वरका शरीर बह गया, जिससे वे गुहाद्वारपर ही गिर पड़े और मर्हित हो दें। उनके गिरनेसे गुहाद्वार सारा दस्वाजा ही ढक गया, जिसे उपना लोला जाना असम्भव था। फिर देखने दे ही नहीं सारे वीरकगणों आने अखतमहोसे आच्छादित कर दिया। तब पार्वतीने भगवान् विष्णु और ब्रह्मजीका सामना किया सारण करते ही ग्राही, नारायणी, एन्द्री, वैश्वानरी, वामा नेत्रर्हिति, वाद्यी, चामती, कौन्दिनी, वसुधारी, गाढ़ी इन देवियोंके रूपमें समझा देवता, यज्ञ, सिद्ध, युद्ध अंड शशांकसे तुसकित होकर अपने-अपने वाहनोपर लटाई पार्वतीके पास आ पहुँचे और राज्ञीके साथ भिज गए। कुछ तमय वाद भगवान् शिव भी आ गये। फिर तेरे युद्ध हुआ। तदनन्तर शुक्राचार्यको उंडीवनी विद्याके द्वारा दैत्योंको जीवित करते देखकर भूतनाथ शिवजी उनको बिल गये। इससे दैत्य ढीले पड़ गये।

**व्यासजी !** अन्धक महान् पराकर्मी, वीर और विशुद्ध शिवके समान बुद्धिमान् था। तेकड़ों वरदान मिलनेके द्वारा वह उन्मादके वशीभूत हो रहा था। यद्यपि व्युद्ध शशांकोंकी चोट्टसे उसका शरीर जर्जर हो गया था, जिस शिवजीपर विजय पानेके लिये उसने दूसरी मात्रा र जब प्रलयकालीन अग्निके समान शरीर धारण करते भूतनाथ चिपुरारि शंकने अपने त्रिशूलसे उसे दुर्लभ छेद डाला, तब भूतलपर गिरे हुए उसके रक्तजांघसे धूप-धूथ अन्धक प्रकट हो गये। उनसे तारी रणभूमि वाले ये वे विकृत मुखवाले भयंकर राघुस अन्धकके रूप हो गयी। वे विकृत मुखवाले भयंकर राघुस अन्धकके रूप हो गये। इस प्रकार जब पाण्डुपतिद्वाया मारे गये देवों पराकर्मी थे। इस प्रकार जब पाण्डुपतिद्वाया मारे गये देवों धारोंसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रक्तिनुओंते सैनिक उत्सन्न होने लगे, तब बहुत-सी मुजाली ल्प्यां आकान्त होनेके कारण कुपित हुए बुद्धिमान् भगवान् प्रमथनाथ शिवको बुलाकर योगदलसे एक ऐसा अज्ञ धारण किया, जिसका मुख विकृत था और त्व विकराल और कङ्कालमान् था। वह श्वीरूप शमुके निकला था। जब उन देवीने रणभूमिमें उपस्थित हो

शुक्र चरणोंने पृथ्वीको अलंकृत किया, तब सभी देवता उनकी सूति करने लगे । तत्पश्चात् भगवान्से उनकी दुष्कृतियोंपरि विद्या । फिर तो वे धुवर्त होकर रणके मुहाने-उन भैतिकोंके तथा देव्यगत्रके शरीरसे निकले हुए अत्यन्त अमरण निरक्षण पान करने लगे ( जिससे राज्यकांका तत्प्रदान बंद हो गया ) । तदनन्तर एकमात्र अन्यक ही न रहा । यद्यपि उनके शरीरका रक्त सूख गया था, तथापि वे असे कुलेन्वित सततन ज्ञात्र-धर्मका सरण करके गिरायी भगवान् अंकरके साथ भयंकर धण्डियोंसे, वज्र-महाश और धूमोंसे, वग्रकार नखोंसे, मुख, भुजा और रंगिं गंगाम करता रहा । तब प्रमथनाथ शिवने रणभूमिये भगवान् हरय विदीर्घ करके उसे शान्त कर दिया । फिर विशूल देवकर उसे स्वाध्युके समान ऊपरको उठा लिया । उनका बंकर धीर तीनोंसे लटक रहा था । भूर्यकी किरणोंने उसे उठा दिया । परन्तु शीकोंसे युक्त मंजोंने मूल्यभार जल

वर्णाकर उसे गीला कर दिया । हिमसूडके समान शीतल नन्दमात्री किरणोंने उसे विदीर्घ कर दिया । फिर भी उस देव्यराजने अपने प्राणोंका परिलाग नहीं किया । उन्हे विशेष-रूपसे शिवजीका स्वान किया । तब ऋणके अगाध भागर शम्भु प्रक्षम हो गये और उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक गणाध्यक-का पद प्रदान कर दिया । तत्पश्चात् युद्धके समाप्त हो जानेपर लोकगालोंने नाना प्रकारके सारगमित स्तोत्रोद्वारा विभिन्नक शिवजीकी अर्चना की और हाँसि हुए त्रहा, निषु आदि देवोंने गर्दन शुक्रकर उत्तमोत्तम स्तुतियोद्वारा उनका स्वान किया । फिर जय-जयकर जरते हुए वे आनन्द मनाने लगे । तदनन्तर शिवजी उन सबको साथ लेकर आनन्दरूपीक गिरियाजीकी गुफाओंलोट आये । वहाँ उन्होंने आने ही अंस-भूत पूजनीय देवताओंसे नाना प्रकारकी भेट समर्पित करके उन्हें निदा किया और स्वयं प्रमुदित हुई गिरियाजगुमारीके साथ उत्तमोत्तम लीलाएँ करने लगे । ( अथाव ४४—४६ )

नन्दीश्वरद्वारा शुक्राचार्यका अपहरण और शिवद्वारा उनका निगला जाना, सौ वर्षके बाद शुक्रका शिवलिङ्गके रास्ते बाहर निकलना, शिवद्वारा उनका 'शुक्र' नाम रखा जाना, शुक्रद्वारा जापे गये मृत्युंजय मन्त्र और शिवायोत्तरशतनामस्तोत्रका वर्णन, शिवद्वारा अन्यकको वर-प्रदान

जाकर प्रमथेश्वरेश शिवको यह समाचार सुनाया । तब शिवजीने कहा—‘नन्दिन् ! तुम अभी तुरंत ही जाओ और दैत्योंके बीचसे द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यको उसी प्रधार उठा लाओ जैसे आज लवाको उठा ले जाता है ।’

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्ण ! शुभमव्यजिते यों कहनेपर नन्दी सँडिके समान बड़े जोरसे गरजे और तुरंत ही सेनाको लॉचकर उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ भूयुगंगके दीपक शुक्राचार्य विराजमान थे । वहाँ समस्त देत्य हाथोंमें पाश, खड़, वृक्ष, पथर और पर्वतखण्ड लिये हुए उनकी रक्षा कर रहे थे । यह देवकर वलशाली नन्दीने उन दैत्योंको विक्षुब्ध करके शुक्राचार्यका उसी प्रकार अपहरण कर लिया, जैसे शरभ हाथीको उठा ले जाता है । महावली नन्दीद्वारा पकड़े जानेपर शुक्राचार्यके वस्त्र खिसक गये । उनके आभूषण गिरने लगे और केश खुल गये । तब देवशत्रु दानव उन्हें छुड़ानेके लिये सिंहनाद करते हुए नन्दीके पीछे दौड़े और, जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं, उसी तरह नन्दीश्वरके ऊपर बज्र, त्रिशूल, तलवार, फरसा, वरेठी और गोफन आदि अस्त्रोंकी उग्रवृष्टि करने लगे । तब उस देवासुर-संग्रामके विकराल रूप धारण करनेपर गणाधिराज नन्दीने अपने मुखकी आगसे सैकड़ों शश्कोंको भस्म कर दिया और उन भूगुनन्दनको दबोचकर शशुदलको व्यथित करते हुए वे शिवजीके समीप आ पहुँचे तथा शीघ्र ही उन्हें निवेदित करते हुए बोले—‘भगवन् ! ये शुक्राचार्य उपस्थित हैं ।’ तब भूतनाथ देवाधिदेव शंकरने पवित्र पुरुषद्वारा प्रदान किये हुए उपहारकी भाँति शुक्राचार्यको पकड़ लिया और विना कुछ कहे उन्हें फलकी तरह मुखमें डाल लिया । उस समय समस्त असुर उच्चस्वरसे हाहाकार करने लगे ।

व्यासजी ! जब गिरिजेश्वरने शुक्राचार्यको निगल लिया, तब दैत्योंकी विजयकी आशा जाती रही । उस समय उनकी दशा सँडूरहित गजराज, सींगहीन सँड, मस्तकविहीन देह, अंध्यनरहित ब्राह्मण, उद्यमहीन प्राणी, भाग्यहीनके उद्यम, पतिरहित स्त्री, फलवर्जित वाण, पुण्यहीनोंकी आयु, वस्तरहित वेदाध्ययन, एकमात्र वैभवशक्तिके बिना निफल हुए कर्मसमूह, शूलताहीन क्षत्रिय और सत्यके बिना धर्मसमुदायकी भाँति शोन्चनीय हो गयी । दैत्योंका सारा उत्साह जाता रहा । तब अन्धकने महान् दुःख प्रकट करते हुए अपने शूलबीरोंको बहुत उत्साहित और कहा—‘वीरो ! जो रणाङ्गण छोड़कर भाग जाते

हैं, उनकी व्याति आयशाली कालिमासे मर्लिन हो जाती है और उन्हें इस लोकमें तथा परलोकमें—कहाँ भी सुन नहीं मिलता । यदि युर्जन्मरुपी मलका अपहरण करें भरातीर्थ—रणतीर्थमें अवगाहन कर दिया जाय तो अन्तीमों लाज, दान सौर तपकी क्या आवश्यकता है अस्त्र इनका फल रणभूमिमें प्राणत्याग करनेसे ही प्राप्त हो जाता है ।’ दैत्यराजके इस वचनको पूर्णरूपसे वाण लड़े देता तथा दानव रणभेरी वजाकर रणभूमिमें प्रथमांशे दृढ़ पड़े और उन्हें मरने लगे तथा वाण, खड़, वडनी कठोर पथर, भुशुण्डी, भिन्निपाल, शक्ति, भाले, छ खट्टवाङ्म, पट्टिया, विशूल, लकुट और मुसलैद्वारा परस्पर करते हुए भयंकर मार-काट मचाने लगे । इस प्रति अल्पत वगातान युद्ध हुआ । इसी वीच तिनायक, तनन्दी, सोमनन्दी, वीर नैगमेय और महावली वैशाख अ उपर गणोंने विशूल, शक्ति और वाणसमूहोंकी धारणा बर्गों करके अन्वकांको अंगा बना दिया । जिस वीच तथा असुरोंकी सेनाओंमें महान् कोलाहल मच गया । उस शब्दको सुनकर शम्भुके उदरमें स्थित शुक्राचार्य आश्रय वायुकी भौंति निकलनेका मार्ग दृঁढ़ते हुए चक्र बालेड उस समय उन्हें रुद्रके उदरमें पातालसहित सातों ले गदा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और असुरोंके भी भुवन तथा वह प्रमथासुर-संग्राम भी दीत पड़ा इस प्रकार वे सौ वर्षोंतक शिवजीकी कुसिंहमें चर्चे भ्रमण करते रहे; परंतु उन्हें उसी प्रवार कोई छिद्र नहीं पड़ा, जैसे दुष्टकी दृष्टि सदाचारीके छिद्रको नहीं देख पात तब भूगुनन्दनने शैवयोगका आश्रय ले एक मन्त्रमा लिङ्गमार्गसे वाहर निकले । तब उन्होंने शिवजीको प्रक्षिप्त किया । गौरीने उन्हें पुत्रलूपमें स्वीकार कर लिया और विस्तृत वना दिया । तदनन्तर कहणासागर महेश्वर भूमि शुक्राचार्यको वीर्यके रास्ते निकला हुआ देवकर मुस्कराते बोले ।

महेश्वरने कहा—भूगुनन्दन ! चूँकि तुम मेरे ही मार्गसे शुक्रकी तरह निकले हो, इसलिये अब तुम कहलाओगे । जाओ, अब तुम मेरे पुत्र हो गये ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! देवेश गंगायों कहनेपर सूर्यके सहश कान्तिमान शुक्रने पुनः शिवं प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ।

शुक्रने कहा—मगवन ! आपके पैर, सिर, नेत्र, हाथ और भुजाएँ अनत्त हैं । आपकी मूर्तियाँकी भी गणना नहीं हो सकती । ऐसी दशामें मैं आप सुत्युंजय किस प्रकार भूषि करूँ । आपकी आठ मूर्तियाँ बतायी जाती हैं और आप अनन्तभूषि भी हैं । आप सर्णूण् तुरो और अनुरोद्धी आपना पूर्ण भरनेवाले हैं तथा अनिष्ट दृष्टिसे देखनेपर आप बंदार भी कर डालते हैं । ऐसे स्तवनके योग्य आपकी मैं जिन प्रकार भूषि करूँ ।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार शुक्रने भिरवीकी सूति करके उन्हें नमस्कार किया और उनकी वायसे हे पुनः दानवोंकी सेनामें प्रविष्ट हुए, ठीक उसी तरह किंतु भद्रमा मेंप्रीति धर्यामें प्रवेश करते हैं । व्यामजी ! इस प्रकार रणधूमिमें दंकरने विस तरह शुक्रको निगल लिया था, वह इच्छा तो तुम्हें मुना दिया । अब शम्भुके उदरमें शुक्रने किन गम्भीर वा किन वा उसका वर्णन मुने ।

महें ! वह मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ नमस्ते देवताय चुरसुरनमस्तुताय भूतवत्य-  
मदाद्याय द्वितिपिङ्गलोचनाय ऋग्य बुद्धिरुपिणे वैयाप्त-  
वाप्तव्यशायारणेशाय वैलोक्यप्रभये ईश्वराय द्विनेशाय  
शुभानुभवाय गोदाय लोकपालाय महाभुजाय  
महादेवाय शुद्धिने महादिष्टिणे वैग्नाय नदेश्वराय अनन्याय  
वात्सल्यिणे नीलधीराय मदोदराय वाणायस्ताय सर्वोत्तमे  
पर्वतायाय मर्माय सुनुसन्धे परिचायसुप्रताय ब्रह्मवरिणे  
वैद्वतायाय नोदन्ताय वृष्णिये व्यद्वाय शुक्राणये शुष्केतये  
त्वये अटिणे शिरषिणे व्युष्टिणे भवत्यत्त्वे भूतेपराय

सर्वहराय द्वित्यप्रधसे द्वारिणे भीमाय भीमप्रसक्तमाय ॐ  
नमो नमः । ३४

इसी श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके शुक्र शम्भुके जठर-पञ्चसे लिङ्गके गत्ते उत्कट वीर्यकी तरह निकले थे । उस समय गौरीने उन्हें पुत्रल्पते अनावा और जगदीक्षर शिवने अजर-अमर चना दिया । तब वे दूसरे द्यंकरके भवय शोभा तने लगे । तीन हजार वर्ष ब्यतीत होनेके पश्चात् वे ही वेदगिरिये मुनिवर शुक्र पुनः इस भूतल्पर महेश्वरसे उत्पन्न हुए । उन

\* ॐ ओ देवताभीके र्वानों, चुर-अनुरद्धरा वन्दिता, भूत और भविष्यके महात् देवता, इरे और धोके कोसे तुक वहसती, उद्दिश्वरूप, वापंवर भारत करनेवाले, अप्तिस्तुता, विशेषज्ञ कृतपतिशान, ईश्वर, ईर, ईरिन, प्रभुभयो अधिष्ठरू, गणेश, लोकपाल, नश्वरु, नशारत्त, प्रितृ धारन करनेवाले, वर्ण-वर्णी शोभोवाले, पात्रस्तुत, नईश्वर, अभिमानी, वटकी, भीलवधु, नहोदर, गजावधु, सर्वीना, सर्वी उत्तम करनेवाले, सर्वज्ञापो, सूत्युके इटानेवाले, परिवाय पर्वाय उच्चर वा पाठ फरनेवाले, लक्ष्माणी, वेद-प्रतिपाद, तत्त्वी अनिम लोमारक रक्तनेवाले, वशुषि, विभिष जीवोवाले, शूक्राणि, वृष्णिय, पापादारी, प्रदानारी, विज्ञाय धारण करनेवाले, ईश्वरी, नशापालां, नृत्यर, तुरामे लित्तन करनेवाले, केन्त्र श्रीरामाय नार व्यानेवाले, वमद, ईर्ष्णेय, वृद्धरूपवाले स्वरूप, इमद्वाराली, ऐश्वर्याली, अवारी, वृद्धान, वर्षदे नेत्रेवे वर्ष कर रखेवाले, पूर्णि रात्रेवे विजयक गूरु वृत्त्वंविद्वाद इटेवाले, वाह्यदर्शी, प्रदर्शनकर, वृद्धुन, वंशवंदन, वर्मनाराज, वद्वारा करन, वज्रांगी, वृत्र वडानेवाले, विषेष वर्षवाले,

समय उन्होंने भैरवाली एवं तामसी दानवराज अभ्यहन्ते देखा । उसका शरीर सूख गया था और वह विशूलार लकड़ा हुआ परमेश्वर शिवका ध्यान कर रहा था । ( नद शिवजीके १०८ नामोंका इस प्रकार सारण कर रहा था— )

महादेव—देवताओंमें गहन्, विश्वाक्ष—विक्राल नेत्रोवाले, चन्द्रार्धकृतदेवर—गत्ताक्षर अर्नन्द धारण करनेवाले, अमृत—अमृतस्वरूप, शाश्वत—‘नातन, स्थाणु—समाधिस्थ होनेपर हूँठके समान थिए, नीलकण्ठ—गलेमें नील चिह्न धारण करनेवाले, पिनाकी—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, वृषभके नेत्र-परीक्षे विशाल नेत्रोवाले, महाज्ञेय—‘महान्’ लासे जानेये योग, पुरुष—अन्तर्यामी, सर्वकामद—समर्पण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कामारि—कामदेवके शत्रु, कामदहन—कामदेवको दग्ध कर देनेवाले, कामरूप—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, कपर्दी—विशाल जटाओंवाले, विश्व—विक्राल रूपधारी, गिरिया—गिरिवर कैलासपर शयन करनेवाले, भीम—भयंकर रूपवाले, सूक्ष्मी—वृडे-वृद्धे जटाओंवाले, रक्तवासा—लाल वस्त्रधारी, योगी—योगके शत्रु, कालदहन—कालको भस्त कर देनेवाले, त्रिपुरास्त्र—त्रिपुरोंके संहारकर्ता, कपाली—कपाल धारण करनेवाले, गूढमृत—जिनका व्रत प्रकट नहीं होता, गुप्तमन्त्र—गोपनीय मन्त्रोंवाले, गम्भीर—गम्भीर स्वभाववाले, भावगोचर—भक्तोंकी भावनाके अनुसार प्रकट होनेवाले, अणिमादिगुणाधार—अणिमा आदि सिद्धियोंके अधिष्ठान, त्रिलोकैश्वर्यदायक—त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, वीर—बलशाली, वीरहन्ता—शत्रुवीरोंको मारनेवाले, धोर—दुष्टोंके लिये भयंकर, विश्व—विकट रूप धारण करनेवाले, मांसल—मोरे-ताजे शरीरवाले, पट—निपुण, महामांसाद—त्रेषु फलका गूदा खानेवाले, उन्मत्त—मतवाले, भैरव—काल-भैरवस्वरूप, महेश्वर—देवेश्वरोंमें भी श्रेष्ठ, त्रैलोक्यद्रावण—त्रिलोकीका विनाश करनेवाले, लुब्ध—स्वजनोंके लोभी, लुब्धक—महाव्याधस्वरूप, यज्ञसूदन—इक्ष-यक्षके विनाशक, कृत्तिकासुतयुक्त—कृत्तिकाओंके पुत्र ( स्वामिकार्तिक ) से युक्त, उन्मत्त—उन्मत्तका-सा वेष धारण करनेवाले, कृत्तिवासा—गजासुरके चमड़ेको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, गजकृतिपरीधान—हाथीका चर्म लपेटनेवाले, क्षुब्ध—भक्तोंका कष्ट देखकर क्षुब्ध हो जानेवाले, भुजगभूषण—सर्पोंको भूषणरूपमें धारण करनेवाले, दत्तात्रेय—भक्तोंके अवलम्बदाता,

वैताल—वैतालस्वरूप, धोर—वीर, शाकिंशैष-शाकिनियोदाय\* समारपित, अवोर—अवोरपथके प्रतीक धोरदेवर—भयंकर देवतोंके संदरक, वीताम—कम शब्द करनेवाले, वनस्पति—वनस्पतिस्वरूप, भम्माङ—लंगे भस्त दमानेवाले, जटिल—जटाधारी, शुद्ध—रसपात्र भेण्डाडशतसेपित—सीकड़ों भेण्डानामक पक्कियोद्धार देवते भूतेधर—भूतोंकी अविभािति, भूतनाथ—भूतगार्भकीसनीय भूताधित—गत्रभूतोंको आश्रय देनेवाले, तम—गान्धि क्षोभित—कोभयुक्त, निष्ठुर—दुष्टोंपर कठोर व्यवहार वाले, चण्ड—प्रचण्ड पराक्रमी, चण्डीशा—चण्डीके प्रत चण्डिकाधित्रि—चण्डिकाके प्रियतम, चण्डुगुण—कुणित मुद्रनाले, गल्मान्—गल्डस्वरूप, नितिंश्च स्वरूप, शब्दभीजन—शब्दका भोग लगानेवाले, लेण्डा खुद देनेपर जीभ लगलगानेवाले, महारौद्र—अलत मृत्यु—मृत्युस्वरूप, मृत्योरगोचर—मृत्युकी भी पहुँचते मृत्योर्मृत्यु—मृत्युके भी काल, महासेन—विशाल जै कार्तिकेयस्वरूप, इमशानारण्यवासी—इमशान एवं अविचरनेवाले, राम—प्रेमस्वरूप, विराग—आग्निरागान्ध—प्रेममें भस्त रहनेवाले, वीताम—वैशाची शताचिं—तेजकी असंख्य विनगारियोंसे मुक्त, सर्वगुणस्वरूप, रजः—रजोगुणस्वरूप, तमः—तमोगुणस्वरूप, धर्मस्वरूप, अधर्म—अधर्मस्वरूप, वासवानुज—इनके भाई उपेन्द्रस्वरूप, सत्य—सत्यस्वरूप, असत्य—उत्तरे में सद्गूप—उत्तम लूपवाले, असद्गूप—वीताम लू अहेतुक—हेतुरहित, अर्धनारीश्वर—आधा पुरुष और छोटीका रूप धारण करनेवाले, भानु—सर्पस्वरूप, मातृशतप्रभ—कोटिशत सूर्योंके समान प्रभाशाली, यश यशस्वरूप, यज्ञपति—यज्ञेश्वर, रुद्र—संहारकर्ता, हंश ईश्वर, वरद—वरदाता, शिव—कल्याणस्वरूप । यह शिवकी इन १०८ मूर्तियोंका ध्यान करनेसे वह योनि महान् भवसे मुक्त हो गया\* । उस समय प्रबन्ध

\* महादेव विश्वाक्षं चन्द्रार्धकृतदेवरन् ।  
अमृतं शाक्तं स्थाणुं नीलकण्ठं पिनाकिनम् ॥  
वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुणं सर्वकामदन् ।  
कामारि कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम् ॥  
विश्वं गिरिशं भीमं सूक्ष्मिणं रक्तवाससन् ।  
योगिनं कालदहनं त्रिपुरां कपालिनम् ॥

इसी प्रकार उमे मुक करके उम विशुद्ध के अप्रभाग से पर दिया और दिव्य अमृत की वर्षासे अधिकिक वर था। तत्पश्चात् भद्रता महेश्वर उपने जो कुछ किया था, उसका आनन्दानुर्ध्वक वर्णन करते हुए उम महादेव अक्षमं बोले।

ईवस्ते कहा—हे देवेन्द्र ! मैं तेरे इन्द्रिय-  
प्रद, विषय, शीर्ष और रथसे वस्त्र ही गया हूँ; अतः  
मि। अब तू कोई वर माँग ले। देवोंकि राजाधिराज !  
मैं निरन्तर मंत्री आश्रयता की है, इससे तेरा नारा कल्पय  
कर गया और अब तू वर पानेके योग्य हो गया है। इसीलिये  
उमे वर देनेके लिये आया हूँ; क्योंकि तीन दग्धार  
सेवक विना लाये-पीये प्राण धारण किये रहते से तूने जो  
अब क्याया हूँ, उसके कल्पवल्य तुमे सुखसी प्राप्ति होनी  
पड़े।

पूर्वमं उमगाये गमनं नायगोन्दरम् ।  
अविकासिद्युत्तरं पिलोकेपद्यंशयकम् ॥  
सोरं पोरज्ञं पोरं पिल्लां नालिं पडम् ।  
नायगामात्मुमार्जं गेलं ने वदेवरम् ॥  
पैदेवयश्चनं तुवं उपर्के वदमूर्त्तम् ।  
क्षिपिणा कुटुंगमुमर्जं लिपिमन्त्रम् ॥  
वदमूर्त्तिमिशनं तुवं तुवमूर्त्तम् ।  
ददमरं वोरोक्तं पोरं अस्तिमूर्त्तिम् ।  
जर्त्तं सोरमात्रं वोरोक्तं नायगमिम् ।  
क्षमां लीकं युदं चेष्टदमिरिम् ।  
सूर्योरपूर्वार्द्धं चन्द्रन्दिविं नायगम् ।  
क्षिपिष्ठूं रहं नायगम् लिपिमन्त्रम् ।  
वदमूर्त्ति नायगम् लिपिम् नायगमिम् ।  
क्षमां नायगम् एवं एषेव्येतत् ।  
एवं लीकं नायगम् इवायमिरिम् ।  
नायगम् लीकं नायगम् लिपिम् ।

तत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! वह नुनकर अन्यको  
भूमिगर अमे तुम्हे टेक दिये और किर वह शय जोड़कर  
कोसता हुआ भगवान् उमापतिसे बोला ।

अन्यको बोला—मगश्वर ! आपकी महिमा जाने  
मिला मैंने पहले रणाद्वयमें हर्षगद्वद वायीसे आपको जो  
दीन, हीन तथा तीक्ष्ण-नीच कहा है और नूर्मायम  
लोकमें जो-जो जिन्दिय कर्म किया है, प्रभो ! उम यदों  
आप अपने मनमें स्वान न दें अपान्, उसे भूल जाओ ।  
महान्देव ! मैं अत्यन्त औंचा और हुसी हूँ। मैंने कामरोपया  
पार्वतीके पिपवमें भी जो दृष्टित भावना कर ली थी, उसे  
आप छोड़ा कर दें। आपको तो आपने कुमार, हुसी एवं  
दीन भक्तार लदा ही पिपेय रा रसी जाहिये । मैं उमी  
तद्वज्ञ एक दीन भक्त हूँ और आपकी यशमें आया हूँ ।  
देखिये, मैंने आपके सामने अधुरि योग रसी है । अब  
आपको मेरी रक्षा करनी जाहिये । मैं ब्रह्मजलमी गार्भी देवी  
भी मुसाफर प्रवक्त्र हो जावं और आरे कोलों स्वामी भूते  
हुमाद्विने देवों । चन्द्रसेवर ! जहो तो इन व वर्षार  
क्षेत्र और कहीं मैं तुम्ह देव ! चन्द्रसीमि ! मैं दिलं प्रदार  
उमको सज्ज तही कर नकला । वामो ! कहीं कोपसा उत्तर  
आप और हर्षी बुद्धाम, कृषु का नाम कीव अदि लोकोंके  
वयोनूप नै ? ( अपान् मेरी आरदि वाप साकुम्हारी । )  
महेश्वर ! आपके कुद्रव्यामित्रुं चहारवी लीर पुर में  
हुमामार विवर लोक अप्य देवों अपील ना हो ।  
कुरु रु, क्षमित्र, गद्यु, कुमदुका कीर अद्यमोहोने  
स्वीकरे दिय । मैं इस रात्रिके गुरुके लोकमा विद  
मालूर्मिने रेतो । मैं लीक भाव लेकेय लक्ष लक्ष रह ।  
देवाक्षेत्र लक्ष देवेन्द्राय लक्ष रह दूर ते यद वह  
मैं शस्त्रिय हो रेतिल लक्ष दूर देवों वाप  
मिला लक्ष । महेश्वर ! तात्क्षेत्र अपमें लक्ष दूर एवं  
सिद्धि अपरद्वारा लक्ष लक्ष लक्ष । एवं लक्ष लक्ष लक्ष ।

तो माता-पिता ( उमा-महेश्वर ) की प्रणाम करके वह मृतमृत्यु हो गया । उस समय पार्वती तथा बुद्धिमान् शंखने उग्रका मस्तक सूँधकर प्यार किया । इस प्रकार अन्यकोने प्रणाम हुए चन्द्रशेखरसे अपना सारा मनोरथ प्राप्त कर लिया । मुने ! महादेवजीकी कृपासे अन्यको जिस प्रकार परम मुखद

गणाभ्यरुपर प्राप्त हुआ था, वह सारा क्षण शुक्र वृत्तान्त मेंने हुमें मुना दिया और मृत्युजय-मन्त्रमें वर्णन कर दिया । वह मन्त्र मृत्युका विनाशक और छोटा गणनाओंसे पहल प्रदान करनेवाला है । इसे प्रश्नकृत जगता चाहिये । ( अव्याप ५७१ )

## शुक्रचार्यकी घोर तपस्या और इनका शिवजीको चित्तरक्त अर्पण करना तथा अष्टमूर्त्यैषक-स्तोत्राता उनका स्तबन करना, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी विद्या तथा अन्यान्य वर प्रदान करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! मुनिवर शुक्र-चार्यको शिवसे मृत्युजय नामक मृत्युका प्रशमन करनेवाली पराविद्या किसप्रकार प्राप्त हुई थी, अब उसका वर्णन करताहूँ ; मुनो ! पूर्वकालकी बात है, इन भगुनन्दनने वारणसीपुरीमें जाकर प्रभावशाली विश्वनाथका ध्यान करते हुए बहुत कालक घोरतप किया था । वेदव्यासजी ! उस समय उन्होने वहीं एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके सामने ही एक परम रमणीय कूप तैयार कराया । किंतु प्रयत्नपूर्वक उन देवेश्वरको एक लाख बार दोणभर पञ्चमृतसे तथा बहुतसे सुगन्धित द्रव्योंसे सान कराया । किंतु एक हजार बार परम प्रीतिपूर्वक चन्दन, यक्ष-कर्दम\* और सुगन्धित उच्चटनका उस लिङ्गपर अनुलेप किया । तत्पश्चात् सावधानीके साथ परम प्रीतिपूर्वक राजचम्पक ( अमलतात ), धूतूर, कन्नेर, कमल, मालती, कणिकार, कदम्ब, मौलसिरी, उत्पल, मलिका ( चमेली ), शतपन्नी, सिन्धुवार, ढाक, बन्धूकपुष्प ( गुलुपहरी ), पुनाग, नाग-केसर, केसर, नवमलिक ( वेलमोगरा ), चिविलिक ( रक्तदला ), कुन्द ( माघपुष्प ), मुखकुन्द ( मोतिया ), मन्दार, विलपत्र, गूमा, मरुबूक ( मरुआ ), वृक ( धूप ), गँडिकन, दौना, अत्यन्त सुन्दर आपके पहच, तुलसी, देवजवासा, बृहत्पन्नी, कुशाङ्गु, नन्दावर्त ( नौदलख ), वगास्य, साल, देवदार, कच्चनार, कुरबक ( गुलखेरा ), दुर्वाङ्कुर, कुरंटक ( करसैला )—इनमेंसे प्रत्येकके पुष्पों और अन्य पल्लवोंसे तथा नाना प्रकारके रमणीय पत्रों और सुन्दर कमलोंसे शंखजीकी विधिवत् अर्चना की । उन्हें बहुत-से उपहार समर्पित किये । तथा शिवलिङ्गके आगे नाचते हुए शिवसहस्रनाम एवं

\* एक प्रकारका अङ्गलेप, जो कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कँडोलको मिलाकर बनाया जाता है ।

अन्यान्य सोनोंका गान करके शंखजीका सम्बन्धि । इस प्रकार शुक्रचार्य पाँच हजार वर्षोंतक नाना प्रश्नों विधिविद्यासे महेश्वरका पूजन करते रहे । पहुं वह ले थोड़ा-सा भी वर देनेके लिये उद्वत होते नहीं देता । उन्होंने एक दूसरे अल्पन्त दुस्सह एवं घोर नियमका अवलोकन किया । उस समय शुक्रने इन्द्रियोंसहित मनके अल्प चञ्चलताल्पी महान् दीपको वरंवर भाववाली ले प्रसालित किया । इस प्रकार चित्तरत्नको निर्मल बढ़ावे ले पान करते हुए तप करने लगे । इस प्रकार उनके प्रत्यक्ष सहज वर्ष और वीत गये । तब भगुनन्दन शुक्रने दृढ़चित्तसे घोर तप करते देखकर महेश्वर उनपर प्रबोध गये । किंतु वह दक्षकन्या पार्वतीके सामी सक्षात् विष शंखर, जिनके शरीरकी कान्ति सहस्रों सूर्योंमें भी लगी थी, उस लिङ्गसे निकलकर शुक्रसे बोले ।

महेश्वरने कहा—महाभग भगुनन्दन ! तुम तपस्यानी निधि हो । महामुने ! मैं तुम्हारे इस अर्चिका तपसे विशेष प्रसन्न हूँ । भारगव ! तुम अपना लग्न वाञ्छित वर माँग लो । मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारा सरप्रसाद पूर्ण कर दूँगा । अब मेरे पास तुम्हारे लिये कोई वसु नहीं है । वह गयी है ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! शम्भुके इस सुखदायक एवं उत्कृष्ट वचनको सुनकर शुक्र शंख आनन्द-समुद्रमें निमम हो गये । उन कमलमय द्विशुक्रका शरीर परमानन्दजनित रोमाङ्कके कारण पुरावर्ष हो गया । तब उन्होंने इर्षपूर्वक शम्भुके चरणोंमें प्रिया किया । उस समय उनके नेत्र इर्षसे विल उठे ।

वे मलकार अद्भुति रखकर जब जवाकार करते हुए अपनी नृनिर्माण दरदायक शिवकी सुनि करते लगे ।

भार्गवने कहा—अर्द्धस्वल्प भगवन् ! आप शिवेकीका दिव करनेके लिये आकाशमें प्रकाशित होते हैं और अपनी इन दिवोंसे समझ अनकारने अभिभूत करके रातमें विद्युतेवाले असुरोंका मनोरथ नष्ट कर देते हैं । जगदीश्वर ! आप हो नमस्कार हैं । और अनकारके लिये चन्द्रस्वल्प यंत्र ! आप अमृतके प्रयाससे परिषूर्ण तथा जगत्के सभी प्राणियोंके नेष्ठ हैं । आप अपनी अग्नवाद तेजोमय किरणेष्ठि आकाशमें और भूतल्यपर अमर प्रकाश फैलाते हैं, जिससे सायं अंधकार दूर हो जाता है; आपको प्रणाम है । उर्बव्यामिन् ! आप पातन पथ—वेगमार्पणा आश्रय देनेवालोंकी बदा मति देता उत्तमरोग । भुजन-जीवन ! आपके विना भवा, इस जो द्वयोंकी जीवित रह उकता है । सर्वकुलके उत्तोष-यता ! आप शिवल वायुमन्त्र सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धि करनेवाले हैं, आपको अभिवाल्य है । विश्वके एकमात्र पातनकारी । आप दारधामवरधार और अद्विती एकमात्र गहि है । शारदा आरता ही हस्तम है । अपनके दिव

शेष हैं । इनकिये आप परावर प्रभुओं में बाहंशर प्रकाश करता हूँ । अमरस्वरूप शंख ! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरालमामें निवान करनेवालि, प्रत्येक लघुमें स्वाम हैं और मैं आप परमात्माज्ञा ज्ञन हूँ । अद्वैत ! आप ही तम हमरमराओंसे यह चरान्दर विश्व दिलारको प्राप्त मुआ है, अतः मैं उदारों आपको नमस्कार करता हूँ । बुद्धानुशयोंके बन्धो ! आप विश्वके समझ प्राणियोंके खलन, प्रण वार्ताके समूर्ज वोगदेमका निर्वाह करनेवाले और वर्णार्थकला हैं । आप अपनी इन अशृन्वियोंसे युक्त होकर इन कौटुम्ब द्वारा अभिवादन है ।

५ वं नानिरामिरपिन्दूप नमस्कार-

नस्ते नपदमिमताति विद्या-समाप्तम् ।  
तेऽप्यसे दिवग्ने दग्ने दिग्ग्राम  
नेत्रवस्थ लालिदार लक्ष्मणे ।  
अनिरुद्धिरम्भिर्लभ्यन्तेभिः  
विनामिति नी न लक्ष्मेत्प्रियोऽप्येषाः ।  
दिवाव्यामिनः लभ्यन्तो दिवामिते  
केशाद्युपरिदृष्टिः । लक्ष्मणे ॥

तो माता-पिता ( उमा-महेश्वर ) को प्रणाम करके वह कृतदृश्य हो गया । उस समय पार्वती तभा बुद्धिमान् शंकरो उराभ मस्तक सूँघवर प्वार किया । इस प्रकार अन्वक्त्वे प्रसन्न हुए चन्द्रशेखरसे अपना सारा मनोरथ प्राप्त कर लिया । मुनि ! महादेवजीकी कृपासे अन्वक्त्वे जिरा प्रकार परम सुहाद

गणाध्यक्ष-पर ग्रास हुआ था, वह सारा कासा पुण्ड्र बुधाना मैंने हुमें मुना दिया और मृत्युंजयमक्त्वे वर्णन कर दिया । यह मन्त्र मृत्युका विनाशक और दूर कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है । इसे प्रब्लैंज आना चाहिये । ( अच्छा ४४ )

## शुक्राचार्यकी घोर तपसा और इनका शिवजीको चित्तरत्न अर्पण करना तथा अष्टमूर्त्युक-सोवृत्ता उनका स्तवन करना, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी विद्या तथा अन्यान्य वर प्रदान करना

**सनकुमारजी** कहते हैं—ज्यासजी ! मुनिर शुक्राचार्यको शिवसे मृत्युंजय नामक मृत्युका प्रशमन करनेवाली परा विद्या किसप्रकार प्राप्त हुई थी, अब उसका वर्णन करता हूँ ; मुनो ! पूर्वकालकी वात है, इन भृगुनन्दनने वाराणसीपुरीमें जाकर प्रभावशाली विश्वनाथका ध्यान करते हुए वहुत कालतक घोरतप किया था । वेदव्यासजी ! उस समय उन्होंने वहाँ एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके सामने ही एक परम रमणीय कूप तैयार कराया । फिर प्रयत्नपूर्वक उन देवेश्वरको एक लास बार द्रोणभर पञ्चमूरतसे तथा वहुत-से सुगन्धित द्रव्योंसे स्नान कराया । फिर एक हजार बार परम प्रीतिपूर्वक चन्दन, यस्कर्देसम् और सुगन्धित उवठनका उस लिङ्गपर अनुलेप किया । तत्पश्चात् सावधानीके साथ परम प्रैमपूर्वक राजचम्पक ( अमलतास ), धतूर, कनेर, कमल, मालती, कणिंकार, कदम्ब, मौलसिरी, उत्पल, मलिका ( चमेली ), शतपनी, सिन्धुवार, ढाक, बधूकपुष्प ( गुलहुपहरी ), पुनाग, नाग-केसर, केसर, नवमलिक ( बेलमोगरा ), चिविलिक ( रक्कदला ), कुन्द ( माघपुष्प ), सुखुकुन्द ( मोतिया ), मन्दार, चिल्वपत्र, गूमा, मरवृक ( मरुआ ), वृक ( धूप ), गंठिवन, दैना, अत्यन्त सुन्दर आमके पल्लव, तुलसी, देवजवासा, वृहत्पश्ची, कुशाङ्क, नन्दावर्त ( नौदलख ), अगस्त्य, साल, देवदार, कचनार, कुरुक्ष ( गुलखेरा ), दुर्वाङ्कुरु दुर्टक ( करसेला )—इनमेंसे प्रत्येकके पुष्टों और अन्य पल्लवोंसे तथा नाना प्रकारके रमणीय पत्रों और सुन्दर कमलोंसे शंकरजीकी विधिवत् अर्चना की । उन्हें वहुत-से उपहार समर्पित किये । तथा शिवलिङ्गके आगे नाचते हुए शिवसहस्रनाम एवं

अन्यान्य स्तोवोंत गान करके शंकरजीका स्वरत्न इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षोंतक ताता प्रश्न विधि-विभानसे महेश्वरना पूजन करते रहे ; परंतु वह ये दो दशाना भी वर देनेके लिये उच्चत होते नहीं देखा उन्होंने एक दूसरे अल्पत हुत्सह एवं घोर नियमशब्द लिया । उस समय शुक्रने इन्द्रियोऽसहित मनके अचलतालपी महान् दोषको वारंवार भावनात्मै प्रशालित किया । इस प्रकार चित्तरत्नको निर्मल बने पान करते हुए तप करने लगे । इस प्रकार उन्हे सहस्र वर्ष और वीत गये । तब भृगुनन्दन युक्त दृढ़चित्तसे घोर तप करते देखकर महेश्वर उनका प्रगति तो दक्षकन्या पार्वतीके सामी सद्वात् ! शंकर, जिनके शरीरकी कान्ति सहस्रों स्थूते मैं थी, उस लिङ्गसे निकलकर शुकरे थोड़े ।

महेश्वरने कहा—महाभाग भृगुनन्दन ! तपस्याकी निधि हो । महामुने ! मैं तुम्हारे इस तपसे विशेष प्रसन्न हूँ । भार्गव ! तुम अपना वाज्ञित वर माँग लो । मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारा सा पूर्ण कर दूँगा । अब मेरे पास तुम्हारे लिये कोई नहीं रह गयी है ।

**सनकुमारजी** कहते हैं—मुने ! शम्भुके सुखदायक एवं उत्कृष्ट वचनको सुनकर शुक्र प्रश्न आनन्द-समुद्रमें निमम हो गये । उस कमलनयन द्वारा शुक्रका शरीर परमानन्दजनित रोमाछके कारण पुज्य हो गया । तब उन्होंने इर्षपूर्वक शम्भुके चरणोंमें बैठा किया । उस समय उनके नेत्र हृष्टसे बिछ उठे थे ।

\* एक प्रकारका अङ्ग-लेप, जो कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कद्दोलको मिलाकर बनाया जाता है ।

वे मस्तकपर अखलि रखकर जय-जयकार करते हुए अष्टमूर्तियारी<sup>५</sup> वरदायक शिवकी स्तुति करने लगे ।

**भार्गवने कहा—**सूर्यस्वरूप भगवन् ! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें प्रकाशित होते हैं और अपनी इन किरणोंसे समस्त अन्धकारको अभिभूत करके रातमें विचरनेवाले असुरोंका मनोरथ नष्ट कर देते हैं । जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है । धोर अन्धकारके लिये चन्द्रस्वरूप शंकर ! आप अमृतके प्रवाहसे परिपूर्ण तथा जगत्के सभी प्राणियोंके नेत्र हैं । आप अपनी अमर्याद तेजोमय किरणोंसे आकाशमें और भूतलपर अपार प्रकाश फैलाते हैं, जिससे सारा अंधकार दूर हो जाता है; आपको प्रणाम है । सर्वव्यापिन् । आप पावन पथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपासदेव हैं । भुवन-जीवन ! आपके बिना भला, इस लोकमें कौन जीवित रह सकता है । सर्पकुलके संतोषदाता ! आप निश्चल वायुरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धि करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है । विश्वके एकमात्र पावनकर्ता ! आप शरणागतरक्षक और असिक्षी एकमात्र शक्ति हैं । पावक आपका ही स्वरूप है । आपके बिना भूतकोका वास्तविक दिव्य कार्य दाह आदि नहीं हो सकता । जगत्के अन्तरात्मा ! आप ग्राणशक्तिके दाता, जगत्स्वरूप और पद-पदपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं; आपके चरणोंमें मैं सिर शुकाता हूँ । जलस्वरूप परमेश्वर ! आप निश्चय ही जगत्के पवित्रकर्ता और चित्र-चित्र सुन्दर चरित्र करनेवाले हैं । विश्वनाथ ! जलमें अवगाहन करनेसे आप विश्वको निर्मल एवं पवित्र बना देते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है । आकाशरूप ईश्वर ! आपसे अवकाश प्राप्त करनेके कारण यह विश्व वाहर और भीतर विकसित होकर सदा स्वभाववश खास लेता है अर्थात् इसकी परम्परा चलती रहती है तथा आपके द्वारा यह संकुचित भी होता है अर्थात् नष्ट हो जाता है; इसलिये दयालु भगवन् ! मैं आपके आगे नतमस्तक होता हूँ । विश्वमरात्मक ! आप ही इस विश्वका भरण-पोषण करते हैं । सर्वव्यापिन् । आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अशानान्धकारको दूर करनेमें समर्थ हो सकता है । अतः विश्वनाथ ! आप मेरे अशानुरूपी तमका बिनाश कर दीजिये । नामभूषण ! आप स्वर्वनीय पुरुणोंमें सबते

५ पूर्वों, जल, अग्नि, वायु, आकाश, वज्रमान, चन्द्रमा और चूर्ज—स्त्री जाठोंमें अपिष्ठित शर्वं, भूर, रुद्र, उग्र, भीम, पृथुभूति, नशादेव और ईशान—ये ब्रह्मसूत्रियोंके नाम हैं ।

श्रेष्ठ हैं । इसलिये आप परात्पर प्रभुको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ । आत्मस्वरूप शंकर ! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मामें निवास करनेवाले, प्रत्येक रूपमें व्याप्त हैं और मैं आप परमत्माका जन हूँ । अष्टमूर्ते ! आपकी इन रूपपरम्पराओंसे यह चराचर विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है, अतः मैं सदासे आपको नमस्कार करता हूँ । मुक्तपुरुषोंके बन्धो ! आप विश्वके समस्त प्राणियोंके स्वरूप, प्रणतजनोंके सम्पूर्ण योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले और परमार्थस्वरूप हैं । आप अपनी इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त होकर इस फैले हुए विश्वको भलीभांति विस्तृत करते हैं, अतः आपको मेरा अभिवादन है ।\*

\* त्वं भाभिराभिरभिभूय तमस्समस्त-  
मत्तं नयस्यभिमताति निशाचराणाम् ।  
देवीप्यसे दिवमणे गगने द्विताय  
लोकनयस्य जगदीश्वर तत्रमस्ते ॥  
लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभि-  
निर्भोसि कौ च गगनेऽसिललोकनेत्रः ।  
विद्रायितादिलतमास्तुमो हिमांशो  
पीयूपपूरपरिशूरित तत्रमस्ते ॥  
त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः  
कस्त्वा बिना भुवनजीवन जीयतीह ।  
स्त्रव्यप्रभजनविवर्धितासर्वजन्तो  
संतोषितादिकुल सर्वग वै नमस्ते ॥  
विद्वैकपावक ननावक पावकै-  
शक्ते ऋते भूतवतामृतदिव्यकार्यर् ।  
प्राणिष्वदो जगद्वहो जगदान्तरात्म-  
स्त्वं पावकः प्रतिपदं शनदो नगत्ते ॥  
पानीयरूप परमेश्वर जगत्विवि  
च्चिदातिचिद्रमुच्चिदेवकरोऽसि नूनम् ।  
विद्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ  
पानीयगाहनत पत्तदतो ततोऽसि ॥  
आकाशरूपविहित्तरत्तवकाश-  
दानाद विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत् ।  
त्वत्सदा सद्य संशसिति स्वभावात्  
संकेचनेति भवतोऽस्मि नतन्ततरत्त्वाम् ॥  
विद्वन्भरात्मक विभूषि विमोऽय विद्वं  
क्यो विश्वनाथ भवतोऽन्यतन्तत्त्वमोऽरिः ।  
स त्वं बिनाशय तनो नन चादिनूप !  
स्त्रव्यात्मरः परपरं प्रगततत्तत्वाम् ॥

सनकुमारजी कहते हैं—गुनिवर ! भगुनन्दन शुकने इस प्रकार अष्टमूर्यपूर्व-खोद्दारा शिवजीका लाभन करके भूमिपर मरकर रखकर उन्हें वारंवार प्रणाम किया । अब अमित तेजस्वी भार्गवने महादेवजी इस प्रकार स्तुति की, तब शिवजीने चरणोंमें पढ़े हुए उन द्विजवरको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़कर उठा लिया और परग प्रेमपूर्वक गेय-गर्जन-की-सी गम्भीर एवं मधुर वाणीमें कहा । उस समय शंकरजीके दाँतोंकी चमकसे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं ।

महादेवजी बोले—विप्रवर कवे ! तुम मेरे पावन भक्त हो । तात ! तुम्हारे इस उप्र तपसे, उत्तम आचरणसे, लिङ्गस्थापनजन्य पुण्यसे, लिङ्गकी आराधना करनेसे, चित्तका उपहार प्रदान करनेसे, पवित्र अटल भावसे, अविमुक्त मद्दृश्येन काशीमें पावन आचरण करनेसे मैं तुम्हें पुत्ररूपसे देखता हूँ; अतः तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है । तुम अपने हस्ती शरीरसे मेरी उदरदरीमें प्रवेश करोगे और मेरे थेषु इन्द्रियमार्गसे निकलकर पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करोगे । महाशुच्चे । मेरे पास जो मृतसंजीवनी नामकी निर्मल विद्या है, जिसका मैंने ही अपने महान् तपोवलसे निर्माण किया है, उस महामन्त्ररूपा विद्याको आज मैं तुम्हें प्रदान करूँगा; क्योंकि तुम पवित्र तपकी निधि हो, अतः तुममें उस विद्याको धारण करनेकी योग्यता वर्तमान है । तुम नियमपूर्वक जिस-जिसके उद्देश्यसे विद्येश्वरकी इस श्रेष्ठ विद्याका प्रयोग करोगे, वह निश्चय ही जीवित हो जायगा—यह सर्वथा सत्य है ।

तुम आकाशमें अल्पन्त दीसिमान् तारारूपसे द्वित देखोगे। तुम्हारा तेज सूर्य और अग्निके तेजस भी अतिक्रम द्वा जायगा । तुम प्रह्लादमें प्रधान माने जाओगे । जो छी अस उत्तम तुम्हार नमुदा रहनेवाला यात्रा करेंगे, उनका साग द्वारा तुम्हारी दृष्टि पक्षेनसे नष्ट हो जायगा । मुनत । तुम्हारे उस द्वेषीगर जगत्में मनुष्योंके विवाह आदि समल घरेलू गहर होंगे । राष्ट्री नन्दा ( प्रतिमा, पश्ची और एकदल ) विभिन्नों तुम्हारे संयोगसे शुभ हो जायेंगी और तुम्हारे दो वीर्यस्थान तथा बहुत-सी संतानाएँ होंगे । तुम्हारे दो द्वापित किया हुआ वह शिवलिङ्ग 'शुक्रेश' के नामसे विल्ला होंगा । जो मनुष्य इस लिङ्गकी अर्चना करेंगे, उन्हें किं प्राप्त हो जायगी । जो दोग वर्षपर्यन्त नक्षत्रपत्रण के शुक्रवारके दिन शुक्रवारके खलसे सारी कियाएँ सम्पन्न द्वा शुक्रेशकी अर्चना करेंगे, उन्हें जिस फलकी प्राप्ति होगी, उस मुन्हतो श्रवण करो । उन मनुष्योंमें वीर्यकी अधिकता होगी, उन वीर्य कभी निष्कल नहीं होगा; वे पुत्रवान् तथा पुत्रल सौभाग्यसे सम्पन्न होंगे । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है वे सभी मनुष्य बहुत-सी विद्याओंके शाता और सुखके भी होंगे । यों वरदान देकर महादेव उसी लिङ्गमें समा गये । व्यासजी ! यो शुक्राचार्यको जिस प्रकार अपने तपोक मृत्युंजय नामक विद्याकी प्राप्ति हुई थी, वह वृत्तात् तुमसे वर्णन कर दिया । अब और क्या तुनना चाहते हो । ( अध्याय ५ )

वाणासुरकी तपस्या और उसे शिवद्वारा वर-प्राप्ति, शिवका गणों और पुत्रोंसहित उसके नगरमें निकलना, वाणपुत्री ऊषाका रातके समय स्वभवमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखद्वारा अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, वाणका अनिरुद्धको नागपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनसे अनिरुद्धका वन्वनसुक्त होना, नारदद्वारा समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका धोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणात्मसे मोहित करके वाणकी सेनाका संहार करना

व्यासजी बोले—सर्वदा सनकुमारजी ! आपने अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक ऐसी अद्भुत और सुन्दर कथा सुनायी है, जो शंकरकी कृपासे ओतप्रोत है । अब मुझे शशिमौलिके उस

उत्तम चरित्रके श्रवण करनेकी इच्छा है, जिसमें उन्होंने प्रह्लादकर वाणासुरको गणाध्यक्ष-पद प्रदान किया था । सनकुमारजीने कहा—व्यासजी ! परमात्मा श

आत्मस्वरूप तव रूपपरमपराभिराभिस्ततं एव चराचररूपमेतत् ।  
सर्वान्तरात्मनिल्य प्रतिरूपरूप नित्यं नतोऽसि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते ॥  
इत्याष्टमूर्तिभिरिमाभिरकथवन्यो युक्तः करोपि खलु विश्वजनान्मूर्ते ।  
पतत्तं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थं ततो नतोऽसि ॥

( शिं. पु० श० सं० युद्धखण्ड ५० । ३५८ )

उस कथाको, जिसमें उन्होनि प्रसन्न होकर बाणासुरको गणनायक नाया था, आदरपूर्वक अवश्य करो। इसी प्रसङ्गमें महाप्रभु अंकरका वह सुन्दर चरित्र भी आयेगा, जिसमें उन्होने बाणासुरपर अनुग्रह करके श्रीकृष्णके साथ संग्राम किया था। यासजी! दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ कश्यप मुनिकी पतियाँ थीं। वे सब-की-सब पतिव्रता तथा सुशीला थीं। उनमें दिति भवते वडी थी, जिसके लड़के दैत्य कहलाते हैं। अन्य गतियोंसे भी देवता तथा चराचरसंहित समस्त प्राणी पुत्ररूपसे उपसन्न हुए थे। ज्येष्ठ पक्षी दितिके गर्भसे सर्वप्रथम दो महावली पुत्र पैदा हुए, उनमें हिरण्यकशिषु ज्येष्ठ था और उसके छोटे भर्तिका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिषुके चार पुत्र हुए। उन दैत्यश्रेष्ठोंका क्रमशः हाद, अनुहाद, संहाद और प्रहाद नाम था। उनमें प्रहाद जितेन्द्रिय तथा महान् विष्णुभक्त हुए। उनका नाश करनेके लिये कोई भी दैत्य समर्थ न हो सका। प्रहादका पुत्र विरेचन हुआ, वह दानियोंमें सर्वश्रेष्ठ था। उसने विप्ररूपसे याचना करनेवाले इन्द्रको अपना सिर ही दे डाला था। उसका पुत्र बलि हुआ। यह महादानी और श्रेष्ठभक्त था। इसने वामनरूपधारी विष्णुको सारी पुष्टी दान कर दी थी। वलिका औरस पुत्र बाण हुआ। वह शिवभक्त, मानी, उदार बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ और सहस्रोंका दान करनेवाला था। उस असुरराजने पूर्वकालमें त्रिलोकीको तथा त्रिलोकाधिपतियोंको बलपूर्वक जीतकर शोणितपुरमें अपनी राजधानी बनाया और वहाँ रहकर राज्य करने लगा। उस समय देवगण शंकरकी कृपासे उस शिवभक्त बाणासुरके किकरके समान हो गये थे। उसके राज्यमें देवताओंके अतिरिक्त और कोई प्रजा हुखी नहीं थी। शत्रुघ्निका वर्ताव करनेवाले देवता शनुतावश ही कष्ट झेल रहे थे। एक समय वह महासुर अपनी सहस्रों भुजाओंसे ताली बजाता हुआ ताण्डव नृत्य करके महेश्वर शिवको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा। उसके उस नृत्यसे भक्तवत्सल शंकर संतुष्ट हो गये। फिर उन्होने परम प्रसन्न हो उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। भगवान् शंकर तो सम्पूर्ण लोकोंके लाभी, शरणागतवत्सल और भक्तवाञ्छ-कल्पतरु ही ठहरे। उन्होने वलिनन्दन महासुर वाणको वर देनेकी इच्छा प्रकट की।

मुने ! वलिनन्दन महादैत्य वाण शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् था। उसने परमेश्वर शंकरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की (और कहा) ।

बाणासुर योला—प्रभो ! आप मेरे रक्षक हो जाइये

और पुत्रों तथा गणोंसंहित मेरे नगरके अध्यक्ष बनकर सर्वथा प्रीतिका निर्वाह करते हुए मेरे पास ही निवास कीजिये ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! वह वलिपुत्र बाण निश्चय ही शिवजीकी मायासे मोहमें पड़ गया था, इसीलिये उसने मुक्ति प्रदान करनेवाले दुराराध्य महेश्वरको पाकर भी ऐसा वर माँगा। तब ऐश्वर्यशाली भक्तवत्सल शम्भु उसे वह वर देकर पुत्रों और गणोंके साथ प्रेमपूर्वक वहीं निवास करने लो। एक बार बाणासुरको बड़ा ही गर्व हो गया। उसने ताण्डवनृत्य करके शंकरको संतुष्ट किया। जब बाणासुरको यह शत हो गया कि पार्वतीवल्लभ शिव प्रसन्न हो गये हैं, तब वह हाथ जोड़कर सिर ढुकाये हुए बोला।

बाणासुरने कहा—देवाधिदेव महादेव ! आप समस्त देवताओंके शिरोमणि हैं। आपकी ही कृपासे मैं बली हुआ हूँ। अब आप मेरा उत्तम वचन सुनिये। देव ! आपने जो मुझे एक हजार भुजाएँ प्रदान की हैं, ये तो अब मुझे महान् भारस्वरूप लग रही हैं; क्योंकि इस त्रिलोकीमें मुझे आपके अतिरिक्त अपनी जोड़का और कोई योद्धा ही नहीं मिला। इसलिये वृषभवज ! युद्धके बिना इन पर्वत-सरोली सहस्रों भुजाओंको लेकर मैं क्या करूँ। मैं अपनी इन परिपुष्ट भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिये युद्धकी लालसासे नगरों तथा पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ दिग्गजोंके पास गया; परंतु वे भी भयभीत होकर भाग लड़े हुए। मैंने यमको योद्धा, अग्निको महान् कार्य करनेवाला, वरुणको गौओंका पालनकर्ता गोपाल, कुबेरको गजाध्यक्ष, निर्मूतिको सैरन्त्री और इन्द्रको जीतकर सदाके लिये करद बना लिया है। महेश्वर ! अब मुझे किसी ऐसे युद्धके प्रात होनेकी बात बताइये, जिसमें मेरी ये भुजाएँ या तो शत्रुओंके हाथोंसे छूटे हुए शत्रुओंसे जर्जर होकर गिर जायें अथवा हजारों प्रकारसे शत्रुकी भुजाओंको ही गिरायें। यही मेरी अभिलाप्ता है, इसे पूर्ण करनेकी कृपा करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! उसकी बात सुनकर भक्तवाधापहारी तथा महामन्युत्सरूप रुद्रको कुछ क्रोध आ गया। तब वे महान् अद्वृत अद्वृहास करके बोले।

रुद्रने कहा—‘ये अभिमानी ! सम्पूर्ण देत्योंके कुलमें नीच ! तुझे सर्वथा धिक्कार है, धिक्कार है। तू वलिका पुत्र और मेरा भक्त है। तेरे लिये ऐसी बात कहना उचित नहीं है। अब तेरा दर्प चूर्ण होगा। तुम्हे शीम ही मेरे समान बद्रवान्के साथ भक्तशात् महान् भीम पुद्द प्राप्त होगा। उस

संग्राममें तेरी ये पर्वत-सरीखी भुजाएँ जलौनी लकड़ीकी तरह शस्त्राखोंसे छिप-भिन्न होकर भूमिपर गिरेंगी । दुष्यात्मन् । तेरे अयुधागत्पर स्थापित तेरा जो वह मनुष्यके शिरदाला मध्यू-ध्वज फहरा रहा है, इसका जब वायु-भयके बिना ही पतन हो जायगा, तब तू अपने चित्तमें समझ लेना कि वह महान भयानक युद्ध आ पहुँचा है । उस समय तू घोर संग्रामका निश्चय करके अपनी सारी सेनाके साथ वहाँ जाना । इस समय तू अपने महलको लौट जाओ किंकि इसीमें तेरा कल्पण है । दुर्मति ! वहाँ तुझे प्रसिद्ध वडे-वडे उत्पात दिखायी देंगे । ये कहकर गर्वहरी भक्तवत्सल भगवान् शंकर चुप हो गये ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने । यह तुनकर वाणा-सुरने दिव्य पुष्पोंकी कलियांसे अजलि भरकर रुद्रकी अभ्यन्तरी की और फिर उन महादेवको प्रणाम करके वह अपने धरको लैट गया । तदनन्तर किसी समय दैववश उसका वह ध्वज अपने-आप टूटकर गिर गया । वह देखकर वाणासुर हर्षित हो युद्धके लिये उद्यत हो गया । वह अपने हृदयमें विचार करने लगा कि कौन-सा युद्धप्रेमी योद्धा किस देशसे आयेगा, जो नाना प्रकारके शस्त्राखोंका पारगामी विद्वान होगा और मेरी सहायों भुजाओंको इंधनकी तरह काट डालेगा तथा मैं भी अपने अस्त्रन्त तीखे शस्त्रोंसे उसके सैकड़ों ढुकड़े कर छालूँगा । इसी समय शंकरकी प्रेरणासे वह काल आ गया । एक दिन वाणासुरकी कन्या ऊपा वैशाख मासमें माघवकी पूजा करके माझलिक शृङ्गारसे सुसज्जित हो रातके समय अपने गुप्त अन्तः-पुरमें सो रही थी, उसी समय वह हीभाव—(कामभाव) प्राप्त हो गयी । तब देवी पार्वतीकी शक्तिसे ऊपाको स्वप्नमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिश्चदका मिलन प्राप्त हुआ । जागनेपर वह व्याकुल हो गयी और उसने अपनी सखी चित्रलेखासे स्वप्नमें मिले हुए उस पुरुषको ला देनेके लिये कहा ।

तब चित्रलेखाने कहा—‘देवि ! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसे भला, मैं कैसे ला सकती हूँ, जब कि मैं उसे जानती ही नहीं ।’ उसके यों कहनेपर दैत्यकन्या ऊपा प्रेमान्ध होकर मरनेपर उतार हो गयी, तब उस दिन उसकी उस सखीने उसे बचाया । मुनिश्रेष्ठ ! कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा वही बुद्धिमती थी, वह वाणतनया ऊपासे पुनः बोली ।

चित्रलेखाने कहा—सखी ! जिस पुरुषने तुम्हारे मनका व्यरण किया है, उसे बताओ तो सही । वह यदि त्रिलोकीमें भी होगा तो मैं उसे लाऊँगी और तुम्हारा कष्ट दूर करूँगी ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महो ! ये कहकर विषयाने बछड़े परदेव देवताओं, देवों दानवों, गवकों लिंगों, नागों और यम आदिके निव अक्रित किये । त्ति वह मनुष्योंसे निव बनाने लगी । उनमें वृणिवेदीवांश प्रकृत आरम्भ होनार उसमें शृङ्ग वसुदेव, राम, द्वाष्ट और तदेव प्रभुमहाविष्णु निव बनाया । तिर जब उसने प्रभुमहाविष्णुका अनिश्चदका निव लाना, तब उसे देखकर ऊपा बोलते हो गयी । उसने युत असानत ही मया और दृढ़व दृष्टि फैलाये गया ।

ऊपाने कहा—महो ! रातमें जो मेरे पास आया था और जिसने शीघ्र ही नैर नितलयी रुक्षों तुरा लिया है वह चोर युक्त थही है । तदनन्तर ऊपा के अनुरोध बताए चित्रलेखा व्येषु रुण चतुरशीको तीतरे पहर द्वास्त्रुर्पुर्ण पहुँचकर शगमान्त्रमें ही पलंगपर बैठे हुए अनिश्चदको महल्ले उठा लायी । वह दिव्य योगिनी थी । ऊपा अपने प्रियतमने पाकर प्रसन्न हो गयी । इधर अन्तःपुरके द्वारकी रुक्ष करनेवाले देवधारी पद्मेदारोंने चेष्टाप्रयत्ने तथा अनुमानसे इस गतको लक्ष्य कर लिया । उन्होंने एक दिव्यशरीरधारी, दर्जीय ताहसी तथा समरप्रिय नवयुवको कल्याके साथ दुश्शिखान आचरण करते हुए देख भी लिया । उसे देखकर ऊपा अन्तःपुरकी रुक्षा करनेवाले उन महाबली पुरुषोंने बलिष्ठ वाणासुरके पास जाकर सारी बातें निवेदन करते हुए कहा ।

द्वारपाल बोले—देव ! पता नहीं, आपके अन्तःपुर से वल्लीर्वक प्रवेश करके कौन पुरुष छिपा हुआ है । वह इन्द्र तो नहीं है, जो वेव वदलकर आपकी कन्याका उपमो बोकर अन्तःपुरमें जा पहुँचा । वहाँ उसने प्रथम अन्तर्मन वर्तमान दिव्यशरीरधारी अनिश्चदको देवा । उसे महत आश्र्वय हुआ । फिर उसने उसका वल देखनेके लिये इस इच्छा सैनिकोंको भेजकर आशा दी कि इसे मार डाले । लेने अनिश्चदपर आक्रमण किया । तब अनिश्चदने बातकीबत्ते इस इजार सैनिकोंको कालके इवाले कर दिया । फिर तो

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! द्वारपालोंका वर्चन तथा कन्याके दूषित होनेका कथन मुनकर महाविष्णु दानवराज वाण आश्र्वयचक्रित हो गया । तदनन्तर वह कुत्ति होकर अन्तःपुरमें जा पहुँचा । वहाँ उसने प्रथम अन्तर्मन चित्रलेखा वही बुद्धिमती थी, वह वाणतनया ऊपासे पुनः बोली ।

प्रसंख्य सेना-पर-सेना अने लगी और अनिश्च उन्हें कालका स बनाने लगे। तदनन्तर उन्होंने वाणासुरका वध करनेके लिये एक शक्ति हाथमें ली, जो कालामिके समान भव्यकर।। फिर उसीसे रथकी बैठकमें वैठे हुए वाणासुरपर प्रहर आ। उसकी गहरी चोट खाकर वीरबर वाण उसी क्षण घोड़ोंहित वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर महावीर बलिपुत्र वाणासने, जो महान् बलसम्पन्न तथा शिवभक्त था, छलपूर्वक गपाशसे अनिश्चको बाँध लिया। इस प्रकार उन्हें बाँधकर और पिंजरेमें कैद करके वह युद्धसे उपराम हो गया। तत्पश्चात् अ कुपित होकर महावली सूतपुनसे थोला।

वाणासुरने कहा—सूतपुत्र ! धास-फूससे ढके हुए माध कुएँमें ढकेलकर इस पापीको मार डाल। अधिक क्या हूँ, इसे सर्वथा मार ही डालना चाहिये।

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! उसकी वह बात निकर उत्तम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ चर्मबुद्धि निशाचर कुम्भाण्डने वाणासुरसे कहा।

कुम्भाण्ड थोला—देव ! थोड़ा विचार तो कीजिये। ये समझसे तो यह कर्म करना उचित नहीं प्रतीत होता; योकि इसके मारे जानेपर अपना आत्मा ही आहत हो जायगा। यद्यमें तो यह विष्णुके समान दीख रहा है। जान पड़ता आपपर कुपित होकर चन्द्रचूडने अपने उत्तम तेजसे इसे दिया है। साहसमें यह शशिमौलिकी समानता कर रहा क्योंकि इस अवस्थाको पहुँच जानेपर भी यह पुरुषार्थपर इया हुआ है। यह ऐसा बली है कि यद्यपि नाग इसे बल-कुड़ि से रहे हैं, तथापि यह हमलोगोंको तृणवत् ही समस्त है।

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! दानव कुम्भाण्ड नीतिके शातांओंमें श्रेष्ठ था। वह वाणसे ऐसा कहकर फिर निरदत्ते रहने लगा।

कुम्भाण्डने कहा—नराधम ! अब तू वीरबर देत्यराज्ञ-सुति कर और दीन वार्णीसे ‘मैं हार गया’ वारंवार कर उन्हें हाथ लोड़कर नमस्कार कर। ऐसा करनेपर ही उन्होंने उपता है। अन्यथा तुझे वन्धन आदिका कउ भोगना गया। उसकी यात सुनकर अनिश्च उसर देते हुए थोले।

अनिश्चने कहा—दुराचारी निशाचर ! तुझे क्षत्रिय-धर्मका न लटी रे। और ! शूरवीरके लिये दीनता दिखाना और दूसे नुस्त मोड़कर भगना गरणते भी बड़कर कष्टदायक होता

है। मेरे विचारसे तो विश्वदाचरण कॉटीकी तरह चुम्नेवाला होता है। वीरमानी क्षत्रियके लिये रणभूमिमें सदा समुख लड़ते हुए मरना ही श्रेयस्कर है, भूमिपर पढ़कर हाथ जोड़े हुए दीनकी तरह मरना कदापि नहीं॥

सनकुमारजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार अनिश्चने वहुत-सी वीरताकी बातें कहीं, जिन्हें सुनकर वाणासुरको महान् विस्मय हुआ और उसे क्रोध भी आया। उसी समय समस्त वीरोंके, अनिश्चके और मन्त्री कुम्भाण्डके सुनते-सुनते वाणासुरके आश्वासनार्थ आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—महाबली वाण ! तुम बलिके पुत्र हो, अतः थोड़ा विचार तो करो। परम बुद्धिमान् शिवभक्त ! तुम्हारे लिये क्रोध करना उचित नहीं है। शिव समस्त प्राणियोंके ईश्वर, कर्मके साक्षी और परमेश्वर हैं। यह सारा चराचर जगत् उन्हेंके अधीन है। वे ही सदा रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणका आश्रय लेकर व्रजा, विष्णु और कद्ररूपसे लोकोंकी सृष्टि, भरण-पौष्ण और संहार करते हैं। वे सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, सबके प्रेरक, सर्वश्रेष्ठ, विकारहित, अविनाशी, नित्य और मायाधीश होनेपर भी निर्णुण हैं। बलिके श्रेष्ठ पुत्र ! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् समझना चाहिये। महामते ! मनमें यो विचारकर स्वस्य हो जाओ। नाना प्रकारकी लीलाओंके रचनेमें निपुण भक्तवत्सल भगवान् शंकर गर्वको मिटा देनेवाले हैं। वे इस समय तुम्हारे गर्वको चूर कर देंगे।

सनकुमारजी कहते हैं—महामुने ! इतना कहकर आकाशवाणी बंद हो गयी। तब उसके वचनको सानकर वाणासुरने अनिश्चका वध करनेका विचार ठोड़ा दिया। तदनन्तर विषेले नागोंके पाशसे बैधे हुए अनिश्च उसी खण दुर्गाका सरण करने लगे।

अनिश्चने कहा—शरणागतवत्सले ! आप यश प्रदान करनेवाली हैं, आपका रोप वडा उम्ह होता है। देवि ! मैं नागाशसे बैधा हुआ हूँ और नागोंकी विपच्छालासे संतत हो रहा हूँ; अतः शीघ्र पधारिये और मेरी रक्षा कीजिये।

सनकुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर ! जब अनिश्चने विसे हुए कले कोयलेके समान कुण्ठवर्णवाली कालीको इस प्रकार संतुष्ट किया, तब वे ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीकी महारात्रिमें

\* क्षत्रियवत् रो श्रेष्ठो नर्ण तन्मुखे तदा।

न वीरमानिनो मूर्ती शोनस्येव तनाभ्यः॥

वहाँ प्रकट हुई। उन्होंने उन रांगली भयानक वाणींसे भस्सात् करके अपने बलिष्ठ मुखोंके आमतरे उप नाग-नारायण से विदीर्घ कर दिया। इस प्रकार दुर्गाने अनिकृद्धको अचन्मुक्त करके उन्हें पुनः अन्तःपुरमें पहुँचा दिया और वहाँ वहाँ अन्तर्धान हो गयी। इस प्रकार विवाही शक्तिलब्धा देवीकी कृपासे अनिकृद्ध कष्टे छूट गये, उन्हींनारी व्यग्रा मिट गयी और वे सुखी हो गये। तदनन्तर प्रश्नुभनन्दन अनिकृद्ध शिवशक्तिके प्रतापसे विजयी हो आगनी प्रिया वाणीनगरीको पाकर परम हर्षित हुए और आगनी प्रियतमा उप ऊपाके साथ पूर्ववत् मुखपूर्वक विहार करने लगे। इधर पौत्र अनिकृद्धके अहश्य हो जाने तथा नारदजीके मुखसे उपके वाणासुरके द्वारा नागपाशसे बाँधे जानेका समाचार सुनाहर वारह अशैदिणी सेनाके साथ प्रश्नुभन आदि वीरोंको साथ ले भगवान् श्रीकृष्णने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी। उधर भगवान् श्रीरुद्र भी अपने भक्तके पक्षमें सज-धजकर आ डटे। फिर तो श्रीकृष्ण और श्रीशिवका बड़ा भयानक युद्ध हुआ। दोनों ओरसे ऊर्व छोड़े गये। अन्तमें श्रीकृष्णने स्वर्य श्रीरुद्रके पास आकर उनका स्तवन करके कहा—‘सर्वव्यापी शंकर ! आप गुणोंसे निर्लिप्त होकर भी गुणोंसे ही गुणोंको प्रकाशित करते हैं। गिरिशार्यी भूमन्। व्याप स्वप्रकाश हैं। जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मोहित हो गयी है, वे स्त्री, पुत्र, गृह आदि विषयोंमें आसक्त होकर दुखसागरमें झुक्कते-उत्तराते रहते हैं। जो अजितेन्द्रिय पुरुष प्रारब्धवश इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता, वह शोचनीय तथा आत्मवश्वक है। भगवन्।

आप गर्वहारी हैं, आपने ही तो इस गर्वलि वाक्ये का दिया था; अतः आप ही आशासे में वाणासुरकी मुक्तश्वेष उद्देश करनेके लिये यहाँ आया हूँ। इसलिये मैंहेतु आप इस युद्धके निवृत्त हो जाइये। प्रभो ! मुझे कौन भुजाओंका काटनेके लिये आशा प्रदान कीजिये, विस्ते का का शार थार्य न हो ।

महेश्वरने कहा—तात ! आपने ठीक ही छाईहै मैंने ही यह दैत्यराजको वाप दिया है और मेरी ही शक्ति आप वाणासुरकी भुजाएँ काटनेके लिये यहाँ पारे हैं कि रमानाय ! हरे ! क्षमा कर्न, मैं तो सदा भक्तके ही अंग रखता हूँ। ऐसी दशामें वीर ! मेरे देखते वाणी मुक्तिएँ काढ़ी जा रहती हैं ? इसलिये मेरी आशासे आप जृम्भणाक्षद्वारा मुझे जृम्भित कर दीजिये, तलश्वात् अभीष्ट कार्य समन्वयीजिये और सुखी होइये।

सनक्तुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर ! शंखके कहोपर शार्दूलपाणि श्रीहरिको महान् विसय हुआ। वेद युद्ध-स्थानपर आकर परम आनन्दित हुए। नारद तदनन्तर नाना प्रकारके अस्त्रोंके संचालनमें निषुण श्रृंग तुरंत ही अपने धनुषपर जृम्भणाक्षका संधान करके पिनाकपाणि शंकरपर छोड़ दिया। इस प्रकार श्रृंग जृम्भणाक्षद्वारा जृम्भित हुए शंकरको मोहमें हालहर बगदा और श्रृंगिआदिसे वाणकी सेनाका संहार करते ले।

( अथाय ५१—१ )

श्रीकृष्णद्वारा वाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रेखा और उन्हें समझाना, श्रीकृष्णका परिवारसमेत द्वारकाको लौट जाना, वाणका ताण्डव चुत्पद्धार शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अन्यान्य वरदानोंके साथ महाकालत्वकी प्राप्ति

उत्तम शिवभक्त था। मुनीश्वर ! तदनन्तर वीर्यवान् श्रृंग जिन्हें शिवकी आशासे बल प्राप्त हो चुका था, विस्ते वाणके साथ यो युद्ध करके अत्यन्त कुप्रित हो उठे। शत्रुघ्नीरोका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उह आदेशसे शीघ्र ही सुदर्शन चक्रद्वारा वाणकी वहुतसी भुजाको काट डाला। अन्तमें उसकी अत्यन्त सुन्दर चार भुज ही अवशेष रह गयीं और शंकरकी कृपासे शीघ्र ही उन व्यथा भी मिट गयीं। जब वाणकी स्मृति छुट हो गयी, वीरभावको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण उसका सिर काट लेनेके उद्यत हुए, तब शंकरजी मोहनिद्राको त्यागकर उठ हुए और बोले।

सनक्तुमारजी कहते हैं—महाप्राश व्यासजी ! लोक-लीलाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण और शंकरकी उस परम अद्भुत कथाको श्रवण करो। तात ! जब भगवान् रुद्र लीलावश पुत्रों तथा गणोसहित से गये, तब दैत्यराज वाण श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुआ। उस समय कुम्भाण्ड उसके अश्वोकी वागडोर सेंभाले हुए था और वह नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सजित था। फिर वह महावली बलिपुत्र भीषण युद्ध करने लगा। इस प्रकार उन दोनोंमें चिरकालतक बड़ा धोर संग्राम होता रहा; क्योंकि विष्णुके अवतार श्रीकृष्ण शिवरूप ही थे वैर उधर बलवान् वाणासुर

रुद्रने कहा—देवकीनन्दन । आप तो सदासे मेरी आज्ञाका पालन करते आये हैं । भगवन् ! मैंने पहले आपको जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह तो आपने पूरा कर दिया । अब बाणका शिरस्त्रेदन मत कीजिये और सुदर्शनचक्रको लैटा लीजिये । मेरी आज्ञासे यह चक्र सदा मेरे भक्तोंपर अमोघ रहा है । गोविन्द ! मैंने पहले ही आपको युद्धमें अनिवार्य चक्र और जय प्रदान की थी, अब आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये । लक्ष्मीश ! पूर्वकालमें भी तो आपने मेरी आज्ञाके विना धधीच, वीरबर रावण और तारकाक्ष आदिके पुरोपर चक्रका प्रयोग नहीं किया था । जनार्दन ! आप तो योगीश्वर, साक्षात् परमात्मा और सम्पूर्ण प्राणियोंके रैतमें रत रहनेवाले हैं । आप स्वयं ही अपने मनसे विचार नीजिये । मैंने इसे बर दे रखा है कि तुम्हे मृत्युका भय नहीं



। मेरा वह चक्र सदा सत्य होना चाहिये । मैं आपपर भक्त भी हूँ । हरे ! बहुत दिन पूर्व यह गर्वसे भरकर उन्मत्त उठा और अपने आपको भूल गया था । तब अपनी भुजाएँ चलता हुआ यह मेरे पास पहुँचा और बोला—‘मेरे साथ आइये ।’ तब मैंने इसे शाप देते हुए कहा—‘धोड़ उम्यमें तेरी भुजाओंका छेदन करनेबाला आयेगा । तब तेरा धोड़ गर्व गल जायगा ।’ ( बाणकी और देखकर ) कहा—‘मेरी आशा तेरी भुजाओंको काटनेवाले ये श्रीहरि आये हैं ।’

( फिर श्रीकृष्णसे ) अब आप युद्ध बंद कर दीजिये और वरव्यधूको साथ ले अपने घरको लौट जाइये ।’ यों कहकर महेश्वरने उन दोनोंमें मित्रता करा दी और उनकी आज्ञा ले वे पुत्रों और गणोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गये ।

**सनत्कुमारजी** कहते हैं—मुने ! शम्भुका कथन सुनकर अक्षत शरीरवाले श्रीकृष्णने सुदर्शनको लैटा लिया और विजयश्रीसे सुशोभित हो दे बाणासुरके अन्तःपुरमें पधारे । वहाँ उन्होंने ऊप्रासहित अनिरुद्धको आश्वासन दिया और बाणद्वारा दिये गये अनेक प्रकारके रत्नसमूहोंको ग्रहण किया । ऊप्राकी सखी परम योगिनी चित्रलेखाको पाकर तो श्रीकृष्णको भवान् हर्ष हुआ । इस प्रकार शिवके आदेशानुसार जब उनका सारा कार्य पूर्ण हो गया, तब वे श्रीहरि हृदयसे शंकरको प्रणाम कर और बलिपुत्र बाणासुरकी आज्ञा ले परिवार-समेत अपनी पुरीको लौट गये । द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने गङ्गड़को विदा कर दिया । फिर हर्षपूर्वक मित्रोंसे मिले और स्वेच्छानुसार आचरण करने लगे ।

इधर नन्दीश्वरने बाणासुरको समझाकर यह कहा—‘भक्तशार्दूल ! तुम बारंबार शिवजीका स्मरण करो । वे भक्तोंपर अनुकम्भा करनेवाले हैं, अतः उन आदिगुरु शंकरमें मन समाहित करके नित्य उनका महोत्सव करो ।’ तब द्वेषरहित हुआ महामनस्वी बाण नन्दीके कहनेसे वैर्य धारण करके तुरंत ही शिवस्थानको गया । वहाँ पहुँचकर उसने नाना प्रकारके स्तोत्रोद्वारा शिवजीकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया । फिर वह पादोंसे दुमकी लगाते हुए और हाथोंको धुमाते हुए नाना प्रकारके आलीढ़ और प्रत्यालीढ़ आदि प्रमुख स्थानकोद्वारा सुशोभित नृत्यमें प्रधान ताण्डव नृत्य करने लगा । उस समय वह हजारों प्रकारसे मुखद्वारा बाजा बजा रहा था और वीच-वीचमें भौंहोंको मटकाकर तथा सिरको कॅपाकर सहस्रों प्रकारके भाव भी प्रकट करता जाता था । इस प्रकार नृत्यमें मत हुए महाभक्त बाणासुरने महान् नृत्य करके नतमस्तक हो चिशूलधारी चन्द्रोदाहर भगवान् रुद्रको प्रसन्न कर लिया । तब नाच-गानके प्रेमी भक्तवत्सल भगवान् हर हर्षित होकर बाणसे योगे ।

रुद्रने कहा—बलिपुत्र प्यारे बाण ! तेरे नृत्यसे मैं संतुष्ट हो गया हूँ, अतः दैत्येन्द्र ! तेरे गममें जो अभिलाप्ता हो, उसके अनुरूप वर माँग ले ।

**सनत्कुमारजी** कहते हैं—मुने ! शम्भुकी यात तुनहर

देवताज वाणने इस प्रकार वर माँगा—‘मेरे धाव भर जायें, बाहुयुद्धकी क्षमता यनी रहे, मुझे अथवा गणनायकता प्राप्त हो, शोणितपुरमें ऊपरुच अर्थात् गेरे दीक्षिता राज्य हो, देवताओंसे तथा विशेष करके विष्णुसे मेरा वैरभान मिट जाय, मुझमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त दूषित देवतामानहा पुनः उदय न हो, मुझमें सदा निर्विकार शम्भु-भक्ति यनी रहे और शिव-भक्तोंपर मेरा स्नेह और समझ प्राणियोंपर दयाभान रहे।’ यो शम्भुसे वरदान माँगकर विष्णुच महानुर वाण अङ्गलि वैये रुद्रकी स्तुति करने लगा। उत उमग उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँखू छल्क आये थे। तदनन्तर विषेष के रारे

अहं प्रेमसे प्राप्तुहित हो उठे थे, वह चक्रिल ५० मदेशरहो प्रणाम तरके नीन हो गया। असे कह दृढ़ प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर नुसे उच्छुष्टप्राप्त है यह यो नहर वहीं अन्तर्वान हो गये। तब शम्भु भूमि महायात्रको प्राप्त हुआ रुद्रका अनुकर वान रुद्रले निमध हो गया। आसजी ! इस प्रकार मैंने स्वरूप्लै नित्य कीउ करनेवाले समल युज्ज्वलकी भी सद्गुरु भगवान् शंकरहा वाणिज्यक चरित, जो रुद्रले कर्मग्रिय मधुर वननोद्वारा तुमसे वर्णन कर दिया।

( अन्वय ११ )

### गजासुरकी तपस्या, वर-प्राप्ति और उसका अत्याचार, शिवद्वारा उसका वध, उसकी गार्हन्ति शिवका उसका चर्म धारण करना और ‘कृत्तिवासा’ नामसे विख्यात होना तथा कृत्तिवासेश्वर लिङ्गकी स्थापना करना

सनक्तुमारजी कहते हैं—व्याराजी ! अब परम प्रेमपूर्वक शशिमौलि शिवके उस चरित्रको श्रवण करो, निरामें उन्होंने चिशूलद्वारा दानवराज गजासुरका वध किया था। गजासुर महिषासुरका पुत्र था। जब उसने मुना कि देवताओंसे प्रेरित होकर देवीने मेरे पिताको मार दिया था, तब उसका बदला लेनेकी भावनासे उसने घोर तप किया। उसके तपकी ज्वालासे सब जलने लगे। देवताओंने जाकर व्रशार्जिते अपना दुर्ख कहा, तब व्रशार्जीने उसके सामने ग्रहण होकर उसके प्रार्थनानुसार उसे वरदान दे दिया कि वह कामके वश होनेवाले किसी भी छोटी या पुरुषसे नहीं मरेगा, महावली और सबसे अजेय होगा।

वर पाकर वह गर्वमें भर गया। सब दिशाओं तथा सब लोकपालोंके स्थानोंपर उसने अधिकार कर लिया। अन्तमें भगवान् शंकरकी राजधानी आनन्दवन काशीमें जाकर वह सबको सताने लगा। देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। शंकर कामविजयी हैं ही। उन्होंने घोर युद्धमें उसे हराकर चिशूलमें पिसे लिया। तब उसने भगवान् शंकरका स्वयन किया। शंकरने उसपर प्रसन्न होकर इच्छित वर माँगनेको कहा।

तब गजासुरने कहा—दिग्मन्द्रस्वरूप मदेशान ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने चिशूलकी अग्निसे पवित्र हुए मेरे इस चर्मको आप सदा धारण किये रहें। विभो ! मैं पुण्य

गव्योंकी निधि हूँ, इसीलिये मेरा यह चर्म चिशूल तरत्परी अग्निकी ज्वालामें पड़कर भी दब नहीं हूँ दिग्धर ! यदि मेरा यह चर्म पुण्यवान् न होता तो मैं इसे आपके अङ्गोंका गङ्ग कैते प्राप्त होता। गङ्ग ! आप हुए हैं तो मुझे एक दूसरा वर और दीर्घि ! ( यह कि ) आजतो आपका नाम ‘कृत्तिवासा’ विलक्षण है।

सनक्तुमारजी कहते हैं—मुने ! गजासुरीद्वारा भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्नतापूर्वक महिष्ठ गजसे कहा—‘तथास्तु’—अच्छा, ऐसा ही होगा। वह प्रसन्नामा भक्तप्रिय मदेशान उस दानवराज गव्यहै। मन भक्तिके कारण निर्मल हो गया था, पुनः बोले।

ईश्वरने कहा—दानवराज ! तेरा यह रुद्र मेरे इस मुक्तिसाधक क्षेत्र वाशीमें मेरे लिङ्गके लोकों जाओ। इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा। यह रुद्र के लिये मुक्तिदाता, महान् पतकोंका विनाशक रुद्र में शिरोभणि और मोक्षप्रद होगा। ये रुद्रकर देवेश शिवने गजासुरके उस विश्वाल चर्मको लेने आएँ। मुनीश्वर ! उस दिन बहुत बड़ा उत्सव गताया गया। निवासी सारी जनता तथा प्रमथगण हर्षप्रसाद हों और ब्रह्मा आदि देवताओंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो जाएगा। जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके उनकी खुर्जि हाथ जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके उनकी खुर्जि हाथ

( अन्वय )

## दुन्दुभिनिर्हादि नामक दैत्यका व्याघ्ररूपसे शिवभक्तपर आक्रमण करनेका विचार और शिवद्वारा उसका वध

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब मैं चन्द्रमौलिके उस चरित्रका वर्णन करूँगा, जिसमें शंकरजीने दुन्दुभिनिर्हादि नामक दैत्यको मारा था । तुम सावधान होकर श्रवण करो । दितिषुत्र महावली हिरण्याक्षके विष्णुद्वारा मारे जानेपर दितिको बहुत दुःख हुआ । तब देवशत्रु दुन्दुभिनिर्हादिने उसको आश्वासन देकर यह निश्चय किया कि 'देवताओंके बल ब्राह्मण हैं । ब्राह्मण नष्ट हो जायेगे तो यज्ञ नहीं होंगे, यज्ञ न होनेपर देवता आहार न पानेसे निर्वल हो जायेगे । तब मैं उनपर सहज ही विजय पा लूँगा ।' यो विचारकर वह ब्राह्मणोंको मारने लगा । ब्राह्मणोंका प्रधान स्थान बाराणसी है, यह सोचकर वह काशी पहुँचा और वनमें वनचर बनकर समिधा लेते हुए, जलमें जलचर बनकर खान करते हुए और रातमें व्याघ्र बनकर सोते हुए ब्राह्मणोंको खाने लगा ।

एक बार शिवरात्रिके अवसरपर एक भक्त अपनी पर्णशालामें देवाधिदेव शंकरका पूजन करके ध्यानस्थ बैठा था । वलभिमानी दैत्यराज दुन्दुभिनिर्हादिने व्याघ्रका रूप धारण करके उसे खा जानेका विचार किया; परंतु वह भक्त दृढ़चित्तसे शिवदर्शनकी लालसा लेकर ध्यानमें तछीन हो रहा था, इसके लिये उसने पहलेसे ही मन्त्रलभी अस्त्रका विन्यास कर लिया था । इस कारण वह दैत्य उसपर आक्रमण करनेमें समर्थ न हो सका । इधर सर्वव्यापी भगवान् शम्भुको उस दुष्ट रूपवाले दैत्यके अभिग्रायका पता लग गया । तब शंकरने उसे मार डालनेका विचार किया । इतनेमें, ज्योंही उस दैत्यने व्याघ्ररूपसे इस भक्तको अपना ग्रास बनाना चाहा, ज्यों ही जगत्की

रक्षाके लिये मणिस्वरूप तथा भक्तरक्षणमें कुशल बुद्धिवाले त्रिलोचन भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और उसे वगलमें दबोचकर उसके सिरपर बज्रसे भी कठोर धूँसेसे प्रहार किया । उस मुष्ठि-प्रहारसे तथा काँखमें दबोचनेसे वह व्याघ्र अत्यन्त व्यथित हो गया और अपनी दहाड़से पृथ्वी तथा आकाशको कँपाता हुआ मृत्युका ग्रास बन गया । उस भयंकर शब्दको सुनकर तपस्थियोंका हृदय कँप उठा । वे रातमें ही उस शब्दका अनुसरण करते हुए उस स्थानपर आ पहुँचे । वहाँ परमेश्वर शिवको वगलमें उस पाणीको देवाये हुए देखकर तब लोग उनके चरणोंमें पड़ गये और जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ।

**तदनन्तर महेश्वरने कहा—**जो मनुष्य यहाँ आकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस रूपका दर्शन करेगा, निस्संदेह मैं उसके सारे उपद्रवोंको नष्ट कर दूँगा । जो मानव मेरे इस चरित्रको सुनकर और हृदयमें मेरे इस लिङ्गका सारण करके संग्राममें प्रवेश करेगा, उसे अवश्य विजयकी प्राप्ति होगी ।

मुने ! जो मनुष्य व्याघ्रेश्वरके प्राकट्यसे सम्बन्ध रखनेवाले इस परमोत्तम चरित्रको सुनेगा, अथवा दूसरेको सुनायेगा, पढ़ेगा या पढ़ायेगा, वह अपनी समस्त मनोवाचित्त वस्तुओंको प्राप्त कर लेगा और अन्तमें सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित होकर मोक्षका भागी होगा । शिवलीलासम्बन्धी अमृतमय अक्षरोंसे परिपूर्ण यह अनुपम आख्यान स्वर्ग, यश और आयुका देनेवाला तथा पुत्र-पौत्रकी बृद्धि करनेवाला है ।

( अध्याय ५८ )

## विद्ल और उत्पल नामक दैत्योंका पार्वतीपर मोहित होना और पार्वतीका कन्दुक-प्रहारद्वारा उनका काम तमाम करना, कन्दुकधरकी स्थापना और उनकी महिमा

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जिस प्रकार रमेश्वर शिवने संकेतसे दैत्यको लक्ष्य कराकर अपनी ग्रिवाद्वारा उसका ध्वनि लगाया था, उनके उस चरित्रको तुम परम प्रेम-रूप ध्वनि लगाये । विद्ल और उत्पल नामक दो महारूप । उन्होंने प्रजातीर्थी किसी पुक्षपक्षे हाथरे न मरनेका वर न लिया । उन्होंने दैत्य देवताओंपे जीत लिया गा ।

तब देवताओंने ग्रहाजीके पात जाकर अपना दुःख तुनाया । उनकी कष्ट-कहानी सुनकर व्रजाने उनसे कहा—‘तुम्हें यिवासहित शिवका अदरण्यैक सरण करके धैर्य धारण करो । वे थोंगों दैत्य निश्चय ही देवीके हाथों मारे जायेंगे । यिवासहित शिव परमेश्वर, कल्याणकर्ता और भक्तजन्मय हैं । वे हीप्र ही तुमलोंगांग रक्षाग छाएंगे ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! देवंसि यो कहकर ब्रह्माजी शिवका सरण करते हुए मौन हो गये । तब देवगण भी आनन्दित होकर अपने-आपने धारा हो लीट गये । एक समय नारदजीके द्वारा पार्वतीके गोन्दर्यन्ती प्रशंसा सुनकर वे दोनों दैत्य उनका अपहरण करनेकी बात सोनने लगे और पार्वतीजी जहाँ गेंद उछल रही थीं, वहाँ वे जाकर आकाशमें विचरने लगे । वे दोनों थोर दुराचारी थे । उनका मन अत्यन्त चञ्चल हो रहा था । वे गणोंका रूप धारण करके अभिकाके निकट आये । तब दुर्घांका संहार करनेवाले शिवने अवहेलनपूर्वक उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंसे प्रकट हुई चञ्चलताके कारण तुरंत उन्हें पहचान लिया । फिर तो सर्वस्वरूपी महादेवने दुर्गतिनाशिनी दुर्गाको कटाशद्वारा सूचित कर दिया कि ये दोनों दैत्य हैं, गण नहीं । तात ! तब पार्वती अपने स्वामी महाकौतुकी परमेश्वर शंकरके उस नेत्रसंकेतको समझ गयीं । तदनन्तर सर्वज्ञ शिवकी अर्वाङ्गिनी पार्वतीने उस संकेतको समझकर उसी गेंदसे एक साथ ही उन दोनोंपर चोट की । तब महादेवीकी गेंदसे आहत होकर वे दोनों महावली दुष्ट दैत्य चक्कर काटते हुए उसी प्रकार भूतलपर गिर पड़े, जैसे वायुके झोकेसे चञ्चल होकर दो पके हुए ताङ्के फल अपनी ढंडलसे टूटकर गिर पड़ते हैं अथवा जैसे ब्रजके आचातसे महागिरिके दो शिखर ढह जाते हैं ।

इस प्रहार अन्तर्वर्ती करनेके लिये उद्यत उन दोनों महावली धराशायी करके वह गेंद लिह्नस्त्रैमें परिणत हो गयी । वह दुर्घांका निनारण करनेवाला वह लिह्न कटुकेश्वरके नामे विष्ण्यात हुआ और ज्येष्ठेश्वरके समीप सित हो गया । काशीमें सित कल्कुतेश्वर लिह्न दुर्घांका निनारण के नामेवाला प्रदाता और रावदा सत्पुन्योंकी समस्त आत्माओंपूर्ण करनेवाला है । जो मनुष्य इस अनुष्म आत्मानवेह पूर्वक गुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, उसे मनन दुर्घांकों कहा । वह इस लोकमें नाना प्रकारके सम्पूर्ण उत्तमोत्तमदुर्घांकोंपर अन्तमें देवदुर्लभ दिव्यं गतिको प्राप्त कर देता है

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिसत्तम । मैंने इन रुद्रसंहिताके अन्तर्गत इन युद्धखण्डका वर्णन कर दिया यद खण्ड सम्पूर्ण मनोरथोंका फल प्रदान करनेवाल है इस प्रकार मैंने पूरी-की-पूरी रुद्रसंहिताका वर्णन कर दिया यह शिवजीको सदा परम प्रिय है और भुक्ति-मुक्तिपूर्वक प्रदान करनेवाली है ।

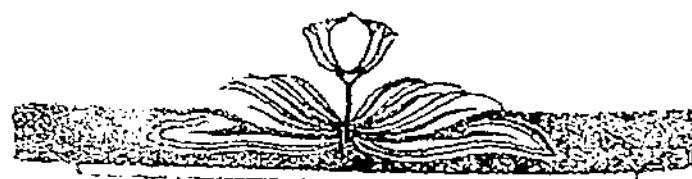
सूतजी कहते हैं—इस प्रकार शिवतुगणी श्वर्ण नारद शंकरके उत्तम यशको तथा शिवशतनामके मुन्न कृतार्थ हो गये । वो मैंने सम्पूर्ण चरित्रोंमें प्रशान तर्ह कल्याणकारक यह ब्रह्मा और नारदका संवाद पूर्णतये तदिशा, अब तुम्हारी और क्या सुननेकी इच्छा है ? ( अथवा )

→ → → → → → → →

॥ रुद्रसंहिताका युद्धखण्ड सम्पूर्ण ॥



॥ रुद्रसंहिता समाप्त ॥



## शतरुद्रसंहिता

### शिवजीके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान नामक पाँच अवतारोंका वर्णन

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम् ।

गौरीग्रियं कार्तिकविष्वराजसमुद्गवं शंकरमादिदेवम् ॥

जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा स्वामि कार्तिक और विष्वराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शंकरकी मैं बन्दना करता हूँ ।

**शौनकजीने** कहा—महाभाग सूतजी ! आप तो ( पुराणकर्ता ) व्यासजीके शिष्य तथा शान और दयाकी निधि हैं, अतः अब आप शम्भुके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा उन्होंने सत्पुरुषोंका कल्याण किया है ।

**सूतजी बोले**—शौनकजी ! आप तो मननशील व्यक्ति हैं, अतः अब मैं आपसे शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन करता हूँ, आप अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके सद्विष्टुपूर्वक मन लगाकर श्रवण कीजिये । मुने ! पूर्वकालमें सनक्तुमारजीने नन्दीश्वरसे, जो सत्पुरुषोंकी गति तथा शिवस्तरूप ही हैं, यही प्रश्न किया था; उस समय नन्दीश्वरने शिवजीका स्वरण करते हुए उन्हें रो उत्तर दिया था ।

**नन्दीश्वरने** कहा—मुने ! यों तो सर्वव्यापी सर्वेश्वर शेवके कल्प-कल्पान्तरोंमें असंख्य अवतार हुए हैं, तथापि स समय मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनमेंसे कुछका वर्णन करता हूँ । उन्नीसवाँ कल्प, जो श्वेतलोहित नामसे विद्युत है, उसमें शिवजीका 'सद्योजात' नामक अवतार हुआ था । वह उनका प्रथम अवतार कहलाता है । उस कल्पमें यह वसा परमब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, उसी समय एक खेत और लोहित वर्णवाला शिखाधारी कुमार उत्पन्न हुआ । उसे देखकर ब्रह्माने मन-ही-मन विचार किया । जब उन्हें यह गत हो गया कि यह पुरुष ब्रह्मरूपी परमेश्वर है, तब उन्होंने प्रजालि वैष्णवकर उसकी बन्दना की । फिर जब भुवनेश्वर ब्रह्माको तो लग गया कि यह सद्योजात कुमार शिव ही हैं, तब उन्हें शरान् दर्श हुआ । वे अपनी सद्बुद्धिसे वारंवार उस परब्रह्मका नेतृत्व परने लगे । ब्रह्माजी ध्यान कर ही रहे थे कि वहाँ अंतर्वर्गले चार यदस्वी कुमार प्रकट हुए । वे परमोत्तम असंख्य तथा परमदसके स्तरूप थे । उनके नाम ये—सुनन्द,

नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन । ये सब-के-सब महात्मा थे और ब्रह्माजीके शिष्य हुए । इनसे वह ब्रह्मलोक व्याप्त हो गया । तदनन्तर सद्योजातस्तरूपसे प्रकट हुए परमेश्वर शिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको शान तथा सुष्ठिरचनाकी शक्ति प्रदान की । ( यह सद्योजात नामक पहला अवतार हुआ । )

**तदनन्तर** 'रक्त' नामसे प्रसिद्ध वीसवाँ कल्प आया । उस कल्पमें ब्रह्माजीने रक्तवर्णका शरीर धारण किया था । जिस समय ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे एक पुत्र प्रकट हुआ । उसके शरीरपर लाल रंगकी माला और लाल ही वस्त्र शोभा पा रहे थे । उसके नेत्र भी लाल थे और वह आभूषण भी लाल रंगका ही धारण किये हुए था । उस महान् आत्मवलसे सम्बन्ध कुमारको देखकर ब्रह्माजी ध्यानस्थ हो गये । जब उन्हें शात हो गया कि ये वामदेव शिव हैं, तब उन्होंने हाथ जोड़कर उस कुमारको प्रणाम किया । तत्पश्चात् उनके विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी लाल वस्त्र धारण किये हुए थे । तब वामदेवस्त्रधारी परमेश्वर शम्भुने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको शान तथा सुष्ठिरचनाकी शक्ति प्रदान की । ( यह 'वामदेव' नामक दूसरा अवतार हुआ । )

इसके बाद इक्कीसवाँ कल्प आया, जो 'पीतवासा' नामसे कहा जाता था । उस कल्पमें महाभाग ब्रह्मा पीतवस्त्रधारी हुए । जब वे पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उस समय उनसे एक महातेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ । उस प्रौढ़ कुमारकी भुजाएँ विशाल थीं और उसके शरीरपर पीताम्बर शलमला रहा था । उस ध्यानसमग्र वालको देखकर ब्रह्माजीने अपनी बुद्धिके वलसे उसे 'तत्पुरुष' शिव समझा । तब उन्होंने ध्यानयुक्त चित्तसे सम्पूर्ण लोकोंद्वारा नमस्कृत महादेवी शांकरी गायत्री ( तत्पुरुषाव विद्वाहे महादेवाय धीमहि ) का जप करके उन्हें नमस्कार किया, इससे महादेवजी प्रसन्न हो गये । तत्पश्चात् उनके पार्वत्यमागसे पीतवस्त्रधारी दिव्यकुमार प्रकट हुए, वे सब-के-सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए । ( यह 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार हुआ । )

तत्पश्चात् त्यन्तम् ब्रह्माके उग पीतवर्ण नामक कल्पके वर्त जानेपर एन: दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ । उसका नाम 'शिव'

था । जब एकार्णवकी दशामें एक रात्रि दिवा नर्त घटीत हो गये, तब ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेली इच्छाये मुखी हो विचार करने लगे । उस समय उन गहरेजल्सी ब्रह्मके यमश एक कुमार उत्पन्न हुआ । उस महापराक्रमी वालके हारीरका रंग काला था । वह अपने तेजसे उद्धीस हो रहा था तथा काला बल, काली पगड़ी और काला यशोर्णात धारण किये हुए था । उसका मुकुट भी काला था और स्नानके पश्चात् अनुलेपन—चन्दन भी काले रंगका हुया था । उन भयंकरपराक्रमी, महामनस्ती, देवदेवंशारु अलौकिक, कृष्णपिङ्गल वर्णवाले अधोरको देखकर ब्रह्माजीने उनकी वन्दना की । तत्पश्चात् ब्रह्माजी उन भक्त्यत्सल अविनाशी अधोरको ब्रह्मरूप समझकर इष्ट वचनोद्धारा उनकी स्फुति करने लगे । तब उनके पार्श्वभागसे कृष्णवर्णवाले तथा काले रंगका अनुलेपन धारण किये हुए चार महामनस्ती कुमार उत्पन्न हुए । वे सब-के-सब परम तेजस्ती, अव्यक्तज्ञामा तथा शिव-सरीखे रूपवाले थे । उनके नाम थे—कृष्ण, कृष्णशिव, कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक् । इस प्रकार उत्पन्न होकर इन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टिरचनाके निमित्त महान अद्भुत 'धोर' नामक योगका प्रचार किया । ( यह 'अधोर' नामक चौथा अवतार हुआ । )

मुनीश्वरो ! तदनन्तर ब्रह्माका दूसरा कल्प प्रारम्भ हुआ । वह परम अद्भुत था और 'विश्वरूप' नामसे विख्यात था । उस कल्पमें जब ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे मन-ही-भन शिवजी-का व्यानकर रहे थे, उसी समय महान सिंहनाद करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई तथा उसी प्रकार परमेश्वर भगवान् ईशान प्रादुर्भूत हुए, जिनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान उच्चवल था और जो समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे । उन अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सब कुछ प्रदान करनेवाले, सर्वस्वरूप, सुन्दर रूपवाले तथा अरूप ईशानको देखकर ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया । तब शक्तिसहित विभु ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश देकर चार सुन्दर

वाल-ही-ही करना की । उन उत्तम हुए विश्वरूपका नाम श-बर्थी, मुण्डी, शिराण्डी और अर्द्धमुण्ड । वे योगानुज्ञा लक्ष्मी का पाद्मन करके योगगतिको प्राप्त हो गये । ( यह ईशान नक्ष-पाँचवाँ अवतार हुआ । )

सर्वो गणतन्त्रमारजी ! इस प्रकार मैंने जगतकी हिक्काद से सद्योजात आदि अवतारोंका प्राकृत्य संक्षेपसे ब्रूप दिया । उनका वह भारा लोकहितकारी व्यवहार याथात्यस्यसे ऋषिमें वर्तमान है । महेश्वरकी ईशान, पुरुष, वोरु वामदेव ; श्रद्धा—रो पाँच गृहिणीयों विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं । इनमें ई जो शिवताला तथा शत्रुसे बड़ा है, पहला कहा जाता है । याद्यात् प्रकृतिके भोक्ता श्वेतव्रतमें निवास करता है । शिवजी दूसरा त्वरण तत्पुरुष नामसे ख्यात है । वह मुर्गोंके अस्त तथा भोग्य सर्वशम्भुं अधिकृत है । शिवाकथाएँ शिवजी अधोर नामक तीसरा सल्लम है, वह धर्मके लिये अद्वैत उपदित्तत्त्वका विस्तार करके अंदर विराजमान रहता है । तीसं नामवाला शंखरका चौथा स्वरूप अहंकारका अधिकान है । सदा अनेकों प्रकारका कार्य करता रहता है । विचार दुदिगमानोंका कथन है कि शंखरका ईशानसंशक्त स्वरूप वैद्य कर्ण, चाणी और सर्वव्यापी आकाशका अधीक्षक है । महेश्वरका पुरुष नामक रूप त्वक्, पाणि और सर्वशुद्धिर्वायुका स्वामी है । मनीषीण अधोर नामवाले रूपके वैद्य रस, रूप और अग्निका अधिष्ठान वतलाते हैं । शंखजै वामदेवसंशक्त स्वरूप रसना, पायु, रस और बलका स्वामी जाता है । प्राण, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वीका ईश्वर शिवजी सद्योजातनामक रूप वताया जाता है । कल्याणकामी मनुष्यों शंखरजीके इन स्वरूपोंकी सदा प्रयत्नपूर्वक वन्दना वैद्य चाहिये; क्योंकि ये श्रेवःप्राप्तिमें एकमात्र हेतु हैं । जो मनु इन सद्योजात आदि अवतारोंके प्राकृत्यको पढ़ता अथवा कुर्त है, वह जगतमें समस्त काम्य भोगोंका उपभोग करके अंत परमगतिको प्राप्त होता है । ( अच्च ! )

### शिवजीकी अष्टमूर्तियोंका तथा अर्धनारीनरूपका सविस्तर वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—ऐश्वर्यशाली मुने । अब तुम महेश्वरके उन श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन श्रवण करो, जो लोकमें सबके सम्पूर्ण कार्योंको पूर्ण करनेवाले अतएव सुखदाता हैं । तात ! यह जगत् उन परमेश्वर शम्भुकी आठ मूर्तियोंका रूप ही है । जैसे सूर्यमें मणियाँ पिरोयी रहती हैं, उसी तरह

यह विश्व उन अष्टमूर्तियोंमें व्याप्त होकर स्थित है । वे प्रत्येक आठ मूर्तियाँ ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पुरुष ईशान और महादेव । शिवजीके इन शर्व आदि अष्टमूर्तियोंके पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रवा, सूर्य और चंद्र अधिष्ठित हैं । शास्त्रका ऐसा निश्चय है कि कल्प-

महेश्वरका विद्वन्मध्यभागात्मक रूप ही चराचर विद्वको धारण किये हुए है। परमात्मा शिवका सलिलात्मक रूप जो समस्त जगत्‌को जीवन प्रदान करनेवाला है, 'भव' नामसे कहा जाता है। जो जगत्‌के बाहर-भीतर वर्तमान है और स्वयं ही विश्वका भरण-पोषण करता तथा स्पन्दित होता है, उग्रलम्फारी प्रभुके उस रूपको सत्युषुष्म 'उग्र' कहते हैं। महादेवका जो सवको अवकाश देनेवाला सर्वव्यापी आकाशात्मक रूप है, उसे 'भीम' कहते हैं। वह भूतबृन्दका मेदक है। जो रूप समस्त आत्माओंका अधिष्ठान, सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाला और जीवोंके भव-पश्चाका छेदक है, उसे 'पशुपति'का रूप समझना नाहिये। महेश्वरका सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करनेवाला जो नामक रूप है, उसे 'ईशान' कहते हैं। वह द्युलोकमें प्रण करता है। असृतमयी रश्मियोंवाला जो चन्द्रमा सम्पूर्ण त्वको आह्वादित करता है, शिवका वह रूप 'महादेव' मासे पुकारा जाता है। 'आत्मा' परमात्मा शिवका आठवाँ है। यह मूर्ति अन्य मूर्तियोंकी व्यापिका है। इसलिये सारा त्व शिवमय है। जिस प्रकार वृक्षके मूलको सींचनेसे उसकी खाएँ पुष्टित हो जाती हैं, उसी तरह शिवका पूजन करनेसे वस्त्ररूप विश्व परिषुष्ट होता है। जैसे इस लोकमें पुत्र-पौत्र दिको प्रसन्न देखकर पिता हर्षित होता है, उसी तरह विश्व-भलीभाँति हर्षित देखकर शंकरको आनन्द मिलता है। गलिये यदि कोई किसी भी देहधारीको कष्ट देता है तो रसदेह मानो उसने अष्टमूर्ति शिवका ही अनिष्ट किया है। नकुमारजी ! इस प्रकार भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंप्रण समस्त विद्वको अधिष्ठित करके विद्यमान हैं, अतः तुम भी भक्तिमावसे उन परम कारण रुद्रका भजन करो।

ऐय सनकुमारजी ! अब तुम शिवजीके अनुपम अर्धनारी-रूपका वर्णन सुनो। महाप्राप्त ! वह रूप व्रहाकी कामनाओं-पूर्ण करनेवाला है। ( सृष्टिके आदिसे ) जब सुष्ठिकर्ता शादारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं, व वहा उन दुःखसे दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी काम वो आकाशवाणी हुई—'व्रहान् ! अब मैथुनी सुष्ठिकी मां करो।' उस व्योमवाणीको सुनकर व्रहाने मैथुनी सुष्ठि-प्रय कर्त्तेका विचार किया; परंतु इससे पहले नारियोंका कुल हमनेप्रकट ही नहीं हुआ था, इसलिये पद्मवोनि व्रहा इडी चटि रचनेमें समर्थ न हो रहे। तब वे वो विचार कर कि अमृती छपके विना मैथुनी प्रवा उत्पत्त नहीं हो सकती, इसी विषये उपर दुए। उस समय व्रहा पराशक्ति-

शिवसंहित परमेश्वर शिवका प्रेमपूर्वक हृदयमें ध्यान करके धोर तप करने लगे। तदनन्तर तपोऽनुष्ठानमें लगे हुए व्रहाके उस तीव्र तपसे थोड़े ही समयमें शिवजी प्रसन्न हो गये। तब वे कष्टहारी शंकर पूर्णसच्चिदानन्दकी कामदा भूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारी-नरके रूपसे व्रहाके निकट प्रकट हो गये। उन देवाधिदेव शंकरको पराशक्ति शिवके साथ आया हुआ देख व्रहाने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। तब विश्वकर्ता देवाधिदेव महादेव महेश्वर परम प्रसन्न होकर व्रहासे भेषकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले।



ईश्वरने कहा—महाभाग वस्त ! मेरे प्यारे पुत्र पितामह ! मुझे तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्णतया शात हो गया है। तुमने जो इस समय प्रजाओंकी वृद्धिके लिये वेर तप किया है, तुम्हारे उस तपसे मैं प्रनन्द हो गया हूँ और तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूँगा। वों त्वंश्वरने ही भयुर तथा परम उदार वचन कहकर शिवजीने अपने शरीरके अर्धभग्जे शिवादेवीको पृथक् कर दिया। तब शिवसे पृथक् होकर प्रकट हुई उन परम शक्तियोंद्वारा व्रहा विनम्रभावसे प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करने लगे।

व्रहाने कहा—हिंदे ! सृष्टिके प्रारम्भमें तुम्हारे पति देवाधिदेव परमात्मा रामसुने संगी सृष्टि की पी और ( भेंद्रदारा )

सारी प्रजाओंकी रचना की थी । शिवे ! तब मैंने देवता आदि समस्त प्रजाओंकी मानसिक सुषिटि की; परंतु वारंवार रचना करनेपर भी उनकी वृद्धि नहीं हो रही है, अतः अब मैं स्त्री-पुरुषके समागमसे उत्पन्न होनेवाली सुषिटिका निर्माण करके अपनी सारी प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ । जिन्हुं अभीतक तुमसे अक्षय नारीकुलका प्राकृत्यं नहीं हुआ है, इस कारण नारीकुलकी सुषिटि करना मेरी शक्तिके बाहर है । चूँकि सारी शक्तियोंका उद्भवस्थान तुम्हीं हो, इसलिये मैं तुम अपिलेश्वरी परमा शक्तिसे प्रार्थना करता हूँ । शिवे ! मैं तुम्हें नमस्त्वार करता हूँ, तुम मुझे नारीकुलकी सुषिटि करनेके लिये शक्ति प्रदान करो; क्योंकि शिवप्रिये ! इसीको तुम चराचर जगत्की उत्सत्तिका कारण समझो । वरदेश्वर ! मैं तुमसे एक और वरकी याचना करता हूँ, जानमातः ! कृपा करके उसे भी मुझे दीजिये । मैं तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ । ( वह वर यह है— ) पर्वतव्यापिनी जगत्तनानि ! तुम चराचर जगत्की वृद्धिके लिये अपने एक सर्वसमर्थ स्फरे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाओ ।<sup>१</sup> ब्रह्माद्वारा यों याचना किये जानेपर परमेश्वरी देवी द्विवाने 'तथास्तु—ऐसा ही होगा' कहकर वह

शक्ति ब्रह्माको प्रदान कर दी । मुहरां ब्रग्नमवैशिष्ठ्यम् शिवा देवीनं आनी भौदेंके मध्यभागसे अने ही क्षम प्रभानाली एक शक्तिकी रचना की । उस शक्तिको तेज देवत्रेषु भगवान् शंकर, जो लीलाकारी, कद्यहरी और हृष्ट गागर है, हाँसते हुए जादम्बिकासे बोले ।

शिवजीने कहा— देवि ! परमेश्वी ब्रह्मने तत्त्वात् तुम्हारी आरामना की है, अतः अब तुम उनका प्रज्ञ है जाओ और उनका भार मनोरथ पूर्ण करो । तब त्वं परमेश्वर द्विवर्ती उस आशको सिर झुकाकर प्रश्न कि ब्रह्माकि कथनात्मार दक्षकी पुत्री होना स्वीकार अ मुने ! इस प्रकार शिवादेवी ब्रह्माको अनुपम शक्ति प्रश्न शम्भुके शरीरमें प्रविष्ट हो गयी । तत्यशात् भगवान् भी तुरंत ही अन्तर्धान हो गये । तर्थसे इस लोकमें ह की कलाना हुई और मैथुनी सुषिटि चल पड़ी; इसे महान् आगन्द्र प्रात हुआ । तात ! इस प्रकार मैं शिवजीके महान् अनुपम अर्धनरी-नर्धर्ष त्वक्का कर्म दिया, यह सत्पुत्रोंके लिये मङ्गलदायक है । ( अव्याप्ति

### वाराहकल्पमें होनेवाले शिवजीके प्रथम अवतारसे लेकर नवम ऋष्यभ-अवतारतकक्ष का वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं— सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! एक बार रुद्रने हर्षित होकर ब्रह्माजीसे शंकरके चरित्रका प्रेमपूर्वक वर्णन किया था । वह चरित्र सदा परम सुखदायक है । ( उसे तुम अवण करो । वह चरित्र इस प्रकार है । )

शिवजीने कहा था— ब्रह्मन् ! वाराहकल्पके सातवें मन्त्रन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैवस्तत मनुके पुत्र होंगे । तब उस मन्त्रन्तरकी चतुर्युगियोंके किसी द्वापरयुगमें मैं लोकोपर अनुग्रह करने तथा ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये प्रकट हूँगा । ब्रह्मन् ! युग-प्रवृत्तिके अनुसार उस प्रथम चतुर्युगिके प्रथम द्वापरयुगमें जब प्रभु स्वयं ही व्यास होंगे, तब मैं उस कलियुगके अन्तमें ब्राह्मणोंके हितार्थ शिवासहित इवेत नामक महामुनि होकर प्रकट हूँगा । उस समय हिमालयके रमणीय शिखर छागल नामक पर्वतश्रेष्ठपर मेरे शिखाधारी चार शिष्य उत्पन्न होंगे । उनके नाम होंगे— इवेत, श्वेतशिख, श्वेताश्र और श्वेतलोहित । ये चारों ध्यानयोगके आश्रयसे मेरे भगवर्में जायेंगे । वहाँ वे मुझ अविनाशीको तत्त्वतः जानकर मेरे भक्त हो जायेंगे । वहाँ वे

१ जरा और मृत्युसे रहित होकर परब्रह्मकी समाधिमें लीन

रहेंगे । वत्स पितामह ! उस समय मनुष्य ध्यानके अदान, धर्म आदि कर्महितुक साधनोद्दाय मेरा दर्शन न सकेंगे । दूसरे द्वापरमें प्रजापति सत्य व्यास होंगे । उस मैं कलियुगमें सुतार नामसे उत्पन्न होऊँगा । वहाँ भी मेरें शतल्प, हृषीक तथा केतुमान् नामक चार वेदवारी शिष्य होंगे । वे चारों ध्यानयोगके बलसे मेरे नामके और मुझ अविनाशीको तत्त्वतः जानकर मुक्त हो ज तीसरे द्वापरमें जब भार्गव नामक व्यास होंगे, तब नगरके निकट ही दमन नामसे प्रकट होऊँगा । उस सम मेरे विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक नाम होंगे । चतुरानन ! उस अवतारमें मैं शिष्योंके साथ लेः की सहायता करूँगा और उस कलियुगमें निवृत्तिरागभैः बनाऊँगा । चौथे द्वापरमें जब अङ्गिरा व्यास कहे ज उस समय मैं सुहोत्र नामसे अवतार करूँगा । उस भी मेरे चार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे । ब्रह्मन् ! उनके होंगे— सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्षम । उस भी इन शिष्योंके साथ मैं व्यासकी सहायतामें लगा दै पाँचवें द्वापरमें सविता व्यास नामसे कहे जायेंगे । ग

कङ्क नामक महातपस्ती योगी होऊँगा । ब्रह्मन् ! वहाँ भी मेरे बार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे । उनके नाम बतलाता हूँ, मुनो—सनक, सनातन, प्रभावशाली सनन्दन और सर्वव्यापक नैर्मल तथा अहंकारहित सनत्कुमार । उस समय भी कङ्क नामधारी मैं सविता नामक व्यासका सहायक बनूँगा और निवृत्तिमार्गको बद्धाऊँगा । पुनः छठे द्वापरके प्रवृत्त व्यापरके जब मृत्यु लोककारक व्यास होंगे और वेदोंका विभाजन करेंगे, उस समय भी मैं व्यासकी सहायता करनेके लिये लोकाक्षि नामसे प्रकट होऊँगा और निवृत्ति-पथकी उन्नति करूँगा । वहाँ भी मेरे चार दृढ़वती शिष्य होंगे । उनके नाम होंगे—सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय । विधे । सातवें द्वापरके आरम्भमें जब शतक्रतु नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं योगमार्गमें रम निपुण जैगीपव्य नामसे प्रकट होऊँगा और काशीपुरीमें गुफाके अंदर दिव्यदेशमें कुशासनपर बैठकर योगको सुदृढ़ बनाऊँगा तथा शतक्रतु नामक व्यासकी सहायता और संसार-भूम्यसे भक्तोंका उद्धार करूँगा । उस युगमें भी मेरे सारस्वत, श्रीगीश, मेघधाह और सुवाहन नामक चार पुत्र होंगे । आठवें द्वापरके आनेपर मुनिवर वसिष्ठ वेदोंका विभाजन करनेवाले भैश्यास होंगे । योगवित्तम् ! उस युगमें भी मैं दधिवाहन नामसे अवतार लूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा । उस प्रमय कपिल, आसुरि, पञ्चशिल और शाल्वलपूर्वक नामवाले ऐसे चार योगी पुत्र उत्पन्न होंगे, जो मेरे ही समान होंगे । लक्ष्मन् ! नवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें मुनिश्रेष्ठ सारस्वत व्यास नामसे प्रसिद्ध होंगे । उन व्यासके निवृत्तिमार्गकी बृद्धिके लिये यान करनेपर मैं ऋषभनामसे अवतार लूँगा । उस समय शिरशर, गर्व, भार्गव तथा गिरिजा नामके चार महायोगी मेरे

शिष्य होंगे । प्रजापते ! उनके सहयोगसे मैं योगमार्गको सुदृढ़ बनाऊँगा । सन्मुने ! इस प्रकार मैं व्यासका सहायक बनूँगा । ब्रह्मन् ! उसी रूपसे मैं बहुतसे दुखी भक्तोंपर दया करके उनका भवसागरसे उद्धार करूँगा । मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको संतोष देने वाला और नाना प्रकारसे रक्षा करनेवाला होगा । उस अवतारमें मैं भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषदोषसे मर जानेके कारण पिताद्वारा त्याग दिया जायगा, जीवन प्रदान करूँगा । तदनन्तर उस राजपुत्रकी आयुके सोलहवें वर्षमें ऋषभ ऋषि, जो मेरे ही अंश हैं, उसके घर पधारेंगे । प्रजापते ! उस राजकुमारद्वारा पूजित होनेपर वे सद्गुप्तधारी कृपालु मुनि उसे राजधर्मका उपदेश करेंगे । तत्पश्चात् वे दीनवत्सल मुनि हर्षित चित्तसे उसे दिव्य कवच, शङ्ख और सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला एक चमकीला लक्ष्म प्रदान करेंगे । फिर कृपापूर्वक उसके शरीरपर भस्म लगाकर उसे वारह हजार हाथियोंका भल भी देंगे । यो भातासहित भद्रायुको भलीभौंति आश्वासन देकर तथा उन दोनोंद्वारा पूजित हो प्रभावशाली ऋषभ मुनि स्वेच्छानुसार चले जायेंगे । ब्रह्मन् ! तब राजर्षि भद्रायु भी रिपुणोंको जीतकर और कीर्तिमालिनीके साथ विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करेगा । मुने ! मुझ शंकरका वह ऋषभ नामक नवाँ अवतार ऐसा प्रभावशाला होगा, वह सत्पुरुषोंकी गति तथा दीनोंके लिये बन्धु-सा हितकारी होगा । मैंने उसका वर्णन तुम्हें कुना दिया । वह ऋषभ-चरित परम पावन, महान् तथा सर्व, वश और आयुको देनेवाला है; अतः इसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये । ( अध्याय ४ )

### शिवजीद्वारा दसवेंसे लेकर अड्डाईसवें योगेश्वरावतारोंका वर्णन

शिवजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! दसवें द्वापरमें त्रिधामा भक्तें मूनि व्यास होंगे । वे हिगाल्यके रमणीय शिवर त्रित्यम भृत्युद्धिपर निवास करेंगे । वहाँ भी मेरे श्रुतिविदित र पुत्र होंगे । उनके नाम होंगे—भृद्ध, वल्लवन्धु, नरामित्र और तरोपन केतुशङ्क । यारहवें द्वापरमें जब त्रिवृतनामक ऐसे होंगे, तब मैं कलियुगमें गङ्गाद्वारमें तप नामसे प्रकट होंगा । वहाँ भी मेरे लम्बोदर, लम्बाज्ञ, केशरम्य और अमर नामक चार दृढ़वती पुत्र होंगे । यारहवें चतुर्युगीके द्वियुगमें शततेज नामके येदव्याल होंगे । उस समय मैं भिरके सम्मत शेषिपर कलियुगमें ऐमकञ्जुकमें जाकर अत्रि

नामसे अवतार लूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृत्तिमार्ग-को प्रतिष्ठित करूँगा । महामुने ! वहाँ भी मेरे सर्वज्ञ, समद्विद्व, शाश्व और शर्व नामक चार उत्तम योगी पुत्र होंगे । तेरहवें द्वापरयुगमें जब धर्मस्वल्प नारायण व्यास होंगे, तब मैं पर्यव-श्रेष्ठ गन्धमादनपर वालवित्याग्रममें महामुनि वलि नामसे उत्पन्न होंगा । वहाँ भी मेरे सुधामा, काश्य, वसिष्ठ और विरजा नामक चार दुन्दर पुत्र होंगे । चौदहवें चतुर्युगीके द्वापरयुगमें जब रक्षा नामक व्यास होगे, उस समय मैं अद्विराके वंशमें गौतम नामसे उत्पन्न होऊँगा । उस कलियुगमें भी अत्रि; वशद, त्रिवय और इष्टपूर्वक मेरे पुत्र होंगे । पंद्रहवें द्वापरमें जय व्रत्याद्वि-

व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके गृष्ठभागमें स्थित वेदशीर्ष नामक पर्वतपर सरस्वतीके उत्तरतटका आश्रय ले वेददिवा नामसे अवतार ग्रहण करँगा। उस समय महापाराक्रमी वेददिवा ही मेरा अस्त्र होंगा। वहाँ भी मेरे चार दृढ़ पराक्रमी पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—कुणि, कुणिवाहु, कुशरीर और कुनेधक।

सोलहवें द्वापरयुगमें जब व्यासका नाम देव होगा, तब मैं योग प्रदान करनेके लिये परम पुण्यमय गोकर्णवनमें गोकर्ण नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे काश्यप, उशना, अ्यवन और वृहस्पति नामक चार पुत्र होंगे। वे जलके समान निर्मल और योगी होंगे तथा उसी मार्गके आश्रयसे शिवलेकको प्राप्त हो जायेंगे। सतरहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें देवकृतंजय व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके अत्यन्त ऊँचे एवं रमणीय शिखर महालय पर्वतपर गुहावासी नामसे अवतार धारण करँगा; क्योंकि हिमालय शिवलेन्द्र कहलाता है। वहाँ उत्तर्य, वामदेव, महायोग और महावल नामके मेरे पुत्र भी होंगे। अठारहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें जब ऋतंजय व्यास होंगे, तब मैं हिमालयके उस मुन्दर शिखरपर, जिसका नाम शिलष्टी पर्वत है और जहाँ महान् पुण्यमय सिद्धक्षेत्र तथा सिद्धोद्वारा सेवित शिखण्डीवन भी है, शिखण्डी नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँ भी वाचःश्रवा, रचीक, श्यावास्य और यतीश्वर नामक मेरे चार तपत्वी पुत्र होंगे। उन्नीसवें द्वापरमें महासुनि भरद्वाज व्यास होंगे। उस समय भी मैं हिमालयके शिखरपर माली नामसे उत्पन्न होऊँगा और मेरे सिरपर लंबी-लंबी जटाएँ होंगी। वहाँ भी मेरे सागरके से गम्भीर स्वभाववाले हिरण्यनामा, कौसल्य, लोकांशि और प्रधिमि नामक पुत्र होंगे। वीसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें होनेवाले व्यासका नाम गोतम होगा। तब मैं भी द्विमानके गृष्ठभागमें स्थित पर्वतशेष अद्वासपर, जो सदा देवता, मनुष्य, यज्ञेन्द्र, सिद्ध और चारणोद्वारा अधिष्ठित रहता है, अद्वास नामसे अवतार धारण करँगा। उस युगके मनुष्य अद्वासके प्रेमी होंगे। उस समय भी मेरे उत्तम योगसम्बन्ध चार पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—सुमन्तु, वर्वरि, विद्वान् कम्बन्ध और कुणिकन्धर। इक्षीसवें द्वापरयुगमें जब वाचःश्रवा नामके व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे प्रकट होऊँगा। इसलिये उस शुभ स्थानका नाम ‘दारुवन’ पड़ जायगा। वहाँ भी मेरे प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम नामके चार परम योगी पुत्र उत्पन्न होंगे। वाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं भी वाराणसीपुरीमें इन्द्र, भैस नामक महासुनिके रूपमें अद्यतरित होऊँगा। उस

कलियुगमें इन्द्रसहित समस्त देवता मुझ हृष्युक्षयार्थी दर्शन करेंगे। उत्त अवतारमें भी मेरे भैश्वरी, मृत्यु और दंततांत्रितु नामक चार परम धार्मिक पुत्र होंगे। चतुर्युगीमें जब तृणविन्दु बुनि व्यास होंगे, तब मैं कालिदासगिरिपर श्वेत नामसे प्रकट होऊँगा। इहूँ उत्तिक, नृहरत्न, देवल और कवि नामसे प्रसिद्ध चार पुत्र होंगे। नौवीनीनां चतुर्युगीमें जब ऐश्वर्यशाली कुच्छ तथा उत्त युगमें मैं नैनिपक्षेश्वरमें शूली नामक महाकार्ण उत्पन्न हूँगा। उस युगमें भी मेरे चार तपत्वी शिष्य हैं उनके नाम होंगे—शालिहोत्र, आग्निवेद्य, युवनात्र और क्षपनीयवें द्वापरमें जब व्यास शक्ति नामसे प्रसिद्ध होते हैं भी प्रभावशाली एवं दण्डधारी महायोगीके रूपमें होंगा। मेरा नाम मुण्डीश्वर होगा। उस अवतारमें मैं उपर्युक्त, कुम्भाण्ड और प्रवाहक मेरे तपत्वी शिष्य हैं उच्चीसवें द्वापरमें जब व्यासका नाम परायर होगा वै भद्रवट नामक नगरमें सहिष्णु नामसे अवतार रहेंगे। समय भी उल्क, विद्युत्, शम्भूक और आवलयन नाम चार तपत्वी शिष्य होंगे। सत्ताइसवें द्वापरमें जब वर्त व्यास होंगे, तब मैं भी प्रभासतीर्थमें सोमवर्मा नामसे होंगा। वहाँ भी अक्षराद, कुमारु उल्क और वर्त के प्रसिद्ध मेरे चार तपत्वी शिष्य होंगे। अद्वैसवें द्वापरमें भगवान् श्रीहरि पराशके पुत्ररूपमें द्वैपायन नामक व्यास होंगे। पुष्पोत्तम श्रीकृष्ण अपने छठे अंशसे वसुदेवके श्रेष्ठ पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर वासुदेव कहलायेंगे। उसी समय वेद में भी लोकोंकी आश्रयमें डालनेके लिये वोगमायके प्रसिद्ध व्रहचारीका शरीर धारण करके प्रकट होऊँगा। जिसके भूमिमें मृतकरूपसे पड़े हुए अविच्छिन्न शरीरद्वे देवता श्रावणोंके हित-साधनके लिये योगमायाके अश्रवसे उर्मी जाऊँगा और फिर तुम्हारे तथा विष्णुके साथ मेरणिकी जाऊँगा। वहाँ मैं भी मरी दिव्य गुहामें प्रवेश करूँगा। व्रहत् ! वहाँ मैं भी लकुली होगा। इस प्रकार मेरा यह कायावतार उक्तविद्वन् कहलायेगा और यह जवतक पृथ्वी कायम रहेगी तकतवें परम विल्वात रहेगा। उस अवतारमें भी मेरे चार तपत्वी शिष्य होंगे। उनके नाम कुविक, गर्भा, मित्र और दैन होंगे। वे वेदोंके पारगामी ऊर्ध्वरेता श्रावण योगी होंगे। माहेश्वर योगको प्राप्त करके शिवलेकको चले जायेंगे।

उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले मुनियो। इह परसात्मा शिष्यने वैद्यस्त मन्त्रन्तरके सभी चतुर्युगीके

श्वरावतारोंका सम्बद्ध रूपसे वर्णन किया था। विभो ! अष्टाईस व्यास क्रमशः एक-एक करके प्रत्येक द्वापरमें होंगे और योगेश्वरावतार प्रत्येक कल्युगके प्रारम्भमें। प्रत्येक योगेश्वरावतार-के साथ उनके चार अविनाशी शिष्य भी होंगे, जो महान् शिवभक्त और योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले होंगे। इन पशुपति-के शिष्योंके शरीरोंपर भस्म रमी रहेगी, ललाट त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित रहेगा और रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूयण होगा। ये सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्गके पारगमी विद्वान् और सदा वाहर-भीतरसे लिङ्गार्चनमें तत्पर रहनेवाले

होंगे। ये शिवजीमें भक्ति रखकर योगपूर्वक ध्यानमें निष्ठा रखनेवाले और जितेन्द्रिय होंगे। विद्वानोंने इनकी संख्या एक सौ बारह बतलायी है। इस प्रकार मैंने अष्टाईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर कृष्णावतारपर्यन्त सभी अवतारोंके लक्षणोंका वर्णन कर दिया। जब श्रुतिसमूहोंका वेदात्मके रूपमें प्रयोग होगा, तब उस कल्पमें कृष्णदैपावन व्यास होंगे। यो महेश्वरने व्रहाजीपर अनुग्रह करके योगेश्वरावतारोंका वर्णन किया और फिर वे देवेश्वर उनकी ओर दृष्टिपात करके वहाँ अन्तर्धान हो गये। ( अध्याय ५ )

### नन्दीश्वरावतारका वर्णन

यहाँतक वयालीस अवतारोंका वर्णन किया गया। अब दीश्वरावतारका वर्णन किया जाता है।

सनकुमारजीने पूछा—प्रभो ! आप महादेवके अंश-उत्पन्न होकर पीछे शिवको कैसे प्राप्त हुए थे ? वह सारा चान्त मैं सुनना चाहता हूँ, उसे वर्णन करनेकी कृपा करें।

नन्दीश्वर बोले—सर्वज्ञ सनकुमारजी ! मैं जिस प्रकार हादेवके अंशसे जन्म लेकर शिवको प्राप्त हुआ, उस सङ्क्रमणका वर्णन करता हूँ; तुम सावधानीपूर्वक श्रवण करो। शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। सितरोंके आदेशसे होने अयोनिज सुव्रत मृत्युदीन पुत्रकी प्राप्तिके लिये तप के देवेश्वर इन्द्रको प्रसन्न किया। परंतु देवराज इन्द्रने ही पुत्र प्रदान करनेमें अपनेको असमर्थ बताकर सर्वेश्वर दीरक्षिसम्बन्ध महादेवकी आराधना करनेका उपदेश दिया। शिलाद भगवान् महादेवको प्रसन्न करनेके लिये तप करने थे। उनके तपसे प्रसन्न होकर महादेव वहाँ पधारे और अस्माधिमन्त्र शिलादको थपथपाकर लगाया। तब शिलादने यह स्वतन्त्र किया और भगवान् शिवके उन्हें वर देनेको छुट होनेपर उनसे कहा—प्रभो ! मैं आपके ही समान ही अयोनिज पुत्र चाहता हूँ। तब शिवजी प्रसन्न होकर ये बोले।

शिवजीने कहा—तपोधन विप्र ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने, मैंने तथा वडे-चडे देवताओंने मेरे अवतार धारण करनेके लाभ्यदारा नेरी अराधना की थी। इसलिये मुझे ! मैं जो बगतका स्तिता हूँ, फिर भी तुम मेरे पिता बनोगे मैं तुम्हारा अयोनिज पुत्र होऊँगा तथा नेरा नाम देऊँगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यो कहकर कृपालु शंकरने अपने चरणोंमें प्रणिपात करके सामने खड़े हुए शिलाद मुनिकी ओर कृपादृष्टिसे देखा और उन्हें ऐसा आदेश दे वे बुरंत ही उमसहित वहाँ अन्तर्धान हो गये। महादेवजीके चले जानेके पश्चात् महामुनि शिलादने अपने आश्रममें आकर प्रृथियोंसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कुछ समय बीत जानेके बाद जब यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिताजी यज्ञ करनेके लिये यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे, उसी समय मैं शम्भुकी आश्रमसे यज्ञके पूर्व ही उनके शरीरसे उत्पन्न हो गया। उस समय मेरे शरीरकी प्रभा युगान्तकालीन अग्निके समान थी। तब सारी दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी और शिलाद मुनिकी भी वडी प्रशंसा हुई। उधर शिलादने भी जब मुझ बालकको प्रलय-कालीन सूर्य और अग्निके सदृश प्रभाशाली, चिनेत्र, चतुर्मुज, प्रकाशमान, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि आयुधोंसे युक्त, सर्वथा रुद्रल्पमें देखा, तब वे महान् आनन्दमें निमग्न हो गये और मुझ प्रणम्यको नमस्कार करते हुए कहने लगे।

शिलाद बोले—मुरेश्वर ! चूँकि तुमने नन्दी नामसे प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिये मैं तुम आनन्दमय जगदीश्वरको नमस्कार करता हूँ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर जैसे निर्धन-को निधि प्राप्त हो जानेसे प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार मेरी प्राप्तिसे हार्षित होकर पिताजीने महेश्वरकी भर्तीभौति चन्दना की ओर फिर मुझे लेकर वे दीप थी अपनी दर्शालालों चल दिये। महामुने ! जब मैं शिलादकी कृष्णियाँ पहुँच गया, तब मैंने अपने उस रुद्रक धरित्वाग करके मनुश्वर धारण कर लिया। तदनन्तर शालकावननन्दन पुत्रवल्लव यिद्युदने नेरे

जातकर्म आदि सभी संस्कार रामना किये । फिर पाँचमें वर्षमें पिताजीने मुरी लाङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेदोंमा तथा अन्यान्य शिवजी का भी अव्ययन कराया । सातवां वर्ष पूरा होनापर विवाहीन आशासे मित्र और वरण नामके मुनि द्वारा देवताने के लिये पिता जीके आश्रमपर पधारे । शिलाद मुनिने उनकी पूरी आगमगत की । जब वे दोनों महात्मा मुनीश्वर आनन्दपूर्वक आगतापर विराज गये, तब मेरो ओर वारंवार निशारकर चले ।

**मित्र और वरुणने कहा—**“तात शिलाद ! यद्यपि तुम्हारा पुत्र नन्दी सम्पूर्ण शाखोंके अर्थोंका पारगामी विद्वान् है, तथा पिता इसकी आयु बहुत थोड़ी है । हमने बहुत तरहसे विचार करके देखा, परंतु इसकी आयु एक वर्षसे अधिक नहीं दीखती ।” उन विवरोंके यों कहनेपर पुत्रवस्तल शिलाद नन्दीको छातोंसे लिपटाकर दुःखार्त हो फूट-फूटकर रोने लगे । तब पिता और पितामहको भूतकक्षी भाँति भूमिपर पड़ा हुआ देल नन्दी शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके प्रसन्नतापूर्वक पूछने लगा—“पिताजी ! आपको कौन-सा ऐसा दुःख आ पड़ा है, जिसके कारण आपका शरीर कौप रहा है और आप रो रहे हैं ? आपको वह दुःख कहाँसे प्राप्त हुआ है, मैं इसे ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ ।”

**पिताने कहा—**“ये ! तुम्हारी अत्यधिके दुखों अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ । ( तुम्हीं व्रतात्रो ) मेरे जीन दूर कर सकता है ? मैं उसकी शरण ग्रहण करूँ

**पुत्र वंला—**“पिताजी ! मैं आपके समने शा हूँ और यह विलकुल सत्य वात कह रहा हूँ कि चाहे दानव, यम, काल तथा अन्यान्य प्राणी—वे सबके स्वरूप मुरी मारना चाहते, तो भी मेरी वाल्यकालमें मृत्यु नहीं असः आग दुखी गत हों ।

**पिताने पूछा—**“मेरे प्यारे लल ! तुमने ऐसा तो किया है अपना तुम्हें क्लीन-सा ऐसा शन, बंग या प्रात है, जिसके बलपर तुम इस दावण हुक्के कर दोगे ?

**पुत्रने कहा—**“तात ! मैं न तो तपसे मृत्युज्ञ हूँ और न विद्यासे । मैं महादेवजीके भजनसे मृत्युज्ञ नहीं इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है ।

**नन्दीश्वरजी कहते हैं—**“मैंने ! यों कहकर मैं शुकाकर पिताजीके चरणोंमें प्रणाम किया और स्त्रियों प्रदक्षिणा करके उत्तम बनकी राह ली । ( अथवा

### नन्दीश्वरके जन्म, वरप्राप्ति, अभियेक और विवाहका वर्णन

**नन्दिकेश्वर कहते हैं—**“मूने ! बनमें जाकर मैंने एकान्त स्थानमें अपना आसन लगाया और उत्तम बुद्धिका आश्रय ले मैं उप्रतपमें प्रवृत्त हुआ, जो बड़े-बड़े मुनियोंके लिये भी दुष्कर था । उस समय मैं नन्दीके पावन उत्तर तटपर सुदृढ़रूपसे ध्यान लगाकर बैठ गया और एकाग्र तथा समाहित मनसे अपने हृदयकमलके मध्यभागमें तीन नेत्र, दस भुजा तथा पाँच मुखवाले शान्तिस्वरूप देवाधिदेव सदाशिवका ध्यान करके रुद्र-मन्त्रका जप करने लगा । तब उस जपमें मुझे तत्त्वीन देवकर चन्द्रार्धभूषण परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उमासहित वहाँ पधारकर प्रेमपूर्वक बोले ।

**शिवजीने कहा—**“शिलादनन्दन ! तुमने वडा उत्तम तप किया है । तुम्हारी इस तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ । तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह मौंग लो ।” महादेवजीके यों कहनेपर मैं सिरके बल उनके चरणोंमें लोट गया और फिर बुढ़ापा तथा शोकका विनाश करनेवाले परमेश्वरकी स्तुति करने लगा । तब परम कष्ठहारी

वृषभव्यज परमेश्वर शम्भुने मुझ परम भक्तिस्थल वर्ण जिसके नेत्रोंमें आँसू छलक आये थे और जो लिंगे चरणोंमें पड़ा था, अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उनकी और शरीरपर हाथ करने लगे । फिर वे जगदीश्वर नामक तथा हिमाचलकुमारी पार्वती देवीकी ओर दृष्टिपत इष्टे कृपादृष्टिसे देखते हुए यों कहने लगे—“वस्त नन्दी ! जरूर विप्रोंको तो मैंने ही भेजा था । महाप्राप्त ! तुम्हें मृत्यु कहाँ ; तुम तो मेरे ही समान हो । इसमें तनिक भी उत्तरवाली तुम अमर, अजर, दुःखरहित, अव्यय और अस्त्रहर्षक गणनायक बने रहेगे तथा पिता और सुदृढ़वर्णवाले प्रियजन होओगे । तुम्हें मेरे ही समान बल होगा । तुम्हें मेरे पार्श्वभागमें स्थित रहेगे और तुमपर निरन्तर संरक्षण बना रहेगा । मेरी कृपासे जन्म, जरा और मृत्यु ।” अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे ।

**नन्दीश्वरजी कहते हैं—**“मैंने ! यों कहकर शम्भुने कमलोंकी बनी हुई अपनी शिरोमालजे ॥

तुरत ही मेरे गलेमें ढाल दिया । विप्रवर । उस शुभ मालाके



लेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र और दस भुजाओंसे सम्बन्ध हो गा तथा द्वितीय शंकर-सा प्रतीत होने लगा । तदनन्तर मैश्वर शिवने मेरा हाथ पकड़कर पूछा—‘वताओ, अब तुम्हें मै-सा उत्तम वर दूँ ?’ फिर उन वृष्टध्वजने अपनी जटामें अत द्वारके समान निर्मल जलको हाथमें ले ‘तुम नदी होओ’ यों कहकर उसे छोड़ दिया । तब वह जल उत्तम गंगे बहनेवाली, स्वच्छ जलसे परिषूरी, महान् वेगशालिनी, व्यरुपा पौच मुन्द्र नदियोंके रूपमें परिवर्तित हो गया । जके नाम हैं—जटोदका, विश्वोता, वृष्टध्वनि, स्वर्णोदका और जम्बूनदी । मुने ! यह पञ्चनद शिवके पृष्ठभागकी भाँति लग रहा है । मैश्वरके निकट इसका नाम लेनेसे यह परम प्रिय हो जाता है । जो मनुष्य पञ्चनदपर जाकर स्नान और जप करके परमेश्वर शिवका पूजन करता है, वह शिवसायुज्य-में प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है । तत्यश्वात् शम्भुने गंगामें बहा—‘अव्यये ! मैं नन्दीका अभिषेक करके इसे गणाध्यक्ष गिरा चाहता हूँ । इस विग्रहमें तुम्हारी क्या राय है ?’

तप उसा योलों—देवेश ! आप नन्दीको गणाध्यक्ष-पद प्रिय वर लकृते हैं; कौन्कि परमेश्वर ! यह शिलादनन्दन मेरे द्वारे उत्पन्नप्रियता है, इसलिये नाथ ! यह मुझे बहुत ही प्यारा

है । तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने अपने अतुल्यल-शाली गणोंको बुलाकर उनसे कहा ।

**शिवजी बोले**—गणनायको ! तुम सब लोग मेरी एक आशा-का पालन करो । यह मेरा प्रिय पुत्र नन्दीश्वर सभी गणनायकोंका अध्यक्ष और गणोंका नेता है; इसलिये तुम सब लोग मिलकर इसका मेरे गणोंके अधिपति-पदपर प्रेमपूर्वक अभिषेक करो । आजसे यह नन्दीश्वर तुमलोगोंका स्वामी होगा ।

**नन्दीश्वरजी कहते हैं**—मुने ! शंकरजीके इस कथनपर सभी गणनायकोंने ‘एवमस्तु’ कहकर उसे स्वीकार किया और वे सामग्री जुटानेमें लग गये । फिर सब देवताओं और मुनियोंने मिलकर मेरा अभिषेक किया । तदनन्तर मरुतोंकी मनोहारिणी दिव्य कन्या सुयशासे मेरा विवाह करवा दिया । उस समय मुझे बहुत-सी दिव्य वस्तुएँ मिलीं । महामुने ! इस प्रकार विवाह करके मैंने अपनी उस पल्लीके साथ शम्भु, शिवा, व्रह्मा और श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया । तब त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल भगवान् शिव पल्लीसहित, मुक्षसे परम प्रेमपूर्वक बोले ।

**ईश्वरने कहा**—सत्पुत्र ! यह तुम्हारी प्रिया सुयशा और तुम मेरी वात सुनो । तुम मुझे परम प्रिय हो, अतः मैं स्नेह-पूर्वक तुम्हें मनोवाञ्छित वर प्रदान करूँगा । गणेश्वर नन्दीश ! देवी पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा संतुष्ट हूँ, इसलिये वत्स ! तुम मेरा उत्तम वचन श्रवण करो । तुम मेरे अदृष्ट प्रेमी, विशिष्ट, परम ऐश्वर्य सम्बन्ध, महायोगी, महान् धनुर्धारी, अजेय, सबको जीतनेवाले, महावली और सदा पूज्य होओगे । जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम्हारी स्थिति होगी और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं उपस्थित रहूँगा । यही दद्या तुम्हारे पिता और पितामहकी भी होगी । पुत्र ! तुम्हारे ये महावली पिता परम ऐश्वर्यशाली, मेरे भक्त और गणाध्यक्ष होंगे । वत्स ! ये ही नियम तुम्हारे पितामहपर भी लागू होंगे । अन्तमें तुम सब लोग मुझसे वरदान प्राप्त करके मेरा सांनिध्य प्राप्त करोगे ।

**नन्दीश्वरजी कहते हैं**—मुने ! तत्यश्वात् महाभागा उमादेवी वर देनेके लिये उत्सुक हो मुझ नन्दीसे बोलूँ—‘वेदा ! तुमुससे भी वर माँग ले, मैं तेरी सारी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण कर दूँगी ।’ तब देवीके उत्त वचनको सुनकर मैंने हाथ जोड़कर कहा—‘देवि ! आपके चरणोंमें मेरी सदा उत्तम भक्ति बनी रहे ।’ मेरी वाचना सुनकर देवीने कहा—‘एवमस्तु—रेता ही होगा ।’ फिर प्रिया नन्दीसी ग्रिघनना पक्की तुम्हारे बोलूँ ।

देखीने कहा—वत्स ! तुम भी आपना अभीष्ट नर महण करो—तुम्हारे तीन नेत्र होंगे । तुम जन्म-कन्धनगे दूट जाओगी और पुत्र-पौत्रोंसे समझ रहोगी तथा तुम्हारी मुश्में और आने स्वामीमें अटल भक्ति बनी रहेगी ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर शिवजीकी आशासे परम प्रसन्न हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा गमस्त देवगणोंने भी प्रेमपूर्वक हम दोनोंको वरदान दिये । तत्त्वात् परमेश्वर शिव कुटुम्बसहित मुक्ते अपनाकर तथा उमायादित वृत्तार आरूढ़ हो सम्बन्धियों एवं वान्धवोंके साथ आगे निवासस्थानको

नक्ल गये । तब वहाँ उद्दिष्ट विष्णु आदि समस्त देवों ने प्रशंसा तथा शिव-शिवाकी सुति करते हुए अपेक्षाएँ धामको चल दिये । वत्स ! इस प्रकार मैंने तुमसे आप अन्तार-ता वर्णन कर दिया । महामुने ! वह मनुष्य गदा आनन्ददायक और शिवभक्तिका वर्षक है । वे मानव भक्तिभावित चित्तसे मुक्त नन्दीके इस जन्म अभियोग और विवाहके वृत्तान्तको मुनेगा अथवा उनायेगा तथा पढ़ेगा या दूसरेको पढ़ायेगा, वह इसले मुक्तीही भोगहर अन्तमें परमगतिको प्राप्त होगा । (अ

## कालभैरवका माहात्म्य, विश्वानरकी तपस्या और शिवजीका प्रसन्न होकर उनकी पत्नी शुचिष्मा गर्भसे उनके पुत्रस्पृष्ठमें प्रकट होनेका उन्हें वरदान देना

तदनन्तर भगवान् शंकरके भैरवावतारका वर्णन करके नन्दीश्वरने कहा—महामुने ! परमेश्वर शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ स्वनेवाले तथा सत्पुरुषोंके प्रेमी हैं । उन्होंने मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको भैरवस्थासे अवतार लिया था । इसलिये जो मनुष्य मार्गशीर्षमासकी कृष्णाष्टमीको कालभैरवके संनिकट उपवास करके रात्रिमें जागरण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणसहित इस व्रतका अनुष्ठान करेगा, वह भी महापापोंसे मुक्त होकर सद्गतिको प्राप्त हो जायगा । प्राणियोंके लाखों जन्मोंमें किये हुए जो पाप हैं, वे सब-के-सब कालभैरवके दर्शनसे निर्मल हो जाते हैं । जो मूर्ख कालभैरवके भक्तोंका अनिष्ट करता है, वह इस जन्ममें दुःख भोगकर पुनः दुर्गतिको प्राप्त होता है । जो लोग विश्वानाथके तो भक्त हैं परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, उन्हें महान् दुःखकी प्राप्ति होती है । काशीमें तो इसका विशेष प्रभाव पड़ता है । जो मनुष्य वाराणसीमें निवास करके काल-भैरवका भजन नहीं करता, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ते रहते हैं । जो काशीमें प्रत्येक भौमवारकी कृष्णाष्टमीके दिन कालराजका भजन-पूजन नहीं करता, उसका पुष्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है ।

तदनन्तर नन्दीश्वरने वीरभद्र तथा शरभावतारका वृत्तान्त सुनाकर कहा—व्रह्मपुत्र ! भगवान् शिव जिस प्रकार प्रसन्न होकर विश्वानर मुनिके घर अवतीर्ण हुए थे, शशिमौलिके उस चरितको तुम प्रेमपूर्वक श्रवण करो । उस समय वे तेजकी निधि आस्तिरूप सर्वात्मा

परम ग्राम शिव अभिलोकके अधिपतिलसे गृहीत अवतीर्ण हुए थे । पूर्वकालकी वात है, नमीशके रमणीय नर्मपुर नामका एक नगर था । उर्ची नगरमें विश्वानर एक मुनि निवास करते थे । उनका जन्म शार्ङ्गिल हुआ था । वे परम पावन, पुष्पतमा, शिवभक्त, ग्रन्थनिधि और जितेन्द्रिय थे । ग्रहाचर्याश्रममें उनकी वृद्धि थी । वे सदा व्रह्मायशमें तत्पर रहते थे । फिर उन्होंने शुचिनामकी एक सद्गुणवती कन्यासे विवाह कर लिया और व्राह्मणोंचित कर्म करते हुए देवता तथा पितरोंको प्रियवाला जीवन विताने लगे । इस प्रकार जब वहुत्या व्यतीत हो गया, तब उन व्राह्मणकी भार्या शुचिष्मा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी, अपने पति के 'प्राणनाथ !' शिरोंके योग्य जितने आनन्दप्रद भोग हैं । सबको मैंने आपकी कृपासे आपके साथ रहकर भोग हिं परंतु नाथ ! मेरे हृदयमें एक लालसा चिरकालसे कर्मवत और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे आप पूर्ण करनेवाले करें । स्वामिन् ! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ और आरूढ़ वर देना चाहते हूँ तो मुझे महेश्वर-सरीखा पुनः प्रसन्न कीजिये । इसके अतिरिक्त मैं 'दूसरा वर नहीं चाहती !'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! पत्नीकी वात उन्हें पवित्र व्रतपरायण व्राह्मण विश्वानर क्षणमरके लिये समाप्त हो गये और हृदयमें यों विचार करने लगे—'अहो ! मैं इस सूक्ष्माङ्गी पत्नीने कैसा अत्यन्त दुर्लभ वर मांगा है । यह तो मेरे मनोरथ-पथसे बहुत दूर है । अच्छा, विजेता देव तथा कुछ करनेमें समर्थ हैं । ऐसा प्रतीत होता है ॥

उन शम्भुने ही इसके मुखमें दैठकर बाणीरूपसे ऐसी वात कही है, अन्यथा दूसरा कौन ऐसा करनेमें समर्थ हो सकता है। तदनन्तर वे एकपलीवती मुनि विश्वानर पत्नीको आशाएन देकर वारणसीमें गये और घोर तपके द्वारा भगवान् शिवके वीरेश लिङ्गकी आराधना करने लगे। इस प्रकार उन्होंने एक वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम वीरेश लिङ्गकी त्रिकाल अर्चना करते हुए अद्भुत तप किया। तेरहवाँ मास अनेपर एक दिन वे द्विजवर प्रातःकाल विषयगामिनी गङ्गाके जलमें स्नान करके ज्यों ही वीरेशके निकट पहुँचे, त्यों ही उन तपोधनको उस लिङ्गके मध्य एक अष्टपूर्ण विभूतिविभूतिं बालक दिखायी दिया। उस नम शिशुके नेत्र कानोंतक फैले हुए थे, होठोंपर गहरी लालिमा छायी हुई थी, मस्तकपर पीले रंगकी सुन्दर जया सुशोभित थी और मुखपर हँसी खेल रही थी। वह शैशवोचित अलंकार और चिताभस्म धारण किये हुए था तथा अपनी लीलासे दृतता हुआ श्रुतिसूक्तोंका पाठ कर रहा था। उस बालकको देखकर विश्वानर मुनि कृतार्थ हो गये और आनन्दके कारण उनका धारी रोमाञ्चित हो उठा तथा वारंवार 'नमस्कार है, नमस्कार है' यां उनका हृदयोद्धार फ़ूट पड़ा। फिर वे अभिलाप्या पूर्ण करनेवाले आठ पद्मोद्धारा बालरूपधरी परमानन्द-सरुग शम्भुका स्तवन करते हुए बोले।

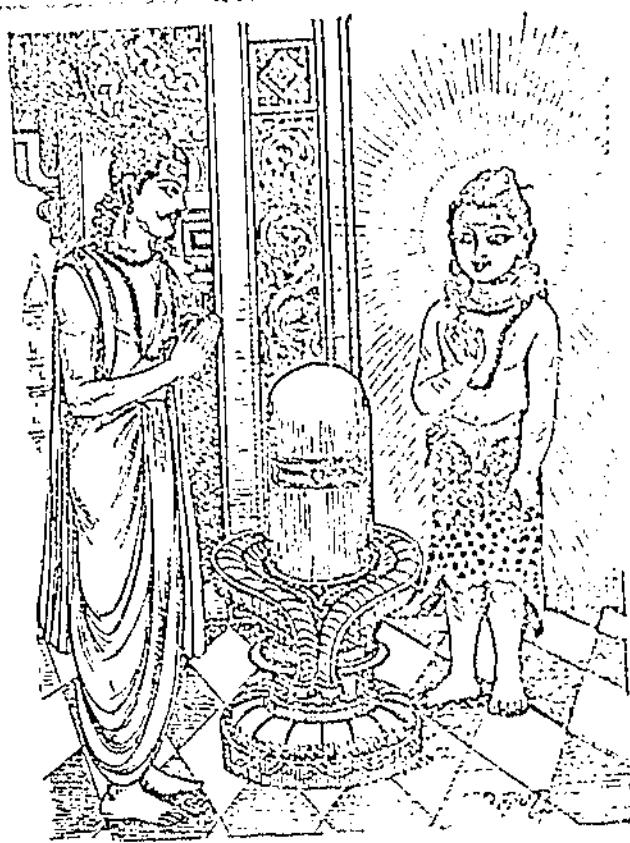
**विश्वानरने कहा—भगवन् !** आप ही एकमात्र अद्वितीय ग्रह हैं, यह सारा जगत् आपका ही स्वरूप है, यहाँ अनेक कुछ भी नहीं है। यह विल्कुल सत्य है कि एकमात्र रुद्रके अतिरिक्त दूसरे किसीकी सत्ता नहीं है, इसलिये मैं आप महेशकी शरण ग्रहण करता हूँ। शम्भो ! आप ही सद्यके कर्त्ता-हर्ता हैं, तथा जैसे आत्मरथम् एक होते हुए भी अनेक-रूपसे दीक्षित है, उसी प्रकार आप भी एकरूप होकर नाना रूपोंमें व्याप्त हैं। फिर भी आप रूपरहित हैं। इतलिये आप ईश्वरके अतिरिक्त मैं किसी दूसरेकी शरण नहीं ले सकता। जैसे रज्जुमें सर्व, तीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाहका भान मिथ्या है, उसी प्रकार, जिसे जान लेनेपर यह विश्वप्रपञ्च मिथ्या भासित होता है, उन महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो ! जलमें जो शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें गरमी, चन्द्रमामें अहुदक्षारिता, पुष्पमें गम्ध और दुर्घटमें धी वर्तमान हैं। वह असमानी स्वरूप है, अतः मैं आपके शरण हूँ। आप अग्नरहित होकर शब्द सुनते हैं; नासिकाविहीन होकर शून्यते हैं। पर न लोगोंपर भी दूरतर चले जाने हैं, नेपथीन होकर शून्य हुए रहते हैं और जितारहित होकर भी तमस्त रहते हैं।

शाता हैं ! भला, आपको सम्यक् रूपसे कौन जान सकता है। इसलिये मैं आपकी शरणमें जाता हूँ। ईश ! आपके रहस्यको न तो साक्षात् वेद ही जानता है न विष्णु, न अस्तिल विश्वके विधाता ग्रहा न योगीन्द्र और न इन्द्र आदि प्रधान देवताओंको ही इसका पता है; परंतु आपका भक्त उसे जान लेता है, अतः मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। ईश ! न तो आपका कोई गोत्र है न जन्म है, न नाम है न रूप है, न शील है और न देश है; ऐसा होनेपर भी आप त्रिलोकीके अधीश्वर तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, इसलिये मैं आपका भजन करता हूँ। स्मरारे ! आप सर्व-स्वरूप हैं, वह सारा विश्वप्रपञ्च आपसे ही प्रकट हुआ है। आप गौरीके प्राणनाथ, दिग्म्बर और परम शान्त हैं। बाल, युवा और वृद्धरूपमें आप ही वर्तमान हैं। ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसमें आप व्याप्त न हों; अतः मैं आपके चरणोंमें नतमस्तक हूँ।\*

**नम्दीश्वरजी कहते हैं—मुने !** यों स्तुति करके विप्रवर विश्वानर हाथ जोड़कर भूमिपर गिरना ही चाहते थे, तबतक सम्पूर्ण वृद्धोंके भी वृद्ध बालरूपधारी शिव परम हर्षित होकर उन भूदेवसे बोले।

#### \* विश्वानर उवाच—

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं सप्तरं सत्यं सत्यं नेह नानाति किञ्चित् ।  
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तसादेकं त्वां प्रपये महेशम् ॥  
कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य धर्मो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ।  
यद्यत्प्रत्यर्थम् एकोऽप्यनेकस्तसान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपये ॥  
रजौ सर्पैः शुक्लिकायां च रौप्यं नैरः पूर्ज्ञमृगास्ये मरुर्चो ।  
यद्वद्दद्विश्वरोप प्रपद्मो यस्मिन् शते तं प्रपये महेशम् ॥  
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वही तापो नानी शीतभासी प्रसादः ।  
पुष्पे गन्धो दुर्घमध्येऽपि सर्पियं चृच्छन्मो त्वं तनन्ता प्रपये ॥  
शब्दं गृह्णात्यश्ववारत्वं हि विवरयागन्त्वं व्यद्विरायासि दूराद् ।  
व्यशः पद्मेत्तरं रसशोऽप्यजिह्वः कर्त्त्वां सन्द्यन्वेष्यनस्त्वां प्रपये ॥  
नो वेदस्त्वार्णीश साक्षादि पैदं नो वा विष्णुर्नो विभागित्वा ।  
नो योगीन्द्रा नेन्द्रसुख्याश्च देवा नन्तो पैदं त्यापनस्त्वां प्रपये ॥  
नो ते गोत्रं नेत्र जन्मापि नाथ्या नो वा रूपं नेत्रं शोलं न देवः ।  
स्थग्भूतोऽर्णोऽपत्त्वे द्विलोक्याः सर्वान् फृग्नान् पूर्वदस्तद गते नाम् ॥  
त्वसः तर्व त्वं हि लवं रसतारं त्वं गौरेश्वरं च नामेऽनिश्चानः ।  
त्वं वै वृद्धरूपं युवा त्वं च बालरूपं यत् ति नाम्नान्यो नतेऽन्म् ॥



वालरूपी शिवने कहा—मुनिश्रेष्ठ विश्वानर ! तुमने आज मुझे संतुष्ट कर दिया है । भूदेव ! मेरा मन परम प्रसन्न हो गया है, अतः अब तुम उत्तम वर माँग लो । यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वानर कृतक्रिय हो गये और उनका मन हर्षमय हो गया । तब वे उठकर वालरूपधारी शंकरजीसे बोले ।

विश्वानरने कहा—प्रभावशाली महेश्वर ! आप तो

सर्वान्तरामो, ऐर्जव्यमात्र, शर्व तथा भल्कौंको सब हुए द्वालनेवाले हैं । भला, आप सर्वव्रते कौन-सी वत हैं ? किर भी आग मुसे दीनता प्रकट करनेवाली शब्दाके प्रति आठष्ट होनेके लिये क्यों कह रहे हैं ? महेश्वर ! ऐसा जल्द आपकी जैरी इच्छा है, बैता कीजिये ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! विव्र व्रतमें द्वा विश्वानरके उस वन्यामो सुनकर पावन शिवरूपवारी महसू दृश्यकर शुचि ( विश्वानर ) से बोले—शुचे ! तुमने क्षे दृश्यमें असामी पत्नी शुचिभूतीके ग्राति जो अभिलापा व्रत कर दिए हैं, वह नित्यसंदेह गोड़े ही समयमें पूर्ण हो जायगी । महसू में शुचिभूतीके गर्भसे तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊँगा । के नाम शृणुति होगा । मैं परम पावन तथा समल देवताओं लिये प्रिय होऊँगा । जो मनुष्य एक वर्तक शिवजीके चेहे तुम्हारेद्वारा करित इस पुण्यमय अभिलापाशुक सोवत्र दी काल पाठ करेगा, उसकी सारी अभिलापाएँ वह पूर्ण देगा । इस सोवत्रका पाठ पुत्र, पौत्र और धनक प्रसू सर्वथा शान्तिकारक, सारी विपरित्योंका विनाशक, सर्व भूमोक्षरूप सम्पत्तिका कर्ता तथा समल कामनाओंको पूर्ण कराला है । नित्यसंदेह यह अकेला ही समल सोवत्रकी समाज है

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना शृं वालरूपवारी शम्भु, जो सत्पुरुषोंकी गति है, अन्तर्धान होगा तब विश्ववर विश्वानर भी प्रसन्न मनसे अपने श लौट गये । ( अध्याय ८—१ )

शिवजीका शुचिभूतीके गर्भसे प्राकृत्य, ब्रह्माद्वारा वालकक्षा संस्कार करके 'गृहपति' नाम रखा जाता है नारदजीद्वारा उसका भविष्य-कथन, पिताकी आज्ञासे गृहपतिका काशीमें जाकर तप करना, इन्द्रका वर देनेके लिये प्रकट होना, गृहपतिका उन्हें दुकराना, शिवजीका प्रकट होकर उन्हें वरदान देकर दिक्षपालपद ग्रदान करना तथा अवीश्वर लिङ्ग और अधिका माहात्म्य

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! धर आकर उस ब्राह्मण-ने बड़े हृषके साथ अपनी पत्नीसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया । उसे सुनकर विप्रपत्नी शुचिभूतीको महान् अनन्द प्राप्त हुआ । वह अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करने लगी । तदनन्तर समय आनेपर ब्राह्मणद्वारा विधिपूर्वक गर्भधान-कर्म सम्पन्न किये जानेपर वह नारी गर्भवती हुई । किर उन ब्राह्मण-सुनिने गर्भके स्पन्दन करनेसे पूर्ण ही पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गृहसूत्रमें वर्णित विधिके अनुसार सम्यक् रूपसे पुंसवन-संस्कार । तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर कृपालु विश्वानरने

सुखपूर्वक प्रसव होनेके अभिप्रायसे गर्भके रूपकी समृद्धि के वाला सीमन्त-संस्कार सम्पन्न कराया । तदुपरान वह अनुकूल होनेपर जब वृहस्पति केन्द्रवर्ती हुए और शुभ श योग आया, तब शुभ लग्नमें भगवान् शंकर जिनके कान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है तथा जो अस्तित्वी ही रुद्रानेवाले, समल अस्तित्वोंके विनाशक और भूः भुवः स तीनों लोकोंके निवासियोंको सब तरहसे सुख देनेवाले हैं शुचिभूतीके गर्भसे पुत्ररूपमें प्रकट हुए । उस समय वहन करनेवाले वायुके बाह्य गेव दिशारूपी क्षुण्डके

पर बन्ध से दम गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वै धनवेव वादल उत्तम गन्धवाले पुष्टसमूहोंकी वर्णा करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। चारों ओर दिशा-एँ निर्मल हो गयीं। प्रणियोंके मनोंके साथ-साथ सरिताओं-का जल निर्मल हो गया। प्रणियोंकी बाजी सर्वथा कल्याणी और प्रियमापिणी हो उठी। समूर्ण प्रसिद्ध शृंखि-मुनि तथा देवता, यश, किंवर, विद्याधर आदि मङ्गल द्रव्य लेलेकर पधारे। स्वयं ब्रह्माजीने नम्रतापूर्वक उसका जातकर्म-संस्कार किया और उस बालकके रूप तथा वेदका विचार करके यह निश्चय किया कि इसका नाम गृहपति होना चाहिये। फिर ग्यारहवें दिन उन्होंने नामकरणकी विधिके अनुसार वेदमन्त्रों-का उच्चारण करते हुए उसका 'गृहपति' ऐसा नाम-करण किया। तत्प्रश्नात् सबके पितामह ब्रह्मा चारों वेदोंमें कथित आशीर्वादात्मक मन्त्रोद्धारा उसका अभिनन्दन करके हंसपर आरूढ़ हो अपने लोकको चले गये। तदुपरात शंकर भी लैकिकी गतिका आश्रय ले उस बालककी उचित रक्षाका विधान करके अपने वाहनपर चढ़कर अपने धामको पधार गये। इसी प्रकार श्रीहरिने भी अपने लोककी राह ली। इस प्रकार सभी देवतां, शृंखि-मुनि आदि भी प्रशंसा बरते हुए अपने-अपने स्थानको पधार गये। तदनन्तर ब्राह्मण देवताने यथासमय सब संस्कार करते हुए बालकको वेदाध्ययन कराया। तत्प्रश्नात् नवाँ वर्ष आनेपर माता-पिताजी सेवामें तद्वर रहनेवाले विश्वानन्दन गृहपतिको देखनेके लिये वहाँ नारदजी पधारे। बालकने माता-पितासहित नारदजीको प्रणाम किया। फिर नारदजीने बालककी हस्तरेखा, जिह्वा, ताळ आदि देखकर कहा—‘मुनि विश्वानर ! मैं तुम्हारे पुत्रके लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, तुम आदरपूर्वक उसे श्रद्धण करो। तुम्हारा यह पुत्र परम भाग्यवान् है, इसके समूर्ण अङ्गोंके लक्षण युभ हैं। किंतु इसके सर्वगुणसम्बन्ध, समूर्ण शुभ-दक्षणोंसे तमन्वित और चन्द्रमाके समान समूर्ण निर्मल एवं असोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोद्धारा इस दिशुकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। युरो यहाँ है कि इसके बारहवें वर्षमें इसपर विज्ञली अपना अभिद्वारा विन आयेगा।’ यों कहाहर नारदजी जैसे अपने पै दैसे ही देखलेकर चले गये।

स्वतःमारजी ! नारदजीना क्षमन सुनकर फलीत्वहित प्रियस्त्रेसे पर उमस लिया कि पर तो वजा भवेकर बद्रप्राप्त

हुआ। फिर वे ‘हाय ! मैं मारा गया’ यों कहकर छाती पीटने लगे और पुत्रशोकसे व्याकुल होकर गहरी मूँछके वशीभूत हो गये। उधर शुचिष्मती भी हुःखसे पीड़ित हो अत्यन्त ऊँचे स्वरसे हाहाकार करती हुई ढाढ़ मारकर रो पड़ी, उसकी सारी इन्द्रियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। तब पत्नी-के आर्तनादको सुनकर विश्वानर भी मूँछां त्यागकर उठ वैठे और ‘ऐ ! यह क्या है ? क्या हुआ ?’ यों उच्चस्वरसे बोलते हुए कहने लगे—‘गृहपति ! जो मेरा वाहर विचरनेवाला प्राण, मेरी सारी इन्द्रियोंका स्वामी तथा मेरे अन्तरामामें निवास करनेवाला है, कहाँ है ?’ तब माता-पिताको इस प्रकार अत्यन्त शोकप्रस्त देखकर शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ वह बालक गृहपति मुस्तकराकर बोला।

गृहपतिने कहा—माताजी तथा पिताजी ! ब्रताइये, इस समय आपलोगोंके रोनेका क्या कारण है ? किसलिये आपलोग फूट-फूटकर रो रहे हैं ? कहाँसे ऐसा भव आपलोगोंके प्राप्त हुआ है ? क्यदि मैं आपकी चरणरेणुओंसे अपने शरीरकी रक्षा कर लूँ तो मुझपर काल भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकता; फिर इस तुच्छ, चब्बल एवं अल्प बलवाली मृत्युकी तो बात ही क्या है। माता-पिताजी ! अब आपलोग मेरी प्रतिशा सुनिये—‘क्यदि मैं आपलोगोंका पुत्र हूँ तो ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे मृत्यु भी भयभीत हो जावगी। मैं सत्पुरुषोंको सब कुछ दे डालनेवाले सर्वज्ञ मृत्युंजयकी भलीभौति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा—यह मैं आपलोगोंसे विल्कुल सत्य कह रहा हूँ।’

नन्दीश्वरजी कहते हैं—‘मुने ! तब वे द्विजदम्पति, जो शोकसे तंतत हो रहे थे, गृहपतिके ऐसे बच्चन, जो अकाल-में हुई अमृतकी धनवेव दृष्टिके समान थे, तुनकर संतप्तपरहित हो कहने लगे—‘वेदा ! तू उन दिवाकी शरणमें जा, जो ब्रह्मा आदिके भी कर्ता, मैववाहन, अपनी मरिमसे कभी च्युत न होनेवाले और विश्वदी रक्षामणि हैं।’

नन्दीश्वरजी कहते हैं—‘मुने ! माता-पिताजी अशा पाकर गृहपतिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। किंतु उनकी प्रदणिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन दे दें वहाँसे चल पड़े और उन नाचीपुरीमें जा पहुँचे, जो ब्रह्मा और नरपति आदि देवोंके लिये (भी) दुप्रापत्त, नदाप्रस्त्रके नदापत्ता विनाश बर्जेवाली और विश्वनापद्मरा मुर्मित थी तथा जो

कण्ठप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई मङ्गसे सुशोभित तथा निचित गुणशालिनी घृहपति गिरिजासे विभूषित थी । वहाँ पहुँचकर वे विश्वर वहले मणिकर्णिकायर गये । वहाँ उन्होंने विभिन्नीक स्नान करके भगवान् विश्वनाथका दर्शन किया । फिर बुद्धिमान् घृहपति ने परमानन्दगमन हो विलोकीके प्राणियोंमें प्राणरक्षा करनेवाले शिवको प्रणाम किया । उग तामग उनकी अज्ञलि वैधी थी और सिर शुका हुआ था । वे चारंचार उग शिवलिङ्गकी ओर देखकर दृश्यमें हर्षित हो रहे थे ( और यह सोच रहे थे कि ) यह लिङ्ग निस्तंदेह स्पष्टरूपसे आनन्दकन्द ही है । ( वे कहने लगे— ) अहो ! आज मुझे जो मर्नव्यापी श्रीमान् विश्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ, इसलिये इम चराचर विलोकीमें मुझसे बढ़कर धन्यवादका पात्र दूसरा कोई नहीं है । जान पड़ता है, मेरा भाग्योदय होनेसे ही उन दिनोंमें मर्हिय नारदने आकर वैसी बात कही थी, जिसके कारण आज मैं कुतक्त्य हो रहा हूँ ।

**नन्दीश्वरजी कहते हैं—**मुने ! इस प्रकार आनन्दमृत-रूपी रसोद्धारा पारण करके घृहपति ने शुभ दिनमें सर्वहितकारी शिवलिङ्गकी स्थापना की और पवित्र मङ्गाजलसे भरे हुए एक सौ आठ कलशोद्धारा शिवजीको स्नान कराकर ऐसे घोर नियमोंको स्वीकार किया, जो अकृतात्मा पुरुषोंके लिये दुष्कर थे । नारदजी ! इस प्रकार एकमात्र शिवमें मन लगाकर तपस्या करते हुए महात्मा घृहपतिकी आसुका एक वर्ष व्यतीत हो गया । तब जन्मसे बारहवाँ वर्ष आनेपर नारदजीके कहे हुए उस वचनको सत्य-सा करते हुए वज्रधारी इन्द्र उनके निकट पधारे और बोले—“विश्वर ! मैं इन्द्र हूँ और तुम्हारे शुभ ब्रतसे प्रसन्न होकर आया हूँ । अब तुम वर माँगो, मैं तुम्हारी मनोवाच्छा पूर्ण कर दूँगा ।”

तब घृहपति ने कहा—मधवन् ! मैं जानता हूँ, आप वज्रधारी इन्द्र हैं; परंतु वृत्रशत्रो ! मैं आपसे वर याचना करना नहीं चाहता, मेरे वरदायक तो शंकरजी ही होंगे ।

इन्द्र बोले—शिशो ! शंकर मुझसे भिन्न थोड़े ही हैं । और ! मैं देवराज हूँ, अतः तुम अपनी भूखताका परित्याग करके वर माँग लो, देर मत करो ।

घृहपति ने कहा—पाकशासन ! आप अहस्याका सतीत्व

नष्ट करनेवाले दुरुचारी पर्यवेक्षयु ही हैं न । आप जहाँ क्योंकि मैं पशुपति के अतिरिक्त किसी अन्य देवके सामने क्षमा से प्राप्तीना करना नहीं चाहता ।

**नन्दीश्वरजी कहते हैं—**मुने ! घृहपति ने उस कलशे घृहपति इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । वे अपने भांजा बांजों उठाकर उस वालको डराने-चमकाने थे । जो विजयीकी ज्वालाओंसे व्यास उस वक्तको देखकर वक्त मृत्युपति से नारदजीके बास्य स्मरण हो आये । फिर तो वे अपने व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये । तदनन्तर अग्नात्मका को दूर भगानेवाले गौरीपति शाम्भु वहाँ प्रकट हो गये थे और अपने इलास्यसे उसे जीवनदान देते हुएन्से बोटे—कल उठ, उठ ! तेरा कल्याण हो ।” तथा रात्रिके तमव दुर्देरु कमलकी तरह उनके नेत्रकमल खुल गये और उसने उड़ा अपने सामने सैकड़ों सूखोंसे भी अधिक प्रकाशमान शम्भु उपरित्थित देखा । उनके ललाटमें तीसरा नेत्र चमक रहा था गलेमें नीला चिठ्ठा था, ज्वापर शृंगभक्ता स्वल्प दीप रहा था वामाङ्गमें गिरिजादेवी विराजमान थी, सर्सकर चक्रम सुशोभित था । वडी-वडी जटाओंसे उनकी अद्भुत शोभा है रही थी, वे अपने आयुध चिशूल और आजगव धनुष धारा किये हुए थे । कर्णूरके समान गौरवर्णका शरीर अपनी शम्भ विलेर रहा था, वे गजन्वर्म लोटे हुए थे । उन्हें देवल शाल्वकथित लक्षणों तथा गुरुचत्वानोंसे जब घृहपति ने अपने लिया कि ये महादेव ही हैं, तब हर्षके मारे उनके नेत्रों आँसू छलक आये, गला हँध गवा और शरीर रोमांचित हो उठा । वे क्षणभरतक अपने-आपको भूलकर चिन्हकृत एवं निपुत्रक पर्यवेक्षी भाँति निश्चल खड़े रह गये । जब वे खल करने, नमस्कार करने अथवा कुछ भी कहनेमें समर्पित हो सके, तब शिवजी सुसकराकर बोले ।

ईश्वरने कहा—घृहपते ! जान पड़ता है, तुम वक्तव्य इन्द्रसे डर गये हो । वस्तु ! तुम भयभीत मत होओं बैठों मेरे भक्तपर इन्द्र और वज्रकी कौन कहे, यमराज भी अपने प्रभाव नहीं डाल सकते । यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा ही है और मैंने ही तुम्हें इन्द्रलुप धारण करके डराया है । मग ! अब मैं तुम्हें वर देता हूँ—आजसे तुम अग्निपदके समर्प



ओगे। तुम समस्त देवताओंके लिये वरदाता बनोगे। भग्ने। तुम समस्त प्राणियोंके अंदर जड़राम्निलूपसे विचरण करोगे। तुम्हें दिक्षाललूपसे धर्मराज और इन्द्रके मध्यमें एजकी प्राप्ति होगी। तुम्हारेद्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग तुम्हारे नामपर 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा। यह सब प्रकारके उजोकी वृद्धि करनेवाला होगा। जो लोग इस अग्नीश्वर लिङ्गके भक्त होंगे, उन्हें विजली और अग्निका भय नहीं रह जायगा, अग्नि-मान्य नामक रोग नहीं होगा और न कभी उनकी अकालमृत्यु ही होगी। काशीपुरीमें स्थित सम्पूर्ण समृद्धियोंके प्रदाता अग्नीश्वरकी भलीभौति अर्चना करनेवाला भक्त यदि प्रारब्धवश किसी अन्य

स्थानमें भी मृत्युको प्राप्त होगा तो भी वह वहिलोकमें प्रतिष्ठित होगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर शिवजीने गृहपतिके बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके सामने उस अग्निका दिक्षपति पदपर अभिषेक कर दिया और स्वयं उसी लिङ्गमें समा गये। तात ! इस प्रकार मैंने तुमसे परमात्मा शंकरके गृहपति नामक अग्नीवतारका, जो तुष्टोंको पीड़ित करनेवाला है, वर्णन कर दिया। जो सुटढ़ पराक्रमी जितेन्द्रिय पुरुष अथवा सत्त्वसम्बन्ध छियाँ अग्निप्रवेश कर जाती हैं, वे सबके-सब अग्निसुरीखे तेजस्वी होते हैं। इसी प्रकार जो ब्राह्मण अग्निहोत्रपरायण, ब्रह्मचारी तथा पञ्चामिका सेवन करनेवाले हैं, वे अग्निके समान वर्चस्वी होकर अग्निलोकमें विचरते हैं। जो शीतकालमें शीत-निवारणके निमित्त बोझ की-बोझ लकड़ियाँ दान करता है अथवा जो अग्निकी इष्टि करता है, वह अग्निके संनिकट निवास करता है। जो श्रद्धापूर्वक किसी अनाथ-मृतकका अग्निसंस्कार कर देता है, अथवा स्वयं शक्ति न होनेपर दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें प्रशंसित होता है। द्विजातियोंके लिये परम कल्याणकारक एक अग्नि ही है। वही निश्चितस्पसे गुरु, देवता, वत, तीर्थ अर्थात् सब कुछ है। जितनी अपावन वस्तुएँ हैं, वे सब अग्निका संर्ग होनेसे उसी क्षण पावन हो जाती हैं; इसीलिये अग्निको पावक कहा जाता है। यह शम्भुकी प्रत्यक्ष तेजोमयी दहना-त्विका मूर्ति है, जो सुष्ठि रचनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली है। भला, इसके बिना कौन-सी वस्तु हाषिगोचर हो सकती है। इनके द्वारा भक्षण किये हुए धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी और खाँड़ आदिका देवगण स्वर्गमें सेवन करते हैं। (अथाय १४-१५)

### शिवजीके महाकाल आदि दस अवतारोंका तथा ग्यारह रुद्र-अवतारोंका वर्णन

तदभन्तर यशेश्वरवतारकी बात कहकर नन्दीश्वर-ने कहा—मुने ! अब शंकरजीके उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महाकाल आदि दस अवतारोंका वर्णन भक्तिपूर्वक अवण किये। उनमें पहला अवतार 'महाकाल' नामसे प्रसिद्ध है, जो मृत्युपांसोंसे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। उस अवतारकी शक्ति भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाली महाकाली है। दूसरा 'तार' नामक अवतार हुआ, जिसकी शक्ति तारादेवी हुई। वे दोनों भक्तिज्ञकोंके प्रदाता तथा भरने सेवक्षेमे लिये तुलदापक हैं। 'याल भुवनेद्य' नामसे

तीसरा अवतार हुआ। उसमें वाला भुवनेशी शिवा शक्ति हुई, जो सजनोंको मुस देनेवाली है। चौथा भक्तोंके लिये मुखद तथा भोग-मोक्ष प्रदायक 'पोदश श्रीविद्येश्वर' नामक अवतार हुआ और पोदशी-श्रीविद्या शिवा उनकी शक्ति हुई। पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो सर्वदा भक्तोंकी काननाधीनोंको पूर्ण करनेवाला है। इन अवतारोंकी शक्तिका नाम दे भैरवी गिरजा, जो अग्ने उपासनेद्वारा अभीष्टदायिनी है। उठा शिवायतार 'क्षेत्रमन्तर' नामसे कहा जाता है और भजनप्रदा गिरजाका नाम

छिन्नमस्ता है। समूर्ण गोरोंके दाता शम्भुता रातवां अवतार 'धूमवान्' नामसे विद्यात हुआ। उस अवतारमें श्रेष्ठ उगासकोंकी लालसा पूर्ण करनेवाली पिता धूमात्मी हुई। शिवजीका आठवाँ मुत्तायन अवतार 'बगलामुख' है। उसकी शक्ति महान् आनन्ददायिनी वगडामुखी नामसे विद्यात हुई। नवाँ शिवावतार 'भातन्' नामसे वह जाता है। उस समय समूर्ण अभिलापाओंको पूर्ण करनेवाली शवाणी भातनी हुई। शम्भुके भुक्ति-गुक्तिलय फल प्रदान करनेवाले दसमें अवतारका नाम 'फल' है, जिसमें आगे भक्तोंका सर्वया पालन करनेवाली गिरिजा कमला कहलायाँ। ये ही शिवजीके दस अवतार हैं। ये सबके-सब भक्तों तथा सत्युदयोंके लिये सुखदायक तथा भोग-मोक्षके प्रदाता हैं। जो लोग महात्मा शंकरके इन दसों अवतारोंकी निर्विकारभावसे तेवा करते हैं, उन्हें ये नित्य नाना प्रकारके सुख देते रहते हैं। मुने ! इन प्रकार मैंने दसों अवतारोंका माहात्म्य वर्णन कर दिया। तन्नशास्त्रमें तो यह सर्वकामप्रद वतलाया गया है। मुने ! इन शक्तियोंकी भी अद्भुत महिमा है। तन्न आदि शास्त्रोंमें इस महिमाका सर्वकामप्रदरूपसे वर्णन किया गया है। ये नित्य दुष्टोंको दण्ड देनेवाली और ब्रह्मतेजकी विशेष रूपसे बृद्धि करनेवाली हैं। ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे महेश्वरके महाकाल आदि दस शुभ अवतारोंका शक्तिसहित वर्णन कर दिया। जो मनुष्य समस्त शिव-पर्वोंके अप्सरपर इस परम पावन कथाका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह शिवजीका परम प्यारा हो जाता है। ( इत आख्यानका पाठ करनेसे ) ब्राह्मणके ब्रह्मतेजकी बृद्धि होती है, क्षत्रिय विजयलाभ करता है, वैश्य धनपति हो जाता है और शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। स्वर्घर्मपरायण शिवभक्तोंको यह चरित सुननेसे सुख प्राप्त होता है और उनकी शिवभक्ति विशेषरूपसे बढ़ जाती है।

मुने ! अब मैं शंकरजीके एकादश श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। उन्हें श्रवण करनेसे असत्यादिजनित बाधा पीड़ा नहीं पहुँचा सकती। पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित हो गये। तब वे भयभीत हो अपनी पुरी अमरावतीको छोड़कर भाग खड़े हुए। यो दैत्योद्वारा अस्त्यन्त पीड़ित हुए वे सभी देवता कश्यपजीके पास गये। यहाँ उन्होंने परम व्याकुलतापूर्वक हाथ जोड़ एवं मरतक छुकाकर उनके चरणोंमें अभिवादन किया और उनका भलीभौति स्ववन करके आदरपूर्वक अपने

आनेवाला भारण प्रकट किया तथा दैत्योद्वारा पराजित हुए उनके हुए अपने सारं दुःखोंको कह सुनाया। तब ! वह उनके पिता कश्यपजी देवताओंकी उप कृष्णतानीके सुख अधिक दुखी नहीं हुए; क्योंकि उनकी उद्धि विश्वज्ञमें श्रद्ध थी। मुने ! उन शान्तपुद्दि मुनिने धैर्य धारण करके देवताओंको आश्वासन दिया और स्वयं परम दैत्यपूर्वक विश्वास्तु काशीको नल पांडे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने महार्वदि ज्ञे स्नान करके आगा नित्य-नियम पूरा किया और मिल व्यापूर्ण हुए उमायादित सर्वेश्वर भगवान् विश्वनाथकी भलीभौतिकर्त्तव्य की। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्वसे एक शिवलिङ्ग दरापना करके वे देवताओंके हितार्थ परम प्रसन्नतापूर्वक द्वे तंत्र करने लगे। मुने ! शिवजीके चरणकमलोंमें श्रद्ध मनवाले धैर्यशाली मुनिकर कश्यपको जब यों तप करते हुए बहुत अधिक समय अतीत हो गया, तब सत्युदयोंके पैर सल्ला शीनवन्धु भगवान् शंकर अपने चरणोंमें तदीन मूलके करबप भूषितों वर देनेके लिये वहाँ प्रकट हुए। महस्त गदेश्वर परम प्रसन्न तो ये ही, अतः वे अपने भली उपत्यका कश्यपसे बोले—‘वर मैंगो।’ उन महेश्वरको देखते ही प्रसन्न बुद्धिवाले देवताओंके पिता कश्यपजी दैत्यपत्न हो पाए और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके छोड़ करते हुए वो बोले—‘महेश्वर ! मैं सर्वथा आपका शरण हूँ। सामिन् ! देवताओंके दुःखका विनाश करे जैसे अभिलापा पूर्ण कीजिये। देवेश ! मैं पुत्रोंके दुःखसे द्वितीय दुखी हूँ, अतः ईश ! सुझे सुखी कीजिये; क्योंकि आदि देवताओंके सहायक हूँ। नाथ ! महावली दैत्योंने देवताओंके सम्मान करनेसे ब्रह्मणको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो ! शम्भ मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्दक बनिये।’

तन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! कश्यपजीके पैर कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर उनसे ‘त्येति—ऐश्वर्यो होगा’ यों कहकर उनके सामने ही वहाँ अन्तर्धान हो जाय। तब कश्यप भी महान् आनन्दके साथ तुरंत ही अपने लंबे लौट गये। वहाँ उन्होंने वह सारा वृत्तान्त अरस्ते देवताओंसे कह सुनाया। तदनन्तर भगवान् शंकर अपने वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके पेटसे श्वर रूप धारण करके प्रकट हुए। उस समय मूर्ति उत्सव मनाया गया। सारा जंगल शिवमय हो गया। कश्यपमुनिके साथ-साथ सभी देवता दैत्यपत्नोंके साथ-साथ सभी देवता दैत्यपत्नोंके साथ-साथ सभी देवता

हो गये । उनके नाम रखें गये—कपाली, पिङ्गल, भीम, विल्पाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुद्ध्य, शम्भु, चण्ड तथा भव । ये ग्याहों रुद्र सुरभीके पुत्र कहलाते हैं । ये सुखके आवासस्थान हैं तथा देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये शिवलूपसे उत्पन्न हुए । ये कश्यपनन्दन वीरवर रुद्र महान् वल-पराक्रमसमन्वय थे; इन्होंने संग्राममें देवताओंकी सद्यता करके दैत्योंका संहार कर डाला । इन्हों रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि देवगण दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये ।

उनका मन स्वस्त हो गया और वे अपना-अपना राज्यकार्य सँभालने लगे । अब भी शिव-स्वल्पधारी वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान रहते हैं । तात ! इस प्रकार मैंने तुमसे शंकरजीके ग्याह रुद्र-अवतारोंका वर्णन कर दिया । ये सभी समस्त लोकोंके लिये मुखदायक हैं । यह निर्मल आख्यान सम्पूर्ण पापोंका विनाशक, धन, यश और आयुका प्रदाता तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है । ( अध्याय १६-१८ )

### शिवजीके 'दुर्वासावतार' तथा 'हनुमदवतार'का वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महामुने ! अब तुम शम्भुके एक दूसरे चरितको, जिसमें शंकरजी धर्मके लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे, प्रेमपूर्वक श्रद्धण करो । अनसूयाके पति व्रषतेता तपस्वी अचिने ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पल्लीसंहित श्रीक्षुल पर्वतपर जाकर पुनकामनासे घोर तप किया । उनके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों उनके आश्रमपर गये । उन्होंने कहा कि 'हम तीनों संसारके ईश्वर हैं । हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे, जो ब्रिलोंकीमें विख्यात तथा माता-पिताका यश बढ़ानेवाले होंगे ।' यों कहकर वे चले गये । ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा हुए, जो देवताओंके समुद्रमें डाले जानेपर समुद्रसे प्रकट हुए थे । विष्णुके अंशसे श्रेष्ठ संन्यास-पद्धतिको प्रचलित करनेवाले 'दत्त' उत्पन्न हुए और रुद्रके अंशसे सुनिवर दुर्वासाने जन्म लिया ।

इन दुर्वासाने महाराज अमरीपकी परीक्षा की थी । जब सुर्दीनचकने इनका पीछा किया, तब शिवजीके आदेशसे अमरीपके द्वारा प्रार्थना करनेपर चक शान्त हुआ । इन्होंने भगवान् रामकी फोड़ा की । कालप्रे मुनिका देय धारण करके भीरामके साथ यद शर्त की थी कि 'मेरे साथ यात करते समय भीरामके पास चोर न आये; ले आयेगा, उसका निवासन कर दिता जायगा ।' दुर्वासाजीने इठ करके लक्ष्मणको भेजा, तब श्रीराम-ने उरेत रामगण ल्याग कर दिया । इन्होंने भगवान् श्रीहृषीकेशी रीती दी और उनको श्रीरक्षिणीसंहित रथमें जैता । इस रथ के दुर्गम सुनिमे अत्येह पित्तित चरित्र स्थिते ।

मुने ! अब इसके बाद तुम हनुमानजीका चरित्र श्रवण करो । हनुमदूपसे शिवजीने वड़ी उत्तम लीलाएँ की हैं । विप्रवर ! इसी रूपसे महेश्वरने भगवान् रामका परम हित किया था । वह सारा चरित तब प्रकारके सुखोंका दाता है, उसे तुम प्रेमपूर्वक सुनो । एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले गुणशाली भगवान् शम्भुको विष्णुके मोहिनी-रूपका दर्शन प्राप्त हुआ, तब वे कामदेवके वाणोंसे आहत हुएकी तरह क्षुब्ध हो उठे । उस समय उन परमेश्वरने रामकार्यकी सिद्धिके लिये अपना वीर्यपत्त किया । तब सप्तर्णियोंने उस वीर्यको पञ्चपुटकमें स्थापित कर दिया; क्योंकि शिवजीने ही रामकार्यके लिये आदरपूर्वक उनके मनमें प्रेरणा की थी । तत्पश्चात् उन महार्णियोंने शम्भुके उस वीर्यको रामकार्यकी सिद्धिके लिये गौतमकन्त्या अज्ञानीमें कानके रात्ते स्थापित कर दिया । तब समय अनेक उस गर्भमें शम्भु महान् वल-पराक्रमसमन्वय वानर-शरीर धारण करके उत्पन्न हुए, उनका नाम हनुमान् रखा गया । महावली कर्मीश्वर हनुमान् जब शिवु ही थे, उसी समय उदय होने हुए सूर्यविनामो छोटाना पल समझकर तुरंत ही निगल गये । जब देवताओंने उनकी प्रार्थना की, तब उन्होंने उने महावली सूर्य जानकर उगल दिया । तब देवर्णियोंने उन्हें शिवका अवतार माना और चतुर-सा वरदान दिया । तदगत्वा हनुमान् अक्षय उर्तिशंकर अर्द्ध मालाके पास गये और उन्होंने दह भाग अक्षय अग्ररपूर्वक वह दुनावा । जिस भागर्त्ता अद्वितीय श्रीरामी रथ दृश्यमान भित्ति स्थूल निरुद्ध जारी उपसे आगता ही नहीं विभासू नहीं ।



लों। तदनन्तर रुद्रके अंशभूत कपिश्चेष्ट हरूमान् सर्वकी आशादे

राशोशसो उत्तम हुए मुषीवके पाग चढ़े गये। इसके लिए उन्हें अपनी माताजी भी अनुजा मिल चुकी थी।

तदनन्तर नन्दीश्वरने भगवान् रामका सम्पूर्ण चरित्र सुनें वर्णन करके कहा—‘मुने ! इस प्रकार कपिश्चेष्ट हरूसाते ज्ञात हुए ओराम-ज्ञान ग्राह किया, नाना प्रकारको लेखाएँ ले अनुरोद्धा मान-मर्दन किया, भूतल्यार रामभक्तिर्वासामा और स्वयं भक्ताप्रगम्य होकर सीता-रामको मुख प्रश्न किया। वे नद्रानातार ऐरायशाली हरूमान् लक्ष्मणके प्राप्तदाता रुद्र देवताओंके गर्वशारी और भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं। मैं वीर हरूमान् यदा रामकार्यमें तत्पर रहनेवाले, लोकमें रामरूप नामसे विख्यात, देत्योंकि संहारक और भक्तवत्सल हैं। वह ! इस प्रकार मैंने हरूमानजीका श्रेष्ठ चरित—जो धन, क्षेत्र और आयुजा वर्षक तथा सम्पूर्ण अर्भाष्ट फलोंका दाता है—उन्हें वर्णन कर दिया। जो अनुध्य इस चरितको भक्तिरूपक रुद्र है अराजा समाहित निससे दूसरेको मुनाता है वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त कर लेता है।’

( अथाय १९२० )

**शिवजीके पिप्पलाद-अवतारके प्रसङ्गमें देवताओंकी दर्धीचि मुनिसे अस्थि-याचना, दर्धीचिका शरीररत्याग, वज्र-निर्माण तथा उसके द्वारा वृत्रासुरका वध, सुवर्चाका देवताओंको शाप, पिप्पलादका जन्म और उनका विस्तृत वृत्तान्त**

तदनन्तर महेशावतार तथा वृषेशावतारका चरित सुनाकर नन्दीश्वरने कहा—महाबुद्धिमान् सनक्तुमारजी ! अब तुम अत्यन्त आह्वादपूर्वक महेश्वरके ‘पिप्पलाद’ नामक परमोक्तुष्ट अवतारका वर्णन श्रवण करो। यह उत्तम आख्यान भक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। मुनीश्वर ! एक समय देत्योंने वृत्रासुरकी सहायतासे इन्द्र आदि समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। तब उन सभी देवताओंने सहसा दर्धीचिके आश्रममें अपने-अपने अस्थोंको केककर तत्काल ही हार मान ली। तत्पश्चात् मारे जाते हुए वे इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता तथा देवर्षि शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और वहाँ ( ब्रह्माजीसे ) उन्होंने अपना वह दुखङ्गा कह सुनाया। देवताओंका वध कथन सुनकर लोकप्रितामह ब्रह्माने सारा रहस्य यथार्थलूपसे प्रकट कर दिया कि ‘यह सब त्वाण्डकी करतूत है’ लक्षणे ही तुमलोशोंका वध करनेके लिये तपस्याद्वारा इस महात्मा वृत्रासुरको उत्पन्न किया है। यह देत्य महान् आत्म-

वलसे सम्भव तथा समस्त देत्योंका अधिपति है। अतः ऐसा प्रयत्न करो जिससे इसका वध हो सके। तुम्ह देवराज ! मैं धर्मके कारण इस विषयमें एक उपाय बदल हूँ, मुनो। जो दर्धीचि नामवाले महामुनि हैं, वे तपसी जितेन्द्रिय हैं। उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी समारपणां वज्र-सरीखी अस्थियाँ हो जानेका वर ग्राप्त किया है। तुमलोग उनसे उनकी हड्डियोंके लिये याचना करो। वे अपने दे देंगे। फिर उन अस्थियोंसे वज्रदण्डका निर्माण करके मूर्निश्वय ही उससे वृत्रासुरको मार डालना !’

नन्दीश्वरजी कहते हैं—‘मुने ! ब्रह्माका वह वज्र सुनकर इन्द्र देवगुरु वृहस्पति तथा देवताओंको साध ले दूर वी दर्धीचि शृणुष्टके उत्तम आश्रमपर आये। वहाँ इसने सुवर्चासहित दर्धीचि मुनिका दर्शन किया और अदरपूर्वक उप जोड़कर उन्हें नमस्कार किया; फिर देवगुरु वृहस्पति वह अन्य देवताओंने भी नमस्तापूर्वक उन्हें सिर छुकाया। दर्शन

मुनि विद्वानोंमें थ्रेषु तो ये ही, वे तुरंत ही उनके अभिप्रायको ताड़ गये । तब उन्होंने अपनी पल्ली सुवर्चाको अपने आश्रमसे अन्यत्र भेज दिया । तत्पश्चात् देवताओंसंहित देवराज इन्द्र, जो स्वार्थ-साधनमें बड़े दक्ष हैं, अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मुनिवसे बोले ।

इन्द्रने कहा—“मुने ! आप महान् शिवभक्त, दाता तथा प्रणागतरक्षक हैं; इसीलिये हम सभी देवता तथा देवर्षि व्रष्टाद्वारा अपमानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं । वेपवर ! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; जोकि आपकी हड्डीसे वज्रका निर्माण करके मैं उस देवद्रोहीका ध करूँगा ।” इन्द्रके यो कहनेपर परोपकारपरायण दधीचि निजे अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ देता । उनके समस्त बन्धन नष्ट हो चुके थे, अतः वे तुरंत व्रहलोकको चले गये । उस समय वहाँ पुष्पोंकी वर्धा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये । तदनन्तर इन्द्रने अहीं मुरभि गौको बुलाकर उस शरीरको चटवाया और उन दूसरोंसे अस्थि निर्माण करनेके लिये विश्वकर्माको आदेश दिया ।

इन्द्रकी आशा पाकर विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे सुट्टि मुनिकी वज्रमयी हड्डियोंसे समूर्ण अळोंकी कल्पना की । के रीढ़की हड्डीसे वज्र और व्रहलोक नामक वाण बनाया था अन्य अस्थियोंसे अन्यान्य बहुत-से अळोंका निर्माण किया । शिवजीके तेजसे उल्काएंको प्राप्त हुए इन्द्रने उस वज्रको र श्रीघूर्वक वृत्तामुरपर आकसण किया, ठीक उसी तरह स्फुरने यमराजपर धारा किया था । फिर तो कवच आदिसे प्राप्ति सुरक्षित हुए इन्द्रने तुरंत ही पराक्रम प्रकट करके व्रष्टाद्वारा वृत्तामुरके पर्वतशिखर-सरीखे सिरको काट गिराया । उस समय सर्वगायियोंने महान् विजयोत्सव मनाया, और पुराणोंकी शृणि होने लगी और सभी देवता उनकी सुन्नति लगे । तदनन्तर महान् आत्मवल्लै सम्बद्ध दधीचि मुनिकी तेज लगी मुरच्छा पतिके आशानुसार अपने आश्रमके भीतर है । वहाँ देवताओंके लिये पतिको भरा हुआ जानकर वह हाँसने शर देते हुए बोली ।

सुवर्चने कहा—“अहो ! इन्द्रसंहित ये सभी देवता हैं और भरवा नार्म लिद करनेमें निषुण, नूर्ज तथा हैं । उन्होंने ये तथ-केन्द्र आज्ञते मेरे शापसे पशु हो दी । इन प्रवार उम तरस्तिनी मुनिपली सुवर्चने उन इन्द्र भूमना रेखा दीये द्यार दे दिया । तत्पश्चात् उन दक्ष-ज्ञानीयोंमें दर्शन विचार किया । फिर तो नन्दिनी

सुवर्चने परम पवित्र लकड़ियोंद्वारा एक चिता तैयार की । उसी समय शंकरजीकी प्रेरणासे सुखदायिनी आकाशवाणी हुई, वह उस मुनिपली सुवर्चाको आश्रासन देती हुई बोली ।

आकाशवाणीने कहा—प्रात्रे ! ऐसा साहस मत करो, मेरी उत्तम वात सुनो । देवि ! तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज वर्तमान है, तुम उसे यत्पूर्वक उत्पन्न करो । थोड़े तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करना; क्योंकि शास्त्रका ऐसा आदेश है कि गर्भवतीको अपना शरीर नहीं जलाना चाहिये अर्थात् सती नहीं हीना चाहिये ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुनीधर ! यों कहकर वह आकाशवाणी उपराम हो गयी । उसे सुनकर वह मुनिपली क्षणभरके लिये विसर्यमें पड़ गयी । परंतु उस सती-सच्ची सुवर्चाको तो पतिलोककी प्राप्ति ही अभीष्ट थी, अतः उसने बैठकर पत्थरसे अपने उदरको विदीर्ण कर डाला । तब उसके पेटसे मुनिवर दधीचिका वह गर्भ बाहर निकल आया । उसका शरीर परम दिव्य और प्रकाशमान था तथा वह अपनी प्रभासे दसों दिशाओंमें उद्घासित कर रहा था । तात ! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रातुर्भूत हुआ वह गर्भ अपनी लीला करनेमें समर्थ साकात् रुद्रका अवतार था । मुनिप्रिया सुवर्चने दिव्यस्वरूपधारी अपने उस पुत्रको देखकर मन-ही-मन समझ लिया कि यह रुद्रका अवतार है । फिर तो वह महासाक्षी परमानन्दमय हो गयी और शीघ्र ही उसे नमस्कार करके उसकी स्तुति करने लगी । मुनीधर ! उसने उस स्वरूपको अपने हृदयमें धारण कर लिया । तदनन्तर पतिलोककी कामनावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा मुसुकराकर अपने उस पुत्रसे परम स्नेहपूर्वक बोली ।

सुवर्चने कहा—तात परमेश्वर ! तुम इस अक्षस्थ दृश्यके निकट चिरकालतक स्थित रहो । महाभाग ! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता होओ और अब मुझे प्रेमपूर्वक पतिलोकमें जानेके लिये आज्ञा दो । वहाँ पतिके साथ रहती हुरे में रुद्रसाधारी तुम्हारा ज्ञान करती रहेगी ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! जात्यी सुवर्चने अपने पुत्रसे यों कहकर परम उमर्थिद्वारा पतिया ही असुगत्ता किया । मुनिवर ! इत प्रकार दधीचित्री सुवर्चा द्यितीद्वयमें पहुँचन्द्र अपने पतिसे जा जिली और आनन्दपूर्वक शंकरजीकी देवा तरने लगी । तब ! इदनेमें ही दृश्ये भरे हुए इन्द्रसंहित नमन देवता मुनिपतेके साथ अप्यन्तरित हुए दीक्षान्ते



ते विद्वानोंमें श्रेष्ठ तो ये ही, वे तुरंत ही उनके अभिप्रायको इ गये । तथा उन्होंने अपनी पत्नी सुवर्चाको अपने आश्रमसे अब भेज दिया । तत्पृथात् देवताओंसहित देवराज इन्द्र, । सार्थ-साधनमें वडे दक्ष हैं, अर्थशृङ्खला आश्रय लेकर निवासे बोले ।

इन्द्रने कहा—‘मुने ! आप महान् शिवभक्त, दाता तथा रणगतरक्षक हैं; इसीलिये हम सभी देवता तथा देवर्षि याद्वारा अपानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं । ब्रह्म ! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; योंकि आपकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माण करके मैं उस देवद्रोहीका ध बढ़ाऊँगा ।’ इन्द्रके यों कहनेपर परोपकारपरायण दधीचि निने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ दिया । उनके समस्त वन्धन नष्ट हो चुके थे, अतः वे तुरंत ब्रह्मलोकको चले गये । उस समय वहाँ पुरोंकी वर्षा होने की और सभी लोग आश्र्यचकित हो गये । तदनन्तर इन्द्रने अपनी मुनिमि गौको बुलाकर उस शरीरको चटवाया और उन दुर्दिनोंसे अख्य निर्माण करनेके लिये विश्वकर्माको आदेश दिया ।

मुनिकी वज्रमयी हड्डियोंसे सम्पूर्ण अख्योंकी कल्पना की । के रीढ़की हड्डियोंसे वज्र और ब्रह्मशिर नामक वाण बनाया अन्य अस्थियोंसे अन्यान्य वहुत से अख्योंका निर्माण किया । शिवजीके तेजसे उल्कार्पको प्राप्त हुए इन्द्रने उस वज्रको क्रोधपूर्वक वृत्तामुरपर आक्रमण किया, ठीक उसी तरह इसे यमर्याजपर धावा किया था । फिर तो कवच आदिसे प्राप्ति सुरक्षित हुए इन्द्रने तुरंत ही पराक्रम प्रकट करके ब्रह्मद्वारा वृत्तामुरके पर्वतशिखर-सरीखे सिरको काट गिराया । उस समय स्वर्गवासियोंने महान् विजयोत्सव मनाया, और पुणीयी श्रुति होने लगी और सभी देवता उनकी स्तुति द्वारा हो गई । तदनन्तर महान् अत्मवलसे सम्पन्न दधीचि मुनिकी द्वारा उसी तुरंत पतिके आशानुसार अपने आश्रमके भीतर की दर्ती देवताओंके लिये पतिको मरा हुआ जानकर वह दृढ़तया भार देते हुए घोली ।

प्रा. सुवर्चने कहा—‘अहो ! इन्द्रसंहित ये लभी देवता हैं और अपना पार्व निरुद्ध करनेमें निपुण, मूर्ख तथा दृढ़तया देवताओंसे नव-कै-नव आजसे मेरे शापसे पशु हो गए हैं । उस प्रधार उन तत्त्विनी मुनिपली तुरंतचने उन इन्द्र की देवताओंकी शाप दे दिया । तत्पृथात् उस पति-देवता मुनिदोंके साथ आमन्त्रित हुएकी तरह

सुवर्चने परम पवित्र लकड़ियोंद्वारा एक चिता तैयार की । उसी समय शंकरजीकी प्रेरणासे मुखदायिनी आकाशवाणी हुई, वह उस मुनिपली सुवर्चाको आश्रामन देती हुई बोली ।

आकाशवाणीने कहा—ग्राहे ! ऐसा साहस मत करो, मेरी उत्तम बात सुनो । देवि ! तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज वर्तमान है, तुम उसे वल्लपूर्वक उत्पन्न करो । योले तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करना; क्योंकि शास्त्रका ऐसा आदेश है कि गर्भवतीको अपना शरीर नहीं जलाना चाहिये अर्थात् सती नहीं होना चाहिये ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुनीश्वर ! यों कहकर वह आकाशवाणी उपराम हो गयी । उसे सुनकर वह मुनिपली क्षणभरके लिये विस्तयमें पड़ गयी । परंतु उस सती-साध्वी सुवर्चाको तो पतिलोककी प्राप्ति ही अभीष्ट थी, अतः उसने बैठकर पत्थरसे अपने उदरको विदीर्ण कर डाला । तब उसके पेटसे मुनिवर दधीचिका वह गर्भ बाहर निकल आया । उसका शरीर परम दिव्य और प्रकाशमान था तथा वह अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको उद्धासित कर रहा था । तात ! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह गर्भ अपनी लीला करनेमें सर्वर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था । मुनिप्रिया सुवर्चने दिव्यस्वरूपधारी अपने उस पुत्रको देखकर मन-ही-मन समझ लिया कि वह रुद्रका अवतार है । फिर तो वह महसाध्वी परमानन्दमम ही गयी और शीघ्र ही उसे नमस्कार करके उसकी स्तुति करने लगी । मुनीश्वर ! उसने उस स्वरूपको अपने हृदयमें धारण कर लिया । तदनन्तर पतिलोककी कामनावाली विमलेश्वणा भाता सुवर्चा मुस्कराकर अपने उस पुत्रसे परम स्नेहपूर्वक बोली ।

सुवर्चने कहा—तात परमेश्वान ! तुम इस अवश्य वृक्षके निकट विरकालतक स्थित रहो । महाभाग ! तुम समस्त प्राणियोंके लिये मुखदाता होओ और अब मुझे प्रेमपूर्वक पति-लोकमें जानेके लिये आशा दो । वहाँ पतिके साथ रहती हुई मैं रुद्रलप्यधारी तुम्हारा ध्यान करती रहूँगी ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! साक्षी सुवर्चने अपने पुत्रसे यों कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया । मुनिवर ! इस प्रकार दधीचिमती सुवर्चा दिवलोकमें पहुँचकर अपने पतिसे जा मिली और आनन्दपूर्वक शंकरजीकी तेवा करने लगी । तात ! इतनेमें ही हृष्में भरे हुए दूसरी देवता मुनिदोंके साथ आमन्त्रित हुएकी तरह



ले । तदनन्तर सद्दके अंशभूत कमिश्रेत्र हनुमान् सूर्यकी आशासे

**शिवजीके पिप्पलाद-अवतारके प्रसङ्गमें देवताओंकी दधीचि मुनिसे अस्थि-याचना, दधीचिका शरीरत्याग, वज्र-निर्माण तथा उसके द्वारा वृत्रासुरका वध, सुवर्चाका देवताओंको शाप, पिप्पलादका जन्म और उनका विस्तृत वृत्तान्त**

तदनन्तर महेशावतार तथा वृषेशावतारका चरित सुनाकर नन्दीश्वरने कहा—महाबुद्धिमान् सनक्तुमारजी ! अब तुम अत्यन्त आहादपूर्वक महेश्वरके 'पिप्पलाद' नामक परमोत्कृष्ट अवतारका वर्णन श्रवण करो । यह उत्तम आख्यान भक्तिकी वृद्धि करनेवाला है । मुनीश्वर ! एक समय दैत्योंने वृत्रासुरकी सहायतासे इन्द्र आदि समस्त देवताओंको पराजित कर दिया । तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचिके आश्रममें अपने-अपने अछोंको फेंककर तल्काल ही हार मान ली । तत्पश्चात् मारे जाते हुए वे इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता तथा देवर्षि शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और वहाँ ( ब्रह्माजीसे ) उन्होंने अपना वह दुखङ्गा कह सुनाया । देवताओंका वह कथन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने सारा रहस्य यथार्थलिपसे प्रकट कर दिया कि 'यह सब त्वष्टाकी करतूत है, चष्टाने ही तुमलोगोंका वध करनेके लिये तपस्याद्वारा इस महा- अव वृत्रासुरको उत्पन्न किया है । यह दैत्य महान् आत्म-

प्राणोंको उत्पन्न हुए गुरुओंके पाग चढ़े गये । इसके लिए उन्हें अमो मताये भी अनुशा मिल चुकी थी । तदनन्तर नन्दीश्वरने भगवान् रामका सम्पूर्ण चरित लिखे लिखने लगे—'मुने ! इस प्रकार कमिश्रेत्र हनुमान् जे वरहों श्रीरामका वर्ण पूरा किया, नाना प्रकारकी लोअरें और अनुरोध मान-मर्दन किया, भूतलपर रामभक्ति साक्षा ; और तथा भक्तामाला होकर सीता-रामको मुख प्रदान किया । वे द्वादशातार ऐश्वर्यशाली हनुमान् लक्षणके प्राणदाता लम्बे देवताओंहें गच्छारी और भक्तोंका उदार करनेवाले हैं । वे वीर हनुमान् यदा राम-कार्यमें तत्पर रहनेवाले, लोकमें एम्बूल नामसे विज्ञात, देत्योंकि संदारक और भक्तवल्ल हैं । तब इस प्रकार मैंने हनुमानजीका श्रेष्ठ चरित—जो घन श्वरसे आयुष वर्णित तथा सम्पूर्ण अभीष्ट कर्त्तोंका दाता है— लिखन कर दिया । जो मनुष्य इस चरितको भक्तिगूर्वक है वे अस्ता नमादित निचसे दूसरेको सुनाता है, वह इसके सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षके प्राप्त होता है । ( अध्याय ११-२० )

वलसे सम्बन्ध तथा समस्त दैत्योंका अधिपति है । अः अ ऐसा प्रथम करो जिससे इसका वध हो सके । उदिता देवराज ! मैं धर्मके कारण इस विषयमें एक उपाय बलव छूँ, सुनो । जो दधीचि नामवाले महामुनि हैं, वे तपसी और जितेन्द्रिय हैं । उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी समारणना कर्ते वज्र-सरीखी अस्थियाँ हो जानेका वर प्राप्त किया है । अ हुमलोग उनसे उनकी हड्डियोंके लिये याचना करो । वे अस दे देंगे । फिर उन अस्थियोंसे वज्रदण्डका निर्माण करके उन निश्चय ही उससे वृत्रासुरको मार डालना ।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—'मुने ! ब्रह्माका वह कल सुनकर इन्द्र देवगुरु वृहस्पति तथा देवताओंको साथ ले गुल ही दधीचि शृणिके उत्तम आश्रमपर आये । वहाँ इन्हें सुवर्चासहित दधीचि मुनिका दर्शन किया और आदरपूर्वक हृष जोड़कर उन्हें नमस्कार किया; फिर देवगुरु वृहस्पति वह अस्थि देवताओंने भी नम्रतापूर्वक उन्हें सिर छकाया । दर्शन

मृगिनि विद्वानोंमें थ्रेष्ठ तो थे ही, वे तुरंत ही उनके अभिप्रायको गाइ गये। तब उन्होंने अपनी पत्नी सुवर्चाको अपने आश्रमसे प्रव्यव भेज दिया। तत्प्रथात् देवताओंसहित देवराज इन्द्र, जो सार्थ-साधनमें बड़े दक्ष हैं, अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर उनिवरसे बोले।

इन्द्रने कहा—“मुने ! आप महान् शिवभक्त, दाता तथा प्रणामतरक्षक हैं; इसीलिये हम सभी देवता तथा देवर्षि श्याद्वारा अपमानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं। प्रवर ! आप अपनी वज्रमयी अस्थियों हमें प्रदान कीजिये; जोकि आपकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माण करके मैं उस देवद्रोहीका ध करूँगा।” इन्द्रके यों कहनेपर परोपकारपरायण दधीचि ने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ दिया। उनके समस्त वन्धन नष्ट हो चुके थे, अतः वे तुरंत ब्रह्मलोकको चले गये। उस समय वहाँ पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्वर्यचकित हो गये। तदनन्तर इन्द्रने ब्रह्म ही सुरभि गौको बुलाकर उस शरीरको चटवाया और उन लक्ष्यसे अन्न निर्माण करनेके लिये विश्वकर्माको आदेश दिया। इन्द्रकी आशा पाकर विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे सुहृद मुनिकी वज्रमयी हड्डियोंसे सम्पूर्ण अस्थोंकी कल्पना की। रेढ़की हड्डियोंसे वज्र और ब्रह्मशिर नामक वाण बनाया और अन्य अस्थियोंसे अन्यान्य ब्रह्म-से अस्थोंका निर्माण किया। शिवजीके तेजसे उल्काएं प्राप्त हुए इन्द्रने उस वज्रको दधीचि के दृष्टिपूर्वक वृत्तामुपर प्रकाशन किया, ठीक उसी तरह इन्द्रने यमराजार धावा किया था। फिर तो कवच आदिसे निर्माति तुरकित हुए इन्द्रने तुरंत ही पराक्रम प्रकट करके। विद्युत वृत्तामुके पर्वतशिखर-सरीखे सिरको काट गिराया। “! उग समय स्वर्गवासियोंने महान् विजयोत्सव मनाया, और पुष्पोंसे ब्रूहि होने लगी और सभी देवता उनकी सुति लिये। तदनन्तर महान् आत्मवल्से सम्पन्न दधीचि मुनिकी दूसरी सुवर्चनी पतिके आजानुसार अपने आश्रमके भीतर बढ़ा। वही देवताओंके लिये पतिको मरा हुआ जानकर वह दूसरी दौरा देते हुए बोली।

प्रा मुवर्चने कहा—“ओ ! इन्द्रसहित ये सभी देवता हैं और अपना कार्य सिद्ध करनेमें निपुण, नूरंत तथा वृक्षके लिये पै क्षय-रेत्यम आजते मेरे शापसे पशु हो जाएं।” प्रवर उग तपस्त्रिनी मुनिपत्नी सुवर्चनी उन इन्द्र विद्युत-वल्से देवताओंसे घार दे दिया। तत्प्रथात् उस पति-पत्नी दूसरी दौरीमें उपेश विचार किया। फिर तो मनस्त्विनी

सुवर्चने परम पवित्र लकड़ियोंद्वारा एक चिता तैयार की। उसी समय शंकरजीकी प्रेरणासे सुखदायिनी अकाशवाणी हुई, वह उस मुनिपत्नी सुवर्चनोंको आश्रासन देती हुई बोली।

आकाशवाणीने कहा—“प्राजे ! ऐसा साहस मत करो, मेरी उत्तम बात मुझों। देवि ! तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज वर्तमान है, तुम उसे यन्मपूर्वक उत्पन्न करो। पोछे तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करना; क्योंकि शास्त्रका ऐसा आदेश है कि गर्भवतीको अपना शरीर नहीं जलाना चाहिये अर्थात् सती नहीं होना चाहिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—“मुनीश्वर ! यों कहकर वह आकाशवाणी उपराम हो गयी। उसे सुनकर वह मुनिपत्नी क्षणभरके लिये विस्थयमें पड़ गयी। परंतु उस सती-साध्वी सुवर्चनोंको तो पतिलोककी प्राप्ति ही अभीष्ट थी, अतः उसने बैठकर पत्थरसे अपने उदरको विदीर्ण कर डाला। तब उसके पेटसे मुनिवर दधीचिका वह गर्भ बाहर निकल आया। उसका शरीर परम दिव्य और प्रकाशमान था तथा वह अपनी प्रभासे दसों दिव्याओंको उन्द्रासित कर रहा था। तात ! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह गर्भ अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था। मुनिपत्ना सुवर्चने दिव्यस्वरूपधारी अपने उस पुत्रको देखकर मन-ही-मन समझ लिया कि यह रुद्रका अवतार है। फिर तो वह महासाध्वी परमानन्दमम हो गयी और शीघ्र ही उसे नमस्कार करके उसकी सुति करने लगी। मुनीश्वर ! उसने उस स्वल्पको अपने हृदयमें धारण कर लिया। तदनन्तर पतिलोककी कामनावाली विमलेश्वरा भाता सुवर्चनी मुस्कराकर अपने उस पुत्रसे परम स्नेहपूर्वक बोली।

सुवर्चने कहा—“तात परमेश्वान ! तुम इस अध्यत्य वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग ! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता होओ और अब मुझे प्रेमपूर्वक पतिलोकमें जानेके लिये आज्ञा दो। वहाँ पतिके साथ रहती हुई मैं रुद्रधर्मधारी तुम्हारा ध्यान करती रहूँगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—“मुने ! सावी सुवर्चने अपने पुत्रसे यों कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अतुरासन किया। मुनिवर ! इस प्रकार दधीचिकी हुवर्चनी शिवलोकमें पहुँचकर अपने पतिसे जा निली और आनन्दपूर्वक शंकरजीकी लेवा करने लगी। तात ! इसनेमें ही हृष्णमें भरे हुए इन्द्रसहित समस्त देवता मुनिदंते गाय अमन्त्रित हुएकी तरह दीक्षितासे

तहीं आ पहुँचे । तब प्रथम शुद्धियाले जगति उत्त गतिरा  
भाग पिण्डलाद रखता । फिर राजो देवता महेश्वर महाकार  
अपने अपने धामवो नहि गये । तदनन्तर महान् ऐर्ष्यशाली  
स्वावतार पिण्डलाद उनी अजगरो हीने लोटोंमि शितामनसि  
निरकालिक तप्यों प्रकृत्या हुए । लोटानारत्न अनुगरण  
करनेवाले पिण्डलादका यो तप्या करते हुए कहुत वहा समय  
ब्यतीत हो गता ।

तदनन्तर पिण्डलादने राजा भगवान् की कथा प्रगति विचार  
करके तमूष हो उसके साथ विलय किया । उन मुनियों  
दस पुत्र उत्तर हुए, जो सनके एवं पिताके श्री पमान महात्मा  
और उत्त तपस्ती थे । वे अपनी गता प्रगति कुछती शुद्धि  
करनेवाले हुए । इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलानाथार मुनि-  
वर पिण्डलादने महान् ऐर्ष्यशाली तथा गाना । प्रकारस्ती लीलाएँ  
कीं । उन कुछालुने जगत्में शनैश्चरणी यीदाहो  
जिसका निवारण करना रायकी शक्तिके बाहर था, देखकर  
लोगोंको प्रत्यक्षतापूर्वक यह वरदान दिया कि 'जन्मसे लेकर

मौन् वर्यताकी आशुनाले मनुष्योंको तथा विषम्बलेको  
सी यीदा नहीं हो सकती । यह मंग क्षम त्वं त्वं त्वं  
नहि कहीं शनि गेरे वचनका अनादर करके उन कुछती  
यीदा पहुँचायेगा तो तद निस्तेह भसा हो जाय ॥ लै!  
इसीलिये उन भास्य मीत हुआ प्रह्लेष शनैश्चर विजय होते  
मी देखे मनुष्योंहो कभी यीदा नहीं पहुँचाता । तुम्हारे  
प्रत्यार मौनी लीलामि मनुष्यरूप वारण करनेवाले तिक  
उत्तम चरित तुम्हे मुगा दिया, यह समूर्ज आमनके  
वरनेवात्य है । याहि, कौशिक और महामुनि विष्वद  
तीनों स्वरूप किये जानेवार शनैश्चरनित यीदाज्ञ न  
होते हैं । वे मुनिपर दृष्टिनि, जो परम ज्ञान सुखकै  
तथा नहान् शिवभक्त गे, धन्य हैं, जिनके वहाँ त्वं त्वं त्वं  
मदेशर पिण्डलाद नामक पुत्र शेषर उत्तर हुए । ज्ञ  
आल्यान निरोप, स्वर्गप्रद, दुग्रहजनित दीपोंका स्वाक्ष  
मनोरणोंका पूरक और शिवभक्तिकी विशेष वृद्धि करते  
( अद्याय २१—

### भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा—राजा भद्रायु तथा रानी कीर्तिमालिनीकी धार्मिक दृढताकी परीक्षा

तदनन्तर दैश्वतनाथ अवतारका वर्णन करके  
नन्दीश्वरने द्विजेश्वरावतारका ग्रसङ्ग चलाया ।  
वे बोले—तात ! पहले जिन शृण्वेष्ठ भद्रायुका परिचय  
दिया गया था और जिनपर भगवान् शिवने शृण्मभूषसे  
अनुयह किया था, उन्हीं नरेशके धर्मकी परीक्षा लेनेके  
लिये वे भगवान् फिर द्विजेश्वरस्त्वसे प्रकट हुए थे ।  
शृण्मके ग्रमावसे रणभूमिमें शशुओंपर विजय पाकर  
शक्तिशाली राजकुमार भद्रायु जब राज्यसिंहासनपर आस्त  
हुए, तब राजा चन्द्राङ्गद तथा रानी सीमन्तिनीकी बेटी  
सती-साथी कीर्तिमालिनीके साथ उनका विवाह हुआ ।  
किसी समय राजा भद्रायुने अपनी धर्मपत्नीके साथ वसन्त  
श्रुतुमें बन-विहार करनेके लिये एक गहन बनमें प्रवेश  
किया । उनकी पत्नी शरणागतजनोंका पालन करनेवाली थी ।  
राजाका भी ऐसा ही नियम था । उन राजदम्पत्तिकी धर्ममें  
कितनी हड्डता है, इसकी परीक्षके लिये पार्वतीसहित  
भगवान् शिवने एक लीला रची । शिवा और शिव उस  
घनमें ब्राह्मणी और ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए । उन दोनोंने  
लीलापूर्वक एक मायामय व्याप्तिका निर्माण किया । वे दोनों  
भयसे निछल हो व्याप्तिके थोड़ी ही दूर आगे रोते-निछलते

भागने लगे और व्याप्त उनका पीछा करने लगा ।  
उन्हें इस अवाहनमें देखा । वे ब्राह्मणदम्पति भी  
विद्युल हो महाराजती शरणमें गये और इस प्रश्न दे

ब्राह्मण-दम्पतिने कहा—महाराज ! हारे  
कीजिये, रक्षा कीजिये । वह व्याप्त इस दोनोंके लाभ  
लिये आ रहा है । समस्त प्राणियोंको कालके तन  
देनेवाला वह हिंसक प्राणी हमें अलै  
बनाये, इसके पूर्व ही आप हम दोनोंके बचाव

उन दोनोंका वह कलणकन्दन सुनकर महारा-  
ज्यों ही धनुर उठाया, त्यों ही वह व्याप्त उनके त्रिप्ति  
पहुँचा । उसने ब्राह्मणीको पकड़ लिया । वह देवतारूप  
हा नाथ ! हा प्राणवल्लभ ! हा शम्भो ! हा शम्भु  
इत्यादि कहकर रोने और विलाप करने लगी । आवश्यक  
था । उसने ज्यों ही ब्राह्मणीको अपना ग्राह जानकर ही  
त्यों ही भद्रायुने तीखे बाणोंसे उसके मर्मों अपने  
परंतु उन बाणोंसे उस महाबली व्याप्ति तनिहरे  
नहीं हुई । वह ब्राह्मणीको बलपूर्वक जीता हुआ  
दूर निकल गया । अपनी पत्नीको लापके रूप

इस ब्राह्मणको बड़ा हुँख हुआ और वह बारंबार रोने लगा। देखतक रोकर उसने राजा भद्रायुसे कहा—राजन्। तुम्हारे वे वडे-वडे अच्छ कहाँ हैं ? दुखियोंकी रक्षा करने पाला तुम्हारा विशाल धनुष कहाँ है ? मुना या तुमसे बारह जार वडे-वडे हथियोंका बल है। वह बल क्या हुआ ? तुम्हारे शङ्ख, खङ्ख तथा मन्त्राञ्च-विद्यासे क्या लाभ हुआ ? तुम्हारोंकी शीण हेनेसे वचाना क्षत्रियका परम धर्म है। अर्मज राजा अपना धन और प्राण देकर भी शरणमें आये हैं ए दीन-दुखियोंकी रक्षा करते हैं। जो पीड़ितोंकी प्रण-स्थि नहीं कर सकते, ऐसे लोगोंके लिये तो जीनेकी अपेक्षा नहीं जाना ही अच्छा है।

इस प्रकार ब्राह्मणका विलाप और उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजाने शोकसे मन-ही-मन लौट प्रकार विचार किया—‘अहो ! आज भास्यके उल्ट-फेरसे इस पराक्रम नष्ट हो गया। मेरे धर्मका भी नाश हो गया। अतः अब मेरी समदा, राज्य और आयुका भी निश्चय नहीं नाश हो जायगा।’ यों विचारकर राजा भद्रायु ब्राह्मणके लियोंमें गिर पड़े और उसे धीरज बँधाते हुए बोले—  
क्षम ! मेरा पराक्रम नष्ट हो गया है। महामते ! मुझ ने योधमपर छूपा करके शोक छोड़ दीजिये। मैं आपको अचित पदार्थ देंगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा शरीर सब कुछ आपके अधीन है। बोलिये, आप क्या ते हैं ?

**ब्राह्मण बोले—राजन्।** अंधेको दर्पणसे क्या काम ? भिक्षा पाँगकर जीवन-निर्वाह करता हो, वह बहुत-से घर र क्या करेगा। जो मूर्ख है, उसे पुस्तकसे क्या काम जितके पास रही नहीं है, वह घन लेकर क्या करेगा ? पत्नी चली गयी, मैंने कभी काम-सुलका उपयोग नहीं ! अतः कामभोगके लिये आप अपनी इस बड़ी रानीको दे दीजिये।

राजाने कहा—व्रदन् ! क्या यही तुम्हारा धर्म है ? तुम्हें तुम्हने दही उपदेश किया है ? क्या तुम नहीं जानते कि पापी खींच सर्व स्वर्ग एवं तुश्यकी हानि करनेवाला है ? उपरोक्त उपयोगसे जो पाप कराया जाता है, उसे कीर्त्तिद्वारा भी खोया जाता है।

**ब्राह्मण बोले—राजन् !** मैं अपनी तरलाचे भवंकर हूँ और भविराजन-सेते पापका भी नात बह

डालूँगा। क्षिर परस्तीसंगम किस गिनतीमें है ! अतः आप अपनी इस मार्याको मुक्ते अवश्य दे दीजिये। अन्यथा आप निश्चय ही नरकमें पड़ेंगे।

ब्राह्मणकी इस शातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महापाप होगा, अतः इससे वचनेके लिये पत्नीको दे डालना ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर मैं पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने आग जलायी और ब्राह्मणको दुलाकर उसे अपनी पत्नीको दे दिया। तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र हो देवताओंको ग्रगम करके उन्होंने अग्निकी दो बार परिक्रमा की और एकाग्रचित्त द्वारा भगवान् शिवका ध्यान किया। इस प्रकार राजाको अग्निमें गिरनेके लिये उद्यत देख जगत्पति भगवान् विश्वनाथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उनके पैंच मुख थे। मस्तकपर चन्द्रकला आभूषणका काम दे रही थी। कुछ-कुछ पीले रंगकी जटा लटकी हुई थी। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी थे। श्योंमें त्रिशूल, खट्टवाङ्ग, कुठार, ढाल, मृग, अभय, वरद और मिनाक धारण किये, बैलकी पीठपर बैठे हुए भगवान् नीलकण्ठकी राजाने अपने सामने प्रत्यक्ष देखा। उनके दर्शनजनित आनन्दसे युक्त हो राजा भद्रायुने हाथ जोड़कर स्ववन किया।

**राजाके स्तुति करनेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए महेश्वरने कहा—राजन्।** तुमने किसी अन्यका चित्तन न करके तो सदा-सर्वदा मेरा पूजन किया है। तुम्हारी इस भक्तिके कारण और तुम्हारे द्वारा की हुई इस पवित्र लृतिकी सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये मैं स्वयं ब्राह्मण बनकर आया था। जिस व्याप्रने ग्रस लिया था, वह ब्राह्मणी और कोई नहीं, से गिरिराजनन्दिनी उमादेवी ही थीं। तुम्हारे वाण मारनेसे भी जितके यारीस्तों चोट नहीं पहुँची, वह व्याप्र भायानिर्मित था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीकी माँगा था, इस कीर्त्तिमालिनीकी और तुम्हारी भक्तिमें संतुष्ट हूँ। तुम कोई कुछ भर माँगो, मैं उसे देंगा।

**राजा बोले—है !** आप सदाचार रत्नेश्वर हैं। अतमे हीतरित लाये पिरे हुए मुझ अस्त्रद्वारा पूँछ बदल दिया है, वही मेरे लिये भद्रत रह है। है ! भद्र रह

दाताओंमें थ्रेष्ठ हैं। आपसे मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता। मेरी यही इच्छा है कि गौं, मेरी रानी, गौरे माता-गिरा पत्नाकर वैश्य और उसके पुत्र गुणग—इन सबको आप अपना पार्श्ववतीं सेवक बना लीजिये।

तत्प्रश्नात् रानी कीतिमालिनी प्रणाम करके आगी गकिसे भगवान् शंकरने प्रसन्न हिला और यह उत्तम वर माँग—‘महादेव ! मेरे पिता चन्द्राङ्गद और माता शीमान्तिनी—इन दोनोंको भी आपके समीण निवास ग्रास हो !’ भक्तस्तत्त्व भगवान् गौरीपति ने प्रसन्न होकर ‘एवमस्तु’ कहा और उन दोनों पति-पत्नीको इच्छानुराग वर देकर वे शशभरमें अन्तर्धान

हो गये। इधर सजाने भगवान् शंकरका प्रसाद ग्राहके रानी कीतिमालिनीके साथ प्रिय विषयोंका उपसंग ज्ञानदेश हजार वर्षोंतक सभ्य करनेके पश्चात् अपने पुत्रोंके जन्म देकर उन्होंने शिवजीके परमपदको प्राप्त किया। एवं ज्ञानी दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करके जल धिनर्ह खामों प्राप्त हुए। यह परम पवित्र पापनाशक अशान्त गोपनीय भगवान् शिवका विचित्र गुणावत है निदानोंको मुनाफा है अथवा स्वयं भी शुद्धित होनेका है। वह इन लोकमें भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तकर अत्यंत धन्य धिनर्ह ग्रात होता है। (अल्प २२२)

### भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंस नामक अवतार

नन्दीश्वर कहते हैं—मुझे ! अब मैं परमात्मा शिवके यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करता हूँ। मुझीश्वर ! अर्षुदाचल नामक पर्वतके समीप एक भील रहता था, जिसका नाम था आहुः। उसकी पत्नीको लोग आहुका कहते थे। वह उत्तम ब्रतका पालन करनेवाली थी। वे दोनों पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे और शिवकी आराधना-पूजामें लगे रहते थे। एक दिन वह शिवभक्त भील अपनी पत्नीकि लिये आहारकी खोज करनेके निमित्त जंगलमें बहुत दूर चला गया। इसी समय संन्यासीका रूप धारण करके उसके घर आये। इतनेमें ही उस घरका मालिक भील भी चला आया और उसने बड़े प्रेमसे उन यतिराजका पूजन किया। उसके मनोभावकी परीक्षाके लिये उन यतीश्वरने दीनवाणीमें कहा—‘भील ! आज रातमें यहाँ रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सवेरा होते ही चला जाऊँगा, तुम्हारा सदा कल्याण हो !’

भील बोला—स्वामीजी ! आप ठीक कहते हैं, तथापि मेरी बात सुनिये। मेरे घरमें स्थान तो बहुत थोड़ा है। फिर उसमें आपका रहना कैसे हो सकता है ?

भीलकी यह बात सुनकर स्वामीजी वहाँसे चले जानेको उद्यत हो गये।

तब भीलनीने कहा—प्राणनाथ ! आप स्वामीजीको स्थान दे दीजिये। घर आये हुए अतिथिको निराश न लौटाइये। अन्यथा हमारे गृहस्थ-धर्मके पालनमें वाधा पहुँचेगी। आप स्वामीजीके साथ सुखपूर्वक घरके भीतर रहिये और मैं बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर बाहर खड़ी रहूँगी।

पत्नीकी यह बात सुनकर भीलने सोचा—ज्ञाने ! बाहर निकालकर मैं भीतर कैसे रह सकता हूँ ? उन्हाँदें अन्यत्र जाना भी नेरे लिये अर्थमानक ही होगा। वे दोनों कार्य एक गृहस्थके लिये सर्वथा अनुचित हैं। कहाँ वहके बाहर रहना चाहिये। जो होनहार होगी, वह होनकर ही रहेगी। ऐसा सोच आग्रह करके उसने ज्ञाने ! सन्यासीजीको तो सानन्द वरके भीतर रख दिया और लां भील अपने आयुध पात रखकर वरसे बाहर लड़ा ही तब रातमें जंगली कूर एवं हिंसक पशु उसे पीड़ा देने लगे। लगे भी यथाशक्ति उनसे बचनेके लिये महान् यत लिया। उन्होंने तरह यत करता हुआ वह भील बल्लान् होनकर भी प्रभु प्रेरित हिंसक पशुओंद्वारा बल्पूर्वक खा लिया गया। काल उठकर जब यतिने देखा कि हिंसक पशुओंने भीलको खा डाला है, तब उन्हें बड़ा हुँख हुआ। उन्हें दुखी देख भीलनी दुःखसे व्याकुल होनेपर भी वैर्यशूल हुँखको दवाकर यों बोली—स्वामीजी ! आप उन्हें लिये हो रहे हैं ? इन भीलराजका तो इस सम्बन्ध हुआ। ये धन्य और कृतार्थ हो गये, जो इहैं ऐसे प्राप्त हुईं। मैं चिताकी आगमें जलकर इन्हाँ अकर्लगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिंगा कैद दें; क्योंकि स्वामीका अनुसरण करना जियोंके लिये धर्म है।’ उसकी बात सुनकर सन्यासीजीने स्वयं दिया और भीलनीने अपने धर्मके अनुसार उसमें प्रवेश। इसी समय भगवान् शंकर अपने साक्षात् स्वप्नसे उठकर हो गये और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—

‘बन्य हो, घन्य हो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।’



भगवान् शंकरका यह परमानन्ददायक वचन सुनकर मैंको वडा सुख मिला। वह ऐसी विभोर हो गयी कि जैसी भी वातकी सुध नहीं रही। उसकी उस अवस्थाको

लक्ष्य करके भगवान् शंकर और भी प्रसन्न हुए और उसके न माँगनेपर भी उसे वर देते हुए बोले—‘मेरा जो यतिरूप है, यह भावी जन्ममें हंसरूपसे प्रकट होगा और प्रसन्नतापूर्वक तुम दोनोंका परस्पर संयोग करायेगा। यह भील निधधदेशकी उत्तम राजधानीमें राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय नलके नामसे इसकी ख्याति होगी और तुम विर्द्भ नगरमें भीमराजकी पुत्री दमयन्ती होओगी। तुम दोनों मिलकर राजभोग भोगनेके पश्चात् वह मोक्ष प्राप्त करोगे, जो वडे-वडे योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है।’

नन्दीश्वर कहते हैं—मुने ! ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय लिङ्गरूपमें स्थित हो गये। वह भील अपने धर्मसे विचलित नहीं हुआ था, अतः उसीके नामपर उस लिङ्गको ‘अचलेश’ संज्ञा दी गयी। दूसरे जन्ममें वह आहुक नामक भील नैथ्य नगरमें वीरसेनका पुत्र हो महाराज नलके नामसे विख्यात हुआ और आहुका नामकी भीलनी विर्द्भ नगरमें राजा भीमकी पुत्री दमयन्ती हुई और वे यतिनाथ शिव वहाँ हंसरूपमें प्रकट हुए। उन्होंने दमयन्तीका नलके साथ विवाह कराया। पूर्वजन्मके सत्कारजनित पुण्यसे प्रसन्न हो भगवान् शिवने हंसका रूप धारणकर उन दोनोंको सुख दिया। हंसावतारधारी शिव भाँति-भाँतिकी बातें करने और संदेश पहुँचानेमें कुशल थे। वे नल और दमयन्ती दोनोंके लिये परमानन्ददायक हुए। (अथाय २८)

### भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर कहते हैं—सनकुमारजी ! भगवान् शम्भुके उत्तम अवतारका नाम कृष्णदर्शन है, जिसने राजा गो शान प्रदान किया था। उसका वर्णन करता हूँ,। श्राद्धदेव नामक मनुके जो इश्वाकु आदि पुत्र थे, उनमें में नाम नभग था, जिनका पुत्र नाभाग नामसे प्रसिद्ध। नाभागके ही पुत्र अम्बरीप हुए, जो भगवान् विष्णुके पैर पाया जिनकी व्राणदभक्ति देखकर उनके ज्ञान महार्पण हुए थे। मुने ! अम्बरीपके पितामह जो नभग थे हे उनके चरित्रका वर्णन मुझे। उन्हींके भगवान्। ज्ञान प्रदान किया था। मनुपुत्र नभग वहे बुद्धिमान् ग्रन्थोंपरिधायकरु के लिये दीर्घकालतक इद्रियरूपवृक्षके लिये नियम लिया। इनी दीनमें इश्वाकु आदि भाइयोंने के लिये कई ग्रन्थ न देखर मितानी लक्ष्य आनन्दमें दौट

ली और अपना-अपना भाग लेकर वे उत्तम रीतेसे राज्यका पालन करने लगे। उन सबने पिताकी आशसे ही धनका वैट्वारा किया था। कुछ कालके पश्चात् व्रजान्नारी नभग गुरुकुलसे साक्षोपाक्ष वेदोंका अध्ययन करके वहाँ आये। उन्होंने देखा तब भाई सारी सम्पत्तिका वैट्वारा करके अपना-अपना भग ले चुके हैं। तब उन्होंने भी वडे स्नेहसे दायमान धानेकी इच्छा रखकर अपने इश्वाकु आदि दन्तुद्वेषी कद—‘भाईयो ! मेरे लिये भग दिये दिना ही आपलेनानि अनन्तमें क्षारी सम्पत्तिका वैट्वारा कर लिया। अतः अब प्रभन्नतापूर्वक दुसे भी हिस्ता दीजिये। मैं अपना दायमान लेनेने लिये ही वर्षों अपाए हूँ।’

भाई थोडे—जब कन्तिता देउदरम हो रहा था, उम समय हम तुम्हारे लिये भग देना भूल गये थे। अब इस

समय पिताजीको ही तुम्हारे दिल्लीमें रहे हैं। तुम उन्हींको ले लो, इसमें संशय नहीं है।

भाइयोंका यह बचन सुनकर नमग्नि वद्या विश्वाय हुआ। वे पिताके पास जाकर बोले—“तात ! मैं विश्वायस्तं लिये गुरुकुलमें गया था और वहाँ अवतार वद्यानारी रहा है। इसी बीचमें भाइयोंने मुझे छोड़कर आपसमें धनज बट्टाया दिया। वहाँसे लौटकर जब मैंने आपके दिल्लीके बांगों उनको पूछा, तब उन्होंने आपको मेरा दिल्ली वद्या दिया। अतः उनके लिये मैं आपकी सेवामें आया हूँ।” नमग्नि वद्या वत्त चुनकर पिताको वद्या विश्वाय हुआ। अद्विदेवने पुनर्न्दो आशान केरो हुए कहा—“वेदा ! भाइयोंकी उस वातपर विश्वाया न करो। वह उन्होंने तुम्हें टगनेके लिये कही है। मैं तुम्हारं लिये भोग-साधक उत्तम दाय नहीं बन सकता, तथापि उन वद्यतोंने यदि मुझे ही दायके रूपमें तुम्हें दिया है तो मैं तुम्हारी जीविताका एक उपाय बताता हूँ, मुझो। इन दिनों उत्तम तुद्विलि आङ्गिरसगोनीय व्रादण एक बहुत वद्या यश कर रहे हैं। उस कर्ममें प्रत्येक छठे दिनका कार्य वे टीक-टीक नहीं समझ पाते—उसमें उनसे भूल हो जाती है। तुम वहाँ जाओ और उन व्रादणोंको विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्ष्म बतला दिया करो। इससे वह यह शुद्धलूपसे सम्पादित होगा। वह यह समाप्त होनेपर वे व्रादण जब स्वर्गको जाने लगेंगे, उस समय संतुष्ट होकर अपने यशसे बचा हुआ सारा धन तुम्हें दे देंगे।”

पिताकी यह वात सुनकर सत्यवादी नमग्नि वद्दी प्रसन्नताके साथ उस उत्तम यज्ञमें गये। मुने ! वहाँ छठे दिनके कर्ममें तुद्विमान्, मनुपुत्रने वैश्वदेवसम्बन्धी दोनों सूक्ष्मोंका स्पष्टलूपसे उच्चारण किया। यज्ञकर्म समाप्त होनेपर वे आङ्गिरस व्रादण यज्ञसे बचा हुआ अपना-अपना धन नमग्नको देकर स्वर्गलिंगको चले गये। उस यज्ञशिष्ट धनको जब ये ग्रहण करने लगे, उस समय सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शिव तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। उनके सारे अङ्ग बड़े सुन्दर थे, परंतु नेत्र काले थे। उन्होंने नमग्नसे पूछा—“तुम कौन हो ? जो इस धनको ले रहे हो। यह तो मेरी सम्पत्ति है। तुम्हें किसने यहाँ मेजा है। सब बातें ठीक-ठीक बताओ।”

नमग्नने कहा—“यह तो यज्ञसे बचा हुआ धन है, जिसे शृणियोंने मुझे दिया है। अब यह मेरी ही सम्पत्ति है। इसको लेनेसे तुम मुझे कैसे रोक रहे हो ?

कृष्णदर्शनने कहा—“तात ! हम दोनोंके इस झोगड़ोंमें तुम्हारे पिता ही पंच रहेंगे। जाकर उनसे पूछो और वे जो

निर्णय है, उसे डीक-डीक वहाँ आकर बताओ।” उन्हें चुनकर नमग्नने पिताके पास जाकर उक्त प्रश्नहो उन्हें कहे दाया। आद्विदेवने कहे—“पुरानी वात वाद अमीशै उन्होंने भगवान् पिताके चरण-कुपलोंका किल ले लुप्त किया।

मग्न बोले—“तात ! वे तुम्हा जो तुम्हें वह क्षमा केरो हैं, वाचान् भगवान् दिया है। वो तो संगत्ये क्षमा वल्लु ही उन्हींमें है। परंतु यज्ञसे प्रात हुए धनकर उन्होंना अनित्यर है। वह करनेसे जो बन बच जाता है उसे भद्रमा भाग निश्चिता दिया गया है। अतः यज्ञशिष्ट : वल्लु प्रथम् करनेके अधिकारी सर्वेश्वर महादेवजी ही उन्होंनी इच्छाते ही दूसरे लोग उस वस्त्रसे ले ले जाएँ। भगवान् शिव तुम्हार कुमा करनेके लिये ही वहाँ बैल ; धारण करने आये हैं। तुम वहाँ जाओ और उन्हें प्रसन्न हो अन्न अराधारे लिये क्षमा माँगो और प्रणामपूर्वक ऊँ ल्हाति करो।” नमग्न पिताकी आशासे वहाँ गये और माँगदूँ प्रणाम करके शाय जोड़कर बोले—“महेश्वर ! यह सर्वितिहासी ही आपकी है। फिर यसने वचे हुए धनके लिये तो इस दी क्या है। निश्चय ही इसपर आपका अधिकार है यहाँ मैं पिताने निर्णय दिया है। नाय ! मैंने यथार्थ वात न बताने कारण भ्रमवश जो कुछ कहा है, मेरे उस अज्ञान क्षमा कीजिये। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह शर्करता हूँ कि आप मुझपर प्रसन्न हो हो।”

ऐसा कहकर नमग्नने अत्यन्त दीनतापूर्ण हृदयसे देहाय जोड़ महेश्वर कृष्णदर्शनका स्ववन किया। उघर शास्त्रोंमें भी अपने अपराधके लिये क्षमा माँगते हुए भगवान् दिये ल्हाति की। तदनन्तर भगवान् उद्धने मन-ही-मन प्रवृत्त नमग्नको कृपादृष्टिसे देखा और मुस्कराते हुए कहा।

कृष्णदर्शन बोले—“नमग्न ! तुम्हारे पिताने जे वह उक्कल वात कही है, वह ठीक ही है। तुमने भी शाशुद्धनां कारण सत्य ही कहा है। इसलिये मैं तुमपर बहुत प्रश्न हैं और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान प्रदान करूँ हूँ। इस समय यह सारा धन मैंने तुम्हें दे दिया। अब इसे ग्रहण करो। इस लोकमें निर्विकार रहकर उत्तम अन्तमें मेरी कृपासे तुम्हें सद्वति प्राप्त होगी।” देख राज भगवान्, रुद्र सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्घात हो गया। यही शाद्वदेव भी अपने पुनर्नमग्नके साथ अपने सातवें आये। इस लोकमें विपुल भोगोंका उपभोग करके अ

वे भगवान् शिवके धाममें चले गये । ब्रह्म ! इस प्रकार किया । जो इस आख्यानको पढ़ता और सुनता है, उसे सम्पूर्ण तुमसे मैंने भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारका वर्णन मनोवाञ्छित छल प्राप्त हो जाते हैं । ( अध्याय २९ )

## भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारकी कथा और उसकी महिमाका वर्णन

नन्दीश्वर कहते हैं—सनकुमार ! अब तुम परमेश्वर शिवके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनो, जिसने इन्द्र-के घमंडको चूर-चूर कर दिया था । पहलेकी बात है, इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं तथा वृहस्पतिजीको साथ लेकर भगवान् शिवका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर गये । उस समय वृहस्पति और इन्द्रके शुभागमनकी बात जानकर भगवान् शंकर उन दोनोंकी परीक्षा लेनेके लिये अवधूत बन गये । उनके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था । वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होनेके कारण महाभयंकर जान पढ़ते थे । उनकी आकृति बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी । वे राह रोककर खड़े थे । वृहस्पति और इन्द्रने शिवके समीप जाते समय ऐसा, एक अद्भुत शरीरधारी पुरुष रस्तेके बीचमें लड़ा है । इन्द्रको अपने अधिकारपर यहाँ गई था । इसलिये वे यह न जान सके कि ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं । उन्होंने मार्गमें खड़े हुए पुरुषसे पूछा—‘तुम कौन हो ?’ इस नग्न अवधूतवेशमें कहोरे आये हो ! तुम्हारा नाम क्या है ? सब भाँतें ठीकठीक बताओ । देर न करो । भगवान् शिव अपने खानपर हैं या इस समय कहीं अन्यत्र गये हैं ? मैं देवताओं तथा गुरुजीके साथ उन्होंके दर्शनके लिये आ रहा हूँ ।’

इन्द्रके चारंवार पूछनेपर भी महान् कौतुक करनेवाले अद्वारात्मी महायोगी शिलोकीनाथ शिव कुछ न बोले । तुम दीरे रहो । तब अपने ऐश्वर्यका घमंड रखनेवाले देवराज इन्द्रने रोपने आकर उस जटाधारी पुरुषको फटकारा और इस प्रहर करा ।

इन्द्र बोले—अरे नृद ! कुर्मते । तू चार-भार पूछनेपर मैं उत्तर नहीं देता । अतः तुझे ब्रह्मसे मारता हूँ । देखो मैं तेरी रक्षा करता हूँ ।

ऐसा कह उत्तर दिग्भर पुराणी ओर नोभूर्जक देखते हुए इन्द्रने उसे भार ढाँडनेहो लिये ब्रह्म उठाया । यह देख समाप्त हो गये थीमं दी उस ब्रह्मका स्वरूप कर दिया । उसमें चौर अग्नि गयी । हालिये वे ब्रह्म प्रदर न कर-

सके । तदनन्तर वह पुरुष तत्काल ही कोधके कारण तेजसे प्रज्वलित हो उठा, मानो इन्द्रको जलाये देता हो । सुजाओंके स्तम्भित हो जानेके कारण शचीवालभ इन्द्र कोधसे उस सर्पकी भाँति जलने लगे, जिसका पराक्रम मन्त्रके बलसे अवश्य हो गया हो । वृहस्पतिने उस पुरुषको अपने तेजसे प्रज्वलित होता देख तत्काल ही यह समझ लिया कि ये साक्षात् भगवान् हर हैं । फिर तो वे हाथ लोह प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे । स्तुतिके पश्चात् उन्होंने इन्द्रको उनके चरणोंमें गिरा दिया और कहा—‘दीननाथ महादेव ! यह इन्द्र आपके चरणोंमें पढ़ा है । आप इसका और मेरा उद्धार करें । हम दोनोंपर कोध नहीं, प्रेम करें । महादेव ! शरणागत इन्द्रकी रक्षा कीजिये । आपके लब्धाटसे प्रकट हुई यह आग इन्हें जलानेके लिये आ रही है ।’

वृहस्पतिकी यह बात सुनकर अवधूतवेषधारी कशणसिन्धु शिवने हँसते हुए कहा—‘अपने नेत्रसे रोपवद्य बाहर निकली हुई अग्निको मैं पुनः कैसे धारण कर सकता हूँ । क्या सर्व अपनी छोड़ी हुई केसुल्को फिर प्रहण करता है ?’

वृहस्पति बोले—देव ! भगवान् ! भक्त उदा ही कृपा-के पात्र होते हैं । आप अपने भक्तवत्सल नामको चरितार्थ कीजिये और इस भयंकर तेजको कहीं अन्यत्र डाल दीजिये ।

इन्द्रने कहा—देवगुरो ! मैं तुमपर प्रवन्न हूँ । इसलिये उच्च वर देता हूँ । इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आपसे तुम्हारा एक नाम जीव भी होगा । मेरे लब्धाटयती नेत्रसे जो यह आग प्रकट हुई है, इसे देवता नहीं सह उठते । अतः इसको मैं बहुत दूर ढौड़ा, जिससे यह इन्द्र से नीता न दे सके ।

ऐसा कहदर अपने नेत्रसम्बन्ध उभ अद्युत अग्निकी हाथमें लेकर भगवान् शिवने बार उद्धुदने हेठ दिया । वही देख जाते ही भगवान् शिवपर २८ लेख तत्त्वात् ५८ वाक्यको लाने



परिणत हो गया, जो सिंहुपुत्र बलधर नामसे विलाप हुआ। फिर देवता और ही प्रार्थनार्ती भगवान् शिवने ही अनुरोद तथा वरभरण का वय किया था। अवधूतस्मदे ऐसी मुख त्वं करके लोहात्म्याण धारी शंकर वहाँसे अन्तर्घान हो गये। हि सब देवता अत्यन्त निर्णय एवं मुखी हुए। हरस्त्रे गृहस्तति भी उग्र भयसे मुक्त हो उत्तम मुखके माणी हुए विसर्गे लिये उनमें आनंद आना हुआ था, वह भगवान् शिवदर्शन गाहर कृतार्थ हुए। इन्द्र और वृहस्तति प्रस्त्रब्लूम आने शान्ततो नहीं गये। गनत्कुमार! इस प्रकार मैंने परमेश्वर यिनके अनामूले भर नानक अवतारका वर्णन किया जो दुष्टींहो दृष्ट एवं भक्तोंको परम आनन्द प्रदान करते हैं। यह दिव्य आत्मान यापका निवारण करके यह भोग, मोक्ष तथा समूर्धं पनोवाचित्त फलकी प्राप्ति आये हैं। जो प्रतिदिन एकाम्रनिवृत्त हो इसे मुनता या मुताव वह इद ओकमें समूर्धं मुखोंका उपभोग करके अन्तमें रुग्णता प्राप्त कर लेता है। (अथापः)

### भगवान् शिवके भिक्षुवर्याचितारकी कथा, राजकुमार और दिजकुमारपर कृपा

नन्दीश्वर कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम भगवान् शम्भुके नारी-संदेहभक्त भिक्षु-अवतारका वर्णन मुनो, जिसे उन्होंने अपने भक्तपर दया करके प्रहण किया था। विदर्भ देशमें सत्यरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो धर्ममें तत्पर, सत्यशील और बड़े बड़े शिवभक्तोंसे प्रेम करनेवाले थे। धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर किसी समय शाल्वदेशके राजाओंने उस राजाकी राजधानीपर आक्रमण करके उसे चारों ओरसे घेर लिया। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियोंके साथ, जिनके पास बहुत बड़ी सेना थी, राजा सत्यरथका बड़ा भयकर युद्ध हुआ। शत्रुओंके साथ दारूण युद्ध करके उनकी बड़ी भारी सेना नष्ट हो गयी। फिर दैवयोगसे राजा भी शाल्वोंके हाथसे मारे गये। उन नरेशके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए सैनिक मन्त्रियोंसहित भयसे विहूल हो भाग खड़े हुए। मुने ! उस समय विदर्भराज सत्यरथकी महारानी शत्रुओंसे धिरी होनेपर भी कोई प्रयत्न करके रातके समय अपने नगर-से बाहर निकल गयीं। वे गर्भवती थीं; अतः शोकसे संतस हो भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई वे

धीर-धीर पूर्वदिव्याकी ओर बहुत दूर चली गयीं। होनेपर रानीने भगवान् शंकरकी दयासे एक निर्मल देखा। उस समयतक वे बहुत दूरका रासा तय कर थीं। सरोवरके तटपर आकर वे मुकुमारी रानी एक हाथ वृद्धके नीचे पैठ गयीं। भाग्यवश उसी निर्जन सालों के नीचे ही रानीने उत्तम गुणोंसे युक्त शुभ मुहूर्ती दिव्य वालकको जन्म दिया, जो सभी शुभ लक्षणोंसे था। दैववश उस वालककी जननी महारानीको वडे प्यास लगी। तथा वे पानी पीनेके लिये उस सरोवरमें इतनेमें ही एक बड़े भारी ग्राहने आकर रानीको अस बना लिया। वह वालक पैदा होते ही माता-पितासे हीन। और भूख-प्याससे पीड़ित हो उस तालाकके किनारे जो रोने लगा। इतनेमें ही उसपर कृपा करके भगवान् वहाँ आ गये और उस शिशुकी रक्षा करने ले। वह प्रेरणासे एक व्राक्षणी अकस्मात् वहाँ आ गयी। वह थी, घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करती थी, अपने एक वर्षके वालकको गोदमें लिये हुए उसके तटपर पहुँची थी। उसने एक अनाथ शिशुको वहाँ

हरते देखा। निर्जन बनमें उस बालकको देखकर ब्राह्मणीको बड़ा विसय हुआ और वह मन-शीभन विचार करने लगी—‘अहो! यह मुझे इस समय बड़े आश्र्यकी बात दिखायी देती है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभीतक नहीं कटी है, पृथ्वीपर पढ़ा हुआ है। इसकी मौं भी नहीं है। पिता आदि दूसरे कोई सहायक भी यहाँ नहीं दिखायी देते। क्या कारण हो गया? न जाने यह किसका पुत्र है? इसे जानेवाला यहाँ कोई भी नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें पूछूँ। इसे देखकर मेरे हृदयमें कहणा उत्पन्न हो गयी है। मैं इस बालकका अपने औरस पुत्रकी भाँति पालन-पोषण करना चाहती हूँ। परंतु इसके कुल और जन्म आदिका जान न होनेके कारण इसे छूनेका साहस नहीं होता।’

ब्राह्मणी जब इस प्रकार विचार कर रही थी, उस समय भक्तवत्सल भगवान् शंकरने बड़ी कृपा की। बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले महेश्वर एक संन्यासीका रूप बारण करके सहसा बहाँ आ पहुँचे, जहाँ वह ब्राह्मणी संदेहमें पढ़ी हुई थी और यथार्थ बातको जानना चाहती थी। भेष भिक्षुका रूप बारण करके आये हुए करुणानिधान शिवने उससे हँसकर कहा—‘ब्राह्मणी! अपने चित्तमें संदेह थौर लेदको स्थान न। यह बालक परम पवित्र है। तुम इसे अपना ही पुत्र पक्षी और प्रेमपूर्वक इसका पालन करो।’

ब्राह्मणी बोली—ग्रन्थो! आप मेरे भायसे ही यहाँ थारे हैं। इसमें संदेह नहीं कि मैं आपकी आशासे इस लक्ष्मी अपने पुत्रकी ही भाँति पालन-पोषण करूँगी; तथापि विशेषरूपसे यह जानना चाहती हूँ कि वास्तवमें यह कौन है, यिका पुत्र है, और आप कौन हैं, जो इस समय यहाँ पधारे। भिक्षुवर! मेरे गममें बार-बार यह बात आती है कि आप लगाहिन्दु शिव ही हैं और यह बालक पूर्वजन्ममें आपका रूप रहा है। यिकी कर्म-दोषमें यह इस दुखत्वमें पड़ गया है। इसे भोगदर यह पुनः अपकी कृपासे परम कल्याण-भाँति देंगा। मैं भी आपकी मायसे ही मोहित हो मार्ग लूँगा यहाँ आ गयी हूँ। आपसे ही इसके पालनके लिये मैं यहाँ भेजा हूँ।

भिक्षुप्रबर शिवने कहा—ब्राह्मणी! छुनो, पर लिम्बक लिम्बराज सत्तरभजा पुत्र है। सत्तरप्रयोग लिम्बराज उत्तरेने युद्धने गर लगा है। उनकी ज्ञान-प्रदान दृष्ट हो रहीं थीं जो ज्ञान-पूर्वक अपने भद्रत्वे बाहर नहीं रहीं। उत्तरेने यही भाकर इह सज्जको जन्म दिया।

सबेरा होनेपर वे प्याससे पीड़ित हो सरोवरमें उतरे। उसी समय दैवकश एक आहने आकर उन्हें अपना आहार बना लिया।

ब्राह्मणीने पूछा—भिक्षुदेव। क्या करण है कि इसके पिता राजा सत्यरथ भेष भोगोंके उपभोगके समय चीचमें ही शालदेशीय शम्भुओंद्वारा मार डाले गये। किस कारणसे इस शिशुकी माताको आहने सा लिया? और यह शिशु जो जन्मसे ही अनाथ और बन्धुहीन हो गया, इसका क्या कारण है? मेरा अपना पुत्र भी अत्यन्त दरिद्र एवं भिक्षुक क्यों हुआ तथा मेरे इन दोनों पुत्रोंको भविष्यमें कैसे मुख प्राप्त होगा?

भिक्षुवर्य शिवने कहा—इस राजकुमारके पिता विदर्भराज पूर्वजन्ममें पाण्ड्यदेशके श्रेष्ठ राजा थे। वे भय धमोंके शाता थे और सम्भूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकालमें राजा भगवान् शंकरका पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्तिसे विलोकीनाथ महादेवजीकी अराधनामें संलग्न थे। उसी समय नगरमें सब ओर यहा भारी कोलाहल मचा। उस उक्टट शब्दको सुनकर राजाने चीचमें ही भगवान् शंकरकी पूजा छोड़ दी और नगरमें थोभ कैलनेकी आशङ्कासे राजभवनसे बाहर निकल गये। इसी समय राजाका महावली मन्त्री शत्रुको पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराजका ही सामन्त था। उसे देखकर राजाने कोषपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर नियमको समाप्त किये बिना ही राजाने रातमें भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन लरके गया। वही राजा दूसरे जन्ममें विदर्भराज हुआ था। शिवजीकी पूजामें विघ्न होनेके कारण शम्भुओंने उत्तरों सुन-भेगके चीचमें ही मार डाला। पूर्वजन्ममें जो उत्तरा पुत्र था, वही इत्त जन्ममें भी हुआ है। शिवजीकी पूजाका उठान उत्तरेनके कारण दर दरिद्रताके प्रति हुआ है। इन्हीं भाग्यने दूर्वजन्ममें उत्तरेने अपनी लौतनो गर डाला था। उत्तरमारके कारण ही वह इत्त जन्ममें प्राइड द्वारा मारी गयी। ब्राह्मणी! वह उन्हाहु पुत्र शूरेन्द्रमें उत्तरमारका था। इसने कारी भायु केवल शत्रु लेनमें विजयी है। वह विदर्भ जन्ममें नहीं किये हैं। इन्हीलिये वह विदर्भतावे प्रति भुग्न है। उत्तर राजदान जिताने उत्तरके लिये अपनुम विदर्भ विदर्भी उत्तरी जाते। वे उत्तरी विदर्भ विदर्भी उत्तरी जाते।

पश्चात् भगवान् शिवकी आराधना करें। भगवान् शिव इन लोगों कल्पणा करेंगे।

इस प्रकार व्राद्याणीको उपदेश देवर भिशु ( श्रेष्ठ संत्यामी ) का शरीर धारण करनेवाले भक्तात्मक शिवने उसे अपने उत्तम स्वरूपका दर्शन कराया। उन्हें यात्रात् शिव



जानकर व्राद्याणीपल्लीने प्रणाम किया और प्रेमसे गद्ददयागी-द्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान् शिव वही अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर व्राद्याणी उस बालकको लेकर अपने पुत्रके साथ घरको चली गयी। एकचक्रा नामके

मुन्द्र ग्राममें उसने घर बना रखा था। वह उस्से श्रान्ति रोटे हुए राजकुमारजी भी पालन-पोषण करते थे। व्राद्याणीपल्ली ने उन दोनोंका वशेषीति छिपा दिया। वे दोनों विवाही पूजामें तत्त्व रहते हुए बहर हैं। शिवजी ने उपर्युक्त शुभ व्रत देवर व्राद्याणीलम्बे शंकरजीसे पूजा की। एक दिन दिव्यकुमार राजकुमारको साथ लिये जिनमें नरीमें स्त्रीलोके लिये गया। वहाँ उसे लिखे जाने वाले एक दूष्ट तुन्दर कलश मिल गया। इस प्रश्न तुन्दर शंकरजी पूजा करते हुए उन दोनों कुमारेंद्रा उल्लंघन कर द्यतीत हो गया। तदनन्तर एक दिन राजकुमार व्राद्याणीको वाय बनाने गया। वहाँ अकला गमनर्थन्या आ गयी। उसके सिताने वह कथा उच्छु दी। पन्नवर्षन्यासे विवाह करके राजकुमार ने राजन भोगने लगे। जिस व्राद्याणीपल्लीने पहले अपने भौति उसका पालन-पोषण किया था, वही उस समय यह हुई और वह व्राद्याणीको उसका भाई हुआ। एवं वह धर्मगुप्त था। इस प्रकार देवेशवर शिवकी आरण्य-राजा धर्मगुप्त अपनी उस रानीके साथ विद्यमदेशमें यहे सुखका उपभोग करने लगा। यह मैंने तुमसे लिखे जिन्होंने राजा धर्मगुप्तको बनने में मुख प्रदान किया था। यह पवित्र आत्मान एवं परमपादन, चारों पुरुषार्थोंका सावक तथा समूर्य अर्थ देनेवाला। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर ऐहे या सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोक्ता उपभोगी अन्तमें भगवान् शिवके धाममें जाता है। (अध्या॒)

### शिवके सुरेश्वरावतारकी कथा, उपमन्त्युकी तपस्या और उन्हें उत्तम वरकी प्राप्ति

**नन्दीश्वर कहते हैं—सनकुमारजी।** अब मैं परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन करूँगा, जिन्होंने उपमन्त्युके बड़े भाई धौम्यका हितसाधन किया था। उपमन्त्यु व्याप्राद मुनि-के पुत्र थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी और वर्तमान जन्ममें मुनिकुमारके रूपमें प्रकट हुए थे। वे शैशवावस्थासे ही माताके साथ मामाके घरमें रहते थे और दैववश दरिद्र थे। एक दिन उन्हें बहुत कम दूध पीनेको मिला। इसलिये अपनी मातासे वे बारंबार दूध माँगने लगे। उनकी तपस्विनी माताने घरके भीतर जाकर एक उपाय किया।

उच्छवृत्तिसे लाये हुए कुछ कुछ वीजोंको सिल्पर पीस और पानीमें घोलकर कृत्रिम दूध तैयार किया। फिर बेटेको उन्होंने कर वह उसे पीनेको दिया। माँके दिये हुए उर लूंगे दूधको पीकर बालक उपमन्त्यु बोले—‘यह ये दूध नहीं।’ इतना कहकर वे फिर सेने लगे। बेटेका रेत-वेतन माँको बड़ा दुःख हुआ। अपने हाथसे उपमन्त्यु को आँखें पोछकर उनकी लक्ष्मी-जैसी माताने कहा—‘लोग सदा बनमें निवास करते हैं। हमें यहाँ दूध कहीं सकता है।’ भगवान् शिवकी कृपाके बिना किसीको न

मिलता । बत्स ! पूर्वजन्ममें भगवान् शिवके लिये जो कुछ किया गया है, वर्तमान जन्ममें वही मिलता है ।'

माताकी यह वात सुनकर उपमन्युने भगवान् शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया । वे तपस्याके लिये हिमाल्य पर्वतपर गये और वहाँ वायु पीकर रहने लगे । उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाया और उसके भीतर मिट्टीके शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसमें माता पार्वतीसहित शिवका आवाहन किया । तत्यश्चात् जंगलके पत्र-पुष्प आदि ले आकर भक्तिभावसे पञ्चाश्र मन्त्रके उच्चारणपूर्वक साम्ब शिवकी पूजा हरने लगे । माता पार्वती और शिवका ध्यान करके उनकी पूजा करनेके पश्चात् वे पञ्चाश्र मन्त्रका जप किया करते थे । इस तरह दीर्घकालतक उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की ।

मुने ! बालक उपमन्युकी तपस्यासे चराचर प्राणियोंसहित विभूतन संतप्त हो उठा । तब देवताओंकी प्रार्थनासे उपमन्यु-के भक्तिभावकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर उनके समीप पधारे । उस समय शिवने देवराज इन्द्रका, पार्वतीने शचीका, नन्दीश्वर वृपमने ऐरावत हाथीका तथा शिवके गणोंने समूर्ण देवताओंका रूप घारण कर लिया । निकट आनेपर मुरेश्वर-रूप-धारी शिवने बालक उपमन्युको वर माँगनेके लिये कहा । उपमन्युने पहले तो शिवभक्ति मौंगी, फिर अपनेको इन्द्र बताकर जब उन्होंने शिवकी निन्दा की, तब उस बालकने भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसीसे कुछ भी लेना अस्तीकार कर दिया । वे इन्द्रको मारकर स्वयं भी मर जाने-हो उद्यत हो गये । उन्होंने जो अघोरात्म चलाया, उसे अन्दरीने पकड़ लिया और उन्होंने अपनेको जलानेके लिये जो भग्निकी धारणा की, उसे भगवान् शिवने शान्त कर दिया । उसे यह कर्ता तप अपने यथार्थ स्वरूपमें प्रकट हो गये । यह उपमन्युओं अपना पुत्र भाना और उनका मस्तक

सूँधकर कहा—‘बत्स ! मैं तुम्हारा पिता और ये पार्वतीदेवी तुम्हारी माता हैं । तुम्हें आजसे सनातनकुमारल्य प्राप्त होगा । मैं तुम्हारे लिये दूध, दही और मधुके सहस्रों समुद्र देता हूँ । भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंके भी समुद्र तुम्हारे लिये मुलभ होंगे । मैं तुम्हें अमरल्य तथा अपने गणोंका आधिपत्य प्रदान करता हूँ ।’ ऐसा कहकर उपमन्युने उपमन्युको बहुत-से दिव्य वर दिये । पशुपत-त्रत, पशुपत-ज्ञान तथा मृतयोगका उपदेश किया । प्रवचनकी शक्ति दी और अपना परमपद अर्पित किया । फिर दोनों हाथोंसे उपमन्युको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँधा और देवी पार्वतीको सौंपते हुए कहा—‘यह तुम्हारा देवा है ।’ पार्वतीने भी वडे प्यारसे उनके मस्तकपर अपना करकमल रखा और उन्हें अक्षय कुमार-पद प्रदान किया । शिवने संतुष्ट होकर उनके लिये पिण्डीभूत एवं अविनाशी साकार क्षीर-सागर प्रलृत कर दिया । साथ ही योग-सम्बन्धी ऐश्वर्य, नित्य संतोष, अक्षय व्रहाविद्या तथा उत्तम समृद्धि प्रदान की । उनके कुल और गोत्रके अक्षय होनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि मैं तुम्हारे इस आश्रमपर नित्य निवास करूँगा ।

इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्भून हो गये । उपमन्यु वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक घर आये । उन्होंने मातासे तब वातें बतायीं । सुनकर माताको बड़ा हृष्ट हुआ । उपमन्यु सबके पूजनीय और अधिक सुखी हो गये । तात ! इस प्रकार मैंने तुमसे परगेश्वर शिवके सुरेश्वरबतारका नर्णन किया है । यह अवतार सत्पुरुषोंको सदा ही तुल देनेवाला है । सुरेश्वर-वतारकी यह कथा पापको दूर करनेवाली तथा समूर्ण मनोवाच्छित फलोंको देनेवाली है । जो इसे भक्तिपूर्वक मुनाता या मुनाता है, वह समूर्ण मुख्योंको भोगकर धन्त में भगवान् शिवकी प्राप्त होता है । (अव्याख ३२)

शिवजीके किरातावतारके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णद्वारा द्वैतवनमें दुर्वासाके शापसे पाण्डवोंकी रक्षा, व्यासजीका अर्जुनको शक्विद्या और पार्थिवपूजनकी विधि बताकर तपके लिये सम्मति देना, अर्जुनका इन्द्रकील पर्वतपर तप, इन्द्रका आगमन और अर्जुनको वरदान, अर्जुनका गिवजीके उद्देश्यसे पुनः तपमें प्रवृत्त होना

देसन्तर पार्वतीके विवाह प्रसङ्गमें श्रीकृष्णद्विल-तत्काल द्विज भवतारांशी, फिर अम्बत्यामा-अवतारकी वर्तमान नन्दीश्वर अवतारजी अग्रे रहते हैं—उद्दिनम् विष्णुर्वत्ते! अर्जुनमन्त्रिता शापसे भगवान् शिव द्वितीयसमाप्त

अवतारका नर्णन सुनो । उस अवसरसे उन्होंने दूर नमाठ देखा जप और प्रगल्प हेतु अर्जुनसे तर प्रदान किया था । यह तुम्हें वनमें सहजतया वाहनदायी, लूटने, झेलने, तब तक शक्ति-वाही श्रीपर्णीके स्वर द्वितीयमें रहे असौ । दूरों

पाण्डव सर्वद्वारा दी हुई वटलोद्धिका आश्रय लेकर गुरुपूर्वक अपना समय नितानि लगे । विप्रवर ! उसी समय गुरुभन्नने आदरपूर्वक मुनिवर तुर्वासाको छल करनेके प्रयोजनसे पाण्डवोंके निकट जानेके लिये व्रेत्रित किया । तब महर्षि तुर्वासा अपने दस रुजार शिष्योंके साथ आगच्छृंखक वहाँ गये और पाण्डवोंसे गतोऽनुकूल भोजनकी याचना नी । तब उन सभी पाण्डवोंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके तुर्वासा आदि तत्त्वी मुनियोंको स्नान करनेके लिये भेजा । गुरुभर ! इधर अन्नभावके कारण वे सभी पाण्डव वडे रंकियों पर्यंत गये और मन-ही-मन प्राण त्याग देनेका विचार करने लगे । तब द्रौपदीने श्रीकृष्णका सारण किया । वे तत्त्वाल ही वहाँ आ पहुँचे और शाक ( के पत्ते ) का भोग लगाकर उन सभी तपसियोंको तृप्त कर दिया । फिर तो महर्षि तुर्वासा आमे शिष्योंको तृप्त हुआ जानकर वहाँसे चलते वगे । इस प्रवार श्रीकृष्णकी कृपासे उस समय पाण्डव संकटसे मुक्त हुए ।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको शिवजीनी आराधना करनेकी सम्मति दी । फिर व्यासजीने भी आहर उन्हें शंकरके समाराधनका आदेश देते हुए कहा—‘शिवजी सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाले हैं । वे भक्ति करनेसे थोड़े ही समयमें प्रसन्न हो जाते हैं । इसलिये सभी लोगोंको शंकरजीकी सेवा करनी चाहिये । वे महेश्वर प्रसन्न होनेपर भक्तोंकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं, यहाँतक कि वे इस लोकमें सारा भोग और परलोकमें मोक्षतक दे डालते हैं—यह विल्कुल निश्चित वात है । इसलिये भुक्ति-नुक्तिलपी फलकी कामनावाले मनुष्योंको सदा शम्भुकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि भगवान् शंकर साक्षात् परम पुरुष, दुष्टोंके संहारक और सत्पुरुषोंके आश्रयस्वरूप हैं । अब अर्जुन पहले दृढ़तापूर्वक शक्तविद्याका जप करें । तब इन्द्र पहले परीक्षा लेंगे, पीछे संतुष्ट हो जायेंगे । प्रसन्न होनेपर वे सर्वदा विघ्नोंका नाश करते रहेंगे और फिर शिवजीका श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करेंगे ।’

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर व्यासजी अर्जुनको बुलाकर उन्हें शक्तविद्याका उपदेश देनेको उच्यत हुए; तब तीक्ष्णद्विदि अर्जुनने स्नान करके पूर्वमुख वैठकर उस विद्याको ग्रहण कर लिया । फिर उदारद्विदि मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिवलिङ्गके पूजनका विधान बतलाकर उनसे कहा ।



व्यासजी बोले—‘पार्थ ! अब तुम वहाँसे परम सद्गुर इन्द्रकील पर्वतपर जाओ और वहाँ जादूनकीके तथार वैठश सम्प्रकूपसे तपत्या करो । यह विद्या अदृश्यत्वपूर्वक वृग्निशारा हित करती रहेगी ।’ अर्जुनको ऐसा आशीर्वाद देता व्यासजी पाण्डवोंसे कहने लगे—‘तृपथेश्वो ! तुम सब लोधर्मपर दृढ़ बने रहो, इससे तुम्हें सर्वथा श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होगी; इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।’

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार मुनिवर व्यास उन पाण्डवोंको आशीर्वाद दे तथा शिवजीके चरण कमलोंका स्मरण करके तुरंत ही अन्तर्धान हो गये । उस शिव-मन्त्रके धारण करनेसे अर्जुनमें भी अनुपम तेज व्यास हो गया । वे उस समय उद्दीप्त हो उठे । अर्जुनको देखा सभी पाण्डवोंको निश्चय हो गया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी; क्योंकि अर्जुनमें विपुल तेज उत्पन्न हो गया है । ( जब उन्होंने अर्जुनसे कहा— ) ‘व्यासजीके कथनसे ऐसा प्रतीक्षा होता है कि इस कार्यको केवल तुम्हीं कर सकते हो । दूसरेके द्वारा कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता; अतः वाजे और दूसरोंका जीवन सफल बनाओ ।’ तब अर्जुनने तारे भाइयों तथा द्रौपदीसे अनुमति माँगी । उन लोगोंको अर्जुन विछोहका दुःख तो हुआ पर कार्यकी महत्ता देखकर सभी अनुमति दे दी । फिर तो अर्जुन मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए

उस उत्तम पर्वत ( इन्द्रकील ) को चले गये । वहाँ पहुँचकर वे गङ्गारीके समीप एक मनोरम स्थानपर, जो स्वर्गसे भी उत्तम और अशोकवनसे सुशोभित था, ठहर गये । वहाँ उद्दोने लान करके गुरुवरको नमस्कार किया और जैसा उपदेश मिला था, उसीके अनुसार स्वयं ही अपना वेष बनाया । फिर पहले मन-ही-मन इन्द्रियोंका अपकर्प करके वे धासन लगाकर बैठ गये । तत्पश्चात् समसूचवाले छुन्दर पार्थिव ( शिवलिङ्ग ) का निर्माण करके उनके आगे अनुपम तेजोरशि शंकरका ध्यान करने लगे । वे तीनों समय स्नान करके अनेक प्रकारसे बारंबार शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तत्पर हो गये । तब अर्जुनके शिरोभागसे तेजकी व्याला निकलने लगी । उसे देखकर इन्द्रके गुप्तचर भयभीत हो गये । वे सोचने लगे—यह यहाँ कब आ गया ? पुनः उन्होंने ऐसा विचार किया कि यह घटना इन्द्रको वतला देनी चाहिये । ऐसा सोचकर वे तत्काल ही इन्द्रके समीप गये ।

गुप्तचरोंने कहा—देवेश ! बनमें एक पुरुष तप कर रहा है; परंतु हमें पता नहीं कि वह देवता है, अृषि है, सूर्य है अथवा अग्नि है। उसीके तेजसे सतत होकर हम आपके संनिकट आये हैं। हमने उसका चरित्र भी आपसे निवेदित कर दिया। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।

तन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! उन गुफाचरोंके यो कहनेपर हमें आपने पुन्र अर्जुनका सारा मनोरथ जात हो गया । शब्द ये पर्वतखड़कोंको विदा करके त्वयं वहाँ जानेका विचार करने लो । प्रियवर ! इन्द्र अर्जुनकी परीक्षा करनेके लिये इस ग्रामाधि वालाणका वेष याताकर वहाँ पहुंचे । उस यमय आप हुआ देखकर पाण्डुपुन्न अर्जुनसे उनकी पूजा की और किर उनकी लृति करके आगे लाइ हो दूधने लगे—  
लक्ष्मीपरम ! बताइये, इस यमय कहाँसे आपका शुभागमन  
भाइ ? इसपर वालाजबदधारी इन्द्रन अर्जुनको ऐसे ध्वनि  
किसे दह तप्तये डिग जाप्त पर जय अर्जुनको दृढ़िश्वर  
दें । तब आप अपने स्वरूपोंप्रकृट होर इन्द्रने अर्जुनसे भरानान्

शंकरका मन्त्र वताया और उसका जप करनेकी आशा दी ।  
तदनन्तर अपने अनुचरोंको सावधानीके साथ अर्जुनकी रक्षा



करनेका आदेश देकर वे अर्जुनसे बोले—“भद्र! तुम्हें कमीभी प्रमादपूर्वक रुज्जु नहीं करना चाहिये। परताम् ! यदि निया तुम्हारे लिये थ्रेयत्करी होगी। साधकको सर्वथा धैर्य धारण किये रहना चाहिये, रक्षक तो भगवान् शिव है ही। वे सम्पत्तियाँ और फल (गोक) देनी समानलक्षण से देंगे। इसमें ताजिक भी संशय नहीं है।”

नल्दी घरजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार अर्जुन के वरदान देकर देवराज इन्हे शिवजी के चरणमलोङ्ग सरण करते हुए अपने भवन को ब्रीट गये । वह महाकार अर्जुन में भी तुरंगरक्त प्रशास किया और फिर वे माले उठाएं करके इन्हें उत्तरेश्वर शिवजी के उद्दंश्यते तरला करने लगे ।

( अन्वय ३३-३८ )

सिरात अवतार के प्रत्यार्थी मृक नामक दैत्यका शहर-स्थ पधारण करके अशुद्ध के पास आता, यिरातीना  
किरात वेषमें ग़जट होता और अशुद्ध नदा किरात वेषभागी चिनाडाग उप दैत्यका बना

कर्मस्यरजा भृत्ये हि—ही। त्रिवर्णात् वर्णान् विद्या  
विद्युतेष्वपि विद्युत्कर्म सिद्ध्येष्वन् लक्ष्मी देवी रक्षा इष्टदि एवं  
विद्युत्प्रभावे विद्युत्प्रभाव विद्युत्प्रभा विद्युत्प्रभा। उल्लङ्घन

सरण करके शम्भुके मनीकृष्ण पश्चात् मन्त्रवाच या कहते हुए धोर तप करने लगे। उग तास्याका ऐसा उक्तुष्ट रैव प्रकट हुआ, जिससे देवगण निसित हो गये। पुनः वे यिनींहोंने याए और समाहित चित्तसे बोले।

‘देवताओंने कहा—सर्वेषां ! एक मनुष्य आके लिये तपस्यामें निरत है। प्रभो ! वह व्यक्ति जो कुछ बाइता है, उसे आप दे क्यों नहीं देते ?

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यो ग्रन्थर देवताओं ने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। किर उनके चरणोंकी ओर हृषि लगाकर वे विनाशभावसे लड़े हो गये। तब उद्धरुदि एवं प्रसन्नात्मा महाप्रभु शिवजी उस वचनको सुनकर उड़ान्त इस पड़े और देवताओंसे इस प्रकार बोले।

शिवजीने कहा—देवताओ ! अब तुमलोग अपने स्थानको लौट जाओ। मैं सब तरहसे तुमलोगोंका कार्य दण्डन करूँगा। यह विल्कुल सत्य है, इसमें संदेहकी गुंजाइश नहीं है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! शम्भुके उग वचनको सुनकर देवताओंको पूर्णतया निश्चय हो गया। तब वे सब अपने स्थानको लौट गये। इसी समय मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारण करके बहाँ आया। विषेन्द्र ! उसे उस समय मायावी दुरात्मा दुर्योधनने अर्जुनके पास भेजा था। वह जहाँ अर्जुन स्थित थे, उसी मार्गसे अत्यन्त वेगपूर्वक फर्त शिवरोंको उखाइता, वृक्षोंको छिन्न-भिन्न करता तथा अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ आया। तब अर्जुनकी भी हृषि उस मूक नामक असुरपर पड़ी, वे शिवजीके पादपद्मोंका सरण करके थों विचार करने लगे।

अर्जुनने (मन-ही-मन) कहा—‘यह कौन है और कहाँसे आ रहा है ? यह तो कूरकर्मा दिखायी पड़ रहा है। निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये आ रहा है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है; क्योंकि जिसका दर्शन होनेपर अपना मन ग्रसन्न हो जाय, वह निश्चय ही अपना हितैषी है और जिसके दीखनेपर मन व्याकुल हो जाय, वह शत्रु ही है। आचारसे कुलका, शरीरसे मिलता है। आकारसे, चाल-दालसे, चेष्टासे, बोलनेसे तथा नेत्र और मुखके विकारसे मनके भीतरका भाव जाना जाता है। नेत्र चार प्रकारके कहे गये हैं—उज्ज्वल, सरस, तिरछे और लाल। विद्वानोंने इनका भाव भी पृथक्-पृथक् वतलाया

है। नेत्र विवाह मनोग होनेपर उज्ज्वल, पुरुदर्शकके स्तर पर्याप्त व्याप्तिमें व्रात होनेपर नक और शत्रुके दौत घोते जाते हैं। (इस विवाहके अनुसार) इसे देवोंहै पर्याप्त व्याप्ति इतिहासी कल्पित हो उठा है अतः वह निलंग शब्द नहीं है और वार उड़ने योग्य है। इधर मेरे लिये तुम्हें मैं आशा नहीं देता है कि राजन् ! जो तुम्हें क्षमा देंगे उसका उपराज उसी विना किसी प्रकारका विचार नहीं वा वार उड़ना तबा नहीं इसीलिये आशुव भी तो जास रहता है।’ यो विचारहर अद्वितीय वाणीका संबोध करते हुए उड़ान्त नहीं हो गये।

इसी बीज भक्तवलाल भगवान् शंकर अर्जुनके हृषि उनकी भक्तिवी परीका और उस दैत्यका नाम उसे लिये शीघ्र ही कहीं आ फूंचे। उस तमद उके बाग्योंमा युध भी था और वे महान् अद्भुत तुष्णित्र भैरव ला धारण लिये हुए थे। उनकी जाल बैरंगी पैशी उन्होंने वक्त्रलट्टोंसे ईशानघाज बाँध रखवाथा। उनके इसी शीत धारियाँ नमक रही थीं, पीठपर वाणोंसे भर हुआ लकड़ी वैधा था और वे स्वयं वसुष-वाण धारण किये हुए थे। उनका गण-यूथ भी वैसी ही साज-सज्जासे युक्त था। हे प्रकार शिव भिल्लराज बने हुए थे। वे सेनाखड़े हैं तरह तारके शब्द करते हुए आगे बढ़े। इतनेमें हृषि गुरीहट्टका शब्द दसों दिशाओंमें गूँज उठा। उर बहुत पर्वत आदि सभी जड़ पदार्थ झाना उठे। तब उस बोलने वाल्से व्यवराकर अर्जुन सोचने लगे—‘अहो ! क्या वे स्वर्ण शिव तो नहीं हैं, जो यहाँ शुभ करनेके लिये पधारे हैं तब भी मैंने पहलेसे ही ऐसा सुन रखता है।’ पुनः श्रीहर्ष व्यासजीने भी ऐसा ही कहा है तथा देवताओंने भी कहा है, स्वरण करके ऐसी ही वोषणा की है कि शिवजी कलाह और सुखदाता हैं। वे मुक्ति प्रदान करनेके कारण मूर्त्ति कहे जाते हैं। उनका नामस्वरण करनेसे मनुष्योंका विश्राम कल्याण होता है। जो लोग सर्वभावसे उनका भजत तब उन्हें स्वप्नमें भी दुःखका दर्शन नहीं होता। यदि इसके कुछ दुःख आ ही जाता है तो उसे कर्मजीव लकड़ी चाहिये। क्षी भी वहुतकी आशङ्का होनेपर भी थोड़ा ही अथवा उसे विशेषरूपसे ग्रावधका ही दोष मानता चाहे अथवा कभी-कभी भगवान् शंकर अपनी इच्छारे योग्य अधिक दुःख भुगतावार फिर निस्सदेह उसे दूर कर दें। वे विषयको अमृत और अमृतको विष बना देते हैं।

उनकी इच्छा होती है, वैसा वे करते हैं। भला, उन समर्थको कौन मना कर सकता है। अन्यान्य प्राचीन भक्तोंकी भी ऐसी ही धारणा थी, अतः भावी भक्तोंको सदा इसी विचारपर अपने मनको स्थिर रखना चाहिये। लक्ष्मी रहे अथवा चली जाय, मृत्यु औरोंके सामने ही क्यों न उपस्थित हो जाय, लोग निन्दा करें अथवा प्रशंसा; परंतु शिवभक्तिसे दुःखोंका यिनाया होता ही है। शंकर अपने भक्तोंको, चाहे वे पापी हों या पुण्यात्मा, सदा सुख देते हैं। यदि कभी वे परीक्षाके लिये भक्तको कष्टमें डाल देते हैं तो अन्तमें दयालुस्वभाव होनेके कारण वे ही उसके मुखदाता भी होते हैं। किर तो वह भक्त उसी प्रकार निर्मल हो जाता है, जैसे आगमें तपाया हुआ सोना शुद्ध हो जाता है। इसी तरहकी वार्ता मैंने पहले भी मुनियोंके मुखसे सुन रखी है; अतः मैं शिवजीका भजन करके उससे उत्तम सुख प्राप्त करूँगा।'

अर्जुन यों विचार कर ही रहे थे, तबतक वाणका लक्ष्यभूत वह सूअर वहाँ आ पहुँचा। उधर शिवजी भी उस सूअरके पीछे लो हुए दीख पड़े। उस समय उन दोनोंके मध्यमें वह शूकर अद्भुत शिखर-सा दीख रहा था। उसकी बड़ी महिमा भी कही गयी है। तब भक्तशूलक भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षाके लिये वडे वेगसे आगे बढ़े। इसी समय उन दोनोंने उस शूकरपर वाण चलाया। शिवजीके वाणका लक्ष्य उसका पुच्छभाग था और अर्जुनने उसके मुखको अपना निशाना बनाया था। शिवजीका वाण उसके पुच्छभागसे प्रवेश करके मुखके रस्ते निकल गया और शीघ्र ही भूमिमें बिलैन हो गया। तथा अर्जुनका वाण उसके पिछले भागसे निकलकर वगळमें ही गिर पड़ा। तभी यह शूकरलुप्पभारी देत्य उसी क्षण मरकर भूतलमर गिर पड़ा। उग नगय देवताओंको महान् दृष्टि प्राप्त हुआ। उन्होंने यह तो जय-जयकार करते हुए पुणोंकी बृष्टि की, किर

वे वारंवार नमस्कार करके स्तुति करने लगे। उस समय उन दोनोंने दैत्यके उस क्षूर रूपकी ओर दृष्टिपात किया। उसे देखकर शिवजीका मन संतुष्ट हो गया और अर्जुनको महान्



सुख प्राप्त हुआ। तसश्चात् अर्जुन मन-ही-मन विशेषत्वसे मुखका अनुभव करते हुए कहने लगे—‘अहो! यह थ्रेषु दैत्य परम अद्भुत रूप धारण करके मुझे मारनेके लिये ही आवा था, परंतु शिवजीने ही मेरी खाता की है। निस्तदेह उन परमेश्वरने ही आज (इसे मारनेके लिये) मेरी तुष्टिको प्रेरित किया है।’ ऐसा विचारकर अर्जुनने शिव-नामकर्त्तिंश किया और फिर वारंवार उनके चरणमें प्रणाम करके उनकी लुति की।

(अन्वय ३१)

अर्जुन और शिवदूतका वार्तालाप, किरातवेषधारी शिवजीके साथ अर्जुनका युद्ध, पहचाननेपर अर्जुनद्वाग गिय-म्तुनि, शिवजीका अर्जुनको वरदान देकर अन्तर्धीन होता, अर्जुनका आश्रमपर लौटकर भाइयोंसे मिलना, श्रीकृष्णका अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पथाग्ना

दूर ले अपनी रुद्राक्षरुपी वार्ता अर्जुन देखी दूर इडापेंट लिये रही दृष्टि। दूर अर्जुनने उसे अपारमदाता अपना देखा दिया। दूर देखकर उस अनुकरणे दृष्टि-भूषण-पत्रम्। व्याप रखी उस वर्तमाने उसे देखा। दूर इसमें दूर रहा, इसे लौट देखिये। दृष्टिपात उस अनुकरणमें व

परम प्रसन्न हूँ, अतः अब तुम वर माँगो। इस गमय तुमने जो उद्दापर प्रहार एवं आधात किया है, उसे मैंने आगी पूजा मान लिया है। साथ ही यह नव तो मैंने आगी इच्छाये किया है। इसमें उम्मीद आराम ही क्या है। अतः तुम्हारी जो लालरा हो, वह माँग लो; क्योंकि नरे पाप कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हारे लिये असैव हो। यह जो कुछ हुआ है, वह शत्रुओंमें उम्मीद वश और राज्यकी स्थापनाके लिये अच्छा ही हुआ है। तुम्हे इसका दुःख नहीं मानना चाहिये। अब तुम आगी सारी वकाराइट छोड़ दो।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! भगवान् शंकरके गो वोले। कहनेपर अर्जुन भक्तिपूर्वक सावधानीसे लड़े होकर शंकरजीने

अर्जुनने कहा—आभो ! आप तो वडे उत्तम लाभी हैं, आपको भक्त बहुत मिय है। देव ! भला, मैं आपकी करणाका क्या वर्णन कर सकता हूँ। सदाशिव ! आप तो वडे कृपालु हैं। यों कहकर अर्जुनने महाप्रभु शंकरकी सम्मक्षियुक्त एवं वैदसम्मत लृति आरम्भ की।

अर्जुन वोले—आप देवाधिदेवको नमस्कार है। कैलसवासिन् ! आपको प्रणाम है। सदाशिव ! आपको अभिवादन है। पञ्चमुख परमेश्वर ! आपको मैं सिर ऊकाता हूँ। आप जयधारी तथा तीन नेत्रोंसे विभूषित हैं, आपको वारंवार नमस्कार है। आप प्रसन्नरूपवाले तथा सहस्रों मुखोंसे युक्त हैं, आपको प्रणाम है। नीलकण्ठ ! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। मैं सद्योजातको अभिवादन करता हूँ।

वामाङ्गमें गिरिजाको धारण करनेवाले वृषभज ! आप को प्रणाम है। ददा भुजाधारी आप परमात्माको पुनः पुनः अभिवादन है। आपके हाथोंमें डमल और कपाल शोभा पाते हैं तथा आप मुण्डोंकी माला धारण करते हैं, आपको कर्पूरके समान गौर वर्णका है, हाथमें पिनाक मुशोभित है तथा आप उत्तम चित्रूल धारण किये हुए हैं; आपको प्रणाम है। गङ्गाधर ! आप व्याघ्रचर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र लपेटनेवाले हैं, आपके अङ्गोंमें नाग लिपटे रहते हैं; आपको वारंवार अभिवादन है। सुन्दर लाल-लाल चरणोंवाले गणनायकको प्रणाम है। जो गणेशस्वल्प है, कात्तिकेय जिनके अनुगामी है, जो भक्तोंको भक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाले

है, उन आग्ने पुनः पुनः नमस्कार है। आप त्वे गणुण, लारादित, ल्याचार, कल्युक्त तथा निकल ही ज्ञाने वारंवार शिर शुक्रता हैं। जिन्होंने उद्दापर अत्युक्त जिसे लियतेरा धारण किया है, जो शीरोंके साथ तुद ध्रुवों द्वारा लिया गया नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, उन द्वेषों प्रमो तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, जो व्यग्रम है। जगत्मने जो कुछ भी लृप दृश्येन्द्र वैष्णवे द्वारा आग्ने ही तेज कहा जाता है। अप चिन्ह ! और अन्यमेंसे निलोकीमें रमण कर रहे हैं। जैसे हैं—

कठोंनी, आत्मशब्दमें उत्तम हुए तारकाओंकी तथा तलांदु जलकी दूरींमें गणना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार जल हुगांही भी मंस्या नहीं है। नाय ! आपके पुरोग्रील उरनेमें तो वेद भी नमर्थ नहीं है, मैं तो एक लक्ष्मि व्यक्ति हूँ; फिर मैं उनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ। नहें। आप जो कोई भी हों, आपको मेरा नमस्कार है। नहें। आप मेरे लाभी हैं और मैं आपका वात हूँ। अब इन्हें मुझपर कृपा करनी ही चाहिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनद्वय विनोद इत्यस्वनको तुनकर भगवान् शंकरका मन पत्त प्रवृत्त गया। तब वे हैंते हुए पुनः अर्जुनसे बोले।

शंकरजीने कहा—नल्ल ! अब अधिक इन्हें लाभ, तुम मेरी वात तुनो और अपना अभीष्ट न करां द्वे इस समय तुम जो कुछ कहोगे, वह सब मैं तुहे द्वारा कर्लैगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महर्षे ! शंकरजीने द्वारा पर अर्जुनने हाथ जोड़कर नतमल्लक हो सदाशिवके द्वे किया और फिर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें कहना आरम्भ किया।

अर्जुनने कहा—विभो ! आप तो स्वयं ही अन्तर्द्वारा से सबके अंदर विराजमान हैं ( अतः घट-घटकी जलदेह हैं ), ऐसी दशामें मैं क्या कहूँ; तथापि मैं जो कुछ कहूँ, उसे आप सुनिये। भगवन् ! मुझपर शत्रुओंद्वारा जेको प्राप्त हुआ था, वह तो आपके दर्शनसे ही विनष्ट हो जाएगा। अब जिस प्रकार मुझे इस लोककी परासिद्धि प्राप्त होनी वैसी कृपा कीजिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर उन्होंने भक्तवत्सल भगवान् शंकरको नमस्कार किया और ही हाथ जोड़कर मस्तक छुकाये हुए उनके निकट लड़े हुए जब स्वामी—

ल|अर्जुन मेरा अनन्य भक्त है, तब वे भी परम प्रसन्न हुए। उन्हिं उन महेश्वरने अपने पाशुपत नामक अन्नको, जो सर्वदा देहभूमत्त प्राणियोंके लिये दुर्जय है, अर्जुनको दे दिया और इस इन्द्रकार कहा।



शिवजी बोले—वत्स! मैंने तुम्हें अपना महान् अन्न दे दिया। इसे धारण करनेसे अब तुम समस्त शत्रुओंके लिये केष हो जाओगे। जाओ, विजय-लाभ करो। साथ ही मैं हृष्णों भी कहूँगा, वे तुम्हारी सहायता करेंगे; क्योंकि हृष्ण रंगे आत्मस्वरूप, भक्त और मेरा कार्य करनेवाले। भास्त ! मेरे प्रभवसे तुम निष्कण्टक राज्य भोगो और

अपने भाई युधिष्ठिरसे सर्वदा नाना प्रकारके धर्मकार्य करते रहो।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर शंकरजीने अर्जुनके मस्तकपर अपना करकमल खल दिया और अर्जुन-द्वारा पूजित हो वे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार भगवान् शंकरसे वरदान और अल्प पाकर अर्जुनका मन प्रसन्न हो गया। तब वे अपने मुख्य गुरु शिवका भक्तिपूर्वक सरण करते हुए अपने आश्रमको लौट गये। वहाँ अर्जुनसे मिलकर सभी भाइयोंको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ मानो मृतक शरीरमें प्राणका संचार हो गया हो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली द्रैपदीको भी अत्यन्त सुख मिला। जब उन पाण्डवोंको यह जात हुआ कि शिवजी परम संतुष्ट हो गये हैं, तब उनके हृष्का पार नहीं रहा। उन्हें उस समूर्ण वृत्तान्तके सुननेसे त्रुटि ही नहीं होती थी। उस समय उस आश्रममें महामनस्वी पाण्डवोंका भला करनेके लिये चन्दनयुक्त पुष्टोंकी वृष्टि होने लगी। तब उन्होंने हर्षपूर्वक सम्पत्तिदाता तथा कल्याणकर्ता शिवको नमस्कार किया और ( तेरह वर्षकी ) अवधिको समाप्त हुई जानकर यह निश्चय किया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी। इसी अवसरपर जब श्रीकृष्णको पता चला कि अर्जुन लौटकर आ गये हैं, तब वह समाचार सुनकर उन्हें बड़ा सुख मिला और वे अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पधारे तथा कहने लगे कि 'इसीलिये मैंने कहा था कि शंकरजी समूर्ण क्षेत्रोंका विनाश करनेवाले हैं। मैं नित्य उनकी सेवा करता हूँ, अतः आपलोग भी उनकी सेवा करें।' मुने ! इस प्रकार मैंने शंकरजीके किरात नामक अवतारका वर्णन किया। जो उसे सुनता अध्यक्ष दूसरोंको सुनाता है, उनकी तारी जाग्नार्द पूर्ण हो जाती है। ( अव्याय ४०-४१ )

### शिवजीके द्वादश ज्योतिलिङ्गाभतारोंका सविस्तर वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अब तुम सर्वव्यापी वर्षभूमि द्वारा अन्य ज्योतिलिङ्गस्वरूपी अवतारोंका निपटन करो, जो अनेक प्रभारों मध्यम बननेवाले हैं। अर्थ यह है—१. लौराष्ट्रीमें लौराष्ट्री, भीरुद्वारा लौराष्ट्री, लौराष्ट्रीमें गोदावारी, ओमरामें अमरसर, लौराष्ट्र देवधर, लौराष्ट्रीमें भीमदारी, लौराष्ट्रमें दिवसराप, लौराष्ट्र देवधर, लौराष्ट्रधर, निलानुमिंगे लौराष्ट्र, लौराष्ट्रमें

नगेश्वर, नेतुरन्धर नगेश्वर और शिवालयमें बुद्धेश्वर। मुने ! भरभात्मा शास्त्रके ये ही वे चारह अवतार हैं। ये दर्शन और सर्व करनेसे मनुष्योंकी अप्रवासन भावम् प्रदान करते हैं। मुने ! उसमें दृश्य अवतार निम्नलिखित है। दृश्य अवतारके दुर्मिला विनाश करनेवाला है। इनका दृश्य दर्शनमें वर और हुड्डे अंतर्दि रक्षाका रूप हो जाता है। दृश्य लौराष्ट्र नगेश्वर लौराष्ट्र नेतुराष्ट्र मध्यम लौराष्ट्र प्रदेशमें दर्शन है।

स्थित है। पूर्वकालमें चन्द्रमाने इनकी पूजा की थी। अबीं सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला एह चन्द्रहुआ है, जिसमें ज्ञान करनेसे शुद्धिगान् मनुष्य सम्पूर्ण खंगांग गुफ़ की जाता है। परमात्मा शिवके सोभेश्वर नामक महालिङ्ग कर्मन करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है और उसे भाँग और गोअः सुलभ हो जाते हैं। तात ! शंकरजीका महिलाहुंन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ। वह भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। मुने ! भगवान् शिव परम प्रथमतामूर्ति अपने निवासभूत कैलासगिरिसे लिङ्गरूपमें श्रीशैलपर पधारे हैं। पुत्र-प्राप्तिके लिये इनकी स्तुति की जाती है। मुने ! यह जो दूसरा ज्योतिलिङ्ग है, वह दर्शन और पूजन करनेसे महा सुखकारक होता है और अन्तमें मुक्ति भी प्रदान कर देता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तात ! शंकरजीका महाकाल नामक तीसरा अवतार उज्जिवी नगरीमें हुआ। वह अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है। एक बार रत्नमाल-निवासी दूषण नामक असुर, जो वैदिक धर्मका विनाशक, विप्रदोही तथा सब कुछ नष्ट करनेवाला था, उज्जिवीमें जा पहुँचा। तब वेद नामक व्रात्यणके पुत्रने शिवजीका ध्यान किया। फिर तो शंकरजीने तुरंत ही प्रकट होकर हुंकारदारा उस असुरको भस्त कर दिया। तत्प्रात् अपने भक्तोंका सर्वथा पालन करनेवाले शिव देवताओंके प्रार्थना करनेपर महाकाल नामक ज्योतिलिङ्गस्वल्पसे वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। इन महाकाल नामक लिङ्गका प्रयत्नपूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें उसे परम गति प्राप्त होती है। परम आत्मवलसे सम्बन्ध परमेश्वर शम्भुने भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला आंकार नामक चौथा अवतार धारण किया। मुने ! विन्द्यगिरिने भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे शिवजीका पार्थिवलिङ्ग स्थापित किया। उसी लिङ्गसे विन्ध्यका मनोरथ पूर्ण करनेवाले महादेव प्रकट हुए। तब देवताओंके प्रार्थना करनेपर भुक्ति-मुक्तिके प्रदाता भक्तवत्सल लिङ्गरूपी शंकर वहाँ दो लूपोंमें विभक्त हो गये। मुनीश्वर ! उनमें एक भाग ओंकारमें ओंकारेश्वर नामक उत्तम लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ और दूसरा पार्थिव लिङ्ग परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। मुने ! इन दोनोंमें जिस किसीका भी दर्शन-पूजन किया जाए, उसे भक्तोंकी अभिल्यषा

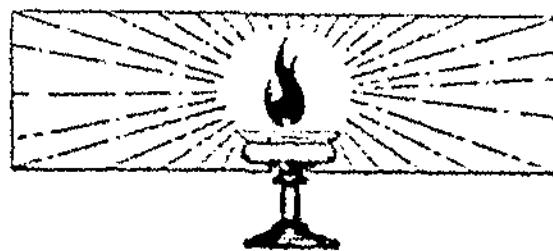
पूर्ण करनेवाला यमराज जाएंगे। महामुने ! इस फल में युग्मे इन दोनों गदादिव्य ज्योतिलिङ्गोंका कर्मकु दिया। परमात्मा विष्वके वौनवे अवतारका नाम है द्योदेव। वह केदारमें ज्योतिलिङ्गलासे स्थित है। मुने ! ज्वांश्वर्ण के गर-नाशनमें नामक अवतार है, उनके प्राप्तने अत्र धिनार्जी दिग्गिरिके केदारदेवतास्तर प्रियत हो गये। उन्हें उत्तर केदारेन्द्र लिङ्गकी निष्पत्ति पूजा करते हैं। ज्वांश्वर्ण और पूजन करनेवाले भक्तोंके अभीष्ट प्रदान करते हैं। उन्हें पर तोते तुए भी शिव इस खण्डके विरोगलसे बचते हैं। धिनार्जीका वह अवतार सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्रदान करते हैं। गतिप्रभु शम्भुके छठे अवतारका नाम भीकर्मा। इस अवतारमें उन्होंने वडो-वडी लीलाएँ भी हैं जो भीमानुरक्षा विनाश किया है। कामध्य देवके छठे उत्तर शुद्धिकाले प्रार्थना करनेपर सर्व यंकरजी डाकियोंसे मैरु नामक ज्योतिलिङ्गस्वल्पसे स्थित हो गये। मुने ! ज्वांश्वर व्रह्माण्डलस्तर तथा भोग-मोहुका प्रदाता है, वह विश्वेश्वर का सत्त्वाँ अवतार काशीमें हुआ। मुक्तिदाता विद्वत्तम तथा भगवान् शंकर अपनी पुरी काशीमें ज्योतिलिङ्गलमें लिंगं विष्णु आदि सभी देवता, कैलासपति शिव और मैत्र के उनकी पूजा करते हैं। जो काशी-विश्वनाथके भक्त हैं, वे कमांसे निर्दिष्ट होने के लिये-पदके भागी होते हैं। चन्द्रसेवर शिवजी जो अन्य नामक आठवाँ अवतार है, वह गौतम ऋषिके प्रार्थना के पर गौतमी नदीके तटपर प्रकट हुआ था। गौतमकी प्रार्थना उन मुनिको प्रसन्न करनेके लिये शंकरजी प्रेमपूर्वक लोडेंजे स्वल्पसे वहाँ आचल होकर स्थित हो गये। अबैं महेश्वरका दर्शन और स्वर्ण करनेसे सारी कामनाएँ ही हो जाती हैं। तत्प्रात् मुक्ति भी मिल जाती है। विष्वें अनुग्रहसे शंकरप्रिया परम वावनी गङ्गा गौतमके लोहे वहाँ गौतमी नामसे प्रवाहित हुईं। उनमें ज्वांश्वर वैद्यनाथ नामसे प्रसिद्ध है। इस अवतारमें वहुतनी विनाशीलीलाएँ करनेवाले भगवान् शंकर राष्ट्रके लिये आनंद-

र थे । उस समय रावणद्वारा अपने लाये जानेको ही कारण नकर महेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूपसे चिता-भूमिमें प्रतिष्ठित गये । उस समयसे वे त्रिलोकीमें वैद्यनाथेश्वर नामसे रथ्यात् हुए । वे भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेवालेको भग-मोक्षके प्रदाता हैं । मुने ! जो लोग इन वैद्यनाथेश्वर धर्मके माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, उन्हें यह मुक्तिज्ञिका भागी बना देता है । दसवाँ नार्गेश्वरवतार कहलाता है । यह अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रादुर्भूत हुआ था । हसदा दुर्घटको दण्ड देता रहता है । इस अवतारमें शिवजीने दारुक नामक राक्षसको, जो धर्मचाती था, रक्षर वैश्योंके स्वामी अपने सुग्रीव नामक भक्तकी रक्षा की । तत्पश्चात् बहुत-सी लीलाएँ करनेवाले वे परात्पर प्रभु भगुलिङ्गका उपकार करनेके लिये अस्त्रिकासंहित ज्योतिर्लिङ्ग-रूपसे स्थित हो गये । मुने ! नार्गेश्वर नामक उस भगुलिङ्गका दर्शन तथा अर्चन करनेसे राशि-के-राशि महान् शक्ति तुरंत विनष्ट हो जाते हैं । मुने ! शिवजीका यारहबाँ शतार रामेश्वरवतार कहलाता है । वह श्रीरामचन्द्रका नाम करनेवाला है । उसे श्रीरामने ही स्थापित किया । जिन भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्न होकर श्रीरामको पूर्वक रिजयका वरदान दिया, वे ही लिङ्गस्पर्में आविर्भूत हुए । मुने ! तब श्रीरामके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे प्रभुतर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित हो गये । उस समय एवं उनसी भलीभाँति सेवा-पूजा की । रामेश्वरकी अद्भुत मात्री भूतलार किमीसे तुलना नहीं की जा सकती । वर्तमा युक्ति-युक्तिकी प्रदायिनी तथा भक्तोंकी कामना करनेवाली है । जो मनुष्य सद्गुरुपूर्वक रामेश्वर लिङ्गको

गङ्गाजलसे ज्ञान करायेगा, वह जीवन्मुक्त ही है । वह इस लोकमें जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, ऐसे सम्पूर्ण भोगोंको भोगनेके पश्चात् परम ज्ञानको प्राप्त होगा । फिर उसे कैवल्य मोक्ष मिल जायगा । बुश्मेश्वरवतार शंकरजीका वारहबाँ अवतार है । वह नाना प्रकारकी लीलाओंका कर्ता, भक्तवत्सल तथा बुश्माको आनन्द देनेवाला है । मुने ! बुश्माका प्रिय करनेके लिये भगवान् शंकर दक्षिण दिशामें स्थित देवशैलके निकटवर्ती एक सरोवरमें प्रकट हुए । मुने ! बुश्माके पुत्रको सुदेहने मार डाला था । (उसे जीवित करनेके लिये बुश्माने शिवजीकी आराधना की ।) तब उनकी भक्तिसे संतुष्ट होकर भक्तवत्सल शम्भुने उनके पुत्रको बचा लिया । तदनन्तर कामनाओंके पूरक शम्भु बुश्माकी प्रार्थनासे उस तड़ागमें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित हो गये । उस समय उनका नाम बुश्मेश्वर हुआ । जो मनुष्य उस शिवलिङ्गका भक्तिपूर्वक दर्शन तथा पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण मुलोंको भोगकर अत्ममें मुक्ति-लाभ करता है । सनकुमारजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे इन वारह दिव्य ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन किया । ये सभी भोग और मोक्षके प्रदाता हैं । जो मनुष्य ज्योतिर्लिङ्गोंकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापांसि मुक्त हो जाता है तथा भाग-मोक्षको प्राप्त करता है । इस प्रकार मैंने इस शतरुद्रसंहिताकी संहिताका वर्णन कर दिया । वह शिवके सौ अवतारोंकी उत्तम कीर्तिसे समन्वय तथा सम्पूर्ण अभावोंको देनेवाली है । जो मनुष्य इसे निल्व तमादितचित्तसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी जारी लालचाएँ पूर्ण ही जाती हैं और अन्तमें उसे निश्चय ही सुक्ति मिल जाती है ।

( अन्याय ४२ )

## ॥ शतरुद्रसंहिता सम्पूर्ण ॥



## कोटिरुद्रसंहिता

### द्वादश ज्योतिलिङ्गों तथा उनके उपलिङ्गोंका वर्णन एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमा

यो धर्ते निजमाययै भुवनाकारं किंहारोऽिश्वातो  
यस्याहुः करुणाकर्याक्षविभवी ल्यग्नीप्रवासाभिग्रामो ।  
प्रत्यग्नोधसुखाद्युं हन्ति सदा पद्यन्ति यं गोपिन्-  
स्तस्मै शैलसुताचिताद्वं वतुगे राघवमस्तेजसे ॥ १ ॥

जो निर्विकार हेते हुए भी आत्मी मायामि ही तिर्यु-  
विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अत्मन् (मोक्ष)  
जिनके कृपाकर्याक्षके ही वैभव वताये जाते हैं तथा योगीवन  
जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर अद्वितीय आत्मगाननन्द-  
स्वरूपमें ही देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरहो, जिनका  
आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरत्तर गेरा  
नमस्कार है ॥ १ ॥

कृपाललितवीक्षणं      सितमनोऽवभास्तुञ्जं  
शशाङ्ककलयोज्जवलं      शमितयोरतापवर्यम् ।  
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसचिद्गुप्तं

धर्षाधरसुताभुजोद्गुप्तिं      महो मद्गुप्तम् ॥ २ ॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन वडी ही सुन्दर है, जिसका  
मुखारविन्द मन्द मुस्कानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिवायी  
देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उल्ज्जल है, जो आध्यात्मिक  
आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप  
सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो  
गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिव-  
नामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुज्ञ सबका मङ्गल करे ॥ २ ॥

**ऋषि योले—**मूलजी ! आपने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी  
कामनासे नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त जो शिवावतारका  
माहात्म्य बताया है, वह बहुत ही उत्तम है । तात ! आप पुनः  
शिवके परम उत्तम माहात्म्यका तथा शिवलिङ्गकी महिमाका  
प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये । आप शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः  
घन्य हैं । प्रभो ! आपके मुखारविन्दसे निकले हुए भगवान्  
शिवके सुरम्य यशरूपी अमृतका अपने कर्णपुटोद्वारा पान करके  
हम तृप्त नहीं हो रहे हैं, अतः फिर उसीका वर्णन कीजिये ।  
व्यासशिष्य ! भूमण्डलमें, तीर्थ-तीर्थमें जो-जो शुभ लिङ्ग हैं  
अथवा अन्य स्थलोंमें भी जो-जो प्रसिद्ध शिवलिङ्ग विराजमान  
हैं, परमेश्वर शिवके उन सभी दिव्य लिङ्गोंका समस्त लोकोंके  
हितकी इच्छासे आप वर्णन कीजिये ।

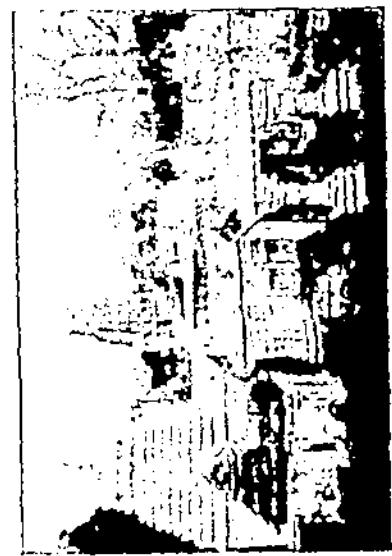
मूलजीने कहा—मदर्णियो ! समर्पण तीर्थ लिङ्गम् ।  
सब तुम लिङ्गमें ही प्रतिष्ठित है । उन शिवलिङ्गोंमें  
गणना नहीं है, तथापि में उनका शिवित् वर्णन अत्यं  
त्रो कोई भी दृश्य देखा जाता है तथा जिनका कर्म  
स्वरूप लिङ्गा जाता है, वह सब भगवान् शिवका ही है  
केरी भी वस्तु शिवके स्वल्पसे भिन्न नहीं है । सातुर्योणें  
भगवान् शन्मुने सब लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही हैं  
अमुर और गुप्तप्राप्तित तीनों लोकोंको लिङ्गस्त्रे  
कर रखता है । समस्त लोगोंपर कृपा करनेके उद्देश्यसे ही भ  
महेश्वर तीर्थ-तीर्थमें और अन्य स्थलोंमें भी नाना प्रश्नों  
धारण करते हैं । जहाँ-जहाँ वय-जय भक्तोंने भक्तिरूप स  
शम्भु-गा स्वरूप लिङ्ग, तहाँ-तहाँ तवतद अवतार के  
करके वे स्थित हो गये; लोकोंका उपकार करनेके लिये उ  
स्वयं आते स्वल्पभूत लिङ्गकी कल्पना की । उत लिङ्ग  
करके शिवभक्त पुरुष अवश्य सिद्धि प्राप्त कर लेते  
ग्राहणों ! भूमण्डलमें जो लिङ्ग है, उनकी गणना नहीं हो सकती  
तथापि में प्रधान-प्रधान शिवलिङ्गोंका परिचय देता  
मुनिश्रेष्ठ शौनक ! इस भूतलपर जो मुख्य-मुख्य लोही  
है, उनका आज मैं वर्णन करता हूँ । उनका नाम तुम्हें  
पाप दूर हो जाता है । सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीयोलर महेश्वर  
उज्जैनीमें महाकाल, ओंकारतीर्थमें परमेश्वर हिमालके वि

१. श्रीसोमनाथका दर्शन करनेके लिये काठियाराम अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें जाना चाहिये । २. श्रीमतिकुरुते ज्योतिलिङ्ग जिस पर्वतपर विराजमान है उसका नाम श्री  
श्रीपर्वत है । यह स्थान मद्रास प्रान्तके कृष्णा ज़िलेमें है । ३. महेश्वर तटपर है । इसे दक्षिणका कैलास कहते हैं । ४. महेश्वर मालवा प्रदेशमें किंप्रा नदीके तट पर नामक नगरीमें विराजमान है । उज्जैनको बहुत पुरी भी कहते हैं । ५. इस शिवलिङ्गको ओंकारेश्वर भी कहते हैं । ओंकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है । ६.  
से खंडवा जानेवाली रेलवेकी छोटी लाइनपर मोरठा नामक है । वहाँ ओंकारेश्वर नामक दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं । पहुँच देने वाले ज्योतिलिङ्गके दो स्वरूप माने गये हैं ।

दादय ज्योतिलिङ्ग—१



श्रीसमुद्रमन्थ  
(ग्रामपाटण )



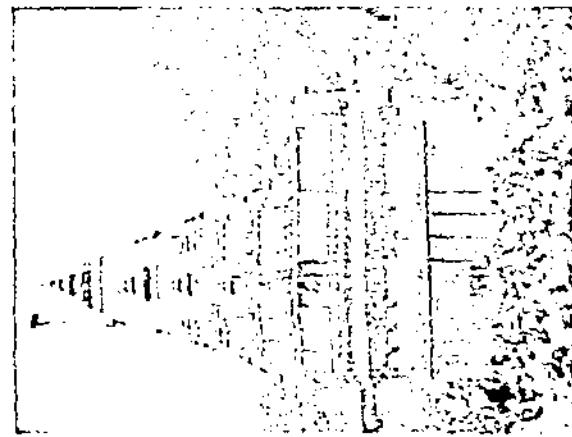
श्रीसमुद्रमन्थ  
( अहल्या मन्दिर )



श्रीसमुद्रमन्थ-ज्योतिलिङ्ग, उज्जैन



श्रीसमुद्रमन्थ-ज्योतिलिङ्ग

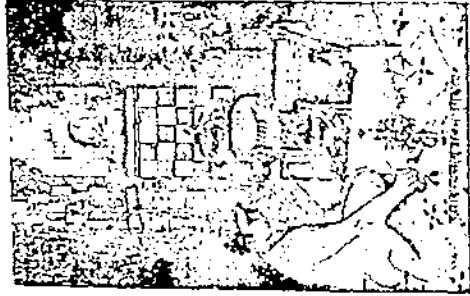


श्रीसमुद्रमन्थ-मन्दिर

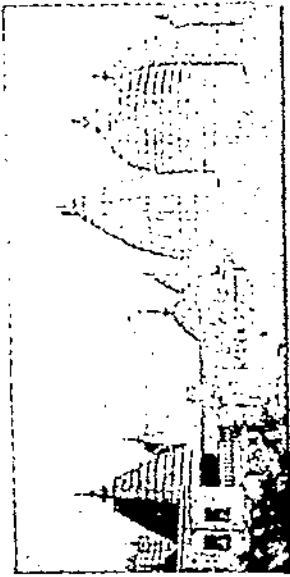
श्रीमानाचान्द्रमन्दिर [ श्री ३४८-३४९ ]

# कल्याण

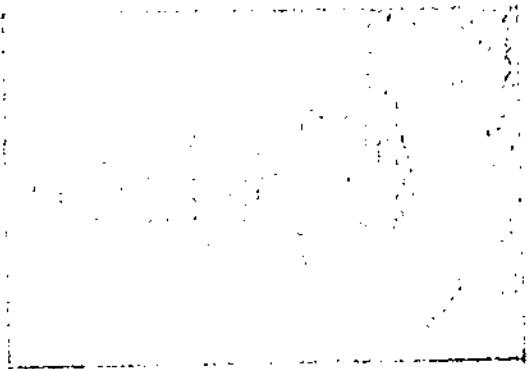
द्वादश-उपोतिलङ्क—२



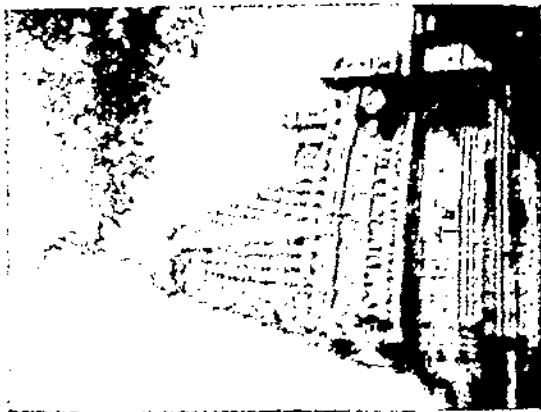
श्रीविश्वनाथ-उपोतिलङ्क,  
धारणसी



श्रीविश्वनाथ-धाम



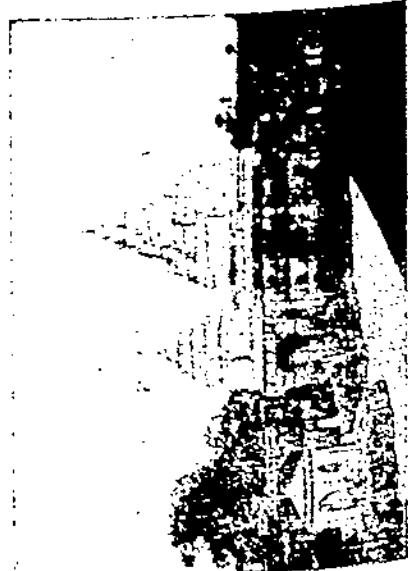
श्रीविश्वनाथ-धर्मेश्वर, नालिनी



श्रीविश्वनाथ-धर्मेश्वर, चंडीगढ़



श्रीविश्वनाथ-धर्मेश्वर



श्रीविश्वनाथ-धर्मेश्वर

१९५४-५५ ]

पर केदैर, डाकिनीमें भीमर्द्धकर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोदावरीके तटपर व्यर्घक, चितामूर्मिमें वैद्यनाथ, दावकवनमें नगेश<sup>१</sup>, सेतुबन्धमें रमेश्वर<sup>२</sup> तथा शिवालयमें शुश्मेश्वर<sup>३</sup>का

५. श्रीकेदारनाथ या केदारेश्वर हिमालयके केदार नामक शिवरपर स्थित है। शिवरसे पूर्वको और अल्कनन्दके तटपर श्रीकेदारनाथ अवस्थित है और पश्चिममें मन्दाकिनी-के किनारे श्रीकेदारनाथ विद्यमान है। यह स्थान हरिद्रासे १५० मील और व्यापिकेशसे १३२ मील दूर है। ६. श्रीभीमशंकरका स्थान कन्वरसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमानदीके किनारे उसके उद्भवस्थान सम्म पर्वतपर है। यह स्थान लारीके रास्तेसे जानेपर नासिकसे लगभग १२० मील दूर है। सम्म पर्वतके उस शिखरका नाम, जहाँ इस ज्योतिर्लिङ्गका प्राचीन मन्दिर है, डाकिनी है। इससे भनुमान दोता है कि कभी वहाँ डाकिनी और भूतोंका निवास था। शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग आसामके कामल्प ज़िलेमें गोदावरीके पास ब्रह्मपुर पश्चिमपर स्थित थताथा जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि नैनांताल ज़िलेके उज्जनक नामक स्थानमें एक विशाल शिवमन्दिर है, वहाँ भीमशंकर-पर्वत स्थान है। ७. याशोंके श्रीविश्वनाथजी की प्रसिद्ध ही है। ८. यह ज्योतिर्लिङ्ग व्याघ्रक या व्याघ्रकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। व्याघ्र प्राणके नासिक ज़िलेमें नासिक एश्वरीसे १८ मील दूर गोदावरीके उद्भवस्थान ब्रह्मगिरिके निपट गोदावरीके तटपर ही इस्तव्य स्थित है। ९. यह स्थान संभाल परगनेमें १० आर्द्ध ८० रेलवेके जसोडाह रेलवनके पास वैष्णवापामरके नामसे प्रसिद्ध है। पुराणोंके भनुसार यहाँ चितामूर्मि है। कहीं-कहीं 'परन्वा वैष्णवाम' च' ऐसा पाठ मिलता है। इसके भनुसार परलोमें वैष्णवापामर स्थित है। इहिं स्थान ईरराशाद नगरसे दूर परभनी नामक एक ज़ंकदान है। वहाँसे परलोलक एक भाँच लाल गयी है। इस परलोल टेलवनसे भोंडी दूरपर परली गोपके निपट श्रीपैष्णवाप नामक ज्योतिर्लिङ्ग है। १०. भागेश नामक ज्योतिर्लिङ्गका स्थान वर्षीश राज्यके अन्तर्गत गोदावरीपर्वते ईराशादपर्वतमें शारदीयरेत नोल्यं दूरपर है। रामनगर का नाम है। कोई दूर ईराशादपर्वतमें स्थान 'दाम्पत्यम' पाठ मालूम है। इस पाठके भनुसार भी वही स्थान निष्ठ ही है। वर्षीश यह ईराशादके निपट और उस शेषके अन्तर्गत है। वर्षीश ईराशादके अन्तर्गत जीता भागनमें स्थित ज्योतिर्लिङ्ग है। यह नामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग नामहै है। कुछ लोगोंके नाममें भनुसार भी है। ११. तील उत्तरसूर्यमें स्थित वामेश्वर (आमेश्वर) ज्योतिर्लिङ्ग दो नामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है। १२. भागेश्वर नोंद्योदीश से तेजुल्लम नीर्व नीर्व हो जाते हैं। यह स्थान नदीसे नदीके रामनगर या रामनगर नीर्व होते हैं। यह स्थान नदीसे नदीके रामनगर या रामनगर नीर्व होते हैं। १३. भुजुर्सेश्वर से भुजुर्से भुजुर्से भुजुर्से भुजुर्से

सारण करे। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इन वारह नामों-का पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो समृद्धि सिद्धियोंका फल प्राप्त कर लेता है। १४.

मुनीश्वरो ! जिस भगवानको पानेकी इच्छा रखकर श्रेष्ठ मनुष्य इन वारह नामोंका पाठ करेंगे, वे इस लोक और परलोकमें उस भगवानको अवश्य प्राप्त करेंगे। जो शुद्ध अन्तः-करणवाले पुरुष निष्क्राम भावसे इन नामोंका पाठ करेंगे, उन्हें कभी माताके गर्भमें निवास नहीं करना पड़ेगा। इन सबके पूजन मात्रसे ही इहलोकमें समस्त वर्णोंके लोगोंके दुःखोंका नाश हो जाता है और परलोकमें उन्हें अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। इन वारह ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य यज्ञपूर्वक ग्रहण करना ( खाना ) चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके सारे पाप उसी क्षण जलकर भस्त्र हो जाते हैं। ॥

यह मैंने ज्योतिर्लिङ्गोंके दर्शन और पूजनका फल बताया। अब ज्योतिर्लिङ्गोंके उपलिङ्ग बताये जाते हैं। मुनीश्वरो ! व्यान देकर मुनो। सोमनाथका जो उपलिङ्ग है, उसका नाम अन्तकेश्वर है। वह उपलिङ्ग मही नदी और समुद्रके संगमपर स्थित है। मलिकार्जुनसे प्रकट उपलिङ्ग रुद्रेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह भगुक्षमें स्थित है और उपासकोंसे मुख देनेवाला है। महाकालसम्बन्धी उपलिङ्ग दुर्घेश्वर या दूरनाथके नामसे प्रसिद्ध है। वह नर्मदाके तटपर है तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला कहा गया है। ओंकारेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्ग कर्दमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह विन्दु सरोवरके तटपर है। इनमा स्थान ईरराशाद राज्यके भन्नाली श्रीकलाशाद स्थेश्वरे १२ मील दूर पैलू गविके पास है। इस स्थानमें शोधिवाल्य कहते हैं।

\* ओराए लोमनामं च शीर्षकं भट्टद्युमनम् ।  
उम्मिन्दा नदीस्तलमेष्वरं दर्मेश्वरम् ॥  
केशरं इमरत्तुर्षे शारिन्दा गोनद्युर्द्वृ ।  
वागवल्लो च विरेत्य श्वेत्य वीरोद्वृ ॥  
वैष्णवं विकूम्ना गोदेश्वरं गोदृश्वरे ॥  
सेतुबरे च रामेश्वरं तु विकूम्ने ॥  
गोदृश्वरि गोदामि गोदृश्वरं च विकूर ॥  
कर्दमेश्वरिद्युर्द्वृः गोदृश्वरं विकूर ॥  
( शिव ५० विकूर ५० मं १ २१-२८ )

\* भद्रेश्वरं च विकूरं विकूरं विकूर ॥  
विकूरं विकूरं विकूरं विकूर ॥  
विकूरं विकूरं विकूरं विकूर ॥

है और उपासकों समूर्ण मनोवाचित्त फल प्राप्त करता है। केदरेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्ग भूतेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है और यमुना-तटार दिति है। जो लोग उपलिङ्ग और पूजन करते हैं, उनके बड़े से-बड़े पापों का वह निवारण करनेवाला बताया गया है। भीमशंखरसम्बन्धी उपलिङ्ग भीमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। वह भी गहा पर्वतारोही स्थित है और महान् वल्लभी गृहि करनेवाला है। नागेश्वर-सम्बन्धी उपलिङ्ग का नाम भी भूतेश्वर ही है, वह महिला-

उत्कृष्टीके तटार दिति है और दर्शन द्वारा भूतेश्वर से आपोंको हर केत्ता है। रामेश्वर से प्रकट हुए उपलिङ्गोंको तुडेस और युरम् तरं प्रकट हुए उपलिङ्गोंको व्याघ्रेश्वर कहा गया है। जानायो। इन प्राचार वहाँ में ज्योतिलिङ्गोंके उपलिङ्ग परिचय दिया। ये दर्शनमात्रसे पापहरी तथा जन्म अभीष्टके दर्शन होते हैं। मुनिवरो! ये मुख्त्तारों प्रद हुए प्रधान-प्रधान शिवलिङ्ग बताये गये। अब अब प्रति शिवलिङ्गोंका वर्णन गुनो। (अचार ।)

### काशी आदिके विभिन्न लिङ्गोंका वर्णन तथा अत्रीश्वरकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें गङ्गा और शिवके अविके तपोवनमें नित्य निवास करनेकी कथा

सूतजी कहते हैं—“मुनीश्वरो! गङ्गाजीके तटपर मुक्तिदायिनी काशीपुरी सुप्रसिद्ध है। वह भगवान् शिवाजी निवास-स्थली मानी गयी है। उसे शिवलिङ्गमयी ही समझना चाहिये। इतना कहकर सूतजीने काशीके अविमुक्त कृत्तिवसेश्वर, तिल-भाण्डेश्वर, दशाश्वेष्वर आदि और गङ्गासागर आदिके संगमेश्वर, भूतेश्वर, नारीश्वर, बट्टेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनायेश्वर, दूरेश्वर, शृङ्गेश्वर, वैद्यनाथ, जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश, विमलेश्वर; प्रयागके ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भारद्वाजेश्वर, शूलटक्केश्वर, माधवेश तथा अयोध्याके नागेश आदि अनेक प्रसिद्ध शिवलिङ्गोंका वर्णन करके अत्रीश्वरकी कथाके प्रसङ्गमें यह बतलाया कि अविष्टी अनसूयापर कृपा करके गङ्गाजी वहाँ पधारी। अनसूयाने गङ्गाजीसे सदा वहाँ निवास करनेके लिये प्रार्थना की।



तब गङ्गाजीने कहा—अनसूये! यदि तुम एक वर्तिन ही हुए तो तूतजीकी पूजा और पतिव्रताज्ञ कर्म हो दो तो मैं देनाताओं-मा उपाचार करनेके लिये वहाँ बृहदील्लिख रहूँगी। पतिव्रताज्ञ दर्शन करके मेरे मनको बैरी प्रब्लेम होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। उत्ती अनलो। यह मैंने तुमसे सभी चात कही है। पतिव्रता ज्ञान तर्मन करनेसे मेरे पापोंका नाश हो जाता है और मैं तुम्हे शुद्ध हो जाती हूँ; क्योंकि पतिव्रता नारी पार्वतीके गमन पवित्र होती है। अतः यदि तुम जगत्का कल्यान जैव चाहती हो और लोकहितके लिये मेरी माँगी हुई बहुउड़े देती हो तो मैं अवश्य यहाँ सिरल्पते निवास करूँगी।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! गङ्गाजीकी यह एक बुनकर पतिव्रता अनसूयाने वर्षभरका वह साह पुष्प तर्मन देकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। प्रिय पतिव्रते! वर माँगो। क्योंकि तुम मुझे बहुत ही प्रिय हो। उन्होंने साक्षात् दर्शन दिया।

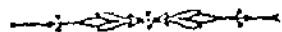
शम्भु बोले—साधि अनसूये! तुम्हारा यह एक देवकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। प्रिय पतिव्रते! वर माँगो। क्योंकि तुम मुझे बहुत ही प्रिय हो।

उस समय वे दोनों पति-पत्नी अद्भुत सुन्दर आकृति एवं पञ्चमुख आदिसे सुक्त भगवान् शिवको वहाँ प्रकट हुआ देते बड़े विस्मित हुए। उन्होंने हाथ जोड़ नमस्कार और उठी करके बड़े भक्तिभावसे भगवान् शंकरका पूजन किया। फिर उन लोककल्पणाकारी शिवसे कहा।

ब्राह्मणदम्पति बोले—देवेश्वर! यदि आप प्रश्न हैं और जगदम्बा गङ्गा भी प्रसन्न हैं तो आप इस त्रोत्तरे

नियात कीजिये और समस्त लोकोंके लिये सुखदायक हो जाइये ।  
तब गङ्गा और शिव दोनों ही प्रसन्न हो उस स्थानपर,

जहाँ वे ऋषिशिरोमणि रहते थे, प्रतिष्ठित हो गये । इन्हीं  
शिवका नाम वहाँ अचीक्षर हुआ । ( अध्याय २—४ )



## ऋषिकापर भगवान् शिवकी कृपा, एक असुरसे उसके धर्मकी रक्षा करके उसके आश्रममें 'नन्दिकेश' नामसे निवास करना और वर्षमें एक दिन गङ्गाका भी वहाँ आना

तदनन्तर श्रीसूतजीने जब वहुतसे शिवलिङ्गोंके कथा-प्रयत्न सुना दिये, तब ऋषियोंने पूछा—‘महामते सूतजी ! वैशाख शुक्ला सप्तमीके दिन गङ्गाजी नर्मदामें कैसे आयी ? इसका विद्यापरम्परसे वर्णन कीजिये । वहाँ महादेवजीका नाम नन्दिकेश्वर कैसे हुआ ? इस बातको भी प्रसन्नतापूर्वक बताइये ।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! एक ग्रामाणी थी, जिसका नाम भृगिका था । वह किसी ग्रामाणीकी पुत्री थी और एक ग्रामाणीको ही विधिपूर्वक व्याही गयी थी । विश्वरो ! यद्यपि वह द्वितीयली उत्तम ब्रतका पालन करनेवाली थी, तथापि अपने पूर्वजन्मके किसी अशुभ कर्मके प्रभावसे ‘व्याल्वैष्वव्य’को प्राप्त हो गयी । तब वह ग्रामाणपली ग्रस्तचर्यवतके पालनमें तत्पर हो पार्थिवपूजनपूर्वक अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगी । उस समय अग्रसर पाकर मूढ़ नामसे प्रसिद्ध एक दुष्ट और बलवान् असुर, जो वडा मायाची था, कामदाणसे पीड़ित होकर वहाँ गया । उस अत्यन्त मुन्दरी कामिनीको तपस्या करती देख वह असुर उसे नाना प्रकारके लोभ दिखाता हुआ उसके साथ उप्पोगमी बाचना करने लगा । प्रतीक्षित हो ! परंतु उत्तम ब्रतका पालन करने तथा शिवके ध्यानमें तत्पर रहनेवाली वह साथी ही प्रतीक्षित हो ! ग्रामभावसे उसपर दृष्टि न डाल सकी । तपस्यामें लगी ही हृदय उस ग्रामाणीने उस असुरका उम्मान नहीं किया; क्योंकि वह अत्यन्त तरोनिष्ठ और शिवधानपरायण थी । उस ग्रामाणी नुकसाने तिरस्कृत हो उस दैत्यराज मूढ़ने उसके ऊपर विप्रट किसा और फिर अस्त्रा प्रिष्ठ लप्त उत्ते दिखाया । उसे लाद उस कुद्धामने भगवान्यक दुर्बचन कहा और उन ग्रामाणीसे परायार जाय देना अरम्भ किया । उस समय उसके नदीमें भर्ती उठी और अनेक बार स्नेहपूर्वक शिव-प्रियी पूर्वर रहने लगी । उस तन्वद्वी पूर्वजन्मसे भगवान् ग्रामाणी अक्षय ने रखता था । शिवका नाम जननेवाली ही जली अस्त्र दिल्लू हो अस्त्रे धर्मी रक्षाके लिये भगवान् इन्हींकी ही रक्षामें गये ।

उस दृश्यमन्तर्में रक्षा संवादरती प्रतिष्ठा जाय उस ग्रामाणीसे अन्तर्में दृश्यमन्तर्में लिये भगवान् शिव रहे

प्रकट हो गये । भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने उस कामविद्वल दैत्यराज मूढ़को तत्काल भस्त कर दिया और ग्रामाणीकी ओर



कृपादृष्टिसे देखकर भक्तकी रक्षाके लिये दस्तित्र हो गया—‘यर मांगो ।’ मृदैश्वरका वह वचन तुगकर उस मात्री ग्रामाणीपलीने उनके उस आनन्दजनक महालभय त्वन्नद्य दर्शन किया । फिर उसके नुखे देनेवाले परमेश्वर यमुनों प्रवास करके दुष्ट अन्तःकरणवाली उस ग्रामीणे द्वारा जारी मनुष्य उकाकर उनसी लुकिये ।

ऋषिका योली—देवदेव महादेव ! शरणान्तरशम्भव ! आप दीनन्दन हैं । जलोदी सदा रथ दर्शनर्तक हैं । आपमे दृग्नामक अनुसने मेरे धर्मती जल ही है । मैं विद्व अपरके द्वारा वह दुष्ट अनुर भाय गया । ऐसा गृह भाये तमरूङ जगाये रख रही है । आप आप तुम्हे अस्त्रे तवनीरी दरम उन्मम पूज अनन्त भवित प्रदान दर्तीहैं । जाप ! दर्शने केरे लिये रह रहे । इन्हें अपरद और आप ही दर्शन हैं । आप ! मृदैश्वर ! नमी दृश्ये आर्यमा भी भूमिरं । आप ही दृश्यमन्तर्में लिये उहों सभा दिल रहे हैं ।

महादेवजीने कहा—भृषि ! तुम मदाचारिणी और विशेषतः मुझमें भक्ति रखनेवाली हो। तुमने मुझसे जो-जो वर माँगे हैं, वे सब मैंने तुम्हें दे दिये।

व्राह्मणो ! इसी बीचमें आग्निपु और ब्रह्मा आदि देवता वहाँ भगवान् शिवाय आग्निपान हुआ जान दर्शने भरे हुए आये और अत्यन्त प्रेमपूर्वक ध्यानके प्रणाम करते उन सबके उनका भलीभाँति पूजन किया। फिर युद्ध दृश्यसे हाथ जोड़ मरुक शुकाकर उनकी सुति भी की। इसी समय साथी देवनदी गङ्गा उग भृषिहासे उसके भाग्यकी उत्तमता करती हुई प्रसन्न चित्त हो बोली।

गङ्गाने कहा—भृषि ! वैशाख मासमें एह दिन यहाँ रहनेके लिये मुझे भी तुम्हें वन्नन देना चाहिये। उस दिन मैं भी इस तीर्थमें निवास करना चाहती हूँ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! गङ्गाजीकी यह ज्ञानवार उत्तम व्रताना पालन करनेवाली जिती बाबी श्रीकृष्ण लोकस्थितिके लिये प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘वहुत अद्य ऐसे हो।’ भगवान् शिव भृषिकानो अनन्द प्रदान करतेके अत्यन्त प्रसन्न हो उस पार्श्वव लिङ्गमें अपने पूर्ण झंगे निर्विन हो गये। यह देवत सब देवता आनन्दित हो किंतु या भृषिकाकी प्रशंसा करने लगे और अपनेअसे धन्ते नहें गये। उस दिनसे नर्मदाका यह तीर्थ ऐसा उत्तम श्री पातन हो गया तथा समृद्धि पापोंका नाश करनेवाले लिंगहाँ ननिर्देत्यके नामसे विख्यात हुए। गङ्गा भी श्रीकृष्ण वैशाखमासकी स्वामीके दिन शुभकी इच्छासे अपने पापको धोनेके लिये वहाँ जाती है, जो मनुष्योंसे देवताया करती है।

( अध्यात्र १—

### प्रथम ज्योतिलिङ्ग सोमनाथके प्रादुर्भाविकी कथा और उसकी महिमा

तदनन्तर कपिला नगरीके कालेश्वर, रामेश्वर आदिकी महिमा बताते हुए सूतजीने समुद्रके तटपर स्थित गोकर्णक्षेत्रके शिवलिङ्गोंकी महिमाका वर्णन किया। फिर महावल नामक शिवलिङ्गका अद्भुत माहात्म्य सुनाकर अन्य वहुत-से शिवलिङ्गोंकी विचित्र माहात्म्य-कथाका वर्णन करनेके पश्चात् भृषियेंकि पूछनेपर वे ज्योतिलिङ्गोंका वर्णन करने लगे।

सूतजी बोले—व्राह्मणो ! मैंने संदर्भसे जो कुछ सुना है, वह ज्योतिलिङ्गोंका माहात्म्य तथा उनके प्राकृत्यका प्रसङ्ग अपनी बुद्धिके अनुसार संक्षेपसे ही सुनाऊँगा। तुम सब लोग सुनो। मुझे ! ज्योतिलिङ्गोंमें सबसे पहले सोमनाथका नाम आता है; अतः पहले उन्हींके माहात्म्यको सावधान होकर सुनो। मुनीश्वरो ! महामना प्रजापति दक्षने अपनी अस्तिनी आदि सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ किया था। चन्द्रमाको स्वामीके रूपमें पाकर वे दक्षकन्याएँ विशेष शोभा पाने लगीं तथा चन्द्रमा भी उन्हें पलीके रूपमें पाकर निरन्तर सुशोभित होने लगे। उन सब पत्नियोंमें भी जो रोहिणी नामकी पली थी, एकमात्र वही चन्द्रमाको जितनी प्रिय थी, उतनी दूसरी कोई पली कदापि प्रिय नहीं हुई। इससे दूसरी रुपियोंको बड़ा दुःख हुआ। वे सब अपने पिताकी शरणमें गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने जो भी दुःख था, उसे पिता को निवेदन किया। द्विजो ! वह सब सुनकर दक्ष भी तुली हो गये और चन्द्रमाके पास आकर शान्तिपूर्वक बोले।

दक्षने कहा—कलानिधे ! तुम निर्मल कुर्मे द हुए हो। तुम्हारे आश्रममें रहनेवाली जितनी लिंगों हैं। सबके प्रति तुम्हारे मनमें न्यूनाधिकमात्र क्ष्यो है। तुम्हें अधिक और किसीको कम प्यार क्ष्यो करते हो। अनुकरणी सी किया, अब आगे फिर कभी ऐसा विषमतापूर्व द तुम्हें नहीं करना चाहिये; क्ष्योंकि उसे तत्क रेत चताया गया है।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! अपने दामाद का स्वयं ऐसी प्रार्थना करके प्रजापति दक्ष घरके बढ़ते हुए उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया था कि अब फिर आगे ऐसा द होगा। पर चन्द्रमाने प्रवल भावसे विवश होकर उत्तमी बहुमानी। वे रोहिणीमें इतने आसक्त हो गये थे कि दूसरी ही पलीका कभी आदर नहीं करते थे। इस बातके उन्हसे दूसरी हो फिर स्वयं आकर चन्द्रमाको उत्तम नीतिपै बहुत तथा न्यायोचित वर्तावके लिये प्रार्थना करने लगे।

दक्ष बोले—चन्द्रमा ! सुनो, मैं पहले अनेकों तुमसे प्रार्थना कर चुका हूँ। फिर भी तुमने मेरी बात नहीं सुनी। इसलिये आज शाप देता हूँ कि तुम्हें क्षयका शेष हो जा।

सूतजी कहते हैं—दक्षके इतना कहते ही नहीं चन्द्रमा क्षयरोगसे ग्रस्त हो गये। उनके क्षीण होते ही समय सब ओर महान् हाहाकार मच गया। सब देव भृषि कहने लगे कि ‘हाय ! हाय ! अब क्या करता ?’

चन्द्रमा कैसे टीक होगे ?" मुने ! इस प्रकार दुःखमें पड़कर वे सब लोग विद्वल हो गये । चन्द्रमाने इन्द्र आदि सब देवताओं तथा शृणिवीको अपनी अवस्था सूचित की । तब इन्द्र आदि देवता तथा वर्षिष्ठ आदि शृणि ब्रह्माजीकी शरणमें गये ।

उनकी यात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—देवताओं ! जो हुआ, सो हुआ । अब वह निश्चय ही पलट नहीं सकता । अतः उसके निवारणके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बताता हूँ । अदरपूर्वक सुनो । चन्द्रमा देवताओंके साथ प्रभाव नामक शुभ क्षेत्रमें आये और वहाँ मृत्युजय मन्त्रमा निश्चिप्तक अनुशासन करते हुए भगवान् शिवकी आराधना करें । अपने सामने शिवलिङ्गकी स्थापना करके वहाँ चन्द्रदेव निश्चय तपस्या करें । इससे प्रसन्न होकर शिव उन्हें ध्यारहित कर देंगे ।

तब देवताओं तथा शृणियोंके कहनेसे ब्रह्माजीकी आशा के अनुराग चन्द्रमाने वहाँ छः महीनेतक निरन्तर तपस्या की, मृत्युजयमन्त्रसे भगवान् वृषभधनका पूजन किया । दस करोड़ भन्नका जप और मृत्युजयका ध्यान करते हुए चन्द्रमा वहाँ नियरचित्त होकर लगातार खड़े रहे । उन्हें तपस्या करते देख भज्जयत्तम भगवान् शंकर प्रसन्न हो उनके सामने प्रकट हो गये और अपने भक्त चन्द्रमासे घोले ।

शंकरजीने कहा—चन्द्रदेव ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनमें जो अवोष्ट हो, वह वर माँगो ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हें समूर्ध उत्तम वर प्रदान करूँगा ।



चन्द्रमा घोले—देवेश्वर ! वहि आप प्रसन्न हैं तो मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता है; तथापि ग्रभो ! शंकर ! आप मेरे शरीरके इस धरयरोगका निवारण कीजिये । मुश्से जो अपराध वन गया हो, उसे क्षमा कीजिये ।

शिवजीने कहा—चन्द्रदेव ! एक पक्षमें प्रतिदिन तुम्हारी कला क्षीण हो और दूसरे पक्षमें फिर वह निरन्तर बढ़ती रहे ।

तदनन्तर चन्द्रमाने भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी लुति की । इससे पहले निरक्षार होते हुए भी वे भगवान् शिव फिर साकार हो गये । देवताओंपर प्रसन्न हो उस क्षेत्रके माहात्म्यको बढ़ाने तथा चन्द्रमाके वशका विस्तार करनेके लिये भगवान् शंकर उन्हें नामपर वहाँ सोमेश्वर कहलाये और सोमनाथके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुए । बाह्यणों । सोमनाथका पूजन करनेसे वे उपासकके ध्य तथा कोद आदि रोगोंका नाश कर देते हैं । ये चन्द्रमा धन्य हैं, कृत-कृत्य हैं, जिनके नामसे तीनों लोकोंकि स्वामी सागात् भगवान् शंकर भूतलको पवित्र करते हुए प्रभागदेवमें विश्वमान हैं । वहाँ समूर्ध देवताओंने सोमकुण्डकी भी स्वापना की है जिसमें शिव और ब्रह्माका सदा निवास माना जाता है । चन्द्रकुण्ड इस भूतलपर पापनाशन तीर्थके लियमें प्रसिद्ध है । जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । ध्य आदि जो अवाप्य रोग होते हैं, वे कदम उस कुण्डमें छः नास्तक स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । मनुष्य जिन कदमके उद्देश्यसे इन उत्तम तीर्थका सेवन करता है उस कदमे सर्वथा प्राप्त कर लेता है—इसमें मनुष्य नहीं है ।

चन्द्रमा नीरेंग होकर अपना पुराना दर्थ संभालने लगे । इस प्रसार में सोमनाथसे उत्तरिता सदा प्रभाव दुना दिना । हुनीसरो ! इस दृष्टि कोमें शतिरुदय शादुर्भाव दुख है । जो मनुष्य सोमनाथके प्रादुर्भावी इस दर्पणे कुत्ता अपना दूसरीं सूताला है, वह वस्तुतः नवीकरणे रखा और कदम दर्पणे कुल है इसलाई ।

की हुई महाकालकी पूजा का आदरणीय दर्शन थिया। राजकि  
शिवपूजन-न कह आश्रयिता उत्तम ऐसकर उनमें भगवान् तो  
प्रणाम किया और किरण वह अस्ति निवार-स्थानापर बैठ आयी।  
श्वालिनके उस बालको भी वह गयी पूजा देखी थी। अतः  
वह आनेपर उनमें कौशलवद्य शिवजीकी पूजा करने वाले निवार  
किया। एक चुन्दर पश्चात् लालर उसे अस्ति विविधं गंडी  
ही दूरपर दूरे विविधं एकत्वा लालमें लालिया और उनीहों  
शिवलिङ्ग माना। किरणसे भास्त्रार्पण कुर्विय गम्भीर भ्राता शुभ,  
वस्त्र, धूप, दीप और अद्वित आदि द्रव्य शुद्धिर उनके द्वारा  
पूजन करके मनःशुद्धिपत दिव्य नैवेद्य भी अर्पित होय। चुन्दर-  
सुन्दर पत्तों और पूलोंसे वारंवार पूजन करके भास्त्रे नृत्य  
किया और वारंवार भगवानके नरण्यमिं महाक द्वारा। इसी  
समय श्वालिने भगवान् शिवमें अस्तक्त्वनित दुःख अस्ति पुत्र-  
को बड़े प्यासे भोजनके लिये बुलाया। परन्तु उगम्भ मन से  
भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ था। अतः अब वारंवार  
बुलानेपर भी उस बालको भोजन करनेकी इच्छा नहीं हुई;  
तब उसकी माँ स्वर्य उसके पास गयी और उसे शिवके आगे  
आँख बंद करके ध्यान लगाये वेठा देख उमड़ा दृश्य फक्त दूर  
खीचने लगी। इतनेपर भी जब वह न उठा, तब उसने क्रोधमें  
आकर उसे खूब पीटा। खीचने और मारन-पीटनेपर भी जब  
उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने वह शिवलिङ्ग उठाकर  
दूर फेंक दिया और उसपर चढ़ायी हुए सारी पूजा-सामग्री  
नष्ट कर दी। वह देख बालक 'देव ! देव ! महादेव !' की पुकार करते  
हुए सहसा भूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके नेत्रोंसे ऑस्योंकी  
धारा प्रवाहित होने लगी। दो घड़ी बाद जब उसे चेत हुआ,  
तब उसने आँखें खोली।

आँख खुलनेपर उस शिशुने देखा, उसका वही शिविर  
भगवान् शिवके अनुग्रहसे तत्काल महाकालका सुन्दर मन्दिर  
बन गया, मणियोंके चमकीले खंभे उसकी शोभा बढ़ा रहे  
थे। वहाँकी भूमि स्कृटिकमणिसे जड़ दी गयी थी। तपाये  
हुए सोनेके बहुतसे विचित्र कलश उस शिवालयको सुशोभित  
करते थे। उसके विशाल द्वार, कपाट और प्रधान द्वार सुवर्ण-  
मय दिखायी देते थे। वहाँ बहुमूल्य नीलमणि तथा हीरोंके बने  
हुए चबूतरे शोभा दे रहे थे। उस शिवालयके मध्यभागमें  
दयानिधान शंकरका रक्तमय लिङ्ग प्रतिष्ठित था। श्वालिनके

उस पुत्रने देखा। उस शिवलिङ्गपर उसकी अस्ती हीन  
हुई पूजन-समाचारी सुविचित्र है। यह यत्र देख वह चलकर  
उठकर बाढ़ा दी गया। उसे मनही-मन बढ़ा अश्रव  
प्रीत वह परमानन्दके समुद्रमें निमग्न-सा हो गया। उस  
भगवान् शिवकी सुति दर्शके उसने वारंवार अके ज  
महाक द्वारा द्वारा और सूर्यास्त शेषके पश्चात् वह जोके  
शिवालयसे नाटर निकला। वहाँ आकर उन्ने अस्ते देखी  
देखा। वह अन्नमन्दिरके तमान शोभा पा रहा था। वह  
कुछ नहीं तात्पुर नुस्खेमय होकर विनिव एवं परम उच्चतरके  
प्राप्तिक्रियाको देखा। फिर वह उस भवनके भीतर पक्ष  
मन प्रवासकी शोभाओंसे नमक्षत था। उस भवनमें क्रमांक  
रह और मुन्नांक दी जड़े गये थे। प्रदेशकालमें लाद-  
प्रवेश फरदी बालकों देखा, उसकी माँ दिव्य लकड़ीवे  
हो एक चुन्दर पलंगार तो सही है। रक्षमय अङ्गांकेवे  
कामी अतः उक्षीत हो रहे हैं और वह जड़ात देख  
तमान दिखायी देती है। सुखसे चिह्निल हुए उस व  
अर्थात् नांदे दी जुकी थी। श्वालिनने उठकर देखा वह  
कृपामान हो चुकी थी। श्वालिनने उठकर देखा वह  
अर्थात् नांदे दी जुकी थी। उसने महान् आनन्दमें निमग्न हो  
देखेको छातीसि लगा लिया। पुत्रके मुद्रते शिरकार्णेवे  
प्रशादका वह सारा बुत्तान्त मुनकर श्वालिनने सज्जे स  
दी, जो निरन्तर भगवान् शिवके भजनमें लो रहे थे।  
अपना नियम पूरा करके रातमें सदृशा वहाँ आये और यहीं  
पुत्रका वह प्रभाव, जो शंकरजीको संतुष्ट करनेवाल था, के  
मन्त्रियों और पुरोहितोंसहित राजा चन्द्रसेन वह स  
देख परमानन्दके समुद्रमें इव गये और नेत्रोंसे प्रेमके  
वहाते तथा प्रसन्नतार्पवेक शिवके नामका कीर्तन इते  
उन्होंने उस बालकको हृदयसे लगा लिया। ग्राहकों  
समय वहाँ बढ़ा भारी उत्सव होने लगा। उब लोग इह  
विभीत होकर महेश्वरके नाम और यशका कीर्तन करते  
इस प्रकार शिवका यह अद्भुत महात्म्य देखनेसे पुरुषों  
बढ़ा हर्ष हुआ और इसीकी चर्चामें वह सारी एवं एक  
समान व्यतीत हो गयी।

युद्धके लिये नगरको चारों ओरसे घेरकर ले  
राजाओंने भी प्रातःकाल अपने गुप्तचरोंके मुत्ते वह  
अद्भुत चरित सुना। उसे मुनकर सब आश्रयसे जैवते हैं  
और वहाँ आये हुए सब नेत्र एकत्र हो आपसमें सुन  
कोले—ये राजा चन्द्रसेन बड़े भारी शिवमक हैं॥

इनपर विजय पाना कठिन है। वे सर्वथा निर्भय होकर महा-  
भास्की मगरी उत्तरविनीका पालन करते हैं। जिसकी पुरीके  
शब्दम् भी ऐसे शिवमक्त हैं वे राजा चन्द्रसेन लो महान्  
शिवमक्त हैं ही। इनके साथ विरोध करनेसे निश्चय ही भगवान्  
शिव क्रांत करेंगे और उनके क्रांतसे इम नव लोग नष्ट हो  
जाएंगे। अतः इन नेतृत्वके साथ इमें मेल-मिलाप ही कर लेना  
चाहिये। ऐसा होनेपर भद्रेश्वर दूसरपर बड़ी ऊँक करेंगे।

सूरजी कहते हैं—ग्रामणो ! ऐसा निश्चय करके शुद्ध हस्तवाले उन सब भूपालीने हथियार डाल दिये । उनके मनसे अभ्यास नियमल गया । वे सभी राजा अत्यन्त प्रसन्न हो चन्द्र-पंचमी अनुमति के भवानीलकी उस रमणीय नगरीके भीतर गये । वहाँ उन्होंने महाकालका पूजन किया । फिर वे सबके सब उग ग्वालिनके भद्रान् अम्बुदयपूर्ण दिव्य सौभाग्यकी गूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उमंडे परपर गये । वहाँ राजा चन्द्रसेनने आगे बढ़ाव उनका त्वागत-सलार किया । वे वहु-गृह्य आगनोपर बैठे और आश्वर्यचकित एवं आनन्दित हुए । गोपालके ऊपर रूपा करनेके लिये सतः प्रकट हुए धीरालय और शिवलिङ्गम् दर्शन करके उन सब राजाओंने अपनी उत्तम शुद्ध भगवान् शिवके चित्तनमं लगायी । तदनंतर उन और नरस्योंने भगवान् शिवकी रूपा प्राप्त करनेके लिये उस गोपशिष्युओं वहुत-सी बलुएँ प्रसन्नतारूपक भैंट की । गम्भीर असरोंमें जो वहुतस्यक गोप रहत थे, उन सबका राजा उन्होंने उसी वालको बना दिया ।

इनी समय भगवत् देवताओंसे पूजित परम तेजस्वी वानर-  
प्रभु रुद्राम्बनी वहाँ प्रकट हुए। उनके आते ही सब राजा  
मेंमें दशहर चढ़े हो गये। उन सबमें भक्तिमात्रसे लिनग्र  
पर उन्हें मख्यक शुभता। राजाओंने पूजित हो कर धन्य-  
वाद दिया। उन लोकोंसे बड़े और उन गोपदालको  
बड़े धन्यवाद उन वरमात्रीयों और देवते हुए देखि—  
मैंने आपसे इन लोगोंका दृश्य दूसरे देशपायी भी मरी थी।  
मैंने उनको नुकसानीया कहा देता। भगवान् द्विष्टके लिया  
उनका अवश्यक दिये गए ऐसे गति नहीं है। यह दृष्टि शैक्षण्य-  
को। लोकोंके लिये इस गोपदालको लिया है। इनमें दर्शन लिये  
लोकोंकी दृष्टि किस भावके व्यापारसे शूलन दूर  
किये गये हैं। शैक्षण्यके लिये दर्शनमें यह लाभक  
लिया जाएगा। लोकोंको नेतृत्व करते हैं। इन लोकोंसे सम्बन्धी लोकोंका  
लोकोंके लिये लाभ है। इन लोकोंके लिये इनमें दर्शन दूर है। इनमें लो-

परम्पराके अन्तर्गत आठवीं पीढ़ीमें नशवशस्त्री नन्द उत्पन्न होगे, जिनके धर्म नारात् भगवान् नारायण उनके पुत्रलुपते प्रकट हो श्रीकृष्ण नामसे प्रतिद्वंद्व होगे। आजसे यह गोपकुमार इस जगत्में श्रीकरके नामसे विशेष स्वाति प्राप्त करेगा ।

सूतजी कहते हैं—ग्रामणो ! ऐसा कदम अजनी-  
नन्दन शिवत्वलग वानरराज हनुमानजीने समस्त राजाओं तथा  
महाराज चन्द्रसेनको भी कृपादिष्टे देखा । तदनन्तर उन्हेंगे उस



बुद्धिमान् गोपवालक श्रीगंगारे कवी प्रसन्नताके नाम विद्यो-  
पासनाके उत्तर आचार-ज्ञानहारणा उपरेता विद्या जी भगवान्  
शिवकी वहुत प्रिय है । इसके बाद परम प्रसन्न हुए शुभाम-  
जी चल्द्वेष और श्रीद्वेष विद्या के उन नय राजनीतिके देखते-  
देखते यही अवधारणा हो गये । वे स्व गां लायि भरतव-  
भमानित हो महाराज चल्द्वेषमी आगे के लिए चले गए  
किसी ही हीट नहे । महाराजद्वेषी और राज द्वेषी द्वारा भी उभया ।  
पावर भर्तु ग्रामद्वेषी कवी याद्वेषी द्वारा भी उभया ।  
महाराज चल्द्वेष और राजद्वेष भी दोनों ही द्वयी  
प्रसन्नताके नाम महाराज हो गया अवधि । इसके अनावश्य-  
करके उन दोनोंने उन्हें अप्रसन्न हो गये । इसके बाद उभया  
महाराज नामसे उपरिकृष्ट भगवान्द्वेष भव्यता हो । उभया-  
प्रसन्नताके नाम हुए युद्धोंमें भव्य उभया हो गये । इस  
परम विद्या उपरिकृष्ट भगवान् नाम द्वारा हो । यह उभया  
द्वय देखते हैं । यह उभया विद्या उभया हो । यह उभया  
उपरिकृष्ट है ।

विन्ध्यकी तपस्या, ओंतारमें परमेश्वर लिङ्गके पाठ्यभूमि और उसकी भाविभास्त्र क्षणि  
भृष्णियोंने कहा—महामा युतगी ! आगे आगे भक्ती रक्षा करनेवाले महामाल नामक शिवलिङ्ग की नहीं  
अद्वृत कथा सुनायी है। अनुरुगा कहते हैं कि ज्योतिलिङ्गम्  
परिचय दीजिये—ओंतार तीर्थम् विन्ध्याचलस्यां पर्वतस्य  
जो ज्योतिलिङ्ग है, उसके अभिमानी कथा सुनाइये।

**स्तुतजी बोले—**महर्षियों ! ओंतार तीर्थमें पर्योग  
संचक ज्योतिलिङ्ग जिस प्रधार प्रदृष्ट कुण्डा, वर नदाया हूं  
प्रेमसे सुनो। एक समयकी वात है भगवान् नारद मुनि  
गोकर्ण नामक शिवके लभीप वा वडी भक्तिको नाम उन्हीं  
सेवा करने लगे। कुछ कालके बाद वे मुनियों उद्धासे  
गिरिराज विन्ध्यपर आये और विन्ध्यने वहाँ वहें आदरहे  
साथ उनका पूजन किया। मेरे वहाँ वह कुछ है, कभी  
किसी वातकी कमी नहीं होती है, इस भावकी मनमें लेकर  
विन्ध्याचल नारदजीके सामने लहड़ा हो गया। उन्हीं द्वद  
अभिमानभरी वात सुनकर अहंकारनाशक नारद मुनि लंबी  
साँस खीचकर चुपचाप लड़े रह गये। यह देवा विन्ध्य  
पर्वतने पूछा—‘आपने मेरे यहाँ कौन-सी कमी देखी है?  
आपके इस तरह लंबी साँस खीचनेका क्या कारण है?’

**नारदजीने कहा—**मैया ! तुम्हारे यहाँ सब कुछ है।  
फिर भी मेर पर्वत तुमसे बहुत ऊँचा है। उसके शिखरोंका  
विभाग देवताओंके लोकोंमें भी पहुँचा हुआ है। किंतु  
तुम्हारे शिखरका भाग वहाँ कभी नहीं पहुँच सकता है।

**स्तुतजी कहते हैं—**ऐसा कहकर नारदजी वहाँसे  
जिस तरह आये थे, उसी तरह चल दिये। परंतु विन्ध्यपर्वत  
‘मेरे जीवन आदिको विष्कार है’ ऐसा सोचता हुआ मन-  
ही-मन संतप्त हो उठा। अच्छा, ‘अब मैं विध्वनाथ भगवान्  
शम्भुकी आराधनापूर्वक तपस्या करूँगा’ ऐसा हार्दिक निश्चय  
करके वह भगवान् शंकरकी शरणमें गया। तदनन्तर जहाँ  
साक्षात् ओंकारकी स्थिति है, वहाँ प्रसन्नतापूर्वक जाकर उसने  
शिवकी पार्थिव मूर्ति बनायी और छः मासतक निरत्तर  
शम्भुकी आराधना करके शिवके ध्यानमें तत्पर हो वह अपनी  
तपस्याके सामने हिलातक नहीं। विन्ध्याचलकी ऐसी तपस्या  
देखकर पार्वतीपति प्रसन्न हो गये। उन्होंने विन्ध्याचलको  
अपना वह स्वत्प दिखाया, जो योगियोंके लिये भी उल्लभ है।  
उस समय उससे बोले—विन्ध्य ! तुम

मनोवान्धिन वर माँगो। मैं भक्तोंसे अभीष्ट वर मैंकरा  
और तुम्हारी तात्पर्यमें प्रसन्न हूं।  
**विन्ध्य बोला—**कौन्तर वरमो ! अप क्षमा  
माननेवाल हूं। किंतु भाव मुझमें प्रमाण है तो मुझे वह अद्वृत  
उद्दि प्रदान कीजिये, जो आगे जावेहो सिद्ध करनेवालहो।  
भगवान् शम्भुने उसे वह उत्तम वर देदिया और  
कहा—‘विन्ध्य विन्ध्य ! तुम बैसा चाहो, बैल चाहो।  
इसी विन्ध्य देवा वाया क्या निर्गत अन्तःकरणवाले श्रूपि जहाँ  
आये और शंकरजीकी पूजा करके बोले—प्रभो ! आ  
पर्वत दिव लाते नियात करें।’



देवताओंको यह वात सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो  
गये और लोकोंको सुख देनेके लिये उन्होंने सहर्ष वेदमें  
किया। वहाँ जो एक ही ओंकारलिङ्ग था, वह दो लहड़ों  
विभक्त हो गया। प्रणवमें जो सदाशिव थे, वे अंगों  
नामसे विल्लात हुए और पार्थिवमूर्तिमें जो शिवजीके  
प्रतिष्ठित हुईं, उसकी परमेश्वर संज्ञा हुई (परमेश्वरी)  
अमलेश्वर भी कहते हैं। इस प्रकार ओंकार और परमेश्वर  
ये दोनों शिवलिङ्ग भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।  
उस समय देवताओं और भृष्णियोंने उन दोनों लिङ्गों  
पूजा की और भगवान् वृषभभवजको संतुष्ट करके अंगों  
वर प्राप्त किये। तत्पश्चात् देवता अपने-अपने सान्दर्भों  
और विन्ध्याचल भी अधिक प्रसन्नताका अनुभव करते रहते।  
उसने अपने अभीष्ट कार्यको सिद्ध किया और मार्गी-

परितापको व्याप दिया । जो युहुष इय प्रभास यमतान  
युक्तस्या पूजन करता है, वह मात्रके गम्भीरे फिर नहीं आता  
और अपने अभीष्ट लक्ष्यों प्राप्त कर लेता है—इसमें  
प्रधाय नहीं ।

सूतजी रहते हैं—महायज्ञो ! अंकुरों जो व्येतिहास  
प्रकट हुआ और उसकी आवाजाते जो फल मिलता है,  
वह सब यद्यु तुगड़े बता दिला । इसके नाम में उत्तम केरल  
नामक ज्येतिहासकृता उल्लेख करता है । ( भगवान् १८ )

केदारेश्वर तथा भीमशंकर नामक उत्तोतिलिङ्गोंके आविभविकी कथा तथा उनके मात्रान्वयका वर्णन

सूतजी कहते हैं—आपओ। भगवान् विष्णुके जो नर-  
नारायण नामक हो अतिरि है और भासुरोंके पदस्थिताओं  
लीभीं तपत्या करते हैं। उन दोनोंमें पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर  
उसमें लिपि हो पूजा व्रत उनके लिये भगवान् दाम्पत्तुसे  
प्राप्तेना की। विष्णुजी भलोंके अधीन होनेके कारण प्रतिदिन  
उनके सताये हुए पार्थिवलिङ्गमें पूजित होनेके लिये आया  
हरोंपर। जब उन दोनोंके पार्थिवलिङ्गमें करते वहुत दिन  
श्रीत गये, तब एक समय परमेश्वर शिवने प्रसन्न देखर कहा—  
“मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत मंतुष्ठ हूँ। तुम दोनों दोस्रे के  
गाँयों। उस समय उसके ऐसा कहनेपर नर और नारायणने  
दोसोंकी द्वितीयी कामनासे कहा—“देवेश्वर ! श्रद्धि आप प्रसन्न  
है और यदि मुझे कर देना चाहते हैं तो अपने खल्पसे पूजा  
करनेके लिये यही स्थित हो जाऊँ।”

और भक्तोंकी दर्शन देनेके लिये त्वयं केदारश्वरके नामसे प्रतिष्ठा हो वहाँ रहते हैं। ऐसे दर्शन और पूजन करनेयाले भक्तोंमें सदा अभीष्ट वत्तु प्रदान करते हैं। उमीदिनदो देवता जिसने भी भक्तिमात्रसे केदारभरता पूजन किया; उसके लिये अपनेमें भी दुःख दुर्लभ हो गया। जो भगवान् शिवला प्रिय भक्त यहाँ शिवलिङ्गके निकट शिवके लासे अहित वत्त्व ( कदुण या कड़ा ) चढ़ाता है वह उन अवश्यमुक्त लक्षणका दर्शन करके समझ पायेंगे कुछ ही जाता है जाप ही जीवन्मुक्त भी हो जाता है। जो पदरीबनहीं यथा रहता है, उसे भी जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है। नर द्वेरा नारायणके तथा केदारेश्वर शिवके लक्षण दर्शन करके मनुष्य मोदक यापी छेत्रा है इसमें संक्षय नहीं है। केदारेश्वरमें भक्ति अत्यनेतरांगे पुरुष वहाँपरी याना आत्मा वहके उसके पालना पुरुषोंके पश्चात् भासीं ही नर जाते हैं ऐसे लोगोंपांच जाति हैं—हासी निजार करनेही अपरबन्धना नहीं है। वे केवलतेवर्षीय पर्वतजल नहीं ऐसपूर्वीकृत केदारेश्वरी पूजा वहके पश्चात् वह की जीवोंही पश्चात् सन्तुष्टता दिल फस नहीं रहता। यद्यपी इस नारतवर्षीय सम्बन्धी जीवोंसे भक्तिमात्रसे वह तद्दानानामात्री तथा केदारेश्वर लगानी पाना चाहती है।

अय दे गोमर्द्धन वाल एवं तिर्यग शास्त्र  
कुला । अस्य स्थानी वै विकल्प विवेचनात् इति विवेचना  
शोध विवेचना इति कर्मी उपर्युक्त विवेचना । अस्य विवेचना  
कलाम कर्म कुला विवेचना विवेचना इति विवेचना  
विवेचना कर्मी विवेचना इति विवेचना । अस्य विवेचना  
विवेचना विवेचना इति विवेचना विवेचना । अस्य विवेचना

अस देवी करु भिते रह नाहि अम्भीत असेही  
अस देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी देवी

भयानक पराक्रमी तुम भीमे आमी मातां पूजा—गाँ !  
मेरे पिताजी कहाँ हैं ? तुम अपेक्षी क्यों रखते हो ? मैं यह सब  
जानना चाहता हूँ । अतः यथार्ग बात नहाओ ॥

**कर्कटी घोली—वेदा** । रावणहे कहि भाई कुम्भर्ण  
तेरे पिता हे । भाईचाहित उग मधुकरी नीरसे औरामने मार  
डाला । मेरे पिताका नाम कहि और माताजी नाम पुष्टसी  
था । विराघ मेरे पति हे, जिन्हे पूर्णकालमें रामने मार आया ।  
अपने प्रिय स्थानीके मारे जानेपर मैं अपने माता-पिताके पास  
रहती थी । एक दिन मेरे माता-पिता अगस्त्य मुनिकि शिष्य  
सुतीक्ष्णको अपना आहार बनानेके लिये गये । वे कई तासी  
और महात्मा थे । उन्होंने कुपित शेकर मेरे माता-पिताको भसा  
कर डाला । वे दोनों मर गये । तबसे मैं उक्तेली होकर बहुत  
दुःखके साथ इस पर्वतपर रहने लगी । गिरा कोई अप्रलम्ब  
नहीं रह गया । मैं असहाय और दुःखसे आनुर होकर यहाँ  
निवास करती थी । इसी समय महान् बलप्राकामसे समझ  
राक्षस कुम्भर्ण जो रावणके छोटे भाई है, वहाँ आये । उन्होंने  
बलाल्कारपूर्वक मेरे साथ समागम किया । किर वे मुझे छोड़कर  
लङ्घा चले गये । तसव्वात् तुम्हारा जन्म हुआ । तुम भी  
पिताके समान ही महान् बलवान् और पराक्रमी हो । अब मैं  
तुम्हारा ही सहारा लेकर यहाँ कालक्षेप करती हूँ ।

**सूतजी कहते हैं—आक्षणो ! कर्कटीकी यह बात**  
सुनकर भयानक पराक्रमी भीम कुपित हो यह विचार करने  
लगा कि मैं जिष्युके साथ कैसा बर्ताव करूँ ? इन्होंने मेरे  
पिताको मार डाला । मेरे नाना-नानी भी उनके भक्तके  
हाथसे मारे गये । विराघको भी इन्होंने ही मार डाला और  
इस प्रकार मुझे बहुत दुःख दिया । यदि मैं अपने पिताका  
पुत्र हूँ तो श्रीहरिको अवश्य पीड़ा दूँगा ।

ऐसा निश्चय करके भीम महान् तप करनेके लिये चला  
गया । उसने व्रद्धाजीकी प्रसन्नताके लिये एक हजार वर्षोंतक  
महान् तप किया । तपस्याके साथ-साथ वह मन-ही-मन इष्ट-  
देवका ध्यान किया करता था । तब लोकपिताभव व्रक्षा उसे  
वर देनेके लिये गये और इस प्रकार बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—भीम ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; तुम्हारी  
जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो ।

भीम घोला—देवेश्वर ! कमलासन ! यदि आप प्रसन्न  
हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो आज मुझे ऐसा बल  
नीजिये, जिसकी कहीं तुलना न हो ।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहर उस एक  
व्रताजीने नमहत्तर किया और व्रद्धाजी भी उस श्रीहरि  
कहर भासे भासे नहीं गये । व्रद्धाजीमें अत्यन्त कष प्रका  
राता आने वाला और माताजी प्रगाम करके शेष-  
पूर्वक वर्षे बोला—गाँ ! अब तुम मेरा यह देखो । नै  
इन्द्र आदि देवताओं तथा इनकी सद्वाता करनेवाले श्रीहरिम  
महान् दंडार वर उत्तर्णगा । ऐसा कहर भयानक पश्चिम  
भीमने कहके इन्द्र आदि देवताओंको जीता और उन स्वरों  
आने-उत्तरने सामने निकाल वाहर किया । वरदल  
देवताओंमें प्रार्थनासे उनका पश्च लेनेवाले श्रीहरिमें भी उसे  
उद्धोंगे रखा । फिर प्रत्यक्षतापूर्वक पुरुषीको बीता ग्राम  
लिया । यससे पहले वह कान्तल्य देशके राजा तुदिनों  
जीतनेके लिये गया । वहाँ राजके साथ उत्तर भवंतु युद्ध  
हुआ । दुष्ट अमुर भीमने व्रद्धाजीके दिये हुए वरके प्रभवते  
शिवकि अतिथित रहनेवाले महावीर महाराज तुदिनिक्षेपरात् अ  
दिया और सन् सामग्रियोंसहित उनका सच्च तथा वर्णव असे  
अधिकारमें वर लिया । भगवान् शिवके प्रिय मक्तु धर्मियों  
परम धर्मस्त्रा राजाजो भी उसने कैद कर लिया और उसे  
पैरोंमें बैड़ी ढाल द्वारा उन्हें एकत्व स्थानमें बंद कर दिया । कह  
उद्धोंगे भगवान्की प्रीतिके लिये शिवकी उत्तम पार्थिव मूर्ति  
बनाकर उन्होंका भजन-पूजन आरम्भ कर दिया । उहोंने  
वारंवार गङ्गाजीकी लुति की और मानसिक स्थान आदि स्तुते  
पार्थिव-पूजनमें विविध शंकरजीकी पूजा सम्पन्न ही । विवि  
पूर्वक भगवान् शिवका ध्यान करके वे प्रणवसुल पञ्चजन्मन  
( ३० नमः शिवाय ) का जप करने लगे । अब उहें दूरुहों  
काग करनेके लिये अवकाश नहीं मिलता था । उन दिनों उन्होंने  
साथ्यी पत्नी राजवल्लभा दक्षिणा प्रेमपूर्वक पार्थिव-पूजन किया  
करती थीं । वे दग्धति अनन्यभावसे भक्तोंका कल्पण करनेवाले  
भगवान् शंकरका भजन करते और प्रतिदिन उन्होंकी आरपत्तने  
तत्पर रहते थे । इधर वह राक्षस वरके अभिमानसे मोहित हो  
यशकर्म आदि सब धर्मोंका लोप करने लगा और सबसे कठोर  
लगा—तुमलोग सब कुछ मुझे ही दो ! महर्षियों ! दुर्लभ  
राक्षसोंकी वहुत बड़ी सेना साथ ले उसने सारी पृथ्वीके असे  
वशमें कर लिया । वह बेदों, शास्त्रों, स्मृतियों और पुण्यों  
क्षताये हुए धर्मका लोप करके शक्तिशाली होनेके कारण सब  
स्वयं ही उपभोग करने लगा ।

तब सब देवता तथा ऋषि अत्यन्त पीड़ित हो महादेवों  
तटपर गये और शिवका आरधन तथा स्वन करते लो-

इनके इन प्रकार सुनि करनेपर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंमें बोले—“देवगण तथा मर्हिणीयो ! मैं प्रश्न हूँ । तर मांगो । तुम्हारा क्षौग-सा कार्य निदृ कहूँ ?”

देवता बोले—“देवेश्वर ! आप अन्तर्यामी हैं, अतः मैंको मनकी सारी बातें जानते हैं । आपसे कुछ भी अशात नहीं है । प्रभो ! गणेश्वर ! कुम्भकर्णसे उत्पन्न कर्कटीका बलवान् पुष्ट राधाम भीम ब्रह्माजीके दिये हुए वरसे शक्तिशाली हो देवताओंमें निरन्तर पीड़ा दे रहा है । अतः आप इस दुष्प्रदायी राघवका नाश कर दीजिये । हमपर कृपा कीजिये, भिलम्ब न कीजिये ।

शम्भुने कहा—“देवताओ ! कामरूप देशके राजा नुदिग्नि मेरे ब्रेत्र भक्त हैं । उनसे मेरा एक संदेश कह दो । तर तुम्हारा सारा कार्य शीघ्र ही पूरा हो जायगा । उनसे इन्हाँ—कामरूप देशके अधिपति भद्राराज मुदिग्नि ! प्रभो ! तुम ऐसे निशेष भक्त हो । अतः प्रेमपूर्वक भेरा भजन हो । हुष्ट राधाम भीम ब्रह्माजीका वर पाकर प्रवल हो गया है । इसीलिये उसमें तुम्हारा हिरण्यकाश किया है । परन्तु अब मैं उग झुप्पो गार गैर्हूंगा, इसमें नहैर कही है ।”

सूतजी पहुँचने हैं—“आदाणो ! तब उन सब देवताओंमें प्रभुक्षतापूर्वक वहीं आहुर उन गद्यराजसे शम्भुनी कही हुई थीरो कहा वह नुमायी । उनसे वह संदेश कहार देवताओं प्रेर भक्तियोंसे वहा आगम्न प्राप्त हुआ और वे सभके सब वीर ही ग्राम-अस्ति आशम्भो चले गये ।

इसपर भगवान् शिव भी अपने गमोंके साथ ही कहितकी नामगाथे अर्थमें नामकी स्था दर्शनके लिये नारद उसके निकट आरे गुम्भासे रही छह गांव । इसी विषय कामरूपनदेशमें लौटी लिखो जाने गए जान लगाता आरग लिया । (मैंसे ही लिखमें गद्यराजने आहुर कह दिया कि राजा कुर्दार (नामके) लिये कोई सुखस्वय नह रहे हैं ।

राजाका भार संप्रिकर कहा—“मैं चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शिवका पूजन करता हूँ । तब राक्षस भीमने भगवान् शंकरके प्रति बहुत तिरस्कारखुक दुर्वचन कहार राजाको धमकाया और भगवान् शंकरके पार्थिव लिङ्गर तल्वार चलाया । वह तल्वार उस पार्थिव लिङ्गका सार्व भी नहीं करने पायी कि उससे साक्षात् भगवान् हर वहाँ प्रकट हो गये और बोले—“देवो, मैं भीमेश्वर हूँ और अपने भक्तकी रक्षाके लिये प्रकट हुआ हूँ । मेरा पहलेसे ही वह नह रहे हैं कि मैं सदा आपने भक्तकी रक्षा कर्हैं । इसलिये भक्तोंको मुख देनेवाले मेरे वलकी ओर दृष्टिपात करो ।”

ऐसा कहार भगवान् शिवने रिनाक्से उसकी तल्वारके दो टुकड़े कर दिये । तब उस राक्षसने फिर अपना विशूल चलाया, परंतु शम्भुने उस दुष्टके विशूलके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले । तदनन्तर शंकरजीके साथ उसका थोर सुख हुआ, जिससे भारा जगत् धुष्य हो उठा । तब नारदजीने आहर भगवान् शंकरसे प्रार्थना की ।

नारद बोले—“ओगोंको भ्रममें डालनेवाले भएश्वर ! मेरे नाथ ! आप धुगा करें, धमा करें । तिनकेहो चाटोंके लिये कुलदाढ़ा चलानेकी क्या आपशक्तता है । शीघ्र श्री इम्मति संहार कर डालिये ।

नारदजीके इस प्रश्न प्रार्थना करने पर भगवान् शम्भुने तुकारमाप्तसे उन नामप नामन गद्यराजोंहो गया पर



राक्षसोंको दृश्य कर दिया । तदनन्तर भगवान् शंकरको कृपार्थे इन्द्र आदि समस्त देवताओं और मुनीयोंको शान्ति मिली तथा सम्पूर्ण जगत् स्वस्य हुआ । उस समय देवताओं और विशेषतः मुनियोंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! आप यहाँ लोगोंको सुख देनेके लिये सदा नियारा करें । यह देश निन्दित भाना गया है । यहाँ अनेकाले लोगोंको प्रायः दुःख ही ग्रास होता है । परंतु आपका दर्शन करनेसे यहाँ सख्ता नहीं होती है ।'

कल्याण होगा । आप भी मरणकरके नामसे विल्यात ही और यहके राष्ट्राणि मनोरथोंकी मिदि करंगे । आपका यह चौहाँ लिंग रात्रा पूजनीय और गमस्त आपस्तियोंका निवारण द्वारे नाला होगा ॥

सूतजी कहते हैं—व्राजो ! उनके इस प्रकार शार्णु भरनार लोकहितजारी एवं भक्तवत्सल परम स्वरूप विष्णुभट्टार्थक वर्णी स्थित हो गये । (अथव ११—११)

### विश्वेश्वर ज्योतिलिङ्ग और उनकी महिमाके प्रसङ्गमें पञ्चक्रोशीकी महत्वाका प्रतिपादन

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! अब मैं काशीके विश्वेश्वर नामक ज्योतिलिङ्गका माहात्म्य बताऊँगा, जो महापातकोंका भी नाश करनेवाला है । हुमलेग सुनो । इस भूतलभर जो कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर होती है, वह रायिदानन्दस्वरूप, निर्विकार एवं सनातन व्रतात्मण है । अपने कैवल्य (अद्वैत) भावमें ही रमनेवाले उन अद्वितीय परमात्मामें कभी एकसे दो हो जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई\* । फिर वे ही परमात्मा संगुणत्वमें प्रकट हो शिव कहलाये । वे शिव ही पुरुष और ही दो रूपोंमें प्रकट हो गये । उनमें जो पुरुष था, उसका 'शिव' नाम हुआ और जो स्त्री हुई, उसे 'शक्ति' कहते हैं । उन चिदानन्दस्वरूप शिव और शक्तिने स्वयं अद्वैत रहकर स्वभावसे ही दो चेतनों (प्रकृति और पुरुष) की स्थापिता की । मुनिवरो । उन दोनों माता-पिताओंको उस समय सामने न देखकर वे दोनों प्रकृति और पुरुष महान् संशयमें पड़ गये । उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी प्रकट हुई—‘तुम दोनोंको तपस्या करनी चाहिये । फिर तुमसे परम उत्तम सृष्टिका विस्तार होगा ।’

वे प्रकृति और पुरुष बोले—प्रभो ! शिव ! तपस्याके लिये तो कोई स्थान है ही नहीं । फिर हम दोनों इस समय कहाँ स्थित होकर आपकी आशाके अनुसार तप करें ।’

तब निर्गुण शिवने तेजके सारभूत पाँच कोस लंबे-चौड़े शुभ एवं सुन्दर नगरका निर्माण किया, जो उनका अपना ही स्वरूप था । वह सभी आवश्यक उपकरणोंसे युक्त था । उस नगरका निर्माण करके उन्होंने उसे उन दोनोंके लिये भेजा । वह नगर आकाशमें पुरुषके समीप आकर स्थित हो गया । तब पुरुष—श्रीहरिने उस नगरमें स्थित हो सृष्टिकी कामनासे

शिवात् स्थान करते हुए बहुत वर्षोंतक तप किया । उस समय परिश्रमके कारण उनके शरीरसे श्वेत जलकी अनेक धार्ते प्रकट हुई, जिनसे सारा दृश्य आकाश व्याप हो गया । वह दुर्योग तुठ भी दिशायी नदी देता था । उसे देखकर भावत विष्णु भन-ही-भन बोल उठे—‘वह कैसी अद्भुत वस्तु विलोप देती है ? उस समय इस आश्वर्यको देखकर उन्होंने अपना गिरिहिलाया, जिससे उन प्रभुके सामने ही उनके एक बातोंपर गिर पड़ी । जहाँ वह मणि गिरी, वह स्थान मणिर्मध्यमें नामक महान् तीर्थ हो गया । जब पूर्वोंक जलराशियमें वह संपदक्रोशी छूने और बढ़ने लगी, तब निर्गुण शिवने गीरं उसे अपने विश्वलके द्वारा धारण कर लिया । फिर विष्णु अपने पत्नी प्रकृतिके साथ वहाँ सोये । तब उनकी नामिमे एक छोटा प्रकट हुआ और उस कमलसे व्रशा उत्पन्न हुए । उस उत्पत्तिमें भी शंकरका अदेश ही कारण था । तदनन्तर उन्हें शिवकी आशा पाकर अद्भुत सृष्टि आरम्भ की । व्रशां व्रशाण्डमें चौदह भुवन बनाये । व्रशाण्डका विस्तार महान् विचास करोड़ योजनका बताया है । फिर भगवान् शिवने सोचा कि ‘व्रशाण्डके भीतर कर्मपाशसे बँधे हुए ग्रीष्मांकोंके प्राप्त कर सकेंगे ?’ यह सोचकर उन्होंने मुक्तिमें पञ्चक्रोशीको इस जगतमें छोड़ दिया ।

“यह पञ्चक्रोशी काशी लोकमें कल्याणदायिनी क्षमेश्वर नाम करनेवाली, शानदाची तथा मोक्षकी प्रकाशित इते मानी गयी है । अतएव मुझे परम प्रिय है । यहाँ स्वयं पूजा ने ‘अविमुक्त’लिङ्गकी स्थापना की है । अतः मेरे अंदर होरे ! तुम्हें कभी इस क्षेत्रका त्याग नहीं करना चाहिये ।” कहकर भगवान् इरने काशीपुरीको स्वयं अपने विश्वलके

\* ‘स दितीयमेच्छत्’ (वृहदारण्यक उ०—१ । ४ । ३ )

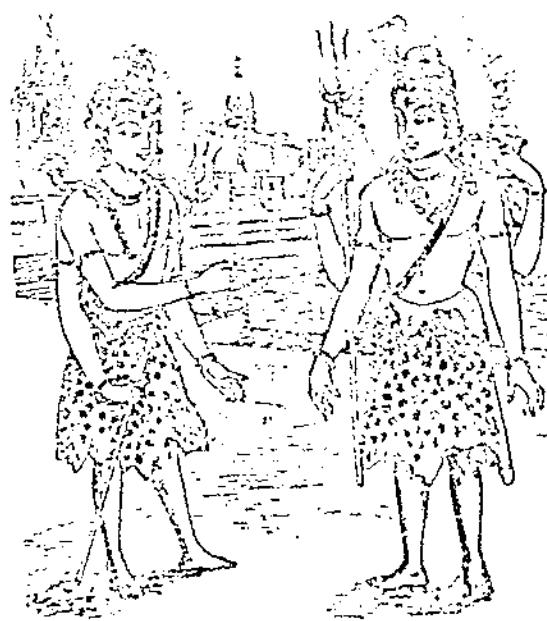
इस श्रुतिसे भी यही बात सिद्ध होती है ।

ले कर नव्यलोकके जगत्‌में द्योइ दिया । ब्रह्मजीका एह दिन  
पूर्ण होनिर बब नार जगत्‌का प्रय्य हो जाता है । तब भी  
निश्चय ही इन काशीपुरीका नाश नहीं होता । उन समय  
भगवान् शिव इसे विश्वध्यर धारण कर लेते हैं और बब ब्रह्म-  
शिव पुनः नवी सुष्टि की जाती है, तब इसे किर वे इन भूतल-  
पर स्वाप्ति कर देते हैं । कर्मोका कर्षण करनेसे ही इन पुरी-  
को 'काशी' कहते हैं । काशीमें अविमुक्तेश्वर लिङ्ग नदा विराज-  
मान रहता है । वह महापातकी पुरुषोंको भी मोक्ष प्रदान  
करनेवाला है । मुनीश्वरो ! अन्य माझशायक धारोंमें नाल्प्य  
आदि मुक्ति प्राप्त होती है । केवल इन काशीमें ही जीवोंको  
मायुर्य नामक सर्वोत्तम मुक्ति सुखम होती है । जिनकी  
कर्ही भी गति नहीं है उनके लिये वाराणसी पुरी ही गति है ।  
महापुर्णमयी पञ्चमेश्वी करोड़ो हत्याओंका विनाश करनेवाली  
है । वहाँ समस्त अग्रगण भी मरणकी इच्छा करते हैं । किर  
दूसरींती तो यात ही क्या है । यह शंकरजी प्रिय नगरी काशी  
महा भोग और नोश प्रश्न करनेवाली है ।

पैद्यमके पति, जो भीतरसे सत्त्वगुणी और बाहरसे तमोगुणी  
परे गये हैं, कालमिनि चद्रके नामसे विल्यात है । वे निर्गुण  
शेषे तुर भी क्षुण्णलयमें प्रस्तु हुए थिये हैं । उन्होंने वारंवार  
प्रणाम करके निर्गुण धिनसे इस प्रकार कहा ।

उद्धृ योले—मिथ्यनाथ ! मेरेश्वर ! मैं आपका ही हूँ,  
इमें संशय नहीं है । नाभ्य महादेव ! मुरा अलाज्वर हुया  
कीजिये । जगत्से ! लोकहितकी कामनासे आपको सदा यहीं  
एहा चाहिये । जगत्साथ ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । आप  
ही दूर जीतेल उद्धर करें ।

सूर्यसी उहों हैं—तदान्तर गय और इन्द्रियोंसे रक्षामें  
मिथ्ये दीक्षामो भी न रहने वारंवार प्रार्थना करके नैकोंमें  
तुर तुर ही प्रस्तुतासुर्क उन्हें कहा ।



अविमुक्त योले—गाल्ली रोगके मुन्द्र श्रीपथ  
देवाधिदेव महादेव ! आप याज्ञवरमें तीनों लोकोंकि स्वामी तथा  
ब्रह्म और निष्ठु आदिके द्वारा भी गोपनीय हैं । देय ! लक्षी-  
पुरीको अप अरनी साजधानी ल्लीकार करें । मैं अभिल्य तुम्हारी  
प्राप्तिके लिये यही नदा आपका ज्यान लगाये मिथ्यात्से वैटा  
रहूँगा । आप ही मुक्ति देनेवाले तथा नमूर्ज तामनाओंके पूरुष  
हैं दूसरा कोई नहीं । अतः आप अरेतरके लिये उमा-  
नारित तदा यहीं विराजमान हैं । नदामिन ! आर गमत  
जीवोंसे कैनारखगत्वे गर करें । कृ ! मैं वारंवार प्रार्थना  
करता हूँ कि आप जामें भक्तोंसे सर्व भिन्न हों ।

सूतजी कहते हैं—ग्रामाशो ! जप विकासमें भगवान्  
क्षेत्रसे इन प्रवार प्रार्थना की तब स्वेच्छ दिव समस्त दीटे-  
म उद्धर इसोंके लिये हो । दिवाकाश तो नहीं । जप  
दिनसे जागत्पूर्व विन लभीये अ रहे । उनी दिनसे रक्षा  
कांपित तुर ही नहीं । ( अपाप २२ )

करते हैं। उग उत्तम मध्योगमा ऐसे शाश्वत योग। उसका श्रुतियोद्घारा प्रतिपादन हुआ है। नह भोग और मोक्षहर फल प्रदान करनेवाला है। महेश्वरि ! वाराणी पुरीमें निवास करना मुझे सदा ही अच्छा लगता है। जित वाराणीमें सब कुछ छोड़कर काशीमें रहता हूँ, उसे चताता हूँ, मुझे। जो मेरा भक्त तथा मेरे तत्त्वका ज्ञानी है, वे दोनों अवश्य ही मोक्षके भागी होते हैं। उनके लिये तीर्थमें अपेक्षा नहीं है। निश्चित और अविहित दोनों प्रकारके कर्म उनके लिये तयान हैं। उन्हें जीवन्मुक्त ही समझना चाहिये। वे दोनों कहाँ भी भरे, दुरंत ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह यैने निश्चित वात कही है। सर्वोत्तमगत्ति देवी उमे ! इस परम उत्तम अविमुक्त तीर्थमें जो विशेष वात है, उसे तुम मन लगाकर सुनो। सभी वर्ण और समस्त आश्रमोंके लोग चाहे वे यात्रक, ज्ञानी या बूढ़े, कोई भी क्यों न हो—यदि इस पुरीमें मर जायें तो मुक्त हो ही जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जी आवित्र हो या पवित्र, कुमारी हो या विवाहिता, विधवा हो । बन्धा, रजस्वला, प्रसूता, संस्कारहीना अथवा जैसी-तैसी—कैसी ही क्यों न हो, यदि इस क्षेत्रमें मरी हो तो अवश्य मोक्षकी भागिनी होती है—इसमें संदेह नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज अथवा जारायुज प्राणी जैसे यहाँ मरनेपर मोक्ष पाता है, वैसे और कहीं नहीं पाता। देवि ! यहाँ मरनेवालेके लिये न ज्ञानकी अपेक्षा है न भक्तिकी; न कर्मकी अवश्यकता है न दानकी; न कभी संस्कृतिकी अपेक्षा है और न धर्मकी ही; यहाँ नाम-कीर्तन, पूजन तथा उत्तम जातिकी भी अपेक्षा नहीं होती। जो मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह जाहे जैसे मेरे, उसके लिये मोक्षकी प्राप्ति सुनिश्चित है। प्रिये ! मेरा यह दिव्य पुर गुह्यसे भी गुह्यतर है। ब्रह्मा आदि देवता भी इसके माहात्म्यको नहीं जानते। इसलिये यह महान् क्षेत्र अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध है; क्योंकि नैमित्य आदि सभी तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ है। यह मरनेपर अवश्य मोक्ष देनेवाला है। धर्मका सार सत्य है, मोक्षका सार समता है तथा समस्त क्षेत्रों एवं तीर्थोंका सार यह 'अविमुक्त' तीर्थ ( काशी ) है—ऐसी विद्वानोंकी मान्यता है। इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीडा तथा विविध कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ भी मनुष्य यदि इस अविमुक्त तीर्थमें प्राणोंका परित्याग करता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है। जिसका चित्र विषयोंमें आसक्त है और जिसने धर्मकी रुचि ल्याग दी है, वह भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होता है तो पुनः संसार-बन्धनमें नहीं

होता। जिस जो प्रमातासे रहित, धीर, सत्यमुग्ध, दासहृष्ट, कर्म-कुदाल और कर्तांगनके अभिमानसे रहत होके द्वारा जीवी भी कर्मका आरम्भ न करनेवाले हैं, उनकी तो जीवी नामा है। वे यह गुप्तमें ही स्थित हैं।

इन काशीपुरीमें विवरभक्तोंद्वारा अनेक विशिष्ट खाति लिये गये हैं। पार्वति ! वे समूर्ण अभीज्ञेश्वरेनेवाले जौ मोक्षदायक हैं। जारी दिशाओंमें पाँच-पाँच कोष फैल द्वारा यह क्षेत्र 'अविमुक्त' कहा गया है, वह सब आसे मोक्षदायक है जीव हो नक्षुभूमिमें यह क्षेत्र उपलब्ध हो जाय तो जै अवश्य मोक्षही प्राप्ति होती है। ब्रह्म निष्पाप मनुष्य अद्वैती मेरे तो उसका तत्त्वाल मात्र हो जाता है और जो गारी मुख मरता है, वह कामद्वयोंको प्राप्त होता है। उसे पहले ब्रह्म अनुभव करके ही पहिंचे मोक्षकी प्राप्ति होती है। बुद्धी ! इस अविमुक्त क्षेत्रमें पातक करता है, वह हजारे वहाँ भैरवी यातना पान्नर पापका फल भोगनेके पश्चात् ही में पाता है। शतकोटि कल्पोंमें भी अपने किये हुए अर्पण नहीं होता। जीवको अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। केवल अशुभ नरक देनेवाला होता है, केवल शुभ कर्म लार्जी करानेवाला होता है तथा शुभ और अशुभ दोनों मनुष्य-योनिकी प्राप्ति दत्तायी गयी है। अशुभ कर्मकी और शुभ कर्मकी अधिकता होनेपर उत्तम अशुभ होता है। शुभ कर्मकी कमी और अशुभ कर्मकी अशुभ होता है। यहाँ अवम जन्मकी प्राप्ति होती है। पार्वति होनेपर यहाँ अवम जन्मकी प्राप्ति होता है। जीवों सहचा मोक्ष प्राप्त होता है। यदि किसीने जीवको सब्जा मोक्ष प्राप्त होता है, तभी उसे इत आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया है, जो मुख्य काशीमें पहुँचकर मृत्युकी प्राप्ति होती है। जो मुख्य जाकर गङ्गामें खान करता है, उसके क्रियमाण और कर्मका नाश हो जाता है। परंतु प्रारब्ध कर्म भोगे। नहीं होता, यह निश्चित वात है। जिसकी काशीमें जाती है, उसके प्रारब्ध कर्मका भी क्षय हो जाता है जिसने एक ब्राह्मणको भी काशीयास करवाया है। वह काशीयासका अवसर पाकर मोक्ष लाभ करता है।

सूतजी कहते हैं—सुनिवरो ! इत तरह तथा विश्वेश्वर लिङ्गका प्रचुर माहात्म्य कताया ग

परपुराणोंमें संग और नोंद प्रदान करनेवाला है। इसके जिसे उनकर मनुष्य क्षणभरमें समलू पानेसे मुक्त हो जाता है।  
यदि मैं अम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्गका महात्म्य बताऊंगा,

( अध्याय २३ )

→→→→→

अम्बक ज्योतिर्लिङ्गके प्रसङ्गमें महर्षि गौतमके द्वारा किये गये परोपकारकी कथा, उनका तपके प्रभावसे  
अक्षय जल प्राप्त करके अष्टपियोंकी अनावृष्टिके कष्टसे रक्षा करना; अष्टपियोंका उल्लङ्घक  
उन्हे गोहत्यामें फँसाकर आथ्रमसे निकालना और शुद्धिका उपाय बताना

सृष्टजी कहते हैं—पुनियण! मुनो, मैंने महुरुच्चासनीके पुष्पने ज्योंगी तुम्ही है, उम्ही रुपमें एक पापनाशक कथा तुम्हें मुना रहा है। पूर्वजालजी वात है, गौतम नामसे विस्वात एक श्रेष्ठ भृष्टि रहते थे, जिनकी परम धार्मिक पलीका नाम अद्वया था। दक्षिण दिशामें जो व्रद्धगिरि है, वहाँ उन्होंने इस एजार वर्णोत्तक तपस्या की थी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मर्हिणीयों ! एक समय वहाँ नौ वर्णोत्तक वद्वा भयानक अर्थात् ही गया। उब लोग महान दुःखमें पड़ गये। इन भूतलपर कहीं गीला वत्ता भी नहीं दिखायी देता था। किर जीरोंसा अपारमूर्त जल कहाँसे दृष्टियोन्चर होता। उप समय मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग—सब वहाँसे दक्षों दिशाओंमें चले गये। तब गौतम भृष्टिने छः मर्हिणेतक राय उठाकर वक्ता हो गयन दिया। वरणने प्रकट होकर वर मौग्नेयं कहा—भृष्टि वृष्टिके लिये प्रार्थना की। वरणने कहा—ऐसताम्भोंसे वियानहे सिरद भृष्टि न उठके मैं कुशरी इच्छाके अनुचर हुम्हें यदा अक्षय रहनेवाला जल देता हूँ। हुम यह गत्तु बोकर करो।

तेवन जलता है, वैता ही फल पाता है। मदान् पुरुषकी तेवासे महत्त्वा मिलती है और शुद्धकी तेवासे शुद्धता। उत्तम पुरुषोंका यह त्वभाव ही है कि वे दूसरोंके दुःखको नहीं सहन कर पाते। अपनेको दुःख प्राप्त हो जाति, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। किंतु दूसरोंके दुःखका निवारण ही करते हैं। दयालु, अभिमानशूल्य, उपकारी और जितेन्द्रिय—ये पुष्पके चार लंबे हैं, जिसके आधारपर यह पृथ्वी टिकी हुई है।

तदनन्तर गौतमजो वहाँ उस परम दुर्लभ जलसे पान्न विधिवृक्षक जिल्लैमितिक कर्म करने लगे। उन मुरीदरामें वहाँ जिल्लै होगा ही जिदिके लिये भान, जी और अनेक प्रकार के नींवार योआ दिये। तदैसराएँके धान्य, भौति-भौतिक युद्ध और अनेक प्रकारके फल-दूल वहाँ उद्यक्षा उठे। यह समानार मुदाहर वहाँ दूसर-दूसरे नदियों भृष्टियुगि, वृशु-रक्षा तथा द्युमन्द्रलक जीव जागर रहने लगे। यह उन इन भूषणकमें उड़ा नुम्दर हो गया। उम अक्षय वृष्टिके नर्ममने अताभृष्टि वृष्टिके लिये दुःखदायिनी नहीं रह गयी। उन नदियों अनेक दुनर्ममसाधन भृष्टि अस्ते दियन, भावां और पुन जादि-

तब ये बोले—‘भगवन् ! यदि आप हमें न देना चाहते हैं तो ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिसे समझ भूषि दौट कठकारक गौतमने आथमने बाहर निकाल दें ।’

गणेशजीने कहा—‘वृग्नियो ! तुम सब लोग गुनो । इस समय तुम उचित कार्य नहीं कर रहे हो । चिना किंवा अपराधके उनपर क्रोध करनेके कारण तुम्हारी हानि ही होगी । जिन्होने पहले उपकार किया हो, उन्हें यदि दुःख दिया जाय तो वह अपने लिये दित्कारक नहीं होता । जब उआपनो दुःख दिया जाता है, तब उपसे इस जगत्में आना ही नाश होता है ।’ ऐसी तपत्या करके उत्तम फलजी सिद्धि की जाती है । स्वयं ही शुभ फलका परित्याग करके अहितकारक फलको नहीं ग्रहण किया जाता । ग्रहाजीने जो यह कहा है नि अग्राहु कभी साधुताको और साधु कभी अग्राहुताको नहीं ग्रहण करता, यह बात निश्चय ही ठीक जान पड़ती है । पहले उपवासके कारण जब तुमलोगोंको दुःख भोगना पड़ा था, तब मर्दी गौतमने जलकी व्यवस्था करके तुम्हें सुख दिया । परंतु इन समय तुम सब लोग उन्हें दुःख दे रहे हो । संसारमें ऐसा कार्य करना कदापि उचित नहीं । इस बातपर तुम सब लोग सर्वथा विचार कर लो । खियोंकी शक्तिसे मोहित हुए तुमलोग यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा यह बर्ताव गौतमके लिये अत्यन्त हितकारक ही होगा, इसमें संशय नहीं है । ये मुनिश्रेष्ठ गौतम तुम्हें पुनः निश्चय ही सुख देंगे । अतः उनके साथ छल करना कदापि उचित नहीं । इसलिये तुमलोग कोई दूसरा वर माँगो ।

सूतजी कहते हैं—‘ब्राह्मणो ! महात्मा गणेशने शृणियोसे जो यह बात कही, वह यद्यपि उनके लिये हितकर थी, तो भी उन्होंने इसे नहीं स्वीकार किया । तब भक्तोंके अधीन होनेके कारण उन शिवकुमारने कहा—‘तुमलोगोंने जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, उसे मैं अवश्य करूँगा । पीछे जो होनहार होगी, वह होकर ही रहेगी ।’ ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये । मुनीश्वरो ! उसके बाद उन दुष्ट शृणियोके प्रभावसे तथा उन्हें प्राप्त हुए वरके कारण जो धटना घटित हुई, उसे सुनो । वहाँ गौतमके खेतमें जो धान और जौ थे, उनके पास गणेशजी एक दुर्बल गाय बनकर गये ।

\* अपराध चिना तस्मै कुञ्जां शनिरेव च ॥

उपस्थुतं पुरा यैस्तु तेष्यो दुःखं हितं नहि ।

बदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदित ॥

( शि० पु० को० रु० सं० २५ । १४-१५ )

लिये हुए वरके कारण यह गौ क्रांपती हुई वर्ण जब ज्ञान और जी चले गये । इसी समय दैवत गौतमजी ज्ञान गये । ये दशालु ठहरे, इसलिये मुट्ठीभर तिनके लेकर उन्हें उग गौतम ज्ञान ले ले गये । उन तिनकोका सर्व शेष ही बच गये गुणपर गिर पहरी और शृणिके देखने-देखते उन्होंने गर मर गयी ।

वे दूसरे-दूसरे ( देवी ) ब्राह्मण और उनकी दुश्मिंश वहाँ लिये हुए एवं कुछ देख रहे थे । उस गौके शिरे हीरे सब-के-तब बोल उठे—‘गौतमने यह क्या कर डाल ! गौतम भी आश्रय-चकित हो, अहल्याको तुल्यक लग दृश्यते तुल्यापूर्वक थोले—‘देवि ! यह क्या हुआ ? है हुआ ! जान पड़ता है परनोच्चर मुक्तपर कुपित हो गये हैं । अब क्या कहें ? कहाँ जाऊँ ? मुझे हत्या लग गयी ।’

इसी समय ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ गौतमको देखे और दुर्दशानांदारा अहल्याको पीड़ित करने लगे । उन्हें हुर्मुदि शिथ्र और पुत्र भी गौतमको वारंवार फढ़ाते और चिक्कारने लगे ।

ब्राह्मण बोले—‘अब तुम्हें अपना मुँह नहीं रखना चाहिये । यहाँसे जाओ, जाओ । गोहत्यारेया मुँह देखो । तत्काल व्यवनहित ज्ञान करना चाहिये । जबतक तुम ज्ञान आथममें रहेगे, तबतक अग्निदेव और पितॄ ज्ञान दिये हुए किसी भी हव्य-कव्यको ग्रहण नहीं करेंगे । इसलिये पापी गोहत्यारे ! तुम परिवारसहित यहाँसे अन्यत्र कहे जाये । विलम्ब न करो ।

सूतजी कहते हैं—‘ऐसा कहकर उन सबके अंतर्थरोसे मरना आरम्भ किया । वे गलियाँ देदेकर जाएं और अहल्याको सताने लगे । उन दुष्टोंके मरने और धमकनेपर गौतम बोले—‘मुनियो ! मैं यहाँसे अन्यत्र जाना रहूँगा’ ऐसा कहकर गौतम उस स्थानसे तत्काल निष्कर्ष ले और उन सबकी अज्ञानसे एक कोस दूर जाकर उन्होंने अपने लिये आथ्रम जनाया । वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणोंसे यह—‘जबतक तुम्हारे ऊपर हत्या लगी है, तबतक तुम्हें दूर यज्ञ-स्थानादि कर्म नहीं करना चाहिये । किसी भी दूर देवयज्ञ या पितॄयज्ञके अनुष्ठानका तुम्हें अधिकार नहीं है गया है ।’ मुनिवर गौतम उनके कथनानुसार किसी दूर एक पक्ष विताकर उस दुःखसे दुली ही बांधकर अपने मुनियोसे अपनी शुद्धिके लिये प्रार्थना करने लगे । उन्होंने दीनभावसे प्रार्थना करनेपर उन ब्राह्मणोंने कहा—‘तौम तुम अपने पापको प्रकट करते हुए तीन वार सारे हुए

परिकल्पना करें । किर लौटकर वहाँ एक महीनेतक बैठ करो । उनके बाद इम व्रजागिरिकी एक ऐसी एक परिकल्पना करनेके पश्चात् तुम्हारी शुद्धि होगी । अथवा वहाँ गङ्गाजीको ले आदर उन्होंके अलावे ज्ञान करें तथा एक करोड़ पार्थिव लिङ्ग यमापर भद्रादेवजीकी आराधना करो । किर गङ्गामें ज्ञान करके इस पर्वतदी यारह बार परिकल्पना करो । तत्पश्चात् ऐसी वर्द्धिक जलसे पार्थिव शिवलिङ्गको ज्ञान करनेपर तुम्हारा उद्धार होगा ।' उन श्रुतियोंके इस प्रकार कहनेपर

गौतमने 'यहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली । ये बोले—'मुनिवरो ! मैं आप श्रीमानोंकी आशासे यहाँ पार्थिवलूजन तथा व्रजागिरिकी परिकल्पना करूँगा ।' ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतमने उन पर्वतकी परिकल्पना करनेके पश्चात् पार्थिव लिङ्गोंका निर्माण करके उनका पूजन किया । साथी अहल्याने भी साथ रहकर वह रक्त कुछ किया । उन समय शिख्य-प्रदीप्ति उन श्रेष्ठोंकी सेवा करते थे ।  
(अध्याय २४-२५)

**पर्वीसहित गौतमकी आराधनासे संतुष्ट हो भगवान् शिवका उन्हें दर्शन देना, गङ्गाको वहाँ स्थापित करके स्थर्य भी स्थिर होना, देवताओंका वहाँ वृहस्पतिके सिंहराशिपर आनेपर गङ्गाजीके विशेष माहात्म्यको शीकार करना, गङ्गाका गौतमी (या गोदावरी) नामसे और शिवका व्रम्बक ज्योतिलिङ्गके नामसे विख्यात होना तथा इन दोनोंकी महिमा**

मृतजी कहते हैं—पर्वीसहित गौतम श्रुतिके इस प्रकार आराधना करनेपर संतुष्ट हुए भगवान् शिव वहाँ पिया और प्रमथगणोंके साथ प्रकट हो गये । तदनन्तर प्रसन्न हुए हुम्मनिधान शंखसे कहा—'मदामुझे ! मैं तुम्हारी उत्तम भक्तिसे बहुत प्रभवत हूँ । तुम कोई वर माँगो ।' उस समय महात्मा शश्वत् तुम्हार ल्यग्रो देवकर अनन्दित हुए श्रीपांडे भगिनीयने शंखरो प्रधान करके उसको सुनते ही । उसी सुनि और प्रगाम करके श्रेष्ठो दाय जंघकर वी उनके सामने आये हो गये और देख—'देव ! दुर्दि

भगवान् शिवने कहा—मुझे ! तुम धन्य हो, दृतकुल हो और नदा ही निषार हो । इन दुर्घटने तुम्हारे साथ छल किया । जगत्के लोग तुम्हारे दर्शनसे पारदृत हो जाने हैं । किर सदा मेरी ज़किमें तन्नर रहनेवाले तुम क्या कारी हो ? मुझे ! जिन दुर्घटनाओंने तुम्हार अस्त्वाचार किया है, वे ही कारी, दुराजारी और दूरार हैं । उन्हें दर्शनसे दूरर लोग पार्थिष्ठ हो जाते हैं । वे अद्यक्षसव कुलम हैं । उनका कभी उदार नहीं हो जाता ।

महादेवलीली यह बात महावर भर्तुर्पि श्रीमद् शत्रुघ्नीम

पाँच आदमियोंने जो कह दिया था कर दिया। वह अन्यथा नहीं हो सकता। अतः जो हो गया, सो रहे। देवेश। यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गङ्गा प्रदान कीजिये और ऐसा करके लोकका महान् उपकार कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है, नमस्कार है।

यों कहकर गौतमने देवेशर भगवान् शिवके दोनों चरणारविन्द पकड़ लिये और लोकदिती कामनासे उन्हें नमस्कार किया। तब शंकरदेवने पृथिवी और स्वर्गके सारभूत जलको निकालकर, जिसे उन्होंने पहलेसे ही रख छोड़ा था और विवाहमें गङ्गाजीके दिये हुए जलमें जो कुछ शेष रह गया था, वह सब भक्तवत्सल शम्भुने उन गौतम मुनितों दे दिया। उस समय गङ्गाजीका जल परम सुन्दर छीका रूप धारण करके वहाँ लड़ा हुआ। तब मुनिवर गौतमने उन गङ्गाजीकी स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया।

**गौतम बोले—गङ्गे !** तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो। तुमने सम्पूर्ण भुवनको पवित्र किया है। इसलिये निश्चित रूपसे नरकमें गिरते हुए मुझ गौतमको पवित्र करो।

**तदनन्तर शिवजीने गङ्गासे कहा—देवि !** तुम मुनिको पवित्र करो और तुरंत बापस न जाकर वैवस्वत मनुके अष्टाईसवें कलियुगतक यहाँ रहो।

**गङ्गाने कहा—महेश्वर !** यदि मेरा माहात्म्य सब नदियोंसे अधिक हो और अम्बिका तथा गणोंके साथ आप भी यहाँ रहें, तभी मैं इस घरातलपर रहूँगी।

**गङ्गाजीकी** यह बात सुनकर भगवान् शिव बोले—**गङ्गे !** तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो। मैं तुमसे अलग नहीं हूँ, तथापि मैं तुम्हारे कथनानुसार यहाँ स्थित रहूँगा। तुम भी स्थित होओ।

अपने स्वामी परमेश्वर शिवकी यह बात सुनकर गङ्गाने मन-ही-मन प्रसन्न हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसी समय देवता, प्राचीन ऋषि, अनेक उत्तम तीर्थ और नाना प्रकारके क्षेत्र वहाँ आ पहुँचे। उन सबने बड़े आदरसे जय-जयकार करते हुए गौतम, गङ्गा तथा गिरिशायी शिवका पूजन किया। तदनन्तर उन सब देवताओंने भस्तक कुका हाथ जोड़कर उन बड़की प्रसन्नतापूर्वक स्तुति की। उस समय प्रसन्न हुई गङ्गा और गिरीशने उनसे कहा—‘श्रेष्ठ देवताओ ! वर माँगो। तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे वह वर इम हुम्हें देंगे।’

**देवता बोले—देवेश !** यदि वाय सुनूँ है श्रे सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे। यदि आप भी प्रसन्न हैं तो त्वाम व्य ननुधूके प्रिय करनेके लिये आपलोग कृपापूर्वक वहाँ नियम करें।

**गङ्गा बोली—देवताओ !** किर तो स्वर्ग प्रिय करते लिये आपलोग स्वयं ही वहाँ क्यों नहीं रहे ! मैं ते गौतमजीके पापका प्रशालन करके जैसे आयी हूँ, उसे व्य लौट जाऊँगी। आपके समाजमें वहाँ मेरी कोई विरोध नहीं जाती है, इस बातका पता कैसे लगे ! यदि आप यां तें विश्वासा लिख कर सकें तो मैं अवश्य वहाँ दूँगी—जै संशय नहीं है।



**सब देवताओंने कहा—सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे !** परम सुदृढ़ वृहस्पतिजी जय-जय सिंह राशिपर शिव हैं तब-तब हम सब लोग यहाँ आया करेंगे, इसमें संयम वर्ती ग्यारह वर्षोंतक लोगोंका जो पातक यहाँ प्रक्षालित होगा, इस मलिन हो जानेपर हम उसी पापराशिको धोनेके लिये इन पूर्वक तुम्हारे पास आयेंगे। हमने यह सर्वथा स्वेच्छा कही है। सरिद्वारे। महादेवि! अतः तुमको और भगवान् जय-जय समस्त लोकोंपर अनुग्रह तथा दूसारा प्रिय करनेके लिये नित्य निवास करना चाहिये। गुरु जवतक लिह गिरिशी तभीतक हम यहाँ निवास करेंगे। उस समय तुम्हारे चिकालस्नान और भगवान् शंकरका दर्शन करके ही होंगे। किर तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने सानको लैटेंगे।

सूतजी कहते हैं—इन प्रकार उम देवताओं तथा भद्रिय नौतमकं प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर और उरिताओंमें प्रेरु गङ्गा दंतो वही सित हो गये । वहाँकी गङ्गा गौतमी (गोदावरी) नामसे विद्युत हुई और भगवान् शिवका ज्योतिर्मय लिङ्ग अम्बक कहलाया । यह ज्योतिलिङ्ग महान् पातकोंका नाश करनेवाला है । उसी दिनसे लेकर जब-जब वृद्धत्वमिंद्र गणियमें तिन होते हैं, तब-तब नव तीर्थ, क्षेत्र, देवता, पुष्टि आदि सरोकर, गङ्गा आदि नदियाँ तथा श्रीविष्णु आदि देवगण अवश्य ही गौतमीके तटपर पवारते और वास करते हैं । वे सब ज्यवतक गौतमीके किनारे रहते हैं, तबतक आने सानपर उमका कोई कल नहीं होता । जब वे अपने

प्रदेशमें लौट आते हैं, तभी वहाँ इनके सेवनका कल मिलता है । यह अम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिलिङ्ग गौतमीके तटपर स्थित है और वडे-वडे पातकोंका नाश करनेवाला है । जो भक्तिभावसे इस अम्बक लिङ्गका दर्शन, पूजन, लवन एवं वन्दना करता है, वह समल्ल पासेसे मुक्त हो जाता है । गौतमके द्वारा पूजित अम्बक नामक ज्योतिलिङ्ग इन लोकोंमें समस्त अभीष्टोंको देनेवाला तथा परलोकमें उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है । सुनीधरो ! इन प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया । अब और क्या सुनामा चाहते हो, कहो । मैं उसे भी तुम्हें बताऊंगा, इसमें संशय नहीं है । (अध्याय २६)

### वैद्यनाथेश्वर ज्योतिलिङ्गके प्राकृत्यकी कथा तथा महिमा

सूतजी कहते हैं—अब मैं वैद्यनाथेश्वर ज्योतिलिङ्गका नामी मादात्म्य बताऊंगा । मुनो ! राक्षसराज रायग जो वहा निमानी श्रीर अपने अहंकारसे प्रकट करनेवाला था, उम पर्वते केलासपर भक्तिभावसे भगवान् शिवकी आराधना रखा था । कुछ कालतक आराधना करनेपर जब महादेवजी उप गते हुए, तब यह शिवी प्रक्षमताके लिये दूसरा तप से दमा । पुलत्वयुक्तमन्दन श्रीमान् रायगने तिक्ष्णके स्वानु इमान्दर पर्वते दधिग पुरोने भरे हुए वगने पुण्यीगर रुचूव रथ यात्रा कोशर उगमे अग्निकी शरणा की और उनके पाव ही भगवान् शिवके लाभिन करने दूसरे रूप दिया । श्रीधर दृश्यमें यह पांच अग्निरोहि योनमें ईठता,

का कुराप्रसाद पाकर रासत रायगने नलमस्तान दो दृष्टि जोङ्कर उनसे कहा—“देवेश्वर ! प्रक्षम शेषये । मैं आपते लक्ष्मीसे ले चलता हूँ । आप मेरे इन मनोरथों रक्षल कीजिये । मैं आपकी शरणमें आया हूँ ।”

रायगके ऐसा कदमेवर भगवान् रोकर वह महादेवी पद गये और अग्नमने दृश्यर योग्य—“समर्पय ! मेरी आराधित वात मुनो । तुम मेरे इन उत्तम लिङ्गसे भावितमासे अपने परकों के ज्ञातो । परतु जब तुम इसे कही भूमितर स्वर देंगे, तब यह वही नुस्खिर हो जायगा, इसमें लोद नहीं है । अब तुमहीं जैसी इच्छा हो, देवा करो ।”

हुआ, जो सत्पुर्घोषोंको भोग और मोथ देनेवाला है। वह दिन, उत्तम एवं श्रेष्ठ ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन और पूजनसे भी यमस्तु पापोंको हर लेता है और मोक्षकी प्राप्ति कराता है। वह शिव-लिङ्ग जब सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये नहीं दिता है गया, तब रावण भगवान् शिवका परम उत्तम वर पाकर आने घरको चला गया। वहाँ जाकर उग्र महान् अगुरु वहें वहाँ साथ अपनी प्रिया मन्दोदरीको सारी वासि कह सुनाया। इन्हें आदि सम्पूर्ण देवताओं और निर्मल मुनियोंने तब यह समाचार सुना, तब वे परस्पर रालाह करके वहाँ आये। उन सबका गम भगवान् शिवमें लगा हुआ था। उन गम देवताओंने उस समय वहाँ वडी प्रसन्नताके साथ शिवका विशेष पूजन किया।



वहाँ भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन करके देवताओंने उस

शिवालहाँ मिथिला स्थानमा की ओर उसका दैवतपत्र नम रापर उसकी भवता और सूचन करके वे सर्वज्ञ बोले गये।

**भ्रुपियोंने पूछा—**सूतजी ! जब वह शिवलिङ्ग से दिता है गया तथा रावण अपने घरको चला गया तब कौन कौन-सी भट्टा भवित हुई—यह आप बताइये।

**सूतजीने कहा—**ब्राह्मणो ! भगवान् शिवका प्रत्यक्ष वर पाकर महान् असुर रावण अपने घरको चला गया वहाँ उसने आनी प्रियासे सब वासि कहीं और वह अल्ल आनन्दता अनुभव करने लगा। इधर इस समाचारके तुल्य देवता नवरा गये कि पता नहीं वह देवदोही महाशृंग गम भगवान् शिवके वरदानसे वह वाकर क्या करेगा। उसे नारदजीको भेजा। नारदजीने जाकर रावणसे छह-शा कैलास पर्वतको उठाओ, तब पता लगेगा कि शिववेद शिव हुआ वरदान कहाँतक सफल हुआ। रावणजो वह बत नहीं गयी। उसने जाकर कैलासको उत्ताइ लिया। इसे छह-शा कैलास हिल उठा। तब गिरिजाके कहनेसे महारेणी रावणको वसंटी समझकर इस प्रकार शाय दिया।

**महादेवजी बोले—**रे रे दुष्ट भक्त हुँदिद्ध गम ! अपने वल्लभ इतना धमेंड न कर। तेरी इन मुजाहों धमेंड चूर करनेवाला बीर पुरुष शीम ही इस बाते अवशीर्ण होगा।

**सूतजी कहते हैं—**इस प्रकार वहाँ जो भजा हुआ उसे नारदजीने सुना। रावण भी प्रसन्न दिता है जैसे आ था, उसी तरह अपने घरको लौट गया। इस प्रश्न के बैद्यतायेश्वरका माहात्म्य बताया है। इसे बुननेवाले गुरु पाप भसा हो जाता है। (अध्याय २७-२८)

### नागेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका प्रादुर्भाव और उसकी महिमा

**सूतजी कहते हैं—**ब्राह्मणो ! अब मैं परमात्मा शिवके नागेश्वर नामक परम उत्तम ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाविका प्रसङ्ग सुनाऊँगा। दारुका नामसे प्रसिद्ध कोई राक्षसी थी, जो पार्वतीके वरदानसे सदा धमेंडमें भरी रहती थी। अत्यन्त बलवान् राक्षस दारुक उसका पति था। उसने वहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर वहाँ सत्पुरुषोंका संहार मचा रखा था। वह लोगोंके बज्ज और धर्मका नाश करता था। पश्चिम समुद्रके तटपर उसका एक बन था, जो सम्पूर्ण समुद्रियोंसे भरा रहता था। उस

वनका विस्तार सब ओरसे सोलह योजन था। दारुक जैसे विलासके लिये जहाँ जाती थी, वहाँ भूमि वृक्ष तथा अन्य उपकरणोंसे युक्त वह बन भी चला जाता था। देवी शंख उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको सौंप दिया था। अपने पतिके साथ इच्छानुसार उसमें विचरण करते राक्षस दारुक अपनी पक्षी दारुकाके साथ वहाँ रहने भय देता था। उससे पीड़ित हुई प्रजाने महर्षि और्वर्षी जाकर उसको अपना दुःख सुनाया। और वे

मन्दिर के निंदा सद्विचारी को यह शब्द दे दिया कि 'ये राजन यदि इष्टीर ग्राहियोंसे हिता का बद्धांका विकल्प करेंगे तो उच्ची गमन आनंद प्राप्ति करेंगे ।' देवताओंने जब यह शब्द कुर्ता, तब उन्होंने दुग्धनारी राजनीपर चढ़ाई कर दी । राजन धवरावे । यदि वे लड़ाईमें देवताओंके मारते तो मुनिके शास्त्रमें यह भर जाते हैं और यदि नहीं मारते तो पराजित होमर भूमि मर जाते हैं । उन अवस्थामें राजसी दावकाने कहा कि 'भवारीके वरदानसे मैं इन सरे बनको जहाँ चाहूँ, तो जा सकती हूँ ।' यो कहकर वह समस्त बनको ज्योन्ना-त्वा के आकार क्षुद्रमें जा गयी । राज्यमलोग इष्टीर न रहकर बलमें निर्भय रहने लगे और वहाँ प्राणियोंके पीड़ा देने लगे ।

एक बार बहुत सी नावें उपर आ निकली, जो मनुष्योंसे नहीं थीं । राजारोगि उनमें देखे कुएं सब लोगोंको पकड़ लिया और देखियोंते धोपकर कागगात्मे छाल दिया । वे उन्हें वारेवार भगवितों देने लगे । उनमें सुप्रिय नामसे प्रसिद्ध एक वरर था, जो उन दलन मरदार था । वह वहाँ सदाचारी, भल्म-ध्यानपारी तथा भगवान् विष्णु परम भक्त था । सुप्रिय मिथि पूजा किये विना भोजन नहीं करता था । वह स्वयं तो भोजन कृत नहरा ही था, बहुतसे उत्पन्ने साधियोंसे भी हुम्होंनी मिथि पूजा किया ही था । किंतु सब लोग ज्ञान विज्ञान आ और भद्रत्रीका ज्ञान करने लगे । सुप्रियसे हुम्हान् विज्ञान दर्शन भी होता था । दाढ़क राजनकरे बर ये ज्ञानसे पता आया, तब उन्हें ज्ञान सुप्रियसे ज्ञानाया । उनके जाती राज्यम सुप्रियको माटों दीड़े । उन राजन्योंसे आया तो उप्रियको जैव नामसे बातर हो गये, वह दौर प्रेमत्वे विषय हो गया और उनके नामीसा ज्ञान करने लगा ।

२५१ ऐदयपत्रि कहा—संक्षेप शब्द ! येरी रक्षा दीक्षिये ।  
ज्ञानाप्ती निर्विकल्प ! दुर्दिन्या भन्दुम्भल दिः । इसे  
१ दूर्दिन्ये रक्षद्ये । दिः । अर ज्ञान ते दीर लक्ष्मी । हे शक्ते ।

शम्भुने प्रसन्न हो स्वरं पशुपत्रन्न लेहर प्रधान-प्रधान रहउस्ते, उनके ऊरे उपकरणों तथा सेवकोंकी भी तक्षाल ही नष्ट कर दिया और उन दुश्मना शंकरने अपने भक्त सुप्रियकी रक्षा की । तत्प्रान् अद्वृन लीला करनेगले और लीलासे ही शरीर धारण करने वाले शम्भुने उन बनको यह वर दिया कि आजसे इस घनमें मदा व्रादाप, धनिय, धैश्य और शूद्र—इन चारों वर्गोंकी धर्मोक्ता पाऊन हो । यहाँ भेड़ मुनि निवान करे और तमेगुणी राज्य इसमें कभी न रहें । शिवपर्मके उपदेशह, प्रचारक और प्रवर्तक लोग इसमें निवास करें ।

सूतजी कहते हैं—इसी समय राजसी दावकाने दीन-चित्तसे देवी पार्वतीकी सुति की । देवी पार्वती प्रसन्न हो गई और योली—'क्षताओ, तेह क्षा कायं करूँ ।' उसने कहा—



पुत्रोंको पैदा करेंगी, वे सब मिलकर इस वनमें निवास करें, ऐसी मेरी इच्छा है।'

**शिव बोले**—प्रिये ! यदि तुम ऐसी वात कहती हो तो मेरा यह वचन सुनो । मैं भक्तोंका पालन करनेके लिये प्रयत्नता-पूर्वक इस वनमें रहूँगा । जो पुरुष यहाँ वर्णभर्मके नालजमें तत्पर हो प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह नवनर्ती राजा होगा । कलियुगके अन्त और सत्ययुगके आरम्भमें गद्यसेनका पुन धीरसेन राजाओंका भी राजा होगा । वह मेरा भक्त और अत्यन्त पराक्रमी होगा और यहाँ आकर मेरा दर्शन करेगा । दर्शन करते ही वह चक्रवर्ती सम्प्राट् हो जायगा ।

सूतजी कहते हैं—त्रादाणो ! इस प्रकार नामक लीलाएँ करनेवाले वे दमति परस्पर हाथयुक्त बाह्यवाह औ स्थाय वहाँ स्थित हो गये । ज्योतिर्लिङ्गस्वल्प महादेवजैशं नामेश्वर कहलाये और शिवा देवी नामेश्वरीके नामसे निश्च हुए । वे दोनों ही रात्मुखोंको प्रिय हैं ।

इस प्रकार ज्योतिर्लिङ्गके सामी नामेश्वर नामक लीलाएँ ज्योतिर्लिङ्गके लामें प्रकट हुए । वे तीनों लोरेंटी लूप कागनामें हो सदा पूर्ण करनेवाले हैं । जो प्रतिदिन अत्यन्त नामेश्वरके प्रादुर्भाविता यह प्रवरद्ध मुनता है, वह वृद्धिमाला मध्यात्मोंका नाश करनेवाले समूर्ण मनोर्योगी प्राप्त रहता है । (अध्याय २१-३)

### रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाव तथा माहात्म्यका वर्णन

सूतजी कहते हैं—शृणियो ! अब मैं यह बता रहा हूँ कि रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग पहले किस प्रकार प्रकट हुआ । इस प्रसङ्गको तुम आदरपूर्वक सुनो । भगवान् विष्णुके रामवतारमें जब रावण सीताजीको हरकर लङ्घामें ले गया, तब सुमीत्रके साथ अठारह पञ्च वानरसेना लेकर श्रीराम समुद्रतटपर आये । वहाँ वे विचार करने लगे कि कैसे हम समुद्रको पार करेंगे और किस प्रकार रावणको जीतेंगे । इतनेमें ही श्रीरामको प्यास लगी । उन्होंने जल माँगा और वानर मीठा जल ले आये । श्रीरामने प्रसन्न होकर वह जल ले लिया । तबतक उन्हें स्मरण हो आया कि मैंने अपने स्वामी भगवान् शंकरका दर्शन तो किया ही नहीं । फिर वह जल कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ? ऐसा कहकर उन्होंने उस जलको नहीं पीया । जल रख देनेके पश्चात् रुदुनन्दनने पार्श्व-पूजन किया । आवाहन आदि सोलह उपचारोंको प्रस्तुत करके विधिपूर्वक वडे प्रेमसे शंकरजीकी अर्चना की । प्रणाम तथा दिव्य स्तोत्रोद्धारा यत्नपूर्वक शंकरजीको संतुष्ट करके श्रीरामने भक्तिभावसे उनसे प्रार्थना की ।

**श्रीराम बोले**—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मेरे स्वामी देव महेश्वर । आपको मेरी सहायता करनी चाहिये । आपके सहयोगके बिना मेरे कार्यकी सिद्धि अत्यन्त कठिन है । रावण भी आपका ही भक्त है । वह सबके लिये सर्वथा दुर्जय है । परंतु आपके दिये हुए वरदानसे वह सदा दर्पमें भरा रहता है । वह विभुवनविजयी महावीर है । इधर मैं भी आपका दास हूँ, सर्वथा आपके अधीन रहनेवाला हूँ ।

सदाशिव ! यह विचारकर आपको मेरे प्रति पश्चात् लूप चाहिये ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रार्थना और वात्स नमस्कार करके उन्होंने उच्चस्वरसे ज्य शंख वा ज्ञि इत्यादिका उट्ठोण करते हुए शिवका स्थन किया । तो उनके मन्त्रके जप और ध्यानमें तत्पर हो गये । तदपापुः पूजन करके वे स्वामीके आगे नाचने लगे । उस उपाय उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो रहा था, फिर उन्होंने किंतु संतोषके लिये गाल बजाकर अवक शब्द किया । उस समय भगवान् शंकर उनपर बहुत प्रबल हुए और ज्योतिर्मय महेश्वर वामाङ्गभूता पार्वती तथा पार्श्वमें साथ शास्रोक्त निर्मल रूप धारण करके तल्काल वहाँ हो गये । श्रीरामकी भक्तिसे संतुष्टचित्त होकर महेश्वर उनसे कहा—‘श्रीराम ! तुम्हारा कल्पण हो, वर मानो ।’ उस समय उनका रूप देखकर वहाँ उपस्थित हुए लूप पवित्र हो गये । शिवधर्मपरायण श्रीरामजीने संयुक्त पूजन किया । फिर भाँति-भाँतिकी सुति एवं प्रणाम उन्होंने भगवान् शिवसे लङ्घामें रावणके साथ होनेवाले अपने लिये विजयकी प्रार्थना की । तब शंख वा प्रसन्न हुए महेश्वरने कहा—‘महाराज ! तुम्हारी वर एवं उपाय भगवान् शिवके दिये हुए विजयसूचक वर एवं उपाय आज्ञाको पाकर श्रीरामने नतमस्तक हो हाथ बोला । पुनः प्रार्थना की ।



धौराम योले—मेरे स्वामी शंकर ! यदि आप क्षमुष्ट हैं

तो झगड़के लोगोंने परिव्र रखने तथा दूसरोंसी मदाई करनेहे  
हिये सदा वधू निवार करे ।

सूतजी कहते हैं— श्रीएनके ऐगा बद्देनर भगवान्  
यिव कहाँ ज्योतिर्लिङ्गके हनमें स्थित हो गये । तीनों लोकोंमें  
रामेश्वरके नामसे उनहीं प्रसिद्ध हुई । उनके प्रभासे ही  
अपार समुद्रहो आवान पार करके श्रीरामने रामन आदि  
रामांशु शीघ्र ही संदर किया और आगी प्रिया लीलामें  
प्राप्त कर लिया । तदसे इस भूतल्लभर रामेश्वरी अद्भुत  
महिमाना प्रसार हुआ । भगवान् रामेश्वर सदा भैरव भौर  
मोक्ष देनेवाले तथा भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं । जो  
दिव्य गङ्गाजलसे रामेश्वर शिवके भक्तिशूर्वक स्नान करता  
है, वह जीवन्मुक्त ही है । इच्छ संसारमें देवदुर्लभ समस्त  
भोगांका उपभोग करके अनन्तमें उत्तम शन पात्तर यदि निधय ही  
केवल्य मोक्षयोगी प्राप्त कर लेता है । इस प्रसार मेंने तुमल्लेगोंसे  
भगवान् शिवके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग कर्मन  
किया, जो अपनी महिमा सुननेवालोंके समस्त पापोंसे अमरण  
करनेवाला है । ( अस्त्राय ३१ )

( अध्याय ३१ )

धुशमकी यिनभक्तिसे उसके मरे हुए पुत्रका जीवित होना, धुशमेवर शिवका  
प्रादूर्भाव तथा उनकी महिमाकृत वर्णन-

सुतनी कहते हैं—अब मैं पुराना नाम का ज्योतिर्लिङ्ग के  
सद्गुरोंसम और उसके मातृत्वका पर्याप्त हूँगा। मुनियो !  
पर देवर कुमा ! इवय दियामे एह ऐसु रखत है  
जिस नाम सेवारि है। यद ऐसमें अद्वृत तथा निष्ठा  
एवं धोरणी बलत है। उसीके निष्ठ केर भरद्वाहुलमें  
उस सुर्यो नामक ब्रह्मसम वाणीम रहते हैं। उन सी प्रिय  
जीव नाम उरेता था, वह सदा शिरपरि धन्वन्तरि  
पर रहती थी, एवं नाम-नाममें कुछत थी और नदा  
प्राणी सेवामें व्यापी रहती थी। इव ऐसु सुर्यो भी दानवों  
की विजयमें ब्रह्मसम रहता था। वे वैद्यतिक भरद्वाहुलमें उत्तर  
प्रदेशमें राजा होते हैं। उन्होंने ब्रह्म सेवा के  
प्रति विश्वास रखता है। वे वैद्यतिक भरद्वाहुलमें  
हैं वैष्णव तथा विश्वामित्र विश्वामित्र हैं। वे वैद्यतिक भरद्वाहुलमें  
हैं वैष्णव तथा विश्वामित्र हैं। वैद्यतिक भरद्वाहुलमें  
हैं वैष्णव तथा विश्वामित्र हैं। वैद्यतिक भरद्वाहुलमें  
हैं वैष्णव तथा विश्वामित्र हैं।

१८४५ का दोसरी सीधे के दूर भवति या इन्हें

ब्राह्मण से तो हुस्त नहीं होता था, परन्तु उनसी दमी कटूत हुयी रहती थी। पश्चेत् और दूसे लेग भी उसे लगा मार्य करते थे। वह पर्वति बारवार पुराने लिये प्रार्थना करती थी। पर्वत उसी शक्तिरदेवा द्वारा मार्पित हो परतु उनका ज्ञा नहीं आजित हो। अन्तर्गत ब्राह्मण हुए उपर भी किया अर्थ वह गलत हो चुका। वह प्राप्तिर्वाने अवश्यक हुयी हो रहा छ वरन् जल्दी लौट युधिष्ठिर परिषद् दृश्य विकर नग दिया। विकर्मी यह सुनकर उससे ब्रह्मणा ति इन गम्भीर के कृष्ण दीदिये खार रह गयी हो। यह दृष्टि युग्म हो गया, यह दृष्टि यह दृष्टि रासी बने गये हो। विकर्मी गम्भीर दिया हो विकर्मी करि यह दृष्टि रासी रहे। विकर्मी देवा जन्मे आये। मृदिता ये लिये एक दृष्टि बनकर रहे। युधिष्ठिर कर्मी किया दृष्टि विकर्मी के विकर्मी दृष्टि रासी रहे। विकर्मी दृष्टि रासी रहे। विकर्मी दृष्टि रासी रहे।

2015-01-01 2015-01-02 2015-01-03

और सद्गुणसम्बन्ध पुत्र हुआ । शुश्रावा कुछ मान चढ़ा । इससे सुदेहके मनमें डाह पैदा हो गयी । रामवार उस पुत्रका विवाद हुआ । पुत्रवधू घरमें आ गयी । अब तो वह और भी जलने लगी—उसकी धुंदि धृष्ट हो गयी और एक दिन उसने रातमें सोते हुए पुत्रको दुरेसे उठाकर शरीरके दुकड़े-दुकड़े करके मार डाला और कटे हुए अंगोंसे उसी तालाबमें ले जाकर डाल दिया, जहाँ शुश्रा प्रतिदिन पार्थिव लिङ्गोंका विगर्जन करती थी । पुत्रके अंगोंसे उस तालाबमें केककर वह लौट आयी और घरमें सुखपूर्वक लो गयी । शुश्रा सबैरे उठकर प्रतिदिनका पूजनादि कर्म करने लगी । श्रेष्ठ त्राहण सुधर्मा स्वयं भी नित्यकर्मिं लग गये । इसी समय उनकी ज्येष्ठ पत्नी सुदेहा भी उठी और वह आनन्दसे घरके काम-काज करने लगी; क्योंकि उसके दृश्यमें पहले जो ईर्ष्याकी आग जलती थी, वह अब बुझ गयी थी । प्रत्यक्षाल जब बहुने उठकर पतिकी शर्याको देखा तो वह स्थूलसे भीगीं दिखायी दी और उसपर शरीरके कुछ दुकड़े दृष्टिगोचर हुए, इससे उसको बड़ा दुःख हुआ । उसने सास ( शुश्रा ) के पास जाकर निवेदन किया—“तत्त्वम व्रतका पालन करनेवाली आये ! आपके पुत्र कहाँ गये ? उनकी शर्या रक्तसे भीगी हुई है और उसपर शरीरके कुछ दुकड़े दिखायी देते हैं । हाय ! मैं मारी गयी ! किसने यह दुष्ट कर्म किया है ?” ऐसा कहकर वह बेटेकी जिय पत्नी भौति-भौतिसे करुण विलाप करती हुई रोने लगी । सुधर्माकी बड़ी पत्नी सुदेहा भी उस समय “हाय ! मैं मारी गयी !” ऐसा कहकर दुःखमें हँव गयी । उसने ऊपरसे तो दुःख किया, किंतु मन-ही-मन वह कर्षसे भरी हुई थी ! शुश्रा भी उस समय उस वधूके दुःखको सुनकर अपने नित्य पार्थिव-पूजनके व्रतसे विचलित नहीं हुई । उसका मन बेटेको देखनेके लिये तनिक भी उत्सुक नहीं हुआ । उसके पतिकी भी ऐसी ही अवस्था थी । जबतक नित्य-नियम पूरा नहीं हुआ, तबतक उन्हें दूसरी किसी बातकी चिन्ता नहीं हुई । दोपहरको पूजन समाप्त होनेपर शुश्रावे अपने पुत्रकी भयंकर शर्यापर दृष्टिपात किया, तथापि उसने मनमें किंचन्मात्र भी दुःख नहीं माना । वह सोचने लगी—“जिन्होंने यह बेटा दिया था, वे ही इसकी रक्षा करेंगे । वे भक्तप्रिय कहलाते हैं, कालके भी काल हैं और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं । एकमात्र वे प्रभु सर्वेश्वर शम्भु ही हमारे रक्षक हैं । वे माला गूँथनेवाले पुरुषकी झौंति जिनको जोड़ते हैं, उनको अलग भी करते हैं ।

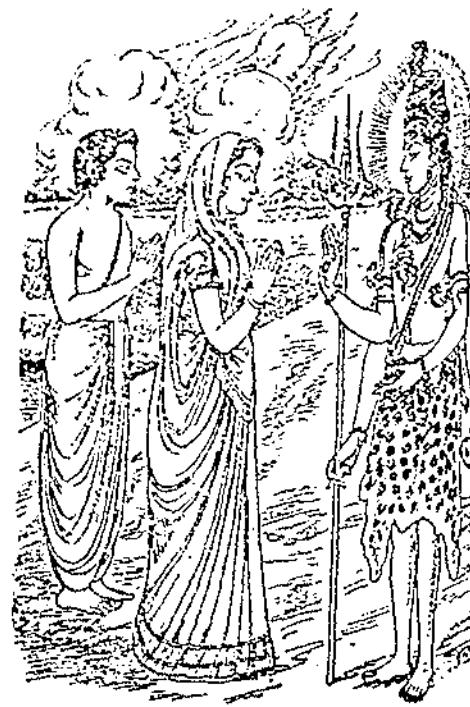
अतः अब मेरे निन्ता करनेहो क्या होगा ॥” इस तब्दीलिया करके उगने विद्युके भरोसे धृवं धारण किया और उस शुश्रावे अनुभव नहीं किया । वह पूर्ववत् पार्थिव विद्युतेवें सेवक स्वल्पनित्यसे विद्युके नामांका उचाण छोड़ दी हुई उस तालाबके किनारे गयी । उन पार्थिव विद्युतेवें उसके धारक्षर जब वह लीटो लगी तो उसे अमा पुरुषे तालाबके किनार सदा दिलार्या दिया ।

सूतजी कहते हैं—त्रासणो ! उस समय क्यों आ पुत्रको जीवित देखाकर उसकी माता शुश्रावे न तोहरे हुए और न विगाद । वह पूर्ववत् स्वल्प बनी रही । इसी से उसपर रुक्ष हुए, ज्योतिःस्वल्प महेश्वर विद्युत शुश्रावे प्रकट हो गये ।

शिव बोले—मुमुक्षि ! मैं तुमपर प्रचल हूँ । मांगो । तेरी बुद्धि सौतने इस बच्चेको मार डाला था । मैं उसे विश्वलसे मालंगा ।

सूतजी कहते हैं—तब शुश्रावे विद्युते प्रणाम ॥ उस समय यह वर मांगा—“नाय ! यह सुदेहा मेरी बड़ी दैर्य, अतः आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥”

शिव बोले—उसने तो बड़ा भारी अवकाश दिया तुम उसपर उपकार करों करती हो ? दुष्ट कर्म ज्ञाने सुदेहा तो मार डालनेके ही बोध है ।



पुरुषानं कहा—ऐ ! आके दर्शनमात्रसे पातक नहीं टहड़ा। इन सभ्य अपने दर्शन छके उच्चता पाए भल हो गय। जो अपनार करनेवालेहर भी उपकार करता है, उनके दर्शनमात्रसे पाए चहुत दूर भग जाता है। \* अभी ! इन अद्भुत भगवद्गीता मेंने मुझ सभ्या है। इसलिये मदधित ! विनो ऐता कुकर्व किया है वही करो मैं ऐता विनो कर्त ( मुते तो बुण करनेवालेहर भी भग दी सकता है )।

स्मृतजी कहते हैं—पुरुषकि ऐता करनेवर दयामित्यु कामालक्ष्य मंहेहर और भी प्रवन्ध हुए तथा इस प्रकार योहे—“पुरुष ! तुम योहे और भी पर गौणों। मैं तुम्हारे लिये द्वितीय भगवत् भगवत् कर्त्ता तुम्हारे इस भक्तिसे और निकरणसे सम्भवते मैं बहुत प्रसन्न हूँ।”

भगवान् विष्णुकी जाति मुनकर पुरुषा योही—अभी ! यदि आप मर देना चाहते हैं तो लोगोंकी सर्वांह लिये सदा वही भिन्नता विक्षिये और मेरे नामसे ही आपमी खमति हो। तब मंहेहर विष्णु भवन्तु प्रलक्ष्य होवार कहा—“वे तुम्हारे ही नामसे पुरुषकर करवता हुआ सदा वहीं नियात करेगा और अर्थ दिये करवायेन लंकेवा।” ये पर ज्ञोतिलिङ्ग कुनेहर नामसे प्रभिद्वय है। यदि तुम्हारे विष्णुकी त आलय से नह वैय लक्षिये इम वै लक्षी लेहोमें भिन्नता नामसे विनिधि हो। यदि संगोत्र सदा दर्शनमात्रसे सर्वांह भभीक्ष-

का देनेवाल हो। मुझे ! तुम्हारे नवमें हो चोलाली एक सी एक पीढ़ियोंतक ऐसे ही ब्रेड युव उसल दोगे, इसमें संगम नहीं है। वे सवन्नेगव मुद्दरी की उत्तम भन और पूर्ण आयुषे उम्मन्त्र होंगे, ननुर और विदान दोगे, उदार तथा भोग और मोदवलभी कल पर्नेके अधिकारी होंगे। एक सी एक पीढ़ियोंतक मधी पूर्ण गुणविं वडे-चटे दोगे। तुम्हारे वेशध ऐसा विस्तार वज्ञा शामाजाक होगा।”

ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वही ज्ञोतिलिङ्गके रूपमें दिव्य हो गये। उनकी पुरुषेश नामसे प्रभिद्वय हुई और उस स्फेदालक्ष्य नाम विवाल्य हो गय। मुधर्मा, पुरुषा और मुदेदा—तीनोंने आकर तत्त्वाल ही उस विष्णुकी एक सी एक दर्शिगारत्वं शरिकमा ची। एका चरने परस्तर मिलकर मनका मेड पूर करके वे तथा वहों वहे मुलाया भगुभ्या करने लगे। पुराणे चीरित देवत मुदेदा बहुत लज्जित हुई और पति तथा पुरुषाले धमग्राह्यना तरसे उतने भरने पारने विवारजके लिये प्राप्त भित्त किया। मुक्तीश्वरो। इस प्रकार वह पुरुषभरलिङ्ग प्राप्त हुआ। उसमध्य दर्शन और एकन चरनेसे मदा मुखधे उच्च होती है। जात्रों ! इस तरह मैंने तुम्हें शाहद ज्ञोतिलिङ्गके प्रदिवा बतायी। ये नवी विष्णु तमांग भगवान्द्वये पूर्व काम भेजा और मोत देवेवांड है। ये इन ज्ञोतिलिङ्गते छापे पटला और मूला है, नद सद वासी मूल हो भजता ताजा भेज और मोत भाला है।

( अध्याय १२-३३ )

### दादश ज्ञोतिलिङ्गके मालालन्त्री समाप्ति

गंगाजीकी भाराधनासे भगवान् विष्णुते गुदयीन चक्रकी प्राप्ति देवा

उपके द्वारा देव्योंका संदार

उन महावली और पराक्रमी देवत्योंसे पीकित हो रेनांतोंने देवरक्षक भगवान् विष्णुसे अपना सारा दुःख कहा । तब श्रीहरि कैलासपर जाकर भगवान् शिवजी विधिरूपक आदाना करने लगे । वे हजार गामांसे शिवजी स्तुति करते तथा प्रत्येक नामपर एक कमल चढ़ाते थे । तब भगवान् शंकरने विष्णुके भक्तिभावकी परीक्षा करनेहो लिये उनके लाये हुए एक हजार कमलोंमेंसे एकको छिपा दिया । शिवजी गायके जारण विद्युत हुई इस अद्भुत घटनाका भगवान् विष्णुको पता नहीं लगा । उन्होंने एक फूल कम जानकर उसकी लोज आरम्भ की । दृढ़तारूपक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीहरिने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये उस एक फूलकी प्राप्तिके उद्देश्यसे सारी पृथ्वीपर भ्रमण किया । परंतु कहीं भी उन्हें वह फूल नहीं मिला । तब विशुद्धचेता विष्णुने एक फूलकी पूर्तिके लिये अपने कमलसदृश एक नेत्रको ही निकालकर चढ़ा दिया । यह देख सकका दुःख दूर करनेवाले भगवान् शंकर वडे प्रसन्न हुए और वहीं उनके सामने प्रकट हो गये । प्रकट होकर वे श्रीहरिसे बोले—हरे ! मैं तुमपर वहुत प्रमद हूँ । तुम इच्छानुसार वर माँगो । मैं तुम्हें मनोवाचित वस्तु देंगा । तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ॥

चिष्णु योले—नाथ ! आपके सामने मुझे क्या कहना है । आप अन्तर्यामी हैं, अतः सब कुछ जानते हैं, तथापि आपके अदेशका गैरव रखनेके लिये कहता हूँ । दैत्योंने सारे जगात्को पीड़ित कर रखा है । सदाशिव ! हमलोगोंको सुख नहीं मिलता । स्वामिन् ! मेरे अपना अछ-शब्द दैत्योंके कष्टमें काम नहीं देता । परमेश्वर ! इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ ।

सूतजी कहते हैं—श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर  
देवाधिदेव महेश्वरने तेजोराशिमय अपना सुदर्शन चक्र उन्हें  
दें दिया। उसको पाल्पत्र भगवान् विष्णुने उन समस्त प्रवल



दैत्योंका उस चक्रके द्वारा बिना परिश्रमके ही संहार हर थाए।  
इससे सारा जगत् स्वत्य हो गया। देवताओंके भी मुख बिज  
और अपने लिये उस आयुधको पाकर भगवान् विष्णु ने  
अत्यन्त प्रसन्न एवं परम सुखी हो गये।

**ऋग्यियोंने पूछा**—शिवके वे सहस्र नाम जैवत्ते हैं, यताइये, जिनसे संतुष्ट होकर महेश्वरने श्रीहरिये अप्रदान किया था ? उन नामोंके माहात्म्यका भी वर्णन दीजिए। श्रीविष्णुके ऊपर शंकरजीकी जैसी कृपा हुई थी, उस यथार्थरूपसे प्रतिपादन कीजिये ।

शुद्ध अन्तःकरणयाले उन मुनियोंकी वैती है  
सुनकर सूतने शिवके चरणारबिन्दोंका चिन्तन है  
इस प्रकार कहना आरम्भ किया। (धर्माण ॥)

भगवान् विष्णुद्वारा पठित शिवसहस्रनाम-स्तोत्र

संक्षिप्त उत्तरायण

विष्णुर्वाच

श्रूयत्वं भो क्षमित्रेष्ठा येन तुष्टे महेश्वरः ।  
तदहं कथयामय शैवं चामस्त्रवक्त्रम् ॥ १ ॥

सूतजी बोले—मुनियदे ! सुनो, जिससे महेश्वर संतुष्ट होते हैं, वह शिवसहस्रनाम-स्तोत्र आज तुम सत्रको मुना रखा है ॥ १ ॥

शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः ।  
 अधिगम्यः सदाचारः शर्वः शशसुमहेषः ॥१॥  
 भगवान् विष्णुने कहा—१ शिवः—  
 २ हरः—भक्तोंके पाप-ताप हर लेनेवाले ३ मृडः—  
 ४ रुद्रः—दुःख दूर करनेवाले, ५ पुष्करः—आश्रित

१ वृष्टिग्रेयमः—दुष्के मुमान लिले हुए नेववारे, ७ अर्थि-  
ग्रेयः—प्रार्थिनींधे प्राप्त होनेवाले, ८ सदाचारः—अद्वैत आचरण-  
नार्थः, ९ शर्वः—संशुरकारी, १० शम्भुः—कल्पाण-निषेतन,  
११ बहेधरः—महान् ईश्वर ॥ २ ॥

वन्द्राणीद्वन्द्रमातिविश्वं विष्मरेधरः ।  
वेदान्तमात्रासंदोहः वशली नीललोहितः ॥ ३ ॥

१२ कन्द्राणीडः—वन्द्रमाको दियेहृष्टके रूपमें भारण  
करनेवाले, १३ वन्द्रमालिः—विरपर वन्द्रमाका शुकुट भारण  
करनेवाले, १४ विश्वम्—वर्वस्त्वलय, १५ विष्मरेधरः—विश्व-  
मा भरण-नेपत अरनेवाले श्रीविष्णुके भी ईश्वर, १६ वेदान्त-  
दारासंदोहः—वेदान्तके वारतन्त्र विद्यानन्दमय व्रद्धकी लक्ष्मी  
दूर्वि, १७ कणाली—त्रृष्णमें रुपाल भारण करनेवाले, १८  
नीललोहितः—(मंडिमें) लील और (दोष अद्वीतीय) लैहित  
दर्शनार्थः ॥ ३ ॥

व्यामाधोऽपरिच्छेयो गौरीभर्ता गोपाधरः ।  
वृष्टिर्विष्मृतिर्वृत्तिर्वासामाप्नः ॥ ४ ॥

१९ व्यामाधः—व्यामाके अपार, २० अपरिच्छेयः—देव,  
पाप विर कम्भुजी लीलामें अविभाव्य, २१ गौरीभर्ता—गौरी  
नार्थ, गौरीविकी पर्वि, २२ गोपाधरः—प्रमथमणीहि स्थानी,  
२३ वृष्टिर्विष्मृतिर्वृत्तिर्वासामाप्नः—कृष्ण, वन्द्रमा, त्रृष्णी  
और वेदान्त—इन भाँड क्षेत्रोंवाले, २४ विष्मृतिः—असित  
विद्यानन्दमय विष्ट धूस्य, २५ विर्वाम्यगम्याप्नः—भृष्टि, भृष्टि,  
भृष्टि वा भृष्टि पात्री करनेवालि ॥ ४ ॥

विष्व पुरुषोंमें भी सबसे ब्रेष्ट, ३९ संवंशमाणमंगदी—भृष्टि  
प्रमाणोंमें सामङ्गस्य स्वापित ऊनेवाले, ४० वृषाकृः—अपनी  
वज्रामें वृषमसा चिह्न धारण करनेवाले, ४१ वृषभहनः—वृषम  
या धर्मजो वादन व्यानेवाले ॥ ६ ॥

इंशः पिनाकी स्वद्वाङ्गी चित्रयेष्विरंतनः ।  
तमोद्वरो महायोगी गोपा शशा च भूर्जिः ॥ ० ॥

४२ इंशः—स्वामी वा शासक, ४३ पिनाकी—पिनाक नामान्त-  
रनुप भारण करनेवाले, ४४ स्वद्वाङ्गी—स्वाटोंह पायेनी आकृति-  
का एक आवृप भारण करनेवाले, ४५ विद्रेषाः—विनिवेष-  
यारी, ४६ विरंतनः—पुराण (अनादि) पुष्टोत्तम, ४७ तमोद्वरः—  
अशानान्मकारान्तो दूर करनेवाले, ४८ महायोगी—महान् गोपते  
तमन्त्र, ४९ गोपा—रसन, ५० वृद्धा—सूर्यिक्ताः, ५१ भूर्जिः—  
वज्रजो भारसे तुक्त ॥ ७ ॥

वृलक्ष्मलः कुत्सियासाः सुभगः प्रगाम्यानः ।  
उवाघः पुरुषो त्रुप्यो दुर्प्रेसाः उत्तरासनः ॥ ८ ॥

५२ वृलक्ष्मलः—कालके भी काल, ५३ कुत्सियाराः—  
गजामुरुंद चर्यान्ते वज्रोह वर्तमें भारण करनेवाले, ५४ सुभगः—  
नीलम्ब्यगम्यारी, ५५ प्रगाम्यानः—अंशस्त्वलय अवगा प्रगाम्य  
वाच्यार्थ, ५६ उवाघः—वृभगर्दित, ५७ तुषाः—वृत्तिर्विष्मृति  
आवगा, ५८ त्रुप्यः—तेजा वर्तमें वेष, ५९ तुरंगाः—तुरंगा  
वामक भृष्टिर्वासामें आवीर्व, ६० पुरासात्काः—वीर वामामय  
वृमुक-तुरंगा दग्ध वर्तमें तुरंग ॥ ८ ॥

दिव्याकुपः स्वन्दुष्टुरः पर्वत्यु वत्तवाः ।

अथवा चित्तवृत्तियोके निरोधसे अनुभवों आगेगेण,  
७५ कोदण्डी-घनुर्धर, ७४ नीलकण्ठः—कण्ठमें हालादल  
विश्रफा नील चिह्न धारण करनेवाले, ७५ परशापी—  
परशुधारी ॥ १० ॥

विशालाक्षो मृगज्ञाधः सुरेशः सूर्यतापनः ।

धर्मधाम समाक्षेत्रं भगवान् भगवेत्रभित् ॥ ११ ॥

७६ विशालाक्षः—चडे-चडे नेत्रोवाले, ७७ गृगज्ञाधः—  
चत्तमें व्याघ या किरातके रूपमें प्रकट हो शूकरके जार वाण  
चलनेवाले, ७८ सुरेशः—देवताओंके स्वामी, ७९ सूर्यतापनः—  
सूर्यको भी दण्ड देनेवाले, ८० धर्मधाम-धर्मके आश्रय,  
८१ क्षमाक्षयम्—क्षमाके उत्तर्ति-स्थान, ८२ भगवान्—समूर्ण  
ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, शान तथा धैराय्यके आश्रय,  
८३ भगवेत्रभित्—भगवेत्रके नेत्रका भेदन करनेवाले ॥ ११ ॥

उत्त्रः पशुपतिस्त्रादर्शः प्रियभक्तः परंतपः ।

दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कमशासनः ॥ १२ ॥

८४ उग्रः—संहारकालमें भयंकर रूप धारण करनेवाले,  
८५ पशुपतिः—भायास्त्रपमें बैधे हुए पाशवद्ध पशुओं (जीवों) को  
चत्त्वशानके द्वारा मुक्त करके यथार्थरूपसे उनका पालन  
करनेवाले, ८६ तार्क्षी—गरुडल्प्य, ८७ प्रियभक्तः—भक्तोंसे प्रेम  
चरनेवाले, ८८ परंतपः—शत्रुता रखनेवालोंको संताप देनेवाले,  
८९ दाता—दानी, ९० दयाकरः—दयानिधान अथवा कृपा  
करनेवाले, ९१ दक्षः—कुशल, ९२ कपर्दी—जटाजूटधारी,  
९३ कमशासनः—कामदेवका दमन करनेवाले ॥ १२ ॥

स्मशाननिलयः सूक्ष्मः अमशानस्थो महेश्वरः ।

लोक्कर्ता मृगपतिर्महाकर्ता महीषधिः ॥ १३ ॥

९४ इमशाननिलयः—इमशानवासी, ९५ सूक्ष्मः—इन्द्रिया-  
त्वं एवं सर्वव्यापी, ९६ इमशानस्थः—इमशानभूमिमें विश्राम  
करनेवाले, ९७ महेश्वरः—महान् ईश्वर या परमेश्वर, ९८ लोक-  
कर्ता—चगतकी सृष्टि करनेवाले, ९९ मृगपतिः—मृगके पालक  
यथा पशुपति, १०० महाकर्ता—विराट् ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेके  
समय महान् कर्तुत्वसे सम्मन्न, १०१ महोपधिः—भवरोगका  
विवारण करनेके लिये महान् ओषधिरूप ॥ १३ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोसा ज्ञानगम्यः उरातनः ।

बीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी ॥ १४ ॥

१०२ उत्तरः—संसार-सागरसे पार उत्तरनेवाले,  
१०३ गोपतिः—स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, किरण, इन्द्रिय और जलके  
समी, १०४ गोसा—रक्षक, १०५ ज्ञानगम्यः—तत्त्वशानके द्वारा

शानस्त्ररूपते ही जानने योग्य, १०६ पुरातनः—उत्तरे पुरुषे  
१०७ नीतिः—याय-सत्य, १०८ सुनीतिः—उत्तम नीतिके  
१०९ शुद्धात्मा—विशुद्ध आत्मसत्य, ११० सोमः—उमासूख  
१११ सोमरतः—नन्दगापर प्रेम रखनेवाले, ११२ फुले-  
आत्मानन्दरो परिगूर्ज ॥ १४ ॥

सोमपोऽग्रृतपः सोम्यो महतिजा महायुतिः।  
वेजोमयोऽमृतामयोऽप्रमयत्र सुवापतिः ॥ १५ ॥

११३ सोमपानः—सोमपान करनेवाले अथवा सोमपाल  
चन्द्रमाके पालक, ११४ अगृतपः—समाधिके द्वारा सूख  
अग्रतका आत्मादन करनेवाले, ११५ सौम्यः—भरुके वि  
सीम्पल्पधारी, ११६ महाकेजः—महान् तेजों सम्बू  
११७ महायुतिः—परमकान्तिमान्, ११८ तेजोमयः—प्रकाशिता  
११९ अनृतमयः—अमृतल्प, १२० अद्रमयः—अक्षल, १२१  
सुधापतिः—अमृतके पालक ॥ १५ ॥

अग्रातशानुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः।  
तोऽक्षरो वेदकरः सूक्तकारः सत्तातनः ॥ १६ ॥

१२२ अजातशानुः—जिनके मनमें कभी किसीके प्रि

शाश्वतभाव नहीं पैदा हुआ, ऐसे समदद्दी, १२३ आदेक-  
प्रकाशसत्यस्त्वं, १२४ सम्भाव्यः—समाननीय, १२५ हव्यवृह-  
विग्निसत्यस्त्वं, १२६ लोककरः—जगत्के स्थान, १२७ वेदान-  
वेदोंको प्रकट करनेवाले, १२८ सूक्तकारः—दक्षानादके समे-  
चतुर्दश माहेश्वर सूत्रोंके प्रणेता, १२९ सत्तातनः—नीति  
सत्यस्त्वं ॥ १६ ॥

महर्षिकपिलाचार्यो विश्वदीसिखिलोचनः।

पिनाकपाणिर्गृदेवः स्वतिदः स्वतिकृत्सुधीः ॥ १७ ॥

१३० महर्षिकपिलाचार्यः—सांख्यशास्त्रके प्रणेता भारती  
कपिलाचार्य, १३१ विश्वदीसिः—अपनी प्रभासे सक्षमो प्रकटित  
करनेवाले, १३२ विलोचनः—तीनों लोकोंके द्रष्टा, १३३ वेदान-  
पिनाकपाणिः—हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले  
१३४ सूर्देवः—पृथ्वीके देवता—त्राप्त्वा अथवा पार्थिविरुद्ध  
१३५ स्वस्तिदः—कल्याणदाता, १३६ स्वस्तिकृत-कल्प  
कारी, १३७ सुधीः—विशुद्ध बुद्धिवाले ॥ १७ ॥

धातुधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः।

व्रद्धाद्यग्रिवश्वसूजसरः कणिकारप्रियः कविः ॥ १८ ॥

१३८ धातुधामा—विश्वका धारण-पोषण करनेमें ल-  
तेजवाले, १३९ धामकरः—तेजकी सृष्टि करनेवाले

१४० सर्वं—अर्थात् १४१ सर्वगोचरः—नयमें व्याप्त;  
१४२ पञ्चमकृ—वद्वाज्ञाके उत्तादक, १४३ विश्वस्तकृ—वगत्कृ  
भव्य, १४४ सर्वं—नृष्टिस्तल्प, १४५ कर्णिकाप्रियः—कर्नेश्वर  
दृष्टि वर्षन्द करनेवाले, १४६ कविः—प्रिकाल  
दर्शी ॥ १८ ॥

शास्त्रे विद्वान्मो गोदावः शिवो भिषगनुजमः ।  
गदान्तर्योदयं भव्यः उष्टुकः स्वातिः स्तिरः ॥ १९ ॥

१४७ शास्त्रः—कार्तिकेयके छोटे भाई शाखदत्तल्प,  
१४८ विद्यमः—सूर्यके छोटे भाई विश्वावस्तल्प  
बन्धा विद्याव नामक भूमि, १४९ गोदावः—वेदवाणीकी  
गाडाओंका विनार वर्षन्दवाले, १५० विष्वः—महूलमधु  
१५१ भिषगनुजमः—भव्योग्या विनारण करनेवाले कैव्यो  
( भाषितो ) में सर्वथेषु, १५२ गदान्तर्योदकः—गदाके  
प्रवाहम्प जलोंके विश्वर घारण करनेवाले, १५३ भव्यः—  
विश्वावस्तल्प, १५४ उष्टुकः—पूर्णितम अथवा व्याप्त,  
१५५ व्यपतिः—वेदाण्डली भवनके विर्माता ( भवद ),  
१५६ विरः—वृषभक अथवा स्वाशुल्प ॥ १९ ॥

विद्विद्वान्मा विषेधामा भूतवाहनमात्रिः ।  
परमो गग्नपत्र सुकृतिशित्कसंशयः ॥ २० ॥

१५७ विद्विद्वान्मा—गदासे वरमें स्वतेवाले, १५८ विषेधामा—  
भूमि चन और इन्द्रियों भासी इन्द्रिय अनुग्रह काम केंद्रों  
वाले, १५९ चूप वाहनमात्रिः—वाहनविद्वा च ( विवर )  
ज्ञान विद्वान् करनेवाले भूषितर वारी, १६० सर्वमः—  
कुम्भमालीन वाय रक्षेवाले, १६१ गग्नपत्रः—विश्वस्तल्प,  
१६२ उष्टुकिः—उष्टुक विर्मितो, १६३ विज्ञातमः—  
विज्ञाने वाय देवीको ॥ २० ॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा भर्मुद्रः सदाशिवः ।  
जक्षलप्रथनुर्वाहुदुर्वाशसो दुरसदः ॥ २२ ॥

१६४ समावर्तः—संभावनको गलीमैति उमभेदोले  
१६५ अनिवृत्तात्मा—सर्वत्र विद्वान् हैनेके आण विज्ञान  
आत्मा कहति भी हय नहीं है ऐसे, १६६ भर्मुद्रः—पर्वत  
वा पुर्वकी रायि, १६७ सदाशिवः—निरस्तर रुद्रागत्तरि,  
१६८ अक्षमपः—वापरहित, १६९ वनुर्यु—वार  
शुक्रायागी, १७० दुरसक्षः—जिनों देवांगत भी वरी  
कटिनाईसे असे हृदयमनिश्चये वभा पते हैं ऐसे,  
१७१ दुरालदः—उरम दुर्वय ॥ २२ ॥

दुर्द्वन्मो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविद्वारदः ।  
अप्यात्मकोगमित्यः गुतनुस्तानुर्वयनः ॥ २३ ॥

१८० दुर्क्षमः—भक्तिर्हीन पुष्टोंको कटिनामि ग्राम  
होनेवाले, १८१ दुर्गमः—विद्वेन निरुद्ध पदुन्मता हिकीरनिः वी  
कटिन है ऐसे, १८२ दुर्गः—वार-तामे रजा दर्शके  
विष्वे दुर्गल्प अथवा दुर्गेय, १८३ सर्वायुधविद्वारदः—गग्नी  
अद्योक्त प्रदेवगदी कलाये कुशल, १८४ अत्यामांगमित्यः—  
अज्ञात्वासामे लित, १८५ चुतन्तुः—नुरर विलुप्त उम्भु  
स्त्र लन्तुराते, १८६ लनुर्दूषः—कल्पल्प ननुते  
दद्यनेवाले ॥ २३ ॥

दुर्गामो द्यंद्वारो वर्गीयो द्यन्देवः ।  
भज्युद्विष्टो नदेवेष्टी द्युद्विष्टः ॥ २४ ॥

१८७ दुर्माङः—दुरर भद्रोलाले, १८८ लोक्यान्द्रः—  
देहमरपाली, १८९ वार्द्विशः—वार्द्विद् वार्द्वी,  
१९० वार्द्विशः—स्वात्माली वार्द्विद् वार्द्वी,  
१९१ वार्द्विशः—वार्द्वी वार्द्विद् वार्द्वी ॥

पुरुणोद्धारा प्रतिपादित, २०० रिपुजीवहरः—शत्रुओंके प्राण दर लेनेवाले, २०१ वली—वलशाली ॥ २५ ॥

महाददो महागत्तः सिद्धवृन्दारवन्दितः ।  
व्याघ्रचर्माभूतो ज्याली महाभूतो महानिधिः ॥ २६ ॥

२०२ महाददः—परमानन्दके महान् सरोवर  
२०३ महागत्तः—महान् आकाशस्त्रप, २०४ सिद्धवृन्दारवन्दितः—  
सिद्धों और देवताओंद्वारा वन्दित, २०५ व्याघ्रचर्माभूतो—ज्याम-  
चर्मको वस्त्रके समान धारण करनेवाले, २०६ ज्याली—राष्ट्रीयों  
आभूषणकी भाँति धारण करनेवाले, २०७ महाभूतः—विश्वाल-  
में भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्त्रप, २०८ महानिधिः—  
भद्रके महान् निवासस्थान ॥ २६ ॥

अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभञ्जनः ।  
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः परिज्ञातः परावरः ॥ २७ ॥

२०९ अमृताशः—जिनकी आशा कभी विफल न हो एसे  
अमोघसंकल्प, २१० अमृतवपुः—जिनका कलेक्टर कभी नष्ट  
न हो ऐसे—नित्यविग्रह, २११ पाञ्चजन्यः—पाञ्चजन्य नामक  
शङ्खस्त्रप, २१२ प्रभञ्जनः—वायुस्त्रप अथवा संदरकारी,  
२१३ पञ्चविंशतितत्त्वस्थः—प्रकृति, महत्तत्त्व (तुदि), अहंकार,  
चक्षु, श्रोत्र, ग्राण, रसना, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद,  
उपस्थ, मन, शब्द, स्वर्ण, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, जल, तेज,  
वायु और आकाश—इन चौधीस जड़ तत्त्वोंसहित पचीसवें  
चेतनतत्त्व पुरुषमें व्याप्त, २१४ परिज्ञातः—याचकोंकी इच्छा  
पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षस्त्रप, २१५ परावरः—कारण-कार्यस्त्रप ॥ २७ ॥

सुलभः सुव्रतः शूरो ब्रह्मवेदनिधिर्निधिः ।  
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णो शत्रुजित्त्वात्पनः ॥ २८ ॥

२१६ सुलभः—नित्य निरन्तर चिन्तन करनेवाले एक-  
निष्ठ श्रद्धालु भक्तको सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, २१७ सुव्रतः—  
उत्तम ब्रतधारी, २१८ शूरः—शौर्यसम्पन्न, २१९ ब्रह्मवेदनिधिः—  
ब्रह्मा और वेदके प्रादुर्भावके स्थान, २२० निधिः—जगतरूपी  
रक्तके उत्पत्तिस्थान, २२१ वर्णाश्रमगुरुः—वर्णों और आश्रमोंके  
गुरु (उपदेश), २२२ वर्णो—ब्रह्मचारी, २२३ शत्रुजित्—  
अन्धकासुर आदि शत्रुओंको जीतनेवाले, २२४ शत्रुतापनः—  
शत्रुओंको संताप देनेवाले ॥ २८ ॥

आश्रमः क्षणः क्षणो ज्ञानवान्वच्छेष्वरः ।  
प्रमाणभूतो दुर्ज्यः सुपणो वायुवाहनः ॥ २९ ॥  
२३५ आश्रमः—सबके विश्रामस्थान, २३६ क्षणः—

अग्न-गरणके कट्टा, मूलोच्छेद करनेवाले, २३७ शास-  
प्रलयकालमें प्रजाओं कीण करनेवाले, २२८ ज्ञानवान्-हृषी-  
२२९ अचलेश्वरः—पर्वतों अथवा स्तावर पदार्थके साथ  
२३० प्रमाणभूतः—निल्यसिद्ध प्रमाणस्त्रप, २३१ दुर्ज्य-  
कठिनतासे जाननेयोग्य, २३२ सुपणः—वेदमय दुर्ज्य  
पंक्तिस्त्रप, गदद्वाला, २३३ वायुवाहनः—अपने भूते बहुते  
प्रणालित करनेवाले ॥ २९ ॥

धनुर्वर्ते धनुर्वेदो गुणतशिगुणाद्वारः ।  
सत्यः सत्यपरोऽदीनो धर्माद्वारे धर्मसाधनः ॥ ३० ॥  
२३४ धनुर्धरः—पिनाकधारि, २३५ धनुर्देवः—धनुर्देव  
शताः, २३६ गुणाद्वारः—अनन्त कल्याणमय गुणोद्दीप्ति  
२३० गुणाकरः—सद्गुणोंकी लालि, २३८ सत्य-न्त्व-  
स्त्रप, २३९ सत्यपरम—गत्यपरायण, २४० लवीतः—दीर्घते  
रहित—उदार, २४१ धर्माद्वारः—धर्मस्त्रप विश्वाले  
२४२ धर्मसाधनः—धर्मका अनुशान करनेवाले ॥ ३० ॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दम ।  
अभिवाद्यो महामायो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१ ॥

२४३ अनन्तदृष्टिः—असीमित दृष्टिवाले, २४४ आन-  
परमानन्दमय, २४५ दण्डः—दुर्योंको दण्ड लेनेवाले अ-  
दण्डस्त्रप, २४६ दमयिता—दुर्दान्त दानवोऽन्न र-  
करनेवाले, २४७ दमः—दमनस्त्रप, २४८ अभिवाद्य-न-  
करनेयोग्य, २४९ महामायः—मायावियोंको भी मोहे  
महामायावी, २५० विश्वकर्मविशारदः—संसारकी सुष्टि न  
कुशल ॥ ३१ ॥

चीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतसावनः ।  
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽनितिष्यः ॥

२५१ चीतरागः—पूर्णतः विरक्त, २५२ विनीतः  
मनसे विनयशील अथवा मनको वशमें रखनेवाले,  
२५३ तपस्वी—तपस्यापरायण, २५४ उम्मच्च-  
सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक एवं रक्त, २५५ उम्मच्च-  
पागलोंके समान वेश धारण करनेवाले, २५६ प्रति-  
मायोंके पदेमें छिपे हुए, २५७ जितकमः—द्वयीं  
२५८ अजितप्रियः—भगवान् विष्णुके प्रेमी ॥ ३२ ॥

कल्याणप्रकृतिः कल्यः सर्वलोक्यापतिः ।  
तरस्वी तारको धीमान् प्रथानः प्रमुखः ॥

२५९ कल्याणप्रकृतिः—कल्याणकारी तर-

२६० यत्तः—यमर्थः २६१ सर्वदोक्षयज्ञापतिः—नम्भूर्म  
प्रदेशी प्रवक्ति गालकु २६२ तस्यो—यंगयाली,  
२६३ उद्धर्म—उद्धरकु २६४ धीमान्—विशुद्ध उद्धिसे युक्तु  
२६५ प्रशान्तः—नवसे थ्रेषु २६६ प्रसुः—नवसन्मर्थः  
२६७ यमयः—अविता शी ॥ ३३ ॥

• एष साम्ये अनुदितामा कल्पादि: कमलक्षणः

पैदलसारधार्यताप्रज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥३४॥

२६८ लोकार्थः—नमस्तु लोकोमि रत्ना करनेवाले;  
 २६९ अन्तर्दीप्तिमा—अन्तर्यामी आत्मा अथवा अदृश्य  
 प्रभायांके २७० कलादिः—कलाके आदिकारण,  
 २७१ क्षमेश्वरः—कलाके समाज मेश्वरादि, २७२ विद-  
 शम्भुर्महापूर्णोदी और शाश्रयोंके अर्थ एवं तत्त्वों  
 कलामोष्टके २७३ अनिच्यमः—नियन्त्रणरहित, २७४ नियता-  
 अव्यय—वास्तुके नियन्त्रित आधारस्थान ॥ ३४ ॥

अद्यः गुर्जः शनिः केव्यराज्ञो विद्यमन्त्रिः ।

संस्कृतः परमात्मा गुरुवाणपर्वतीनयः ॥२५॥

२४५ अद्य—चन्द्रभास्तु से आहारकारी, २४६ गूर्ज़—  
अपनी उपस्थिटि देखनुस्त मूर्क, २४७ दमिनि—शान्तेश्वरहन,  
२४८ देवु—देवुनामक महामत्त, २४९ यात्रा—दुर्वर धरीर-  
पाल, २५० चित्रुआच्छिः—मूर्मिणी नाल कलियाच्छिः,  
२५१ विष्विष्विः—विहिते धारा भास्तुके वर्णमें लोकाच्छिः,  
२५२ विष्वद्य—विष्वद्य, २५३ मुगलायार्द्य—मुगलायार्द्य  
विष्वार विष्वायार्द्य, २५४ विष्वप—वास्तवित ॥ ३५ ॥

प्राचीन दृष्टिकोणः परमात्मा अवश्यकः ।

માર્ગદર્શિકાની સહાયો માર્ગદર્શિકાની સહાયો

२०५ अदिति-सिंह नारी वर्षीस्त्रोत २०६ अदिति-  
सिंह नारी वर्षीस्त्रोत नारी वर्षीस्त्रोत विकास चले २०७  
२०८ अदिति-सिंह नारी वर्षीस्त्रोत २०९ अदिति-सिंह नारी  
वर्षीस्त्रोत २१० अदिति-सिंह नारी वर्षीस्त्रोत २११ अदिति-  
सिंह नारी वर्षीस्त्रोत २१२ अदिति-सिंह नारी वर्षीस्त्रोत

www.schul-sport.de

१० अस्ति विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं  
११ विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं  
१२ विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं विषयं

दिन एवं संक्षेप आदि कालरूपसे सित, अंशकालस्त्रुप,  
२९९ व्याप्तिः—व्यापकतास्त्रुप, ३०० प्रभागम्—प्रत्यन्तादि  
प्रभागस्त्रुप, ३०१ परमं तपः—उत्कृष्ट तासान्वलग्न ॥ ३७ ॥

संक्षेपस्त्रियो नन्दिनीयम् ।

अजः सर्वेषु यिद्वा महारेता महाबलः ॥ ३८ ॥

३०२ संवत्सरकरः—संवत्सर आदि कालमिगमके उत्तरादि,  
 ३०३ मन्त्रप्रथयः—प्रेद आदि मन्त्रोंसे प्रतीत ( प्रलेप ) होने-  
 वाय, ३०४ सर्वदर्शनः—सर्वके लाभी, ३०५ अजः—अज्ञात्मा,  
 ३०६ सर्वधरः—सर्वके शासक, ३०७ सिद्धः—गिरियोंके आधाय,  
 ३०८ महारेता—प्रेतु वीर्यवाले, ३०९ महावतः—प्रभूपातांत्री  
 महत्ती सेवाते नम्नत ॥ ३८ ॥

योगी योग्यो महातेजाः सिद्धिः सवांदिरप्रदः ।

वन्दुर्वसुमनाः वत्यः स्वर्यपद्मो दूरः ॥ ३१ ॥

३१० योगी योग्यः—दुर्लभं योगी, ३११ मात्रोत्तमः—  
महान् तेजसे अवश्य, ३१२ सिद्धिः—मात्रा वाप्तीते कल,  
३१३ सर्वादिः—तत्त्वं भूतोक्ते श्रद्धिताम्, ३१४ अप्रदः—इन्द्रियो-  
री प्रश्नादिति अस्तित्वः, ३१५ व्युः—तत्त्वं भूतोक्ते वाचाद्याम,  
३१६ गम्भीरा—ददाति भवति, ३१७ स्वयः—व्युष्टस्याम,  
३१८ सर्वप्रपादोऽप्य—प्रवहा वर्तता अस्त्रया व्यवेदं  
कारण द्वय नाममें प्रविष्ट ॥ ३१ ॥

सुर्योदासः श्रीमत् विद्युति वैदिक्यम् ।

समिक्षा की जैसी विवादों की विवरण

१५७ गुरुविनियंत्रणम्—इसके दीर्घिं समाप्तिः शेष रहते।  
 १५८ धौत्रम्—स्थितिस्थापना करने से विद्युत् इसका विकल्प—  
 विद्युत् अद्वितीयः। १५९ वेदिगुणित्वे दीर्घिं विद्युत्  
 लग्नों के समाप्तिः मुक्ति, १६० अविद्युत्—विद्युत् प्राप्ति  
 स्थापना, १६१ धौत्रम्—स्थापना करने से विद्युत् विद्युत् रहता,  
 १६२ विद्युत्—विद्युत् स्थापने विद्युत् रहता, १६३ विद्युत्—  
 विद्युत् विद्युत्। १६४ विद्युत्—विद्युत् विद्युत् विद्युत्

Digitized by srujanika@gmail.com

2016-03-20 09:57:20.000000000 +0000

此書之題材，實為中國歷代之政治、經濟、社會、文化等各方面之研究，其內容廣博，其價值極高，為吾國學術研究之重要參考書。

पुराणोद्धारा प्रतिपादित, २०० रिपुजीवहरः—शत्रुओंके प्राण हर लेनेवाले, २०१ वली—बलशाली ॥ २५ ॥

महाद्वादो महागर्तः सिद्धवृन्दारवन्दितः ।  
व्याघ्रचर्माम्बरो व्याली महाभूतो महानिधिः ॥ २६ ॥

२०२ महाद्वादः—परमानन्दके महान् सरोवर, २०३ महागर्तः—महान् आकाशरूप, २०४ सिद्धवृन्दारवन्दितः—सिद्धों और देवताओंद्वारा वन्दित, २०५ व्याघ्रचर्माम्बरः—व्याघ्रचर्मको वधके समान धारण करनेवाले, २०६ व्याली—सर्पोंकी आभूषणकी भाँति धारण करनेवाले, २०७ महाभूतः—त्रिकालमें भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्वरूप, २०८ महानिधिः—भवके महान् निवासस्थान ॥ २६ ॥

अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभञ्जनः ।  
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परावरः ॥ २७ ॥

२०९ अमृताशः—जिनकी आशा कभी विफल न हो ऐसे अमोशसंकल्प, २१० अमृतवपुः—जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो ऐसे—नित्यविग्रह, २११ पाञ्चजन्यः—पाञ्चजन्य नामक शङ्खस्वरूप, २१२ प्रभञ्जनः—वायुस्वरूप अथवा संहारकारी, २१३ पञ्चविंशतितत्त्वस्थः—प्रकृति, महत्तत्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, श्रोत्र, ध्राण, रसना, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, मन्थ, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन चौबीस जड तत्त्वोंसहित पचीसवें चेतनतत्त्व पुरुषमें व्याप्त, २१४ पारिजातः—याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षरूप, २१५ परावरः—कारण-कार्यरूप ॥ २७ ॥

सुलभः सुव्रतः शूरो ब्रह्मवेदनिधिनिधिः ।  
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजित्त्रशत्रुतापनः ॥ २८ ॥

२१६ सुलभः—नित्य निरन्तर चिन्तन करनेवाले एक-निष्ठ श्रद्धालु भक्तको मुगमतासे प्राप्त होनेवाले, २१७ सुव्रतः—उत्तम व्रतधारी, २१८ शूरः—शौर्यसम्पद, २१९ ब्रह्मवेदनिधिः—ब्रह्मा और वेदके प्रादुर्भावके स्थान, २२० निधिः—जगत्रूपी रक्षके उत्तस्तिस्थान, २२१ वर्णाश्रमगुरुः—वर्णों और आश्रमोंके गुरु (उपदेश), २२२ वर्णी—ब्रह्मचारी, २२३ शत्रुजित्—अन्यथासुर आदि शत्रुओंको जीतनेवाले, २२४ शत्रुतापनः—शत्रुओंको संताप देनेवाले ॥ २८ ॥

आश्रमः क्षणः क्षामो ज्ञानवान्वलेश्वरः ।  
प्रमाणभूतो दुर्जेयः चुपणो वायुवाहनः ॥ २९ ॥

२२५ आश्रमः—सर्वके विश्रामस्थान, २२६ क्षणः—

जन्म-मरणके कर्षका मूलोच्छेद करनेवाले, २२७ क्षामः—प्रलयकालमें प्रजाको क्षीण करनेवाले, २२८ ज्ञानवान्-ज्ञानी, २२९ अचलेश्वरः—पर्वतों अथवा स्थावर पदार्थोंके सामी, २३० प्रमाणभूतः—नित्यसिद्ध प्रमाणरूप, २३१ दुर्जेयः—कठिनतासे जानेयोग्य, २३२ सुपर्णः—वेदमय मुन्द्र पंखवाले, गशडरूप, २३३ वायुवाहनः—अपने भयसे वायुके प्रवाहित करनेवाले ॥ २९ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्णिकरः ।

सत्यः सत्यपरोऽदीनो धर्माङ्गो धर्मसाधनः ॥ ३० ॥

२३४ धनुर्धरः—पिनाकधारी, २३५ धनुर्वेदः—धनुर्वेदके शाता, २३६ गुणराशिः—अनन्त कल्याणमय गुणोंकी राशि, २३७ गुणाकरः—सद्गुणोंकी खानि, २३८ सत्यः—सत्यस्वरूप, २३९ सत्यपरः—सत्यपरायण, २४० अदीनः—दीनतासे रहित—उदार, २४१ धर्माङ्गः—धर्ममय विप्रहवाले, २४२ धर्मसाधनः—धर्मका अनुष्ठान करनेवाले ॥ ३० ॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः ।

अभिवाद्यो महामाद्यो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१ ॥

२४३ अनन्तदृष्टिः—असीमित दृष्टिवाले, २४४ आनन्दः—परमानन्दमय, २४५ दण्डः—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले अथवा दण्डस्वरूप, २४६ दमयिता—दुर्दान्त दानवोंका दमन करनेवाले, २४७ दमः—दमनस्वरूप, २४८ अभिवाद्यः—प्रणाम करनेयोग्य, २४९ महामाद्यः—मायाविद्योंको भी मोहनेवाले महामायावी, २५० विश्वकर्मविशारदः—संसारकी सृष्टि करनेमें कुशल ॥ ३१ ॥

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः ।

उन्मत्तवेषः ग्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः ॥ ३२ ॥

२५१ वीतरागः—पूर्णतः विरक्त, २५२ विनीतात्मा—मनसे विनयशील अथवा मनको वशमें रखनेवाले, २५३ तपस्वी—तपस्यापरायण, २५४ भूतभावनः—रमणी भूतोंके उत्तादक एवं रक्षक, २५५ उन्मत्तवेषः—पागलोंके समान वेष धारण करनेवाले, २५६ प्रच्छडः—मायाके पर्दमें छिपे हुए, २५७ जितकामः—कामविद्या, २५८ अजितप्रियः—भगवान् विष्णुके प्रेमी ॥ ३२ ॥

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः ।

तत्त्वी तारको धीमान् प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥ ३३ ॥

२५९ कल्याणप्रकृतिः—कल्याणकारी तत्त्ववाले,

२६० कल्पः—एमर्थ, २६१ सर्वलोकप्रजापतिः—सम्पूर्ण लोकोंस्वी प्रजाके पालक, २६२ तरस्वी—वेगशाली, २६३ त्वरकः—उद्धारक, २६४ धीमान्—विशुद्ध बुद्धिसे मुक्त, २६५ प्रधानः—सबसे श्रेष्ठ, २६६ प्रभुः—सर्वसमर्थ, २६७ अव्ययः—अविना शी ॥ ३३ ॥

ल्येकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः ।  
वेदशास्त्रार्थतस्वज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥ ३४ ॥

२६८ लोकपालः—समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले, २६९ अन्तर्हितात्मा—अस्तर्यामी आत्मा अथवा अदृश्य स्वरूपवाले २७० कल्पादिः—कल्पके आदिकारण, २७१ कमलेक्षणः—कमलके समान नेत्रवाले, २७२ वेद-एस्तर्यात्मकः—वेदों और शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वको ज्ञानेवाले, २७३ अनियमः—नियन्त्रणरहित, २७४ नियताश्रयः—सबके सुनिश्चित आश्रयस्थान ॥ ३४ ॥

चक्रः सूर्यः शनिः केतुर्वराङ्गो विद्वुमर्छविः ।  
भक्तिवश्यः परब्रह्म मृगबाणार्णोऽनघः ॥ ३५ ॥

२७५ चक्रः—चन्द्रमास्त्रसे आहारकारी, २७६ सूर्यः—सूक्ष्मी उत्पत्तिके हेतुभूत-सूर्य, २७७ शनिः—शनैश्चररूप, २७८ केतुः—केतुनामक ग्रहस्वरूप, २७९ वराङ्गः—सुन्दर शरीरवाले, २८० विद्वुमर्छविः—मूँगेकी-सी लाल कान्तिवाले, २८१ भक्तिवश्यः—भक्तिके द्वारा भक्तके वशमें होनेवाले, २८२ परब्रह्म—परमात्मा, २८३ मृगबाणार्णः—मृगरूपधारी परम वाण चलनेवाले, २८४ अनघः—पापरहित ॥ ३५ ॥

भद्रिद्यालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः ।  
सर्वकर्मालयस्तुष्टे मङ्गल्यो मङ्गलावृतः ॥ ३६ ॥

२८५ भद्रिः—कैलास आदि पर्वतस्वरूप, २८६ अद्रध्यात्मः—द्रेष्यस और मन्दर आदि पर्वतोंपर निवास करनेवाले, २८७ घन्तः—सबके प्रियतम, २८८ परमात्मा—परब्रह्म भग्नेय, २८९ जगद्गुरुः—समस्त संसारके गुरु, २९० सर्वकर्मालयः—सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयस्थान, २९१ तुष्टः—सदा प्रसू, २९२ मङ्गल्यः—मङ्गलकारी, २९३ मङ्गलावृतः—भृक्ष्मारिणी शक्तिसे संयुक्त ॥ ३६ ॥

शक्त्या दीर्घतपाः स्थविष्टः स्थविरो ध्रुवः ।  
भद्रःसंवत्सरे व्यासिः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३७ ॥

२९४ महातपाः—महान् तपस्त्री, २९५ दीर्घतपाः—दीर्घकाल एवं अनेवाले, २९६ स्थविष्टः—अत्यन्त स्थूल, २९७ स्थविरो ध्रुवः—अर्जी प्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर, २९८ अहः संवत्सरः—

दिन एवं संवत्सर आदि कालस्वरूप, २९९ व्यासिः—व्यापकतास्वरूप, ३०० प्रमाणम्—प्रत्यक्षादि प्रमाणस्वरूप, ३०१ परमं तपः—उत्कृष्ट तपस्यास्वरूप ॥ ३७ ॥

संवत्सरकरो मन्त्रप्रत्ययः सर्वदर्शनः ।  
अजः सर्वेश्वरः सिद्धो महारेता महावलः ॥ ३८ ॥

३०२ संवत्सरकरः—संवत्सर आदि कालविभागके उत्पादक, ३०३ मन्त्रप्रत्ययः—वेद आदि मन्त्रोंसे प्रतीत ( प्रत्यक्ष ) होने-योग्य, ३०४ सर्वदर्शनः—सबके साक्षी, ३०५ अजः—अजन्मा, ३०६ सर्वेश्वरः—सबके शासक, ३०७ सिद्धः—सिद्धियोंके आश्रय, ३०८ महारेता—श्रेष्ठ वीर्यवाले, ३०९ महावलः—प्रमथगणोंकी महती सेनासे सम्पन्न ॥ ३८ ॥

योगी योग्यो महातेजाः सिद्धिः सर्वादिरग्रहः ।  
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ३९ ॥

३१० योगी योग्यः—सुयोग्य योगी, ३११ महातेजाः—महान् तेजसे सम्पन्न, ३१२ सिद्धिः—समस्त साधनोंके फल, ३१३ सर्वादिः—सब भूतोंके आदिकारण, ३१४ अग्रहः—इन्द्रियोंकी ग्रहणशक्तिके अविषय, ३१५ वसुः—सब भूतोंके वासस्थान, ३१६ वसुमनाः—उदार मनवाले, ३१७ सत्यः—सत्यस्वरूप, ३१८ सर्वपापहरो, हरः—समस्त पापोंका अपहरण करनेके कारण हर नामसे प्रसिद्ध ॥ ३९ ॥

सुकीर्तिशोभनः श्रीमान् वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः ।  
आजिष्णुभौजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ॥ ४० ॥

३१९ सुकीर्तिशोभनः—उत्तम कीर्तिसे मुद्रोमित होनेवाले, ३२० श्रीमान्—विभूतिस्वरूपा उमासे सम्पन्न, ३२१ वेदाङ्गः—वेदलप अङ्गोंवाले, ३२२ वेदविन्मुनिः—वेदोंका विचार करनेवाले मननशील मुनि, ३२३ आजिष्णुः—एकरस प्रकाशस्वरूप, ३२४ भोजनम्—शनियोद्वारा भोगने योग्य अमृतस्वरूप, ३२५ भोक्ता—पुरुषरूपसे उपभोग करनेवाले, ३२६ लोकनाथः—भगवान् विद्वनाथ, ३२७ दुराधरः—अजितेन्द्रिय युद्धोद्वारा जिनकी आराधना अत्यन्त कठिन है, ऐसे ॥ ४० ॥

अमृतः शाश्वतः शान्तो वाणहस्तः प्रतापवान् ।  
कमण्डलुधरो धन्वी अवाद्भूमसगोचरः ॥ ४१ ॥

३२८ अमृतः शाश्वतः—उनातन अमृतस्वरूप, ३२९ शान्तः—शान्तिमय, ३३० वाणहस्तः प्रतापवान्—दृश्यमें वाण धारण करनेवाले प्रतापी चीर, ३३१ कमण्डलुधरः—कमण्डलुधारण करनेवाले, ३३२ धन्वी—मिनाकशीरी, ३३३ अवाद्भूमसगोचरः—भूम और वाणीके अविषय ॥ ४१ ॥

अतीन्द्रियो महामायः सर्वाचासश्चतुष्पथः ।  
काल्योगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ४२ ॥

इ३४ अतीन्द्रियो महामायः—इन्द्रियातीत एवं महामायाची, ३३५ सर्वाचासः—सबके वासस्थान, ३३६ चतुष्पथः—चारों पुस्तुषार्थोंकी सिद्धिके एकमात्र मार्ग, ३३७ काल्योगी—ग्रलयके सम्मूर्ति सबको कालसे संयुक्त करनेवाले, ३३८ महानादः—गम्भीर शब्द करनेवाले अथवा अनाहत नादरूप, ३३९ महोत्साहो महाबलः—महान् उत्साह और बलसे सम्बन्ध ॥ ४२ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदरः ।  
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाश्रुतिः ॥ ४३ ॥

३४० महाबुद्धिः—श्रेष्ठ बुद्धिवाले, ३४१ महावीर्यः—अनन्त वराकृष्णी, ३४२ भूतचारी—भूतगणोंके साथ विचरनेवाले, ३४३ पुरंदरः—त्रिपुरसंहारक, ३४४ निशाचरः—रात्रिमें विचरण करनेवाले, ३४५ प्रेतचारी—प्रेतोंके साथ भ्रमण करनेवाले, ३४६ महाशक्तिर्महाश्रुतिः—अनन्तशक्ति एवं श्रेष्ठ कान्तिसे सम्बन्ध ॥ ४३ ॥

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् सर्वाचार्यमनोगतिः ।  
चतुर्मुतोऽमहामायो नियतात्मा भुवोऽध्रुवः ॥ ४४ ॥

३४७ अनिर्देश्यवपुः—अनिर्वचनीय स्वरूपवाले, ३४८ श्रीमान्—ऐश्वर्यवान्, ३४९ सर्वाचार्यमनोगतिः—सबके, लिये अविचार्य मनोगतिवाले, ३५० बहुश्रुतः—बहुश्रुत अथवा सर्वज्ञ, ३५१ अमहामायः—वड़ी-से-वड़ी माया भी जिनपर प्रभाव नहीं हाल सकती ऐसे, ३५२ नियतात्मा—मनको वशमें रखनेवाले, ३५३ भुवोऽध्रुवः—व्रुत्त ( नित्य कारण ) और अव्रुत्त ( अनित्य कार्य )—लूप ॥ ४४ ॥

ओजस्तेजोच्युतिधरो जनकः सर्वशासनः ।  
नृन्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ॥ ४५ ॥

३५४ ओजस्तेजोच्युतिधरः—ओज ( प्राण और वल ), तेजः ( श्रीर्थ आदि गुण ) तथा ज्ञानकी दीतिको धारण करनेवाले, ३५५ जनकः—सबके उत्पादक, ३५६ सर्वशासनः—सबके शासक, ३५७ नृत्यप्रियः—नृत्यके प्रेमी, ३५८ नित्य-नृत्यः—प्रतिदिन ताण्डव नृत्य करनेवाले, ३५९ प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप, ३६० प्रकाशकः—पूर्व आदिको भी प्रकाश देनेवाले ॥ ४५ ॥

स्पष्टाक्षरो त्रुयो मन्त्रः समानः सरसम्प्लवः ।  
युग्मदिक्षुगावर्तो गम्भीरो वृपवाहनः ॥ ४६ ॥

३६१ स्पष्टाक्षरः—ओकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, ३६२ ब्रुधः—ज्ञानवान्, ३६३ मन्त्रः—श्रूक्, साम और यजुर्वेदके मन्त्रस्वरूप, ३६४ समानः—सबके प्रति समान भाव रखनेवाले, ३६५ सरसम्प्लवः—संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकारूप, ३६६ युग्मदिक्षुगावर्तः—युग्मदिका आरम्भ करनेवाले तथा चारों युगोंको चक्रकी तरह घुमानेवाले, ३६७ गम्भीरः—गम्भीर्यसे युक्त, ३६८ वृषवाहनः—नन्दी नामक वृपभूत सवार होनेवाले ॥ ४६ ॥

हृष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोवनः ।  
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदश्यत्तु तीर्थदः ॥ ४७ ॥

३६९ हृष्टः—परमानन्दस्वरूप होनेसे सर्वप्रिय, ३७० अदिशिष्टः—सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, ३७१ शिष्टेष्टः—शिष्ट पुष्टोंके इष्टदेव, ३७२ सुलभः—अनन्यचित्तसे निरन्तर सरण करनेवाले भक्तोंके लिये सुगमतासे प्राप्त होनेयोग्य, ३७३ सारशोधनः—सारतत्त्वकी खोज करनेवाले, ३७४ तीर्थरूपः—तीर्थस्वरूप, ३७५ तीर्थनामा—तीर्थनामधारी, अथवा जिनका नाम भवसागरसे पार ल्यानेवाला है, ऐसे, ३७६ तीर्थदश्य—तीर्थसेवनसे अपने स्वरूपका दर्शन करानेवाले अथवा गुरुकृपासे प्रत्यक्ष होनेवाले, ३७७ तीर्थदः—चरणोदक्षरूप तीर्थों देनेवाले ॥ ४७ ॥

अपांनिधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित् ।  
प्रतिष्ठितः प्रभाणद्वे हिरण्यकवचो हरिः ॥ ४८ ॥

३७८ अपांनिधिः—जलके निधान समुद्ररूप, ३७९ अदि-ष्ठानम्—उपादानकारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय अथवा जगतरूप प्रपञ्चके अधिष्ठान, ३८० दुर्जयः—जिनको जीतना कठिन है ऐसे, ३८१ जयकालवित्—जियके अवसरको समझनेवाले, ३८२ प्रतिष्ठितः—अपनी महिमामें स्थित, ३८३ प्रभाणद्वे—प्रभाणोंके शाता, ३८४ हिरण्यकवचः—सुर्वर्णमय कवच वारण करनेवाले, ३८५ हरिः—श्रीहरिस्वरूप ॥ ४८ ॥

विमोचनः सुरगणो विद्येशो विन्दुसंश्रयः ।  
बालस्पौदवलोन्मत्तोऽविकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९ ॥

३८६ विमोचनः—संसारबन्धनसे सदाके लिये दुङ्गा देनेवाले, ३८७ सुरगणः—देवसमुदायरूप, ३८८ विद्येशः—सम्पूर्ण विद्याभूमि-स्वामी, ३८९ विन्दुसंश्रयः—विन्दुलय प्रणवके आश्रय, ३९० बालस्पौ—बालकका रूप वारण करनेवाले, ३९१ अदलोन्मत्तः—वलसे उन्मत्त न होनेवाले, ३९२ अविकर्ता—विकाररहित, ३९३ गहनः—दुर्योगवस्थ ॥

असम्यः ३९४ गुहः—मायासे अपने वथार्थ स्वरूपको छिपाये  
सुनेवाले ॥ ४९ ॥

करणं करणं कर्ता सर्ववन्धविमोचनः ।

स्ववसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ॥ ५० ॥

३९५ करणम्—समारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, ३९६ कारणम्—जगत्के उपादान और निमित्त कारण, ३९७ कर्ता—सबके रचयिता, ३९८ सर्ववन्धविमोचनः—सम्पूर्ण दन्धनोंसे छुड़ानेवाले, ३९९ व्यवसायः—निश्चयात्मक शान्त्वरूप, ४०० व्यवस्थानः—सम्पूर्ण जगत्की व्यवस्था अनेवाले, ४०१ स्थानदः—ध्रुव आदि भक्तोंको अविचल स्थिति शदान कर देनेवाले, ४०२ जगदादिजः—हिरण्यगर्भरूपसे जगत्के आदिमें प्रकट होनेवाले ॥ ५० ॥

गुरुदो लिलोऽभेदो भावात्माऽऽमनि संस्थितः ।

वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिविर्विराट् ॥ ५१ ॥

४०३ गुरुदः—श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करनेवाले अथवा जिज्ञा-  
सुओंको गुरुकी प्राप्ति करानेवाले, ४०४ ललितः—सुन्दर  
स्वरूपवाले, ४०५ अभेदः—भेदरहित, ४०६ भावात्माऽऽमनि  
संस्थितः—सत्त्वरूप आत्मामें प्रतिष्ठित, ४०७ वीरेश्वरः—वीर-  
शिरेभणि, ४०८ वीरभद्रः—वीरभद्र नामक गणाध्यक्ष,  
४०९ वीरासनविधिः—वीरासनसे बैठनेवाले, ४१० विराट्—  
अविलभ्रह्माण्डस्वरूप ॥ ५१ ॥

वीरचूदामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नदीधरः ।

आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥ ५२ ॥

४११ वीरचूदामणिः—वीरोंमें श्रेष्ठ, ४१२ वेत्ता—विद्वान्,  
४१३ विद्वानन्दः—विज्ञानानन्दस्वरूप, ४१४ नदीधरः—मस्तक-  
म गङ्गाजीको धारण करनेवाले, ४१५ आज्ञाधारः—आज्ञाका  
रास्ता करनेवाले, ४१६ विशूली—निश्चलधारी, ४१७ शिपि-  
ष्टः—तेजोमयी किरणोंसे व्याप्त, ४१८ शिवालयः—भगवती  
भिन्नोंके आश्रय ॥ ५२ ॥

वालसिल्यो महाचापस्त्रिमांशुवैधिरः खगः ।

नभिरामः सुशरणः सुव्रद्धाण्यः सुधापतिः ॥ ५३ ॥

४१९ वालसिल्यः—वालसिल्य शूर्यरूप, ४२० महा-  
चृष्टः—महान् धनुर्धर, ४२१ तिग्रामांशुः—सूर्यरूप, ४२२ वधिरः—  
वैदेह विद्योंको चर्चा न सुननेवाले, ४२३ खगः—आकाश-  
चृष्टः, ४२४ अभिरामः—परम सुन्दर, ४२५ सुशरणः—सबके  
द्वारा उन्दर अश्वरूप, ४२६ सुव्रद्धाण्यः—त्राहणोंके परम  
द्वारा, ४२७ सुधापतिः—अमृतकल्यानक रक्षक ॥ ५३ ॥

मधवान्कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः ।

ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृतः ॥ ५४ ॥

४२८ मधवान् कौशिकः—कृशिकवंशीय इन्द्रस्वरूप,  
४२९ गोमान्—ग्राकाश-किरणसे युक्त, ४३० विरामः—समस्त  
प्राणियोंके लघुके स्थान, ४३१ सर्वसाधनः—समस्त कामनाओंको  
सिद्ध करनेवाले, ४३२ ललाटाक्षः—ललाटमें तीसरा नेत्र धारण  
करनेवाले, ४३३ विश्वदेहः—जगत्स्वरूप, ४३४ सारः—सार-  
तत्त्वरूप, ४३५ संसारचक्रभृत—संसारचक्रको धारण करने-  
वाले ॥ ५४ ॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी ।

परमार्थः परो मायी शम्वरो व्याघ्रलोचनः ॥ ५५ ॥

४३६ अमोघदण्डः—जिनका दण्ड कभी व्यर्थ नहीं जाता  
है ऐसे, ४३७ मध्यस्थः—उदासीन, ४३८ हिरण्यः—मुखीं  
अथवा तेजःस्वरूप, ४३९ ब्रह्मवर्चसी—त्रिहातेजसे सम्पत्त,  
४४० परमार्थः—मोक्षरूप उक्तषु अर्थकी प्राप्ति करनेवाले,  
४४१ परो मायी—महामायावी, ४४२ शम्वरः—कल्याणप्रद-  
४४३ व्याघ्रलोचनः—व्याघ्रके समान भयानक नेत्रोंवाले ॥ ५५ ॥

स्वचिरिंश्चिः स्वर्वन्युर्वाचस्पतिरहर्पतिः ।

रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्त्रतो यमः ॥ ५६ ॥

४४४ स्वचिः—दीपिरूप, ४४५ विरच्चिः—ब्रह्मस्वरूप, ४४६  
स्वर्वन्युः—स्वर्णोंकमें बन्धुके समान सुखद, ४४७ वाचस्पतिः—  
वाणीके अधिपति, ४४८ अहर्पतिः—दिनके स्वामी सूर्यरूप,  
४४९ रविः—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले, ४५० विरोचनः—  
विविध प्रकारसे प्रकाश फैलानेवाले, ४५१ स्कन्दः—स्वामी  
कार्तिकेयरूप, ४५२ शास्ता वैवस्त्रतो यमः—सवपर शासन  
करनेवाले सूर्यकुमार यम ॥ ५६ ॥

युक्तिरुपतकीर्तिंश्च सानुरागः परंजयः ।

कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः ॥ ५७ ॥

४५३ युक्तिरुपतकीर्तिः—अष्टाङ्गोगस्वरूप तथा ऊर्ध्वलोकमें  
फैली हुई कीर्तिसे युक्त, ४५४ सानुरागः—भक्तजनोंपर प्रेम  
रखनेवाले, ४५५ परंजयः—दूसरोंपर विजय पानेवाले, ४५६  
कैलासाधिपतिः—कैलासके स्वामी, ४५७ कान्तः—कमनीय  
अथवा कार्णात्मान, ४५८ सविता—समस्त जगत्को उत्तर  
करनेवाले, ४५९ रविलोचनः—सूर्यरूप नेत्रवाले ॥ ५७ ॥

विद्वत्तमो वीतभयो विधमत्तानिवारितिः ।

नित्यो नियतकल्याणः पुण्यऋत्यकीर्तिनः ॥ ५८ ॥

४६० विद्वत्तमः—विद्वानोमें सर्वश्रेष्ठ, परम विद्वान्,  
 ४६१ चीतभयः—सब प्रकारके भयसे रहित, ४६२ विश्वभर्ता—  
 जगत्का भरण-पोषण करनेवाले, ४६३—अनिवारितः—जिन्हें  
 कोई रोक नहीं सकता ऐसे, ४६४ नित्यः—सत्यस्वरूप, ४६५—  
 नियतकल्याणः—मुनिश्रितरूपसे कल्याणकारी, ४६६—पुण्य-  
 क्रदणकीर्तनः—जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपके श्रवण  
 तथा कीर्तन परम पावन हैं, ऐसे ॥ ५८ ॥

दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वभानाशनः ।  
उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुस्सहोऽभवः ॥ ५९ ॥

४६७ दूरश्रवा:-सर्वव्यापी होनेके कारण दूरकी बात भी  
 मुन् लेनेवाले, ४६८ विश्वसह:-भक्तजनोंके सब अपराधोंको  
 कृपापूर्वक सह लेनेवाले, ४६९ ध्येय:-ध्यान करने योग्य,  
 ४७० दुःस्यमनाशन:-चिन्तन करनेमात्रसे भुरे स्वभौका नाश  
 करनेवाले, ४७१ उत्तारण:-संसारसागरसे पार उत्तारनेवाले,  
 ४७२ दुष्कृतिहा-पापोंका नाश करनेवाले, ३७३ विज्ञेय:-  
 ज्ञाननेके योग्य, ४७४ दुर्स्थह:-जिनके वेगको सहन करना  
 दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है; ऐसे, ४७५ अभवः-संसार-  
 बन्धनसे रहित व्यथवा अजन्मा ॥ ५९ ॥

अनादिर्भुवर्षु वो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ।  
विश्वगोपा विश्वकर्त्ता सुवीरो रुचिरांगदः ॥ ६० ॥

४७६ अनादिः—जिनका कोई आदि नहीं है, ऐसे सबके  
कारणस्वरूप, ४७७ भूर्भुवो लक्ष्मीः—भूर्लोक और भुवलोककी  
शोभा, ४७८ किरीटी—मुकुटधारी, ४७९ त्रिदशाधिपः—देवताओं-  
के स्वामी, ४८० विश्वगोसा—जगत् के रक्षक, ४८१ विश्वकर्ता—  
संसारकी सूषि करनेवाले, ४८२ सुवीरः—श्रेष्ठ वीर, ४८३  
हचिराङ्गदः—सुन्दर वाजूदं धारण करनेवाले ॥ ६० ॥

जननो जनजन्मादिः प्रीतिसा क्लीतिमान्धवः ।  
वसिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ६१ ॥

४८४ जननः—प्राणिमात्रको जन्म देनेवाले, ४८५ जन-  
स्तम्भादिः—जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूल कारण, ४८६ प्रीतिमान्—  
प्रसन्न, ४८७ नीतिमान्—सदा नीतिपरायण, ४८८ धवः—  
सदके स्वामी; ४८९ वसिष्ठः—मन और इन्द्रियोंको अत्यन्त  
वशमें रखनेवाले अथवा वसिष्ठ ऋग्मिल्लुप, ४९० कश्यपः—द्रष्टा  
अथवा कश्यप मुनिरूप, ४९१ भासुः—प्रकाशमान् अथवा सूर्य-  
रूप, ४९२ भीमः—दुर्योगको भय देनेवाले, ४९३ भीमपराक्रमः—  
भृत्यशय भयदायक पराक्रमसे युक्त ॥ ६१ ॥

प्रणवः सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः

जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ५ ६३

४९४ प्रणवः—ओकारस्वरूप, ४९५ सरस्वतीनामः—

सत्युरुपोंके मार्गपर चलनेवाले, ४९६ महाकोशः—अद्भुत्यादि  
पाँचों कोशोंको अपने भीतर धारण करनेके कारण महाक्षेत्रस्त,  
४९७ महाधनः—अपरिमित ऐश्वर्यवाले अथवा कुबेश्वरो भी  
धन देनेके कारण महाधनवान्, ४९८ जन्मग्रन्थिः—जन्म  
( उत्पादन ) रूपी कार्यके अध्यक्ष ग्रहा, ४९९ जहादेवः—  
सर्वोत्कृष्ट देवता, ५००—सकलागमभारगः—समस्त ग्राणोंके  
पारंगत विद्वान् ॥ ६२ ॥

तस्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विश्वविभूषणः ।

ऋषिर्वाहण ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः ॥ ६३ ॥

५०१ तत्त्वम्—यथार्थ तत्त्वरूप, ५०२ तत्त्वविद्—यथार्थ  
तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, ५०३ एकात्मा—अद्वितीय आत्म-  
रूप, ५०४ विभुः—सर्वत्र व्यापक, ५०५ विश्वविभूषण—सम्पूर्ण  
जगत्को उत्तम गुणोंसे विभूषित करनेवाले, ५०६ ऋषि—सत्य-  
द्रष्टा, ५०७ ब्रह्मणः—ब्रह्मवेत्ता, ५०८ ऐश्वर्यजन्मभूत्सु  
जरातिनः—ऐश्वर्य, जन्म, मृत्यु और जरासे अतीत ॥ ६३ ॥

पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः ।

आत्मयोनिरनाद्यन्तो वत्सलो भक्तलोकधुक् ॥ ६४ ॥

५०९ पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिः—पञ्च महायज्ञोंकी उत्पत्तिके हेतु,  
 ५१० विश्ववेदः—विश्वनाथ, ५११ विमलोदयः—निर्मल अमृदय-  
 की प्राप्ति करानेवाले धर्मरूप, ५१२ आत्मयोगिः—स्वयम्भू,  
 ५१३ अनाद्यन्तः—आदि अन्तसे रहित, ५१४ वत्सरः—मरुके  
 प्रति वात्सत्य-स्नेहसे युक्त, ५१५ मरुलोकधृक्—मरुजनोंके  
 आश्रय ॥ ६४ ॥

गायत्रीवल्लभः प्रांशुविंश्वावासः प्रभाकरः ।

शिशुरितः सत्राट् सुधेणः सुरक्षानुहा ॥ ६५ ॥

५१६ गायत्रीवल्लभः—गायत्री मन्त्रके प्रेमी, ५१७ प्रदुषः—  
ऊँचे शरीखाले, ५१८ विश्वावासः—सम्पूर्ण जगत्के अवस्था-  
स्थान, ५१९ प्रभाकरः—सूर्यरूप, ५२० शिशुः—बालहस्ता,  
५२१ गिरिरितः—कैलास पर्वतपर रमण करनेवाले,  
५२२ सम्माट—देवशर्वरोंके भी ईश्वर, ५२३ सुयोगः—सुखकुद्धि-  
प्रमथगमणोंकी सुन्दर सेनासे युक्त तथा देवशर्वउओंका संस्तर  
करनेवाले ॥ ६५ ॥

अमोदोऽरिष्टनेमिश्र कुमुदो विगतज्वरः ।

स्वयंज्योतिस्तुनुज्योतिरात्मज्योतिरक्षलः ॥ १६ ॥

५२४ अमोघोऽशिष्टनेमिः—अमोघ संकल्पयाले महर्षि कथपरम, ५२५ कुमुदः—भूतलको आहाद प्रदान करनेवाले चन्द्रसाल्प, ५२६ विगतज्वरः—चिन्तारहित, ५२७ स्वयंज्योति-सन्ज्योतिः—अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यम् व्योतिःस्वरूप, ५२८ आत्मज्योतिः—अपने स्वरूपभूत शानकी प्रभासे प्रकाशित, ५२९ अचञ्चलः—चञ्चलतासे रहित ॥ ६६ ॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुभालनेत्रखण्डितमुः ।

शानस्कन्दो महानीतिर्विश्वोत्पत्तिलिप्पलवः ॥ ६७ ॥

५३० पिङ्गलः—पिङ्गलवर्णवाले, ५३१ कपिलश्मश्रुः—कपिल वर्णकी दाढ़ीभूष रखनेवाले दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ५३२ भालनेवाले—ललटमें तृतीय नेत्र धारण करनेवाले, ५३३ त्रयीतनुः—तीनों लोक या तीनों वेद जिनके स्वरूप हैं, ऐसे, ५३४ शानस्कन्दो महानीतिः—शानप्रद और श्रेष्ठ नीतिवाले, ५३५ विश्वोत्पत्तिः—जगत्के उत्पादक, ५३६ उपप्लवः—चंद्रकारी ॥ ६७ ॥

भगो विवस्वानादित्यो योगपारो दिवस्पतिः ।

कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ॥ ६८ ॥

५३७ भगो विवस्वानादित्यः—अदितिनन्दन भग एवं विवस्वान्, ५३८ योगपारः—योगविद्यामें पारंगत, ५३९ दिवस्पतिः—स्वर्णलोकके स्वामी, ५४० कल्याणगुणनामा—कल्याणकारी गुण और नामवाले, ५४१ पापहा—पापनाशक, ५४२ पुण्यदर्शनः—पुण्यजनक दर्शनवाले अथवा पुण्यसे ही जिनका दर्शन होता है, ऐसे ॥ ६८ ॥

ददारकीर्तिरुद्घोरी सद्योगी सदसन्मयः ।

नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः ॥ ६९ ॥

५४३ उदारकीर्तिः—उत्तम कीर्तिवाले, ५४४ उद्योगी—उद्योगशील, ५४५ सद्योगी—श्रेष्ठ योगी, ५४६ सदसन्मयः—द्वित्स्वरूप, ५४७ नक्षत्रमाली—नक्षत्रोंकी मालासे अलंकृत भक्तशरूप, ५४८ नाकेशः—स्वर्गके स्वामी, ५४९ स्वाधिष्ठान-पदाश्रयः—स्वाधिष्ठान चक्रके आश्रय ॥ ६९ ॥

पवित्रः पापहारी च मणिपूरो नभोगतिः ।

एषुण्डरोकमासीनः शकः शान्तो वृषाकपिः ॥ ७० ॥

५५० पवित्रः पापहारी—नित्य शुद्ध एवं पापनाशक,

५५१ मणिपूरो—मणिपूर नामक चक्रस्वरूप, ५५२ नभोगतिः—

मणिपूरी, ५५३ हृषुण्डरोकमासीनः—हृदयकमलमें स्थित,

५५४ शकः—इन्द्रलय, ५५५ शान्तः—शान्तस्वरूप,

५५६ वृषाकपिः—हरिहर ॥ ७० ॥

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।

अधर्मशानुरक्षेयः पुरुहृतः पुरुश्रुतः ॥ ७१ ॥

५५७ उष्णः—हालाहल विषकी गर्भसि उष्णतायुक्त,

५५८ गृहपतिः—समस्त ब्रह्माण्डरूपी गृहके स्वामी,

५५९ कृष्णः—सच्चिदानन्दस्वरूप, ५६० समर्थः—सामर्थ्य-

शाली, ५६१ अनर्थनाशनः—अनर्थका नाश करनेवाले,

५६२ अधर्मशानुः—अधर्मनाशक, ५६३ धन्नेयः—

बुद्धिकी पहुँचसे परे अथवा जाननेमें न आनेवाले,

५६४ पुरुहृतः पुरुश्रुतः—वहुतसे नामोद्वारा पुकारे और सुने जानेवाले ॥ ७१ ॥

ब्रह्मगर्भो वृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ।

जगद्वितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ७२ ॥

५६५ ब्रह्मगर्भः—ब्रह्मा जिनके गर्भस्थ शिशुके समान हैं,

ऐसे, ५६६ वृहद्गर्भः—विश्वब्रह्माण्ड प्रलयकालमें जिनके गर्भमें रहता है, ऐसे, ५६७ धर्मधेनुः—धर्मरूपी वृषभको उत्पन्न करनेके

लिये खेनुस्वरूप, ५६८ धनागमः—धनकी प्राप्ति करनेवाले, ५६९

जगद्वितैषी—समस्त संसारका हित चाहनेवाले, ५७० सुगतः—

उत्तम शानसे सम्पन्न अथवा बुद्धस्वरूप, ५७१ कुमारः—

कार्तिकेयरूप, ५७२ कुशलागमः—कल्याणदाता ॥ ७२ ॥

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नाभूतरतो ध्वनिः ।

अरागी नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥ ७३ ॥

५७३ हिरण्यवर्णः ज्योतिष्मान्—सुवर्णके समान गौर

वर्णवाले तथा तेजसी, ५७४ नानाभूतरतः—नाना प्रकारके

भूतोंके साथ कीड़ा करनेवाले, ५७५ ध्वनिः—नादस्वरूप,

५७६ अरागः—आसक्तिशूल्य, ५७७ नयनाध्यक्षः—नेत्रोंमें द्रष्ट-

रूपसे विद्यमान, ५७८ विश्वामित्रः—समृद्ध जगत्के प्रति

मैत्री भावना रखनेवाले सुनिश्चरूप, ५७९ धनेश्वरः—धनके

स्वामी कुवेर ॥ ७३ ॥

ब्रह्मज्योतिर्वसुधमा महाज्योतिरसुक्तमः ।

मातामहो मातरिद्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥ ७४ ॥

५८० ब्रह्मज्योतिः—ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, ५८१ वसुधमा—

सुवर्ण और रत्नोंके तेजसे प्रकाशित अथवा वसुधास्वरूप,

५८२ महाज्योतिरसुक्तमः—सूर्य आदि ज्योतियोंके प्रकाशम्,

सर्वोत्तम महाज्योतिःस्वरूप, ५८३ मातामहः—मातृकाओंके

जन्मदाता होनेके कारण मातामह, ५८४ मातरिद्वा नभस्वान्—

आकाशमें विचरनेवाले बायुदेव, ५८५ नागहारधृक्—सर्वमय

हार धारण करनेवाले ॥ ७४ ॥

पुलस्त्यः पुलहोडगस्त्यो जातूकण्यः पराशरः ।

निरावरणनिर्वारो वैरब्द्यो विष्ट्रश्रवाः ॥ ७५ ॥

५८६ पुलस्त्यः—पुलस्त्य नामक मुनि, ५८७ पुलहः—पुलह नामक शृष्टि, ५८८ अगस्त्यः—कुम्भजन्मा अगस्त्य शृष्टि, ५८९ जातूकण्यः—इसी नामसे प्रसिद्ध मुनि, ५९० पराशरः—शक्तिके पुत्र तथा व्यासजीके पिता मुनिवर पराशर, ५९१ निरावरणनिर्वारः—आवरणशून्य तथा अवरोधरहित, ५९२ वैरब्द्यः—ब्रह्माजीके पुत्र नीललोहित रुद्र, ५९३ विष्ट्रश्रवाः—विस्तृत यशवाले विष्णुस्वरूप ॥ ७५ ॥

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।

लोकवीराग्रणीर्चारिचण्डः सत्यपराक्रमः ॥ ७६ ॥

५९४ आत्मभूः—स्वयम्भू ब्रह्मा, ५९५ अनिरुद्धः—अकुण्ठित गतिवाले, ५९६ अत्रिः—अत्रि नामक शृष्टि, अथवा त्रिगुणातीर, ५९७ ज्ञानमूर्तिः—ज्ञानस्वरूप, ५९८ महायशाः—महायशस्वी, ५९९ लोकवीराग्रणीः—विश्वविरच्यात वीरोंमें अग्रगण्य, ६०० वीरः—शूरवीर, ६०१ चण्डः—प्रलयके समय अत्यन्त क्रोध करनेवाले, ६०२ सत्यपराक्रमः—सन्त्वे पराक्रमी ॥ ७६ ॥

व्यालाकल्पे महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।

अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्षमोन्नतः ॥ ७७ ॥

६०३ व्यालाकल्पः—सर्पोंके आभूषणसे शृङ्गार करनेवाले, ६०४ महाकल्पः—महाकल्प-नंशक कालस्वरूपवाले, ६०५ कल्पवृक्षः—शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्ष-के समान उदार, ६०६ कलाधरः—चन्द्रकलाधारी, ६०७ अलंकरिष्णुः—अलंकार धारण करने वां करनेवाले, ६०८ अचलः—विचलित न होनेवाले, ६०९ रोचिष्णुः—प्रकाशमान, ६१० विक्रमोन्नतः—पराक्रममें बढ़े-बढ़े ॥ ७७ ॥

आयुः शब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः ।

असंसृष्टोऽतिथिः शक्तप्रमाथी पादपासनः ॥ ७८ ॥

६११ आयुः शब्दपतिः—आयु तथा वाणीके स्वामी, ६१२ वेगी प्लवनः—वेगशाली तथा कृदने या तैरनेवाले, ६१३ शिखिसारथिः—अग्निरूप सहायकवाले, ६१४ असंसृष्टः—निर्लेप, ६१५ अतिथिः—प्रेमी भक्तोंके वरपर अतिथिकी भाँति उपस्थित हो उनका सत्कार ग्रहण करनेवाले, ६१६ शक्तप्रमाथी—इन्द्रका मानमर्दन करनेवाले, ६१७ पादपासनः—वृक्षोंपर या वृक्षोंके नीचे आसन लगानेवाले ॥ ७८ ॥

यसुश्रवा हच्यवाहः प्रतस्तो विश्वभोजनः ।

जप्यो जरादिशमनो लोहितात्मा तनूपात् ॥ ७९ ॥

६१८ वसुश्रवाः—यशरूपी घनसे सम्पन्न, ६१९ हच्यवाहः—अग्निस्वरूप, ६२० प्रतसः—सूर्यरूपसे प्रचण्ड ताप देनेवाले, ६२१ विश्भमोजनः—प्रलयकालमें विश्व ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बना लेनेवाले, ६२२ जप्यः—जपने योग्य नामवाले, ६२३ जरादिशमनः—बुदापा आदि दोषोंका निवारण करनेवाले, ६२४ लोहितात्मा तनूपात्—लोहित वर्णवाले अग्निरूप ॥ ७९ ॥

ब्रह्मदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्तहा ।

निदावस्तपनो मेघः स्वक्षः परपुरंजयः ॥ ८० ॥

६२५ ब्रह्मदश्वः—विशाल अश्ववाले, ६२६ नभोयोनिः—आकाशकी उत्पत्तिके स्थान, ६२७ सुप्रतीकः—सुन्दर शरीरवाले, ६२८ तमित्तहा—अशानान्धकारनाशक, ६२९ निदावस्तपनः—तपनेवाले ग्रीष्मरूप, ६३० मेघः—वादलेसे उपलक्षित वर्षारूप, ६३१ स्वक्षः—सुन्दर नेत्रोवाले, ६३२ परपुरंजयः—त्रिपुररूप शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले ॥ ८० ॥

सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः ।

वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभसो बीजवाहनः ॥ ८१ ॥

६३३ सुखानिलः—सुखदायक वायुको प्रकट करनेवाले शरत्कालरूप, ६३४ सुनिष्पन्नः—जिसमें अन्नका सुन्दररूपसे परिपाक होता है, वह हैमन्तकालरूप, ६३५ सुरभिः शिशिरात्मकः—सुगन्धित मलयानिलसे युक्त शिशिर शृतुरूप, ६३६ वसन्तः माधवः—चैत्र-वैशाख—इन दो मासोंसे युक्त वसन्तरूप, ६३७ ग्रीष्मः—ग्रीष्म शृतुरूप, ६३८ नभस्यः—भाद्रपदमासरूप, ६३९ बीजवाहनः—धान आदिके बीजोंकी प्राप्ति करनेवाला शरत्काल ॥ ८१ ॥

अङ्गिरा गुरुरायेयो विमलो विश्ववाहनः ।

पावनः सुमतिर्विद्वान्स्त्रैविद्यो वरवाहनः ॥ ८२ ॥

६४० अङ्गिरा गुरुः—अङ्गिरा नामक शृष्टि तथा उनके पुत्र देवगुरु वृहस्पति, ६४१ आत्रेयः—अत्रिकुमार दुर्योश, ६४२ विमलः—निर्मल, ६४३ विश्ववाहनः—सम्पूर्ण जगत्का निवार्ह करनेवाले, ६४४ पावनः—पवित्र करनेवाले, ६४५ सुमतिर्विद्वान्—उत्तम बुद्धिवाले विद्वान, ६४६ त्रैविद्यः—तीनों वेदोंके विद्वान् अथवा तीनों वेदोंके द्वारा प्रतिपादित, ६४७ वरवाहनः—वृषभरूप श्रेष्ठ वाहनवाले ॥ ८२ ॥

मनोबुद्धिरुद्धकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ।

जमदग्निर्वलनिधिर्विगालो विश्वगालवः ॥ ८३ ॥

६४८ भनोतुष्टिरहंकारः—मन, बुद्धि और अहंकारस्वरूप,  
६४९ क्षेत्रज्ञः—आत्मा; ६५० क्षेत्रपालकः—शरीररूपी क्षेत्रका  
पालन करनेवाले परमात्मा, ६५१ जमदग्निः—जमदग्नि नामक  
शृणिरूप, ६५२ बलनिधिः—अनन्त बलके सामग्र,  
६५३ विगालः—अपनी जटासे गङ्गाजीके जलको टपकानेवाले,  
६५४ विश्वविश्वात गालव मुनि अथवा प्रलय-  
कालमें कालगिनरूपसे जगत्को निगल जानेवाले ॥ ८३ ॥

अधोरोऽनुत्तरौ यज्ञः श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रदः।  
शैलो गगनकुन्दभो दानवारिरिदमः ॥ ८४ ॥

६५५ अघोरः—सौम्यरूपवाले, ६५६ अनुत्तरः—सर्वश्रेष्ठ,  
६५७ यज्ञः श्रेष्ठ—श्रेष्ठ यज्ञरूप, ६५८ निःश्रेयसप्रदः—  
कल्याणदाता, ६५९ शैलः—शैलमय लिङ्गरूप, ६६० गगन-  
कुन्दभः—आकाशकुन्द—चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले,  
६६१ दानवारिः—दानव-शत्रु, ६६२ अरिदमः—शत्रुओंका  
दमन करनेवाले ॥ ८४ ॥

रजनीजनकशार्हनिःशब्द्यो लोकशब्द्यधृक् ।  
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥ ८५ ॥

६६३ रजनीजनकशार्हः—सुन्दर निशाकर रूप,  
६६४ निःशब्द्यः—निष्कण्ठक, ६६५ लोकशब्द्यधृक्—शरणागत-  
जनकि शोकशब्द्यको निकालकर स्वयं धारण करनेवाले,  
६६६ चतुर्वेदः—चारों वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य,  
६६७ चतुर्भावः—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करनेवाले,  
६६८ चतुरश्चतुरप्रियः—चतुर एवं चतुर पुरुषोंके प्रिय ॥ ८५ ॥

आमनायोऽथ समाजनायस्तीर्थदेवशिवालयः।  
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥ ८६ ॥

६६९ आमनायः—वेदस्वरूप, ६७० समाजनायः—  
अत्तरसमाजनाय—शिवसूत्ररूप, ६७१ तीर्थदेवशिवालयः—तीर्थों-  
के देवता और शिवालयरूप, ६७२ बहुरूपः—अनेक रूपवाले,  
६७३ महारूपः—विराद्भूपधारी, ६७४ सर्वरूपश्चराचरः—चर-  
और अचर समूर्ण रूपवाले ॥ ८६ ॥

न्यायनिर्मायको न्यायी न्यायगम्यो निरक्षनः।  
दृहस्तमूर्द्धा देवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभक्षनः ॥ ८७ ॥

६७५ न्यायनिर्मायको न्यायी—न्यायकर्ता तथा न्यायशील,  
६७६ न्यायगम्यः—न्याययुक्त आचरणसे प्राप्त होनेयोग्य,  
६७७ निरक्षनः—निर्मल, ६७८ सहस्रमूर्द्धा—सहस्रों सिरवाले,  
६७९ देवेन्द्रः—देवताओंके स्वामी, ६८० सर्वशास्त्रप्रभक्षनः—  
सिद्धे देवताओंके समूर्ण शब्दोंको नष्ट कर देनेवाले ॥ ८७ ॥

३७० पृ० ५० अ० ४८—

मुण्डो विरुद्धो विकान्तो दण्डी दान्तो गुणोक्तमः ।  
पिङ्गलाक्षी जनाध्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥ ८८ ॥

६८१ मुण्डः—मुँडे हुए सिरवाले संन्यासी, ६८२ विरूपः—  
विविध रूपवाले, ६८३ विकान्तः—विक्रमशील, ६८४  
दण्डी—दण्डधारी, ६८५ दान्तः—मन और इन्द्रियोंका दमन  
करनेवाले, ६८६ गुणोक्तमः—गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ,  
६८७ पिङ्गलाक्षः—पिङ्गल नेत्रवाले, ६८८ जनाध्यक्षः—  
जीवमात्रके साक्षी, ६८९ नीलग्रीवः—नीलकण्ठ, ६९०  
निरामयः—नीरोग ॥ ८८ ॥

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ।  
पश्चासनः परं ज्योतिः पास्मपर्यफलप्रदः ॥ ८९ ॥

६९१ सहस्रबाहुः—सहस्रों भुजाओंसे युक्त, ६९२  
सर्वेशः—सबके स्वामी, ६९३ शरण्यः—शरणागत-हितैषी,  
६९४ सर्वलोकधृक्—समूर्ण लोकोंको धारण करनेवाले,  
६९५ पश्चासनः—कमलके आसनपर विराजमान,  
६९६ परं ज्योतिः—परम प्रकाशस्वरूप, ६९७ पास्मपर्य-  
फलप्रदः—परमरागत फलकी प्राप्ति करनेवाले ॥ ८९ ॥

पश्चगभौ महागभौ विश्वगभौ चिच्छणः ।  
परावरत्नो वरदो वरेण्यथ महास्वनः ॥ ९० ॥

६९८ पश्चगभैः—अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले  
विष्णुरूप, ६९९ महागभैः—विराट् ब्रह्माण्डको गर्भमें धारण  
करनेके कारण महान् गर्भवाले, ७०० विश्वगभैः—समूर्ण  
जगत्को अपने उदरमें धारण करनेवाले, ७०१ चिच्छणः—  
चतुर, ७०२ परावरत्नः—कारण और कार्यके शाता,  
७०३ वरदः—अभीष्ट वर देनेवाले, ७०४ वरेण्यः—वरणीय  
अथवा श्रेष्ठ, ७०५ महास्वनः—उमरका गम्भीर नाद  
करनेवाले ॥ ९० ॥

देवासुरगुरुर्देवी देवासुरनमस्कृतः ।  
देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेश्वरः ॥ ९१ ॥

७०६ देवासुरगुरुर्देवः—देवताओं तथा अनुरोद्धे गुरुदेव  
एवं आराध्य, ७०७ देवासुरनमस्कृतः—देवताओं और अनुरोद्धे  
वन्दित, ७०८ देवासुरमहामित्रः—देवता तथा अनुर देवोंके  
वडे मित्र, ७०९ देवासुरमहेश्वरः—देवताओं और अनुरोद्धे  
महान् ईश्वर ॥ ९१ ॥

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहात्म्यः ।  
देवदेवमयोऽचिन्त्यो देवदेवानमस्तम्यः ॥ ९२ ॥

७१० देवासुरेश्वरः—देवताओं और अनुरोद्धे शानक,

७११ दिव्यः—अलौकिक स्वरूपवाले, ७१२ देवासुरमहाथ्रयः—देवताओं और असुरोंके महान् आश्रय, ७१३ देवदेवमयः—देवताओंके लिये भी देवतालूप, ७१४ अचिन्त्यः—चित्तकी सीमासे परे विद्यमान, ७१५ देवदेवात्मसम्भवः—देवाधिदेव ब्रह्माजीसे सद्गुरुमें उत्पन्न ॥ ९२ ॥

सद्योनिरसुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः ।  
विवृधाग्रचरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ ९३ ॥

७१६ सद्योनिः—सत्पदाथौकी उत्पत्तिके हेतु, ७१७ असुरव्याघ्रः—असुरोंका विनाश करनेके लिये व्याग्ररूप, ७१८ देवसिंहः—देवताओंमें श्रेष्ठ, ७१९ दिवाकरः—सूर्यरूप, ७२० विवृधाग्रचरश्रेष्ठः—देवताओंके नायकोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७२१ सर्वदेवोत्तमोत्तमः—सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंके भी शिरोमणि ॥ ९३ ॥

शिवज्ञानरतः श्रीमाल्लिखिश्रीपर्वतप्रियः ।  
बज्रहस्तः सिद्धखड्डो नरसिंहनिपातनः ॥ ९४ ॥

७२२ शिवज्ञानरतः—कल्याणमय शिवतत्त्वके विचारमें तत्पर, ७२३ श्रीमान्—अणिमा आदि विभूतियोंसे सम्पन्न, ७२४ शिखिश्रीपर्वतप्रियः—कुमार कार्तिकेयके निवासमूर्त श्रीशैल नामक पर्वतसे प्रेम करनेवाले, ७२५ बज्रहस्तः—बज्रधारी इन्द्ररूप, ७२६ सिद्धखड्डः—शान्तिरूपोंको मार गिरनेमें जिनकी तलवार कभी असफल नहीं होती, ऐसे, ७२७ नरसिंहनिपातनः—शरभरूपसे नृसिंहको धराशायी करनेवाले ॥ ९४ ॥

ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ।  
नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नगनव्रतधरः शुचिः ॥ ९५ ॥

७२८ ब्रह्मचारी—भगवती उमाके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मचारीरूपसे प्रकट, ७२९ लोकचारी—समस्त लोकोंमें विचरनेवाले, ७३० धर्मचारी—धर्मका आचरण करनेवाले, ७३१ धनाधिपः—धनके अधिपति कुत्रै, ७३२ नन्दी—नन्दी नामक गण, ७३३ नन्दीश्वरः—इसी नामसे प्रसिद्ध बृप्तम, ७३४ अनन्तः—अन्तरहित, ७३५ नगनव्रतधरः—दिग्मर रहनेका व्रत धारण करनेवाले, ७३६ शुचिः—नित्य-शुद्ध ॥ ९५ ॥

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः ।  
स्वधर्मा स्वर्गतः स्वर्गस्वरः स्वरमयस्वनः ॥ ९६ ॥

७३७ लिङ्गाध्यक्षः—लिङ्गदेवके द्रष्टा, ७३८ सुराध्यक्षः—देवताओंके अधिपति, ७३९ योगाध्यक्षः—योगेश्वर,

७४० युगावहः—युगके निर्वाहक, ७४१ स्वधर्मा—आत्मविचाररूप धर्ममें स्थित अथवा स्वधर्मपरायण, ७४२ स्वर्गतः—स्वर्गलोकमें स्थित, ७४३ स्वर्गस्वरः—स्वर्गलोकमें जिनके वडाका गान किया जाता है, ऐसे, ७४४ स्वरमयस्वनः—सात प्रकारके स्वरोंसे युक्त व्यनिवाले ॥ ९६ ॥

वाणाध्यक्षो वीजकर्ता धर्मकृद्धर्मसम्भवः ।  
दम्भोऽलोभोऽर्थविच्छिन्नमुः सर्वभूतमहेश्वरः ॥ ९७ ॥

७४५ वाणाध्यक्षः—वाणासुरके स्वामी अथवा वाणलिङ्ग नर्मदेश्वरमें अधिदेवतास्पसे स्थित, ७४६ वीजकर्ता—वीजके उत्पादक, ७४७ धर्मकृद्धर्मसम्भवः—धर्मके पालक और उत्पादक, ७४८ दम्भः—मायामयरूपधारी, ७४९ अलोभः—लोभरहित, ७५० अर्थविच्छिन्नमुः—सबके प्रयोजनको जाननेवाले कल्याण-निकेतन शिव, ७५१ सर्वभूतमहेश्वरः—सम्पूर्ण प्राणियोंके परमेश्वर ॥ ९७ ॥

इमशाननिलयस्त्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः ।  
लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्यक्षको नागभूषणः ॥ ९८ ॥

७५२ इमशाननिलयः—इमशानवासी, ७५३ त्यक्षः—त्रिनेत्रधारी, ७५४ सेतुः—धर्ममर्यादाके पालक, ७५५ अप्रतिमाकृतिः—अनुपम रूपवाले, ७५६ लोकोत्तरस्फुटालोकः—अलौकिक एवं सुस्पष्ट प्रकाशसे युक्त, ७५७ त्यक्षकः—त्रिनेत्रधारी अथवा त्यक्षक नामक ज्योतिलिङ्ग, ७५८ नागभूषणः—नागहारसे विभूषित ॥ ९८ ॥

अन्धकारिमाद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः ।  
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूपदन्तभित् ॥ ९९ ॥

७५९ अन्धकारिः—अन्धकासुरका वध करनेवाले, ७६० मरवद्वेषी—दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, ७६१ विष्णुकन्धरपातनः—यज्ञमय विष्णुका गला काटनेवाले, ७६२ हीनदोषः—दोप्ररहित, ७६३ अक्षयगुणः—अविनाशी गुणोंसे सम्पन्न, ७६४ दक्षारिः—दक्षद्रोही, ७६५ पूपदन्तभित्—पूप देवताके दाँत तोड़नेवाले ॥ ९९ ॥

धूर्जिटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनवः ।  
अक्कालः सकलाधारः पाण्डुराभो मृद्दो नटः ॥ १०० ॥

७६६ धूर्जिटिः—जटाके भारसे विभूषित, ७६७ खण्डपरशुः—खण्डित परशुवाले, ७६८ सकलो निष्कलः—साकार एवं निराकार परमात्मा, ७६९ अनवः—प्रापके त्वर्त्से शूल, ७७० अक्कालः—कालके प्रभावसे रहित, ७७१ सकलाधारः—सबके आधार ७७२ पाण्डुराभः—द्वेषत कानित्यां, ७७३ मृद्दो नटः—मूलदायक एवं ताण्डवनृत्यकारी ॥ १०० ॥

पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ।  
सामग्रेयप्रियोऽकूरः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥१०१॥

७७४ पूर्णः—सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा, ७७५ पूरयिता—  
मक्षोकी अभिलाप्ता पूर्ण करनेवाले, ७७६ पुण्यः—परम पवित्र,  
७७७ सुकुमारः—सुन्दर कुमार हैं जिनके, ऐसे,  
७७८ सुलोचनः—सुन्दर नेत्रवाले, ७७९ सामग्रेयप्रियः—  
सामग्रानके प्रेमी, ७८० अकूरः—कूरतारहित, ७८१ पुण्यकीर्तिः—  
पवित्र कीर्तिवाले, ७८२ अनामयः—रोग-शोकसे रहित ॥ १०१॥

मनोजयस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।  
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥१०२॥

७८३ मनोजयः—मनके समान वेगशाली, ७८४ तीर्थकरः—  
तीर्थोंके निर्माता, ७८५ जटिलः—जटाधारी, ७८६ जीवितेश्वरः—  
सद्वके प्राणेश्वर, ७८७ जीवितान्तकरः—प्रलयकालमें सद्वके  
जीवनका अन्त करनेवाले, ७८८ नित्यः—सनातन,  
७८९ वसुरेताः—सुबर्णमय वीर्यवाले, ७९० वसुप्रदः—  
धनदाता ॥१०२॥

सद्गतिः सत्कृतिः सिद्धिः सज्जातिः खलकण्टकः ।  
कलाधरो महाकालभूतः सत्यपरायणः ॥१०३॥

७९१ सद्गतिः—सत्पुरुषोंके आश्रय, ७९२ सत्कृतिः—शुभ  
कर्म करनेवाले, ७९३ सिद्धिः—सिद्धिस्तरलुप, ७९४ सज्जातिः—  
सत्पुरुषोंके जन्मदाता, ७९५ खलकण्टकः—दुष्टोंके लिये कण्टक-  
रूप, ७९६ कलाधरः—कलाधारी, ७९७ महाकालभूतः—  
महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गस्तरलुप अथवा कालके भी काल  
दैनेसे महाकाल, ७९८ सत्यपरायणः—सत्यनिष्ठ ॥१०३॥

लोकलावण्यकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः ।  
चन्द्रसंजीवनः शास्त्रा लोकगृहो महाधिपः ॥१०४॥

७९९ लोकलावण्यकर्ता—सद्य लोगोंको सौन्दर्य प्रदान  
करनेवाले, ८०० लोकोत्तरसुखालयः—लोकोत्तर सुखके आश्रय,  
८०१ चन्द्रसंजीवनः शास्त्रा—सोमनाथरूपसे चन्द्रमाको जीवन  
प्रदान करनेवाले सर्वशासक शिव, ८०२ लोकगृहः—समस्त  
जीवारमें अव्यक्तरूपसे व्यापक, ८०३ महाधिपः—महेश्वर ॥१०४॥

लोकवन्धुलोकनाथः कृतज्ञः कीर्तिभूषणः ।  
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशक्तिभूतां वरः ॥१०५॥

८०४ लोकवन्धुलोकनाथः—सम्पूर्ण लोकोंके वन्धु एवं  
पिता, ८०५ कृतज्ञः—उपकारको माननेवाले, ८०६  
कैलासविश्वासी—उत्तम वशसे विभूषित, ८०७ अनपायोऽक्षरः—

विनाशरहित—अविनाशी, ८०८ कान्तः—प्रजापति दक्षका अन्त  
करनेवाले, ८०९ सर्वशक्तिभूतां वरः—सम्पूर्ण शक्तिधारियोंमें  
श्रेष्ठ ॥ १०५ ॥

तेजोमयो श्रुतिधरो लोकानामग्रणीरणुः ।  
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जेयो दुरतिक्रमः ॥१०६॥

८१० तेजोमयो श्रुतिधरः—तेजस्वी और कान्तिमान्,  
८११ लोकानामग्रणीः—सम्पूर्ण जगत्के लिये अग्रगण्य देवता  
अथवा जगत्को आगे बढ़ानेवाले, ८१२ अणुः—अत्यन्त सूक्ष्म,  
८१३ शुचिस्मितः—पवित्र मुस्कानवाले, ८१४ प्रसन्नात्मा—  
हर्षभरे हृदयवाले, ८१५ दुर्जेयः—जिनपर विजय पाना  
अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ८१६ दुरतिक्रमः—दुर्लङ्घ्य ॥१०६॥

ज्योतिर्मयो जगत्ताथो निश्कारो जलेश्वरः ।  
तुम्बवीणो महाकोपो विशेषः शोकनाशनः ॥१०७॥

८१७ ज्योतिर्मयः—तेजोमय, ८१८ जगत्ताथः—विश्वनाथ,  
८१९ निराकारः—आकाररहित परमात्मा, ८२० जलेश्वरः—  
जलके स्वामी, ८२१ तुम्बवीणः—तूँबीकी वीणा बजानेवाले,  
८२२ महाकोपः—संहारके समय महान् क्रोध करनेवाले,  
८२३ विशेषः—रोकरहित, ८२४ शोकनाशनः—शोकका नाश  
करनेवाले ॥ १०७ ॥

त्रिलोकपञ्चिलोकेशः सर्वशुद्धिरवोक्षजः ।  
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्तार्ज्यको विशाम्पतिः ॥ १०८ ॥

८२५ त्रिलोकपः—तीनों लोकोंका पालन करनेवाले,  
८२६ त्रिलोकेशः—त्रिभुवनके स्वामी, ८२७ सर्वशुद्धिः—सबकी  
शुद्धि करनेवाले, ८२८ अधोक्षजः—इन्द्रियों और उनके विषयोंसे  
अतीत, ८२९ अव्यक्तलक्षणो देवः—अव्यक्त लक्षणवाले देवता,  
८३० अक्ताव्यक्तः—स्थूल-सूक्ष्मरूप, ८३१ विशाम्पतिः—  
प्रजाओंके पालक ॥ १०८ ॥

वरशीलो वरगुणः सारो मानधनो मयः ।  
व्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः ॥ १०९ ॥

८३२ वरशीलः—श्रेष्ठ स्वभाववाले, ८३३ वरगुणः—उत्तम  
गुणोवाले, ८३४ सारः—सारतत्त्व, ८३५ मानधनः—त्वाभिमान-  
के धनी, ८३६ मयः—सुखस्तरलुप, ८३७ व्रह्मा—सुषिकर्ता  
व्रह्मा, ८३८ विष्णुः प्रजापालः—प्रजापालक विष्णु, ८३९ हंसः—  
सूर्यस्तरलुप, ८४० हंसगतिः—हंसके समान चालवाले,  
८४१ वयः—गच्छ पक्षी ॥ १०९ ॥

वेदा विधाता धाता च सदा हर्ता वतुमुखः ।  
कैलासविश्वासी सर्ववासी सदागतिः ॥ ११० ॥

८४२ वेदा विधाता धाता—ब्रह्मा, धाता और विधाता नामक देवतास्वरूप, ८४३ स्त्रष्टा—सुषिकर्ता, ८४४ हर्ता—संहरकारी, ८४५ चतुर्मुखः—चार मुखवाले ब्रह्मा, ८४६ कैलासशिखरावासी—कैलासके शिखरपर निवास करनेवाले, ८४७ सर्वावासी—सर्वव्यापी, ८४८ सदागति:—निरन्तर गतिशील वायुदेवता ॥ ११० ॥

हिरण्यगर्भों दुहिणो भूतपालोऽथ भूपतिः ।  
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः ॥ १११ ॥

८४९ हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा, ८५० दुहिणः—ब्रह्मा, ८५१ भूतपालः—प्राणियोंका पालन करनेवाले, ८५२ भूपतिः—पृथ्वीके स्वामी, ८५३ सद्योगी—श्रेष्ठ योगी, ८५४ योगविद्योगी—योग-विद्याके शाता योगी, ८५५ वरदः—वर देनेवाले, ८५६ ब्राह्मणप्रियः—ब्राह्मणोंके प्रेमी ॥ १११ ॥

देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिन्तकः ।  
विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥ ११२ ॥

८५७ देवप्रियो देवनाथः—देवताओंके प्रिय तथा रक्षक, ८५८ देवज्ञः—देवतत्वके शाता, ८५९ देवचिन्तकः—देवताओंका विचार करनेवाले, ८६० विषमाक्षः—विषम नेत्रवाले, ८६१ विशालाक्षः—वडे-वडे नेत्रवाले, ८६२ वृषदो वृषवर्धनः—धर्मका दान और वृद्धि करनेवाले ॥ ११२ ॥

निर्ममो निरहंकारो निर्मोहो निरुपद्रवः ।  
दर्पहा दर्पदो दसः सर्वतुपरिवर्तकः ॥ ११३ ॥

८६३ निर्ममः—ममतारहित, ८६४ निरहंकारः—अहंकार-शूल्य, ८६५ निर्मोहः—मोहशूल्य, ८६६ निरुपद्रवः—उपद्रव या उत्पातसे दूर, ८६७ दर्पहा दर्पदः—दर्पका हनन और खण्डन करनेवाले, ८६८ दसः—स्वभिमानी, ८६९ सर्वतुपरिवर्तकः—समस्त ऋतुओंको वदलते रहनेवाले ॥ ११३ ॥

सहस्रजित् सहस्राचिः स्त्रिग्रन्थकृतिदक्षिणः ।  
भूतभञ्जभवन्नाथः प्रभवो भूतिनाशनः ॥ ११४ ॥

८७० सहस्रजित्—सहस्रोंपर विजय पानेवाले, ८७१ सहस्राचिः—सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान सूर्यल्प, ८७२ स्त्रिग्रन्थकृतिदक्षिणः—स्त्रोहयुक्त स्वभाववाले तथा उदार, ८७३ भूतभञ्जभवन्नाथः—भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी, ८७४ प्रभवः—सर्वकी उत्पत्तिके कारण, ८७५ भूतिनाशनः—दुष्टोंके ऐश्वर्यका नाश करनेवाले ॥ ११४ ॥

अर्योऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपणिडतः ।

निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥ ११५ ॥

८७६ अर्थः—परमपुरुषा श्वरूप, ८७७ अर्तः—प्रयोजन रहित, ८७८ महाकोशः—अनन्त धनराशिके स्वामी ८७९ परकार्यैकपणिडतः—पराये कार्यको सिद्ध करनेकी कलाः एकमात्र विद्वान्, ८८० निष्कण्टकः—कण्टकरहित ८८१ कृतानन्दः—नित्यसिद्ध आनन्दस्वरूप, ८८२ निर्व्याज व्याजमर्दनः—स्वयं कपटरहित होकर दूसरेके कपटके नष्ट करनेवाले ॥ ११५ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यकीर्तिः स्नेहकृतागमः ।

अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत ॥ ११६ ॥

८८३ सत्त्ववान्—सत्त्वगुणसे युक्त, ८८४ सात्त्विकः—सत्त्व निष्ठ, ८८५ सत्यकीर्तिः—सत्यकीर्तिवाले, ८८६ स्नेहकृतागमः—जीवोंके प्रति स्नेहके कारण विभिन्न आगमोंको प्रकाशमें लानेवाले, ८८७ अकम्पितः—सुस्थिर, ८८८ गुणग्राही—गुणोंका आदर करनेवाले, ८८९ नैकात्मा नैककर्मकृत—अनेकरूप होकर अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले ॥ ११६ ॥

सुप्रीतिः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानिलः ।

नन्दिस्कन्धधरो धूर्यः प्रकटः ग्रीतिवर्धनः ॥ ११७ ॥

८९० सुप्रीतिः—अत्यन्त ग्रसन्न, ८९१ सुमुखः—सुन्दर मुखवाले, ८९२ सूक्ष्मः—स्थूलभावसे रहित, ८९३ सुकरः—सुन्दर हाथवाले, ८९४ दक्षिणानिलः—मल्यानिलके समान सुखद, ८९५ नन्दिस्कन्धधरः—नन्दीकी पीठपर सवार होनेवाले, ८९६ धूर्यः—उत्तरदायित्वका भार वहन करनेमें सर्वथ, ८९७ प्रकटः—भक्तोंके सामने प्रकट होनेवाले अथवा ज्ञानियोंके सामने नित्य प्रकट, ८९८ ग्रीतिवर्धनः—प्रेमवदानेवाले ॥ ११७ ॥

अपराजितः सर्वसत्त्वो गोविन्दः सत्त्ववाहनः ।

अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥ ११८ ॥

८९९ अपराजितः—किसीसे परास्त न होनेवाले, ९०० सर्वसत्त्वः—सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आश्रय अथवा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके हेतु, ९०१ गोविन्दः—गोलोककी प्राप्ति करनेवाले, ९०२ सत्त्ववाहनः—सत्त्वस्वरूप धर्ममय वृपमसे वाहनका काम लेनेवाले, ९०३ अधृतः—आधाररहित, ९०४ स्वधृतः—अपने आपमें ही स्थित, ९०५ सिद्धः—नित्यसिद्ध, ९०६ पूतमूर्तिः—पवित्र शरीरवाले, ९०७ यशोधनः—सुवशके घनी ॥ ११८ ॥

वाराहशङ्करशङ्कन्द्री यज्ञवानेकनायकः ।

धूतिप्रकाशः धूतिमानेकवन्धुरेककृत ॥ ११९ ॥

९०८ वाराहशङ्खधूमी—वाराहको मारकर उसके दाढ़ स्थी शृङ्गोंको धारण करनेके कारण शृङ्गी नामसे प्रसिद्ध; ९०९ बलवान्—शक्तिशाली, ९१० एकनायकः—अद्वितीय नेता; ९११ श्रुतिप्रकाशः—देवोंको प्रकाशित करनेवाले, ९१२ श्रुति-सान्—देवज्ञानसे सम्पन्न, ९१३ एकवन्धुः—सबके एकमात्र सहायक, ९१४ अनेककृत्—अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सुष्ठि करनेवाले ॥ ११९ ॥

प्रतिस्तुलिवारम्भः शान्तभद्रः समो यशः ।

भूषणो भूषणो भूतिर्भूतकृदभूतभावनः ॥ १२० ॥

११५ श्रीवस्तुलशिवारम्भः—श्रीवत्सधारी विष्णुके लिये मङ्गलकारी, ११६ शान्तभद्रः—शान्त एवं मङ्गलरूप, ११७ समः—सर्वद समभाव रखनेवाले, ११८ यशः—यशस्वरूप, ११९ भूषणः—भूद्योपर शयन करनेवाले, १२० भूषणः—रथको विभूषित करनेवाले, १२१ भूतिः—कल्पाणस्वरूप, १२२ भूतकृत्—प्रणियोंकी सुष्ठि करनेवाले, १२३ भूतभावनः—भूतोंके उत्पादक ॥ १२० ॥

अकम्पो भक्तिकायस्तु कालहा नीललोहितः ।

सत्यव्रतमहात्मागी नित्यशान्तिपरायणः ॥ १२१ ॥

१२४ अकम्पः—कम्पित न होनेवाले, १२५ भक्तिकायः—भक्तिस्वरूप, १२६ कालहा—कालनाशक, १२७ नीललोहितः—नील और लोहित घर्णवाले, १२८ सत्यव्रतमहात्मागी—सत्यव्रतधारी एवं महान् त्यागी, १२९ नित्यशान्तिपरायणः—नित्यर शान्त ॥ १२१ ॥

पर्यवृत्तिर्वदो विरक्तस्तु विशारदः ।

शुभदः शुभकर्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥ १२२ ॥

१३० पर्यवृत्तिर्वदः—परोपकारवती एवं अभीष्ट वरदाता, १३१ विरक्तः—वैराग्यवान्, १३२ विशारदः—विज्ञानवान्, १३३ शुभदः शुभकर्ता—शुभ देने और करनेवाले, १३४ शुभनामा शुभः स्वयम्—स्वयं शुभस्वरूप होनेके कारण शुभ-भक्तिर्वाणी ॥ १२२ ॥

अनर्थितोऽगुणः साक्षी ह्यकर्ता कनकप्रभः ।

सनातनभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो विघ्ननाशनः ॥ १२३ ॥

१३५ अनर्थितः—यात्रनारहित, १३६ अगुणः—निर्गुण, १३७ साक्षी भक्ती—द्रष्टा एवं कर्तृत्वरहित, १३८ कनक-भद्रः—उमरें समान कान्तिमान्, १३९ स्वभावभद्रः—स्वभावतः—समान, १४० सम्यस्थः—उदासीन, १४१ शत्रुघ्नः—

शत्रुनाशक, १४२ विघ्ननाशनः—विघ्नोंका निवारण करनेवाले ॥ १२३ ॥

शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली ।

अमृत्युः सर्वदक्षिणस्तेजोरशिर्महामणिः ॥ १२४ ॥

१४३ शिखण्डी कवची शूली—मोरपंख, कवच और त्रिशूलधारण करनेवाले, १४४ जटी मुण्डी कुण्डली—जटा, मुण्डमाला और कवच धारण करनेवाले, १४५ अमृत्युः—मृत्युरहित, १४६ सर्वदक्षिणः—सर्वशोर्में श्रेष्ठ, १४७ तेजोरशिर्महामणिः—तेजःपुजा महामणि कौस्तुभादिरूप ॥ १२४ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान् वीर्यकोविदः ।

वेदाद्वचैव वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥ १२५ ॥

१४८ असंख्येयोऽप्रमेयात्मा—असंख्य नाम, रूप और गुणोंसे युक्त होनेके कारण किसीके द्वारा मापे न जा सकनेवाले, १४९ वीर्यवान् वीर्यकोविदः—पराक्रमी एवं पराक्रमके शाता, १५० वेदाः—ज्ञाननेयोग्य, १५१ वियोगात्मा—दीर्घकालतक सतीके वियोगमें अथवा विशिष्ट योगकी साधनामें संलग्न हुए मनवाले, १५२ परावरमुनीश्वरः—भूत और भविष्यके शाता मुनीश्वररूप ॥ १२५ ॥

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरप्रियदर्शनः ।

सुरेशः शरणं सर्वं शब्दव्रह्म सततं गतिः ॥ १२६ ॥

१५३ अनुत्तमो दुराधर्षः—सर्वोत्तम एवं दुर्जय, १५४ मधुरप्रियदर्शनः—जिनका दर्शन मनोहर एवं प्रिय लगता है, ऐसे, १५५ सुरेशः—देवताओंके ईश्वर, १५६ शरणम्—आश्रयदाता, १५७ सर्वः—सर्वस्वरूप, १५८ शब्दव्रह्म सततांगतिः—प्रणवरूप तथा सत्पुरुषोंके आश्रय ॥ १२६ ॥

कालपक्षः कालकालः कक्षणीकृतवासुकिः ।

महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्घो विश्वद्वूलः ॥ १२७ ॥

१५९ कालपक्षः—काल जिनका सहायक है, ऐसे, १६० कालकालः—कालके भी काल, १६१ कक्षणीकृतवासुकिः—वासुकि नामको अपने हाथमें कंगनके समान धारण करनेवाले, १६२ महेष्वासः—महाधनुर्धर, १६३ महीभर्ता—वृष्णीपालक, १६४ निष्कलङ्घः—कलकलङ्घन्य, १६५ विश्वद्वूलः—वन्धनरहित ॥ १२७ ॥

शुमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिः सिद्धिसाधनः ।

विश्वतः संद्वतः स्तुल्यो व्युदोरस्को महाभुजः ॥ १२८ ॥

१६६ शुमणिस्तरणिः—आकाशमें मणिके समान प्रकाश-

मान तथा भक्तोंको भवसागरसे तारनेके लिये नौकास्त्र सूर्य, १६७ धन्यः—कृतकृत्य, १६८ सिद्धिदः सिद्धिसाधनः—सिद्धिदाता और सिद्धिके साधक, १६९ विश्वतः संवृतः—सब ओरसे मायाद्वारा आवृत, १७० स्तुत्यः—स्तुतिके योग्य, १७१ व्युदीरस्कः—चौड़ी छातीवाले, १७२ महामुजः—बड़ी बाँहवाले ॥ १२८ ॥

सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः ।

निलैपो निष्पष्टपञ्चात्मा निर्वृद्धो व्यङ्गनाशनः ॥१२९॥

१७३ सर्वयोनिः—सदकी उत्तसिके स्थान, १७४ निरातङ्कः—निर्भय, १७५ नरनारायणप्रियः—नरनारायणके प्रेमी अथवा प्रियतम, १७६ निलैपो निष्पष्टपञ्चात्मा—दोष-सम्पर्कसे रहित तथा जगत्-प्रपञ्चसे अतीत स्वरूपवाले, १७७ निर्वृद्धः—विशिष्ट अङ्गवाले प्राणियोंके प्राकटयमें हेतु, १७८ व्यङ्गनाशनः—यज्ञादि कर्मोंमें होनेवाले अङ्गवैगुण्यका नाश करनेवाले ॥ १२९ ॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिर्निरङ्कुशः ।

निरवद्यमयोपायो विद्याराशी रसप्रियः ॥१३०॥

१७९ स्तव्यः—स्तुतिके योग्य, १८० स्तवप्रियः—स्तुतिके प्रेमी, १८१ स्तोता—स्तुति करनेवाले, १८२ व्यासमूर्तिः—व्यासस्वल्प, १८३ निरङ्कुशः—अङ्कुशरहित-स्वतन्त्र, १८४ निरवद्यमयोपायः—मोक्षप्राप्तिके निर्दोष उपायरूप, १८५ विद्याराशीः—विद्याओंके सागर, १८६ रसप्रियः—व्रह्मानन्दरसके प्रेमी ॥ १३० ॥

प्रशान्तदुद्दिरध्युणः संग्रही निव्यसुन्दरः ।

वैयाग्रध्युर्यो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः ॥१३१॥

१८७ प्रशान्तदुद्दिः—शान्त दुद्दिवाले, १८८ अङ्कुणः—क्षोभ या नाशसे रहित, १८९ संग्रही—भक्तोंका संग्रह करनेवाले, १९० निव्यसुन्दरः—सतत मनोहर, १९१ वैयाग्रध्युर्यः—व्याग्रचर्मधारी, १९२ धात्रीशः—त्रिहाजीके स्वामी, १९३ शाकल्यः—शाकल्यमृपिलम, १९४ शर्वरीपतिः—रात्रिके स्वामी चन्द्रमाल्य ॥ १३१ ॥

परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिश्चित्वस्त्वः ।

सोमो रसद्वो रसदः हर्वसस्त्रावलम्बनः ॥१३२॥

१९५ परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिः—परमार्थतत्त्वका उपदेश देनेवाले ज्ञानी गुरु दत्तात्रेयल्प, १९६ आश्रित्वस्त्वः—शरणागतीपर दया करनेवाले, १९७ सोमः—उगातद्वित, १९८ रसज्ञः—

भक्तिरसके शाता, १९९ रसदः—प्रेमरस प्रदान करनेवाले, २०० सर्वसस्त्रावलम्बनः—समस्त प्राणियोंको सहर देनेवाले ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीहरि प्रतिदिन सहस्र नामोङ्गारा भगवान् शिवकी स्तुति, सहस्र कमलोङ्गारा उनका पूजन एवं प्रार्थना किया करते थे । एक दिन भगवान् शिवकी लीलासे एक कमल कम हो जानेपर भगवान् विष्णुने अपना कमलोपम नेत्र ही चढ़ा दिया । इस तरह उनसे पूजित एवं प्रसन्न हो शिवने उन्हें चक्र दिया और इस प्रकार कहा—“हे ! सब प्रकारके अनर्थोंकी शान्तिके लिये तुम्हें मेरे स्वल्पका ध्यान करना चाहिये । अनेकानेक दुःखोंका नाश करनेके लिये इस सहस्रनामका पाठ करते रहना चाहिये तथा समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये सदा मेरे इस चक्रको प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये, यह सभी चक्रोंमें उत्तम है । दूसरे भी जो लोग प्रतिदिन इस सहस्रनामका पाठ करेंगे या करयेंगे, उन्हें स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं प्राप्त होगा । राजाओंकी ओरसे संकट प्राप्त होनेपर यदि मनुष्य साङ्गोपाङ्ग विधिपूर्वक इस सहस्रनामस्तोत्रका सौ बार पाठ करे तो निश्चय ही कल्याणका भागी होता है । यह उत्तम स्तोत्र रोगका नाशक, विद्या और धन देनेवाला, समूर्ण अभीष्टकी प्राप्ति करनेवाला, पुण्यजनक तथा सदा ही शिवभक्ति देनेवाला है । जिस फलके उद्देश्यसे मनुष्य यहाँ इस श्रेष्ठ स्तोत्रका पाठ करेंगे, उसे निस्संदेह प्राप्त कर लेंगे । जो प्रतिदिन सबैरे उठकर मेरी पूजाके पश्चात् मेरे सामने इसका पाठ करता है, सिद्धि उससे दूर नहीं रहती । उसे इस लोकमें समूर्ण अभीष्टों देनेवाली सिद्धि पूर्णतया प्राप्त होती है और अन्तमें वह सायुज्य मोक्षका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है ।”

सूतजी कहते हैं—“मुनीश्वरो ! ऐसा कहकर सबदेवर भगवान् रुद्र श्रीहरिके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये । भगवान् विष्णु भी शंकरजीके वचनसे तथा उस शुभ चक्रके पा जानेसे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए । किं वे प्रतिदिन शम्भुके ध्यानपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करते लगे । उन्हें आगे भक्तोंकी भी इसका उपदेश दिया । तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह प्रश्न तुनाशा है, जो श्रोताओंके पापको दूर लेनेवाला है । अब और क्या तुना चाहते हो ?” ( अध्याय ३५-३६ )

## भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाले व्रतोंका वर्णन, शिवरात्रि-व्रतकी विधि एवं महिमाका कथन

तदनन्दित ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने शिवजीकी आराधना-के द्वारा उत्तम एवं मनोवाञ्छित फल प्राप्त करनेवाले बहुत-से महान् ज्ञान-पुरुषोंके नाम बताये । इसके बाद ऋषियोंने फिर पूछा—‘व्यासशिष्य ! किस व्रतसे संतुष्ट होकर भगवान् शिव उत्तम सुख प्रदान करते हैं ? जिस व्रतके अनुष्ठानसे भक्तजनोंको भोग और मोक्षकी प्राप्ति हो सके, उसका आप विशेषरूपसे वर्णन कीजिये ।’

सूतजीने कहा—‘महर्षियो ! तुमने जो कुछ पूछा है, वही बता किसी समय ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजीने भगवान् शिवसे पूछी थी । इसके उत्तरमें शिवजीने जो कुछ कहा, वह मैं तुमलोगोंको बता रहा हूँ ।

भगवान् शिव बोले—‘मेरे बहुत-से व्रत हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । उनमें मुख्य दस व्रत हैं, जिन्हें जावालश्रुतिके विद्वान् ‘दश शैवव्रत’ कहते हैं । द्विजोंको चतुर यज्ञपूर्वक इन व्रतोंका पालन करना चाहिये । हरे ! प्रत्येक अष्टमीको केवल रातमें ही भोजन करे । विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमीको भोजनका सर्वथा त्याग कर दे । शुक्लपक्षकी एकादशी-श्री भी भोजन छोड़ दे । किंतु कृष्णपक्षकी एकादशीको रातमें मेरा पूजन करनेके पश्चात् भोजन किया जा सकता है । शुक्ल-पक्षकी अष्टोदशीको तो रातमें भोजन करना चाहिये; परंतु कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवव्रतधारी पुरुषोंके लिये भोजनका सर्वथा निशेष है । दोनों पक्षोंमें प्रत्येक सोमवारको प्रथमपूर्वक ऐवल रातमें ही भोजन करना चाहिये । शिवके व्रतमें तत्पर रहनेवाले लोगोंके लिये यह अनिवार्य नियम है । इन सभी व्रतोंके पूर्तिके लिये अपनी शक्तिके असुसार शिवभक्त श्रद्धियोंको भोजन कराना चाहिये । द्विजोंको इन सब व्रतोंका प्रथमपूर्वक पालन करना चाहिये । जो द्विज इनका त्याग करते हैं वे चोर होते हैं । मुक्तिमार्गमें प्रधीण पुरुषोंको मोक्षकी प्रति करनेवाले चार व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये । वे चार व्रत इस प्रकार हैं—भगवान् शिवकी पूजा, अन्तर्बोक्ष चप, शिवमन्दिरमें उपवास तथा काशीमें मरण । वे भोजने सनातन मार्ग हैं । सोमवारकी अष्टमी और कृष्णपक्ष-श्री चतुर्दशी—इन दो तिथियोंको उपवासपूर्वक व्रत रखना चप हो यह भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला होता है, इसमें अन्य विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

२। इन चारोंमें भी शिवरात्रिका व्रत ही सबसे अधिक

बलवान् है । इसलिये भोग और मोक्षलपी फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको मुख्यतः उसीका पालन करना चाहिये । इस व्रतकी छोड़कर दूसरा कोई मनुष्योंके लिये हितकारक व्रत नहीं है । यह व्रत सबके लिये धर्मका उत्तम साधन है । निष्काम अथवा सकाम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, खियों, बालकों, दासों, दासियों तथा देवता आदि सभी देहधारियोंके लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक बताया गया है ।

मांधामासके कृष्णपक्षमें शिवरात्रि तिथिका विशेष माहात्म्य बताया गया है । जिस दिन आधी रातके समयतक वह तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये । शिवरात्रि करोड़ों हत्याओंके पापका नाश करनेवाली है । केवल ! उस दिन सबेरेसे लेकर जो कार्य करना आवश्यक है, उसे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो । बुद्धिमान् पुरुष सबेरे उठकर बड़े आनन्दके साथ स्नान आदि नित्य कर्म करे । आलस्यको पास न आने दे । फिर शिवालयमें जाकर शिवलिङ्गका विधिवत् पूजन करके मुझ शिवको नमस्कार करनेके पश्चात् उत्तम रीतिसे संकल्प करे—

### संकल्प

देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ।

कर्तुभिद्धाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ॥

तव प्रभावादेवेश ! निर्विघ्नेन भवेदिति ।

कामाद्याः शत्रुं भां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि ॥

‘देवदेव ! महादेव ! नीलकण्ठ ! आपको नमस्कार है ।

देव ! मैं आपके शिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान करना चाहता हूँ ।

देवेश्वर ! आपके प्रभावसे यह व्रत बिना किसी विघ्न-वायाके पूर्ण हो और काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें ।’

ऐसा संकल्प करके पूजन-सामग्रीका संग्रह करे और उत्तम स्थानमें जो शाष्ट्रप्रसिद्ध शिवलिङ्ग हो, उसके पास रातमें जाकर स्वयं उत्तम विविधिविधानका सम्पादन करें; फिर शिवके दक्षिण या पश्चिम भागमें सुन्दर स्थानपर उनके निकट

१. शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ माननेसे फाल्गुन मासकी कृष्ण अष्टोदशी माघ मासकी कही गयी है । जहाँ शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ मानते हैं, उनके अनुसार वहाँ माघव अर्थं फाल्गुन समझना चाहिये ।

ही पूजा के लिये संचित सामग्री को रखें। तदनन्तर श्रेष्ठ पुरुष वहाँ फिर स्नान करे। स्नान के बाद सुन्दर बस्त्र और उपबस्त्र धारण करके तीन बार आचमन करने के पश्चात् पूजन आरम्भ करे। जिस मन्त्र के लिये जो द्रव्य नियत हो, उस मन्त्र को पढ़कर उसी द्रव्य के द्वारा पूजा करनी चाहिये। बिना मन्त्र के महादेवजी की पूजा नहीं करनी चाहिये। गीत, वाद्य, नृत्य आदि के साथ भक्तिभाव से सम्पन्न हो रात्रि के प्रथम पहर में पूजन करके विद्वान् पुरुष मन्त्र का जप करे। यदि मन्त्रश पुरुष उस समय श्रेष्ठ पार्थिव लिङ्ग का निर्माण करे तो नित्य-कर्म करने के पश्चात् पार्थिव लिङ्ग का ही पूजन करे। पहले पार्थिव बनाकर पीछे उसकी विधिवत् स्थापना करे। फिर पूजन के पश्चात् नाना प्रकार के स्तोत्रोद्वारा भगवान् वृषभध्वज को संतुष्ट करे। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि उस समय शिवरात्रि-ब्रत के माहात्म्य का पाठ करे। श्रेष्ठ भक्त अपने ब्रत की पूर्ति के लिये उस माहात्म्य को अद्वापूर्वक सुने। रात्रि के चारों पहरों में चार पार्थिव लिङ्गों का निर्माण करके आवाहन से लेकर विसर्जन तक क्रमशः उनकी पूजा करे और बड़े उत्सव के साथ प्रसन्नतापूर्वक जागरण करे। प्रातःकाल स्नान करके पुनः वहाँ पार्थिव शिव का स्थापन और पूजन करे। इस तरह ब्रत को पूरा करके हाथ जोड़ मस्तक छुकाकर बारंबार नमस्कार-पूर्वक भगवान् शम्भु से इस प्रकार प्रार्थना करे।

### प्रार्थना एवं विसर्जन

नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया ।  
विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुज्ञमम् ॥  
व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकुतेन घ ।  
संतुष्टो भव शर्वाच्य कृपां कुरु ममोपरि ॥

‘महादेव ! आपकी आशा से मैंने जो ब्रत प्रहण किया था, स्वामिन् ! वह परम उत्तम ब्रत पूर्ण हो गया ! अतः अब उसका विसर्जन करता हूँ। देवेश वर शर्व ! यथाशक्ति किये गये इस ब्रत से आप आज मुझपर कृपा करके संतुष्ट हों।’

तत्पश्चात् शिव को पुष्पाङ्गलि समर्पित करके विधिपूर्वक दान दे। फिर शिव को नमस्कार करके ब्रतसम्बन्धी नियम का विसर्जन कर दे। अपनी शक्ति के अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणों, विशेषतः संयासियों को भोजन कराकर पूर्णतया संतुष्ट करके नवं भी भोजन करे।

हेर ! शिवरात्रि को प्रत्येक प्रहर में श्रेष्ठ शिवभक्तों को जिस प्रकार विशेष पूजा करनी चाहिये, उसे मैं यथाता हूँ; सुनो ! प्रथम प्रहर में पार्थिव लिङ्ग की स्थापना करके अनेक सुन्दर

उपचारोद्वारा उत्तम भक्तिभाव से पूजा करे। पहले गन्ध, पुण्य आदि पाँच द्रव्योद्वारा सदा महादेवजी की पूजा करनी चाहिये। उस-उस द्रव्य से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रका उच्चारण करके पृथक्-पृथक् वह द्रव्य समर्पित करे। इस प्रकार द्रव्य-समर्पण के पश्चात् भगवान् शिव को जलधारा अर्पित करे। विद्वान् पुरुष चढ़े हुए द्रव्यों को जलधारा से ही उतारे। जलधारा के साथ-साथ एक सौ आठ मन्त्र का जप करके वहाँ निर्गुण-सगुणस्त्र शिव का पूजन करे। गुरुसे प्राप्त हुए मन्त्रोद्वारा भगवान् शिव की पूजा करे। अन्यथा नाममन्त्रोद्वारा सदाशिव का पूजन करना चाहिये। विचित्र चन्दन, अखण्ड चावल और काले तिलों से परमात्मा शिव की पूजा करनी चाहिये। कमल और कनर के फूल चढ़ाने चाहिये। आठ नाममन्त्रोद्वारा शंकरजी की पुण्य समर्पित करे। वे आठ नाम इस प्रकार हैं—भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम और ईशान। इनके आरम्भ में श्री और अन्त में चतुर्थी विमक्ति जोड़कर ‘श्रीभवाय नमः’ इत्यादि नाममन्त्रोद्वारा शिव का पूजन करे। पुष्प-समर्पण के पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। पहले प्रहर में विद्वान् पुरुष नैवेद्य के लिये पक्यान बनवा ले। फिर श्रीफल्युक्त विशेषाधर्य देकर ताम्बूल समर्पित करे। तदनन्तर नमस्कार और ध्यान करके गुरु के द्विये हुए मन्त्र का जप करे। गुरु मन्त्र न हो तो पञ्चाक्षर ( नमः शिवाय ) मन्त्र के जप से भगवा शंकर को संतुष्ट करे, धेनुमुद्रा दिखाकर उत्तम जल से तर्प करे। पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार पाँच ब्राह्मणों को भोजन करने का संकल्प करे। फिर जबतक पहला प्रहर पूरा न जाय, तबतक महान् उत्सव करता रहे।

### १. धेनुमुद्रा का लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां	मध्येषु	दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा ।
संयोज्य	तर्जनीं	मध्यमानामयोस्तथा ॥
दक्षमध्यमयोर्वामां	तर्जनीं	च नियोजयेत् ।
वामयानामया	दक्षकनिष्ठां	च नियोजयेत् ॥
दक्षयानामया	वामां	कनिष्ठां च नियोजयेत् ।
विहितांशेषुर्वी	चैपा	धेनुमुद्रा प्रकृतिंतः ॥

‘वाये हाथ की अंगुलियों के बीच में दाहिने हाथ की अंगुलियों के संयुक्त करके दाहिनी तर्जनी को मध्यमामें लगाये। दाहिने हाथ की मध्यमामें वाये हाथ की तर्जनी को मिलावे। फिर वाये हाथ की अनामिका से दाहिने हाथ की कनिष्ठिका और दाहिने हाथ की अनामिका के साथ वाये हाथ की कनिष्ठिका को संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचे की ओर करे। यहाँ धेनुमुद्रा ही गयी है।’

दूसरा प्रहर आरम्भ होनेपर पुनः पूजनके लिये संकल्प करे। अथवा एक ही समय न्यारों प्रहरोंके लिये संकल्प करके पहले प्रहरकी भाँति पूजा करता रहे। पहले पूर्वोक्त द्रव्योंसे पूजन करके फिर जलधारा समर्पित करे। प्रथम प्रहरकी अपेक्षा दुगुने मन्त्रोंका जप करके शिवकी पूजा करे। पूर्वोक्त तिळ, जौतथा कमल-पुष्पोंसे शिवकी अर्चना करे। विशेषतः विल्वपत्रोंसे परमेश्वर शिवका पूजन करना चाहिये। दूसरे प्रहरमें विजौरा नीबूके साथ अर्ध्य देकर खीरका नैवेद्य निवेदन करे। जनार्दन! इसमें पहलेकी अपेक्षा मन्त्रोंकी दुगुनी आवृत्ति करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प करे। शेष सब बातें पहलेकी ही भाँति तवतक करता रहे, जबतक दूसरा प्रहर पूरा न हो जाय। तीसरे प्रहरके आनेपर पूजन तो पहलेके समान ही करे; किंतु जौके स्थानमें गेहूँका उपयोग करे और आकके फूल चढ़ाये। उसके बाद नाना प्रकारके धूप एवं दीप देकर पूर्णका नैवेद्य भोग लगाये। उसके साथ भाँति-भाँतिके शाक भी अर्पित करे। इस प्रकार पूजन करके कपूरसे आरती उतारे। अनारके फलके साथ अर्ध्य दे और दूसरे प्रहरकी अपेक्षा दुगुना मन्त्र-जप करे। तदनन्तर दक्षिणासहित ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे और तीसरे प्रहरके पूरे होनेतक पूर्ववत् उत्सव करता रहे। चौथा प्रहर आनेपर तीसरे प्रहरकी पूजाका विसर्जन कर दे। पुनः आवाहन आदि करके विधिवत् पूजा करे। उड्ड, कँगनी, मूँग, सप्तधान्य, शङ्खीपुष्प तथा विल्वपत्रोंसे परमेश्वर शंकरका पूजन करे। उस प्रहरमें भाँति-भाँतिकी मिठाइयोंका नैवेद्य लगाये अथवा उड्डके बड़े आदि बनाकर उनके द्वारा सदाशिवको संतुष्ट करे। केलेके फलके साथ अथवा अन्य विविध फलोंके साथ शिवको अर्ध्य दे। तीसरे प्रहरकी अपेक्षा दूना मन्त्र-जप करे और यथाशक्ति ब्रह्मण-भोजनका संकल्प करे। गीत, वाद्य तथा नृत्यसे शिवकी आराधनापूर्वक समय विताये। भक्तजनोंको तवतक महान् उत्सव करते रहना चाहिये, जबतक अरुणोदय न हो जाय। अशोदय होनेपर पुनः स्नान करके भाँति-भाँतिके पूजनोपचारों और उपहारेंद्वारा शिवकी अर्चना करे। तत्यशात् अपना अभिरेक कराये, नाना प्रकारके दान दे और प्रहरकी संख्याके अनुसार व्रताणों तथा संन्यासियोंको अनेक प्रकारके भोज्य-प्रथयोंका भोजन कराये। फिर शंकरको नमस्कार करके उपाञ्छलि दे और बुद्धिमान् पुरुष उत्तमं स्फुति करके निम्नाद्वि मन्त्रोंसे ग्रार्थना करे—

तावकस्त्वद्वृतप्राणस्त्वच्छित्तोऽहं सदा सृङ् !  
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु ॥  
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।  
कृपानिधिविवाज्जात्वैव भूतनाथ प्रसीद मे ॥  
अनेनैवोपवासेन यज्ञातं फलमेव च ।  
तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः ॥  
कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा ।  
माभूतस्य कुले जन्म यत्र त्वं नहि देवता ॥

‘सुखदायक कृपानिधान शिव! मैं आपका हूँ। मेरे ग्राण आपमें ही लगे हैं और मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है। यह जानकर आप जैसा उचित समझें, बैसा करें। भूतनाथ! मैंने जानकर या अनजानमें जो जप और पूजन आदि किया है, उसे समझकर दयासागर होनेके नाते ही आप मुझपर प्रसन्न हों। इस उपवास-व्रतसे जो फल हुआ हो, उसीसे सुखदायक भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। महादेव! मेरे कुलमें सदा आपका भजन होता रहे। जहाँके आप इष्ट-देवता न हों, उस कुलमें मेरा कभी जन्म न हो।’

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् भगवान् शिवको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके ब्राह्मणोंसे तिळक और आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर शम्भुका विसर्जन करे। जिसने इस प्रकार व्रत किया हो, उससे मैं दूर नहीं रहता। इस व्रतके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे शिवरात्रि-व्रत करनेवालेके लिये मैं देन डालूँ। जिसके द्वारा अनायास ही इस व्रतका पालन हो गया, उसके लिये भी अवश्य ही मुक्तिका बीज वो दिया गया। मनुष्योंको प्रतिमास भक्तिपूर्वक शिवरात्रि-व्रत करना चाहिये। तत्यशात् इसका उद्योगन करके मनुष्य साङ्घोपाङ्ग फल लाभ करता है। इस व्रतका पालन करनेसे मैं शिव निश्चय ही उपासकके समस्त दुःखोंका नाश कर देता हूँ और उसे भोग-मोक्ष आदि सम्पूर्ण मनोवाच्चित फल प्रदान करता हूँ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! भगवान् शिवका यह अत्यन्त हितकारक और अद्भुत वचन सुनकर श्रीविष्णु अपने धामको लौट आये। उसके बाद इस उत्तम व्रतका अपना हित चहनेवाले लोगोंमें प्रचार हुआ। किसी समय केवल नारदजीसे भोग और मोक्ष देनेवाले इस दिव्य शिवरात्रि-व्रतका वर्णन किया था।

( अच्याय ३७-३८ )

## शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि

**ऋषि बोले—**सूतजी ! अब हमें शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि बताइये, जिसका अनुष्ठान करनेसे साक्षात् भगवान् शंकर निश्चय ही प्रसन्न होते हैं ।

**सूतजीने कहा—**ऋषियो ! तुमलोग भक्तिभावसे आदरपूर्वक शिवरात्रिके उद्यापनकी विधि सुनो, जिसका अनुष्ठान करनेसे वह व्रत अवश्य ही पूर्ण फल देनेवाला होता है । लगातार चौदह वर्षोंतक शिवरात्रिके शुभव्रतका पालन करना चाहिये । ब्रयोदशीको एक समय भोजन करके चतुर्दशीको पूरा उपवास करना चाहिये । शिवरात्रिके दिन नित्यकर्म सम्पन्न करके शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक शिवका पूजन करे । तत्पश्चात् वहाँ यज्ञपूर्वक एक दिव्य मण्डल बनवाये, जो तीनों लोकोंमें गौरीतिलक नामसे प्रसिद्ध है । उसके मध्यभागमें दिव्य लिङ्गतोभद्र मण्डलकी रचना करे अथवा मण्डपके भीतर सर्वतोभद्र मण्डलका निर्माण करे । वहाँ प्राजापत्य नामक कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये । वे शुभ कलश वस्त्र, फल और दक्षिणाके साथ होने चाहिये । उन सबको मण्डलके पार्श्वभागमें यज्ञपूर्वक स्थापित करे । मण्डपके मध्यभागमें एक सोनेका अथवा दूसरी धातु ताँचि आदिका बना हुआ कलश स्थापित करे । व्रती पुरुष उस कलशपर पार्वतीसहित शिवकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर रखें । वह प्रतिमा एक पल ( तोले ) अथवा आधे पल सोनेकी होनी चाहिये या जैसी आपनी शक्ति हो, उसके अनुसार प्रतिमा बनवा ले । वामभागमें पार्वतीकी और दक्षिण भागमें शिवकी प्रतिमा स्थापित करके रात्रिमें उनका पूजन करे । आलस्य छोड़कर पूजनका काम करना चाहिये । उस कार्यमें चार ऋत्तिजोंके साथ एक पवित्र आचार्यका वरण करे और उन सबकी आङ्ग लेकर भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करे । रातको प्रत्येक प्रहरमें पृथक्-पृथक् पूजा करते हुए जागरण करे । व्रती पुरुष भगवत्सम्बन्धी कीर्तन, गीत एवं नृत्य आदिके द्वारा सारी रात विताये । इस प्रकार

विधिवत् पूजनपूर्वक भगवान् शिवको संतुष्ट करके प्रातःकाल पुनः पूजन करनेके पश्चात् सविधि होम करे । फिर यथाशक्ति प्राजापत्य विधान करे । फिर ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये और यथाशक्ति दान दे ।

इसके बाद वस्त्र, अलंकार तथा आभूषणोंद्वारा पदीसहित ऋत्तिजोंको अलंकृत करके उन्हें विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् दान दे । फिर आवश्यक सामग्रियोंसे युक्त बछड़ेसहित गैरका आचार्यको यह कहकर विधिपूर्वक दान दे कि इस दानसे भगवान् शिव मुक्षपर प्रसन्न हों । तत्पश्चात् कलशसहित उस मूर्तिको वस्त्रके साथ वृषभकी पीठपर रखकर सम्पूर्ण अलंकारोंसहित उसे आचार्यको अर्पित कर दे । इसके बाद हाथ जोड़ मस्तक छुका बड़े प्रेमसे गद्द बाणीमें महाप्रभु महेश्वरदेवसे प्रार्थना करे ।

### प्रार्थना

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।  
ब्रतेननेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि ॥  
मया भक्त्यनुसारेण ब्रतमेतत् कृतं शिव ।  
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर ॥  
अज्ञानाद्यादि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।  
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तत्वं शंकर ॥

‘देवदेव ! महादेव ! शरणागतवत्सल ! देवेश !’  
इस ब्रतसे संतुष्ट हो आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ।  
शिव शंकर ! मैंने भक्तिभावसे इस ब्रतका पालन किया है ।  
इसमें जो कमी रह गयी हो, वह आपके प्रसादसे पूरी हो  
जाय । शंकर ! मैंने अनजानमें या जान-बूझकर जो जप-  
पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो ।’

इस तरह परमात्मा शिवको पुण्याङ्गलि अर्पण करके फिर नमस्कार एवं प्रार्थना करे । जिसने इस प्रकार व्रत पूर्ण कर लिया, उसके उस ब्रतमें कोई न्यूनता नहीं रहती । उससे वह मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है ।

( अध्याय ३९ )

### अनजानमें शिवरात्रि-व्रत करनेसे एक भीलपर भगवान् शंकरकी अद्भुत कृपा

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी ! पूर्वकालमें किसने इस उत्तम शिवरात्रि-व्रतका पालन किया था और अनजानमें

भी इस व्रतका पालन करके किसने कौन-सा फल प्राप्त किया था ?

सूतजीने कहा—मृषियो ! तुम सब लोग सुनो । मैं इस विषयमें एक निषादका प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । पहलेकी बात है किसी वनमें एक भील रहता था, जिसका नाम था—गुरुद्वाह । उसका कुदम्ब बड़ा था तथा वह बलवान् और क्रूर स्वभाव-का हेनेके साथ ही कूरतापूर्ण कर्ममें तत्पर रहता था । वह प्रतिदिन वनमें जाकर मृगोंको मारता और वहीं रहकर नारों प्रकारकी चोरियाँ करता था । उसने बचपनसे ही कभी कोई शुभ कर्म नहीं किया था । इस प्रकार वनमें रहते हुए उस दुरात्मा भीलका बहुत समय बीत गया । तदनन्तर एक दिन वही सुन्दर एवं शुभकारक शिवरात्रि आयी । किंतु वह दुरात्मा घने जंगलमें निवास करनेवाला था, इसलिये उस व्रतको नहीं जानता था । उसी दिन उस भीलके माता-पिता और पत्नीने भूखसे पीड़ित होकर उससे याचना की—‘वनेचर ! हमें खानेको दो ।’

उनके इस प्रकार याचना करनेपर वह तुरंत धनुष लेकर चल दिया और मृगोंके शिकारके लिये सारे वनमें धूमने लगा । दैवयोगसे उसे उस दिन कुछ भी नहीं मिला और सूर्य अस्त हो गया । इससे उसको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा—‘अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? आज वह सोचने लगा—‘अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? आज तो कुछ नहीं मिला । धरमें जो बच्चे हैं, उनका तथा माता-तो कुछ नहीं मिला । मेरी जो पत्नी है, उसकी भी क्या दशा पिताका क्या होगा ? मेरी जो पत्नी है, उसकी भी क्या दशा होगी ? अतः मुझे कुछ लेकर ही धर जाना चाहिये; अन्यथा नहीं ।’ ऐसा सोचकर वह व्याध एक जलाशयके समीप पहुँचा और जहाँ पानीमें उत्तरनेका धाट था, वहाँ जाकर पहुँचा और जहाँ पानीमें उत्तरनेका धाट था, वहाँ जाकर विचार करता था कि जहाँ कोई न-कोई जीव पानी पीनेके लिये अवश्य आयेगा । उसीको मारकर कुटकूल्य हो उसे साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक धरको जाऊँगा ।’ ऐसा निश्चय करके वह व्याध एक बेलके देहर चढ़ गया और वहीं जल साथ लेकर बैठ गया । उसके मनमें केवल यही चिन्ता थी कि कब कोई जीव आयेगा और कब मैं उसे मारूँगा । इसी प्रतीक्षामें भूख-प्याससे पीड़ित हो वह बैठा रहा । उस रातके पहले पहरमें एक प्यासी हरिणी वहाँ आयी, जो चकित होकर जोर-देते चौकड़ी भर रही थी । ब्राह्मणो ! उस मृगीको देखकर जोर-देते भड़ा हर्ष हुआ और उसने तुरंत ही उसके बधके लिये धन्ने धनुषपर एक बाणका संधान किया । ऐसा करते ही उसके हाथके धन्डेते थोड़ा-सा जल और विल्पन

नीचे गिर पड़े । उस पेड़के नीचे शिवलिङ्ग था । उक्त जल और विल्पनसे शिवकी प्रथम पहरकी पूजा सम्भव हो गयी । उस पूजाके माहात्म्यसे उस व्याधका बहुत-सा पातक तत्काल नष्ट हो गया । वहाँ हेनेवाली खड़खड़ाहटकी आवाजको सुनकर हरिणीने भयसे ऊपरकी ओर देखा । व्याधको देखते ही वह व्याकुल हो गयी और बोली—



मृगीने कहा—व्याध ! तुम क्या करना चाहते हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ ।

हरिणीकी वह बात सुनकर व्याधने कहा—आज मेरे कुदम्बके लोग भूखे हैं; अतः तुमको मारकर उनकी भूख मिटाऊँगा, उन्हें तृप्त करूँगा ।

व्याधका वह दारण बचन सुनकर तथा जिसे रोकना कठिन था, उस दुष्ट भीलको बाण ताने देखकर मृगी सोचने लगी कि ‘अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अच्छा कोई उपाय रचती हूँ ।’ ऐसा विचारकर उसने वहाँ इस प्रकार कहा ।

मृगी बोली—भील ! मेरे मांससे तुमको तुल होगा, इस अनर्थकारी शरीरके लिये इससे अधिक महान् पुण्यका कार्य और क्या हो उकता है ? उपकार करनेवाले प्राणीके

इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता॥ । परंतु इस समय मेरे सब वच्चे मेरे आश्रममें ही हैं । मैं उन्हें अपनी बहिनको अथवा स्वामीको सौंपकर लौट आऊँगी । बनेचर ! तुम मेरी इस बातको मिथ्या न समझो । मैं फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी, इसमें संशय नहीं है । सत्यसे ही धरती टिकी हुई है, सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादामें स्थित है और सत्यसे ही निर्वरोत्से जलकी धाराएँ गिरती रहती हैं । सत्यमें ही सब कुछ स्थित है । ।

**सूतजी कहते हैं—**मृगीके ऐसा कहनेपर भी जब व्याधने उसकी बात नहीं मानी, तब उसने अल्पन्त विसित एवं भयभीत हो पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया ।

**मृगी बोली—**व्याध ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने ऐसी शपथ खाती हूँ, जिससे घर जानेपर मैं अवश्य तुम्हारे पास लौट आऊँगी । ब्राह्मण यदि वेद वेचे और तीनों काल संघ्या न करे तो उसे जो पाप लगता है, पतिकी आशाका उल्लङ्घन करके स्वेच्छानुसार कार्य करनेवाली स्त्रियोंको जिस पापकी प्राप्ति होती है, किये हुए उपकारको न माननेवाले, भगवान् शंकरसे विमुख रहनेवाले, दूसरोंसे द्रोह करनेवाले, धर्मको लौंधनेवाले तथा विश्वासघात और छल करनेवाले लोगोंको जो पाप लगता है, उसी पापसे मैं भी लित हो जाऊँ, यदि लौटकर यहाँ न आऊँ ।

इस तरह अनेक शपथ खाकर जब मृगी चुपचाप खड़ी हो गयी, तब उस व्याधने उसपर विश्वास करके कहा—‘अच्छा, अब तुम अपने घरको जाओ ।’ तब वह मृगी चड़े हर्षके साथ पानी पीकर अपने आश्रम-मण्डलमें गयी । इतनेमें ही रातका वह पहला पहर व्याधके जागते-ही-जागते बीत गया । तब उस हिरनीकी बहिन दूसरी मृगी, जिसका पहलीने सरण किया था, उसीकी राह देखती हुई जल पीनेके लिये वहाँ आ गयी । उसे देखकर भीलने स्वयं बाणको तरकससे खींचा । ऐसा करते समय पुनः पहलेकी

\* उपकारकरत्यैव तत् पुण्यं जायते त्विह ।

तत् पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षश्चैरपि ॥

( यि० पु० को० ३० सं० ४० । २६ )

+ स्थिता सत्येन भरणी सत्येनैव च वारिधिः ।

सत्येन जलधाराक्ष सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

( यि० पु० को० ३० सं० ४० । २९ )

भाँति भगवान् शिवके ऊपर जल और विल्वपत्र गिरे । उसके द्वारा महात्मा शम्भुकी दूसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी । यद्यपि वह प्रसङ्गवश ही हुई थी, तो भी व्याधके लिये सुखदायिनी हो गयी । मृगीने उसे बाण खींचते देख पूछा—‘बनेचर ! यह क्या करते हो ?’ व्याधने पूर्ववत् उत्तर दिया—‘मैं अपने भूखे कुदम्बको तृप्त करनेके लिये तुझे मारूँगा ।’ वह सुनकर वह मृगी बोली ।

**मृगीने कहा—**व्याध ! मेरी बात सुनो । मैं धन्य हूँ । मेरा देह-धारण सफल हो गया; क्योंकि इस अनिय शरीरके द्वारा उपकार होगा । परंतु मेरे छोटे-छोटे वच्चे घरमें हैं । अतः मैं एक बार जाकर उन्हें अपने स्वामीको सौंप दूँ, फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी ।

**व्याध बोला—**तुम्हारी बातपर मुझे विश्वास नहीं है । मैं तुझे मारूँगा, इसमें संशय नहीं है ।

वह सुनकर वह हरिणी भगवान् विष्णुकी शपथ खाती हुई बोली—‘व्याध ! जो कुछ मैं कहती हूँ, उसे सुनो । यदि मैं लौटकर न आऊँ तो अपना साय पुण्य हर जाऊँ; क्योंकि जो वचन देकर उससे पलट जाता है, वह अपने पुण्यको हार जाता है । जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्रीको व्यागकर दूसरीके पास जाता है, वैदिक धर्मका उल्लङ्घन करके कपोलकल्पित धर्मपर चलता है, भगवान् विष्णुका भक्त होकर शिवकी निन्दा करता है, माता-पिताकी निधन-तिथिको शाद आदि न करके उसे सूना विता देता है तथा मनमें संतापका अनुभव करके अपने दिये हुए वचनको पूरा करता है, ऐसे लोगोंको जो पाप लगता है वही मुझे भी लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ ।’

**सूतजी कहते हैं—**उसके ऐसा कहनेपर व्याधने उस मृगीसे कहा—‘जाओ ।’ मृगी जल पीकर हर्षपूर्वक अपने आश्रमको गयी । इतनेमें ही रातका दूसरा प्रहर भी व्याधके जागते-जागते बीत गया । इसी समय तीसरा प्रहर आरम्भ हो जानेपर मृगीके लौटनेमें बहुत विलम्ब हुआ जान चकित हो व्याध उसकी खोज करने लगा । इतनेमें ही उसने जलके मार्गमें एक हिरनको देखा । वह बड़ा हृष्पुष्ट था । उसे देखकर बनेचरको बड़ा हर्ष हुआ और वह घनुपर बाण रखकर उसे मार डालनेको उद्यत हुआ । ऐसा करते समय उसके प्रारब्धवश कुछ जल और विल्वपत्र शिव-लिङ्गपर गिरे, जससे उसके सौभाग्यसे भगवान् शिवी

तीवरे प्रहरकी पूजा सम्बन्ध हो गयी। इस तरह भगवान्ने उसपर अपनी दया दिखायी। पत्तोंके गिरने आदिका शब्द मुक्तकर उस मृगने व्याधकी ओर देखा और पूछा—‘क्या कहते हैं?’ व्याधने उत्तर दिया—‘मैं अपने कुदुम्बको भोजन देनेके लिये तुम्हारा वध करूँगा।’ व्याधकी यह बात सुनकर हरिणके मनमें बड़ा हृषि हुआ और तुरंत ही व्याधसे इस प्रकार बोला।

हरिणने कहा—मैं धन्य हूँ। मेरा हृष्ट-पुष्ट हैना सफल हो गया; क्योंकि मेरे शरीरसे आपलोगोंकी तृप्ति होती। जिसका शरीर परोपकारके काममें नहीं आता, उसका सब कुछ व्यर्थ चला गया। जो सामर्थ्य रहते हुए भी किसीका उपकार नहीं करता है, उसकी वह सामर्थ्य व्यर्थ चली जाती है तथा वह परलोकमें नरकगामी होता है॥। परंतु एक बार मुझे जाने दो। मैं अपने बालकोंको उनकी मात्रके हाथमें छोड़कर और उन सबको धीरज बँधकर यहाँ लौटा आऊँगा।

उसके ऐसा कहनेपर व्याध मन-ही-मन बड़ा विसित हुआ। उसका हृदय कुछ शुद्ध हो गया था और उसके सारे पापपुङ्क नष्ट हो चुके थे। उसने इस प्रकार कहा।

व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये, वे सब तुम्हारी ही तरह याते बनाकर चले गये; परंतु वे वज्रक अभीतक यहाँ नहीं लैटे हैं। मृग! तुम भी इस समय संकटमें हो, इसलिये एक बोलकर चले जाओगे। किर आज मेरा जीवन-निर्वाह कैसे होगा?

मृग बोला—व्याध! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो। मैं असल्य नहीं है। सारा चराचर ब्रह्माण्ड सत्यसे ही टिका हृण्डि है। जिसकी वाणी शृंठी होती है, उसका पुण्य उसी क्षण नहीं हो जाता है; तथापि भील! तुम मेरी सच्ची प्रतिज्ञा सुनो। चंथाचालमें मैयुन तथा शिवरात्रिके दिन भोजन करनेसे जो योग लगता है, शृंठी गवाही देने, धरोहरको हङ्गप लेने तथा योग न करनेसे दिजको जो पाप होता है, वही पाप मुझे भी दो, यदि मैं लौटकर न आऊँ। जिसके मुख्यसे कभी शिवका

\* ये सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै।

प्रसान्नम् भवेद्यथं परत्र नरकं बजेत्॥

( छिं पु० छ० र० स० ४०। ५७ )

नाम नहीं निकलता, जो सामर्थ्य रहते हुए भी दूसरोंका उपकार नहीं करता, पर्वके दिन श्रीकल तोड़ता, अभश्य-भक्षण करता तथा शिवकी पूजा किये बिना और भस्त्र लगाये बिना भोजन कर लेता है, इन सबका पातक मुझे लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ।

सूतजी कहते हैं—उसकी बात सुनकर व्याधने कहा—‘जाओ, शीघ्र लौटना।’ व्याधके ऐसा कहनेपर मृग पानी पीकर चला गया। वे सब अपने अश्रमपर मिले। तीनों ही प्रतिज्ञावद्ध हो चुके थे। आपसमें एक दूसरेके वृत्तान्तको भलीभाँति सुनकर सत्यके पाशसे बँधे हुए उन सबने यही निश्चय किया कि वहाँ अवश्य जाना चाहिये। इस निश्चयके बाद वहाँ बालकोंको आश्वासन देकर वे सबके सब जानेके लिये उत्सुक हो गये। उस समय जेठी मृगीने वहाँ अपने स्वामीसे कहा—‘स्वामिन्! आपके बिना यहाँ बालक कैसे रहेंगे? प्रभो! मैंने ही वहाँ पहले जाकर प्रतिज्ञा की है; इसलिये केवल मुझको जाना चाहिये। आप दोनों यहाँ रहें।’ उसकी यह बात सुनकर छोटी मृगी बोली—‘वहिन! मैं तुम्हारी सेविका हूँ, इसलिये आज मैं ही व्याधके पास जाती हूँ। तुम यहाँ रहो।’ यह सुनकर मृग बोला—‘मैं ही वहाँ जाता हूँ। तुम दोनों यहाँ रहो; क्योंकि शिशुओंकी रक्षा मात्रासे ही होती है।’ स्वामीकी यह बात सुनकर उन दोनों मृगियोंने धर्मकी दृष्टिसे उसे सीकार नहीं किया। वे दोनों अपने पतिसे प्रेमपूर्वक बोले—‘प्रभो! पतिके बिना इस जीवनको धिक्कार है।’ तब उन सबने अपने वच्चोंको सांत्वना देकर उन्हें पङ्केसियंकि हाथमें सौंप दिया और स्वयं शीघ्र ही उस स्थानको प्रस्थान किया, जहाँ वह व्याधशिरोमणि उनकी प्रतीक्षामें बैठा था। उन्हें जाते देख उनके वे सब बच्चे भी पोछे-पीछे चले आये। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि इन माता-पितामार्दों जो गति होगी, वही हमारी भी हो। उन सबको एक साथ आया देख व्याधको बड़ा हृषि हुआ। उसने धनुपर वाण रखदा। उस समय पुनः जल और विल्वपत्र द्विवके ऊपर गिरे। उससे शिवकी चौथे पहरकी श्रुभ पूजा भी सम्बन्ध हो गयी। उस समय व्याधका सारा पाप तत्काल भस्त्र हो गया। इतनेमें ही दोनों मृगियाँ और मृग बोल उठे—‘व्याध-शिरोमणे! शीघ्र कृपा करके हमारे शरीरको लार्यक करो।’



उनकी यह बात सुनकर व्याधको बड़ा विस्मय हुआ। शिवपूजाके प्रभावसे उसको दुर्लभ ज्ञान प्राप्त हो गया। उसने सोचा—‘ये मृग ज्ञानहीन पशु होनेपर भी धन्य हैं, सर्वथा आदरणीय हैं; क्योंकि अपने शरीरसे ही परोपकारमें लगे हुए हैं। मैंने इस समय मनुष्य-जन्म पाकर भी किस पुरुषार्थका साधन किया? दूसरेके शरीरको पीड़ा देकर अपने शरीरको पोसा है। प्रतिदिन अनेक प्रकारके पाप करके अपने कुटुम्बका पालन किया है। हाय! ऐसे पाप करके मेरी क्या गति होगी? अथवा मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? मैंने जन्मसे लेकर अवतक जो पातक किया है, उसका इस समय मुझे स्वरण हो रहा है। मेरे जीवनको धिक्कार है, धिक्कार है।’ इस प्रकार ज्ञानसम्बन्ध होकर व्याधने अपने बाणको रोक लिया और कहा—‘श्रेष्ठ मृगो! तुम जाओ। तुम्हारा जीवन धन्य है।’

व्याधके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर तत्काल प्रसन्न हो गये और उन्होंने व्याधको अपने सम्मानित एवं पूजित स्वरूपका दर्शन कराया तथा कृपापूर्वक उसके शरीरका सर्व करके उससे प्रेमसे कहा—‘भील! मैं तुम्हारे ब्रतसे प्रसन्न हूँ।

वर माँगो।’ व्याध भी भगवान् शिवके उस स्फ़को देखकर तत्काल जीवन्मुक्त हो गया और ‘मैंने सब कुछ पा लिया’ यो कहता हुआ उनके चरणोंके आगे गिर पड़ा। उसके इस भावसे देखकर भगवान् शिव भी मन-ही-मन वडे प्रसन्न हुए और उसे ‘धुह’ नाम देकर कृपादृष्टिसे देखते हुए उन्होंने उसे दिव्य वर दिये।

**शिव वोले—**व्याध! सुनो, आजसे तुम शृङ्खलेषुरमें उत्तम राजधानीका आश्रय ले दिव्य भोगोंका उपभोग करे। तुम्हारे वंशकी वृद्धि निर्विघ्नरूपसे होती रहेगी। देवता भी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। व्याध! मेरे भक्तोंपर स्नेह रखनेवाले भगवान् श्रीराम एक दिन निश्चय ही तुम्हारे धर पधारेंगे और तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे। तुम मेरी सेवामें मन लगाकर दुर्लभ मोक्ष पा जाओगे।

इसी समय वे सब मृग भगवान् शंकरका दर्शन और प्रणाम करके मृगयोनिसे मुक्त हो गये तथा दिव्य-देहधारी हो विमानपर बैठकर शिवके दर्शनमात्रसे शापमुक्त हो दिव्यधामको चले गये। तबसे अञ्जुद पर्वतपर भगवान् शिव व्याधेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए, जो दर्शन और पूजन करनेपर तत्काल भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। महर्षियो! वह व्याध भी उस दिनसे दिव्य भोगोंका उपभोग करता हुआ अपनी राजधानीमें रहने लगा। उसने भगवान् श्रीरामकी कृपा पाकर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। अनजानमें ही इस ब्रतका अनुष्ठान करनेसे उसको सायुज्य मोक्ष मिल गया; फिर जो भक्तिमावसे सम्पन्न होकर इस ब्रतको करते हैं, वे शिवका शुभ सायुज्य प्राप्त कर लें, इसके लिये तो कहना ही क्या है। समूर्ण शास्त्रों तथा अनेक प्रकारके धर्मोंके विषयमें भलीभौति विचार करके इस शिवरात्रि-ब्रतको सबसे उत्तम बताया गया है। इस लोकमें जो नाना प्रकारके ब्रत, विविध तीर्थ, भौति-भौतिके विचित्र दान, अनेक प्रकारके यज्ञ, तरह-तरहके तप तथा वहुत-से जप हैं, वे सब इस शिवरात्रि-ब्रतकी समानता नहीं कर सकते। इसलिये अपना हित चाहनेवाले मनुष्योंको इस शुभतर ब्रतका अवश्य पालन करना चाहिये। वह शिवरात्रि-ब्रत दिव्य है। इससे सदा भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। महर्षियो! यह शुभ शिवरात्रि-ब्रत ब्रतराजके नामसे विख्यात है। इसके विषयमें सब वातें मैंने तुम्हें बता दीं। अब और क्या सुनना चाहते हो?

( अव्याय ४० )

## मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन

ऋग्योंने पूछा—सूतजी ! आपने बारंबार मुक्तिका नाम लिया है । यहाँ मुक्ति मिलनेपर क्या होता है ? मुक्तिमें जीवकी कैसी अवस्था होती है ? यह हमें बताइये ।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! सुनो । मैं तुमसे संसार-क्लेशका निवारण तथा परमानन्दका दान करनेवाली मुक्तिका स्वरूप बताता हूँ । मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है—सात्त्व्या, सांलोक्या, सांनिध्या तथा चौथी सायुज्या । इस शिवरात्रिन्नतसे सब प्रकारकी मुक्ति सुलभ हो जाती है । जो ज्ञानरूप अविनाशी, साक्षी, ज्ञानगम्य और द्वेषग्रहित साक्षात् शिव है, वे ही वहाँ कैवल्य-मोक्षके तथा धर्म, अर्ध और कामरूप विवरणके भी दाता हैं । कैवल्या नामक जो पाँचवीं मुक्ति है, वह मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है । मुनिवरो ! मैं उसका लक्षण बताता हूँ, सुनो । जिनसे यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है, जिनके द्वारा इसका पालन होता है तथा अन्ततोगत्वा यह जिसमें वीन होता है, वे ही शिव हैं । जिससे यह सम्पूर्ण जगत् जात है, वही शिवका रूप है । मुनीश्वरो ! वेदोंमें शिवके दो शरण, अनन्त एवं सचिदानन्द नामसे प्रसिद्ध हैं । निर्गुण, उपाधिराहित, अविनाशी, शुद्ध एवं निरञ्जन ( निर्मल ) हैं । वह न लाल है न पीला, न सफेद है न नीला; न छोटा है उत्ते न लंबा और न मोटा है न महीन । जहाँसे मनसाहित वाणी शिव कहलाता है । जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार यह शिवतत्त्व भी सर्वव्यापी है । यह मायासे परे, सम्पूर्ण द्वंद्वसे रहित तथा मत्सरताशृत्य परमात्मा है । यहाँ ये ज्ञानका उदय होनेसे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होती है । अपत्य दिजो ! सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा शिवका ही भजन-गम करनेसे सत्युरुपोंकी शिवपदकी प्राप्ति होती है ॥  
चंतरमें ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परंतु

भगवान्का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है । इसलिये संताशिरोमणि पुरुष मुक्तिके लिये भी शिवका भजन ही करते हैं । ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजनके ही अधीन हैं । भक्तिसे ही बहुतसे पुरुष सिद्धिल्लाभ करके प्रसन्नतापूर्वक परम मोक्ष पा गये हैं । भगवान् शम्भुकी भक्ति ज्ञानकी जननी मानी गयी है, जो सदा भोग और मोक्ष देनेवाली है । वह साधु महापुरुषोंके कृपा-प्रसादसे सुलभ होती है । उत्तम प्रेमका अङ्कुर ही उसका लक्षण है । दिजो ! वह भक्ति भी सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारकी जाननी चाहिये । फिर वैधी और स्वाभाविकी—ये दो भेद और होते हैं । इनमें वैधीकी अपेक्षा स्वाभाविकी श्रेष्ठ मानी गयी है । इनके सिवा नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे भक्तिके दो प्रकार और बताये गये हैं । नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी । फिर विहिता और अविहिताके भेदसे विद्वानोंने उसके अनेक प्रकार माने हैं । उनके बहुतसे भेद होनेके कारण यहाँ विस्तृत वर्णन नहीं किया जा रहा है । उन दोनों प्रकारकी भक्तियोंके श्रवण आदि भेदसे नौ अङ्क जानने चाहिये । भगवान्की कृपाके बिना इन भक्तियोंका सम्पादन होना कठिन है और उनकी कृपासे सुगमतापूर्वक इनका साधन होता है । दिजो ! भक्ति और ज्ञानको शम्भुने एक दूसरेसे भिन्न नहीं बताया है । इसलिये उनमें भेद नहीं करना चाहिये । ज्ञान और भक्ति दोनोंके ही साधकको सदा सुख मिलता है । ब्राह्मणो ! जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती । भगवान् शिवकी भक्ति करनेवालेको ही शीघ्रतापूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है । अतः मुनीश्वरो ! महेश्वरकी भक्तिका साधन करना आवश्यक है । उसीसे सबकी सिद्धि होगी, इसमें संशय नहीं है । महर्षियो ! तुमने जो कुछ पूछा था, उसीका मैंने वर्णन किया है । इस प्रसङ्गको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे निस्तंदेह मुक्त हो जाता है ।

( अध्याय ४१ )

\* तत्वं ज्ञाननन्दं च सचिदानन्दसंशितन् । निर्गुणो निरूपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः ॥  
त तज्ज्ञैव पीतश्च न इवेतो नील एव च । न हस्यो न च दर्शकं न स्थूलः स्थूलं एव च ॥  
पृणे वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा तदः । तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंबन्धन् ॥  
भक्तयः व्यापकं वदत् तथैव व्यापकं विदन् । मायातोत्तं परात्मानं द्विदातोत्तं विनित्तरन् ॥  
द्विप्राप्तिथ भवेत्वं शिवधानेऽद्याद् ध्वेद् । भजनांश्च शिवस्वैव द्वृत्मनस्या तत्त्वां दिजः ॥

## शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माके स्वरूपका विवेचन

भृष्णियोंने पूछा—शिव कौन है? विष्णु कौन है? रुद्र कौन हैं और ब्रह्मा कौन हैं? इन सबमें निर्णय कौन है? हमारे इस संदेहका आप निवारण कीजिये।

सूत जीने कहा—महर्षियो! वेद और वेदान्तके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि निर्णय परमात्मासे सर्वप्रथम जो सगुणरूप प्रकट हुआ, उसका नाम शिव है। शिवसे पुष्ट्यसहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनोंने मूलस्थानमें स्थित जलके भोतर तप किया। वह स्थान पञ्चक्रोशी काशीके नामसे विख्यात है, जो भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह जल सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त था। उस जलका आश्रय ले योगभायसे युक्त श्रीहरि वहाँ सोये। नार अर्थात् जलको अयन ( निवास-स्थान ) बनानेके कारण फिर 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति 'नारायणी' कहलायो। नारायणके नाभिकमलसे जिनकी उत्पत्ति हुई, वे ब्रह्मा कहलाते हैं। ब्रह्माने तपस्या करके जिनका साक्षात्कार किया, उन्हें विष्णु कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णुके विवादको शान्त करनेके लिये निर्णय शिवने जो रूप प्रकट किया, उसका नाम 'महादेव' है। उन्होंने कहा—‘मैं शम्भु ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट होऊँगा’ इस कथनके अनुसार समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये जो ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट हुए, उनका नाम रुद्र हुआ। इस प्रकार रूप-रहित परमात्मा सबके विन्तनका विषय बननेके लिये सकार-रूपमें प्रकट हुए। वे ही साक्षात् भक्तवत्सल शिव हैं। तीनों गुणोंसे भिन्न शिवमें तथा गुणोंके धाम रुद्रमें उसी तरह वास्तविक भेद नहीं है, जैसे मुर्वण और उसके अभूप्रणमें नहीं है। दोनोंके रूप और कर्म समान हैं। दोनों समानरूपसे भक्तोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं। दोनों समानरूपसे सबके सेवनीय हैं तथा नाना प्रकारके लीला-विहार करनेवाले हैं। भयानक-पराक्रमी रुद्र सर्वथा शिवरूप ही हैं। वे भक्तोंके कार्यकी सिद्धिके निमित्त विष्णु और ब्रह्माजी सहायता करनेके लिये प्रकट हुए हैं। अन्य जो-जो देवता जिस क्रमसे प्रकट हुए हैं, उसी क्रमसे ल्यको प्राप्त होते हैं। परंतु रुद्रदेव उस तरह लीन नहीं होते। उनका साक्षात् शिवमें ही ल्य होता है। ये प्राकृत प्राणी रुद्रमें मिलकर ही ल्यको प्राप्त होते हैं। परंतु रुद्र इनमें मिलकर ल्यको नहीं प्राप्त होते। यह भावतो श्रुतिका उपदेश है। तब लोग रुद्रका भजन करते हैं, किंतु रुद्र किसीका गजन नहीं करते। वे भक्त-

वस्तल होनेके कारण कभी-कभी अपने-आप भक्तजनोंका चिन्तन कर लेते हैं। जो दूसरे देवताका भजन करते हैं, वे उसीमें लीन होते हैं; इसीलिये वे दीर्घकालके बाद रुद्रमें लीन होनेका अवसर पाते हैं। जो कोई रुद्रके भक्त है, वे तत्काल शिव हो जाते हैं; अतः उनके लिये दूसरेकी अपेक्षा नहीं रहती। वह सनातन श्रुतिका सदेश है।

द्विजो! अज्ञान अनेक प्रकारका होता है, परंतु विज्ञानका एक ही स्वरूप है। वह अनेक प्रकारका नहीं होता। उसके समझनेका प्रकार मैं बताऊँगा, तुमलोग आदरपूर्वक सुनो। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ भी यहाँ देखा जाता है, वह सब शिवरूप ही है। उसमें नानात्वकी कल्यना मिथ्या है। सुष्ठिके पूर्व भी शिवकी सत्ता बतायी गयी है, सुष्ठिके मध्यमें भी शिव विराज रहे हैं, सुष्ठिके अन्तमें भी शिव रहते हैं और जब सब कुछ शून्यतामें परिणत हो जाता है, उस समयभी शिवकी सत्ता रहती ही है। अतः मुनीश्चरो! शिवको ही चतुर्गुण कहा गया है। वे ही शिव शक्तिमान् होनेके कारण 'भगुण' जाननेयोग्य हैं। इस प्रकार वे सगुण-निर्णयके भेदसे दो प्रकारके हैं। जिन शिवने ही भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण सनातन वेद, अनेक वर्ण, अनेक मात्रा तथा अपना ध्यान एवं पूजन दिये हैं, वे ही सम्पूर्ण विद्याओंके ईश्वर हैं—ऐसी सनातन श्रुति है। अतएव शम्भुको 'वेदोंका प्राकृत्यकर्ता' तथा 'वेदपति' कहा गया है। वे ही सबपर अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शंकर हैं। कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी, तथा निर्णय भी वे ही हैं। दूसरोंके लिये कालका मान है, परंतु कालस्वरूप रुद्रके लिये कालकी कोई गणना नहीं है; क्योंकि वे साक्षात् स्व महाकाल हैं और महाकाली उनके आधित हैं। ब्राह्मण, रुद्र और कालीको एक-से ही बताते हैं। उन दोनोंने सत्य लील करनेवाली अपनी इच्छासे ही सब कुछ प्राप्त किया है। शिवका कोई उत्तादक नहीं है। उनका कोई पालक और संहारक भी नहीं है। वे स्वयं सबके हेतु हैं। एक होकर भी अनेकताको प्राप्त हो सकते हैं और अनेक होकर भी एकताको। एक ही वीज वाहर होकर वृक्ष और फल आदिके रूपमें परिणत होता हुआ पुनः वीजभावको प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार शिवरूपी महेश्वर स्वयं एकसे अनेक होनेमें रहते हैं। यह उत्तम शिवज्ञान तत्त्वतः बताया गया है। शानदान् उमा ही इसको जानता है, दूसरा नहीं।

मुनि वोले—सूतजी! आप लक्षणसहित शनवा लगें

कीजिये, जिसको जानकर भनुष्य शिवभावको प्राप्त हो जाता है। सारा जगत् शिव कैसे है अथवा शिव ही सम्पूर्ण जगत् कैसे है?

शृणियोंका यह प्रश्न सुनकर पौराणिकशिरोमणि सूतजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चित्तन करके उनसे कहा।  
(अध्याय ४२)

## शिवसम्बन्धी तत्त्वज्ञानका वर्णन तथा उसकी महिमा, कोटिरुद्रसंहिताका माहात्म्य एवं उपसंहार

सूतजीने कहा—शृणियो! मैंने शिवज्ञान जैसा सुना है, उसे बता रहा हूँ। तुम सब लोग सुनो, वह अत्यन्त गुच्छ और परम मोक्षस्वरूप है। ब्रह्मा, नारद, सनकादि भुजि, व्यास तथा कपिल—इनके समाजमें इन्हीं लोगोंने निश्चय करके जानक जो स्वरूप चताया है, उसीको व्यथार्थ ज्ञान समझना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् शिवमय है, यह ज्ञान सदा अनुशीलन करनेयोग्य है। सर्वज्ञ विद्वान्‌को यह निश्चितरूपसे जानना चाहिये कि शिव सर्वमय है। ब्रह्मासे लेकर तुणपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिव ही है। वे महादेवजी ही शिव कहलाते हैं। जब उनकी इच्छा होती है, तब वे इस जगत्‌की रचना करते हैं। वे ही सबको जानते हैं, उनको कोई नहीं जानता। वे इस जगत्‌की रचना करके सर्व इसके भीतर प्रविष्ट होकर भी इससे दूर हैं। वास्तवमें उनका इसमें प्रवेश नहीं हुआ है; क्योंकि वे निर्लिप्त, सञ्चिदानन्दस्वरूप हैं। जैसे सूर्य आदि ज्योतिर्योंका जलमें प्रतिब्रिम्म पड़ता है, वास्तवमें जलके भीतर उनका प्रवेश नहीं होता, उसी प्रकार साक्षात् शिवके विषयमें समझना चाहिये। वस्तुतः तो वे सर्व ही सब कुछ हैं। मत्तमेद ही अज्ञान है; क्योंकि शिवसे भिन्न किसी दैत वस्तुकी सत्ता नहीं होता। सम्पूर्ण दर्शनोंमें मत्तमेद ही दिखाया जाता है, परंतु वेदान्ती नित्य अद्वैत तत्त्वका वर्णन करते हैं। जीव परमात्मा शिवका ही अंश है; परंतु अविद्यासे मोहित होकर अवश्य हो रहा है और अपनेको शिवसे भिन्न समझता है। अविद्यासे मुक्त होनेपर वह शिव ही हो जाता है। शिव सबको व्याप्त करके स्थित है और सम्पूर्ण अनुओंमें व्यापक है। वे जड़ और चेतन—सबके ईश्वर होकर सर्व ही सबका कल्याण करते हैं। जो विद्वान् पुरुष वेदान्त-मार्गिका आश्रय ले उनके साक्षात्कारके लिये साधना करता है, उसे वह साक्षात्काररूप फल अवश्य प्राप्त होता है। व्यापक भौतिक प्रत्येक काष्ठमें स्थित है; परंतु जो उस काष्ठका भग्न करता है, वही असंदिग्धरूपसे अग्निको प्रकट करके देता है। उसी तरह जो बुद्धिमान् यहाँ भक्ति आदि साधनोंपर अनुशान करता है, उसे अवश्य शिवका दर्शन प्राप्त होता

है, इसमें संशय नहीं है। सर्वत्र केवल शिव हैं, शिव हैं, शिव हैं; दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वे शिव भ्रमसे ही सदा नाना रूपोंमें भासित होते हैं।

जैसे समुद्र, मिठ्ठी अथवा सुवर्ण—ये उपाधिभेदसे नानात्व-को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार भगवान् शंकर भी उपाधियोंसे ही अनेक रूपोंमें भासते हैं। कार्य और कारणमें वास्तविक भेद नहीं होता। केवल भ्रमसे भरी हुई बुद्धिके द्वारा ही उसमें भेदकी प्रतीति होती है। भ्रम दूर होते ही भेदबुद्धिका नाश हो जाता है। जब वीजसे अङ्कुर उत्पन्न होता है, तब वह नानात्वको प्रकट करता है; फिर अन्तमें वह वीजरूपमें ही स्थित होता है और अङ्कुर नष्ट हो जाता है। जानी वीजरूपमें ही स्थित है और नाना प्रकारके विकार अङ्कुररूप हैं। उन विकारस्वरूप अङ्कुरोंकी निवृत्ति हो जानेपर पुरुष फिर जानी-रूपमें ही स्थित होता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। सब कुछ शिव है और शिव ही सब कुछ है। शिव तथा सम्पूर्ण जगत्‌में कोई भेद नहीं है; फिर क्यों कोई अनेकता देखता है और क्यों एकता दृढ़ता है। जैसे एक ही सूर्य नामक ज्योति जल आदि उपाधियोंमें विशेषरूपसे नाना प्रकार-की दिखायी देती है, उसी प्रकार शिव भी हैं। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी स्वर्ण आदि वन्धनमें नहीं आता, उसी प्रकार व्यापक शिव भी कहीं नहीं वैधते। अहंकारसे युक्त होनेके कारण शिवका अंश जीव कहलाता है। उस अहंकारसे मुक्त होनेपर वह साक्षात् शिव ही है। कर्मोंके भोगमें लिप्त होनेके कारण जीव तुच्छ है और निर्लिप्त होनेके कारण शिव महान् हैं। जैसे एक ही सुवर्ण आदि चौंदी आदिसे मिल जानेपर कम कीमतका हो जाता है, उसी प्रकार अहंकारसुक्त जीव अपना महत्व खो वैठता है। जैसे क्षार आदिसे शुद्ध किया हुआ उत्तम सुवर्ण आदि पूर्ववत् बहुमूल्य हो जाता है, उसी प्रकार संस्कारविशेषसे शुद्ध होकर जीव भी शुद्ध हो जाता है।

पहले सदूरको पाकर भक्तिभावसे युक्त हो शिवबुद्धिसे उनका पूजन और सरण आदि करे। गुरुमें शिवबुद्धि करनेसे

सारे पाप आदि मल शरीरसे निकल जाते हैं। उस समय अशान नष्ट हो जाता है और मनुष्य ज्ञानवान् हो जाता है। उस अवस्थामें अहंकारमुक्त निर्मल बुद्धिवाला जीव भगवान् शंकरके प्रसादसे पुनः शिवरूप हो जाता है। जैसे दर्पणमें अपना रूप दिखायी देता है, उसी तरह उसे सर्वत्र शम्भुका साक्षात्कार होने लगता है। वही जीवन्मुक्त कहलाता है। शरीर गिर जानेपर वह जीवन्मुक्त ज्ञानी शिवमें मिल जाता है। शरीर प्रारब्धके अधीन है; जो उस देहके अभिमानसे रहित है, उसे ज्ञानी माना गया है। जो शुभ वस्तुको पाकर हर्षसे खिल नहीं उठता, अशुभको पाकर क्रोध या शोक नहीं करता तथा सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वोंमें सम्भाव रखता है, वह ज्ञानवान् कहलाता है।<sup>५५</sup> अत्मचिन्तनसे तथा तत्त्वोंके विवेकसे ऐसा प्रयत्न करे कि शरीरसे अपनी पृथक्कूटाका बोध हो जाय। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष शरीर एवं उसके अभिमानको त्यागकर अहंकारशूल्य एवं मुक्त हो सदाशिवमें विलीन हो जाता है। अध्यात्मचिन्तन एवं भगवान् शिवकी भक्ति—ये ज्ञानके मूल कारण हैं। भक्तिसे सोधनविषयक प्रेमकी उपलब्धि बतायी गयी है। प्रेमसे श्रवण होता है, श्रवणसे सत्सङ्ग प्राप्त होता है और सत्सङ्गसे ज्ञानी गुरुकी उपलब्धि होती है। गुरुकी कृपासे ज्ञान प्राप्त हो जानेपर मनुष्य निश्चय ही मुक्त हो जाता है। इसलिये जो समझदार है, उसे सदा शम्भुका ही भजन करना चाहिये। जो अनन्य भक्तिसे युक्त होकर शम्भुका भजन करता है, उसे अन्तमें अवश्य ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अतः मुक्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान् शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। उनकी शरण लेकर जीव संसारन्धनसे छूट जाता है।

ब्राह्मणो ! इस प्रकार वहाँ पधारे हुए श्रृंगियोंने परस्पर निश्चय करके जो यह ज्ञानकी वात बतायी है, इसे अपनी बुद्धिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये। मुनीश्वरो ! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें तथा दिया। इसे

तुम्हें प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। यत्ताओ, अब और क्या सुनना चाहते हो ?

**श्रृंगि वोले—**व्यासशिव्य ! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं, शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने हमें शिवत्व-सम्बन्धी परम उत्तम ज्ञानका श्रवण कराया है। आपकी कृपासे हमारे मनकी भ्रान्ति मिट गयी। हम आपसे मोक्षदायक शिवत्वका ज्ञान पाकर बहुत संतुष्ट हुए हैं।

सूतजीने कहा—द्विजो ! जो नास्तिक हो, श्रद्धाहीन हो और शठ हो, जो भगवान् शिवका भक्त न हो तथा इस विषयको सुननेकी रुचि न रखता हो, उसे इस तत्त्वज्ञानका उपदेश नहीं देना चाहिये। व्यासजीने इतिहास, पुराणों, वेदों और शास्त्रोंका वारंवार विचार करके उनका सार निकालकर मुझे उपदेश दिया है। इसका एक बार श्रवण करनेमात्रसे सारे पाप भस्म हो जाते हैं, अभक्तको भक्ति प्राप्त होती है और भक्तकी भक्ति बढ़ती है। दुवारा सुननेसे उत्तम भक्ति प्राप्त होती है। तीसरी बार सुननेसे मोक्ष प्राप्त होता है। अतः भोग और मोक्षरूप फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको इसका बारंबार श्रवण करना चाहिये। उत्तम फलको पानेके उद्देश्यसे इस पुराणकी पाँच आवृत्तियाँ करनी चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य उसे अवश्य पाता है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि यह व्यासजीका वचन है। जिसने इस उत्तम पुराणको सुना है उसे कुछ भी टुर्लभ नहीं है।

यह शिव-विज्ञान भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है। यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है। इस प्रकार मैंने शिवपुराणकी यह चौथी आनन्ददायिनी तथा परम पुण्यमयी संहिता कही है, जो कोटिरुद्रसंहिताके नामसे विख्यात है। जो पुरुष एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस संहिताको सुनेगा या सुनायेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगर्तिको प्राप्त कर लेगा। (अध्याय ४३)

॥ कौटिरुद्रसंहिता सम्पूर्ण ॥

\* शुभं लक्ष्मा ज्ञ. हृष्णेत कृष्णेकल्पाशुभं नहि । द्वन्द्वेष समना यस्य ज्ञानवानुच्यते । हि सः ॥  
(शि० पु० को० ८० सं० ४३ । ३१)

## उमासंहिता

**भगवान् श्रीकृष्णके तपसे संतुष्ट हुए शिव और पार्वतीका उन्हें अभीष्ट वर देना तथा शिवकी महिमा**

यो धर्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्थान रजःसंश्रयः

संहर्ता तमसानिवतो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः ।  
सत्यानन्दमनन्तवोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञासपदं

नित्यं सर्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि ॥

‘जो र्जोगुणका आश्रय ले संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्य-गुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमो-गुणसे युक्त हो सत्रका संहर करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लौप्षकर अपने शुद्ध स्वल्पमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्द-स्वल्प, अनन्त वोधमय, निर्मल एवं पूर्ण ब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सुषुप्तिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहरकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विक-भावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

**ऋषि वोले—महाशानीं व्यासशिष्य सूतजी !** आपको नमस्कार है। आपने कोटिरुद्र नामक चौथी संहिता हमें सुना दी। अब उमासंहिताके अन्तर्गत नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त जो परमात्मा साम्य सदाशिवका चरित्र है, उसका वर्णन कीजिये।

**सूतजीने कहा—शौनक आदि महर्षियो !** भगवान् शंकरका मङ्गलमय चरित्र परम दिव्य एवं भोग और भोक्षको देनेवाल है। तुमलोग प्रेमसे इसका श्रवण करो। पूर्वकालमें पुनिवर व्यासने सनत्कुमारके सामने ऐसे ही पवित्र प्रश्नको उपस्थित किया था और इसके उत्तरमें उन्होंने भगवान् शिवके उत्तम चरित्रका गान किया था।

उस तपमय पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त श्रीकृष्णके हिमवान् शंकर जाकर महर्षि उपमन्तुसे मिलने, उनकी बतायी हुई पद्धतिके अनुसार भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करने, उनके तपसे प्रसन्न होकर पार्वती, कार्तिकेय तथा गणेशसहित शिवके प्रकट होने तथा श्रीकृष्णके द्वारा उनकी सुतिष्ठूर्वक वरदण माँगनेकी कथा सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—श्रीकृष्ण—ये वचन सुनकर भगवान् भव उनसे बोले—‘वासुदेव ! तुमने मैं कुछ मनोरथ किया है, वह सब पूर्ण होगा।’ इतना कहकर श्रीकृष्ण भगवान् शिव फिर बोले—‘यादवेन्द्र ! तुम्हें साम्राज्यमें प्रधिद एक महापराक्रमी वल्यान् पुत्र प्राप्त होगा। एक दूसरे नुगियोंने भगवान्क संवर्तक ( प्रलयकर ) सूर्यको शाप

दिया था कि ‘तुम मनुष्योनिमें उत्पन्न होओगे’ अतः वे संवर्तक सूर्य ही तुम्हारे पुत्र होंगे। इसके सिवा जो-जो वस्तु तुम्हें अभीष्ट है, वह सब तुम प्राप्त करो।’

**सनत्कुमारजी कहते हैं—**इस प्रकार परमेश्वर शिवसे सम्पूर्ण वरोंको प्राप्त करके श्रीकृष्णने विविध प्रकारकी व्युत्त-सी सुतियोदारा उन्हें पूर्णतया संतुष्ट किया। तदनन्तर भक्त वस्त्वा गिरिराजकुमारी शिवाने प्रसन्न हो उन तपस्वी शिवभक्त महात्मा वासुदेवसे कहा।

**पार्वती बोली—**परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। अनध ! तुम मुझसे भी उन मनो-वाचित वरोंको ग्रहण करो, जो भूतलभर दुर्लभ हैं।



**श्रीकृष्णने कहा—देवि !** यदि आप मेरे इन सत्य तपसे संतुष्ट हैं और मुझे वर दे रही हैं तो मैं यह चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंके प्रति कभी मेरे मनमें द्वेष न हो, मैं सदा द्विजोंका पूजन करता रहूँ। मेरे माता-पिता नद्य नुक्ससे दंतुष्ट रहें। मैं जहाँ कहाँ भी जाऊँ, समर्प्त प्राणियोंके प्रति नैर-

हृदयमें अनुकूल भाव रहे। आपके दर्शनके प्रभावसे मेरी संतति उत्तम हो। मैं सैकड़ों यज्ञ करके इन्द्र आदि देवताओंको तृप्त करूँ। सहस्रों साधु-सन्नायियों और अतिथियोंको सदा अपने घरपर श्रद्धासे पवित्र अन्नका भोजन कराऊँ। भाई-बन्धुओंके साथ नित्य मेरा प्रेम बना रहे तथा मैं सदा संतुष्ट रहूँ।

**सनत्कुमारजी** कहते हैं—श्रीकृष्णका वह वचन सुनकर सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली सनातनी देवी पार्वती विस्मित हो उनसे बोलें—‘वासुदेव ! ऐसा ही होगा । तुम्हारा कल्याण हो ।’ इस प्रकार श्रीकृष्णपर उत्तम कृपा करके उन्हें उन वरोंको देकर पार्वतीदेवी तथा परमेश्वर शिव दोनों वर्ही

अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर केशिहत्ता श्रीकृष्णने मुनिव उपमन्युको प्रणाम करके उनसे वर-प्राप्तिका सारा समाचार बताया। तब उन मुनिने कहा—‘जनार्दन ! संसारमें भगवान् शिवके सिवा दूसरा कौन महादानी ईश्वर है तथा क्रोधके उपम दूसरा कौन अत्यन्त दुर्सह हो उठता है । महायशस्वी गोविन्द ! दान, तप, शौर्य तथा स्थिरतामें शिवसे वढ़कर कौन है । अतः तुम शम्भुके दिव्य ऐश्वर्यका सदा श्रवण करते रहो ।’\*

तदनन्तर उपमन्युके द्वारा शिवकी महिमा मुनिनेके बाद उन मुनीश्वरको नमस्कार करके वसुदेवनन्दन केशव मन-ही-मन शम्भुका स्मरण करते हुए द्वारकापुरीको चले गये।

( अध्याय १-२ )

### नरकमें गिरानेवाले पापोंका संक्षिप्त परिचय

**सनत्कुमारजी** कहते हैं—व्यासजी ! जो पापपरायण जीव महानरकके अधिकारी हैं, उनका संक्षेपसे परिचय दिया जाता है; सावधान होकर सुनो । परखीको प्राप्त करनेका संकल्प, पराये धनको अपहरण करनेकी इच्छा, चित्तके द्वारा अनिष्ट-चिन्तन तथा न करने योग्य कर्ममें प्रवृत्त होनेका दुराग्रह—ये चार प्रकारके मानसिक पापकर्म हैं । असंगत प्रलाप ( बैसिर-पैरकी वार्ता ), असत्यभाषण, अप्रिय बोलना और पीठ पीछे चुगली खाना—ये चार वाचिक ( वाणीद्वारा होनेवाले ) पाप-कर्म हैं । अभक्ष्य-भक्षण, प्राणियोंकी हिंसा, व्यर्थके कार्योंमें लगना और दूसरोंके धनको हड्डप लेना—ये चार प्रकारके शारीरिक पापकर्म हैं । इस प्रकार ये बारह कर्म बताये गये, जो मन, वाणी और शरीर इन तीन साधनोंसे सम्बन्ध होते हैं । जो संसार-सागरसे पार उत्तारनेवाले महादेवजीसे द्वेष करते हैं, वे सब-के-सब नरकोंके समुद्रमें गिरानेवाले हैं । उनको बड़ा भारी पातक लगता है । जो शिवज्ञानका उपदेश देनेवाले तपस्तीकी, गुरुजनोंकी और पिता-ताऊ आदिकी निन्दा करते हैं, वे उन्मत्त मनुष्य नरक-समुद्रमें गिरते हैं । ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, सुर्वण चुरानेवाला, गुरुपत्नीगामी तथा इन चारोंसे सम्पर्क रखनेवाला पाँचवीं श्रेणीका पापी—ये सब-के-सब महापातकी कहे गये हैं ।

जो क्रोधसे, लोभसे, भयसे तथा द्वेषसे ब्राह्मणके वधके लिये महान् मर्मभेदी दोषका वर्णन करता है, वह ब्रह्महत्यारा होता है । जो ब्राह्मणको बुलाकर उसे कोई वस्तु

देनेके पश्चात् फिर ले लेता है तथा जो निर्दोष पुरुषपर दोष-रोपण करता है, वह मनुष्य भी ब्रह्महत्यारा होता है । जो भी सभामें उदासीन भावसे बैठे हुए श्रेष्ठ द्विजको अपनी विद्याके अभिमानसे अपमानित करके उसे निस्तेज ( हतप्रतिभ ) कर देता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है । जो दूसरोंके व्याधी गुणोंका भी बलात् खण्डन करके झूठे गुणोद्वारा अपने आपके उत्कृष्ट सिद्ध करता है, वह भी निश्चय ही ब्रह्महत्यारा होता है । जो सौँडोद्वारा बाही जाती हुई गौओंके तथा गुरुसे उपदेश ग्रहण करते हुए द्विजोंके कार्यमें विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं । जो देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंके उपयोगके लिये दी हुई भूमिको हर लेता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है । देवता और ब्राह्मणके धनको हर लेना तथा अन्यायसे धन कमाना ब्रह्महत्याके समान ही पातक जानना चाहिये । जिस किसी व्रत, नियम तथा व्रतको ग्रहण करके उसे त्याग देना तथा पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान न करना मदिरापानके समान पातक बताया गया है । पिता और माताको त्याग देना शृङ्खला गवाही देना, ब्राह्मणसे शृङ्खला वादा करना, शिव-भक्तोंको भासं खिलाना तथा अभक्ष्य वस्तुका भरण करना ब्रह्महत्याके तुल्य कहा गया है । वनमें निरपाप प्राणियोंका वध करना भी ब्रह्महत्याके ही तुल्य है । साधु-पुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणके धनको त्याग दे । उसे धर्म-के कार्यमें भी न लगाये, अन्यथा ब्रह्महत्याका दोष लगता है ।

\* महाये उपमन्युके द्वारा श्रीकृष्णके प्रति शिवतत्वके उपदेश तथा उपमन्युकी कथा वायवीयसंहितामें विस्तारसे कही जायगी ।

श्रीशिव-पार्वतीका श्रीकुण्डलो वरदान





गौओंके मार्गमें, बनमें तथा गाँवमें, जो लोग आग लगाते हैं, वे भी ब्रह्महत्या ही करते हैं। इस तरहके जो भयानक पाप हैं, वे ब्रह्महत्याके समान माने गये हैं।

ब्राह्मणके द्रव्यका अपहरण करना, पैतृक सम्पत्तिके बँटवारे-में उलट-फेर करना, अत्यन्त अभिमान और अधिक क्रोध करना, पाखण्ड फैलाना, कृतज्ञता करना, विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होना, कंजसूती करना, सत्पुरुषोंसे द्वेष रखना, परस्ती-समागम करना, श्रेष्ठ कुलकी कन्याओंको कलङ्कित करना, यज्ञ, वाग-वन्धुचे, सरोवर तथा छी-पुरुषोंका विक्रय करना, तीर्थयात्रा, उपवास तथा व्रत एवं उपनयन आदिका सौदा करना, छीके धनसे जीविका चलाना, ख्रियोंके अत्यन्त वशीभूत होना, ख्रियोंकी रक्षा न करना तथा छलसे परायी ख्रियोंका सेवन करना, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंको त्याग देना, दूसरोंके आचारका सेवन करना, असत्-शास्त्रोंका अध्ययन करना, सूखे तरक्की सहारा लेना, देवता, अग्नि, गुरु, साधु तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना, पितृयज्ञ और देवयज्ञको त्याग देना, अपने कर्मोंका परित्याग करना, बुरे स्वभावको अपनाना, नास्तिक होना, पापोंमें लगना और सदा झूठ बोलना—इस तरहके पापोंसे युक्त छी-पुरुषोंको उपपातकी कहा गया है।

जो मनुष्य गौओं, ब्राह्मणकन्याओं, स्वामी, मित्र तथा अपनी महात्माओंके कार्य नष्ट कर देते हैं, वे नरकगामी माने गये हैं। जो ब्राह्मणोंको दुःख देते हैं, उन्हें मरनेके लिये शब्द उठाते हैं, जो द्विज होकर शूद्रोंकी सेवा करते हैं तथा जो कामया मदिरापान करते हैं, जो पापपरायण, क्रूर तथा हिंसाके लिये प्रेमी हैं, जो गोशालामें, अग्निमें, जलमें, सड़कोंपर, ऐंडोंकी छायामें, पर्वतोंपर, वरीचोंमें तथा देवमन्दिरोंके आस-पास मल-मूत्रका त्याग करते हैं, बाँस, ईट, पत्थर, काठ, सींग और कीलोंद्वारा जो रस्ता रुँधते या रोकते हैं, दूसरोंके लिये आदिकी सीमा (मेड) मिया देते हैं, छलसे शासन करते हैं, छल-कपटके ही कार्योंमें लगे रहते हैं, किसीको ठग-कर लाये हुए पाप, अन्न तथा वस्त्रोंका छलसे ही उपयोग उठाते हैं, जो छी, पुत्र, मित्र, वाल, वृद्ध, दुर्वल, आतुर, भूत्य, अतिथि तथा वस्त्रजलोंको भूखे छोड़कर स्वयं खा लेते हैं जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वयं नियमोंको प्रहरण करके फिर उन्हें है, संन्यास धारण करके भी फिरसे घर बसा लेते हैं जो शिवप्रतिमाका भेदन करनेवाले हैं, गौओंको सुत्पूर्वक मारते और वारंवार उनका दमन करते हैं, जो दूसरे पशुओंका पोषण नहीं करते, सदा उन्हें छोड़े रखते हैं,

अधिक भार लादकर उन्हें पीड़ा देते हैं तथा सहन न होनेपर भी बल्पूर्वक उन्हें हल या गाढ़ीमें जोतते हैं अथवा उनसे असह्य बोझ सिंचवाते हैं, जो उन पशुओंको खिलाये बिना ही भार ढोने या हल खींचनेके काममें जोत देते हैं, वैथे हुए भूखे पशुओंको चरनेके लिये नहीं छोड़ते तथा जो भारसे घायल, रोगसे पीड़ित और भूखसे आतुर गाय-बैलोंका बल्पूर्वक पालन नहीं करते, वे सबके-सब गो-हत्यारे तथा नरकगामी माने गये हैं।

जो पापिष्ठ मनुष्य बैलोंके अण्डकोश कुटवाते हैं और बन्ध्या गायको जोतते हैं, वे महानारकी हैं। जो आशासे धर-पर आये हुए भूख, प्यास और परिश्रमसे कष्ट पाते हुए और अनन्ती इच्छा रखनेवाले अतिथियों, अनाथों, स्वाधीन पुरुषों, दीनों, वाल, वृद्ध, दुर्वल एवं रोगियोंपर कृपा नहीं करते, वे मूढ़ नरकके समुद्रमें गिरते हैं। मनुष्य जब मरता है तब उसका कमाया हुआ धन धरमें ही रह जाता है। भाई-बन्धु भी इमशानतक जाकर लौट आते हैं, केवल उसके किये हुए पाप और पुण्य ही परलोकके पथपर जानेवाले उस जीवके साथ जाते हैं।

जो औचित्यकी सीमाको लाँघकर मनमाना कर बसूल करता है तथा दूसरोंको दण्ड देनेमें ही रुचि रखता है, वह राजा नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा धूसखोरों, अपनी रुचिके अनुसार कम दाम देकर अधिक कीमतका माल ले लेनेवाले अधिकारियों तथा चोर-डाकुओंसे अधिक सतायी जाती है, वह राजा भी नरकमें पकाया जाता है। परायी ख्रियोंके साथ व्यभिचार और चोरी करनेवाले प्रचण्ड पुरुषोंको जो पाप लगता है, वही परखीगामी राजाको भी लगता है। जो साधुको चोर और चोरको साधु समझता है तथा बिना विचारे ही निरपराधको प्राणदण्ड दे देता है, वह राजा नरकमें पड़ता है। जिस किसी पराये द्रव्यको सरसों वरावर भी चुरा लेनेपर मनुष्य नरकमें गिरते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस तरहके पापोंसे युक्त मनुष्य मरनेके पश्चात् यातना भोगनेके लिये नूतन शरीर पाता है, जिसमें सम्पूर्ण आकार अभियक्त रहते हैं। इसलिये किये हुए पापका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। अन्यथा सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे हुए पापका नाश नहीं हो सकता। जो मन, वाणी और शरीर-द्वारा स्वयं पाप करता, दूसरेसे कराता तथा किसीके दुष्कर्मका अनुमोदन करता है, उसके लिये पापगति (नरक) दीर्घ कल है।

## पापियों और पुण्यतामाओंकी यमलोकयात्रा

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! मनुष्य चार प्रकारके पापोंसे यमलोकमें जाते हैं । यमलोक अत्यन्त भयदायक और भयंकर है । वहाँ समस्त देहधारियोंको विवश होकर जाना पड़ता है । कोई ऐसे प्राणी नहीं हैं, जो यमलोकमें न जाते हैं । किये हुए कर्मका फल कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका विचार करो । जीवोंमें जो शुभ कर्म करनेवाले, सौम्यचित्त और दयालु हैं, वे सौम्यमार्गसे यमपुरीके पूर्व द्वारको जाते हैं । जो पापी पापकर्मपरायण तथा दानसे रहित हैं, वे भयानक दक्षिण मार्गसे यमलोककी यात्रा करते हैं । मर्त्यलोक-से छियासी हजार योजनकी दूरी लँघकर नानारूपवाले यमलोककी स्थिति है, वह जानना चाहिये । पुण्यकर्म करनेवाले लोगोंको तो वह नगर निकटवर्ती-सा जान पड़ता है; परंतु भयानक मार्गसे यात्रा करनेवाले पापियोंको वह बहुत दूर स्थित दिखायी देता है । वहाँका मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे युक्त है; कहीं कंकड़ोंसे व्याप्त है; कहीं छूरेकी धार-के समान तीखे पथर उस मार्गपर जड़े गये हैं, कहीं बड़ी भारी कीचड़ फैली हुई है । बड़े-छोटे पातकोंके अनुसार वहाँकी कठिनाइयोंमें भी भारीपन और हल्कापन है । कहीं-कहीं यमपुरीके मार्गपर लोहेकी सूईके समान तीखे डाम्फैले हुए हैं ।

तदनन्तर यमपुरीके मार्गकी भीषण यातनाओं और कष्टोंका वर्णन करके सनकुमारजीने कहा—व्यासजी ! जिन्होंने कभी दान नहीं किया है, वे लोग ही इस प्रकार दुःख उठाते और सुखकी याचना करते हुए उस मार्गपर जाते हैं । जिन्होंने पहलेसे ही दानरूपी पायेय ( राहखर्च ) ले रखा है, वे सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं । इस रीतिसे कष्ट उठाकर पापी जीव जब प्रेतपुरीमें पहुँच जाते हैं, तब उनके विषयमें यमराजको सूचना दी जाती है । उनकी आशा पाकर दूत उन पापियोंको यमराजके आगे ले जाकर खड़े करते हैं । वहाँ जो शुभ कर्म करनेवाले लोग होते हैं, उनको यमराज स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य और अर्व्य निवेदन करके प्रिय वर्तीके द्वारा सम्मानित करते हैं और कहते हैं—‘वेदोक्त कर्म करनेवाले महात्माओ ! आप-लोग धन्य हैं, जिन्होंने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्यकर्म किया है । अतः आपलोग दिव्याङ्गनाभिंके भोगसे भूमिति



तथा समूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंसे सम्पन्न निर्मल सर्वलोकमें जाइये । वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जानेपर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ शेष रह जाय; वे फिर वहाँ आकर भोगियेगा । जो धर्मात्मा मनुष्य होते हैं, वे मानो यमराजके लिये मित्रके समान हैं । वे यमराजके सुखपूर्वक सौम्य धर्मराजके रूपमें देखते हैं ।

किंतु जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं । उनकी हृषिमें यमराजका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है । नेत्र टेढ़ी भौंहोंसे युक्त प्रतीत होते हैं । उनके केश ऊपरको उठे होते हैं । दाढ़ी-मूँछ बड़ी-बड़ी होती है । ओठ ऊपरकी ओर फड़कते रहते हैं । उनके अठारु भुजाएँ होती हैं, वे कुपित तथा काले कोयलोंके देर-से दिलायी होते हैं । उनके हाथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उठे होते हैं । वे सब प्रकारके दण्डका भय दिखाकर उन पापियोंको डाँटते रहते हैं । बहुत बड़े भैंसेपर आरूढ़, लाल बख्त और लाल माल धारण करके बहुत ऊँचे महामेरुके समान दृष्टिगोचर होते हैं । उनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप दिलायी होते हैं ।



उनका शब्द प्रलयकालके मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर होता

है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महासगरको पी रहे हैं, गिरिराजको निश्चल रहे हैं और मुँहसे आग उगल रहे हैं।

उनके समीप प्रलयकालकी अग्निके समान प्रभावाले मृत्यु देवता खड़े रहते हैं। काजलके समान काले कालदेवता और भयानक कृतान्त देवता भी रहते हैं। इनके सिवा मारी, उग्र महामारी, भयंकर कालरात्रि, अनेक प्रकारके रोग तथा भौति-भौतिके भयावह कुष्ठ मूर्तिमान् हो हाथोंमें शक्ति, शूल, अङ्गुश, पाश, चक्र और खड़ग लिये खड़े रहते हैं।

ब्रजतुल्य मुख धारण करनेवाले रुद्रगण क्षुर, तरकस और धनुष धारण किये वहाँ उपस्थित होते हैं। सभी नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले, महान् वीर एवं भयंकर हैं। इनके अतिरिक्त असंख्य महावीर यमदूत, जिनकी अङ्गकान्ति काले कोथलेके समान काली होती है, समूर्ण अस्त्र-शस्त्र लिये बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। ऐसे परिवारसे धिरे हुए धोर यमराज तथा भीषण चित्रगुप्तको पापिष्ठ प्राणी देखते हैं। यमराज उन पापकर्मियोंको बहुत ढाँटते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोद्धारा उन्हें समझाते हैं। ( अध्याय ७ )

### नरकोंकी अद्वाईस कोटियाँ तथा प्रत्येकके पाँच-पाँच नायकके क्रमसे एक सौ चालीस रौरवादि नरकोंकी नामावली

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी! तदनन्तर यमदूत पापियोंको अत्यन्त तपे हुए पत्थरपर बड़े वेगसे दे मारते हैं, मानो ब्रह्मसे बड़े-बड़े बृक्षोंको धराशायी कर दिया गया हो। उस समय शरीरसे जर्जर हुआ देहधारी जीव कानसे खून फैले लगता है और सुध-बुध खोकर निश्चेष्ट हो जाता है। तब वायुका स्पर्श कराकर वे यमदूत फिर उसे जीवित कर देते हैं और उसके पापोंकी शुद्धिके लिये उसे नरक-समुद्रमें डाँउते हैं। पृथ्वीके नीचे नरककी सात कोटियाँ हैं, जो नीचे तल्के अन्तमें धोर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। उन शब्दों अद्वाईस कोटियाँ हैं। पहली कोटि धोरा कही गयी है। दूसी तुयोर है जो उसके नीचे स्थित है। तीसरी अतिवोरा, जो द्वादशवेष्य, पाँचवर्षी धोररूपा, छठी तलातला, सातवर्षी नवात्मकः आठवर्षी कालरात्रि, नवीं भयोत्कटा, उसके नीचे दसवेष्य कहा जाता है। उसके भी नीचे महाचण्डा, फिर चण्डकोल्याहला रोपने भित्र प्रचण्डा है, जो चण्डोंकी नायिका कही गयी

है; उसके बाद पद्मा, पद्मावती, भीता और भीमा है, जो भीषण नरकोंकी नायिका मानी गयी है। अठारहवाँ करला, उन्नीसवाँ विकरला और बीसवाँ नरककोटि बज्रा कही गयी है। तदनन्तर त्रिकोणा, पञ्चकोणा, सुदीर्घा, अखिलर्तिदा, समा, भीमवला, भोग्रा तथा अद्वाईसवाँ दीसप्राया है। इस प्रकार मैंने तुमसे भयानक नरक-कोटियोंके नाम बताये हैं। इनकी संख्या अद्वाईस ही है। ये पापियोंको यातना देनेवाली है। उन कोटियोंके क्रमशः पाँच-पाँच नायक जानने चाहिये।

अब उन सब कोटियोंके नाम बताये जाते हैं, सुनो। उनमें प्रथम रौरव नरक है, जहाँ पहुँचकर देहधारी जीव रोने लगते हैं। महारौरवकी पीड़ासे तो महान् पुरुष भी ऐ देते हैं। इसके बाद शीत और उष्ण नामक नरक है। फिर सुयोदा है। रौरवसे सुयोरतक आदिके पाँच नरक नायक माने गये हैं। इसके बाद सुमहातीशग, संज्ञीवन, महातम, विलोम, विक्रम, कण्ठक, तीव्रवेग, करल, विकरल, प्रकम्भन, महादम,

काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अङ्गार-राशिभवन, मेरु, असुक्रहित, तीक्ष्णतुष्ण, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्धव, उच्छ्वास, सुनिश्च्छ्वास, सुदीर्घ, कृटशालमलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाद, सुप्रतापन, मेघ, वृष, शालम, सिंहमुख, व्याघ्रमुख, गजमुख, कुक्कुरमुख, सूकरमुख, अजमुख, महिष-मुख, घूकमुख, कोकमुख, वृकमुख, ग्राह, कुम्भीनस, नक्ष, सर्प, कूर्म, काक, गृष्म, उलूक, हलौक, शार्दूल, कथ, कर्कट, मण्डूक, पूतिमुख, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धिवपु, अग्नीध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लाला-भक्ष, अन्नभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्ठदायिनी वैतरणी नदी, सुतस-लोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, धोर असिताल्घन, अस्थिभङ्ग,

सुपूरण, विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तसलोहमय, पर्वत, क्षुरधारा, यमल्पवर्त, मूत्रकृष, विष्ठाकृप, अथ्रुकृप, शीतल धारकृप, मुसलोद्रूखल, यन्त्र, शिल, शकट, लाङ्गूल, तालपत्रवन, आसिपत्रवन, महाशकट-मण्डप, सम्मोह, अस्थिभङ्ग, तस, चञ्चल, अयोगुड ( लोहेकी गोली ), वहुदुःख, महाक्लेश, कशमल, शमल, मलात्, हालाहल, विल्प, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर और तम ।

इस प्रकार ये अट्टाईस नरक और क्रमशः उनके पॉच-पॉच नायक कहे गये हैं । अट्टाईस कोटियोंके क्रमशः रौत आदि पॉच-पॉच ही नायक रूताये जाते हैं । उपर्युक्त २८ कोटियोंको छोड़कर लगभग सौ नरक माने जाते हैं और महानरक-मण्डल एक सौ चालीस नरकोंका बताया गया है । ॥ ( अध्याय ८ )

—०<३०४>०—

## विभिन्न पापोंके कारण मिलनेवाली नरकयातनाका वर्णन तथा कुक्कुरवलि, काकबलि एवं देवता आदिके लिये दी हुई बलिकी आवश्यकता एवं महत्त्वाका प्रतिपादन

सन्त्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! इन सब भयानक पीड़ादायक नरकोंमें पापी जीवोंको अत्यन्त भीषण नरकयातना भोगनी पड़ती है । जो मिथ्या आगम ( पादण्डियोंके शास्त्र ) में प्रवृत्त होता है, वह द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है और जिह्वाके आकारमें आधे कोसतक कैले हुए तीक्ष्ण हलोद्वारा वहाँ उसे विशेष पीड़ा दी जाती है । जो कूर मनुष्य माता-पिता और गुरुको डॉटता है, उसके मुँहमें कीड़ोंसे युक्त विष्ठा ढूँसकर उसे खूब पीटा जाता है । जो मनुष्य शिवमन्दिर, बगीचे, बाबड़ी, कूप, तड़ाग तथा ब्राह्मणके स्थानको नष्ट-भ्रष्ट कर देते और वहाँ स्वेच्छानुसार रमण करते हैं, वे नामा प्रकारके भयंकर कोल्हु आदिके द्वारा पेरे और पकाये जाते हैं तथा प्रलयकालपर्यन्त नरकाग्नियोंमें पकते रहते हैं । परम्परागामी पुरुष उस-उस लम्पसे ही व्यभिचार करते हुए मारे-पीटे जाते हैं । पुरुष अपने पहले-जैसे शरीरको धारण करके लोहेकी बनी और खूब तपायी हुई नारीका गाढ़ आलिङ्गन करके सब ओरसे जलते रहते हैं । वे उस दुरचारिणी स्त्रीका गाढ़ आलिङ्गन करते और रोते हैं । जो सत्पुरुषोंकी निन्दा सुनते हैं, उनके कानोंमें लोहे या ताँबे

आदिकी बनी हुई कीलें आगसे खूब तपाकर भर दी जाती हैं; इनके सिवा जस्ते, शीशे और पीतलको गलाकर पानीके समान करके उनके कानमें भरा जाता है । फिर वारंवार गरम दूध और खूब तपाया हुआ तेल उनके कानोंमें डाला जाता है । फिर उन कानोंपर कज्जकासा लेप कर दिया जाता है । इस तरह क्रमशः उनके कानोंको उपर्युक्त बस्तुओंपर भरकर उनको नरकोंमें यातनाएँ दी जाती हैं । क्रमशः सभी नरकोंमें सब ओर ये यातनाएँ प्राप्त होती हैं और सभी नरकोंकी यातनाएँ बड़ा कष्ट देनेवाली होती हैं । जो माता-पिताके प्रति भौंहें टेढ़ी करते अथवा उनकी ओर उद्घटापूर्वक दृष्टि डालते या हाथ उठाते हैं, उनके मुखोंको अन्ततः लोहेकी कीलोंसे ढढ़ापूर्वक भर दिया जाता है । जो मनुष्य लुभाकर क्षियोंकी ओर अपलक दृष्टिसे देखते हैं, उनकी आँखोंमें तपाकर आगके समान लाल की हुई सूखाँ भर दी जाती है ।

जो देवता, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणोंको अग्रभाग निवेदन किये विना ही भोजन कर लेते हैं, उनकी जिह्वा और मुखमें लोहेकी सैकड़ों कीलें तपाकर ढूँस दी जाती हैं । जो लोग धर्मका उपदेश करनेवाले महात्मा कथावाचककी निन्दा करते

\* यहाँ अट्टाईस कोटियोंका पहले पृथक् वर्णन आया है, फिर प्रत्येकके पॉच-पॉच नायक विवादकर ठीक एक सौ चालीस नरकोंमें नामोल्लेस लिया गया है । कोटियोंमें संख्या मिला देनेसे सब एक सौ अड्सठ होते हैं ।

देवता, अग्नि और गुरुके भक्तोंकी तथा सनातन धर्मशास्त्रकी भी विलियाँ उड़ते हैं, उनकी छाती, कण्ठ, जिहा, दौँतोंकी अंधि, ताळ, ओठ, नासिका, मस्तक तथा सम्पूर्ण अङ्गोंकी संधियोंमें आगके समान तपायी हुई तीन शाखावाली लोहेंकी कीलं मुद्ररेसे ठोकी जाती हैं। उस समय उन्हें बहुत कष्ट होता है। तत्पश्चात् सब ओरसे उनके धावोंपर तपाया हुआ नमक छिड़क दिया जाता है। फिर उस शरीरमें सब ओर बड़ी भारी यातनाएँ होती हैं। जो पापी शिव-मन्दिरके पास अथवा देवताके वरीचोंमें मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनके लिङ्ग और अण्डकोशको लोहेंके मुद्ररेसे चूर-चूर कर दिशा जाता है तथा आगसे तपायी हुई सूझीयाँ उसमें भर दी जाती हैं, जिससे मन और इन्द्रियोंको महान् दुःख होता है। जो धन रहते हुए भी शृणुके कारण उसका दान नहीं करते और भोजनके समय धरपर अये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे पापका फल पाकर अपवित्र नरकमें गिरते हैं। जो कुत्तों और गौओंको उनका भाग अर्थात् बलि न देकर स्वयं भोजन कर लेते हैं उनके खुले हुए मुँहमें दो कीलं ठोक दी जाती हैं। (यमराजके मार्गका अनुसरण करनेवाले जो श्याम और शबल (सौंवले तथा चितकवरे) दो कुत्ते हैं, मैं उनके लिये यह अन्नका भाग देता हूँ, वे इस बलिको ग्रहण करें।) ‘पश्चिम, वायव्य, दक्षिण और नैऋत्य दिशामें रहनेवाले जो पुण्यकर्म कौए हैं, वे मेरी इस दी हुई बलिको ग्रहण करें।’ इस अभिप्राथाके दो मन्त्रोंसे क्रमशः कुत्ते और कौएको बलि देनी चाहिये। जो दोनों यज्ञपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करके विधिवत् अग्निमें भ्रुति दे शिवसम्बन्धी मन्त्रोद्घारा बलि समर्पित करते हैं,

वे यमराजको नहीं देखते और स्वर्गमें जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन बलि देनी चाहिये।

एक चौकोर मण्डप बनाकर उसे गन्ध आदिसे अधिवासित करे। फिर ईशानकोणमें धनवन्तरिके लिये और पूर्व दिशामें इन्द्रके लिये बलि देकर पुनः पूर्व दिशामें अर्यमाको अन्नका भाग अपित करे। द्वारदेशमें धाता और विधाताके लिये बलि निवेदन करे। तदनन्तर कुत्तों, कुत्तोंके स्वामी और पश्चियोंके लिये भूतल्पर अन्न डाल दे। देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि और कीट—ये सभी गृहस्से अपनी जीविका चलाते हैं। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हन्तकार—ये धर्ममयी धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकार नामक स्तनका पान देवता करते हैं, स्वधाका पितर लोग, वषट्कारका दूसरे-दूसरे देवता और भूतेश्वर तथा हन्तकार नामक स्तनका सदा ही मनुष्यगण पान करते हैं। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस धर्ममयी धेनुका सदा ठीक समयपर पालन करता है, वह अग्निहोत्री हो जाता है। जो स्वस्य रहते हुए भी उसका त्याग कर देता है, वह अन्वकारपूर्ण नरकमें डूबता है। इसलिये उन सबको बलि देनेके पश्चात् द्वारपर खड़ा हो क्षणभर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई भूखसे पीड़ित अतिथि या उसी गाँवका निवासी पुरुष मिल जाय तो उसे अपने भोजनसे पहले यथाशक्ति शुभ अन्नका भोजन कराये। जिसके धरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, उसे वह अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है। (अध्याय ९-१०)

### यमलोकके मार्गमें सुविधा प्रदान करनेवाले विविध दानोंका वर्णन

व्यासजी घोले—प्रभो ! पापी मनुष्य वडे दुःखसे यमलोकके मार्गमें जाते हैं। अब आप मुझे उन धर्मोंका परिचय

दीजिये, जिनसे जीव मुखपूर्वक यमराजपर यात्रा करते हैं।

सनत्कुमारजीने कहा—मुझे ! अपना किया हुआ

\* धर्म सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तुष्ण्या ॥

अतिथिं चावमन्यते काले प्राप्ते गृह्णाश्च । तस्मात् ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निर्वेऽशुची ॥

१ दयप्रदच शवलक्ष्मैव यममार्गानुरोपकौ । यौ स्त्वान्मा प्रयच्छामि तौ गृहीतामिं बलिन् ॥  
ये वा वरुणवायव्या याम्या नैऋत्यवायसः । वावसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णन्तु ने बलिन् ॥

(शिरो पुरुषो दृशं १० । ३१-३२ )

२ अतिथिर्परम भगवानशो गृहत्पति निवर्त्तते । स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥

(शिरो पुरुषो दृशं १० । ३५-३६ )

शुभाशुभ कर्म विना विचारे विवश होकर भोगना पड़ता है। अब मैं उन धर्मोंका वर्णन करता हूँ, जो सुख देनेवाले हैं। इस लोकमें जो श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, कोमलचित्त और दयालु पुरुष हैं, वे भयंकर यमरागपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह मनुष्य विशाल घोड़ेपर सवार हो वडे सुखसे यमलोकको जाता है। छत्र दान करनेसे मनुष्य उस मार्गपर उसी तरह छाता लगाकर चलते हैं, जैसे वहाँ छातेवाले लोग चलते हैं। शिविकाका दान करनेसे मनुष्य रथके द्वारा सुखसे यात्रा करते हैं। शश्या और आसनका दान करनेसे दाता यमलोकके मार्गमें विश्राम करते हुए सुखपूर्वक जाता है। जो वगीचे लगाते और छायादार वृक्षका आरोपण करते हैं अथवा सङ्कके किनारे वृक्षारोपण करते हैं, वे धूपमें भी विना कष्ट उठाये यमलोकको जाते हैं। जो मनुष्य फुलबाड़ी लगाते हैं, वे पुष्टक विमानसे यात्रा करते हैं। देवमन्दिर बनानेवाले उस मार्गपर घरके भीतर कीड़ा करते हैं। जो यतियोंके आश्रमका निर्माण कराते हैं और अनाथोंके लिये घर बनायाते हैं, वे भी घरके भीतर कीड़ा करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य स्वयं भी पूजित हो अपनी इच्छाके अनुकूल मार्गद्वारा सुखसे यात्रा करते हैं। दीपदान करनेवाले मनुष्य सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं। यहदान करनेसे दाता रोग-शोकसे रहित हो सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले मानव विश्राम करते हुए जाते हैं। बाजा देनेवाले उसी तरह सुखसे यात्रा करते हैं, मानो अपने घर जा रहे हैं। गोदान करनेवाले लोग सम्पूर्ण भनोवाज्जित वस्तुओंसे भरे-पूरे मार्गद्वारा जाते हैं। मनुष्य उस मार्गपर इस लोकमें दिये हुए अन्न-पानको ही पाता है। जो किसीको पैर धोनेके लिये जल देता है, वह ऐसे मार्गसे जाता है, जहाँ जल-की सुविधा हो। जो आदरणीय पुरुषोंके पैरोंमें उवटन लगाता है, वह घोड़ेकी पीठपर बैठकर यात्रा करता है।

व्यासजी ! जो पाद, अभ्यङ्ग ( अङ्गराग ), दीपक, अन्न और घर दान करता है, उसके पास यमराज कभी नहीं जाते। सुवर्ण और रत्नका दान करनेसे मनुष्य दुर्गम संकटों और स्थानोंको लौटता हुआ जाता है। चाँदी, गाड़ी होनेवाले बैल और फूलोंकी माला दान करनेसे दाता सुखपूर्वक यमलोकमें जाता है। इस तरहके दानोंसे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं और स्वर्गमें सदा भौति-भौतिके भोग पाते हैं। उच्च दानोंमें अन्नदानको ही उत्तम वताया गया है; क्योंकि

वह तत्काल तृप्ति प्रदान करनेवाला, मनको प्रिय व्याजेय तथा वल और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मुनिश्रेष्ठ ! अन्नदान समान दूसरा कोई दान नहीं है। क्योंकि अन्नसे ही प्रा उत्पन्न होते हैं और अन्नके अभावमें मर जाते हैं। अतः अन्नदानसे महान् पुण्य वताया गया है; क्योंकि अन्नके विभूत्यकी आगसे तस हुए समस्त प्राणी मर जाते हैं। अब अन्नकी ही सब लोग प्रदांसा करते हैं; क्योंकि अन्नमें ही स कुछ प्रतिष्ठित है। अन्नके समान दान न तो हुआ है और होगा। मुने ! यह सम्पूर्ण जगत् अन्नसे ही धारण किया जात है। लोकमें अन्नको बलकारक वताया गया है; क्योंकि अन्न ही प्राण प्रतिष्ठित है।\*

प्राप्त हुए अन्नकी कभी निन्दा न करे और न किसी तरह उसे कोंके ही। कुत्ते और चण्डालके लिये भी किया हुआ अन्नदान कभी नष्ट नहीं होता। जो मनुष्य थकेमादे और अपरिचित पथिको अन्न देता है और देते समय कष्टका अनुभव नहीं करता, वह समृद्धिका भागी होता है। महामुने ! जो देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्नसे तृप्त करता है, उसे महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। अन्न और जलका दान शुद्र और ब्राह्मणके लिये भी समानता से महत्व रखता है। अन्नकी इच्छावाले पुरुषसे उसका गेवा, शासा, स्वाध्याय और देश नहीं पूछना चाहिये।

अन्न साक्षात् ब्रह्म है, अन्न साक्षात् विष्णु और शिव है। इसलिये अन्नके समान दान न हुआ है और न होगा। जो पहले बड़ा भारी पाप करके भी पीछे अन्नका दान करनेवाला हो जाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है। अन्न, जल, घोड़ा, गौ, बस्त्र, शश्या, छत्र और आसन—इन

\* सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।

सथः प्रतिकरं हृथं बलुद्धिविवर्धनम् ॥

नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम् ।

अन्नाद्ववन्ति भूतानि तदभावे त्रियन्ति च ॥

अतथव नहृपुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम् ।

तथा क्षुधाग्रिना तसा त्रियन्ते सवेदहिनः ॥

अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ।

अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं मुने ।

अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा शने प्रतिष्ठिताः ॥

आठ बक्सुओंके दान यमलोकके लिये उत्तम माने गये हैं। इस प्रकार दान-विशेषसे मनुष्य विमानपर बैठकर धर्मराजके नगरमें जाता है; इसलिये सबको दान करना चाहिये। महामुने !

जो इस प्रसङ्गको सुनता अथवा आद्वामें ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके पितरोंको अक्षय अन्नदान प्राप्त होता है। (अध्याय ११)

## जलदान, जलाशय-निर्माण, वृक्षारोपण, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनकुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जलदान सबसे श्रेष्ठ है। वह सब दानोंमें सदा उत्तम है; क्योंकि जल सभी जीवसमुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है॥ इसलिये वह स्तेषुके साथ अनिवार्यरूपसे प्रपादान (पौसला चलाकर दूसरोंको पानी पिलानेका प्रबन्ध) करना चाहिये। जलाशयका निर्माण इसलोक और परलोकमें भी महान् व्यानन्दकी प्राप्ति करनेवाला होता है—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह कुआँ, बावड़ी और तालाब बनवाये। कुएँमें जब पानी निकल आता है, तब वह पापी पुरुषके पापकर्मका आधा भाग हर लेता है तथा सत्कर्ममें लगे हुए मनुष्यके सदा समस्त पापोंको हर लेता है। जिसके खुदवाये हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण तथा साधुपुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने सारे वंशका उद्धर कर देता है। जिसके जलाशयमें गर्मीके मौसममें भी अनिवार्यरूपसे पानी उपलब्ध होता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटको नहीं प्राप्त होता। जिसके पोखरेमें केवल वर्षाकृतुमें जल ठहरता है, उसे प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेका फल मिलता है—ऐसा ब्रह्माजी-का कथन है। जिसके तड़ागमें शरत्कालतक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है। जिसके तालाबमें हेमन्त और शिंशिर ऋतुतक पानी मौजूद रहता है, वह ऋतु-सी सुवर्ण-मुद्राओंकी दक्षिणासे युक्त यजका फल पाता है। जिसके सरोवरमें वसन्त और ग्रीष्मकालतक पानी नमा रहता है, उसे अतिरात्र और अश्वमेष्व यज्ञोंका फल मिलता है—ऐसा मर्नीघी महात्माओंका कथन है।

त्रिनिवर व्यास ! जीवोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले जलाशय-  
१ एवं उच्चम फलका वर्णन किया गया। अब वृक्ष लगानेमें जो  
२ ऐसे हैं उनका वर्णन सुनो। जो वीरान एवं दुर्गम खानोंमें  
३ इसाता है, वह अपनी वीती तथा आनेवाली सम्पूर्ण-

\* पाणीपदानं परमं दानानानुत्तमं तदा ।  
१३७३ जोक्षुभाजां तर्पणं जीवनं सूक्तन् ॥  
(शि० यु० उ० स० १२ । १ )

पीढ़ियोंको तार देता है। इसलिये वृक्ष अवश्य लगाना चाहिये॥ ये वृक्ष लगानेवालेके पुत्र होते हैं, इसमें संशय नहीं। वृक्ष लगानेवाला पुरुष परलोकमें जानेपर अक्षय लोकोंको पाता है। पोखरा खुदनेवाला, वृक्ष लगानेवाला और यज्ञ करनेवाला जो द्विज है, वह तथा दूसरे-दूसरे सत्त्वादी पुरुष—ये स्वर्गसे कभी नीचे नहीं गिरते।

सत्य ही परम्परा है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ है और सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। सोये हुए पुरुषोंमें सत्य ही जागता है, सत्य ही परमपद है, सत्यसे ही पृथ्वी टिकी हुई है और सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। तप, यज्ञ, पुर्ण, देवता, मृषि और पितरोंका पूजन, जल और विद्या—ये सब सत्यपर ही अवलम्बित हैं। सबका आधार सत्य ही है। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, मन्त्र, सरस्वतीदेवी तथा व्रहस्पद है। औंकार भी सत्यरूप ही है। सत्यसे ही वायु चलती है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही आग जलती है और सत्यसे ही स्वर्ग दिका हुआ है। लोकमें सम्पूर्ण वेदांका पालन तथा सम्पूर्ण तीयोंका स्नान केवल सत्यसे सुलभ हो जाता है। सत्यसे सब कुछ प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। एक सहस्र अश्वमेष्व और लाखों यज्ञ एक ओर तराजूपर रख्ये जायें और दूसरी ओर सब हो तो सत्यको ही पलड़ा भरी होगा। देवता, पितर, मनुष्य, नाग, राक्षस तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त लोक सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं। सत्यको परम धर्म कहा गया है। सत्यको ही परमपद वताया गया है और सत्यको ही परमार्ह परमात्मा कहते हैं। इसलिये सदा सत्य वोलना चाहिये। सत्यपरायण मुनि अत्यन्त दुष्कर तप करके स्वर्ग-

\* अतीजानानागतान् सर्वान् पितृवंशांतु तारयेत् ।

कान्तरे कृत्रोपी वन्तस्ताद् वृक्षांस्तु रोपयेत् ॥

(शि० यु० उ० स० ११ । ३ )

† सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं शत्रुम् ॥

सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव परं शत्रुम् ॥

सत्यं दुष्टेषु जागर्ते सत्यं च परमं परम् ॥

सत्येनैव भूता एधो नत्ये हर्षं प्रतिष्ठिन् ॥

को प्राप्त हुए हैं तथा सत्यधर्ममें अनुरक्त रहनेवाले सिद्ध पुरुष भी सत्यसे ही स्वर्गके निवासी हुए हैं। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्यरूपी तीर्थ अगाध, विशाल, सिद्ध एवं पवित्र जलाशय है। उसमें योग्युक्त होकर मनके द्वारा स्नान करना चाहिये। सत्यको परमपद कहा गया है। जो मनुष्य अपने लिये, दूसरेके लिये अथवा अपने वेटेके लिये भी शुद्ध नहीं बोलते वे ही स्वर्गगामी होते हैं। वेद, यज्ञ तथा मन्त्र—ये ब्राह्मणोंमें सदा निवास करते हैं; परंतु असत्यवादी ब्राह्मणोंमें इनकी प्रतीति नहीं होती। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये।

तदनन्तर तपकी घड़ी भारी महिमा बताते हुए सनकुमारजीने कहा—मुने! संसारमें ऐसाँकोई सुख नहीं है जो तपस्याके बिना सुखम् होता हो। तपसे ही सारा सुख मिलता है, इस बातको वेदवेत्ता पुरुष जानते हैं। शन, विश्व, आरोग्य, सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा शाश्वत सुख तपसे ही प्राप्त होते हैं। तपस्यासे ही ब्रह्मा बिना परिश्रमके ही समूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। तपस्यासे ही विष्णु इसका पालन करते हैं। तपस्याके द्वारा ही रुद्रदेव संहर करते हैं तथा तपके प्रभावसे ही शोष अरोग्य भूमण्डलको धारण करते हैं। ( अध्याय १२ )

## वेद और पुराणोंके स्वाध्याय तथा विविध प्रकारके दानकी महिमा, नरकोंका वर्णन तथा उनमें गिरानेवाले पापोंका दिग्दर्शन, पापोंके लिये सर्वोत्तम प्रायश्चित्त शिवसरण तथा ज्ञानके महत्वका प्रतिपादन

**सनकुमारजी कहते हैं—**मुने ! जो बनमें जंगली फल-मूल खाकर तप करता है और जो वेदकी एक श्रृंचाका स्वाध्याय करता है, इन दोनोंका फल समान है। श्रेष्ठ द्विज वेदाध्ययनसे जिस पुण्यको पाता है, उससे दूना फल वह उस वेदको पढ़ानेसे पाता है। मुने ! जैसे चन्द्रमा और सूर्यके बिना जगत्‌में अनधिकार छा जाता है, उसी प्रकार पुराणके बिना ज्ञानका आलोक नहीं रह जाता है—अज्ञानका अनधिकार छाया रहता है। इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये। अज्ञानके कारण नरकमें पड़कर सदा संतप्त होनेवाले लोकको जो शास्त्रका ज्ञान देकर समझाता है, वह पुराणवक्ता अपनी इसी महत्त्वके कारण सदा पूजनीय है। जो साधु पुरुष पुराणवक्ता विद्वान्को दानका पात्र समझकर वड़ी प्रसन्नताके साथ उसे उत्तमोत्तम वस्तुएँ देता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो सुपात्र ब्राह्मणको

भूमि, गौ, रथ, हाथी और सुन्दर घोड़े देता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह इस जन्ममें और परलोकमें भी समूर्ण अक्षय मनोरथोंको पा लेता है तथा अक्षमेधयज्ञके फलका भी भागी होता है।

**मुनीश्वर !** जो पुरुष भगवान् शिवकी कथा सुनते हैं वह कर्मोंके विशाल बनको जलाकर संसारसे तर जाता है। जो दो घड़ी, एक घड़ी अथवा एक क्षण भी भक्तिमार्पे भगवान् शिवकी कथा सुनते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती। मुने ! समूर्ण दानों अथवा समूर्ण यज्ञोंमें जो पुण्य होता है, वही फल शिवपुराण सुननेसे अविचलनसमें प्राप्त हो जाता है। व्यासजी ! विशेषतः कलियुगमें पुराणश्रवणके सिवा मनुष्योंके लिये दूसरा कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। वही उनके लिये मोक्ष एवं ध्यानरूपी फल देनेवाला बताया गया है। शिवपुराणका श्रवण और शिव-नामका कीर्तन मनुष्योंके

तपो यशश्च पुण्यं च देवर्पितपूजने । आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्तती । मद्यचर्यं तथा सत्यमोकारः सत्यमेव च ॥

सत्येन वायुरन्म्येति सत्येन तपते रविः । सत्येनाग्निनिर्द्विति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति ॥

पालनं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाइनम् । सत्येन वहते लोके सर्वमाणोत्प्रसंशयम् ॥

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । लक्षणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते ॥

सत्येन देवाः पितरो मानवोरागराक्षसाः । प्रीयन्ते सत्यतः सर्वे लोकाश्च सच्चाचराः ॥

सत्यमादुः परं धर्मं सत्यमादुः परं पदम् । सत्यमादुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं सदा वदेत् ॥

लिये कल्पवृक्षका रसणीय फल है, इसमें संशय नहीं है। यह, दान, तप और तीर्थसेवनसे जो फल मिलता है, उसीको मनुष्य पुराणोंके श्रवणमाच्छसे पा लेता है।

प्रतिदिन सुपात्र लोगोंको बड़े-बड़े दान देने चाहिये, वे दान दाताके उद्घारक होते हैं। विष्ववर ! सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान—ये पवित्र दान हैं, जो दाताको तो तारते ही हैं, लेनेवालोंका भी उद्धार कर देते हैं। सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदान—इन श्रेष्ठ दानोंको करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तुलादानकी बड़ी प्रशंसा की गयी है, गौ और पृथ्वीके दान भी प्रशस्त एवं समान शक्तिवाले हैं। परंतु सरस्तीका दान इन सबसे अधिक उत्तम है। नित्य हुद्दी जानेवाली गाय, छाता, वस्त्र, जूता तथा अन्न और जल—ये सब वस्तुएँ याचकोंको देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तथा अग्निडित याचकोंको जो संकल्पपूर्वक धनादि वस्तुओंका दान किया जाता है, उससे दाता मनस्त्री होता है। लोकमें जो-जो अत्यन्त अभीष्ट और श्रिय है, वह यदि घरमें हो तो उसे अक्षय बनानेकी इच्छायाले पुरुषको गुणवान् पुरुषको दान करना चाहिये। तुला-पुरुषका दान सब दानोंमें उत्तम है। जो अपने लिये कल्याण चाहे, उसे तराजूपूर बैठना और अपने शरीरसे तौली गयी वस्तुका दान करना चाहिये। दिनमें रातमें दोनों संघ्याओंके समय, दोपहरमें आधीरातके समय तथा भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंमें मन, वाणी और शरीरद्वारा किये गये सारे पापोंको तुला-पुरुषका दान दूर कर देता है।

इसके बाद ब्रह्माण्डदानका माहात्म्य परं प्राणाङ्कका वर्णन करके सनन्त्कुमारजीने कहा—  
भृगुरोंमें थेषु व्यास। पाताललोकसे ऊपर जो नरक है, उमार्थन मुक्तसे मुनो; पापी पुरुष उन्हींमें यातनाएँ भोगते हैं।  
पैख, शूकर, रोध, ताल, विवसन या विशसन, महाज्वाल, चक्रुम्भ, लवण, विलोहित, पीत वहनेवाली वैतरणी, कृष्ण  
कृष्णभीष, कृष्णभोजन, कृष्ण, असिपत्रवन, दारण लालाभक्ष, लून, पाप, वहिज्वाल, अथशिरा, संदंश, कालसूत्र,  
दंतन, अवीचि, रोधन, द्वभोजन, अप्रतिष्ठ, महारौरव  
और शाल्मलि इत्यादि बहुत-से दुःखदायक नरक वहाँ हैं।  
उत्तर्य ! उनमें जो पापकर्म-पराश्रण पुरुष पक्षाये जाते हैं,  
उनमें नमस्तु वर्णन करता हूँ; सावधान होकर बुनो।

जो मनुष्य ब्राह्मणों, देवताओं तथा गौओंके लिये हितकर कार्योंके सिवा अन्य किसी कार्यके लिये दृढ़ी गवाही देता है अथवा सदा दृढ़ बोलता है, वह रौरव नरकमें जाता है।

जो भ्रूण ( गर्भस्थ शिशु ) की हत्या और सुवर्णकी चोरी करनेवाला, गायको कटघरेमें बंद करनेवाला, विश्वसधाती, शराबी, ब्रह्महत्यार, दूसरोंके द्रव्यका अपहरण करनेवाला तथा इन सबका संगी है, वह मरनेपर तसकुम्भ नामक नरकमें जाता है। गुरुके वधसे भी इसी नरककी प्राप्ति होती है। वहिन, माता, गौ तथा पुनीका वध करनेसे भी तसकुम्भमें ही गिरना पड़ता है। साढ़ी छोटीको बेचनेवाला, अधिक व्याज लेनेवाला, केश-विक्रय करनेवाला तथा अपने भक्तको त्यागनेवाला—ये सब पापी तसलोह नामक नरकमें पकाये जाते हैं। जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला तथा उनके प्रति दुर्बचन बोलनेवाला है और जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला तथा आगम्या खींसे सम्भोग करनेवाला है, वे सब-के-सब लवण नामक नरकमें जाते हैं। चोर विलोहित नामक नरकमें गिरता है। मर्यादाको दूषित करनेवाले पुरुषकी भी ऐसी ही गति होती है। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और पितृगणसे द्वेष करनेवाला है तथा जो रत्नको दूषित ( उसमें मिलावट ) करता है, वह कृमिभक्ष नामक नरकमें पड़ता है। जो दूषित यज्ञ ( दूसरोंको हानि पहुँचानेके लिये अभिचारिक प्रयोग या हिंसाप्रधान तामस यज्ञ ) करता है, वह कृमीश नामक नरकमें पड़ता है। जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर ( वलिवैश्वदेवके द्वारा देवता आदिका भाग उन्हें अर्पण किये बिना ही ) भोजन कर लेता है, वह उम्र लालाभक्ष नरकमें गिरता है। जो शस्त्रसमूहोंका निर्माण करता है, वह भी उसी-में जाता है। जो द्विज अन्त्यजसे सेवा लेता है, असत् दान प्रदान करता है, यशके अभिचारियोंसे यश कराता है और अभ्यश्य भक्षण करता है, ये सब-के-सब दधिरौव ( पूर्यवर ) नामक नरकमें गिरते हैं। जो सोमरजको बेचनेवाले हैं, उनमें भी यही गति होती है। यज्ञ और ग्रामको नष्ट करनेवाला और वैतरणी नदीमें पड़ता है।

जो नवी जननीसे मतवाले हो घर्मकी मर्यादाको तोड़ते हैं, अपवित्र आचार-मिचारसे रहते हैं और दृढ़ कर्माने जीविका चलते हैं, वे कृल्य नामक नरकमें जाते हैं। जो अद्वारण ही वृद्धोंको काटता है, वह अविपत्रवन नामक नरकमें जाता है।

मेंडोंको बेचकर जीविका चलनेवाले तथा पशुओंकी हिसा करनेवाले कसाई वहिज्वाल नामक नरकमें गिरते हैं। भ्रष्टाचारी ब्रह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा जो कच्चे लपड़ी अथवा इंट आदिको पकानेके लिये पजावेमें आग देता है, वे सब उसी वहिज्वाल नरकमें गिरते हैं। जो ब्रतोंका लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे गिरे हुए हैं, वे दोनों ही प्रकारके पुरुष अत्यन्त दास्त्रण संदेश नामक नरककी यातनामें पड़ते हैं। जो ब्रह्मचारी होकर भी स्वप्नमें वीर्यस्वलून करते हैं तथा जो पुत्रोंसे विद्या पढ़ते हैं, वे ध्योजन नामक नरकमें गिरते हैं। इस तरह ये तथा और भी सैकड़ों, हजारों नरक हैं, जिनमें पापकर्मी प्राणी यातनाओंकी आगमें डालकर पकाये जाते हैं। इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पापकर्म हैं, जिनमें नरकमें पड़कर मनुष्य भोगा करते हैं। जो लोग मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने वर्ण और आश्रमके विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। नरकमें सिर नीचे करके लटकाये गये प्राणी स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवताओंको देखा करते हैं और देवतालोग भी नीचे दृष्टि डालनेपर उन सभी अधोमुख नारकी जीवोंको देखते हैं। पापीलोग नरक-भोगके अनन्तर क्रमशः उन्मति करते हुए स्थावर, कुमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा मानव, देवता तथा मुमुक्षु होते और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जितने जीव स्वर्गमें हैं, उतने ही नरकमें हैं। जो पापी पुरुष अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करता, वही नरकमें जाता है।

कालीनन्दन ! स्यायम्मुख मनुने महान् पापोंके लिये

महान् और लघु पापोंके लिये लघु प्रायश्चित्त बताये हैं। उन अशेष पापकर्मोंके लिये जो-जो प्रायश्चित्त-सम्बन्धी कर्म बताये गये हैं, उन सबमें भगवान् शंकरका सरण ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। जिस पुरुषके चित्तमें पाप-कर्म करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एक-मात्र भगवान् शिवका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। प्रातः-काल, सायंकाल, रातमें तथा मध्याह्न आदिमें भगवान् शिवका स्मरण करनेसे पापरहित हुआ मनुष्य माहेश्वर धामको प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके स्मरणसे समस्त पापों और क्लेशोंका क्षय हो जानेसे मनुष्य स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिसका चित्त जप, होम और पूजा आदि करते समय निरत्तर भगवान् महेश्वरमें ही लगा रहता है; उसके लिये इन्द्र आदि पदकी प्राप्तिरूप फल तो अन्तराय ( विघ्न ) ही है। मुने। जो पुरुष भक्तिभावसे रात-दिन भगवान् शिवका स्मरण करता है, उसके सारे पातक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वह कभी नरकमें नहीं पड़ता। नरक और स्वर्ग—ये पाप और पुण्यके ही दूसरे नाम हैं। इनमेंसे एक तो दुःख देनेवाला है और दूसरा सुख देनेवाला। जब एक ही वस्तु कभी प्रीति प्रदान करनेवाली होती है और कभी दुःख देनेवाली बन जाती है, तब यह निश्चय होता है कि कोई भी पदार्थ न तो दुःखमय है और न सुखमय ही है। ये सुख-दुःख तो मनके ही विकार हैं। ज्ञान ही परब्रह्म है और ज्ञान ही तात्त्विक वोधका कारण है। यह सारा चराचर विश्व ज्ञानमय ही है। उस परम विश्वानसे मिल दूसरी कोई वस्तु नहीं है। ( अध्याय १३—१६ )

### मृत्युकाल निकट आनेके कौन-कौनसे लक्षण हैं, इसका वर्णन

इसके पश्चात् द्वीपों, लोकों और मनुओंका परिचय देकर संग्रामके फल, शरीर एवं खीस्खभाव आदिका वर्णन किया गया। तदनन्तर कालके विषयमें व्यासजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने कहा—मुनि-श्रेष्ठ ! पूर्वकालमें पार्वतीजीने नाना प्रकारकी दिव्य कथाएँ मुनकर परमेश्वर शिवको प्रणाम करके उनसे यही बात पूछी थी।

पार्वती घोर्ली—भगवन् ! मैंने आपकी कृपासे उम्मीद मत जान लिया। देव ! जिन मन्त्रोंद्वारा जिस विधिसे जिप्रकार आपकी पूजा होती है, वह भी मुझे शत हो गया। किंतु प्रभो ! अब भी एक संशय रह गया है। वह संयोग कालचक्रके सम्बन्धमें देव ! मृत्युका क्या चिह्न है ? आपुम् क्या प्रमाण है ? नाथ ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो मुझे सब बातें बतायें।



महादेवजीने कहा—प्रिये ! यदि अकस्मात् शरीर सब ओसे सफेद या पीला पड़ जाय और ऊपरसे कुछ लाल दीखे तो वह जानना चाहिये कि उस मनुष्यकी मृत्यु छः महीनेके भीतर ही जायगी । तिथे ! जब मुँह, कान, नेत्र और जिह्वाका लम्फन हो जाय, तब भी छः महीनेके भीतर ही मृत्यु जाननी चाहिये । भद्रे ! जो रुद मृगके पीछे होनेवाली शिकारियोंकी भयानक आवाजको भी जल्दी नहीं सुनता, उसकी मृत्यु भी उः महीनेके भीतर ही जाननी चाहिये । जब सूर्य, चन्द्रमा वा अग्निके सानिध्यसे प्रकट होनेवाले प्रकाशको मनुष्य नहीं रेखता, उसे सब कुछ काला-काला—अन्धकारच्छब्द ही दिखायी देता है, तब उसका जीवन छः माससे अधिक नहीं रहता । देवि ! प्रिये ! जब मनुष्यका वायाँ हाथ लगातार एक बारहतक फँइकता ही रहे, तब उसका जीवन एक मास ही रहता है—ऐसा जानना चाहिये । इसमें संशय नहीं है । जब लंबे भ्रमोंमें अङ्गइड़ी आने लगे और ताड़ सूख जाय, तब वह मनुष्य एक मासतक ही जीवित रहता है—इसमें संशय

नहीं है । निदोपमें जिसकी नाक वहने लगे, उसका जीवन पंद्रह दिनसे अधिक नहीं चलता । मुँह और कण्ठ सूखने लगे तो यह जानना चाहिये कि छः महीने वीतते-वीतते इसकी आयु समाप्त हो जायगी । भासिनी ! जिसकी जीभ फूल जाय और दाँतोंसे मवाद निकलने लगे, उसकी भी छः महीनेके भीतर ही मृत्यु हो जाती है । इन चिह्नोंसे मृत्युकालको समझना चाहिये । सुन्दरि ! जल, तेल, धी तथा दर्पणमें भी जब अपनी परछाई न दिखायी दे या विकृत दिखायी दे, तब कालचक्रके ज्ञाता पुरुषको यह जान लेना चाहिये कि उसकी भी आयु छः माससे अधिक शेष नहीं है । देवेश्वरि ! अब दूसरी बात सुनो, जिससे मृत्युका ज्ञान होता है । जब अपनी छायाको सिरसे रहित देखे अथवा अपनेको छायासे रहित पाये, तब वह मनुष्य एक मास भी जीवित नहीं रहता ।

पार्वती ! ये मैंने अङ्गोंमें प्रकट होनेवाले मृत्युके लक्षण बताये हैं । भद्रे ! अब बाहर प्रकट होनेवाले लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो । देवि ! जब चन्द्रमण्डल या सूर्यमण्डल प्रभाहीन एवं लाल दिखायी दे, तब आधे मासमें ही मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है । असन्धती, महायान, चन्द्रमा—इन्हें जो न देख सके अथवा जिसे ताराओंका दर्शन न हो, ऐसा पुरुष एक मासतक जीवित रहता है । यदि ग्रहोंका दर्शन होनेपर भी दिशाओंका ज्ञान न हो—मनपर मूढ़ता छायी रहे तो छः महीनेमें निश्चय ही मृत्यु हो जाती है । यदि उत्थय नामक ताराका, प्रवक्ता अथवा सूर्यमण्डलका भी दर्शन न हो सके, रातमें इन्द्र-धनुष और मध्याह्नमें उल्कापात होता दिखायी दे तथा गीध और कौवे धेरे रहें तो उस मनुष्यकी आयु छः महीनेसे अधिककी नहीं है । यदि आकाशमें सतपिं तथा स्वर्णमार्ग (छायापथ) न दिखायी दे तो कालज्ञ पुरुषोंको उस पुरुषकी आयु छः मास ही शेष समझनी चाहिये । जो अकस्मात् सूर्य और चन्द्रमाको राहुसे ग्रस्त देखता है और समूर्ण दिशाएँ जिसे वूमती दिखायी देती हैं, वह अवश्य ही छः महीनेमें मर जाता है । यदि अकस्मात् नीली मक्षियाँ आकर पुरुषको धेर लें तो वास्तवमें उसकी आयु एक मास ही शेष जाननी चाहिये । यदि गीव, क्षेत्र अथवा क्वृतर सिरपर चड़ जाय तो वह पुरुष शीघ्र ही एक मासके भीतर ही मर जाता है, इसमें संशय नहीं है । ( अच्छाद १३-२५ )

## कालको जीतनेका उपाय, नवधा शब्दब्रह्म एवं तुंकारके अनुसंधान और उससे ग्राम होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन

देवी पार्वतीने कहा—प्रभो ! कालसे आकाशका भी नाश होता है । वह भयंकर काल वडा विकराल है । वह स्वर्गका भी एकमात्र सामी है । आपने उसे दग्ध कर दिया था, परंतु अनेक प्रकारके स्तोत्रोद्वारा जब उसने आपकी स्तुति की, तब आप फिर संतुष्ट हो गये और वह काल पुनः अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुआ—पूर्णतः स्वस्थ हो गया । आपने उससे वातचीतमें कहा—‘काल ! तुम सर्वत्र विचरोगे, किंतु लोग तुम्हें देख नहीं सकेंगे ।’ आप प्रभुकी कृपाद्विष्ट होने और वर मिलनेसे वह काल जी उठा तथा उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया । अतः मदेश्वर ! क्या यहाँ ऐसा कोई साधन है, जिससे उस कालको नष्ट किया जा सके ? यदि हो तो मुझे बताइये; क्योंकि आप योगियोंमें शिरोमणि और स्वतन्त्र प्रभु हैं । आप परोपकारके लिये ही शरीर धारण करते हैं ।

शिव बोले—देवि ! श्रेष्ठ देवता, दैत्य, यज्ञ, राक्षस, नाग और मनुष्य—किसीके द्वारा भी कालका नाश नहीं किया जा सकता; परंतु जो ध्यान-परायण योगी हैं, वे शरीरधारी होनेपर भी सुखपूर्वक कालको नष्ट कर देते हैं । वरारोहे ! यह पाञ्चभौतिक शरीर सदा उन भूतोंके गुणोंसे युक्त ही उत्पन्न होता है और उन्हींमें इसका लय होता है । मिट्टीकी देह मिट्टीमें ही मिल जाती है । आकाशसे वायु उत्पन्न होती है, वायुसे तेजस्तत्त्व प्रकट होता है, तेजसे जलका प्राकट्य बताया गया है और जलसे पृथ्वीका आविर्भाव होता है । पृथ्वी आदि भूत क्रमशः अपने कारणमें लीन होते हैं । पृथ्वीके पाँच, जलके चार, तेजके तीन और वायुके दो गुण होते हैं । आकाशका एक मात्र शब्द ही गुण है । पृथ्वी आदिमें जो गुण बताये गये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्वर्ण, रूप, रस और गन्ध । जब भूत अपने गुणको त्याग देता है, तब नष्ट हो जाता है और जब गुणको ग्रहण करता है, तब उसका प्रादुर्भाव हुआ बताया जाता है । देवेश्वर ! इस प्रकार तुम पाँचों भूतोंके यथार्थ स्वरूपको समझो । देवि ! इस कारण कालको जीतनेकी इच्छावाले योगीको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने कालमें उसके अंदरभूत गुणोंका चिन्तन करे ।

योगवेत्ता पुरुषको चाहिये कि सुखद आसनपर बैठकर विशुद्ध श्वास ( प्राणावाम ) द्वारा योगाभ्यास करे । रातमें

जब सब लोग सो जायें, उस समय दीपक बुझाकर अन्धकारमें योग धारण करे । तर्जनी अङ्गुलीसे दोनों कानोंको बंद करके दो घड़ीतक दयाये रखें । उस अवस्थामें अग्निप्रेरित शब्द सुनायी देता है । इससे संध्याके चादका खाया हुआ अच्छ ज्ञानभरमें पच जाता है और समूर्ण रोगों तथा ज्वर आदि बहुत-से उपद्रवोंका शीघ्र नाश कर देता है । जो साधक प्रतिदिन इसी प्रकार दो घड़ीतक शब्दब्रह्मका साक्षात्कार करता है, वह मृत्यु तथा कामको जीतकर इस जगतमें स्वच्छन्द विचरता है और सर्वज्ञ एवं समदर्शी होकर समूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है । जैसे आकाशमें वर्षासे युक्त बादल गरजता है, उसी प्रकार उस शब्दको सुनकर योगी तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है । तदनन्तर योगियोंद्वारा प्रतिदिन चिन्तन किया जाता हुआ वह शब्द क्रमशः सूक्ष्मतर होता जाता है । देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें शब्दब्रह्मके चिन्तनका क्रम बताया है । जैसे धान चाहनेवाला पुरुष पुआलको छोड़ देता है, उसी तरह मोक्षकी इच्छावाला योगी सारे बन्धनोंको त्याग देता है ।

इस शब्दब्रह्मको पाकर भी जो दूसरी वस्तुकी अभिलाप्त करते हैं, वे मुक्तेसे आकाशको मारते और भूत-यासकी कामना करते हैं । यह शब्दब्रह्म ही सुखद, मोक्षका कारण बाह्य-भीतरके भेदसे रहित, अविनाशी और समस्त उपाधियोंसे रहित परब्रह्म है । इसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाते हैं । जो लोग कालपाशसे मोहित हो शब्दब्रह्मको नहीं जानते, वे पापी और कुदुर्दि मनुष्य मौतके कंदमें फँसे रहते हैं । मनुष्य तभीतक संसारमें जन्म लेते हैं, जबतक सबके आश्रयभूत परमतत्त्व ( परब्रह्म परमात्मा ) की प्राप्ति नहीं होती । परम तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है । निद्रा और आलस्य साधनाका बहुत बड़ा विघ्न है । इस शब्दको यत्नपूर्वक जीतकर सुखद आज्ञा पर आसीन हो प्रतिदिन शब्दब्रह्मका अभ्यास करना चाहिये । सौ वर्षकी अवस्थावाला वृद्ध पुरुष आजीवन इसका अभ्यास करे तो उसका शरीरल्ली स्तम्भ मृत्युको जीतनेवाला हो जाता है और उसे प्राणवायुकी शक्तिको बढ़ानेवाला आगेय प्राप्त होता है । वृद्ध पुरुषमें भी शब्दब्रह्मके अभ्यास होनेवाले लाभका विश्वास देखा जाता है, फिर तरुण मनुष्यको

इस साधनसे पूर्ण लाभ हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है। यह शब्दब्रह्म न ओंकार है न मन्त्र है, न बीज है, न अक्षर है। यह अनाहत नाद ( जिना आषातके अथवा जिना वजाये ही प्रकट होनेवाला शब्द ) है। इसका उच्चारण किये जिना ही चिन्तन होता है। यह शब्दब्रह्म परम कल्याणमय है। प्रिये ! शुद्ध बुद्धिवाले पुरुष यजपूर्वक निरन्तर इसका अनुसंधान करते हैं। अतः नौ प्रकारके शब्द वताये गये हैं, जिन्हें प्राणवेत्ता पुरुषोंने लक्षित किया है। मैं उन्हें प्रयत्न करके बता रहा हूँ। उन शब्दोंको नादसिद्धि भी कहते हैं। वे शब्द क्रमशः इस प्रकार हैं—

घोष, कांस्य ( ज्ञान आदि ), शृङ्ग ( सिंगा आदि ), घण्टा, वीणा आदि, वैंसुरी, हुन्दुभि, शङ्ख और नवौं मेघ-गर्जन—इन तौ प्रकारके शब्दोंको त्यागकर तुकारका अभ्यास करे। इस प्रकार सदा ही ध्यान करनेवाला योगी पुण्य और पापेसे लिप्त नहीं होता। देवि ! योगाभ्यासके द्वारा सुननेका प्रयत्न करनेपर भी जब योगी उन शब्दोंको नहीं सुनता और अभ्यास करते-करते मरणासन हो जाता है, तब भी वह दिन-रात उस अभ्यासमें ही लगा रहे। ऐसा करनेसे सात दिनोंमें वह शब्द प्रकट होता है, जो मृत्युको जीतनेवाला है। देवि ! वह शब्द नौ प्रकारका है। उसका मैं यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। पहले तो घोषात्मक नाद प्रकट होता है, जो आमशुद्धिका उत्कृष्ट साधन है। वह उत्तम नाद सब ऐसोंसे हर लेनेवाला तथा मनको वशीभूत करके अपनी और वीचनेवाला है। दूसरा कांस्य-नाद है, जो प्राणियोंकी

गतिको सम्भित कर देता है। वह विष, भूत और ग्रह भादि सबको दोषधाता है—इसमें संशय नहीं है। तीसरा शृङ्ग-नाद है, जो अभिचारसे सम्बन्ध रखनेवाला है। उसका शशुके उच्चारण और मारणमें नियोग एवं प्रयोग करे। चौथा घण्टा-नाद है, जिसका साक्षात् परमेश्वर शिव उच्चारण करते हैं। वह नाद सम्पूर्ण देवताओंको आकृष्ट कर लेता है, फिर भूतलके मनुष्योंकी तो ब्रात ही क्या है। यद्यों और गन्धवौंकी कन्याएँ उस नादसे आकृष्ट हो योगीको उसकी इच्छाके अनुसार महासिद्धि प्रदान करती हैं तथा उसकी अन्य कामनाएँ भी पूर्ण करती हैं। पाँचवाँ नाद वीणा है, जिसे योगी पुरुष ही संदा सुनते हैं। देवि ! उस वीणा-नादसे दूर-दर्शनकी शक्ति प्राप्त होती है। वंशीनादका ध्यान करनेवाले योगीको सम्पूर्ण तत्त्व प्राप्त हो जाता है। हुन्दुभिनादका चिन्तन करनेवाला साधक जरा और मृत्युके कष्टसे छूट जाता है। देवेश्वरि ! शङ्खनादका अनुसंधान होनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेघनादके चिन्तनसे योगीको कभी विपत्तिका सामना नहीं करना पड़ता। धरनने ! जो प्रतिदिन एकाग्र चित्तसे ब्रह्मरूपी तुकारका ध्यान करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता। उसे मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और इच्छानुसार रूपधारी होकर सर्वत्र विचरण करता है, कभी विकारोंके वशीभूत नहीं होता। वह साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है। परमेश्वरि ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष शब्दब्रह्मके नवधा खल्पका पूर्णतया वर्णन किया है। अब और क्या सुनना चाहती हो ? ( अध्याय २६ )

### काल या मृत्युको जीतकर अमरत्व प्राप्त करनेकी चार घौणिक साधनाएँ—प्राणायाम, भूमध्यमें अग्निका ध्यान, मुखसे वायुपान तथा मुड़ी हुई जिह्वाद्वारा गलेकी धाँटीका स्पर्श

एर्यवीं वोल्ट्स—प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो योगी जीवकाशजनित वायुपदको जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह ऐसे हुते रहताइये।

भग्यान् शिवने कहा—मुन्दरि ! पहले मैंने योगियोंके हितकी भूमिकाते स्वरूप कुछ बताया है जिसके अनुसार योगियोंने कालपर विष प्राप्त की थी। योगी जिस प्रकार वायुका स्वरूप धारण करता है उसके विषयमें भी कहा गया है। इसलिये योगशक्तिके द्वारा रस्यु-रित्यलको जानकर प्राणायाममें तत्त्वर हो जाय। यह रस्येर आधे गारमें ही वह आये हुए कालको जीत

लेता है। हृदयमें स्थित हुई प्राणवायु सदा अग्निको उद्दीपत करनेवाली है। उसे अग्निका सहायक बताया गया है। वह वायु वाहर और भीतर सर्वत्र व्यात और भद्रत् है। शान, विश्वान और उत्साह—सबकी प्रत्यक्षित वायुसे ही होती है। जिसने यहाँ वायुको जीत लिया, उसने इस सम्पूर्ण लग्नप्रविजय पा ली।

साधकको चाहिये कि वह जरा और मृत्युको जीतनेती इच्छासे सदा धारणमें स्थित रहे; क्योंकि योगशक्ति योगीदो भूमिकामें धारणा और ध्यानमें तत्पर रहना चाहिये। इन दुश्मार

मुखसे धौंकनीको फँक-फँककर उस वायुके द्वारा अपने सब कार्यको सिद्ध करता है, उसी प्रकार योगीको प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामके समय जिनका ध्यान किया जाता है, वे आराध्यदेव परमेश्वर सहस्रों मस्तक, नेत्र, पैर और हाथोंसे युक्त हैं तथा समस्त ग्रन्थियोंको आवृत करके उनसे भी दस अङ्गुल आगे स्थित हैं। आदिमें व्याहृति और अन्तमें शिरोमन्त्रसहित गायत्रीका तीन बार जप करे और प्राणायामको रोके रहे। प्राणोंके इस आयामका नाम प्राणायाम है। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर लौट आते हैं। परंतु प्राणायाम-पूर्वक ध्यानपरायण योगी जानेपर आजतक नहीं लौटे हैं (अर्थात् मुक्त हो गये हैं)। देवि ! जो द्विज सौ वर्षोंतक तपस्या करके कुशोंके अग्रभागसे एक बूँद जल पीता है, वह जिस फलको पाता है, वही व्राह्मणोंको एकमात्र धारणा अथवा प्राणायामके द्वारा मिल जाता है। जो द्विज सबैरे उठकर एक प्राणायाम करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापको शीघ्र ही नष्ट कर देता और ब्रह्मलोकको जाता है। जो आलस्यरहित हो सदा एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जरा और मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील हो आकाशमें विचरता है। वह सिद्धोंके स्वरूप, कान्ति, मेघा, पराक्रम और शैर्यको प्राप्त कर लेता है। उसकी गति वायुके समान हो जाती है तथा उसे सृष्टियी तौल्य एवं परम सुखकी प्राप्ति होती है।

देवेश्वर ! योगी जिस प्रकार वायुसे सिद्धि प्राप्त करता है, वह सब विधान मैंने बता दिया। अब तेजसे जिस तरह वह सिद्धि लाभ करता है, उसे भी बता रहा हूँ। जहाँ दूसरे लोगोंकी यातनीतका कोलाहल न पहुँचता हो, ऐसे शान्त एकान्त श्वानमें अपने सुखद आसनपर पैठकर चन्द्रमा और सूर्य ( वाम और दक्षिण नेत्र ) की कान्तिसे प्रकाशित मन्यवर्ती देश भ्रम्यभागमें जो अग्निका तेज अव्यक्त लप्से प्रकाशित होता है, उसे आलस्यरहित योगी दीपकरहित अन्धकारमूर्ण स्थानमें चिन्तन करनेपर निश्चय ही देख सकता है—इसमें संदाय नहीं है। योगी हाथकी अङ्गुलियोंसे यल्लपूर्वक दोनों नेत्रोंको कुछ-कुछ दवाये रखते और उनके तारंगों देखता हुआ एकाग्र चित्तसे आधे मुहूर्तक उन्होंका चिन्तन करे। तदनन्तर अन्वकारमें भी ध्यान करनेपर वह उस ईर्ष्याय च्योतिको देख सकता है। वह ज्योति सफेद, लाल, पीली, काली तथा इन्द्रधनुषके रूपान् रंगवाली होती है। भोद्वेदि की चर्में ललाटवर्ती वालसूर्य-के समान तेजवाल उन अग्निदेवका साक्षात्कार करके योगी इच्छानुसार लूप धारण करनेवाला हो जाता है तथा मनोवार्तित

शरीर धारण करके कीड़ा करता है। वह योगी काण-तत्त्वके शान्त करके उसमें आविष्ट होना, दूसरे के शरीरमें प्रवेश करना, अणिमा आदि गुणोंको पा लेना, मनसे ही सब कुछ देना; दूरकी वातोंको सुनना और जानना, अदृश्य हो जाना, वहुत-से रूप धारण कर लेना तथा आकाशमें विचरना इत्यादि सिद्धियोंको निरन्तर अभ्यासके प्रभावसे प्राप्त कर लेता है। जो अन्धकारसे परे और सूर्यके समान तेजस्वी है, उसी इस महान् ज्योतिर्मय पुरुष ( परमात्मा )को मैं जानता हूँ। उन्होंने जानकर मनुष्य काल या मृत्युको लौघ जाता है। मोहके लिये इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। \* देवि ! इस प्रकार मैंने तुमसे तेजस्त्वके चिन्तनकी उत्तम विधिका वर्णन किया है, जिससे योगी कालपर विजय पाकर अमरत्वको प्राप्त कर लेता है।

देवि ! अब पुनः दूसरा श्रेष्ठ उपाय बताता हूँ, जिसे मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती।

देवि ! ध्यान करनेवाले योगियोंकी चौथी गति ( साधना ) बतायी जाती है। योगी अपने चिच्चको वशमें करके यथार्थ स्थानमें सुखद आसनपर बैठे। वह शरीरको ऊँचा करके अङ्गलि बौंधकर चौचकी-सी आङ्गूतिवाले मुखके द्वारा धौर-धौरे वायुका पान करे। ऐसा करनेसे क्षणभरमें तड़िके भीतर स्थित जीवनदायी जलकी बूँदें टपकने लगती हैं। उन बूँदोंको वायुके द्वारा लेकर सूखे। वह शीतल जल अमृत-स्वरूप है। जो योगी उसे प्रतिदिन पीता है, वह कभी मृत्युके अधीन नहीं होता। उसे भ्रू-ध्यास नहीं लगती। उत्तम शरीर दिव्य और तेज महान् हो जाता है। वह बलमें हाथी और वेगमें धोड़ेकी समानता करता है। उसकी दृष्टि गद्यके समान तेज हो जाती है और उसे दूरकी भी बातें सुनायी देने लाती हैं। उसके केश कालेजाले और हुँवराले हो जाते हैं तथा अङ्गकान्ति गन्धर्व एवं विद्याधरोंकी समानता करती है। वह मनुष्य देवताओंके वर्षसे सौ वर्षोंतक जीवित रहता है तथा अपनी उत्तम बुद्धिके द्वारा वृहस्पतिके तुल्य हो जाता है। उसमें इच्छानुसार विचरनेकी शक्ति आ जाती है और वह सदा ही सुखी रहकर आकाशमें विचरणकी शक्ति प्राप्त कर लेता है।

\* वेदाद्यमें पुरुष महान्तमादित्यवर्णं तमसः परतात् ।

तमेव विदित्वात्मित्युमेति नान्यः पन्था विद्यते प्रायगायः॥

( शि० ३० उ० स० २३ । २३ )

करनने ! अब मृत्युपर विजय पानेकी पुनः दूसरी विधि  
करा रहा हूँ, जिसे देवताओंने भी प्रयत्नपूर्वक छिपा रखा  
है; तुम उसे सुनो । योगी पुरुष अपनी जिहाको ठोड़कर  
तल्खमें लगानेका प्रयत्न करे । कुछ कालतक ऐसा करनेसे

वह क्रमशः लंबी होकर गलेकी धौंटीतक पहुँच जाती है ।  
तदनन्तर जब जिहासे गलेकी धौंटी सटती है, तब शीतल सुधा-  
का न्वाव करती है । उस सुधाको जो योगी सदा पीता है, वह  
अमरत्वको प्राप्त होता है । ( अध्याय २७ )

## भगवती उमाके कालिका-अवतारकी कथा—समाधि और सुरथके समक्ष मेधाका देवीकी कृपासे मधुकैटमके वधका प्रसङ्ग सुनाना

इसके अनन्तर छायापुरुष, सर्ग, कद्यपर्वंश, न्वलर, मनुवंश, सत्यवतादिवंश, पितृकल्प तथा  
यासोत्पत्ति आदिका वर्णन सुननेके पश्चात् सुनियोगे  
हृतजीसे कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी ! हमने आपके  
प्रत्येक भगवान् शिवकी अनेक इतिहासोंसे युक्त रमणीय कथा  
नी, जो उनके नानावतारोंसे सम्बन्ध रखती है तथा मनुष्यों  
में भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है । अब हम आपसे  
गगडननी भगवती उमाका मनोहर चरित्र सुनना चाहते हैं ।  
रत्नस परमात्मा महेश्वरकी जो आद्या सनातनी शक्ति हैं,  
वे उमा नामसे विख्यात हैं । वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली  
शक्ति है । महामते ! दक्षकन्या सती और हिमवानकी  
पुत्री पार्वती—ये उमाके दो अवतार हमने सुने । सूतजी ! अब  
उनके दूसरे अवतारोंका वर्णन कीजिये । लक्ष्मीजननी जगदम्बा  
उमाके गुणोंको सुननेसे कौन बुद्धिमान् पुरुष विरत हो सकता  
है । शानी पुरुष भी कभी उनके कथा-अवणके शुभ अवसरको  
गति छोड़ते ।

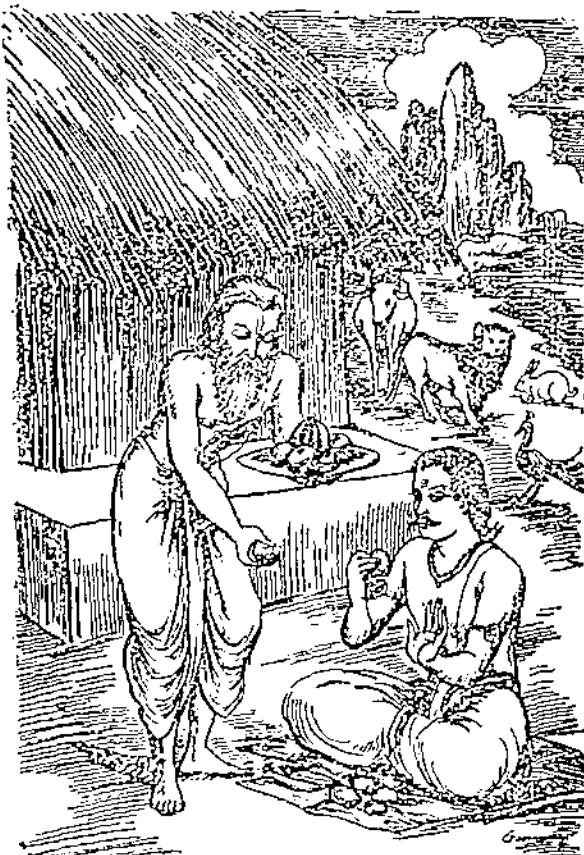
सूतजीने कहा—महात्माओं ! तुमलोग घन्य हो और  
पर्वता हृतकल्प हो; क्योंकि परा अम्बा उमाके महान् चरित्रके  
रिपामें पूछ रहे हो । जो इस कथाको सुनते, पूछते और  
रोचते हैं, उनके चरणकमलोंकी धूलिको ही शृण्यियोगे  
दीर्घ माना है । जिनका चित्त परम संवित्-स्वल्पा श्रीउमादेवीके  
वित्तमें लीन है, वे पुरुष घन्य हैं, कृतज्ञत्व है, उनकी माता  
और छुल भी घन्य हैं । जो समस्त कारणोंकी भी कारणल्पा  
उमाकी खुति नहीं करते, वे मायाके गुणोंसे मोहित  
नहीं भावरीन हैं—इसमें संशय नहीं है । जो कवणारसकी  
भजन नहीं करते, वे संहारल्पी  
नहीं भजनमें पड़ते हैं । जो देवी उमाको छोड़कर दूर  
देवीकी दरम लेता है, वह मानो गङ्गाजीको छोड़कर  
उमाकी दरम लिये भस्सलके जलाशयके पास जाता है ।  
जो जरणनक्ते भर्मे आदि चारों पुरुषायोंकी अनावश-

प्राप्ति होती है, उन देवी उमाकी आराधना कौन श्रेष्ठ पुरुष  
छोड़ सकता है ।

पूर्वकालमें महामना सुरथने महर्षि मेधासे यही वात पूछी  
थी । उस समय मेधाने जो उत्तर दिया, मैं वही वता रहा हूँ;  
तुमलोग सुनो । पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें विरथ नामसे  
प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं । उनके पुत्र सुरथ हुए, जो  
महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे । वे दाननिषुण, सत्य-  
वादी, स्वर्वर्मकुशल, विद्वान्, देवीभक्त, दयालागर तथा  
प्रजाजनोंका भलीभौति पालन करनेवाले थे । इन्हें समान  
तेजस्वी राजा सुरथके पृथ्वीपर शासन करते समय नौ ऐसे  
राजा हुए, जो उनके हाथसे भूमण्डलका राज्य छीन लेनेके  
प्रयत्नमें लगे थे । उन्होंने भूपाल सुरथकी राजधानी कोलापुरी-  
को चारों ओरसे धेर लिया । उनके साथ राजाका वडा भयानक  
हुआ । उनके शशुभृण बड़े प्रबल थे । अतः युद्धमें  
भूपाल सुरथकी पराजय हुई । शमुओंने बारा रथ्य अपने  
अविकारमें करके सुरथको कोलापुरीसे निकाल दिया । राजा  
अपनी दूसरी पुरीमें आये और वहाँ भन्त्रियोंके साथ रहकर  
राज्य करने लगे । परंतु प्रबल विग्रहियोंने वहाँ भी आक्रमण  
करके उन्हें पराजित कर दिया । दैवयोगसे राजाके मन्त्री आदि  
गण भी उनके शशु वन दैठे और लजानेमें जो वन संचित  
था, वह सब उन विरोधी मन्त्री आदिने अपने हाथमें  
कर लिया ।

तब राजा सुरथ चिकारके वधने अकेले ही धोड़पर उघार  
हो नगरसे पाइर निकले और गहन वनमें चढ़े गये । वहाँ  
इघर-उघर धूमते हुए राजाने एक श्रेष्ठ दुनिका आभ्रम देखा,  
जो चारों ओर धूलोंके वर्णावे लगे ऐसेते वही शोभा पा रहा  
था । वहाँ वेदभन्त्रोंकी ध्वनि धूंज रही थी । क्य त्रीय-उन्तु  
शान्तभावसे रहते थे । सुनिके शिखों, प्रगिर्भां तथा उनके भी  
शिथोंने उत आभ्रमको उच ध्वंसे धेर रखा था । नहजावे ।  
निपद्धर मेषाके प्रभावसे उन आभ्रममें नदापद्मी अब आदि

अल्प शक्तिवाले गौ आदि पशुओंको पीड़ा नहीं देते थे । वहाँ जानेपर मुनीश्वर मेघाने मीठे वचन, भोजन और आसन-



द्वारा उन परम दयालु विद्वान् नरेशका आदरस्तकार किया ।

एक दिन राजा सुरथ बहुत ही चिन्तित तथा मोहके वशीभूत होकर अनेक प्रकारसे विचार कर रहे थे । इतने में ही वहाँ एक वैश्य आ पहुँचा । राजाने उससे पूछा— 'मैं भैया ! तुम कौन हो और किसलिये यहाँ आये हो ? क्या कारण है कि दुखी दिलायी दे रहे हो ? यह मुझे बताओ ।' राजाके मुखसे यह मधुर वचन सुनकर वैश्यप्रवर समाधिने दोनों नेत्रोंसे आँख बहाते हुए प्रेम और नम्रतापूर्ण वाणीमें इस प्रकार उत्तर दिया ।

वैश्य बोला—राजन् । मैं वैश्य हूँ । मेरा नाम समाधि है । मैं जनीके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ । परंतु मेरे पुत्रों और छोटी आदिने धनके लोभसे मुझे घरसे निकाल दिया है । अतः अपने प्रारब्धकमत्ते दुखी हो मैं वनमें चला आया हूँ । कन्धासागर प्रभो ! यहाँ आकर मैं पुत्रों, पौत्रों, पत्नी, भई-भर्तीजि तथा अन्य मुद्दोंका कुशल-समाचार नहीं जान पाता ।

राजा बोले—जिन हुराचारी तथा धनके लोभी पुरुष आदिने तुम्हें निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मूर्ख बीबकी भाँति तुम प्रेम क्यों करते हो ?

वैश्यने कहा—राजन् । आपने उत्तम बात कही है । आपकी वाणी सारगमित है; तथापि स्वेष्टपाशसे बँधा हुआ मेरा मन अत्यन्त मोहको प्राप्त हो रहा है ।

इस तरह मोहसे व्याकुल हुए वैश्य और राजा दोनों मुनिवर मेघाके पास गये । वैश्यसहित राजाने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'भगवन् । आप हम दोनोंके मोहपाशको काट दीजिये । मुझे राज्यलक्ष्मीने छोड़ दिया और मैंने गहन वनकी शरण ली; तथापि राज्य छिन जानेके कारण मुझे संतोष नहीं है । और यह वैश्य है, जिसे भी आदि स्वजनोंने घरसे निकाल दिया है; तथापि उनकी ओरसे इसकी ममता दूर नहीं हो रही है । इसका क्या कारण है ? बताइये । समझदार होनेपर भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया, यह तो बड़ी भारी मूर्खता है ।



श्रृंगी बोले—राजन् । सनातन शक्तिखला जगदप्य महामाता कही गयी है । वे ही सबके गनको खींचकर मेरी काल देती हैं । प्रभो ! उनकी वाणीसे मोहित होनेके बारे

प्रश्ना आदि समस्त देवता भी परम तत्वको नहीं जान पाते, किंतु गुणोंकी तो वात ही क्या है ? वे परमेश्वरी ही रज, सत्त्व और तम—इन तीन गुणोंका आश्रय ले समयानुसार सम्पूर्ण विश्वकी सुष्ठि, पालन और संहार करती हैं। नृपश्रेष्ठ ! जिसके ऊपर वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वरदायिनी लादम्बा प्रसन्न होती हैं, वही भोहके वेरेको लाँध पाता है।

राजाने पूछा—मुने ! जो सबको मोहित करती हैं, वे देवी महामाया कौन हैं ! और किस प्रकार उनका प्राहुर्मव हुआ है ? यह कृपा करके मुझे बताइये ।

ऋषि बोले—जब सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न था और योगेश्वर भगवान् केशव शेषकी शश्या विछाकर योगनिद्राका आश्रय ले शयन कर रहे थे, उन्हीं दिनों भगवान् विष्णुके कानोंके मलसे दो असुर उत्पन्न हुए, जो भूतलपर मधु और कैटभके नामसे विस्थात हैं। वे दोनों विशालकाय और असुर प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी थे। उनके बहुत बहुत बड़े थे। उनके मुख दाढ़ोंके कारण ऐसे निकराल दिखायी देते थे, मानो वे सम्पूर्ण जगत्को खा जानेके लिये उद्धत हैं। उन दोनोंने भगवान् विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए कमलके ऊपर विराजमान ब्रह्माको देखकर पूछा—‘अरे ! तू कौन है ?’ ऐसा कहते हुए वे उन्हें मार डालनेके लिये उद्धत हो गये। ब्रह्माजीने देखा—‘ये दोनों दैत्य आक्रमण करता चाहते हैं और भगवान् जनार्दन समूद्रके जलमें सो रहे हैं। तब उन्होंने परमेश्वरीका स्वरन किया और उनसे प्रार्थना भी—‘अभिके ! तुम इन दोनों दुर्जय असुरोंको मोहित करो और अजग्ना भगवान् नारायणको जगा दो ।’

ऋषि कहते हैं—इस प्रकार मधु और कैटभके नाशके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिदेवी दात्त्वकानी महाविद्या काल्युन उच्चल द्वादशीको त्रैलोक्य-मैत्रिशक्तिके लप्ते प्रकट हो महाकालीके नामसे विस्थात हैं। तदनन्तर आकाशवाणी हुई—‘कमलासन ! डरो न ! अब युद्धमें मधु-कैटभको मारकर मैं तुम्हारे कण्टकका लकड़ी !’ यो कहकर वे महामाया श्रीदरिके नेत्र और उस भादिते निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके इष्टिपथमें भर रही हैं गयीं। किंतु तो देवाधिदेव हृषीकेश जनार्दन द्वा रहे। उन्होंने असने सामने दोनों दैत्य मधु और कैटभके लकड़ी ! उन देवोंके लाध अलुल तेजस्वी विष्णुका पाँच रथ वृगुपक पाइयुद हुआ। तब महामायाके प्रभावते



मोहित हुए उन श्रेष्ठ दानवोंने लक्ष्मीपतिसे कहा—‘तुम हमसे मनोवाञ्छित वर प्रदण करो ।’

नारायण बोले—यदि तुमलोग प्रसन्न हो तो मेरे हाथसे मारे जाओ। यही मेरा वर है। इसे दो। मैं तुम दोनोंसे दूसरा वर नहीं माँगता।

ऋषि कहते हैं—उन असुरोंने देखा, सारी पृथ्वी एकार्णवके जलमें फूँटी हुई है; तब वे केशवसे बोले—‘हम दोनोंको ऐसी जगह मारो, जहाँ जलसे भीगी हुई धसती न हो। वहुत अच्छा’ कहकर भगवान् विष्णुने अपना परम तेजस्वी चक्र उठाया और अपनी जाँचपर उनके महाक रखकर काट दाला। राजन ! यह कालिकाकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहा गया है। महामते ! अब महालक्ष्मीके प्रादुर्भावकी कथा सुनो। देवी उमा निर्विकार और निराकार होकर भी देवताओंका हुँस दूर करनेके लिये युग-युगमें नाकारन्त धारण करके प्रकट होती हैं। उनका शरीरग्रदण उनकी इच्छाका वैभव कहा गया है। वे दीलाने इच्छिये प्रकट होती हैं कि भक्तजन उनके गुणोंका गान जाते रहें।

## सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे देवीका महालक्ष्मीरूपमें अवतार और उनके द्वारा महिषासुरका वध

ऋषि कहते हैं—राजन् । रम्भ नामसे प्रसिद्ध एक असुर था, जो दैत्यवंशका शिरोमणि भाना जाता था । उससे महातेजस्मी महिष नामक दानवका जन्म हुआ था । दानवराज महिष समस्त देवताओंको युद्धमें पराजित करके देवराज इन्द्रके सिंहासनपर जा वैठा और स्वर्गलोकमें रहकर त्रिलोकीका राज्य करने लगा । तब पराजित हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये । ब्रह्माजी भी उन सबको साथ ले उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शिव और विष्णु विराजमान थे । वहाँ पहुँचकर सब देवताओंने शिव और केशवको नमस्कार किया तथा अपना सब वृत्तान्त वथार्थरूपसे व्योरेवार कह सुनाया । वे बोले—‘भगवन् ! दुरात्मा महिषासुरने इम सबको समराङ्गणमें जीतकर स्वर्गलोकसे निकाल दिया है । इसलिये इम इस मत्थंलोकमें भटक रहे हैं और कहीं भी हमें शान्ति नहीं मिल रही है । उस असुरने इन्द्र आदि देवताओंकी कौन-कौन-सी हुर्दशा नहीं की है । सूर्य, चन्द्रमा, वरण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, वायु, गन्धर्व, विद्याधर और चारण—इन सबके तथा अन्य लोगोंके भी जो कर्तव्यकर्म हैं, उन सबको वह पापात्मा असुर स्वयं ही करता है । उसने दैत्यपक्षको अभय-दान कर दिया है । इसलिये इम सब देवता आपकी शरणमें आये हैं । आप दोनों हमारी रक्षा करें और उस असुरके वधका उपाय शीघ्र ही सोचें; क्योंकि आप दोनों ऐसा करनेमें समर्थ हैं ।’

देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् शिव और विष्णुने अत्यन्त कोध किया । रोषके मारे उनके नेत्र घूमने लगे । तब अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए भगवान् शिव और विष्णुके मुखसे तथा अन्य देवताओंके शरीरसे तेज प्रकट हुआ । तेजका वह महान् पुज्ज अत्यन्त प्रज्जलित हो दसों दिशाओंमें प्रकाशित हो उठा । दुर्गाजीके ध्यानमें लगे हुए सब देवताओंने उस तेजको प्रत्यक्ष देखा । सम्पूर्ण देवताओंके शरीरोंसे निकला हुआ वह अत्यन्त भीषण तेज एकश हो एक नारीके रूपमें परिणत हो गया । वह नारी साक्षात् महिषमर्दिनी देवी थीं । उनका प्रकाशमान मुख भगवान् शिवके तेजसे प्रकट हुआ था । मुजाएं विष्णुके तेजसे उत्पन्न हुई थीं । केश यमराजके तेजसे प्रकट हुए थे । उनके दोनों लग्न चन्द्रमाके तेजसे प्रकट हुए थे । कटिभाग इन्द्रके तेजसे तथा जह्ना और ऊरु वसुन्धराके तेजसे पैदा हुए थे । पृथ्वीके तेजसे नितम्बका और ब्रह्माजीके तेजसे दोनों चरणोंमा आविनांव हुआ था । द्वैतकी अंगुलियोंमें तेजसे और हाथप्पी अंगुलियोंमें वसुओंके तेजसे उत्पन्न

हुई थीं । नासिका कुबेरके, दाँत प्रजापतिके, तीनों नेत्र-अग्निके, दोनों भौंहें साध्यगणके, दोनों कान वायुके तथा अन्य देवताओंके सेजसे प्रकट हुए थे । इस प्रकार देवताओंके तेजसे प्रकट हुई कमलालया लक्ष्मी ही वह परमेश्वरी थी । सम्पूर्ण देवताओंकी तेजोराशिसे प्रकट हुई उन देवीको देवकर सब देवताओंको बड़ा ईर्ष प्राप्त हुआ । परंतु उनके पास कोई अन्न नहीं था । यह देख ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंने शिवा देवीको अज्ञ-शस्त्रसे सम्प्रस करनेका विचार किया । तब महेश्वरने महेश्वरी-को शूल समर्पित किया । भगवान् विष्णुने चक्र, वरुणने पाणी, अग्निदेवने शक्ति, वायु देवताने धनुष तथा वाणीसे भरे दो तरकस और शचीपति इन्द्रने वज्र एवं धण्ड प्रदान किये । यमराजने कालदण्ड, प्रजापतिने अस्तमाला, ब्रह्माने कमण्डु एवं सूर्यदेवने समस्त रोमकूपोंमें अपनी किरणें अर्पित कीं । कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तक्कवार दी, श्रीरामाने सुन्दर द्वार तथा कभी पुराने न होनेवाले दो दिव्य वज्र भेट किये । साथ ही उन्होंने दिव्य चूडामणि, दो कुण्डल, वहूत दो कड़े, अर्धचन्द्र, कैयूर, मनोहर नूपुर, गलेकी हँसुली और सब अंगुलियोंमें पहननेके लिये रक्तोंकी वनी अँगूठियाँ भी दीं । विश्वकर्माने उन्हें मनोहर फरसा भेट किया । साथ ही अनेक प्रकारके अज्ञ और अमेघ कवच दिये । समुद्रने उदा सुरम्य एवं सरस रहनेवाली माला दी और एक कमलका फूल भेट किया । हिमवान्नने सबारीके लिये सिंह तथा आभूषणके विद्युत नाना प्रकारके रक्त दिये । कुबेरने उन्हें मधुसे भरा पान अर्पित किया तथा सपोंके नेता शेषनागने विचित्र रचनाकौशलसे सुशोभित एक नागहार भेट किया, जिसमें नाना प्रकारकी सुन्दर मणियाँ गँथी हुई थीं । इन सबने तथा दूसरे देवताओंने भी आभूषण और अज्ञ-शस्त्र देवकर देवीका सम्मान किया । तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अद्वितीय करके उच्चस्वरसे गर्जना की । उनके उस भयंकर नादसे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा । उषे वडे जोरकी प्रतिभ्वनि हुई, जिससे तीनों लोकोंमें हलचल गन गयी । चारों समुद्रोंने अपनी मर्यादा छोड़ दी । पृथ्वी दोलने लगी । उस समय महिषासुरसे पीड़ित हुए देवताओंने देवीकी जय-जयकार की ।

तदनन्तर सब देवताओंने उन महालक्ष्मीखलपा परायकि जगद्माका भक्ति-गद्दद वाणीद्वारा स्थान किया । सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षेमप्रस्तु देख देववैरी दैत्य अपनी समस्त सेनाओंके कवच आदिसे मुसन्नित कर हाथोंमें शथियार के महार उठ

लड़े हुए। रोपसे भरा हुआ महिषासुर भी उस शब्दकी ओर लक्ष करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थी। इस समय महिषासुरके द्वारा पालित करोड़ों शशधारी महावीर वहाँ आ पहुँचे। चिंकुर, चामर, उदय, कर्गल, उद्धत, वाष्णव, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, विडाल, अन्धक, दुर्वर, दुर्मुख, त्रिनेत्र और महाहनु—ये तथा अन्य बहुतसे युद्धकुशल शूरवीर समराङ्गणमें देवीके साथ युद्ध करने लगे। वे सबके सब अष्ट-शक्तियोंकी विद्यामें पारंगत थे। इस प्रकार देवी और दैत्यगण दोनों परस्पर जूझने लगे। उनका वह भीषण समय मारकारमें ही बीतने लगा। इस तरह भयानक युद्ध होनेके बाद महिषासुर देवीके साथ मायायुद्ध करने लगा।

तब देवीने कहा—रे मृढ़! तेरी बुद्धि मारी गयी है। तब वर्ध हठ क्यों करता है? तीनों लोकोंमें कोई भी असुर युद्धमें मेरे सामने ठिक नहीं सकते।

सौ कहकर सर्वकलामयी देवी कूदकर महिषासुरपर चढ़ गयीं और अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने भयंकर शूलसे उसके कण्ठमें आश्रात किया। उसके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे दूसरे रूपमें बाहर निकलने लगा। अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया। आधा निकला होनेपर भी वह महा-अधम दैत्य देवीके साथ युद्ध करने लगा। तब देवीने बहुत बड़ी तलवारसे उसका सिर काटकर उस असुरको धराशायी कर दिया। फिर तो उसके सैनिकगण हाथ! हाथ! करके नीचे मुख किये भयभीत हो रणभूमिसे भागने और त्राहि-त्राहिकी पुकार करने लगे। उस समय इन्द्र आदि सब देवताओंने देवीकी सुति की। गर्थर्व गीत गाने लगे और अस्सराएँ दृत्य करने लगीं। राजन! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके महालक्ष्मी-अवतारकी कथा कही है। अब तुम सुस्थिर चित्तसे सरस्वतीके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनो। (अध्याय ४६)

देवी उमाके शरीरसे सरस्वतीका आविर्भाव, उनके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुभका उनके पास  
दूत भेजना, दूतके निराश लौटनेपर शुभका क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा  
एतत्वीजको भेजना और देवीके द्वारा उन सबका भारा जाना

धूपि कहत हैं—पूर्वकालमें श्रुत्य और निश्चय गमके दो प्रतीपी दैत्य थे, जो आपसने भाई-भाई थे। उन दोनोंने चराचर प्राणियोंसहित समस्त विलोकीके राज्यपर चलूर्धक आक्रमण किया। उनसे पीड़ित हुए देवताओंने दिग्गंबर पर्वतकी शरण ली और सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली एवं भूतजननी देवी उमाका स्वन किया।

देवता बोले—महेश्वरि दुर्गे! आपकी जय हो। अपने भेषजोंका शिव जरनेवाली देवि! आपकी जय हो। आप जीवों लोहोंकी रक्षा जरनेवाली देवि हैं। आपको वारंवार नमस्कार है। आप ही मोक्ष प्रदान करनेवाली परा अम्बा हैं। आपको वारंवार नमस्कार है। आप समस्त संसारकी उत्सत्ति; सेसि और स्थिर करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। दिल्ला और तारारूप धरण करनेवाली देवि। आपको नमस्कार है। छिकमत्ता आपका ही रूप है। आप ही धैर्य हैं। आपको नमस्कार है। भुवनेश्वरि। आपको नमस्कार है। धैर्यस्पिधि। आपको नमस्कार है। आप ही चंद्रशुभ्री और धूमाक्ती हैं। आपको वारंवार नमस्कार है। आप ही विपुरसुन्दरी और मातझी हैं। आपको

वारंवार नमस्कार है। अजिता, विजया, जया, मङ्गला और विलासिनी—ये सभी आपके ही विभिन्न रूपोंकी सशाये हैं। इन सभी रूपोंमें आपको नमस्कार है। दोष्ट्री (माता अथवा कामधेनु) रूपमें आपको नमस्कार है। धोर आकार धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। अपराजिता-रूपमें आपको प्रणाम है। नित्या महाविद्याके रूपमें आपको वारंवार नमस्कार है। आप ही शरणगतीका पालन करनेवाली दृद्धाणी हैं। आपको वारंवार नमस्कार है। वेदान्तके द्वारा आपके ही त्वरणका वोध होता है। आपको नमस्कार है। आप एतत्वा हैं। आपको गेरा प्रणाम है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली आप जगद्ग्याको वारंवार नमस्कार है।

\* देवा जन्मः—

१४ इन्में नैतिकि नवारमीष नवप्रिये।  
प्रेतोन्यत्रामवासिन्ये दिवायै ते ननो नगः ॥  
तनो सुत्प्रदायिन्ये धरम्यायै ननो नगः ।  
नमः समस्तन्तसारोत्प्रियस्तिरम्यकारिणे ॥  
कालिकास्तपतन्तने नन्दागत्ते नमः :  
दिव्रजन्तास्तरूपायै भैविद्यायै ननोऽनु ते ॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर वरदायिनी एवं कल्याणरूपिणी गौरी देवी बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने समस्त देवताओंसे पूछा—‘आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?’ तब उन्हीं गौरीके शरीरसे एक कुमारी प्रकट हुई। वह सब देवताओंके देखते-देखते शिवशक्तिसे आदरपूर्वक बोली—‘मैं ! मैं समस्त स्वर्गवासी देवता निशुभ्म और शुभ्म नामक प्रबल दैत्योंसे अत्यन्त पीड़ित हो अपनी रक्षाके लिये मेरी स्तुति करते हैं।’ पार्वतीके शरीरकोशसे वह कुमारी निकली थी, इसलिये कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हुई। कौशिकी ही साक्षात् शुभ्मासुरका नाश करनेवाली सरस्वती है। उन्होंको उग्रतारा और महोग्रतारा भी कहा गया है। माताके शरीरसे स्वतः प्रकट होनेके कारण वे इस भूतलयपर मातझी भी कहलाती हैं। उन्होंने समस्त देवताओंसे कहा—‘तुमलोग निर्भय रहो। मैं स्वतन्त्र हूँ। अतः किसीका सहारा लिये बिना ही तुम्हारा कार्य सिद्ध कर दूँगी।’ ऐसा कहकर वे देवी तत्काल वहाँ अदृश्य हो गयीं।

एक दिन शुभ्म और निशुभ्मके सेवक चण्ड और मुण्डने देवीको देखा। उनका मनोहररूप नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाला था। उसे देखते ही वे मोहित हो सुध-बुध स्नोकर पृथ्वीपर गिर पड़े, फिर होशमें आनेपर वे अपने राजाके पास गये और आरम्भसे ही सारा वृत्तान्त बताकर बोले—‘महाराज ! हम दोनोंने एक अर्पूर्व सुन्दरी नारी देखी है, जो हिमालयके रमणीय शिखरपर रहती है और सिंहपर सवारी करती है।’ चण्ड-मुण्डकी यह बात सुनकर महान् असुर शुभ्मने देवीके पास सुग्रीव नामक अपना दूत भेजा और कहा—‘दूत ! हिमालयपर कोई अर्पूर्व सुन्दरी रहती है। तुम वहाँ जाओ और उससे मेरा संदेश कहकर

भुवनेशि नमस्तुर्यं नमस्ते भैरवाङ्कुरे ।  
नमोऽस्तु वगालमुख्यै धूमाकर्त्ये नमो नमः ॥  
नमज्जिपुरसुन्दर्यै मातज्ज्यै ते नमो नमः ।  
अजितायै नमस्तुर्यं विजयायै नमो नमः ॥  
जयायै मङ्गलायै ते विलासिन्यै नमो नमः ।  
दोष्ट्रास्त्वे नमस्तुर्यं नमो धोरक्षवेऽस्तु ते ॥  
नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः ।  
शरणागतपालिन्यै रुद्रायै ते नमो नमः ॥  
नमो केदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने ।  
अनन्तकोटिमहाउडनायिकायै नमो नमः ॥

( शिं० पु० च० सं० ४७ । ३—१० )

उसे प्रयत्नपूर्वक यहाँ ले आओ।’ यह आज्ञा पैकर दानवशिरोमणि सुग्रीव हिमालयपर गवा और जगद्ध्रम महेश्वरीसे इस प्रकार बोला।

दूतने कहा—‘देवि ! दैत्य शुभ्मासुर अपने महान् बल और विक्रमके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसका छोटा भाई निशुभ्म भी वैसा ही है। शुभ्मने मुझे तुम्हारे पास दूत बनाकर भेजा है। इसलिये मैं वहाँ आया हूँ। सुरेश्वर ! उसने जो संदेश दिया है, उसे इस समय सुनो। मैंने समराङ्गणमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उनके समस्त रथोंका अपहरण कर लिया है। यज्ञमें देवता आदिके दिये हुए देवभागका मैं स्वयं ही उपमेण करता हूँ। मैं मानता हूँ कि तुम खियोंमें रह दो, सब रथोंके ऊपर स्थित हो। इसलिये तुम कामजनित रथके साथ मुक्षको अथवा मेरे भाईको अङ्गीकार करो।’



दूतके मुँहसे शुभ्मका यह संदेश सुनकर भूतनाथ भगवान् शिवकी प्राणवहनभा महामायाने इस प्रकार कहा—

‘देवी वोली—दूत ! तुम सच कहते हो। तुम्हारे कथनमें थोड़ा-सा भी असत्य नहीं है। परंतु मैंने पहले से एक प्रतिशो कर ली हूँ; उसे सुनो। जो मैं पहं

चूर कर दे, जो मुझे युद्धमें जीत ले, उसीको मैं पति बना सकती हूँ, दूसरेको नहीं। यह मेरी अटल प्रतिशा है। इसलिये तुम शुम्भ और निशुम्भको मेरी यह प्रतिशा बता दो। फिर इस विषयमें जैसा उचित हो, बैसा बो करें।

देवीकी यह बात सुनकर दानव सुग्रीव लैट गया। वहाँ जाकर उसने विस्तारपूर्वक राजाको सब बातें बतायीं। दूतकी बात सुनकर उग्र शासन करनेवाला शुम्भ कुपित हो उठा और बलवानोंमें श्रेष्ठ सेनापति धूम्राक्षसे बोला—‘धूम्राक्ष ! हिमालयपर कोई मुन्दरी रहती है। तुम शीघ्र वहाँ जाकर जैसे भी वह यहाँ आये, उसी तरह उसे ले अद्यो। असुरपत्र ! उसे लानेमें तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये। यदि वह युद्ध करना चाहे तो तुम्हें प्रयत्नपूर्वक उसके साथ युद्ध भी करना चाहिये।’

शुम्भकी ऐसी आज्ञा पाकर दैत्य धूम्रलोचन हिमालयपर गया और उमाके अंशसे प्रकट हुई भगवती भुवनेश्वरीसे कहा—‘नितम्भिनि ! मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो तुम्हें मरवा डालूँगा। मेरे साथ साठ हजार असुरोंकी सेना है।’

देवी बोलीं—‘वीर ! तुम्हें दैत्यराजने भेजा है। यदि मुझे मार ही डालेगे तो क्या करूँगी। परंतु युद्धके बिना मैं यहाँ जाना असम्भव है। मेरी ऐसी ही मान्यता है।’

देवीके ऐसा कहनेपर दानव धूम्रलोचन उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ा। परंतु महेश्वरीने ‘हूँ’ के उच्चारणमात्रसे उसको भस्त कर दिया। तभीसे वे देवी इस भूतलपर धूम्राक्षी कहलाने लगीं। उनकी आराधना करनेपर वे अपने भक्तोंके शत्रुओंका संहार कर डालती हैं। धूम्राक्षके मारे जानेपर अत्यन्त कुपित हुए देवीके बाहन सिंहने उसके जप आये हुए समस्त असुरगणोंको चवा डाला। जो नरोंसे वचे, वे भाग खड़े हुए। इस प्रकार देवीने दैत्य धूम्रलोचनको मार डाल। इस समाचारको सुनकर प्रतापी उम्भने बड़ा क्रोध किया। वह अपने दोनों ओठोंको दाँतोंसे रक्खकर रह गया। उसने क्रमशः चण्ड, मुष्ड तथा रक्षीज नामक असुरोंको भेजा। आज्ञा पाकर वे दैत्य

उस स्थानपर गये, जहाँ देवी विराजमान थीं। अणिमा आदि सिद्धियोंसे सेवित तथा अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई भगवती सिंहवाहिनीको देखकर वे श्रेष्ठ दानव वीर बोले—‘देवि ! तुम शीघ्र ही शुम्भ और निशुम्भके पास चलो, अन्यथा तुम्हें गण और बाहनसंहित मरवा डालेंगे। बामे ! शुम्भको अपना पति बना लो। लोकपाल आदि भी उनकी स्तुति करते हैं। शुम्भको पति बना लेनेपर तुम्हें उस महान् आनन्दकी प्राप्ति होगी, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है।’

उनकी ऐसी बात सुनकर परमेश्वरी अम्बा मुस्कराकर सरस मधुर वाणीमें बोलीं।

देवीने कहा—‘अद्वितीय महेश्वर परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं, जो सदाशिव कहलाते हैं। वेद भी उनके तत्त्वको नहीं जानते, फिर विष्णु आदिकी तो बात ही क्या है। उन्हीं सदाशिवकी मैं सूक्ष्म प्रकृति हूँ। फिर दूसरेको पति कैसे बना सकती हूँ। सिंहिनी कितनी ही कामातुर क्यों न हो जाय, वह गीदड़को कभी अपना पति नहीं बनायेगी। हथिनी गदहेको और वाघिन खरगोशको नहीं बरेगी। दैत्यो ! तुम सब लोग झूठ बोलते हो; क्योंकि कालरूपी सर्पके फंदेमें फैसे हुए हो। तुम या तो पातालको लैट जाओ या शक्ति हो तो युद्ध करो।’

देवीका यह क्रोध पैदा करनेवाला बच्चन सुनकर वे दैत्य बोले—‘हमलोग अपने मनमें तुम्हें अवल उम्भकर मार नहीं रहे थे। परंतु यदि तुम्हारे मनमें युद्धकी ही इच्छा है तो सिंहपर सुस्थिर होकर बैठ जाओ और युद्धक लिये आगे बढ़ो।’ इस तरह चादन्विवाद करते हुए उनमें कलह बढ़ गया और समराङ्गणमें दोनों दलोंपर तीखे वाणोंकी वर्षा होने लगी। इस तरह उनके साथ लीलापूर्वक युद्ध करके परमेश्वरीने चण्ड-मुष्डसंहित महान् असुर रक्षीजको मार डाला। वे देववैरी असुर द्वेषतुदि करके आये थे, तो भी अन्तमें उन्हें उस उत्तम लोककी प्राप्ति हुई, जिसमें देवीके भक्त जाते हैं। (अध्याय ४७)

### देवीके द्वारा सेना और सेनापतियोंसहित निशुम्भ एवं शुम्भका संहार

ऋषि कहते हैं—राजन् ! प्रशांतनीय पराक्रमशाली असुर शुम्भने इन श्रेष्ठ दैत्योंका मारा जाना सुनकर अपने वन दुर्जय गणोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी,

जो संग्रामका नाम सुनते ही हरने लिल उद्दने थे। उसने कहा—‘आज मेरी व्याधाते रालक, रालकेय, नीर्य, दौर्हृद तथा अन्य अनुरगन वड़ी भारी सेनाके लाय लगातित

हो विजयकी आशा रखकर शीघ्र युद्धके लिये प्रस्थान करें ।' निशुभ्म और शुभ्म दोनों भाई उन दैत्योंको पृथ्वीक आदेश देकर रथपर आरूढ़ हो स्वयं भी नगरसे बाहर निकले । उन महाबली वीरोंकी आशासे उनकी सेनाएँ उसी तरह युद्धके लिये आगे बढ़ीं, मानो मरणोन्मुख पतञ्ज आगमें कूदनेके लिये उठ खड़े हुए हों । उस समय असुरराजने युद्धस्थलमें मृदग्ग, मर्दल, भेरी, डिण्डम, झाँझ और ढोल आदि बाजे बजवाये । उन जुझाऊ बाजोंकी आवाज सुनकर युद्धप्रेमी वीर हर्ष एवं उत्साहसे भर गये; परंतु जिन्हें अपने ग्राण ही अधिक प्यारे थे, वे उस रणभूमिसे भाग चले । युद्धसम्बन्धी वस्त्रों तथा कवच आदिसे अच्छादित अङ्गबाले वे योद्धा विजयकी अभिलाषासे अख-शस्त्र धारण किये युद्धस्थलमें आ पहुँचे । कितने ही सैनिक हाथियोंपर सवार थे, बहुतसे दैत्य घोड़ोंकी पीठपर बैठे थे और अन्य असुर रथोंपर चढ़कर जा रहे थे । उस समय उन्हें अपने-परायेकी पहचान नहीं होती थी । उन्होंने असुरराजके साथ समराङ्गणमें पहुँचकर सब ओरसे युद्ध आरम्भ कर दिया । बारंबार शतन्त्री ( तोप ) की आवाज होने लगी, जिसे सुनकर देवता काँप उठे । धूल और धूएँसे आकाशमें महान् अन्धकार छा गया । सूर्यका रथ नहीं दिखायी देता था । अत्यन्त अभिमानी करोड़ों पैदल योद्धा विजयकी अभिलाषा लिये युद्धस्थलमें आकर डट गये थे । शुद्धस्वार, हाथीस्वार तथा अन्य रथारूढ़ असुर भी बड़ी प्रसन्नताके साथ करोड़ोंकी संख्यामें वहाँ आये थे । उस महासमरमें काले पर्वतोंके समान विशाल मदमत्त गजराज जोर-जोरसे चिंग्घाड़ रहे थे, छोटे-छोटे शैल-शिखरोंके समान ऊँट भी अपने गलेसे गल्गल ध्वनिका विस्तार करने लगे । अच्छी भूमिमें उत्पन्न हुए घोड़े गलेमें विशाल कण्ठहार धारण किये जोर-जोरसे हिनहिना रहे थे । वे अनेक प्रकारकी चालें जानते थे और हाथियोंके मस्तकपर पैर रखते हुए आकाशमार्गसे पक्षियोंकी भाँति उड़ जाते थे । शत्रुकी ऐसी सेनाको आक्रमण करती देख जगदम्बाने अपने धनुषपर प्रत्यक्षा चढ़ायी । साथ ही शत्रुओंको हतोत्साह करनेवाले धंटेको भी बजाया । यह देख सिंह भी अपनी गर्दन और मस्तकके केशोंको कँपाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ।

उस समय हिमाल्य पर्वतपर खड़ी हुई रमणीय आभूयणों और अङ्ग्रेंसे सुशोभित दिवा देवीकी ओर देखकर निशुभ्म लालिनी रमणियोंके मनोभावको समझनेमें निपुण पुरुषकी

भाँति सरस वाणीमें बोल—'महेश्वरि ! तुम-जैसी सुन्दरियोंके रमणीय शरीरपर मालतीके फूलका एक दल भी डाल दिया जाय तो वह व्यथा उत्पन्न कर देता है । ऐसे मनोहर शरीरसे तुम विकराल युद्धका विस्तार कैसे कर रही हो ?' यह बात कहकर वह महान् असुर चुप हो गया । तब चण्डिका देवीने कहा—'भूद असुर ! व्यर्थकी बातें क्यों बकता है ? युद्ध कर, अन्यथा पातालको चला जा ।' यह सुनकर वह महारथी वीर अत्यन्त रुष्ट हो समर-भूमिमें बाणोंकी अद्भुत वृष्टि करने लगा, मानो बादल जलकी धारा वरसा रहे हों । उस समय उस रणक्षेत्रमें बाणी ऋतुका आगमन हुआ-सा जान पड़ता था । मदसे उद्धत हुआ वह असुर तीखे बाण, शूल, फरसे, गिन्दियाल, परिष, धनुष, भुशुण्डि, प्रास, क्षुरप्र तथा बड़ी-बड़ी तलवारोंसे युद्ध करने लगा । काले पर्वतोंके समान बड़े-बड़े गजराज कुम्भस्थल विदीर्घ हो जानेके कारण समराङ्गणमें चक्रकर काटने लगे । उनकी पीठार फहराती हुई शुभ्म-निशुभ्मकी पताकाएँ, जो उड़ती हुई बलकाओं ( बगुलों ) की पंक्तियोंके समान खेत दिखायी देती थीं, अपने स्थानसे खण्डित होकर नीचे गिरने लगीं । क्षत-विक्षत शरीरवाले दैत्य पृथ्वीपर गिरकर मछलियोंके समान तड़प रहे थे । गर्दन कट जानेके कारण घोड़ोंके समूह वडे भयंकर दिखायी देते थे । कालिकाने कितने ही दैत्योंको मौतकं घाट उतार दिया तथा देवीके बाहन सिंहने अन्य बहुतसे असुरोंको अपना आहार बना लिया । उस समय दैत्योंके मारे जानेसे उस रणभूमिमें रक्तकी धारा बहानेवाली कितनी ही नदियाँ वह चलीं । सैनिकोंके केश पानीमें सेवरकी भाँति दिखायी देते थे और उनकी चादरें सफेद फेनका भ्रम उत्पन्न करती थीं ।

इस तरह घोर युद्ध होने तथा राक्षसोंका महान् संहार हो जानेके पश्चात् देवी अम्बिकाने विषमें बुझे हुए तीखे बाणों-द्वारा निशुभ्मको मारकर धराशायी कर दिया । अपने असीम शक्तिशाली छोटे भाईके मारे जानेपर शुभ्म रोपसे भर गया और रथपर बैठकर आठ भुजाओंसे युक्त हो महेश्वर-प्रिया अम्बिकाके पास गया । उसने जोर-जोरसे शहू बजाया और शत्रुओंका दमन करनेवाले धनुषकी दुस्सह उंकारध्वनि की तथा देवीका सिंह भी अपने अयालोंको हिलाता हुआ दशाइने लगा । इन तीन प्रकारकी ध्वनियोंसे आकाशमण्डल मैंज उठा ।

तदनन्तर जगदम्बाने अद्वाहस किया, जिससे समल असुर संत्रस्त हो उठे । जब देवीने शुभ्मसे कहा कि 'तुम युद्धमें

स्थिरतापूर्वक सड़े रहे' तब देवता बोल उठे—‘जय हो, जय हो जगदम्बाकी ।’ इस समय दैत्यराज शुभ्मने वडी भारी शक्ति छोड़ी, जिसकी शिखासे आगकी चाला निकल रही थी । परंतु देवीने एक उल्काके द्वारा उसे मार गिराया । शुभ्मके चलाये हुए वाणोंके देवीने और देवीके चलाये हुए वाणोंके शुभ्मने सहस्रों ढुकड़े कर दिये । तत्त्वशात् चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस महान् असुरपर आघात किया । त्रिशूलकी चोटसे मूर्च्छित हो वह इन्द्रके द्वारा पंख काट दिये जानेपर गिरनेवाले पर्वतकी भाँति आकाश, पृथ्वी तथा समुद्रको कमित करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा । तदनन्तर शूलके आघातसे होनेवाली व्यथाको सहकर उस महावली असुरने दस हजार बाँहें धारण कर लौं और देवताओंका भी नाश करनेमें समर्थ चक्रोद्वारा सिंहसहित महेश्वरी शिवापर आघात करना आरम्भ किया । उसके चलाये हुए चक्रोंको खेल-खेलमें ही विदीर्ण करके देवीने त्रिशूल उठाया और उस असुरपर घातक प्रहार किया । शिवाके

लोक-पावन पाणिपङ्कजसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों असुर परम पदके भागी हुए ।

उस महापराक्रमी निशुम्भ और भयानक वलशाली शुभ्मके मारे जानेपर समस्त दैत्य पातालमें शुत गये, अन्य वहुत-से असुरोंको काली और सिंह आदिने खा लिया तथा शेष दैत्य भयसे व्याकुल हो दसों दिशाओंमें भाग गये । नदियोंका जल स्वच्छ हो गया । वे ठीक मार्गसे वहने लगीं । मन्द-मन्द वायु वहने लगी, जिसका सर्वा सुखद प्रतीत होता था; आकाश निर्मल हो गया । देवताओं और ब्रह्मपिंग्योंने फिर यज्ञ-यागादि आरम्भ कर दिये । इन्द्र आदि सब देवता शुद्धी हो गये । ग्रन्थो ! दैत्यराजके वध-प्रसङ्गसे युक्त इस परम पवित्र उमाचरित्रिका जो श्रद्धापूर्वक वारंवार श्रवण या पाठ करता है, वह इस लोकमें देवदुर्लभ भोगोंका उपभोग करके परलोकमें महामायाके प्रसादसे उमाधामको जाता है । राजन् ! इस प्रकार शुभ्मासुरका संहार करनेवाली देवी सरस्वतीके चरित्रिका वर्णन किया गया, जो सक्षात् उमाके अंशसे प्रकट हुई थीं । (अध्याय ४८)

## देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये तेजःपुञ्जस्त्रपिणी उमाका प्रादुर्भाव

मुनियोंने कहा—सम्पूर्ण पदार्थोंके पूर्ण ज्ञाता सूतजी ! भुवनेश्वरी उमाके, जिनसे सरस्वती प्रकट हुई थीं, अवतारका पुनः वर्णन कीजिये । वे देवी परव्रह्म, मूल-प्रकृति, ईश्वरी, निराकार होती हुई भी साकार तथा नित्यानन्द-मयी सती कही जाती हैं ।

सूतजीने कहा—तपस्वी मुनियो ! आपलोग देवीके उत्तम एवं महान् चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनें, जिसके जानने मायसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है । एक समय देवताओं और दानवोंमें परस्पर युद्ध हुआ । उसमें महामायाके प्रभावसे देवताओंकी जीत हो गयी । इससे देवताओंको अपनी शूरवीरतापर विजय हुआ । वे अत्म-प्रशंसा करते हुए इस वातका प्रभाव करने लगे कि “हमलोग धन्य हैं, धन्यवादके योग्य हैं । अमृतहारा क्षा कर लेंगे । वे हमलोंगोंका अत्यन्त दुस्सह प्रभाव देखर भयभीत हो भाग चलो, भाग चलो !” कहते हुए भललोंगोंने शुत गये । “हमारा वल अद्भुत है ! हममें अधर्मजनक तेज है । हमारा वल और तेज दैत्यकुलका निर्मल करनेमें समर्थ है ! अहो ! देवताओंका कैसा सौभाग्य है ।” इस प्रकार वे जहाँ-तहाँ डाँग हाँकने लगे ।

अन्यतर उसी समय उनके समक्ष तेजका एक महान् पुञ्ज

प्रकट हुआ, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया था । उसे देखकर सब देवता विस्थिते भर गये । वे हँधे हुए गलेसे परस्पर पूछने लगे—“यह क्या है ? यह क्या है ?” उन्हें यह पता नहीं था कि यह श्यामा (भगवती उमा) का उत्कृष्ट प्रभाव है, जो देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाला है ।

उस समय देवराज इन्द्रने देवताओंको आशा दी—“तुमलोग जाओ और यथार्थलम्बसे परीक्षा करो कि यह कौन है ।” देवेन्द्रके भेजनेसे वायुदेव उस तेजःपुञ्जके निकट गये । तब उस तेजोराशिने उन्हें भवोधित करके पूछा—“अजी ! तुम कौन हो ?” उस महान् तेजके इस प्रकार पूछनेपर वायु देवता अभिमानपूर्वक बोले—“मैं वायु हूँ, सम्पूर्ण जगत्का प्राण हूँ; मूल सर्वाधार परमेश्वरमें ही वह स्यावर-जंगमलम्प सारा जगत् अत्रितप्रोत है । मैं ही गमना विश्वका संचालन करता हूँ ।” तब उस महतेजने चहा—“वायो ! यदि तुम जगत्के संचालनमें नमर्थ हों तो यदृ तृण रक्षा हुआ है । इसे अर्ना इच्छाके अनुसार जगत्के तो सही ।” तब वायुदेवताने ननी उपर उठके अर्नी जगति लगा दी । परंतु वह निकाल भरने स्वानन्दे लिप्तम्

भी न हया । इससे वायुदेव लजित हो गये । वे चुप हो इन्द्रकी सभामें लौट गये और अपनी पराजयके साथ वहाँका सारा वृत्तान्त उन्होंने सुनाया । वे बोले—‘देवेन्द्र ! हम सब लोग ज्ञाटे ही अपनेमें सर्वेश्वर होनेका अभिमान रखते हैं; क्योंकि किसी छोटी-सी वस्तुका भी हम कुछ नहीं कर सकते ।’ तब इन्द्रने वारी-वारीसे समस्त देवताओंको मेजा । जब वे उसे जाननेमें समर्थ न हो सके, तब इन्द्र स्वयं गये । इन्द्रको आते देख वह अत्यन्त दुःसह तेज तत्काल अदृश्य हो गया । इससे इन्द्र वडे विस्मित हुए और मन-ही-मन बोले—‘जिसका ऐसा चरित्र है, उसी सर्वेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ ।’ सहस्रनेत्रधारी इन्द्र वारंवार इसी भावका चिन्तन करने लगे । इसी समय निश्छल करुणामय शरीर धारण करनेवाली सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शिवप्रिया उमा उन देवताओं-पर दया करने और उनका गर्व हरनेके लिये चैत्रशुक्ला नवमीको दोपहरमें वहाँ प्रकट हुई । वे उस तेजःपुजाके दीचमें विराज रही थीं, अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थीं और समस्त देवताओंको सुस्पष्टरूपसे यह जाता रही थीं कि ‘मैं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हूँ ।’ वे चार हाथोंमें क्रमशः वर, पाश, अङ्गुश और अभ्यधारण किये थीं । श्रुतियाँ साकार होकर उनकी सेवा करती थीं । वे वही रमणीय दीखती थीं तथा अपने नूतन यौवन-पर उन्हें गर्व था । वे लाल रंगकी साढ़ी पहने हुए थीं । लाल फूलोंकी माला तथा लाल चन्दनसे उनका शृङ्गार किया गया था । वे कोटि-कोटि कन्दपौंके समान मनोहारिणी तथा करोड़ों चन्द्रमाओंके समान चट्टकीली चौँदनीसे सुशोभित थीं । सबकी अन्तर्यामिणी, समस्त भूतोंकी साक्षिणी तथा परब्रह्म स्वरूपिणी उन महामायाने इस प्रकार कहा ।

उमा बोली—‘मैं ही परब्रह्म, परम ज्योति, प्रणवरूपिणी तथा युगलरूपधारिणी हूँ । मैं ही सब कुछ हूँ । मुझसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है । मैं निराकार होकर भी साकार हूँ, सर्वतत्त्व-स्वरूपिणी हूँ । मेरे गुण अतर्क्य हैं । मैं नित्यस्वरूपा तथा कार्यकारणरूपिणी हूँ । मैं ही कभी प्राण-वल्लभाकार धारण करती हूँ और कभी प्राणवल्लभ पुरुषका । कभी स्त्री और पुरुष दोनों रूपोंमें एक साथ प्रकट होती हूँ (यही मेरा अर्धनारीश्वररूप है) । मैं सर्व-रूपिणी ईश्वरी हूँ, मैं ही सुष्टिकर्ता ब्रह्म हूँ । मैं ही जगत्पालक विष्णु हूँ तथा मैं ही संहारकता रुद्र हूँ । सम्पूर्ण विश्वको मेरामें डालनेवाली महामाया मैं ही हूँ । कार्य, लक्ष्मी और



सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सकल कलाएँ मेरे अंदरसे ही प्रकट हुई हैं । मेरे ही प्रभावसे तुमलोंगोंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय पायी है । मुझ सर्वविजयिनीको न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश्वर मान रहे हो । जैसे इन्द्रजाल करनेवाला सूत्रधार कठपुतलीको नचाता है उसी प्रकार मैं ईश्वरी ही समस्त प्राणियोंको नचाती हूँ । मेरे भयसे हवा चलती है, मेरे भयसे ही अग्निदेव सबको जलाते हैं तथा मेरा भय मानकर ही लोकपालगण निरतर अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं । मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ और अपनी लीलासे ही कभी देव-समुदायको विजयी बनाती हूँ तथा कभी दैत्योंको । मायासे परे जिस अविनाशी परावर धामका श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, वह मेरा ही रूप है । सगुण और निर्गुण—ये मेरे दो प्रकारके रूप माने गये हैं । इनमेंसे प्रथम तो मायायुक्त है और दूसरा मायारहित । देवताओं ! ऐसा जानकर गर्व छोड़ो और मुझ सनातनी प्रकृतिकी प्रेमपूर्वक आराधना करो ॥

\* उमोवाच—

परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवदन्दरूपिणी ।

अहमेवासि सकलं मदन्यो नास्ति कथम् ॥

देवीका यह करणायुक्त वचन सुन देवता भक्तिभावसे मलक छुकाकर उन परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे—  
‘जगदीश्वरि ! क्षमा करो । परमेश्वरि ! प्रसन्न होओ । मातः ! ऐसी कृपा करो, जिससे फिर कभी हमें गर्व न हो ।’

तबसे सब देवता गर्व छोड़ एकाग्रचित्त हो पूर्ववत् विधि-पूर्वक उमादेवीकी आराधना करने लगे । ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुमसे उमाके प्रादुर्भावका वर्णन किया है, जिसके अवणमात्रसे परमपदकी प्राप्ति होती है । ( अथाय ४९ )

### देवीके द्वारा दुर्गमासुरका वध तथा उनके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और आमरी आदि नाम पड़नेका कारण

मुनियोंने कहा—महाप्राण सूतजी ! हम सब लोग प्रतिदिन दुर्गाजीका चरित्र सुनना चाहते हैं । अतः आप और किसी अद्भुत लीलातत्त्वका हमारे समक्ष वर्णन कीजिये । वर्णशिरोमणे सूत ! आपके मुखारविन्दसे नाना प्रकारकी तुषासदृश मधुर कथाएँ सुनते-सुनते हमारा मन कभी तृप्त नहीं होता ।

सूतजी बोले—मुनियो ! दुर्गम नामसे विख्यात एक अमुर था, जो रुक्षा महावल्लान् पुत्र था । उसने ब्रदाजीके वरदानसे चारों वेदोंको अपने हाथमें कर लिया । या तथा देवताओंके लिये अजेय वल पाकर उसने भूतलपर अहुतसे ऐसे उत्सात किये, जिन्हें सुनकर देवलोकमें देवता भी कम्पित हो उठे । वेदोंके अदृश्य हो जानेपर सारी नैरिक किया नए हो चली । उस समय ब्राह्मण और देवता भी दुराचारी हो गये । न कहीं दान होता था न अत्यन्त उपर किया जाता था; न यज्ञ होता था और न होम ही किया जाता था । इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोंतक-के लिये वर्षा बंद हो गयी । तीनों लोकोंमें हाहाकार भन्न

गया । सब लोग दुखी हो गये । सबको भूख-प्यासका महान् कष सताने लगा । कुआँ, बावड़ी, सरोबर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये । समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं । इससे समस्त प्रजाओंके चित्तमें बड़ी दीनता आ गयी । उनके महान् दुःखको देखकर सब देवता महेश्वरी योगमायाकी शरणमें गये ।

देवताओंने कहा—महामाये ! अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो, रक्षा करो । अपने क्रोधको रोको, अन्यथा सब लोग निश्चय ही नष्ट हो जायेंगे । कृपासिन्धो ! दीनवन्धो ! जैसे शुभ नामक दैत्य, महावली निशुभ्म, धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड, महान् शक्तिशाली रक्तवीज, मधु, कैटम तथा महिषासुरका तुमने वध किया था, उसी प्रकार इस दुर्गमासुर-का शीघ्र ही संहार करो । वाल्कोंसे पग-परापर अपराध बनता ही रहता है । केवल माताके सिंवा संसारमें दूसरा कौन है, जो उस अपराधको सहन करता हो । देवताओं और ब्राह्मणोंपर जब-जब दुःख आता है, तब-तब शीम ही अवतार लेकर तुम सब लोगोंको सुखी बनाती हो ।

निराकारपि साकारा	सर्वतत्त्वस्वरूपिणी । अप्रत्यक्ष्यगुणा	नित्या	कार्यकारणरूपिणी ॥
कदाचिद्विजाकारा	कदाचित्पुरुणाकृतिः । कदाचिद्बुभ्याकारा	सर्वाकाराहनीभरी ॥	
विरच्चिः सृष्टिकर्त्ताहं	जगन्माताहनच्युतः । रुद्रः संहारकर्त्ताहं	सर्वविश्विमोहिनी ॥	
कालिकाकपलावाणीमुखाः	सर्वा हि शक्तयः । मदंशादेव संजातात्त्वेनाः	स्वला कल्याः ॥	
नत्प्रभावाजिताः	सर्वे युष्माभिदितिनन्दनाः । तामविशाय नां यूयं वृथा	स्वेशमानिनः ॥	
यथा दारुनयो योपां नर्तयत्यैन्द्रजाठिकः । तपैव	सर्वभूतानि नर्तयान्दर्नीभरी ॥		
मद्याद् वाति पवनः सर्वं दहति हृष्टभुक् । लोकपालः प्रकुर्वन्ति	सत्त्वपर्नांप्यनारन् ॥		
कदाचिद्वेवर्गाणां	कदाचिद्विजन्मनान् । करोनि विजयं तन्मक् त्वतन्वा निजलोल्प्या ॥		
अविनाशिपरं धाम मायातांतं परात्परम् । श्रुतयो वर्णयन्ते वस्त्रद्रूपं तु भर्तैव इ ॥			
सतुं निरुणं चेति नद्रं द्विविधं नतन् । नावादावलिं चैकं दितोयं ददनादितन् ॥			
एवं विशाय नां देवाः त्वं त्वं गर्वं विहाय च । भजत प्रग्नेदेवाः प्रदृच्च नां लगाननन् ॥			

देवताओंकी यह व्याकुल प्रार्थना सुनकर कृपामयी देवीने उस समय अपने अनन्त नेत्रोंसे युक्त रूपका दर्शन कराया । उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था और वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः धनुष, बाण, कमल तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिये हुए थीं । उस समय प्रजाजनोंको कष्ट उठाते देख उनके सभी नेत्रोंमें करुणाके आँखू छलक आये । वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं । उन्होंने अपने नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित कीं । उन धाराओंसे सब लोग तुफ्त हो गये और समस्त ओषधियाँ भी सिंच गयीं । सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया । पृथ्वीपर साग और फल-मूलके अड्डुर उत्पन्न होने लगे । देवी शुद्ध हृदयवाले महात्मा पुरुषोंको अपने हाथमें रखे हुए फल बाँटने लगीं । उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर धास और दूसरे



प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोजन प्रस्तुत किये । देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित समूर्ण प्राणी संतुष्ट हो गये । तब देवीने देवताओंसे पूछा—‘नुम्हारा और कौन-सा कार्य सिद्ध करें ?’ उस समय सब देवता एकत्र होकर बोले—‘देवि ! आपने सब लोगोंको मनुष्य कर दिया । अब कृपा करके दुर्गमासुरके

द्वारा अपहृत हुए वेद लाकर हमें दीजिये ।’ तब देवीने ‘तथात्मा’ कहकर कहा—‘देवताओ ! अपने घरके जाओ, जाओ । मैं श्रीघ्र ही समूर्ण वेद लाकर तुम्हें अर्पित करूँगी ।’

यह सुनकर सब देवता वडे प्रसन्न हुए । वे प्रफुल्ल नील कमलके समान नेत्रोंवाली जगद्ग्रन्थिनि जगदम्बाकी भलीभौति प्रणाम करके अपने-अपने धामको चले गये । फिर तो सर्वा अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर बड़ा भारी कोलाहल मच गया, उसे सुनकर उस भयानक दैत्यने चारों ओरसे देवपुरीको धेर लिया । तब शिवा देवताओंकी रक्षाके लिये चारों ओरसे तेजोमय मण्डला निर्माण करके स्थयं उस धेरेसे बाहर आ गयीं । फिर तो देवी और दैत्य दोनोंमें धोर युद्ध आरम्भ हो गया । समराङ्गणमें दोनों ओरसे कवचको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले तीखे शारोंकी रक्षा होने लगी । इसी वीचमें देवीके शरीरसे सुन्दर रूपबाली काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगला, धूम्रा, श्रीमती चिपुरसुन्दरी और मातही—दस महाविद्याएँ अख-शस्त्र लिये निकलीं । तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट हुईं । उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था और वे सब की-सब विद्युतें समान दीसिमती दिखायी देती थीं । इसके बाद उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ । उन सबने मिलकर उस रौरेव अथवा दुर्गम दैत्यकी सौ अशैःहिणी सेनाएँ नष्ट कर दीं । इसके बाद देवीने चिशूलकी धारसे उस दुर्गम दैत्यको मार डाला । वह दैत्य जड़से खोदे गये कृष्ण भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा । इस प्रकार ईश्वरीने उस सा दुर्गमासुर नामक दैत्यको मारकर चारों वेद वापस देवताओंको दे दिये ।

तब देवता बोले—‘अभिके ! आपने हमलोगोंके लिये असंख्य नेत्रोंसे युक्त रूप धारण कर लिया था, इसलिये मुनिज आपको ‘शाताक्षी’ कहेंगे । अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शक्ति द्वारा आपने समस्त लोकोंका भरण-प्रोत्पत्ति किया है, इसलिये ‘शाकभरी’के नामसे आपकी ख्याति होगी । शिव ! आप दुर्गम नामक महादैत्यका वध किया है, इसलिये लोग आपका कल्याणमयी भगवतीको ‘दुर्गा’ कहेंगे । योगनिद्रे ! आपका नमस्कार है । महावले ! आपको नमस्कार है । ज्ञानदायिनि ! आपको नमस्कार है । आप जगन्माताको वारंवार नमस्कार है । तत्त्वमसि आदि महावाक्योंद्वारा जिन परमेश्वरीका रूप होता है, उन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेकी भगवती दुर्गाको वारंवार नमस्कार है । मातः ! आपत्त मनः

वाणी और शरीरकी पहुँच होनी कठिन है। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रनि—ये तीनों आपके नेत्र हैं। हम आपके प्रभावको नहीं जानते, इसलिये आपकी सुति करनेमें असमर्थ हैं। सुरेश्वरी माता शताक्षीको छोड़कर दूसरा कौन है, जो हम जैसे अमरोंग दृष्टिप्रत करके ऐसी दया करे। देवि! आपको सदा ऐसा ही यत्न करना चाहिये, जिससे तीनों लोक निरन्तर विघ्न-ग्राम्यांसे बिरस्कृत न हो। आप हमारे शत्रुओंका नाश करती रहें।

देवीने कहा—देवताओ! जैसे वछड़ीको देखकर गौएं व्यग हो उत्तमलीके साथ उनकी ओर दौड़ती है, उसी तरह मैं तुम सबको देखकर व्याकुल हो दौड़ी आती हूँ। तुम्हें न देखनेसे मेरा एक क्षण भी युगके समान बीतता है। मैं तुम्हें अपने वचनके समान समझती हूँ और तुम्हारे लिये अपने प्राण भी दे सकती हूँ। तुमलोग मेरे प्रति भक्तिभावसे नुशेभित हैं, अतः तुम्हें कोई भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं तुम्हारी सारी आपत्तियोंका निवारण करनेके लिये अदैव उद्यत हूँ। जैसे पूर्वकालमें तुम्हारी रक्षाके लिये मैंने देवोंको मारा है, उसी प्रकार आगे भी असुरोंका संहार

करूँगी—इसमें तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। भविष्यमें जब पुनः शुभ्र और निशुभ्र नामके दूसरे दैत्य होंगे, उस समय मैं यशोमधी देवी नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे योनिजरूप धारण करके गोकुलमें उत्पन्न होऊँगी और यथासमय उन असुरोंका वध करूँगी। नन्दकी पुत्री होनेके कारण उस समय मुझे लोग 'नन्दजा' कहेंगे। जब मैं भ्रमरका रूप धारण करके अरुण नामक असुरका वध करूँगी, तब संसारके मनुष्य मुझे 'आमरी' कहेंगे। फिर मैं भीम (भयंकर) रूप धारण करके राक्षसोंको खाने लगूँगी, उस समय मेरा 'भीमा देवी' नाम प्रसिद्ध होगा। जब-जब पुर्वीपर असुरोंकी ओरसे वाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर प्रजाजनोंका कल्याण करूँगी—इसमें संशय नहीं है। जो देवी शताक्षी कही गयी है, वे ही शाकम्भरी मानी गयी हैं तथा उन्होंको दुर्गा कहा गया है। तीनों नामोंद्वारा एक ही व्यक्तिका प्रतिपादन होता है। इस पुर्वीपर महेश्वरी शताक्षीके समान दूसरा कोई दयालु देवता नहीं है; क्योंकि वे देवी समस्त प्रजाओंको संतप्त देख नौ दिनोंतक रोती रह गयी थीं।

(अध्याय ५०)

देवीके क्रियायोगका वर्णन—देवीकी मूर्ति एवं मन्दिरके निर्माण, स्थापन और पूजनका महत्त्व, परा अम्याकी श्रेष्ठता, विभिन्न मासों और तिथियोंमें देवीके व्रत, उत्सव और पूजन

आदिके फल तथा इस संहिताके अवण एवं याठकी महिमा

व्यासजी घोले—महामते, वक्ष्यपुत्र, सर्वज्ञ सनकुमारो! मैं उमाके परम अद्वित क्रियायोगका वर्णन सुनना चाहता हूँ। उस क्रियायोगका लक्षण क्या है? उसका अनुष्ठान करने-करने कल्पकी प्राप्ति होती है तथा जो परा अम्या उमाको ध्योक्ष दिय है वह क्रियायोग क्या है? ये सब बातें मुझे चाहते हैं।

सनकुमारजीने कहा—महायुद्धमान् द्वैपायन! तुम यज्ञस्त्रोंकी वात पूछ रहे हो, वह सब मैं बताता हूँ; व्यान और तुमो। शनयोग, क्रियायोग, भक्तियोग—ये श्रीमाताकी एत्यन्त तीन भार्ग कहे गये हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। यज्ञस जो आत्माके साथ संयोग होता है, उसका ज्ञान द्वैपायन है; उसका वाय वत्सुओंके साथ जो संयोग होता है, उसके द्वैपायन है। देवीके साथ आत्माकी एकताकी अस्तित्वसे अविद्येय ज्ञान गया है। तीनों योगोंमें जो क्रिया-कर्त्ता है उसका प्रतिचादन किया जाता है। कर्मसि भक्ति उत्पन्न

होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निश्चय किया गया है। मुनिश्रेष्ठ! मोक्षका प्रथान कारण योग है, परंतु योगके व्येयका उत्तम साधन क्रियायोग है। प्रकृतिको माया जाने और सामान व्रष्टिको मायायी अपना मायाका स्वामी समझें। उन दोनोंकि त्वरणको एक दूसरसे अभिन्न जानकर मनुष्य संसार-व्यवहारसे मुक्त हो जाता है।

कालीनन्दन! जो मनुष्य देवीके लिये परथर लकड़ी अथवा मिट्टीका मन्दिर बनाता है, उनके पुरुषस्त्रोंका वर्णन सुनो। प्रतिदिन योगके द्वारा अराधना करनेवालोंकी विज्ञ महान् फलकी प्राप्ति होती है, वह ज्ञान रूप उस पुरुषस्त्रोंकी विज्ञ जाता है, जो देवीके लिये मन्दिर बनवाता है। श्रीमाताका मन्दिर बनवानेवाला धर्मत्वा पुरुष असनी दृढ़ता वीक्षा हुई तथा

\* जाया तु प्रह्लादे विद्यानन्दपादि प्रभु दरवाज़।

अनिन्द्यं तदुदात्मा मुन्दने भद्रनन्दनादः।

(सिं ३० उ० ३० उ० ५० ५० ५०)

आगे आनेवाली हजार-हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए थोड़े या बहुत जो पाप शोष रहते हैं, वे श्रीमाताके मन्दिरका निर्माण आरम्भ करते ही क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, समूर्ण नदोंमें शोणभद्र, क्षमामें पृथ्वी, गहराईमें समुद्र और समस्त ग्रहोंमें सूर्यदेवका विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार समस्त देवताओंमें श्रीपरा अम्बा श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वे समस्त देवताओंमें मुख्य हैं। जो उनके लिये मन्दिर बनवाता है, वह जन्म-जन्ममें प्रतिष्ठा पाता है। काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गासागर-तट, नैमित्तारण्य, अमरकण्टक पर्वत, परम पुण्यमय श्रीपर्वत, शानपर्वत, गोकर्ण, मथुरा, अयोध्या और द्वारका इत्यादि पुण्य प्रदेशोंमें अथवा जिस किसी भी स्थानमें माताका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। मन्दिरमें ईंटोंका जोड़ जब-तक या जितने वर्ष रहता है, उतने हजार वर्षोंतक वह पुरुष मणिद्वीपमें प्रतिष्ठित होता है। जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न उमाकी प्रतिमा बनवाता है, वह निर्भय होकर अवश्य उनके परम धाममें जाता है। शुभ ऋतु, शुभ ग्रह और शुभ नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिकी स्थापना करके योगमायाके प्रसादसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कल्पके आरम्भसे लेकर अन्ततक कुलमें जितनी पीढ़ियाँ वीत गयी हैं और जितनी आनेवाली हैं, उन सबको मनुष्य सुन्दर देवीमूर्तिकी स्थापना करके तार देता है।

जो केवल जगथोनि परा अम्बाकी शरण लेते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं मानना चाहिये। वे साक्षात् देवीके गण हैं। जो चलते-फिरते, सोते-जागते अथवा खड़े होते समय 'उमा' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते हैं, वे शिवाके ही गण हैं। जो नित्य-नैमित्तिक कर्ममें पुण्य, धूप और दीपोंद्वारा देवी परा शिवाका पूजन करते हैं, वे शिवाके धाममें जाते हैं। जो प्रतिदिन गोदर या मिट्टीसे देवीके मन्दिरको लीपते हैं अथवा उसमें झाड़ देते हैं, वे भी उमाके धाममें जाते हैं। जिन्होंने देवीके परम उत्तम एवं रमणीय मन्दिरका निर्माण कराया है, उनके कुलके लोगोंको माता उमा सदा आशीर्वाद देती है। वे कहती हैं, 'ये लोग मेरे हैं। अतः मुझमें प्रेमके भागी वने रहकर सौ वर्षोंतक जीयें और इनपर कभी कोई आपत्ति न आये।' इस प्रकार श्रीमाता रात-दिन आशीर्वाद देती है। जिसने महादेवी उमाकी शुभमूर्तिका निर्माण कराया है, उसके कुलके दस हजार पीढ़ियोंतकके लोग मणिद्वीपमें सम्मानपूर्वक रहते हैं। महामायाकी मूर्तिको स्थापित करके उसकी भलीभाँति पूजा करनेके पश्चात् साधक जिस-जिस मनोरथके लिये

प्रार्थना करता है, उस-उसको अवश्य प्राप्त कर लेता है। जो श्रीमाताकी स्थापित की हुई उत्तम मूर्तिको मधुमिश्रित पीते नहलाता है, उसके पुण्यफलकी गणना कौन कर सकता है। चन्दन, अगुरु, कपूर, जटामारी तथा नागरमोथा आदिसे युक्त जल तथा एक रंगकी गौओंके दूधसे परमेश्वरीको नहलाये। तत्पश्चात् अष्टादशाङ्गधूपके द्वारा अभिमें उत्तम आहुति दे तथा धूत और कर्पूरसहित बच्चियोंद्वारा देवीकी आरती उतारे। कृष्ण फलों अष्टमी, नवमी, अमावास्यामें अथवा शुक्रपक्षकी पञ्चमी और दशमी तिथियोंमें गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा जगदमात्री विशेष पूजा करनी चाहिये। रात्रिसूक्त, श्रीसूक्त अथवा देवी-सूक्तको पढ़ते वा मूलमन्त्रका जप करते हुए देवीकी आरथना करनी चाहिये। विष्णुकान्ता और तुलसीको छोड़कर शेष सभी पुष्प देवीके लिये प्रीतिकारक जानने चाहिये। कमलका पुष्प उनके लिये विशेष प्रीतिकारक होता है। जो देवीको सोने-चाँदीके फूल चढ़ाता है, वह करोड़ों सिद्धोंसे युक्त उनके परम धाममें जाता है। देवीके उपासकोंको पूजनके अन्तमें सदा अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये। 'जगत्के आनन्द प्रदान करनेवाली परमेश्वरि ! प्रसन्न होओ' इत्यादि बाक्योंद्वारा स्तुति एवं मन्त्रपाठ करता हुआ देवीके भजनमें लगा रहनेवाला उपासक उनका इस प्रकार ध्यान करे। देवी सिंहपर सवार हैं। उनके हाथोंमें अभय और वरकी मुद्राएँ हैं तथा वे भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली हैं। इस प्रकार महेश्वरीका ध्यान करके उन्हें नैवेद्यके रूपमें नाना प्रकारके पके हुए फल अर्पित करे। जो परात्मा शमशरित्ति नैवेद्य भक्षण करता है, वह मनुष्य अपने सारे पापपङ्कों घोकर निर्मल हो जाता है। जो चैत्र शुक्ल तृतीयाको भावनीश्च प्रसन्नताके लिये व्रत करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त होता है। विद्वान् पुरुष इसी तृतीयासे दोलोत्सव करे। उसमें शंकरसहित जगदमात्रा उमाकी पूजा करे। फूल, कुङ्कम, वस्त्र, कपूर, अगुरु, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पहार तथा अन्य गन्ध-द्रव्योंद्वारा शिवसहित सर्व-कल्याणकारिणी महामाया महेश्वरी श्रीगौरी देवीका पूजन करें। उन्हें शुलेमें छुलाये। जो प्रतिवर्ष नियमपूर्वक उक्त तिथिके देवीका व्रत और दोलोत्सव करता है, उसे शिवा देवी समूर्ण अभीष्ट पदार्थ देती है।

वैद्यास भासके शुक्ल पक्षमें जो अस्य तृतीया तिथि अर्थ है, उसमें आलस्यरहित हो जो जगदमात्रा व्रत करता है तथा बेला, माल्वी, चम्पा, जपा ( अदृश्य ), नन्धूक ( दुपहरिवा )

और कमलके फूलोंसे शंकरसंहित गौरदेवीकी पूजा करता है, वह करेंडों जन्मोंमें किये गये मानसिक, वाचिक और शारीरिक पापोंका नाश करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुण्यायोंको अशुद्धस्थानमें प्राप्त करता है।

ज्येष्ठ शुक्ल तृतीयाको व्रत करके जो अत्यन्त प्रसन्नताके ताथ महेश्वरीका पूजन करता है, उसके लिये कुछ भी असाध नहीं होता। आपाढ़के शुक्लपक्षकी तृतीयाको अपने वैष्णवके अनुसार रथोत्सव करे। वह उत्सव देवीको अत्यन्त प्रिय है। पृथ्वीको रथ समझे, चन्द्रमा और सूर्यको उसके पहिये जाने, वेदोंको धोड़े और ब्रह्माजीको सारथि माने। इस भावनासे मणिजटित रथकी कल्पना करके उसे पुष्टमालाओंसे सुशोभित करे। फिर उसके भीतर शिवा देवीको विराजमान करे। तत्स्थात् बुद्धिमान् पुरुष यह भावना करे कि परा अम्बा उमादेवी सम्पूर्ण जगतकी रक्षाके लिये उसकी देखभाल करनेके निमित्त रथके भीतर बैठी है। जब रथ धीरे-धीरे चले, तब जय-जयकार करते हुए प्रार्थना करे—‘देवि ! दीनवत्सले ! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये ( पाहि देवि जनानसामान् शपदान् दीनवत्सले ) ।’ इन वाक्योंद्वारा देवीको संतुष्ट करे और यात्राके समय नाना प्रकारके वाजे बजावाये। प्राम या नगरकी सीमाके अन्ततक रथको ले जाकर वह उस रथपर देवीकी पूजा करे और नाना प्रकारके घोंगोंसे उनकी स्तुति करके फिर उन्हें वहाँसे अपने घर ले आये। तदनन्तर सैकड़ों बार प्रणाम करके जगद्गम्यासे प्रार्थना करे। जो विद्वान् इस प्रकार देवीका पूजन, व्रत एवं रथोत्सव करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपर्युक्त करके अन्तमें देवीके धामको जाता है।

प्रत्यन् और भाद्रपद मासकी शुक्ल तृतीयाको जो शिवपूर्णक अम्बाका व्रत और पूजन करता है, वह इस लोकमें उक्त पौत्र एवं धन आदिसे सम्पन्न होकर सुख देता है तथा अन्तमें सब लोकोंसे ऊपर विराजमान रहनेमें जाता है।

उमासंहिताके शुक्लपक्षमें नवरात्रव्रत करना चाहिये। इसे उत्तर समूर्ण लाभनाएँ सिद्ध हो ही जाती हैं,

इसमें संशय नहीं है। इस नवरात्र व्रतके प्रभावका वर्णन करनेमें चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चानन महादेव तथा षडानन कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं; फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है। मुनिश्रेष्ठ ! नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करके विश्वके पुत्र राजा मुरथने अपने खोये हुए राज्यको प्राप्त कर लिया। अयोध्याके बुद्धिमान् नरेश ध्रुवसंघिकुमार सुदर्शनने इस नवरात्रव्रतके प्रभावसे ही राज्य प्राप्त किया, जो पहले उनके हाथसे छिन गया था। इस व्रतराजका अनुष्ठान और महेश्वरीकी आराधना करके समाधि वैश्य संसारद्वन्द्वन-से मुक्त हो मोक्षके भागी हुए थे। जो मनुष्य आश्विनमासके शुक्लपक्षमें विधिपूर्वक व्रत करके तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको देवीका पूजन करता है, देवी शिवा निरन्तर उसके सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करती रहती है। जो कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें तृतीयाको व्रत करता तथा लाल कनेर आदिके पूलों एवं सुगन्धित धूपोंसे मङ्गलमयी देवीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलको प्राप्त कर लेता है। छियोंको अपने सौभाग्यकी प्राप्ति एवं रक्षाके लिये सदा इस महान् व्रतका आचरण करना चाहिये तथा पुरुषोंको भी विद्या, धन एवं पुत्रकी प्राप्तिके लिये इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके सिवा अन्य भी जो देवीको प्रिय लगनेवाले उमा-महेश्वर आदिके व्रत हैं, मुख्य उपर्युक्तोंको उनका भक्तिभावसे आचरण करना चाहिये।

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी तथा शिवभक्तिको वढ़ानेवाली है। इसमें नाना प्रकारके उपाख्यान हैं। यह कल्याण-मयी संहिता भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जो इसे भक्तिभावसे सुनता या एकाग्रचित्त होकर सुनाता अथवा पढ़ता या पढ़ाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जिसके धरमें सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गयी यह संहिता विभिन्न शूजित होती है, वह सम्पूर्ण अपीढ़ोंको प्राप्त कर लेता है। उसे भूत, प्रेत और पिशाचादि दुष्टोंसे कभी भय नहीं होता। वह पुत्र-पौत्र अर्दि नमृतिद्वारा अवश्य पाता है, इसमें संदर्भ नहीं है। अतः शिवाकी भक्ति नामेवाले पुरुषोंको सदा इस परम पुण्यमयी रमणीय उमा-हन्तितामा अवण एवं पाठ करना चाहिये। ( अन्तम् ११ )

॥ उमासंहिता सम्पूर्ण ॥



## कैलाससंहिता

**श्रृणियोंका सूतजीसे तथा वामदेवजीका स्कन्दसे प्रश्न—प्रणवार्थ-मिरूपणके लिये अनुरोध**

**नमः शिवाय साम्बाय सरणाय ससूनवे ।**

**प्रवानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥**

जो प्रधान ( प्रकृति ) और पुरुषके नियन्ता तथा सुष्ठि, पालन और संहारके कारण हैं, उन पार्वतीसंहित शिवको उनके पार्षदों और पुत्रोंके साथ प्रणाम है ।

**श्रृणि वोले—सूतजी !** हमने अनेक आख्यानोंसे युक्त परम मनोहर उमासंहिता मुनी । अब आप शिवतत्त्वका ज्ञान वढ़ानेवाली कैलाससंहिताका वर्णन कीजिये ।

**व्यासजीने कहा—पुत्रो !** शिवतत्त्वका प्रतिपादन करनेवाली दिव्य कैलाससंहिताका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेम-पूर्वक सुनो । तुम्हारे प्रति स्नेह होनेके कारण ही मैं तुम्हें वह प्रसङ्ग मुना रहा हूँ ।

इतना कहकर व्यासजीने काशीमें मुनियोंके तथा सूतजीके संवाद, व्यास-मुनि-संवाद, शिव-पार्वती-संवाद, शिवजीके द्वारा पार्वतीके प्रति संन्यासपद्धति, संन्यासाचार, संन्यास-मण्डल, संन्यासपद्धतिन्यास, वर्णपूजन, प्रणवार्थपद्धति आदि प्रसंगोंका वर्णन करके पुनः श्रृणिगण तथा सूतजीके मिलन एवं संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीके प्रति श्रृणियोंके प्रश्नका यो वर्णन किया ।

**श्रृणि वोले—महाभाग सूतजी !** आप हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं । अतः यदि आपका हमपर अनुग्रह हो तो हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं । अद्वालु शिष्योंपर आप-जैसे गुरुजन सदा स्नेह रखते हैं, इस वातको आपने इस समय हमें प्रत्यक्ष दिखा दिया । मुने ! विरजा-होमके समय पहले आपने जो वामदेवका मत सूचित किया था, उसे हमने विस्तारपूर्वक नहीं मुना । अब हम वडे आदर और अद्वालुके साथ उसे मुनना चाहते हैं । कृपासिन्दो ! आप प्रसन्नतापूर्वक उसका वर्णन करें ।

श्रृणियोंकी यह वात सुनकर सूतके शरीरमें रोमाश्र हो आया । उन्होंने गुरुके भी परम उत्कृष्ट गुरु महादेवजीको, त्रिमुखनजननी महादेवी उभाको तथा गुरु व्यासको भी भक्ति-पूर्वक नमस्कार करके मुनियोंको आह्वानित करते हुए गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा ।

**सूतजी वोले—मुनियो !** तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब लोग सदा मुखी रहो । महाभाग महात्माओं ! तुम भगवान्

शिवके भक्त तथा दृष्टापूर्वक वतका पालन करनेवाले हो, यह निश्चितल्पसे जानकर ही मैं तुमलोगोंके समस्त इस विषय-का प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करता हूँ । ध्यान देकर सुनो । पूर्व-कालके रथन्तर कल्यमें महामुनि वामदेव माताके गम्भीर बाहर निकलते ही शिवतत्त्वके शाताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लो । वे वैदों, आगमों, पुराणों तथा अन्य सब शास्त्रोंके भी तात्त्विक अर्थको जानेवाले थे । देवता, असुर तथा मनुष्य आदि जीवोंके जन्म-कर्मोंका उन्हें भलीभांति ज्ञान था । उनका सम्पूर्ण अङ्ग भस्त ल्यानेसे उज्ज्वल दिखायी देता था । उनके मुखके पर जटाओंका समूह शोभा देता था । वे किसीके आश्रित नहीं थे । उनके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा नहीं थी । वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे परे तथा अहंकारदूल्य थे । वे दिग्मपर महाशानी महात्मा दूसरे महेश्वरके समान ज्ञान पहते थे । उन्होंके जैसे स्वभाववाले वडे-वडे मुनि शिष्य होकर उन्हें घेर रहते थे । वे अपने चरणोंके स्पर्शजनित पुण्यसे इस पृथ्वीको पवित्र करते हुए सब ओर विचरते और अपने चित्तको निरन्तर परमधाम-स्वरूप परब्रह्म परमात्मामें लगाये रहते थे । इस तरह घूमते हुए वामदेवजीने मेरुके दक्षिण शिखर—कुमारशृङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश किया, जहाँ मयूरवाहन, शिव-कुमार, ज्ञानमय शक्ति धारण करनेवाले, समस्त असुरोंके नाशक और सर्वदेव-वन्दित भगवान् स्कन्द रहते थे । उनके साथ उनकी शक्तिमूला 'गजावली' भी थीं । वहीं स्कन्दसरके नामसे प्रसिद्ध एक सरोवर था, जो समुद्रके समान अगाध एवं विशाल दिखायी देता था । उसका जल ठंडा और स्वादिष्ठ था । वह सरोवर स्वच्छ, अगाध एवं वहुल जलराशिते पूर्ण था । उसमें सम्पूर्ण आश्रयजनक गुण विद्यमान थे । वह जलशय स्कन्दस्थामीके समीप ही था । महामुनि वामदेवने शिष्योंके साथ उसमें लान करके शिखरपर वैठे हुए मुनिष्ठंड-सेवित कुमारका दर्शन किया । वे उगते हुए सूर्यके समान तेजसी थे । मोर उनका श्रेष्ठ वाहन था । उनके चार भुजाएँ थीं । सभी अङ्गोंसे उदारता सूचित होती थी । मुकुट आदि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे । रत्नमूल दो शक्तिवाँ उन्हीं उपासना करती थीं । उन्होंने अपने चार हाथोंमें क्रमशः शाढ़ि, कुकुट, घर और अभय धारण कर रखे थे । स्फद्रध दर्शन और पूजन करके उन मुनीधरने वही भक्तिसे उनमें स्तवन आरम्भ किया ।





भगवान् स्कन्द



**वामदेव बोले—**जो प्रणवके वाच्यार्थ, प्रणवार्थके प्रति-पदक, प्रणवाक्षररूप वीजसे युक्त तथा प्रश्नवरूप है, उन आप स्वामी कार्तिकेयको वारंवार नमस्कार है। वेदान्तके अर्पभूत व्रद्ध ही जिनका स्वरूप है, जो वेदान्तका अर्थ करते हैं। वेदान्तके अर्थको जानते हैं और नित्य विदित हैं, उन स्कन्दस्वामीको वारंवार नमस्कार है। समस्त प्राणियोंकी हृदय-गुणमें प्रतिष्ठित गुहको नमस्कार है। जो स्वयं गुह्य हैं, जिनका इन गुह्य हैं तथा जो गुह्य शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, उन स्वामी कार्तिकेयको नमस्कार है। प्रभो! आप अपुर्से भी अत्यन्त अग्न और महान्‌से भी परम महान्‌ हैं, कारण और कार्य अग्ना भूत और भविष्यके भी ज्ञाता हैं। आप परमात्मस्वरूप-से नमस्कार है। आप स्कन्द (माताके गर्भसे च्युत) हैं। स्कन्द (गर्भसे स्वल्पन) ही आपका रूप है। आप सूर्य और अरुणके समान तेजस्वी हैं। वारिजातकी मालासे सुशोभित, बुद्ध आदि धारण करनेवाले आप स्कन्दस्वामीको सदा नमस्कार हैं। आप शिवके शिष्य और पुत्र हैं, शिव (कल्याण) सेवक हैं। शिवको प्रिय हैं तथा शिवा और शिवके लिये प्रश्नद्वारा निपिहैं। आपको नमस्कार है। आप गङ्गाजी-स्त्री, हृषिकेशोंके कुमार, भगवती उमाके पुत्र तथा उमादेवी एवं दायन करनेवाले हैं। आप महाबुद्धिमान रूपोंके नमस्कार हैं। पटञ्जर मन्त्र अपेक्षा शरीर है। आप ऐसे अर्थका विधान करनेवाले हैं। आपका रूप है:

मार्गोंसे परे है। आप पड़ाननको वारंवार नमस्कार है। द्वादशात्मन्! अपके वारह विशाल नेत्र और वारह उठी हुई भुजाएँ हैं। उन भुजाओंमें आप वारह आयुध धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। आप चतुर्भुजरूपधारी, शान्त तथा चारों भुजाओंमें कमशः शक्ति, कुकुट, वर और अभय धारण करते हैं। आप असुरविदारण देवको नमस्कार है। आपका वशःस्यल गजावलीके कुचोंमें लो हुए कुङ्कुमसे अङ्कित है। अपने छोटे भाई गणेशजीकी आनन्दमयी महिमा सुनकर आप मन-ही-मन आनन्दित होते हैं। आपको नमस्कार है। वहाँ आदि देवता, मुनि और किंवरगणोंसे गायी जानेवाली गाथा-विशेषके द्वारा जिनके पवित्र कीर्तिधामका चिन्तन किया जाता है, उन आप स्कन्दको नमस्कार है। देवताओंके निर्मल किरीटको विभूषित करनेवाली पुष्पमालाओंसे आपके मनोहर चरणारविन्दोंकी पूजा की जाती है। आपको नमस्कार है। जो वामदेवद्वारा वर्णित इस दिव्य स्कन्दस्तोत्रका पाठ या अवण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। यह स्तोत्र बुद्धिको बढ़ानेवाला, शिवभक्तिकी बुद्धि करनेवाला, आयु, आरोग्य तथा धनकी प्राप्ति करनेवाला और सदा सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है। ॥

\* वामदेव उवाच—

ॐ नमः प्रणवार्थाय प्रणवार्थविभायिने ।  
प्रणवाक्षरवीजाय प्रणवाय नमो नमः ॥  
वेदान्तार्थस्वरूपाय वेदान्तार्थविभायिने ।  
वेदान्तार्थविदे नित्यं विदिताय नमो नमः ॥  
नमो गुहाय भूतानां गुहाम् निदिताय च ।  
गुहाय गुह्यरूपाय गुणागमविदे नमः ॥  
अणोरणीयसे तुर्यं महतोऽपि भर्त्यायसे ।  
नमः परावर्धाय परमात्मस्वरूपिणे ॥  
स्कन्दाय स्कन्दरूपाय निदिराशरेन्से ।  
नमो मन्दरामालोदन्तुकुदादिश्चरे सदा ॥  
शिवशिष्याय पुत्राय शिवस्य शिवदायिने ।  
शिवप्रियाय शिवोरामन्दनिभ्ये नमः ॥  
गान्धेयाय नमस्तुर्यं कार्तिकेयाय पीनते ।  
उमापुत्राय नदेन दश्कानगदायिने ॥  
पटञ्जरशरीराय पटञ्जियायविभायिने ।  
पटञ्जातीतरूपाय पटञ्जराय नमो नमः ॥  
द्वादशायतनेशाय द्वादशोदयश्च ।  
द्वादशायुधधाराय द्वादशायम् नमो द्वादु ते ॥  
चतुर्भुजाय चतुर्भुजाय शिरिषुद्धिवर्णिने ।  
वरदानपत्न्याय नदीप्तुगरिशर्मिने ।  
गदात्मरूपायतुगुप्तार्दित्याय नदीने ।  
नमो गदालगामदन्दित्याय नदीने ।

वामदेवने इस प्रकार देवसेनापति भगवान् स्कन्दकी स्तुति करके तीन बार उनकी परिक्रमा की और पृथ्वीपर दण्ड-की भाँति गिरकर नतमस्तक हो वारंवार साधाङ्ग प्रणाम और परिक्रमा करनेके अनन्तर वे विनीत भावसे उनके पास खड़े हो गये। वामदेवजीके द्वारा किये गये इस परमार्थपूर्ण स्तोत्र-को सुनकर महेश्वरपुत्र भगवान् स्कन्द बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वे महासेन वामदेवजीसे बोले—‘मुने ! मैं तुम्हारी की हुईं पूजा, स्तुति और भक्तिसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। आज मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य सिद्ध करूँ ? तुम योगियोंमें प्रधान, सर्वथा परिपूर्ण और निःस्फूर हो। इस जगत्में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसके लिये तुम-जैसे वीतराग महर्षि याचना करें; तथापि धर्मकी रक्षा और सम्पूर्ण जगत्-पर अनुग्रह करनेके लिये तुम-जैसे साधु-संत भूतलभूर विचरते रहते हैं। ब्रह्मन् ! यदि इस समय मुझसे कुछ सुनना हो तो कहो; मैं लोकपर अनुग्रह करनेके लिये उस विषयका वर्णन करूँगा।’

स्कन्दकी वह बात सुनकर महामुनि वामदेवने विनयावनत हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा।

वामदेव बोले—भगवन् ! आप परमेश्वर हैं। अलौकिक और लौकिक—सब प्रकारकी विभूतियोंके दाता हैं। सर्वत्त, सर्वकर्ता, सम्पूर्ण शक्तियोंको धारण करनेवाले और सबके स्वामी हैं। हम साधारण जीव हैं। आप परमेश्वरके सभीप बोलनेकी शक्ति या बात करनेकी योग्यता हममें नहीं है; तथापि यह आपका अनुग्रह है कि आप मुझसे बात करते हैं। महा-

प्राज ! मैं कृतार्थ हूँ। कणमात्र विज्ञानसे प्रेरित हो आके समक्ष अपना प्रश्न रख रहा हूँ। मेरे इस अपराधको आप क्षमा करेंगे। प्रणव सबसे उत्तम मन्त्र है। वह साक्षात् परमेश्वरका बाचक है। पशुओं ( जीवों ) के पास ( वन्धु ) को छुड़ानेवाले भगवान् पशुपति ही उसके वाच्यार्थ हैं। ‘ओमितीरं सर्वम्’ ( तै० उ० १ । ८ । १ )—ओकार ही यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला समस्त जगत् है, यह सनातन श्रुति-का कथन है। ‘ओमिति ब्रह्म’ ( तै० उ० २ । ८ । १ ) अर्थात् ‘ॐ यह ब्रह्म है’ तथा ‘सर्वं होतद् ब्रह्म’ ( माण्ड० २ )—‘यह सब-का सब ब्रह्म ही है।’ इत्यादि वार्ते भी श्रुतियोंद्वारा कही गयी हैं। इस प्रकार मैंने समष्टि तथा व्यष्टिभावसे प्रणवार्थका श्रवण किया है। तात्पर्य यह है कि समष्टि और व्यष्टि—सभी पदार्थ प्रणवके ही अर्थ हैं, प्रणवके द्वारा सबका प्रतिपादन होता है—यह बात मैंने सुन रखी है। महासेन ! मुझे कभी आप-जैसा गुरु नहीं मिला है, अतः कृपा करके आप प्रणवके अर्थका प्रतिपादन कीजिये। उपदेशकी विधिसे तथा सदाचार-परम्पराको ध्यानमें रखकर आप हमें प्रणवार्थका उपदेश दें।

मुनिके इस प्रकार पूछनेपर स्कन्दने प्रणवस्वल्प, अहंतीय श्रेष्ठ कलाओंद्वारा लक्षित तथा सदा पार्वतभगमें उमाको साथ रखनेवाले और मुनिवरोंसे विरे हुए भगवान् सदाशिवको प्रणाम करके उस श्रेयका वर्णन आरम्भ किया, जिसे श्रुतियोंमें भी छिपा रखा है। ( अध्याय १—११ )

प्रणवके वाच्यार्थरूप सदाशिवके खलफका ध्यान, वर्णश्रम-धर्मके पालनका सहच्च, ज्ञानमयी पूजा, संन्यासके पूर्वाङ्गभूत नान्दीश्वाद् एवं ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन

श्रीस्कन्दने कहा—महाभाग मुनीश्वर वामदेव ! तुम्हें साधुवाद है; क्योंकि तुम भगवान् शिवके अत्यन्त भक्त हो और शिव-तत्त्वके शाताओंमें सबसे श्रेष्ठ हो। तीनों लोकोंमें कहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हें शात न हो; तथापि तुम लोकपर अनुग्रह करनेवाले हो, इसलिये तुम्हारे समक्ष इस विषयका वर्णन करूँगा। इस लोकमें जितने जीव हैं, वे सब नाना प्रकारके शास्त्रोंसे मोहित हैं। परमेश्वरकी अति विच्चित्र भायाने उन्हें परमार्थसे विद्धित कर दिया है। अतः प्रणवके वाच्यार्थभूत साक्षात् महेश्वरको वे नहीं जानते। वे महेश्वर ही सगुण-निर्गुण तथा त्रिदेवोंके जनक परद्वज्ञ परमात्मा हैं।

मैं अपना दाहिना हाथ उठाकर तुमसे शपथपूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है। मैं वारंवार इस सत्यको दोहराता हूँ कि प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही है। श्रुतियों, स्मृति-शास्त्रों, पुराणोंतथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हेंको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसाद्वित वाणी उस परमेश्वरको न पाकर लैट आती है, जिसके आनन्दक अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्म विष्णु तथा इन्द्रसाद्वित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रिय समुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्म स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसमें

ब्रह्मादिदेवसुनिकिनरसोयमान-गायाविशेषशुचिचिन्तितकीतिधान्मे

इन्द्राकामलकिरीटविभूषणस्त्र-पूज्याभिरमपदपक्षज ते नमोऽस्तु ॥

इति स्कन्दस्त्वं दिव्यं वामदेवेन मापितम् । यः पठेच्छुण्याद्वापि स याति परमां गतिन् ॥

महाप्रशान्तरं श्वेतचिद्युभक्तिविवर्णनम् । आयुरारोग्यवनकृत्सवंकामग्रदं सदा ॥

( शिं० पु० क० सं० ११ । ३२—३५ )

निष्ठ निशुत् सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके प्रकाशसे ही यह समूर्ण जगत् सब औरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा समूर्ण ऐश्वर्यसे नमन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। ३५ हृदयकाद्यके भीतर विराजमान जो भगवान् शम्भु मुमुक्षु पुरुषोंके ध्येय हैं, जो सर्वव्यापी प्रकाशात्मा, भासस्वरूप एवं चिन्मय हैं, जिन परम पुरुषकी पराशक्ति शिवा भक्तिभावसे सुलभ मनोहरा, निर्गुण, अपने गुणोंसे ही निष्ट और निष्कल हैं, उन परमेश्वरके तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म और इन दोनोंसे परे। मुने ! मुमुक्षु योगियोंको निल क्रमशः उनके इन स्वरूपोंका ध्यान करना चाहिये। वे शम्भु निष्कल, समूर्ण देवताओंके सनातन आदिदेव, शम्भु-क्रिया-सभाव एवं परमात्मा कहे जाते हैं, उन देवाधिदेव-जी बाक्षात् मूर्ति सदाशिव हैं। ईशानादि पाँच मन्त्र उनके शरीर हैं। वे महादेवजी पञ्चकला-रूप हैं। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शीतल आभासे युक्त हैं। उन प्रभुके पाँच मुख, दस भुजाएँ और पंद्रह नेत्र हैं। 'ईशान' मन्त्र उनका मुकुट-मण्डित मस्तक है। 'तत्त्वरूप' मन्त्र उन पुरातन प्रभुका मुख है। 'अधोर' मन्त्र हृदय है। 'वामदेव' मन्त्र गुह्य प्रदेव है तथा 'उद्योजात' मन्त्र उनके पैर है। इस प्रकार वे पञ्चमन्त्र-स्य हैं। वे ही साक्षात् साकार और निरकार परमात्मा हैं। वर्षता आदि छः शक्तियाँ उनके शरीरके छः अङ्ग हैं। वे शम्भादि शक्तियोंसे स्फुरित हृदयकमलके द्वारा सुशोभित हैं। वामभागमें मनोन्मनी नामक अपनी शक्तिसे विभूषित हैं।

अब मैं मन्त्र आदि छः प्रकारके अर्थोंको प्रकट परसेदे लिये जो अर्थोंपन्थासकी पद्धति है, उसके द्वारा प्रणवके अर्थ और व्यष्टिसम्बन्धी भावार्थका वर्णन करूँगा; परंतु इसे उपरेका क्रम बताना उचित है, इसलिये उसीको

\* प्रो चानो निवर्त्तते अश्रव्य मनसा सद ।

भास्मे यस्य वै विद्राश विमेति कुतश्चन ॥

पलाञ्जगदिरं सर्वं विधिविष्वन्द्रपूर्वकन् ।

तेऽ भृतेन्द्रियग्रामः प्रपमं सत्प्रस्तुरे ॥

न उच्चस्यवे यो वै कुतश्चन बदाचन ।

पलाञ्ज भास्तुर्ते पितुन च स्त्रो न चन्द्रमाः ॥

पलाञ्ज भास्तो विजातोदं जगत् सर्वं समस्ततः ।

अःसेन सम्पर्शे नामा त्वंश्वरः त्वयन् ॥

( शिं पु० कौ० सं० १२ । ७—१० )

मुनो ! मुने ! इस मानवलोकमें चार वर्ग प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे जो ब्राह्मण, ध्यनीय और वैश्य—ये तीन वर्ण हैं, उन्हींका वैदिक आचारसे सम्बन्ध है। व्रेवर्णिकोंकी सेवा ही जिनके लिये सारभूत धर्म है, उन शूद्रोंका वेदाध्ययनमें अधिकार नहीं है। यदि सब व्रेवर्णिक अपने-अपने आश्रम-धर्मके पालनमें हार्दिक अनुरागके साथ लगे हों तो उनका ही श्रुतियों और स्मृतियोंमें प्रतिपादित धर्मके अनुष्ठानमें अधिकार है, दूसरेका कदाचि नहीं। श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित कर्मका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष अङ्गस्य सिद्धिको प्राप्त होगा, यह यात वेदोक्तमार्गको दिखानेवाले परमेश्वरने स्वयं कही है। वर्णधर्म और आश्रमधर्मके पालनजनित पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करके वहुतसे श्रेष्ठ मुनि उनके सायुज्यको प्राप्त हो गये हैं। व्रहचर्च्यके पालनसे शृणियोंकी, वज्रकमोंके अनुष्ठानसे देवताओंकी तथा संतानोत्पादनसे पितरोंकी तृप्ति होती है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इस प्रकार शृणि-शृण, देव-शृण तथा पितृ-शृण—इन तीनोंसे मुक्त हो वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट होकर मनुष्य शीत, उण्ण तथा सुख-हुःखादि द्वन्द्वोंको सहन करते हुए जितेन्द्रिय, तपस्वी और मिताहारी हो यम-नियम आदि योगका अस्यासु करे, जिससे बुद्धि निश्चल तथा अत्यन्त दृढ़ हो जाय। इस प्रकार क्रमशः अस्यास करके शुद्धचित्त हुआ पुरुष समूर्ण कर्मोंका संन्यास कर दे। समस्त कर्मोंका संन्यास करनेके पश्चात् ज्ञानके समादरमें तत्त्वर रहे। ज्ञानके समादरको ही ज्ञानमयी पूजा कहते हैं। वह पूजा जीवकी साक्षात् शिवके साथ एकत्राका वोध करकर जीवमुक्तिस्य फल देनेवाली है। यतियोंके लिये इस पूजाको उद्योग्यम तथा निर्दोष समझना चाहिये। महाप्राप्त ! तुमपर स्नेह होनेके पारण लोकानुग्रहकी कामनासे मैं उत्त पूजाकी विधि बता रहा हूँ, सात्रधान होकर मुनो !

साधकको चाहिये कि वह समूर्ण शत्रुओंके तत्त्वाभिन्न शता, वेदान्तज्ञानके पारंगत तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यकी शरणमें जाय। उत्तम बुद्धिने युक्त एवं चतुर साधक आचार्यके उमीम जाफर विधिवृक्ष क्षेत्र-प्रग्राम आदिके द्वारा उन्हें यत्पूर्वक लंगुष्ठ करे। चिर गुद्दी अथ ले वह घारद दिनोंतक केवल दूध पीहर रहे। तदनन्दर शुक्लपद्मकी चकुरी या दद्यन्मकी प्राप्तःदात विधिवृक्ष कर दुद्दाचित हुआ विद्वान् लाभद विधिवृक्षमें श्रद्धे तुदरो बुलाकर याक्रोक्त विधिसे जनीवार छेरे। नहरीप्राप्तमें

विश्वेदेवोक्ती संज्ञा सत्य और वसु बतायी गयी है। प्रथम देवश्राद्धमें नान्दीमुख-देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गये हैं। दूसरे ऋषिश्राद्धमें उन्हें ब्रह्मिं, देवर्षि तथा राजर्षि कहा गया है। तीसरे दिव्य श्राद्धमें उनकी वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञा बतायी गयी है। चौथे मनुष्यश्राद्धमें सनक आदि चार मुनीश्वर ही नान्दीमुख-देवता हैं। पाँचवें भूत-श्राद्धमें पाँच महाभूत, नेत्र आदि ग्यारह इन्द्रिय-समूह तथा जरायुज आदि चतुर्विध प्राणिसमुदाय नान्दीमुख भाने गये हैं। छठे पितृश्राद्धमें पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन नान्दीमुख-देवता हैं। सातवें मातृश्राद्धमें माता, पितामही और प्रपितामही—इन तीनको नान्दीमुख-देवता बताया गया है तथा आठवें आत्मश्राद्धमें आत्मा, पिता, पितामह और प्रपितामह—ये चार नान्दीमुख-देवता कहे गये हैं \*। मातामहात्मक श्राद्धमें मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह—ये तीन नान्दीमुख-देवता सप्तवीक बताये गये हैं। प्रत्येक श्राद्धमें दो-दो ब्राह्मण करके जितने ब्राह्मण आवश्यक हों, उनको आमन्त्रित करे और स्वयं यज्ञपूर्वक आचमन करके पवित्र हो उन ब्राह्मणोंके पैर धोये। उस समय इस प्रकार कहे—‘जो समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिमें कारण, अयी हुई आपत्तिके समूहको नष्ट करनेके लिये धूमकेतु (अग्नि) रूप तथा अपार संसारसागरसे पार लगानेके लिये सेहुके समान हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मुझे पवित्र करें। जो आपत्तिलीपी धने अन्वकारको दूर करनेके लिये सूर्य, अभीष्ट अर्थको देनेके लिये कामधेनु तथा समस्त तीर्थोंके जलसे पवित्र मूर्तियाँ हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मेरी रक्षा करें।’ †

ऐसा कह पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर साधाङ्ग प्रणाम करे। तत्प्रात् पूर्वाभिमुख बैठकर भगवान् शंकरके युगल वरणाविन्दीका चिन्तन करते हुए दृढ़तापूर्वक आसन ग्रहण हो। हाथमें पवित्री ले शुद्ध हो नूतन यशोपचीत धारणकर

१. सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार।

\* धर्मसिन्धुकार आदिने आत्म-श्राद्धमें भी तीन ही नान्दीमुख कहे हैं—आत्मा, पिता और पितामह।

† समस्तपत्समवासिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः।

अपारसंसारसमुद्देशेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः॥

आपद्वनव्यान्तसहस्रभानवः समीहितार्थपूर्णकामधेनवः।

समलतीर्थानुपवित्रमूर्तियो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपदर्पस्वः॥

( श्ल० पु० क० सं० १२ । ४४-४५ )

तीन बार ग्राणायाम करे। तदनन्तर तिथि आदिका सार करके इस तरह संकल्प करे—‘मेरे संन्यासका अङ्गभूत जे पहले विश्वेदेवका पूजन, फिर देवादि व्यष्टिविध श्राद्ध तथा अन्तमें मातामह-श्राद्ध है, उसे आपलोगोंकी आज्ञा लेकर मैं पर्वणकी विधिसे सम्बन्ध करूँगा।’ ऐसा संकल्प करके आसनके लिये दक्षिण दिशासे आरम्भ करके उत्तरोत्तर कुशोंका त्याग करे। तत्प्रात् आचमन करके खड़ा हो वर्णक्रमका आरम्भ करे। अगे हाथमें पवित्री धारण करके दो ब्राह्मणोंके हाथोंका सर्व करते हुए इस प्रकार कहे—

‘विश्वेदेवार्थं भवन्तौ वृणे।

भवद्वयां नान्दीश्राद्धे क्षणः प्रसादनीयः।’

अर्थात् हम विश्वेदेव श्राद्धके लिये आप दोनोंका वरण करते हैं। आप दोनों नान्दीश्राद्धमें अपना समय देनेकी कृपा करें। इतना सभी श्राद्धोंके ब्राह्मणोंके लिये कहे। मर्वन ब्राह्मण-वरणकी विधिका यही क्रम है।

इस प्रकार वरणका कार्य पूरा करके दस मण्डलोंका निर्माण करे। उत्तरसे आरम्भ करके दसों मण्डलोंका अस्तरे पूजन करके उनमें क्रमशः ब्राह्मणोंको स्थापित करे। पर्यात उनके चरणोंपर भी अक्षत आदि चढ़ाये। तदनन्तर सम्बोधन-पूर्वक विश्वेदेव आदि नामोंका उच्चारण करे और कुश, पुष्प अक्षत एवं जलसे ‘इदं वः पादम्’ कहकर पाद निवेदन करे \*।

इस प्रकार पाद देकर स्वयं भी अपना पैर घो ले और उत्तराभिमुख हो आचमन करके एक-एक श्राद्धके लिये जो दो-दो ब्राह्मण कल्पित हुए हैं, उन सबको आशोंग विठाये तथा यह कहे—‘विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणः

\* प्रथम मण्डलमें दो विश्वेदेवोंके लिये, फिर आठ मण्डलोंमें क्रमशः देवादि बाठ श्राद्धोंके अधिकारियोंके लिये तभ रस्ते मण्डलमें सप्तवीक मातामह आदिके लिये पाद अर्पण करने चाहिये। अर्पण-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—

ॐ सत्यवसुसंशकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः तः इतः पादं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ १ ॥ ॐ नदाविष्णु महेश्वरः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इत वः पादं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ २ ॥ ॐ देवपित्रव्रक्षार्पिक्षत्रपूर्णवो नान्दीमुखाः भूर्भुवः तः इत वः पादं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ ३ ॥

इसी प्रकार अन्य श्राद्धोंके लिये वाक्यकी ऊहा कर देने चाहिये।

दृष्टिसन्मुख ।”—विश्वेदेवस्तरुप ब्राह्मणके लिये यह आसन उमर्गत है यह कह कुशासन दे स्वयं भी हाथमें कुम लेकर आसनपर खित हो जाय । इसके बाद कहे—  
‘भस्त्रज्ञान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थे भवद्धयां क्षणः क्रियतास् ।—  
इस नान्दीमुख आद्यमें विश्वेदेवके लिये आप दोनों क्षण (उमर्ग प्रदान ) करें ।’ तदनन्तर ‘प्राप्नुतां भवन्तौ—आप दोनों हृण करें ।’ ऐसा कहे । फिर वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकार प्रत्यर दें ‘प्राप्नुयत्व—हम दोनों ग्रहण करेंगे ।’ इसके बाद मज्जान उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे—‘मेरे मनोरथकी गति है, संकल्पकी सिद्धि है—इसके लिये आप अनुग्रह करें ।’

तत्पश्चात् ( पद्धतिके अनुसार अर्थ दे, पूजन कर ) शुद्ध  
वेलेके पत्ते आदि धोये हुए पात्रोंमें परिपक्व अन्न आदि भोज्य  
पदार्थोंको परोसकर पृथक्-पृथक् कुशा विछाकर और स्वयं  
वहाँ जल छिड़ककर प्रत्येक पात्रपर आदरपूर्वक दोनों हाथ  
लगा 'पृथिवी ते पात्रम्' \* इत्यादि मन्त्रका पाठ करे । वहाँ  
स्थित हुए देवता आदिका चतुर्वर्ण उच्चारण करके अक्षतसहित  
जल ले 'स्खाहा' बोलकर उनके लिये अन्न अर्पित करे और  
अन्तमें 'न मम' इस वाक्यका उच्चारण करे ॥ सर्वत्र—माता  
आदिके लिये भी अन्न-अर्पणकी यही विधि है ।

अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करे—

यत्तदपश्यस्मरणाद् यस्य नामजपादपि ।  
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीक्षरम् ॥

जिनके चरणारविन्दोंके चित्तन एवं नामजपसे न्यूनतापूर्ण अंग अधूरा कर्म भी पूरा हो जाता है, उन साम्ब सदाशिव (उमा-महेश्वर) की मैं वन्दना करता हूँ।'

सत्का पाठ करके कहे—‘व्रातणो ! मेरे द्वारा किया  
इया यह गान्दीमुख शाद यथोक्तर्ल्पसे परिपूर्ण हो, यह आप  
प्रेरे ।’ ऐसी प्रार्थनाके साथ उन श्रेष्ठ व्रातणोको प्रसन्न करके  
जना आशीर्यांद ले और अपने हाथमें लिया हुआ जल छोड़  
दे । फिर उच्चोर दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम करे और  
उत्तर व्रातणोत्तिकरे—‘यह अन्म अमृतर्ल्प हो ।’ फिर  
दण्डके साथक हाथ जोड़ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रार्थना  
धरे । ग्रीष्मद्भूजका चमकाच्यायतद्वित पाठ करे । पुरुष-

\* श्रीमिती वे नार्दं लीराफिरनं प्रालगस्य नुखेऽङ्गरेऽमृतं जुहोनि  
पूर्वं वद तुमा यथा है।

‘प्रियोग व्यवहार के लिए उत्तम साधन हैं।’

सूक्तकी भी विधिवत् आवृत्ति करे । मनमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हुए 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि पाँच मन्त्रोंका जप करे । जब ब्राह्मणलोग भोजन कर चुकें, तब रुद्रसूक्तमा पाठ समाप्तकर क्षमाप्रार्थनापूर्वक उन ब्राह्मणोंको पुनः 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर उत्तरपोशनके लिये जल दे ।

तदनन्तर हाथ-पैर धो आचमन करके पिण्डदानके स्थानपर जाय। वहाँ पूर्वाभिमुख बैठकर मौनभावसे तीन बार प्राणायाम करे। इसके बाद 'मैं नान्दीमुख' श्राद्धका अङ्गभूत पिण्डदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके दक्षिणसे लेकर उत्तरकी ओर नौ रेखाएँ खींचे और उन रेखाओंपर क्रमशः बारह-बारह पूर्वाय कुश लिलाये। फिर दक्षिणकी ओरसे देवता अदि-के पाँच॥ स्थानोंपर चुपचाप अक्षत और जल छोड़े। पितृवग्मके तीनों स्थानोंपर क्रमशः अक्षत, जल छोड़कर नवें मातामहादिके स्थानपर भी मार्जन करें। तत्पश्चात् 'अग्र पितरो मादयप्वम्' कहकर देवादिके पाँचों स्थानोंपर क्रमशः अक्षत-जल छोड़े। इस प्रकार अवनेजन दे पाँचों स्थानोंपर प्रत्येकके लिये तीन-तीन पिण्ड देई। (इसी तरह शेष स्थानोंपर भी करे।) अपने गृहसूत्रमें वतायी हुई पद्मतिके अनुकार सभी पिण्ड पृथक्-पृथक् देने चाहिये। फिर पितरोंके सानुष्यके लिये जल-अक्षत अर्पित करे। तत्पश्चात् अपने हृदय-कमलमें सदा-शिवदेवका ध्यान करे और पूर्वोक्त 'यत्पादप्रसारणात्'..... इत्यादि श्लोकका पुनः पाठ करके ब्राह्मोंको नमस्कारपूर्वक यथारात्कि दक्षिणा दे। फिर त्रुटियोंके लिये धूमा-प्रार्थना करके देवता-पितरोंका विसर्जन करे। पिण्डोंका उत्तर्य करके

\* देव, भूमि, दिव्य, मनुष्य और भूत—इनके पांच स्थान समझने चाहिये।

† पिता आदि, भाता आदि तथा अत्यन्त आदि—पै लोग स्थान हैं।

† उत्त समय इस प्रकार कहे—**शुद्धिं विषयो वास्त्रो वास्त्रो दुष्यतः**  
**शुद्धिं विषयो वास्त्रो दुष्यतः शुद्धिं विषयो वास्त्रो दुष्यतः ।** पद  
 प्रथम लेखापर मार्जन करते समय कहे । इस प्रकार नव्य रंगोंप्रेरण  
 भी आता कहे ।

§ पिण्डदान-वाचन एवं प्रश्नाः—पूर्वे गतिशुद्धयात्  
स्तथा, दिव्यो जन्मशुद्धयात् एव तु इत्यादि । एवं अनुष्ठाने  
प्रतीक देवताके लिये देवी विष्णवः देवता लिया है, एवं ती  
नामांक देव देवताभीष्टे लिये देवता लिये हैं ।

उन्हें गौओंको खानेके लिये दे दे अथवा जलमें डाल दे । तत्पश्चात् पुण्याहवाचन करके स्वजनोंके साथ भोजन करे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शुद्ध बुद्धिवाला साधक उपवासपूर्वक व्रत रखदे । काँख और उपस्थिके बालोंको छोड़कर शेष सभी बाल मुँइवा दे, परंतु शिखाके सात-आठ बाल अवश्य बचा ले । फिर स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहिनकर शुद्ध हो दो बार आचमन करके भौन हो विधिवत् भस्म धारण करे । पुण्याहवाचन करके उससे अपने आपका प्रोक्षण कर बाहर-भीतरसे शुद्ध हो होम, द्रव्य और आचार्यकी दक्षिणाके द्रव्यको छोड़कर शेष सभी द्रव्य भवेश्वरार्पण-बुद्धिसे ब्राह्मणों और विशेषतः शिवभक्तोंको बाँट दे । तदनन्तर गुरुरूपधारी शिवके लिये वस्त्र आदिकी दक्षिणा दे पृथ्वीपर दण्डवत्-प्रणाम करके डोरा, कौपीन, वस्त्र तथा दण्ड आदि जो धोकर पवित्र किये गये हों, धारण करे । तदनन्तर होमद्रव्य और समिधा आदि लेकर समुद्र या नदीके तटपर, पर्वतपर, शिवालयमें, घनमें अथवा गोशालामें किसी उत्तम स्थानका विचार करके वहाँ बैठ जाय और आचमन करके पहले मानसिक जप करे । फिर ‘ॐ नमो ब्रह्मणे’ इस मन्त्रका तीन बार जप करके ‘अग्नि-मीठे पुरोहितम्’ इस मन्त्रका पाठ करे । इसके बाद ‘अथ महाव्रतम्’, ‘अग्निवै देवानाम्’, ‘एतत्य समाध्नायम्’, ‘ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ’, ‘अग्न आयाहि वीतये’ तथा ‘र्ण नो देवी-

रभीष्ये’ इत्यादिका पाठ करे । तत्पश्चात् ‘म य र स त ब भ न ल ग’ ‘पञ्चसंवत्सरमयम्’, ‘समाध्नायः समाध्नातः’, ‘अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि’, ‘बृद्धिरादैच्’, ‘अथातो धर्मजिज्ञासा’, ‘अथते ब्रह्मजिज्ञासा’—इन सबका पाठ करे । तदनन्तर यथात्मभव वेद, पुराण आदिका स्वाध्याय करे । इसके बाद ‘ॐ ब्रह्मणे नमः’, ‘ॐ इन्द्राय नमः’, ‘ॐ सूर्याय नमः’, ‘ॐ सोमाय नमः’, ‘ॐ प्रजापतये नमः’, ‘ॐ आत्मने नमः’, ‘ॐ अन्तरात्मने नमः’, ‘ॐ ज्ञानात्मने नमः’, ‘ॐ परमात्मने नमः’ इत्यादि रूपसे ब्रह्म आदि शब्दोंके आदिमें ‘ॐ’ और अन्तमें ‘नमः’ लगाऊ उनके चतुर्थन्तर रूपका जप करे । इसके बाद तीन मुड़ी सूत लेकर प्रणवके उच्चारणपूर्वक तीन बार स्वाय और प्रणवसे ही दो बार आचमन करके नाभिका स्पर्श करे । उस समय आगे बताये जानेवाले शब्दोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें ‘नमः स्वाहा’ जोड़कर उनका उच्चारण करे । यथा—‘ॐ आत्मने नमः स्वाहा’, ‘ॐ अन्तरात्मने नमः स्वाहा’, ‘ॐ ज्ञानात्मने नमः स्वाहा’ ‘ॐ परमात्मने नमः स्वाहा’, ‘ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा’, इति । तदनन्तर पृथक्-पृथक् प्रणवमन्तरसे\* ही दूध-दही मिले हुए धीको (अथवा केवल जलको) तीन बार चाटकर पुनः दो बार आचमन करे । इसके बाद मनके स्थिर करके सुस्थिर आसनभर पूर्णभिमुख बैठकर शाश्वोक विधिसे तीन बार प्राणायाम करे । (अध्याय १२)

### संन्यासग्रहणकी शास्त्रीय विधि—गणपति-पूजन, होम, तत्त्व-शुद्धि, सावित्री-प्रवेश, सर्वसंन्यास और दण्ड-धारण आदिका प्रकार

स्कन्द कहते हैं—‘वामदेव ! तदनन्तर मध्याह्नकालमें स्नान करके साधक अपने मनको वशमें रखते हुए गन्ध, पुण्य और अद्वित आदि पूजा-द्रव्योंको ले आये और नैऋत्यकोणमें देवपूजित विवराज गणेशकी पूजा करे । ‘गणानां स्वा’ इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक गणेशजीका आवाहन करे । आवाहनके पश्चात् उनके स्वल्पका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये । उनकी अङ्गक्षान्ति लाल है, शरीर विशाल है । सब प्रकारके आभूपण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं । उन्होंने अपने कर-कमलोंमें क्रमशः पाता, अङ्गुश, अक्षमाला तथा वर नामक मुद्राएँ धारण कर

रखी हैं । इस प्रकार आवाहन और ध्यान करनेके पश्चात् शम्भुपुत्र गजाननकी पूजा करके खीर, पूआ, नारियल और गुड आदिका उत्तम नैवेद्य निवेदन करे । तत्पश्चात् तामूर आदि दे उन्हें संतुष्ट करके नमस्कार करे और अपने अपीय कार्यकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये प्रार्थना करे ।

तदनन्तर अपने गृहास्थामें व्रतार्थी हुई विधिके अनुसार औपासनाग्निमें आज्यभागान्नां हवन करके अग्निदेवतासम्पर्यायविधयक स्थालीपाक होम करना चाहिये । इसके बाद ‘भूः स्वाहा’ इस मन्त्रसे पूर्णहुति होम करके हवनका कार्य

\* पर्मसिन्धुकारने इसके लिये तीन मन्त्र लिखे हैं । प्रथम बार चाटकर कहे—‘विवृदसि’, द्वितीय बार ‘प्रवृदसि’ और तीर्त्ता वार ‘विवृदसि’ ।

+ कुशकण्ठित्वात् अनन्तर अग्निमें ओ नार आमुतियाँ दी जाती हैं, उनमें प्रथम दोको ‘आधार’ और अन्तिम दोको ‘आज्यम’ कहते हैं । पक्षागति भी इनके उद्देश्यसे ‘आधार’ तथा अग्नि और सोमके उद्देश्यसे ‘आज्यभाग’ दिया जाता है ।

सनात करे । तत्यथा आल्सरहित हो अपराह्नकाल्पत्रक  
शयनी-मन्त्रका जप करता रहे । तदनन्तर स्नान करके सायं-  
कालकी संचोपासना तथा सायंकालिक उपासनासम्बन्धी  
निलहोम आदि करके मौन हो गुरुकी आज्ञा ले चर पकाये ।  
फिर अग्निमें समिधा, चर और धीकी रुद्रसूक्तसे और सद्यो-  
जातादि पाँच मन्त्रसे पृथक्-पृथक् आहुति दे । अग्निमें उमा-  
आहुति महेश्वरकी भावना करे और गौरीदेवीका चिन्तन करते  
हुए 'गौरीमिमाय' ॥ इस मन्त्रसे एक सौ आठ वार होम करके  
'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्रसे एक वार आहुति दे ।

इत प्रकार तन्यसे हथन करनेके पश्चात् विद्यानुपुरुण ।  
उत्तरमें एक आसनपर बैठे, जिसमें नीचे कुशा, उसके ऊपर  
मृगचर्म और उसके ऊपर बख विछा हुआ हो । ऐसे सुखद  
आसनपर बैठकर मौनभावसे सुस्थिरचित हो जागरणपूर्वक  
प्रातःमुहूर्त अनेतक गायत्रीका जप करता रहे । इसके बाद  
स्नान करे । जो जलसे स्नान करनेमें असमर्थ हो, वह भस्मसे  
ही निपिर्वूक स्नान करे । फिर उस अग्निपर ही चबू पकाकर  
उसे धीसे तर करे । उसे उतारकर अग्निसे उत्तर दिशामें  
कुशपर रख्ले । पुनः धीसे चबूको मिश्रित करे । इसके बाद  
ग्राहति सन्त्र, बद्रसूक्त तथा सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंका जप  
करे और इनके द्वारा एक-एक आहुति भी दे । चित्तको  
भास्तान् शिखके चण्डारविन्दमें लगाकर प्रजापति, इन्द्र, विश्वे-  
देव और ब्रह्माके लिये भी एक-एक आहुति दे । इन सदके  
नामके अदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः स्वाहा' जोड़कर  
चुरुर्षन्त उच्चारण करे (यथा—ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा—  
स्वाहा) । तदश्चात् पुण्याहवाचन कराकर 'अग्नये स्वाहा'  
इस नम्नसे अग्निके मुखमें आहुति देनेतकका कार्य सम्पन्न  
हो । किं 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि पाँच मन्त्रोंद्वारा धूतसहित  
नहोते आसुति दे । इसके बाद 'अग्नये स्विष्टहुते स्वाहा'  
हेतकर एक आहुति और दे । तदनन्तर फिर बद्रसूक्त तथा  
ऐतिहादि पाँच मन्त्रोंका जप करे । महेशादि चतुर्वर्षीय मन्त्रोंका  
संज्ञ लें । इस प्रकार तन्त्र-होम करके अपनी नृस्थशाखामें  
स्त्रीर्षी रुई पदातिके अनुतार उन-उन देवताओंके उद्देश्यसे  
उद्दिष्ट पुण्य लान्न होम करे । इस तरह जो अग्निसुख आदि  
धूर्षस्त्रं प्रदर्शित किया गया है, उचका निर्वाह करके विरजा  
रंग ले । उर्ध्वांग तन्त्रस्य इस शरीरमें छिपे हुए

• श्री कृष्ण दस प्रवारे—गीर्जामेलाय तत्त्वदान तदा  
दीपिकास च चतुर्पर्य । प्रधारदो नमरदो वर्गुर्भा तत्त्वाद्धरा  
न्नेऽप्यनुत्तम । ( अद्वेद चं० ६ द० २५५ । ४१ )

तत्त्वसमुदायकी शुद्धिके लिये विरजा होम करना चाहिये ।  
उस समय यह कहे कि भ्रे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं,  
इन सबकी शुद्धि हो । उस प्रसङ्गमें आत्मतत्त्वकी शुद्धिके  
लिये आशुणकेतुक मन्त्रोंका पाठ करते हुए पृथ्वी आदि तत्त्वों  
लेकर पुरुषतत्त्वपर्यन्त क्रमशः सभी तत्त्वोंकी शुद्धिके निमित्त  
धृतयुक्त चरका होम करे तथा शिवके चरणारविदोंका चिन्तन  
करते हुए मौन रहें । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—  
ये पृथिव्यादिपञ्चक कहलाते हैं । शब्द, सर्व, खप, रस और  
गन्ध—ये शब्दादि पञ्चक हैं । वाक, पाणि, पाद, पायु तथा  
उपस्थ—ये वासादिपञ्चक हैं । श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना  
और त्वक्—ये श्रोत्रादिपञ्चक हैं । शिर, पार्श्व, पृष्ठ और  
उदर—ये चार हैं । इन्हींमें जड़ोंको भी जोड़ ले । फिर त्वक्  
आदि सात धातुएँ हैं । प्राण, अमन आदि पाँच वायुओंको  
प्राणादिपञ्चक कहा गया है । अनन्मयादि पाँचों कोशोंको  
कोशादिपञ्चक कहते हैं । ( उनके नाम इस प्रकार है—अन्नमय,  
प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय । ) इनके  
सिवा मन, चित्त, शुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण,  
प्रकृति और पुरुष हैं । भोक्तापनको प्राप्त हुए पुरुषके लिये  
भोगकालमें जो पाँच अन्तरङ्ग साधन हैं, उन्हें तत्त्वपञ्चक  
कहा गया है । उनके नाम ये हैं—नियति, काल, रग, विद्या  
और कल्य । ये पाँचों मायासे उत्पन्न हैं । 'मायां तु प्रकृतिं  
विद्यात्' । इस श्रुतिमें प्रकृति ही माया कही गयी है । उससे  
ये तत्त्व उत्पन्न हुए हैं, इसमें संशय नहीं है । चालका स्वभाव  
ही 'नियति' है, ऐसा श्रुतिका कथन है । ये नियति आदि जो  
पाँच तत्त्व हैं, इन्हींको 'पञ्चकर्त्तुक' कहते हैं । इन पाँच  
तत्त्वोंको न जाननेवाला विद्वान् भी नृदृ ही कहा गया है ।

निदति प्रकृतिसे नीचे है और वह पुरुष प्रकृतिये जर  
है। जैसे कौएकी एक ही अंत मेंके दोनों ओर से भी गुम्ती  
रहती है उनी प्रकार पुरुष प्रकृति और मिहर्ति एवंनोंके पास  
रहता है। वह विद्यात्मक रहा गया है। उद्ध विद्या नहीं  
सदाशिव, शक्ति और विद्य-इन बाह्योंके विद्यत्व रहते हैं।  
ब्रह्मन्! 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इस क्षुतिके कामने पर विद्यत्व दी

\* तत्त्वादिके लिये इष्टहृष्टक-सम्बोधना एवं अपार्थि  
तसे दृष्टि ग्राहिके लिये—पूर्वज्ञानीयों समुदायमें दृष्टि  
चेताविरोध प्रियज्ञ विशेष शूद्रसम्बोधना इत्या विषय संकलन  
यह और आत्मव्यवाचनम् व्याप्तिः । १५५

प्रतिपादित हुआ है। मुनीश्वर ! पृथ्वीसे लेकर शिवपर्यन्त जो तत्त्वसमूह है, उसमेंसे प्रत्येकको क्रमशः अपने-अपने कारणमें लीन करते हुए उसकी शुद्धि करो। ( १ पृथिव्यादिपञ्चक, २ शब्दादिपञ्चक, ३ वागादिपञ्चक, ४ श्रोत्रादिपञ्चक, ५ शिरआदिपञ्चक, ६ त्वगादिधातुसप्तक, ७ प्राणादिपञ्चक, ८ अज्ञमयादिकोशपञ्चक ९ मन आदि पुरुषान्त तत्त्व, १० नियत्यादि तत्त्वपञ्चक ( अथवा पञ्चकञ्चुक ) और ११ शिवतत्त्वपञ्चक—ये ग्यारह वर्ग हैं; इन एकादश-वर्गसम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें ‘परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम’ इस वाक्यका उच्चारण करेः॥। इसके द्वारा अपने उद्देश्यका त्याग बताया गया है।

इसके बाद ‘विविद्या’ तथा ‘कर्षोत्क’ सम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें अर्थात् ‘विविद्यायै स्वाहा’ ‘कर्षोत्काय स्वाहा’ इनके अन्तमें स्वतत्त्वागके लिये ‘व्यापकाय परमात्मने शिवज्योतिषे विश्वभूतघसनोत्सुकाय परस्मै देवाय इदं न मम’ इसका उच्चारण करे। तत्पश्चात् ‘उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा स चा’ इस मन्त्रके अन्तमें ‘विश्वरूपाय पुरुषाय अँ स्वाहा’ बोलकर स्वत्व त्यागके लिये ‘लोकत्रयव्यापिने परमात्मने शिवायेदं न मम’ का उच्चारण करे। तदनन्तर अपनी शाखामें बतायी हुई विधिसे पहले तन्त्र-कर्मका सम्पादन करके धूतमिश्रित चरुका प्राशन एवं आचमन करनेके पश्चात् पुरोधा आचार्यको सुर्वर्ण आदिसे सम्पन्न समुचित दक्षिणा दे।

फिर ब्रह्माका विसर्जन करके प्रातःकालिक उपासना-सम्बन्धी नित्य होम करे। इसके बाद मनुष्य ‘सं मा सिङ्घन्तु मरुतः’ इस मन्त्रका जप करे।† तत्पश्चात्—‘या ते अग्ने

\* यथा—‘पृथिव्यादिपञ्चकं मे शुद्धयतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्ना भूयासः स्वाहा—‘पृथिव्यादिपञ्चकाय परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम’।

† धर्मसिन्युकारने कहा है कि ‘सं मा सिङ्घन्तु मरुतः’ इस मन्त्रसे अग्निका उपस्थान करके उसमें काष्ठमय वशपात्रोंको जला दे। यदि पात्र तैजस धातुके हों तो उन्हें आचार्यको दे दे।

पूरा मन्त्र और उसका अर्थ इस प्रकार है—

सं मा सिङ्घन्तु मरुतः समिन्दः सं वृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिग्रत्वायुपा च धनेन

च वलेन चाद्यमन्तं करोतु मा ।

अपांत् नश्यूण, इन्द्र, पूरस्पति तथा अग्नि—ये सभी देवता

यज्ञिया तनूतयेहारोहात्मानम्\* इत्यादि मन्त्रोंसे हाथको अग्निमें तपाकर उस अग्निको अद्वैतधाम-स्वरूप अपने आत्मामें आरोपित करे। तदनन्तर ग्रातःकालकी संयोगात्मा करके सूर्योपस्थानके पश्चात् जलाशयमें जाकर नाभितक जलके भीतर प्रवेश करे। वहाँ प्रसन्नतापूर्वक मन्त्रोंसे स्थिरकर उत्सुकतापूर्वक वेदमन्त्रोंका जप करे।†

जो अग्निहोत्री हो, वह स्थापित अग्निमें आजापत्त्वं‡ इष्टि करे तथा वेदोक्त वैश्वानर स्यालीपाक होम करके उसमें अपना सब कुछ दान कर दे। पूर्वोक्तरूपसे अग्निका आत्मामें आरोप करके ब्राह्मण धरसे निकल जाय। मुनीश्वर ! फिर वह साधक निम्नाङ्कितरूपसे ‘सावित्री-प्रवेश’ करे—

मुहूपर कल्याणकी वर्षा करें। ये अग्निदेव मुझे आयु, शान्तरूपी धन तथा साधनकी शक्तिसे सम्पन्न करें। साथ ही मुझके दीर्घजीवी भी बनायें।

\* पूरे मन्त्र और अर्थ यों है—

या ते अग्ने यज्ञिया तनूतयेहारोहात्मानम् ।

अच्छा वसूनि कृष्णन्तस्ये नर्या पुरुणि ॥

यज्ञो भूत्वा यशमासीद स्वा योनिम् ।

जातवेदो भुव आजायमानः सक्षय पहि ॥

‘हे अग्निदेव ! जो तुम्हारा यज्ञिय ( यज्ञोमें प्रकट होनेवाला ) स्वरूप है, उसी स्वरूपसे तुम यहाँ पधारो और मेरे लिये कहुन्ते मनुष्योपयोगी विशुद्ध धन ( साधन-सम्पत्ति ) की सृष्टि करते हुए आत्मारूपसे मेरे आत्मामें विराजमान हो जाओ। तुम यश्त्र्य होकर अपने कारणरूप यशमें पहुँच जाओ। हे जातवेद ! तुम पृथिवीसे उत्पन्न होकर अपने धामके साथ यहाँ पधारो।’

† वहाँ जल लेकर उसे ‘आशुः शिशानः’ इस सुनाते अभिमन्त्रित करके ‘सर्वान्धो देवताभ्यः स्वाहा’ ऐसा कहकर थोऽदे। फिर संन्यासका संकल्प ले तीन बार जलाङ्गिले दे। उसके मन्त्र इस प्रकार है—ॐ पथ ह वा अग्निः सर्वः प्राणं गच्छ स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ आपो वै गच्छ स्वाहा ॥ ३ ॥ ( धर्मसिन्यु )

‡ ‘यदिष्ठ यज्ञ पूर्वं यज्ञापद्यनापदि प्रजापतौ तमन्तर्मुखो मिति । विमुक्तोऽहं देवकिलिपात्स्वाहा’ ऐसा कह पांच आहुति दे—‘इदं प्रजापतये न मम’ कहकर त्याग करे। परं प्राजापत्येष्टि है।

ॐ भूः साक्षिंश्च प्रवेशयामि ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्, ॐ  
भुवः साक्षिंश्च प्रवेशयामि लभग्ने देवस्य धीमहि, ॐ सः  
साक्षिंश्च प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोदयात्, ॐ भूर्भुवः  
स्तः साक्षिंश्च प्रवेशयामि, तत्सवितुर्वरेण्यं भग्ने देवस्य धीमहि  
धियो यो नः प्रचोदयात् ।<sup>१</sup>

—इन वाक्योंका प्रेमपूर्वक उच्चारण करे और चित्तको चश्छल न होने दे।

उस समय गायत्रीका इस प्रकार ध्यान करे—ये भगवती गायत्री साक्षात् भगवान् शंकरके आधे शरीरमें वास करनेवाली हैं। इनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। ये पंद्रह नेत्रोंसे प्रकाशित होती हैं। नूलन रत्नमय किरीटसे जगमगाती हुई चन्द्रलेखा इनके मस्तकको विभूषित करती है। इनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है। ये शुभलक्षण देवी अपने दस हाथोंमें दस प्रकारके आयुध धारण करती हैं। हार, केशुर (वाजूबंद), कड़े, करपनी और नूपुर आदि आभूषणोंसे उनके अङ्ग विभूषित हैं। इन्हें दिव्य बस्त्र धारण कर रखता है। इनके सभी भाभूण रत्ननिभित हैं। विष्णु, ब्रह्मा, देवता, ऋषि तथा गर्थराज और भनुष्य ही सदा इनका सेवन करते हैं। ये उंवंव्यापिनी शिवा सदाशिव देवकी मनोहारिणी धर्मपत्नी हैं। सम्पूर्ण जगतकी माता, तीनों लोकोंकी जननी, त्रिगुणमयी, निर्गुण तथा अजन्मा हैं। इस प्रकार गायत्री-देवीके स्वरूपका चित्तन करते हुए शुद्धबुद्धिवाला पुरुष ब्राह्मणत्व आदि प्रदान करनेवाली अजन्मा आदिदेवी चिपदा गायत्रीका जप करे। पारसी व्याहृतियोंसे उत्पन्न हुई है और उन्हींमें लीन होती है। व्याहृतियाँ प्रणवसे प्रकट हुई हैं और प्रणवमें ही द्वंद्वों प्राप्त होती हैं। प्रणव सम्पूर्ण वेदोंका आदि है। वह विश्वा वाचक, मन्त्रोंका राजाधिराज, महावीजस्वरूप और ३२ मन्त्र है। शिव प्रणव है और प्रणव शिव कहा गया है; इसके दाव्य और वाचकमें अधिक भेद नहीं होता। ये गतिमन्त्रोंको काशीमें शरीर-त्याग करनेवाले जीवोंके सदाचालमें उन्हें सुनाकर भगवान् शिव परम मोक्ष प्रदान करते हैं। इसलिये ध्रेषु यति अपने हृदयकमलके मध्यमें दिग्भ्यन एकाक्षर प्रणवरूप परम कारण शिव देवकी उत्पन्न होते हैं। दूसरे मुकुरु, धीर एवं विरक्त लौकिक ३३ जीवस्ते विष्णोऽना परित्याग करके प्रणवरूप परम दिग्भ्यन उत्तमा करते हैं।

• अस्तित्वमें यदिगुनि' पाठ है ।

इस प्रकार गाथीका शिववाचक प्रणवमें ल्य करके ‘अहं वृक्षस्य रेतिवाञ्छ’ इस अनुवाकका जप करे । तत्यश्चात् ‘यद्दृष्ट्वास्त्रयभः’ ( तैत्तिरीय १ । ४ । १ )—इस अनुवाक-को आरम्भसे लेकर “श्रुतं मे गोपय” ॥ तक पढ़कर कहे ‘दारैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थितोऽहम्’ अर्थात् मैं स्त्रीकी कामना, धनकी कामना और लोकोंमें स्वातिकी कामनासे ऊपर उठ गया हूँ ॥ मुने ! इस वाक्य-का मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे क्रमशः तीन बार उच्चारण करे । तत्यश्चात् सुष्ठि, स्थिति और ल्यके क्रमसे पहले प्रणव-मन्त्रका उद्धार करके फिर क्रमशः इन वाक्योंका उच्चारण करे—‘ॐ भूः संन्यस्तं मया’ ‘ॐ भुवः संन्यस्तं मया’

\* अहं वृक्षस्थं रेरिवा । कीर्तिः पृथं गिरेरिव । ऋष्यपविदो  
वाजिनीव स्वमृतमसि । द्रविणं सवर्चसम् । सुमेधा अनृतेश्चितः । इति  
त्रिशङ्कुवेदानुवचनम् । ( तैत्तिरीयोप० १ । १० । १ )

मैं संसार-वृक्षका उच्छ्रेद करनेवाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वतके  
शिखरकी भाँति उक्त है; अन्नोत्पादक शक्तिसे युक्त सूर्यमें जैसे  
उत्तम अमृत है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय पवित्र अमृतास्त्रलप्त  
हूँ तथा मैं प्रकाशयुक्त धनका भंडार हूँ, परमानन्दनय अमृतसे  
अभिषिक्त तथा ऐष बुद्धिवाला हूँ—इस प्रधार यह विश्वास  
प्राप्तिका अनुभव किया युआ वैदिक प्रवचन है।'

५ यद्यच्छसामृपभो विश्वलः । द्वन्द्वोऽप्यमृतात्सम्भूत् ।  
स मेन्द्रे मेपया स्थृणोतु । अमृतस्य देव पारम्परा भूयासन् । हरीं भे-  
विचर्यमन् । जिहा ने मधुमत्तमा । कम्बाम्बा गूरि पिधुम् ।  
प्रद्वागः केतोऽप्ति मेपया पिष्टिः प्रत्यं ने गोपाय ।

जो केवल संवेदित है, सर्वत्र है और भगवान्तर्पणे के समय  
प्रधानतर्पणे प्रस्तुत हुआ है, वह तदनुसारी प्रत्येक अनुभव  
युक्त उद्दिष्ट संशय करते। है श्रेय ! मैं आपके इससे अनुभव  
परनालताको अपने द्वारपाले भासन करनेवाला एक वाहू । ऐसा  
शरीर विद्युत फुलाली—तब प्रस्तुति से संपर्कित हो जाए तो  
विद्वा अतिशय मुख्यी (मनुस्मृतिविद्या) हो जाय । मैं इसी  
कानोद्धारा अधिक दृढ़ता रहूँ । (इ क्राव : १.) अंत में इसने  
ठंडे हुए परनालतर्पणे निभाये हैं । १२ वटे द्वन्द्व इस अनुभव  
रखा था ।

‘ॐ सुवः संन्यस्तं मया’ ‘ॐ भूभुवः सुवः संन्यस्तं मया’॥  
 इन वाक्योंका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे हृदयमें सदाशिवका ध्यान करते हुए सावधान चित्तसे उच्चारण करे । तदनन्तर ‘अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा’ ( मेरी ओरसे सब प्राणियोंको अभयदान दिया गया )—ऐसा कहते हुए पूर्व दिशामें एक अङ्गलि जल लेकर छोड़े । इसके बाद शिवाके शेष बालोंको हाथसे उखाड़ डाले और यज्ञोपवीतको निकालकर जलके साथ हाथमें ले इस प्रकार कहे—‘ओं भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा’ यों कहकर उसका जलमें ही होम कर दे । फिर ‘ॐ भूः संन्यस्तं मया’ ‘ॐ भुवः संन्यस्तं मया’ ‘ॐ सुवः संन्यस्तं मया’—इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलको अभिमन्त्रित करके उसका आचमन करे । फिर जलाशयके किनारे आकर वस्त्र और कटिसूत्रको भूमिपर त्याग दे तथा उच्चर या पूर्वकी ओर मुँह करके सात पदसे कुछ अधिक चले । कुछ दूर जानेपर आचार्य उससे कहे, ‘ठहरो, ठहरो भगवन् ! लोकव्यवहारके लिये कौपीन और दण्ड स्वीकार करो ।’ यों कह आचार्य अपने हाथसे ही उसे कटिसूत्र और कौपीन देकर गैरुआ वस्त्र भी अर्पित करे । तत्पश्चात् संन्यासी जब उससे अपने शरीरको ढककर दो बार आचमन कर लेतब आचार्य उस शिष्यसे कहे—‘इन्द्रस्य वज्रोऽसि’ यह मन्त्र बोलकर दण्ड ग्रहण करो । तब वह इस मन्त्रको पढ़े और ‘सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्च्छः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारया ।—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए दण्डकी ग्रार्थना करके उसे हाथमें ले । ( तत्पश्चात् प्रणव या गायत्रीका उच्चारण करके कमण्डल ग्रहण करे । )

तदनन्तर भगवान् शिवके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए गुरुके निकट जा वह तीन बार पृथ्वीमें लोटकर दण्डवत्

\* मैंने भूलोकका संन्यास ( पूर्णतः त्याग ) कर दिया । मैंने भुवः ( अन्तरिक्ष ) लोकका परित्याग कर दिया तथा मैंने स्वर्गलोकका भी सर्वथा त्याग कर दिया । मैंने भूलोंक, भुवलोंक और स्वर्गलोक—इन तीनोंको भलीभांति त्याग दिया ।

† हे दण्ड ! तुम मेरे सदा ( सदायक ) हो, मेरा रक्षा करो । मेरे ओज़ ( प्राणशक्ति ) की रक्षा करो । तुम वही मेरे सखा हो, जो श्वरके शापमें क्वचके रूपमें रहते हो । तुमने शी वज्रस्त्रसे आधात करके वृत्तासुरका संहार किया है । तुम मेरे लिये कल्याणमय बनो । उसमें तो पाप हो, उसका निवारण करो ।

प्रणाम करे । उस समय वह अपने मनको पूर्णतया संयमें रखे । फिर धीरेसे उठकर प्रेमपूर्वक अपने गुरुकी ओर देखते हुए हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप खड़ा हो जाय । संलाप-दीक्षा-विषयक कर्म आरम्भ होनेके पहले ही शुद्ध गोवर लेकर आँखेले बराबर उसके गोले बना ले और सूखी किरणोंसे ही उन्हें सुखाये । फिर होम आरम्भ होनेपर उस गोलोंको होमाग्निके बीचमें ढाल दे । होम समाप्त होनेपर उन सबको संग्रह करके सुरक्षित रखे । तदनन्तर इण्ड-धारणके पश्चात् गुरु विरजामिजनित उस श्वेत भस्मको लेकर उसीको शिष्यके अङ्गोंमें लगाये अथवा उसे लगानेकी आशा दे । उसका क्रम इस प्रकार है—‘ॐ अग्निरिति भस्म चायुरिति भस्म जलमिति भस्म खलमिति भस्म व्योर्मिति भस्म सर्व॑ ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षु॑ष्टि’ इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे । तदनन्तर ईशानादि पाँच मन्त्रोद्घारा उस भस्मका शिष्यके अङ्गोंसे सर्वश करकर उसे मस्तकसे लेकर पैरोंतक सर्वाङ्गमें लगानेके लिये दे दे । शिष्य उस भस्मको विधिपूर्वक हाथमें लेकर ‘च्यायुषम०’ तथा ‘च्यम्बकम०†’ इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए ललाट आदि अङ्गोंमें क्रमशः त्रिपुण्ड्र धारण करे ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ शिष्य अपने हृदय-कमलमें विरजमान उभासहित भगवान् शंकरका भक्तियुक्त चित्तसे ध्यान करे । फिर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ रखकर उसके दाहिने कानमें शृणि, छन्द और देवतासहित प्रणवका उपदेश करे । इसके बाद कृपा करके प्रणवके अर्थका भी पोष कराये । श्रेष्ठ गुरुको चाहिये कि वह प्रणवके छः प्रकारके अर्थका ज्ञान कराते हुए उसके बारह भेदोंका उपदेश दे । तत्पश्चात् शिष्य दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर गुरुको साधाङ्ग प्रणाम करे और सदा उनके अधीन रहे, उनकी आशाके बिना दूसरा कोई कार्य न करे । गुरुकी आशासे शिष्य वेदान्तके तात्त्वके अनुसार सणुण-निर्गुण-भेदसे शिष्यके ज्ञानमें तत्पर रहे । गुरु अपने उसी शिष्यके द्वाय अवग

\* च्यायुषं जमदग्नेः कदयपस्य च्यायुषम् ।

यदेवेषु च्यायुषं तश्चोऽस्तु च्यायुषम् ॥  
 ( यजुर्वेद ३ । ६२ )

† च्यम्बकं यजामहे चुगान्यं पुष्टिवर्णनम् ।

उत्तरास्तमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मातृताम् ॥  
 ( यजुर्वेद ३ । ६० )

मनन और निदिध्यासनपूर्वक जपके अन्तमें प्रातःकालिक आदि नियमोंका अनुष्ठान करवाये । कैलासप्रस्तर नामक मण्डलमें शिवके द्वारा प्रतिपादित मार्गके अनुसार शिष्य वहीं रहकर शिवपूजन करे । यदि गुरुके आदेशके अनुसार वह प्रतिदिन वहीं रहकर मङ्गलमय देवता शिवकी पूजा करनेमें असमर्थ हो तो उनसे अर्धासहित स्फटिकमय शिवलिङ्ग प्रश्न कर ले और कहीं भी रहकर नित्य उसका पूजन किया करे । वह गुरुके निकट शपथ खाते

हुए इस तरह प्रतिज्ञा करे—‘मेरे प्राण चले जायें, यह अच्छा है । मेरा सिर काट लिया जाय, यह भी अच्छा है; परंतु मैं भगवान् चिलोचनकी पूजा किये बिना कदापि भोजन नहीं कर सकता ।’ ऐसा कहकर सुट्टि चित्तवाला शिष्य मनमें शिवकी भक्ति लिये गुरुके निकट तीन वार शपथ खाय और तभीसे मनमें उत्साह रखकर उत्तम भक्तिभावसे पञ्चावरण-पूजनकी पद्धतिके अनुसार प्रतिदिन महादेवजीकी पूजा करे । ( अध्याय १३ )

### प्रणवके अर्थोंका विवेचन

**वामदेवजी वोले—भगवन् ! घडानन ! सम्पूर्ण विज्ञान-**मय अमृतके सागर ! समस्त देवताओंके स्वामी महेश्वरके पुत्र ! प्रणतार्तिके भजन कार्तिकेय ! आपने कहा है कि प्रणवके छः प्रकारके अर्थोंका परिशान अभीष्ट वस्तुको देनेवाला है । यद्य ह्यः प्रकारके अर्थोंका ज्ञान क्या है ? प्रभो ! वे छः प्रकारके अर्थ कौन-कौनसे हैं और उनका परिशान क्या वस्तु है ? उनके द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु क्या है और उन अर्थोंका परिशान होनेपर कौन-सा फल मिलता है ? पर्वतीनन्दन ! मैंने जो-जो शब्दों पूछी हैं, उन सबका सम्बन्धप्रसेर वर्णन कीजिये ।

**सुव्रह्मण्य स्कन्द वोले—मुनिश्रेष्ठ !** तुमने जो कुछ पूछा है उसे आदरपूर्वक सुनो । समष्टि और व्यष्टिभावसे महेश्वरका परिशान ही प्रणवार्थका परिशान है । मैं इस विश्वयको पिसारके साथ कहता हूँ । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महेश्वर ! मेरे इस प्रवचनसे उन छः प्रकारके अर्थोंकी एकता-सा भी वेध होगा । पहल्य मन्त्ररूप अर्थ है, दूसरा यन्त्रभावित अर्थ है तीसरा देवताग्रोधक अर्थ है, चौथा प्रपञ्चरूप अर्थ है, पाँचवाँ अर्थ गुरुके स्वप्नको दिखानेवाला है और छठा अर्थ शिष्यके स्वरूपका परिचय देनेवाला है । इस प्रकार ये छः अर्थ दोषों गये । मुनिश्रेष्ठ ! उन छहों अर्थोंमें जो मन्त्ररूप अर्थ है उनको तुम्हें बताता हूँ । उसका ज्ञान होनेमात्रसे निष्पत्ति भरोसानी हो जाता है । प्रणवमें वेदोंने पाँच अक्षर रखें हैं । ‘एला आदिस्वर—अ’, दुसरा पाँचवाँ स्वर—‘उ’, तीसरा पाँचम पर्व पर्वग्रंथका अन्तिम अक्षर ‘म’, उसके बाद चौथा अक्षर दिन्दु और पाँचवाँ अक्षर नाद । इनके सिवा दूसरे अर्थ नहीं हैं । यह सभष्टिरूप वेदादि ( प्रणव ) कहा गया है । चौथा अक्षरोंकी समझितरूप है; विन्दुयुक्त जो चार अक्षर हैं, वे एवं अक्षरोंमें विस्तारपूर्वक प्रगत्यमें प्रतिष्ठित हैं ।

**विद्वन् !** अब यन्त्ररूप या यन्त्रभावित अर्थ सुनो । वह यन्त्र ही शिवलिङ्गरूपमें स्थित है । सबसे नीचे पीठ ( अर्धा ) लिखे । उसके ऊपर पहला स्वर अकार लिखे । उसके ऊपर उकार अङ्कित करे और उसके भी ऊपर पर्वग्रंथा अन्तिम अक्षर मकार लिखे । मकारके ऊपर अनुस्वार और उसके भी ऊपर अर्धचन्द्राकार नाद अङ्कित करे । इस तरह यन्त्रके पूर्ण ही जानेपर साधकका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होता है । इस प्रकार यन्त्र लिखकर उसे प्रणवसे ही वेष्टित करे । उस प्रणवसे ही प्रकट होनेवाले नादके द्वारा नादका अवसान समझे ।

मुने ! अब मैं देवतास्प तीसरे अर्थको बताऊँगा, जो सर्वत्र गूढ़ है । वामदेव ! तुम्हारे स्नेहवश भगवान् शंकरके द्वारा प्रतिपादित उस अर्थका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ । ‘सथोजातं प्रपञ्चामि’ यहाँसे आरम्भ करके ‘सद्गृशिद्योम्’ तक जोपाँच मन्त्र हैं, श्रुतिने प्रणवको इन सबका बाचक करा दे । इन्हें ब्रह्मस्पी पाँच सूक्ष्म देवता समझना चाहिये । इन्हींका शिवकी मूर्तिके रूपमें भी विस्तारपूर्वक वर्णन है । शिवसा बानक मन्त्र शिवमूर्तिका भी बाचक है; क्योंकि नूर्ति और नूर्तिमात्रमें अधिक भेद नहीं है । ‘ईशान मुकुर्येषतः’ इन स्तोमसे आरम्भ करके पहले इन मन्त्रोद्वारा विश्वके विश्वासा प्रतिग्रहन हिता जा चुका है । अब उनके पाँच सुखोला वर्णन सुनो । एकम मन्त्र ‘ईशानः सर्वविद्यानाम्’ को आदि मानकर दृश्ये लेकर उपरके ‘सथोजात’ मन्त्रके क्रममा: एक चक्रमें अङ्कुर दृश्य । किंतु ‘सथोजात’ से लेकर ‘ईशान’ मन्त्रके क्रममा: उनी चक्रमें अङ्कित करे । ये ही शंख भगवान् शिरके सिंच सुख दत्तये गये हैं । पुच्छसे लेकर नदीकृतहृषि के प्रदानम चार मन्त्र हैं, वे ही मन्त्रमें देवदेव चतुर्दशी रथम् प्रस्तुतियाँ हैं ।

‘ईशान’ मन्त्र सद्योजातादि पाँचों मन्त्रोंका समष्टिरूप है। मुने ! पुरुषसे लेकर सद्योजाततक जो चार मन्त्र हैं, वे ईशान देवके व्यष्टिरूप हैं।

इसे अनुग्रहमय चक्र कहते हैं। यही पञ्चार्थका कारण है। यह सूक्ष्म, निर्विकार, अनामय परब्रह्मस्वरूप है। अनुग्रह भी दो प्रकारका है। एक तो तिरोभाव आदि पाँच<sup>१</sup> कृत्योंके अन्तर्गत है, दूसरा जीवोंको कार्य-कारण आदिके बन्धनोंसे मुक्ति देनेमें समर्थ है। यह दोनों प्रकारका अनुग्रह सदाशिवका ही द्विविध कृत्य कहा गया है। मुने ! अनुग्रहमें भी सृष्टि आदि कृत्योंका योग होनेसे भगवान् शिवके पाँच कृत्य माने गये हैं। इन पाँचों कृत्योंमें भी सद्योजात आदि देवता प्रतिष्ठित बताये गये हैं। वे पाँचों परब्रह्मस्वरूप तथा सदा ही कल्याणदायक हैं। अनुग्रहमय चक्र शान्त्यतीति<sup>२</sup> कलारूप है। सदाशिवसे अधिष्ठित होनेके कारण उसे परम पद कहते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले संन्यासियोंको मिलने योग्य पद यही है। जो सदाशिवके उपासक हैं और जिनका चित्त प्रणवोपासनामें संलग्न है, उन्हें भी इसी पदकी प्राप्ति होती है। इसी पदको पाकर मुनीश्वरगण उन ब्रह्मरूपी महादेवजीके साथ प्रचुर दिव्य भोगोंका उपभोग करके महाप्रलयकालमें शिवकी समताको प्राप्त हो जाते हैं। वे मुक्त जीव फिर कभी संसारसागरमें नहीं गिरते।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।

( मुण्डक ३ । २ । ६ )

—इस सनातन श्रुतिने इसी अर्थका प्रतिपादन किया है।

शिवका ऐश्वर्य भी यह समष्टिरूप ही है। व्ययवैदिकी श्रुति भी कहती है कि वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेकी शक्ति सदाशिवमें ही बतायी गयी है। चमकाध्यायके पदसे यह सूचित होता है कि शिवसे बढ़कर दूसरे कोई पद नहीं है। ब्रह्मपञ्चकके विस्तारको ही प्रपञ्च कहते हैं। इन पाँच ब्रह्ममूर्तियोंसे ही निवृत्ति आदि पाँच कलाएँ हुई हैं। वे सब-की-सब सूक्ष्मभूतस्वरूपिणी होनेसे कारणरूपमें विख्यात हैं। उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले वामदेव। खूल रूपमें प्रकट जो यह जगत्-प्रपञ्च है, इसको जिसने पाँच स्त्री-द्वारा व्याप्त कर रखा है, वह ब्रह्म अपने उन पाँचों स्त्रीोंसे ब्रह्मपञ्चक नाम धारण करता है। मुनिश्रेष्ठ ! पुरुष, श्रोतृ, वाणी, शब्द और आकाश—इन पाँचोंको ब्रह्मने ईशानस्पते व्याप्त कर रखा है। मुनीश्वर ! प्रकृति, त्वचा, पाणि, सर्व और वायु—इन पाँचको ब्रह्मने ही पुरुषरूपसे व्याप्त कर रखा है। अहंकार, नेत्र, पैर, रूप और अग्नि—ये पाँच अपेर-रूपी ब्रह्मसे व्याप्त हैं। बुद्धि, रसना, पायु, रस और जल—ये वामदेवरूपी ब्रह्मसे नित्य व्याप्त रहते हैं। मन, नाड़िका उपस्थ, गन्ध और पृथिवी—ये पाँच सद्योजातरूपी ब्रह्मसे व्याप्त हैं। इस प्रकार यह जगत् पञ्चब्रह्मस्वरूप है। यन्त्ररूपे बताया गया जो शिववाच्क प्रणव है, वह नादपर्यन्त पाँचों वर्णोंका समष्टिरूप है तथा बिन्दुयुक्त जो चार वर्ण हैं वे प्रणवके व्यष्टिरूप हैं। शिवके उपदेश किये हुए मार्गसे उद्दृष्ट मन्त्राधिराज शिवरूपी प्रणवका पूर्वोक्त यन्त्ररूपसे चित्तन करना चाहिये। ( अध्याय १४ )

### शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपञ्च और जीवतत्त्वके विषयमें विशद विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्की अभिन्नताका प्रतिपादन

तदनन्तर उत्तम श्रेष्ठ पद्धतिका वर्णन करके सृष्टि, स्थिति और संहार—सवको शक्तिमान् शिवकी लीला बतलाते हुए वामदेवजीके पूछनेपर स्कन्दने कहा—मुने ! कर्मस्ति तत्त्वसे लेकर जो विस्तृत शास्त्रवाद है अर्थात् कर्म-सत्त्वके प्रतिपादक कर्मफलवादसे आरम्भ करके शास्त्रोंमें जो विविध निपयोंका विशद विवेचन है, वह गान प्रदान

करनेवाला है; अतः गानवान् पुरुषको विवेकपूर्वक इसका भवण करना चाहिये। तुमने जिन शिष्योंको उपदेश दिया है, उनमें कौन तुम्हारे समान है ? वे अधम शिष्य आज भी अन्यान् शास्त्रोंमें भटक रहे हैं। अनीश्वरवादी दर्शनोंके चक्रमें पड़कर मोहित हो रहे हैं। छः मुनियोंने उन्हें शाप दे रखा है; क्योंकि पहले वे शिवकी निन्दा किया करते थे। अतः

\* सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह—ये महेश्वरके पाँच कृत्य हैं।

<sup>१</sup> कलाएँ पाँच हैं—निवृत्तिकला, प्रतिष्ठाकला, विद्याकला, शान्तिकला तथा शान्त्यतीताकला।

उनकी वातें नहीं सुननी चाहिये; क्योंकि वे अन्यथावादी (शिव-शास्त्रके विपरीत वात करनेवाले) हैं। यहाँ पाँच\* श्रवणवार्ताएँ युक्त अनुमानके प्रयोगके लिये भी अवकाश है ही। उत्तम क्रतका पालन करनेवाले वामदेव ! जैसे धूमका दर्शन होनेते लेग अनुमानद्वारा पर्वतपर अग्निकी सत्ताका प्रतिपादन दर्ते हैं, उसी प्रकार इस प्रत्यक्ष प्रपञ्चके दर्शनरूप हेतुका अद्वितीय करके परमेश्वर परमात्माको जाना जा सकता है, इसमें संदर्भ नहीं है ।

यह विश्व स्त्री-पुरुषरूप है, ऐसा प्रत्यक्ष ही देखा जाता है। यह कोशलता जो शरीर है, उसमें आदिके तीन माताके भ्रंगसे उत्तम दुण है और अन्तिम तीन पिताके अंशसे—यह श्रुतिका कथन है। इस प्रकार सभी शरीरोंमें स्त्री-पुरुषधर्मावको जननेवाले लोग हैं। मुने। विद्वानोंने परमात्मामें भी स्त्री-पुरुषधर्मावको जाना है। श्रुति कहती है, परब्रह्म परमात्मा सत्, चित् और आनन्दरूप है। असत् प्रपञ्चको निवृत्त करनेवाला गृह ही सदृपु कहा जाता है। चित्-शब्दसे जड़ जगत्की निवृत्ति की जाती है। यद्यपि सत्-शब्द तीनों लिङ्गोंमें विद्यमान है तथापि यहाँ परब्रह्म परमात्माके वर्थमें पुँछिङ्ग सत्-शब्द-में ही ग्रहण करना चाहिये। वह सत् शब्द प्रकाशका

वाचक है। 'सन् प्रकाशः'—सन् शब्द स्पष्टल्पसे प्रकाशका वाचक है। परमात्मामें जो तत्त्वा या प्रकाशरूपता है, वह उसके पुरुषभावको सूचित करती है। ज्ञान शब्दका पर्यावरणात्मीजो चित्-शब्द है, वह ल्लीलिङ्ग है अर्थात् परमात्मामें चिद्रूपता उसके स्त्रीभावको सूचित करती है। प्रकाश और चित्—ये दोनों जगत्के कारणभावको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार सच्चिदात्मा परमेश्वर भी जब जगत्के कारणभावको प्राप्त होते हैं, तब उन एकमात्र परमात्मामें ही 'शिव'भाव और 'धाति'-भावका भेद किया जाता है। जब तेल और वृत्तीमें मलिनता होती है, तब उसके प्रकाशमें भी मलिनता आ जाती है। चिताकी आग आदिमें अशिवता और मलिनता सप्त देवी जाती है। अतः मलिनता आदि आरोग्यित वस्तु है, उसका निवर्तक होनेके कारण परमात्माके 'शिवत्व'का ही ध्रुतिके द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

जीवके आश्रित जो चिन्हक्षित है, वह सदा दुर्योग होती है। उसकी निवृत्तिके लिये ही परमात्मामें सार्वकालिक सर्वशक्तिमत्ता विद्यमान है। इन्द्रधर बल्लान् हैं, शक्तिमान् हैं—यह व्यवहार देखा जाता है। महामुने वामदेव। लोक और वेदमें भी सदा ही परमात्माकी शिवलृप्ता और शक्ति-लृप्ताका साक्षात्कार कराया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे निरन्तर आनन्द प्रकट रहता है, अतः मुने। उस आनन्दको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ही पापरहित मुनि शिवमें मन लगाकर निरामय शिव ( परम कल्याण एवं परमानन्द ) को प्राप्त हुए हैं। उपनिषदोंमें शिव और शक्तिको ही नरात्मा एवं ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म-ब्रह्मसे वृद्धि-पात्वपर्यात व्यापकता एवं सर्वात्मताका ही प्रतिपादन होता है। शम्भु नामक विग्रहमें वृद्धगत्व और वृद्धत्व ( व्याप्तता एवं विशालता ) नित्य विद्यमान है। सत्योजातदि पञ्चद्रवणमय शिवविग्रहमें विश्वकी प्रतीति ब्रह्म-ब्रह्मसे ही कही गयी है।

वामदेव ! 'हसुः' पदको उल्ट देनेसे भोजनम् १८ यमता  
है । उसमें प्रणवका प्राकृत्य कैसे होता है, वह तुम्हारे लेखद्य  
मैं बता रहा हूँ, साधान होकर तुला । 'भोजनम्' पदमें  
उकार और हकार नामक अडिनामें त्वाग देनेसे स्थूल 'अंगम्'  
यद्य वच रहता है जो चरमभाष्य तद्वद है । तत्तदापि  
मुनि कहते हैं कि उसे महानन्दकर अनन्त चारीर । उसमें  
जो सूक्ष्म महानन्द है उसका उद्धार ने तुम्हें रथ रहा है ।  
'हसुः' पदमें तुलन अंग है—१८ अ, च । इन छंटामें हैं व्या  
है, वह विद्वांश ( अनुत्तर ) और विद्वांश ( विद्वा ) है

साथ है। सकारके साथ जो 'अ' है, वह विसर्गसहित है; वह यदि सकारके साथ ही उठकर 'हं'के आदिमें चला जाय तो 'हंसः'के विपरीत 'सोऽहम्' यह महामन्त्र हो जायगा। इसमें जो सकार है, वह शिवका वाचक है अर्थात् शिव ही सकारके अर्थ माने गये हैं। शक्त्यात्मक शिव ही इस महामन्त्र-के वाच्यार्थ हैं; यह विद्वानोंका निर्णय है। गुरु जब शिष्यको इस महामन्त्रका उपदेश देते हैं, तब 'सोऽहम्' पदसे उसको शक्त्यात्मक शिवका ही बोध कराना अभीष्ट होता है। अर्थात् वह यह अनुभव करे कि 'मैं शक्त्यात्मक शिवरूप हूँ।' इस प्रकार जब यह महामन्त्र जीवपरक होता है अर्थात् जीवकी शिवरूपताका बोध कराता है, तब पशु (जीव) अपनेको शक्त्यात्मक एवं शिवका अंश जानकर शिवके साथ अपनी एकता सिद्ध हो जानेसे शिवकी समताका भागी हो जाता है।

अब श्रुतिके 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इस वाक्यमें जो 'प्रज्ञानम्' पद आया है, उसके अर्थको दिखाया जा रहा है। 'प्रज्ञान' शब्द 'चैतन्य'का पर्याय है, इसमें संशय नहीं है। मुने ! शिव-सूत्रमें यह कहा गया है कि 'चैतन्यम् आत्मा' अर्थात् आत्मा ( ब्रह्म या परमात्मा ) चैतन्यरूप है। चैतन्य-शब्दसे यह सूचित होता है कि जिसमें विश्वका सम्पूर्ण ज्ञान तथा स्वतन्त्रतापूर्वक जगत्के निर्माणकी क्रिया स्वभावतः विद्यमान है, उसीको आत्मा या परमात्मा कहा गया है। इस प्रकार मैंने यहाँ शिवसूत्रोंकी व्याख्या ही की है।

'ज्ञानं बन्धः' यह दूसरा शिवसूत्र है। इसमें पशुवर्ग ( जीवसमुदाय ) का लक्षण बताया गया है। इस लूपमें आदि पद 'ज्ञानम्' के द्वारा किंचिन्मात्र ज्ञान और क्रियाका होना ही जीवका लक्षण कहा गया है। यह ज्ञान और क्रिया पराशक्तिका प्रथम स्पन्दन है। कृपण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतर शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वानोंने 'स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च' जैसे इस श्रुतिके द्वारा इसी पराशक्तिका प्रसन्नतापूर्वक स्तवन

\* यह श्रुति श्वेताश्वतरोपनिषद् ( ६ । ८ ) की है। इसका पूरा पाठ इस प्रकार है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्वास्यपिक्ष्य दृश्यते ।  
परास्य शक्तिविविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च ॥

देह और इन्द्रियसे उनका है सम्बन्ध नहीं कोई।  
अधिक कहो, उनके सम भी तो दीख रहा न कही कोई ॥  
ज्ञानरूप, वलरूप, क्रियाप्रय उनकी पराशक्ति भारी।  
विविध रूपमें मुनी गयी है, स्वाभाविक उनमें सारी ॥

किया है। भगवान् शंकरकी तीन दृष्टियाँ मानी गयी हैं—ज्ञान, क्रिया और इच्छारूप। ये तीनों दृष्टियाँ जीवके मनमें स्थित हो इन्द्रियज्ञानगोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो सदा जानती और करती है। अतः यह दृष्टिरूप जीव आत्मा ( महेश्वर ) का स्वरूप ही है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है।

अब मैं जगत्प्रपञ्चके साथ प्रणवकी एकताका वेष करनेवाले प्रपञ्चार्थका वर्णन करूँगा। 'ओमितीदं सर्वम्' ( तैत्तिरीय १ । ८ । १ ) अर्थात् यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाल समस्त जगत् औंकार है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। इसे प्रणव और जगत्की एकता सूचित होती है। 'तत्सद्ग्वा' ( तैत्तिरीय २ । १ ) इस वाक्यसे आरम्भ करके तैत्तिरीय श्रुतिने संसारकी सृष्टिके क्रमका वर्णन किया है। वामदेव। उत्त श्रुतिका जो विवेकपूर्ण तात्पर्य है, उसे मैं तुम्हारे स्नेहयश वा रहा हूँ, मुनो ! शिव-शक्तिका संयोग ही परमात्मा है, यह ज्ञानी पुरुषोंका निश्चित मत है। शिवकी जो पराशक्ति है उससे चिच्छक्ति प्रकट होती है। चिच्छक्तिसे आनन्दशक्तिका प्रादुर्भाव होता है, आनन्दशक्तिसे इच्छाशक्तिका उत्तर हुआ है, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे पाँचर्ची क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। मुने ! इन्हींसे निवृत्ति आदि कलए उत्पन्न हुई है। चिच्छक्तिसे नाद और आनन्दशक्तिसे बिन्दुका प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्तिसे मकार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्तिसे पाँचर्चीं स्वर उकार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्तिसे अकारकी उत्पत्ति हुई है। मुनीश्वर ! इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रणवकी उत्पत्ति बतायी है।

अब ईशानादि पञ्च ब्रह्मकी उत्पत्तिका वर्णन मुनो ! शिवसे ईशान उत्पन्न हुए हैं, ईशानसे तत्पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है, तत्पुरुषसे अवोरका, अवोरसे वामदेवका और वामदेवसे सद्योजातका प्राकट्य हुआ है। इस आदि अंग प्रणवसे ही मूलभूत पाँच स्वर और तैतीस व्यञ्जनके लिये अड़तीस अक्षरोंका प्रादुर्भाव हुआ है। अब कलाओंमें उत्पत्तिका क्रम सुनो। ईशानसे शान्त्यतीताकला उत्पन्न हुई है। तत्पुरुषसे शान्तिकला, अवोरसे विद्याकला, वामदेवसे प्रतिष्ठाकला और सद्योजातसे निवृत्तिकलाकी उत्पत्ति हुई है। ईशानसे चिच्छक्तिद्वारा मियुनपञ्चकी उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि—इन द्वारा कूलयोंका हेतु होनेके कारण उसे पञ्चक कहते हैं। यदि इन

उत्तरद्यौं ज्ञानी मुनियोंने कही है। वाच्य-वाचकके सम्बन्धसे उनमें मिथुनत्वकी प्राप्ति हुई है। कला वर्णस्वरूप इस पञ्चममें भूतपञ्चकी गणना है। मुनिश्रेष्ठ ! आकाशादिके अप्रसे इन पाँचों मिथुनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पाँचवाँ मिथुन पृथ्वी है। इनमें आकाशसे लेकर पृथ्वीतकके भूतोंका जैसा स्वरूप बताया गया है, उसे सुनो। आकाशमें एकमात्र शब्द ही गुण है; वायुमें शब्द और तर्ह ही गुण हैं; अग्निमें शब्द, सर्व और रूप—इन तीन गुणोंकी प्रधानता है; जलमें शब्द, सर्व, रूप और रस—ये चार गुण माने गये हैं तथा पृथ्वी शब्द, सर्व, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे सम्बन्ध है। यही भूतोंका व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणोंद्वारा आकाशादि भूत वायु आदि परसर्व भूतोंमें किस प्रकार व्यापक हैं, यह दिखाया गया है। इनके विपरीत गन्धादि गुणोंके कमसे वे भूत पूर्वतीर्त्ती भूतोंसे व्याप्त हैं अर्थात् गन्ध गुणवाली पृथ्वी जलका और रसगुणवाला जल अग्निका व्याप्त है, इत्यादि रूपसे इनकी व्याप्तताको उपलब्धना चाहिये। पाँच भूतोंका यह विस्तार ही 'प्रपञ्च' उद्दलता है। सर्वसमष्टिका जो आत्मा है, उसीका नाम 'विराट्' है और पृथ्वीतत्त्वसे लेकर कमशः शिवतत्त्वतक जो तत्त्वोंका समुदाय है वही 'प्रद्वाण्ड' है। यह कमशः तत्त्वसमूहमें लीन रेता तुथा अन्ततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वरमें से लक्ष्योंप्राप्ति होता है और सृष्टिकालमें किस शक्तिद्वारा विष्णुसे निकलकर स्थूल प्रपञ्चके रूपमें प्रलयकालपर्यन्त गुणरूपक स्थित रहता है।

अग्नी इच्छासे संसारकी सृष्टिके लिये उद्यत हुए भैरवज्ञों जो प्रथम परिस्वर्ण है, उसे 'शिवतत्त्व' कहते हैं। वे इच्छाशक्तितत्त्व हैं; क्योंकि सम्पूर्ण कृत्योंमें इसीका अनुरूप होता है। मुनीश्वर ! ज्ञान और किया—इन दो अन्यत्रियोंमें जब ज्ञानसा आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्त्व अनुरूप गणिये; जब कियाशक्तिका उद्रेक हो, तब उसे महेश्वर-पर्याप्तता जादिये तथा जब ज्ञान और किया दोनों शक्तियाँ अनुरूप हों तब उसे शिवतत्त्वके उपलब्धना चाहिये। अन्यत्रियोंमें सर्वरूप स्वरूपेश्वरके अन्तर्नूत ही हैं; तथापि उनमें

जो भेद-बुद्धि होती है, उसका नाम माया-तत्त्व है। जब शिव अपने परम ऐश्वर्यशाली रूपको मायासे निष्ठीत करके सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम 'पुरुष' होता है। 'तत्सद्वा तदेवानुगविशद' ( उस शरीरको रचकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ ) इस श्रुतिने उसके इसी स्वरूपका प्रतिगादन किया है अथवा इसी तत्त्वका प्रतिगादन करतेके लिये उक्त श्रुतिका प्रादुर्भाव हुआ है। वही पुरुष मायासे मोहित होकर संपारी ( संपार-वन्धवमें वैथा हुआ ) पशु कहलाता है। शिवतत्त्वके ज्ञानपे शूद्र होनेके कारण उसकी बुद्धि नाना कर्मोंमें आसक्त हो मूड़ताको प्राप्त हो जाती है। वह जगत्को शिवसे अभिन्न नहीं जानता तथा आनेको भी शिवसे भिन्न ही समझता है। प्रभो ! यदि शिवसे आगती तथा जगत्की अभिन्नताका वैध हो जाय तो इन पशु ( जीव ) को मोहका वन्धन न प्राप्त हो। जेवे इन्द्रजाल-विद्याके ज्ञाता ( वाजीगर ) को अग्नी रची हुई अद्भुत वस्तुओंके विषयमें मोहया भ्रम नहीं होता है, उसी प्रकार ज्ञानयोगीको भी नहीं होता। गुरुके उपरेयद्वारा अग्ने ऐश्वर्यसा वैध प्राप्त हो जानेपर वह चिशनन्दधन शिवरूप ही हो जाता है।

शिवकी पाँच शक्तियाँ हैं—१—सर्वकर्तृत्वरूपा, २—परंतत्त्वरूपा, ३—पूर्णत्वरूपा, ४—नित्यत्वरूपा और ५—ज्ञानहस्तरूपा। जीवकी पाँच काङ्गे हैं—१ कथा, २ विद्या, ३ राग, ४ काल और ५ निपति। इन्हें कथापञ्चक कहते हैं। जो यहाँ पाँच तत्त्वोंके रूपमें प्रकट होती है, उसका नाम 'कला' है। जो कुछ-कुछ कर्तृत्वमें हेतु वनार्ह है और कुछ तत्त्वां गाधन होती है, उस कलाका नाम 'विद्या' है। जो विषयोंमें आगति पैदा करानेवाली है, उन कलाका नाम 'राग' है। जो भावप्रदायों और प्रकाशोंका भासनात्मकलासे कमशः भ्राण्डेश्वर हेतुर सम्पूर्ण भूतोंका आदि कला होता है, वही 'काल' है। यह योग कर्तव्य है और यह नहीं है—इन प्रकार निमित्तवान् चरिताद्यों जो विमुक्ती शक्ति है, उसका नाम 'निपति' है। उपर्युक्त त्रितीये जीवका पक्ष नहीं होता है। ये गांवों ती वैष्णव वर्णका आच्छादित कलानेवाले भावरम हैं। इनमें वायुदत्तगुरु के गये हैं। इनके निरालेहे विष्णु अवतार ग्रामांको अवश्यकता है। ( अन्तः ११-१२ )

## यहावाक्योंके अर्थपर विचार तथा संन्यासियोंके योगपट्टका प्रकार

स्कन्धजी कहते हैं—मुने ! अब महावाक्य प्रस्तुत किये जाते हैं—

- १—प्रज्ञानं ब्रह्मा ( ऐतरेय ३ । ३ तथा आत्मप्र० १ ),
- २—अहं ब्रह्मास्मि ( बृहदारण्य० १ । ४ । १० ),
- ३—तत्त्वमसि ( छा० ३० ख० ८ से १६ तक ),
- ४—अयमात्मा ब्रह्मा ( माण्डूक्य० २; बृह० २ । ५ । १९ ),
- ५—ईशा वास्तुमिदं सर्वम् ( ईशा० १ ),
- ६—प्राणोऽहम्सि ( कौची० ३ ),
- ७—प्रज्ञानात्मा ( कौची० ३ ),
- ८—यदेह तदमुत्र तदन्विह ( कठ० २ । १ । १० ),
- ९—अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ( केन० १ । ३ ),
- १०—एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ( बृह० ३ । ७ । ३-२३ ),
- ११—स यश्चार्यं पुरुषो यश्चासावादित्ये स एकः;

( तैत्तिरीय० २ । ८ ),

- १२—अहमस्मि परं ब्रह्मा परापरपरापरम् ।
- १३—वेदशास्त्रगुरुणां तु स्वयमानन्दलक्षणम् ।
- १४—सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः ।
- १५—तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि,
- १६—अपां च प्राणोऽहमस्मि तेजसश्चप्राणोऽहमस्मि,
- १७—वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि,
- १८—त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि,
- १९—सर्वोऽहं सर्वात्मको संसारी यदभूतं यच्च भव्यं यद्वत्तमानं सर्वात्मकत्वादद्वितीयोऽहम्,
- २०—सर्वं स्वलिंदं ब्रह्मा ( छान्दोग्यो० ३ । १४ । २ )
- २१—सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम् ।
- २२—योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्मि ॥

\* इन वाक्योंका साधारण अर्थ यों समझना चाहिये—१—ब्रह्म चलृष्ट शानस्वरूप अथवा चैतन्यरूप है । २—वह ब्रह्म मैं हूँ । ३—वह ब्रह्म तू है । ४—यह आत्मा ब्रह्म है । ५—यह सब इश्वरसे व्याप्त है । ६—मैं प्राण हूँ । ७—प्रशानस्वरूप हूँ । ८—जो परमब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ ( परलोकमें ) भी है; जो वहाँ है, वही यहाँ ( इस लोकमें ) भी है । ९—वह ब्रह्म विदित ( शत वस्तुओं ) से भिन्न है और अविदित ( अशत ) से भी ऊपर । है १०—वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । ११—वह जो यह पुरुषमें है और वह जो यह आदित्यमें है, एक ही है । १२—मैं परापरस्वरूप परत्पर परम्य हूँ । १३—वेदों, शास्त्रों और गुरुजनोंके वचनोंसे

इस प्रकार सर्वत्र चित्तन करे । अब इन महावाक्योंका भावार्थ कहते हैं—‘प्रज्ञानं ब्रह्म’का बाक्यार्थ पहले ही समझा का जा चुका है । ( अब ‘अहं ब्रह्मास्मि’का अर्थ बताया जाता है । ) शक्तिस्वरूप अथवा शक्तियुक्त परमेश्वर ही ‘अहम्’ पदके अर्थभूत हैं । ‘अकार’ सब वर्णोंका अग्रगण्य, परम प्रकाश शिवरूप है । ‘हकार’ व्योमस्वरूप होनेके कारण उसका शक्तिस्पर्शे वर्णन किया गया है । शिव और शक्तिके संयोगसे सदा आनन्द उदित होता है । ‘मकार’ उसी आनन्दका वोधक है । ‘ब्रह्म’ शब्दसे शिव-शक्तिकी सर्वरूपता स्पष्ट ही सूचित होती है । पहले ही इस वातका उपदेश किया गया है कि वह शक्तिमत् परमेश्वर मैं हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिये । ( अब तत्त्वमसि का अर्थ कहते हैं—→ ) ‘तत्त्वमसि’ इस वाक्यमें तत्पदका वही अर्थ है, जो ‘सोऽहमस्मि’में सः पदका अर्थ बताया गया है अर्थात् तत्पद शक्त्यात्मक परमेश्वरका ही वाचक है; अन्यथा ‘सोऽहम्’ इस वाक्यमें विपरीत अर्थकी भावना हो सकती है । क्योंकि अहम्-पद पुँछिङ्ग है, अतः ‘सः’के साथ उसका अन्य ही जायगा; परंतु तत् पद न पुंसक है और ‘त्वम्’ पुँछिङ्ग, अतः परस्परविरोधी लिङ्ग होनेके कारण उन दोनोंमें अन्यथ नहीं हो सकता । जब दोनोंका अर्थ ‘शक्तिमान् परमेश्वर’ होगा, तब अर्थमें समानलिङ्गता होनेसे अन्यथमें अनुपर्याप्ति नहीं होगी । यदि ऐसा न माना जाय तो स्त्री-पुरुषरूप जगत्का कारण भी किसी और ही प्रकारका होगा । इसलिये ‘सोऽहमस्मि’का ‘सः’ और ‘तत्त्वमसि’का ‘तत्’—ये दोनों समानार्थक हैं । इन महावाक्योंके उपदेशसे एक ही अर्थकी भावनाका विधान है ।

( अब ‘अयमात्मा ब्रह्म’का अर्थ बताया जाता है—) ‘अयमात्मा ब्रह्म’ इस वाक्यमें ‘अयम्’ और ‘आत्मा’—ये दोनों पद पुँछिङ्गरूप हैं । अतः यहाँ अन्यथमें वाधा नहीं है । ‘अयम्’

स्वयं ही हृदयमें आनन्दस्वरूप ब्रह्मका अनुभव होने लगता है । १४—जो सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित है, वही ब्रह्म मैं हूँ—इसमें संदर्भ नहीं है । १५—मैं तत्त्वका प्राण हूँ, पृथ्वीका प्राण हूँ । १६—जलका प्राण हूँ, तेजका प्राण हूँ । १७—वायुका प्राण हूँ, आद्युका प्राण हूँ । १८—मैं त्रिगुणका प्राण हूँ । १९—मैं सब हूँ, सर्वल हूँ, संसारी जीवात्मा हूँ; जो भूत, वर्तमान और भवित्व है, वह स मेरा ही स्वरूप होनेके कारण मैं अद्वितीय परमात्मा हूँ । २०—मैं सब निश्चय ही ब्रह्म है । २१—मैं सर्वरूप हूँ, मुक्त हूँ । २२—मैं वह हूँ, वह मैं हूँ । मैं वह हूँ और वह मैं हूँ ।

एकिमान् परमेश्वररूप आत्मा ब्रह्म है—’ यह इस वाक्यका लार्य है। (अब ‘इशा वास्मिदं सर्वम्’ का भावार्थ वता रहे हैं) परमेश्वरसे स्थणीय होनेके कारण यह सम्पूर्ण जगत् उनसे व्याप्त है। (अब ‘प्राणोऽस्मि’ ‘प्रश्नानात्मा’ और ‘भद्रेव तदमुत्र०’ इन वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है) मैं प्रज्ञानस्वरूप प्राण हूँ। यहाँ ग्राण-शब्द परमेश्वरका नैवचक है। जो यहाँ है, वह वहाँ है—ऐसा चिन्तन करे। यहाँ वत्, तत्का अर्थ क्रमशः यः और सः है अर्थात् जो आत्मा यहाँ है, वह परमात्मा वहाँ है—ऐसा सिद्धान्तपक्षका भलम्भन करनेवाले विद्वानोंने कहा है। उपर्युक्त वाक्यमें ‘अदमुत्र तदन्वित०’ इस वाक्यांशका भाव यह है कि ‘योऽसुत्र उद्द्वितीयता’ अर्थात् जो परमात्मा वहाँ परलोकमें स्थित है, उन्हीं यहाँ (इस लोकमें) भी स्थित है। इस प्रकार विद्वानोंको इन्हें समान ही परमपुरुष परमात्मारूप अर्थ यहाँ अभीष्ट है।

(अब ‘अन्यदेव तद्विदितादयो अविदितादधि’ इस वाक्यपर विचार करते हैं—) मुने ! ‘अन्यदेव तद्विदितादयो अविदितादधि’ इस वाक्यमें जिस प्रकार फलकी भी विपरीतताभी भायना होती है, उसे यहाँ वताता हूँ; मुनो। ‘विदितात् ५८ पद ‘अन्यथाविदितात्’के अर्थमें प्रवृत्त हो सकता है। वह विदितसे मिल्न है अर्थात् जो असत्यरूपसे शात है, उससे मिल रहा है। इसी प्रकार जो वयावत् रूपसे विदित नहीं है, उससे भी छूट है। इस कथनसे यह निश्चित होता है कि मुक्तिरूप एवं सिद्धिके लिये कोई और ही तत्त्व है, जो विदिताविदितसे नहीं है। परन्तु जो आत्मा है, वह सर्वरूप है, वह किसीसे भय नहीं हो सकता। अतः आत्मा या ब्रह्म आदि पद पूर्ववत् असत्यरूपसे विदितके ही वीधक है, यह मानना चाहिये।

(अब ‘एत त आत्मा०’ तथा ‘यथायं पुरुषे’ इन दो अन्तिमेव अर्थपर विचार किया जाता है—) यह तुम्हारा अन्तर्वार्तामी अन्तर० हो सकते ही असूत्स्वरूप शिव है। यह जो पुरुषमें रूप हो वही सूर्यमें भी स्थित है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो पुरुषमें है, वही आदित्यमें है। इन दोनोंमें पृथक्ता नहीं है। उसका एक ही है। उसकी सर्वरूप कहा गया है। (अब अधिकर—इन दो उपाधियोंसे युक्त जो अर्थ किया जाता है) यह अन्तिम अवस्था है। उसका नाम शम्भुनाथको सर्व भूतियों से लब्ध होती है। ‘हिरण्यवाहये नमः’ इसमें जो बाहु दृष्टि है वह अन्तिम उपलक्षण है। अन्यथा उसे अन्तिम रूप दिया भी लालसे तमन्न नहीं होता। क्योंकि उसमें जो यह भुवि है—‘य एषोऽन्तरादित्ये

हिरण्यमः पुरुषो द्वयते हिरण्यस्मशुहिरण्यकेश आप्णत्वात् सर्वं एव सुवर्णः। (छान्दोग्य० १ । ६ । ६) इसके द्वारा आदित्यमण्डलान्तर्गत पुरुषको सुवर्णमय दाढ़ी-भूद्योवाला, सुवर्ण-सदृश केशोवाला तथा नखसे लेकर केशायभागपर्यन्त साह-का-सारा सुवर्णमय—प्रकाशमय ही वताया गया है। अतः वह हिरण्यमय पुरुष साक्षात् शाम्भु ही है।

अब ‘अहमस्मि परं वह्य परापरात्परम्’ इस वाक्यका लात्पर्य वताता हूँ, सुनो। ‘अहम्’ पदके अर्थभूत सत्यात्मा शिव ही वताये गये हैं। वे ही शिव मैं हूँ, ऐसी वाक्यार्थोजना अवश्य होती है। उन्हेंको सबसे उत्कृष्ट और सर्वस्वरूप परद्वय कहा गया है। उसके तीन भेद हैं—पर, अपर तथा परात्पर। सद्र, ब्रह्म और विष्णु—ये तीन देवता श्रुतिने ही वताये हैं। ये ही क्रमशः पर, अपर तथा परात्मरूप हैं। इन तीनोंसे भी जो श्रेष्ठ देवता है, वे शाम्भु ‘परद्वय’ शब्दसे कहे गये हैं।

वेदों, शास्त्रों और गुरुके वचनोंके अन्याससे शिष्यके हृदयमें स्वयं ही पूर्णनिन्दमय शाम्भुका प्रादुर्भाव होता है। सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान शाम्भु ब्रह्मरूप ही है। वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। मैं शिव ही सम्पूर्ण तत्त्व-समुदायका प्राण हूँ।

ऐसा कहफकर स्कन्दजी फिर कहते हैं—मुने ! मैं शिव आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और दिवतत्त्व—इन तीनोंका प्राण हूँ। पृथिवी आदिका भी प्राण हूँ। पृथ्वी आदिके गुण-तकका ग्रहण होनेसे यह समझ लो कि यहाँ नारे अल्पतत्त्व गृहीत हो गये। फिर सदका ग्रहण विद्यातत्त्व और दिवतत्त्व भी ग्रहण करता है। इन मन तत्त्वोंमें प्राण हूँ। मैं सर्व हूँ, सर्वार्थमक हूँ, जीवका भी अन्तर्वार्तामी होनेसे उसका र्घु जीव (आत्मा) हूँ। जो भूत, वर्तमान और भवितव्य है, वह सब मेरा रूप होनेके कारण मैं ही हूँ। अर्थोंसे दद्रः (उब कुछ लद ही है)—इह श्रुति गत्वा दिवदे मुख्यसे प्रकट हुई है। अतः शिव ही सर्वत्पर है; उक्तविद्वान् का इन समस्त उत्कृष्ट गुणोंसे नित्य गम्यता है। अन्य द्वे देवपरायेके भेदसे रहित होनेके कारण मैं ही अद्वितीय गम्य हूँ। ‘सर्वं स्वल्पिदं भग्न’ इह कामता अर्थ नहीं रहता जूँका है। मैं भवत्व लुटेके कामना दूरी हूँ। शिवसुकृती मैं ही हूँ। उस (जीव) मौरी इन्होंने दुष्क दैत्य मैंसे नक्षत्र ग्रात देते हैं। जो कर्मात्मक गम्य है, वहाँ मैं हूँ। मैं दिव स्व हूँ। नमदेव ! इन प्रकार उम्मीद गम्योंके भर्त गम्यता

शिव ही बताये गये हैं॥। ईशावास्योपनिषद् की श्रुतिके दो वाक्योदारा प्रतिपादित अर्थ साक्षात् शिवकी एकताका ज्ञान प्रदान करनेवाला है। गुरुको चाहिये कि शिष्योंको इसका आदरपूर्वक उपदेश करे।

गुरुको उचित है कि वे आधारसहित शङ्खको लेकर अन्नमन्त्र (फट्) से तथा भस्मद्वारा उसकी शुद्धि करके उसे अपने सामने चौकोर मण्डलमें स्थापित करे। फिर ओंकारका उच्चारण करके गन्ध आदिके द्वारा उस शङ्खकी पूजा करे। उसमें वल्ल लपेट दे और सुगन्धित जल भरकर प्रणवका उच्चारण करते हुए उसका पूजन करे। तत्पश्चात् सात बार प्रणवके द्वारा फिर उस शङ्खको अभिमन्त्रित करके शिष्यसे कहे—‘हे शिष्य ! जो थोड़ा-सा भी अन्तर करता है—मेदभाव रखता है, वह भयका भागी होता है। यह श्रुतिका सिद्धान्त बताया गया, इसलिये तुम अपने चित्तको स्थिर करके निर्भय हो जाओ।’। ऐसा कहकर गुरु स्वयं महादेवजीका ध्यान करते हुए उन्हीं के रूपमें शिष्यका अर्चन करे। शिष्यके आसनकी पूजा करके उसमें शिवके आसन और शिवकी मूर्तिकी भावना करे। फिर सिरसे पैरतक ‘सद्योजातादि’ पाँच मन्त्रोंका न्यास करके मस्तक, मुख और कलाओंके मेदसे प्रणवकी कलाओंका भी न्यास करे। शिष्यके शरीरमें अङ्गतीस मन्त्ररूपा प्रणवकी कलाओंका न्यास करके उसके मस्तकपर शिवका आवाहन करे। तत्पश्चात् स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे। फिर अङ्गन्यास करके आसनपूर्वक घोड़श उपचारोंकी कल्पना करे। खीरका नैवेद्य

\* तत्त्वयोश्चासम्यहं प्राणः सर्वः सर्वात्मको ज्ञाहम् ।  
जीवस्य चात्मर्याभिवाज्जीवोऽहं तत्य सर्वदा ॥  
यद् भूतं यत्र भव्यं यद् भविष्यत् सर्वमेव च ।  
मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि ॥  
श्रुतिराहं मुने सा हि साक्षाच्छिवमुखोद्भाता ।  
सर्वात्मा परमैरभिर्युजैनित्यसमन्वयात् ॥  
स्वसाद् परामविरहाददितीयोऽहमेव हि ।  
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः ॥  
पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्तियमुल्लोऽहमेव हि ।  
पद्मो मत्प्रसादेन मुल्लं मद्रावमाश्रितः ॥  
योऽस्ती सर्वात्मकः शम्भुस्सोऽहं हंसः शिवोऽस्म्यहम् ।  
इति वै सर्वाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ॥  
( शि० पु० कौ० सं० १९ । २६—३१ )

† यस्त्वन्तरं किंचिदपि कुरुते इत्यति भोगिभाक् ।  
इत्याह श्रुतिसत्तत्वं इष्टात्मा गतभीर्भव ॥  
( शि० पु० कौ० सं० १९ । ३५-३६ )

अर्पण करके ‘ओं स्वाहा’ का उच्चारण करे। कुला और आचम्न कराये। अर्ध आदि देकर क्रमशः धूप-दीपादि समर्पित करे। शिवके आठ नामोंसे पूजन करके वेदोंके पारंगत ग्राहणोंके साथ ‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’ इत्यादि ब्रह्मानन्दबह्यीके मनोऽन्ते तथा ‘भृगुवै वारुणिः’ इत्यादि भृगुवल्हीके मन्त्रोंको पढ़े। तत्पश्चात् ‘यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्’—( महानारा० १० । ३ ) से लेकर ‘तत्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेशः’ ( महानारा० १० । ८ ) तक महानारायणोपनिषद् के मन्त्रोऽन्ते पाठ करे। इसके बाद शिष्यके सामने कहार आदिकी वन्मे हुई माला लेकर खड़े हो गुरु शिवनिर्मित पाञ्चास्तिक शाखके सिद्धिस्कन्धका धीरे-धीरे जप करे। अनुकूल चित्तसे ‘पूर्ण-ऽहम्’ इस मन्त्रतत्काला जप करके गुरु उस मालाको शिष्यके कण्ठमें पहना दे। तदनन्तर ललाटमें तिलक लगाकर सम्प्रदाय-के अनुसार उसके सर्वाङ्गमें विधिवत् चन्दनका लेप कराये। तत्पश्चात् गुरु प्रसन्नतापूर्वक श्रीपादयुक्त नाम देकर शिष्यके छत्र और चरणपादुका अर्पित करे। उसे व्याख्यान देने तथा आवश्यक कर्म आदिके लिये गुर्वासन ग्रहण करनेका अधिकार दे। फिर गुरु अपने उस शिवस्त्री शिष्यपर अनुग्रह करके कहे—‘तुम सदा समाधिस्थ रहकर मैं शिव हूँ’ इस प्रकारभी भावना करते रहो।’ यो कहकर वह स्वयं शिवको नमस्कार करें। उस समय शिष्य उठकर गुरुको नमस्कार करे। अने गुरुके गुस्को और उनके शिष्योंको भी मस्तक झुकाये।

इस प्रकार नमस्कार करके सुशील शिष्य जब मौन और विनीतमावसे गुरुके समीप खड़ा हो, तब गुरु स्वयं उसे इस प्रकार उपदेश दे—‘वेदा ! आजसे तुम समस्त लोकोंपर अनुग्रह करते रहो। यदि कोई शिष्य होनेके लिये आये तो पहले उसकी परीक्षा कर लो, फिर शास्त्रविधिके अनुसार उसे शिष्य बनाओ। राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका चिन्तन करते रहो। श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंमें सङ्ग करो, दूसरोंका नहीं। प्राणोंपर संकट आ जाय तो भै शिवका पूजन किये विना कभी भोजन न करो। गुरुभक्ति आश्रय ले सुखी रहो, मुखी रहो।’॥

\* रागादिदोषान् संत्यज्य शिवध्यानपरो भव ।  
सत्सम्प्रदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः ॥  
अनन्यचर्चं शिवं जातु मा भुड्द्याप्नासंक्षयम् ।  
गुरुभक्ति समाधाय सुखो भव मुखी भव ॥  
( शि० पु० कौ० सं० १९ । ५३-५४ )

मुनीश्वर वामदेव ! तुम्हारे स्नेहवश अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी मैंने यह योगपद्मका प्रकार तुम्हें बताया है । ऐसा

कहकर स्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके और और स्नानविधिका वर्णन किया । (अध्याय १७-१९)

### यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन

वामदेवजी बोले—जो मुक्त यति हैं, उनके शरीरका दाढ़कर्म नहीं होता । मरनेपर उनके शरीरको गाङ्गा दिया जाता है। यह मैंने सुना है। भेरे गुरु कार्तिकेय ! आप प्रसन्नतापूर्वक यतियोंके उस अन्त्येष्टिकर्मका मुक्तसे वर्णन कीजिये; क्योंकि तीनों योकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इस विषयका वर्णन करनेवाला नहीं है। भगवन् ! शंकरनन्दन ! जो पूर्ण परव्रह्ममें अहंभावका आथय ले देहपञ्चरसे मुक्त हो गये हैं तथा जो उग्रानके मार्गसे शरीरवन्धनसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त हुए हैं, उनकी गतिमें क्या अन्तर है—यह बताइये । प्रभो ! मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये अच्छी तरह विचार करके प्रश्नतापूर्वक मुक्तसे इस विषयका वर्णन कीजिये ।

स्कन्दने कहा—जो कोई यति समाधिस्थ हो शिवके नित्यगूर्वक अपने शरीरका परित्याग करता है, वह यदि महान् थे तो परिषुण शिवल्प हो जाता है; किंतु यदि कोई श्रीपतिनित्त होनेके कारण समाधिलाभ नहीं कर पाता तो उसके लिये उपाय बताता हूँ, सावधान होकर सुनो । वेदान्त-ग्रन्थके वाक्योंसे जो शाता, ज्ञान और ज्येय—इन तीन पदार्थों-में परिशेष होता है, उसे गुरुके मुखसे सुनकर यति यम-गिरियादिला शोगका अभ्यास करे । उसे करते हुए वह भली-भौंपि ध्येय ध्यानमें तत्पर रहे । मुने ! उसे नित्य नियमपूर्वक प्रत्यरोक्ष जा और अर्थनित्तनमें मनको लगाये रखना चाहिये ।

ऐ ! यदि देहमी दुर्वलताके कारण धीरता धारण करनेमें अनन्त शति निष्कामभावसे शिवका स्वरण करके अपने जीर्ण शरीरोंवाग दे तो भगवन् सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दीके नें हुए विस्मात् पाँच आतिवाहिक देवता आते हैं । उनमेंसे पाँचोंसे अभिमानी, कोई च्योतिःपुजास्वल्प, कोई दिग्भिमानी, कोई शुद्धशम्भिमानी और कोई उत्तरायणका अभिमानी रेखा है । ये पाँचोंसे सब प्रणियोंपर अनुग्रह करनेमें हीरे हैं । इनी तरह धूमाभिमानी, तमका अभिमानी, चंद्री अभिमानी, शुभारक्षक अभिमानी और दक्षिणायनका अभिमानी—सब निलक्षण पाँच होते हैं । ये पाँचों द्विष्ठात् द्विष्ठात् द्विष्ठात् भविमानी प्रसिद्ध हैं । महानुने वामदेव ! अब कैसे इस देवताओंसे मुक्तिका वर्णन हुन्जे । कर्मके अनुग्रहमें इस पाँचोंवापर देवता उनके पुनर्वद्वरा स्वर्ग-

लोकको जाते हैं और वहाँ यथोक्त भोगोंका उपभोग करके वे जीव पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मनुष्यलोकमें आते तथा पूर्वतः जन्म ग्रहण करते हैं ।

इनके सिवा जो उत्तर मार्गके पाँच देवता हैं, वे भूतलसे लेकर ऊर्ध्वलोकतकके मार्गको पाँच भागोंमें विभक्त करके यतिको साथ ले क्रमवाः अग्नि आदिके मार्गमें होते हुए उसे सदाशिवके धाममें पहुँचाते हैं । वहाँ देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम करके लोकानुग्रहके कर्ममें ही लगाये गये वे अनुग्रहाकार देवता उन सदाशिवके पीछे खड़े हो जाते हैं । यतिको आया देख देवाधिदेव सदाशिव यदि वह विरक्त हो तो उसे महामन्त्रके तात्त्वका उपदेश दे गणपतिके पदपर अभिप्रिक्त करके अपने ही समान शरीर देते हैं । इस प्रकार सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान् शंकर उपर अनुग्रह करते हैं । उसे अनुग्रहीत करके निश्चल समाधि देते हैं । अपने प्रति दास्यभावकी फलस्वल्पा तथा सूर्य आदिके कार्य करनेकी शक्ति-स्पा ऐसी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, जो कहीं अपवद नहीं होतीं । साथ ही वे जगद्गुरु शंकर उस यतिको वह परम मुक्ति देते हैं, जो ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर भी पुनर्गृह्णित चक्रसे दूर रहती है । अतः यही समिग्रान् सम्भूर्ग एवं यति-सुक्त पद है और यही मोक्षका राजमार्ग है, ऐसा वेदान्त-ग्रन्थ-का निश्चय है ।

जिस समय यति मरणाम्बन हो शरीरसे निश्चिन्त हो जाए, उस समय उस श्रेष्ठ सम्प्रदायनले दूसरे यति अनुद्वत्तानी भावना ले उनके चारों ओर खड़े हो जाते । वे सब यही क्रमवाः प्रणव आदि वाक्योंका उपदेश दे उनके तात्त्वके सावधानी और प्रसन्नताके साथ सुदृढ़ वर्णन करे तभ्य तत्क उनके प्राणोंका लग न हो जाय तदत्थ निर्मुक वर्ण-च्योतिःस्वल्प तदाशिवता उसे निलक्षण भवते दाइ रहे । तब दक्षिणोंका दर्शन सम्प्रदायने नहीं किया जाता । संक्षेपी सब दक्षिण वर्ण वर्ण भगवान् विवर व्याप्त ग्रहण करते हैं । इनके दक्षिणका दर्शन द्वारा तर्ह उनकी दुर्गति नहीं होती । ग्रहणके दक्षिणोंका दर्शन द्वारा दर्शन दक्षिण दर्शन नहीं होता । उनके दक्षिणोंको

लोग अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। इसलिये उस दोषका परिहार करनेके लिये शान्तिका विधान बताया जाता है। उस समय 'नम इरिष्याय' से लेकर 'नम अमीवकेभ्यः' तकके मन्त्रका विनीतचित्त होकर जप करे। फिर अन्तमें ओंकारका जप करते हुए मिट्टीसे देवयजनकी॥ पूर्ति करे। मुनीश्वर ! ऐसा करनेसे उस दोषकी शान्ति हो जाती है।

( अब संन्यासीके शब्दके संस्कारकी विधि बताते हैं ) पुत्र या शिष्य आदिको चाहिये कि यतिके शरीरका यथोचित रीतिसे उत्तम संस्कार करे। ब्रह्मन् ! मैं कृपापूर्वक संस्कारकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। पहले यतिके शरीरको गुद्ध जलसे नहलाकर पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे। पूजनके समय श्रीरुद्रसम्बन्धी चमकाध्याय और नमकाध्यायका पाठ करके रुद्रसूक्तका उच्चारण करे। उसके आगे शङ्खकी स्थापना करके शङ्खस्थ जलसे यतिके शरीरका अभिषेक करे। फिरपर पुष्प रखकर प्रणवद्वारा उसका भार्जन करे। पहलेके कौपीन आदिको हटाकर दूसरे नवीन कौपीन आदि धारण कराये। फिर विधिपूर्वक उसके सारे अङ्गोंमें भस्म लगाये। विधिवत् त्रिपुण्ड्र लगाकर चन्दनद्वारा तिलक करे। फिर फूलों और मालाओंसे उसके शरीरको अलंकृत करे। छाती, कण्ठ, मस्तक, बाँह, कलाई और कानोंमें क्रमशः रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मन्त्रोच्चारणपूर्वक धारण कराकर उन सब अङ्गोंको सुशोभित करे। फिर धूप देकर उस शरीरको उठाये और विमानके ऊपर रखकर ईशानादि पञ्चब्रह्मय रमणीय रथपर स्थापित करे। आदिमें ओंकारसे युक्त पाँच सद्योजातादि ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके सुगन्धित पुष्पों और मालाओंसे उस रथको सुसज्जित करे। फिर नृत्य, चादू तथा ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणकी घनिके साथ ग्रामकी प्रदक्षिणा करते हुए उस प्रेतको दाहर ले जाय।

तदनन्तर साथ गये हुए वे सब यति गाँवके पूर्व या उत्तर दिशामें पवित्र स्थानमें किसी पवित्र बृक्षके निकट देवयजन ( गड्ढ ) खोदें। उसकी लंबाई संन्यासीके दण्डके बराबर ही होनी चाहिये। फिर प्रणव तथा व्याहृति-मन्त्रोंसे उस स्थानका प्रोक्षण करके वहाँ क्रमशः शर्मीके पत्र और फूल

\* संन्यासीके शरीरको गाइनेके लिये जो गड्ढ खोदा जाता है, उसको 'देवयजन' कहते हैं।

बिछाये। उनके ऊपर उत्तराय ऊरु विद्याकर उसपर बोगांड रखें। उसके ऊपर पहले कुदा बिछाये, कुशोंके ऊपर मृत्युर्भूतथा उसके भी ऊपर बछ बिछाकर प्रणवसहित सद्योजातादि पञ्चब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करते हुए पञ्चगव्योद्वारा उस शक्ति प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् रुद्रसूक्त एवं प्रणवका उच्चारण करते हुए शङ्खके जलसे उसका अभिषेक करके उसके मस्तकपर फूल डाले। शिष्य आदि संस्कारकर्ता पुरुष वहाँ गये हुए मृत यतिके अनुकूल भाव रखते हुए शिवका चिन्तन करते रहे। तदनन्तर ऊँकारका उच्चारण और स्वसिवाचन करके उस शब्दको उठाकर गड्ढके भीतर योगासनपर इस तरह बिठाये, जिससे उसका मुख पूर्व दिशाकी ओर रहे। फिर चन्दन-पुष्पसे अलंकृत करके उसे धूप और गुमुखकी सुगन्ध दे। इसके बाद 'विष्णो ! हृष्यमिदं रक्षस्व' ऐसा कहकर उसके दाहिने हाथमें दण्ड दे और 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्योऽ' ( शु० यजु० २३ । ६५ ) इस मन्त्रको पढ़कर वायं हाथमें जलसहित कमण्डलु अर्पित करे। फिर 'ब्रह्म जज्ञातं प्रथमं' ( शु० यजु० १३ । ३ ) इस मन्त्रसे उसके मस्तकमा स्पर्श करके दोनों मौँहोंके स्पर्शपूर्वक रुद्रसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् 'मा नो महान्तमुत' ( शु० यजु० १६ । १५ ) इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर नारियलके द्वारा यतिके शब्दके मस्तकका भेदन करे। इसके बाद उस गड्ढको पाठ दे। फिर उस स्थानका स्पर्श करके अनन्यचित्तसे पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। तदनन्तर 'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्' ( महानारा० १० । ३ ) से लेकर 'तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः' ( महानारा० १० । ८ ) तक महानारायणोपनियद्के मन्त्रोंमें जप करके संसाररूपी रोगके भेषज, सर्वश, स्वतन्त्र तथा स्वर अनुप्रह करनेवाले उमासहित महादेवजीका चिन्तन एवं पूजा करे। ( पूजनकी विधि यो है—)

एक हाथ ऊँचे और दो हाथ लंबे-चौड़े एक पीठभ्र मिट्टीके द्वारा निर्माण करे। फिर उसे गोवरसे लीपे। वह पीठ चौकोर होना चाहिये। उसके मध्यभागमें उमा-महेश्वरों स्थापित करके गन्ध, अश्रु, सुगन्धित पुष्प, विलापन और तुलसीदलोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् प्रणवसे धूप और दीप निवेदन करे। फिर दूध और हविष्यका नैवेद्य लगाएं। पाँच वार परिक्रमा करके नमस्कार करे। फिर वारह चू-

प्रजका जप करके प्रणाम करे । तदनन्तर ( ब्रह्मीभूत यतिकी नृत्तिके लिये नारायणपूजन, बलिदान, धृतदीपदानका संकल्प और गर्तके ऊपर मृष्टय लिङ्ग बनाकर पुष्पसूक्ष्मसे पूजा और कृतमिथित पायसकी वलि दे । धीका दीप जला पायसबलि-से जलमें डाल दे ) तत्पश्चात् दिशा-विदिशाओंके क्रमसे प्रणव-

के उच्चारणपूर्वक 'ॐ ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्रसे ब्रह्मीभूत यतिके लिये शङ्खसे आठ बार अर्धजल दे । इस प्रकार दस दिनोंतक करता रहे । मुनिश्रेष्ठ ! यह दशाहतकी विधि तुम्हें बतायी गयी । अब यतियोंके एकादशाहकी विधि सुनो ।

( अथाय २०-२१ )



## यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन

स्फन्दजी कहते हैं—यामदेव ! यतिका एकादशाह शत शैनेपर जो विधि बतायी गयी है, उसका मैं तुम्हारे स्नेह-यथ वर्णन करता हूँ । मिट्टीकी बेदी बनाकर उसका समार्जन और उपलेपन करे । तत्पश्चात् पुण्याहवाचनपूर्वक प्रोक्षण करके धधिमरो लेकर पूर्वकी ओर पाँच मण्डल बनाये और स्वयं धाद्वर्ती उत्तराभिमुख वैठकर कार्य करे । प्रादेशमात्र लंबाचौड़ा चौकोंर मण्डल बनाकर उसके मध्यमागमें बिन्दु, उसके कार त्रिकोण मण्डल, उसके ऊपर षट्कोण मण्डल और उसके ऊपर गोल मण्डल बनावे । फिर अपने सामने शङ्खकी सापना करके पूजाके लिये बतायी हुई पद्धतिके क्रमसे अचमन, प्राणायाम एवं संकल्प करके पूर्वोक्त पाँच आतिथादिक देवताओंका देवेश्वरी देवियोंके रूपमें पूजन करे । उत्तर और असनके लिये कुश डालकर जलका स्पर्श करे । पधिमसे आरम्भ करके पूर्वपर्यन्त जो मण्डल बताये गये हैं, उनके भीतर पीठके रूपमें पुण्य रक्खे और उन ऊपर प्रमाणः उक्त पाँचों देवियोंका आवाहन करे । ऐसे अग्निपुजास्तरपिणी आतिवाहिक देवीका आवाहन करते हुए इस प्रकार कहे—‘ओं हौं ऋग्वेदस्पामातिवाहिकदेवताम् अग्निप्राप्तिगमः’ । इस प्रकार सर्वत्र वाक्ययोजना और भावना हो । इस तरह पाँचों देवियोंका आवाहन करके प्रत्येकके लिये उत्तरपूर्वक सापना आदि सुद्राओंका प्रदर्शन करे । अतः हाँ हाँ हैं हैं हैं है—इन तीनोंवाद्य पद्मन्यास और करन्यास करे । इन्हें ऊपर उन देवियोंसा इस प्रशार घ्यान करना चाहिये । ऐसके चर-चर हाप है । उनमें से दो हाथोंमें वे पाया और दूसरी पायथ करती है तथा दो हाथोंमें अग्रय और दूसरे द्वारा हाप है । उनमें से दो हाथोंमें वे पाया और दूसरी पायथ करती है तथा दो हाथोंमें अग्रय और दूसरे द्वारा हाप है । उनसी अद्वासन्ति चन्द्रकान्तमधिके समान है । यदि भैरुदिच्छवी प्रभन्ते उन्होंने सम्भूर्ग दिशाओंके दुर्ल-

मण्डलको रंग दिया है । वे लाल वस्त्र धारण करती हैं । उनके हाथ और पैर कमलोंके समान शोभा पाते हैं । तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखरुपी पूर्ण चन्द्रमाकी छटासे वे मनको मोहे लेती हैं । माणिक्यनिर्मित मुकुटेंसे उद्घासित चन्द्रलेखा उनके सीमन्तको विभूषित कर रही है । कपोलोंपर रत्नग्रन्थ कुण्डल झङ्गमला रहे हैं । उनके ऊरेज पीन तथा उद्धत हैं । हार, केशूर, कड़े और करघनीकी लड़ियोंसे विभूषित शैनेके कारण वे वड़ी गनोहारिणी जान पड़ती हैं । उनका कटिभाग छुश और नितम्ब थ्यूल है । उनके अङ्ग लाल रंगके दिवा वस्त्रोंसे आच्छादित हैं । चरणरविन्दोंमें माणिक्यनिर्मित पायजेयोंकी ज्ञान कार होती रहती है । ऐसी अंगुलियोंमें विकुञ्जोंकी पंक्ति अल्पन्त सुन्दर एवं मनोदार है ।

यदि अनुग्रह मुद्रेके समान मूर्तिमान् हो तो उन्होंना या सिद्ध हो सकता है । इसलिये वे देवियाँ शैनेपरी भौति शक्त्यात्मक मूर्तियाले अनुग्रहसे समग्र हैं । अतः उनके अनुग्रहसे सब कुछ निद हो सकता है । गवार अनुग्रह शरनेवाले भगवान् शिवने ही उन पाँच मूर्तियोंको संविदार किया है । इसलिये वे दिव्य, समूर्ध कार्य करनेमें गमर्य क्या परम अनुग्रहमें तत्त्व हैं । इस प्रकार उन उप अनुग्रहग्रन्थ कल्पागमयी देवियोंला घ्यान करते इनके लिये शङ्खा इलाद विन्दुओंद्वारा पैरोंमें गाय, हाथोंमें आचमनीय तथा महादीर, अर्ध देमा चाहिये । तदनन्तर यातुके जग्दी त्रैदीन उनका लानकर्म समझ करना चाहिये । फ्रान्के रभाइ रिया अल रम्के जग और उत्तरेर अर्ति छरे । विन्दु इलट एवं आनूप दे ( इन विन्दुओंके अन्दरमें गमर्द एवं नाला दरके स्त्रे अर्ति करना चाहिये ) । दूसरा वृत्तस्त्र वृद्धन, अल्पत्व तुन्दर अर्थ एवं उत्तर एवं दुष्ट अंदर

पुण्य चढ़ाये । अत्यन्त सुगन्धित धूप और धीकी बत्तीसे युक्त दीपक निवेदन करे । इन सब वस्तुओंको अर्पण करते समय आरम्भमें 'ओं ह्रीं' का प्रयोग करके फिर 'समर्पयामि नमः' बोलना चाहिये । यथा 'ओं ह्रीं अग्न्यादिरूपाभ्यः पञ्चदेवीभ्यः दीपं समर्पयामि नमः ।' इसी तरह अन्य उपचारोंको अर्पित करते समय वाक्योजना कर लेनी चाहिये ।

दीपसमर्पणके पश्चात् हाथ जोड़कर प्रत्येक देवीके लिये पृथक्-पृथक् केलेके पत्तेपर पूरा-पूरा सुवासित नैवेद्य रखें । वह नैवेद्य धी, शङ्कर और मधुसे मिश्रित सीर, पूआ, केलेके फल और गुड़ आदिके रूपमें हीना चाहिये । 'भूर्भुवः स्वः' बोलकर उसका ग्रोषण आदि संस्कार करे । फिर 'ओं ह्रीं स्वाहा नैवेद्यं निवेदयामि नमः' बोलकर नैवेद्यसमर्पणके पश्चात् 'ओं ह्रीं नैवेद्यान्ते आद्यमनार्थं पानीयं समर्पयामि नमः' कहते हुए बड़े प्रेमसे जल अर्पित करे । मुनिश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् प्रसन्नता-पूर्वक नैवेद्यको पूर्व दिशामें हटा दे और उस स्थानको शुद्ध करके कुह्ला, आचमन तथा अर्ध्यके लिये जल दे । फिर ताम्बूल, धूप और दीप देकर परिक्रमा एवं नमस्कार करके मस्तकपर हाथ जोड़ इन सब देवियोंसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे श्रीमाताओ ! आप अत्यन्त प्रसन्न हो शिवपदकी अभिलाषा रखनेवाले इस यतिको परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें रख दें और इसके लिये अपनी स्वीकृति दें ।' इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबका, वे जैसे आयी थीं, उसी तरह विदा देकर विसर्जन कर दे और उनका प्रसाद लेकर कुमारी कन्याओंको बॉट दे या गौओंको खिला दे अथवा जलमें डाल दे । इनके सिवा और कहीं किसी प्रकार भी न डाले ।

यहीं पार्वण करे । यतिके लिये कहीं भी एकोदिष्ट शाद्व-का विधान नहीं है । यहाँ पार्वण-शाद्वके लिये जो नियम है, उसे मैं बता रहा हूँ । मुनिश्रेष्ठ ! तुम उसे सुनो । इससे कल्याण-की प्राप्ति होगी । श्राद्धकर्ता पुरुष रनान करके प्राणायाम करे । यशोपवीत पहन सावधान हो हाथमें पवित्री धारण करके देश-कालका कीर्तन करनेके पश्चात् 'मैं इस पुण्यतार्थको पार्वण-शाद्व करूँगा' इस तरह संकल्प करे । संकल्पके बाद उत्तर

दिशामें आसनके लिये उत्तम कुश विछाये । फिर जलका सर्व करे । उन आसनोंपर दृढ़तापूर्वक उत्तम ब्रतका पालन करें-बाले चार शिवभक्त व्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे विठाये । वे व्राह्मण उबटन लगाकर स्नान किये होने चाहिये । उनमें से एक व्राह्मणसे कहे—'आप विश्वेदेवके लिये यहाँ श्राद्व ग्रहण-करनेकी कृपा करें ।' इसी तरह दूसरेसे आत्माके लिये, तीसरे-से अन्तरात्माके लिये और चौथेसे परमात्माके लिये श्राद्व ग्रहण करनेकी प्रार्थना करके श्राद्धकर्ता यति श्रद्धा और आदरपूर्वक उन सबका यथोच्चित रूपसे वरण करे । फिर उन सबके पैर धोकर उन्हें पूर्वाभिसुख विठाये और गन्ध आदिसे अलंकृत करके शिवके सम्मुख भोजन कराये । तदनन्तर वहाँ गोपरसे भूमिको लीपकर पूर्वांग कुश विछाये और प्राणायामपूर्वक पिण्डदानके लिये संकल्प करके तीन मण्डलोंकी पूजा करे । इसके बाद पहले पिण्डको हाथमें ले 'आत्मने इमं पिण्डं ददामि' ऐसा कहकर उस पिण्डको प्रथम मण्डलमें दे दे । तत्पश्चात् दूसरे पिण्डको 'अन्तरात्मने इमं पिण्डं ददामि' कहकर दूसरे मण्डलमें दे दे । फिर तीसरे पिण्डको 'परमात्मने इमं पिण्डं ददामि' कहकर तीसरे मण्डलमें अर्पित करे । इस तरह भक्ति-भावसे विधिपूर्वक पिण्ड और कुञ्जोदक दे । तत्पश्चात् उठकर परिक्रमा और नमस्कार करे । तदनन्तर व्राह्मणोंको विधिवत् दक्षिणा दे । उसी जगह और उसी दिन नारायणवलि करे । रक्षाके लिये ही सर्वत्र श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है । अतः विष्णुकी महापूजा करे और सीरका नैवेद्य लगाये । इसके बाद वेदोंके पारंगत बारह विद्वान् व्राह्मणोंको बुलाकर केशव आदि नाम-मन्त्रोद्घारा गन्ध, पुण्य और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे । उनके लिये विधिपूर्वक जूता, छाता और बल आदि दे । अत्यन्त भक्तिसे भाँति-भाँतिके कुम बचन कहकर उन्हें संतोष दे । फिर पूर्वांग कुशोंको विछाकर 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ सुवः स्वाहा' ऐसा उच्चारण करके पृथीवर सीरकी बलि दे । मुनीश्वर ! यह मैंने एकादशाहकी विधि बतायी है । अब द्वादशशाहकी विधि बताता हूँ, श्राद्व-पूर्वक सुनो । ( अध्याय २२ )

## यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलास पर्वतपर जाना तथा सूतजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार

स्कन्दजी कहते हैं—वामदेव ! बारहवें दिन प्रातः-  
ग्राम उठकर श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान और नित्यकर्म करके  
शिगमको, यतियों अथवा शिवके प्रति प्रेम रखनेवाले ब्राह्मणों-  
को निमन्नित करे। मध्याह्नकालमें स्नान करके पवित्र हुए  
उन ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे विधिपूर्वक भौति-भौतिके  
सादिष्ठ अन्न भोजन बताये। फिर परमेश्वरके निकट विठाकर  
श्रावण-पद्मित्से उनका पूजन करे। तत्प्रश्नात् मौनभावसे  
श्रावणम करके देश-काल आदिके कीर्तनपूर्वक महान् संकल्प-  
श्री प्रणालीके अनुसार संकल्प करते हुए—‘अस्यदुरोहिते  
हृषीं करिष्ये ( मैं अपने गुरुकी यहाँ पूजा करूँगा )’ ऐसा कहकर  
हृषींसा स्पर्श करे। फिर ब्राह्मणोंके पैर धोकर आचमन करके  
श्राद्धकर्ता मौन रहे और भस्मसे विभूषित उन ब्राह्मणोंको  
प्राप्तिमुख असनपर विठाये। वहाँ सदाशिव आदिके क्रमसे  
उन आठ ब्राह्मणोंका वडे आदरके साथ चिन्तन करे अर्थात्  
मैं देव शदाशिव आदिका स्वल्प माने। मुने ! अन्य चार  
ब्राह्मणोंसा भी चार गुरुओंके रूपमें चिन्तन करे। चारों गुरु  
हैं—गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु और परमेश्वी गुरु।  
परमेश्वी गुरुसा उनमें उमासंहित महेश्वरकी भावना करते हुए  
चिन्तन करे। अपने गुरुका नाम लेकर ध्यान करे। उन  
परमेश्वरोंलिये ‘इदमासनम्’ ऐसा कहकर पृथक्-पृथक् आसन  
करे। भारिगें प्रणव, वीचमें द्वितीयान्त गुरु तथा अन्तमें  
‘आवाह्यमि नमः’ योलकर आचाहन करे। यथा—ॐ  
‘नमःनमःनमः गुरुम् जायाहयामि नमः। ॐ परमगुरुम्  
भवाह्यमि नमः। ॐ परात्परगुरुम् जायाहयामि नमः।  
४ ऋषेष्टिगुरुम् जायाहयामि नमः। इति प्रकार आचाहन  
मैं चर्चेद्दन ( अर्थमें रखते हुए जल ) से पाय, आचमन

\* इसके अनुसार सोलह ब्राह्मणोंमें निमन्नित दरना  
परमेश्वरों द्वारा ही हुए, परम गुरु, परमेश्वी गुरु और परात्पर  
गुरु देखे हैं और बारह ब्राह्मणोंको देवतादि नामसे पूजा  
की गई है इसमें दिये गये वर्णने लगतार चार  
४ ऋषेष्टिगुरुम् जायाहयामि नमः।

और अर्ध्य निवेदन करे। फिर वछ, गन्ध और अक्षत देकर  
‘ओं गुरुवे नमः’ इत्यादि रूपसे गुरुओंको तथा ‘ओं सदाशिवाय  
नमः’ इत्यादि रूपसे आठ नामोंके उच्चारणपूर्वक आठ अन्य  
ब्राह्मणोंको सुगन्धित फूलोंसे अलंकृत करे। तत्प्रश्नात् धूप,  
दीप देकर ‘कृतमिदं सकलमाराघनं सम्पूर्णमस्तु ( की  
गयी यह सारी आराधना पूर्णरूपसे सफल हो )’ ऐसा कहकर  
खड़ा हो नमस्कार करे। इसके बाद केलेके पत्तोंको पावलगमें  
विठाकर जलसे शुद्ध करके उनपर शुद्ध अन्न, लीर, पूआ,  
दाल और साग आदि व्युत्पन्न परोसकर केलेके फल, नारियल  
और गुड भी रखें। पावोंको रखनेके लिये आसन  
भी अलग-अलग दें। उन आसनोंका क्रमशः प्रोक्षण करके  
उन्हें यथास्थान रखें। फिर भोजनपत्रका भी प्रोक्षण एवं  
अभिषेक करके हाथसे उसका स्पर्श करते हुए कहे—  
‘विष्णो ! हृष्यमिदं रक्षस्य ( हे विष्णो ! इस हृष्यको आग  
सुरक्षित रखें )’ फिर उठकर उन ब्राह्मणोंको पीनेके लिये जल  
देकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना कर—‘सदाशिवाद्यो मे  
प्रीता वरदा भवन्तु ( सदाशिव आदि मुझपर प्रसन्न हो अभीष्ट  
वर देनेवाले हों )’।

इसके बाद ‘ये देवा’ ( शु० वतु० १३। १३-१४ )  
आदि मन्त्रका उच्चारण करके अक्षतसंहित इस अन्नका लाग  
करे। फिर नमस्कार करके उठे और ‘सर्वव्राणुनमस्तु ।’  
ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको मंत्रपूर्व करके ‘गगानो ल्या’ ( शु० वतु०  
२३। १९ ) इस मन्त्रका पद्म पट्ट फरंग नामे ५८८८  
आदिमन्त्रोंका, चट्टायाद्यका, चमकायाद्यका, गुरुमन्त्र  
तथा सद्योजातादि पौच्छ्र व्रद्धामन्त्रका फट लें। अन्नम-  
भोजनके अन्तमें भी व्यापारगत भवन देखें और अन्न देखें,  
फिर आचमनदि जल दें। दाफ्कर और ही रोकें तो नी  
इन व्यापारों के लिये। अन्नमन्त्रके व्यापारों में दाफ्कर, देखें, अन्न  
आकलनकर विठाकर शुद्ध जल देखें व्यापार लेना, देखें, देखें  
लिये व्यापारित चट्टर आदि गुरु नामद्वारा लेना, देखें, देखें  
दक्षिणा, चरणस्तुला, उत्तर, दक्षिण, देखें, देखें

बौसकी छड़ी देकर परिक्रमा और नमस्कारके द्वारा उन ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे तथा उनसे आशीर्वाद ले । पुनः प्रणाम करके गुरुके प्रति अविचल भक्तिके लिये प्रार्थना करे । तत्पश्चात् विसर्जनकी भावनासे कहे—‘सदाशिवादयः प्रीता यथासुखं गच्छन्तु’ ( सदाशिव आदि संतुष्ट हो सुखपूर्वक यहाँसे पधारें ) । इस प्रकार विदा करके दरबाजेतक उनके पीछे-पीछे जाय । फिर उनके रोकनेपर आगे न जाकर लौट आये । लौटकर द्वारपर बैठे हुए ब्राह्मणों, वन्द्योजनों, दीर्घों और अनायोके साथ स्वयं भी भोजन करके सुखपूर्वक रहे । ऐसा करनेसे उसमें कहीं भी विकृति नहीं हो सकती । यह सब सत्य है, सत्य है और बारंबार सत्य है । इस प्रकार प्रतिवर्ष गुरुकी उत्तम आराधना करने-वाला शिष्य इस लोकमें महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है ।

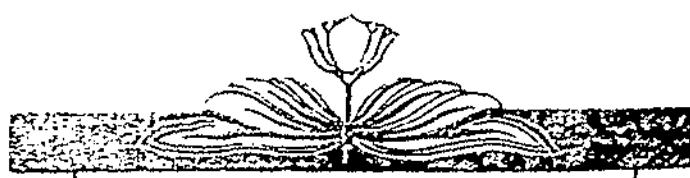
मुने ! यह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तसे निश्चित किया गया है । तुमने मुझसे जो कुछ सुना है, उसे विद्वान् पुरुष तुम्हारा ही मत कहेंगे । अतः यति इसी मार्गसे चलकर ‘शिवोऽहमस्मि’ ( मैं शिव हूँ ) इस रूपमें आत्मखलूप शिवकी भावना करता हुआ शिवरूप हो जाता है ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मुनीश्वर वामदेवको उपदेश देकर दिव्य शानदाता गुरु देवेश्वर कार्तिकेय पिता-

माताके सर्वदेववन्दित चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए अनेक शिखरोंसे आवृत, शोभाशाली एवं परम आश्र्यमय कैलासशिखरको चले गये । श्रेष्ठ शिष्योंसहित वामदेव भी मयूरवाहन कार्तिकेयको प्रणाम करके शीघ्र ही परम अद्भुत कैलासशिखरपर जा पहुँचे और महादेवजीके निकट व उन्होंने उमासाहेत महेश्वरके-मायानाशक मोक्षदायक चरणेन्द्र दर्शन किया । फिर भक्तिभावसे अपना सारा अङ्ग भास्त्रम् शिवको समर्पित करके, वे शरीरकी सुधि भुलाकर उनके निकट दण्डकी भाँति पड़ गये और वारंवार उठउठकर नमस्कार करने लगे । तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रों-द्वारा, जो वेदों और आगमोंके रससे पूर्ण थे, जगदमा और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया । इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणारविन्दको अपने महकाम रखकर उनका पूर्ण अनुग्रह प्राप्त करके वे वहीं सुखपूर्वक रहने लगे । तुम सभी शृणि भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थमूल महेश्वरका तथा वेदोंके गोपनीय रहस्य, वेदसर्वस और मोक्षदायक तारक मन्त्र ऊँकारका ज्ञान प्राप्त करके यहीं सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें सायुज्यरूपा अनुपम एवं उत्तम मुक्तिका चिन्तन किया करो । अब मैं गुरुदेवकी सेवाके लिये बदरिकाश्रम तीर्थको जाऊँगा । तुम्हें फिर मेरे साथ सम्भापणका एवं सत्सङ्गका अवसर प्राप्त हो ।

( अध्याय २३ )

॥ कैलाससंहिता सम्पूर्ण ॥



## वायवीयसंहिता ( पूर्वखण्ड )

प्रयागमें ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों  
एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका ग्राहण

व्यास उत्तराच

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ।  
 प्रधानयुरुपेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥  
 शक्तिरप्रतिमा यस्य हैश्वर्यं चापि सर्वगम् ।  
 स्यामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रवक्षते ॥  
 तमतं विधकमीर्णं शाश्वतं शिवमव्ययम् ।  
 मद्दादेवं मद्दात्मानं वज्रामि शरणं शिवम् ॥

व्यासजी कहते हैं—जो जगत्की सुषिरि, पालन और  
प्रशंसके देहु तथा प्रकृति और मुख्यके ईश्वर हैं, उन प्रमथ-  
गण, पुत्रदय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है।  
जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र  
चापक है तथा स्वामित्व और विमुख जिनका स्वभाव कहा  
गया है, उन विधिशास्त्र, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान्  
देव, मद्गलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ।

जो पर्मका क्षेत्र और महान् तीर्थ है, जहाँ गङ्गा और  
सुगंगा संगम हुआ है तथा जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस  
प्रणाली में शुद्ध दृदयवाले सत्यव्रतपरायण महातेजस्वी एवं  
मंदिगम मुनियोंने एक महान् यशस्वा आयोजन किया।  
दृढ़ वस्त्रधारित कर्म करनेवाले उन महात्माओंके यशका  
भानार नुगार निपुण कथावाचक, त्रिकाल्यवेत्ता, उत्तम  
रीतिके शता तथा कल्पतर्यां विद्वान् पौराणिकदिरोमणि  
यूपे उठ स्थानार आये। सूतजीको आते देख  
मुनियोंने उन प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने उनसे  
कल्पतर्यां मधुर यात्रे कहकर उनकी वथायोग्य पूजा  
की। मुनियोंद्वारा की हुई उस पूजाको प्रण करके सूतजीने  
उन्हीं प्रेषणसे भाने लिये बताये गये उपयुक्त अस्त्रमें  
पूजा की। उच्च समय मरणियोंने अनुदूल वन्दनोद्वारा  
उपर गुरुर रखते हुए उन्हें अत्यन्त अनिकृत करके  
देखा करी।

इसी धैर्य से—जिपनकाविरोधमयि भद्रदुर्दिग्नान् भद्र-  
पति रेत्प्रवृत्तिर्वी ! अब चर्चा है और इससे नहीं  
कोई जीत हो सकती है। लिनो लोकोंमें ऐसी गोई दस्त

नहीं है, जो आपको विद्रित न हो । आप भाग्यवश हमें  
दर्शन देनेके लिये स्वयं यहाँ आ गये हैं । अतः अब हमारा  
कोई कल्याण किये विना आपको यहाँसे व्यर्थ नहीं जाना  
चाहिये । इसलिये आप हमें शीघ्र वह परिचय पुराण सुनायें,  
जो अत्यन्त श्रवणीय, उत्तम कथा और शानसे मुक्त तथा  
वेदान्तके सारसर्वत्वसे रम्भन्त हो ।

वेदवादी मुनियोंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब सूतजीने मधुर, व्यथायुक्त एवं शुभ वचनमें उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

वे भगवान् विष्णु ब्रह्माजीके भी पालक हैं। ब्रह्माजी विद्या प्राप्त करके जब प्रजाकी सृष्टिके विस्तारकार्यमें लगे, तब उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पहले पुराणको ही स्वरण किया और उन्हींको वे प्रकाशमें लाये। पुराणोंके प्रकट होनेके अनन्तर उनके चार मुखोंसे चारों वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। फिर उन्हींके मुखसे सम्पूर्ण शास्त्रोंकी प्रवृत्ति हुई।

द्वापरमें भगवान् श्रीहरि सत्यघटीके गर्भसे उसी तरह प्रकट हुए, जैसे अरणिसे आग प्रकट होती है। उस समय उनका नाम श्रीकृष्णद्वैपायन हुआ। मुनिवर ! श्रीकृष्ण-द्वैपायनने वेदोंको संक्षिप्त करके उन्हें चार भागोंमें विभक्त किया। इस प्रकार चार भागोंमें वेदोंका व्यास (विस्तार) करनेसे वे लोकमें वेदव्यासके नामसे विख्यात हुए। इसी तरह उन्होंने पुराणोंको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंमें सीमित किया। आज भी देवलोकमें पुराणोंका विस्तार सौ कोटि श्लोकोंमें है। जो द्विज छहों अङ्गों और उपनिषदों-सहित चारों वेदोंको तो जानता है किंतु पुराणको नहीं जानता, वह श्रेष्ठ विद्वान् नहीं हो सकता। इतिहास और पुराणोंसे वेदकी व्याख्या करे। जिसका ज्ञान बहुत कम है अर्थात् जो पौराणिक ज्ञानसे शून्य है, ऐसे पुरुषसे वेद यह सोचकर डरता है कि यह मुझपर प्रहार कर दैठेगा। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं। छोटे और बड़ेके भेदसे अठारह पुराण बताये गये हैं। १—ब्रह्मपुराण, २—यद्यपुराण, ३—विष्णुपुराण, ४—शिवपुराण, ५—भागवतपुराण, ६—भविष्यपुराण, ७—नारदपुराण, ८—मार्कण्डेयपुराण, ९—अग्निपुराण, १०—ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११—लिङ्गपुराण, १२—वाराहपुराण, १३—स्कन्दपुराण, १४—चामनपुराण, १५—कूर्मपुराण, १६—

मत्स्यपुराण, १७—गरुडपुराण और १८—ब्रह्मण्डपुराण—यह पुराणोंका पवित्र क्रम है। इनमें शिवपुराण चौथा है, जो भगवान् शिवसे सम्बन्ध रखता है और सब मनोरथोंमें साधक है। इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या एक लाख है और यह बारह संहिताओंमें विभक्त है। इसका निर्माण साक्षात् भगवान् शिवने ही किया है तथा इसमें धर्म प्रतिष्ठित है। वेदव्यासने इस एक लाख श्लोकवाले शिवपुराणको संक्षिप्त करके चौबीस हजार श्लोकोंका कर दिया है। इसमें सात संहिताएँ हैं। पहली विवेश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीयसंहिता है। इस प्रकार इसमें सात ही संहिताएँ हैं। विवेश्वरसंहितामें दो हजार, रुद्रसंहितामें दस हजार पाँच सौ शतरुद्रसंहितामें दो हजार एक सौ अस्सी, कोटिरुद्रसंहितामें दो हजार दो सौ चालीस, उमासंहितामें एक हजार आठ सौ चालीस, कैलाससंहितामें एक हजार दो सौ चालीस और वायवीयसंहितामें चार हजार श्लोक हैं। इस परम पवित्र शिवपुराणको आपलोगोंने सुन लिया। केवल चार हजार श्लोकोंकी वायवीयसंहिता रह गयी है, जो दो भागोंसे युक्त है। उसका वर्णन मैं करूँगा। जो वेदोंका विद्वान् न हो, उससे इस उत्तम शास्त्रका वर्णन नहीं करना चाहिये। जो पुराणोंको न जानता हो और जिसकी पुराणपर श्रद्धा न हो, उससे भी इसकी कथा नहीं कहनी चाहिये। जो भगवान् शिवका भक्त हो, शिवोक्त धर्मका पालन करता हो और दोषदृष्टिसे रहित हो, उस जाँचे-बूझे हुए धर्मात्मा शिथ्यको ही इसका उपदेश देना चाहिये। जिनकी कृपासे मुझको पुराणसंहिताका ज्ञान है, उन अमिततेजस्वी भगवान् आपको नमस्कार है।

( अध्याय १ )

### ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जा उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमम हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! पहले अनेक कल्योंके चारंवार चीतनेपर सुदीर्घकालके पश्चात् जब यह वर्तमान कल्य उपस्थित हुआ और सृष्टिका कार्य आरम्भ हुआ, जब जीविका-साधक कर्म—कृपि, गोरक्षा और वाणिज्यकी प्रतिष्ठा हुई तथा प्रजावर्गके लोग सुखग एवं सचेत हो गये, तब छः कुलोंमें

उत्पन्न हुए महर्षियोंमें परस्पर बहस छिड़ गयी। यह परम है, यह नहीं है। इस प्रकार उनमें महान् विवाद होने लगा। किंतु परम तत्त्वका निरूपण अत्यन्त कठिन होनेके कारण उन समय वहाँ कुछ निश्चय न हो सका। तब वे सब लोग त्रिग्रनूलश अविनाशी ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये उस स्थानमें

गये, जहाँ देवताओं और असुरोंके मुखसे अपनी स्तुति मुनते हुए भगवान् ब्रह्मा विराजमान थे। देवताओं और दानवोंसे भरे हुए सुन्दर रमणीय मेह-शिखरपर, जहाँ सिद्ध और चारण परस्पर यातचीत करते हैं, यस और गन्धर्व सदा रहते हैं, निंहामोंके समुदाय कल्पव करते हैं, मणि और मूँगे जिसकी शोभा बढ़ते हैं तथा निकुञ्ज, कन्दराएँ, छोटी गुफाएँ और अनेकानेक निर्झर जिसे मुश्योभित करते हैं, एक ब्रह्मवन नामसे प्रसिद्ध वन है। उसमें नाना प्रकारके वन्यपशु भरे हुए हैं। उसकी ऊंचाई सी योजन और चौड़ाई दस योजनकी है। उसके भीतर एक रमणीय सरोवर है, जो सुखादु निर्मल जलसे भरा रहता है। वहाँके रमणीय पुष्पित बृक्षोंपर मतवाले भौंरे छाये रहते हैं। उस वनमें एक मनोहर एवं विशाल नगर है, जो प्रातः-द्वालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होता रहता है। वहाँ दुर्घट्या विकिष्ट युक्त वलभिमानी दैत्य, दानव तथा राक्षसोंका निवास है। वह नगर तथाये हुए मुवर्णका बना जान पड़ता है। उपर्युक्त चशरदीवासियाँ और सदर काटक वहुत ऊँचे हैं। शेषे बुज्जो, ढारू, छतों, आचारस्थानों तथा सैकड़ों गलियोंसे उस नगरमी बड़ी शोभा है। वह विचित्र वहुमूल्य मणियोंसे भास्त्रस्थो चूमता-सा प्रतीत होता है तथा कई करोड़ विशाल भवनोंसे अलंकृत है।

उस नगरमें प्रजापति ब्रह्मा अपने सभासदोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ जाकर उन मुनियोंने साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजीसे देखा। देवर्मियोंके समुदाय उनकी सेवामें बैठे थे। उनमें अन्तर्यान्ति शुद्ध सुवर्णके समान थी। वे सब अभ्युपणोंसे प्रसिद्धि प्राप्ति है। उनका मुख प्रसन्न था, उससे सौम्यभाव प्रकट होता था। उनके नेत्र कमलदलको समान विशाल थे। दिव्य-गिरियोंमें सम्पन्न, दिव्य गन्ध एवं अनुलेपनसे चर्चित, दिव्य दिव्य सभोंसे मुश्योभित तथा दिव्य मालाओंसे विभूषित ब्रह्माजी-के अण्डारियोंसे बदना सुरेन्द्र, अनुरेन्द्र तथा योगीन्द्र भी नहीं है। वैमे प्रभा दिवाकरकी सेवा करती है, उसी प्रकार वैष्णव उस दृढ़ोंसे युक्त साक्षात् उत्त्वती देवी एवं इनमें चैक्कर दृढ़ी हेतु जर रही थी, इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही है।

वैष्णवों दर्शन करने करने उन उभी मर्दिनियोंके मुख और निकुञ्जोंके दृढ़े। उन्होंने सहस्रपर अङ्गलि दौर्पत्र उन दुर्लभोंके दृढ़े हो रहे।



**ऋषि वोले—**संसारकी सुष्ठि, पालन और संहारके द्वेष तीन रूप धारण करनेवाले आप पुराणपुद्धप परमात्मा ब्रह्माजी नमस्कार है। प्रकृति जिनका दरीर है, जो प्रकृतियों द्वारा उत्पन्न करनेवाले हैं तथा प्रकृतिरूपमें तेरेस विकारोंसे युक्त होनेपर भी जो वास्तवमें निर्विकार हैं, उन ब्रह्मदेवोंहो नमस्कार है। ब्रह्माण्ड जिनकी देह है, तो भी जो ब्रह्माण्डके उद्दर्श्ये निवास करते हैं तथा वहाँ रुक्षर जिनके कार्य और कर्त्ता अन्तर्हलपते सिद्ध होते हैं, उन ब्रह्माजीको नमस्कार है। जो अन्तर्लोकस्वरूप तथा समस्त लोकोंके खधा है, जो नमूर्ण योद्धा शरीरते खंयोग और नियोग करनेमें देव है, उन ब्रह्माजीको नमस्कार है। नाय ! शिलामद ! आर्द्धे ही नमूर्ण योद्धा सुष्ठि, पालन और संहार हेतु है, तथापि मानसि आदृत हेतुके कारण इस आरद्धे नहीं जानते।

**सूतजी कहते हैं—**उन महानाम मर्दिनियों द्वारा सुन्ति करनेवार प्रजाजी उन मुनियोंसे आदृदददन द्वारा दुर्गम्भीर दानीमें इस प्रदान दें।

**ब्रह्माजीने कहा—**महान् अस्त्रमुद्देश्य नमस्त्र नहा, तुम महात्मेष्वरी मर्दिनियो ! तुम नमस्त्रेन देव ! तुम दर्शीदिव निर्द अम्बे हो !

प्रजाजीके इस प्रदान दृढ़ोंसे वैष्णव वैष्णवोंमें देव अम्बी हुनिरेंगे तुम देव ! निर्द-दिव निर्दमें दाना !

**मुनि योले—**महात्म ! दर्शीदिव भरदवान् भरद्वा

कारसे आद्वृत हो खिल हो रहे हैं। परस्पर विवाद करते हुए हमें परम तत्त्वका साक्षात्कार नहीं हो रहा है। आप सम्पूर्ण जगत्के धारण-पोषण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। नाथ ! यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। कौन ऐसा पुरुष है, जो सम्पूर्ण जीवोंसे पुरातन, अत्यर्यामी उत्कृष्ट विशुद्ध परिपूर्ण एवं सनातन परमेश्वर है ? कौन अपने अद्भुत क्रियाकलापद्वारा सबसे प्रथम संसारकी सृष्टि

करता है ? महाप्राज्ञ ! हमारे इस संदेहका निवारण करनेके लिये आप हमें परमार्थ-तत्त्वका उपदेश दें।

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्रयसे खिल उठे। वे देवताओं, दानवों और मुनियोंके निकट खड़े हो गये और चिरकालतक ध्यानमग्न हो 'रुद्र' ऐसा कहते हुए आनन्दविभोर हो गये। उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा और वे हाथ जोड़कर बोले। (अध्याय २)



## ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी ही महत्त्वाका प्रतिपादन, उनकी कृपाओंही सब साधनोंका फल बताना तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमित्यारण्यमें आना

ब्रह्माजीने कहा—मुनियो ! जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुरुष कभी किसीसे नहीं डरता, जिनसे सम्पूर्ण भूतों और इन्द्रियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रपूर्वक यह समस्त जगत् पहले प्रकट होता है, जो कारणोंके भी स्थान और विचारक परमकारण हैं, जिनके सिवा और किसीसे कभी भी जगत्की उत्पत्ति नहीं होती, \* सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण जो स्वयं ही सर्वेश्वर नाम धारण करते हैं, सब मुमुक्षु जिन शम्भुका अपने हृदयाकाशके भीतर ध्यान करते हैं, जिन्होंने सबसे पहले मुझे ही अपने पुत्रके रूपमें उत्पन्न किया और मुझे ही सम्पूर्ण वेदोंका शान दिया, जिनके कृपाप्रसादसे मैंने यह प्रजापतिका पद प्राप्त किया है, जो ईश्वर अकेले ही ब्रह्मकी भौति निश्चल भावसे प्रकाशमान आकाशमें विराजमान हैं, जिन परमपुरुष परमात्मासे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है, जो अकेले ही बहुत-से निष्क्रिय जीवोंके शासक एवं उन्हें सक्रियता प्रदान करनेवाले हैं, जो महेश्वर एक वीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं, जो सबका शासन करनेवाले ईश्वर इन जीवोंसहित इन समस्त लोकोंको वशमें

रखते हैं, सब रूपोंमें जो एकमात्र भगवान् रुद्र ही है, दूसर कोई नहीं है, जो सदा ही मनुष्योंके हृदयमें भलीभांति प्रविष्ट होकर स्थित है, जो स्वयं सम्पूर्ण विश्वको देखते हुए भी दूसरोंसे कदापि लक्षित नहीं होते और सदा समस्त जगत्के अधिष्ठाता हैं, जो अनन्त शक्तिशाली एकमात्र भगवान् रुद्र कालसे मुक्त समस्त कारणोंपर भी शासन करते हैं, जिनके लिये न दिन है न रात्रि है, जिनके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है, जिनकी ज्ञान, वल और क्रियारूपा पराशक्ति स्वाभाविक एवं नित्य है। \* जो इस धर (विनाशशील), अव्यक्त (प्रकृति) परतथा अमृतस्वरूप अधर (अविनाशी) जीवात्मापर शासन करते हैं, उनका निरन्तर ध्यान करनेसे, मनको उनमें लगाये रहनेसे तथा उन्होंके तत्त्वकी भावना करते हुए उनमें तन्मय रहनेसे धीर अन्तमें उन्होंको प्राप्त हो जाता है। फिर तो सारी माया अपने-आप दूर हो जाती है। उनके पास न तो विजली प्रकाश करती है और न सूर्य तथा चन्द्रमा ही अपनी प्रभा फैलाते हैं, अपितु उन्होंके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। ऐसा सनातन श्रुतिका कथन है। † एकमात्र महादेव महेश्वरको ही अपना

\* यतो वाचो निवर्तने अप्राप्य मनसा सह ।

आनन्दं यस्य वै विद्वान् न विमेति कुनैश्चन ॥

यसाद् सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।

सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूते ॥

कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ।

न सम्प्रसूयते इन्द्र्यसात् कुनैश्चन कदाचन ॥

(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३ । १-३)

\* न यस्य दिवसो रात्रिन् समानो न चापिकः ।

स्वाभाविकी पराशक्तिनित्या शानकिये अपि ॥

(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३ । ११)

† यस्मिन्न भासते विशुद्ध सूर्यो न च चन्द्रमाः ।

यस्य भासा विभातोदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः ॥

(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३ । १५)

ग्राथदेव जानना चाहिये । उनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई पद अलग नहीं होता । ये स्वयं ही सबके आदि हैं, किंतु मना न आदि है न अन्त । ये स्वभावसे ही निर्मल, स्वतन्त्र, शिर्षी, देव्याधीन तथा चराचरल्प हैं । इनका द्वारीर अप्राकृतिक ( दिव्य ) है । ये श्रीमान् महेश्वर लक्ष्य और अद्वितीय रहित हैं । ये नित्यमुक्त होकर सबको बन्धनसे मुक्त करनेवाले हैं । कालकी सीमासे परे रहकर कालको भैरव करनेवाले हैं ॥५५ ये सबके ऊपर निवास करते हैं । स्वयं ही सबके आवासस्थान हैं, सर्वज्ञ हैं तथा छः प्रकारके अध्या ( मार्ग ) से युक्त इस सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं । उत्तरेतर उत्कृष्ट भूतोंसे वे परम उत्कृष्ट हैं । उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है । अनन्त आनन्दराशिर्लभी मकरन्दका पान करनेवाले मधुव्रत ( ग्राम ) हैं । अखण्ड ब्रह्माण्डोंको मसलकर मृत्पिण्डके समान वर देनेवाली कलामें पण्डित हैं । उदारता, वीरता, गम्भीरता और मधुरताके महासागर हैं । इनके समान भी कोई वस्तु नहीं है फिर इनसे पढ़कर तो ही ही कैसे सकती है । ये उपमार्थित हैं । समस्त प्राणियोंके राजाधिराजके रूपमें विराजमान ॥ १ । ये ही सुष्टिके प्रारम्भमें अपने अद्वृत क्रियाकलापद्वारा ६५ सम्पूर्ण जगत्की सुष्टि करते हैं और अन्तकालमें यह फिर दृश्यमें लीन हो जायगा । सब प्राणी इन्हके बशमें हैं । ये ही नदों विभिन्न कार्योंमें नियुक्त करनेवाले हैं । पराभक्तिसे ही इन्हा दर्शन होता है, अन्य किसी प्रकारसे कभी नहीं ।

उत्तर, सम्पूर्ण दान, तपस्या और नियम—इन सब साधनोंको दृश्यमें समुदायमें भावगुदि तथा अनुरागकी उत्पत्तिके लिए ही दायरा भा, इनमें संदर्भ नहीं है । मैं, भगवान् विष्णु, ५८८ और तम इन्हरे-इन्हरे देवता एवं असुर आज भी उग्र उत्तरकी द्याए उनके दर्शनकी इच्छा रखते हैं । धर्मग्रन्थ, ५९१ उड़ और पृष्ठित आचार-विचारयाले लोगोंको उनका ५९२ हेतु अमर्भय है । भक्तजन भीतर और बाहर भी उत्तर दूर राज जान करते हैं । यह रूप तीन प्रकारका

है—स्थूल, सूक्ष्म और इन दोनोंसे परे । हम सब देवता आदि जिस रूपको प्रत्यक्ष देखते हैं, वह स्थूल है । सूक्ष्म रूपका दर्शन केवल योगियोंको होता है और उससे भी परे जो नित्य, शानस्वरूप, आनन्दमय तथा अविनाशी भगवत्स्वरूप है, वह उसमें निष्ठा रखनेवाले भजनपरायण भक्तोंकी ही दृष्टिमें आता है । भगवद्ग्रन्तका आश्रय लेनेवाले भक्त ही उसको देख पाते हैं । इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, गुहासे भी गुह्यतर एवं उत्कृष्ट साधन है भगवान् शिवके प्रति भक्ति । जो उस भक्तिसे युक्त है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है—इसमें संदेह नहीं है । वह भक्ति भगवान् शिवकी कृपासे ही उपलब्ध होती है और उनकी कृपा भी भक्तिसे ही सम्भव होती है—इस प्रकार ये दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं—ठीक वैसे ही, जैसे अकुरसे वैज्ञ और वीजसे अकुर होता है । जीवको भगवत्कृपासे ही सर्वत्र सिद्धियों मिलती है । सम्पूर्ण साधनोंसे अन्तमें भगवान्की कृपा ही साध्य है । अन्तःकरणकी शुद्धि या प्रमादका साधन है भर्म और उस धर्मके स्वरूपका प्रतिपादन बेदने किया है । वेदोंमें अभ्याससे पहलेके पुण्य और पापोंमें रामता आती है, उस समसारसे प्रसाद ( प्रसन्नता या अन्तःशुद्धि ) का गमन ह्रात होता है और उससे धर्मकी धृदिति होती है । धर्मदी धृदिति पशु ( जीव ) के पापोंका क्षय होता है । इस तरह जिसके जारी क्षीण हो गये हैं, उस जीवको अनेक उम्मेद अभ्यासमें कमशः उमा-मदेश्वरके वल्का भान प्राप्त होता है उसके उद्दीपने उनके प्रति भक्तिका उदय होता है । उस उद्दीपनके अन्तर्में ही मदेश्वरके कृपाप्रसादका उद्देश होता है । उस प्रसादमें कर्मोंका लाग होता है । कर्मोंके लागवास अभियाप्त उम्मेद कलेके लागते हैं, अर्थात् स्वरूपः लागती नहीं । अर्थात् यह लिङ्ग गुरुआ विकर्मदीनोंके लागमें भिर लगते मदेश्वरे प्रशुचि होती है ।

इन्हें देखता हुए अन्नद ब्रह्म उम्मेद उम्मेद ५८९  
मद होता अम्बे ग्रीष्मी और अद्वितीय उम्मेद जैसे

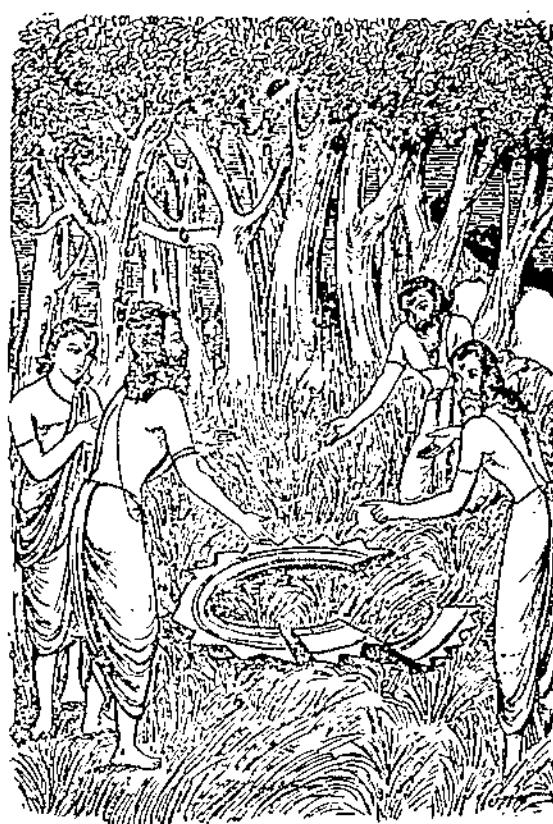
\* अक्षीयसंहिता श्रीमान् लक्ष्मणसर्वतः ।

\*\* ५५५ द्वैतो नोन्नद द्वयः द्वयः द्वयः ॥

( शिं पू० शा० सं० पू० छ० ३ । १७ )

मनके दोषोंसे रहित होकर एकमात्र भावान् शिवका ही ध्यान करते रहो । उन्हींमें निष्ठा रखकर उनके भजनमें अत्यधि रहो जाओ । उन्हींमें मन ल्याकर उनके आश्रित होकर रहो । सब कार्य करते हुए मनसे उन्हींका चिन्तन किया करो । एक सहस्र दिव्य वर्षोंके लिये दीर्घकालिक यज्ञका आरम्भ करके उसे पूर्ण करो । यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर साक्षात् वायुदेवता वहाँ पधारेंगे । फिर वे ही तुम सब लोगोंके कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे । तत्पश्चात् तुम सब लोग परम सुन्दर पुष्टमयी वाराणसीपुरीको जाना, जहाँ पिनाकपाणि श्रीमान् भगवान् विश्वनाथः भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये देवी पार्वतीके साथ सदा विहार करते हैं । द्विजोत्तमो ! वहाँ तुम्हें बड़ा भारी आश्र्य दिखायी देगा । उस आश्र्यको देखकर तुम फिर मेरे पास आना, तब मैं तुम्हें मोक्षका उपाय बताऊँगा । उस उपायसे एक ही जन्ममें भुक्ति तुम्हारे हाथमें आ जायगी, जो अनेक जन्मोंके संसारबन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली होगी । यह मैंने मनोमय चक्रका निर्माण किया है । इस चक्रको मैं यहाँसे छोड़ता हूँ । जहाँ जाकर इसकी नैमि विशीर्ण हो जाय—दूट-फूट जाय, वही तपस्याके लिये शुभ देश है ।

ऐसा कहकर पितामह ब्रह्माने उस सूर्यतुल्य तेजस्वी मनोमय चक्रकी ओर देला और महादेवजीको प्रणाम करके उसे छोड़ दिया । वे सब व्राक्षण उन लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम करके उस स्थानके लिये चल दिये, जहाँ उस चक्रकी नैमि जीर्ण-शीर्ण होनेवाली थी । ब्रह्माजीका फौका हुआ वह सुन्दर चक्र मनोहर शिलाखण्डोंसे युक्त और निर्मल एवं स्वादिष्ठ जलसे पूर्ण किसी वनमें गिरा । उस चक्रकी नैमिके



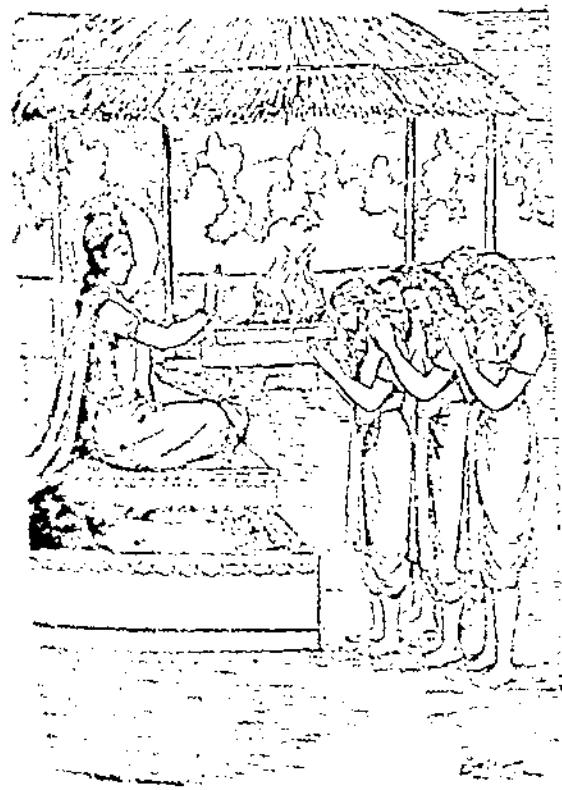
शीर्ण होनेसे वह मुनिपूजित वन नैमित्य नामसे विस्तृत हुआ । अनेक यदृ, गन्धर्व और विद्याधर वहाँ आक्रम रहने लगे । पूर्वकालमें जगत्की सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले विश्वस्था एवं गार्हपत्य अग्निके उपासक ब्रह्मण प्रजापतियोंने वहाँ दिव्य यज्ञका आरम्भ किया था । वहाँ शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् महर्षियोंने शक्ति ज्ञान और क्रियायोगके द्वारा शास्त्रीय विधिका अनुग्रह किया था । उसी स्थानपर वेदवेत्ता विद्वान् सदा वाद और जल्यके बलसे युक्त वचनोद्वारा अतिवाद करनेवाले वेदवहिष्कृत नास्तिकोंको पराहत या पराजित करते थे । तभीसे नैमित्यारण्य ऋषियोंकी तपस्याके योग्य स्थान वन गया । स्फटिकमणिमय पर्वतकी शिलाओंसे झरते हुए अमृतके समान मधुर एवं स्वच्छ जलके कारण वह वन बड़ा रमणीय प्रतीत होता है । वहाँ प्रायः अत्यन्त रसीले फल देनेवाले वृक्ष हैं तथा उस वनमें हिंसक जीव-जन्मुओंका अभाव है । (अथाय ३)

नैमित्यारण्यमें दीर्घसन्त्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन, उनका सत्कार तथा ऋषियोंके पूछनेपर वायुके द्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरे ! उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने उस देशमें महादेवजीकी आराधना करते हुए एक महान् यज्ञका

द्वारा दीक्षी आज्ञा में बायुदेव त्वयं बहौँ पधारे । उनको  
अब ऐसे शीर्षकालिक यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले वे मुनि  
द्वारा दीक्षी वातको बाद करके अनुपम हर्षका अनुभव करने  
लो । उन नवने उठकर आकाशाजन्मा बायुदेवता को  
प्रणाम किया और उन्हें चैठने के लिये एक नोनेका चना  
इन्ह अग्न दिया । बायुदेवता उस आमनपर वैटे ।  
मुनिसंने उनकी विधिवत् पूजा की । तदनन्तर उन सबका  
अनित्यन करके वे कदाल-मङ्गल पूछने लो ।

वायुदेवता बोले—व्राह्मणो ! इस महान् वज्रका अनुश्रान् पूर्ण होनेतक तुम नव लोग सकुशल रहे न ? वज्रहत्ता देखोही देखोने तुम्हें वाप्ता तो नहीं पढ़ूँचायी ? तुम्हें कोई प्रशंसित तो नहीं करना पड़ा ? तुम्हारे वज्रमें कोई दोष तो नहीं आया ? क्या तुमलोगोने स्तोत्र और शब्दग्रहोदारा देखाओका तथा पितृकर्मोदारा पितरोंका भलीभाँति पूजन उठके वज्रविधिका अनुश्रान् भलीभाँति सम्पन्न किया ? इस भाषणकी समाप्ति हो जानेपर अब आपलोग क्या करना चाहते हैं ?



दूसरी बार - प्रभो! हाँ अन्नदाता दिक्षिति  
में वह एक दृष्टि जो गंगा तद यज्ञ इत्या अन्नदाता  
दिक्षिति में ईश्वर इत्यत्त्वा भी उत्तम हो गयी।

अद्य पहलेका ब्रूक्तान्त सुनिये । हमारा हृदय अस्तवान्वकारुरु  
आकाल्प हो गया था, तब हमने विज्ञातकी प्राप्ति के लिये  
पूर्वकालमें प्रवापत्तिकी उपायता दी । शरणगतवत्सल  
प्रजापतिने हम शरणगतोंपर बुझा करके इन प्रसार कहा—  
‘आहागो ! रुद्रदेव नवसे थ्रेषु हैं । वे ही परम कारण हैं ।  
उन्हें तर्कसे नहीं जाना जा सकता । भक्तिमात् पुरुष ही  
उनके त्वलपको ठीक-ठीक देखता और भगवता है । भक्ति  
भी उनकी बुझासे ही मिलती है और उन कृपासे ही  
परमामानदकी प्राप्ति होती है । अतः उनके ब्रूपप्रगाढ़को  
प्राप्त करनेके लिये तुमलोग नैमित्यरूपमें वशका आराधन  
करो । दीर्घकालतक चलनेवाले उम वशके द्वारा परम कारण  
रुद्रदेवकी आराधना करो । वशक अत्समें उन रुद्रदेवके  
ब्रूपप्रगाढ़से वाकुदेवता वहाँ पथरेंगे । उनके मुडसे वहाँ  
तुम्हें शानदार होंगा और उनसे कल्पाशको प्राप्ति होगी ।  
महाभाग ! ऐसा आदेश देकर परमश्रीमें इस सदसो वहाँ  
भेजा । हम इन देशमें आइके आगमनकी प्रतीक्षा करते  
हुए एक नहरा दिव्य वरोतक श्री किंचित्क देवते अतुङ्गनमें  
लगे रहे हैं । अतः इन समय आइके आगमनके मिला  
हमसे लिये दूसरी कोई प्रार्थनीय नहु नहीं है ।

दीर्घकालसे यशोनुष्ठानमें लो हुए उन सदृशियों  
यह पुगतन वृत्तान्त कुप्रकर यादुदेवता मनसीभाव प्रदान  
हो भुक्तिमात्र से घिरे हुए यद्यु देव रहे । किंतु उन सदृशों के दृष्टिकोण  
उनके भक्तिमात्रकी वृद्धिके लिये उन्होंने भगवद् गीतके  
साथ आदि एवं अन्यकी संक्षेपसे धत्ता ।

जैमिपारप्यके चर्मियोंने पुढ़ा—देव ! अस्ते  
ईभरविप्रयक धान हैं प्राप्त किंतु ? तथा आप प्राप्तवाहक  
ग्रहणकीकृत शिव्य किंतु प्रश्नार्थकर्ता

वानुदेवता बोले—पर्यन्ते ! उसीमें लगात लग  
है कार्यदिक्षित भवति भवति जीति । तो यही वानुदेव  
ब्रह्मानि द्वृष्टिर्थी भावती दम्भा ही उसी द्वारा लगात  
के कान्ध से लग उत्तरिय देहानि तैयार की गई इन्द्रिय  
रिय । वे दिवर उत्तरामरी द्वारा लग लगात लगात  
हृषीकेश से ऐष्ट देखाय देहानि तैयार की गई इन्द्रिय  
कुद्र उत्तर द्वारा लगात लगात । तो उसी दम्भा  
पर्यन्ते भावति भवति जीति । तो उसी दम्भा  
जीति भावति भवति जीति । तो उसी दम्भा  
दम्भा भावति भवति जीति ।

सृष्टि करने लगे । साक्षात् परमेश्वर शिवसे सुनकर व्रहाजीने अमृतस्वरूप शान प्राप्त किया था, इसलिये मैंने तपस्याके बलसे उन्हींके मुखसे उस ज्ञानको उपलब्ध किया ।

**मुनियोंने पूछा—**आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया, जो सत्यसे भी परम सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परमानन्दको प्राप्त करता है ?

**वायुदेवता वोले—**महर्षियो ! मैंने पूर्वकालमें पशु, पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये । अज्ञान-से उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है । वस्तुके विवेकका नाम ज्ञान है । वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड़ ( प्रकृति ), चेतन ( जीव ) और उन दोनोंका नियन्ता ( परमेश्वर ) । इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं । तत्त्वज्ञ पुरुष प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वोंको क्षर, अक्षर तथा उन दोनोंसे अतीत कहते हैं । अक्षर ही पशु कहा गया है । क्षर तत्त्वका ही नाम पाश है तथा क्षर और अक्षर दोनोंसे परे जो परमतत्त्व है, उसीको पति या पशुपति कहते हैं । प्रकृति-को ही क्षर कहा गया है । पुरुष ( जीव ) को ही अक्षर कहते हैं और जो इन दोनोंको प्रेरित करता है, वह क्षर और अक्षर दोनोंसे भिन्न तत्त्व परमेश्वर कहा गया है । मायाका ही नाम प्रकृति है । पुरुष उस मायासे आवृत है । मल और कर्मके द्वारा प्रकृतिका पुरुषके साथ सम्बन्ध होता है । शिव ही इन दोनोंके प्रेरक ईश्वर हैं । माया महेश्वरकी शक्ति है । चित्तस्वरूप जीव उस मायासे आवृत है । चेतन जीवको आच्छादित करनेवाला अज्ञानमय पाश ही मल कहलाता है । उससे शुद्ध हो जानेपर जीव स्वतः शिव हो जाता है । वह विशुद्ध ही शिवत्व है ।

**मुनियोंने पूछा—**सर्वव्यापी चेतनको माया किस हेतुसे आवृत करती है ? किसलिये पुरुषको आवरण प्राप्त होता है और किस उपायसे उसका निवारण होता है ?

**वायुदेवता वोले—**व्यापक तत्त्वको भी आंशिक आवरण प्राप्त होता है; क्योंकि कला आदि भी व्यापक हैं । भोगके लिये किया गया कर्म ही उस आवरणमें कारण है । मलका नाश होनेसे वह आवरण दूर हो जाता है । कला, विद्या, राग, काल और नियति—इन्हींका कला आदि कहते हैं । कर्मफलका जो उपभोग करता है, उनींका नाम पुरुष ( जीव ) है । कर्म दो प्रकारके हैं—पुण्यकर्म और पापकर्म । पुण्यकर्मका

फल सुख और पापकर्मका फल दुःख है । कर्म अनादि है और फलका उपभोग कर लेनेपर उसका अन्त हो जाता है । यद्यपि जड़ कर्मका चेतन आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है तथापि अज्ञानवश जीवने उसे अपने-आपमें मन सकता है । भोग कर्मका विनाश करनेवाला है, प्रकृतिके भेद कहते हैं और भोगका साधन है शरीर । वाहा इन्द्रियों और अन्तःकरण उसके द्वारा हैं । अतिशय भक्तिभावसे उपलब्ध हुए महेश्वरके कृपाप्रसादसे मलका नाश होता है और मल नाश हो जानेपर पुरुष निर्मल—शिवके समान हो जाता है विद्या पुरुषकी ज्ञानशक्तिको और कला उसकी क्रियाशक्ति अभिव्यक्त करनेवाली है । राग भोग्य वस्तुके लिये क्रिया प्रवृत्त करनेवाला होता है । काल उसमें अवन्नेदक होता और नियति उसे नियन्त्रणमें रखनेवाली है । अव्यक्तत्व कारण है, वह त्रिगुणमय है; उसीसे जड़ जगतकी उर्स होती है और उसीमें उसका लय होता है । तत्त्वचिन्तक एवं उस अव्यक्तको ही प्रधान और प्रकृति कहते हैं । सत्त्व, रु और तम—ये तीनों युग प्रकृतिसे प्रकट होते हैं; तिलमें तेल की भाँति वे प्रकृतिमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं । सुख और उसके हेतुको संक्षेपसे सात्त्विक कहा गया है, दुःख और उसके हेतु राजस कार्य हैं तथा जड़ता और मोह—ये तमोगुण कार्य हैं । सात्त्विकी वृत्ति ऊर्ध्वको ले जानेवाली तामसीवृत्ति अधोगतिमें डालनेवाली है तथा राजसीवृत्ति मध्यस्थितिमें रखनेवाली है । पाँच तन्मात्राएँ, पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्रधान ( चित्त ), महत्त्व ( बुद्धि ), अहंकार और मन—ये चार अन्तःकरण—उन मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं । इस प्रकार संक्षेपसे ही विभास-सहित अव्यक्त ( प्रकृति ) का वर्णन किया गया । कारणावस्थामें रहनेपर ही इसे अव्यक्त कहते हैं और शरीर आदिके लागते जब वह कार्यावस्थाको प्राप्त होता है, तब उसकी 'व्यक्त' स्थित होती है—ठीक उसी तरह, जैसे कारणावस्थामें स्थित होनेवाले जिसे हम 'भिन्नी' कहते हैं, वही कार्यावस्थामें 'धट' आदि नाम धारण कर लेती है । जैसे धट आदि कार्य मृतिका आदि कारणसे आंशिक भिन्न नहीं है, उसी प्रकार धट आदि व्यक्त पदार्थ अव्यक्तसे आंशिक भिन्न नहीं है । इसमें एकमात्र अव्यक्त ही कारण, करण, उनका आधारमूल धट तथा भोग वस्तु है, दूसरा कोई नहीं ।

**मुनियोंने पूछा—**प्रभो ! बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर-

प्रतिरिक्षिये आत्मा नामक वस्तुकी वास्तविक स्थिति है ?

यथोदेवता घोले—महर्षियो ! सर्वव्यापी चेतनका दुष्टि इन्द्रिय और शरीरसे पार्थक्य अवश्य है । आत्मा नामक चेतन प्रार्थ निश्चय ही विद्यमान है; परंतु उसकी सत्तामें किसी ऐसी उपलब्धि बहुत ही कठिन है । सत्पुरुष दुष्टि, ईश्वर और शरीरको आत्मा नहीं मानते; क्योंकि स्मृति ( बुद्धिज्ञान ) अनियत है तथा उसे सम्पूर्ण शरीरका एक लाय अनुभव नहीं होता । इसीलिये वेदों और वेदान्तोंमें अत्यधिक पूर्णमुख्य विषयोंका समरणकर्ता सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक तथा अन्तर्यामी कहा जाता है । यह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है । न ऊपर है, न अगल-सामये है न नीचे है और न किसी स्थान-विद्येषमें । यह सम्पूर्ण चल शरीरोंमें अविचल, निरकार एवं अविनाशी रूपसे वित है । ज्ञानी पुरुष निरन्तर विचार करनेसे उस आत्म-विद्यमा साक्षात्कार कर पाते हैं ।\*

पुरुषका जो यह शरीर कहा गया है, इससे बढ़कर श्रुद्ध, परायीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है । यही ही उपरिकी सूचियोंका मूल कारण है । उससे युक्त

हुआ पुरुष अपने दर्मके अनुज्ञार तुली, तुली और मूढ़ होता है ।† जैसे पानीसे तौंचा हुआ खेत अङ्गुर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अज्ञानसे आच्छायित हुआ कर्म नृत्न शरीरको जन्म देता है । वे शरीर अल्पता दुःखोंके आलत्र साने जाते हैं । इनकी मृत्यु अनिवार्य होती है । भूतकालमें कितने ही शरीर नष्ट हो गये और भविष्यकालमें सहजों शरीर आनेवाले हैं, वे सब आ-आकर जब जीर्ण-शोर्ज हो जाते हैं, तब पुरुष उन्हें छोड़ देता है । कोई भी जीवात्मा किन्तु भी शरीरमें अनन्त कालतक रहनेका अवनर नहीं पाता । वहाँ स्त्रियों, पुजारी और वन्धु-वान्यवेसे जो मिलन होता है, वह परिकल्पों मार्गमें मिले हुए दूनरे परिकल्पोंके नमामसके शी समान है । जैसे महासागरमें एक ज्ञातु कहनेसे और दूगरा काष्ठ कहनेसे वहता आता है, वे दोनों ज्ञातु कहनी योद्धी देवके लिये मिल जाते हैं और मिलकर क्षिर विद्युत जाते हैं । उसी प्रकार प्राणियोंका यह समागम भी संयोग-वियोगसे उक्त है ।‡ ब्रह्माजी-से केवर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु करे गये हैं । उन सभी पशुओंके लिये ही वह दण्डन्त या दर्शन-वाच्य कहा गया है । यह जीव पाशमें बँधता और मुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है । यह ईस्तरी लीलाका सामन-भूत है, ऐसा ज्ञानी गमात्मा कहते हैं । ( अध्याय ३-२ )

### महेश्वरकी महत्त्वाका प्रतिपादन

यथोदेवता कहते हैं—महर्षियो ! इस विश्वका निर्माण बनेवाला कोई पति है, जो अनन्त रमणीय गुणोंका संधर रहा जा रहा है । वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है । उनके लिया संवारकी सूषित कैते हो करती है; कर्त्तृकि उनकी जीव और पाश अचेतन है । प्रधान, परमाणु शादि जैसे वे जड़ जल्द हैं, उन सबका कर्ता वह पति ही है—वह

वात स्वां नमश्वरमें आ जाती है । जिनी उमियान् या जेतन कारणके लिया इन जड़ तनोंना सिर्भाय रहने नहीं चाहता है । पशु, पाश और पश्चिमा जौ वामपाशमें पूर्णदृश्य भूल्य है । उसे जानकर ही ब्रह्मवेता पुरुष देविये मृग रहता है । उस और अक्षर—ये दोनों एक दूसरेमें गंगुल होते हैं । जीव या महेश्वर ही वर्त्तमानक जगत् या भवति देव भवति है ।

\* न य यो न एमानेप नैव चारि नद्युतमः । वैष्णवेष्व नाति विद्युत् ॥ १४४४ ॥

\*\* वैष्णवेष्व वैष्णव वैष्णव वैष्णवः । तदा वैष्णवे न देवता वैष्णवः ॥ १४४५ ॥

† वैष्णव वैष्णव वैष्णव वैष्णवः ॥ १४४६ ॥

‡ वैष्णव वैष्णव वैष्णव वैष्णवः ॥ १४४७ ॥

\*\* वैष्णव वैष्णव वैष्णव वैष्णवः ॥ १४४८ ॥

† वैष्णव वैष्णव वैष्णव वैष्णवः ॥ १४४९ ॥

\*\* वैष्णव वैष्णव वैष्णव वैष्णवः ॥ १४५० ॥

† वैष्णव वैष्णव वैष्णव वैष्णवः ॥ १४५१ ॥

वे ही जगत्का वन्दनसे छुड़ानेवाले हैं। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—ये तीन ही तत्त्व जानने योग्य हैं। विश्व पुरुषोंके लिये इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु जानने योग्य नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं। ये ही सबसे पहले देवताओंमें ब्रह्माजीको उत्तम करते हैं। श्रुति कहती है कि ‘रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ महान् ऋषि हैं।’ मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अङ्गकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं।\* इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त मृश्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे प्रह सारा जगत् परिषूर्ण है। इनके सब ओर हाथ-पैर, नेत्र, परस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप करके स्थित हैं। ये मण्डूर्ण इन्द्रियोंके विक्षयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और मुद्दद हैं। ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवालों कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदयनुफ़ार्में निवास करते हैं।†

\* विश्वरूपादधिको रुद्रो महर्पिरिनि हि श्रुतिः ॥  
वेदाहमेतं पुरुषं महान्ममृतं धृवम् ।  
आदित्यवर्णं नवसः परस्तासंभितं प्रभुम् ॥  
( शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६ । १७-१८ )

† सर्वतःपाणिपादोऽप्य सर्वतोऽशिशिरोमुखः ।  
सर्वतःशुनिनोहोके सर्वतावृत्य तिष्ठति ॥  
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ।  
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुदृढः ॥  
मन्त्रमुरापि यः पश्यत्वकर्णोऽपि शृणोति यः ।  
सर्वं वेत्ति न वेत्तात्य तत्त्वातुः पुरुषं परम् ॥  
भजोरण्यान्महतो मर्दायानयमव्ययः ।  
युद्धायां निहितक्षापि जन्मोरत्य नहेश्वरः ॥  
( शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६ । २१-२४ )

एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष ( शरीर ) का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मस्य फलोंका स्वाद लेलेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है।\* जीवात्मा इस वृक्षके प्रति आसक्तिमें हूँचा हुआ है, अतः मोहित होकर शोक करता रहता है। वह जब कभी भगवत्कृपासे भक्तसेवित परम कारणरूप परमेश्वरका और उनकी महिमाका साक्षात्कार कर लेता है, तब शोकरहित हो सुखी हो जाता है। छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रखता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया ममझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है।† ये विश्वकर्मा महेश्वर ही परम देवता परमात्मा हैं, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं। उन्हे जानकर ही पुरुष परमानन्दमय अमृतका अनुभव करता है। ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ, असीम एवं अविनाशी परमात्मा-में विद्या और अविद्या दोनों गूढ़भावसे स्थित हैं। विनाश-शील जडवर्गको ही यहाँ अविद्या कहा गया है और अविनाशी जीवको विद्या नाम दिया गया है; जो उन दोनों विद्या और अविद्यापर शासन करते हैं, वे महेश्वर उनसे सर्वया भिन्न—विलक्षण हैं। ये प्रतापी महेश्वर इस जगत्में समष्टि भूत और इन्द्रियवर्ग रूप एक-एक जालके अनेक प्रकारसे रचकर इसका विस्तार करते हैं। फिर अन्तमें सहार करके सबको अनेकसे एकमें परिणित कर देते हैं तथा पुनः सृष्टिकालमें सबकी पूर्ववत् रचना करके सबपर आधिपत्य करते हैं। जैसे सूर्य अकेला ही ऊपर-नीचे तथा अगल-गल्ली दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी देवीप्रभाग होता है, उसी प्रकार ये भजनीय परमेश्वर अकेले ही तमस कारणरूप वृश्ची आदि तत्त्वोंका नियमन करते हैं। श्रद्ध और भक्तिके भावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित के जानेवाले, जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याण स्वरूप एवं सोलह कलाओंकी रचना कर उन-

\* द्वौ सुप्ताणे च सत्यजौ सनानं वृक्षनामिती ।  
द्वोऽस्ति पिष्पलं स्वादु परोऽनशनत् प्रपद्यति ॥  
( शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६ । ३० )  
† द्वन्द्वासि यशः क्रतवो यद्गतं मव्यमेव च ॥  
माया विरवं सज्जत्रासिन्निविद्ये मायया परः ।  
माया तु प्रकृति विद्यान्मायिनं तु महेश्वरः ॥  
( शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६ । ३१-३२ )

महादेवको जी जानते हैं, वे शरीरके कन्धनको सदाके लिये ज्ञान देते हैं अथांत् इन्स-गृह्यके चक्रसे छूट जाते हैं।

ये ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वश, विशुगा-पीभार एवं नाभान् परात्मा व्रज्ज हैं। समूर्ण विश्व उन्होंका स्व है। ये सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अन्नमा हैं, सुतिके योग्य हैं, प्रजाभ्रोंके पालक, देवताभ्रोंके भी देवता श्रीर समूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं। अपने हृत्यमें विश्वभान उन परमेश्वरकी हम उपाधना करते हैं। जो काल अदिसे परं है, जिसे यह समस्त प्रपञ्च प्रकट होता है। जो यथाकि शालक, पापके नाशक, भोगेकि स्वामी तथा समूर्ण विश्वके धाम है, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताभ्रोंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति है, उन गुणोंभ्रोंके भी ईश्वर महादेवको हम यदसे परे जानते हैं। उनके प्राणीरूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनस्ती करण नहीं हैं। उनके न्यान और उनसे अधिक भी इन जगत्में कोई जीव दिव्याशी देता। जान, बल और क्रियारूप उनकी व्याधिक परायनि वेदोंमें नाना प्रकारकी मुनी गयी है। उन्होंने शनिर्योगे इन समूर्ण विश्वकी रचना हुई है। उनका न कोई व्यापी है, न कोई निदिनत चिह्न है, न उनपर लिपी न आज्ञा है। वह समस्त कारणोंका कारण होता हुआ ही उभया व्यापी भी है। उनका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके भाषा ग्रन्थादि ऐसु ही है। वह एक ही समूर्ण विश्वमें जान सूखोंमें गुण्यरूपने व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और परमीयता राज्यात्मा है। नन गत वेदोंमें उनका नन

करणेकाके उस परिवर्त शिखके जानकर मैं इस तंत्रम् वर्धनसे दूर्घटनाके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ। ५

यह वेदान्त शास्त्रका परम गोपनीय शान है; पूर्व कल्पमें सुओ इनका उपदेश किया गया था। मैंने यहे भारी गौभाग्यसे प्रदातारोंके सुनने इस ज्ञानको पाया था। जो शर-इमसे रहित हो, उसे इस परम उत्तम शानका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो अपना पुज्ज, सदाचारी तथा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये। जिनकी परमदेव परमेश्वरमें परम

६ परक्रियालक्षणः स पद पत्तेश्वरः ।

सर्वदिव विश्वार्थो भग्न लाग्न वसावरः ॥

तं विश्वरूपनन्दं भवताद्यं प्रवापनिर् ।

देवदेवं जग्नुर्द्यं स्वित्तम्भुगम्भदे ॥

कालादिपिः इते दग्धान् प्रजाः परित्ति ।

परमादै वाप्तुर्दं भेदेद्यं विश्वम च ॥

ननीश्वरां गरमे नुष्टुर्दं तं देवतानां वरदं च विष्ट ।

पति शीतां रात्रे परन्नादिशम देवं भुवेऽस्मरम् ॥

न नन्द विष्टे यादै वारो च न विष्टो ।

न करमोऽप्निभ्यापि वर्जन्यगति दृश्यते ।

परम्पर्य विकित दक्षिः हुनी वामपिरु धुतः ॥

दानं वलं विद्य वैष्य यान्यो विद्यमिदं इत्य ।

न नन्यान्ति शतः वृद्धिमीष विरु न वेदिता ।

कारणं दाम्याना च विद्यमधियापितः ॥

न चात्य विद्या विद्यन च वृद्धं कुरुत्य ।

स विद्येऽप्तम्भुगम्भदम्भादित्तिवद्यः ॥

भक्ति है, जैसे परमेश्वरमें है, वैसे ही गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही वे बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अतः संक्षेपसे यह सिद्धान्तकी बात मुनो। भगवान्

शिव प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। वे ही सृष्टिकालमें जगत्को रचते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं।  
(अध्याय ६)

## ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुखसे रुद्रदेवका प्राकृत्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सुष्ठुप्रचन्ना

तदनन्तर कालमहिमा, प्रलय, ब्रह्माण्डकी स्थिति तथा सर्व आदिका वर्णन करके वायुदेवताने कहा— पहले ब्रह्माजीने पाँच मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया, जो उनके ही समान थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—सनक, सनन्दन, विद्वान् सनातन, ऋषु और सनकुमार। वे सबके सब योगी, वीतराग और ईर्ष्यदोषसे रहित थे। इन सबका मन ईश्वरके चिन्तनमें लगा रहता था। इसलिये उन्होंने सुष्ठुप्रचन्नाकी इच्छा नहीं की। सुष्ठुसे विरत हो सनक आदि महात्मा जब चले गये, तब ब्रह्माजीने पुनः सुष्ठुकी इच्छासे बड़ी भारी तपस्या की। इस प्रकार दीर्घकालतक तपस्या करनेपर भी जब कोई काम न बना, तब उनके मनमें दुःख हुआ। उस दुःखसे क्रोध प्रकट हुआ। क्रोधसे आविष्ट होनेपर ब्रह्माजीके दोनों नेत्रोंसे ओँसूकी बूँदें गिरने लगीं। उन अश्रुविन्दुओंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। अश्रुसे उत्पन्न हुए उन सब भूत-प्रेतोंको देखकर ब्रह्माजीने अपनी निन्दा की। उस समय क्रोध और मोहके कारण उन्हें तीव्र मूर्च्छा आ गयी। क्रोधसे आविष्ट हुए प्रजापतिने मूर्च्छित होनेपर अपने प्राण त्याग दिये। तब प्राणोंके स्वामी भगवान् नीललोहित रुद्र अनुपम कृपा-प्रसाद प्रकट करनेके लिये ब्रह्माजीके मुखसे वहाँ प्रकट हुए। उन जगदीश्वर प्रभुने अपनेको ग्यारह रूपोंमें प्रकट किया। मदादेवजीने अपने उन महामना ग्यारह स्वरूपोंसे कहा—‘वचो ! मैंने लोकपर अनुग्रह करनेके लिये तुमलोगोंकी सुष्ठु की है; अतः तुम आलस्यरहित हो समूर्ण लोककी स्थापना, हितसाधन तथा प्रजा-संतानकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करो।’

महेश्वरके ऐसा कहनेपर वे रोने और चारों ओर दौड़ने लगे। रोने और दौड़नेके कारण उनका नाम ‘रुद्र’ हुआ। जो रुद्र हैं, वे निश्चय ही प्राण हैं और जो प्राण हैं, वे महात्मा रुद्र हैं। तप्तश्रात् ब्रह्मपुत्र महेश्वरने दया करके

मरे हुए देवता परमेश्वी ब्रह्माजीको पुनः प्राणदान दिया। ब्रह्माजीके शरीरमें प्राणोंके लौट आनेपर रुद्रदेवका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन विश्वानाथने ब्रह्माजीसे यह उत्तम बात कही—‘उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले जगत्कु महाभाग विरिच्च। डरो मत, डरो मत। मैंने तुम्हारे प्राणोंको नूतन जीवन प्रदान किया है; अतः मुखसे उठो।’ सद्गमे सुने हुए वाक्यकी भाँति उस मनोहर वचनको सुनकर ब्रह्माजीने प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर नेत्रोद्वारा धीरे भगवान् हरकी ओर देखा। उनके प्राण पहलेकी तरह लौट आये थे। अतः ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़ स्नेहयुक्त गम्भीर वाणीद्वारा उनसे कहा—‘प्रभो ! आप दर्शनमात्रसे मेरे मनको आनन्द प्रदान कर रहे हैं; अतः बताइये, आप कौन हैं ? जो समूर्ण जगत्के रूपमें स्थित हैं, क्या वे ही भगवान् आप ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए हैं ?’

उनकी यह बात सुनकर देवताओंके स्वामी महेश्वर अपने परम सुखदायक करकमलोद्वारा ब्रह्माजीका सर्व करते हुए बोले—‘देव ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि परमात्मा हूँ और इस समय तुम्हारा पुत्र होकर प्रव हुआ हूँ। ये जो ग्यारह रुद्र हैं, तुम्हारी सुरक्षाके लिये व आये हैं। अतः तुम मेरे अनुग्रहसे इस तीव्र मूर्च्छाको त्यागक जाग उठो और पूर्ववत् प्रजाकी सुष्ठु करो।’

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीके मनमें वृ प्रसन्नता हुई। उन विश्वामने आठ नामोद्वारा परमेश्व देवका स्वावन किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवन् ! रुद्र ! आपका तेज अमल सूर्योंके समान अनन्त है। आपको नमस्कार है। रुद्रल और जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है नन्दी और सुरभि (कामधेनु) ये दोनों आपके स्वल्प हैं आप पृथ्वीलूपधारी शर्वको नमस्कार हैं। स्वर्णमय वायुरुपवाह

आपको नमस्कार है। आप ही ब्रह्मधारी इश हैं। आपको नमस्कार है। अल्पत लेजसी अभिल्प आप पशुपतिको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रांति युक्त आकाशधरधारी आप भीनदेवको नमस्कार हैं। उपरायगाले वज्रमानमूर्ति आपको नमस्कार है। सोमल्प आप अमृतमूर्ति महादेवजीको नमस्कार है। इस प्रकार आठ मूर्ति और आठ नामवाले आप भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है।\*

इस प्रकार विश्वनाथ महादेवजीकी स्तुति करके लंगरीतामह व्रहाने प्रणामपूर्वक उनसे प्रार्थना की—भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी मेरे पुत्र भगवान् महेश्वर ! आमनाशन ! आप सुषिके लिये मेरे शरीरसे उत्सन्न हुए हैं। इनसिये जगत्प्रभो ! इस महान् कार्यमें संलग्न हुए उस व्रहाजी आप सर्वत्र सहायता करें और स्वयं भी प्रजाओं सुषिकरें।

व्रहाजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर कल्पाणकारी, विपुरनाशक खद्देवने 'वहुत अच्छा' कहकर उनकी यात यान ही। तदनन्तर प्रश्न हुए महादेवजीका अभिनन्दन और सुषिके लिये उनकी आज्ञा पक्कर भगवान् व्रहाने अपाल्य प्रजाओंकी सुषिक आरम्भ की। उन्होंने अपने मनसे ही गर्वित, ध्यु अद्विता, पुलस्त्य, पुलह, कतु, दक्ष, अन्ति और वनिष्ठोंसुषिकी की। ये सब व्रहाजीके पुत्र कहे गये हैं। पर्म, संकल्प और शूद्रके साथ इनकी संख्या थार्द हो गई है। ये सब पुराने शूद्रस्य हैं। देवगणोंतहित इनके अद्द दिया दस कहे गये हैं, जो प्रजावान, शिवावान तथा अनित्यले अद्दहृत हैं। तत्प्रात् जलपर स्थित हुए एवं इस व्रहाजीने देवताओं, अमुरों, पितरों और मनुष्योंकी दृष्टि सर्वेश विचार किया। व्रहाजीने सुषिके लिये

सुनाधिस्थ हो अपने चित्तको एकाग्र किया। तत्प्रात् मुखसे देवताओंको, कोदसे पितरोंको, कटिके अपठे भागसे अमुरोंको तथा प्रजननेन्द्रिय ( लिङ्ग ) से सब गम्भीरोंको उत्सव किया। उनके गुदास्थानसे रक्षत उत्सव हुए, जो सदा भूतसे व्याकुल रहते हैं। उनमें तमोगुण और रजेगुण-की प्रधानता होती है। वे रातको विनरते और बदलान होते हैं। साँप, वर, भूत और गन्धर्व—ये भी व्रहाजीके अङ्गोंसे उत्सव हुए। उनके पश्चात्यागसे फूली हुए। वद्यस्वरासे अजड़म ( सावर ) प्राणियोंका बन्म हुआ। मुखते वर्षरों और पार्श्वभागसे भुजंगमोंकी उत्सति हुई। दोनों पैरसे पोड़े, हाथी, शरण, नीलगाय, मूर, ऊँट, खरब, नकु नामक मृग तथा पशु जातिके अन्वान्व प्राणी उत्सव हुए। रोमावलियोंसे ओषधियों और फल-मूलीय प्राकृत्य हुआ। व्रहाजीके पूर्ववर्ती मुखसे गायकी छन्द, शूर्विद, विश्रृतोम, रथन्तर नाम तथा अमित्रेन नामक वशी उत्सति हुई। उनके दक्षिण मुखसे वशुर्वेद, विष्णु छन्द, पश्चद्वा स्तोम, वृहत्लाम और उत्तर नामक यशसी उत्सति हुई। उन्होंने अपने पश्चिम मुखसे नामयैद, जग्नी छन्द सत्तदश स्तोम, वैलघ्य नाम और अतिग्रन्थ नामक यशसी प्रकट किया। उनके उत्तरदर्शी मुखसे एवं वैदिक नाम, अथर्ववेद, आत्मोर्यान नामक यस, असुष्टु छन्द और वैराज नामक सामका यादुभवि मुख। उनके अङ्गोंसे और भी वहुतसे छोट-बड़े प्राणी उत्सव हुए। उन्होंने यज, पिदाच, गन्धर्व, अप्सराओंके समुदाय, मनुष्य, लिंग, राक्षस, पश्ची, पशु, मूर और वर्ण अद्द कम्पर्ती लिया एवं अनित्य स्यावर-जलम यमरुदी सन्मा गी। उन्होंने विश्वेश जैसे-जैसे कर्म पूर्य करतेमें असाधि के फूल-फुके दृष्टि होतेपर उन्होंने निर उद्दी रूपोंमें असाधि। उन उम्मेये

दिये, जो पूर्वकल्यमें उन्हें प्राप्त थे। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न और नामरूप आदि पूर्ववत् रहते हैं, उसी प्रकार युगादि कालमें भी उनके पूर्वभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार स्वयम्भू व्रह्माजीकी लोकसृष्टि उन्हींके विभिन्न अङ्गोंसे प्रकट हुई है। महत्से लेकर विशेषपर्यन्त सब कुछ प्रकृतिका विकार है। यह प्राकृत जगत् चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्धासित, ग्रह और नक्षत्रोंसे मण्डित, नदियाँ, पर्वतों तथा समुद्रेसे अलंकृत और भाँति-भाँतिके रमणीय नगरों एवं समृद्धिशाली जनपदोंसे सुशोभित है। इसीको व्रह्माजीका बन या व्रह्म-वृक्ष कहते हैं।

उस व्रह्मवनमें अव्यक्त एवं सर्वज्ञ व्रह्म विचरते हैं। वह सनातन व्रह्मवृक्ष अव्यक्तरूपी वीजसे प्रकट एवं ईश्वरके

अनुग्रहपर स्थित है। उद्धि इसका तना और वडी-वडी डालियाँ हैं। इन्द्रियाँ भीतरके लोकले हैं। महानृत इसकी सीमा है। विशेष पदार्थ इसके निर्मल पत्ते हैं। धर्म और अधर्म इनके मुन्दर झूल हैं। इसमें मुख और दुःखस्थी कल लगते हैं तथा यह समूर्ण भूतोंके जीवनका सहारा है। व्राह्मणलोग व्युलोकको उनका मस्तक, आकाशको नाभि, चन्द्रमा और सूर्यको नेत्र, दिशाओंको कान और उच्चीको उनके पैर बताते हैं। वे अचिन्त्यत्वरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे व्राह्मण प्रकट हुए हैं। वक्षःस्थलके ऊपरी भागसे धनियाँकी उत्पत्ति हुई है, दोनों जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार उनके अङ्गोंसे ही समूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

( अध्याय ७-१२ )

## भगवान् रुद्रके व्रह्माजीके मुखसे प्रकट होनेका रहस्य, रुद्रके महामहिम स्वरूपका वर्णन, उनके द्वारा रुद्रगणोंकी सृष्टि तथा व्रह्माजीके रोकनेसे उनका सृष्टिसे विरत होना

**ऋषि बोले—**प्रभो ! आपने चतुर्मुख व्रह्माके मुख-से परमात्मा रुद्रदेवकी सृष्टि बतायी है। इस विषयमें हमको संशय होता है। जो प्रलयकालमें कुपित होकर व्रह्म, विष्णु और अग्निसहित समस्त लोकका संहार कर डालते हैं, जिन्हें व्रह्म और विष्णु भयसे प्रणाम करते हैं, जिन लोकसंहारकारी महेश्वरके वशमें वे दोनों सदा ही रहते हैं, जिन महादेवजीने पूर्वकालमें व्रह्म और विष्णुको अपने शरीरसे प्रकट किया था, जो प्रभु सदा ही उन दोनोंके वोगक्षेमका निर्बाह करनेवाले हैं, वे आदिदेव पुरातन पुरुष भगवान् रुद्र अव्यक्तजन्मा व्रह्माके पुत्र कैसे हो गये ? तात ! भगवान् व्रह्माने मुनियोंसे जैसी वात बतायी थी, वह सब आप ठीक-ठीक कहिये। भगवान् शिवके उत्तम यशका श्रवण करनेके लिये हमारे हृदयमें वडी श्रद्धा है।

वायुदेवताने कहा—**त्राहणो !** तुम सब लोग जिज्ञासा-में कुशल हो, अतः तुमने यह बहुत ही अचित प्रश्न किया है। मैंने भी पूर्वकालमें पितामह व्रह्माजीके समक्ष यही प्रश्न रखा था। उसके उत्तरमें पितामहने मुझसे जो कुछ कहा था, वही मैं तुम्हें बताऊँगा। जैसे दद्रदेव उत्पन्न हुए और किर जिन प्रकार व्रह्म और विष्णुकी परत्पर उत्पत्ति हुई, वह सब विषय सुना रहा हूँ। व्रह्म, विष्णु और रुद्र—तीनोंही

कारणात्मा हैं। वे क्रमशः चराचर जगत्की सृष्टि, पालन और सहारके हेतु हैं और साक्षात् महेश्वरसे प्रकट हुए हैं। उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है। वे परमेश्वरसे भावित और उनकी शक्तिसे अधिष्ठित हो सदा उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। पूर्वकालमें पिता महेश्वरने ही उन तीनोंको तीन कर्मोंमें नियुक्त किया था। व्रह्माकी सृष्टिकार्यमें, विष्णुकी रक्षार्थ-में तथा रुद्रकी संहरकार्यमें नियुक्ति हुई थी। कल्यान्तरमें परमेश्वर शिवके प्रसादसे रुद्रदेवने व्रह्म और नारायणकी सृष्टि की थी। इसी तरह दूसरे कल्यमें जगन्मय व्रह्माने रुद्र तथा विष्णुको उत्पन्न किया था। पिर कल्यान्तरमें भगवान् विष्णुने भी रुद्र तथा व्रह्माकी सृष्टि की थी। इस तरह पुनः व्रह्माने नारायणकी और रुद्रदेवने व्रह्माकी सृष्टि की। इन प्रकार विभिन्न कल्योंमें व्रह्म, विष्णु और महेश्वर परत्पर उत्पन्न होते और एक दूसरेका हित चाहते हैं। उन-उन कल्योंके वृत्तान्तको लेकर महर्षिगण उनके प्रभावका वर्णन किया करते हैं।

प्रत्येक कल्यमें भगवान् रुद्रके आविर्भावका जो कारण है उसे बता रहा हूँ। उन्हींके प्रादुर्भावसे व्रह्माजीकी दृष्टि प्रवाह अविच्छिन्नत्वपरसे चलता रहता है। व्रह्माद्यां उन्होंनेवाले व्रह्म प्रत्येक कल्यमें प्रजाकी सृष्टि करके प्राप्तिकी

ब्रह्मिनी के नाम से जब अत्यन्त दुखी हो मूर्छित हो जाते हैं तब उनके दुःखकी शान्ति और प्रजावर्गकी ब्रह्मिनी के लिये उन उन कहरोंमें द्वारगणके सामी कालब्रह्म नीललोहित महेश्वर द्वद्व अपने कारणभूत परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्माजीके पुत्र होकर उनपर अनुग्रह करते हैं। वे ही तेजोराशि, अनामय, अतादि, अनन्त, धाता, भूतसंहारक और सर्वव्यापी भगवान् इस परम ऐश्वर्यसे संयुक्त, परमेश्वरसे भावित और सदा उन्हींकी शक्तिसे अविष्ट हो उन्हेंके चिह्न धारण करते हैं। उन्हेंके नामसे प्रसिद्ध हो उन्हेंके समान रूप धारणकर उनके कार्य करनेमें यार्थ होते हैं। इनका सारा व्यवहार उन्हीं परमशत्रुके समान होता है। वे उनकी आज्ञाके पालक हैं। महसूस सूर्योंके नमान उनका तेज है। वे अर्धचन्द्रको आनन्दगणके रूपमें धारण करते हैं। उनके हार, चाँद्रकंद और कंद सर्पमय हैं। वे मूँजकी मेलला धारण करते हैं। जलधर, पिरिश और इन्द्र उनकी सेवामें खड़े रहते हैं तथा हाथमें कागदखण्ड उनकी शोभा बढ़ाता है। गङ्गाकी ऊँची तरङ्गोंसे उनके पिङ्गल वर्णवाले केश और मुख भर्गे रहते हैं। उनके कमरीय कैलाम पर्वतके विभिन्न प्राक्त दूषी हुई दाढ़वाले मिए आदि वन्य पशुओंसे आकर्षित हैं। उनके वायें कानोंके पास गोलाकार कुण्ठल शिलमिलाता रहता है। वे महान् बृप्तभूर भासी रहते हैं। उनकी वाणी महान् मेघकी गर्जनाके समान गमती है। कान्ति प्रचण्ड अग्निके समान उद्धीत है और

बल-प्राक्तम् भी महान् है। इस प्रकार ब्रह्मान् दद्रेश्वरम् विद्याल रूप वड़ा भवानक है। वे ब्रह्माजीको विनाश देने सुषिकार्यमें उनकी भद्रता करते हैं। अनः दद्रेश्वर कुमा-प्रमादसे प्रत्येक कलरमें प्रजापतिकी प्रजान्तुषि प्रगाढ़तमें निवायनी रहती है।

एक गमय ब्रह्माजीने नीललोहित भगवान् दद्रेश्वर करनेकी प्रार्थना की। तब भगवान् दद्रेश्वरमिक नीललोहित द्वारा बहुतसे पुरुषोंकी सृष्टि की। वे नद के ना उनके अपने ही नमान थे। मध्यमे जटान्तु धारण कर रहे थे। यसी निर्भव, नीलकण्ठ और विनेश थे। इस और गृह्य उनके पास नहीं पहुँचने पाती थी। नीलर्णदि शूल उनके बेष्ट आयुष थे। उन द्वारगणने यमर्पि नील भुवनोंसे आकर्षित कर लिया था। उन विविध दद्रोंहें देवकर पितामहने दद्रेश्वरमें कहा—“देवदेवेश्वर ! आपहो नमहस्तार है। आप ऐसी प्रजाओंकी सृष्टि न कीजिये, आपका कल्पना हो। अब दूसरी प्रजाओंही सृष्टि कीजिये, को मरण-पर्याप्ती हो।”

ब्रह्माजीके एसा कहनेर परमेश्वर दद्र उनसे लौटे दूर बोके—“परी सृष्टि कमी नहीं होगी। अगम प्रजामें वे दृष्टि तुम्हीं करो।” ब्रह्माजीने एसा कहनेर अन्त नुसोंके नामी भगवान् दद्र उन दद्रमजोंहें जाप प्राप्ती क्षुर्द्वं तरसें निवृत हो गये।

— — — — —

ब्रह्माजीके द्वारा अर्द्धनारीश्वररूपकी स्तुति तथा उस स्तोत्रकी महिमा



ग्रहा घोले—देव ! महादेव ! आपकी जय हो । ईश्वर ! महेश्वर ! आपकी जय हो ! सर्वगुणश्रेष्ठ शिव ! आपकी जय हो । सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी शंकर ! आपकी जय हो । प्रकृतिरूपिणी कल्याणमयी उमे ! आपकी जय हो । प्रकृतिकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रकृतिसे दूर रहनेवाली देवि ! आपकी जय हो । प्रकृतिसुन्दरि ! आपकी जय हो । अमोघ महामाया और सफल मनोरथवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो । अमोघ महालीला और कभी व्यर्थ न जानेवाले महान् वल्से युक्त परमेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो । सम्पूर्ण जगत्की माता उमे ! आपकी जय हो । विश्वजगन्मये ! आपकी जय हो । विश्वजगद्वात्रि ! आपकी जय हो । समस्त संसारकी सखी—सहायिके ! आपकी जय हो । प्रभो ! आपका ऐश्वर्य तथा धाम दोनों सनातन हैं । आपकी जय हो, जय हो । आपका रूप और अनुच्चर-वर्ग भी आपकी ही भाँति सनातन हैं । आपकी जय हो, जय हो । अपने तीन रूपोद्धारा तीनों लोकोंका निर्माण, पालन और संहार करनेवाली देवि ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । तीनों लोकों अथवा आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—तीनों आत्माओंकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रभो ! जगत्के कारण-तत्त्वोंका प्रादुर्भाव और विस्तार आपकी कृपादृष्टिके ही अधीन है, आपकी जय हो । प्रलयकालमें आपकी उपेक्षायुक्त कटाक्षर्योर्ध्व दृष्टिसे जो भयानक आग प्रकट होती

है, उसके द्वारा सारा भौतिक जगत् भस्त हो जाता है; आपकी जय हो ।

देवि ! आपके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान देवता आदिके लिये भी असम्भव है । आपकी जय हो । आप अत्मात्मके सूक्ष्म ज्ञानसे प्रकाशित होती हैं । आपकी जय हो । ईश्वरि ! आपने स्थूल आत्मशक्तिसे चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है । आपकी जय हो, जय हो । प्रभो ! विश्वके तत्त्वोंका समुदाय अनेक और एकरूपमें आपके ही आधारपर स्थित है, आपकी जय हो । आपके श्रेष्ठ सेवकोंका समूह बड़े-बड़े असुरोंके मरक-पर पाँव रखता है । आपकी जय हो । शरणागतोंकी रक्षा करनेमें अतिशय समर्थ परमेश्वरि ! आपकी जय हो । संसार-रूपी विषवृक्षके उगनेवाले अङ्गुरोंका उन्मूलन करनेवाली उमे ! आपकी जय हो । प्रादेशिक ऐश्वर्य, वीर्य और शौर्यका विस्तार करनेवाले देव ! आपकी जय हो । विश्वसे परे विद्यमान देव ! आपने अपने वैभवसे दूसरोंके वैभवोंको तिरस्कृत कर दिया है, आपकी जय हो । पञ्चविध मोक्षरूप पुरुषार्थके प्रयोगद्वारा परमामन्द-मय अमृतकी प्राप्ति करनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । पञ्चविध पुरुषार्थके विज्ञानरूप अमृतसे परिपूर्ण स्तोत्रस्वरूपिणी परमेश्वरि ! आपकी जय हो । अत्यन्त भयानक संसाररूपी महारोगको दूर करनेवाले वैद्यशिरोमणि ! आपकी जय हो । अनादि कर्ममल एवं अशानरूपी अन्धकारराशिको दूर करनेवाली चन्द्रिकारूपिणी शिवे ! आपकी जय हो । विपुरका विनाश करनेके लिये कालाभिस्वरूप महादेव ! आपकी जय हो । विपुरमैरवि ! आपकी जय हो । तीनों गुणोंसे मुक्त महेश्वर ! आपकी जय हो । तीनों गुणोंका मर्दन करनेवाली महेश्वरि ! आपकी जय हो । आदिसर्वत्रि ! आपकी जय हो । सरको ज्ञान देनेवाली देवि ! आपकी जय हो । प्रचुर दिव्य अङ्गोंसे सुशोभित देव ! आपकी जय हो । मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली देवि ! आपकी जय हो । भगवन् ! देव ! कहाँ तो आपका उत्कृष्ट धाम और कहाँ मेरी तुच्छ बाणी; तथापि भक्तिमावसे ग्रलाप करते हुए मुक्त सेवकके अपराधको अपक्षमा कर दें॥

इस प्रकार सुन्दर उक्तियोद्धारा भगवान् रुद्र और देवीका एक

\* ग्रहोवाच—

जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर ।
जय सर्वगुणश्रेष्ठ जय सर्वसुराभिः ॥
जय प्रकृतिकल्याणि जय प्रकृतिनायिके ।
जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि ॥
जयामोघमहामाय जयामोघमनोरय ।
जयामोघमहालील जयामोघमहावृत ॥

नाथ गुणगान करके चतुर्मुख ब्रह्माने रुद्र एवं रुद्राणीको वारंवार नमस्कार किया । ब्रह्माजीके द्वारा पठित वह पवित्र एवं उत्तम अद्वितीयधर्मस्तोत्र शिव तथा पार्वतीके हर्षको बढ़ानेवाला है । जो भक्तिपूर्वक जिम किसी भी गुरुकी शिक्षासे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शिव और पार्वतीको प्रसन्न करनेके कारण

अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर लेता है । जो समस्त भुक्तोंके प्राणियोंको उत्तम करनेवाले हैं, जिनके विग्रह जन्म और मृत्युने रहित हैं तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दरी नारीसे लगाएं एक ही शरीर धारण करके लिया है, उन कल्पाभवारी भगवान् शिव और शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ । (अध्याय २५ )

### महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकृत्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव

ब्रह्मुदेवता कहते हैं—तदनन्तर महादेवजी महामेव-  
की गर्जनाके समान मधुर-गम्भीर, मङ्गलदायिनी एवं मनोहर  
वाणीमें वोले—ब्रह्मन् ! तुमने इस समय प्रजाज्ञनेकी  
वृद्धिके लिये ही तपस्या की है । तुम्हारी इस तपस्यासे मैं  
खुश हूँ और तुम्हें अभीष्ट वर देता हूँ ।' इस प्रकार परम  
उद्धर तथा स्वभावतः मधुर वचन कहकर देवेश्वर हसने अपने  
शरीरके सम्भागमें देवी रुद्राणीको प्रकट किया । जिन दिव्य गुण-  
सम्पाद देवीको ब्रह्मवेत्ता पुरुष परमात्मा शिवकी पराशक्ति  
मिलते हैं तथा जिनमें जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकारोंका  
प्रभव नहीं है वे भवानी उस समय जिवके अङ्गसे प्रकट हुईं ।  
जिनमा परमभाव देवताओंको भी जात नहीं है, वे समस्त  
देवताओंकी अपीक्षिती देवी अपने स्वामीके अङ्गसे प्रकट  
हुईं । उन सर्वलोकमहेश्वरी परमेश्वरीको देखकर विराट्  
पुण्य व्रहणे प्रणाम किया और उन सर्वज्ञा, सर्वव्यापिनी,  
मूर्त्ति, सदसद्वायसे रहित और अपनी प्रभासे इस समूर्ज  
वग्रों प्रकाशित करनेवाली पराशक्ति महादेवीसे इस प्रकार  
प्राप्ता थी ।

ब्रह्माजी वोले—मर्यज्ञगमनस्थी देवि ! महादेवजीमें  
सबसे पहले सुझे उत्तम क्रिया और प्रजास्ती वृद्धिके कारणमें  
लगाया । इनकी आज्ञामें मैं समस्त जगत्‌मध्ये सूर्य उत्ता  
हूँ । किन्तु देवि ! मेरे जानकिर नैसलामें रथे गए देवता  
आदि समस्त प्राणी वारंवार सूर्ये करनेवार भी वह नहीं  
रहे हैं । अतः अब मैं भैशुनी युष्मि अर्थे ही अपनी नारी  
प्रजाको बढ़ाना चाहता हूँ । अपने पहले नारी-कुलभा  
प्रादुर्भाव नहीं हुआ था । इसलिये नारी-कुलकी युष्मि तरोंहें  
लिये मुझमें शक्ति नहीं है । समूर्ज शक्तिमें आकिर्ति ।  
आपसे ही होता है । अतः मर्यज्ञ भद्रोंसे मैं प्राप्त हो  
शक्ति देनेवाली आप वरदायिनी भावा देंसीसे ही प्राप्ति  
करता हूँ, संलारभयको दूर करनेवाली भर्त्यार्दिसी रहौं ।  
इस चराचर जगत्‌मध्ये युद्धके लिये अर्थ भगवन्  
एक अंदरते मेरे पुत्र दद्दी पुरी हो जाये ।  
ब्रह्मायांति ब्रह्माकि इन प्रकार रामना करनेवार देवी  
रुद्राणीसे अपनी भौंदेवि सम्भागमें अपने ही वहाँ  
कान्तिमरी एक यत्ति प्रकट हो । उन दिव्य दर्शनोंका



**व्रह्मा वोले—**देव ! महादेव ! आपकी जय हो । ईश्वर ! महेश्वर ! आपकी जय हो ! सर्वगुणश्रेष्ठ शिव ! आपकी जय हो । सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी शंकर ! आपकी जय हो । प्रकृतिलिपिणी कल्याणमयी उमे ! आपकी जय हो । प्रकृतिकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रकृतिसे दूर रहनेवाली देवि ! आपकी जय हो । प्रकृतिसुन्दरि ! आपकी जय हो । अमोघ महामाया और सफल मनोरथवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो । अमोघ महालीला और कभी व्यर्थ न जानेवाले महान् वलसे युक्त परमेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो । सम्पूर्ण जगत्की माता उमे ! आपकी जय हो । विश्वजगन्मये ! आपकी जय हो । विश्वजगदात्रि ! आपकी जय हो । समस्त संसारकी सखी—सहायिके ! आपकी जय हो । प्रभो ! आपका ऐश्वर्य तथा धाम दोनों सनातन हैं । आपकी जय हो, जय हो । आपका रूप और अनुचर-वर्ग भी आपकी ही भौति सनातन हैं । आपकी जय हो, जय हो । अपने तीन रूपोंद्वारा तीनों लोकोंका निर्माण, पालन और संहार करनेवाली देवि ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । तीनों लोकों अथवा आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—तीनों आत्माओंकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रभो ! जगत्के कारण-तत्त्वोंका प्रादुर्भाव और विस्तार आपकी कृपाद्वाटिके ही अधीन है, आपकी जय हो । प्रलयकालमें आपकी उपेक्षायुक्त कटाक्षपूर्ण द्विसे जो भयानक आग प्रकट होती

है, उसके द्वारा सारा भौतिक जगत् भस्त हो जाता है; आपकी जय हो ।

देवि ! आपके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान देवता आदिके लिये भी असम्भव है । आपकी जय हो । आप आत्मतत्त्वके सूक्ष्म ज्ञानसे प्रकाशित होती हैं । आपकी जय हो । ईश्वरि ! आपने स्थूल आत्मशक्तिसे चराचर जगत्को व्याप कर रखा है । आपकी जय हो, जय हो । प्रभो ! विश्वके तत्त्वोंका समुदाय अनेक और एकरूपमें आपके ही आधारपर स्थित है, आपकी जय हो । आपके श्रेष्ठ सेवकोंका समूह बड़े-बड़े असुरोंके मत्क-पर पाँव रखता है । आपकी जय हो । शरणागतोंकी रक्षा करनेमें अतिशय समर्थ परमेश्वरि ! आपकी जय हो । संसार-रूपी विष्ववृक्षके उगनेवाले अङ्गुरोंका उन्मूलन करनेवाली उमे ! आपकी जय हो । ग्रादेशिक ऐश्वर्य, वीर्य और शौर्यका विसार करनेवाले देव ! आपकी जय हो । विश्वसे परे विद्यमान देव ! आपने अपने वैभवसे दूसरोंके वैभवोंको तिरस्कृत कर दिया है । आपकी जय हो । पञ्चविध मोक्षरूप पुरुषार्थके प्रयोगद्वारा परमानन्द-मय अमृतकी प्राप्ति करनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । पञ्चविध पुरुषार्थके विज्ञानरूप अमृतसे परिपूर्ण स्त्रोत्रवरूपिणी परमेश्वरि ! आपकी जय हो । अत्यन्त भयानक संसाररूपी महारोगको दूर करनेवाले वैद्यशिरोमणि ! आपकी जय हो । अनादि कर्ममल एवं अज्ञानरूपी अन्धकाराशिको दूर करनेवाली चन्द्रिकारूपिणी शिवे ! आपकी जय हो । त्रिपुरका विनाश करनेके लिये कालभिस्त्रवरूप महादेव ! आपकी जय हो । त्रिपुरपैरवि ! आपकी जय हो । तीनों गुणोंसे मुक्त महेश्वर ! आपकी जय हो । तीनों गुणोंका मर्दन करनेवाली महेश्वरि ! आपकी जय हो । आदिसर्वज्ञ ! आपकी जय हो । सरको ज्ञान देनेवाली देवि ! आपकी जय हो । प्रचुर दिव्य अङ्गोंमें सुशोभित देव ! आपकी जय हो । मनोवाच्छित वस्तु देनेवाली देवि ! आपकी जय हो । भगवन् ! देव ! कहाँ तो आपका उत्कृष्ट धाम और कहाँ मेरी तुच्छ वाणी; तथापि भक्तिमावसे ग्रलाप करते हुए मुझ सेवकके अपराधको अपक्षमा कर दें॥

**इस प्रकार सुन्दर उक्तियोद्वारा भगवान् सद्गुरु देवीका एक**

\* व्रह्मोवाच—

जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर ।
जय सर्वगुणश्रेष्ठ जय सर्वमुराधिप ॥
जय प्रकृतिकल्याण जय प्रकृतिनायिके ।
जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि ॥
जयामोघमहामाय जयामोघमनोरथ ।
जयामोघमहालील जयामोघमहावल ॥

साथ गुणगान करके चतुर्मुख ब्रह्माने रुद्र एवं स्त्राणीको बारंबार नमस्कार किया। ब्रह्माजीके द्वारा पठित यह पवित्र एवं उत्तम अर्द्धनारीश्वर-स्तोत्रं शिव तथा पार्वतीके हर्षको बढ़ानेवाला है। जो भक्तिपूर्वक जिस किसी भी गुरुकी शिक्षासे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शिव और पार्वतीको प्रसन्न करनेके कारण

अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर लेता है। जो समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनके विग्रह जन्म और मृत्युसे रहित हैं तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दरी नारीके रूपमें एक ही शरीर धारण करके स्थित हैं, उन कल्याणकारी भगवान् शिव और शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ। (अध्याय १५)

## महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव

**वायुदेवता कहते हैं—** तदनन्तर महादेवजी महामेघ-की गर्जनाके समान मधुर-गम्भीर, मङ्गलदायिनी एवं मनोहर वाणीमें बोले—‘ब्रह्मन् ! तुमने इस समय प्रजाजनोंकी वृद्धिके लिये ही तपस्या की है। तुम्हारी इस तपस्यासे मैं संतुष्ट हूँ और तुम्हें अभीष्ट वर देता हूँ।’ इस प्रकार परम उदार तथा स्वभावतः मधुर वचन कहकर देवेश्वर हरने अपने शरीरके वामभागसे देवी स्त्राणीको प्रकट किया। जिन दिव्य गुण-सम्पन्ना देवीको ब्रह्मवेत्ता पुरुष परमात्मा शिवकी पराशक्ति कहते हैं तथा जिनमें जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकारोंका प्रवेश नहीं है, वे भवानी उस समय शिवके अङ्गसे प्रकट हुईं। जिनका परमभाव देवताओंको भी ज्ञात नहीं है, वे समस्त देवताओंकी अधीश्वरी देवी अपने स्वामीके अङ्गसे प्रकट हुईं। उन सर्वलोकमहेश्वरी परमेश्वरीको देखकर विराट् पुरुष ब्रह्माने प्रणाम किया और उन सर्वज्ञा, सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा, सदसद्ग्रावसे रहित और अपनी प्रभासे इस सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाली पराशक्ति महादेवीसे इस प्रकार प्रार्थना की।

**ब्रह्माजी बोले—** सर्वजगन्मयी देवि ! महादेवजीने सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमें लगाया। इनकी अज्ञासे मैं समस्त जगत्की सृष्टि करता हूँ। किंतु देवि ! मेरे मानसिक संकल्पसे रचे गये देवता आदि समस्त प्राणी बारंबार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं। अतः अब मैं मैथुनी सृष्टि करके ही अपनी सारी प्रजाको बढ़ाना चाहता हूँ। आपके पहले नारी-कुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। इसलिये नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये मुझमें शक्ति नहीं है। सम्पूर्ण शक्तियोंका आविर्भाव आपसे ही होता है। अतः सर्वत्र सबको सब प्रकारकी शक्ति देनेवाली आप वरदायिनी माया देवेश्वरीसे ही प्रार्थना करता हूँ, संसारभयको दूर करनेवाली सर्वव्यापिनी देवि। इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने एक अंशसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाइये।

ब्रह्मयोनि ब्रह्माके इस प्रकार याचना करनेपर देवी स्त्राणीने अपनी भौंहोंके सम्बन्धमासे अपने ही समान कान्तिमती एक शक्ति प्रकट की। उसे देखकर देवदेवेश्वर

जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजगन्मयि । जय विश्वजगत्सविः ॥

जय शाश्वतिकैश्वर्य जय शाश्वतिकालय । जय शाश्वतिकातुग ॥

जयात्मव्यनिर्मत्रि जयात्मत्रयपालिनि । जयात्मत्रयसंवृत्रि जयात्मत्रयनयिके ॥

जयावलोकनायत्तजगत्करणवृद्धण । जयोपेश्वाकटक्षोत्थहुतमुग्मूक्तमौतिक ॥

जय देवाचविश्वेषे स्वात्मसूक्ष्मदृशोज्ज्वले । जय स्थूलात्मशक्तयेशे जय व्याप्तनराचरे ॥

जय नानैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय । जयासुरशिरोनिष्ठव्रेष्टातुगकदम्बक ॥

जयोपात्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि । जयोन्मूलितसंसारविष्वक्षादुरोद्धमे ॥

जय प्रादेविकैश्वर्यवीर्यशीर्यविजूम्भण । जय विष्वद्विर्भूत निरत्तपरवैभव ॥

जय प्रणीतपञ्चार्थप्रयोगपरमामृत । जय पञ्चार्थविज्ञानमुभास्तोत्रस्वरूपिण ॥

जयातिषोरसंसारमद्वारोगभिपग्वर । जयानादिमलाक्षान्तमःपटलचन्द्रिके ॥

जय त्रिपुरकालग्ने जय त्रिपुरमैरवि । जय त्रिपुरनिमुक्त जय त्रिपुरमदिनि ॥

जय प्रथमसर्वज्ञ जय सर्वव्यवेधिके । जय प्रचुरदिव्याङ्ग जय प्रार्थितदायिनि ॥

क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं हि नो वचः । तथापि भगवन् भन्त्या प्रलपन्तं क्षमस्त मान् ॥



हरने हँसते हुए कहा—‘तुम तपस्याद्वारा व्रह्णाजीकी आराधना करके उनका मनोरथ पूर्ण करो।’ परमेश्वर शिवकी इस आशाको शिरोधार्य करके वह देवी व्रह्णाजीकी प्रार्थनाके अनुसार दक्षकी पुत्री हो गयी। इस प्रकार व्रह्णाजीको व्रह्णरूपिणी अनुपम शक्ति देकर देवी शिवा महादेवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयी। फिर महादेवजी भी अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस जगत्के भीतर स्त्रीजातिमें भोग प्रतिष्ठित हुआ और मैथुनद्वारा प्रजाकी सृष्टिका कार्य चलने लगा। मुनियो ! इससे व्रह्णाजीको भी आनन्द और सतोप प्राप्त हुआ। देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावका यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया। प्राणियोंकी सृष्टिके प्रसङ्गमें इस विषयका वर्णन किया गया है। यह पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है, अतः अवश्य सुनने योग्य है। जो प्रतिदिन देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावकी इस कथाका कर्तन करता है, उसे सब प्रकारका पुण्य प्राप्त होता है तथा वह शुभलक्षण पुत्र पाता है। (अध्याय १६)

**भगवान् शिवका पर्वती तथा पार्वदोंके साथ मन्दराचलपर जाकर रहना, शुम्भ-निशुम्भके घटके लिये व्रह्णाजीकी प्रार्थनासे शिवका पर्वतीको ‘काली’ कहकर कुपित करना और कालीका ‘गौरी’ होनेके लिये तपस्याके निमित्त जानेकी आज्ञा माँगना**

वायुदेवता कहते हैं—इस प्रकार महादेवजीसे ही भनातन पराशक्तिको पाकर प्रजापति व्रह्णा मैथुनी सुषिकरनेकी इच्छा लेकर स्वयं भी आधे शरीरसे अद्भुत नारी और आधे शरीरसे पुरुष हो गये। आधे शरीरसे जो नारी उत्पन्न हुई थी, वह उनसे शतरूपा ही प्रकट हुई थी। व्रह्णाजीने अपने आधे पुरुष शरीरसे विराट्को उत्पन्न किया। वे विराट् पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। देवी शतरूपाने अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके उद्दीप्त यशवाले मनुको ही पतिष्ठयमें प्राप्त किया।

इसके पश्चात् मनुके बंदा तथा दक्ष-न्यज्ञ-विव्यंस आदिके प्रगङ्ग सुनाकर वायुदेवताने यह वताया कि भगवान् शंकरने दक्ष तथा देवताओंके अपराध क्षमा कर दिये।

तदनन्तर ऋषियोंने पूछा—प्रभो ! अपने गणों तथा देवीके ताथ अन्तर्धान होकर भगवान् शिव कहाँ गये, कहाँ क्या करके विरत हुए ?

वायुदेव दोले—महर्षियो ! पर्वतोंमें श्रेष्ठ और विचित्र कन्दराओंसे सुशोभित जो परम सुन्दर मन्दराचल है, वही अपनी तपस्याके प्रभावसे देवाधिदेव महादेवजीका प्रिय निवासस्थान हुआ। उसने पर्वती और शिवको अपने सिरपर ढोनेके लिये बड़ा भारी तप किया था और दीर्घकालके बाद उसे उनके चरणारविन्दोंके सर्वशक्ति सुख प्राप्त हुआ। उस पर्वतके सौन्दर्यका विस्तारपूर्वक वर्णन रहस्यों मुखांद्वारा सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। उसके सामने समस्त पर्वतोंका सौन्दर्य तुच्छ हो जाता है। इसलिये महादेवजीने देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे उस अत्यन्त रमणीय पर्वतको अपना अन्तःपुर बना लिया। इस सर्वश्रेष्ठ पर्वतका सरण करके रम्य-आश्रमके समीप स्थित हुए अम्बिकासहित भगवान् शिलोचन वहाँसे अन्तर्धान होकर चले गये। मन्दराचलके उद्यानमें पहुँचकर देवीसहित महेश्वर व्रह्णाकी रमणीय तथा दिव्य अन्तःपुरकी भूमियोंमें रमण करने ल्ये।

जब इस तरह कुछ समय बीत गया और ब्रह्माजीकी मैथुनी सुष्टिके द्वारा जब प्रजाएँ बढ़ गयीं, तब शुभ्म और निशुभ्म नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे परस्पर भाई थे। उनके तपोवल्से प्रभावित हो परसेष्ठी ब्रह्माने उन दोनों भाइयोंको यह वर दिया था कि 'इस जगत्के किसी भी पुरुषसे तुम मारे नहीं जा सकोगे।' उन दोनोंने ब्रह्माजीसे यह प्रार्थना की थी कि 'पार्वती देवीके अंशसे उत्पन्न जो अयोनिजा कन्या उत्पन्न हो, जिसे पुरुषका सर्व तथा रति नहीं प्राप्त हुई हो तथा जो अलङ्घ्य पराक्रमसे सम्पन्न हो, उसके प्रति कामभवसे पीड़ित होनेपर हम युद्धमें उसीके हाथों मारे जायें।' उनकी इस प्रार्थनापर ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दे दी। तभीसे युद्धमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उन दोनोंने जगत्को अनीतिपूर्वक वेदोंके स्वाध्याय और वषट्कार (यज्ञ) आदिसे रहित कर दिया। तब ब्रह्माने उन दोनोंके वधके लिये देवेश्वर शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप एकान्तमें देवीकी निन्दा करके भी कैसे-तैसे उन्हें क्रेत्र दिलाइये और उनके लूप-रंगकी निन्दासे उत्पन्न हुई, कामभवसे रहित, कुमारीस्वरूपा शक्तिको निशुभ्म और शुभ्मके वधके लिये देवताओंको अर्पित कीजिये।'

ब्रह्माजीके इस तरह प्रार्थना करनेपर भगवान् नीलज्वलाहित रुद्र एकान्तमें पार्वतीकी निन्दा-सी करते हुए मुसकराकर बोले—'तुम तो काली हो।' तब सुन्दर वर्णबाली देवी पार्वती अपने श्यामर्णके कारण आक्षेप मुनकर कुपित हो उठी और पतिदेवसे मुसकराकर समाधानरहित वाणीद्वारा बोली।

देवीने कहा—'प्रभो! यदि मेरे इस काले रंगपर आपका प्रेम नहीं है तो इतने दीर्घकालसे अपनी शिक्षाका आप दमन क्यों करते रहे हैं? कोई स्त्री कितनी ही सर्वाङ्ग-सुन्दरी क्यों न हो, यदि पतिका उत्पन्न अनुराग नहीं हुआ तो अच्युत समस्त गुणोंके साथ ही उसका जन्म लेना व्यर्थ हो जाता है। छिंगोंकी वह सुष्टि ही पतिके भोगका ग्रधान अङ्ग है। यदि यह उससे वञ्चित हो गयी तो इसका और कहाँ उपयोग हो सकता है? इसलिये आपने एकान्तमें जिसकी निन्दा की है, उस वर्णको त्यागकर अब मैं दूसरा वर्ण ग्रहण चूँगी अभ्यन्तर स्थंय ही मिट जाऊँगी।'

ऐसा कहकर देवी पार्वती शास्यासे उठकर खड़ी हो गयी और वप्सके लिये दृढ़ निश्चय करके गद्दद कण्ठसे जानेकी भव्य माँगने लगी।

इस प्रकार प्रेम भङ्ग होनेसे भयभीत हो भूतनाथ भगवान् शिव स्वयं भवानीको प्रणाम करते हुए ही बोले।

भगवान् शिवने कहा—'प्रिये! मैंने क्रीड़ा या मनो-विनोदके लिये यह बात कही है। मेरे इस अभिप्रायको न जानकर तुम कुपित क्यों हो गयीं? यदि तुमपर मेरा प्रेम नहीं होगा तो और किसपर हो सकता है? तुम इस जगत्की माता हो और मैं पिता तथा अधिपति हूँ। फिर तुमपर मेरा प्रेम न होना कैसे सम्भव हो सकता है। हम दोनोंका वह प्रेम भी क्या कामदेवकी प्रेरणासे हुआ है, कदापि नहीं; क्योंकि कामदेवकी उत्पत्तिसे पहले ही जगत्की उत्पत्ति हुई है। कामदेवकी सुष्टि तो मैंने साधारण लोगोंकी रतिके लिये की है। कामदेव मुझे साधारण देवताके समान मानकर मेरा कुछ-कुछ तिरस्कार करने लगा था, अतः मैंने उसे भस्त कर दिया। हम दोनोंका यह लीलाविहार भी जगत्की रक्षाके लिये ही है, अतः उसीके लिये आज मैंने तुम्हारे प्रति यह परिहासयुक्त बात कही थी। मेरे इस कथनकी सत्यता तुमपर शीघ्र ही प्रकट हो जायगी।'

देवीने कहा—'भगवान्! पतिके प्यारसे वक्षित होनेपर जो नारी अपने प्राणोंका भी परित्याग नहीं कर देती, वह कुलाङ्गना और शुभलक्षणा होनेपर भी सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित ही समझी जाती है। मेरा शरीर गौर वर्णका नहीं है, इस बातको लेकर आपको बहुत खेद होता है, अन्यथा क्रीड़ा या परिहासमें भी आपके द्वारा मुझे 'काली कल्दी' कहा जाना कैसे सम्भव हो सकता था। मेरा कालापन आपको प्रिय नहीं है, इसलिये वह सत्पुरुषोंद्वारा भी निन्दित है; अतः तपस्याद्वारा इसका त्याग किये विना अब मैं यहाँ रह ही नहीं सकती।'

शिव बोले—'यदि अपनी श्यामताको लेकर तुम्हें इस तरह संताप हो रहा है तो इसके लिये तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता है? तुम मेरी या अपनी इच्छामात्रसे ही दूसरे वर्णसे युक्त हो जाओ।'

देवीने कहा—'मैं आपसे अपने रंगका परिवर्तन नहीं चाहती। स्वयं भी इसे बदलनेका संकल्प नहीं कर सकती। अब तो तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही मैं दीप गौरी हो जाऊँगी।'

शिव बोले—'महादेवि! पूर्वकालमें मेरी ही झगड़े ग्रदान-को ब्रह्मपदकी प्राप्ति हुई थी। अतः तपस्याद्वारा उन्हें तुल्यकर तुम क्या करोगी?

देवीने कहा—इसमें संदेह नहीं कि ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंको आपसे ही उत्तम पदोंकी प्राप्ति हुई है, तथापि आपकी आज्ञा पाकर मैं तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहती हूँ। पूर्वकालमें जब मैं सतीके नामसे दक्षकी पुत्री हुई थी, तब तपस्याद्वारा ही मैंने आप जगदीश्वरको पतिके रूपमें प्राप्त किया था। इसी

प्रकार आज भी तपस्याद्वारा ब्राह्मण ब्रह्माको संतुष्ट करके मैं गौरी होना चाहती हूँ। ऐसा करनेमें यहाँ क्या दोष है? यह बताइये।

महादेवीके ऐसा कहनेपर वामदेव भुस्कराते हुए-से चूप रह गये। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने देवीको रोकनेके लिये हठ नहीं किया। ( अध्याय १७—२४ )

~~~~~  
पार्वतीकी तपस्या, एक व्याघ्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका उनके पास आना, देवीके साथ उनका वार्तालाप, देवीके द्वारा काली त्वचाका त्याग और उससे कृष्णवर्णा कुमारी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई कौशिकीके द्वारा शुभ्म-निशुभ्मका वध

बायुदेव कहते हैं—महर्षियो! तदनन्तर पतिव्रता माता पार्वती पतिकी परिक्रमा करके उनके वियोगसे होनेवाले दुःख-को किसी तरह रोककर हिमालय पर्वतपर चली गयी। उन्होंने पहले सखियोंके साथ जिस स्थानपर तप किया था, उस स्थान-से उनका प्रेम हो गया था। अतः फिर उसीको उन्होंने तपस्याके लिये चुना। तदनन्तर माता-पिताके घर जा उनका दर्शन और प्रणाम करके उन्हें सब समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये और फिर तपोवनमें जा स्नानके पश्चात् तपस्वीका परमपावन वेष धारण करके अत्यन्त तीव्र एवं परम दुष्कर तपस्या करनेका संकल्प किया। वे मन-ही-मन सदा पतिके चरणारबिन्दोंका चिन्तन करती हुई किसी क्षणिक लिङ्गमें उन्होंका ध्यान करके पूजनकी बाह्य विधिके अनुसार जंगलके फल-फूल आदि उपकरणोंद्वारा तीनों समय उनका पूजन करती थीं। भगवान् शंकर ही ब्रह्माजीका रूप धारण करके मेरी तपस्याका फल मुझे देंगे ऐसा हृदय विश्वास रखकर वे प्रतिदिन तपस्यामें लगी रहती थीं। इस तरह तपस्या करते-करते जब वहुत समय बीत गया, तब एक दिन उनके पास कोई वहुत बड़ा व्याघ्र देखा गया। वह दुष्टभावसे वहाँ आया था। पार्वतीजीके निकट आते ही उस दुरात्माका शरीर जड़वत् हो गया। वह उनके समीप चित्रलिखित-सा दिखायी देने लगा। दुष्टभावसे पास आये हुए उस व्याघ्रको देखकर भी देवी पार्वती साधारण नारीकी भाँति स्वभावसे विचलित नहीं हुई। उस व्याघ्रके सारे अङ्ग अकड़ गये थे। वह भूख-से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था और यह सोचकर कि ‘यही मेरा भोजन है’ निरन्तर देवीजी और ही देख रहा था। देवीके सामने खड़ा-खड़ा वह उनकी उपासना-सी करने लगा। इधर देवीके हृदयमें सदा यही भाव आता था कि यह व्याघ्र

मेरा ही उपासक है, दुष्ट बन-जन्मुओंसे मेरी रक्षा करनेवाला है। यह सोचकर वे उसपर कृपा करने लगे। उन्होंकी कृपासे उसके तीनों प्रकारके भल तत्काल नष्ट हो गये। फिर तो उस व्याघ्रको सहसा देवीके स्वरूपका बोध हुआ, उसकी भूख मिट गयी और उसके अङ्गोंकी जड़ता भी दूर हो गयी। साथ ही उसकी जन्मसिद्ध दुष्टता नष्ट हो गयी और उसे निरन्तर वृत्ति बनी रहने लगी। उस समय उत्कृष्टरूपसे अपनी कृतार्थताका अनुभव करके वह तत्काल भक्त हो गया और उन परमेश्वरी-की सेवा करने लगा। अब वह अन्य दुष्ट जन्मुओंको खदेवता हुआ तपोवनमें विचरने लगा। इधर देवीजी तपस्या बढ़ी और तीव्रसे तीव्रतर होती गयी।

देवता शुभ्म आदि दैत्योंके दुराग्रहसे दुखी हो ब्रह्माजी-की शरणमें गये। उन्होंने शत्रुपीड़नजित अपने दुःखको उनसे निवेदन किया। शुभ्म और निशुभ्म वरदान पानेके घमंडसे देवताओंको जैसे-जैसे दुःख देते थे, वह सब मुनकर ब्रह्माजीको उनपर बढ़ी दया आयी। उन्होंने दैत्यवधके लिये भगवान् शंकरके साथ हुई बातचीतका समरण करके देवताओं-के साथ देवीके तपोवनको प्रस्थान किया। वहाँ सुरश्रेष्ठ ब्रह्म-ने उत्तम तपमें परिनिष्ठित परमेश्वरी पार्वतीको देखा। वे सम्पूर्ण जगत्-की प्रतिष्ठा-सी जान पड़ती थीं। अपने, श्रीहस्ते तथा रुद्रदेवके भी जन्मदाता पिता महामहेश्वरकी भार्या आर्या जगन्माता गिरिराजननिदी पार्वतीजीको ब्रह्माजीने प्रणाम किया।

देवगणोंके साथ ब्रह्माजीको आया देख देवीने उनके योग्य अर्व्य देकर स्वागत आदिके द्वारा उनका सत्कार किया। बदलेमें उनका भी सत्कार और अभिनन्दन करके ब्रह्माजी अनजानकी भाँति देवीकी तपस्याका कारण पूछने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देवि ! इस तीव्र तपस्याके द्वारा आप यहाँ किस अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि करना चाहती हैं ? तपस्या-के सम्पूर्ण फलोंकी सिद्धि तो आपके ही अधीन है। जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन्हीं परमेश्वरको पतिके स्थाने पाकर आपने तपस्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिया है अथवा यह सारा ही क्रियाकलाप आपका लीलाविलास है। परंतु आश्र्वयकी वात तो यह है कि आप इतने दिनोंसे महादेवजीके विरहका कष्ट कैसे सह रही हैं ?

देवीने कहा—ब्रह्मन् । जब सुष्ठिके आदिकालमें महादेवजीसे आपकी उत्पत्ति सुनी जाती है, तब समस्त प्रजाओं-में प्रथम होनेके कारण आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र होते हैं। फिर जब प्रजाकी वृद्धिके लिये आपके ललाटसे भगवान् शिवका प्रादुर्भाव हुआ, तब आप मेरे पतिके पिता और मेरे शशुर होनेके कारण गुरुजनोंकी कोटिमें आ जाते हैं और जब मैं यह सोचती हूँ कि स्वयं मेरे पिता गिरिराज हिमाल्य आपके पुत्र हैं, तब आप मेरे साक्षात् पितामह लगते हैं। लोकपितामह ! इस तरह आप लोकयात्राके विधाता हैं। अन्तःपुरमें पतिके साथ जो वृत्तान्त धर्मित हुआ है, उसे मैं आपके सामने कैसे कह सकूँगी ? अतः यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ । मेरे शरीरमें जो यह कालापन है, इसे सात्त्विक विधिसे त्यागकर मैं गौरवर्ण होना चाहती हूँ ।

ब्रह्माजी बोले—देवि ! इतने ही प्रयोजनके लिये आपने ऐसा कठोर तप क्यों किया ? क्या इसके लिये आपकी इच्छा-मात्र ही पर्याप्त नहीं थी ? अथवा यह आपकी एक लीला ही है। जगन्मातः ! आपकी लीला भी लोकहितके लिये ही होती है। अतः आप इसके द्वारा मेरे एक अभीष्ट फलकी सिद्धि कीजिये। निशुभ्म और शुभ्म नामक जो दो दैत्य हैं, उनको मैंने वर दे रखता है। इससे उनका घमंड बहुत बढ़ गया है और वे देवताओंको सत्ता देते हैं। उन दोनोंको आपके ही हापसे मार जानेका वरदान प्राप्त हुआ है। अतः अब विलम्ब

करनेसे कोई लाभ नहीं। आप क्षणभरके लिये सुस्थिर हो जाइये। आपके द्वारा जो शक्ति रची या छोड़ी जायगी, वही उन दोनोंके लिये मृत्यु हो जायगी।

ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गिरिराजकुमारी देवी पार्वती सहसा अपने काली त्वचाके आवरणको उतारकर गौरवर्ण हो गयी। त्वचाकोष (काली त्वचामय आवरण)-रूपसे त्यागी गयी जो उनकी शक्ति थी, उसका नाम ‘कौशिकी’ हुआ। वह काले मेघके समान कान्तिवाली कृष्णवर्ण कन्या हो गयी। देवीकी वह मायामयी शक्ति ही योगनिद्रा और वैष्णवी कहलाती है। उसके आठ बड़ी बड़ी भुजाएँ थीं। उसने उन हाथोंमें शङ्ख, चक्र और त्रिशूल आदि आयुध धारण कर रखते थे। उस देवीके तीन रूप हैं—सौम्य, धोर और मिश्र। वह तीन नेत्रोंसे युक्त थी। उसने मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण कर रखता था। उसे पुरुषका सर्वश तथा रतिका योग नहीं प्राप्त था और वह अत्यन्त सुन्दरी थी। देवीने अपनी इस सनातन शक्तिको ब्रह्माजीके हाथमें दे दिया। वही दैत्यप्रबर शुभ्म और निशुभ्मका वध करनेवाली हुई। उस समय प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उस पराशक्तिको सवारीके लिये एक प्रवल सिंह प्रदान किया, जो उनके साथ ही आया था। उस देवीके रहनेके लिये ब्रह्माजीने विश्वगिरिपर वासस्थान दिया और वहाँ नाना प्रकारके उपचारोंसे उनका पूजन किया। विश्वकर्मा ब्रह्माके द्वारा सम्मानित हुई वह शक्ति अपनी माता गौरीको और ब्रह्माजीको क्रमशः प्रणाम करके अपने ही अङ्गोंसे उत्पन्न और अपने ही समान शक्तिशालिनी बहुसंख्यक शक्तियोंको साथ ले दैत्यराज शुभ्म-निशुभ्मको मारनेके लिये उद्यत होकर विश्वपर्वतको चली गयी। उसने समराङ्गणमें उन दोनों दैत्य-राजोंको मार गिराया। उस युद्धका अन्यत्र वर्णन हो चुका है, इसलिये उसकी विस्तृत कथा यहाँ नहीं कही गयी। दूसरे ख्यलोंसे उसकी ऊहा कर लेनी चाहिये। अब मैं प्रस्तुत प्रसङ्ग-का वर्णन करता हूँ । (अध्याय २५ )

गौरी देवीका व्याघ्रको अपने साथ ले जानेके लिये ब्रह्माजीसे आज्ञा माँगना, ब्रह्माजीका उसे दुर्कर्मी वताकर रोकना, देवीका शरणागतको त्यागनेसे इनकार करना, ब्रह्माजीका देवीकी महत्ता वताकर अनुमति देना और देवीका माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना

वायुदेवता कहते हैं—कौशिकीको उत्पन्न करके उसे श्रमजीके हाथमें देनेके पश्चात् गौरी देवीने प्रत्युपकारके लिये निम्नदस्ते कहा ।

देवी योर्लों—क्या आपने मेरे आश्रममें रहनेवाले इस व्याघ्रको देखा है ? इसने दुष्ट जन्मोंसे मेरे तपोवनकी रक्षा की है। यह मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यमात्रसे मेरा

भजन करता रहा है। अतः इसकी रक्षाके सिवा दूसरा कोई मेरा प्रिय कार्य नहीं है। यह मेरे अन्तःपुरमें विचरनेवाला होगा। भगवान् शंकर इसे प्रसन्नतापूर्वक गणेश्वरका पद प्रदान करेंगे। मैं इसे आगे करके सखियोंके साथ यहाँसे जाना चाहती हूँ। इसके लिये आप मुझे आज्ञा दें; क्योंकि आप प्रजापति हैं।

देवीके ऐसा कहनेपर उन्हें भोली-भाली जान हँसते और मुस्कराते हुए ब्रह्माजी उस व्याप्रकी पुरानी कूरतापूर्ण करतूतें बताते हुए उसकी दुष्टताका वर्णन करने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—देवि ! कहाँ तो पशुओंमें कूर व्याघ्र और कहाँ यह आपकी मङ्गलमयी कृपा। आप विषधर सर्पके मुखमें साक्षात् अमृत क्यों सौंच रही हैं ? यह केवल व्याघ्रके रूपमें रहनेवाला कोई दुष्ट निशाचर है। इसने बहुत-सी गौओं और तपस्वी ब्राह्मणोंको खा डाला है। यह उन सबको इच्छानुसार ताप देता हुआ मनमाना रूप धारण करके विचरता है। अतः इसे अपने पापकर्मका फल अवश्य भोगना चाहिये। ऐसे दुष्टोंपर आपको कृपा करनेकी क्या आवश्यकता है ? इस ख्यातसे ही कलुषित चित्तवाले दुष्ट जीवसे देवीको क्या काम है ?

देवी बोली—आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। यह ऐसा ही सही, तथापि मेरी शरणमें आ गया है। अतः मुझे इसका त्याग नहीं करना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—देवि ! इसकी आपके प्रति भक्ति है, इस वातको जाने विना ही मैंने आपके समक्ष इसके पूर्वचरित्रका वर्णन किया है। यदि इसके भीतर भक्ति है तो पहलेके पापोंसे इसका क्या यिङ्गनेवाला है; क्योंकि आपके भक्तका कभी नाश नहीं होता। जो आपकी आशाका पालन नहीं करता, वह पुण्यकर्म होकर भी क्या करेगा। देवि ! आप ही अजन्मा, दुद्धिमती, पुरातन शक्ति और परमेश्वरी हैं। सबके वन्धु और मोक्षकी व्यवस्था आपके ही अधीन है। आपके सिवा पराशक्ति कौन है ? आपके विना किसको कर्मजनित सिद्धि प्राप्त हो सकती है ? आप ही असंख्य रुद्रोंकी विविध शक्ति हैं। शक्तिरहित कर्ता काम करनेमें कौन-सी सफलता

प्राप्त करेगा ? भगवान् विष्णुको, मुझको तथा अन्य देवता, दानव और राक्षसोंको उन-उन ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेके लिये आपकी आज्ञा ही कारण है। असंख्य ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र, जो आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, वीत चुके हैं और भविष्यमें भी होंगे। देवेश्वरि ! आपकी आराधना किये विना हम सब श्रेष्ठ देवता भी धर्म आदि चारों पुरुषाथोंकी प्राप्ति नहीं कर सकते। आपके संकल्पसे ब्रह्मत्व और स्यावरत्वका तत्काल व्यत्यास ( फेर-चदल ) भी हो जाता है अर्थात् ब्रह्म स्यावर ( बृक्ष आदि ) हो जाता है और स्यावर ब्रह्म; क्योंकि पुण्य और पापके फलोंकी व्यवस्था आपने ही की है। आप ही जगत्के स्वामी परमात्मा शिवकी अनादि, अमर्य और अनन्त आदि समातन शक्ति हैं। आप सम्पूर्ण लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये किसी अद्भुत मूर्तिमें आविष्ट हो नाना प्रकारके भावोंसे क्रीड़ा करती हैं। भला, आपको ठीक-ठीक कौन जानता है। अतः यह पापाचारी व्याघ्र भी आज आपकी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करे, इसमें कौन वाधक हो सकता है !

इस प्रकार उनके परम तत्त्वका स्मरण कराकर ब्रह्माजीने जब उन्नित प्रार्थना की, तब गौरीदेवी तपस्यासे निवृत्त हुई। तदनन्तर देवीकी आज्ञा लेकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। फिर देवीने अपने वियोगको न सह सकनेवाले माता-पिता मेना और हिमवान्का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया तथा उन्हें नाना प्रकारसे आश्वासन दिया। इसके बाद देवीने तपस्याके प्रेमी तपोवनके बृक्षोंको देखा। वे उनके सामने फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो उनसे होनेवाले वियोगके सेक्षणसे पीड़ित हो वे आँसू बरसा रहे हैं। अपनी शाखाओंपर बैठे हुए विहंगमोंके कलरबोंके व्याजसे मानो वे व्यकुत्ता-पूर्वक नाना प्रकारसे दीनतापूर्ण विलाप कर रहे थे। तदनन्तर पतिके दर्शनके लिये उतावली हो उस व्याप्रको औरस पुरुकी भाँति स्नेहसे आगे करके सखियोंसे वातचीत करती और देहकी दिव्य प्रभासे दसों दिशाओंको उद्दीपित करती हुरं गौरीदेवी मन्दराचलको चली गई, जहाँ सम्पूर्ण जगत्के आपार सघा, पालक और संहारक पतिदेव महेश्वर विराजमान थे।

मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं  
अविच्छेद सम्बन्धपर प्रकाश तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रको उनका गणाध्यक्ष  
वनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना

**ऋषियोंने पूछा**—अपने शरीरको दिव्य गौरवर्णसे युक्त बनाकर गिरिराजकुमारी देवी पार्वतीने जब मन्दराचल प्रदेशमें प्रवेश किया, तब वे अपने पतिसे किस प्रकार मिलीं? प्रवेशकालमें उनके भयनद्वारपर रहनेवाले गणेश्वरोंने क्या किया तथा महादेवजीने भी उन्हें देखकर उस समय उनके साथ कैसा वर्तन किया?

**वायुदेवताने कहा**—जिस प्रेमगर्भित रसके द्वारा अनुरागी पुरुषोंके मनका हरण हो जाता है, उस परम रसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है। द्वारपाल बड़ी उतावलीसे रह देखते थे। उनके साथ ही महादेवजी भी देवीके आगमनके लिये उत्सुक थे। जब वे भवनमें प्रवेश करने लगीं, तब शङ्खित हो उन-उन प्रेमजनित भावोंसे वे उनकी ओर देखने लगे। देवी भी उनकी ओर उन्हीं भावोंसे देख रही थीं। उस समय उस भवनमें रहनेवाले श्रेष्ठ पर्वदोने देवीकी बन्दना की। फिर देवीने विनययुक्त वाणीद्वारा भगवन् त्रिलोचनको प्रणाम किया। वे प्रणाम करके अभी उठने भी नहीं पायी थीं कि परमेश्वरने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर बढ़े अनन्दके साथ हृदयसे लगा लिया। फिर मुसकराते हुए वे एकटक नैमोंसे उनके मुखचन्द्रकी मुधाका पान-सा करने लगे। फिर उसे यातचीत करनेके लिये उन्होंने पहले अपनी ओरसे वार्ता अरम्भ की।

**देवाधिदेव महादेवजी बोले**—सर्वाङ्गसुन्दरि प्रिये ! आ तुम्हारी वह मनोदशा दूर हो गयी, जिसके रहते तुम्हारे श्रेष्ठके कारण मुझे अनुनय-विनयका कोई भी उपाय नहीं रहता था। यदि साधारण लोगोंकी भाँति हम दोनोंमें भी एक दूसरेके अप्रियका कारण विद्यमान है, तब तो इस चराचर जगत्का नाय हुआ ही समझना चाहिये। मैं अग्निके मस्तक-पर स्थित हूँ और तुम सोमके। हम दोनोंसे ही यह अग्निमित्तमात्र जगत् प्रतिष्ठित है। जगत्के हितके लिये स्वेच्छासे और धारण करके विचरनेवाले हम दोनोंके वियोगमें यह जगत् निगधार हो जायगा। इसमें शास्त्र और युक्तिसे निश्चित किया हुआ दूसरा लेणे भी है। यह स्यावर-जंगमरूप जगत् वाणी और अर्पण ही है। तुम साक्षात् वाणीमय अमृत हो और मैं अर्पण परम उत्तम अमृत हूँ। ये दोनों अमृत एक-दूसरे-से रेखा करते ही सकते हैं। तुम मेरे स्वरूपका बोध करनेवाली

विद्या हो और मैं तुम्हारे दिये हुए विश्वासपूर्ण बोधसे जाननेयोग्य परमात्मा हूँ। हम दोनों क्रमशः विद्यात्मा और वेद्यात्मा हैं, फिर हममें वियोग होना कैसे सम्भव है। मैं अपने प्रयत्नसु जगत्की सुष्टि और संहार नहीं करता। एकमात्र आज्ञासे ही सबकी सुष्टि और संहार उपलब्ध होते हैं। वह अत्यन्त गौरवपूर्ण आज्ञा तुम्हीं हो। ऐश्वर्यका एकमात्र सार आज्ञा (शासन) है, क्योंकि वही स्वतन्त्रताका लक्षण है। आज्ञासे वियुक्त होनेपर मेरा ऐश्वर्य कैसा होगा। हमलोगोंका एक दूसरेसे विलग होकर रहना कभी सम्भव नहीं है। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे ही मैंने उस समय उस दिन लीलापूर्वक व्यज्ञन्य बचन कहा था। तुम्हें भी तो यह बात अज्ञात नहीं थी। फिर तुम कुपित कैसे हो गयीं? अतः यही कहना पड़ता है कि तुमने मुझपर भी जो क्रोध किया था, वह त्रिलोकीकी रक्षाके लिये ही था; क्योंकि तुममें ऐसी कोई बात नहीं है, जो जगत्के प्राणियोंका अनर्थ करनेवाली हो।

इस प्रकार प्रिय बचन बोलनेवाले साक्षात् परमेश्वर शिवके प्रति शङ्खार रसके सारभूत भावोंकी प्राकृतिक जन्मभूमि देवी पार्वती अपने पतिकी कही हुई यह मनोहर बात सुनकर इसे सत्य जान मुसकराकर रह गयीं, लजावद कोई उत्तर न दे सकीं। केवल कौशिकीके यशका वर्णन छोड़कर और कुछ उन्होंने नहीं कहा। देवीने कौशिकीके विषयमें जो कुछ कहा, उसका वर्णन करता हूँ।

**देवी बोली**—‘भगवन् ! मैंने जिस कौशिकीकी सुष्टि की है, उसे क्या आपने नहीं देखा है ? वैसी कन्या न तो इस लोकमें हुई है और न होगी।’ यों कहकर देवीने उसके विन्ध्यपर्वतपर निवास करने तथा समराङ्गणमें शुभ्म और निशुभ्मका बध करके उनपर विजय पानेका प्रसङ्ग सुनाकर उसके वलपराक्रमका वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि वह उपासना करनेवाले लोगोंको सदा प्रत्यक्ष फल देती है तथा निरन्तर लोगोंकी रक्षा करती रहती है। इस विषयमें ब्रह्माजी आपको आवश्यक याते बतायेंगे।

उस समय इस प्रकार यातचीत करती हुई देवीकी आज्ञासे ही एक सखीने उस व्याघ्रको लाकर उनके सामने लाडा कर दिया। उसे देखकर देवी कहने लगीं—‘देव ! वह व्याघ्र मैं आपके लिये भेट लायी हूँ। आप इसे देखिये। इसके



समान मेरा उपासक दूसरा कोई नहीं है। इसने दुष्ट जन्तुओंके

समूहसे मेरे तपोवनकी रक्षा की थी। यह मेरा अत्यन्त भक्त है और आने रक्षात्मक कार्यसे मेरा विश्वासपन्न बन गया है। मेरी प्रसन्नताके लिये यह अपना देश छोड़कर यहाँ आ गया है। महेश्वर! यदि मेरे आगे से आपको प्रसन्नता हुई है और यदि आप मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं तो मैं नाहती हूँ कि यह नन्दीकी आशासे मेरे अन्तःपुरके द्वारपर अल रक्षकोंके साथ उन्हींके चिह्न धारण करके सदा स्थित रहे।

वायुदेव कहते हैं—देवीके इस मधुर और अनतो-गत्या प्रेम वदानेवाले शुभ वचनको सुनकर महादेवजीने कहा—‘मैं वहुत प्रसन्न हूँ।’ फिर तो वह व्याश उसी क्षण लकड़ी हुई सुवर्णजटित बैतकी छड़ी, रत्नोंसे जटित विचित्र वक्तव्य सर्पकी-सी आकृतिवाली छुरी तथा रक्षकोचित वेष धारण किये गणाश्यकके पदपर प्रतिष्ठित दिखायी दिया। उसने उमासहित महादेव और नन्दीको आनन्दित किया था। इसलिये सोमनन्दी नामसे विल्यात हुआ। इस प्रकार देवीका प्रिय कार्य करके चन्द्रभूषण महादेवजीने उन्हें रत्नभूषित दिव्य अभ्यासोंपर भूषित किया। चन्द्रभूषण भगवान् शिवने सर्वमनोहरणी गिरिराजकुमारी गौरी देवीको पलंगपर विठाकर उस सम्म सुन्दर अलंकारोंसे स्वयं ही उनका शृङ्गार किया।

( अध्याय २७ )

### अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्की अग्निषोमात्मकताका प्रतिपादन

ऋषियोंने पूछा—प्रभो ! पार्वती देवीका समाधान करते हुए महादेवजीने यह वात क्यों कही कि ‘सम्पूर्ण विश्व अग्निषोमात्मक एवं वार्गर्थात्मक है। ऐश्वर्यका सार एकमात्र आशा ही है और वह आशा तुम हो।’ अतः इस विषयमें हम क्रमशः यथार्थ वातें सुनना चाहते हैं।

वायुदेव बोले—महर्षियो ! रुद्रदेवका जो धोर तेजोमय शरीर है, उसे अग्नि कहते हैं और अमृतमय सोम शक्तिका स्वरूप है; क्योंकि शक्तिका शरीर शान्तिकारक है। जो अमृत है, वह प्रतिष्ठा नामक कला है; और जो तेज है, वह साक्षात् विद्या नामक कला है। सम्पूर्ण सूक्ष्म भूतोंमें वे ही दोनों रस और तेज हैं। तेजकी वृत्ति दो प्रकारकी है। एक सूर्यरूपा है और दूसरी अग्निरूपा। इसी तरह रसवृत्ति भी दो प्रकारकी है—एक सोमरूपिणी और दूसरी जलरूपिणी। तेज विद्युत् आदिके लघुमें उपलब्ध होता है तथा रस, मधुर आदिके लघुमें। तेज और रसके भेदोंने ही इस चराचर जगत्को धारण कर रखा है। अग्निसे अमृतकी उत्पत्ति होती है और अमृतस्वरूप धीसे अग्निकी वृद्धि होती है, अतएव अग्नि और सोमको दी हुई आहुति जगत्के लिये हितकारक होती है। शास्य-साम्राज्य का उत्पादन करती है। वर्षा शास्यको

बढ़ाती है। इस प्रकार वषसे ही हविष्यका प्रादुर्भाव होता है जिससे यह अग्निषोमात्मक जगत् टिका हुआ है। अग्नि वहाँतक ऊपरको प्रज्वलित होता है, जहाँतक सोमसम्बन्धी परम अमृत विद्यमान है; और जहाँतक अग्निका शान है वहाँतक सोमसम्बन्धी अमृत नीचेको झरता है। इसलिये कालाग्नि नीचे है और शक्ति ऊपर। जहाँतक अग्नि है उसकी गति ऊपरकी ओर है, और जो जलका आप्तवान है उसकी गति नीचेकी ओर है। आधार-शक्तिने ही इस कर्वागमी कालाग्निको धारण कर रखा है तथा निम्नगामी सोम शिव-शक्तिके आधारपर प्रतिष्ठित है। शिव ऊपर है और शक्ति नीचे तथा शक्ति ऊपर है और शिव नीचे। इस प्रकार शिव और शक्तिने यहाँ सब कुछ व्याप्त कर रखा है। वर्षावर अग्निद्वारा जलाया हुआ जगत् भस्सासात् हो जाता है। वह अग्निका वीर्य है। भस्सको ही अग्निका वीर्य कहते हैं। जो इस प्रकार भस्सके श्रेष्ठ स्वरूपको जानकर ‘अग्निः’ इत्यादि मन्त्रों द्वारा भस्ससे स्नान करता है, वह बैधा हुआ जीव पाशसे मुक्त हो जाता है। अग्निके वीर्यलघु भस्सको सोमने अयोग युक्तिं द्वारा फिर आप्तवित किया; इसलिये वह प्रकृतिके अधिकारे चला गया। यदि योग्युक्तिसे शक्ति अमृतवर्षाके द्वारा उम

भस्मका सब और आप्लावन हो तो वह प्रकृतिके अधिकारोंको निवृत्त कर देता है। अतः इस तरहका अमृतप्लावन सदा मृत्युपर विजय पानेके लिये ही होता है। शिवाग्निके साथ शक्तिसम्बन्धी अमृतका सरी होनेपर जिसने अमृतका आप्लावन प्राप्त कर लिया, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है। जो अग्निके इस गुद्य स्वरूपको तथा पूर्वोक्त अमृतप्लावनको

ठीक-ठीक जानता है, वह अग्निघोमात्मक जगत्को त्यागकर फिर यहाँ जन्म नहीं लेता। जो शिवाग्निसे शरीरको दग्ध करके शक्तिस्वरूप सोमामृतसे योगमार्गके द्वारा इसे आप्लावित करता है, वह अमृतस्वरूप हो जाता है। इसी अभिप्रायको हृदयमें धारण करके महादेवजीने इस सम्पूर्ण जगत्को अग्निघोमात्मक कहा था। उनका वह कथन सर्वधा उचित है। ( अध्याय २८ )

### जगत् 'वाणी और अर्थरूप' है—इसका प्रतिपादन

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो ! अब यह बता रहा हूँ कि जगत्की वागर्थात्मकताकी सिद्धि कैसे की गयी है। छः अध्याओं ( मार्गों ) का सम्यक् ज्ञान में संक्षेपसे ही करा रहा हूँ, विस्तारसे नहीं। कोई भी ऐसा अर्थ नहीं है, जो विना शब्दका हो और कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो विना अर्थका हो। अतः समयानुसार सभी शब्द सम्पूर्ण अर्थोंके बोधक होते हैं। प्रकृतिका यह परिणाम शब्दभावना और अर्थभावनाके भेदसे दो प्रकारका है। उसे परमात्मा शिव तथा पार्वतीकी प्राकृत मूर्ति कहते हैं। उनकी जो शब्दमयी विभूति है, उसे विद्वान् तीन प्रकारकी बताते हैं—स्थूल, सूक्ष्मा और परा। स्थूल वह है जो कानोंको प्रत्यक्ष सुनायी देती है; जो केवल चिन्तनमें आती है, वह सूक्ष्मा कही गयी है और जो चिन्तनकी भी सीमासे परे है, उसे परा कहा गया है। वह शक्तिस्वरूपा है। वही शिवतत्त्वके अश्रित रहनेवाली 'परा शक्ति' कही गयी है। शानशक्तिके संयोगसे वही इच्छाकी उपोद्घालिका ( उसे दृढ़ करनेवाली ) होती है। वह सम्पूर्ण शक्तियोंकी समष्टिरूपा है। वही शक्तितत्त्वके नामसे विस्तृत हो समस्त कार्यसमूहकी मूल प्रकृति मानी गयी है। उसीको कुण्डलिनी कहा गया है। वही विशुद्धात्मपरा माया है। वह स्वरूपतः विभागरहित होती हुई भी छः अध्याओंके रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है। उन छः अध्याओंमें तीन तो शब्दरूप हैं और तीन अर्थरूप बताये गये हैं। सभी पुरुषोंको आत्मशुद्धिके अनुरूप सम्पूर्ण तत्त्वोंके विभागते लय और भोगके अधिकार प्राप्त होते हैं। वे सम्पूर्ण तत्त्वकलाओंद्वारा यथायोग्य प्राप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिमें पाँच प्रकारके परिणाम होते हैं, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। मन्त्राच्चा, पदाच्चा और वर्णाच्चा—ये तीन अच्चा शब्दसे सम्बन्ध रखते हैं तथा भुवनाच्चा, तत्त्वाच्चा और कलाच्चा—ये तीन अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। इन सबमें भी परस्त व्याप्त-व्यापक-भाव बताया जाता है। सम्पूर्ण मन्त्र मर्देते व्याप्त हैं; क्योंकि वे वाक्यरूप हैं। सम्पूर्ण पद भी कांते व्याप्त हैं; क्योंकि विद्वान् पुरुष वर्णोंके समूहको ही पद मर्दते हैं। वे वर्ण भी भुवनोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि उन्होंमें उनकी

उपलब्धि होती है। भुवन भी तत्त्वोंके समूहद्वारा बाहर-भीतरसे व्याप्त हैं; क्योंकि उनकी उत्पत्ति ही तत्त्वोंसे हुई है। उन कारणभूत तत्त्वोंसे ही उनका आरम्भ हुआ है। अनेक भुवन उनके अंदरसे ही प्रकट हुए हैं। उनमेंसे कुछ तो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। अन्य भुवनोंका ज्ञान शिवसम्बन्धी आगमसे प्राप्त करना चाहिये। कुछ तत्त्व सांख्य और योगशास्त्रोंमें भी प्रसिद्ध हैं।

शिवशास्त्रोंमें प्रसिद्ध तथा दूसरे-दूसरे भी जो तत्त्व हैं, वे सब कलाओंद्वारा यथायोग्य व्याप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिकालमें पाँच परिणाम हुए, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। वे पाँच कलाएँ उत्तरोत्तर तत्त्वोंसे व्याप्त हैं। अतः परा शक्ति सर्वत्र व्यापक है। वह विभागरहित होकर भी छः अध्याओंके रूपमें विभक्त है। शक्तिसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रादुर्भाव शिव-तत्त्वसे हुआ है। अतः जैसे घड़े आदि मिट्टीसे व्याप्त हैं, उसी प्रकार वे सारे तत्त्व एक-मात्र शिवसे ही व्याप्त हैं। जो छः अध्याओंसे प्राप्त होनेवाला है, वही शिवका परम धाम है। पाँच तत्त्वोंके शोधनसे व्यापिका और अव्यापिका शक्ति जानी जाती है। निवृत्तिकलाके द्वारा रुद्रलोकपर्यन्त ब्रह्माण्डकी स्थितिका शोधन होता है। प्रतिष्ठाकलाद्वारा उससे भी ऊपर जहाँतक अव्यक्तकी सीमा है, वहाँ-तककी शोध की जाती है। मध्यवर्तीनी विद्याकलाद्वारा उससे भी ऊपर विद्येश्वरपर्यन्त स्थानका शोधन होता है। शान्तिकलाद्वारा उससे भी ऊपरके स्थानका तथा शान्त्यतीता कलाके द्वारा अध्याके अन्ततकका शोधन हो जाता है। उसीको 'परम व्योम' कहा गया है।

ये पाँच तत्त्व बताये गये, जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। वहाँ साधकोंको यह सब कुछ देखना चाहिये; जो अध्याकी व्याप्तिको न जानकर शोधन करना चाहता है, वह द्युद्दित विद्युत रह जाता है। उसके फलको नहीं पा सकता। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ, केवल नरककी ही प्राप्ति करनेवाला होता है। शक्तियातका संयोग हुए विना तत्त्वोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। उनकी व्याप्ति और वृद्धिका राज भी

असम्भव है। शिवकी जो चित्तस्थल्पा परमेश्वरी परा शक्ति है, वही आज्ञा है। उस कारणस्था आज्ञाके सहयोगसे ही शिव समूर्ण विश्वके अधिष्ठाता होते हैं। विचारदृष्टिसे देखा जाय तो आत्मामें कभी विकार नहीं होता। वह विकारकी प्रतीति मायामात्र है। न तो बन्धन है और न उस बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली कोई मुक्ति है। शिवकी जो अव्यभिचारिणी पराशक्ति है, वही समूर्ण ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा है। वह उन्होंके समान धर्मवाली है और विशेषतः उनके उन-उन विलक्षण भावोंसे युक्त है। उसी शक्तिके साथ शिव गृहस्थ बने हुए हैं और वह भी सदा उन शिवके ही साथ उनकी गृहिणी बनकर रहती है। जो प्रकृतिजन्य जगत्-रूप कार्य है, वही उन शिव दम्पतिकी संतान है। शिव कर्ता हैं और शक्ति कारण। यही

उन दोनोंका भेद है। वास्तवमें एकमात्र माक्षात् शिव ही दो रूपोंमें स्थित हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि क्षी और पुण्य-रूपमें ही उनका भेद है। अन्य लोग कहते हैं कि पराशक्ति शिवमें नित्य समवेत है। जैसे प्रभा सूर्यसे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चित्तस्थलपिणी पराशक्ति शिवसे अभिन्न ही है। यही सिद्धान्त है। अतः शिव परम कारण हैं, उनकी आज्ञा ही परमेश्वरी है। उसीसे प्रेरित होकर शिवकी अविनाशिनी मूल प्रकृति कार्यभेदसे महामाया, माया और त्रिगुणात्मिक प्रकृति —इन तीन रूपोंमें स्थित हो छः अच्याऽर्थोंको प्रकट करती है। वह छः प्रकारका अच्या वागर्थमय है, वही समूर्ण जगत्-रूपमें स्थित है; सभी शास्त्रसमूह इसी भावमें विसारसे प्रतिपादन करते हैं। ( अथाय २९ )

### ऋषियोंके प्रश्नका उत्तर देते हुए वायुदेवके द्वारा शिवके स्वतन्त्र एवं सर्वानुग्राहक स्वरूपका प्रतिपादन

तदनन्तर ऋषियोंने कई कारण दिखाकर पूछा—  
वायुदेव ! यदि शिव सदा शान्तभावसे रहकर ही सबपर अनुग्रह करते हैं तो सबकी अभिलाषाओंको एक साथ ही पूर्ण कर्यों नहीं कर देते ? जो सब कुछ करनेमें समर्थ होगा, वह सबको एक साथ ही बन्धन-सुक्त कर्यों नहीं कर सकेगा। यदि कहें अनादिकालसे चले आनेवाले सबके विचित्र कर्म अलग-अलग हैं, अतः सबको एक समान फल नहीं मिल सकता तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि कर्मोंकी विचित्रता भी यहाँ नियामक नहीं हो सकती। कारण कि वे कर्म भी इश्वरके करनेसे ही होते हैं। इस विषयमें वहुत कहनेसे क्या लाभ ! उपर्युक्तरूपसे विभिन्न युक्तियोंद्वारा फैलायी गयी नास्तिकता जिस प्रकारसे शीघ्र ही निवृत्त हो जाय, वैसा उपदेश दीजिये।

वायु देवताने कहा—त्राहणो ! आपलेगोंने युक्तियोंसे प्रेरित होकर जो संशय उपस्थित किया है, वह उचित ही है; क्योंकि किसी वातको जाननेकी इच्छा अथवा तत्त्वज्ञानके लिये उठाया गया प्रश्न साधुद्विद्वाले पुरुषोंमें नास्तिकताका उत्पादन नहीं कर सकता। मैं इस विषयमें ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करूँगा, जो सत्पुरुषोंके मोहको दूर करनेवाला है। असत् पुरुषोंका जो अन्यथा भाव होता है, उसमें प्रमुख शिवकी कृपाका अभाव ही कारण है। परिपूर्ण परमात्मा शिवके परम

गया है। परानुग्रह कर्ममें स्वभाव ही पर्याप्त ( पूर्णतः समर्थ ) है, अन्यथा निःस्वभाव पुरुष किसीपर भी अनुग्रह नहीं कर सकता। पश्च और पाशस्थल्प सारा जगत् ही पर कहा गया है वह अनुग्रहका पात्र है। परको अनुगृहीत करनेके लिये पति-की आज्ञाका समन्वय आवश्यक है। पति आज्ञा देनेवाला है वही सदा सबपर अनुग्रह करता है। उस अनुग्रहके लिये ही आज्ञा-रूप अर्थको स्वीकार करनेपर शिव परतन्त्र कैसे करे जा सकते हैं। अनुग्रहकी अपेक्षा न रखकर कोई भी अनुग्रह सिद्ध नहीं हो सकता। अतः स्वातन्त्र्य-शब्दके अर्थ-की अपेक्षा न रखना ही अनुग्रहका लक्षण है। जो अनुग्रास है, वह परतन्त्र माना जाता है; क्योंकि पतिके अनुग्रहके दिन उसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। जो मूर्यात्मा है वे भी अनुग्रहके पात्र हैं; क्योंकि उनसे भी शिवकी आशकी निवृत्ति नहीं होती—वे भी शिवकी आज्ञासे बाहर नहीं हैं। यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो शिवकी आज्ञाके अधीन न हो। सकल ( सर्व या साकार ) होनेपर भी जिसके द्वारा हमें निष्कल ( निर्गुण या निराकार ) शिवकी प्राप्ति होती है उस मूर्ति या लिङ्गके रूपमें साक्षात् शिव ही विराज रहे हैं। वह 'शिवकी मूर्ति है' यह बात तो उपचारसे कही जाती है। जो साक्षात् निष्कल तथा परम कारणरूप शिव हैं, वे किसीके द्वारा भी साकार अनुभावसे उपलक्षित नहीं होते, ऐसी बात

नहीं है, प्रमाण अथवा प्रतीकमात्रसे अपेक्षा-बुद्धिका उदय नहीं होता। वे परम तत्त्वके उपलक्षणमात्र हैं, इसके सिवा उनका और कोई अभिप्राय नहीं है। कोई-न-कोई मूर्ति ही आत्माका साक्षात् उपलक्षण होती है। 'शिवकी मूर्ति है' इस कथनका अभिप्राय यह है कि उस मूर्तिके रूपमें परम शिव विराजमान है। मूर्ति उनका उपलक्षण है। जैसे काष्ठ आदि आलग्ननका आश्रय लिये बिना केवल अग्नि कहीं उपलब्ध नहीं होती, उसी प्रकार शिव भी मूर्त्यात्मामें आलूड़ हुए बिना उपलब्ध नहीं होते। यही वस्तुस्थिति है। जैसे किसीसे वह कहनेपर कि 'नुम आग ले आओ' उसके द्वारा जलती हुई लकड़ी आदिके सिवा साक्षात् अग्नि नहीं लायी जाती, उसी प्रकार शिवका 'पूजन भी मूर्तिरूपमें ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये पूजा आदिमें 'मूर्त्यात्मा' की परिकल्पना होती है; क्योंकि मूर्त्यात्माके प्रति जो कुछ किया जाता है, वह साक्षात् शिवके प्रति किया गया ही माना गया है। लिङ्ग आदिमें और विदेशप्रतः अर्चाविग्रहमें जो पूजनकृत्य होता है, वह भगवान् शिवका ही पूजन है। उन-उन मूर्तियों-के रूपमें शिवकी भावना करके हमलोग शिवकी ही उपासना करते हैं। जैसे परमेष्ठी शिव मूर्त्यात्मापर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार मूर्त्यात्मामें स्थित शिव हम पशुओंपर अनुग्रह करते हैं। परमेष्ठी शिवने लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही सदाशिव आदि समूर्ण मूर्त्यात्माओंको अधिष्ठित—अपनी आत्मामें रखकर अनुगृहीत किया है।

भगवान् शिव सबपर अनुग्रह ही करते हैं, किसीका निग्रह नहीं करते; क्योंकि निग्रह करनेवाले लोगोंमें जो दोष होते हैं, वे शिवमें असम्भव हैं। ब्रह्मा आदिके प्रति जो निग्रह देखे गये हैं, वे भी श्रीकण्ठमूर्ति शिवके द्वारा लोकहितके लिये ही किये गये हैं। विद्वानोंकी दृष्टिमें निग्रह भी स्वरूपसे दूषित नहीं है। ( जब वह राग-द्वेषसे प्रेरित होकर किया जाता है, तभी निन्दनीय माना जाता है। ) इसीलिये दण्डनीय अपराधियोंको गत्ताओंकी ओरसे मिले हुए दण्डकी प्रशंसा की जाती है। नदि साधुही रक्षा करनी है तो असाधुका निवारण करना री होगा। पहले साम आदि तीन उपर्योगी असाधुके निवारण-मा प्रयत्न किया जाता है। यदि यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो अन्तमें चौथे उपयोग दण्डका ही आश्रय लिया जाता है। एवं इन्द्रजित अनुशासन लोकहितके लिये ही किया जाना चाहिये। वही उसके औचित्यको परिलक्षित करता है। यदि भगवान् इसके पिपरीत हो तो उसे अहितकर कहते हैं। जो

सदा हितमें ही लगे रहनेवाले हैं, उन्हें ईश्वरका दृश्यान्त अपने सामने रखना चाहिये। ( ईश्वर केवल दुष्टोंको ही दण्ड देते हैं, इसीलिये मिर्दोष कहे जाते हैं। ) अतः जो दुष्टोंको ही दण्ड देता है, वह उस निग्रह-कर्मको लेकर सत्पुरुषोद्वारा अङ्गित कैसे किया जा सकता है। लोकमें जहाँ कहीं भी निग्रह होता है, वह यदि विद्वेषपूर्वक न हो, तभी श्रेष्ठ माना जाता है। जो पिता पुत्रको दण्ड देकर उसे अधिक शिक्षित बनाता है, वह उससे द्वेष नहीं करता।

शिवकी आत्माका पालन ही हित है और जो हित है, वही उनका अनुग्रह है। अतएव सबको हितमें नियुक्त करनेवाले शिव सबपर अनुग्रह करनेवाले कहे गये हैं। जो उपकार-शब्दका अर्थ है, उसे भी अनुग्रह ही कहा गया है; क्योंकि उपकार भी हितरूप ही होता है। अतः सबका उपकार करनेवाले शिव सर्वानुग्राहक हैं। शिवके द्वारा जड़-चेतन सभी सदा हितमें ही नियुक्त होते हैं। परंतु सबको जो एक साथ और एक समान हितकी उपलब्धि नहीं होती, इसमें उनका स्वभाव ही प्रतिबन्धक है। जैसे सूर्य अपनी किरणोद्वारा सभी कमलोंको विकासके लिये प्रेरित करते हैं, परंतु वे अपने-अपने स्वभावके अनुसार एक साथ और एक समान विकसित नहीं होते, स्वभाव भी पदार्थोंके भावी अर्थका कारण होता है, किंतु वह नष्ट होते हुए अर्थको कर्ताओंके लिये सिद्ध नहीं कर सकता। जैसे अग्निका संयोग सुवर्णको ही पिवलता है, कोयले या अङ्गारको नहीं, उसी प्रकार भगवान् शिव परिपक्ष मलबाले पशुओंको ही बन्धनमुक्त करते हैं, दूसरोंको नहीं। जो वस्तु जैसी होनी चाहिये, वैसी वह स्वयं नहीं बनती। वैसी दृश्यनेके लिये कर्ताकी भावनाका सहयोग होना आवश्यक है। कर्ताकी भावनाके बिना ऐसा होना सम्भव नहीं है, अतः कर्ता सदा स्वतन्त्र होता है।

सबपर अनुग्रह करनेवाले शिव जिस तरह स्वभावसे ही निर्मल हैं, उसी तरह 'जीव' संशोधारण करनेवाली आत्माएँ स्वभावतः मलिन होती हैं। यदि ऐसी वात न होती तो वे जीव क्यों नियमपूर्वक संसारमें भटकते और शिव क्यों संसार-बन्धनसे परे रहते? विद्वान् पुरुष कर्म और मायाके बन्धनको ही जीवका 'संसार' कहते हैं। यह बन्धन जीवको ही प्राप्त होता है, शिवको नहीं। इसमें कारण है, जीवका स्वभाविक मल। यह कारणभूत मल जीवोंका अपना स्वभाव ही है, आगलुक नहीं है। यदि आगलुक होता तो किसीको भी किसी भी कारणसे बन्धन प्राप्त हो जाता। जो यह देता है, वह एक

है; क्योंकि सब जीवोंका स्वभाव एक-सा है। यद्यपि सबमें एक-सा आत्मभाव है, तो भी मल्के परिपाक और अपरिपाकके कारण कुछ जीव बद्ध हैं और कुछ बन्धनसे मुक्त हैं। बद्ध जीवोंमें भी कुछ लोग ल्य और भोगके अधिकारके अनुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट होकर ज्ञान और ऐश्वर्य आदिकी विषमताको प्राप्त होते हैं अर्थात् कुछ लोग अधिक ज्ञान और ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं तथा कुछ लोग कम। कोई मूर्त्यात्मा होते हैं और कोई साक्षात् शिवके समीप विचरनेवाले होते हैं। मूर्त्यात्माओंमें कोई तो शिवस्वरूप हो छहों अध्यात्मोंके ऊपर स्थित होते हैं, कोई अध्यात्मोंके मध्यमार्गमें महेश्वर होकर रहते हैं और कोई निम्नभागमें रुद्रस्वरूपसे स्थित होते हैं। शिवके समीपवर्ती स्वरूपमें भी मायासे परे होनेके कारण उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्टके भेदसे तीन श्रेणियाँ होती हैं—वहाँ निम्न स्थानमें आत्माकी स्थिति है, मध्यम स्थानमें अन्तरात्माकी स्थिति है और जो सबसे उत्कृष्ट श्रेणीका स्थान है, उसमें परमात्माकी स्थिति है। ये ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहलाते हैं। कोई वसु ( जीव ) परमात्मपदका आश्रय लेनेवाले होते हैं, कोई अन्तरात्मपदधर और आत्मपदधर प्रतिष्ठित होते हैं।

भगवान् शिव तो अनायास ही समस्त पशुओंको बन्धनसे मुक्त करनेमें समर्थ है। फिर वे उन्हें बन्धनमें डाले रखकर क्यों दुःख देते हैं? यहाँ ऐसा विचार या सदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि सारा संसार दुःखरूप ही है, ऐसा विचार-वानोंका निश्चित सिद्धान्त है। जो स्वभावतः दुःखमय है, वह दुःखरहित कैसे हो सकता है। स्वभावमें उलट-फेर नहीं हो सकता। वैद्यकी द्वासे रोग अरोग नहीं होता। वह रोगपीडित मनुष्यका अपनी द्वासे सुखपूर्वक उद्धार कर देता है। इसी प्रकार जो स्वभावतः मर्त्यिन और स्वभावसे ही दुखी हैं, उन पशुओंको अपनी आशारूपी ओषधि देकर शिव दुःखसे छुड़ा देते हैं। रोग होनेमें वैद्य कारण नहीं है, परंतु संसारकी उत्पत्तिमें शिव कारण है। अतः रोग और वैद्यके द्वान्तसे शिव और संसारके दार्ढन्तमें समानता नहीं है। इसलिये इसके द्वारा शिवपर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। जब दुःख स्वभावसिद्ध है, तब शिव उसके कारण कैसे हो सकते हैं। जीवोंमें जो स्वाभाविक मल है, वही उन्हें संसारके चक्रमें

डालता है। संसारका कारणभूत जो मल—अचेतन माया आदि है, वह शिवका सांनिध्य प्राप्त किये विना सत्यं चेत्रशील नहीं हो सकता। जैसे चुम्बक मणि लोहेका सांनिध्य पाकर ही उपकारक होता है—लोहेको सौंचता है उसी प्रकार शिव भी जड माया आदिका सांनिध्य पाकर ही उसके उपकारक होते हैं, उसे सचेष्ट बनाते हैं। उनके विचारमान सांनिध्यको अकारण हटाया नहीं जा सकता। अतः जगत्के लिये जो सदा अज्ञात हैं, वे शिव ही इसके अधिष्ठाता हैं। शिवके विना यहाँ कोई भी प्रवृत्त ( चेष्टशील ) नहीं होता, उनकी आशाके विना एक पत्ता भी नहीं हिलता। उनसे प्रेरित होकर ही यह सारा जगत् विभिन्न प्रकारकी चेष्ट करता है, तथापि वे शिव कभी मोहित नहीं होते। उनकी आज्ञारूपिणी जो शक्ति है, वही सबका नियन्त्रण करती है। उसका सदा और मुख है। उसीने सदा इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्चका विस्तार किया है, तथापि उसके दोषसे शिव दूषित नहीं होते। जो दुर्बुद्धि मानव मोहकश इसके विपरीत मान्यता रखता है, वह नष्ट हो जाता है। शिवकी शक्तिके वैभवसे ही संसार चलता है, तथापि इससे शिव दूषित नहीं होते।

इसी समय आकाशसे शरीररहित वाणी सुनायी दी—  
‘सत्यम् अमृतम् सौम्यम्’॥ इन पदोंका वहाँ सत्य उत्त्वरहित हुआ, उसे सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। उनके समस्त संशयोंका निवारण हो गया तथा उन सुनियोगे विस्मित हो प्रभु पवनदेवको प्रणाम किया। इस प्रकार उन मुनियोंको संदेहरहित करके भी वायुदेवने वह नहीं माना कि इन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। ‘इनका ज्ञान अभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ है’ ऐसा समझकर ही वे इस प्रकार बोले।

वायु देवताने कहा—मुनियो! परोक्ष और अपरोक्षके भेदसे ज्ञान दो प्रकारका माना गया है। परोक्ष ज्ञानको असिर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुस्थिर। युक्तिपूर्ण उपदेशसे जो ज्ञान होता है, उसे विद्वान् पुरुष परोक्ष कहते हैं। वही श्रेष्ठ अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो जायगा। अपरोक्ष ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होता, ऐसा निश्चय करके तुमलोग आलसरहित हो श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो।

( अध्याय ३२ )

## परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत ज्ञान तथा उसके साधनोंका वर्णन

ऋषियोंने पूछा—वायुदेव ! वह कौन-सा श्रेष्ठ अनुष्ठान है, जो मोक्षस्वरूप ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है ? उसको और उसके साधनोंको आज आप हमें बतानेकी कृपा करें।

वायुने कहा—भगवान् शिवका बताया हुआ जो परम धर्म है, उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर सक्षात् मोक्षदायक शिव अपरोक्ष हो जाते हैं। वह परमधर्म पाँचों पर्वोंके कारण क्रमशः पाँच प्रकारका जानना चाहिये। उन पाँचोंके नाम हैं—क्रिया, तप, जप, ध्यान और शन। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, उन उत्कृष्ट साधनोंसे सिद्ध हुआ धर्म परम धर्म माना गया है। जहाँ परोक्ष ज्ञान भी अपरोक्ष ज्ञान होकर मोक्षदायक होता है। वैदिक धर्म दो प्रकारके बताये गये हैं—परम और अपरम। धर्म-शब्दसे प्रतिपाद्य अर्थमें हमारे लिये श्रुति ही प्रमाण है। योगपर्यन्त जो परम धर्म है, वह श्रुतियोंके शिरोभूत उपनिषदोंमें वर्णित है और जो अपरम धर्म है, वह उसकी अपेक्षा नीचे श्रुतिके मुखभागसे अर्थात् संहिता-मन्त्रोदाय प्रतिपादित हुआ है। जिसमें पशु ( बड़ ) जीवोंका प्रधिकार नहीं है, वह वेदान्तवर्णित धर्म 'परम धर्म' माना गया है। उससे भिन्न जो यज्ञ-यागादि है, उसमें सबका अधिकार होनेसे वह साधारण या अपरम धर्म कहलाता है। जो अपरम धर्म है, वही परम धर्मका साधन है। धर्मशास्त्र आदिके द्वारा उसका सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक साङ्घोपाङ्ग निरूपण हुआ है। भगवान् शिवके द्वारा प्रतिपादित जो परम धर्म है, उसीका नाम श्रेष्ठ अनुष्ठान है। इतिहास और पुराणोदारा उसका किसी फ़ार विस्तार हुआ है। परंतु शैव-शास्त्रोदारा उसके वैसारका साङ्घोपाङ्ग निरूपण किया गया है। वहीं उसके अल्पका सम्यक् रूपसे प्रतिपादन हुआ है। साथ ही उसके संकार और अधिकार भी सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक बताये गये हैं। शैव-यागमके दो भेद हैं—श्रौत और अश्रौत। जो श्रुतिके सार तत्त्वसे सम्पन्न है वह श्रौत है; और जो लक्ष्य है, वह अश्रौत माना गया है। स्वतन्त्र शैवागम पहले रूप प्रकारका था, पिर अठारह प्रकारका हुआ। वह शैवियोंका आदि संशाऽर्थोंसे सिद्ध होकर सिद्धान्त नाम ग्रन्थ करता है। श्रुतिसारमय जो शैव-शास्त्र है, उसका विलार सौ करोड़ इलैकोंमें किया गया है। उसीमें उत्कृष्ट 'पाशुपत व्रत' और 'पाशुपत शन' का वर्णन किया गया है। सुग-उम्मे होनेवाले शिष्योंको उसका उपदेश देनेके लिये भगवान्

शिव स्वयं ही योगाचार्यरूपसे जहाँ-तहाँ अवतीर्ण हो उसका प्रचार करते हैं।

इस शैव-शास्त्रको संक्षिप्त करके उसके सिद्धान्तका प्रबन्धन करनेवाले मुख्यतः चार महर्षि हैं—रुद्र, दधीच, अगस्त्य और महायशस्त्री उपमन्तु। उन्हें संहिताओंका प्रवर्तक 'पाशुपत' जानना चाहिये। उनकी संतान-परम्परामें सैकड़ों-हजारों गुरुजन हो चुके हैं। पाशुपत सिद्धान्तमें जो परम धर्म बताया गया है, वह चर्या आदि चार पादोंके कारण चार प्रकारका माना गया है। उन चारोंमें जो पाशुपत योग है, वह दृढ़तापूर्वक शिवका साक्षात्कार करानेवाला है। इसलिये पाशुपत योग ही श्रेष्ठ अनुष्ठान माना गया है। उसमें भी ब्रह्माजीने जो उपाय बताया है, उसका वर्णन किया जाता है। भगवान् शिवके द्वारा परिकल्पित जो 'नामाष्टकमय योग' है, उसके द्वारा सहसा 'शैवी प्रश्ना'का उदय होता है। उस प्रश्नाद्वारा पुरुष शीघ्र ही सुस्थिर परम ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिसके हृदयमें वह ज्ञान प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके ऊपर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं। उनके कृपा-प्रसादसे वह परम योग सिद्ध होता है, जो शिवका अपरोक्ष दर्शन कराता है। शिवके अपरोक्ष ज्ञानसे संसार-बन्धनका कारण दूर हो जाता है। इस प्रकार संसारसे मुक्त हुआ पुरुष शिवके समान हो जाता है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ उपाय है। उसीका पृथक् वर्णन करते हैं। शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह ( ब्रह्मा ) संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा—ये मुख्यतः आठ नाम हैं। ये आठों मुख्य नाम शिवके प्रतिपादक हैं। इनमेंसे आदि पाँच नाम क्रमशः शास्त्रतीता आदि पाँच कलाओंसे सम्बन्ध रखते हैं और उन पाँच उपाधियोंको ग्रहण करनेसे सदाशिव आदिके वोधक होते हैं। उपाधिकी निवृत्ति होनेपर इन भेदोंकी निवृत्ति हो जाती है। वह पद ही निवृत्ति है। किंतु उस पदपर प्रतिष्ठित होनेवाले अनित्य कहे गये हैं। पदोंका परिवर्तन होनेपर पदवाले पुरुष मुक्त हो जाते हैं। परिवर्तनके अनन्तर पुनः दूसरे आत्माओंको उस पदकी प्राप्ति बतायी जाती है और उन्होंके बे आदि पाँच नाम नियत होते हैं। उपादान आदि योगसे अन्य तीन नाम ( संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा ) भी त्रिविध उपाधियोंका प्रतिपादन करते हुए शिवमें ही अनुगत होते हैं।

अनादि मलका संसर्ग उनमें पहलेसे ही नहीं है तथा वे स्वभावतः अत्यन्त शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'शिव' कहलाते हैं। अथवा वे ईश्वर समस्त कस्याणमय गुणोंके एकमात्र घनीभूत विग्रह हैं। इसलिये शिवतत्त्वके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ महात्मा उन्हें शिव कहते हैं। तेईस तत्त्वोंसे परे जो प्रकृति बतायी गयी है, उससे भी परे पचासवें तत्त्वके स्थानमें पुरुषको बताया गया है, जिसे वेदके आदिमें ओकाररूप कहा गया है। ओकार और पुरुषमें वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध है। उसके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान एकमात्र वेदसे- ही होता है। वे ही वेदान्तमें प्रतिष्ठित हैं। किंतु वह प्रकृतिसे संयुक्त है; अतः उससे भी परे जो परम पुरुष है, उसका नाम 'महेश्वर' है; क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनोंकी प्रवृत्ति उसीके अधीन है। अथवा यह जो अविनाशी त्रिगुणमय तत्त्व है, इसे प्रकृति समझना चाहिये। इस प्रकृतिको माया कहते हैं। यह माया जिनकी शक्ति है, उन मायापतिका नाम 'महेश्वर' है। महेश्वरके सम्बन्धसे जो माया अथवा प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करते हैं, वे अनन्त या 'विष्णु' कहे गये हैं। वे ही कालात्मा और परमात्मा आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। उन्हींको स्थूल और सूक्ष्मरूप भी कहा गया है। दुःख अथवा दुःखके द्वेषका नाम 'सत्' है। जो प्रभु उसका द्रावण करते हैं—उसे मार भगाते हैं, उन परम कारण शिवको साधु पुरुष 'कुरु' कहते हैं। कला, काल आदि तत्त्वोंसे लेकर भूतोंमें पृथ्वी-पर्यन्त जो छत्तीसें तत्त्व हैं, उन्हींसे शरीर बनता है। उस शरीर, इन्द्रिय आदिमें जो तन्द्रारहित हो व्यापकरूपसे स्थित हैं, वे भगवान् शिव 'रुद्र' कहे गये हैं। जगत्के पितारूप जो मूर्त्युतमा हैं, उन सबके पिताके रूपमें भगवान् शिव विराजमान हैं; इसलिये वे 'पितामह' कहे गये हैं। जैसे रोगोंके निदानको जाननेवाला वैद्य तदनुकूल उपायों और दवाओंसे रोगको दूर कर देता है, उसी तरह ईश्वर लघ्योगाधिकारसे सदा जड़-मूलसहित संसार-रोगकी निवृत्ति करते हैं; अतः संपूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता विद्वान् उन्हें 'संसार-वैद्य' कहते हैं। दस विषयोंके ज्ञानके लिये दसों इन्द्रियोंके होते हुए भी जीव तीनों कालोंमें होनेवाले स्थूल-सूक्ष्म

? . कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और शुण—ये सात तत्त्व, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, पाँच शब्द आदि विषय तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये छठोस तत्त्व हैं।

पदार्थोंको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि मायाने ही उन्हें मलसे आबृत कर दिया है। परंतु भगवान् सदाशिव सम्पूर्ण विषयोंके ज्ञानके साधनभूत इन्द्रियादिके न होनेपर भी जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें डीक-डीक जानते हैं; इसलिये वे 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं। जो इन सभी उत्तम गुणोंसे नित्य संयुक्त होनेके कारण सबके आत्मा हैं, जिनके लिये अपनेसे अतिरिक्त किसी दूसरे आत्माकी सत्ता नहीं है, वे भगवान् शिव स्वयं ही 'परमात्मा' हैं।

आन्वार्यकी कृपासे इन आठों नामोंका अर्थसहित उपदेश पाकर शिव आदि पाँच नामोंद्वारा निवृत्ति आदि पाँचों कलाओंकी अन्थिका क्रमशः छेदन और गुणके अनुसार शोधन करके गुणित, उद्धातयुक्त और अनिष्ट प्राणोंद्वारा हृदय, कण्ठ, तालु, भूमध्य और व्रक्षरत्नसे युक्त पुर्यष्टकका भेदन करके सुषुम्णा नाडीद्वारा अपने आत्माको सहस्रार चक्रके भीतर ले जाय। उसका गुणरूप है। वह तरुण सूर्यके सदृश रक्तवर्ण केसरके द्वारा रङ्गित और अधोमुख है। उसके पचास दलोंमें स्थित 'ध्रु'से लेकर 'क्ष'तक सविन्दु अक्षर-कर्णिकाके वीचमें गोलाकार चन्द्र-मण्डल है। यह चन्द्रमण्डल छत्राकारमें स्थित है। उसने एक ऊर्ध्वमुख द्वादश दल कमलको आबृत कर रखा है। उस कमलकी कर्णिकामें विद्युत्-सदृश अक्षादि त्रिकोण यन्त्र है। उस यन्त्रके चारों ओर सुधासागर होनेके कारण वह मणिद्वीपके आकारका हो गया है। उस द्वीपके मध्यभागमें मणिपीठ है। उसके वीचमें नाद-विन्दुके ऊपर हंसपीठ है। उसपर परम शिव विराजमान है। उक्त चन्द्रमण्डलके ऊपर शिवके तेजमें अपने आत्माको संयुक्त करे। इस प्रकार जीवको शिवमें लीन करके शक्त अमृत-वृष्णीके द्वारा अपने शरीरके अभिगित्त होनेकी भावना करे। तत्यश्चात् अमृतमय विग्रहवाले अपने आत्माको व्रहस्यसे उतारकर हृदयमें द्वादश-दल कमलके भीतर स्थित चन्द्रमासे परे इकेत कमलपर अर्द्धनारीश्वर रूपमें विराजमान मनोहर आकृतिवाले निर्मल देव भक्तवत्सल महादेव शंकरका चित्तन करे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्धस्फटिक मणिके गमन करे। शीतल प्रभासे युक्त और प्रसन्न हैं। इम प्रकार मन-ही-मन ध्यान करके शान्तचित्त हुआ मनुष्य शिवके आठ नामोंद्वारा ही भावमय पुर्णोंसे उनकी पूजा करे। पूजनके अन्तमें पुनः प्राणायाम करके चित्तमें भलीभांति एकाग्र रखते हुए शिव-नामाष्टकका जप करे।

फिर भावनाद्वारा नाभिमें आठ आहुतियोंका हवन करके पूर्णाहुति एवं नमस्कारपूर्वक आठ फूल चढ़ाकर अन्तिम अर्चना पूरी करके चुल्दमें लिये हुए जलकी भाँति अपने आपको शिवके चरणोंमें समर्पित कर दे । इस प्रकार करनेसे

शीघ्र ही मङ्गलमय पाशुपत ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है और साधक उस ज्ञानकी सुस्थिरता पा लेता है । साथ ही वह परम उत्तम पाशुपत-ब्रत एवं परम योगको पाकर मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है । ( अध्याय ३२ )

## पाशुपत-ब्रतकी विधि और महिमा तथा भस्मधारणकी महत्ता

**श्रृंगि बोले—**भगवन् । हम परम उत्तम पाशुपत ब्रतको सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके ब्रह्मा आदि सब देवता पाशुपत माने गये हैं ।

**चायुदेवने कहा—**मैं तुम सब लोगोंको गोपनीय पाशुपत-ब्रतका रहस्य बताता हूँ, जिसका अर्थवैशीष्ट्यमें वर्णन है तथा जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । चित्रासे युक्त पौर्णमासी इसके लिये उत्तम काल है । शिवके द्वारा अनुग्रहीत स्थान ही इसके लिये उत्तम देश है अथवा क्षेत्र, यथाचे आदि तथा वनप्रान्त भी शुभ एवं प्रशस्त देश है । पहले त्रयोदशीको भलीभाँति स्नान करके नित्यकर्म सम्पन्न कर ले । फिर अपने आचार्यकी आज्ञा लेकर उनका पूजन और नमस्कार करके ब्रतके अङ्गरूपसे देवताओंकी विशेष पूजा करे । उपासकको स्वयं श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत पुष्टि और श्वेत चन्दन धारण करना चाहिये । वह कुशके आसनपर बैठकर हाथमें मुष्टीभर कुश ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके तीन प्राणायाम करनेके पश्चात् भगवान् शिव और देवी पार्वतीका स्थान करे । फिर यह संकल्प करे कि मैं शिवशास्त्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार यह पाशुपत-ब्रत करूँगा । वह जबतक शरीर गिर न जाय, तबतकके लिये अथवा वारह, छः या तीन वर्षोंके लिये अथवा वारह, छः, तीन या एक महीनेके लिये अथवा वारह, छः, तीन या एक दिनके इस ब्रतकी दीक्षा ले । संकल्प करके विरजा होमके लिये विधिवत् अग्निकी स्थापना करके क्रमः धी, समिधा और चरुसे हवन करे । तत्पश्चात् तत्त्वोंकी शुद्धिके उपदेशसे फिर मूलमन्त्रद्वारा उन समिधा आदि चामप्रियोंकी ही आहुतियों दे । उस समय वह बारंबार यह चिन्तन करे कि ‘मेरे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं, सब शुद्ध हो जाएं’ । उन तत्त्वोंके नाम इस प्रकार हैं—पौँचों भूत, उनकी गैंडे तन्मात्राएँ, पौँच शानेन्द्रियों, पौँच कर्मेन्द्रियों, पौँच विषय, वृत्ता आदि सात धरु, प्राण आदि पौँच वायु, मन, बुद्धि, भूम्हर, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल,

माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति-तत्त्व और शिव-तत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं ।

विरज मन्त्रोंसे आहुति करके होता रजोगुणरहित शुद्ध हो जाता है । फिर शिवका अनुग्रह पाकर वह ज्ञानवान् होता है । तदनन्तर गोबर लाकर उसकी पिण्डी बनाये । फिर उसे मन्त्र-द्वारा अभिमन्त्रित करके अग्निमें डाल दे । इसके बाद इसका प्रोक्षण करके उस दिन व्रती केवल हविष्य खाकर रहे । जब रात बीतकर प्रातःकाल आये, तब चतुर्दशीमें पुनः पूर्वोक्त सब कृत्य करे । उस दिन शेष समय निराहार रहकर ही त्रितावे । फिर पूर्णिमाको प्रातःकाल इसी तरह होमपर्यन्त कर्म करके स्त्रामिका उपसंहार करे । तदनन्तर यज्ञपूर्वक उसमेंसे भस्म ग्रहण करे । इसके बाद साधक चाहे जटा रखा ले, चाहे सारा सिर मुँड़ा ले या चाहे तो केवल सिरपर शिखा धारण करे । इसके बाद स्नान करके यदि वह लोकलज्जासे ऊपर उठ गया हो तो दिग्म्बर हो जाय । अथवा गेशआ वस्त्र, मृगचम्भ या फटे-पुराने चीथडेको ही धारण कर ले । एक वस्त्र धारण करे या बल्कल पहनकर रहे । कटिमें मेखला धारण करके हाथमें दण्ड ले ले । तदनन्तर दोनों पैर धोकर आचमन करे । विरजामिसे प्रकट हुए भस्मको एकत्र करके ‘अस्मिरिति भस्म’ इत्यादि छः अर्थवैदीय मन्त्रोद्वारा उसे अपने शरीरमें लगाये । भस्मकसे लेकर पैरतक सभी अङ्गोंमें उसे अच्छी तरह मल दे । इसी क्रमसे प्रणव या शिवमन्त्रद्वारा सर्वाङ्गमें भस्म रमाकर ‘ऋग्युषम्’ इत्यादि मन्त्रोंसे ललट आदि अङ्गोंमें त्रिपुण्डकी रखना करे । इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो शिवयोगका आचरण करे । तीनों संथाओंके समय ऐसा ही करना चाहिये । यही ‘पाशुपत-ब्रत’ है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है । वह जीवोंके पशुभावको निवृत्त कर देता है । इस प्रकार पाशुपत-ब्रतके अनुष्ठानद्वारा पशुल्कका परित्याग करके लिङ्गनूतिं सनातन महादेवजीका पूजन करना चाहिये । यदि कैभी हो तो सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जिसमें नौ प्रकारके रत जड़े गये हों । उसमें कर्णिका और केसर भी हों । ऐसे कमलको भगवान्का

आसन बनावे । धनाभाव होनेपर लाल या सफेद कमलके फूलका आसन अर्पित करे । वह भी न मिले तो केवल भावना-मय कमल समर्पित करे ।

उस कमलकी कर्णिकामें पीठिकासहित छोटेसे स्फटिक मणिमय लिङ्गकी स्थापना करके क्रमशः विशिष्टपूर्वक उसका पूजन करे । उस लिङ्गका शोधन करके पहले शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना कर लेनी चाहिये । फिर आसन दे पञ्चमुखके प्रकारसे मूर्तिकी कल्पना करके पञ्चगव्य आदिसे पूर्ण, अपने वैभवके अनुसार संगृहीत भरे हुए सुवर्णनिर्मित कलशोंसे उस मूर्तिको स्थान कराये । फिर सुगन्धित द्रव्य, कपूर, चन्दन और कुङ्कुम आदिसे वेदीसहित भूषणभूषित शिवलिङ्गका अनुलेपन करके विल्वपत्र, लाल कमल, श्वेत कमल, नील कमल, अन्यान्य सुगन्धित पुष्टि, पवित्र एवं उत्तम पत्र तथा दूर्वा और अक्षत आदि विचित्र उपचार चढ़ाकर यथाप्राप्त सामग्रियोंद्वारा महापूजनकी विधिसे उसमें मूर्तिकी अभ्यर्थना करे । फिर धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे । इस तरह भगवान् शिवको उत्तम वस्त्र निवेदन करके अपना कल्याण करे । उस व्रतमें विशेषतः वे सभी वस्तुएँ देनी चाहिये, जो अपनेको अधिक प्रिय हों, श्रेष्ठ हों और न्यायपूर्वक उपार्जित हुई हों । विल्वपत्र, उत्तल और कमलोंकी संख्या एक-एक हजार होनी चाहिये । अन्य पत्रों और फूलोंमेंसे प्रत्येककी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिये । इन सामग्रियोंमें भी विल्वपत्रको विशेष यज्ञपूर्वक जुटाये । उसे भूलकर भी न छोड़े । सोनेका बना हुआ एक ही कमल एक सहस्र कमलोंसे श्रेष्ठ बताया गया है । नील कमल आदिके विषयमें भी यही बात है । वे सब विल्वपत्रोंके समान ही महत्व रखते हैं । अन्य पुष्टोंके लिये कोई नियम नहीं है । वे जितने मिलें, उतने ही चढ़ाने चाहिये । अद्यान्त अर्ध उत्कृष्ट माना जाता है । धूप और आलेप (चन्दन) के विषयमें विशेष बात यह है । 'वामदेव'नामक मुखमें चन्दन, 'तत्पुरुष'नामक मुखमें हरिताल और 'ईशान'नामक मुखमें भस्म लगाना चाहिये । कोई कोई भस्मकी जगह आलेपनका विधान करते हैं । दूसरे प्रकारके धूपका विधान होनेसे कुछ लेग प्रसिद्ध धूपका निषेध करते हैं । 'अत्रो'नामक मुखके लिये श्वेत अगुरुका धूप देना चाहिये । 'तत्पुरुष'नामक मुखके लिये कृष्ण अगुरुके धूपका विधान है । 'वामदेव'के लिये गुग्गुल, 'सूर्योजात' मुखके लिये सौगन्धिक तथा 'ईशान'के लिये भी उशीर आदि धूपको विशेषत्वसे देना चाहिये । शक्करा, मधु, कपूर, कपिल गायका घी, चन्दनका

चूरा तथा अगुरु नामक काष्ठ आदिका चूर्ण—इन सबको मिलकर जो धूप तैयार किया जाता है, उसे सबके लिये सामान्यरूपसे उपयोगके योग्य बताया गया है । कपूरकी दस्ती और धीके दीपक जलाकर दीपमाला देनी चाहिये । तत्पश्चात् प्रत्येक मुखके लिये पृथक्-पृथक् अर्द्ध और आचमन देनेका विधान है ।

प्रथम आवरणमें गणेश और कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये । उनके साथ ही बाह्य अङ्गोंकी भी पूजा आवश्यक है । प्रथमावरणकी पूजा ही जानेपर द्वितीयावरणमें चक्रवर्ती विद्मेश्वरोंका पूजन करना चाहिये । तृतीयावरणमें भव आदि अष्टमूर्तियोंकी पूजाका विधान है । वहीं महादेव आदि एकादश मूर्तियोंका भी पूजन आवश्यक है । चौथे आवरणमें सभी गणेश धूजनीय हैं । पञ्चमावरणमें कमलके वास्तुभागमें क्रमशः दस दिक्पालों, उनके अच्छों और अनुचरोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये । वहीं ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी, समस्त ज्योतिर्गणोंकी, सब देवी-देवताओंकी, सभी आकाशाचारियोंकी, पाताल्यासियोंकी, अस्तिल मुनीश्वरोंकी, योगियोंकी, सब यज्ञोंकी, द्वादश सूर्योंकी, मातृकाओंकी, गणोंसहित क्षेत्रपालोंकी और इस समस्त चराचर जगत्की पूजा करनी चाहिये । इन सबको शंकरजीकी विभूति मानकर शिवकी प्रसन्नताके लिये ही इनका पूजन करना उचित है ।

इस प्रकार आवरण-पूजाके पश्चात् परमेश्वर शिवका पूजन करके उन्हें भक्तिपूर्वक धृत और व्यज्ञनसहित मनोहर हविष्य निवेदन करना चाहिये । मुखशुद्धिके लिये आवश्यक उपकरणोंसहित ताम्बूल देकर नाना प्रकारके फूलोंसे पुनः इष्टदेवका शृङ्खला करे । आरती उतारे । तत्पश्चात् पूजनका शेष कृत्य पूर्ण करे । प्वाला तथा उपकारक सामग्रियों-सहित शश्या समर्पित करे । शश्यापर चन्द्रमाके समान चमकीला हार दे । राजोचित मनोहर वस्तुएँ सब प्रकारसे संचित करके दे । ख्ययं पूजन करे, दूसरोंसे भी कराये तथा प्रत्येक पूजनमें आहुति दे । इसके बाद सुति, प्रार्थना और जप करके पञ्चाश्रुती विद्याको जपे । परिक्रमा और प्रणाम करके अपने-आपको समर्पित करे । तदनन्तर-इष्टदेवके सामने ही गुरु और ब्राह्मणोंकी पूजा करे । इसके बाद अर्द्ध और अठ फूल देकर पूजित लिङ्ग शा मूर्तिसे देवताका विसर्जन करे । फिर अग्निदेवका भी विसर्जन करके पूजा समाप्त करे । मतुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन इसी प्रकार पूजाओंकल्पसे सेवा करे । पूजनके अन्तमें सुवर्णमय कमल तथा अन्य सब उपकरणों

सहित उस शिवलिङ्गको गुरुके हाथमें दे दे अथवा शिवालयमें स्थापित कर दे । गुरुओं, ब्राह्मणों तथा विशेषतः ब्रतधारियोंकी पूजा करके सामर्थ्य हो तो भक्त ब्राह्मणों तथा दीनों और अन्यायोंको भी संतुष्ट करे । स्वयं उपवासमें असमर्थ होनेपर फल-मूल खाकर या दूध पीकर रहे अथवा भिक्षान्नभोजी हो या एक समय भोजन करे । रातको प्रतिदिन परिमित भोजन करे और पवित्रभावसे भूमिपर ही सोये । भस्मपर, तृणपर अथवा चीर या भृगचर्चमपर शयन करे । प्रतिदिन व्रहाचर्यका पालन करते हुए इस ब्रतका अनुष्ठान करे । यदि शक्ति हो तो रविवारके दिन, आदर्द नक्षत्रमें, दोनों पक्षोंकी पूर्णिमा और अमावास्याको, अष्टमीको तथा चतुर्दशीको उपवास करे । मन, वाणी और क्रियाद्वारा सम्पूर्ण प्रयत्नसे पावण्डी, पतित, रजस्वला छी, सूक्ष्मकमें पड़े हुए लोग तथा अन्त्यज आदिके समर्कका त्याग करे । निरन्तर क्षमा, दान, दया, सत्यभाषण और अहिंसामें तत्पर रहे । संतुष्ट और शान्त रहकर जप और ध्यानमें लगा रहे । तीनों काल स्नान करे अथवा भस्म-स्नान कर ले । मन, वाणी और क्रियाद्वारा विशेष पूजा किया करे । इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ ? ब्रतधारी पुरुष कभी अशुभ आचरण न करे । प्रमादवश्य यदि वैसा आचरण बन जाय तो उसके गुरु-लाधवका विचार करके उसके दोषका निवारण करनेके लिये पूजा, होम और जप आदिके द्वारा उचित प्रायश्चित्त करे । ब्रतकी समाप्तिपर्यन्त भूलकर भी अशुभ आचरण न करे । सम्पत्ति हो तो उसके अनुसार गोदान, वृत्तोत्तर्ग और पूजन करे । भक्त पुरुष निष्कामभावसे शिवकी प्रीतिके लिये ही सब कुछ करे । यह संक्षेपसे इस ब्रत-वै सामान्य विधि कही गयी है ।

अब शास्त्रके अनुसार प्रत्येक मासमें जो विशेष कृत्य है, उसे बताता हूँ । वैशाख मासमें हीरेके बने हुए शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये । ज्येष्ठमासमें मरकत मणिमय शिवलिङ्गकी पूजा उचित है । आषाढ़मासमें मौतीके बने हुए शिवलिङ्गको ऐनीय समझे । आवणमासमें नीलमका बना हुआ शिवलिङ्ग पूजनके योग्य है । भाद्रपदमासमें पूजनके लिये पद्माराग मणिमय विष्णुके उत्तम माना गया है । आश्विनमासमें गोमेदमणिके रूपे हुए लिङ्गको उत्तम समझे । कार्तिकमासमें मूँगेके और गोद्योर्यमासमें वैद्युर्यमणिके बने हुए लिङ्गकी पूजाका विचान है । गौमात्रमें पुष्पराग ( पुखराज ) मणिके तथा माघमासमें विष्णुमणिके लिङ्गका पूजन करना चाहिये । काल्युगमासमें क्षम्यतमणिके और चैत्रमें सूर्यकान्तमणिके बने हुए लिङ्गके

पूजनकी विधि है । अथवा रत्नोंके न मिलनेपर सभी मार्त्तोंमें सुवर्णमय लिङ्गका ही पूजन करना चाहिये । सुवर्णके अभावमें चाँदी, ताँचे, पत्थर, मिट्टी, लाह या और किसी वस्तुका जो सुलभ हो, लिङ्ग बना लेना चाहिये । अथवा अपनी रुचिके अनुसार सर्वगन्धमय लिङ्गका निर्माण करे । ब्रतकी समाप्तिके समय नित्यकर्म पूर्ण करके पूर्ववत् विशेष पूजा और हवन करनेके पश्चात् आचार्यका तथा विशेषतः व्रती ब्राह्मणका पूजन करे । फिर आचार्यकी आज्ञा ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके कुशासनपर बैठे । हाथमें कुश ले, प्राणायाम करके 'साम्ब सदाशिव'का ध्यान करते हुए यथाशक्ति मूलमन्त्रका जप करे । फिर पूर्ववत् आज्ञा ले हाथ जोड़ नमस्कार करके कहे— 'भगवन् ! अब मैं आपकी आशासे इस ब्रतका उत्सर्ग करता हूँ ।' ऐसा कह शिवलिङ्गके मूल भागमें उत्तर दिशाकी ओर कुशोंका त्याग करे । तदनन्तर दण्ड, चीर, जटा और मेखलाको भी त्याग दे । इसके बाद फिर विधिपूर्वक आचमन करके पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करे ।

जो आत्मनितिक दीक्षा ग्रहण करके अपने शरीरका अन्त होनेतक शान्तभावसे इस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'नैष्ठिक व्रती' कहा गया है । उसे सब आश्रमोंसे ऊपर उठा हुआ महापाशुपत जानना चाहिये । वही तपस्वी पुरुषोंमें थोड़े है और वही महान् ब्रतधारी है । जो वारह दिनोंतक प्रतिदिन विधिपूर्वक इस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी नैष्ठिकके ही तुल्य है; क्योंकि उसने तीव्र ब्रतका आश्रय लिया है । जो अपने शरीरमें धी लगाकर ब्रतके सभी नियमोंके पालनमें तत्पर हो दोतीन दिन या एक दिन भी इस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी कोई नैष्ठिक ही है । जो निष्काम होकर अपना परम कर्तव्य मानकर अपने आपको शिवके चरणोंमें समर्पित करके इस उत्तम ब्रतका सदा अनुष्ठान करता है, उसके समान कहीं कोई नहीं है । विद्वान् ब्राह्मण भस्म लगाकर महापातकजनित अत्यन्त दाशण पापोंसे भी तकाल छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है । सद्गमिका जो सबसे उत्तम वीर्य ( वल ) है, वही भस्म कहा गया है । अतः जो सभी समयोंमें भस्म लगाये रहता है, वह वीर्यवान् माना गया है । भस्ममें निष्ठा रखनेवाले पुरुषके सारे दोष उत्तम भस्माग्निके संयोगसे दग्ध होकर नष्ट हो जाते हैं । जिसका शरीर भस्मस्नानसे विशुद्ध है, वह भस्मनिष्ठ कहा गया है । जिसके ज्ञाने अन्नोंमें भस्म लगा हुआ है, जो भस्मसे प्रदाशमान है, जिसने भस्ममय चिपुण्ड लगा रखा है तथा जो भस्मसे

स्थान करता है, वह भस्मनिष्ठ माना गया है। भूत, प्रेत, पिशाच तथा अत्यन्त दुःसह रोग भी भस्मनिष्ठके निकटसे दूर भागते हैं, इसमें संशय नहीं है। वह शरीरको भासित करता है, इसलिये 'भसित' कहा गया है तथा पापोंका भक्षण करनेके कारण उसका नाम 'भस्म' है। भूति (ऐश्वर्य) कारक होनेसे उसे 'भूति' या 'विभूति' भी कहते हैं। विभूति रक्षा करनेवाली है, अतः उसका एक नाम 'रक्षा' भी है। भस्मके माहात्म्यको लेकर यहाँ और क्या कहा जाय।

भस्मसे स्थान करनेवाला ब्रती पुरुष साक्षात् महेश्वरदेव कहा गया है। यह परमेश्वर (रुद्रामि) सम्बन्धी भस्म शिवभक्तोंके लिये बड़ा भारी अस्त्र है; क्योंकि उसने धौम्य भुनिके बड़े भाई उपमन्युके तपमें आयी हुई आपत्तियोंका निवारण किया था; इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके पाशुपत-ब्रतका अनुष्ठान करनेके पश्चात् हवनसम्बन्धी भस्मका घनके समान संग्रह करके सदा भस्मज्ञानमें तत्पर रहना चाहिये।

(अध्याय ३३)

### बालक उपमन्युको दूधके लिये दुखी देख माताका उसे शिवकी आराधनाके लिये ग्रेरित करना तथा उपमन्युकी तीव्र तपस्या

ऋषियोंने पूछा—प्रभो ! धौम्यके बड़े भाई उपमन्यु जब छोटे बालक थे, तब उन्हें दूधके लिये तपस्या की थी और भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें क्षीरसागर प्रदान किया था। परंतु शैशवावस्थामें उन्हें शिव-शास्त्रके प्रबन्धनकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई, अथवा वे कैसे शिवके सत्त्वरूपको जानकर तपस्यामें निरत हुए ? तपश्चरणके पर्वमें उन्हें भस्मके विज्ञानकी प्राप्ति कैसे हुई, जिससे जो रुद्रामिका उत्तम वीर्य है, उस आत्मरक्षक भस्मको उन्होंने प्राप्त किया ?

वायुदेवने कहा—महर्षियो ! जिन्होंने वह तप किया था, वे उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं थे, परम बुद्धिमान् मुनिवर व्याघ्रपादके पुत्र थे। उन्हें जन्मान्तरमें ही सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। परंतु किसी कारणवश वे अपने पदसे च्युत हो गये—योगप्रवृष्ट हो गये। अतः भाग्यवश जन्म लेकर वे मुनिकुमार हुए।

एक समयकी बात है अपने मामाके आध्रमें उन्हें पीनेके लिये बहुत थोड़ा दूध मिला। उनके मामाका वेटा अपनी इच्छाके अनुसार गरम-गरम उत्तम दूध पीकर उनके सामने खड़ा था। मातुलपुत्रको इस अवस्थामें देखकर व्याघ्रपादकुमार उपमन्युके मनमें ईर्ष्या हुई और वे अपनी माँके पास जाकर वडे प्रेमसे बोले—'मातः ! महाभागे ! तपस्विनि ! मुझे अत्यन्त स्वादिष्ट गरम-गरम गायका दूध दो। मैं थोड़ा-सा नहीं पीऊँगा।'

वेटेकी यह बात सुनकर व्याघ्रपादकी पक्की तपस्विनी माताके मनमें उस समय बड़ा दुःख हुआ। उसने पुत्रको यड़े आदरके साथ छातीसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक लाढ़-

प्यार करके अपनी निर्धनताका स्वरण हो आनेसे वह दुखी हो विलाप करने लगी। महातेजस्वी बालक उपमन्यु बारंबार दूधको याद करके रोते हुए मातासे कहने लगे—'माँ ! दूध दो, दूध दो।' बालकके उस हठको जानकर उस तपस्विनी श्रावण-पक्षीने उसके हठके निवारणके लिये एक सुन्दर उपाय किया। उसने स्वयं उच्छवृत्तिसे कुछ बीजोंका संग्रह किया था। उन बीजोंको देखकर उसने तत्काल उठा लिया और पीसकर पानीमें घोल दिया। फिर मीठी बाणीमें बोली—'आओ, आओ मेरे लाल !' यो कह बालकको शान्त करके हृदयसे लगा लिया और दुःखसे पीड़ित हो उसने कृत्रिम दूध उसके हाथमें दे दिया। माताके दिये हुए उस बनावटी दूधको पीकर बालक अत्यन्त व्याकुल हो उठा और बोला—'माँ ! यह दूध नहीं है।' तब वह बहुत दुखी हो गयी और वेटेका मस्तक सँप्लकर अपने दोनों हाथोंसे उसके कमल-सदृश नेत्रोंको पीछती हुई बोली—'वेटा ! अपने पास सभी वस्तुओंका अभाव होनेके कारण दरिद्रतावश मुश्क अभागिनीने पीसे हुए बीजको पानीमें घोलकर यह तुम्हें मिथ्या दूध दिया था। तुम 'दूध नहीं दिया' ऐसा कहकर रोते हुए मुझे बारंबार दुखी करते हो। किंतु भगवान् शिवकी कृपाके बिना तुम्हारे लिये कहीं दूध नहीं है। भक्तिपूर्वक माता पार्वती और अनुचरोंसहित भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें जो कुछ समर्पित किया गया हो, वही सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका कारण होता है। महादेवजी ही धन देनेवाले हैं। इस समय इमलेगोने उनकी आराधना नहीं की है। वे भगवान् ही उकाम पुरुषोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाले हैं। इम-

लोगोंने आजसे पहले कभी भी धनकी कामनासे भगवान् शिवकी पूजा नहीं की है। इसीलिये हम दरिद्र हो गये और वही कारण है कि तुम्हारे लिये दूध नहीं मिल रहा है। वेद ! पूर्वजन्ममें भगवान् शिव अथवा विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वही वर्तमान जन्ममें मिलता है, दूसरा कुछ नहीं। ॥६॥

**उपमन्यु बोले—मौं !** यदि माता पार्वतीसंहित भगवान् शिव विद्यमान हैं, तब आजसे शोक करना व्यर्थ है। महाभागो ! अब शोक छोड़ो, सब मङ्गलमय ही होगा। मौं ! आज मेरी वात सुन लो। यदि कहीं महादेवजी हैं तो मैं देरसे या जल्दी ही उनसे क्षीरसागर माँग लाऊँगा।

**वायुदेवता कहते हैं—**उस महाबुद्धिमान् बालककी वह वात सुनकर उसकी मनस्विनी माता उस समय बहुत प्रसन्न हुई और यों बोली।

**माताने कहा—वेदा !** तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। तुम्हारा यह विचार मेरी प्रसन्नताको बढ़ावेवाला है। अब तुम देर न लगाओ। साम्ब सदाशिवका भजन करो। अन्य देवताओंको छोड़कर मन, वाणी और कियाद्वारा भक्तिभावके साथ पार्षदगणोंसंहित उन्हीं साम्ब सदाशिवका भजन करो। ‘नमः शिवाय’ यह मन्त्र उन देवाधिदेव वरदायक शिवका साक्षात् वाचक माना गया है। प्रणवसंहित जो दूसरे सात करोड़ महामन्त्र हैं, वे सब इसीमें लीन होते हैं और फिर इसीसे प्रकट होते हैं। यह मन्त्र दूसरे सभी मन्त्रोंसे प्रबल है। यही सबकी रक्षा करनेमें समर्थ है; अतः दूसरेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। ऐसिये तुम दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर केवल पञ्चाक्षरके बामें ला जाओ। इस मन्त्रके जिहापर आते ही यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है। यह उत्तम भस्म जिसे मैंने

तुम्हारे पिताजीसे ही प्राप्त किया है, यह विरजा होमकी अग्निसे सिद्ध हुआ है, अतः बड़ी-से-बड़ी आपत्तियोंका निवारण करनेवाला है। मैंने तुम्हें जो पञ्चाक्षर मन्त्र ब्रताया है, उसको मेरी आज्ञासे ग्रहण करो। इसके जपसे ही शीघ्र तुम्हारी रक्षा होगी।

**वायुदेवता कहते हैं—**इस प्रकार आज्ञा देकर और ‘तुम्हारा कल्याण हो’ ऐसा कहकर माताने पुत्रको विदा किया। मुनि उपमन्युने उस आज्ञाको शिरोधार्य करके ही उसके चरणोंमें प्रणाम किया और तपस्याके लिये जानेकी तैयारी की। उस समय माताने आशीर्वाद देते हुए कहा—‘सब देवता तुम्हारा मङ्गल करें।’ माताकी आज्ञा पाकर उस बालकने दुष्कर तपस्या आरम्भ की। हिमाल्य पर्वतके एक शिखरपर जाकर उपमन्यु एकाग्रचित्त हो केवल वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईटोंका एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीके शिवलिङ्गकी स्थापना की। उसमें माता पार्वती तथा गणोंसंहित अविनाशी महादेवजीका आवाहन करके भक्तिभावसे पञ्चाक्षर-मन्त्रद्वारा ही बनके पत्र-पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करते हुए वे चिरकालतक उत्तम तपस्यामें लगे रहे। उस एकाकी कृशकाय बालक द्विजवर उपमन्युको शिवमें मन लगाकर तपस्या करते देख मरीचिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हुए कुछ मुनियोंने अपने राक्षस-स्वभावसे सताना और उनके तपमें विष डालना आरम्भ किया। उनके द्वारा सताये जानेपर भी उपमन्यु किसी प्रकार तपमें लगे रहे और सदा ‘नमः शिवाय’ का आर्तनादकी भाँति जोर-जोरसे उच्चारण करते रहे। उस शब्दको सुनते ही उनकी तपस्यामें विष डालनेवाले वे मुनि उस बालकको सताना छोड़कर उसकी सेवा करने लगे। व्राद्धण-बालक महात्मा उपमन्युकी उस तपस्यासे सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रदीप्त एवं संतप्त हो उठा।

( अध्याय ३४ )

**भगवान् शंकरका इन्द्ररूप धारण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत-से वर देना और अपना पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना**

एनन्दर भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर श्रीशिवजीने ऐसे इनका रूप धारण करके उपमन्युके पास जानेका

\* पूर्वजन्मनि यहत्र शिवमुद्दिश्य वै द्वन्द्व । तदेव लभ्यते नान्यद् विष्णुमुद्दिश्य वा प्रमुन् ॥

विचार किया। फिर इवेत ऐरावतपर आलूँ ही स्वयं देवराज इन्द्रका शरीर महण करके भगवान् सदाशिव देवता, अमुर,

सिद्ध तथा बड़े-बड़े नागोंके साथ उपमन्तु मुनिके तपोवनकी ओर चले । उस समय वह ऐरावत दार्थी सूँड़िमें चौंवर लेकर शचीसहित दिव्य-रूपवाले देवराज इन्द्रको हवा कर रहा था और वार्यी सूँड़िमें इवेत छत्र लेकर उनपर लगाये चल रहा था । इन्द्रका रूप धारण किये उभासहित भगवान् सदाशिव उस इवेत छत्रसे उसी तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे उदित हुए पूर्ण चन्द्रमप्ठलसे मन्दराचत्व शोभायमान होता है । इस तरह इन्द्रके स्वरूपका आश्रय ले परमेश्वर शिव उपमन्तुके उस आश्रमपर अपने उस भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये जा पहुँचे । इन्द्ररूपधारी परमेश्वर शिवको आथा देख मुनियोंमें श्रेष्ठ उपमन्तु मुनिने मस्तक छुकाकर



प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—“देवेश्वर ! जगन्नाथ ! भगवन् ! देवशिरोमणे ! आप स्वयं यहाँ पधारे, इससे मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया ।”

**इन्द्ररूपधारी शिव बोले**—उच्चम व्रतका पालन करनेवाले घोष्यके बड़े भैया महानुने उपमन्तो । मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ । तुम वर मौगो, मैं तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुदें प्रदान करूँगा ।

**बायुदेवता कहते हैं**—उन इन्द्रदेवके ऐसा कहनेपर उस समय मुनिप्रवर उपमन्तुने हाथ जोड़कर कहा—“भगवन् ! मैं भगवान् शिवकी भक्ति माँगता हूँ ।” यह सुनकर इन्द्रने कहा—“क्या तुम मुझे नहीं जानते ? मैं समस्त देवताओंका पालक और तीनों लोकोंका अधिपति इह हूँ । सब देवता मुझे नमस्कार करते हैं । ब्रह्मणे ! मेरे भक्त हो जाओ । सदा मेरी ही पूजा करो । तुम्हारा कत्याण हो । मैं तुम्हें सब कुछ देंगा । निर्गुण रुद्रको त्याग दो । उस निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध होगा, जो देवताओंकी पद्मकृतिसे बाहर होकर पिशाचभावको प्राप्त हो गया है ।”

**बायुदेवता कहते हैं**—यह सुनकर पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वे मुनि उपमन्तु इन्द्रको अपने धर्ममें विप्र डालनेके लिये आया हुआ जानकर बोले ।

**उपमन्तुने कहा**—यद्यपि तुम भगवान् शिवकी नित्यामें तत्पर हो, तथापि इसी प्रसंगमें परमात्मा महादेवजीकी निर्गुणता बताकर तुमने स्वयं ही उनका सम्पूर्ण महत्व सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी जनक हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं । ब्रह्मवादी लोग उन्होंको सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त तथा नित्य एक और अनेक कहते हैं । अतः मैं उन्होंसे वर माँगूँगा । जो युक्तियादसे परे तथा सांख्य और योगके सारभूत अर्थका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट जानकर जिनकी उपासना करते हैं, उन भगवान् शिवसे ही मैं वर माँगूँगा । देवाधम ! दूधके लिये जो मेरी इच्छा है, यह यों ही हो जाय; परंतु शिवास्त्रके द्वारा तुम्हारा वध करके मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगा ।

**बायुदेवता कहते हैं**—ऐसा कहकर स्वयं मर जानेका निश्चय करके उपमन्तु दूधकी भी इच्छा छोड़कर इन्द्रका वध करनेके लिये उद्यत हो गये । उस समय अत्रोर अच्छसे अभिमन्त्रित धोर भस्मको लेकर मुनिने इन्द्रके उद्देश्यसे छोड़ दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया । फिर शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए वे अपनी देहको दण्ड करनेके लिये उद्यत हो गये और आद्येयी धारण धारण करके स्थित हुए ।

द्वाष्टाण उपमन्तु जब इस प्रकार रित दुष्ट, तर भगदेवताके नेत्रका नाश करनेवाले भगवान् शिवने कोई

उपमन्युकी उस धारणाको अपनी सौम्यदृष्टिसे रोक दिया । उनके छोड़े हुए उस अधोरास्तको नन्दीश्वरकी आशासे शिवबलभ नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया । तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् शिवने अपने बालेन्दुरेश्वररूपको धारण कर लिया और ग्राहण उपमन्युको उसे दिखाया । इतना ही नहीं, उस प्रभुने उस मुनिको तहस्सों क्षीरसागर, मुधासागर, दधि आदिके सागर, वृत्तके समुद्र, फलसम्बन्धी रसके समुद्र तथा भक्ष-भोज्य पदार्थोंके समुद्रका दर्शन कराया और पूओंका पहाड़ खड़ा करके दिखा दिया । इसी तरह देवी पार्वतीके साथ महादेवजी वहाँ वृषभपर आरूढ़ दिखायी दिये । वे अपने गणाण्यकों तथा चिशूल आदि दिव्यास्त्रोंसे घिरे हुए थे । देवलेकमें दुर्घटभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओंसे दर्शाएँ आच्छादित हो गयीं ।

उस समय उपमन्यु आनन्दसागरकी लहरोंसे घिरे हुए थे । वे भक्तिविनम्न चित्तसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये । इसी समय वहाँ मुस्कराते हुए भगवान् शिवने 'यहाँ आओ, यहाँ आओ' कहकर उन्हें बुलाया और उनका मस्तक सूँधकर अनेक बर दिये ।



**शिव बोले—**तत्स ! तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ सदा इच्छानुसार भक्ष-भोज्य पदार्थोंका उपभोग करो । हुँखसे छूटकर सर्वदा सुखी रहो, तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति भक्ति सदा बनी रहे । महाभाग उपमन्यो ! ये पार्वती देवी तुम्हारी माता हैं । आज मैंने तुम्हें अपना पुत्र बना लिया और तुम्हारे लिये क्षीरसागर प्रदान किया । केवल दूधका ही नहीं, मधु, दही, अन्न, धी, भात तथा फल आदिके रसका भी समुद्र तुम्हें दे दिया । ये पूओंके पहाड़ तथा भक्ष-भोज्य पदार्थोंके सागर मैंने तुम्हें समर्पित किये । महामुने ! ये सब ग्रहण करो । आजसे मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ और जगदम्बा उमा तुम्हारी माता है । मैंने तुम्हें अमरत्व तथा गणपतिका सनातन पद प्रदान किया । अब तुम्हारे मनमें जो दूसरी-दूसरी अभिलाषाएँ हों, उन सबको तुम वही प्रसन्नताके साथ वरके रूपमें माँगो । मैं संतुष्ट हूँ । इसलिये वह सब दूँगा । इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ।

**वायुदेव कहते हैं—**ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और मस्तक सूँधकर यह कहते हुए देवीकी गोदमें दे दिया कि यह तुम्हारा पुत्र है । देवीने कार्तिकेयकी भाँति प्रेमरूपक उनके मस्तकपर अपना करकमल रखा और उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया । क्षीरसागरने भी साकार रूप धारण करके उनके हाथमें अनश्वर पिण्डीभूत स्वादिष्ठ दूध समर्पित किया । तत्पश्चात् पार्वतीदेवीने संतुष्टचित्त हो उन्हें योगजनित ऐश्वर्य, सदा संतोष, अविनाशिनी ब्रह्मायिद्या और उत्तम समृद्धि प्रदान की । तदनन्तर उनके तपोमय तेजको देखकर प्रसन्नचित्त हुए शम्भुने उपमन्यु मुनिको पुनः दिव्य वरदान दिया । पाशुपतव्रत, पाशुपतशान, तात्त्विक व्रतयोग तथा चिरकालतक उसके प्रवचनकी परम पटुता उन्हें प्रदान की । भगवान् शिव और शिवासे दिव्य वर तथा नित्य कुमारत्व पालन वे प्रसुदित हो उठे । इसके बाद प्रसन्नचित्त हो प्रगाम करके

हाथ जोड़ ब्राह्मण उपमन्युने देवदेव महेश्वरसे यह वर भाँगा ।

उपमन्यु बोले—देवदेवेश्वर ! प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! प्रसन्न होइये और मुझे अपनी परम दिव्य एवं अव्यभिचारिणी भक्ति दीजिये । महादेव ! मेरे जो अपने सो-सम्बन्धी हैं, उनमें मेरी सदा श्रद्धा वनी रहनेका वर दीजिये । साथ ही, अपना दासत्व, उत्कृष्ट स्नेह और नित्य सामीप्य प्रदान कीजिये ।

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त हुए द्विजश्रेष्ठ उपमन्युने हृषि-गद वाणीद्वारा भगवान् विष्वामित्र का स्वावन किया ।

उपमन्यु बोले—देवदेव ! महादेव ! शरणागतवत्सल ! करुणासिन्धो ! साम्रसदाशिव ! आप सदा मुझपर प्रसन्न होइये ।

वायुदेव कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर सबको

वर देनेवाले प्रसन्नात्मा महादेवने मुनिवर उपमन्युको इस प्रकार उत्तर दिया ।

शिव बोले—वत्स उपमन्यो ! मैं तुमपर संतुष्ट हूँ । इसलिये मैंने तुम्हें सब कुछ दे दिया । व्रह्णमें ! तुम मेरे सुट्ट भक्त हो; क्योंकि इस विषयमें मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली है । तुम अजर-अमर, दुःखरहित, यशस्वी, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न होओ । द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे वन्धु-नान्यव, कुल तथा गोत्र सदा अस्थ रहेंगे । मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति सदा वनी रहेगी । विष्ववर ! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा । तुम मेरे पास सानन्द विचरणगे ।

ऐसा कहकर उपमन्युको अभीष्ट वर दे करोड़ो स्थोके समान तेजस्वी भगवान् महेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये । उन श्रेष्ठ परमेश्वरसे उत्तम वर पाकर उपमन्युका हृदय प्रसन्नतासे लिल उठा । उन्हें बहुत सुख मिला और वे अपनी जन्म-दायिनी माताके स्थानपर चले गये । ( अध्याय ३५ )

—●—  
॥ वायवीयसंहिताका पूर्खण्ड सम्पूर्ण ॥



## वायुवीयसंहिता (उत्तरखण्ड)

**ऋग्योंके पूछनेपर वायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसङ्ग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्युसे ज्ञानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ**

सूत उचाच

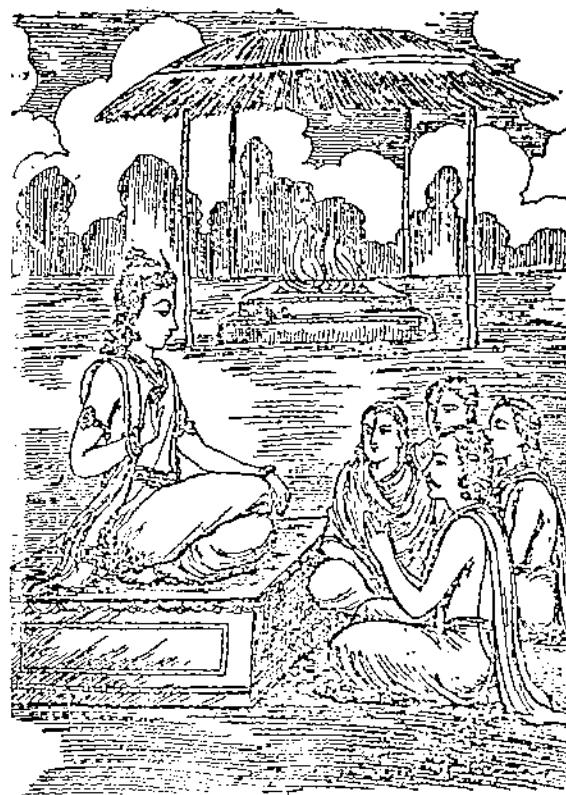
नमः समस्तसंसारचक्रभ्रमगदेतवे ।  
गौरीकुचतटद्वन्द्व कुद्धमाङ्कितवक्षसे ॥

**सूतजी कहते हैं—**जो समस्त संसार-चक्रके परिप्रमणमें कारणस्थ हैं तथा गौरीके युगल उरोजोमें लगे हुए केसरसे जिनका वक्षःस्थल अङ्गित है, उन भगवान् उमावलभिन्नको नमस्कार है।

उपमन्युको भगवान् शंकरके कृपाप्रसादके प्राप्त होनेका प्रसङ्ग सुनाकर मध्याह्नकालमें नित्य नियमके उद्देश्यसे वायुदेव कथा बद करके उठ गये। तब नैमित्यारण्यनिवासी अन्य शृणि भी 'अब अमुक बात पूछनी है' ऐसा निश्चय करके उठे और प्रतिदिनकी भाँति अपना ताल्कालिक नित्यकर्म शूण करके भगवान् वायुदेवको आया। देख फिर आकर उनके पास बैठ गये। नियम समाप्त होनेपर जब आकाशजन्मा वायुदेव मुनियोंकी सभामें अपने लिये निश्चित उत्तम आसनपर विहजमान हो गये—सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे लोकवन्दित घनदेव महेश्वरकी श्रीसम्पन्न विभूतिका मनही-मन चिन्तन करके इस प्रकार बोले—'मैं उन सर्वेषां और अपराजित महान् देव भगवान् शंकरकी शरण लेता हूँ, जिनकी विभूति इस समस्त चरणचर जगत्के रूपमें फैली हुई है।'

उनकी शुभ वाणीको सुनकर वे निष्पाप ऋषि भगवान् श्री विभूतिका विस्तारपूर्वक वर्णन सुननेके लिये यह उत्तम चक्र बोले।

**ऋग्योंने कहा—**भगवन्! आपने महात्मा उपमन्युश्च चत्रिव सुनाया, जिससे यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने केवल रूपके लिये तपस्या करके भी परमेश्वर शिवसे सब कुछ पा दिया। हमने पहलेसे ही सुन रखा है कि अनायास ही महान् श्रीमते वर्तनेवाले वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय वैमर्त्योंके बड़े भाई उपमन्युसे मिले थे और उनकी प्रेरणासे वायुदेवका अतुश्चान करके उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था; अतः आप यह वतायें कि भगवान् श्रीकृष्णने परम वायुपतञ्जन कित्त प्रकार प्राप्त किया।

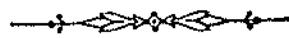


**वायुदेव बोले—**अपनी इच्छासे अवतीर्ण होनेपर भी सनातन वायुदेवने मानव-शरीरकी निन्दासी करते हुए लोक-संग्रहके लिये शरीरकी शुद्धि की थी। वे पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तप करनेके लिये उन महामुनिके आश्रमपर गये थे, जहाँ बहुत-से मुनि उपमन्युजीका दर्शन कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने भी वहाँ जाकर उनका दर्शन किया। उनके सारे अङ्ग भस्मसे उज्ज्वल दिखायी देते थे। मस्तक विपुण्ड्रसे अङ्गित था। रुद्राक्षकी माला ही उनका आनुयण थी। वे जटामण्डलसे मणिडत थे। शालोंसे वेदकी भाँति वे अपने शिष्यभूत महर्षियोंसे धिरे हुए थे और शिवजीके व्यानमें तन्त्र हो शान्तभावसे बैठे थे। उन महातेजस्वी उपमन्युका दर्शन करके श्रीकृष्णने उन्हें नमस्कार किया। उन समय उनके समर्थ शरीरमें रोमाञ्च हो आया। श्रीकृष्णने वडे आदरके साथ मुनिकी तीन बार परिक्रमा की। फिर अन्यत प्रतन्त्रताके ताथ मस्तक कुद्धा हाथ लोङ्कर उनका तथन किया। तदनन्तर उपमन्युने विध्युर्वक 'अविरिति भज्म' इत्यादि मन्त्रोंसे श्रीकृष्णके शरीरमें भस्म लगाकर उनमें

वास्ह महीनेका साक्षात् पाशुपतब्रत करवाया । तत्पश्चात् मुनिने उन्हें उत्तम शान प्रदान किया । उसी समयसे उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले सम्पूर्ण दिव्य पाशुपत मुनि उन श्रीकृष्णको चारों ओरसे वेरकर उनके पास बैठे रहने लगे । फिर गुरुकी आशासे परम शक्तिमान् श्रीकृष्णने पुत्रके लिये साम्ब शिवकी आराधनाका उद्देश्य मनमें लेकर तपस्या की । उस तपस्यासे संतुष्ट हो एक वर्षके पश्चात् पार्षदोंसहित, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर साम्ब शिवने उन्हें दर्शन दिया । श्रीकृष्णने वह देनेके लिये प्रकट हुए सुन्दर अङ्गबाले महादेवजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी स्तुति भी

की । गणोंसहित साम्ब सदाशिवका स्तवन करके श्रीकृष्णने अपने लिये एक पुत्र प्राप्त किया । वह पुत्र तपस्यासे संतुष्टचित्त हुए साक्षात् शिवने श्रीविष्णुको दिया था । चूँकि साम्ब शिवने उन्हें अपना पुत्र प्रदान किया, इसलिये श्रीकृष्णने जाम्बवती-कुमारका नाम साम्ब ही रखा । इस प्रकार अमितपराक्रमी श्रीकृष्णको महर्षि उपमन्त्युसे ज्ञानलाभ और भगवान् शंकरसे पुत्र-लाभ हुआ । इस प्रकार यह सब प्रसङ्ग मैंने पूर्णग्रन्थ कह सुनाया । जो प्रतिदिन इसे कहता-सुनता या सुनाता है वह भगवान् विष्णुका ज्ञान पाकर उन्होंके साथ आनन्दित होता है ।

( अध्याय १ )



### उपमन्त्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश

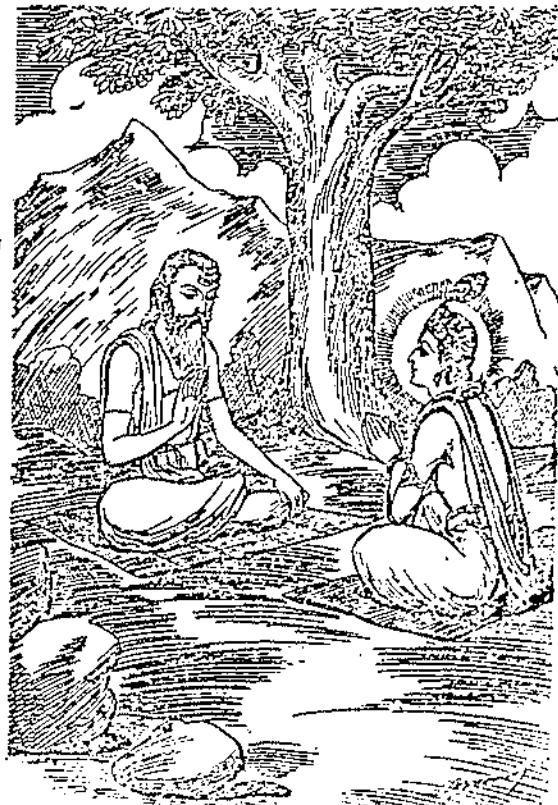
ऋषियोंने पूछा—पाशुपत ज्ञान क्या है ? भगवान् शिव पशुपति कैसे हैं ? और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्त्युसे किस प्रकार प्रश्न किया था ? वायुदेव ! आप साक्षात् शंकरके स्वरूप हैं, इसलिये ये सब वातें वताइये । तीनों लोकोंमें आपके समान दूसरा कोई वक्ता इन वातोंको वतानेमें समर्थ नहीं है ।

सूतजी कहते हैं—उन महर्षियोंकी यह बात सुनकर वायुदेवताने भगवान् शंकरका सरण करके इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया ।

वायुदेव बोले—महर्षियो ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णरूपधारी भगवान् विष्णुने अपने आसनपर बैठे हुए महर्षि उपमन्त्युसे उन्हें प्रणाम करके न्यायपूर्वक यों प्रश्न किया ।

श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! महादेवजीने देवी पार्वती-को जिस दिव्य पाशुपत ज्ञान तथा अपनी सम्पूर्ण विभूतिका उदादेश दिया था, मैं उसीको सुनना चाहता हूँ । महादेवजी पशुपति कैसे हुए ? पशु कौन कहलाते हैं ? वे पशु किन पाशोंसे बांधे जाते हैं और फिर किन प्रकार उनसे मुक्त होते हैं ?

महात्मा श्रीकृष्णके इन प्रकार पूछनेपर श्रीमान् उपमन्त्युने महादेवजी तथा देवी पार्वतीको प्रणाम करके उनके प्रश्नके भनुतार उत्तर देना आरम्भ किया ।



उपमन्त्यु बोले—देवकीनन्दन ! व्रजाजीसे लेकर सायर-पर्यन्त जो भी संसारके बश्वर्ती चराचर प्राणी हैं, वे सबके सब भगवान् शिवके पशु कहलाते हैं और उनके पति होनेवें कारण देवेश्वर शिवको पशुपति कहा गया है । वे पशुपति अपने पशुओंको मल और माया आदि पाशोंसे बांधते हैं और भक्तिपूर्वक उनके द्वारा आराधित होनेपर वे त्वयं ही उन्हें उन पाशोंसे मुक्त करते हैं । जो चौरीन तत्त्व है, वे मायाके कान-

एवं गुण हैं। वे ही विषय कहलाते हैं, जीवों (पशुओं) को बौंबेवाले पाश वे ही हैं। इन पशोंद्वारा ब्रह्मासे लेकर क्रीट-पर्वत समस्त पशुओंको बौंधकर महेश्वर पशुपति देव उनसे अपना कार्य करते हैं। उन महेश्वरकी ही आज्ञासे प्रकृति पुष्पोचित बुद्धिको जन्म देती है। बुद्धि अहंकारको प्रकट करती है तथा अहंकार कल्याणदायी देवाधिदेव शिवकी आज्ञासे त्यरह इन्द्रियों और पाँच तन्मात्राओंको उत्पन्न करता है। । तन्मात्राएँ भी उन्हीं महेश्वरके महान् शासनसे प्रेरित हो क्रमाः पाँच महाभूतोंको उत्पन्न करती हैं। वे सब महाभूत शिवकी आज्ञासे ब्रह्मासे लेकर तृणपर्वत देहधारियोंके लिये देहकी सृष्टि करते हैं, बुद्धि कर्तव्यका निश्चय करती है और अहंकार अभिमान करता है। चित्त चेतता है और मन संख्याविकल्प करता है, श्रवण आदि ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् शब्द आदि विषयोंको ग्रहण करती हैं। वे महादेवजीके आज्ञावल्से केवल अपने ही विषयोंको ग्रहण करती हैं। वाक् आदि कर्मन्दियाँ कहलाती हैं और शिवकी इच्छासे अपने लिये नियत कर्त ही करती हैं, दूसरा कुछ नहीं। शब्द आदि जाने जाते हैं और बोलना आदि कर्म किये जाते हैं। इन सबके लिये भगवान् शंकरकी गुरुत्व आज्ञाका उल्लङ्घन करना सम्भव है। परमेश्वर शिवके शासनसे ही आकाश सर्वव्यापी किंव समस्त प्राणियोंको अवकाश प्रदान करता है, वायुतत्त्व आदि तामभेदोद्वारा बाहर-भीतरके सम्पूर्ण जगत्को गरण करता है। अग्नितत्त्व देवताओंके लिये हव्य और द्विपांजी पितरोंके लिये कथ्य पहुँचाता है। साथ ही मनुष्योंके लिये यक्ष आदिका भी कार्य करता है। जल सबको जीवन रखता है और पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को सदा धारण किये रखती है।

शिवकी आज्ञा सम्पूर्ण देवताओंके लिये अलहृनीय है। उसीसे प्रेरित होकर देवराज इन्द्र देवताओंका पालन, दैत्योंका दमन और तीनों लोकोंका संरक्षण करते हैं। वरुणदेव सदा जलतत्त्व-के पालन और संरक्षणका कार्य संभालते हैं, साथ ही दण्डनीय शणियोंको अपने पाशोद्वारा बौंध लेते हैं। धनके स्वामी

यक्षराज कुव्रेर प्राणियोंको उनके पुण्यके अनुरूप सदा धन देते हैं और उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंको सम्पत्तिके साथ ज्ञान भी प्रदान करते हैं। ईश्वर असाधु पुरुषोंका निग्रह करते हैं तथा शेष शिवकी ही आज्ञासे अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। उन शेषको श्रीहरिकी तामसी रौद्रमूर्ति कहा गया है, जो जगत्का प्रलय करनेवाली है। ब्रह्माजी शिवकी ही आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं तथा अपनी अन्य मूर्तियोद्वारा पालन और संहारका कार्य भी करते हैं। भगवान् विष्णु अपनी त्रिविध मूर्तियोद्वारा विश्वका पालन, सर्जन और संहार भी करते हैं। विश्वात्मा भगवान् हर भी तीन रूपोंमें विभक्त हो सम्पूर्ण जगत्का संहार, सृष्टि और रक्षा करते हैं। काल सबको उत्पन्न करता है। वही प्रजाकी सृष्टि करता है तथा वही विश्वका पालन करता है। यह सब वह महाकालकी आज्ञासे प्रेरित होकर ही करता है। भगवान् सूर्य उन्हींकी आज्ञासे अपने तीन अंशोद्वारा जगत्का पालन करते, अपनी किरणोद्वारा वृष्टिके लिये आदेश देते और स्वयं ही आकाशमें मेघ बनकर वरसते हैं। चन्द्रभूषण शिवका शासन मानकर ही चन्द्रमा ओषधियोंका पोषण और प्राणियोंको आहादित करते हैं। साथ ही देवताओंको अपनी अमृतमयी कलाओंका पान करने देते हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, महश्वर, आकाशचारी शृंघि, सिद्ध, नागगण, मनुष्य, मृग, पशु, पक्षी, कीट आदि, स्थावर प्राणी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, बन, सरोवर, अङ्गेमहित वेद, शास्त्र, मन्त्र, वैदिकस्तोत्र और यज्ञ आदि, काल्यग्निसे लेकर शिवपर्वत भुवन, उनके अधिपति, असंख्य ब्रह्माण्ड, उनके आवरण, वर्तमान, भूत और भविष्य, दिशा-विदिशाएँ, कला आदि कालके भिन्न-भिन्न भेद तथा जो कुछ भी इस जगत्-में देखा और सुना जाता है, वह सब भगवान् शंकरकी आज्ञाके वल्से ही टिका हुआ है। उनकी आज्ञाके ही वल्से यहाँ पृथ्वी, पर्वत, मेव, समुद्र, नक्षत्रगण, इन्द्रादि देवता, स्थावर, जड़म अथवा जड और चेतन—सबकी स्थिति है। (अध्याय २)

### भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पञ्चमूर्तियों, ईशानादि व्रजमूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकताका वर्णन

उपमन्तु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! महेश्वर परमात्मा उपर्युक्त द्वृतियोंने यह सम्पूर्ण चराचर जगत् किस प्रकार व्याप्त है ? यह गति । ग्रह, विष्णु, रुद्र, महेश्वर तथा सदाशिव—

ये उन परमेश्वरकी पाँच मूर्तियाँ जाननी चाहिये, जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है। इनके स्त्रिया और भी उनके पाँच शरीर हैं, जिन्हें पञ्च-व्रज (मन्त्र) कहते

है। इस जगत्‌में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो उन मूर्तियोंसे व्याप्त न हो। ईशान, पुरुष, अचोर, बामदेव और सद्योजात—ये महादेवजीकी विख्यात पाँच ब्रह्ममूर्तियाँ हैं। इनमें जो ईशान नामक उनकी आदि श्रेष्ठतम मूर्ति है, वह प्रकृतिके साक्षात् भोक्ता क्षेत्रशक्ति व्याप्त करके स्थित है। मूर्तिमान् प्रभु शिवकी जो तत्पुरुष नामक मूर्ति है, वह गुणोंके आश्रयरूप भोग्य-अव्यक्त ( प्रकृति ) में अधिष्ठित है। पिनाकपाणि महेश्वरकी जो अत्यन्त पूजित अधोर नामक मूर्ति है, वह धर्म आदि आठ अङ्गोंसे युक्त बुद्धितत्त्वको अपना अधिष्ठान बनाती है। विधाता महादेवकी बामदेव नामक मूर्तिको आगमवेत्ता विद्वान् अहंकारकी अधिष्ठात्री बताते हैं। बुद्धिमान् पुरुष अमिततेजस्वी शिवकी सद्योजात नामक मूर्तिको मनकी अधिष्ठात्री कहते हैं। विद्वान् पुरुष भगवान् शिवकी ईशान-नामक मूर्तिके अवणेन्द्रिय, वाणी, शब्द और व्यापक आकाश-तत्त्वकी स्वामिनी मानते हैं। पुराणोंके अर्थज्ञानमें निपुण समस्त विद्वानोंने महेश्वरके तत्पुरुष नामक विग्रहको त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु-तत्त्वका स्वामी समझा है। मनीषी मुनि शिवकी अधोर नामक मूर्तिको नेत्र, पैर, रूप और अग्नि-तत्त्वकी अधिष्ठात्री बताते हैं। भगवान् शिवके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महात्मा पुरुष उनकी बामदेव नामक मूर्तिको रसना, पायु, रस और जलतत्त्वकी स्वामिनी समझते हैं तथा सद्योजात नामक मूर्तिको वे ग्राणेन्द्रिय, उपस्थ, गन्ध और पुरुषी-तत्त्वकी अधिष्ठात्री कहते हैं। महादेवजीकी ये पाँचों मूर्तियाँ कल्याणकी एकमात्र हेतु हैं। कल्याणकामी पुरुषोंको इनकी सदा ही यन्म-पूर्वक बन्दना करनी चाहिये। उन देवाधिदेव महादेवजीकी जो आठ मूर्तियाँ हैं, तत्स्वरूप ही यह जगत् है। उन आठ मूर्तियोंमें यह विश्व उसी प्रकार ओतप्रोत भावसे स्थित है, जैसे सूतमें मनके पिरोये होते हैं।

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव—ये शिवकी विख्यात आठ मूर्तियाँ हैं। महेश्वरकी इन शर्व आदि आठ मूर्तियोंसे क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, वायु, क्षेत्रश, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित होते हैं। उनकी पृथ्वीमयी मूर्ति सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को धारण करती है। उसके अधिष्ठाताका नाम शर्व है। इसलिये वह शिवकी 'शार्वी' मूर्ति कहलाती

है। यही शास्त्रका निर्णय है। उनकी जलमयी मूर्ति समस्त जगत्‌के लिये जीवनदायिनी है। जल परमात्मा भवकी मूर्ति है, इसलिये उसे 'भावी' कहते हैं। शिवकी तेजोमयी शुभमूर्ति विश्वके बाहर-भीतर व्याप्त होकर स्थित है। उस घोरलिपणी मूर्तिका नाम रुद्र है, इसलिये वह 'रौद्री' कहलाती है। भगवान् शिव वायुरूपसे स्वयं गतिशील होते और इस जगत्‌को गतिशील बनाते हैं। साथ ही वे इसका भरण-पोषण भी करते हैं। वायु भगवान् उग्रकी मूर्ति है; इसलिये साधु पुरुष इसे 'ओग्री' कहते हैं। भगवान् भीमकी आकाशलिपणी मूर्ति सबको अवकाश देनेवाली, सर्वव्यापिनी तथा भूतममुदायकी मेदिका है। वह भीम नामसे प्रसिद्ध है ( अतः इसे 'भैमी' मूर्ति भी कहते हैं)। सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण आत्माओंकी अधिष्ठात्री शिवमूर्तिको 'पशुपति' मूर्ति समझना चाहिये। वह पशुओंके पाशोंका उच्छेद करनेवाली है। महेश्वरकी जो 'ईशान' नामक मूर्ति है, वही दिवाकर ( सूर्य ) नाम धारण करके सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करती हुई आकाशमें विचरती है। जिनकी किरणोंमें अमृत भरा है और जो सम्पूर्ण विश्वको उस अमृतसे आप्यायित करते हैं, वे चन्द्रदेव भगवान् शिवके महादेव नामक विग्रह हैं; अतः उन्हें 'महादेव' मूर्ति कहते हैं। वह जो आठवीं मूर्ति है, वह परमात्मा शिवका साक्षात् स्वरूप है तथा अन्य सब मूर्तियोंमें व्यापक है। इसलिये यह सम्पूर्ण विश्व किंवरुप ही है। जैसे द्वृकी जड़ सौचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् शिवकी पूजासे उनके स्वरूप-भूत जगत्‌का पोषण होता है। इसलिये सबको अभय दान देना, सबपर अनुग्रह करना और सबका उपकार करना—यह शिवका आराधन माना गया है। जैसे इस जगत्‌में अपने पुत्र-पौत्र आदिके प्रसन्न रहनेसे पिता-पितामह आदिको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌की प्रसन्नतासे भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं। यदि किसी भी देहधारीको दण्ड दिया जाता है तो उसके द्वारा अष्टमूर्तिधारी शिवका ही अनिष्ट किया जाता है, इसमें संशय नहीं है। आठ मूर्तियोंके रूपमें सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हुए भगवान् शिवका तुम सब प्रकारसे भजन करो; क्योंकि रुद्रदेव सबके परम कारण है।

( अध्याय ३ )

### शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन

श्रीकृष्णने पूछा—भगवन् ! अमित-तेजस्वी भगवान् शिवकी मूर्तियोंने इस राम्पूर्ण जगत्‌को जिस प्रकार व्याप्त

कर रखता है, वह सब मैंने मुना। अब मुझे यह जाननेकी इच्छा है कि परमेश्वरी शिवा और परमेश्वर शिवका यथार्थ

स्वरूप का है, उन दोनोंने स्त्री और पुरुषरूप इस जगत्‌को किस प्रकार व्याप कर रखा है।

**उपमन्तु वोले—देवकीनन्दन !** मैं शिवा और शिवके भीमशत्र ऐश्वर्यका और उन दोनोंके यथार्थ स्वरूपका संक्षेपसे बर्णन करूँगा। विस्तारपूर्वक इस विषयका वर्णन तो भगवान् शिव भी नहीं कर सकते। साक्षात् महादेवी पार्वती शक्ति है और महादेवजी शक्तिमान्। उन दोनोंकी विभूतियोंका व्यापार ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के रूपमें स्थित है। यहाँ कोई वस्तु जड़रूप है और कोई वस्तु चेतनरूप। वे दोनों कमराः शुद्ध, अशुद्ध तथा पर और अपर कहे गये हैं। जो चिन्मण्डल जडमण्डलके साथ संयुक्त हो संसारमें भटक रहा है वही अशुद्ध और अपर कहा गया है। उससे भिन्न जो जड़के व्यन्तरसे मुक्त है, वह पर और शुद्ध कहा गया है। अपर और पर चिन्दचिन्त्सरूप हैं, इनपर स्वभावतः शिव और शिवाका स्वामिल्ल है। शिवा और शिवके ही व्यापमें यह विश्व है। विश्वके वशमें शिवा और शिव नहीं हैं। वह जगत् शिव और शिवाके शासनमें है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या निश्वेश्वर कहे गये हैं। जैसे शिव है, वैषी शिवा देवी है तथा जैसी शिवा देवी है, वैसे ही शिव है। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदनीमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवामें कोई अन्तर न रहता। जैसे चन्द्रिकाके विना ये चन्द्रमा सुशोभित नहीं होते, उसी प्रकार शिव विद्युमान होनेपर भी शक्तिके विना उत्तरोभित नहीं होते। जैसे ये सूर्यदेव कभी प्रभाके विना नहीं रहते और प्रभा भी उन सूर्यदेवके विना नहीं रहती, नित्यर उनके आश्रय ही रहती है, उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान्‌के सदा एक-दूसरेकी अपेक्षा होती है। न तो शिवके विना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके विना शिव। जिसके द्वारा शिव सदा देहधारियोंको भोग और नोड देनेमें रमर्थ होते हैं, वह आदि अद्वितीय चिन्मयी

\* चन्द्रो न खलु भात्येप यथा चन्द्रिकाया विना ।  
न भाति विघ्नानोऽपि तथा शक्त्या विना शिवः ॥  
भूम्या हि विना यदद्वानुरेप न विचर्ते ।  
स्त्रा च भानुना चेन सुनां तदुपाश्रया ॥  
स्वं परमरापेशा शक्तिशक्तिनातोः स्थिता ।  
न गिरेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः ॥  
( पि० पु० २० वा० स० ३० उ० ख० ४ । १०-१२ )

पराशक्ति शिवके ही आश्रित है। ज्ञानी पुरुष उसी शक्तिको सर्वेश्वर परमात्मा शिवके अनुरूप उन-उन अलैकिक गुणोंके कारण उनकी समर्थियाँ कहते हैं। वह एकमात्र चिन्मयी पराशक्ति सुष्ठिर्मिणी है। वही शिवकी इच्छासे विभागपूर्वक नाना प्रकारके विश्वकी रचना करती है। वह शक्ति मूलप्रकृति, भावा और निगुण—तीन प्रकारकी वतायी गयी है, उस शक्तिरूपिणी शिवाने ही इस जगत्‌का विस्तार किया है। व्यवहारभेदसे शक्तियोंके एक-दो, सौ, हजार एवं बहुसंख्यक भेद हो जाते हैं।

शिवकी इच्छासे पराशक्ति शिव-तत्त्वके साथ एकताको प्राप्त होती है। तबसे कल्पके आदिमें उसी प्रकार सृष्टिका प्रादुर्भाव होता है, जैसे तिलसे तेलका। तदनन्तर शक्तिमान्‌से शक्तिमें क्रियामयी शक्ति प्रकट होती है। उसके विक्षुब्ध होनेपर आदिकालमें पहले नादकी उत्पत्ति हुई। फिर नादसे विन्दुका प्राकृत्य हुआ और विन्दुसे सदाशिव देवका। उन सदाशिवसे महेश्वर प्रकट हुए और महेश्वरसे शुद्ध विद्या। वह वाणीकी ईश्वरी है। इस प्रकार त्रिशूलधारी महेश्वरसे वाणीश्वरी नामक शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ, जो वर्णों ( अक्षरों ) के रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है और मातृका कहलाती है। तदनन्तर अनन्तके समावेशसे मायाने काल, नियति, कला और विद्याकी सुष्ठि की। कलासे राहु तथा पुरुष हुए। फिर मायासे ही त्रिगुणात्मिका अव्यक्त प्रकृति हुई। उस त्रिगुणात्मक अव्यक्तसे तीनों गुण पृथक्-पृथक् प्रकट हुए। उनके नाम हैं—सत्य, रज और तमः। इनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप है। गुणोंमें क्षेम होनेपर उनसे गुणेणा नामक तीन मूर्तियाँ प्रकट हुईं। साथ ही ‘महत्’ आदि तत्त्वोंका क्रमः प्रादुर्भाव हुआ। उन्हाँसे शिवकी आज्ञाके अनुसार असंख्य आण्ड-पिण्ड प्रकट होते हैं, जो अनन्त आदि विश्वेश्वर चक्रवर्तियोंसे अधिष्ठित हैं। शरीरान्तरके भेदसे शक्तिके वहुत-से भेद कहें गये हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे उनके अनेक रूप जानने चाहिये। रुद्रकी शक्ति रौद्री, विष्णुकी वैष्णवी, व्रजाकी व्रजाणी और इन्द्रकी इन्द्राणी कहलाती है। यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ—जिसे विश्व कहा गया है, वह उनी प्रकार शक्त्यात्मसे व्याप है जैसे शरीर अन्तरात्मासे। अतः सम्पूर्ण स्वावर-जंगमरूप जगत् शक्तिमय है। यह पराशक्ति परमात्मा शिवकी कला कही गयी है। इस तरह यह परा शक्ति ईश्वरेकी इच्छाके अनुसार चलकर चराचर जगत्‌की लृप्ति करती है, ऐसा विश्व पुरुषोंका निश्चय

है। शान, क्रिया और इच्छा—अपनी इन तीन शक्तियोंद्वारा शक्तिमान् ईश्वर सदा सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित होते हैं। यह इस प्रकार हो और यह इस प्रकार न हो—इस तरह कार्योंका नियमन करनेवाली महेश्वरकी इच्छाशक्ति नित्य है। उनकी जो शानशक्ति है, वह बुद्धिरूप होकर कार्य; करण, कारण और प्रयोजनका ठीक-ठीक निश्चय करती है; तथा शिवकी जो क्रियाशक्ति है, वह संकल्परूपिणी होकर उनकी इच्छा और निश्चयके अनुसार कार्यरूप सम्पूर्ण जगत्की क्षणभरमें कल्पना कर देती है। इस प्रकार तीनों शक्तियोंसे जगत्का उत्थान होता है। प्रसव-धर्मवाली जो शक्ति है, वह पराशक्तिसे प्रेरित होकर ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करती है। इस तरह शक्तियोंके मंयोगसे शिव शक्तिमान् कहलाते हैं। शक्ति और शक्तिमान्से प्रकट होनेके कारण यह जगत् शाक्त और शैव कहा गया है। जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस चराचर जगत्की उत्पत्ति नहीं होती। स्त्री और पुरुषसे प्रकट हुआ जगत् स्त्री और पुरुषरूप ही है; यह स्त्री और पुरुषकी विभूति है, अतः स्त्री और पुरुषसे अधिष्ठित है। इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो परमात्मा कहे गये हैं और स्त्रीरूपिणी शिवा उनकी पराशक्ति। शिव सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी। शिवको महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती है। परमेश्वर शिव पुरुष है और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र है और उनकी बहूभाई शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अद्वौङ्गिनी उमा स्वाहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्मृति हैं और पार्वती नैर्घृती। भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया। शिव यस हैं और पार्वती ऋषि। चन्द्राधरशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रेहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा उनकी पत्नी। नागराज अनन्तको वल्यरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी बहूभाई शिवा अनन्त। कालशनु शिव कालगिनरु हैं और काली कालान्तकप्रिया हैं। जिनका

दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा है। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही बिद्धान् पुरुष आकृति कहते हैं। महादेवजी भूगु हैं और पार्वती स्वाति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गङ्गाधर अङ्गिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरानाशक शिव पुलह हैं और पार्वती ही उनकी प्रिया हैं। यज्ञविघ्नसी शिव करु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अचि हैं और साक्षात् उमा अनसूया। कालहन्ता शिव कर्यप हैं और महेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव वसिष्ठ हैं और साक्षात् देवी पार्वती अरुन्धती। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण प्रियाँ। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्होंकी विभूतियाँ हैं।

भगवान् शिव विष्णवी हैं और परमेश्वरी उमा विष्ण्य। जो कुछ सुननेमें आता है वह सब उमाका रूप है और श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर है। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तुसमुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह बाल चन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है। भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिवण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आस्वादन करनेवाले भङ्गलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पार्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्त्रव वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव उन वस्तुओंके मन्ता ( मनन करनेवाले हैं )। भववल्लभा पार्वती वोद्धव्य ( जानने योग्य ) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशुशशिशेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके जाता हैं। सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी भाता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वतीदेवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्रजरूपमें स्थित होते हैं। शूलधारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणि प्रिया पार्वती राचि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकर प्रिया पार्वती गृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराज-

कन्या शिवा उसकी तटभूमि हैं। बृषभध्वज महादेव वृक्ष हैं तो विश्वेश्वरग्रिया उमा उसपर फैलनेवाली लता हैं। भगवान् निपुणशक्ति के महादेव समूर्ण पुँछिज्ञरूपको स्वयं धारण करते हैं और महादेव-मनोरमा देवी शिवा सारा छीलिङ्ग रूप धारण करती हैं। शिववल्लभा शिवा समस्त शब्द-जालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुरोधर शिव समूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थकी जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् महेश्वर है। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुष्पमय है तथा जो महालूप है, उस-उस वस्तुको भगवान् महात्माओंने उन्होंने दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे विस्तारको प्राप्त हुई बताया है।

जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्यास होकर समूर्ण जगत्को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वस्य हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं; अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।

श्रीकृष्ण ! आज मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी बुद्धिके अनुसार परमेश्वर शिवा और शिवके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है, परंतु इयत्तापूर्वक नहीं; अर्थात् इस वर्णनसे यह नहीं मान लेना चाहिये कि इन दोनोंके यथार्थ रूपका पूर्णतः वर्णन हो गया; क्योंकि इनके स्वरूपकी इयत्ता ( सीमा ) नहीं है। जो समस्त महापुरुषोंके भी मनकी सीमासे परे है, परमेश्वर शिव और शिवाके उस यथार्थ स्वरूपका वर्णन कैसे किया जा सकता है। जिन्होंने अपने चित्तको महेश्वरके चरणोंमें अपितं कर दिया है तथा जो उनके अनन्य भक्त हैं, उनके ही मनमें वे आते हैं और उन्होंकी बुद्धिमें आरूढ़ होते हैं। दूसरोंकी उद्दिष्टें वे आरूढ़ नहीं होते। यहाँ मैंने जिस विभूतिका

वर्णन किया है, वह प्राकृत है, इसलिये अपरा मानी गयी है। इससे भिन्न जो अप्राकृत एवं परा विभूति है, वह गुह्य है। उनके गुह्य रहस्यको जाननेवाले पुरुष ही उन्हें जानते हैं। परमेश्वरकी यह अप्राकृत परा विभूति वह है, जहाँसे मन और इन्द्रियोंसहित बाणी लौट आती है। परमेश्वरकी वही विभूति यहाँ परम धाम है, वही यहाँ परमगति है और वही यहाँ पराकाष्ठा है। \* जो अपने श्वास और इन्द्रियोंपर विजय पा चुके हैं, वे योगीजन ही उसे पानेका प्रयत्न करते हैं। शिवा और शिवकी यह विभूति संसारलूपी विषधर सर्पके डसनेसे मृत्युके अधीन हुए मानवोंके लिये संजीवनी ओषधि है। इसे जाननेवाला पुरुष किसीसे भी भयमीत नहीं होता। जो इस परा और अपरा विभूतिको ठीक-ठीक जान लेता है, वह अपरा विभूतिको छाँचकर परा विभूतिका अनुभव करने लगता है।

श्रीकृष्ण ! यह तुमसे परमात्मा शिव और पार्वतीके यथार्थ स्वरूपका गोपनीय होनेपर भी वर्णन किया गया है; क्योंकि तुम भगवान् शिवकी भक्तिके योग्य हो। जो शिष्य न हों, शिवके उपासक न हों और भक्त भी न हों, ऐसे लोगोंको कभी शिव-पार्वतीकी इस विभूतिका उपदेश नहीं देना चाहिये। यह वेदकी आज्ञा है। अतः अत्यन्त कल्याणमय श्रीकृष्ण ! तुम दूसरोंको इसका उपदेश न देना। जो तुम्हारे-जैसे योग्य पुरुष हों, उन्हाँसे कहना; अन्यथा मौन ही रहना। जो भीतरसे पवित्र, शिवका भक्त और विश्वासी हो, वह यदि इसका कीर्तन करे तो मनोवाञ्छित फलका भागी होता है। यदि पहलेके प्रवल प्रतिवन्धक कर्मोद्वारा प्रथम वार फलकी प्राप्तिमें वाधा पड़ जाय, तो भी वारंवार साधनका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ( अध्याय ४ )

### परमेश्वर शिवके यथार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! यह चराचर जगत् रैपिनेन महादेवजीका स्वरूप है। परंतु पशु ( जीव ) नहीं गधते वैये होनेके कारण जगत्को इस रूपमें नहीं इन्हें। महर्षिगण उन परमेश्वर शिवके निर्विकल्प परम

भावको न जाननेके कारण उन एकका ही अनेक रूपोंमें वर्णन करते हैं—कोई उस परमतत्त्वको अपर व्रद्धरूप कहते हैं, कोई परद्रव्यरूप बताते हैं और कोई आदि-अन्तसे रहित उल्कुष महादेवस्वरूप कहते हैं। पञ्च महाभूत,

\* पतो वाचो निर्वात्मे ननता चेन्द्रियैः सद। अप्राकृता परा चेन्न विभूतिः शारनेवरो ॥

तैत्तीर परमं ज्ञानं तैत्तीरं परमा गनिः। तैत्तीरं परमा काञ्चा विभूतिः परमेऽन्तिः ॥

इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा प्राकृत विषयरूप जड तत्त्वको अपर ब्रह्म कहा गया है। इससे भिन्न समष्टि चेतन्यका नाम परब्रह्म है। बृहत् और व्यापक होनेके कारण उसे ब्रह्म कहते हैं। प्रभो! वेदों एवं ब्रह्मजीके अधिपति परब्रह्म परमात्मा शिवके वे पर और अपर दो रूप हैं। कुछ लोग महेश्वर शिवको विद्याविद्या-स्वरूपी कहते हैं। इनमें विद्या चेतना है और अविद्या अचेतना। यह विद्या-अविद्यारूप विश्व जगदुरु भगवान् शिवका रूप ही है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि विश्व उनके वशमें है। आन्ति, विद्या तथा पराविद्या या परम तत्त्व—ये शिवके तीन उत्कृष्ट रूप माने गये हैं। पदाथोंके विषयमें जो अनेक प्रकारकी असत्य धारणाएँ हैं, उन्हें आन्ति कहते हैं। यथार्थ धारणा या शानका नाम विद्या है तथा जो विकल्परहित परम ज्ञान है, उसे परम तत्त्व कहते हैं। परम तत्त्व ही सत् है, इससे विपरीत असत् कहा गया है। सत् और असत् दोनोंका पति होनेके कारण शिव सदसत्पति कहलाते हैं। अन्य महार्थोंने क्षर, अक्षर और उन दोनोंसे परे परम तत्त्वका प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण भूत क्षर है और जीवात्म अक्षर कहलाता है। वे दोनों परमेश्वरके रूप हैं; क्योंकि उन्हींके अधीन हैं। शान्त-स्वरूप शिव उन दोनोंसे परे है, इसलिये क्षरक्षरपर कहे गये हैं। कुछ महर्षि परम कारणरूप शिवको समष्टि-व्यष्टि-स्वरूप तथा समष्टि और व्यष्टिका कारण कहते हैं। अव्यक्तको समष्टि कहते हैं और व्यक्तको व्यष्टि। वे दोनों परमेश्वर शिवके रूप हैं, क्योंकि उन्हींकी इच्छासे प्रवृत्त होते हैं। उन दोनोंके कारणरूपसे स्थित भगवान् शिव परम कारण है। अतः कारणार्थवेत्ता ज्ञानी पुरुष उन्हें समष्टि-व्यष्टिका कारण बताते हैं। कुछ लोग परमेश्वरको जाति-व्यक्ति-स्वरूप कहते हैं। जिसका शरीरमें भी अनुकर्तन हो, वह जाति कही गयी है। शरीरकी जातिके आश्रित रहनेवाली जो व्यावृत्ति है, जिसके द्वारा जातिभावनाका आच्छादन और वैयक्तिक भावनाका प्रकाशन होता है, उसका नाम व्यक्ति है। जाति और व्यक्ति दोनों ही भगवान् शिवकी आकासे परिपालित हैं, अतः उन महादेवजीको जाति-व्यक्ति-स्वरूप कहा गया है।

कोई-कोई शिवको प्रधान, पुरुष, व्यक्ति और कालरूप कहते हैं। प्रकृतिका ही नाम प्रधान है। जीवात्माको ही क्षेत्रज्ञ कहते हैं। तो इस तत्त्वोंको मनीपी पुरुषोंने व्यक्ति कहा है और जो कार्य-प्रयत्नके परिणामका एकमात्र कारण है, उनका नाम काल है। भगवान् शिव इन सबके ईश्वर,

पालक, धारणकर्ता, प्रवर्तक, निवर्तक तथा आविर्भाव और तिरोभावके एकमात्र हेतु हैं। वे स्वयंप्रकाश एवं अजन्मा हैं। इसीलिये उन महेश्वरको प्रधान, पुरुष, व्यक्ति और कालरूप कहा गया है। कारण, नेता, अधिपति और घाता बताया गया है। कुछ लोग महेश्वरको विश्वट् और हिरण्य-मर्मरूप बताते हैं। जो सम्पूर्ण लोकोंकी सुष्ठिके हेतु हैं, उनका नाम हिरण्यगर्भ है और विश्वरूपको विश्वट् कहते हैं। ज्ञानी पुरुष भगवान् शिवको अन्तर्यामी और परम पुरुष कहते हैं। दूसरे लोग उन्हें प्राज्ञ, तेजस और विश्वरूप बताते हैं। कोई उन्हें तुरीयरूप मानते हैं और कोई सौम्यरूप। किन्तु ही विद्वानोंका कथन है कि वे ही माता, मान, मेय और मितिरूप हैं। अन्य लोग कर्ता, क्रिया, कार्य, करण और कारणरूप कहते हैं। दूसरे ज्ञानी उन्हें जाग्रत्, स्वभ और सुशुप्तिरूप बताते हैं। कोई भगवान् शिवके तुरीयरूप कहते हैं तो कोई तुरीयातीत। कोई निर्गुण बताते हैं, कोई सगुण। कोई संसारी कहते हैं, कोई असंसारी। कोई स्वतन्त्र मानते हैं, कोई अस्वतन्त्र। कोई उन्हें घेर समझते हैं, कोई सौम्य। कोई रागवान् कहते हैं, कोई वीतराग; कोई निष्क्रिय बताते हैं, कोई सक्रिय। किन्होंके कथनानुसार वे निरन्दिय हैं तो किन्होंके मतमें सेन्द्रिय हैं। एक उन्हें ध्रुव कहता है तो दूसरा अध्रुव; कोई उन्हें साकार बताते हैं तो कोई निराकार। किन्होंके मतमें वे अदृश्य हैं तो किन्होंके मतमें दृश्य; कोई उन्हें वर्णनीय मानते हैं तो कोई अनिर्वचनीय। किन्होंके मतमें वे शब्दस्वरूप हैं तां किन्होंके मतमें शब्दातीत; कोई उन्हें चिन्तनका विषय मानते हैं तो कोई अचिन्त्य समझते हैं। दूसरे लोगोंका कहना है कि वे ज्ञानस्वरूप हैं, कोई उन्हें विज्ञानकी संज्ञा देते हैं। किन्होंके मतमें वे शेय हैं और किन्होंके मतमें अशेय। कोई उन्हें पर बताता है तो कोई अपर। इस तरह उनके विषयमें नाना प्रकारकी कल्पनाएँ होती हैं। इन नाना प्रतीतियोंके कारण मुनिजन उन परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपका निश्चय नहीं कर पाते। जो सर्वभावसे उन परमेश्वरकी शरणमें आ गये हैं, वे ही उन परम कारण शिवको विना यन्त्रके ही जान पाते हैं। जन्मतक पश्च (जीव), जिनका दूसरा कोई ईश्वर नहीं है उन सर्वेश्वर, सर्वज्ञ पुण्य-पुरुष तथा तीनों लोकोंकी शास्त्रक शिवको नहीं देखता, तथतक वह पाशोंसे बद्ध हो इन दुःखमय संसार-चक्रमें गाढ़ीके पहियेकी नेमिके समान वूमता रहता है। जब यद द्रष्ट जीवात्मा सबके शासक, ब्रह्माके भी आदिकारण, सम्पूर्ण

ज्ञातके रचयिता, सुवर्णोपम, दिव्य प्रकाशस्वरूप परम पुरुषका साक्षात्कार कर लेता है, तब पुण्य और पाप दोनोंको

भलीभाँति हटाकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी महात्मा सर्वोत्तम समताको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ५)

## शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वमय, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपताका प्रतिपादन

उपमन्तु कहते हैं—यदुनन्दन। शिवको न तो आणव मलका ही बन्धन प्राप्त है, न कर्मका और न मायाका ही। प्राकृत, वौद्ध, अहंकार, मन, चित्त, इन्द्रिय, तन्मात्रा और पञ्चभूतसंस्थन्धी भी कोई बन्धन उन्हें नहीं छू सका है। शमित तेजस्वी शम्भुको न काल, न कला, न विद्या, न नियति, न रग और न द्वेषरूप ही बन्धन प्राप्त है। उनमें न तो कर्म है, न उन कर्मोंका परिपाक है, न उनके फलस्वरूप सुख और दुःख हैं, न उनका वासनाओंसे सम्बन्ध है, न कर्मोंके संस्कारोंसे। भूत, भविष्य और वर्तमान भोगों तथा उनके संस्कारोंसे भी उनका सम्बर्क नहीं है। न उनका कोई कारण है, न कर्ता। न आदि है, न अन्त और न मरण है; न कर्म और करण है; न अकर्तव्य है और न कर्तव्य ही है। उनका न कोई बन्धु है और न अबन्धु; न नियन्ता है न प्रैक; न पति है, न गुरु है और न ब्राता ही है। उनसे अधिकको चर्चा कौन करे, उनके समान भी कोई नहीं है। उनका न जन्म होता है न मरण। उनके लिये कोई बलु न हो जान्छित है और न अबाजिछित ही। उनके लिये न विधि है न नियेध। न बन्धन है न मुक्ति। जो-जो अकल्याणकारी दोष हैं वे उनमें कभी नहीं रहते। परंतु सम्पूर्ण कल्याण-धौरी गुण उनमें सदा ही रहते हैं; क्योंकि शिव साक्षात् भगवान् है। वे शिव अपनी शक्तियोद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्में दृष्ट देकर अपने स्वभावसे च्युत न होते हुए सदा ही स्थित रहते हैं; इसलिये उन्हें स्थाणु कहते हैं। वह सम्पूर्ण चराचर जल विषते अधिष्ठित है; अतः भगवान् शिव सर्वरूप माने जाएं। जो ऐसा जानता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता।

इस चर्चल्य है। उन्हें नमस्कार है। वे सत्त्वरूप, परम पुरुष, हिरण्यवाहु भगवान्, हिरण्यपति, ईश्वर, ईश्वरी, ईशान, पिनाकपाणि तथा वृपभवाहन हैं। रमन इस ही परवाय परमात्मा हैं। वे ही कृष्ण-पिङ्गल इत्यहैं। वे हृदयके भीतर कमलके मयभागमें अद्विन्दगी भाँति स्वरूपसे चिन्तन करने योग्य हैं। उन्हें उन्हरे रंगके हैं। नेत्र कमलके समान झुन्दर हैं।

अङ्गकान्ति अरण और ताप्रवर्णकी है। वे सुवर्णमय नीलकण्ठ देव सदा विचरते रहते हैं। उन्हें सौम्य, धोर, मिश्र, अक्षर, अमृत और अव्यय कहा गया है। वे पुरुषविशेष परमेश्वर भगवान् शिव कालके भी काल हैं। चेतन और अचेतनसे परे हैं। इस प्रपञ्चसे भी परात्मर हैं। शिवमें ऐसे शान और ऐश्वर्य देखे गये हैं, जिनसे बढ़कर शान और ऐश्वर्य अन्यत्र नहीं हैं। मनीषी पुरुषोंने भगवान् शिवको लोकमें सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली पदपर प्रतिष्ठित बताया है। प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न होकर एक सीमित कालतक रहनेवाले ब्रह्माओंको आदिकालमें विस्तारपूर्वक शास्त्रका उपदेश देनेवाले भगवान् शिव ही है। एक सीमित कालतक रहनेवाले गुरुओंके भी वे गुरु हैं। वे सर्वेश्वर सदा सभीके गुरु हैं। कालकी सीमा उन्हें छू नहीं सकती। उनकी शुद्ध स्वाभाविक शक्ति सबसे बढ़कर है। उन्हें अनुपम शान और नित्य अक्षय शरीर प्राप्त है। उनके ऐश्वर्य-की कहीं तुलना नहीं है। उनका सुख अक्षय और वल अनन्त है। उनमें असीम तेज, प्रभाव, पराक्रम, क्षमा और कहणा भरी है। वे नित्य परिपूर्ण हैं। उन्हें सुष्ठु आदिसे अपने लिये कोई प्रयोजन नहीं है। दूसरोंपर परम अनुग्रह ही उनके समस्त कर्मोंका फल है। प्रणव उन परमात्मा शिवका वाचक है। शिव, रुद्र आदि नामोंमें प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भुके चिन्तन और जपसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है, इसमें संशय नहीं है।

इसीलिये शास्त्रोंके पारंगत मनस्वी विद्वन् वाच्य और वाचककी एकता स्वीकार करते हुए महादेवजीको प्रणवरूप कहते हैं। माण्डूक्योपनिषद्में प्रणवकी चार मात्राएँ बतायी गयी हैं—अकार, उकार, मकार और नाद। अकारको ऋग्वेद कहते हैं। उकार वज्रवेदरूप कहा गया है। मकार सामवेद है और नाद अर्थवेदकी श्रुति है। अकार महावीज है, वह रजोगुण तथा उष्टुक्तों प्रकाश है। उकार प्रकृतिरूपा योनि है, वह सत्त्वगुण तथा पालनकर्ताओं थीरदरि है। मकार जीवात्मा एवं वीज है, वह तमेशुग तथा लंदार-कर्ता रुद्र है। नाद परम पुरुष परमेश्वर है, वह निरुग एवं

निष्क्रिय शिव है। इस प्रकार प्रणव व्यपनी तीन मात्राओंके द्वारा ही तीन रूपोंमें इस सम्पूर्ण जगत्का प्रतिपादन करके अपनी अर्द्धमात्रा ( नाद ) के द्वारा शिवस्वरूपका वोध करता है। जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, जिनसे बढ़कर

कोई न तो अधिक सूक्ष्म है और न महान् ही है तथा ले अकेले ही वृक्षकी भौति निश्चल भावसे प्रकाशमय आकाशमें स्थित है, उन परम पुरुष परमेश्वर शिवसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।  
( अध्याय ६ )

### परमेश्वरकी शक्तिका ऋषियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे ग्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिव-धर्मका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—परमेश्वर शिवकी स्वभाविक शक्ति विद्या है, जो सबसे विलक्षण है। वह एक होकर भी अनेक रूपसे भासित होती है। जैसे सूर्यकी प्रभा एक होकर भी अनेक रूपमें प्रकाशित होती है। उस विद्याशक्तिसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया और माया आदि अनेक शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, ठीक उसी तरह जैसे अग्निसे बहुत-सी चिनगारियाँ प्रकट होती हैं। उसीसे सदाशिव और ईश्वर आदि तथा विद्येश्वर आदि पुरुष भी प्रकट हुए हैं। परात्पर प्रकृति भी उसीसे उत्पन्न हुई है। महत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सारे विकार तथा अज ( ब्रह्म ) आदि मूर्तियाँ भी उसीसे प्रकट हुई हैं। इनके सिवा जो अन्य वस्तुएँ हैं, वे सब भी उसी शक्तिके कार्य हैं, इसमें संशय नहीं है। वह शक्ति सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा तथा शानानन्दस्वरूपिणी है। उसीसे शीतांशुभूषण भगवान्, शिव शक्तिमान्—शिव वेद्य हैं और शक्ति-रूपिणी शिवा विद्या हैं। वे शक्तिरूपा शिवा ही प्रश्ना, श्रुति, स्मृति, धृति, स्थिति, निष्ठा, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, कर्मशक्ति, आज्ञाशक्ति, परव्रह्म, परा और अपरा नामकी दो विद्याएँ, शुद्ध विद्या और शुद्ध कला हैं; क्योंकि सब कुछ शक्तिका ही कार्य है। माया, प्रकृति, जीव, विकार, विकृति, असत् और सत् आदि जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब उस शक्तिसे ही व्याप्त है।

वे शक्तिरूपिणी शिवा देवी मायाद्वारा समस्त चराचर ब्रह्माण्डको अनायास ही मोहमें डाल देती और लीलापूर्वक उसे मोहके वन्धनसे मुक्त भी कर देती हैं। इस शक्तिके सत्ताईस प्रकार हैं, सत्ताईस प्रकारवाली इस शक्तिके साथ सदैश्वर शिव सम्पूर्ण विश्वको व्याप करके स्थित हैं। इन्हके चरणोंमें मुक्ति विराजती है। पूर्वकालकी वात है, संसार-

बन्धनसे छूटनेकी इच्छावाले कुछ व्रह्मवादी मुनियोंके मनमें यह संशय हुआ। वे परस्पर मिलकर यथार्थ रूपसे विचार करने लगे—इस जगत्का कारण क्या है? हम किससे उत्पन्न हुए हैं और किससे जीवन धारण करते हैं? हमारी प्रतिष्ठा कहाँ है? हमारा अधिष्ठाता कौन है? हम किसके सहयोगसे सदा सुखमें और दुःखमें रहते हैं? किसने इस विश्वकी अलङ्घनीय व्यवस्था की है? यदि कहें काल, स्वभाव, नियति ( निश्चित फल देनेवाला कर्म ) और यद्युच्छा ( आकस्मिक धटना ) इसमें कारण हैं तो यह कथन युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। पाँचों महाभूत तथा जीवात्मा भी कारण नहीं हैं। इन सबका संयोग तथा अन्य कोई भी कारण नहीं है; क्योंकि ये काल आदि अचेतन हैं। जीवात्माके चेतन होनेपर भी वह सुख-दुःखसे अभिभूत तथा असमर्थ होनेसे इस जगत्का कारण नहीं हो सकता। अतः कौन कारण है, इसका विचार करना चाहिये। इस प्रकार आपसमें विचार करनेपर जब वे युक्तियोंद्वारा किसी निर्णयतक न पहुँच सके, तब उन्होंने ध्यानयोगमें स्थित होकर परमेश्वरकी स्वरूपभूता अचिन्त्य शक्तिका साक्षात्कार किया, जो अपने ही गुणोंसे—सत्त्व, रुद्धि और तमसे ढकी है तथा उन तीनों गुणोंसे परे है। परमेश्वर की वह साक्षात् शक्ति समस्त पाशोंका विच्छेद करनेवाली है उसके द्वारा वन्धन काट दिये जानेपर जीव अपनी दिव्य दृष्टि से उन सर्वकारणकारण शक्तिमान् महादेवजीका दर्शन कर लगते हैं; जो कालसे लेकर जीवात्मातक पूर्वोक्त समस्त कारणों पर तथा सम्पूर्ण विश्वपर अपनी इस शक्तिके द्वारा ही शारण करते हैं। वे परमात्मा अप्रमेय हैं। तदनन्तर परमेश्वरे प्रसाद-योग, परम-योग तथा सुट्ट भक्ति-योगके द्वारा उन मुनियोंने दिव्य गति प्राप्त कर ली।

\* यसात्परं नापरनात्ति किंचिद् यमानार्थायो न ज्यावेऽस्ति किंचित्।

द्वः इव सत्ये दिवि तिष्येवत्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वन्॥

( विद्युत् १० पुरा १० सं १० उ १० च १० ६ । ३१, यद मन्त्र अभ्यरणः ( ३ । १ । ) इवेतात्प्रवर्तनेऽप्निदृष्टे । )

श्रीकृष्ण ! जो अपने हृदयमें शक्तिसहित भगवान् शिव-का दर्शन करते हैं, उन्होंको सनातन शान्ति प्राप्त होती है, दूरोंको नहीं, वह श्रुतिका कथन है । शक्तिमानका शक्तिसे कभी वियोग नहीं होता । अतः शक्ति और शक्तिमान् दोनोंके बादात्म्यसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है । मुक्तिकी प्राप्तिमें निश्चय ही शान और कर्मका कोई क्रम विविक्षित नहीं है, जब शिव और शक्तिकी कृपा हो जाती है, तब वह मुक्ति हाथमें आ जाती है । देवता, दानव, पशु, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भी उनकी कृपासे मुक्त हो जाते हैं । गर्भका बच्चा, जन्मता हुआ बल्क, शिशु, तस्ण, बृद्ध, सुमूर्ख, स्वर्गवासी, नारकी, पतित, धर्मात्मा, पण्डित अथवा मूर्ख साम्बद्धिकी कृपा होनेपर तत्काल मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है । परमेश्वर अपनी स्वाभाविक करुणासे अत्रोग्य भक्तोंके भी विविध मलोंको दूर करके उनपर कृपा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है । भगवानकी कृपासे ही भक्ति होती है और भक्तिसे ही उनकी कृपा होती है । अवस्थामेदका विचार करके विद्वान् पुरुष इस विषयमें मोहित नहीं होता है । कृपाप्रसादपूर्वक जो यह भक्ति होती है, वह भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करानेवाली है । उसे मनुष्य एक जन्ममें नहीं प्राप्त कर सकता । अनेक जन्मोंतक श्रौत-स्मार्त कर्मोंका अनुष्ठान करके सिद्ध हुए विरक्त एवं शमनसम्बन्ध पुरुषोंपर महेश्वर प्रसन्न होते और कृपा करते हैं । देवेश्वर शिवके प्रसन्न होनेपर उस पशु ( जीव ) में बुद्धिपूर्वक थोड़ी-सी भक्तिका उदय होता है । तब वह यह अनुभव करते लगता है कि भगवान् शिव मेरे स्वामी हैं । फिर वस्तापूर्वक वह नाना प्रकारके शैवधर्मोंके पालनमें संलग्न होता है । उन धर्मोंके पालनमें बारंबार लगे रहनेसे उसके

हृदयमें परामक्तिका प्रादुर्भाव होता है । उस परामक्तिसे परमेश्वरका परम प्रसाद उपलब्ध होता है । प्रसादसे समूर्ण पापोंसे छुटकारा मिलता है और छुटकारा मिल जानेपर परमानन्दकी ग्रासि होती है, जिस मनुष्यका भगवान् शिवमें थोड़ा-सा भी भक्तिभाव है, वह तीन जन्मोंके बाद अवश्य मुक्त हो जाता है । उसे इस संसारमें योनियन्त्रकी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती । साङ्गा ( अङ्गसहित ) और अनङ्गा ( अङ्गरहित ) जो सेवा है, उसीको भक्ति कहते हैं । उसके फिर तीन भेद होते हैं—मानसिक, वाचिक और शारीरिक । शिवके रूप आदिका जो चिन्तन है, उसे मानसिक सेवा कहते हैं । जप आदि वाचिक सेवा है और पूजन आदि कर्म शारीरिक सेवा है । इन विविध साधनोंसे सम्पन्न होनेवाली जो यह सेवा है, इसे 'शिवधर्म' भी कहते हैं । परमात्मा शिवने पाँच प्रकारका शिव-धर्म बताया है—तप, कर्म, जप, व्यान और शान । लिङ्गपूजन आदिको 'कर्म' कहते हैं । चान्द्रायण आदि ब्रतका नाम 'तप' है । वाचिक, उपांशु और मानस—तीन प्रकारका जो शिवमन्त्रका अभ्यास ( वावृत्ति ) है, उसीको 'जप' कहते हैं । शिवका चिन्तन ही 'ध्यान' कहलाता है तथा शिवसम्बन्धी आगमोंमें जिस शानका वर्णन है, उसीको यहाँ 'शान' शब्दसे कहा गया है । श्रीकण्ठ शिवने शिवाके प्रति जिस शानका उपदेश किया है, वही शिवागम है । शिवके आश्रित जो भक्तजन हैं, उनपर कृपा करके कल्याणके एक-मात्र साधक इस शानका उपदेश किया गया है । अतः कल्याण-कामी बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह परम कारण शिवमें भक्तिको बढ़ाये तथा विषयात्मकी त्याग करे ।

( अव्याय ७ )

### शिव-ज्ञान, शिवकी उपासनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारेन्द्रिय वर्णन

श्रीकृष्ण घोले—भगवन् ! अब मैं उस शिव-ज्ञानको उन्नत चाहता हूँ, जो वेदोंका सारतत्त्व है तथा जिसे भगवान् अनेक अनेक शरणागत भक्तोंकी मुक्तिके लिये कहा है । प्रभु उन्होंने पूजा कैसे की जाती है ? पूजा आदिमें किसका अधिकार है ? व्या ज्ञानोग्रह आदि कैसे सिद्ध होते हैं ? उत्तम ब्रतका उन्हेवाले मुनीश्वर ! ये सब वातें विस्तारपूर्वक बताइये ।

उपमन्त्युने कहा—भगवान् शिवने जिस वेदोक्त उपर्युक्त कर्तव्य करके कहा है, वही शैव-ज्ञान है । वह निन्दा-

स्तुति आदिसे रहित तथा श्रवणमात्रसे ही अपने प्रति विद्वान् उत्तम करनेवाला है । वह दिव्य ज्ञान गुदकी कृपाते प्राप्त होता है और अनायास ही मोक्ष देनेवाला है । मैं उसे उन्होंने ही बताऊँगा; क्योंकि उत्तम विस्तारपूर्वक वर्णन कोई कर दी नहीं सकता है । पूर्वकालमें महेश्वर शिव दुष्टिकी इच्छा करके सल्कार्य-कारणत्वे नियुक्त हो त्वयं ही अवक्षसे वक्त लग्नमें प्रकट हुए । उस समय ब्रह्मस्वरूप भगवान् विश्वनाथने देवताओंमें तमसे प्रभन देवता वेदपति श्रद्धार्जीको उत्तम

किया। ब्रह्माने उत्पन्न होकर अपने पिता महादेवको देखा तथा ब्रह्माजीके जनक महादेवजीने भी उत्पन्न हुए ब्रह्माकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा और उन्हें सुष्ठि रचनेकी आज्ञा दी। रुद्रदेवकी कृपादृष्टिसे देखे जानेपर सुष्ठिके सामर्थ्यसे युक्त हो उन ब्रह्मदेवने समस्त संसारकी रचना की और पृथक्-पृथक् वर्णों तथा आश्रमोंकी व्यवस्था की। उन्होंने यज्ञके लिये सोमकी सुष्ठि की। सोमसे धुलोकका प्रादुर्भाव हुआ। फिर पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, यशमय विष्णु और शत्रीपति इन्द्र प्रकट हुए। वे सब तथा अन्य देवता रुद्राध्याय पढ़कर रुद्रदेवकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् महेश्वर अपनी लीला प्रकट करनेके लिये उन सबका ज्ञान हरकर प्रसन्नमुख्यसे उन देवताओंके आगे खड़े हो गये।

तब देवताओंने मोहित होकर उनसे पूछा—‘आप कौन हैं?’ भगवान् रुद्र बोले—‘श्रेष्ठ देवताओ। सबसे पहले मैं ही था। इस समय भी सर्वत्र मैं ही हूँ और भविष्यमें भी मैं ही रहूँगा। मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। मैं भी अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करता हूँ। मुझसे अधिक और मेरे समान कोई नहीं है। जो मुझे जानता है, वह मुक्त हो जाता है।’<sup>\*</sup> ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहीं अन्तर्घान हो गये। जब देवताओंने उन महेश्वरको नहीं देखा, तब वे सामवेदके मन्त्रोद्धारा उनकी स्तुति करने लगे। अर्थवृशीषमें वर्णित पाशुगत-त्रतको ग्रहण करके उन अमरगणोंने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें भस्त लगा लिया। यह देख उनपर कृपा करनेके लिये पशुपति महादेव अपने गणों और उमाके साथ उनके निकट आये। प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतकर निद्रारहित एवं निष्पाप हुए योगीजन अपने हृदयमें जिनका दर्शन करते हैं, उन्हीं महादेवको उन देवेश्वरोंने बहाँ देखा। जिन्हें ईश्वरकी इच्छाका अनुसरण करनेवाली परागाक्षि कहते हैं, उन वामलोचना भवानीको भी उन्होंने वामदेव महेश्वरके वामभागमें विराजमान देखा। जो संसारको त्यागकर शिवके परमपदको प्राप्त हो चुके हैं तथा जो नित्य सिद्ध हैं, उन गणेश्वरोंका भी देवताओंने दर्शन किया। तत्प्रात् देवता महेश्वरसमन्ध्ये

वैदिक और पौराणिक दिव्य स्तोत्रोद्धारा देवीसहित महेश्वरकी स्तुति करने लगे। तब वृषभध्यज महादेवजी भी उन देवताओंकी ओर कृपापूर्वक देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो त्वभावतः मुश्रवाणीमें बोले—‘मैं तुमलोगोंपर बहुत संतुष्ट हूँ।’ उन प्रार्थनीय एवं पूज्यतम भगवान् वृषभध्यजको अत्यन्त प्रसन्नचित्त जान देवताओंने प्रणाम करके आदरपूर्वक उनसे पूछा।

देवता बोले—भगवन्! इस भूतलभर किस मार्गसे आपकी पूजा होनी चाहिये और उस पूजामें किसका अधिकार है? यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें।

तब देवेश्वर शिवने देवीकी ओर मुसकराते हुए देखा और अपने परम धोर सूर्यमय स्वरूपको दिखाया। उनका वह स्वरूप सम्पूर्ण ऐश्वर्यगुणोंसे सम्पन्न, सर्वतोमय, सर्वोक्तृष्ट तथा शक्तियों, मूर्तियों, अङ्गों, ग्रहों और देवताओंसे धिय हुआ था। उसके आठ भुजाएँ और चार भुख थे। उसका आधा भाग नारीके रूपमें था। उस अद्भुत आकृतिवाले व्याश्वर्यजनक स्वरूपको देखते ही सब देवता यह जान गये कि सूर्यदेव, पार्वतीदेवी, चन्द्रमा, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा शेष पदार्थ भी शिवके ही स्वरूप हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवमय ही है। परस्पर ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् सूर्यको अर्थदिया और नमस्कार किया। अर्थ देते समय वे इस प्रकार बोले—‘जिनका वर्ण सिन्दूरके समान है और मण्डल सुन्दर है, जो सुवर्णके समान कान्तिभान् आभूषणोंसे विभूषित है, जिनके नेत्र कमलके समान हैं जिनके हाथमें भी कमल हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके भी कारण हैं, उन भगवान्को नमस्कार है।’<sup>†</sup> यों कह उत्तम रूपोंसे पूर्ण सुवर्ण, कुञ्जम, कुश और पुष्पसे युक्त जल सोनेके पात्रमें लेकर उन देवेश्वरको अर्थ दे और कह—‘भगवन्! आप प्रसन्न हों। आप सबके आदिकारण हैं। आप ही रुद्र, विष्णु, ब्रह्म और सूर्यरूप हैं। गणेश्वित आप शान्त शिवको नमस्कार है।’<sup>‡</sup>

जो एकाग्रचित्त हो सूर्यमण्डलमें शिवका पूजन करके

\* सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय सुवर्णवर्णामरणाय तुभ्यम्।

पद्माभनेत्राय सपङ्गजाय ब्रह्मन्दनारायणकारणाय॥

( शि० पु० वा० सं० उ० ख० ८। ३३ )

† प्रदत्तमादाय सहेमपात्रे प्रशस्तमर्थं भगवन् प्रसीद।

नमः शिवाय शान्ताय सगणायादहेतवे।

रुद्राय विष्णवे तुम्यं मद्मणे सद्यमूर्त्ये॥

( शि० पु० वा० सं० उ० ख० ८। ३३-३४ )

\* सोऽग्नवीद् भगवान् रुद्रो श्वसेकः पुरातनः।

आसं प्रथमेत्वाहं वर्त्तमि च सुरोत्तमाः॥

भविष्यामि च मत्तोऽन्यो व्यतिरित्तो न कश्चन।

अहमेव जगत्सर्वं तप्त्यामि खेजसा।

मत्तोऽपिकः तमो नात्ति मां यो वेद स मुच्यते॥

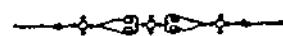
( शि० पु० वा० सं० उ० ख० ८। १५-१७ )

प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और साथंकालमें उनके लिये उत्तम अर्थ देता है, प्रणाम करता है और इन अवतारसुखद श्लोकोंको पढ़ता है, उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यदि वह भक्त है तो अवश्य ही मुक्त हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन शिवरूपी सूर्यका पूजन करना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा उनकी आरब्धना करनी चाहिये।

तत्यश्चात् मण्डलमें विष्णुमान महेश्वर देवताओंकी ओर देखकर और उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ शिवशास्त्र देकर वही अन्तर्धान हो गये। उस शास्त्रमें शिवपूजाका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको दिया गया है। यह जानकर देवेश्वर शिवको प्रणाम करके देवता कैसे आये थे, वैसे चके गए। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब वह शास्त्र छुत हो गया, तब भगवान् शंकरके अङ्गमें वैठी हुई महेश्वरी शिवाने पतिदेवसे उसके विषयमें पूछा। तब देवीसे प्रेरित हो चन्द्रभूषण महादेवने वेदोंका सार निकालकर सम्पूर्ण आगमोंमें श्रेष्ठ शास्त्र उपदेश किया, फिर उन परमेश्वरकी आशासे मैंने, गुरुदेव आस्त्वने और महर्षि दधीचिने भी लोकमें उस शास्त्रका

प्रचार किया। शूलपाणि महादेव स्वयं भी युग-युगमें भूतलपर अवतार ले अपने आश्रित जनोंकी मुक्तिके लिये ज्ञानका प्रसार करते हैं। ऋषु, सत्य, भार्गव, अङ्गिरा, सविता, मृत्यु, इन्द्र, मुनिवर वसिष्ठ, सारस्वत, विधामा, मुनिश्रेष्ठ त्रिवृत्, शततेजा, साक्षात् धर्मस्वरूप नारायण, स्वरक्ष, बुद्धिमान् आरणि, कृतञ्जय, भरद्वाज, श्रेष्ठ विद्वान् गौतम, वाचःश्रवा मुनि, पवित्र सूक्ष्मायणि, तृणविन्दु मुनि, कृष्ण, शक्ति, शक्तेय (पारशर), उत्तर, जातूकर्ण्य और साक्षात् नारायण-स्वरूप वृण्णद्वैपायन मुनि—ये सब व्यासावतार हैं। अव क्रमशः कल्याणोश्वरोंका वर्णन सुनो। लिङ्गपुराणमें द्वापरके अन्तमें होनेवाले उत्तम ब्रतधारी व्यासावतार तथा योगाचार्यावतारोंका वर्णन है। भगवान् शिवके शिष्योंमें भी जो प्रसिद्ध हैं, उनका वर्णन है। उन अवतारोंमें भगवान्के मुख्य-रूपसे चार महातेजस्वी शिष्य होते हैं। फिर उनके सैकड़ों, हजारों शिष्य-प्रशिष्य हो जाते हैं। लोकमें उनके उपदेशके अनुसार भगवान् शिवकी आज्ञा पालन करने आदिके द्वारा भक्तिसे अत्यन्त भावित हो भग्यवान् पुरुष मुक्त हो जाते हैं।

( अध्याय ८ )



## शिवके अवतार, योगाचार्यों तथा उनके शिष्योंकी नामावली

श्रीकृष्ण वोले—भगवन् । समस्त युगावतोंमें योगाचार्यके आज्ञासे भगवान् शंकरके जो अवतार होते हैं और उन अवतारोंके जो शिष्य होते हैं, उन सबका वर्णन कीजिये।

उपमन्त्रुने कहा—श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कङ्क लैण्डि, महामायावी जैगीषव्य, दधिवाह, ऋषभ मुनि, उग्र, अवि, सुग्राहक, गौतम, वेदशिरा मुनि, गोकर्ण, गुहावासी, शिराणी, जटामाली, अद्वास, दारुक, लङ्घुली, महाकाल, शूरी, दण्डी, मुण्डीदा, सहिष्णु, सोमशर्मा और नकुलीश्वर—वै वारद कलके इस सातवें मन्वन्तरमें युगक्रमसे अष्टार्द्ध संग्राम्य प्रकट हुए हैं। इनमेंसे प्रत्येकके शान्तचित्तवाले दर्शन दिया हुए हैं, जो श्वेतसे लेकर रुद्धपर्यन्त वराये गए हैं। मैं उनका क्रमज्ञान वर्णन करता हूँ, सुनो। श्वेत, श्वेत-ऐश्वर्य, श्वेतवृथ, श्वेतलोहित, हुन्दुभि, शतलप, ऋचोक, शुभ्र, निकेश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्गम, दुर्गम, दुर्गम, दुर्गम, दुर्गम, दुर्गम, तनत्कुमार, तनक, सनन्दन, तनन्दन, तनन्दन, तनन्दन, विज्ञा, शङ्ख, अण्डज, सारस्वत, मेघ, दृष्टि, दृष्टि, कनिक, आदुरि, पञ्चविस्त, वाष्कल,

पराशर, गर्ग, भार्गव, अङ्गिरा, वलवन्धु, निरामित्र, केतुशृङ्ग, तपोघन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बात्मा, लम्बकेशक, सर्वश, समबुद्धि, साथ, तिद्वि, सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अचि, उग्र, गुरुश्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणवाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, काश्यप, उशना, च्यवन, वृहस्पति, उत्थ्य, वामदेव, महाकाल, महानिल, वाचःश्रवा, सुवीर, श्यावक, यतीश्वर, हिरण्यनाम, कौशल्य, लोकाश्चि, कुशुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कुवन्ध, कुशकन्धर, प्लङ्ग, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, भलवी, मधुपिङ्ग, श्वेतकेशु, उशिज, वृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेष, युवनाश, शरद्वनु, द्वगल, कुम्भकर्ण, कुम्भ, प्रशाहुक, उद्धक, विश्वत्, शन्वक, आश्वलवन, अशुपाद, कणाद, उद्धक, वत्त, कुदीक, गर्ग, मित्रक और रथ—ये योगाचार्याज्ञी महेश्वरके शिष्य हैं। इनकी संख्या एक सौ बारह है। ये सब क्रमानुसार निरूपित हैं। इनका शरीर भस्मसे विनिर्मित रहता है। ये कम्भर्ग शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, वेद और वेदाङ्गोंके नारंगत विद्वान्, विज्ञानभन्ने भनुरक्त, शिवशाननरायनः तद प्रसादरक्त

आसक्तियोंसे मुक्त, एकमात्र भगवान् शिवमें ही मनको लगाये रखनेवाले, समूर्ण द्वन्द्वोंको सहनेवाले, धीर, सर्वभूतहितकारी, सरल, कोमल, स्वस्थ, क्रोधशूल्य और जितेन्द्रिय होते हैं, रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूषण है। उनके मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अङ्गित होते हैं। उनमेंसे कोई तो शिवाके रूपमें ही जटा धारण करते हैं। किन्हींके सारे केश ही जटारूप होते हैं। कोई-कोई ऐसे हैं, जो जटा नहीं रखते हैं और कितने ही सदा माथा मुड़ाये रहते हैं। वे प्रायः फल-मूलका आहार करते

हैं। प्राणायाम-साधनमें तत्पर होते हैं। वैं शिवका हूँ। इस अभिमानसे युक्त होते हैं। सदा शिवके ही चिन्तनमें लोहते हैं। उन्होंने संसाररूपी विषवृक्षके अङ्गुरको मथ डाला है। वे सदा परम धारमें जानेके लिये ही कठिनद होते हैं। जो योगाचार्योंसहित इन शिष्योंको जान-मानकर सदा शिवकी आराधना करता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

( अथाय ९ )

### भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्यचित्तसे भजनकी महिमा

तदनन्तर श्रीकृष्णके प्रश्न करनेपर उपमन्यु मन्दराचल-पर धृति हुए शिव-पार्वती-संवादको प्रस्तुत करते हुए बोले—श्रीकृष्ण ! एक समय देवी पार्वतीने भगवान् शिवसे पूछा—‘महादेव ! जो आत्मतत्त्व आदिके साधनमें नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्तःकरण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति, मर्त्यलोकवासी जीवात्माओंके वशमें आप किस उपायसे हो सकते हैं ?’

महादेवजी बोले—देवि ! यदि साधकके मनमें श्रद्धा-भक्ति न हो तो पूजनकर्म, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधनसे भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्योंकी मुक्तिमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतुसे मैं उसके वशमें हो जाता हूँ। किर तो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ सम्भाषण भी कर सकता है। अतः जो मुझे वशमें करना चाहे, उसे पहले मेरे प्रति श्रद्धा करनी चाहिये। श्रद्धा ही स्वधर्मका हेतु है और वही इस लोकमें वर्णाश्रमी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली है। जो मानव अपने वर्णाश्रमधर्मके पालनमें लगा रहता है, उसीकी मुक्तिमें श्रद्धा होती है, दूसरेकी नहीं। वर्णाश्रमी पुरुषोंके समूर्ण धर्म वेदोंसे सिद्ध है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मेरी ही आज्ञा लेकर उनका वर्णन किया था। ब्रह्माजीका वताया हुआ वह धर्म अधिक धनके द्वारा साध्य है तथा अनेक प्रकारके क्रियाकलापसे युक्त होता है। उससे मिलनेवाला अधिकांश फल अक्षय नहीं है तथा उस धनके अनुप्राणमें अनेक प्रकारके क्लेश और व्याधास उठाने पड़ते हैं। उस भगवान् धर्मसे परम दुर्लभ श्रद्धाको पाकर जो वर्णाश्रमी मनुष्य अनन्यभावसे मेरी शरणमें आ

जाते हैं, उन्हें मुखद मार्गसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं। वर्णाश्रमसम्बन्धी आचारकी सृष्टि मैंने ही वारंवार की है। उसमें भक्तिभाव रखकर जो मेरे हो गये हैं, उन्हीं वर्णाश्रमियोंका मेरी उपासनामें अधिकार है, दूसरोंका नहीं। यह मेरी निश्चित आशा है। मेरी आशाके अनुसार धर्ममार्गसे चलनेवाले वर्णाश्रमी पुरुष मेरी शरणमें आ मेरे कृपाप्रसादसे मल और माया आदि पाशोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा मेरे पुनरवृत्तिरहित धारमें पहुँचकर मेरा उत्तम साधर्म्य प्राप्त करके परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं। इसलिये मेरे वताये हुए वर्णधर्मको पाकर अथवा न पाकर भी जो मेरी शरण ले मेरा भक्त बन जाता है, वह स्वयं ही अपनी आत्माका उदार कर लेता है। यह कोटि-कोटि गुना अधिक अलब्ध-लाभ है। अतः मेरे मुखसे प्रतिपादित वर्णधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मोक्षमार्गसे विलग होकर दूसरी किसी वस्तुके लिये श्रम करता है, उसके लिये वही सबसे बड़ी हानि है, वही यज्ञी भारी त्रुटि है, वही मोह है और वही अन्धता एवं मृत्यु है॥ १ ॥ देवेश्वर ! मेरा जो सनातनधर्म है, वह चार चरणोंसे युक्त वताया गया है। उन चरणोंके नाम हैं—शनि, क्रिया, चर्या और वोग। पञ्च, पाश और पतिका ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। गुरुके अधीन जो विधिपूर्वक पठन्वयोग्यनका कार्य होता है, उसे क्रिया कहते हैं। मेरे द्वारा विद्वित, वर्णाश्रमप्रयुक्त

\* सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सान्ध्यमूकता ।

यदन्यत्र थमं कुर्यान्मोक्षमार्गविश्वृतः ॥

( शिं पू० वा० सं० उ० ख० १० १२९ )

\* भगवान् शिवके प्रति अद्वा-भक्तिकी वावश्यकताका गतिपादन \*

जो मेरे पूजन आदि धर्म हैं, उनके आचरणका नाम चया  
है। मेरे लताये डुए मारसि ही सुझमें बुखिरभावसे चित्त  
लानेवाले साधकके द्वारा जो अन्तःकरणकी अन्य वृत्तियोंका  
निरोध किया जाता है उसीको योग कहते हैं। देवि ! चित्तको  
निर्मल एवं प्रसन्न बनाना अध्यमेघ यशोंके समूहसे भी श्रेष्ठ है;  
क्योंकि वह मुक्त देनेवाला है। विषयभोगाकी इच्छा रखनेवाले  
लोगोंके लिये यह 'मनःप्रसाद' डुर्लभ है। जिसने यम और  
निमग्नके द्वारा इन्द्रियसमुदायपर विजय प्राप्त कर लिया है, उस  
विक्र पुरुषके लिये ही योगको दुर्लभ बताया गया है। योग  
पूर्णपापोंको हर लेनेवाला है। वैराग्यसे ज्ञान होता है और  
शानसे योग। योगज्ञ पुरुष परित हो तो भी मुक्त हो जाता है,  
इसमें संघर्ष नहीं है।

सत्य प्राणियोंपर दया करनी चाहिये । सदा अहिंसा-धर्मका  
पालन सत्यके लिये उचित है । शानका सम्राट् भी आवश्यक  
है । सत्य बोलना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर  
विधास रखना, मुस्कमें श्रद्धा करना, इन्द्रियोंको संयममें रखना  
दशाओंका पढ़ना-पढ़ना, यज्ञ करना-करना, मेरां चिन्तन  
ना, ईश्वरके प्रति अनुरुग्ग रखना और सदा ज्ञानशील होना  
गके लिये नितान्त आवश्यक है । जो ब्राह्मण ज्ञानयोगकी  
देलिये सदा इस प्रकार उपर्युक्त धर्मोंका पालन करता  
रीष्म ही विश्वन पाकर योगको भी सिद्ध कर लेता है ।  
उनी पुरुष शानामिके द्वारा इस कर्ममय शरीरको  
पृथ करके मेरे प्रसादसे योगका शाता होकर कर्म-  
कारा पा जाता है । पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे  
धर्मक बताया गया है; इसलिये योगी पूरा हो  
गा परिष्याग कर दे ।

ला करना, मेरा नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण शानय सिद्धि के लिये नितान्त प्रकार उपर्युक्त धर्मोंका पालन के है, वह शीघ्र ही विश्वन पाकर योगको भी सिद्ध कर लेता है प्रिये। शानी पुरुष शानानिके द्वारा इस कर्ममय शरीरक क्षणभरमें दग्ध करके मेरे प्रसादसे योगका शाता होकर कर्म-कथनसे द्वुटकारा पा जाता है। पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे मोक्षका प्रतिक्रियक बताया गया है; इसलिये योगी पुण्य-ए पुण्यपुण्यका परिवाग कर दे। एवं करनेसे ही - एवं करनेसे ही -

卷之三

नात अच्छा-भक्तिकी आवश्यकताका गतिपादन \*

है। मेरे बताये हुए मार्गसे ही सुखमें खुसिरभावसे चित्त लगानेवाले साधकके द्वारा जो अन्तःकरणकी अन्य वृत्तियोंका निरेष किया जाता है उसीको योग कहते हैं। देवि ! चित्तको निर्मल एवं प्रसन्न बनाना अध्यमेष योगोंके समूहसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वह सुकृदेनेवाल है। विषयभोगकी इच्छा रखनेवाले लोगोंके लिये वह 'मनःप्रसाद' दुर्लभ है। जिसने यम और निमके द्वारा इन्द्रियसमुदायपर विजय प्राप्त कर लिया है, उस पूर्णपौरोंको हर लेनेवाल है। वैराग्यसे जान होता है और शानसे योग। योगजु पुरुष पतित हो तो भी सुक हो जाता है, इसमें संग्रह नहीं है।

सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। सदा अहिंसा-धर्मका पालन सबके लिये उचित है। जानका संग्रह भी आवश्यक है। सत्य वोल्ना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर विधात रखना, सुखमें श्रद्धा करना, इन्द्रियोंको संयममें रखना वेदशास्त्रोंका पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-करना, मेरां चिन्तन करना, ईश्वरके प्रति अतुरुग रखना और सदा ज्ञानशील होना यादाणके लिये नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण ज्ञानयोगकी सिद्धिके लिये सदा इस प्रकार उपर्युक्त धर्मोंका पालन करता है वह शीघ्र ही विजय पाकर योगको भी सिद्ध कर लेता है। प्रिये ! ज्ञानी पुरुष ज्ञानानिके द्वारा इस कर्ममय शरीरको धणभरमें दग्ध करके मेरे प्रसादसे योगका जाता होकर कर्म-कर्मसे दुटकारण पा जाता है। पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे मोक्षका प्रतिवन्धक बताया गया है; इसलिये योगी पुरुष योगके ए पुण्यपुण्यका परित्याग कर दे। फलकी कामनासे प्रेरित र कर्म करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है, तो पैंच स्वरूप हैं; अतः साधुपुरुष उसे पाँच प्रकारका मूर्ति आदिमें जो मेरा पूजन आदि होता है, जिसे गया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान—ये मेरे भजन कहते हैं। दूसरे लेग जान लेते हैं, वह 'ब्राह्म' पूजन या भजन केवल गया है तथा वही भजन-पूजन जब मनके द्वारा होनेसे कहलाता है। सामान्यतः अपने ही अनुभवका विषय होता है, तब 'आनन्द' कहलाता है। सुखमें लगा हुआ हुआ ही 'मन' कहलाता है। सामान्यतः मन मात्रको यहाँ मन नहीं कहा गया है। इसी तरह जो वाणी मेरे नामके जप और कीर्तनमें लगी हुई है, वही 'वाणी' कहलाने योग्य है; दूसरी नहीं तथा जो मेरे शास्त्रमें बताये हुए त्रिपुण्ड्र आदि चिह्नोंसे अक्षित है और निरन्तर मेरी सेवा-पूजामें लगा हुआ है, वही शरीर 'शरीर' है, दूसरा नहीं। मेरी पूजाको ही 'कर्म' जानना चाहिये। वाहर जो यस आदि किये जाते हैं, उन्हें 'कर्म' नहीं कहा गया है। मेरे लिये शरीरको सुखाना ही 'तप' है, कुच्छ-चान्द्रायण आदिका अनुष्ठान नहीं। पञ्चाक्षर मन्त्रकी आवृत्ति, प्रणवका अम्यात तथा रुद्रायाय आदि वारंवार पाठ ही यहाँ 'जप' कहा गया है, वेदाध्ययन आदि नहीं। मेरे स्वरूपका चिन्तन-सारण ही 'ध्यान' है। आत्मा आदिके लिये की हुई समाधि नहीं। मेरे आगमोंके अर्थको भलीभांति जानना ही 'ज्ञान' है, दूसरी किसी वस्तुके अर्थको समझाना नहीं।

देवि ! पूर्ववासनावश ब्राह्म अनुराग हो।  
मनका अनुराग हो।

देवि ! पूर्ववार नावश वाह्य अथवा आभ्यन्तर जित पूजनमें  
मनका अनुराग हो, उसीमें हड़ निष्ठा रखनी चाहिये । वास्तु  
पूजनसे आभ्यन्तर पूजन सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि  
उसमें दोषोंका मिश्रण नहीं होता तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले  
दोषोंकी भी बहुत सम्भावना नहीं रहती है । भीतरकी शृदिको  
ही शृदि समझनी चाहिये । वाहरी शृदिको शृदि नहीं कहते  
हैं । जो आनन्दरिक शृदिसे रहत हैं, वह चाहरते शृदि होनेपर  
भी अचुद ही है । देवि ! वाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही  
प्रकारका भजन भाव (अनुराग) पूर्वक ही होना चाहिये,  
विना भावके नहीं । भावरहित भजन तो एकमात्र विषयम्  
(छलना) का ही कारण होता है । ये तो तदा ही छतुक्त्व  
एवं पवित्र हूँ, मनुष्य मेरा कृपा करेंगे ? उनके द्वाय किये  
गये वाह्य अथवा आभ्यन्तर पूजनमें उनका जो भजन (प्रेम)  
है, उसकीमें श्रद्धा श्रद्धा है । देवि ! किंवदन एकमात्र  
आत्मा भाव ही है । कहीं मेरा लक्षात्मन घर्म है । तन, रक्षा

और कर्मद्वारा कहीं भी किञ्चिन्मात्र फलकी इच्छा न रखकर ही क्रिया करनी चाहिये । देवेश्वरि ! फलका उहेश्य रखनेसे मेरा आश्रय लघु हो जाता है; क्योंकि फलार्थीको यदि फल न मिला तो वह मुझे छोड़ सकता है । सती साखी देवि । फलार्थी होनेपर भी जिस साधकका चित्त मुझमें ही प्रतिष्ठित है, उसे उसके भावके अनुसार फल मैं अवश्य देता हूँ । जिनका मन फलकी इच्छा न रखकर ही मुझमें लगा हो, परंतु पीछे वे फल चाहने लगे हों, वे भक्त भी मुझे प्रिय हैं । जो पूर्व संस्कारवश ही फलफलकी चिन्ता न करके विवश हो मेरी शरण लेते हैं, वे भक्त मुझे अधिक प्रिय हैं । परमेश्वरि ! उन भक्तोंके लिये मेरी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई वास्तविक लाभ नहीं है तथा मेरे लिये भी वैसे भक्तोंकी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं है । मुझमें समर्पित हुआ उनका भाव मेरे अनुग्रहसे ही उनको मानो बल्पूर्वक परम निर्वाणरूप फल प्रदान करता है ।

जिन्होंने अपने चित्तको मुझे समर्पित कर दिया है,

अतएव जो मेरे अनन्य भक्त हैं, वे महात्मा पुरुष ही मेरे धर्मके अधिकारी हैं । उनके आठ लक्षण वताये गये हैं । मेरे भक्तजनोंके प्रति स्नेह, मेरी पूजाका अनुमोदन, स्वयंकी भी मेरे पूजनमें प्रवृत्ति, मेरे लिये ही शारीरिक चेष्टाओंका होना, मेरी कथा सुननेमें भक्तिभाव, कथा सुनते समय स्तु नेत्र और अङ्गोंमें विकारका होना, वारंवार मेरी स्मृति और सदा मेरे आश्रित रहकर ही जीवन-निर्वाह करना—ये आठ प्रकार के चिह्न यदि किसी म्लेच्छमें भी हों तो वह विश्रियेणि श्रीमान् मुनि है । वह संन्यासी है और वही पण्डित है । जो मेरा भक्त नहीं है, वह चारों वेदोंका विद्वान् हो तो भी मुझे प्रिय नहीं है । परंतु जो मेरा भक्त है, वह चाण्डाल हो तो भी प्रिय है । उसे उपहार देना चाहिये, उससे प्रसाद ग्रहण करना चाहिये तथा वह मेरे समान ही पूजनीय है । जो भक्तिभावसे मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल समर्पित करता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह भी मेरी हाईसे कभी ओङ्काल नहीं होता है । # ( अध्याय १० )

### वर्णाश्रम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्त्वाकां प्रतिपादन

महादेवजी कहते हैं—देवेश्वरि ! अब मैं अधिकारी, विद्वान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण-भक्तोंके लिये संक्षेपसे वर्ण-धर्मका वर्णन करता हूँ । तीनों काल स्नान, अम्बिहोत्र, विघ्निवत् शिवलिङ्ग-पूजन, दान, ईश्वर-प्रेम, सदा और सर्वत्र दया, सत्य-भाषण, संतोष, आस्तिकता, किसी भी जीवकी हिंसा न करना, लज्जा, श्रद्धा, अध्ययन, योग, निरन्तर अध्यापन,

व्याख्यान, व्रजचर्य, उपदेश-श्रवण, तपसा, क्षमा, शौच, शिखा-धारण, यज्ञोपवीत-धारण, पगड़ी धारण करना, दुपट्टा लगाना, निषिद्ध वस्तुका ऐवन न करना, ब्रह्मकी माला पहनना, प्रत्येक पर्वमें विशेषतः चतुर्दशीको शिवकी पूजा करना, ब्रह्मकूर्चकां पान, प्रत्येक मासमें ब्रह्मकूर्चते विधिपूर्वक मुझे नहलाकर मेरा विशेषरूपसे पूजन करना;

\* न मे प्रियश्चतुर्वेदी मङ्गलः इवपञ्चोऽपि यः । तस्मै देयं ततो ग्रास्यं स च पूज्यो वथा द्याहन् ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

( शि० पु० वा० सं० उ० ख० १० । ७१-७२ )

+ पाराशरस्मृतिके व्याहरहैं अध्यायमें ब्रह्मकूर्चका वर्णन इस प्रकार है—

गोमूर्चं गोभयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । निदिंद्यं पञ्चगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥२१॥  
 गोमूर्चं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्वैव गोमयम् । पयश्च तात्रवर्णाया रक्ताया गृह्णते दधि ॥३०॥  
 कपिलाया धृतं ग्रास्यं सर्वं कापिलमेव वा । मूर्चमेकपलं दधादहुष्टादं तु गोनयन् ॥३१॥  
 क्षीरं सप्तपलं दधादधि क्रिपलमुच्यते । धृतमेकपलं दधात् पलमेकं कुशोदकम् ॥३२॥  
 गायत्र्याऽद्याय गोमूर्चं गन्धदरोति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिकाव्यास्तथा दधि ॥३३॥  
 तेजोऽसि शुक्रमित्यात्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् । पञ्चगव्यमृचापूर्तं स्थापयेदग्निसंनिधी ॥३४॥  
 आपो हितेति चलोद्य ना भत्तोकेति भन्नयेत् । सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुक्तिः ॥३५॥  
 एतैरुदृत्य देवत्यं पञ्चगव्यं यथाविधि । इतावत्ती श्वेतं विष्णुर्मानत्तोकेति शंखं ॥३६॥

सम्पूर्ण क्रियाकला त्याग, भ्राताद्वाका परित्याग, नाती अथ तथा विशेषतः नावक (कुस्थी या बोरो धान) का त्याग, मध्य और मध्यकी गन्धका त्याग, शिवके निवेदित (चण्डेश्वरके भाग) नैवेद्यका त्याग—ये सभी वर्णोंके सामान्य धर्म हैं। मालाणोंके लिये विशेष धर्म हैं—कला, शान्ति, संतोष, सत्य, अस्तोष (चोरी न करना), व्रश्चर्य, शिवदान, वैराग्य, भस्म-सेवन और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे निवृत्ति—इन दस वर्णोंको

थब योगियों (यतियों) के लक्षण बताये जाते हैं। यह वानप्रस्थ दिनमें विद्वान्योदय उनका विशेष धर्म है।

|                |           |                          |                |         |
|----------------|-----------|--------------------------|----------------|---------|
| पश्चात्यर्दशीन | प्रेतस्वं | द्वृत्यैर्य              | पितैऽ          | द्विः । |
| मालोद्य        | प्रणवेनैव | निर्मध्य                 | वयगेन          | ३ ॥ २७॥ |
| उद्धृत         | प्रणवेनैव | पितैऽ                    | प्रणवेन        | ३ ।     |
| वस्त्रालिङ्गतं | पापं देहे | सिठति                    | वैहिनाम् ॥ ३८॥ |         |
| व्रश्चर्य      | द्वैतस्वं | वर्णवासिरिवेष्टनम् ।     |                |         |
| पवित्रं        | विषु      | देवतामिरापिष्ठितम् ॥ ३९॥ |                |         |
| गोमूर्त्त      | गोक्तु    |                          |                |         |

१ पवित्र और पापनाशक 'पञ्चग्रन्थ' कहे जाते हैं। (डॉशोदक-मित्रिय पञ्चग्रन्थ ही व्रश्चर्य कहलाता है।) व्रश्चर्यका विधान करनेवालेहोंको उचित है कि काली गौका गोमूर्त्त, सफेद गौका गोवर, तांकेके रंगकी गौका दूध, लाल गौका दही और कपिल गौका गोमूर्त्त आपे अंगुठे भर गोवर, उपल दूध, ३ पल दही, १ पल गोमूर्त्त, आपे अंगुठे भर गोवर, ७ पल दूध, ३ पल दही, १ पल गोमूर्त्त मन्त्रसे गोवर, 'गायत्री' मन्त्रसे गोमूर्त्त, 'गायत्री' मन्त्रसे गोवर, 'आप्यायस्त' मन्त्रसे दूध, 'दधिकाण्ण', उद्यात्त जल धरण करें इस प्रकार अचाभोले पवित्र किये तुप रुद्धग्रन्थकी अधिके पास रखें। 'आपो हिष्ठा' मन्त्रसे गोमूर्त्त रुद्धविष्णु! 'भानस्तोके' और 'शंखती' इन अचाभोलारा रुद्धविष्णुसे उल्ल उर्द्ध विष्णु! 'भानस्तोके' और 'शंखती' इन अचाभोलारा रुद्धविष्णुसे उल्ल उर्द्ध विष्णु! 'भानस्तोके' और 'शंखती' इन अचाभोलारा रुद्धविष्णुसे उल्ल उर्द्ध विष्णु! 'भानस्तोके' और 'शंखती' इन अचाभोलारा रुद्धविष्णुसे उल्ल उर्द्ध विष्णु!

२ उपल पञ्चग्रन्थको ओकार पढ़कर मिलाये, ओकार उच्चारण करके दिन रोते रुद्ध और उच्चारण करके दिन रोते। उपल पञ्चग्रन्थको काटको जलाता है, वैसे ही व्रश्चर्य मनुष्योंके रोते। उपल पञ्चग्रन्थको ओकार उच्चारण करके दिन रोते। उपल पञ्चग्रन्थको ओकार उच्चारण करके दिन रोते। उपल पञ्चग्रन्थको ओकार उच्चारण करके दिन रोते।

लोकमें जो मनुष्य अपनी इच्छासे नेरे विषयकी तेजाका बत धारण किये हुए हैं, पूर्वजन्मकी तेजाके संत्वारते उक्त होनेके कारण भावातिरेकते सम्बन्ध हैं वे त्री आदि विषयोंमें अनुरक्ष हो या विरक्ष, पापोंते उड़ी प्रवार द्वित नहीं हैं,

आश्रमवालोंके लिये भी उनके समान ही अभीष्ट सबको और व्रश्चारियोंको भी रातमें भोजन नहीं चाहिये। पदाना, यज्ञ कराना और दान लेना—इनका मैंने विशेषतः धात्रिय और वैश्यके लिये नहीं किया है आभयमें रहनेवाले रासायों या धनियोंके लिये धर्मका संघर्ष इस प्रकार है। सब वर्णोंकी रुद्धमें शमुओंका वज्र, उष्म पद्धियों, मुगों तथा दूरगाचारी श्वीसुख दमन झरना, सब ज्योगोपर विश्वास न छरना, वैवध शिवयोगियोंपर ही विश्वास रखना, अद्विकालमें ही वैष्णव शमाचारोंको जानना, सदा अद्य धारण करना वैष्णव शमाचारियोंके लिये व्रद्धचर्यका वटित होनेवाले समाचारोंको जानना। गोदसा, वायिष्य और लायन, मेरे तीर्थोंकी यात्रा करना तथा अपनी धर्मपत्नीके साथ ही समाजम करना यहस्यके लिये विहित धर्म है। क्षमिय और वैश्योंकी सेवा लदका धर्म कहा गया है। वाग वनवासियों, यतियों और व्रश्चारियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातन वालन मुस्त्य धर्म है। खियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातन धर्म है, दूसरा नहीं। कल्याणि। यदि पतिकी आज्ञा हो तो नारी मेरा पूजन भी कर सकती है। जो छोटी पतिकी सेवा छोड़कर क्षतमें तत्पर होती है, वह नरकमें जाती है। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

अब मैं विधवा खियोंके सनातन धर्मका वर्णन करूँगा। बत, दान, तप, शौच, भूमि-शयन, केवल रातमें ही भोजन, सदा व्रद्धचर्यका पालन, भस्म अथवा जलसे ज्ञान, शान्ति, मौन, क्षमा, विधिपूर्वक सब जीवोंको अचान्का वितरण, अपुमी, चतुरदीर्घी, पूर्णिमा तथा विशेषतः एकादशीको विधिवत् उपवास और मेरा पूजन—ये विधवा खियोंके धर्म हैं। देवे ! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे अपने आश्रमका सेवन करनेवाले व्रायाणों, खियों, वैश्यों, संन्यासियों, व्रश्चारियों तथा वानप्रस्थों और भी इस सनातन धर्मका उपदेश दिया। देवेभरि ! तुम्हें तदा यद्यस्योंके धर्मका वर्णन किया। साथ ही शूद्रों और नारियोंके लिये मेरा ध्यान और मेरे पड़क्षर मन्त्रका जर करना चाहिये। यही भी इस सनातन धर्मका उपदेश दिया। देवेभरि ! तुम्हें तदा लोकमें जो मनुष्य अपनी इच्छासे नेरे विषयकी तेजाका

जैसे ललसे कमलका पचा । मेरे प्रसादसे विशुद्ध हुए उन विवेकी पुरुषोंको मेरे स्वल्पका ज्ञान हो जाता है । फिर उनके लिये कर्तव्याकर्तव्यका विविन्दिषेष नहीं रह जाता । समाधि तथा शरणागति भी आवश्यक नहीं रहती । जैसे मेरे लिये कोई विविन्दिषेष नहीं है, वैसे ही उनके लिये भी नहीं है । परिषूर्ण होनेके कारण जैसे मेरे लिये हुए साध्य नहीं है, उसी प्रकार उन कृतकृत्य शानयोगियोंके लिये भी कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है । वे मेरे भक्तोंके हितके लिये मानवभावका आधय छेकर भूतलपर स्थित हैं । उन्हें रुद्रलोकसे परिष्ठ्रु चद्र ही समझना चाहिये; इसमें संशय नहीं है । जैसे येरी आशा बद्धा आदि देवताओंको कार्यमें प्रवृत्त करनेवाली है, उसी प्रकार उन शिवयोगियोंकी आशा भी अन्य मनुष्योंको कर्तव्यकर्ममें लगानेवाली है । वे मेरी आशाके आधार हैं । उनमें अतिशय सद्ग्राव भी है । इसलिये उनका दर्शन करनेमात्रसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा प्रशस्त फलकी प्राप्तिको सूचित करनेवाले विश्वासकी भी बृद्धि होती है । जिन पुरुषोंका मुखमें अनुराग है, उन्हें उन वारोंका भी ज्ञान हो जाता है, जो पहले कभी उनके देखने, सुनने या अनुभवमें नहीं आयी होती है । उनमें अकस्मात् कर्म, स्वेद, अश्रुपात, कण्ठमें स्वरविकार तथा आनन्द आदि भावोंका वारंवार उदय होने लगता है । ये सब लक्षण उनमें कभी एक-एक करके अलग-अलग प्रकट होते हैं और कभी सम्पूर्ण भावोंका एक साथ उदय होने लगता है । कभी विलग न होनेवाले इन मन्द, मध्यम और उत्तम भावोंद्वारा उन श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी पहचान करनी चाहिये ।

जैसे जब लोहा आगमें तपकर लाल हो जाता है, तब केवल लोहा नहीं रह जाता, उसी तरह मेरा सांनिध्य प्राप्त होनेसे वे केवल मनुष्य नहीं रह जाते—मेरा स्वल्प हो जाते

हैं । हाय, पैर आदिके सावध्यसे मानव-शरीर घारण करनेपर भी वे वास्तवमें दद्र हैं । उन्हें प्राकृत मनुष्य समशक्त विद्वान् पुरुष उनकी अवदेलना न करे । वो मूढ़चित्र मानव उनके प्रति अवदेलना करते हैं, वे अपनी आयु, लागी, कुल और शीलको त्यागकर नरकमें गिरते हैं, अथवा बहुत कहनेसे भय लाभ है । जिस किसी भी उपायसे मुझमें चित्त लगाना कल्याणकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है ।

उपमन्त्रु कहते हैं—इस प्रकार परमात्मा श्रीकाम्पनाप शिवने तीनों लोकोंके हितके लिये शानके उत्तम अर्थवा संग्रह प्रकट किया है । सम्पूर्ण वेद-शास्त्र, इतिहास, पुराण और विद्याएँ इस विशान-संग्रहकी ही विस्तृत व्याख्याएँ हैं । शान, श्रेय, अनुष्ठेय, अधिकार, साधन और साध्य—इन छः अर्थोंका ही यह संक्षिप्त संग्रह बताया गया है । श्रीकृष्ण ! जो शिव और शिवासम्बन्धी ज्ञानाभूतसे तृप्त है और उनकी भक्तिसे सम्पन्न है, उसके लिये बाहर-भीतर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है । इसलिये ऋमशः वास्त्र और आभ्यन्तर कर्मको त्यागकर ज्ञानसे ज्ञेयका साक्षात्कार करके फिर उस साधनभूत ज्ञानको भी त्याग दे । यदि चित्त शिवमें एकाग्र नहीं है तो कर्म करनेसे भी क्या लाभ ! और यदि चित्त एकाग्र ही है तो कर्म करनेकी भी क्या आवश्यकता है ! अतः बाहर और भीतरके कर्म करके या न करके जिस किसी भी उपायसे भगवान् शिवमें चित्त लगाये । जिनका चित्त भगवान् शिवमें लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे सत्पुरुषोंको इहलोक और परलोकमें भी सर्वत्र परमानन्दकी प्राप्ति होती है । यहाँ ‘ॐ नमः शिवाय’ इस मन्त्रसे सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं; अतः परार विभूति ( उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य ) की प्राप्तिके लिये उस मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

( अध्याय ११ )

### पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन

श्रीकृष्ण वोले—सर्वश्च महिंप्रिवर ! आप सम्पूर्ण ज्ञानके महासागर हैं । अब मैं आपके मुखसे पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका तत्त्वतः वर्णन सुनना चाहता हूँ ।

उपमन्त्रुने कहा—देवकीनन्दन ! पञ्चाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता; अतः संक्षेपसे इसकी महिमा सुनो—चेदमें तथा शैवागममें दोनों जगह यह पठकर ( प्रणवसदित पञ्चाक्षर ) मन्त्र उपर्युक्त यिद्यमन्त्रोंके वर्णनी अर्थमें सापेक्ष ऊँझा गया

है । इस मन्त्रमें अक्षर तो थोड़े ही हैं, परंतु यह महान् अर्थसे सम्पन्न है । यह वेदका सारतत्त्व है, मोक्ष देनेवाला है, शिवकी आज्ञासे सिद्ध है, सदेहशून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है । यह नाना प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, दिव्य, लोगोंके मनको प्रसन्न एवं निर्मल करनेवाला, सुनिश्चित अर्थवाला ( अथवा निश्चय ही मनोरथको पूर्ण करनेवाला ) तथा परमेश्वरका गम्भीर वचन है । इस मन्त्रका मुखसे सुखपूर्वक उद्यारण देता है । सर्व शिवने सम्पूर्ण देहारियोंके सारे मनोरथोंकी सिरिके लिये ४४

‘ॐ नमः शिवाय’ मन्त्रका प्रतिपादन किया है। यह आदि पड़कर मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं ( मन्त्रों ) का बीज ( भूल ) है। जैसे वटके बीजमें महान् वृक्ष छिपा हुआ है, उसी प्रकार अत्यत् सूक्ष्म होनेपर भी इस मन्त्रको महान् अर्थसे परिपूर्ण समझना चाहिये।

‘ॐ’ इस एकाक्षर मन्त्रमें तीनों गुणोंसे अतीत, सर्वश, सर्वकर्ता, धूसिमान्, सर्वच्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं। इंशान आदि जो सूक्ष्म एकाक्षररूप ब्रह्म हैं, वे सब ‘नमः शिवाय’ इस मन्त्रमें क्रमशः स्थित हैं। सूक्ष्म घडक्षर मन्त्रमें पञ्चत्रिष्ठ-ल्पयारी साक्षात् भगवान् शिव स्वभावतः वाच्यवाच्यकभावसे विराजमान हैं। अप्रमेय होनेके कारण शिव वाच्य हैं और मन्त्र उनका वाच्यक भाना गया है। शिव और मन्त्रका यह वाच्य-वाच्यक-भाव अनादिकालसे चला आ रहा है। जैसे यह घेर संसारसागर अनादिकालसे प्रवृत्त है, उसी प्रकार संसारसे हुइनेवाले भगवान् शिव भी अनादिकालसे ही नित्य विराजमान है। जैसे औषध रोगोंका स्वभावतः शब्द है, उसी प्रकार भगवान् शिव संसारदोषोंके स्वाभाविक शब्द साने गये हैं। यदि ने भगवान् विश्वनाथ न होते तो यह बागत् अन्धकारमय हो जाता; क्योंकि प्रकृति जड़ है और जीवात्मा अज्ञानी। अतः इन्हें प्रकाश देनेवाले परमात्मा ही हैं। प्रकृतिसे लेकर परमाणुपर्यन्त जो कुछ भी जड़ तत्त्व है, वह किसी बुद्धिमान् ( चेतन ) कारणके बिना स्वयं ‘कर्ता’ नहीं देखा गया है। जैवोंके लिये धर्म करने और अधर्मसे बचनेका उपदेश दिया जाता है। उनके बन्धन और भोक्ष भी देखे जाते हैं। अतः विचार करनेसे सर्वश परमात्मा शिवके बिना प्राणियोंके आदि-धर्मोंकी सिद्धि नहीं होती। जैसे रोगी वैद्यके बिना मुखसे रोत ही रोते उठाते हैं, उसी प्रकार सर्वश शिवका आश्रय न देनेसे संसारी जीव नाना प्रकारके झलेश भोगते हैं।

अतः यह सिद्ध हुआ कि जीवोंका संसारसागरसे उद्धार घरनेवाले सामी अनादि सर्वश परिपूर्ण सदाशिव विद्यमान है। वे प्रभु आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। स्वभावसे ही निर्भृत है तथा सर्वश एवं परिपूर्ण है। उन्हें शिव नामसे जाना चाहिये। शिवागममें उनके स्वरूपका विशदरूपसे लिखा है। यह पद्मासुर मन्त्र उनका अभिषान ( वाच्य ) है और वे शिव अभिषेय ( वाच्य ) हैं। अभिषान और अभिषेय ( वाच्य भी वाच्य ) रूप होनेके कारण परमशिवस्वरूप यह एवं ‘ओम’ नाना गया है। ‘ॐ नमः शिवाय’ यह जो पर दिव्यतम् है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही

परमपद है। यह शिवका विधिवाक्य है, अर्थवाद नहीं है। यह उन्हीं शिवका स्वरूप है, जो सर्वश, परिपूर्ण और स्वभावतः निर्मल है।

जो समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं, वे भगवान् शिव शूठी बात कैसे कह सकते हैं? जो सर्वश हैं, वे तो मन्त्रसे जितना फल मिल सकता है, उतना पूरा-का-पूरा बतायेंगे। परंतु जो राग और अशान आदि दोषोंसे ग्रस्त हैं, वे ही शूठी बात कह सकते हैं। वे राग और अशान आदि दोष ईश्वरमें नहीं हैं; अतः ईश्वर कैसे द्युठ बोल सकते हैं? जिनका सम्पूर्ण दोषोंसे कभी परिच्य ही नहीं हुआ, उन सर्वश शिवने जिस निर्मल वाक्य—पद्मासुर मन्त्रका प्रणयन किया है, वह प्रमाणभूत ही है, इसमें संशय नहीं है। इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है। शान्त स्वभाववाले श्रेष्ठ मुनियोंने स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धिके लिये जो सुन्दर वात कही है, उसे सुमाणित समझना चाहिये। जो वाक्य राग, देष, असत्य, काम, क्रोध और तृष्णाका अनुसरण करनेवाला हो, वह नरकका द्वेष होनेके कारण दुर्भागित कहलाता है।\* अविद्या एवं रागसे युक्त वाक्य जन्म-भरणरूप संसार-क्लेशकी प्राप्तिमें कारण होता है। अतः वह कोमल, ललित अथवा संस्कृत ( संस्कारयुक्त ) हो तो भी उससे क्या लाभ? जिसे सुनकर कल्याणकी प्राप्ति हो तथा राग आदि दोषोंका नाश हो जाय, वह वाक्य सुन्दर शब्दावलीसे युक्त न हो तो भी शोभन तथा समझने योग्य है। मन्त्रोंकी संख्या बहुत होनेपर भी जिस विमल घडक्षर मन्त्रका निर्माण सर्वश शिवने किया है, उसके समान कहीं कोई दूसरा मन्त्र नहीं है।

घडक्षर मन्त्रमें द्यहों अङ्गोऽसदित सम्पूर्ण वेद और शास्त्र विद्यमान हैं; अतः उसके समान दूसरा कोई मन्त्र कहीं नहीं है। सात करोड़ महामन्त्रों और अनेकानेक उपमन्त्रोंसे यदि घडक्षर मन्त्र उसी प्रकार भिन्न है, जैसे धृतिरे सूत्र। जितने शिवज्ञान है और जो-जो विद्यास्वान है, वे सब पद्मासुर मन्त्रलम्पी सूजके संक्षिप्त भाष्य हैं। जिसके हृदयमें ‘ॐ नमः शिवाय’ यह पद्मासुर मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे दुर्मन्द्यु

\* रामदेशनदूतको भक्तानन्दनामुदारि ५१।  
पद्म निरदेशद्वारा दुर्मन्द्युद्योग।  
( दिं पू० शा० सं० उ० च० १२। २३ )

मन्त्रों और अनेक विस्तृत शास्त्रोंसे क्या प्रयोजन है ? जिसने 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका जप दृढ़तापूर्वक अपना लिया है, उसने समूर्ण शास्त्र पढ़ लिया और समस्त शुभ कृत्योंका अनुष्ठान पूरा कर लिया । आदिमें 'नमः' पदसे युक्त

'शिवाय'—ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया । पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें लाग हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो तो वह पापपञ्चरसे मुक्त हो जाता है । ( अथाय १२ )

०००४४०००

### पञ्चाक्षर मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त वार्ष्यकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पञ्चाक्षर-विद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके ऋषि, छन्द, देवता, वीज, शक्ति तथा अङ्गन्यास आदिका विचार

**देवी बोलीं—**महेश्वर ! दुर्जय, दुर्लभ्य एवं कल्पित कलिकालमें जब सारा संसार धर्मसे बिमुख हो पापमय अन्धकारसे आच्छादित हो जायगा, वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार नष्ट हो जायेंगे, धर्मसंकट उपस्थित हो जायगा, सबका अधिकार संदिग्ध, अनिश्चित और विपरीत हो जायगा, उस समय उपदेशकी प्रणाली नष्ट हो जायगी और गुह-शिष्यकी परम्परा भी जाती रहेगी, ऐसी परिस्थितिमें आपके भक्त किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं ?

**महादेवजीने कहा—**देवि ! कलिकालके मनुष्य मेरी परम मनोरम पञ्चाक्षरी विद्याका आश्रय ले भक्तिसे भावित-चित्त होकर संसार-चन्दनसे मुक्त हो जाते हैं । जो अकथनीय और अचिन्तनीय है—उन मानसिक, वाचिक और शारीरिक दोषोंसे जो दूषित, कृतप्र, निर्दय, छली, लोभी और कुटिल-चित्त हैं, वे मनुष्य भी यदि मुझमें मन लगाकर मेरी पञ्चाक्षरी विद्याका जप करेंगे, उनके लिये वह विद्या ही संसारभयसे तारनेवाली होगी । देवि ! मैंने बारंबार प्रतिशापूर्वक यह वात कही है कि भूतलपर मेरा पतित हुआ भक्त भी इस पञ्चाक्षरी विद्याके द्वारा बन्धनसे मुक्त हो जाता है ।

**देवी बोलीं—**यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कर्म करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा किया गया कर्म नरककी ही प्राप्ति करानेवाला होता है । ऐसी दशामें पतित मानव इस विद्याद्वारा कैसे मुक्त हो सकता है ?

**महादेवजीने कहा—**सुन्दरि ! तुमने यह बहुत ठीक वात पूछी है । अब इसका उत्तर सुनो, पहले मैंने इस विषयको गोपनीय समझकर अवतक प्रकट नहीं किया था । यदि पतित मनुष्य मोहनश ( अन्य ) मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक मेरा पूजन करे तो वह निःसंदेह नरकगामी हो सकता है । किंतु पञ्चाक्षर मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिवन्य नहीं है । जो केवल

जल पीकर और हवा खाकर तप करते हैं तथा दूसरे लोग जो नाना प्रकारके व्रतोद्वारा अपने शरीरको छुताते हैं, उन्हें इन व्रतोद्वारा मेरे लोककी प्राप्ति नहीं होती । परंतु जो भक्तिपूर्वक पञ्चाक्षर मन्त्रसे ही एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह भी इस मन्त्रके ही प्रतापसे मेरे धाममें पहुँच जाता है । इसलिये तप, यज्ञ, व्रत और नियम पञ्चाक्षरद्वारा मेरे पूजनकी करोड़ों कलाके समान भी नहीं है । कोई बद्ध हो या मुक्त, जो पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करता है, वह अवश्य ही संसारपाशसे छुटकारा पा जाता है । देवि ! इश्यान आदि पाँच व्रत जिसके अङ्ग हैं, उस षष्ठ्यकार या पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा वो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मुक्त हो जाता है । कोई पतित हो या अपतित, वह इस पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करे । मेरा भक्त पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश, गुरुसे ले चुका हो या नहीं, वह क्रोधको जीतकर इस मन्त्रके द्वारा मेरी पूजा किया करे । जिसने मन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है, उसकी अपेक्षा दीक्षा लेनेवाला पुरुष कोटि-कोटि गुना अधिक माना गया है । अतः देवि ! दीक्षा लेकर ही इस मन्त्रसे मेरा पूजन करना चाहिये । जो इस मन्त्रकी दीक्षा लेकर मैत्री, मुदिता ( करणा ) उपेक्षा ) आदि गुणोंसे युक्त तथा ब्रह्मचर्यपरायण हो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मेरी समता प्राप्त कर लेता है । इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ ? मेरे पञ्चाक्षर मन्त्रमें सभी भक्तोंका अधिकार है । इसलिये वह श्रेष्ठतर मन्त्र है । पञ्चाक्षरके भ्रमावसे ही लोक, वेद, महर्षि, सनातनधर्म, देवता तथा यह समूर्ण जगत् टिके हुए हैं ।

देवि ! प्रलयकाल आनेपर जब चरान्तर जगत् नष्ट हो जाता है और सारा प्रपञ्च प्रकृतिमें मिलकर वहीं लीन हो जाता है, तब मैं अकेला ही स्थित रहता हूँ, दूसरा कोई कहीं नहीं रहता । उस समय समस्त देवता और शास्त्र पञ्चाक्षर मन्त्रमें

स्थित होते हैं। अतः मेरी शक्तिसे पालित होनेके कारण वे नष्ट नहीं होते हैं। तदनन्तर मुखसे प्रकृति और पुरुषके भेदसे युक्त सृष्टि होती है। तत्पश्चात् त्रिगुणात्मक मूर्तियोंका संहार करनेवाला अवान्तर प्रलय होता है। उस प्रलयकालमें भावान् नारायणदेव मायामय शरीरका आश्रय ले जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करते हैं। उनके नाभिकमलसे पञ्चमुख ब्रह्मजीका जन्म होता है। ब्रह्मजी तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे; किंतु कोई सहायक न होनेसे उसे कर नहीं पाते थे। तब उन्होंने पहले अमिततेजस्ती दस महर्षियोंकी सृष्टि की, जो उनके मानसपुत्र कहे गये हैं। उन पुत्रोंकी सिद्धि बढ़ानेके लिये पितामह ब्रह्माने मुखसे कहा—महादेव ! महेश्वर। मेरे पुत्रोंको शक्ति प्रदान कीजिये। उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पाँच मुख घारण करनेवाले मैंने ब्रह्मजीके प्रति प्रत्येक मुखसे एक-एक अश्रुके क्रमसे पाँच अक्षरोंका उपदेश किया। लोकपितामह ब्रह्मजीने भी अपने पाँच मुखोंद्वारा क्रमशः उन पाँचों अश्रुरोंको ग्रहण किया और वाच्यवाच्कभावसे मुख महेश्वरको जाना। मन्त्रके प्रयोगको जानकर प्रजापतिने विचिवत् उसे उद किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रोंको यथावत् यसे उस मन्त्रका और उसके अर्थका भी उपदेश दिया। ब्रह्मजी लोकपितामह ब्रह्मासे उस मन्त्ररक्तको पाकर मेरी प्राराघनाकी इच्छा रखनेवाले उन मुनियोंने उनकी बतायी हुई पदतिसे उस मन्त्रका जप करते हुए मेसके रमणीय शिवरपर मुखवान् पर्वतके निकट एक सहज दिव्य वर्णोंतक तीव्र तपस्या की। वे लोकसृष्टिके लिये अत्यन्त उत्सुक थे। इसलिये वायु पीकर कठोर तपस्यामें लग गये। जहाँ उनकी तपस्या चल रही थी, वह झीमान् मुखवान् पर्वत यथा ही मुझे प्रिय है और मेरे भक्तोंने निरन्तर उसकी रुग्णी ही है।

उम शृष्टियोंकी भक्ति देखकर मैंने तकाल उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन आर्य शृष्टियोंको पञ्चाक्षर मन्त्रके दीर्घ उद्द, देवता, वीज, शक्ति, कीलक, घड़इन्यास, शिव और विनियोग—इन सब वार्तोंका पूर्णरूपसे ज्ञान भरा। उंचाकी सृष्टि वढ़े, इसके लिये मैंने उन्हें मन्त्रकी दीर्घ विनियोग दिया। तब वे उस मन्त्रके माहात्म्यसे तपस्या-उद्द दृष्ट नये और देवताओं, अमुरों तथा भनुव्योंकी दीर्घ भज्ञीभाँति विस्तार करने लगे।

भूर भुव उत्तम विद्या। पञ्चाक्षरके लब्धपक्ता वर्णन किया

जाता है। आदिमें 'नमः' पदका प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद 'शिवाय' पदका। यही वह पञ्चाक्षरी विद्या है, जो समस्त श्रुतियोंकी सिरमौर है तथा सम्पूर्ण शब्दसमुदायकी सनातन वीजलिपिणी है। यह विद्या पहले-पहल मेरे मुखसे निकली; इसलिये मेरे ही स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाली है। इसका एक देवीके रूपमें ध्यान करना चाहिये। इस देवीकी अङ्ग-कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। इसके पीन पयोधर ऊपरको उठे हुए हैं। यह चार झुजाओं और तीन नेत्रोंसे मुश्तोभित है। इसके मस्तकपर वालचन्द्रमाका मुकुट है। दो हाथोंमें पद्म और उत्पल हैं। अन्य दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा है। मुखाकृति सौम्य है। यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण आभूप्रणोंसे विभूषित है। श्वेत कमलके आसनपर विराजमान है। इसके काले-काले हुँघराले केश वही शोभा पा रहे हैं। इसके अङ्गोंमें पाँच प्रकारके वर्ण हैं—पीत, कृष्ण, धूम्र, स्वर्णिम तथा रक्त। इन वर्णोंका यदि पृथक्-पृथक् प्रयोग हो तो इन्हें विन्दु और नादसे विभूषित करना चाहिये। विन्दुकी व्याङ्गति अङ्ग चन्द्रके समान है और नादसी आकृति दीप-द्यित्वाके समान। सुमुद्रि। यों तो इस मन्त्रके सभी अश्रु वीजरूप हैं, तथापि उनमें दूसरे अश्रुरक्तों इस मन्त्रका वीज समझना चाहिये। दीर्घ-स्वररूपके जो चौथा वर्ण है, उसे कीलक और पाँचवें वर्णको शक्ति समझना चाहिये। इस मन्त्रके वामदेव शृष्टि है और पक्षि छन्द है। वरानने। मैं ध्याव ही इच्छ मन्त्रका देवता हूँ ॥। वरारोदे। गौतम, अश्रि, विश्वमित्र, अङ्गिरा और भरद्वाज—ये नकारादि वर्णोंके क्लस्त्रः शृष्टि माने गये हैं। गायत्री, अनुष्ठृष्टि, त्रिष्ठृष्टि, वृद्धती और विशाट—ये क्रमशः पाँचों अश्रुरोंके छन्द हैं। इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और त्वन्द—ये क्रमशः उन अश्रुरोंके रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और त्वन्द—ये क्रमशः उन अश्रुरोंके देवता हैं। वरानने। मेरे पूर्व आदि चारों दिशाओंके तपा ऊपरके—पाँचों मुख इन नकारादि अश्रुरोंके क्रमशः स्थान हैं। पञ्चाक्षर मन्त्रका पहला अश्रु उदात्त है। दूसरा और

\* (ॐ) अस्य धोशिवपञ्चाक्षरामन्त्रय आनन्देव भूतिः पर्वत-रुद्धनः शिवो देवता, न दोजं यं वक्तिः, वां विन्दनं सदाधिप्रसादसादादी-पठन्यपूर्वक्तन्तिलुपुरायार्थतिद्वये जपे विनियोगः । विन्दुरुद्धन इस वर्णनके भनुतार दर्श विनियोग-वरन्य दृष्टि । मन्त्रनदनं भारिने जो विनियोग दिया गया है, उसमें (ॐ) धीदन्, नमः दर्शन, 'ग्निवाय' शब्द द्वैरुद्धन् इतना अन्तर है ।

चौथा भी उदात्त ही है। पौँचवाँ स्वरित है और तीसरा अक्षर अनुदात्त माना गया है। इस पञ्चाक्षर मन्त्रके—मूल विद्वा शिव, शैव, सूत्र तथा पञ्चाक्षर नाम जाने। शैव ( शिव-सम्बन्धी ) बीज प्रणव मेरा विशाल हृदय है। नकार सिर कहा गया है, मकार शिखा है, 'शि' कवच है, 'वा' नेत्र है और यकार अज्ञ है। इन वर्णोंके अन्तमें अङ्गोंके चतुर्थन्तर्लक्षके साथ क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट् जोड़नेसे अङ्गन्यास होता है।\*

देवि ! थोड़ेसे भेदके साथ यह तुम्हारा भी मूलमन्त्र है। उस पञ्चाक्षर मन्त्रमें जो पौँचवाँ वर्ण 'य' है, उसे बारहवें स्वरसे विभूषित किया जाता है, अर्थात् 'नमः शिवाय'के स्थानमें 'नमः शिवायै' कहनेसे यह देवीका मूल मन्त्र हो जाता है। अतः साधकको चाहिये कि वह इस मन्त्रसे मन, वाणी और शरीरके भेदसे हम दोनोंका पूजन, जप और होम आदि करे। ( मन

आदिके भेदसे वह पूजन तीन प्रकारका होता है—मानसिक, वाचिक और शारीरिक । ) देवि ! जिसकी जैसी समझ हो, जिसे जितना समय मिल सके, जिसकी जैसी बुद्धि, शक्ति, सम्पत्ति, उत्साह एवं योग्यता और प्रीति हो, उसके अनुसार वह शास्त्रविधिसे जय कर्मी, जहाँ कहीं अथवा जिस किसी भी साधनद्वारा मेरी पूजा कर सकता है। उसकी की हुई वह पूजा उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति करा देगी। सुन्दरि ! मुझमें मन लगाकर जो कुछ क्रम या व्युत्क्रमसे किया गया हो, वह कल्पाणकारी तथा मुझे प्रिय होता है। तथापि जो मेरे भक्त हैं और कर्म करनेमें अत्यन्त विवश ( असमर्थ ) नहीं हो गये हैं, उनके लिये सब शास्त्रोंमें मैंने ही नियम बनाया है, उस नियमका उन्हें पालन करना चाहिये। अब मैं पहले मन्त्रकी दीक्षा लेनेका शुभ विघ्न बता रहा हूँ, जिसके विना मन्त्र-जप निष्फल होता है और जिसके होनेसे जप-कर्म अवश्य सफल होता है। ( अध्याय १३ )

—•—३४३—•—

**गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका र्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय जातें, सदाचारका महत्व, आस्तिकता-की प्रशंसा तथा पञ्चाक्षर मन्त्रकी विशेषताका वर्णन**

(महादेवजी कहते हैं—) वरानने। आश्चर्यन, कियाहीन, श्रद्धाहीन तथा विधिके पालनार्थ आवश्यक दक्षिणासे हीन जो जप किया जाता है, वह सदा निष्फल होता है। मेरा स्वरूपभूत मन्त्र यदि आशा-सिद्ध, क्रियासिद्ध और अद्वासिद्ध होनेके साथ ही दक्षिणासे भी युक्त हो तो उसकी सिद्धि होती है और उससे महान् फल प्राप्त होता है। शिष्यको चाहिये कि वह पहले तत्त्ववेचा अचार्य, जपशील, सदुणसम्पन्न, ध्यानयोगपरायण एवं ग्राहण गुरुकी सेवामें उपस्थित हो, मनमें शुद्ध भाव रखते हुए प्रयत्नपूर्वक उन्हें संतुष्ट करे। ग्राहण साधक अपने मन, वाणी, शरीर और घनसे अचार्यका पूजन करे। वह वैभव हो

तो गुरुको भक्तिभावसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, क्षेत्र और वह आदि अपित्त करे। जो अपने लिये सिद्धि चाहता हो, वह घनके दानमें कृपणता न करे। तदनन्तर सब सामग्रियोंसहित अपने आपको गुरुकी सेवामें अपित्त कर दे।

इस प्रकार वयाशक्ति निष्फलभावसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके गुरुसे मन्त्र एवं ज्ञानका उपदेश क्रमशः प्रण करे। इस तरह संतुष्ट हुए गुरु अपने पूजक शिष्यको, जो एक वर्षतक उनकी सेवामें रह चुका हो, गुरुकी सेवामें उत्साह रखनेवाला हो, अहंकारहित हो और उपवासपूर्वक ज्ञान करके शुद्ध हो गया हो, पुनः विशेष शुद्धिके लिये पूर्ण कलशमें

\* अङ्गन्यास-वाच्यका प्रयोग यों समझना चाहिये—ॐ श्वेतद्वयाय नमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिवायै वषट्, ॐ शि कवचाय द्रुरु, ॐ वा नेत्रवयाय वौषट्, ॐ यं अक्षय कट् इति दद्यादिपउद्गन्यासः। इसी तरह करन्यासका प्रयोग है—यथा— ॐ एवं अङ्गुलान्यां नमः, ॐ नं उत्तर्वनीम्बां नमः, ॐ मं मध्यमान्यां नमः, ॐ शि अनामिकान्यां नमः, ॐ वा कनिछिकान्यां नमः ॐ यं करतलकरपृष्ठान्यां नमः। विनियोगमें जो क्रमि आदि भाये हैं, उनका न्यास इस प्रकार समझना चाहिये— ॐ कामदेवरपै नमः शिरसि, पंक्तिरुद्धर्मसे नमः मुखे, शिवदेवतायै नमः दद्ये, मं वो ब्रय नमः गुणे, यं शक्तये नमः पादयोः, वां कोलकाय नमः नामी, विनियोगाय नमः सर्वांक्रे।

उसे हुए पवित्र द्रव्यसुक मन्त्रद्वारा जलसे नहलाकर चन्दन, पुष्पमाला, वृद्ध और आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उसे सुन्दर वेदाभूषणे विभूषित करे । तत्पञ्चात् शिष्यसे ग्रास्माणोद्वारा पुण्याहवाचन और ब्राह्मणोंकी पूजा करवाकर समुद्र-तटपर, नदीके किनारे, गोशालामें, देवाल्यमें, किसी भी पवित्र स्थानमें अथवा घरमें सिद्धिदायक काल ध्यानेपर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र एवं सर्वदोषरहित शुभ थोगमें गुरु अपने उस शिष्यको मनुप्रहृष्टवैक विभिन्ने अनुसार मेरा शान दे । एकान्त स्थानमें अल्पत प्रसन्नचित हो उच्च खरसे इस दोनोंके उस उत्तम मन्त्रका शिष्यसे भलीभैंति उच्चारण कराये । बारंबार उच्चारण करकर शिष्यको इस प्रकार आशीर्वाद दे—‘तुम्हारा कस्थाण हो, मन्त्रल हो, शोभन हो, प्रिय हो’ इस तरह गुरु शिष्यको मन्त्र और आशा प्रदान करे ॥। इस प्रकार गुरुसे मन्त्र और आशा पाकर शिष्य एकाग्रचित हो संकल्प करके पुरश्चरण-पूर्वक प्रतिदिन उस मन्त्रका जप करता रहे । वह जबतक जीये, तयतक अनन्यभावसे तत्परतापूर्वक नित्य एक हजार आठ मन्त्रोंका जप किया करे । जो ऐसा करता है वह परम गतिको प्राप्त होता है । जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रहमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाखका चौगुना जप आंदरपूर्वक पूरा कर देता है वह ‘पौरश्चरणिक’ कहलाता है । जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है । उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है । वह सिद्धिदायक सिद्ध हो जाता है ।

साधकों चाहिये कि वह शुद्ध देशमें द्वान करके सुन्दर आसन योऽधकर अपने हृदयमें तुम्हारे साथ मुक्त शिवका और अपने गुरुका चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह किये गैनभावसे बैठे, चित्तको एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदिके द्वारा पाँचों तत्त्वोंका शोधन करके मन्त्रका न्यास भादि करे । इसके बाद सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके भग्न और अपान नियमन करते हुए हम दोनोंके स्वरूपका भग्न करे और विद्यास्थान, अपने रूप, मृष्णि, छन्द, देवता, दीज, यहकि तथा मन्त्रके वाच्यार्थल्प मुक्त परमेश्वरका समरण भरके रक्षादरीका जप करे । मानस जप उत्तम है, उपांशु जप नहीं है तथा वाचिक जप उससे निम्नकोटिका माना गया है—

\* यिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्तित्वे ।

५३ इवद् उरुमंत्रनारां चैव ततः पराम् ॥

( शि० प० ३० शा० सं० ८० उ० १४ । १५ )

ऐसा आगमार्थविश्वारद विद्वानोंका कथन है । जो ऊँचे जीवे खरसे मुक्त तथा स्पष्ट और अस्पष्ट पदों एवं अक्षरोंके साथ मन्त्रका वाणीद्वारा उच्चारण करता है, उसका यह जप ‘वाचिक’ कहलाता है । जिस जपमें केवल जिद्वामात्र हिलती है अथवा बद्धुत जीमें खरसे अक्षरोंका उच्चारण होता है तथा जो दूसरोंके कानमें पड़नेपर भी उन्हें कुछ सुनायी नहीं देता, ऐसे जपको ‘उपांशु’ कहते हैं । जिस जपमें अक्षर पड़क्तिका, एक वर्णसे दूसरे वर्णका, एक पदसे दूसरे पदका तथा शब्द और अर्थका मनके द्वारा बारंबार चिन्तनमात्र होता है, वह ‘मानस’ जप कहलाता है । वाचिक जप एक गुना ही फल देता है, उपांशु जप सौ गुना फल देनेवाला बताया जाता है, मानस जपका फल सहस्र गुना कहा गया है तथा सर्वार्थ जप उससे सौ गुना अधिक फल देनेवाला है । प्राणायामपूर्वक जो जप होता है, उसे ‘सर्वार्थ’ जप कहते हैं । अगर्भ जपमें भी आदि और अन्तमें प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है । मन्त्रार्थवैत्ता बुद्धिमान् साधक प्राणायाम करते समय चालीस बार मन्त्रका सरण कर ले । जो ऐसा करनेमें असमर्थ है, वह अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके, उतने ही मन्त्रोंका मानसिक जप कर ले । पाँच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सर्वार्थ प्राणायाम करे । इन दोनोंमें सर्वार्थ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है । सर्वार्थकी अवेक्षा भी ध्यानसंहित जप सहस्रगुना फल देनेवाला कहा जाता है । इन पाँच प्रकारके जपोंमें से कोई एक जप अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये ।

अङ्गुलीसे जपकी गणना करना एकगुना बताया गया है । रेखासे गणना करना आठगुना उत्तम समझना चाहिये । पुत्रजीव ( जियापोता ) के बीजोंकी मालासे गणना करनेपर जपका दसगुना अधिक फल होता है । शश्वके मनकंसि सौ गुना, मूँगोंसे हजार गुना, स्टटिकमणिकी मालासे दस द्वार गुना, मोतियोंकी मालासे लाख गुना, पद्माकुसे दस लाख गुना और सुवर्णके बने हुए मनकंसि गणना करनेपर कोटि गुना अधिक फल बताया गया है । कुचकी गाँठसे तथा दूधरने गणना करनेपर अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है । तीन दूधरके दानोंसे बनायी गयी माला जप-कर्ममें धन देनेमाली होती है । सत्त्वार्द्ध दानोंकी माला पुष्टिदायिनी और पुर्यनि दानोंकी माला मुक्तिदायिनी होती है, दूधर दानोंकी बनी हुई माला अभिचार-कर्ममें फलदायक होती है । दूधरमें डैगूठेको जप-दायक समझना चाहिये और दानोंको

शमुनाशक । मध्यमा धन देती है और अनाभिका शान्ति प्रदान करती है । एक सौ आठ दानोंकी माला उत्तमोत्तम मानी गयी है । सौ दानोंकी माला उत्तम और पचास दानोंकी माला मध्यम होती है । चौबीस दानोंकी माला मनोषारिणी एवं श्रेष्ठ कही गयी है । इस तरहकी मालासे जप करे । यह जप किसीको दिसाये नहीं । कनिष्ठिका अंगुलि अधरणी ( जपके झळको धरित—नहु न फरनेवाली ) मानी गयी है; इसकिये जपकर्म में शुभ है । दूसरी अंगुलियोंके साथ अंगुष्ठद्वारा जप करना चाहिये; क्योंकि अंगुष्ठके बिना किया हुआ जप निष्कर्ष होता है ।

जर्मे किये हुए जपको समान या एकगुना समझना चाहिये । गोशालामें उसका छळ सौगुना हो जाता है, पवित्र वन या उद्यानमें किये हुए जपका छळ सहस्रगुना यताया जाता है । पवित्र पञ्चतपर दस हजार गुना, नदीके तटपर लाख गुना, देवालयमें कोटि गुना और मेरे निकट किये हुए जपको अनन्त गुना कहा गया है । सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, चल, ब्राह्मण और गौओंके समीप किया हुआ जप श्रेष्ठ होता है । पुर्वाभिमुख किया हुआ जप वशीकरणमें और दक्षिणाभिमुख जप अभिचार-कर्ममें सफलतां प्रदान करनेवाला है । पश्चिमाभिमुख जपको धनदायक जानना चाहिये और उत्तराभिमुख जप शान्तिदायक होता है । सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप उनकी ओर पीठ करके जप नहीं करना चाहिये, सिरपर पगड़ी रखकर, कुर्ता पहनकर, नंगा होकर, बाल खोलकर, गलेमें कपड़ा लपेटकर, अशुद्ध हाथ लेकर, सम्पूर्ण शरीरसे अशुद्ध रहकर तथा विलापपूर्वक कभी जप नहीं करना चाहिये । जप करते समय क्रोध, मद, छीकना, थूकना, चौभाई, लेना तथा कुत्तो और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है । यदि कभी वैसा सम्भव हो जाय तो आचमन करे अथवा तुम्हारे साथ मेरा ( पार्वतीसहित शिवका ) खरण करे या ग्रह-नक्षत्रोंका दर्शन करे अथवा प्राणायाम कर ले ।

विना आसनके वैठकर, सोकर, चलसे-चलसे अथवा खड़ा होकर जप न करे । भलीमें या सङ्कपर, अपवित्र स्थानमें तथा अंधेरमें भी जप न करे । दोनों पाँव फैलकर, कुब्जुट आसनसे वैठकर, सवारी या खाटपर चढ़कर अथवा चिन्तासे व्याकुल होकर जप न करे । यदि शक्ति हो तो इन सब नियमोंका पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या आभ ?

संक्षेपसे मेरी यह बात सुनो । सदाचारी मनुष्य शुद्धमात्र से जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है । आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विधा है और आचार ही परम गति है । आचारहीन पुरुष संतारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी मुख नहीं शाता । इसलिये सबको आचारवान् शेना चाहियेत । वेदउ विज्ञानोंने वेद-शास्त्रके कथनानुसार धिस वर्णके लिये जो कर्म विहित जाताया है, उस वर्णके पुरुषको उसी कर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये । वही उसका सदाचार है, दूसरा नहीं । घरपुरुषोंने उसका आचरण किया है; इसीलिये वह सदाचार कहलाता है । उस सदाचारका भी भूल कारण आचिकता है । यदि मनुष्य आचिक हो तो प्रमाद आदिके कारण सदाचारसे कभी अछ हो जानेपर भी दूषित नहीं होता । अतः सदा आचिकताका आभय लेना चाहिये । जैसे इलोकमें स्तुतीं करनेसे मुख और दुष्कर्मं करनेसे दुःख होता है, उसी तरह परलोकमें भी होता है—इस विभासको आचिकता कहते हैं ।

सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पञ्चाश्वर मन्त्रसे थड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है । चलसे-फिरते, खड़े होपे अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करसे हुए अपवित्र या पवित्र पुरुषके जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्कर्ष नहीं होता । अन्त्यज, मूर्ख, मूढ़, पातत, मर्यादारहित और नीचके लिये भी यह मन्त्र निष्कर्ष नहीं होता । किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य भी, यदि मुझमें उत्तमं भक्तिभाव रखता है, तो उसके लिये यह मन्त्र निःसंदेह सिद्ध होगा ही, किंतु दूसरे किसीके लिये वह सिद्ध नहीं हो सकता । प्रिये ! इस मन्त्रके लिये लग्न, तिथि, नश्वर, वार और योग आदिका अधिक विचार अपेक्षित नहीं है । यह मन्त्र कभी सुप्त नहीं होता, सदा जाग्रत् ही रहता है । यह महामन्त्र कभी किसीका शम्भु नहीं होता । यह सदा सुरिद्ध सिद्ध अथवा साध्य ही रहेगा, सिद्ध गुरुके उपदेशसे प्राप्त हुआ मन्त्र सुसिद्ध कहलाता है । असिद्ध गुरुका भी दिया हुआ मन्त्र सिद्ध जहा गया है । जो केवल परम्परासे प्राप्त हुआ है, किसी गुरुके उपदेशसे नहीं मिला है, वह मन्त्र साध्य होता

\* आचारः परमो धर्म आचारः परमं परम् ।

आचारः परमा विधा आचारः परमा गतिः ॥

आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।

परम च मुखो न रथाचमादाचारवान् भवेत् ॥

( यि० प्र० या० सं० व० १४ । ५५-५६ )

है। जो मुझमें, मन्त्रमें तथा गुरुमें अतिशय श्रद्धा रखनेवाला है, उसको मिला हुआ मन्त्र किसी गुरुके द्वारा साधित हो या असाधित, सिद्ध होकर ही रहता है, इसमें संशय नहीं है। इसलिये अधिकारकी दृष्टिसे विभ्युक्त होनेवाले दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर विद्वान् पुरुष पाक्षात् परमा विद्या पञ्चाक्षरीका आश्रय ले। दूसरे मन्त्रोंके सिद्ध हो जानेसे ही यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परंतु इस महामन्त्रके सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं। महेश्वर ! जैसे अन्य देवताओंके प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परंतु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, यही न्याय इन सब मन्त्रोंके

लिये भी है। सब मन्त्रोंके जो दोष हैं, वे इस मन्त्रमें सम्मिलित नहीं हैं; क्योंकि यह मन्त्र जाति आदिकी अपेक्षा न रखकर प्रवृत्त होता है। तथापि छोटे-छोटे तुच्छ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है।

उपमन्त्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! इस प्रकार विश्वल-धारी महादेवजीने तीनों लोकोंके हितके लिये साक्षात् महादेवी पार्वतीसे इस पञ्चाक्षर मन्त्रकी विधि कही थी, जो एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है। ( अध्याय १४ )

### त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा

**श्रीकृष्ण बोले—**भगवन् ! आपने मन्त्रका माहात्म्य तथा उसके प्रयोगका विधान बताया, जो साक्षात् वेदके तुल्य है। अब मैं उत्तम शिवसंस्कारकी विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मन्त्र-प्रहणके प्रकरणमें आपने कुछ सूचित किया था। ह वात मुझे भूली नहीं है।

**उपमन्त्युने कहा—**अच्छा, मैं तुम्हें शिवद्वारा कथित रम पवित्र संस्कारका विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पार्षेण शोधन करनेवाला है। मनुष्य जिसके प्रभावसे पूजा भारिमें उत्तम अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस घड़व्यशोधन शिरोंके संस्कार कहते हैं। संस्कार अर्थात् शुद्धि करनेसे ही ग्रस्त नाम संस्कार है। यह विज्ञान देता है और पाशब्दन्धको शैश्वर्य करता है। इसलिये इस संस्कारको ही दीक्षा भी कहते हैं। शिव-शास्त्रमें परमात्मा शिवने 'शाम्भवी', 'शाक्ती' और 'भान्ती' तीन प्रकारकी दीक्षाका उपदेश किया है। गुरुके दृष्टिगत भावसे, स्पृश्यते तथा सम्मानणसे भी जीवको जो तत्त्वाल पादोंका नाश करनेवाली संज्ञा सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है वह शाम्भवी दीक्षा कहलाती है। उस दीक्षाके भी दो भेद हैं—तीव्रा और तीव्रतरा। पादोंके क्षीण होनेमें जो शीघ्रता या मन्दता होती है, उसीके भेदसे ये दो भेद हुए हैं। जिस दृष्टिसे तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही तीव्रतरा नहीं गयी है। जीवित पुरुषके पापका अत्यन्त शोधन करने-कर्त्त्वे ये दीक्षा है, उसे तीव्रा कहा गया है। गुरु योगमार्गसे लिखके शरीरमें प्रवेश करके ज्ञान-दृष्टिसे जो ज्ञानवती दीक्षा है, वह चाली कही गयी है। क्रियावती दीक्षाको मान्त्री

दीक्षा कहते हैं। इसमें पहले होमकुण्ड और यज्ञमण्डपका निर्माण किया जाता है। फिर गुरु बाहरसे मन्द या मन्दतर उद्देश्यको लेकर शिष्यका संस्कार करते हैं। शक्तिपातके अनुसार शिष्य गुरुके अनुग्रहका भाजन होता है। शैव-धर्मका अनुसरण शक्तिपातमूलक है; अतः संक्षेपसे उसके विषयमें निवेदन किया जाता है। जिस शिष्यमें गुरुकी शक्तिका पात नहीं हुआ, उसमें शुद्धि नहीं आती तथा उसमें न तो विद्या, न शिवाचार, न मुक्ति और न सिद्धियाँ ही होती हैं; अतः प्रत्युत्र शक्तिपातके लक्षणोंको देखकर गुरु शन अथवा क्रियाके द्वारा शिष्यका शोधन करे। जो मोहवदा इसके विपरीत आचरण करता है, वह दुर्बुद्धि नष्ट हो जाता है; अतः गुरु सब प्रकारसे शिष्यका परीक्षण करे। उत्कृष्ट योग और आनन्दकी प्राप्ति ही शक्तिपातका लक्षण है; क्योंकि वह परमाशक्ति प्रयोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और योगका लक्षण है अन्तःकरणमें ( सात्त्विक ) विकार। जब अन्तःकरण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीरमें कष्ट, रोमाढ़ा, स्वरंजिकार, नेत्रविकार और अङ्गविकार प्रकट होते हैं।

शिष्य भी यिवपूजन आदिमें गुरुका भग्नक प्राप्त करके, अथवा उनके साथ रह करके उनमें प्रकट होनेवाले इन लक्षणोंसे गुरुकी परीक्षा करे। शिष्य गुरुका शिवर्गीय होता है और उसका गुरुके प्रति गौरव होता है। इनलिये भयंगा

१. कण्ठसे गद्ददारान्तरा प्रकट होता। २. नेत्रोंमें लक्षण होना। ३. शर्हरमें स्वर्ण ( बड़ा ) तथा मंद अंदर अङ्ग द्रवित होना।

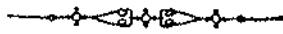
प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करे, जो गुरुके गौरवके अनुरूप हो । जो गुरु है, वह शिव कहा गया है और जो शिव है, वह गुरु माना गया है । विद्याके आकारमें शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं । जैसे शिव हैं, वैसी विद्या है । जैसी विद्या है, वैसे गुरु हैं । शिव, विद्या और गुरुके पूजनसे समान फल मिलता है । शिव सर्वदेवात्मक हैं और गुरु सर्वमन्त्रमय । अतः सम्पूर्ण यत्नसे गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये । यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान् है तो वह गुरुके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी मिथ्याचार—कपथपूर्ण वर्ताव न करे । गुरु आज्ञा दें या न दें, शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करे । उनके सामने और पीठ पीछे भी उनका कार्य करता रहे । ऐसे आचारसे युक्त गुरु-भक्त और सदा मनमें उत्साह रखनेवाला जो गुरुका प्रिय कार्य करनेवाला शिष्य है, वही शैव धर्मोंके उपदेशका अधिकारी है । यदि गुरु गुणवान्, विद्वान्, परमानन्दका प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त है तो वही मुक्ति देनेवाला है, लूसरा नहीं । शान उत्पन्न करनेवाला जो परमानन्दजनित तत्त्व है, उसे जिसने जान लिया है, वही आनन्दका साक्षात्कार करा सकता है । शानरहित नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता ।

नौकाएँ एक दूसरीको पार लगा सकती हैं, किंतु क्या कोई शिला दूसरी शिलाको तार सकती है ? नाममात्रके गुरुसे नाममात्रकी ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है । जिन्हें तत्त्वका शान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरोंको भी मुक्त करते हैं । तत्त्व-हीनको कैसे बोध होगा और बोधके बिना कैसे 'आत्मा' का अनुभव होगा ?<sup>१५</sup> जो आत्मानुभवसे शून्य है, वह 'पशु' कहलाता है । पशुकी प्रेरणासे कोई पशुत्वको नहीं लौंध सकता; अतः तत्त्वज्ञ पुरुष ही 'मुक्त' और 'मोचक' हो सकता है, अश नहीं । समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण शास्त्रोंका शाता तथा सब प्रकारके उपाय-विधानका जानकार होनेपर भी जो तत्त्वज्ञानसे हीन है, उसका जीवन निष्पल है । जिस पुरुषकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि तत्त्वके अनुसंधानमें प्रवृत्त होती है, उसके दर्शन, सर्व आदिसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है । अतः जिसके समर्कसे ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्दकी प्राप्ति सम्भव

हो, बुद्धिमान् पुरुष उसीको अपना गुरु चुने, दूसरेको नहीं । योग्य गुरुका जबतक अच्छी तरह ज्ञान न हो जाय, तबतक विनयाचारचतुर मुमुक्षु शिष्योंको उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये । उनका अच्छी तरह ज्ञान—सम्पूर्ण परिचय हो जानेपर उनमें सुस्थिर भक्ति करे । जबतक तत्त्वका बोध न प्राप्त हो जाय, तबतक निरन्तर गुरुसेवनमें लगा रहे । तत्त्वको न तो कभी छोड़े और न किसी तरह भी उसकी उपेक्षा ही करे । जिसके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़से भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले ।

गुरुको भी चाहिये कि वह अपने आश्रित ब्राह्मणजातीय शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करे । क्षणिय शिष्यकी दो वर्ष और वैश्यकी तीन वर्षतक परीक्षा करे । प्राणोंको संकटमें डालकर सेवा करने और अधिक धन देने आदिका अनुकूल-प्रतिकूल आदेश देकर, उत्तम जातिवालोंको छोटे काममें लगाकर और छोटोंको उत्तम काममें नियुक्त करके उनके धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा करे । गुरुके तिरस्कार आदि करनेपर भी जो विषादको नहीं प्राप्त होते, वे ही संयमी, शुद्ध तथा शिव-संस्कार कर्मके योग्य हैं । जो किसीकी हिंसा नहीं करते, सबके प्रति दयालु होते, सदा हृदयमें उत्साह रखकर सब कार्य करनेको उद्धृत रहते, अभिमानशून्य, बुद्धिमान् और स्वर्धारहित होकर प्रिय वन्न बोलते, सरल, कोमल, स्वच्छ, विनयशील, सुस्थिरचित्त, शौचाचारसे संयुक्त और शिवभक्त होते, ऐसे आचार-व्यवहारवाले द्विजातियोंको मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा यथोचित रीतिसे शुद्ध करके तत्त्वका बोध कराना चाहिये, यह शास्त्रोंका निर्णय है । शिव-संस्कार कर्ममें नारीका स्वतः अधिकार नहीं है । यदि वह शिवभक्त हो तो पतिकी आज्ञासे ही उक्त संस्कारकी अधिकारिणी होती है । विवाह छीका पुनर्व आदिकी अनुभवितसे और कन्याका पिताकी आज्ञासे शिव-संस्कारमें अधिकार होता है । शूद्रों, पतितों और वर्ण-संकरोंके लिये घडध्वशोधन ( शिव-संस्कार ) का विधान नहीं है । वे भी यदि परमकारण शिवमें स्वाभाविक अनुराग रखते हों तो शिवका चरणोदक लेकर अपने पापोंकी शुद्धि करें ।

( अध्याय १५ )



\* अन्योन्यं तारयेन्नोका किं शिला तारयेच्छिलाम् । पतस्य नाममात्रेण सुतिवै नाममात्रिका ॥

३४३९) यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्त्वा मोचयन्त्यपि । तत्त्वहाने कुतो बोधः कुतो शात्मपरियदः ॥

## समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! नाना प्रकारके दोषोंसे रहित शुद्ध स्थान और पवित्र दिनमें गुरु पहले शिष्यका 'समय' नामक संस्कार करे । गन्ध, वर्ण और रस आदिसे विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके वास्तु-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिसे वहाँ मण्डपका निर्माण करे । मण्डपके बीचमें वेदी बनाकर आठों दिशाओंमें छोटे-छोटे कुण्ड बनाये । फिर ईशानकोणमें या पश्चिम दिशामें प्रधानकुण्डका निर्माण करे । एक ही प्रधान कुण्ड बनाकर चौदोवा, घज तथा अनेक प्रकारकी वहुसंख्यक मालाओंसे उसको सजाये । तत्पश्चात् वेदीके मध्यभागमें शुभ लक्षणोंसे युक्त मण्डल बनाये । लालरंगके सुवर्ण आदिके चूर्ण-से वह मण्डल बनाना चाहिये । मण्डल ऐसा हो कि उसमें ईश्वरका आवाहन किया जा सके । निर्धन मनुष्य सिन्दूर तथा आगही या तिनीके चावलके चूर्णसे मण्डल बनाये । उस मण्डपमें एक या दो हाथका इवेत या लाल कमल बनाये । एक हाथके कमलकी कर्णिका आठ अङ्गुल-की होनी चाहिये । उसके केंत्र चार अङ्गुलमें हों और शैप भागमें अष्टदल आदिकी कल्पना करे । दो हाथके कमलकी कर्णिका आदि एक हाथवालेसे दुगुनी होनी चाहिये । उक्त वेदी या मण्डपके ईशानकोणमें पुनः एक वेदीपर एक हाथ या आधे हाथका मण्डल बनाये और उसे शोभाजनक समियोगे सुशोभित करे । तत्पश्चात् धान, चावल, सरसों, तिल, फूल और कुशासे उस मण्डलको आच्छादित करके उसके ऊपर शुभ लक्षणसे युक्त शिवकलशकी स्थापना करे । वह कलश सोना, चाँदी, ताँचा अथवा मिट्टीका होना चाहिये । उसपर गन्ध, पुण्य, अक्षत, कुश और दूर्घट्ट रक्खे जायें, उसके कण्ठमें सफेद सूत लपेटा जाय और उसे दो नूतन वस्त्रोंसे आच्छादित किया जाय । उसमें शुद्ध जल भर दिया जाय । कलशमें एक मुढ़ा कुश भगवान् ऊपरकी ओर करके डाला जाय । सुवर्ण आदि देव दोऽग्रा जाय और उस कलशको ऊपरसे ढक दिया जाय । उस आसनलय कमलके उत्तर दलमें सूत्र आदिके विना संस्कार या गुड़ा, वर्धनी (विशिष्ट जलापात्र), शङ्ख, चक्र और कन्दूर आदि सब सामग्री संग्रह करके रखसे । उक्त असमन्मण्डलके अग्रभागमें चन्दनमिश्रित जलसे भरी हुई वर्धनी भवराजके लिये रखसे । फिर मण्डलके पूर्वभागमें हारे नन्दपुरुष कलशकी स्थापना करके शिवकी विधिपूर्वक इश्वर भास्य करे ।

समुद्र या नदीके किनारे, गोदावरीमें, पर्वतके शिखरमर, देवाल्यमें अथवा धरमें या किसी भी भनोहर स्थानमें मण्डपादि रचनाके विना पूर्वोक्त सब कार्य करे । फिर पूर्ववत् मण्डल और अग्निकी बेदी बनाकर गुरु प्रसन्नमुखसे पूजा-भवनमें प्रवेश करे । वहाँ सब प्रकारके मङ्गल-कृत्यका सम्पादन करके नित्यकर्मके अनुष्टुप्पूर्वक मण्डलके मध्यभागमें महेश्वरकी महापूजा करनेके अनन्तर पुनः शिवकलशपर शिवका आवाहन-पूजन करे । पश्चिमाभिमुख यज्ञरक्षक ईश्वरका ध्यान करके अङ्गुराजकी वर्धनीमें दक्षिणकी ओर ईश्वरके अङ्गकी पूजा करे । फिर मन्त्रयुक्त कलशमें मन्त्र तथा मुद्रा आदिका न्यास करके मन्त्रविशारद गुरु मन्त्र-याग करे । इसके बाद देशिक-शिरोमणि गुरु प्रधान कुण्डमें शिवानिकी स्थापना करके उसमें होम करे । साथ ही दूसरे व्राहण भी चारों ओरसे उसमें आहुति डालें । आचार्यसे आधे या चौथाई होमका उनके लिये विधान है । आचार्यशिरोमणिको प्रधान कुण्डमें ही हवन करना चाहिये । दूसरे लोगोंको स्वाध्याय, खोत्र एवं मङ्गलपाठ करना चाहिये । अन्य शिवभक्त भी वहाँ विधिवत् जप करे । नृत्य, गीत, वाद्य एवं अन्य मङ्गल कृत्य भी होने चाहिये । सदस्योंका विधिवत् पूजन, पुण्याहवाचन तथा पुनः भगवान् शंकरका पूजन सम्पन्न करके शिवपर अनुग्रह करनेकी इच्छा मनमें ले आचार्य महादेवजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

असीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम् ।  
विमोचयेत्न विश्वेश धृणया च धृणनिधे ॥  
‘देवदेवेश्वर ! प्रसन्न होइये । विश्वनाथ ! दयानिधे !  
मेरे शरीरमें प्रवेश करके आप कृपापूर्वक इन शिष्यको वन्धन-  
मुक्त कराइये ।

तदनन्तर जैसे ही कर्त्ता इम प्रकार इश्वरकी अनुमति पाकर गुरु उस शिष्यको जिसने उपवास किया था, वा हविष्य भोजन किया हो, अपने निकट बुलाये । वह प्रिय एक समय भोजन करनेवाला और विरक्त हो । त्वान करने प्रातःकालका कृत्य पूरा कर दुका हो । मङ्गल-कृत्यका सम्पादन करके प्रणवका जप और महादेवजीका अन ऊर रखा हो । उसे पदिच्छम या दक्षिण द्वारके नामसे मण्डलमें कुर्यादि असन्त-पर उत्तरकी ओर मुंह करके दियाये और उन त्वयं पूर्णी और मुंह करके सदा रहे । शिष्य कलर्दी और मुंह द्वारा दूषण जोड़ ले । गुरु प्रोत्साहित जलसे शिष्यका प्रोत्साहन द्वारा दूषण

मस्तकपर अस्त्रमुद्राद्वारा फूल फँककर मारे । फिर अभिमन्त्रित नूतन वस्त्र—आधे दुपट्टेसे उसकी ओँख बाँध दे । इसके बाद शिष्यको दस्ताजेसे मण्डलके भीतर प्रवेश कराये । शिष्य भी गुरुसे प्रेरित हो शंकरजीकी तीन बार प्रदक्षिणा करे । इसके बाद प्रभुको सुवर्णमिश्रित पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे । तदनन्तर मूलमन्त्रसे गुरु शिष्यका प्रोक्षण करके पूर्ववत् अस्त्रमन्त्रके द्वारा उसके मस्तकपर फूलसे ताङ्गन करनेके पश्चात् नेत्र बन्धन खोल दे । शिष्य पुनः मण्डली ओर देखकर हाथ जोड़ प्रभुको प्रणाम करे । इसके बाद शिवस्वरूप आचार्य शिष्यको मण्डलके दक्षिण अपने बायें भागमें कुशके आसनपर बिठाये और महादेवजीकी आराधना करके उसके मस्तकपर शिवका वरद हाथ रखवे । ‘मैं शिव हूँ’ इस अभिमानसे युक्त गुरु शिवके तेजसे सम्पन्न अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रखवे और शिवमन्त्रका उच्चारण करे । उसी हाथसे वह शिष्यके सम्पूर्ण अङ्गोंका स्पर्श करे । शिष्य भी आचार्यरूपमें उपस्थित हुए ईश्वरको पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे । तदनन्तर जब शिष्य शिवाग्निमें महादेवजीकी विधिवत् पूजा करके तीन आहुति दे ले, तब गुरु पुनः पूर्ववत् शिष्यको अपने पास बिठा ले । कुशोंके अग्रभागसे उसका स्पर्श करते हुए विद्या या मन्त्रद्वारा अपने आपको उसके भीतर आविष्ट करे ।

तत्पश्चात् महादेवजीको प्रणाम करके नाड़ी-संधान करे । फिर शिव-शास्त्रमें वताये हुए मार्गसे प्राणका निष्क्रमण करके शिष्यके शरीरमें प्रवेशकी भावना करे, साथ ही मन्त्रोंका तर्पण भी करे । मूलमन्त्रके तर्पणके लिये उसीके उच्चारण-पूर्वक दस आहुतियाँ देनी चाहिये । फिर अङ्गोंके तर्पणके लिये अङ्गमन्त्रोद्वारा ही क्रमशः तीन आहुतियाँ दे । इसके बाद पूर्णाहुति देकर मन्त्रवेत्ता गुरु प्रायश्चित्तके निमित्त मूलमन्त्रसे पुनः दस आहुतियाँ अग्निमें डाले । फिर देवेश्वर शिवका पूजन करके सम्यक् आचमन और हवन करनेके पश्चात् यथोचित रीतिसे जातितः वैश्यका उद्घार करे । भावनाद्वारा उसके वैश्यलक्ष्मी निकालकर उसमें क्षत्रियत्वकी उत्पत्ति करे । फिर इसी तरह क्षत्रियत्वका भी उद्घार करके गुरु उसमें व्राह्मणत्वकी उद्घावना करे । इसी प्रणालीसे जातितः क्षत्रियका भी उद्घार करके व्राह्मण बनाये । फिर उन दोनों शिष्योंमें उद्गत्वकी उत्पत्ति करे । जो जातिसे ही व्राह्मण है, उस शिष्यमें केवल सूदूरत्वकी ही स्थापना करे । फिर शिष्यका प्रोक्षण

और ताङ्गन करके उसके आगकी चिनगारियोंके समान प्रकाशमान शिवस्वरूप आत्माको अपने आत्मामें स्थित होने-की भावना करे । तदनन्तर पूर्वोक्त नाड़ीसे गुरुमन्त्रोच्चारण-पूर्वक वायुका रेचन ( निःसारण ) करे । वायुका निःसारण करके उस नाड़ीके द्वारा ही शिष्यके हृदयमें वह स्वयं प्रवेश करे । प्रवेश करके उसके चैतन्यका नील विन्दुके समान चिन्तन करे । साथ ही यह भावना करे कि मेरे तेजसे इसका सारा मल नष्ट हो गया और यह पूर्णतः प्रकाशित हो रहा है । इसके बाद उस जीव-चैतन्यको लेकर नाड़ीसे संहारुद्वा एवं पूरक प्राणायामद्वारा अपने आत्मासे एकीभूत करनेके लिये उसमें निविष्ट करे । फिर रेचककी ही भाँति कुम्भकद्वारा उसी नाड़ीसे उस जीव-चैतन्यको बहाँसि लेकर शिष्यके हृदयमें स्थापित कर दे । तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके शिवसे उपलब्ध हुए यज्ञोपवीतको उसे देकर गुरु तीन बार आहुति दे पूर्णाहुति होम करे । इसके बाद आराध्यदेवके दक्षिण भागमें शिष्यको कुश तथा फूलसे आच्छादित करके श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उसका मुँह उत्तरकी ओर करके उसे स्वस्तिकासनमें स्थित करे । शिष्य गुरुकी ओर हाथ जोड़े रहे । गुरु स्वयं पूर्वाभिमुख हो एक श्रेष्ठ आसनपर खड़ा रहे और पहलेसे ही स्थापनपूर्वक सिद्ध किये हुए पूर्ण धर्यको लेकर शिवका ध्यान करते हुए मन्त्रपाठ तथा माङ्गलिक वाद्योंकी ध्वनिके साथ शिष्यका अभिषेक करे । तदनन्तर शिष्य उस अभिषेकके जलको पौँछकर श्वेत वस्त्र धारण करे आचमन करके अलंकृत हो हाथ जोड़ मण्डपमें जाय । तब गुरु पहलेकी भाँति उसे कुशासनपर बिठाकर मण्डलमें महादेवजीकी पूजा करके करन्यास करे । इसके बाद मन-ही-मन महादेवजीका ध्यान करते हुए दोनों हाथोंमें भस्ते शिष्यके अङ्गोंमें लगाये और शिवमन्त्रका उच्चारण करे ।

तदनन्तर शिवाचार्य मातृकान्यासके मार्गसे शिष्यका दहन-प्लावनादि सकलीकरण करके उसके मस्तकपर शिवके आसनका ध्यान करे और वहाँ शिवका आवाहन करके यथोचित रीतिसे उनकी मानसिक पूजा करे । तत्पश्चात् हाथ जोड़ महादेवजीकी प्रार्थना करे—‘प्रभो ! आप नित्य यहाँ विराजमान हों ।’ इस तरह प्रार्थना करके मन-ही-मन यह भावना करे कि शिष्य भगवान् शंकरके तेजसे प्रकाशित हो रहा है । इसके बाद पुनः शिवकी पूजा करके शिवालयिणी शैवी आज्ञा प्राप्त करके गुरु शिष्यके कानमें धीरे-धीरे शिवमन्त्रका उच्चारण करे । शिष्य हाथ जोड़े हुए उस मन्त्रको

तुमकर उसीमें मन लगा शिवाचार्यकी आज्ञाके अनुसार धीरे-धीरे उसकी आवृत्ति करे । फिर मन्त्र-ज्ञान-कुशल आचार्य शाक-मन्त्रका उपदेश दे, उसका सुखपूर्वक उच्चारण कराकर शिष्यके प्रति मङ्गलशंसा करे । तत्पश्चात् संक्षेपसे वाचवाचक योगके अनुसार ईश्वररूप मन्त्रका उपदेश देकर योगासनकी शिक्षा दे । तदनन्तर शिष्य गुरुकी आज्ञासे शिव, अपि तथा गुरुके समीप भक्तिभावसे प्रतिशापूर्वक निम्नाङ्कित-लम्बसे दीक्षावाक्यका उच्चारण करे—

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।  
न त्वनभ्यर्थं भुज्येय भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥

‘भेरे लिये प्राणोंका परित्याग कर देना अच्छा होगा अथवा सिर कटा देना भी अच्छा होगा; किंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये विना कभी भोजन नहीं कर सकता ।’

जबतक भोह दूर न हो, तबतक वह भगवान् शिवमें ही निषा रखकर उन्हींके आश्रित हो नियमपूर्वक उन्हींकी आराधना करता रहे । फिर भगवान् (शिव ही उसे योगक्षेम प्राप्त करते हैं) ऐसा करनेसे उस शिष्यका नाम ‘समय’ होगा । उसे शियाश्रममें रहनेका अधिकार प्राप्त होगा । वहाँ रहनेवाले शिष्यको गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए

सदा उनके वशमें रहना चाहिये । इसके बाद गुरु करन्यास करके अपने हाथसे भस्म लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस भस्म तथा रुद्राक्षको अभिमन्त्रित करके शिष्यके हाथमें दे दे । साथ ही महादेवजीकी प्रतिमा अथवा उनका गूढ़ शरीर (लिङ्ग) और यथासम्बव पूजा, होम, जप एवं ध्यानके साधन भी दे । फिर वह शिष्य भी शिवाचार्यसे प्राप्त हुई उन वस्तुओंको उन्हींकी आज्ञासे वडे आदरके साथ ग्रहण करे । उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करे, आचार्यसे प्राप्त हुई सारी वस्तुओंको भक्तिभावसे सिरपर रखकर ले जाय और उनकी रक्षा करे । अपनी रुचिके अनुसार मठमें या घरमें शंकरजीकी पूजा करता रहे, इसके बाद गुरु भक्ति, श्रद्धा और वृद्धिके अनुसार शिष्यको शिवाचार्यकी शिक्षा दे । शिवाचार्यने समयाचारके विषयमें जो कुछु कहा हो, जो आज्ञा दी हो तथा और भी जो कुछु बातें बतायी हैं, उन सबको शिष्य शिरोधार्य करे । गुरुके अदेशसे ही वह शिवागमका ग्रहण, पठन और अव्यय करे । न तो अपनी इच्छासे करे और न दूसरेकी प्रेरणासे ही । इस प्रकार मैंने संक्षेपसे समयाख्य-संस्कार—समयाचारकी दीक्षा-का वर्णन किया है । यह मनुष्योंको सक्षात् शिवधामकी प्राप्ति करनेके लिये सबसे उत्तम साधन है । (अध्याय १६)

### पड़ध्वशोधनकी विधि

उपमन्तु कहते हैं—यदुनन्दन ! इसके बाद गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर उसके सम्पूर्ण वन्धनोंकी निवृत्तिके लिये पड़ध्वशोधन करे । कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ही संक्षेपसे छः अच्छा कहे गये हैं । निर्वृत्ति आदि वै पौच्छ कलाएँ हैं, उन्हें विद्वान् पुरुष कलाध्वा कहते हैं । अन्य पौच्छ अच्छा इन पौच्छों कलाओंसे व्याप्त हैं । शिवतत्त्वसे ऐसा भूमिपर्यन्त जो छब्बीस तत्त्व हैं, उनको ‘तत्त्वाध्वा’ कहा जा है । यह अच्छा शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है । अध्यरत्ने लेकर उन्मनातक ‘भुवनाध्वा’ कहा गया है । यह और उम्भेदोंको छोड़कर साठ है । रुद्रस्वरूप जो पचास तर्ह है उन्हें ‘वर्गाध्वा’की संशा दी गयी है । पदोंको ‘पदाध्वा’ भी गत है जिल्लेके अनेक भेद हैं । सब प्रकारके उपमन्त्रोंसे ‘मन्त्राध्वा’ होता है, जो परम विद्यासे व्याप्त है । जैसे

तत्त्वनायक शिवकी तत्त्वोंमें गणना नहीं होती, उसी प्रकार उस मन्त्रनायक महेश्वरकी मन्त्राध्वामें गणना नहीं होती । कलाध्वा व्यापक है और अन्य अव्या व्याप्त हैं । जो इस थात-को ठीक-ठीक नहीं जानता है, वह अध्योवनका अधिकारी नहीं है । जिसने छः प्रकारके अव्याका नृप नहीं जाना, वह उनके व्याप्त-व्यापक भावको समझ ही नहीं नक्ता है । इसलिये अध्याओंके स्वल्प तथा उनके व्याप्त-व्यापक भावको ठीक-ठीक जानकर ही अध्यशोधन करना चाहिये ।

पूर्ववत् कुण्ड और मण्डल-निर्माणका कार्य यहाँ करके पूर्व दिशामें दो हाथ लम्बा-चौड़ा कठमान्डूल रखारे । तत्पश्चात् शिवाचार्य शिष्यमहित लान और मिल्लठर्म रुटंड मण्डलमें प्रविष्ट हो पहलेकी ही भौति शिवर्तीदी पूजा करे । फिर वहाँ लगभग चार नेर चाल्लाने केरार भी गयी मौर्यमें आधा प्रमुखों नैदेव लगा दे और दोन चौराठे द्विमन्त्रियों रख दे । पूर्व दिशामें भौति दोन दुए और दोन रुटंड प्रत्येक

१. निर्दिष्ट, अक्षिणी, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता—वै पौच्छ

मण्डलमें गुरु पाँच कलशोंकी स्थापना करे । चारको तो चारों दिशाओंमें रखते और एकको मध्यभागमें । उन कलशोंपर मूलमन्त्रके 'नमः शिवाय' इन पाँचों अक्षरोंको विन्दु और नादसे युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधिका ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मोंकी स्थापना करे । मध्यवर्ती कलशपर 'ॐ न ईशानाय नमः ईशानं स्थापयामि' कहकर ईशानकी स्थापना करे । पूर्ववर्ती कलशपर 'ॐ मं तत्पुरुषाय नमः तत्पुरुषं स्थापयामि' कहकर तत्पुरुषकी, दक्षिण कलशपर 'ॐ शिं अघोराय नमः अघोरं स्थापयामि' कहकर अघोरकी, वाम या उत्तरभागमें रखते हुए कलशपर 'ॐ वां वामदेवाय नमः वामदेवं स्थापयामि' कहकर वामदेवकी तथा पश्चिमके कलशपर 'ॐ वं सद्योजाताय नमः सद्योजातं स्थापयामि' कहकर सद्योजातकी स्थापना करे । तदनन्तर रक्षाविधान करके मुद्रा वौधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करे । इसके बाद पूर्ववत् शिवायमें होम आरम्भ करे । पहले होमके लिये जो आधी खीर रखकी गयी थी । उसका हवन करके शेष भाग शिष्यको खानेके लिये दे । पहलेकी भौति मन्त्रोंका तर्पणात्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात् प्रदीपन कर्म करे । प्रदीपन कर्ममें 'ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा' का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अङ्गोंको तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये । (अङ्गोंमें हृदय, सिर, शिखा, कबच, नेत्रब्रय और अङ्ग—इन छःकी गणना है ।) इनमेंसे एक-एक अङ्गको तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये । इन सबके स्वरूपका तेजस्वीरूपमें चिन्तन करना चाहिये । इसके बाद ग्राहणकी कुमारी कन्याके द्वारा काते हुए सफेद सूतको एक बार चिंगुण करके पुनः चिंगुण करे । फिर उस सूतको अभिमन्त्रित करके उसका एक छोर शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें वौध दे । शिष्य सिर ऊँचा करके खड़ा हो जाय, उस अवस्थामें वह सूत उसके पैरके अङ्गठेतक लटकता रहे । सूतको इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्णा नाड़ीकी संयोजना करे । फिर मन्त्रज्ञ गुरु शान्त मुद्राके साथ मूलमन्त्रसे तीन आहुतिका होम करके उस नाड़ीको लेकर उस सूतमें स्थापित करे । फिर पूर्ववत् फूल केंककर शिष्यके हृदयमें ताड़न करे और उससे चैतन्यको लेकर बारह आहुतियोंके पश्चात् शिवको निवेदित कर उस लटकते हुए सूतको एक सूतसे जोड़े और 'हुं फट्' मन्त्रसे रक्षा करके उस सूतको शिष्यके शरीरमें लपेट दे । फिर वह भावना करे कि शिष्यका शरीर मूलव्ययमय

पाश है, भोग और भोग्यल ही इसका लक्षण है, यह विष इन्द्रिय और देह आदिका जनक है ।

तदनन्तर शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंको, जो आकाशादि तत्त्वरूपिणी हैं, उस सूत्रमें उनके नाम लेलेकर जोड़ना चाहिये । यथा—

'व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, चायुरुपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं प्रतिष्ठाकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि ।' इति ।

इस तरह इन कलाओंका योजन करके उनके नामके अन्तमें 'नमः' जोड़कर इनकी पूजा करे । यथा—शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः इत्यादि । अथवा आकाशादिके वीजभूत (हं यं रं वं लं) मन्त्रोद्वारा या पञ्चाक्षरके पाँच अक्षरोंमें नाद विन्दुका योग करके वीजरूप हुए उन मन्त्राक्षरोद्वारा क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्त्व आदिमें मलादि पाद्योंकी व्याप्तिका चिन्तन करे । इसी तरह मलादि पाद्योंमें भी कलाओंकी व्याप्ति देखे । फिर आहुति करके उन कलाओंको संदीपित करे । तदनन्तर शिष्यके मस्तकपर पुष्पसे ताड़न करके उसके शरीरमें लिपटे हुए सूतको मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पदमें अङ्कित करे । इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीतसे आरम्भ करके निवृत्तिकला पर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन आहुतियाँ देकर मण्डलमें पुनः शिवका पूजन करे । इसके बाद देवताके दक्षिण भागमें शिष्यको कुशयुक्त आसनपर मण्डलमें उत्तराभिमुख विठाकर गुरु होमावशिष्ट चर उसे दे । गुरुके दिये हुए उस चरको शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिवका नाम ले उसे खा जाय । फिर दो बार आचमन करके शिवमन्त्रका उच्चारण करे । इसके बाद गुरु दूसरे मण्डलमें शिष्यको पञ्चगव्य दे । शिष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिवका सरण करे । इसके बाद गुरु शिष्यको मण्डलमें पूर्ववत् विठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षणसे युक्त दन्तधावन दे । शिष्य पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन हो उस दत्तौनके कोमल-अग्रभागद्वारा अपने दाँतोंकी शुद्धि करे । फिर उस दत्तौनकी धोकर फेंक दे और कुल्ला करके मुँह-हाथ धोकर शिवका सरण करे । फिर गुरुकी आज्ञा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डलमें प्रवेश करे । उस फेंके हुए दत्तौनको यदि गुल्म पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशामें अपने सामने देख लिया तब वे

मङ्गल है; अन्यथा अत्य दिशाओंमें देखनेपर अमङ्गल होता है। यदि निन्दित दिशाकी ओर वह दीख जाय तो उसके दोपकी शान्तिके लिये गुरु मूलमन्त्रसे एक सौ आठ या चौबन आहुतियोंका होम करे। तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके उसके ऊनमें 'शिव' नामका जप करके महादेवजीके दक्षिण भागमें शिष्यको विठाये। वहाँ नूतन वस्त्रपर विठ्ठे हुए कुशके अभिमन्त्रित वासनपर पवित्र हुआ शिष्य मन-ही-मन शिवका धान करते हुए पूर्वकी ओर सिरहाना करके रातमें सोये।

शिखामें सूत बैधे हुए उस शिष्यकी शिखाको शिखासे ही बौधकर गुरु नूतन वस्त्रद्वारा हुंकार उच्चारण करके उसे ढक दे। फिर शिष्यके चारों ओर भस्त्र, तिल और सरसोंसे तीन रेखा खींचकर फट् मन्त्रका जप करके रेखाके नाश्यभागमें दिक्पालोंके लिये वलि दे। शिष्य भी उपवासपूर्वक वहाँ रातमें सोया रहे और सबेरा होनेपर उठकर अपने देखे हुए स्वप्न-की बातें गुरुको बताये।

( अध्याय १७ )

### षड्ध्वशोधनकी विधि

उपमन्त्रु कहते हैं—यदुनन्दन ! तदनन्तर गुरुकी आज्ञा ले शिष्य स्नान आदि सम्पूर्ण कर्मको समाप्त करके शिवका चिन्तन करता हुआ हाथ जोड़ शिवमण्डलके समीप जाय। इसके बाद पूजाके सिवा पहले दिनका शोष सारा कृत्य नेत्रवर्धनपर्यन्त कर लेनेके अनन्तर गुरु उसे मण्डलका दर्शन करये। आँखमें पट्टी बैधे रहनेपर शिष्य कुछ कूल विख्नेरे। जहाँ भी पूल गिरें, वहाँ उसको उपदेश दे। फिर पूर्ववत् उसे निर्माल्य मण्डलमें ले जाकर ईशान देवकी पूजा कराये और शिवाग्निमें हवन करे। यदि शिष्यने दुःस्वप्न देखा हो तो उसके दोपकी शान्तिके लिये सौ या पचास बार मूलमन्त्रसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर शिखामें बैधे हुए सूतको पूर्वत् लट्टकार आधारशक्तिकी पूजासे लेकर निवृत्तिकल-प्रथमी वारीश्वरी-पूजनपर्यन्त सब कार्य होमपूर्वक करे।

इसके बाद निवृत्तिकलमें व्यापक सती वारीश्वरीको श्नान करके मण्डलमें महादेवजीके पूजनपूर्वक तीन आहुतियाँ दे। शिष्यको एक ही समय सम्पूर्ण योनियोंमें प्राप्त करानेकी शक्ति करे। फिर शिष्यके सूत्रमय शरीरमें ताङ्गन-प्रोक्षण आदि करके उसके आत्मचैतन्यको लेकर द्वादशात्ममें निवेदन दे। फिर यहाँसे भी उसे लेकर आचार्य मूलमन्त्रसे शास्त्रोक्त प्रथम नामनिक भावनासे एक ही साथ सम्पूर्ण योनियोंमें पूज करे। देवताओंकी आठ जातियाँ हैं, तिर्यक् योनियों ( शुद्धिनिः ) की पाँच और मतुप्योंकी एक जाति। इस बार हुए चौदह योनियाँ हैं। उन सबमें शिष्यको एक विशेष करानेके लिये गुरु मन-ही-मन भावनाद्वारा वारी आत्माको व्योचित रीतिसे वारीश्वरीके गर्भमें लेये दें। वारीश्वरी गर्भकी सिद्धिके लिये महादेवजीका रूप लेये और उनके निमित्त हवन करके वह चिन्तन

करे कि वयावत्तल्पसे वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भकी उत्पत्ति, कर्मात्मवृत्ति, सरलता, भोगशास्त्र और परा प्रीतिका चिन्तन करे। तत्पश्चात् उस जीवके उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोगके संस्कारकी सिद्धिके लिये तीन आहुतिका हवन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजीसे प्रार्थना करे। भोकृत्य-विषयक आसक्ति ( अथवा भोकृता और विषयासक्ति ) रूप मलके निवारणपूर्वक शिष्यके शरीरका शोधन करके उसके विविध पाशका उच्छेद कर डाले। कपट या मायासे बैधे हुए शिष्यके पाशका अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्यको केनल स्वच्छ माने। फिर अग्निमें पूर्णाहुति देकर व्रशाका पूजन करे। ब्रह्माके लिये तीन आहुति देकर उन्हें शिवकी आशा मुनाये।

पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम् ।  
प्रतिबन्धो विधात्व्यः दीवाङ्गैषा गरीयसी ॥

‘पितामह ! यह जीव शिवके परमपदको जनिवाला है। तुम्हें इसमें विश्व नहीं आल्वा चाहिये। यह भगवान् शिवकी गुच्छर आत्मा है।’

ब्रह्माजीको शिवका यह आदेश मुनाकर उनकी निधिनर् पूजा और विसर्जन करके महादेवजीकी धर्चना करे और उनके लिये तीन आहुति दे। तत्पश्चात् निवृत्तिद्वारा शुद्ध हुए शिष्यके आत्माका पूर्ववत् उद्धार करके अन्ती अस्त्रा एवं सूत्रमें स्वामित कर वारीश्वरा पूजन करे। उनके लिये तीन आहुति दे और प्रग्राम करके शिवजीन करे। तत्पश्चात् निवृत्त पुलप्रतिद्वाकलके नाम नामित्य नामित करे। उन समय एक बार पूजा करके तीन आहुति दे और शिष्यके आत्माके प्रतिशक्तिमें प्रवेशनी भास्त्रा करे। उन्हें बाद प्रतिद्वाक्ता आवाहन करके शुद्धिका नामन

मण्डलमें गुह पॉच कलशोंकी स्थापना करे। चारको तो चारों दिशाओंमें रखें और एकको मध्यभागमें। उन कलशोंपर मूलमन्त्रके 'नमः शिवाय' इन पॉचों अक्षरोंको विन्दु और नादसे युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधिका ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मोंकी स्थापना करे। मध्यवर्ती कलशपर 'ॐ न ईशानाय नमः ईशानं स्थापयामि' कहकर ईशानकी स्थापना करे। पूर्ववर्ती कलशपर 'ॐ मं तत्पुरुषाय नमः तत्पुरुषं स्थापयामि' कहकर तत्पुरुषकी, दक्षिण कलशपर 'ॐ शि अधोराय नमः अधोरं स्थापयामि' कहकर अधोरकी, वाम या उत्तरभागमें रखें हुए कलशपर 'ॐ वां वामदेवाय नमः वामदेवं स्थापयामि' कहकर वामदेवकी तथा पश्चिमके कलशपर 'ॐ यं सद्योजाताय नमः सद्योजातं स्थापयामि' कहकर सद्योजातकी स्थापना करे। तदनन्तर रक्षाविधान करके मुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करे। इसके बाद पूर्ववत् शिवायमें होम आरम्भ करे। पहले होमके लिये जो आधी खीर रखी गयी थी। उसका हवन करके शेष भाग शिष्यको खानेके लिये दे। पहलेकी भाँति मन्त्रोंका तर्पणान्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात् प्रदीपन कर्म करे। प्रदीपन कर्ममें 'ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा' का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अङ्गोंको तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। (अङ्गोंमें हृदय, सिर, शिखा, कबच, नेत्रत्रय और अङ्ग—इन छःकी गणना है।) इनमेंसे एक-एक अङ्गको तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। इन सबके स्वरूपका तेजस्वीरूपमें चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद ग्राहणकी कुमारी कन्याके द्वारा काते हुए सफेद सूतको एक बार त्रिगुण करके पुनः त्रिगुण करे। फिर उस सूतको अभिमन्त्रित करके उसका एक छोर शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बाँध दे। शिष्य सिर ऊँचा करके खड़ा हो जाय, उस अवस्थामें वह सूत उसके पैरके अङ्गठेतक लटकता रहे। सूतको इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्णा नाड़ीकी संयोजना करे। फिर मन्त्रशः गुरु शान्त मुद्राके साथ मूलमन्त्रसे तीन आहुतिका होम करके उस नाड़ीको लेकर उस सूतमें स्थापित करे। फिर पूर्ववत् फूल फेंककर शिष्यके हृदयमें ताइन करे और उससे चैतन्यको लेकर वारह आहुतियोंके पश्चात् शिवको निवेदित कर उस लटकते हुए सूतको एक सूतसे जोड़े और 'हुं फट्' मन्त्रसे रक्षा करके उस सूतको शिष्यके शरीरमें लपेट दे। फिर यह भावना करे कि शिष्यका शरीर मूलत्रयमय

पाश है, भोग और भोग्यत्व ही इसका लक्षण है, यह विषय इन्द्रिय और देह आदिका जनक है।

तदनन्तर शान्त्यतीता आदि पॉच कलाओंको, जो आकाशादि तत्त्वरूपिणी हैं, उस सूत्रमें उनके नाम लेकर जोड़ना चाहिये। यथा—

'व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, वायुरूपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं ग्रतिद्याकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि।' इति।

इस तरह इन कलाओंका योजन करके उनके नामके अन्तमें 'नमः' जोड़कर इनकी पूजा करे। यथा—शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः इत्यादि। अप्य आकाशादिके वीजभूत (हं यं रं वं लं) मन्त्रोद्घात्य या पञ्चाक्षरके पॉच अक्षरोंमें नाद-विन्दुका योग करके वीजल्प हुए उन मन्त्राक्षरोद्घारा क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्त्व आदिमें मलादि पाशोंकी व्यासिका चिन्तन करे। इसी तरह मलादि पाशोंमें भी कलाओंकी व्यासि देखे। फिर आहुति करके उन कलाओंको संदीपित करे। तदनन्तर शिष्यके मस्तकपर पुष्टे ताइन करके उसके शरीरमें लिपटे हुए सूतको मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पदमें अङ्कित करे। इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीतसे आरम्भ करके निवृत्तिकला पर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन आहुतियाँ देकर मण्डलमें एनः शिवका पूजन करे। इसके बाद देवताके दक्षिण भागमें शिष्यको कुशयुक्त आसन पर मण्डलमें उत्तराभिमुख विठाकर गुरु होमायग्नित चरु उसे दे। गुरुके दिये हुए उस चरुको शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिवका नाम ले उसे खा जाय। फिर दो बार आचमन करके शिवमन्त्रका उच्चारण करे। इसके बाद गुरु दूसरे मण्डलमें शिष्यको पञ्चगव्य दे। शिष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिवका सरण करे। इसके बाद गुरु शिष्यको मण्डलमें पूर्ववत् विठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षणसे युक्त दन्तधावन दे। शिष्य पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन हो उस दत्तौनके क्रोमल अग्रभागद्वारा अपने दाँतोंकी शुद्धि करे। फिर उस दत्तौनमें धोकर फेंक दे और कुल्ला करके मुँह-हाथ धोकर शिष्य स्मरण करे। फिर गुरुकी आशा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डलमें प्रवेश करे। उस केंद्रे हुए दत्तौनको परि उसे पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशामें अपने सामने देख लिया तब तो

मङ्गल है। अन्यथा अन्य दिशाओंमें देखनेपर अमङ्गल होता है। यदि निर्दित दिशाकी ओर वह दीख जाय तो उसके दोषकी शान्तिके लिये गुरु मूलमन्त्रसे एक सौ आठ या चौबन आहुतियोंका होम करे। तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके उसके कानमें 'शिव' नामका जप करके महादेवजीके दक्षिण भागमें शिष्यको बिठाये। वहाँ नूतन वस्त्रपर बिछे हुए कुशके अभिमन्त्रित वासनपर पवित्र हुआ शिष्य भन-ही-भन शिवका धान करते हुए पूर्वकी ओर सिरहाना करके रातमें सोये।

शिखामें सूत बँधे हुए उस शिष्यकी शिखाको शिखासे ही बाँधकर गुरु नूतन वस्त्रद्वारा हुंकार उच्चारण करके उसे ढक दे। फिर शिष्यके चारों ओर भस्त्र, तिल और सरसोंसे तीन रेखा खींचकर फट् मन्त्रका जप करके रेखाके वाह्यभागमें दिक्षपालोंके लिये बलि दे। शिष्य भी उपवासपूर्वक वहाँ रातमें सोया रहे और सबेरा होनेपर उठकर अपने देखे हुए स्वप्नकी बातें गुस्को बताये।

( अध्याय १७ )

### षड्ध्वशोधनकी विधि

उपमन्त्रु कहते हैं—यदुनन्दन ! तदनन्तर गुरुकी आज्ञा ले शिष्य स्नान आदि सम्पूर्ण कर्मको समाप्त करके शिवका चिन्तन करता हुआ हाथ जोड़ शिवमण्डलके समीप जाय। इसके बाद पूजाके सिवा पहले दिनका शोष सारा कृत्य नेत्रवन्धनपर्यन्त कर लेनेके अनन्तर गुरु उसे मण्डलका दर्शन कराये। आँखमें पट्टी बँधे रहनेपर शिष्य कुछ फूल खिलेरे। वहाँ भी फूल गिरे, वहाँ उसको उपदेश दे। फिर पूर्ववत् उसे निर्मात्य मण्डलमें ले जाकर ईशान देवकी पूजा कराये और शिवाग्निमें इन्द्रन करे। यदि शिष्यने हुःस्वप्न देखा हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये सौ या पचास बार मूलमन्त्रसे अभिन्ने आहुति दे। तदनन्तर शिखामें बँधे हुए सूतको पूर्ववत् लटकाकर आधारशक्तिकी पूजासे लेकर निवृत्तिकल्यासमग्री वागीश्वरी-पूजनपर्यन्त सब कार्य होमपूर्वक करे।

इसके बाद निवृत्तिकल्यासें व्यापक सती वागीश्वरीको प्रथम करके मण्डलमें महादेवजीके पूजनपूर्वक तीन आहुतियाँ दे। शिष्यको एक ही समय सम्पूर्ण योनियोंमें प्राप्त करानेकी सज्जा करे। फिर शिष्यके सूत्रमय शरीरमें ताइन-प्रोक्षण घोरे रखके उसके आमचैतन्यको लेकर द्वादशान्तमें निवेदन दे। जिस वहाँसे भी उसे लेकर आचार्य मूलमन्त्रसे शास्त्रोक्त द्वादश नानाग्रिक भावनासे एक ही साथ सम्पूर्ण योनियोंमें लिंग दे। देवताओंकी आठ जातियाँ हैं, तिर्थक् योनियों (मुख्यतया ) की पाँच और मनुष्योंकी एक जाति। इस द्वादश चौदह योनियाँ हैं। उन सबमें शिष्यको एक विशेष करानेके लिये गुरु मन-ही-भन भावनाद्वारा आवाजों अल्पात्मों वयोचित रीतिसे वागीश्वरीके गर्भमें लिंग दे। उगीर्धने गर्भकी सिद्धिके लिये महादेवजीका इष्ट, कल्प और उनके निषित इन्द्र देवके वह चिन्तन

करे कि यथावत्तर्लघुसे वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भकी उत्पत्ति, कर्मानुवृत्ति, सरलता, भोगप्राप्ति और परा प्रीतिका चिन्तन करे। तत्पश्चात् उस जीवके उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोगके संस्कारकी सिद्धिके लिये तीन आहुतिका इन्द्रन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजीसे प्रार्थना करे। भोक्तृत्व-विषयक आसक्ति (अथवा भोक्तृता और विषयासक्ति) रूप मलके निवारणपूर्वक शिष्यके शरीरका शोधन करके उसके त्रिविधि पाशका उच्छेद कर डाले। कपट या मायासे बँधे हुए शिष्यके पाशका अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्यको केवल स्वच्छ माने। फिर अभिन्ने पूर्णाहुति देकर व्रद्धाका पूजन करे। व्रद्धाके लिये तीन आहुति देकर उन्हें शिवकी आशा मुनाये।

पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पद्म् ।

प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी ॥

'पितामह ! यह जीव शिवके परमपदको जानेवाला है। तुम्हें इसमें विश्व नहीं डालना चाहिये। यह भगवान् शिवकी गुरुत्वर आज्ञा है।'

व्रह्माजीको शिवका यह आदेश नुनाकर उनकी विधिकृत् पूजा और विसर्जन करके महादेवजीकी अर्चना कर और उनके लिये तीन आहुति दे। तत्पश्चात् निवृत्तिद्वारा युद्ध हुए शिष्यके अत्माका पूर्ववत् उदार करके अभिन्न अत्मा एवं सूत्रमें स्थापित कर वागीश्वरा पूजन कर। उनके लिये तीन आहुति दे और प्रशान्त रखके विनिर्देश कर दे। तत्पश्चात् निवृत्त पुराय प्रतिष्ठानकर्त्ता के नाम योनियम स्थापित करे। उन सभ्य एक दर वूजा करके तीन आहुति दे और शिष्यके अत्माके प्रतिष्ठानकर्त्ता प्रवेशदी भावका दर। इसके बाद प्रतिष्ठाका अदान उरके द्वारा भूमि करने

सम्पन्न करनेके पश्चात् उसमें व्यापक वागीश्वरीदेवीका ध्यान करे। उनकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान है। ध्यानके पश्चात् शेष कार्य पूर्ववत् करे।

तदनन्तर भगवान् विष्णुको परमात्मा शिवकी आशा सुनाये। फिर उनका भी विसर्जन आदि शेष कृत्य पूर्ण करके प्रतिष्ठाका विद्यासे संयोग करे। उसमें भी पूर्ववत् सब कार्य करे। साथ ही उसमें व्याप्त वागीश्वरी देवीका चिन्तन-पूजन तथा प्रज्वलित अग्निमें पूर्णहोमान्त सब कर्म क्रमशः सम्पन्न करके पूर्ववत् नीलश्वरका आवाहन एवं पूजन आदि करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे उन्हें भी शिवकी आशा सुना दे। तदनन्तर उनका भी विसर्जन करके शिष्यकी दोषशान्तिके लिये विद्याकलाको लेकर उसकी व्यापिका अवलोकन करे और उसमें व्यापिका वागीश्वरी देवीका पूर्ववत् ध्यान करे। उनकी आकृति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण रंगकी है और वे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रही हैं। इस प्रकार ध्यान करके शेष कार्य पूर्ववत् करे। फिर महेश्वर देवका आवाहन, पूजन और उनके उद्देश्यसे हवन करके उन्हें मन-ही-मन शिवकी पूर्वोक्त आशा सुनाये। तत्पश्चात् महेश्वरका विसर्जन करके अन्य शान्तिकलाको शान्त्यतीता कलातक पहुँचाकर उसकी व्यापकताका अवलोकन करे। उसके स्वरूपमें व्यापक वागीश्वरी देवीका चिन्तन करे। उनका स्वरूप आकाशमण्डलके समान व्यापक है। इस प्रकार ध्यान करके पूर्णाहुति होमपर्यन्त सारा कार्य पूर्ववत् करे। शेष कार्यकी पूर्ति करके सदाशिवकी विधिवत् पूजा करे और उन्हें भी अग्नित पराक्रमी शम्भुकी आशा सुना दे। फिर वहाँ भी पूर्ववत् शिष्यके मस्तकपर शिवकी पूजा करके उन वागीश्वर देवको प्रणाम करे और उनका विसर्जन कर दे।

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे पूर्ववत् शिष्यके मस्तकका प्रोक्षण करके यह चिन्तन करे कि शान्त्यतीतकलाका शिव-मन्त्रमें विलय हो गया। छहों अध्याओंसे परे जो शिवकी सर्वाख्यव्यापिनी पराशक्ति है, वह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी है, ऐसा उसके स्वरूपका ध्यान करे। फिर उस शक्तिके आगे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हुए शिष्यको ले आकर विठा दे और आचार्य कैंचीको धोकर शिव-शास्त्रमें बतायी हुई पद्मतिके अनुसार सूत्रसहित उसकी शिखाका छेदन करे। उस शिखाको पहले गोवरमें रखकर फिर ‘ॐ नमः शिवाय वौपट्’ का उच्चारण करके उसका शिवाग्निमें हवन कर दे। फिर कैंची धोकर रख दे और शिष्यकी चेतनाको उसके

शरीरमें लौटा दे। इसके बाद जब शिष्य खान, आचमन और स्वस्तिवाचन कर ले, तब उसे मण्डलके निकट ले जाय और शिवको दण्डवत् प्रणाम करके क्रियालोपजनित दोषकी शुद्धिके लिये यथोचित रीतिसे पूजा करे। तदनन्तर वाचक मन्त्रका धीरे-धीरे उच्चारण करके अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। फिर मन्त्र-वैकल्पजनित दोषकी शुद्धिके लिये देवेश्वर शिवका पूजन करके मन्त्रका मानसिक उच्चारण करते हुए अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। वहाँ मण्डलमें विराजमान अग्ना पार्वतीसहित शम्भुकी समाराधना करके तीन आहुतियोंका हवन करनेके पश्चात् गुरु हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करे—

भगवंस्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य घडध्वनः ।  
कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तत्वान्वयम् ॥

‘भगवन् ! आपकी कृपासे इस शिष्यकी भूतशुद्धि की गयी; अतः अब आप इसे अपने अविनाशी परमधारमें पहुँचाइये।’

इस तरह भगवान्से प्रार्थना कर नाढ़ी-संधानपूर्वक पूर्ववत् पूर्णाहुति होमपर्यन्त कर्मका सम्पादन करके भूतशुद्धि करे। स्थिर-तत्त्व ( पृथ्वी ), अस्थिर-तत्त्व ( वायु ), शीत-तत्त्व ( जल ), उष्ण-तत्त्व ( अग्नि ) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश-तत्त्वका भूतशुद्धि कर्ममें चिन्तन करे। यह चिन्तन उन भूतोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे ही करना चाहिये। भूतोंकी ग्रन्थियोंका छेदन करके उनके अधिपतियों या अधिष्ठाता देवताओंसहित उनके त्यागपूर्वक स्थितियोगके द्वारा उन्हें परम शिवमें नियोजित करे। इस प्रकार शिष्यके शरीरका शोधन करके भावनाद्वारा उसे दग्ध करे। फिर उसकी राखको भावनाद्वारा ही अमृतकणोंसे आप्लावित करे। तदनन्तर उसमें आत्माकी स्थापना करके उसके विशुद्ध-अच्छमय शरीरका निर्माण करे। उसमें पहले सम्पूर्ण अङ्गोंमें व्यापक शुद्ध शान्त्यतीतकलाका शिष्यके मस्तकपर न्यास करे। फिर शान्तिकलाका मुखमें, विद्याकलाका गलेसे लेकर नाभिपर्यन्त-भागमें, प्रतिष्ठाकलाका उससे नीचेके अङ्गोंमें चिन्तन करे। तदनन्तर अपने बीजोंसहित सूर्य-मन्त्रका न्यास करके सम्पूर्ण अङ्गोंसहित शिष्यके शिष्य-स्वरूप समझे। फिर उसके हृदयकमलमें महादेवजीका आवाहन करके पूजन करे। गुरुको चाहिये कि शिष्यमें भगवान् शिवके स्वरूपकी नित्य उपस्थिति मानकर शिष्यके तेजसे तेजस्वी हुए उस शिष्यके अणिमा आदि गुणोंका भी

नित्न करे। फिर भगवान् शिवसे 'आप प्रसन्न हों' ऐसा कहकर अभिमें तीन आहुतियाँ दे। इसी प्रकार पुनः शिष्यके लिये निमाङ्कित गुणोंका ही उपपादन करे। सर्वज्ञता, तृतीय, आदि-अन्तरहित बोध, अल्प-शक्तिमत्ता, सतन्त्रता और अनन्तशक्ति—इन गुणोंकी उसमें भावना करे।

इसके बाद महादेवजीसे आज्ञा लेकर उन देवेश्वरका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए सद्योजात आदि कलशोद्धारा क्रमशः शिष्यका अभिषेक करे। तदनन्तर शिष्यको अपने पास विठाकर पूर्ववत् शिवकी अर्चना करके उनकी आज्ञा ले उस शिष्यको शैवी विद्याका उपदेश करे। उस शैवी विद्याके आदिमें ओकार हो। वह उस ओकारसे ही सम्पुष्टित हो और उसके अन्तमें नमः ल्ला हुआ हो। वह विद्या शिव और शक्ति दोनोंसे संयुक्त हो। यथा ॐ ॐ नमः शिवाय

ॐ नमः। इसी तरह शक्ति विद्याका भी उपदेश करे। यथा—ॐ ॐ नमः शिवायै ॐ नमः। इन विद्याओंके साथ शृष्टि, छन्द, देवता, शिवा और शिवकी शिवस्त्रता, आवरण-पूजा तथा शिव-सम्बन्धी आसनोंका भी उपदेश दे। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका पुनः पूजन करके कहे—'भगवन्। मैंने जो कुछ किया है, वह सब आप सुकृतरूप कर दें' इस तरह भगवान् शिवसे निवेदन करना चाहिये। तदनन्तर शिष्यसंहित गुरु पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर महादेवजीको प्रणाम करे। प्रणामके अनन्तर उस मण्डलसे और अभिमिसे भी उनका विसर्जन कर दे। इसके बाद समस्त पूजनीय सदस्योंका क्रमशः पूजन करना चाहिये। सदस्यों और शृतिविजोंकी अपने वैभवके अनुसार सेवा करनी चाहिये। साधक यदि अपना कल्याण चाहे तो घन खर्च करनेमें कंजूसी न करे। ( अध्याय १८ )

—♦—<345>—♦—

### साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन

उपमन्त्रु कहते हैं—यदुनन्दन ! अब मैं साधक-शार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करूँगा। इस बातकी बना मैं पहले दे चुका हूँ। पूर्ववत् मण्डलमें कलशपर गमित महादेवजीकी पूजा करनेके पश्चात् हवन करे। फिर गेरि शिष्यको उस मण्डलके पास भूमिपर विठाये। गुह्यति हेमपर्यन्त सब कार्य पूर्ववत् करके मूल मन्त्रसे सौ गुह्यतियाँ दे। श्रेष्ठ गुरु कलशोंसे मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक पूर्ण करके संदीपन कर्म करे। फिर क्रमशः पूर्वोक्त कर्मोंका भागदान करके अभिषेक करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यको उत्तम नम दे; वहाँ विद्योपदेशान्त सब कार्य विस्तारपूर्वक सम्पादित होके पुण्युक्त जलसे शिष्यके हाथपर शैवी विद्याको समर्पित हो और इत ग्रन्थ करे—

त्वंहित्तमुम्बिक्योः सर्वसिद्धिफलप्रदः ।

भवत्वेष महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥

'ऐम्य ! यह महामन्त्र परमेश्वर शिवके कृपाप्रतादसे उत्तर लिये एहलैकिं क तथा पारलैकिं सम्भूर्ण सिद्धियोंके रूपों देनेगाला हो ।'

ऐसा कह महादेवजीकी पूजा करके उनकी आज्ञा ले ली गयी रूपको लाधन और शिवयोगका उपदेश दे। गुरुके गेरि रखेगाजो मुनकर मन्त्रसाधक शिष्य उसके सामने ही अन्तर्गत मन्त्र-साधन आरम्भ करे। मूलमन्त्रके साधन-

को पुरश्चरण करते हैं; क्योंकि विनियोग नामक कर्म सबसे पहले आचरणमें लाने योग्य है। यही पुरश्चरण शब्दकी व्युत्पत्ति है। मुसुक्षुके लिये मन्त्रसाधन अव्यक्त कर्तव्य है; क्योंकि किया हुआ मन्त्रसाधन इहलेक और परलेकमें साधकके लिये कल्याणदायक होता है।

शुभ दिन और शुभ देशमें निर्दोष समयमें दाँत और नख साफ करके अच्छी तरह स्लान करे और पूर्वाङ्कालिक कृत्य पूर्ण करके यथाप्राप्त गन्ध, पुष्पमाला तथा आभूषणोंसे अलंकृत हो, सिरपर पाण्डी रख, दुपट्टा ओढ़ पूर्णतः श्वेत वस्त्र धारण कर देवाल्यमें, घरमें या और किसी पवित्र तथा मनोर देशमें पहलेसे अभ्यासमें लाये गये मुखासनसे चैठकर शिव-शाखोंके पद्मतिके अनुसार अग्ने शरीरको शिवला काये। फिर देवदेवेश्वर नकुलीश्वर शिवका पूजन करके उन्हें खोरका नैवेद्य अर्पित करे। क्रमशः उनकी पूजा पूर्ण होने तक उन दिन-रातमें केवल एक वार भोजन करे। अदित्य, धन्वा, ग्रह ( मनोनिग्रह ), दून ( इन्द्रियसंयम ) या रात्रें व्रत रखे। नन्दन खीर न मिले तो छल, नूल आदिग भोजन रहे। नन्दन खीर न

शिवने निम्नाङ्कित भोज्य पदार्थोंका विधान किया है, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। पहले तो चरु भक्षण करने योग्य है। उसके बाद सत्तूके कण, जौके आटेका हलुआ, साग, दूध, दही, धी, मूल, फल और जल—ये आहारके लिये विहित हैं। इन भस्य-भोज्य आदि पदार्थोंको मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन मौनभावसे भोजन करे। इस साधनमें विशेष रूपसे ऐसा करनेका विधान है। ब्रतीको चाहिये कि एक सौ आठ मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए पवित्र जलसे स्नान करे अथवा नदीनदके जलको यथाशक्ति मन्त्र-जपके द्वारा अभिमन्त्रित करके अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले, प्रतिदिन तर्पण करे और शिवाम्निमें आहुति दे। हवनीय पदार्थ सात, पाँच या तीन द्रव्योंके मिश्रणसे तैयार करे अथवा केवल धृति से ही आहुति दे।

जो शिवभक्त साधक इस प्रकार भक्तिभावसे शिवकी साधना या आराधना करता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अथवा प्रतिदिन विना भोजन किये ही एकाग्राचित्त हो एक सहस्र मन्त्रका जप किया करे। मन्त्र-साधनाके विना भी जो ऐसा करता है, उसके लिये न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं उसका अमङ्गल ही होता है। वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। साधन, विनियोग तथा निष्ठा-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्यसे भी स्नान करके पवित्र शिवा वौधकर वज्रोपवीत धारण कर कुश-की पवित्री हाथमें ले ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर सदाकाशी भाला लिये पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये।

( अध्याय ११ )

### योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश

उपमन्त्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! जिसका इस प्रकार संस्कार किया गया हो और जिसने पाशुपत-ब्रतका अनुष्ठान पूरा कर लिया हो, वह शिष्य यदि योग्य हो तो गुरु उसका आचार्यपदपर अभिषेक करे, योग्यता न होनेपर न करे। इस अभिषेकके लिये पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर शिवकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् पाँच कलशोंकी स्थापना करे। इनमें चार तो चारों दिशाओंमें हों और पाँचवाँ मध्यमें हो। पूर्ववाले कलशपर निवृत्तिकलाका, पश्चिमवाले कलशपर प्रतिष्ठाकलाका, दक्षिण कलशपर विद्याकलाका, उत्तर कलशपर शान्तिकलाका और मध्यवर्ती कलशपर शान्त्यतीताकलाका न्यास करके उनमें रक्षा आदिका विधान करके धेनुमुद्रा वौधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् पूर्णाहुतिपर्यन्त होम करे। फिर नंगे सिर शिष्यको मण्डलमें ले आकर गुरु-मन्त्रोंका तर्पण आदि करे और पूर्णाहुतिपर्यन्त हवन एवं पूजन करके पूर्ववत् देवेश्वरकी आशा ले शिष्यको अभिषेकके लिये ऊँचे ग्रासनपर चिठाये। पहले सकलीकरणकी क्रिया करके पञ्च-कलासुपी शिष्यके शरीरमें मन्त्रका न्यास करे। फिर उस शिष्यको वौधकर शिवको सौंप दे। तदनन्तर निवृत्तिकला आदिसे युक्त कलशोंको क्रमशः उठाकर शिष्यका शिवमन्त्रसे अभिषेक करे। अन्तमें मध्यवर्ती कलशके जलसे अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद शिवभावको प्राप्त हुए आचार्य

शिष्यके मस्तकपर शिवंहस्त रखक्षें और उसे शिवाचार्यकी संज्ञा दे। तदनन्तर उसको बछामूषणोंसे अलंकृत करके शिवमण्डलमें भग्नादेवजीकी आराधना करके एक सौ आठ आहुति एवं पूर्णाहुति दे। फिर देवेश्वरकी पूजा एवं भूतलपर साष्टाङ्ग प्रणाम करके गुरु मस्तकपर हाथ जोड़ भगवान् शिव-से यह निवेदन करे—

भगवंस्त्वद्यसादेन देशिकोऽयं भया कृतः।

अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम् ॥

‘भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने इस योग्य शिष्यको आचार्य बना दिया है। देव ! अब आप अनुग्रह करके इसे दिव्य आज्ञा प्रदान करें।’ इस प्रकार कहकर गुरु शिष्यके साथ पुनः शिवको प्रणाम करे और दिव्य शिवशाखका शिवकी ही भाँति पूजन करे। इसके बाद शिवकी आशा लेकर आचार्य अपने उस शिष्यको अपने दोनों हाथोंसे शिवसम्बन्धी शानकी पुस्तक दे। वह उस शिवाम विद्याको मस्तकपर रखकर फिर उसे विद्यासनपर रखदे और यथोचित रीतिसे

२. गुरु पहले अपने दाहिने हाथपर सुगम्ब द्रव्यद्वारा मण्डलका निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस प्रकार वह ‘शिवदस्त’ हो जाता है। मैं स्वयं परम शिव हूँ। यदि निश्चय करके श्रीगुरुदेव असंदिग्ध चित्तसे शिष्यके सिरका स्पर्श करते हैं। उस ‘शिवदस्त’के सर्वभावसे शिष्यका शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है।

प्रणाम कर उसकी पूजा करे। तदनन्तर गुरु उसे राजोचित् चिह्न प्रदान करें; क्योंकि आचार्य पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष राज्य पानेके भी योग्य है।

ततश्चात् गुरु उसे पूर्वांचार्योद्दारा आचरित शिवशास्त्रोक्त आनन्दका अनुशासन करे, जिससे सब लोकोंमें सम्मान होता है। 'आचार्य' पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष शिवशास्त्रोक्त व्याख्यानके अनुसार यत्नपूर्वक शिष्योंकी परीक्षा करके उनका संस्कार करनेके अनन्तर उन्हें शिवशासनका उपदेश दे। इस प्रकार वह जिना किसी आयासके शौच, क्षमा, दया, अस्पृश ( कामना-त्याग ) तथा अनसूया ( ईर्ष्या-त्याग ) आदि गुणोंका यत्नपूर्वक अपने भीतर संग्रह करे। इस तरह उस शिष्यको आदेश देकर मण्डलसे शिवका, शिव-कलशोंका तथा अग्नि आदिका विसर्जन करके वह सदस्योंका भी पूजन ( दक्षिण आदिसे सत्कार ) करे।

अथवा, अपने गणोऽस्ति गुरु एक साथ ही सब संस्कार करे। जहाँ दो या तीन संस्कारोंका प्रयोग करना हो, वहाँके लिये विधिका उपदेश किया जाता है—वहाँ आदिमें ही अध्यशुद्धि-प्रकरणमें कहे अनुसार कलशोंकी स्थापना करे।

अभिषेकके लिया समयाचार दीक्षाके सब कर्म करके शिवका पूजन और अध्यशुद्धि हो जानेपर फिर महादेवजीकी पूजा करे। इसके बाद हवन और मन्त्र-तर्पण करके दीपन-कर्म करे तथा महेश्वरस्त्री आज्ञा ले शिष्यके हाथमें मन्त्र समर्पणपूर्वक शेष कार्य पूर्ण करे।

अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-संस्कारका क्रमशः अनुचित्तन करके गुरु अभिषेकपर्यन्त अध्यशुद्धिका कार्य सम्पन्न करे। वहाँ शान्त्यतीता आदि कलाओंके लिये जिस विधिका अनुष्ठान किया गया है। वह सारा विधान तीन तत्वोंकी शुद्धिके लिये भी कर्तव्य है। शिव-तत्त्व, विद्या-तत्त्व और आत्म-तत्त्व—ये तीन तत्त्व कहे गये हैं। शक्तिमें पहले शिवका, फिर विद्याका और उसके बाद उसकी आत्माका आविभूत हुआ है। शिवसे 'शान्त्यतीताध्वा' व्याप्त है, उससे 'शान्तिकलाध्वा'। उससे 'विद्याकलाध्वा' विद्यासे परिविष्ट 'प्रतिष्ठाकलाध्वा' और उससे 'निवृत्तिकलाध्वा' व्याप्त है। शिवशास्त्रके पारंगत मनीपी पुरुष मन्त्रमूलक शाम्भव ( शैव ) संस्कारको दुर्लभ मानकर शाक्त-संस्कारका प्रतिपादन करते हैं। श्रीकृष्ण ! इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण यह चतुर्विध संस्कार कर्मका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ( अध्याय २० )

### अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजाविधिका वर्णन

तदनन्तर श्रीकृष्णके पृथ्वेनेपर नित्य-नैमित्तिक कर्म तथा न्यासका वर्णन करनेके पश्चात् उपमन्त्य ऐले—अब मैं पूजाके विधानका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। ऐसे शिवशास्त्रमें शिवने शिवके प्रति कहा है। मनुष्य अग्नि-प्रतिष्ठार्पण अन्तर्यागका अनुशासन करके पीछे वहिर्याग ( वाह्य इन ) करे। ( उसकी विधि इस प्रकार है—) अन्तर्याग-में ऐले पूजाद्वयोंको मनसे कल्पित और दृढ़ करके गणेश-धैर्य प्रिपिर्षक चिन्तन एवं पूजन करे। ततश्चात् दक्षिण और उत्तर भागमें क्रमशः नन्दीश्वर और सुव्रशारी आराधना ऐसे विद्वात् पुरुष भनते उत्तम आसनकी कल्पना करे। विरला, योगदान अथवा तीनों तत्त्वोंसे युक्त निर्मल पद्मासन-भूमि भूमि करे। उसके ऊपर सर्वगमनोद्धर सम्बन्ध शिवका भूमि करे। वे दिन समस्त द्युम लक्षणसे युक्त और सम्पूर्ण भूमिसे शोभाप्राप्त हैं। वे सबसे बड़कर हैं और समस्त भूमियुक्त उनकी शोभा दर्शाते हैं। उनके हाथ-पैर लाल हैं। उनका दृष्टियुक्त हुआ सुख कुन्द्र और चन्द्रमाके समान शोभा पाता है। उनकी भूमित्वान्ति शुद्धस्त्रिके समान निर्मल है। तीन

नेत्र प्रफुल्ल कमलकी भाँति छुन्दर हैं। चार भुजाएँ, उत्तम अङ्ग और मनोहर चन्द्रकलाका मुकुट धारण किये भगवान् हर अपने दो हाथोंमें वरद तथा अभ्यक्षी मुद्रा धारण करते हैं और शोप दो हाथोंमें मृगमुद्रा एवं दण्ड लिये हुए हैं। उनकी कलाईमें सप्तोंकी माला कड़ेका काम देती है। गर्वों भीतर मनोहर नील चिढ़ शोभित होता है, उनकी कहीं कोई उपमा नहीं है। वे अपने अनुगामी सेवकों तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ विद्युतमान हैं।

इस तरह ज्ञान करके उनके वामभागमें गोदर्घ शिवका चिन्तन करे। शिवकी अङ्गुष्ठान्ति प्राकृत भूमि दलके समान परम छुन्दर है। उनके नेत्र वर्ण-रेत हैं। मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान छुरोभित है। महाश्वर काँड़-काँड़ दुँयराँड़ केश शोभा पाते हैं। वे नील उत्तरदूषके समान कान्तिमती हैं। महाश्वर अर्द्धनदी कुन्द्र धारण करती है। उनके पीठ चांदे भूमि भूमि करता है। उनके दोनों भूमि भूमि भूमि, डंचे और लिम्प हैं। दर्तस्त्रा मध्यनाम दृश्य है। विवरणमें रघू है। वे महिन दिले दब्र धारण किये दुर्द हैं। नमृतमें

आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। ललाटपर लगे हुए सुन्दर तिल्कसे उनका सौन्दर्य और खिल उठा है। विचित्र फूलोंकी मालासे गुप्तिकेशपाश उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी आङ्गृति सब ओरसे सुन्दर और सुडौल है। मुख लजासे कुछ-कुछ छुका है। वे दाहिने हाथमें शोभाशाली सुवर्णमय कमल धारण किये हुए हैं और दूसरे हाथको दण्डकी भाँति सिंहासनपर रखकर उसका सहारा ले उस महान् आसनपर बैठी हुई हैं। शिवा देवी समस्त पात्रोंका छेदन करनेवाली साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं। इस प्रकार महादेव और महादेवीका ध्यान करके शुभ एवं श्रेष्ठ आसनपर सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त भावमय पुरुषोद्धारा उनका पूजन करे।

अथवा उपर्युक्त वर्णनके अनुसार प्रभु शिवकी एक

मूर्ति बनवा ले, उसका नाम शिव या सदाशिव हो। दूसरी मूर्ति शिवाकी होनी चाहिये; उसका नाम माहेश्वरी, पद्मशिवा अथवा 'श्रीकण' हो। फिर अपने ही शरीरकी भाँति मूर्तिमें मन्त्र-न्यास आदि करके उस मूर्तिमें सत्-असत्से परे मूर्तिमान् परम शिवका ध्यान करे। इसके बाद वायु पूजनके ही क्रमसे मनसे पूजा समादित करे। तत्प्रथात् समिधा और धी आदिसे नाभिमें होमकी भावना करे। तदनन्तर भूमध्यमें शुद्ध दीपशिखाके समान आकरवाले ज्योतिर्मय शिवका ध्यान करे। इस प्रकार अपने अङ्गमें अथवा खत्तन्त्र विग्रहमें शुभ ध्यानयोगके द्वारा अग्निमें होमपर्यन्त सारा पूजन करना चाहिये। यह विधि सर्वत्र ही समान है। इस तरह ध्यानमय आराधनाका सारा क्रम समाप्त करके महादेवजीका शिवलिङ्गमें, वेदीपर अथवा अग्निमें पूजन करे। (अथाय २१—२३)

### शिवपूजनकी विधि

उपमन्त्रु कहते हैं—यदुनन्दन ! विशुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे गन्ध, चन्दनमिश्रित जलके द्वारा पूजा-स्थानका प्रोक्षण करना चाहिये। इसके बाद वहाँ फूल विसरे। अस्त्र-मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके विश्वोंको भगाये। फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से पूजा-स्थानको सब ओरसे अवगुण्ठित करे। अस्त्र-मन्त्रका सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास करके पूजाभूमिकी कल्पना करे। वहाँ सब ओर कुश विश्वा दे और प्रोक्षण आदिके द्वारा उस भूमिका प्रक्षालन करे। पूजा-सम्बन्धी समस्त पात्रोंका शोधन करके द्रव्यशुद्धि करे। प्रोक्षणीयात्र, अर्ध्यपात्र, पाद्यपात्र और आचमनीयपात्र—इन चारोंका प्रक्षालन, प्रोक्षण और वीक्षण करके इनमें शुभ जल डाले और जितने मिल सकें, उन सभी पवित्र द्रव्योंको उनमें डाले। पञ्चरत्न, चाँदी, सोना, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि तथा फल, पहच्छ और कुश ये सब अनेक प्रकारके पुष्प द्रव्य हैं। स्नान और पीनेके जलमें विशेषरूपसे सुगन्ध आदि एवं शीतल मनोज पुष्प आदि छोड़े। पाद्यपात्रमें खश और चन्दन छोड़ना चाहिये। आचमनीयपात्रमें विशेषतः जायफल, कड्डोल, कागूर, सहिजन और तमालका चूर्ण करके डालना चाहिये। इलायची सभी पात्रोंमें डालनेकी बलु है। कागूर, चन्दन, कुशाग्रभाग, अक्षत, जौ, धान, तिल, बी, सरसो, फूल और भस्म—इन सबको अर्ध्यपात्रमें छोड़ना चाहिये। कुश, फूल, जौ, धान, सहिजन, तमाल और भस्म—इन सबका प्रोक्षणीयात्रमें प्रक्षेपण करना चाहिये। सर्वत्र मन्त्र-न्यास करके कवच-मन्त्रसे प्रत्येक पात्रको वाहरसे अवेष्टित करे। तत्प्रथात् अस्त्र-मन्त्रसे

उसकी रक्षा करके घेनुमुद्रा दिखाये। पूजाके सभी द्रव्योंका प्रोक्षणीयात्रके जलसे मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षण करके विधिवत् शोधन करे। श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि अधिक पात्रोंके न मिलनेपर सब कर्मोंमें एकमात्र प्रोक्षणीयात्रको ही समादित करके रखने और उसीके जलसे सामान्यतः अर्थ आदि दे। तत्प्रथात् मण्डपके दक्षिण द्वारभागमें भक्ष्य-भोज्य आदिके क्रमसे विधिपूर्वक विनायकदेवकी पूजा करके अन्तःपुरके स्वामी साक्षात् नन्दीकी भलीभाँति पूजा करे। उनकी अङ्गकाण्ठि सुवर्णमय पर्वतके समान है। समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तकपर बालचन्द्रका मुकुट सुशोभित होता है। उनकी मूर्ति सौम्य है। वे तीन नेत्र और चार भूजाओंसे युक्त हैं। उनके एक हाथमें चमचमाता हुआ चिशूल, दूसरेमें मृगी, तीसरेमें टङ्क और चौथेमें तीला बैठत हैं। उनके मुखकी कान्ति चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल है। मुख बानरके सदृश है।

द्वारके उत्तर पार्वतमें उनकी पक्षी सुशशा है, जो मरुद्रोणोंकी कन्धा हैं। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हैं और पार्वतीजीके चरणोंका शङ्कार करनेमें लगी रहती हैं। उनका पूजन करके परमेश्वर शिवके भवनके भीतर प्रवेश करे और उन द्रव्योंसे शिवलिङ्गका पूजन करके निर्माल्यकी वहाँसे हृष्ट ले। तदनन्तर फूल धोकर शिवलिङ्गके मस्तकपर वहाँसे हृष्ट ले। फिर हाथमें फूल ले यथागति मन्त्रका जप करे। इससे मन्त्रकी शुद्धि होती है। इन्द्रान कोणमें चण्डीकी आराधना करके उन्हें पूर्णोक्त निर्माल अर्पित करे। तत्प्रथात् इष्टदेवके लिये आसनकी कलना

करे। क्रमशः आधार आदिका ध्यान करे—कल्याणमयी आधारशक्ति भूतलपर विराजमान हैं और उनकी अङ्गकान्ति श्याम है। इस प्रकार उनके स्वरूपका चिन्तन करे। उनके ऊर फूल उठाये सर्पाकार अनन्त वैठे हैं, जिनकी अङ्गकान्ति उज्ज्वल है। वे पाँच फूलोंसे युक्त हैं और आकाशको चाटते हुए से जान पड़ते हैं। अनन्तके ऊपर भद्रासन है, जिसके चारों पायें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यरूप हैं। धर्म नामवाला पाया आगेय कोणमें है और उसका रंग सफेद है। ज्ञान नामक पाया नैऋत्य कोणमें है और उसका रंग लाल है। वैराग्य वायन्य कोणमें है और उसका रंग पीला है तथा ऐश्वर्य ईशान कोणमें है और उसका वर्ण श्याम है। अर्धम आदि उस आसनके पूर्वादि भागोंमें क्रमशः स्थित हैं अर्थात् अर्थम पूर्वमें, अज्ञान दक्षिणमें, अवैराग्य पश्चिममें और अनैश्वर्य उत्तरमें है। इनके अङ्ग राजावर्त मणिके समान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। इस भद्रासनको ऊपरसे अच्छादित करनेवाला खेत निर्मल पद्ममय आसन है। निर्णया आदि आठ ऐश्वर्य—गुण ही उस कमलके बाठ ल हैं; वामदेव आदि रुद्र अपनी वामा आदि शक्तियोंके गाथ उस कमलके केसर हैं। वे मनोन्मनी आदि अन्तःशक्तियाँ ही वीज हैं, अपर वैराग्य कर्णिका है, शिवस्वरूप-ज्ञान नाल है, धैर्यमर्म कन्द है, कर्णिकके ऊर तीन मण्डल (चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल और वह्निमण्डल) हैं और उन मण्डलोंके ऊपर भाग्यतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्वरूप विविध आसन हैं। इन सब आसनोंके ऊर विचित्र विछौनोंसे आच्छादित एक मुख्य दिव्य आसनकी कल्पना करे, जो शुद्ध विद्यासे अस्त प्रकाशमान हो। आसनके अनन्तर आवाहन, ध्यान, संनिरोधन, निरीक्षण एवं नमस्कार करे। इन क्रमों पुष्प-पृथक्-मुद्राएँ वाँधकर दिखाये।\*

\* दोनों हाथोंकी अङ्गलियां बनाकर अनानिका अङ्गुलिके मूलपूर्वपर ऐसे लग देना 'आवाहन' मुद्रा है। इसी आवाहन सुद्राको ऐसा बन दिया जाय तो वह 'स्यापन' मुद्रा हो जाती है। इसीके भी ऊर अङ्गुलेको ढाल दिया जाय और दोनों हाथोंकी ऐसी रुपुल जर दी जाय तो वह 'तंत्रिरोधन' मुद्रा कही गयी है। इसीमें उत्तान कर देनेपर 'सम्मुखीकरण' नामक मुद्रा होती है। इसीमें पहरी 'निरोक्षण' नामसे कक्षा गया है। शरीरको इसी भूमि देवताके लानने ढाल देना, मुखको नीचेकी ओर लेने और दोनों हाथोंमें देवताकी ओर फैला देना—साधन इस दिग्जये ही पहरी 'नमस्कर' मुद्रा कक्षा गया है।

तदनन्तर पाथ, आच्चमन, अर्ध, ( ज्ञानीय, बद्ध, यशोपवीत, ) गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, ( नैवेद्य ) और ताम्बूल देकर शिवा और शिवको शयन कराये अथवा उपर्युक्त रूपसे आसन और मूर्तिकी कल्पना करके मूलमन्त्र एवं अन्य ईशानादि व्रह्म-मन्त्रोदारा सकलीकरणकी क्रिया करके देवी पार्वतीसहित परम कारण शिवका आवाहन करे। भगवान् शिवकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे निश्चल, अविनाशी, समस्त लोकोंके परम कारण, सर्वलोक-स्वरूप, सबके बाहर-भीतर विद्यमान, सर्वव्यापी, अणुसे अणु और महानसे भी महान् हैं। भक्तोंको अनायास ही दर्शन देते हैं। सबके ईश्वर एवं अव्यय हैं। व्रह्म, इन्द्र, विष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंके लिये भी अगोचर हैं। समूर्यवर्द्धोंके सारतत्त्व हैं। विद्वानोंके भी दृष्टिपथमें नहीं आते हैं। आदि, मव्य और अन्तसे रहित हैं। भवरेगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये औपचार्य हैं। शिवतत्त्वके रूपमें विद्यात हैं और सबका कल्पना करनेके लिये जगत्में सुस्थिर शिवलिङ्गके रूपमें विद्यमान हैं।

ऐसी भावना करके भक्तिभावसे गन्ध, धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य—इन पाँच उपचारोदारा उत्तम शिवलिङ्गका पूजन करे। परमात्मा महेश्वर शिवकी लिङ्गमयी मूर्तिके ज्ञान-कालमें जय-जयकर आदि शब्द और मङ्गलपाठ करे। पञ्चगव्य, धी, दूध, दही, मधु और शर्कराके साथ फल-मूलके सारतत्त्वसे, तिल, सरसों, सत्तूके उबटनसे, जौ आदिके उत्तम वीजोंसे, उड्ड आदिके चूर्णसे तथा आया आदिसे आलेघन करके गरम जलसे शिवलिङ्गको नहलाये। लेप और गूच्छके निवारणके लिये विल्वात्र आदिसे रगड़े। फिर जलसे नद्याकर चक्रवर्ती सप्तांशके लिये उत्तरोगी उत्तरांशसे ( अर्थात् सुगन्धित तेल-फुलेल आदिके द्वारा ) सेवा करे। सुगन्धयुक्त अंगला और हल्दी भी क्रमशः अर्पित करे। इन सब वस्तुओंसे शिवलिङ्ग अथवा दिव्यमूर्तिका भलोभांति शोधन करके चक्रन-मिश्रित जल, कुद्ध-पुष्पयुक्त जल, सुशील एवं रत्नयुक्त जल तथा मन्त्रमिश्रित जलसे क्रमशः ध्यान रूपये। इन सब द्रव्योंवा मिलना सम्भव न होनेवर वधासम्भव संरक्षित वलुओंसे सुख जलद्वारा अधद्या क्रेयल मन्त्राभिमन्त्रित दद्यारा धज्जूरूप शिवको ध्यान कराये। कल्प, शहू और दर्शनीय तथा कुद्ध और पुष्पसे युक्त स्पर्श जलसे मन्त्रमयरत्नदूर्देश इन्द्रेशी के महलाना चालिये। पद्मनाभज, दद्युक्त, नीददद्युक्त-त्वरितनन्त्र, लिङ्गनक, आदिनक, अपरदीप, भूर्देश-

सामवेद तथा शिवसम्बन्धी ईशानादि पञ्च ब्रह्म-मन्त्र, शिवमन्त्र तथा प्रणवसे देवदेवेश्वर शिवको स्नान कराये ।

जैसे महादेवजीको स्नान कराये, उसी तरह महादेवी पार्वतीको भी स्नान आदि कराना चाहिये । उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि वे दोनों सर्वथा समान हैं । पहले महादेवजीके उद्देश्यसे स्नान आदि किया करके फिर देवीके लिये उन्हीं देवाधिदेवके आदेशसे तब कुछ करे । अर्धनारीश्वर-की पूजा करनी हो तो उसमें पूर्वापरका विचार नहीं है । अतः उसमें महादेव और महादेवीकी साथ-साथ पूजा होती रहती है । शिवलिङ्गमें या अन्यत्र मूर्ति आदिमें अर्द्धनारीश्वरकी भावनासे सभी उपचारोंका शिव और शिवाके लिये एक साथ ही उपयोग होता है । पवित्र सुगन्धित जलसे शिवलिङ्गका अभिषेक करके उसे बछर से पोंछे । फिर नूतन बछर एवं श्वेतपवीत चढ़ावे । तत्प्रश्नात् पाद्य, आचमन, अर्ध्य, गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीने योग्य जल, मुखशुद्धि, पुनराचमन, मुखवास तथा सम्पूर्ण रखोंसे जटित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकारकी पवित्र पुष्पमालाएँ, छत्र, चौंबर, व्यञ्जन, ताङ्का पंखा और दर्पण देकर सब प्रकारकी मङ्गल-भयी वाद्यध्वनियोंके साथ इष्टदेवकी नीराजना करे (आरती उतारे) । उस समय गीत और नृत्य आदिके साथ जय-जयकार भी होनी चाहिये । सोना, चाँदी, ताँवा अथवा मिट्ठीके सुन्दर शान्त्रमें कमल आदिके शोभायमान फूल रखें । कमलके दीज तथा दही, अक्षत आदि भी डाल दे । निशुल, शङ्ख, दो कमल, नन्दावर्त नामक शङ्खविशेष, सूखे गोवरकी आग, श्रीवत्स, स्वस्तिक, दर्पण, वज्र तथा अग्नि आदिसे चिह्नित

पात्रमें आठ दीपक रखें । वे आठों आठ दिशाओंमें रहें और एक नवाँ दीपक मध्यभागमें रहे । इन नवों दीपकोंमें कामा आदि नव शक्तियोंका पूजन करे । फिर कवच-मन्त्रसे आच्छादन और अल्प-मन्त्रद्वारा सब ओरसे संरक्षण करके धेनुमुदा दिखाकर दोनों हाथोंसे पात्रको ऊपर उठाये अथवा पात्रमें क्रमशः पाँच दीप रखें । चारको चारों कोनोंमें और एकको बीचमें स्थापित करे । तत्प्रश्नात् उस पात्रको उठाकर शिवलिङ्ग या शिवमूर्ति आदिके ऊपर क्रमशः तीन बार प्रदक्षिण करमें शुभाये और मूलमन्त्रका उचारण करता रहे । तदनन्तर मस्तकपर अर्ध्य और सुगन्धित भस्त्र चढ़ाये । फिर पुष्पाञ्जलि देकर उपहार निवेदन करे । इसके बाद जल देकर आचमन कराये । फिर सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त पाँच ताम्बूल मैट करे । तत्प्रश्नात् प्रोक्षणीय पदार्थोंका प्रोक्षण करके नृत्य और गीतका आयोजन करे । लिङ्ग या मूर्ति आदिमें शिव तथा पार्वतीका चिन्तन करते हुए यथाशक्ति शिव-मन्त्रका जप करे । जपके पश्चात् प्रदक्षिणा, नमस्कार, स्तुतिपाठ, आत्मसमर्पण तथा कार्यका विनयपूर्वक विज्ञापन करे । फिर अर्ध्य और पुष्पाञ्जलि दे विधिवत् मुद्रा बाँधकर इष्टदेवसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्घ्ना करे । तत्प्रश्नात् मूर्तिसहित देवताका विसर्जन करके अग्ने द्वदयमें उसका चिन्तन करे । पाद्यसे लेकर मुखवासपर्यन्त पूजन करना चाहिये अथवा अर्ध्य आदिसे पूजन आरम्भ करना चाहिये या अधिक संकटकी स्थितिमें प्रेमपूर्वक केवल फूलमात्र चढ़ा देना चाहिये । प्रेमपूर्वक फूलमात्र चढ़ा देनेसे ही परम धर्मका सम्मादन हो जाता है । जयतक प्राण रहे, शिवका पूजन किये विना भोजन न करे । ( अथाय २४ )

### शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा

उपमन्त्रु कहते हैं—यदुनन्दन ! दीपदानके बाद और नैवेद्य-निवेदनसे पहले आवरण-पूजा करनी चाहिये अथवा आरतीका समय आनेपर आवरण-पूजा करे । वहाँ शिव या शिवाके प्रथम आवरणमें ईशानसे लेकर ‘सद्योजातपर्यन्त’ तथा द्वदयसे लेकर अख्यपर्यन्तका पूजन करे । ५ ईशानमें, पूर्वभागमें, दक्षिणमें, उत्तरमें, पश्चिममें, आग्नेयकोणमें, ईशान-कोणमें, नैऋत्यकोणमें, वायव्यकोणमें, फिर ईशानकोणमें

\* अर्थात्—  
ईशान, तत्पुरुष, अधोर, वानरेव और सधोजात—इन पाँच भूर्योक्त तथा हृत्य, सिर, शिखा, कल्पन, नेत्र और अल—इन भूर्योक्त पूजन करना चाहिये ।

तत्प्रश्नात् चारों दिशाओंमें गर्भावरण अथवा मन्त्र-संधातकी पूजा बतायी गयी है या द्वदयसे लेकर अख्यपर्यन्त अङ्गोंकी पूजा करे । इनके बाह्यभागमें पूर्व दिशामें इन्द्रका, दक्षिण दिशामें यमका, पश्चिम दिशामें वरुणका, उत्तर दिशामें कुवेरका, ईशानकोणमें ईशानका, अग्निकोणमें अग्निका, नैऋत्यकोणमें निर्ऋतिका, आयव्यकोणमें वायुका, नैऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्त वा विष्णुका तथा ईशान और पूर्वके बीचमें ब्रह्माका पूजन करे । कमलके बाह्यभागमें वज्रसे लेकर कमलपर्यन्त लोकेश्वरोंके सुप्रसिद्ध आयुरोंका पूर्वदि दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे । यह ध्यान करना चाहिये कि समल आवरणदेवता सुखपूर्वक वैठकर महादेव और महादेवीकी

और दोनों हाय जोड़े देख रहे हैं। फिर सभी आवरण देवताओंको प्रणाम करके 'नमः' पद्मुक्त अपने-अपने नामसे पुणोपचार-समर्पणपूर्वक उनका क्रमशः पूजन करे (यथा इन्द्राय नमः पुष्पं समर्पयामि इत्यादि)। इसी तरह गर्भावरणका भी अपने आवरण-सम्बन्धी मन्त्रसे यजन करे। योग, व्यान, होम, जप, वास्त्र अथवा अभ्यन्तरमें भी देवताका पूजन करना चाहिये। इसी तरह उनके लिये छः प्रकारकी हवि भी देनी चाहिये—किसी एक शुद्ध अचका वना हुआ, मूँगमिश्रित अन् या मूँगकी खिचड़ी, स्वीर, दधिमिश्रित अच, गुड़का वना हुआ पकवान तथा मधुसे तर किया हुआ भोज्य पदार्थ। इनमेंसे एक या अनेक हविष्यको नाना प्रकारके व्यक्तिनोंसे मंयुक्तथा गुड़ और खाँड़से संयन्त्र करके नैवेद्यके रूपमें अर्पित करना चाहिये। साथ ही मक्खन और उत्तम दही परेसना चाहिये। पूजा आदि अनेक प्रकारके भक्षण-पदार्थ और स्वादिष्ट कल देने चाहिये। लाल चन्दन और पुष्पवासित अत्यन्त शीतल जल अर्पित करना चाहिये। मुख शुद्धिके लिये मधुर इलायचीके रससे युक्त सुगरीके टुकड़े, खैर आदिसे युक्त सुनहरे रंगके पीले पानके पत्तोंके बने हुए बीड़े, शिलाजीतका चूर्ण, सफेद चूना, जो अधिक रस्खा या दूषित न हो, कपूर, कङ्कोल, नूतन एवं सुन्दर जायफल आदि अर्पित करने चाहिये। आलेपनके लिये चन्दनका मूलकाष्ठ अथवा उसका चूरा, कस्तूरी, कुङ्कुम, रुग्मदात्मक रस होने चाहिये। फूल वे ही चढ़ाने चाहिये, जो मुग्धित, पवित्र और सुन्दर हों। गन्धरहित, उत्कट गन्धगाढ़, दूषित, वासी तथा स्वयं ही दूषकर गिरे हुए फूल जिनके पूजनमें नहीं देने चाहिये। कोमल वस्त्र ही चढ़ाने चाहिये। भूरगोंमें विशेषतः वे ही अर्पित करने चाहिये, जो सोनेके बने हुए तथा विशुभूमण्डलके समान चमकीले हों, वे यथा रस्खुएँ कपूर, गुग्गुल, अगुरु और चन्दनसे भूषित यथा पुष्परमूद्दोंसे सुधासित होनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, गुरु, गुग्गुल तथा गुग्गुलके चूर्ण, धी और मधुसे जो हुआ धूप उत्तम माना गया है।

र्थिला गापके अत्यन्त सुगन्धित धोसे प्रतिदिन जलाये जैसे सूखुक दीप श्रेष्ठ माने गये हैं। पञ्चगव्य, मीठा और देवी गन्धा दूध, दही एवं धी—ये सब भगवान् शंकरके जल और पानके लिये अभीष्ट हैं। हाथोंके दाँतके बने हुए दाँत, जो धी सुर्खं एवं रल्नोंसे जटित हैं, शिवके लिये श्रेष्ठ नहीं मरे हैं। उन आत्मनोंपर विचित्र विद्यावन, कोमल गदे व गोदे रहे चाहिये। इनके तिवा और भी वहुत-सी छोटी-

बड़ी सुन्दर एवं सुखद शश्याएँ होनी चाहिये। समुद्रगमिनी नदी एवं नदसे लाया तथा कपड़ेसे छानकर रखा हुआ शीतल जल भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये श्रेष्ठ कहा गया है। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छवि जो, मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित, नवरत्नजटित, दिव्य एवं सुवर्णमय दण्डसे मनोहर हो, भगवान् शिवकी सेवामें अर्पित करने योग्य हैं। सुवर्ण-भूषित दो श्वेत चँवर, जो रत्नमय दण्डोंसे शोभायमान तथा दो रजहंसोंके समान आकारवाले हों, शिवकी सेवामें देने योग्य हैं। सुन्दर एवं ज्ञिग्ध दर्पण, जो दिव्य गन्धसे अनुलिप्त, सब ओरसे रल्नोंद्वारा आच्छादित तथा सुन्दर द्वारोंसे विभूषित हो, भगवान् शंकरको अर्पित करना चाहिये। उनके पूजनमें हंस, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा गम्भीर व्यनि करनेवाले शङ्खका उपयोग करना चाहिये, जिसके मुख और पृष्ठ आदि भागोंमें रल एवं सुवर्ण जड़े गये हों। शङ्खके तिवा नाना प्रकारकी व्यनि करनेवाले सुन्दर काहल (वायविशेष), जो सुवर्णनिर्मित तथा मोतियोंसे अलंकृत हों, वजाने चाहिये। इनके अतिरिक्त मेरी, मूरदङ्ग, मुरज, तिमिच्छ और पट्ट आदि वाजे भी, जो समुद्रकी गर्जनाके समान व्यनि करनेवाले हों, यलपूर्वक जुटाकर रखने चाहिये। पूजाके सभी पात्र और भाण्ड भी सुवर्णही ही बनवाये। परमात्मा महेश्वर शिवका मन्दिर राजमहलके समान बनवाना चाहिये, जो शिलशास्त्रमें बताये हुए लक्षणोंसे युक्त हो। वह ऊँची चदारदीवारोंसे चिरा हो। उसका गोपुर इतना ऊँचा हो कि पर्वताकार दिखायी दे। वह अनेक प्रकारके रसोंसे आच्छादित हो। उसके दरवाजेके फाटक सोनेके बने हुए हों। उस मन्दिरके मण्डपमें त्याये हुए सोने तथा रसोंके चैकड़ों लम्मे लगे हों। चैकड़ोंमें मोतियोंकी लड़ियों लगी हुई हों। दरवाजेके फाटकमें मूँगे जड़े गये हों। मन्दिरका शिखर सोनेके बने हुए दिव्य कल्याणाश्र मुकुटसे अलंकृत एवं अघराज विशूलसे चिह्नित हो।

न्यायोपार्जित द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक मदादेवज्ञकी पूजा दर्शनों चाहिये। यदि कोई अन्यायोपार्जित द्रव्यसे भी भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करता है तो उसे भी कोई पार नहीं लगता; क्योंकि भगवान् भावके वशीन्तर है। न्यायोपार्जित द्रव्योंमें भी यदि कोई विना भक्तिके पूजन करता है तो उसे उनका कउ नहीं मिलता; क्योंकि पूजाघी उच्छ्वासमें भक्ति ही कारण है। भक्तिसे अपने वैभवके अनुगाम भगवान् शिवके उद्देश्य से श्री कुटुंबिका जाय वह धोदा हो या कुठ, छसंदारा यही हो या दरिद्र, दोनोंका उन्नान कउ है। जिनके रस रहुत देना

घन है, वह मानव भी भक्तिभावसे प्रेरित होकर भगवान् शिवका पूजन कर सकता है, किंतु महान् वैभवशाली भी यदि भक्तिहीन है तो उसे शिवका पूजन नहीं करना चाहिये। शिवके प्रति भक्तिहीन पुरुष यदि अपना सर्वस्व भी दे डाले तो उससे वह शिवाधनामें फलका भागी नहीं होता; क्योंकि आराधनामें भक्ति ही कारण है।\* शिवके प्रति भक्तिको छोड़कर कोई अत्यन्त उग्र तपस्याओं और सम्पूर्ण महायज्ञोंसे भी दिव्य शिवधाममें नहीं जा सकता। अतः श्रीकृष्ण ! सर्वत्र परमेश्वर शिवके आराधनामें भक्तिका ही महत्व है। यह गुह्यसे भी गुह्यतर बात है। इसमें संदेह नहीं है।

पापके महासागरको पार करनेके लिये भगवान् शिवकी भक्ति नौकाके समान है। इसलिये जो भक्तिभावसे युक्त है, उसे रजोगुण और तमोगुणसे क्या हानि हो सकती है ! श्रीकृष्ण ! अन्त्यज, अधम, मूर्ख अथवा पतित मनुष्य भी यदि भगवान् शिवकी शरणमें चला जाय तो वह समस्त देवताओं एवं असुरोंके लिये भी पूजनीय हो जाता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिभावसे ही शिवकी पूजा करें; क्योंकि अभक्तोंको कहीं भी फल नहीं मिलता।

( अथाय-२५ )

### पञ्चाक्षर मन्त्रके जप तथा भगवान् शिवके भजन-पूजनकी महिमा, अग्निकार्यके लिये कुण्ड और वेदी आदिके संस्कार, शिवायिकी स्थापना और उसके संस्कार, होम, पूर्णाहुति, भसके संग्रह एवं रक्षणकी विधि तथा हवनान्तमें किये जानेवाले कृत्यका वर्णन

उपमन्त्र कहते हैं—यदुनन्दन ! कोई बड़ा भारी पाप करके भी भक्तिभावसे पञ्चाक्षर मन्त्रद्वारा यदि देवेश्वर शिवका पूजन करे तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है। जो भक्तिभावसे पञ्चाक्षर मन्त्रद्वारा एक ही बार शिवका पूजन कर लेता है, वह भी शिवमन्त्रके गौरववश शिवधामको चला जाता है। जो मूरु दुर्लभ मानव-जन्म पाकर भगवान् शिवकी अर्चना नहीं करता, उसका वह जन्म निष्फल है; क्योंकि वह मोक्षका साधक नहीं होता। जो दुर्लभ मानव-जन्म पाकर पिनाकपाणि महादेवजीकी आराधना करते हैं, उन्होंका जन्म सफल है और वे ही कृतार्थ एवं श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, जिनका चिन्त भगवान् शिवके सामने प्रणत होता है तथा जो सदा ही भगवान् शिवके चिन्तनमें लगे रहते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते। † मनोहर भवन, हाव, भाव, विलाससे विभूषित तरुणी छियाँ और जिससे पूर्ण तृसि हो जाय, इतना धन—ये सब भगवान्

शिवकी आराधनाके फल हैं। जो देवलोकमें महान् भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिवके चरणारविन्दीोंका चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कान्तिमान् रूप, वल, त्याग, दयाभाव, शूरता और विश्वमें विख्याति—ये सब यातें भगवान् शिवकी पूजा करनेवाले लोगोंको ही सुलभ होती हैं। इसलिये जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शिवमें मन लगा उनकी आराधना करनी चाहिये। जीवन बड़ी तेजीसे जा रहा है, जवानी शीत्रात्मसे दीती जा रही है और रोग तीव्रगतिसे निकट आ रहा है, इसलिये सबको पिनाकपाणि महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये, जबतक मृत्यु नहीं आती है, जबतक बृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता दै और जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक ही भगवान् शंकरकी आराधना कर लो। भगवान् शिवकी आराधनाके समान दूसरा कोई धर्म तीनों लोकोंमें नहीं है। ‡

\* मक्त्या प्रचोदितः कुर्यादन्पवित्रोऽपि मानवः । मद्विभवसारोऽपि न कुर्याद् भक्तिवर्जितः ॥  
सर्वस्वमपि यो दधाच्छ्वले भक्तिविवर्जितः । न तेन फलभाक् स स्याद् भक्तिरेवात् कारणम् ॥

( शिं पु० वा० सं० उ० ख० २५। ५१-५२ )

† दुर्लभं प्राप्य मानुषं चेऽर्चयन्ति पिनाकिनम् ॥

देषां हि सफलं जन्म कृतार्थस्ते नरोत्तमाः । भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ॥

भवसंसरणोद्युक्त्य न वे दुःखस्य भागिनः ॥

( शिं पु० वा० सं० उ० ख० २६। १५-१६ )

‡ त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम् ॥

त्वरितं व्याप्तिरम्भेति तसात्पूज्यः पिनाकधृक् । यावद्वायाति मरणं यावद्वाक्मते जरा ॥

यावनेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूज्य शंकरम् । न शिवार्चनतुल्योऽस्ति खोडन्यो भुवनश्चये ॥

( शिं पु० वा० सं० उ० ख० २६। २३-२४ )

अन मैं अग्निकार्यका वर्णन करूँगा । कुण्डमें, स्थगित्तल-  
पर, वेदीमें, लोहेके हवनपात्रमें या नूतन सुन्दर मिट्टीके पात्रमें  
विधिपूर्वक अग्निकी स्वापना करके उसका संस्कार करे ।  
तत्प्रश्नात् वहाँ महादेवजीकी आराधना करके होमकर्म आरम्भ  
करे । कुण्ड दो या एक हाथ लंबा-चौड़ा होना चाहिये ।  
वेदीको गोल या चौकोर बनाना चाहिये । साथ ही मण्डल भी  
बनाना आवश्यक है । कुण्ड विस्तृत और गहरा होना चाहिये ।  
उसके मध्यभागमें अष्टदल-कमल अঙ्कित करे । वह दो या  
चार अंगुल ऊँचा हो । कुण्डके भीतर दो वित्तेकी ऊँचाईपर  
नामिकी स्थिति बतायी गयी है । मध्यमा अंगुलिके मध्यम  
और उत्तम पंचोंके बराबर मध्यभाग या कटिभाग जानना  
चाहिये । साथु पुरुष चौवीस अंगुलिके बराबर एक हाथका  
परिमाण बताते हैं । कुण्डकी तीन, दो या एक मेखला होनी  
चाहिये । इन मेखलाओंका इस तरह निर्माण करे, जिससे  
कुण्डकी शोभा बढ़े । सुन्दर और चिकनी योनि बनाये, जिसकी  
आकृति पीपलके पत्तेकी भाँति अथवा हाथीके अधरोष्ठके  
प्रमाण हो; कुण्डके दक्षिण या पश्चिम भागमें मेखलाके बीचो-  
बीच सुन्दर योनिका निर्माण करना चाहिये, जो मेखलासे कुछ  
नीची हो । उसका अग्रभाग कुण्डकी ओर हो तथा वह मेखला-  
से कुछ छोड़कर बनायी गयी हो । वेदीके लिये ऊँचाईका  
कोई नियम नहीं है । वह मिट्टी या बाल्की होनी चाहिये ।  
गायके गोवर या जलसे मण्डल बनाना चाहिये । पात्रका परिमाण  
नहीं बताया गया है । कुण्ड और मिट्टीकी वेदीको गोवर और  
जलसे लीपाना चाहिये । पात्रको धोकर तपाये तथा अन्य  
वस्तुओंका जलसे प्रोक्षण करे । अपने-अपने गृहस्त्रमें बतायी  
हुई विधिके अनुसार कुण्डमें और वेदीपर उल्लेखन ( रेखा )  
करे । ( रेखाओंपरसे मृत्तिका लेकर ईशानकोणमें फेंक दे । )  
तर अग्निके उस धारानका कुछों अथवा पुर्णोद्घारा जलसे  
धोय करे । तत्प्रश्नात् पूजन और हवनके लिये सब प्रकारके  
स्थोत्र संग्रह करे । धोनेयोग्य वस्तुओंको धोकर प्रोक्षणीके  
समेत उनका प्रोक्षण करके उन्हें शुद्ध करे । इसके बाद  
पूर्णस्त गणिते प्रकट, काष्ठसे उत्पन्न, श्रोत्रियकी अग्निशालामें  
तैति अथवा दूसरी किसी उत्तम अग्निको आधारसंहित ले  
लें । उसे कुण्ड अथवा वेदीके ऊपर तीन बार प्रदक्षिण-  
करिये उक्त कुण्ड या वेदीके आत्मनपर स्थापित कर दे ।  
इसमें स्थापित करना हो तो योनिमर्गसे अग्निका आधान  
हो । और वेदीपर अपने सामग्रेकी ओर अग्निकी स्वापना

करे । योनिप्रदेशके पास स्थित विद्वान् पुरुष समस्त कुण्डको  
अग्निसे संयुक्त करे । साथ ही यह भावना करे कि अपनी  
नामिके भीतर जो अग्निदेव विराजमान है, वे ही नाभिरन्ध्रसे  
चिनगारीके रूपमें निकलकर वाह्य अग्निमें मण्डलाकार होकर  
लीन हुए हैं । अग्निपर समिधा रखनेसे लेकर धीके संस्कार-  
पर्यन्त सारा कार्य मन्त्रश पुरुष अपने गृहस्त्रमें बताये हुए  
क्रमसे मूलमन्त्रद्वारा सम्पन्न करे । तदनन्तर शिवमूर्तिकी पूजा  
करके दक्षिण पाश्वमें मन्त्र-न्यास करे और घृतमें प्रेनुमुद्राका  
प्रदर्शन करे । सुक् और सुवा—ये दोनों धातुके वने हुए हों तो  
ग्रहण करने योग्य हैं । परंतु कांसी, लोहे और शीशोंके वने  
हुए सुक्, सुवाको नहीं ग्रहण करना चाहिये अथवा यज्ञ-  
सम्बन्धी काष्ठके वने हुए सुक्, सुवा ग्राह्य हैं । स्मृति या  
शिव-शास्त्रमें जो विहित हों, वे भी ग्राह्य हैं अथवा व्रतावृत्त  
( पलास या गूलर ) आदिके छिद्ररहित विचले द्वे पत्ते  
लेकर उन्हें कुशसे पोछे और अग्निमें तपाकर फिर उनका  
प्रोक्षण करे । उन्हीं पत्तोंको सुक् और सुवगका रूप दे उनमें  
धी उठाये और अपने गृहस्त्रमें बताये हुए क्रमसे शिव-  
बीज ( ॐ ) सहित आठ वीजाक्षरोद्घारा अग्निमें आदुति  
दे । इससे अग्निका संस्कार सम्पन्न होता है । वे बीज इस  
प्रकार है—ध्रु रु रु शु शु पु इं दु । ये सात हैं, इनमें शिव-  
बीज ( ॐ ) को सम्मिलित कर लेनेपर आठ वीजावर  
होते हैं । उपर्युक्त सात बीज क्रमशः अग्निकी सात जिहाओंके  
हैं । उनकी मध्यमा जिहाका नाम बहुरूपा है । उनकी तीन  
शिखाएँ हैं । उनमेंसे एक शिखा दक्षिणमें और दूसरी बाम  
दिशा ( उत्तर ) में प्रज्ञलित होती है और बीचदाली शिखा  
बीचमें ही प्रकाशित होती है । इश्यानकोणमें जो जिहा है,  
उसका नाम हिरण्या है । पूर्व दिशामें विश्वमान जिहा रुद्राना  
नामसे प्रसिद्ध है । अग्निकोणमें रक्षा, नैऋत्यसीपमें गृजा  
और बायव्यकोणमें सुप्रभा नामकी जिहा प्रकाशित होती है ।  
इनके अतिरिक्त पश्चिममें जो जिहा प्रज्ञलित होती है, उनका  
नाम मरुत् है । इन सबकी प्रभा अपने-आपने नामसंबंध अनुरूप  
है । अपने-अपने बीजके अनन्तर क्रमशः इनका नाम जिहा  
चाहिये और नामके अन्तमें स्वामीका प्रदेश रखना चाहिये ।  
इस तरह जो उद्दिष्टमन्त्र करने हैं, उनके द्वारा अनन्तर  
प्रदेश

१. ओ रु शु शिदित्तपै दुहत्तरै रुद्र ( दोनों ज्ञात  
उत्तर च ) ३ । ओ रु दित्यार्च रुद्र ( दोनों ज्ञात ) ३ ।  
शु कन्दपै रुद्र ( दूर्दाम ) १ । ओ रु रुद्र रुद्र  
( आनन्दस्त्राम ) १ । ओ रु रुप्तपै रुद्र ( दोनों ज्ञात ) १ ।

जिह्वाके लिये एक-एक धीकी आहुति दे, परंतु मध्यमाकी तीन जिह्वाओंके लिये तीन आहुतियाँ दे । कुण्डके मध्यभागमें ‘रं वहये स्वाहा’ वोलकर तीन आहुतियाँ दे । ये आहुतियाँ धी अथवा समिधासे देनी चाहिये । आहुति देनेके पश्चात् अग्निमें जलका सेचन करे । ऐसा करनेपर वह अग्नि भगवान् शिवकी हो जाती है । फिर उसमें शिवके आसनका चिन्तन करे और वहाँ अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका आवाहन करके पूजन करे । पाद-अर्च्य आदिसे लेकर दीपदानपर्यन्त पूजन करके अग्निका जलसे प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् समिधाओंकी आहुति दे । वे समिधाएँ पलासकी था गूलर आदि दूसरे यश्य वृक्षकी होनी चाहिये । उनकी लंबाई बारह अंगुलकी हो । समिधाएँ टेढ़ी न हों । स्वतः सूखी हुई भी न हों । उनके छिलके न उतरे हों तथा उनपर किसी प्रकारकी चोट न हो । सब समिधाएँ एक-सी होनी चाहिये । दस अंगुल लंबी समिधाएँ भी हवनके लिये विहित हैं । उनकी मोटाई कनिष्ठिका अङ्गुलिके समान होनी चाहिये अथवा प्रादेशमात्र ( अंगूठेसे लेकर तर्जनीपर्यन्त ) लंबी समिधाएँ उपयोगमें लानी चाहिये । यदि उपर्युक्त समिधाएँ न मिलें तो जो मिल सकें, उन सबका ही हवन करना चाहिये । समिधाहवनके बाद धीकी आहुति दे । धीकी धारा धूर्वादलके समान पतली और चार अंगुल लंबी हो । उसके बाद अग्निकी आहुति देनी चाहिये, जिसका प्रत्येक ग्रास सोलह-सोलह माशेके बराबर हो । लाचा, सरसों, जौ और तिल—इन सबमें धी मिलाकर यथा-सम्भव भक्ष्य, लेह्य और चोष्यका भी मिश्रण करे तथा इन सबकी यथाशक्ति दस, पाँच या तीन आहुतियाँ दे अथवा एक ही आहुति दे । सुवासे, समिधासे, सुक्से अथवा हाथसे आहुति देनी चाहिये । उसमें भी दिव्य तीर्थसे अथवा श्रुतियर्थसे आहुति देनेका विधान है; यदि उपर्युक्त सभी द्रव्य न मिलें तो किसी एक ही द्रव्यसे अद्वापूर्वक आहुति देनी चाहिये । प्रायश्चित्के लिये मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन आहुतियाँ दे । फिर होमावशिष्ट वृत्तसे सुक्को भरकर उसके अग्रभागमें कुल रखकर उसे दर्पणहित अधोमुख सुवासे ढक दे । इसके बाद खड़ा हो उसे अङ्गलिमें लेकर ‘ओं नमः शिवाय वौषट्’ का उच्चारण करके जौके तुल्य धीकी धारकी आहुति दे । इस प्रकार पूर्णाहुति करके अग्निमें पूर्ववत् जलका ठींटा दे । तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके अग्निकी रक्षा करे ।

मो द्वं तुप्रमार्यं स्वाहा ( पञ्चिमायान् ) ? । ओ द्वं मरुजिह्वायै स्वाहा ( वायव्ये ) ? ।

फिर अग्निका भी विसर्जन करके भावनाद्वारा नाभिमें स्थापित करके नित्य यज्ञ करे ।

अथवा शिवशास्त्रमें वतायी हुई पद्धतिके अनुसार वागीश्वरीके गर्भसे प्रकट हुए अग्निदेवको लाकर विधिवत् संस्कार करके उनका पूजन करे । फिर समिधाका वापान करके सब ओरसे परिधियोंका निर्माण करे । इसके बाद वहाँ दो-दो पात्र रखकर शिवका यज्ञ करके प्रोक्षणीपात्रका शोधन करे । उस पात्रके जलसे पूर्वोक्त वस्तुओंका प्रोक्षण करके जलसे भरे हुए प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें रखें । धीके संस्कारतकका सारा कार्य करके स्वक् और स्वाक्षरा संशोधन करे । तदनन्तर पिता शिवद्वारा माता वागीश्वरीका गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार करके प्रत्येक संस्कारके निमित्त पृथक्-पृथक् आहुति दे और गर्भसे अग्निके उत्पन्न होनेकी भावना करे । उनके तीन पैर, सात हाय, चार सींग और दो मरुक हैं । मधुके समान पिङ्गलवर्णवाले तीन नेत्र हैं । सिरपर जटाजटू और चन्द्रमाका मुकुट है । उनकी अङ्गकान्ति लाल है । लाल रंगके ही वस्त्र, चन्दन, माला और आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं । सब लक्षणोंसे सम्पन्न, यज्ञोपवीत-धारी तथा त्रिगुण मेखलासे युक्त हैं । उनके दायें हाथोंमें शक्ति है, स्वक् और सुवा है तथा वायें हाथोंमें तोमर, ताङ्का पंखा और धीसे भरा हुआ पात्र है । इस आङ्कुतिमें उत्पन्न हुए अग्निदेवका व्यान करके उनका ‘जातकर्म’ संस्कार करे । तत्पश्चात् नालच्छेदन करके सूतककी शुद्धि करे । फिर आहुति देकर उस शिवसम्बन्धी अग्निका रुचि नाम रखें । इसके बाद माता-पिताका विसर्जन करके चूडाकर्म और उपनयन आदिसे लेकर आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कार करे । तत्पश्चात् घृतधारा आदिका होम करके स्त्रिकृत् होम करे । इसके बाद ‘रं’ धीजका उच्चारण करके अग्निपर जलका ठींटा डाले । फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईशा, लोकेश्वरगण और उनके अछोंका सब ओर कमशा: पूजन करके धूप, दीप

\* उपनयनसे आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कारोंकी नामावली इस प्रकार है—उपनयन, ब्रतवन्ध, समर्पणतन, विदाद, उपार्हन, उत्सर्जन, ( सात पाक-यज्ञ—) हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, वद्धिदण, प्रत्यवरोहण, अष्टकाहोम, ( सात हविर्युसंस्या— ), अन्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास, आव्रयणेष्टि, निस्तुप्तुवन्ध, सौत्रामणि, ( सात सोमवधु-संस्या— ) अग्निष्ठोन, भत्यप्रियोग, उव्यय, पोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम ।

आदिकी सिद्धिके लिये अग्निको अलग निकालकर कर्मविधिका शत्रु पुष्प एवं शूतयुक्त पूर्वोक्त होम-द्रव्य तैयार करके अग्निमें आसनकी कल्पना (भावना) करे और उसपर पूर्वत् महादेव और महादेवीका आवाहन, पूजन करके रूढ़ितिपर्यन्त सब कार्य सम्पन्न करे।

अथवा अपने आश्रमके लिये शास्त्रविहित अग्निहोत्र-कर्म करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे। शिवाश्रमी पुरुष इन सब वार्ताओंको समझकर होम-कर्म करे। इसके लिये दूसरी कोई विधि नहीं है। शिवाग्निका भस्म संग्रहणीय है। अग्निहोत्र-कर्मका भस्म भी संग्रह करनेके योग्य है। वैवाहिक अग्निका भस्म भी जो परिषक्त, पवित्र एवं मुक्तिप्रद हो, संग्रह करके रखना चाहिये। कपिला गायका नद गोवर, जो गिरते समय आकाशमें ही दोनों हाथोंपर रोक लिया गया है, उसम माना गया है। वह यदि अधिक गीला या अधिक कड़ा न हो, दुर्बन्धयुक्त और सूखा हुआ न हो तो अच्छा माना गया है। यदि वह पृथग्नीपर गिर गया हो तो उसमेंसे ऊपर और नीचेके हिस्सेको त्यागकर शीघ्रका भाग ले ले। उस गोवरका पिण्ड बनाकर उसे शिवाग्निआदिमें पूर्वमन्त्रके उचारणपूर्वक छोड़ दे जब वह पक जाय, तब उसे निकाल ले। उसमें जितना अधरका हो, उसको और जो भाग बहुत अधिक पक गया हो, उसको भी त्यागकर श्वेत भस्म ले ले और उसे धोटकर चूर्ण बना दे। इसके बाद उसे भस्म रखनेके पावरमें रख दे। भस्मगत्र धातुका, लकड़ीका, निट्रीज़ा, फ्ल्यूरका अथवा और किसी वस्तुका बनवा ले। वह रेखामें सुन्दर होना चाहिये। उसमें रख्ये हुए भस्मको जन्मी भाँति किसी शुभ, शुद्ध एवं समतल स्थानमें रखें। किंतु अपेक्ष्य या अविच्छिन्नके हाथमें भस्म न दे। नीचे अपवित्र स्थानमें भी न उड़े। नीचेके अङ्गोंसे उसका स्वर्ण न करे। भस्मी न तो उपेक्षा करे और न उसे लौंगे ही। शास्त्रोक्त अधिकार उस पावरे भस्म लेकर मन्त्रोचारणपूर्वक अपने लैट आदिमें लायें। दूसरे समयमें उसका उपयोग न हो और न अपेक्ष्य व्यक्तिमें हाथमें उसे दे। भगवान्

शिवका विसर्जन न हुआ हो, तभी भस्म संग्रह कर ले; क्योंकि विसर्जनके बाद उसपर चण्डका अधिकार हो जाता है।

जब अग्निकार्य सम्पन्न कर लिया जाय, तब शिवशास्त्रोक्त मार्गसे अथवा अपने गृहमन्त्रमें बतायी हुई विधिसे वलिकर्म करे। तदनन्तर अच्छी तरह लिपे-पुते मण्डलमें विद्यासनको विश्वाकर विद्याकोशकी स्थापना करके क्रमशः पुष्प आदिके द्वारा यजन करे। विद्याके सामने गुरुका भी मण्डल बनाकर दहाँ श्रेष्ठ आसन रखें और उसपर पुष्प आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर पूजनीय पुरुषोंकी पूजा करे और भूखोंको भोजन कराये। इसके बाद स्वयं सुखापूर्वक शुद्ध अब भोजन करे। वह अब तत्काल भगवान् शिवको नियेदित किया गया हो अथवा उनका प्रसाद हो। उसे आत्मशुद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक भोजन करे। जो अब चण्डको रामर्पित हो, उसे लोभव्या ग्रहण न करे। गन्ध और पुष्पमाला आदि जो अन्य वस्तुएँ हैं, उनके लिये भी यह विधि समान ही है अर्थात् चण्डका भगव होनेपर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये। वहाँ विद्यान् पुरुष 'मैं ही शिव हूँ' ऐसी बुद्धि न करे। भोजन और आचमन करके शिवका भन-ही-भग चिन्तन करते हुए मूलमन्त्रका उच्चारण करे। शेष समय शिवशास्त्रकी कथाके अवल आदि योग्य काव्यमें चिनाये। रातका प्रथम प्रहर बीत जानेपर मनोधर पूजा करके शिव और शिवाके लिये एक परम सुन्दर शरणा प्रस्तुत करे। उसके साथ ही भस्म, भोज्य, वस्त्र, नम्दन और पुष्पमाला आदि भी रख दे। मनसे और किंगादारा भी सब सुन्दर व्यवस्था करके पवित्र ही महादेवजी और महादेवीके चरणोंके निकट दायन करे। आदि उत्तरक शृदस्य हो तो वह वहाँ अग्नी पवित्रके साथ दायन करे। जो शृदस्य न हो, वे अकेले ही सोयें। उपःकाल धर्म जान भन-ही-भग पार्वतीदेवी तथा पार्वतीमहिति अदिनादी भगवान् विद्युतो प्रणाम करके देशकालोचित कार्य तथा शैन आदि कल्प एवं करे। किंतु यथाकृत शृदु आदि दावोंही दिव्य वर्तिनोंमें महादेव और महादेवीके जगमे। इसके बाद उप धर्म स्थिले हुए धर्म व्युक्तिपूर्णोदय गिरा और शिवी पूजा करके पूर्वोक्त कार्य आरम्भ करे। (प्रथम २०)

### काम्य कर्मके प्रसङ्गमें शत्रिष्ठिसहित पञ्चमुख महादेवकी पूजाके विधानका वर्णन

तदनन्तर शिवाग्नमेविद्योंके लिये नैमित्तिक पंथे विधि चतुर्कर उपमन्त्रयुजिने कहा—स्तुत्वग्न! नैमित्तिक विद्या नवन रहेगा, जो इहलोक और दत्तलोकमें

नैमित्तिक विद्या होगी। इसे वसा नहियांकी नवन रहेगा और दूसरे इसे वर्षा नहियां। ऐसे विद्या और नैमित्तिक विद्या अत्यन्त निष्ठ होती है। उनीं प्रवृत्त नहियां होंगी।

भी अधिक भेद नहीं है। जो मनुष्य शिवके आश्रित रहकर शान्तयश्चमें तत्त्वर होते हैं, वे शैव कहलाते हैं और जो शिवाश्रित भक्त भूतलपर कर्मयज्ञमें संलग्न रहते हैं, वे महान् ईश्वरका यज्ञ करनेके कारण माहेश्वर कहे गये हैं। इसलिये शानयोगी शैवोंको अपने भीतर भगवान्द्वारा कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये और कर्मपरायण माहेश्वरोंको बाहर विहित द्रव्यों तथा उपकरणोंद्वारा उसका सम्मादन करना चाहिये। आगे बताये जानेवाले कर्मके प्रयोगमें उनके लिये कोई भेद नहीं है।

गन्ध, वर्ण और रस आदिके द्वारा विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके मनोऽभिलिप्ति स्थानपर आकाशमें चँदोवा तान दे और उस स्थानको भलीभाँति लीप-पोतकर दर्पणके समान स्वच्छ बना दे। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त मार्गसे वहाँ पहले पूर्वदिशाकी कल्पना करे। उस दिशामें एक या दो हाथका मण्डल बनाये। उस मण्डलमें सुन्दर अष्टदल कमल अङ्कित करे। कमलमें कर्णिका भी होनी चाहिये। यथासम्भव सचित रङ्ग और सुवर्ण आदिके चूर्णसे उसका निर्माण करे। वह अत्यन्त शोभायमान और पाँच आवरणोंसे युक्त हो। कमलके आठ दलोंमें पूर्वादि क्रमसे अणिमा आदि आठ सिद्धियोंकी कल्पना करे तथा उनके केसरोंमें शक्तिसहित वामदेव आदि आठ रुद्रोंको पूर्वादि दलोंके क्रमसे स्थापित करे। कमलकी कर्णिकामें वैराघ्यको स्थान दे और वीजोंमें नवशक्तियोंकी स्थानना करे। कमलके कन्दमें शिव-सम्बन्धी धर्म और नालमें शिव-सम्बन्धी ज्ञानकी भावना करे। कर्णिकाके ऊपर अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलकी भावना करे। इन मण्डलोंके ऊपर शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वका चिन्तन करे। समूर्ण कमलासनके ऊपर सुखपूर्वक विराजमान और नाना प्रकारके विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत, पाँच आवरणोंसहित भगवान् शिवका माता पार्वतीके साथ पूजन करे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है। वे सतत प्रसन्न रहते हैं। उनकी प्रभा शीतल है। मस्तकपर विश्वमण्डलके समान चमकीली जटारूप सुकुट उनकी शोभा बढ़ाता है। वे व्याप्रन्वर्म धारण किये हुए हैं। उनके मुखारविन्दपर कुछ-कुछ मन्द मुस्कानकी छटा छा रही है। उनके हाथकी हयेलियाँ और पैरोंके तलवे लाल कमलके समान अरुण प्रभासे उद्घासित हैं। वे भगवान् शिव समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और सब प्रकारके आभूप्रणोंसे विभूषित हैं। उनके हाथोंमें उत्तमोत्तम दिव्य आयुध शोभा पा रहे हैं और

अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका लेप लगा हुआ है। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। अर्धचन्द्र उनकी शिखाके मणि हैं। उनका पूर्ववर्ती मुख प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्घासित एवं सौम्य है। उसमें तीन नेत्ररूपी कमल खिले हुए हैं तथा सिरपर बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा प्राप्त है। दक्षिणमुख नील जलधरके समान श्याम प्रभासे भासित होता है। उसकी भाँहें टेढ़ी हैं। वह देखनेमें भयानक है। उसमें गोलाकार लाल-लाल आँखें दृष्टिगोचर होती हैं। दाढ़ोंके कारण वह मुख विकराल जान पड़ता है। उसका पराभव करना किसीके लिये भी कठिन है। उसके अधरपल्लव फङ्कते रहते हैं। उत्तरवर्ती मुख मूर्गोंकी भाँति लाल है। काले-काले केशपाश उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसमें विभ्रमविलाससे युक्त तीन नेत्र हैं और उसका मस्तक अर्द्धचन्द्रमय मुकुटसे विभूषित है। भगवान् शिवका पश्चिम मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा तीन नेत्रोंसे प्रकाशमान है। उसका मस्तक चन्द्रलेखाकी शोभा धारण करता है। वह मुख देखनेमें सौम्य है और मन्द मुस्कानकी शोभासे उपासकोंके मनका मोहे लेता है। उनका पाँचवाँ मुख स्फटिकमणिके समान निर्मल, चन्द्रलेखासे समुज्ज्वल, अत्यन्त सौम्य तथा तीन ग्रुफुल नेत्रकमलोंसे प्रकाशमान है।

भगवान् शिव अपने दाहिने हाथोंमें शूल, परशु, वज्र, खड्ग और अग्नि धारण करके उन सबकी प्रभासे प्रकाशित होते हैं तथा वायें हाथोंमें नाग, वाण, घण्टा, पाश तथा अङ्गुष्ठ उनकी शोभा बढ़ाते हैं। पैरोंसे लेकर धुट्ठनोंतकका भाग निवृत्तिकलासे सम्बद्ध है। उससे ऊपर नाभितकका भाग प्रतिष्ठाकलासे, कण्ठतकका भाग विद्याकलासे, ललाटतकका भाग शान्तिकलासे और उसके ऊपरका भाग शान्तितीतिकलासे संयुक्त है। इस प्रकार वे पञ्चाध्वव्यापी तथा साक्षात् पञ्चकलामय शरीरधारी हैं। ईशानमन्त्र उनका मुकुट है। तत्पुरुष मन्त्र उन पुरातनदेवका मुख है। अँघोरमन्त्र द्वदश है। वामदेवमन्त्र उन महेश्वरका गुह्यभाग है और सद्योजातमन्त्र उनका युगल चरण है। उनकी मूर्ति अङ्गतीस कलामयी है। परमेश्वर शिवका विग्रह मातृका-( वर्णमाला )

\* कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चान्तरात्मा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकला और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। ये सब तत्त्व जीवके शरीरमें होते हैं। परमेश्वरके शरीरको शाक ( शक्तिस्तत्त्व एवं चिन्तन ) तथा मन्त्रमय बताया गया है। इन दो तत्त्वोंमें

मग, पञ्चव्रद्धि-('ईशानः सर्वविद्यानां' इत्यादि पाँच मन्त्र) मय, प्रणवमय तथा हंसशक्तिसे सम्बन्ध है। इच्छाशक्ति उनके अङ्गमें आरूढ़ है, शानशक्ति दक्षिण भागमें है तथा क्रियाशक्ति वामभागमें विराजमान है। वे त्रितत्वमय हैं अपांत् आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व उनके स्वरूप हैं। उनके सभा शिव साक्षात् विद्यामूर्ति हैं। इस प्रकार उनका भ्यान करना चाहिये।

मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना और सकलीकरणकी क्रिया करके मूलमन्त्रसे ही यथोचित रीतिसे क्रमशः पाद्य आदि

विशेषार्थपर्यन्त पूजन करे। फिर पराशक्तिके साथ साक्षात् मूर्तिमान् शिवका पूर्वोक्त मूर्तिमें आवाहन करके सदसद्ब्रह्मक्ति-रहित परमेश्वर महादेवका गन्धादि पञ्चोपचारेसे पूजन करे। पाँच व्रहामन्त्रोंसे, छः अङ्गमन्त्रोंसे, मातृका-मन्त्रसे, प्रणवसे, शक्तियुक्त शिवमन्त्रसे, शान्त तथा अन्य वैदमन्त्रोंसे अथवा केवल शिवमन्त्रसे उन परम देवका पूजन करे। पाद्यसे लेकर मुखशुद्धिपर्यन्त पूजन सम्बन्ध करके इष्टदेवका विसर्जन किये गिना ही क्रमः पाँच आवरणोंकी पूजा आरम्भ करे।

(अध्याय २८-२९)

### आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन

उपमन्त्रु कहते हैं—यदुनन्दन ! पहले शिवा और शिवके दायें और वायें भागमें क्रमशः गणेश और कार्तिकेयका गम्य आदि पाँच उपचारोद्धारा पूजन करे। फिर इन सबके चारों ओर ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच प्रद्वामूर्तियोंका शक्तिसहित क्रमशः पूजन करे। यह प्रथम आवरणमें क्रिया ज्ञानेवाला पूजन है। उसी आवरणमें हृदय आदि छः अङ्गों तथा शिव और शिवाका अग्निकोणसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। वहीं वाम आदि आठ रुद्रोंकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजा करे। यह पूजन वैकल्पिक है। यदुनन्दन ! पद में तुमसे प्रथम आवरणका वर्णन किया है।

अब प्रेमपूर्वक दूसरे आवरणका वर्णन किया जाता है। शद्वार्पक सुनो। पूर्व विशावाले दलमें अवन्तका और उपरे वामभागमें उनकी शक्तिका पूजन करे। दक्षिण दिशावाले दलमें शक्तिसहित सूक्ष्मदेवकी पूजा करे। पश्चिम दिशाके दलमें शक्तिसहित श्रियोत्तमका, उत्तर दिशावाले रुद्रमें शक्तियुक्त एकनेत्रका, ईशानकोणवाले दलमें एक-एवं और उनकी शक्तिका, अग्निकोणवाले दलमें विमूर्ति और उनसी शक्तिका, नैऋत्यकोणके दलमें श्रीकृष्ण और उनसी शक्तिका तथा वायव्यकोणवाले दलमें शक्तिसहित शिरणीरत्ना पूजन करे। समस्त चक्रवर्तिनोंकी भी दितीय आवरणमें ही पूजा करनी चाहिये। तृतीय अस्तरणमें शक्तियों-परिव अध्यरूपोंका पूर्वादि आठों दिशाओंमें क्रमशः पूजन है। भासु, ईशान, रुद्र, पशुपति, उमा, भीम और ऐसे भूमिके लक्ष्मीरूप होती हैं। समस्त चक्रवर्त्तन वर्षभूषण वर्षभूषण और वृषभ वर्ष और त्रितीय वर्षभूषण वर्ष होते हैं।

महादेव—ये क्रमशः आठ मूर्तियाँ हैं। इसके बाद उसी आवरणमें शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। महादेव, शिव, रुद्र, शंकर नील-लोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव, भयोद्धव तथा कपर्दीश (या कपालीश) —ये ग्यारह मूर्तियाँ हैं। इनमेंसे जो प्रथम आठ मूर्तियाँ हैं, उनका अग्निकोणवाले दलसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें पूजन करना चाहिये। देवदेवको पूर्वदिशाके दलमें स्थापित एवं गृजित करे और ईशानका पुनः अग्निकोणमें स्थापनपूजन करे। फिर इन दोनोंके बीचमें भयोद्धवकी पूजा करे और उनसीके बाद कपालीश या कपर्दीशका स्थापनपूजन करना चाहिये। उत्तृतीय आवरणमें फिर वृषभरुवा पूर्वमें, नन्दीवा दक्षिणमें, गद्यकालका उत्तरमें, शान्ताना अग्निकोणके दलमें, मातृकाओंका दक्षिण दिशाके दलमें, गणेशकोणवाले नैऋत्य कोणके दलमें, कार्तिकेयका पश्चिम दलमें, वैशाख वायव्य-कोणके दलमें, गौतमी उत्तरदलमें, चंद्रल देवानशेषमें तथा शाला एवं नन्दीवर्षदल बीचमें भूर्गमध्य कुरुनवा वर्षमें तथा शाला एवं नन्दीवर्षदल बीचमें भूर्गमध्य कुरुनवा वर्षमें करने के लिये उत्तरमालमें तित्तिला, शाला और मातृकाओंकी दक्षिण भूर्गमध्य, मातृकाओं वाला गणेशकोणवाले बीचमें वृषभरुवा, वृषभ और गणेशकोणवाले बीचमें नैऋत्य देवीश, वैशाख और कर्तिकिलके दीनमें शिरणीरत्नोंकी अस्ती उत्तरतारी श्रीरेत्ना, वैशाख और देवानश (नीरु)। इन सेवाएँ करनेवाली श्रीरेत्ना, वैशाख और देवानश (नीरु)। इन सेवाएँ वर्षानीशीशी पूजा होते हैं। रुद्रानश और शंकर लैनमें दुर्गा देवीसी पूजा होते हैं। इनी अस्तरणमें इन्हें विरुद्ध अस्तरण-

वर्गकी पूजा करे । इस अनुचरवर्गमें रुद्रगण, प्रमथगण और भूतगण आते हैं । इन सबके विविध रूप हैं और ये सब-के-सब अपनी शक्तियोंके साथ हैं । इनके बाद एकाग्रचित्त हो शिवाके सखीवर्गका भी स्थान एवं पूजन करना चाहिये ।

इस प्रकार तृतीय आवरणके देवताओंका विस्तारपूर्वक पूजन हो जानेपर उसके बाह्यभागमें चतुर्थ आवरणका चिन्तन एवं पूजन करे । पूर्वदलमें सूर्यका, दक्षिणदलमें चतुर्मुख व्रह्माका, पश्चिमदलमें रुद्रका और उत्तर दिशाके दलमें भगवान् विष्णुका पूजन करे । इन चारों देवताओंके भी पृथक्-पृथक् आवरण हैं । इनके प्रथम आवरणमें छहों अङ्गों तथा दीसा आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये । दीसा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोधा और विद्युता—इनकी क्रमशः पूर्व आदि आठ दिशाओंमें स्थिति है । द्वितीय आवरणमें पूर्वसे लेकर उत्तरतक क्रमशः चार मूर्तियोंकी और उनके बाद उनकी शक्तियोंकी पूजा करे । आदित्य, भास्कर, भानु और रवि—ये चार मूर्तियाँ क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओंमें पूजनीय हैं । तत्पश्चात् वर्क, व्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये चार मूर्तियाँ भी पूर्वादि दिशाओंमें पूजनीय हैं । पूर्वदिशामें विस्तरा, दक्षिण दिशामें सुतरा पश्चिम दिशामें वोधिनी और उत्तर दिशामें आप्यायिनीकी पूजा करे । ईशानकोणमें उषाकी, अग्निकोणमें प्रभाकी, नैश्वर्त्यकोणमें प्राशकी और वायव्यकोणमें संधाकी पूजा करे । इस तरह द्वितीय आवरणमें इन सबकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करनी चाहिये ।

तृतीय आवरणमें सौम, मङ्गल, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बुध, विशालबुद्धि वृहस्पति, तेजोनिधि शुक्र, शनैश्चर तथा धूम्रवर्णवाले भयंकर राहु-केतुका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे अथवा द्वितीय आवरणमें द्वादश आदित्योंकी पूजा करनी चाहिये और तृतीय आवरणमें द्वादश राशियोंकी । उसके बाह्य भागमें सात-सात गणोंकी सब और पूजा करनी चाहिये । ऋग्यियों, देवताओं, गन्धवों, नारों, अप्सराओं, ग्रामणियों, यज्ञों, यातुधानों, सात छन्दोमय अवर्षों तथा वालयिल्योंका पूजन करे । इस तरह तृतीय आवरणमें सूर्यदेवका पूजन करनेके पश्चात् तीन आवरणोंसहित व्रह्माजीका पूजन करे ।

पूर्व दिशामें हिरण्यगर्भका, दक्षिणमें विराट्का, पश्चिम दिशामें कालका और उत्तर दिशामें पुरुषका पूजन करे । हिरण्यगर्भ नामक जो पहले व्रहा है, उनकी अङ्गकान्ति कमलके समान है । काल जन्मसे ही अङ्गनके समान काले हैं और पुरुष स्फटिक मणिके समान निर्मल हैं । त्रिगुण, राजस, तामस

तथा सात्त्विक—ये चारों भी पूर्वादि दिशाके क्रमसे प्रथम आवरणमें ही स्थित हैं ।

द्वितीय आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें क्रमशः सनकुमार, सनक, सनन्दन और सनातनका पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् तीसरे आवरणमें ग्यारह प्रजापतियोंकी पूजा करे । उनमेंसे प्रथम आठका तो पूर्व आदि आठ दिशाओंमें पूजन करे, फिर शेष तीनका पूर्व आदिके क्रमसे अर्थात् पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिममें स्थापन-पूजन करे । दक्ष, रुचि, मृग, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, कतु, अन्ति, कश्यप और वसिष्ठ—ये ग्यारह विस्त्रित प्रजापति हैं । इनके साथ इनकी पतियोंका भी क्रमशः पूजन करना चाहिये । प्रसूति, आकृति, ख्याति, सम्भूति, धृति, स्मृति, क्षमा, संनति, अनसूया, देवमाता अदिति तथा अरुन्धती—ये सभी श्रृणि-पतियों पतिव्रता, सदा शिवपूजनपरायणा, कान्तिमती और प्रियदर्शना ( परम सुन्दरी ) हैं । अथवा प्रथम आवरणके चारों वेदोंका पूजन करे, फिर द्वितीय आवरणमें इतिहास-पुराणोंकी अर्चना करे तथा तृतीय आवरणमें धर्मशास्त्र-सहित सम्पूर्ण वैदिक विद्याओंका सब ओर पूजन करना चाहिये । चार वेदोंको पूर्वादि चार दिशाओंमें पूजना चाहिये, अन्य ग्रन्थोंको अपनी रुचिके अनुसार आठ या चार भागोंमें बाँटकर सब ओर उनकी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार दक्षिणमें तीन आवरणोंसे युक्त व्रह्माजीकी पूजा करके पश्चिममें आवरणसहित रुद्रका पूजन करे ।

ईशान आदि पाँच व्रहा और हृदय आदि छः अङ्गोंके रुद्रदेवका प्रथम आवरण कहा गया है । द्वितीय आवरण विद्येश्वरमय है । तृतीय आवरणमें भेद है । अतः उसका वर्णन किया जाता है । उस आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे त्रिगुणादि चार मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये । पूर्व दिशामें पूर्णरूप शिव नामक महादेव पूजित होते हैं, इनकी 'त्रिगुण' संज्ञा है ( क्योंकि ये त्रिगुणात्मक जगत्के आश्रय हैं ) । दक्षिण दिशामें 'राजस' पुरुषके नामसे प्रसिद्ध सृष्टिकर्ता व्रह्माका पूजन किया जाता है, ये 'भव' कहलाते हैं । पश्चिम दिशामें 'तामस' पुरुष अग्निकी पूजा की जाती है । इन्होंको संहारकारी हर कहा गया है । उत्तर दिशामें

१. पाशुपत-दर्दानमें विद्येश्वरोंकी संख्या आठ बतायी गयी है । उनके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी । इनको क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित करके इनकी पूजा करे । द्वितीय आवरणमें इन्होंकी पूजा बतायी गयी है ।

'सान्ति' पुरुष मुखदायक विष्णुका पूजन किया जाता है। वे ही विश्वालक 'भृड़' हैं। इस प्रकार पश्चिमभागमें शमुके शिवलमका, जो पञ्चीत तत्त्वोंका साक्षी छब्बीसंवाँ तत्त्वलम है, पूजन करके उत्तर दिशामें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।

इनके प्रथम आवरणमें वासुदेवको पूर्वमें, अनिरुद्धको दक्षिणमें, प्रश्नुमको पश्चिममें और संकर्षणको उत्तरमें स्थापित करके इनकी पूजा करनी चाहिये। यह प्रथम आवरण बताया गया। अब द्वितीय शुभ आवरण बताया जाता है। मत्स्य, रूप, वरह, नरसिंह, वामन, तीनमेंसे एक राम, आप श्रीकृष्ण और हयग्रीव—ये द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। तृतीय-आवरणमें पूर्वभागमें चक्रकी पूजा करे, दक्षिणभागमें कहीं भी प्रतिहत न होनेवाले नारायणाखका यजन करे, पश्चिममें पाञ्चजन्यका और उत्तरमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करे। इस प्रकार तीन आवरणोंसे युक्त साक्षात् विश्वामक परम हरि महाविष्णुकी, जो सदा सर्वत्र ज्यापक है, मूर्तिमें भावना करके पूजा करे। इस तरह विष्णुके चतुर्व्युहकमसे चार मूर्तियोंका पूजन करके क्रमशः उनकी चार शक्तियोंका पूजन करे। प्रभाका अग्निकोणमें, उत्तरतीका नैऋत्यकोणमें, गणाभिकाका वायव्यकोणमें तथा अमीमा ईशानकोणमें पूजन करे। इसी प्रकार भानु आदि गर्भियों और उनकी शक्तियोंका पूजन करके उसी आवरणमें तेस्रोंकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्मलि, वस्त्र, वायु, सोम, कुवेर तथा ईशान। ३३ प्रकार चौथे आवरणकी विधिपूर्वक पूजा सम्पन्न करके दक्षिणामें महेश्वरके आयुधोंकी अर्चना करे। ईशानकोणमें तेस्री त्रिशूलकी, पूर्वदिशामें बज्रकी, अग्निकोणमें परशुकी, दक्षिणमें वाणकी, नैऋत्यकोणमें खड़की, पश्चिममें पाशकी, उत्तराखण्डमें अङ्गुष्ठकी और उत्तर दिशामें पिनाककी पूजा है। करक्षात् पश्चिमाभिसुख रौद्रस्तपधारी क्षेत्रपालका अर्चन है।

३४ तरह पश्चम आवरणकी पूजाका सम्पादन करके दक्षम आवरण-देवताओंके वाह्यभागमें अथवा पाँचवें आवरणमें भृष्टाभ्योगिति महावृषभ नन्दिकेश्वरका पूर्वदिशामें पूजन है। तदनन्तर चमत्त देवयोनियोंकी चारों ओर अर्चना करे। उन्हें किना है आकाशमें विचरनेवाले ऋषि, सिद्ध, दैत्य, रुद्र, दुर्ग, अग्नत आदि नागराज, उन-उन नागेश्वरोंके

३५ शिरोंसे ३५ ग्रहत तत्त्वोंके साक्षी जीवको पञ्चासवों द्वारा वर्ते वे इससे भी परे हैं, वे सर्वताक्षी परमात्मा अवृत्ते रहते हैं।

कुलमें उत्तम हुए अन्य नाग, डाकिनी, भूत, वेताल, प्रेत और भैरवोंके नायक, नाना योनियोंमें उत्तम हुए अन्य पातालवासी जीव, नदी, समुद्र, पर्वत, बन, सरोवर, पशु, पश्ची, बुद्ध, कीट आदि क्षुद्र योनिके जीव, मनुष्य, नाना प्रकारके आकारवाले मुग, क्षुद्र जन्म, ब्रह्माण्डके भीतरके लोक, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डके बाहरके असंख्य भुजन और उनके अधीश्वर तथा दसों दिवाओंमें स्थित ब्रह्माण्डके आधारभूत रुद हैं और गुणजनित, मायाजनित, शक्तिजनित तथा उससे भी परे जो कुछ भी शब्दवाच्य जड़चेतनात्मक प्रगति है, उन सबको शिवा और शिवके पार्श्वभागमें स्थित जानकर उनका सामन्यलृपसे यजन करे। वे सब लोग हाथ जोड़कर मन्द मुस्कानयुक्त मुखसे सुशोभित होते हुए प्रेमपूर्वक महादेव और महादेवीका दर्शन कर रहे हैं, ऐसा चिन्तन करना चाहिये। इस तरह आवरण-पूजा सम्पन्न करके विशेषकी शान्तिके लिये पुनः देवेश्वर शिवकी अर्चना करनेके पश्चात् पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करे। तदनन्तर शिव और पार्वतीके सम्मुख उत्तम व्यज्ञनोंसे युक्त तथा अमृतके समान मधुर, शुद्ध एवं मनोहर महाचरका नैवेद्य निवेदन करे। वह महाचर बत्तीस आढक (ल्याभग तीन मन आठ सेर) का हो तो उत्तम है और कम-से-कम एक आढक (चार सेर) का हो तो निम्न श्रेणीका माना गया है। अपने वैभवके अनुसार जितना हो सके, महाचर तैयार करके उसे अद्वापूर्वक निवेदित करे। तदनन्तर जल और ताम्बूल-इलायची आदि निवेदन करके आरती उत्तारकर शोप पूजा समाप्त करे। याग-के उपयोगमें आनेवाले द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदिशों उत्तम श्रेणीका ही तैयार कराकर दे। भक्तिमान् पुरुष वैभव द्वारा हुए धन व्यय करनेमें कंजसी न करे। जो शठ या कंजूर है और पूजाके प्रति उपेक्षाकी भावना रखता है, वह वर्दि कृपणतावश कर्मको किसी अद्वृत्से हीन कर दे तो उसके काम्यकर्म सफल नहीं होते, ऐसा सत्युद्वयोऽन्त रुपन है।

इसलिये मनुष्य यदि फलसिद्धिका इच्छुक हो तो उपेक्षाभावको ल्यागकर सम्पूर्ण अङ्गोंके योगसे काम्यकर्मोऽन्त समाप्त होना करे। इस तरह पूजा समाप्त करके महादेव और महादेवी की प्रणाम करे। फिर भक्तिभावसे मनको एकाग्र करके मन्त्रिभाषण करे। लुतिके पश्चात् साथक उत्तुकतपूर्वक रुदनेन्द्रन एवं सौ आठ वार और सम्भव हो हो एक दृश्यमें अर्दिद वा पञ्चाक्षरी विद्याका जप करे। तदनन्तर कम्बा दिया और गुह्यकी पूजा करके अरने अनुदय और भृद्दन अनुग्रह यज्ञमण्डरके सदस्योंका भी पूजन करे। यदि आत्मसंकल्प

देवेश्वर शिवका विसर्जन करके यज्ञके उपकरणोंसहित वह सारा मण्डल गुरुको अथवा शिवचरणाश्रित भक्तोंको दे दे । अथवा, उसे शिवके ही उद्देश्यसे शिवके क्षेत्रमें समर्पित कर दे । अथवा समस्त आवरण-देवताओंका यथोचित रीतिसे पूजन करके सात प्रकारके होमद्रव्योंद्वारा शिवाग्निमें इष्टदेवताका यज्ञन करे ।

यह तीनों लोकोंमें विख्यात योगेश्वर नामक योग है । इससे बढ़कर कोई योग निःमुक्तनमें कहीं नहीं है । संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इससे साध्य न हो । इस लोकमें मिलनेवाला कोई फल हो या परलोकमें, इसके द्वारा सब सुलभ हैं । यह इसका फल नहीं है, ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता; क्योंकि सम्पूर्ण श्रेयोरूप साध्यका यह श्रेष्ठ साधन है । यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि पुरुष जो कुछ फल चाहता है, वह सब चिन्तामणिके समान इससे प्राप्त हो सकता है । तथापि किसी क्षुद्र फलके उद्देश्यसे इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि किसी महान्‌से लघु फलकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्वयं लघुतर हो जाता है । महादेवजीके उद्देश्यसे महान्‌ या अल्प जो भी कर्म किया जाय, वह सब सिद्ध

होता है । अतः उन्हींके उद्देश्यसे कर्मका प्रयोग करना चाहिये । शनु तथा मृत्युपर विजय पाना आदि जो फल दूसरोंसे सिद्ध होनेवाले नहीं हैं, उन्हीं लौकिक या पारलौकिक फलोंके लिये विद्वान्‌ पुरुष इसका प्रयोग करे । महापातकोंमें, महान्‌ रोगसे भय आदिमें तथा दुर्भिक्ष आदिमें यदि शान्ति करनेकी आवश्यकता हो तो इसीसे शान्ति करे । अधिक बढ़-बढ़कर वातें बनानेसे क्या लाभ ? इस योगको महेश्वर शिवने शैवोंके लिये बड़ी भारी आपत्तिका निवारण करनेवाला अपना निजी अस्त्र बताया है । अतः इससे बढ़कर यहाँ अपना कोई रुक्ष नहीं है, ऐसा समझकर इस कर्मका प्रयोग करनेवाला पुरुष शुभ फलका भागी होता है । जो प्रतिदिन पवित्र एवं एकाग्र-चित्त होकर स्तोत्रमात्रका पाठ करता है, वह भी अभीष्ट प्रयोजनका अष्टमांश फल पा लेता है । जो अर्थका अनुसंधान करते हुए पूर्णिमा, अष्टमी अथवा चतुर्दशीको उपवासपूर्वक स्तोत्रका पाठ करता है, उसे आधा अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है । जो अर्थका अनुसंधान करते हुए लगातार एक मासतक स्तोत्रका पाठ करता है और पूर्णिमा, अष्टमी एवं चतुर्दशीको ब्रत रखता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट फलका भागी होता है ।

( अध्याय ३० )

### शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मङ्गलकी कामना

उपमन्युस्वाच्च

स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पञ्चावरणमार्गतः ।  
योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्तये ॥ १ ॥

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! अब मैं तुम्हारे समक्ष पञ्चावरण-मार्गसे की-जानेवाली स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिससे यह योगेश्वर नामक युष्यकर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न होता है ॥ १ ॥

जय जय जगदेकनाथ शम्भो

प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव ।

अतिगतकल्पुप्रपञ्चवाचा-

मपि मनसां पद्वीमतीततत्त्वम् ॥ २ ॥

जगत्के एकमात्र रुक्ष ! नित्य चिन्मयस्वभाव ! प्रकृति-मनोहर शम्भो ! आपका तत्त्व कल्पुराशिसे रहित, निर्मल वाणी तथा मनकी पहुँचसे भी परे है । आपकी जय हो, जय हो ॥ २ ॥

स्वभावनिर्मलभोग जय सुन्दरचेष्टित ।  
स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्थव ॥ ३ ॥

आपका श्रीविग्रह स्वभावसे ही निर्मल है, आपकी चेष्टा

परम सुन्दर है, आपकी जय हो । आपकी महाशक्ति आपके ही तुल्य है । आप विशुद्ध कल्पाणमय गुणोंके महात्मा हैं, आपकी जय हो ॥ ३ ॥

अनन्तकान्तिसम्पद जयासद्विग्रह ।

अतकर्यमहिमाधार जयनाकुलमङ्गल ॥ ४ ॥

आप अनन्त कान्तिसे सम्पन्न हैं । आपके श्रीविग्रहकी कहीं तुलना नहीं है, आपकी जय हो । आप अतकर्यमहिमाके आधार हैं तथा शान्तिमय मङ्गलके निकेतन हैं । आपकी जय हो ॥ ४ ॥

निरज्जन निराधार जय निष्कारणोदय ।

निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण ॥ ५ ॥

निरज्जन (निर्मल), आधारहित तथा विना कारणके प्रकृति-होनेवाले शिव ! आपकी जय हो । निरन्तर परमानन्दमय ! शान्ति और सुखके कारण ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

जयतिपरमैश्वर्य जयतिकरुणास्पद ।

जय स्वतन्त्रसर्वस्य जयासद्विवेभव ॥ ६ ॥

अतिशय उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे मुशोभित तथा अत्यन्त कदम्ब-

के आधार ! आपकी जय हो । प्रभो ! आपका सब कुछ  
तदन्त है तथा आपके बैभवकी कहीं समता नहीं है; आपकी  
जय हो, जय हो ॥ ६ ॥

**जयवृत्तमहाविश्व जयानावृत केनचित् ।**  
**जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुच्चर ॥ ७ ॥**

आपने विराट् विश्वको व्याप्त कर रखा है, किंतु आप  
किसी भी व्याप्त नहीं हैं । आपकी जय हो, जय हो । आप  
उपरे उक्षुष्ट हैं, किंतु आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है । आपकी  
जय हो, जय हो ॥ ७ ॥

**जयद्वृत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय ।**  
**जयमय जयामाय जयाभय जयामल ॥ ८ ॥**

आप अद्वृत हैं, आपकी जय हो । आप अक्षुद्र  
(महान्) हैं, आपकी जय हो । आप अक्षत (निर्विकार)  
हैं, आपकी जय हो । आप अविनाशी हैं, आपकी जय हो ।  
अपेय परमात्मन् । आपकी जय हो । मायारहित महेश्वर !  
आपकी जय हो । अजन्मा शिव ! आपकी जय हो । निर्मल  
शंकर ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥

**महाभूज महासार महागुण महाकथ ।**  
**महाव्रत महामाय महारस महारथ ॥ ९ ॥**

महावाहो ! महासार ! महागुण ! महती कीर्तिकथासे  
उक्त ! महावली ! महामायावी ! महान् रसिक तथा महारथ !  
आपकी जय हो ॥ ९ ॥

**नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे ।**  
**नमः शिवाय शान्ताय नमः शिवतराय ते ॥ १० ॥**

आप परम आण्डको नमस्कार है । आप परम कारण-  
हैं नमस्कार है । शान्त शिवको नमस्कार है और आप परम  
प्रभुको नमस्कार है ॥ १० ॥

**रेत्पर्णमिदं खत्स्तं जगद्वि ससुरासुरम् ॥ ११ ॥**  
**सस्त्वदिवितामाक्षं क्षमते कोऽतिवर्तितुम् ॥ १२ ॥**

रेत्पर्णों और असुरोंसहित यह तम्भूर्ण जगत् आपके  
पक्ष है । नवः आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेमें कौन  
पर्यंत उल्ला है ॥ ११-१२ ॥

**ममोऽसुराशास्ये प्रायितं सम्प्रयच्छतु ॥ १३ ॥**  
**रेत्पर्णं रेय ! यह सेवक एकमात्र आपके ही आश्रित**

है; अतः व्याप्त इसपर अनुग्रह करके इसे इरकी प्रायित वलु  
प्रदान करें ॥ १३ ॥

**जयाम्बिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि ।**  
**जयनवदिकैद्वर्ये जयानुपमविग्रहे ॥ १४ ॥**

अम्बिके ! जगन्मातः ! आपकी जय हो । सर्वजगन्मयी !  
आपकी जय हो । असीम ऐश्वर्यशालिनि ! आपकी जय हो ।  
आपके श्रीविग्रहकी कहीं उपमा नहीं है, आपकी जय हो ॥ १४ ॥

**जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्ध्वन्तभज्जिके ।**  
**जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे ॥ १५ ॥**

मन, वाणीसे अतीत शिवे ! आपकी जय हो । अशानात्म-  
कारका भङ्गन करनेवाली देवि ! आपकी जय हो । जन्म और  
जरासे रहित उमे ! आपकी जय हो । कालसे भी अतिशय  
उक्षुष्ट शक्तिवाली दुर्गे ! आपकी जय हो ॥ १५ ॥

**जयानेकविधानस्थे जय विश्वेश्वरप्रिये ।**  
**जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजम्भिणि ॥ १६ ॥**

अनेक प्रकारके विधानोंमें स्थित परमेश्वरी ! आपकी जय  
हो । विश्वनाथ-प्रिये ! आपकी जय हो । समस्त देवताओंकी  
आराधनीया देवि ! आपकी जय हो । समूर्ण विश्वास विद्वार  
करनेवाली जगद्मिके ! आपकी जय हो ॥ १६ ॥

**जय मङ्गलदिव्याङ्गि जय मङ्गलदीपिके ।**  
**जय मङ्गलचरित्रे जय मङ्गलदीयिनि ॥ १७ ॥**

मङ्गलमय दिव्य अङ्गेवाली देवि ! आपकी जय हो ।  
मङ्गलको प्रकाशित करनेवाली ! आपकी जय हो । मङ्गलमय  
चरित्रवाली सर्वमङ्गले ! आपकी जय हो । नङ्गलदीयिनि !  
आपकी जय हो ॥ १७ ॥

**नमः परमकल्याणगुणसंचयमृतं ।**  
**त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्वयेव लीयते ॥ १८ ॥**

परम कल्याणमय गुणोंकी आप दृति है, आपकी  
नमस्कार है । समूर्ण वगत् आपसे ही उत्तम दुर्गा है, आप  
आपसे ही लीन होगा ॥ १८ ॥

**त्वद्विनातः फलं दातुर्मादवरोऽपि न गच्छनुयात् ।**  
**जन्मप्रभृति देवेदिव जनोऽयं त्वदुपादितः ॥ १९ ॥**  
**अतोऽत्य तव भक्त्या निर्वित्य नतोऽगम ।**

देवेश्वर ! अतः अपरेदिवा देवता ही रह देवता, आप  
नहीं ही रहते । वह जल उत्तरायांते ही रहते, आप

आया हुआ है। अतः देवि ! आप अपने इस भक्तका मनोरथ सिद्ध कीजिये ॥ १९३ ॥

**पञ्चवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसंनिभः ॥ २० ॥**

वर्णब्रह्मकलादेहो देवः सकलनिष्कलः ।

**शिवमूर्तिसमारूढः शान्त्यतीतः सदाशिवः ।**

भक्त्या मयार्चितो महां प्रार्थितं शं प्रयच्छतु ॥ २१ ॥

प्रभो ! आपके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। आपकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल है। वर्ण, ब्रह्म और कला आपके विग्रहरूप हैं। आप सकल और निष्कल देवता हैं। शिवमूर्तिमें सदा व्याप रहनेवाले हैं। शान्त्यतीत पदमें विराजमान सदाशिव आप ही हैं। मैंने भक्तिभावसे आपकी अर्घना की है। आप मुझे प्रार्थित कल्याण प्रदान करें ॥ २०-२१ ॥

**सदाशिवाङ्कमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाद्वया ।**

जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम् ॥ २२ ॥

सदाशिवके अङ्कमें आरूढ़, इच्छाशक्तिस्वरूपा, सर्वलोकजननी शिवा मुझे मनोरथाच्छत वस्तु प्रदान करें ॥ २२ ॥

**शिवयोर्दयितौ पुत्रौ देवौ हेरम्बवण्मुखौ ।**

शिवानुभावौ सर्वशौ शिवज्ञानमृताशिनौ ॥ २३ ॥

तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ ।

सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैश्चिद्दरौरपि ॥ २४ ॥

सर्वलोकपरित्रिणं कर्तुमभ्युदितौ सदा ।

स्वेच्छावतारं कुर्वन्तौ स्वांशमेदैरनेकशः ॥ २५ ॥

ताविमौ शिवयोः पाश्वे नित्यमित्यं मयार्चितौ ।

तयोराद्वां पुरस्फूत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम् ॥ २६ ॥

शिव और पार्वतीके प्रिय पुत्र, शिवके समान प्रभावशाली सर्वत्र तथा शिव-ज्ञानमृतका पान करके तृप्त रहनेवाले देवता गणेश और कार्तिकेय परस्पर स्नेह रखते हैं। शिवा और शिव दोनोंसे सत्कृत हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता भी इन दोनों देवोंका सर्वथा सत्कार करते हैं। ये दोनों भाई निरन्तर समर्पण लोकोंकी रक्षा करनेके लिये उद्यत रहते हैं और अपने विभिन्न अंशोद्वारा अनेक बार स्वेच्छापूर्वक अवतार धारण करते हैं। ये ही ये दोनों वन्यु शिव और शिवाके पाश्वभागमें भेर द्वारा इस प्रकार पूजित हो उन दोनोंकी आज्ञा ले प्रतिदिन मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें ॥ २३—२६ ॥

**शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यं सदाशिवम् ।**

मूर्द्धभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः ॥ २७ ॥

**शिवार्चनरतं शान्तं शान्त्यतीतं खमास्थितम् ।**

पञ्चाक्षरान्तिमं वीजं कलाभिः पञ्चभिर्युतम् ॥ २८ ॥

प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम् ।

पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ २९ ॥

जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल, ईशान नामसे प्रसिद्ध और सदा कल्याणस्वरूप है, परमात्मा शिवकी मूर्धाभिमानिनी मूर्ति है; शिवार्चनमें रत, शान्त, शान्त्यतीत कलामें प्रतिष्ठित, आकाशमण्डलमें स्थित शिव-पञ्चाक्षरका अन्तिम वीज-स्वरूप, पाँच कलाओंसे युक्त और प्रथम आवरणमें सबसे पहले शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे ॥ २७—२९ ॥

**बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम् ।**

पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः ॥ ३० ॥

शान्त्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम् ।

प्रथमं शिववीजेषु कलासु च चतुष्कलम् ॥ ३१ ॥

पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सह समर्चितम् ।

पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३२ ॥

जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे युक्त पुरातन, तत्पुरुष नामसे विख्यात, परमेष्ठी शिवके पूर्ववर्ती मुखका अभिमानी, शान्तिकलास्वरूप या शान्तिकलामें प्रतिष्ठित, वायु-मण्डलमें स्थित, शिव-नरणार्चन-परायण, शिवके वीजोंमें प्रथम और कलाओंमें चार कलाओंसे युक्त है मैंने पूर्वदिशामें भक्तिभावसे शक्तिसहित जिसका पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म शिव मेरी प्रार्थना सफल करे ॥ ३०—३२ ॥

**अञ्जनादिप्रतीकाशमधोरं धोरविग्रहम् ।**

देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम् ॥ ३३ ॥

विद्यापदं समारूढं बहिमण्डलमध्यगम् ।

द्वितीयं शिववीजेषु कलास्वष्टकलमितम् ॥ ३४ ॥

शम्भोद्दिशिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।

पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३५ ॥

जो अञ्जन आदिके समान श्याम, धोर शरीरवाला एवं अयोर नामसे प्रसिद्ध है, महादेवजीके दक्षिण मुखका अभिमानी तथा देवाधिदेव शिवके चरणोंका पूजक है, विद्याकथार आरूढ और अग्निमण्डलके मध्य विराजमान है, यिवरीत्रिमें द्वितीय तथा कलाओंमें अष्टकलायुक्त एवं भगवान् दिव्यदक्षिणभागमें शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे ॥ ३३—३५ ॥

कुक्षमदोदसंकाशं वामाख्यं वरवेषधृक् ।  
 वक्षत्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम् ॥ ३६ ॥  
 वारिमण्डलमध्यस्थं महादेवाच्चने रतम् ।  
 तुरीयं शिवर्वजेषु त्रयोदशकलान्वितम् ॥ ३७ ॥  
 द्वयोत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।  
 पवित्रं परमं व्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३८ ॥

जो कुद्दमचूर्ण अथवा केसरयुक्त चन्दनके समान  
खण्डीत वर्णवाला, सुन्दरवेशधारी और वामदेव नामसे  
प्रसिद्ध है भगवान् शिवके उत्तरवर्ती मुखका अभिमानी है,  
प्रतिष्ठाकलामें प्रतिष्ठित है, जलके मण्डलमें विराजमान तथा  
महादेवजीकी अर्चनामें तत्पर है, शिव-चौराजोंमें चतुर्थ तथा  
तेरह कलाओंसे युक्त है और महादेवजीके उत्तर भागमें शक्ति-  
के साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परत्रह मेरी प्रार्थना पूर्ण  
कर ॥ ३६—३८ ॥

शङ्कुनेन्दुधवलं सद्याख्यं सौम्यलक्षणम् ।  
 शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम् ॥ ३९ ॥  
 निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम् ।  
 हरीयं शिवयोजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम् ॥ ४० ॥  
 श्वस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।  
 पश्चिमं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ४१ ॥

जो शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमाके समान धवल, सौम्य  
तथा सुधोजात नामसे विस्थात है, भगवान् शिवके पश्चिम  
कुम्भा अभिमानी एवं शिवचरणोंकी अर्द्धनामें रत है,  
निरूपितकृतमें प्रतिष्ठित तथा पृथ्वीमण्डलमें स्थित है, शिव-  
रेण्में तृतीय, आठ कलाओंसे युक्त और महादेवजीके पश्चिम-  
नामें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परद्रव्य मुझे  
नंदी प्राप्ति वस्तु दे ॥ ३९-४१ ॥

शिवस्य तु शिवायाद्य हन्मूर्तीं शिवभाविते ।  
नयोगदां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४२ ॥

शिव और सियाकी हृदयलमा मूर्तियाँ शिवभावसे भावित  
ही जही देवोंकी आजा शिरेधार्य करके मेरा मनोरथ पूर्ण  
हो ॥ ४२ ॥

३८४ एवं शिवायाद्य शिखामूर्तीं शिवाधिते ।

सहृदय शिवयोराह्मं ते मे कार्म प्रयच्छताम् ॥ ४३ ॥

तिथ और द्वियज्ञ स्थिताखणा मूर्तियाँ दिवके ही आन्ध्रित  
प्रभु ज्ञ द्वयोंही आशका भादर करके भुवे मेरी अभीष्ट  
३२५ इन द्वयों ॥ ४३ ॥

शिवस्य च शिवायाश्च वर्णणा शिवभाविते ।  
सत्कृत्य शिवयोराह्नां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४३ ॥

शिव और शिवाकी कवचरूपा मूर्तियाँ दिवभावसे भावित  
हो शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मेरी कामना सफल  
करें ॥ ४४ ॥

शिवस्य च शिवायाइच नेत्रमूर्तीं शिवाप्रिते ।  
सत्कृत्य शिवयोराद्धां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४५ ॥

शिव और शिवाकी नेत्रलया मूर्तियाँ शिवके आश्रित रह  
उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मेरा मनोरथ  
प्रदान करें ॥ ४५ ॥

अद्यमूर्तीं च शिवयोनित्यमर्चनतपरे ।  
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४६ ॥

शिव और शिवाकी अस्तरुणा मूर्तियाँ नित्य उन्होंना दानाक  
अर्चनमें तत्पर रह उनकी आज्ञाका सत्कार करती हुई<sup>१</sup>  
मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ४६ ॥

वामो ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा ।  
 वलो विकरणश्चैव वलप्रमयनः परः ॥ ४७ ॥  
 सर्वभूतस्य दमनस्तादशाश्चाष्टक्यः ।  
 प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥ ४८ ॥

प्राथेत भ प्रवच्छतु ॥  
 वाम, उद्येष्ट, रुद्र, काल, विकरण, वलविकरण, वलप्रमथन  
 तथा सर्वभूतदमन—ये आठ शिव-मूर्तियाँ तथा इनकी कैवी  
 ही आठ शक्तियाँ—वामा, उद्येष्टा, दद्राणी, काली, विकरणी,  
 वलविकरणी, वलप्रमथनी तथा सर्वभूतदमनी—ये सब  
 शिव और शिवाके ही शासनते मुखे प्रार्थित वहनु प्रदान  
 करें ॥ ४७-४८ ॥

अथानन्तरत्र सूक्ष्मशब्दं शिवद्वयायेकनेत्रकः ।  
एकरुद्ग्रस्त्रमूर्तिशब्दं शीकण्ठशब्दं शिखाण्डिकः ॥ ४७ ॥

तथायौ शक्यस्तेषां दिनीयावरणप्रचाचा ।  
ते मे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शास्त्रान् ॥ १० ॥

अनन्त, सूक्ष्म, शिव (अथवा त्रिपत्नि) ॥ १०५७ ॥  
एकलद, विमृति, शीकुण्ड और त्रिलोकी—जो अब विवेच  
तथा इनकी दैर्घ्य ही अब गंगारह—अब तो सूक्ष्म,  
शिवा (अथवा त्रिपत्नि), एकलद, लक्ष्मण, विमृति,  
शीकुण्डी और त्रिलोकी; त्रिलोकी विवेच; अब जो इन  
हुई है, शिवा और त्रिलोकी त्रिपत्नि तो अब जो इन  
करें ॥ १०५८ ॥

भवाद्या मूर्तयश्चायौ तासामपि च शक्यः ।  
महादेवाद्यश्चान्ये तथैकादशमूर्तयः ॥ ५१ ॥  
शक्तिभिः सहितः सर्वे तृतीयाधरणे स्थिताः ।  
सत्कृत्य शिवयोराजां दिशान्तु फलमीप्सितम् ॥ ५२ ॥

भव आदि आठ मूर्तियाँ और उनकी शक्तियाँ तथा शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियाँ, जिनकी स्थिति तीसरे आवरणमें हैं, शिव और पार्वतीकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट फल प्रदान करें ॥ ५१-५२ ॥

बृपराजो महातेजा महामेघसमस्वनः ।  
मेरुमन्द्रकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः ॥ ५३ ॥  
सिताभ्यशिखराकारकुदा परिशोभितः ।  
महभोगीन्द्रकल्पेन वालेन च विराजितः ॥ ५४ ॥  
रक्तास्यशृङ्खचरणो रक्तप्रायविलोचनः ।  
पीवरोद्धतसर्वाङ्गः सुचारुगमनोज्ज्वलः ॥ ५५ ॥  
प्रशास्तलक्षणः श्रीमान् प्रज्वलन्मणिभूषणः ।  
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्धर्जवाहनः ॥ ५६ ॥  
तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः ।  
गोराजपुरुषः श्रीमान् श्रीमच्छूलवरायुधः ।  
तयोराजां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ५७ ॥

जो बृपमोके राजा, महातेजस्वी, महान् मेघके समान शब्द करनेवाले, मेरु, मन्दराचल, कैलास और हिमाल्यके शिखरकी भाँति ऊँचे एवं उज्ज्वल वर्णवाले हैं, श्वेत वादलोके शिखरकी भाँति ऊँचे ककुदसे शोभित हैं, महानागराज (शेष) के शरीरकी भाँति पूँछ जिनकी शोभा बढ़ाती है, जिनके मुख, सींग और पैर भी लाल हैं, नेत्र भी प्रायः लाल ही हैं, जिनके सारे अङ्ग भोटे और उन्नत हैं, जो अपनी मनोहर चालसे वड़ी शोभा पाते हैं, जिनमें उत्तम लक्षण विद्यमान हैं, जो चमचमाते हुए मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हो अस्यत्त दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, जो भगवान् शिवको प्रिय हैं और शिवमें ही अनुरक्त रहते हैं, शिव और शिवा दोनोंके ही जो ध्वज और वाहन हैं तथा उनके चरणोंके स्पर्शसे जिनका पृष्ठभाग परम पवित्र हो गया है, जो गौओंके राजपुरुष हैं, वे श्रेष्ठ और चमकील निश्चल धारण करनेवाले नन्दिकेधर बृपम शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ५३—५७ ॥

नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः ।  
सनारायणकैद्वैर्नित्यमभ्यर्थ्य वन्दितः ॥ ५८ ॥  
शर्वस्यान्तःपुरद्वारि सार्वं परिजनैः स्थितः ।  
सर्वेश्वरसमग्रख्यः सर्वासुरविर्मद्दनः ॥ ५९ ॥

सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः ।  
शिवप्रियः शिवासक्तः श्रीमच्छूलवरायुधः ॥ ६० ॥  
शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि ।  
सत्कृत्य शिवयोराजां स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६१ ॥

जो गिरिराजनन्दिनीपार्वतीके लिये पुत्रके तुल्य प्रिय हैं, श्री-विष्णु आदि देवताओंद्वारा नित्य पूजित एवं वन्दित हैं, भगवान् शंकरके अन्तःपुरके द्वारपर परिजनोंके साथ खड़े रहते हैं, सर्वेश्वर शिवके समान ही तेजस्वी हैं तथा समस्त असुरोंको कुचल देनेकी शक्ति रखते हैं, शिवधर्मका पालन करनेवाले सम्पूर्ण शिवभक्तोंके अध्यक्षपदपर जिनका अभिषेक हुआ है, जो भगवान् शिवके प्रिय, शिवमें ही अनुरक्त तथा तेजस्वी त्रिशूल नामक श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले हैं, भगवान् शिवके शरणागत भक्तोंपर जिनका स्नेह है तथा शिवभक्तोंका भी जिनमें अनुराग है, वे महातेजस्वी नन्दीश्वर शिव और पार्वतीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ५८—६१ ॥

महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः ।  
महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु ॥ ६२ ॥

दूसरे महादेवके समान महातेजस्वी महाबाहु महाकाल महादेवजीके शरणागत भक्तोंकी नित्य ही रक्षा करें ॥ ६२ ॥

शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्दर्ढकः सदा ।

सत्कृत्य शिवयोराजां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ६३ ॥

वे भगवान् शिवके प्रिय हैं, भगवान् शिवमें उनकी आसक्ति है तथा वे सदा ही शिव तथा पार्वतीके पूजक हैं, इसलिये शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ६३ ॥

सर्वशाखार्थतत्त्वज्ञः शास्त्रा विष्णोः परा ततुः ।

महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः ।

तयोराजां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६४ ॥

जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्त्विक अर्थके ज्ञाता, भगवान् विष्णुके द्वितीय स्वरूप, सदके शासक तथा महामोहात्मा कद्मके पुत्र हैं, मधु, फलका गुदा और आसव जिन्हें प्रिय हैं, वे नागराज भगवान् शेष शिव और पार्वतीकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरी इच्छाको पूर्ण करें ॥ ६४ ॥

व्रह्माणी चैव महेशी कौमारी वैष्णवी तथा ।

वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डविक्रमा ॥ ६५ ॥

सा वै मातरः सत् सर्वलोकस्य मातरः ।  
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु परमेश्वरशासनात् ॥ ६६ ॥

ग्रन्थाणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, भावेन्द्री  
तथा प्रचण्ड पराक्रमशालिनी चामुण्डा देवी—ये सर्वलोक-  
वत्ती यात माताएँ परमेश्वर शिवके आदेशसे मुझे मेरी प्रार्थित  
ततु प्रदान करें ॥ ६५-६६ ॥

प्रतमातङ्गधनो गङ्गोमारांकरात्मजः ।  
आकाशदेहो दिव्याहुः सोमसूर्यान्निलोचनः ॥ ६७ ॥  
पेराकतादिभिर्दिव्यैर्दिग्जैर्नित्यमर्चितः ।  
गियाशानमदोद्दिभ्यस्त्रिदशानामविघ्नकृत् ॥ ६८ ॥  
पित्रकृत्यासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः ।  
सत्कृत्य शिवयोरादीनां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ६९ ॥

विनका भतवाले हाथीका-सा मुख है; जो गङ्गा, उमा  
और शिवके पुत्र हैं; आकाश जिनका शरीर है, दिशाएँ भुजाएँ  
हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं;  
प्रेत आदि दिव्य दिग्गज जिनकी नित्य पूजा करते हैं,  
प्रेत मस्तकसे शिवशानमय मदकी धारा वहती रहती है,  
देवताओंके विष्वका निवारण करते और असुर आदिके  
पासें विष्व डालते रहते हैं, वे विष्वराज गणेश शिवसे  
जीते हो शिवा और शिवकी आशा शिरोधार्य करके मेरा  
नेत्र प्रदान करें ॥ ६७—६९ ॥

प्लुतः शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः ।  
संनेध तन्यो देवो द्विपर्णातनयः पुनः ॥ ७० ॥  
प्रायध्य गणाम्यायाः कृत्तिकानां तथैव च ।  
गणायेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः ॥ ७१ ॥  
रेतजित्वेन्द्रसेननीस्तारकासुरजित्तथा ।  
किंतुं मैत्रमुख्यानां वेधकथ्य स्वतेजसा ॥ ७२ ॥  
प्रसर्गेत्तरप्रस्थः शतपञ्चदलेक्षणः ।  
किंतुः सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत् ॥ ७३ ॥  
प्रियेनः विष्वासकः शिवपादार्चकः सदा ।  
प्रियेन विष्वयोरादीनां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ७४ ॥

प्रियेनः सुख है, भगवान् शिवसे जिनकी उत्पत्ति हुई  
है, विष्व और दूष धारण करनेवाले प्रभु हैं, अग्निके पुत्र  
(विष्व) के बालक हैं; गङ्गा, गणाम्या तथा  
प्रेत (विष्व) हैं; विष्वाय, शाखा और नैगमेय—इन  
पासें तथा विष्व रहते हैं; जो इन्द्रविजयी, इन्द्रके  
पास विष्वानुस्तो प्रस्तु करनेवाले हैं; जिन्होंने

अपनी शक्तिसे मेरु आदि पर्वतोंको छेद डाला है, जिनकी  
अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, नेत्र प्रफुल्ल कमलके  
समान सुन्दर हैं, कुमार नामसे जिनकी प्रसिद्धि है, जो  
सुकुमारोंके रूपके सबसे बड़े उदाहरण हैं; शिवके प्रिय, शिवमें  
अनुरक्त तथा शिव-चरणोंकी नित्य अर्चना करनेवाले हैं;  
स्कन्द शिव और शिवाकी आशा शिरोधार्य करके मुझे  
मनोवाञ्छित वस्तु दें ॥ ७०—७४ ॥

ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजने रता ।  
तयोरादीनां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ७५ ॥

सर्वश्वेष और वरदायिनी ज्येष्ठा देवी, जो सदा भगवान्  
शिव और पार्वतीके पूजनमें लगी रहती हैं, उन दोनोंकी आशा  
मानकर मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ७५ ॥

त्रैलोक्यवन्दिता साक्षातुल्काकारा गणाम्बिका ।  
जगत्सुष्टिविद्युद्धर्थ्य व्रह्मणाभ्यर्थिता शिवात् ॥ ७६ ॥  
शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्त्रृता ।  
दाशायणी सती मेना तथा हैमवती त्रिमा ॥ ७७ ॥  
कौशिष्याद्यैव जननी भद्रकालयस्तथैव च ।  
अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च ॥ ७८ ॥  
शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्भा ।  
सत्कृत्य शिवयोरादीनां सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ७९ ॥

त्रैलोक्यवन्दिता, साक्षात् उल्का (लुकाठी)-जैर्णी आङ्गुतिवाली  
गणाम्बिका, जो जगत्की सुष्टि वडानेके लिये व्रशाजीके प्रार्थना  
करनेपर शिवके शरीरसे पृथक् हुई शिवाके दोनों भौंशिकि  
वीचसे निकली थीं, जो दाशायणी, सती, मेना तथा हिमान्-  
कुमारी उमा आदिके लप्तमें प्रसिद्ध हैं; कौशिष्यी, भद्रसाली,  
अपर्णा और पाटलायी जननी हैं; निल विवर्जनमें तहर  
रहती हैं एवं रुद्रवल्भा द्वाणी कहलाती है; वे ध्यान और  
शिवाकी आशा शिरोधार्य करके मुझे मनोवाञ्छित दें ।

चण्डः सर्वगणेशानः शम्भोर्वद्वस्तम्भयः ।  
सत्कृत्य शिवयोरादीनां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८० ॥

तमस्त शिवयोग्निं त्वामि चन्द, जो भगवान् विद्वदेह  
नुखते प्रकट हुए हैं, विद्या और विद्वती अमृता भासार  
करके मुझे अर्णीष वल्ल प्रदान करें ॥ ८० ॥

पितॄलो गणपः श्रीमान् शिवासकः विविद्यः ।  
भ्रात्यया शिवयोरेव स मे क्वामं प्रदद्यतु ॥ ८१ ॥

भ्रात्यया शिवामें भ्रात्यल और विद्वदेह जिनके ८०-८१

श्रीमान् पिङ्गल शिव और शिवाकी आशासे ही मेरी मनःकामना पूर्ण करें ॥ ८१ ॥

**भृङ्गीशो नाम गणपः शिवाराधनतत्परः ।**

**प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरस्सरम् ॥ ८२ ॥**

शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले भृङ्गीश्वर नामक गणपाल अपने स्वामीकी आशा ले मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ८२ ॥

**वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसंनिभः ।**

**भद्रकालीशियो नित्यं मातृणां चाभिरक्षिता ॥ ८३ ॥**

यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः ।

**उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गतक्षकः ॥ ८४ ॥**

**शिवस्यानुचरः श्रीमान् शिवशासनपालकः ।**

**शिवयोः शासनादेव स मे दिशातु काङ्क्षितम् ॥ ८५ ॥**

हिम, कुन्द और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, भद्रकाली-के प्रिय, सदा ही मातृगणोंकी रक्षा करनेवाले, दुरात्मा दक्ष और उसके यज्ञका सिर काटनेवाले; उपेन्द्र, इन्द्र और यम आदि देवताओंके अङ्गोंमें धाव कर देनेवाले, शिवके अनुचर तथा शिवकी आशाके पालक, महातेजस्वी श्रीमान् वीरभद्र शिव और शिवाके आदेशसे ही मुझे मेरी मनचाही वस्तु दें ॥ ८३-८५ ॥

**सरस्वती महेशास्य वाक्सरोजसमुद्भवा ।**

**शिवयोः पूजने सका सा मे दिशातु काङ्क्षितम् ॥ ८६ ॥**

महेश्वरके मुखकमलसे प्रकट हुई तथा शिव-पार्वतीके पूजनमें आसक्त रहनेवाली वे सरस्वती देवी मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ८६ ॥

**विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता ।**

**शिवयोः शासनादेव सा मे दिशातु काङ्क्षितम् ॥ ८७ ॥**

भगवान् विष्णुके वज्रःस्थलमें विराजमान लक्ष्मी देवी, जो सदा शिव और शिवाके पूजनमें लगी रहती है, उन शिवदध्यतीके आदेशसे ही मेरी अभिलापा पूर्ण करें ॥ ८७ ॥

**महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा ।**

**तस्या एव नियोगेन सा मे दिशातु काङ्क्षितम् ॥ ८८ ॥**

महादेवी पार्वतीके पादपद्मोंकी पूजामें परायण महामोटी उर्ध्वीकी आशासे मेरी मनचाही वस्तु मुझे दें ॥ ८८ ॥

कौशिकी सिंहमास्त्रा पार्वत्याः परमा सुता ।

**विष्णोनिंद्रा महामाया महामहिषमर्दिनी ॥ ८९ ॥**

**निशुभ्युभ्युभसंहर्त्री मधुमांसासवप्रिया ।**

**सत्कृत्य शासनं मातुः सा मे दिशातु काङ्क्षितम् ॥ ९० ॥**

पार्वतीकी सबसे श्रेष्ठ पुत्री सिंहवाहिनी कौशिकी, भावान् विष्णुकी वोगनिद्रा महामाया, महामहिषमर्दिनी महालक्ष्मी तथा मधु और फलोंके गूदे तथा रसको प्रेमपूर्वक भोग ल्यानेवाली निशुभ्युभ्युभसंहरिणी महासरस्वती माता पार्वतीकी आशासे मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ८९-९० ॥

**रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः ।**

**भूताख्याश्च महावीर्या महादेवसमप्रभाः ॥ ९१ ॥**

**नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपल्लवाः ।**

**सशक्तयः सानुचराः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ९२ ॥**

**सर्वेषामेव लोकानां सुष्टिसंहरणक्षमाः ।**

**परस्परानुरक्षाश्च परस्परमनुव्रताः ॥ ९३ ॥**

**परस्परमतिस्तिन्धाः परस्परनमस्कृताः ।**

**शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः ॥ ९४ ॥**

**सौम्या घोरास्तथा मिश्राश्चान्तरालद्वयात्मिकाः ।**

**विरुपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा ॥ ९५ ॥**

**सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं दिशान्तु वै ।**

रुद्रदेवके समान तेजस्वी रुद्रगण, प्रख्यातपराक्षमी प्रमथगण तथा महादेवजीके समान तेजस्वी महावली भूतगण, जो नित्यमुक्त, उपमारहित, निर्द्वन्द्व, उपद्रवशूल, शक्तियों और अनुचरोंके साथ रहनेवाले, सर्वलोक-वन्दित, समस्त लोकोंकी सुष्टि और संहारमें समर्थ, परस्पर एक-दूसरेके अनुरक्ष और भक्त, आपसमें अत्यत स्नेह रखनेवाले, एक-दूसरेको नमस्कार करनेवाले, शिवके नित्य प्रियतम, शिवके ही चिह्नोंसे लक्षित, सौम्य, घोर उभय भावयुक्त, दोनोंके वीचमें रहनेवाले द्विरूप, कुरुष, सुरूप और नानारूपधारी हैं, वे शिव और शिवाकी आशाका सल्कार करते हुए मेरा मनोरथ सिद्ध करें ॥ ९१-९५ ॥

**देव्याः प्रियसर्वीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ॥ ९६ ॥**

**सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ।**

**तृतीयाद्यरणे शम्भोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः ॥ ९७ ॥**

**सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशातु मङ्गलम् ।**

देवीकी प्रिय सरियोंका समुदाय, जो देवीके ही लक्षणोंसे लक्षित है और भगवान् शिवके तीसरे आवरणमें रुद्रकन्याओं तथा अनेक शक्तियोंसहित नित्य भक्तिभावसे पूजित हुआ है

देव शिव-गर्वतीकी आशाका सत्कार करके मुझे मङ्गल प्रदान  
दें ॥ १६-१७३ ॥

**दिवाकरो महेशस्य मूर्तिर्दीपसुमण्डलः ॥ ९८ ॥**  
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ।  
अविकारात्मकथाद्य एकः सामान्यविकियः ॥ ९९ ॥  
असाधारणकर्मा च स्तृप्तिस्थितिलयकमात् ।  
एवं चिदा चतुर्द्वा च विभक्तः पञ्चधा पुनः ॥ १०० ॥  
चतुर्थवरणे शम्भोः पूजितश्चनुगैः सह ।  
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादाचर्चने रतः ॥ १०१ ॥  
सत्कृत्य शिवयोराक्षां स मे दिशतु मङ्गलम् ।

भगवान् सूर्य महेश्वरकी मूर्ति है, उनका सुन्दर  
मङ्गल दीपिमान् है, वे निर्गुण होते हुए भी कल्याणमय  
गुणोंसे युक्त हैं, केवल सद्गुणरूप हैं; निर्विकार, सबके आदि-  
भाग और एकमात्र (अद्वितीय) हैं; यह सामान्य जगत्  
ज्ञोंकी सृष्टि है, सुष्ठि, पालन और संहारके क्रमसे उनके  
धर्म असाधारण हैं; इस तरह वे तीन, चार और पाँच लोगोंमें  
निभग हैं, भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित  
उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त  
एवं शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे  
प्रदेव शिव और शिवकी आशाका सत्कार करके मुझे  
मङ्गल प्रदान करें ॥ ९८-१०१ ॥

**दिवाकरपड़ज्ञानि दीपाद्याश्चाप्तशक्तयः ॥ १०२ ॥**  
अद्वितीयो भास्करो भानु रविश्चेत्यनुपूर्वशः ।  
अर्चन्य वेषा तथा स्त्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः ॥ १०३ ॥  
रित्यासुतरा वोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः ।  
उग्र वधा तथा प्रक्षा संध्या चेत्यपि शक्तयः ॥ १०४ ॥  
संवत्सरिकेतुपर्यन्ता ग्रहाद्य शिवभाविताः ।  
विश्वासाद्या उच्चा मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १०५ ॥  
एव च द्वादशादित्यतथा द्वादश शक्तयः ।  
इत्यो देवगन्धर्वाः पद्मगात्मसरसां गणाः ॥ १०६ ॥  
देवगन्ध तथा यद्या राशसाक्ष सुरस्तथा ।  
ज्ञ समग्रणाद्यैते सप्तच्छन्दोमया हयाः ॥ १०७ ॥  
संत्वित्याद्यथैव सर्वे शिवपदाचर्चकाः ।  
पञ्चव शिवयोराक्षां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १०८ ॥  
उद्देश्ये दस्त्रय रसनेवाले छहों भद्र, उनकी दीपा  
ज्ञ अद्वितीयों अद्वित, भास्कर, भानु, रवि, अर्ह,  
पूर्व एव विष्णु—ये अठ आदित्यमूर्तियाँ और उनकी  
द्वितीय, द्वितीनी, अप्यायिनी तथा उनके अलिरिक

उषा, प्रभा, प्राजा और संध्या—ये शक्तियाँ; चन्द्रमासे लेकर  
केहुपर्यत शिवभावित ग्रह, वारह आदित्य, उनकी वारह  
शक्तियाँ तथा ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, अप्सराओंकी  
समूह, ग्रामणी (अगुवा), वक्ष, रक्षस—ये तात्प्रात  
संख्यावाले गण, सात छन्दोमय अश्व, वाल्मीकिय आदि  
मुनि—ये सब-के-सब भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी  
अर्चना करनेवाले हैं। ये लोग शिव और पार्वतीकी आशाका  
आदर करते हुए मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १०२-१०८ ॥

**त्रिसाथ देवदेवस्य मूर्तिर्दीपसुमण्डलाधिपः ।**  
**चतुर्पश्चिंगुणैश्वर्यो वुद्दितत्वे प्रतिष्ठितः ॥ १०९ ॥**  
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ।  
अविकारात्मको देवस्ततः साधारणः पुरः ॥ ११० ॥  
असाधारणकर्मा च स्तृप्तिस्थितिलयकमात् ।  
एवं चिदा चतुर्द्वा च विभक्तः पञ्चधा पुनः ॥ १११ ॥  
चतुर्थवरणे शम्भोः पूजितश्च सहानुगैः ।  
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादाचर्चने रतः ॥ ११२ ॥  
सत्कृत्य शिवयोराक्षां स मे दिशतु मङ्गलम् ।

त्रिसाथी देवाधिदेव महादेवजीकी मूर्ति है। भूमण्डलों  
अधिष्ठिति है। चौत्थ गुणोंके एश्वर्यसे युक्त हैं और वुद्दितत्व-  
में प्रतिष्ठित हैं। वे निर्गुण होते हुए भी अनेक कल्याणगय  
गुणोंसे सम्बन्ध हैं, सहुणलम्हूर्ल्य हैं, निर्विकार देवता हैं,  
उनके सामने दूसरे सब लोग साधारण हैं। सुष्ठि, पालन और  
संहारके क्रमसे उनके सब कर्म असाधारण हैं। इन तरह वे  
तीन, चार एवं पाँच आवरणों वा लाल्योंमें निभक्त हैं।  
भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंन्यक्ति उनकी पूजा  
हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आमक तथा अंतर्द  
चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे द्वादश शिवा और  
शिवकी आशाका सत्कार करके मुझे मङ्गल प्रदान करें  
॥ १०९-११२ ॥

**हिरण्यगम्भौ लोकेशो विराट् कालश्य पूरुषः ॥ ११३ ॥**  
सनकुमारः सतकः सनक्त्य ननाननः ।  
प्रजानां पतवद्यथैव ददाया व्रद्यन्तयः ॥ ११४ ॥  
एकादश सप्तनीवा धर्मः नन्दनं एव च ।  
शिवार्द्यनरताद्येते शिवनीविषयनाः ॥ ११५ ॥  
शिवाऽपावशागः सर्वे दिशन्तु नन नद्यवभ ।

हिरण्यगम्भ, लोकेश, विराट्, सनक्त्य, ननानन,  
ननकुमार, सतक, सनक्त्य, ननानन, ११३ अवृद्यन्तय, एव च,  
एकादश, सप्तनीवा, धर्म, नन्दन, ११४ व्रद्यन्तय, व्रद्यन्तय,  
शिवनीविषयन, ११५ शिवनीविषयन, एव च, नन नद्यवभ,

प्रजापति और उनकी पतियाँ, धर्म तथा संकल्प—ये सब-के-सब शिवकी अर्चनामें तत्पर रहनेवाले और शिवभक्तिपरायण हैं, अतः शिवकी आज्ञाके अधीन हो मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ ११३-११५२ ॥

चत्वारश्च तथा वेदाः सेतिहासपुराणकाः ॥ ११६॥  
धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिः समन्विताः ।  
परस्पराविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः ॥ ११७॥  
सत्कृत्य शिवयोराजां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ।

चार वेद, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और वैदिक विद्याएँ—ये सब-के-सब एक मात्र शिवके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले हैं, अतः इनका तात्पर्य एक-दूसरेके विरुद्ध नहीं है । ये सब शिव और शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मङ्गल करें ॥ ११६-११७२ ॥

अथ रुद्रो महादेवः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी ॥ ११८॥  
वाह्येयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान् ग्रसुः ।  
शिवाभिमानसम्पन्नो निर्गुणस्तिगुणात्मकः ॥ ११९॥  
केवलं सात्त्विकश्चापि राजसद्वैव तामसः ।  
अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः ॥ १२०॥  
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ।  
ब्रह्मणोऽपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः ॥ १२१॥  
जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः ।  
वोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रसुः ॥ १२२॥  
अण्डस्यान्तर्वहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः ।  
शिवप्रियः शिवासकः शिवपादार्चने रतः ॥ १२३॥  
शिवस्याजां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम् ।

महादेव रुद्र शम्भुकी सबसे गरिष्ठ मूर्ति है । ये अग्नि-मण्डलके अधीश्वर हैं । समस्त पुरुषाओं और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हैं, सर्वसमर्थ हैं । इनमें शिवत्वका अभिमान जाग्रत् है । ये निर्गुण होते हुए भी त्रिगुणलूप हैं । केवल सात्त्विक, राजस और तामस भी हैं । ये पहलेसे ही निर्विकार हैं । सब कुछ इन्हींकी सुष्टि है । सुष्टि, पालन और संहार करनेके कारण इनका कर्म असाधारण माना जाता है । ये ब्रह्माजीके भी मस्तकका छेदन करनेवाले हैं । ब्रह्माजीके पिता और पुत्र भी हैं । इसी तरह विष्णुके भी जनक और पुत्र हैं तथा उन्हें नियन्त्रणमें रखनेवाले हैं । ये उन दोनों—ब्रह्मा और विष्णु-को शन देनेवाले तथा नित्य उनपर अनुग्रह रखनेवाले हैं । ये प्रभु ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर भी व्याप्त हैं तथा इहलोक और परलोक—दोनों लोकोंके अधिपति रुद्र हैं । ये शिवके

प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके ही चरणारविन्दोकी अर्चनामें तत्पर हैं, अतः शिवकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरा मङ्गल करें ॥ ११८-१२३२ ॥

तस्य ब्रह्म षडङ्गानि विद्येशानां तथाष्टुकम् ॥ १२४॥  
चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः ।  
शिवो भवो हरद्वैव मृडद्वैव तथापरः ।  
शिवस्याजां पुरस्कृत्य मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १२५॥

भगवान् शंकरके स्वरूपभूत ईशानादि, ब्रह्म, हृदयादि छः अङ्ग, आठ विद्येश्वर, शिव आदि चार मूर्तिभेद—शिव, भव, हर और मृड—ये सब-के-सब शिवके पूजक हैं । ये लोग शिवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १२४-१२५ ॥

अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः ।  
वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः ॥ १२६॥  
निर्गुणः सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः ।  
अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः ॥ १२७॥  
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ।  
दक्षिणाङ्गभवेनापि स्पर्धमानः स्यम्भुवा ॥ १२८॥  
आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्स्वष्टुः स्वर्ण च तस्य तु ।  
अण्डस्यान्तर्वहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः ॥ १२९॥  
असुरान्तकरश्चक्री शक्रस्यापि तथानुजः ।  
प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह ॥ १३०॥  
भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयवातरत् शितौ ।  
अप्रमेयवलो मायी मायया मोहयज्जगत् ॥ १३१॥  
मूर्ति कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा ।  
वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने ॥ १३२॥  
शिवप्रियः शिवासकः शिवपादार्चने रतः ।  
शिवस्याजां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम् ॥ १३३॥

भगवान् विष्णु महेश्वर शिवके ही उत्कृष्ट स्वरूप है । वे जलतत्त्वके अधिपति और साक्षात् अव्यक्त पदपर प्रतिष्ठित हैं । प्राकृत गुणोंसे रहित हैं । उनमें दिव्य सत्त्वगुणकी प्रधानता है तथा वे विशुद्ध गुणस्वरूप हैं । उनमें निर्विकार-स्वपताका अभिमान है । साधारणतया तीनों लोक उनके कर्म असाधारण हैं । सुष्टि, पालन आदि करनेके कारण उनके कर्म असाधारण हैं । वे रुद्रके दक्षिणाङ्गसे प्रकट हुए स्वरूपके साथ एक समय स्पर्धा कर चुके हैं । साक्षात् आदिग्राम-द्वारा उत्पादित होकर भी वे उनके भी उत्पादक हैं । ब्रह्माण्डके

भीतर और बाहर आत है, इसलिये विष्णु कहलाते हैं। द्वंगों लोकोंकी अविगति है। असुरोंका अन्त करनेवाले, चक्रवर्यारी तथा इन्द्रके भी छोटे भाई हैं। इस अवतार-विग्रहोंके रूपमें यहाँ प्रकट हुए हैं। भगुके शापके बहाने पृथ्वीका भार उत्तरनेके लिये उन्होंने त्वेच्छासे इस भूतलपर अवतार लिया है। उनका बल अपमेय है। वे मायावी हैं और अपनी मायाद्वाय जगत्को मोहित करते हैं। उन्होंने महाविष्णु अथवा नदीविष्णुका रूप धारण करके त्रिमूर्तिमय आसनपर वैष्णवोंद्वारा नित्य पूजा प्राप्त की है। वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आगक्त तथा शिवके चरणोंकी अर्चनामें तत्पर हैं। वे प्रियकी आशा शिरोधारी करके मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १२६-१३३ ॥

यामुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः ।

संकर्पणः समाख्याताद्यतस्त्रो नूर्त्यो हरेः ॥ १३४ ॥

मत्स्यः कूर्मो वराहद्वच नारसिंहोऽथ नामनः ।

रामवर्यं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्वकः ॥ १३५ ॥

चक्रं नारायणस्याख्यं पाञ्चजन्यं च शार्ङ्गकम् ।

सल्लुत्य शिवयोरादां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १३६ ॥

यामुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा संकर्पण—ये श्रीहरिकी चार निख्यात मूर्तियाँ (बूद) हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नूर्सिंह, चक्र, परशुराम, राम, धरणी, श्रीकृष्ण, विष्णु, रघुवीर, चक्र, नारायणाख्य, पाञ्चजन्य तथा शार्ङ्गभन्तु—ये सबके बीच शिव और शिवकी आशाका स्तकार करते हुए मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १३४-१३६ ॥

प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता ।

गिययोः शासनादेवा मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १३७ ॥

प्रभा, सरस्वती, गौरी तथा शिवके प्रति भक्तिमाय संभेदाती दशभी—ये शिव और शिवके आदेशते नियमेष्ट करें ॥ १३७ ॥

एत्रोऽनिरुद्ध यमद्वयैव लिप्त्वृतिर्विष्णुस्तथा ।

विष्णुः लोमः कुर्वेरद्वच तदेशानस्तिशूलधृक् ॥ १३८ ॥

नरै शिवार्चनरतः शिवसद्भावभाविताः ।

क्षम्य शिवयोरादां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १३९ ॥

३६ अन्तिका प्रभा, निर्भुलि, वरण, वसु, लेन, कुर्वेर एवं विष्णुर्वयी रैवान—ये नदि के नदि निकम्भूर्वद्वयते भासते विष्णु के वर्णमें दूर रहते हैं। ये द्वितीय और तिसरी भ्रातृसा एवं ज्ञात दूरे मङ्गल प्रदान करें ॥ १३८-१३९ ॥

त्रिशूलमय बज्रं च तथा परशुसाम्यकौ ।  
खडगपाशाद्वृश्चैव पिनाकश्चायुधेत्तमः ॥ १४० ॥  
दिव्यायुधानि देवस्य देव्याद्वैतानि नित्यशः ।  
सत्कृत्य शिवयोरादां रक्षां कुर्वन्तु मे सदा ॥ १४१ ॥

त्रिशूल, बज्र, परशु, वाण, लङ्घ, पाश, अङ्गुश और श्रेष्ठ आयुध पिनाक—ये महादेव तथा महादेवीके दिव्य आयुध शिव और शिवाकी आशाका नित्य सत्कार करते हुए सदा मेरी रक्षा करें ॥ १४०-१४१ ॥

त्रृपरूपधरो देवः सौरभेयो महावलः ।  
बद्वाख्यानलस्पद्धो पञ्चगोमात्रभिर्वृतः ॥ १४२ ॥  
वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसा परमेशयोः ।  
तयोरादां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छन्तु ॥ १४३ ॥

त्रृपमल्यधारी देव, जो मुरभीके गदाकली पुन है, वद्वानलसे भी होइ लगते हैं, पाँच गोमाताओंते भिन्न रक्ते हैं और अपनी तपस्याके प्रभासे परमेश्वर शिव तथा परमेश्वरी शिवके बाहन हुए हैं, उन दोनोंकी आशा विष्णुर्धार्य करके मेरी इच्छा पूर्ण करें ॥ १४२-१४३ ॥

नन्दा सुनन्दा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा ।  
पञ्च गोमातरस्त्वेताः शिवलोके व्यवस्थिताः ॥ १४४ ॥  
शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनारायणाः ।  
शिवयोः शासनादेव दिशन्तु मम वाञ्छितम् ॥ १४५ ॥

नन्दा, उनन्दा, तुरभि, तुशीला और तुमना—ये चार गोमाताएँ तथा शिवलोकमें नियान रखती हैं। ये नन्दा और नन्दा नित्य शिवार्चनमें लगी रहती और शिवनन्दितमन्ना है, जहाँ शिव तथा शिवहि आदित्ये दी भेगी इच्छाएँ पूर्ण करें ॥ १४४-१४५ ॥

द्वैत्यपालो महातेजा नीलज्ञनृतसंगिनिः ।  
दंत्राकरालवदनः स्फुरद्रक्षाधर्याद्यत्रः ॥ १४६ ॥  
रक्षोर्ध्वनूर्द्धजः श्रीमान् द्वुरुद्धुर्द्विष्णुभिः ।  
रक्षवृत्तप्रिनयनः शशिपद्मगम्भूषणः ॥ १४७ ॥

नन्दितिशूलपादाशिवालोदत्पातिः ।  
भैरवो भैरवोः निर्देव्यागिर्द्विष्णु लंगूः ॥ १४८ ॥  
द्वैत्ये द्वैत्यसमानानः स्तितो यो दत्तदः नन्दम् ।  
शिवप्रपापादरमः शिवनन्दनायन्निः ॥ १४९ ॥

शिवाद्वितानः विशेषेण दत्तद दुधानिर्वानः सत्य ।  
सत्कृत्य शिवयोरादां त मे दिशन् मम राम ॥ १५० ॥  
देवस्य दहन् देवस्य देवसी दहनी दहन दहन ॥

मेघके समान है और मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है। उनके लाल-लाल ओढ़ फड़कते रहते हैं, जिससे उनकी शोभा बढ़ जाती है, उनके सिरके बाल भी लाल और ऊपरको उठे हुए हैं। वे तेजस्वी हैं, उनकी भौंहें तथा आँखें भी टेढ़ी ही हैं। वे लाल और गोलाकार तीन नेत्र धारण करते हैं। चन्द्रमा और सर्प उनके आभूषण हैं। वे सदा नंगे ही रहते हैं तथा उनके हाथोंमें त्रिशूल, पाश, खड़ और कपाल उठे रहते हैं। वे भैरव हैं और भैरवों, सिद्धों तथा योगिनियोंसे घिरे रहते हैं। प्रत्येक क्षेत्रमें उनकी स्थिति है। वे वहाँ सत्पुरुषोंके रक्षक होकर रहते हैं। उनका मस्तक सदा शिवके चरणोंमें छुका रहता है, वे सदा शिवके सद्गुरुवासे भावित हैं तथा शिवके शरणागत भक्तोंकी और सुरुचोंकी भौंति विशेष रक्षा करते हैं। ऐसे प्रभावशाली क्षेत्रपाल शिव और शिवाकी आशाका सत्कार करते हुए मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १४६-१५० ॥

**तालजङ्घादयस्तस्य प्रथमावरणेऽर्चिताः ।  
सत्कृत्य शिवयोराशां चत्वारः समवन्तु माम् ॥१५१॥**

तालजङ्घ आदि शिवके प्रथम आवरणमें पूजित हुए हैं, वे चारों देवता शिवकी आशाका आदर करके मेरी रक्षा करें ॥ १५१ ॥

**भैरवाद्याश्च ये चान्ये समन्तात्तस्य वेष्टिताः ।  
तेऽपि मामनुगृह्णन्तु शिवशासनगौरवात् ॥१५२॥**

जो भैरव आदि तथा दूसरे लोग शिवको सब ओरसे धेरकर स्थित हैं, वे भी शिवके आदेशका गौरव मानकर मुझपर अनुग्रह करें ॥ १५२ ॥

**नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः ।  
साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः ॥१५३॥**

**विनिर्वृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः ।  
सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैः सह ॥१५४॥**

**सर्वे शिवार्चनरताः शिवाश्चवशवर्तिनः ।  
शिवयोराशया मह्यं दिशन्तु समकाङ्क्षितम् ॥१५५॥**

नारद आदि देवपूजित दिव्य मुनि, साध्य, नाग, जनलोकनिवासी देवता, विशेषाधिकारसे समन्व महर्लोकनिवासी, सप्तर्षि तथा अन्य वैमानिकगण सदाशिवकी अर्चनामें तत्पर रहते हैं। वे सब शिवकी आशाके अधीन हैं, अतः शिवा और शिवकी आशारे मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ १५३-१५५ ॥

**गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्वतस्नो देवयोनयः ।  
सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नपश्चराः ॥१५६॥**  
असुरा राक्षसाद्यैव पातालतलवासिनः ।  
**अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः ॥१५७॥**  
**कूप्माण्डाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे ।  
डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादशाः ॥१५८॥**  
क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च ।  
**द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च ॥१५९॥**  
गिरयश्च सुमेर्वाद्याः काननानि समन्ततः ।  
**पशवः पक्षिणो चूक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः ॥१६०॥**  
भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वराः ।  
**अण्डान्यावरणैः सार्द्धं मासाश्च दश दिग्गजाः ॥१६१॥**  
वर्णाः पदानि मन्त्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः ।  
**ब्रह्माण्डधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः ॥१६२॥**  
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम् ।  
**सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥१६३॥**

गन्धवोंसे लेकर पिशाचपर्यन्त जो चार देवयोनियाँ हैं, जो सिद्ध, विद्याधर, अन्य आकाशचारी, असुर, राक्षस, पातालतलवासी अनन्त आदि नागराज, गण्ड आदि दिव्य पक्षी, कूप्माण्ड, प्रेत, वेताल, ग्रह, भूतगण, डाकिनियाँ, योगिनियाँ, शाकिनियाँ तथा वैसी ही और द्वियाँ, क्षेत्र, आराम (बगीचे), एह आदि, तीर्थ, देवमन्दिर, द्वीप, समुद्र, नदियाँ, नद, सरोवर, सुमेर आदि पर्वत, सब थोरफैले हुए वन, पशु, पक्षी, चूक्ष, कृमि, कीट आदि, मृग, समस्त भुवन, भुवनेश्वर, आवरणोंसहित ब्रह्माण्ड, यार आदि, मास, दस दिग्गज, वर्ण, पद, मन्त्र, तत्त्व, उनके अधिपति, ब्रह्माण्ड-धारक रुद्र, अन्य रुद्र और उनको शक्तियाँ तथा इस जगत्में जो कुछ भी देखा, सुना और अनुमान किया हुआ है—ये सब के सब शिवा और शिवकी आशासे मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ १५६-१६३ ॥

**अथ विद्या परा शौची पशुपाशविमोचिनी ।  
पञ्चार्थसंक्षिता दिव्या पशुविद्यावहिष्ठुता ॥१६४॥**  
शास्त्रं च शिवधर्मात्म्यं धर्मात्म्यं च तदुत्तरम् ।  
**शैवात्म्यं शिवधर्मात्म्यं पुराणं श्रुतिसम्मितम् ॥१६५॥**  
शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्धिधाः ।  
**शिवाभ्यामविशेषेण उत्कृत्येह समर्चिताः ॥१६६॥**  
तात्प्रयमेव समाहाता ममाभिप्रेतसिद्धये ।  
**कर्मदमनुमन्यन्तां सप्तलं साध्यनुप्रितम् ॥१६७॥**

जो पञ्च-पुरुषार्थस्त्वलया होनेसे पद्मार्थी कही गयी है

जिमका स्वरूप दिव्य है तथा जो पशु-विद्याकी कोटि से बाहर है वह पशुओं को पादसे मुक्त करनेवाली दौड़ी परा विद्या, शिवधर्मशास्त्र, शैवधर्म, श्रुतिसम्मत शिवसंज्ञकपुराण, शैवग्रन्थ तथा धर्म-कामादि चतुर्विध पुस्तकार्थ, जिन्हें शिव और शिवाके समान ही मानकर उन्हींके समान पूजा दी गयी है, उन्हीं दोनोंकी आशा लेकर मेरे अभीष्टकी सिद्धि के लिये इस कर्मका अनुमोदन करें, इसे सफल और सुसम्पन्न घोषित करें ॥ १६४-१६७ ॥

श्रेताया नकुलीशान्ताः सशिष्याद्यपि देशिकाः ।  
 तत्संतीया गुरवो विशेषाद् गुरवो मम ॥१६८॥  
 शैवा माहेश्वराद्यैव शानकर्मपरायणाः ।  
 कर्मदमनुमन्यन्तां सफलं सावधनुष्टितम् ॥१६९॥

द्वेषते लेकर नकुलीशार्यन्त, शिष्यसहित आचार्यगण,  
उनकी संतान-प्रस्तरामें उत्तम गुरुजन, विशेषतः मेरे गुरु,  
पैतृ, माहेश्वर, जो ज्ञान और कर्ममें तत्त्वर रहनेवाले हैं, मेरे  
इन कर्मों सफल और सुखमय मानें ॥ १६८-१६९ ॥

शैक्षिका ग्राहणः सर्वे क्षत्रियाद्वच दिशः क्रमात्।  
 बद्धेदाङ्गतच्छशः सर्वशास्यविशारदाः ॥१७०॥  
 क्षांख्या वैशेषिकाद्यन्वेष्य योगा नैयायिका नराः ।  
 संरा ग्राहणस्था रौद्रा वैष्णवाद्यचापरे नराः ॥१७१॥  
 शेषाः सर्वे विशिष्टाद्वच शिवशास्यन्यन्विताः ।  
 स्मैद्यग्नुभ्यन्तां ममाभिप्रेतसाधकम् ॥१७२॥

लैकिन वास्तव, क्षमिय, वैश्य, वैदेवताओंके तत्त्वधर्मिण, वर्षगायत्रुकुशाल, सांख्येता, वैदेशिक, योगदात्रुके अचार्य, नैवाचिक, सूर्योगामी, ब्रह्मोगामी, शंख, वैष्णव तथा जन्म तथ शिष्ट और विद्यिष्ट पुनर्य शिष्टस्ती आद्धरके अधीन हो मेरे इन कर्मोंको अप्रीकुलापक गावें ॥ १७०-१७२ ॥

१५३। सिद्धान्तमार्गस्थाः शैवाः पश्युपत्रास्तया।  
१५४। महावतवराः शैवाः कामालिङ्गाः पदे ॥ १५३॥  
मिष्टान्तगालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात्।  
१५५। मर्ममुगृहणन्तु दंसन्तु सफलकिषाम् ॥ १५४॥

लिखना आर्थी है कि मात्रता दीव, भयभत्तारी है व वधा  
एव गोपीनाथ दीव—ये लघुके लघु यिन्हीं आदाके पास द  
खड़े हैं जी यून है। इस यिन्हीं आदाले इन भयभत्ता  
मन्त्र लगाए हो और वे इच्छा भर्दाशे उसके देखित  
हैं। १३८-१४४॥

दक्षिणक्षाननिप्राश्च दक्षिणोत्तरमर्गंगाः ।  
अविरोधेन वर्तन्तां मन्त्रं थ्रेयोऽथिनो मम ॥२७॥

जो दक्षिणाचारके शतमें परिनिहित तथा दक्षिणाचारके उन्नुष्ठ मार्गभर चलनेवाले हैं, वे परस्पर निरोध न रखने हुए मन्त्रका जप करें और मेरे कल्याणकामी हों ॥ १७६ ॥

नास्तिकाद्य राटाद्यैव कुतध्नाद्यैव तामसः ।  
 पापण्डाद्यतिपापाद्य वर्तमां दूरतो मम ॥१७६॥  
 चहुभिः कि स्तुतैरज्येऽपि केऽपि चिदास्तिकाः ।  
 सर्वे मामनुग्रहणन्तु सन्तः शंसन्तु मङ्गलम् ॥१७७॥

नास्तिक, शठ, द्रुतग्र, तामस, पापार्थी और अति पारी  
प्राणी मुक्ति से दूर ही रहें। यहाँ वहुतोंमी स्फुरिते क्या लाभ ?  
जो कोई भी आस्तिक रहत है, वे सब बुझतर अनुग्रह करें  
और देरे महङ्गल होनेका आशीर्वाद दें ॥ १३६-१३७ ॥

नमः शिवाय साम्याय ससुनायादिहेतवे ।  
पञ्चावरणहूपेण प्रपञ्चेनावृताय ते ॥५७॥

ओ पश्चावरणली प्रवद्धते भिरे हुए हैं और नदोंके आहिकारण हैं, उन आप पुनर्नहित साम्य संसाधनों के द्वारा नमस्कार हैं ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा दण्डवद् भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम्।  
जपेत्पञ्चक्षरो विद्यामधोत्तरशतावराम् ॥२५॥  
तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा कल्पमर्पणम् ।

सुत्वा तं धमयित्वेदां पूजाशेषं समाप्यन् ॥२५०॥  
 ऐसा सहकर दिल और शिख के उद्दीपने भूमि पर इन  
 की गोत्री मिस्कर प्रपातम हो रही और दूसरे गोत्र की अठ  
 बार पञ्चामी विद्यात जा रहे। इनी प्रह्लाद महिलिया  
 (ओं नमः शिराय) का जर छहवें उत्तरा समाप्ति हो  
 और गहरदेवतासे उसा भौमित्र हो गूढ़ी बनाई  
 हो। १५०-१५०॥

पत्तन्पुष्यतनं स्तोवं दिव्यार्हद्वर्गम् ।  
सर्वाभीष्मदे सत्याशक्तिसप्तयैकत्राप्यम् ॥१६३॥

पर यह इसका भी विवर नहीं होता कि अन्य विवर  
अस्त्रज्ञ प्रिय है अन्यां अन्यां देही रेत जल्दी ही जीव जीव  
विवर संख्या एवं अस्त्रज्ञ अन्यां अन्यां है । १५६ ॥

यं द्वे दत्तियमित्यं शशुभादा समर्पितः ।  
ल दिष्टुपादु रक्षणि दिष्टुपादु रक्षणि दिष्टुपादु ॥५२॥

करता है, वह सारे पापोंको शीघ्र ही घो-बहाकर भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ १८२ ॥

**गोचनश्चैव कृतञ्चनश्च वीरहा भ्रणहापि वा ।**

**शरणागतधाती च मित्रविश्रम्भधातकः ॥ १८३ ॥**  
दुष्टपापसमाचारो मातुहा पितृहापि वा ।

**स्तोत्रेनाजेन जप्तेन तत्त्वापात् प्रमुच्यते ॥ १८४ ॥**

जो गो-हत्यारा, कृतज्ञ, वीरधाती, गर्भस्य शिशुकी हत्या करनेवाला, शरणागतका वध करनेवाला और मित्रके प्रति विद्वासधाती है, दुराचार और पापाचारमें ही लगा रहता है तथा माता और पिताका भी धातक है, वह भी इस स्तोत्रके जपसे तत्काल पापमुक्त हो जाता है ॥ १८३-१८४ ॥

**दुःखप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च ।**

**यदि संकीर्तयेदेतन्न ततोऽनर्थभाग्भवेत् ॥ १८५ ॥**

दुःखप्न आदि महान् अनर्थसूचक भयोंके उपस्थित होनेपर यदि मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्तन करे तो वह कदापि अनर्थका भागी नहीं हो सकता ॥ १८५ ॥

**आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदूपि वाञ्छितम् ।**

**स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः ॥ १८६ ॥**

आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा और जो भी मनोवाञ्छित वस्तु है, उन सबको इस स्तोत्रके जपमें संलग्न रहनेवाला पुरुष प्राप्त कर लेता है ॥ १८६ ॥

**असम्पूज्य शिवं स्तोत्रजपात्कलमुदाहृतम् ।**

**सम्पूज्य च जपे तस्य फलं वकुं न शक्यते ॥ १८७ ॥**

शिवकी पूर्वोक्त पूजा न करके केवल स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसको यहाँ वर्ताया गया है; परंतु शिवकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता ॥ १८७ ॥

**आस्तामियं फलावपसिरस्मिन् संकीर्तिं सति ।**

**सार्वभग्निकया देवः श्रुत्वैव दिवि तिष्ठति ॥ १८८ ॥**

तस्मान्नभसि सम्पूज्य देवदेवं सहोमया ।

**कृताङ्गलिपुटस्तिष्ठन् स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ १८९ ॥**

यह फलकी प्राप्ति अलगा रहे, इस स्तोत्रका कीर्तन करनेपर इसे सुनते ही माता पार्वतीसहित महादेवजी आकाशमें आकर खड़े हो जाते हैं । अतः उस समय उमासहित देवदेव महादेवकी आकाशमें पूजा करके दोनों हाथ जोड़ खड़ा हो जाय और इस स्तोत्रका पाठ करे ॥ १८८-१८९ ॥

( अध्याय ३१ )

### ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शान्ति-पुष्टि आदि विविध कार्य कर्मोंमें विभिन्न हवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान

उपमन्त्र्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! यह मैंने तुमसे इहलोक और परलोकमें सिद्धि प्रदान करनेवाला क्रम बताया है, जो उत्तम तो है ही, इसमें क्रिया, जप, तप और ध्यानका समुच्चय भी है । अब मैं शिव-भक्तोंके लिये यहाँ फल देनेवाले पूजन, होम, जप, ध्यान, तप और दानमय महान् कर्मका वर्णन करता हूँ । मन्त्रार्थके श्रेष्ठ शाताको चाहिये कि वह पहले मन्त्रको सिद्ध करे, अन्यथा इष्टसिद्धिकारक कर्म भी फलद नहीं होता । मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर भी, जिस कर्मका फल किसी प्रबल अदृष्टके कारण प्रतिवद्ध हो, उसे विद्वान् पुरुष सहसा न करे । उस प्रतिवन्धका यहाँ निवारण किया जा सकता है । कर्म करनेके पहले ही शकुन आदि करके उसकी परीक्षा कर ले और प्रतिवन्धकका पता लगानेपर उसे दूर करनेका प्रयत्न करे । जो मनुष्य ऐसा न करके मोहवश ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुदान करता है, वह उससे फलका भागी नहीं थोता और जात्से उपदासका पात्र बनता है । जिस पुरुषको विश्वास

न हो, वह ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्टान कभी न करे; क्योंकि उसके मनमें श्रद्धा नहीं रहती और श्रद्धाहीन पुरुष को उस कर्मका फल नहीं मिलता । किया कर्म निफल हो जाय, तो भी उसमें देवताका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि शास्त्रोक्त विधिसे ठीक-ठीक कर्म करनेवाले पुरुषोंको यहाँ फलकी प्राप्ति देखी जाती है । जिसने मन्त्रको सिद्ध कर लिया है, प्रतिवन्धको दूर कर दिया है, मन्त्रपर विश्वास रखता है और मनमें श्रद्धासे युक्त है, वह साधक कर्म करनेपर उसके फलको अवश्य पाता है । उस कर्मके फलकी प्राप्तिके लिये ऋष्टचर्यपरायण होना चाहिये । रातमें हविष्यमोजन करे खीर या फल खाकर रहे, हिंसा आदि जो निषिद्ध कर्म हैं उन्हें मनसे भी न करे, सदा अपने शरीरमें भसा लाये, मुन्द्र, पवित्र वेषभूषा धारण करे और पवित्र रहे ।

इस प्रकार आचारवान् देवकर अपने अनुकूल शुभ दिनमें पुरुषमाला आदिसे भलंकृत पूर्वोक्त दत्तशब्दाते स्थानमें एवं

हाथ भूमिको गोकरसे लीपकर वहाँ बिछे हुए भद्रासनपर कमल  
अङ्गुष्ठ करे, जो अपने तेजसे प्रकाशमान हो। वह तपाये हुए  
मुग्गके समान रंगवाला हो। उसमें आठ दल हों और केसर  
भी बना हो। मध्यभागमें वह कर्णिकासे युक्त और सम्पूर्ण  
खोले अलंकृत हो। उसमें अपने आकरके समान ही नाल  
होली चाहिये। वैसे स्वर्णनिमित्त कमलपर सम्यग् विविसे मन-  
शी मन अणिमा आदि सब सिद्धियोंकी भावना करे। फिर उसपर<sup>३</sup>  
एक, सोनेका अथवा स्फटिक मणिका उत्तम लक्षणोंसे सुक्त  
पैरीतहित शिवलिङ्ग स्थापित करके उसमें विविधर्वक पार्षदों-  
मेंहत अणिमादी साम्र लदायिवका आवहन और पूजन करे। फिर वहाँ साकार भगवान् महेश्वरकी भावनामयी मूर्तिका निर्माण  
दरे, जिसके चार भुजाएँ और चार मुख हों। वह सब  
आनुषणोंसे विभूषित हो, उसे व्याघ्रचर्म पहनाया गया हो।  
उसके मुखपर कुट्ट-कुछ हाथकी छाया आ रही हो। उसने  
बाते दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा धारण की हो और  
दूसरे दो हाथोंमें मृग मुद्रा और टङ्के ले रखेहो। अथवा उपासक-  
शी चक्रिके अनुसार अष्टमुजा मूर्तिकी भावना करनी चाहिये।  
उम द्वायामें वह मूर्ति अपने दाहिने चार हाथोंमें विशूल, परशु,  
दद्ध और वत्र लिये हो और वायें चार हाथोंमें पद्म, अकुशा,  
षट और नरग धारण करती हो। उसकी अप्सरान्ति प्रातः-  
चामेरे सर्पनी भौति लाल हो और वह आगे प्रत्येक मुखमें  
ज्ञेयदीन नेत्र धारण करती है। उक्त मूर्तिका पूर्वीती भुज  
ज्ञेय तथा अपनी आहुतिके अनुसूप ही अन्तिमान् है।  
विश्वस्ती भुज तील भेदके समान ल्याम और देखनेमें न मंदर  
है। उसरातीं भुज गैरोके समान लाल है और सिरकी नीदी  
कर्में उसकी शोभा पड़ती है। पश्चिमवर्ती भुज पूर्ण चन्द्रगम-  
के अन उस्तुल, सैम तथा चन्द्रकल्पभागरी है। उस  
के गैरुदीर्घ अङ्गमें पराशक्ति गोहप्रधी जिया आसूद है। उसकी  
नित्या सोलह वर्षीयी हो रही है। वे सबका मन गोहनेवाली है  
और भूतप्रभीके नामसे विश्वात है।

१ इन प्रकार भाग्यमयी मूर्तिका निर्माण और नहरी तरस  
 २ विद्युतमें भूर्जितारूप नरम झारण द्विवक्षा अवाहन और दृजन  
 ३ विद्युत शब्द करने के लिये नहरिला गद्दके पश्चात्यन्त और  
 ४ विद्युत बदल करे। विशेषतः चूर्ण और लोकतो भी एवन  
 ५ विद्युत द्विद्युतमें भूर्जित लकालर उसे रक्तचूर्ण आदिसे  
 ६ विद्युत विद्युतमें भूर्जित द्विद्युतमें ईथन-कल्पना लगावना  
 ७ विद्युत द्विद्युतके खतों और उत्तोलनत विद्युत द्विद्युतके  
 ८ विद्युत द्विद्युतके खतों और उत्तोलनत विद्युत द्विद्युतके

क्रमशः विद्येश्वरके आठ कलशोंकी स्थापना करके उन सबको तीर्थके जलसे भर दे और कण्ठमें सूत लपेट दे । किर उनके भीतर पवित्र द्रव्य छोड़कर मन्त्र और विधिके लाय यादी या धोती आदि बब्लसे उन सब कलशोंको चारों ओरसे अच्छादित कर दे । तदनन्तर मन्त्रोद्घारणपूर्वक उन सबमें मन्त्रन्यास फुरके ज्ञानका समय आनेपर सब प्रकारके माझलिह शब्दों और वाचोंके साथ पञ्चगव्य आदिके द्वारा परमेश्वर विवरो ज्ञान कराये । कुशोदक, स्वर्णोदक और रत्नोदक आदिको—जो गन्ध, पुष्प आदिसे वासित थेर मन्त्रसिद्ध हों—क्रमशः लेटेकर मन्त्रोद्घारणपूर्वक उन-उनके द्वारा भेदशरको नह्लाये । तिर गन्ध, पुष्प और दीप आदि निवेदन करके पूजाकर्मी तमना करे । अलेपन या उवटन कम-से-कम एक फल और अधिक से-अधिक घ्यारह फल हो । मुन्द्र मुखर्णगय और खामा पुष्प अर्पित करे । सुगन्धित भील कमल, भील कुनुर, अंगद्वा: विलपत्र, लाल कमल और रवेत कमल भी बन्हुओ चढ़ाये । कालगुरुके धूपको कहु, थी और सुगुरुसे युक्त फरहे निवेदन करे । करिया गावके भीति युक्त दीरकर्णी क्षुरही इसी बनाकर रखें और उसे जयकर देवताके गम्भीर दिलाये । ईशानगादि पौच ब्रह्मकी दृष्टि अद्वैती और पर्वत आनंदगीते पूजा करनी चाहिये । दूधमें तैयार किया हुआ उदारं नरसंह हरमें निवेदनमाय है । हुइ और भैंसे युक्त नहनवाला भी नहीं दग्धाना चाहिये । पाठ्य इत्य और रुद्र आदिने मुख्याल जल पीसेके लिये देना चाहिये । पीन प्रथमरही मुख्यालि युक्त तथा अच्छी तरह लगाया हुआ लालू कुर्कुड़िन भी अर्पित करना चाहिये । मुखर्ण और रत्नोदक भी तारे आनंदके नाम प्रकारके रंगमंड दृग्म भर्तीकर करे इसीलिए इन्हें देने चाहिये । उन सभी रीतों पर तेज भी आदि भी करने चाहिये ।

मृत्युन्यका एवं अस्ति तर देह चाहे चाहो। ताँ  
हमने कम एक वर्ष भी नहीं है जो ऐसा कर सका  
चाहिए। कर्त्तव्य अपेक्षा अधिक रुप है इसके लिए  
आपकी किसी विकल्प इस लिए उपलब्ध नहीं है। इसी  
कमने कम इस प्रीत अपेक्षाने अद्वितीय वीर  
चाहिए। भरत और उदयन उसीमें बहुत विश्वास  
दिल्लत रखता चाहता है। इसीलिए वह निरुद्ध नहीं चाहता,  
प्रारम्भिक से, विश्वासमें एक अपर विश्वासमें एक  
लीभ जगत जैसा रहता चाहता है। अपर विश्वास  
से इसके एक अपर विश्वास से इसके एक अपर विश्वास

अन्य शान्ति आदि कर्मोंमें सोनेके सुक् और सुवा बनवाने चाहिये । मृत्युपर विजय पानेके लिये धी, दूधमें मिलायी हुई दूवसी, मधुसे, घृतयुक्त चक्षसे अथवा केवल दूधसे भी हवन करना चाहिये तथा रेगोंकी शान्तिके लिये तिलोंकी आहुति देनी चाहिये । समृद्धिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष महान् दारिद्र्यकी शान्तिके लिये धी, दूध अथवा केवल कमलके फूलोंसे होम करे । वशीकरणका इच्छुक पुरुष घृतयुक्त जातीपुष्प ( चमेली या मालतीके फूल ) से हवन करे । द्विजको चाहिये कि वह घृत और करबीर पुष्पोंसे आहुति देकर आकर्षणका प्रयोग सफल करे । तेलकी आहुतिसे उच्चाटन और मधुकी आहुतिसे स्तम्भन कर्म करे । सरसोंकी आहुतिसे भी स्तम्भन किया जाता है । बड़के बीज और तिलकी आहुतिद्वारा मारण और उच्चाटन करे । नारियलके तेलकी आहुति देकर विशेषण कर्म करे । रोहीके बीजकी आहुति देकर बन्धनका तथा लाल सरसो मिले हुए सम्पूर्ण होम-द्रव्योंसे सेना-स्तम्भनका प्रयोग करे ।

अभिचार-कर्ममें हस्तचालित यन्त्रसे तैयार किये गये तेलकी आहुति देनी चाहिये । कुटकीकी भूसी, कपासकी ढोढ़ तथा तैलमिश्रित सरसोकी भी आहुति दी जा सकती है । दूधकी आहुति ज्वरकी शान्ति करनेयाली तथा सौभाग्य-रूप फल प्रदान करनेयाली होती है । मधु, धी और दहीको परस्पर मिलाकर इनसे, दूध और चावलसे अथवा केवल दूधसे किया गया होम सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेयाली होता है । सात समिधा आदिसे शान्तिक अथवा पौष्टिक कर्म भी करे । विशेषतः द्रव्योंद्वारा होम करनेपर वश्य और आकर्षणकी सिद्धि होती है । विश्वपत्रोंका हवन वशीकरण तथा आकर्षणका साधक और लक्ष्मीकी प्राप्ति करनेयाली है, साथ ही वह शत्रुपर विजय प्रदान कराता है । शान्तिकार्यमें पलाश और खैर आदिकी समिधाओंका होम करना चाहिये । कूरतापूर्ण कर्ममें कनेर और आककी समिधाएँ होनी चाहिये । लड्डाई-झगड़ोंमें कटीले पेड़ोंकी समिधाओंका हवन करना चाहिये । शान्ति और पुष्टिकर्मको विशेषतः शान्तचित्त पुरुष ही करे । जो निर्दय और क्रोधी हो, उसीको आभिचारिक कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये । वह भी उस दशामें, जब कि दुरवस्था चरम सीमाको पहुँच गयी हो और उसके निवारणका दूसरा कोई उपाय न रह गया हो, आततायीको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म करना चाहिये । अपने राष्ट्रपतिको शनि पट्टौचानेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म करापि नहीं करना

चाहिये । यदि कोई आस्तिक, परम धर्मात्मा और माननीय पुरुष हो, उससे यदि कभी आततायीपनका कार्य हो जाय, तो भी उसको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्मका प्रयोग नहीं करना चाहिये । जो कोई भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् शिवके आश्रित हो, उसके तथा राष्ट्रपतिके उद्देश्यसे भी आभिचारिक कर्म करके मनुष्य शीघ्र ही पतित हो जाता है । इसलिये कोई भी पुरुष जो अपने लिये मुख चाहता हो, अपने राष्ट्रपालक राजाकी तथा शिवभक्तकी आभिचार आदिके द्वारा हिंसा न करे । दूसरे किसीके उद्देश्यसे भी मारण आदिका प्रयोग करनेपर पश्चात्तापसे युक्त हो प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

निर्धन या धनवान् पुरुष भी बाणलिङ्ग ( नर्मदासे प्रकट हुए शिवलिङ्ग ), शृंगियोद्वारा खापित लिङ्ग या वैदिक लिङ्गमें भगवान् शंकरकी पूजा करे । जहाँ ऐसे लिङ्गका अपाव हो, वहाँ सुवर्ण और रत्नके बने हुए शिवलिङ्गमें पूजा करनी चाहिये । यदि सुवर्ण और रत्नोंके उपार्जनकी शक्ति न हो तो मनसे ही भावनामयी मूर्तिका निर्माण करके मानसिक पूजन करना चाहिये । अथवा प्रतिनिधि द्रव्यों-द्वारा शिवलिङ्गकी कल्पना करनी चाहिये । जो किसी अंशमें समर्थ और किसी अंशमें असमर्थ है, वह भी यदि अपनी शक्तिके अनुसार पूजन-कर्म करता है तो अवश्य फलका भागी होता है । जहाँ इस कर्मका अनुष्ठान करनेपर भी फल नहीं दिखायी देता, वहाँ दो या तीन बार उसकी आवृत्ति करे । ऐसा करनेसे सर्वथा फलका दर्शन होगा । पूजाके उपयोगमें आया हुआ जो सुवर्ण, रत्न आदि उत्तम द्रव्य हो, वह सब गुरुको दे देना चाहिये तथा उसके अतिरिक्त दक्षिणा भी देनी चाहिये । यदि गुरु नहीं लेना चाहते हों तो वह सब बलु भगवान् शिवको ही समर्पित कर दे । अथवा शिव-भक्तोंको दे दे । इनके सिवा दूसरोंको देनेका विधान नहीं है । जो पुरुष गुरु आदिकी अपेक्षा न रखकर स्वयं यथाशक्ति पूजा सम्बन्ध करता है, वह भी ऐसा ही आचरण करे । पूजामें चढ़ायी हुई बलु स्वयं न ले ले । जो मूँद लोभवश पूजाके अङ्गभूत उत्तम द्रव्यको स्वयं प्रहण कर लेता है, वह अभीष्ट फलको नहीं पाता । इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । किसीके द्वारा पूजित शिवलिङ्गको मनुष्य ग्रहण करे या न करे, वह उसकी इच्छापर निर्भर है । यदि ले ले तो स्वयं नित्य उसकी पूजा करे अथवा उसकी ग्रेरणाते दूसरा कोई पूजा करे । जो पुनरपि इस कर्मका शास्त्रीय विधिके अनुग्रह

ही निरन्तर अनुग्राम करता है, वह फल पानेसे कभी विच्छिन्न नहीं रहता। इससे बढ़कर प्रशंसकोंकी वात और क्या हो सकती है?

तथापि मैं संक्षेपसे कर्मजनित उत्तम सिद्धिकी महिमाका ग्रन्थ करता हूँ। इससे शब्दों अथवा अनेक प्रकारकी व्याख्यानोंका शिकार होकर और मौतके मुँहमें पड़कर भी ननुथ्य जिना किसी विज्ञ-व्याख्याके मुत्त हो जाता है। अत्यन्त दृश्य भी उदाहर और निर्धन भी कुवैरके समान हो जाता है। कुरुप भी कामदेवके समान सुन्दर और घूड़ा भी कामान हो जाता है। शत्रु धणभरमें मित्र और विरोधी भी किनार हो जाता है। अमृत विषके समान और विष भी अमृतके समान हो जाता है। समुद्र भी स्थल और स्थल में समुद्रकृत हो जाता है। गड्ढा पदाङ्ग-जैसा ऊँचा और पर्वत भी गड्ढेके समान हो जाता है। अग्नि सरोवरके समान पीठल और सरोवर भी अग्निके समान दाहक बन जाता है। उद्यान जंगल और जंगल उद्यान हो जाता है। क्षुद्र दृश्य सिंहके समान शौर्यशाली और सिंह भी क्रीड़ामृगके लगान आशा-पालक हो जाता है। खियों अभिसारिका बन जाता है—अधिक प्रेम करने लगती है और लक्ष्मी मुख्यर

हो जाती है। वाणी इच्छानुसार दासी बन जाती है और काँति गणिकाके समान सर्ववगामिनी हो जाती है। त्रुदि स्वेच्छानुसार विचरनेवाली और मन हीरेको छेदनेवाली सूझेके समान सूझम हो जाता है। शक्ति औँधीके समान प्रबल हो जाती है और वल मन्त्र गजराजके समान पराक्रम-शाली होता है। शत्रुपक्षके उद्योग और कार्य स्थवर हो जाते हैं तथा शत्रुओंके समस्त सुहृदगण उनके लिये शत्रुपक्षके समान हो जाते हैं। शत्रु बन्धु-यानवोंसहित जीते-जी मुद्देके समान हो जाते हैं और सिद्धपुरुष स्वयं आपत्तिमें पड़कर भी अस्तिरहित ( संकटमुक्त ) हो जाता है। अमरल-रा प्राप्त कर लेता है। उसका साया हुआ अरथ भी उसके लिये सदा स्वायनका काम देता है। निरक्तर रतिका सेवन करने-पर भी वह नया-रा ही बना रहता है। भविष्य आदिही सारी वातें उसे हाथपर रखते हुए औन्तरेके समान प्रसन्न दिलायी देती हैं। अणिमा आदि निदिलों भी इच्छा करते ही कल देने लगती हैं। इस विषयमें यहुत कहनेसे क्वा लाभ; इस कर्मका नमादन कर लेनेपर नमूर्ण कामार्थ सिद्धियोंमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं रहती, जो अलभ हो।

( अख्याय ३२ )

पारलैकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिङ्ग-महाब्रतकी विधि और महिमाका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—गदुनदून ! अब मैं नेत्रल  
नेत्रीमें कठ देसेशाले कर्मकी विधि दत्तलड़ेगा । तीनों  
मेंमें इसके समान दूसरा कोई कर्म नहीं है । वह विधि  
जीवन पुण्यसे चुक्क है और सम्पूर्ण देवताओंने इसका  
चुक्का किया है । ब्रह्मा, विष्णु, रब्र, इन्द्रादि लोकपाल,  
इंद्रि वाप्रह, विश्वमित्र और वसिष्ठ आदि द्रष्टव्येता नहीं,  
परं अशुद्ध, दर्थीचि तथा हमन्यरीखे दिनभक्त, नन्दीधर  
विष्णु और सूक्ष्मीश आदि गणेश, पातालवाली दैत्य, देव  
वैद्यनाथ, लिंग, यज्ञ, नर्थर्व, राज्य, भूत और दिवाच्य—  
विहीने भज्ञ-भद्रमा यदि प्राप्त करनेके लिये इन विधियाँ  
ज्ञान किया है । इन विधिये ही सब देवता देवताओं प्राप्त  
होते है । इन विधिये द्वारा सौ दशताही, दिव्यु तो विष्णुताही,  
वैद्यनाथी, यज्ञी, देवता की भूत वैद्यनाथी गणेशताही

के सरदार ने भी बिद्वत्तला शिंदे और लिलातो  
पर्सन के लिए लेज रखते हुए उसका धूम दे।

फिर उनके चरणोंमें प्रवाप करके वही लिये-दुती भूमिका  
कुम्हर शुभ लक्षण प्रभासन बनाकर रहा। फिर ही से  
अपनी शक्ति के अनुसार तोने वा रज आदिता प्रभासन  
क्षनयाना चाहिए। कृष्णके फैलावेंमें अद्वितीय  
व्यग्रता थोड़े से कुम्हर विगतिक्षी सामान रहे। वह एक  
गलामन और कुम्हर होना चाहिए। उसे इतिहासमें सर्वात्म  
करके खिदमानदाता दमकी पूजा रहे। तिर उसके इच्छिय  
क्षमामें अगुरु गव्यम भागमें मन्त्रित, उत्तर भागमें काल  
और पूर्व भागमें इतिहास चढ़ाये। तिर कुम्हर सुरक्षिता विनिय  
पुरानादाय पूजा रहे। यह और कठि श्रुति और कुम्हरी  
धूप दे। आखत नहीं और निर्भय व्यग्र विराम रहे। इस  
विधित विकला भेग लगावे। यीक यीक व्यग्र रहे।  
कम्हीयरम्हूर्द तर टुट व्यग्र व्यग्र विधिम हो। व्यग्र रहे  
द्वेष व्यग्र व्यग्र से व्यग्र रहे। उन्हीं भूमि वा और व्यग्र  
कुट्टीने लिये कम्ही-व्यग्र हो। व्यग्र व्यग्र कम्ही-व्यग्र  
मन्त्रमें व्यग्र व्यग्र व्यग्र व्यग्र हो। व्यग्र व्यग्र  
हो और तर व्यग्र व्यग्र व्यग्र व्यग्र हो। यीक व्यग्र

पञ्च गन्धमय शुभ लिङ्गकी नित्य अर्चना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह शिवलिङ्ग-महाव्रत सब व्रतोंमें उत्तम और गोपनीय है। तुम भगवान् शंकरके भक्त हो; इसलिये तुमसे इसका वर्णन किया है। जिस किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। केवल शिव-भक्तोंको ही इसका उपदेश देना चाहिये। प्राचीन

कालमें भगवान् शिवने ही इस व्रतका उपदेश दिया था।

तदनन्तर लिङ्गकी कारणस्तपता तथा लिङ्गप्रतिष्ठा एवं पूजाकी व्याख्या करके उपमन्त्रुने कहा—  
यदुनन्दन ! यदि कोई स्थापित शिवलिङ्ग न मिले तो शिवके स्थानभूत जल, अग्नि, सूर्य तथा आकाशमें भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। (थथाय ३३—३६)

## योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अङ्गोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविधि ग्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण

**श्रीकृष्णने कहा—भगवन् !** आपने शान, क्रिया और चर्याका संक्षिप्त सार उद्धृत करके मुझे सुनाया है। यह सब श्रुतिके समान आदरणीय है और इसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। अब मैं अधिकार, अङ्ग, विधि और प्रयोजनसहित परम दुर्लभ योगका वर्णन सुनना चाहता हूँ। यदि योग आदिका अभ्यास करनेके पहले ही मृत्यु हो जाय तो मनुष्य आत्मघाती होता है; अतः आप योगका ऐसा कोई साधन बताइये जिसे शीघ्र सिद्ध किया जा सके, जिससे कि मनुष्यको आत्मघाती न होना पड़े। योगका वह अनुष्ठान, उसका कारण, उसके लिये उपयुक्त समय, साधन तथा उसके भेदोंका तारतम्य क्या है ?

**उपमन्त्रु बोले—श्रीकृष्ण !** तुम सब प्रश्नोंके तारतम्य-के ज्ञाता हो। तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही उचित है। इसलिये मैं इन सब वातोंपर क्रमशः प्रकाश डालूँगा। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चल वृत्ति है, उसीको संक्षेपसे 'योग' कहा गया है। वह योग पाँच प्रकारका है—  
मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग।  
मन्त्र-जपके अभ्यासवश मन्त्रके वाच्यार्थमें स्थित हुई विक्षेप-रहित जो मनकी वृत्ति है, उसका नाम 'मन्त्रयोग' है। मनकी वही वृत्ति जब प्राणायामको प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मन्त्रके स्पर्शसे रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है। जिससे सम्पूर्ण विश्वके रूपमात्रका अव्यव विलीन (तिरोहित) हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सदसुका भी भान नहीं होता। जिससे एकमात्र उपाधिशूल्य शिव-स्वभावका चिन्तन किया जाता है और मनकी वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं।

देखे और सुने गये लौकिक और पारलौकिक विषयोंकी ओरसे जिसका मन विरक्त हो गया हो, उसीका योगमें अधिकार है, दूसरे किसीका नहीं है। लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंके दोषोंका और ईश्वरके गुणोंका सदा ही दर्शन करनेसे मन विरक्त होता है। प्रायः सभी योग आठ या छः अङ्गोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, स्वस्तिक आदि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये विद्वानोंने योगके आठ अङ्ग बताये हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये थोड़ेमें योगके छः लक्षण हैं। शिव-शास्त्रमें इनके पृथक्-पृथक् लक्षण बताये गये हैं। अन्य शिवागमोंमें, विशेषतः कामिक आदिमें, योगशास्त्रोंमें और किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें भी इनके लक्षणोंका वर्णन है। अहिंसा, सत्य, अस्त्वेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन्हें सत्पुरुषोंने यम कहा है। इस प्रकार यम पाँच अवयवोंके योगसे युक्त है। शौच, संतोष, तप, जप (स्त्राव्याय) और प्रणिधान—इन पाँच भेदोंसे युक्त दूसरे योगाङ्गको नियम कहा गया है। तात्पर्य यह कि नियम अपने अंशोंके भेदसे पाँच प्रकारका है। आसनके आठ भेद कहे गये हैं—स्वस्तिक आसन, पद्मासन, अर्धचन्द्रासन, वीरासन, योगासन, प्रसाधितासन, पर्यङ्कासन और अपनी रुचिके अनुसार आसन। अपने शरीरमें प्रकट हुई जो वायु है, उसको प्राण कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। उस प्राणायाम-के तीन भेद कहे गये हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक। नासिकाके एक छिद्रको दबाकर वा बंद करके दूसरे उदरस्थित वायुको बाहर निकाले। इस क्रियाको रेचक कहा गया है। फिर दूसरे नासिका-छिद्रके द्वारा वायु वायुसे शरीरको धौंकनीकी भाँति भर ले। इसमें वायुके पूरणकी क्रिया होनेके कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। जब साथक भीतरती

वायुको न तो छोड़ता है और न वाहरकी दायुको ग्रहण करता है, केवल भरे हुए वडेकी भाँति अविचल भायसे स्थित रहता है, तब उस प्राणायामको 'कुम्भक' नाम दिया जाता है। वो रक्ते साधकको चाहिये कि वह रेचक आदि तीनों प्राणायामोंको न तो बहुत जल्दी-जल्दी करे और न बहुत देरसे करे। साधनाके लिये उद्यत हो क्रमयोगसे उठका अभ्यास करे।

रेचक आदिमें नाइंशोधनपूर्वक जो प्राणायामका अभ्यास किया जाता है, उसे स्वेच्छासे उत्क्रमणपर्यन्त करते रहना चाहिये—यह बात योगशास्त्रमें बतायी गयी है। कनिष्ठ आदि-के भेदसे प्राणायाम चार प्रकारका कहा गया है। मात्रा और युग्मकि यिगाग—तारतम्यसे ये भेद बनते हैं। चार भेदोंमेंसे जो कल्पक या कनिष्ठ प्राणायाम है, यह प्रथम उद्धीत कहा गया है; इसमें वारह मात्राएँ होती हैं। मध्यम प्राणायाम द्वितीय उद्धीत है, उसमें चौतीस मात्राएँ होती हैं। उत्तम श्रेणी-म प्राणायाम तृतीय उद्धीत है, उसमें छतीस मात्राएँ होती हैं। उससे भी धेष्ठ जो सर्वांत्कृष्ट चतुर्थ प्राणायाम है, वह ऐसे स्वेद और कम्फ आदिका बनक लेता है।

योगीके अंदर आगम्बजनित रोमाश्र, नेत्रोसे अश्रुपात, जल्य, प्रति और मूर्च्छा आदि भाव प्रकट होते हैं। शुट्टेके चारों ओर प्रदर्शित-भावसे न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे-धीरे उत्थी भवाये। शुट्टेकी एक परिकल्पनामें जितनी देरतर शुट्टी रहती है, उस समयका मान एक मात्रा है। मात्राओंकी मरणः जानना चाहिये। उद्धृत-तम-योगसे नाड़ीयोगनपूर्वक शाश्वतम करना चाहिये। प्राणशास्त्रके दो भैरव दत्तये गये हैं—अगर्भ और सर्वार्भ। जप और ध्यानके लिया किया गया शाश्वत-अगर्भ कहलाता है और जब तथा ध्यानके तद्देश्योग-ईक लिये जानेवाले प्राणशास्त्रको 'सर्वार्भ' कहते हैं। अगर्भसे सर्वार्भ प्राणशास्त्र सौ गुना अधिक उत्तम है। इसलिये दोषीजन भूमः सर्वार्भ प्राणशास्त्र किया करते हैं। प्राणविज्ञानसे ही दूरीमें शुट्टेके धीरे पर विजय पायी जाती है। प्राण, अनुन,

१. इसमें सा अर्थ नामिन्दूसे प्रेरणा की हुई मानवा किरण  
पर जगता है। यह प्राप्तिकारी देवा, वद्व और संसदनका शिर-  
पुर्ण है।

२० देवदत्तने चतुर्थ इतिहासका वरितम् इस प्रकार दिया  
है—“प्राप्तिर्विद्युतिः चतुर्थः” अर्थात् चतुर्थ और अचल।  
‘प्राप्तिर्विद्युतिः’ विद्युतिका वरितम् है।

समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कुक्कुल, देवदत्त और  
घनंजय—ये दस प्राणवायु हैं। प्राण प्रथाग रहता है, इसी-  
लिये इसे 'प्राण' कहते हैं। जो कुछ गोजन किया जाता है,  
उसे जो वायु नीचे ले जाती है, उसको 'अग्नान' कहते हैं।  
जो वायु रम्पूर्ण अङ्गोंको बढ़ाती हुई उग्रमें व्यात रहती है,  
उसका नाम 'व्यान' है। जो वायु सर्वस्थानोंको उद्देशित करती  
है, उसकी 'उदान' संश्ला है। जो वायु सब अङ्गोंको सभापाय-  
से ले चलती है, वह अपने उत्तर समन्वयन रूप कर्मसे 'समान'  
कहलाती है। मुखसे कुछ उगलनेमें कारणभूत वायुकी 'नाग'  
कहा गया है। आँख लोलनेके व्यातारमें 'कूर्म' नामक वायुकी  
स्थिति है। दीक्षिमें कुक्कुल और जैथाइमें 'देवदत्त' नामक  
वायुकी स्थिति है। 'धनंजय' नामक वायु रम्पूर्ण शरीरोंव्यात  
रहती है। वह मृतक शरीरको भी नहीं छोड़ती। कमसे  
अन्यासमें लाया हुआ यह प्राणवायन जब उनिह प्रमाण या  
मात्रासे युक्त हो जाता है, तब वह कठोर रूपोंकी दम्प  
कर देता है और उसके शरीरकी रक्त रहता है।

प्राणर विजय प्राप्त हो जाय तो उनसे प्रहृष्ट क्षेत्रकर्ते निर्दिशोंको अच्छी तरह देखे। पहली बात यह होती है कि विद्या, मूल और कक्षणी मात्रा वही लाती है, अधिक भोग नहीं। इनकी शक्ति हो जाती है और स्विभव से बहुम जाती है। यदिलों एकाग्र अता है। शीघ्र चलनेवाली शक्ति प्रहृष्ट होती है। हृदयमें उत्ताह बढ़ता है। उसमें मिटान अतीव है। ममता खेगेत्ता नाम हो जाता है। कल तेज़ और क्षेत्रकर्ते इन्हें होती है। धृति, सेप्ता, वुशाम, निरसा और प्रवर्षण अतीव है। तथा, प्राप्तिक्षित, वश, दान और क्षमा अद्विक्षिती नी भासन है—ये प्राणायामके लोटदीनी कलाह से बचत रहती है। अस्तेवासने विद्यमें आवक्त हुई इन्हिंकी दीनी हृदय द्वारा अने भीतर निर्मित होता है, उस कानूनों पर दार्शन करते हैं। यम और इन्हिंकी ही मनुष्यकी सर्व कथा नहीं होती जानेवाली है। कहिं उन्हें वहाँ से रहता जाता है तो उन्होंनी प्रति परखती है और विरहेंका अंत वृत्ती होने पर विद्या वाले नहरनें जानेवाली होती है। इन्हिंकी सु-की इन वालोंके अद्विक्षित, पुरुषों की कहाँये कि वह वाल-विद्यालय वालोंके हन्दियाली अद्वेषी भविती ही वालों पर विद्या का उद्धर फैले।

सिवाने किसी सदा लिखती है तो यह क्या होगा ?

पञ्च गन्धमय शुभ लिङ्गकी नित्य अर्चना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह शिवलिङ्ग-महाब्रत सब व्रतोंमें उत्तम और गोपनीय है। तुम भगवान् शंकरके भक्त हो; इसलिये तुमसे इसका वर्णन किया है। जिस किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। केवल शिव-भक्तोंको ही इसका उपदेश देना चाहिये। प्राचीन

कालमें भगवान् शिवने ही इस व्रतका उपदेश दिया था।

तदनन्तर लिङ्गकी कारणरूपता तथा लिङ्गप्रतिष्ठा एवं पूजाकी व्याख्या करके उपमन्त्रुने कहा—  
यदुनन्दन ! यदि कोई स्थापित शिवलिङ्ग न मिले तो शिवके स्थानभूत जल, अग्नि, सूर्य तथा आकाशमें भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। (अध्याय ३३—३६)

## योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अङ्गोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशषिप् प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण

**श्रीकृष्णने कहा—भगवन् !** आपने ज्ञान, क्रिया और चर्याका संक्षिप्त सार उद्धृत करके मुझे सुनाया है। यह सब श्रुतिके समान आदरणीय है और इसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। अब मैं अधिकार, अङ्ग, विधि और प्रयोजनसहित परम दुर्लभ योगका वर्णन सुनना चाहता हूँ। यदि योग आदिका अभ्यास करनेके पहले ही मृत्यु हो जाय तो मनुष्य आत्मघाती होता है; अतः आप योगका ऐसा कोई साधन बताइये जिसे शीघ्र सिंद्ध किया जा सके, जिससे कि मनुष्यको आत्मघाती न होना पड़े। योगका वह अनुष्ठान, उसका कारण, उसके लिये उपयुक्त समय, साधन तथा उसके भेदोंका तारतम्य क्या है ?

**उपमन्त्रु बोले—श्रीकृष्ण !** तुम सब प्रश्नोंके तारतम्य-के ज्ञाता हो। तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही उचित है। इसलिये मैं इन सब वातोंपर क्रमशः प्रकाश डालूँगा। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चल वृत्ति है, उसीको संक्षेपसे 'योग' कहा गया है। वह योग पाँच प्रकारका है—मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग। मन्त्र-जपके अभ्यासवश मन्त्रके वाच्यार्थमें स्थित हुई विशेष-रहित जो मनकी वृत्ति है, उसका नाम 'मन्त्रयोग' है। मनकी वही वृत्ति जब प्राणायामको प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मन्त्रके स्पर्शसे रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है। जिससे सम्पूर्ण विश्वके रूपमात्रका अवयव विलीन (तिरेहित) हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सद्वस्तुका भी भाव नहीं होता। जिससे एकमात्र उपाधिशूल्य शिव-स्वभावका चिन्तन किया जाता है और मनकी वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं।

देखे और सुने गये लौकिक और पारलौकिक विषयोंकी ओरसे जिसका मन विरक्त हो गया हो, उसीका योगमें अधिकार है, दूसरे किसीका नहीं है। लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंके दोषोंका और ईश्वरके गुणोंका सदा ही दर्शन करनेसे मन विरक्त होता है। प्रायः सभी योग आठ या छः अङ्गोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, स्वस्तिक आदि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये विद्वानोंने योगके आठ अङ्ग बताये हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये थोड़ेमें योगके छः लक्षण हैं। शिव-शास्त्रमें इनके पृथक्-पृथक् लक्षण बताये गये हैं। अन्य शिवागमोंमें, विशेषतः कामिक आदिमें, योगशास्त्रोंमें और किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें भी इनके लक्षणोंका वर्णन है। अहिंसा, सत्य, अस्त्वेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन्हें सत्युरुद्धोंने यम कहा है। इस प्रकार यम पाँच अवयवोंके योगसे युक्त है। शौच, संतोष, तप, जप (स्वाध्याय) और प्रणिधान—इन पाँच भेदोंसे युक्त दूसरे योगाङ्गको नियम कहा गया है। तात्पर्य यह कि नियम अपने अंशोंके भेदसे पाँच प्रकारका है। आसनके आठ भेद कहे गये हैं—स्वस्तिक आसन, पद्मासन, अर्धचन्द्रासन, वीरासन, योगासन, प्रसाधितासन, पर्यङ्कासन और अपनी रुचिके अनुसार आसन। अपने शरीरमें प्रकट हुई जो वायु है, उसको प्राण कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। उस प्राणायाम-के तीन भेद कहे गये हैं—रेचक, पूरक और कुरम्भ। नासिकाके एक छिद्रको द्वाकर या बंद करके दूसरे उदरस्थित वायुको बाहर निकाले। इस निकालोंके रेचक कश गया है। किर दूसरे नासिका-छिद्रके द्वारा वायु वायुसे वारंवार धौंकनीकी भाँति भर ले। इसमें वायुके पूरणकी क्रिया धौंकने कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। जब साधक भाँतरती

वायुको न तो योइता है और न वाहस्की वायुको ग्रहण करता है, केवल भरे हुए बड़ेकी भाँति अविचल भावसे स्थित रहता है, तब उस प्राणायामको 'कुम्भक' नाम दिया जाता है। योगके साधकको चाहिये कि वह रेचक आदि तीनों प्राणायामोंको न तो बहुत जल्दी-जल्दी करे और न बहुत देरसे करे। साधनाके लिये उच्चत हो कमयोगसे उसका अभ्यास करें।

रेचक आदिमें नाईंशोधनपूर्वक जो प्राणायामका अभ्यास किया जाता है, उसे स्वेच्छासे उल्कमण्पर्यन्त करते रहना चाहिये—यह नात योगशास्त्रमें वतायी गयी है। कनिष्ठ यादि-के कमसे प्राणायाम चार प्रकारका कहा गया है। मात्रा और गुणके विभाग—तारतम्यसे ये भेद बनते हैं। चार भेदोंमेंसे जो कम्युक या कनिष्ठ प्राणायाम है, यह प्रथम उद्घोत कहा गया है; इसमें वारह मात्राएँ होती हैं। प्रथम प्राणायाम द्वितीय उद्घोत है, उसमें नौवीस मात्राएँ होती हैं। उत्तम श्रेणी-का प्राणायाम तृतीय उद्घोत है, उसमें छत्तीस मात्राएँ होती हैं। उससे भी ब्रेष्ट जो सर्वोत्कृष्ट चतुर्थ प्राणायाम है, वह ऐसे स्वेद और कम आदिका जनक होता है।

योगीके अंदर आनन्दजनित रोमाया, नेत्रोंसे अश्रुपात, जल्द, निति और पूज्यों आदि भाव प्रकट होते हैं। शुटनेके चारों ४ प्रदक्षिण-करणसे न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे-धीरे रुकी रखते हैं। शुटनेही एक परिस्तमामें जितनी देरतक शुटकी रुकी है, उस सम्पर्ण मान एह मात्रा है। मात्राओंसे भयः जानना चाहिये। उद्घोत-क्रम-योगसे नाईंशोधनपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायामके दो भेद बताये गये—अमर्भ और समर्भ। जप और ध्यानके विना किया गया प्राणायाम 'अमर्भ' कहलाता है और जन तथा धानके सहदेश-पूर्व लिये जानिताले प्राणायामको 'समर्भ' कहते हैं। अमर्भसे समर्भ प्राणायाम ही गुना अधिक उत्तम है। इसलिये योगीजन सब समर्भ प्राणायाम किया करते हैं। प्राणविज्ञनते ही इसी जागुओंमें विक्षय पानी जलती है। प्राग, असाम,

१. उसाम्य अर्थ वामिक्षूके प्रेस्ता को दुर्वायुक्त किये भर देते हैं। वह वस्त्रामामें देह, पठड़ और संस्कार नहीं है।

२. योगीजनी अर्थ वायायामका दरिख्य रुप प्राच दिया जाता है। यह वायायाममें देह, पठड़ और संस्कार नहीं है।

समान, उदाव, व्यान, नाग, कूर्म, हुक्कल, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्राणवायु हैं। प्राण प्रदाय रहता है, इसी-लिये इसे 'प्राण' कहते हैं। जो कुछ भोजन किया जाता है उसे जो वायु नीचे ले जाती है, उसको 'उदाव' कहते हैं। जो वायु समूर्ण अङ्गोंको बढ़ाती हुई उनमें जात रहती है, उसका नाम 'व्यान' है। जो वायु मर्मव्यानोंको उद्देशित रहती है, उसकी 'उदाव' लंगा है। जो वायु सब अङ्गोंको समभाव-से ले चलती है, वह अपने उन समन्वय ला कर्मते 'समान' कहलाती है। मुखसे कुछ उगलनेमें कारणगृह वायुको 'नाग' कहा गया है। आँख सोलमेंके व्यासरामें 'कूर्म' नामक वायुकी स्थिति है। छींकमें हुक्कल और बँधाइमें 'देवदत्त' नामक वायुकी स्थिति है। 'धनंजय' नामक वायु समूर्ण अङ्गोंमें जात रहती है। वह मृतक शरीरको भी नहीं छोड़ती। कमसे अभ्यासमें लाया हुआ यह प्राणायाम जब उन्नित प्रमाण या मात्रासे युक्त हो जाता है, तब वह करति लारे शोरोंहो दग्ध कर देता है और उसके शरीरकी रक्त करता है।

प्राणव विक्षय प्रात हो जान से उत्तरे प्राच लेमेशने चिह्नोंको अच्छी तरह देखे। पहली जात यह लंगी है कि विद्या, नूत्र और कफकी मात्रा बढ़ने लगती है, अधिक भोजन उग्नें-की शक्ति हो जाती है और लिंगसे गौम वायरती है। भोजने उल्कापन आता है। शीघ्र नल्केशी शक्ति प्राच देखी है। उदयमें उत्ताप बढ़ता है। सर्वों भिटाप आती है। समस्त रोगोंका जाया हो जाता है। बल, लेज और लीदर्सी गुर्द होती है। पृष्ठ, मेघ, तुमाम, लिंगला और प्रकृत्युक्त आती है। तर, प्रावधिक्तः यथ, कल और रक्त आदि विक्षय भी जागत है—ये प्राणायामके योगदृशी अवलोक भी उग्रतर नहीं है। अग्ने-अग्ने विक्षयमें आलक्ष हुई इन्द्रियोंके दर्शि उग्रतर जो अग्ने भीतर निर्वित करता है उस वायुकी प्रवरद्धने करते हैं। गर्भ और इन्द्रियों ही मनुष्यको जन्म देते सर्वतों ले जानितारी हैं। बदि उद्ग वस्त्रमें रुप यानि रोपायी प्रति करती है और विक्षयोंगी और गुरी हो। विद्या वायर के वे नरस्त्रमें आलनेजली होती है। इन्द्रियमें सूर्योदय, सूर्योदय वायर बुद्धिमत् तुरतां जाहिये कि वह वायर-विक्षयमें वायर। ले इन्द्रियली अङ्गोंकी दम्भी रुपतां वायर-विक्षयमें वायर।

विक्षयी विक्षयी वायर-विक्षयमें वायर—जाहिये कि वह वायर-विक्षय—यही वायरमें वायर-विक्षय है।

मात्र शिव ही स्थान हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि दूसरे स्थानोंमें त्रिविधि दोष विद्यमान हैं। किसी नियमित कालतक स्थान-स्वरूप शिवमें स्थापित हुआ मन जब लक्ष्यसे च्युत न हो तो धारणाकी सिद्धि समझना चाहिये, अन्यथा नहीं। मन पहले धारणासे ही स्थिर होता है, इसलिये धारणाके अभ्याससे मन-को धीर बनाये। अब ध्यानकी व्याख्या करते हैं। ध्यानमें ‘ध्यै चिन्तायाम्’ यह धातु माना गया है। इसी धातुसे ल्युट् प्रत्यय करनेपर ‘ध्यान’की सिद्धि होती है; अतः विदेशपरहित चित्तसे जो शिवका वारंवार चिन्तन किया जाता है, उसीका नाम ‘ध्यान’ है। ध्येयमें स्थित हुए चित्तकी जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और वीचमें दूसरी वृत्ति अन्तर नहीं डालती, उस ध्येयाकार वृत्तिका प्रवाहरूपसे बना रहना ‘ध्यान’ कहलाता है। दूसरी सब वस्तुओंको छोड़कर केवल कल्याणकारी परमदेव देवेश्वर शिवका ही ध्यान करना चाहिये। वे ही सबके परम ध्येय हैं। यह अर्थवेदकी श्रुतिका अन्तिम निर्णय है। इसी प्रकार शिवादेवी भी परम ध्येय हैं। ये दोनों शिवा और शिव सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं। श्रुति, स्मृति एवं शास्त्रोंसे यह सुना गया है कि शिवा और शिव सर्वव्यापक, सर्वदा उदित, सर्वज्ञ एवं नाना रूपोंमें निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं। इस ध्यानके दो प्रयोजन जानने चाहिये। पहला है मोक्ष और दूसरा प्रयोजन है अणिमा आदि सिद्धियोंकी उपलब्धि। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानप्रयोजन—इन चारोंको अच्छी तरह जानकर योग्यता पुरुष योगका अभ्यास करे। जो शान और वैराग्यसे सम्पन्न, अद्वालु, क्षमाशील, ममतारहित तथा सदा उत्साह रखनेवाला है, ऐसा ही पुरुष ध्याता कहा जाते हैं।

गया है अर्थात् वही ध्यान करनेमें सफल हो सकता है।

साधकको चाहिये कि वह जपसे थकनेपर फिर ध्यान करे और ध्यानसे थक जानेपर पुनः जप करे। इस तरह जप और ध्यानमें लगे हुए पुरुषका योग जल्दी सिद्ध होता है। वारह प्राणायामोंकी एक धारणा होती है, वारह धारणाओं-का ध्यान होता है और वारह ध्यानकी एक समाधि कही गयी है। समाधिको योगका अन्तिम अङ्ग कहा गया है। समाधिसे सर्वत्र दुद्धिका प्रकाश फैलता है। जिस ध्यानमें केवल ध्येय ही अर्थरूपसे भासता है, ध्याता निश्चल महासागरके समान स्थिरभावसे स्थित रहता है और ध्यान स्वरूपसे शून्यसा हो जाता है, उसे ‘समाधि’ कहते हैं। जो योगी ध्येयमें चित्तको लगाकर सुस्थिरभावसे उसे देखता है और बुझी हुई आगके समान शान्त रहता है, वह ‘समाधिस्थ’ कहलाता है। वह न सुनता है न सँघता है, न बोलता है न देखता है, न स्पर्श-का अनुभव करता है न मनसे संकल्प-विकल्प करता है, न उसमें अभिभानकी वृत्तिका उदय होता है और न वह दुद्धिके द्वारा ही कुछ समझता है। केवल काष्ठकी भौति स्थित रहता है। इस तरह शिवमें लीनचित्त हुए योगीको यहाँ समाधिस्थ कहा जाता है। जैसे वायुरहित स्थानमें रक्खा हुआ दीपक कभी हिलता नहीं है—निस्पन्द बना रहता है, उसी तरह समाधिनिष्ठ शुद्ध चित्त योगी भी उस समाधिसे कभी विचलित नहीं होता—सुस्थिरभावसे स्थिर रहता है। इस प्रकार उत्तम योगका अभ्यास करनेवाले योगीके सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं।

( अध्याय ३७ )

### योगमार्गके विष्ण, सिद्धि-सूचक उपसर्ग तथा पृथ्वीसे लेकर दुद्धितत्त्वपर्यन्त ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाके ध्यानकी महिमा

उपमन्त्य कहते हैं—श्रीकृष्ण ! आलस्य, तीक्ष्ण व्याधियाँ, प्रसाद, स्थान-संशय, अनवस्थितचित्तता, अश्रद्धा, भ्रान्ति-दर्शन, दुःख, दीर्घनस्य और विषयलेलुपता—ये दस योग-साधनमें लगे हुए पुरुषोंके लिये योगमार्गके विष्ण कहे गये हैं। योगियोंके शरीर और चित्तमें जो अलसताका भाव

\* योगदर्शन, समाधिपादके ३०वें स्तरमें जो प्रकारके चित्त-विक्षेपोन्ते योगका अन्तराय बताया गया है और ३१वें स्तरमें पाँच ‘विदेशपत्रभू’ तंत्रक विष्ण अथवा प्रतिवन्धक कहे गये हैं। किंतु यहाँ शिवपुराणमें दस प्रकारके अन्तराय बताये गये हैं। इनमें योगदर्शन-

आता है, उसीको यहाँ ‘आलस्य’ कहा गया है। वात, पितृ और कफ—इन धातुओंकी विषमतासे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हींको ‘व्याधि’ कहते हैं। कर्मदोषसे इन व्याधियोंकी कथित ‘अलव्यभूमिकत्व’ को छोड़ दिया गया है और ‘विद्येष-सहभू’ में परिणित दुःख और दीर्घनस्यको समिलित कर दिया गया है। योगसूत्रमें ‘स्थान और संशय’—ये दो एक-सम्पूर्ण अन्तराय हैं और यहाँ ‘स्थान-संशय’ नामसे एक ही अन्तराय माना गया है; साथ ही इस पुराणमें ‘अश्रद्धा’को भी एक अन्तरायके रूपमें गिना गया है।

उत्तरति होती है। असावधानीके कारण योगके साधनोंका न हो पाना 'प्रमाद' है। 'यह है या नहीं है' इस प्रकार उभयक्रेटिसे आकान्त हुए शानका नाम 'स्थान-संशय' है। मनका कहीं स्थिर न होना ही अनवस्थितचित्तता ( चित्तकी अस्थिरता ) है। योगमार्गमें भावरहित ( अनुरागशूल्य ) जो मनकी वृत्ति है, उसको 'अन्नदा' कहा गया है। विपरीत-भावनासे युक्त शुद्धिको 'प्रान्ति' कहते हैं। 'दुःख' कहते हैं कष्टको, उसके तीन भेद हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। मनुष्योंके चित्तका जो अज्ञानजनित दुःख है, उसे आध्यात्मिक दुःख समझना चाहिये। पूर्वकृत कर्मोंके परिणामसे शरीरमें जो रोग आदि उत्पन्न होते हैं, उन्हें आधिभौतिक दुःख कहा गया है। विद्युत्पात, अद्य-शब्द और विष आदिसे जो कष्ट प्राप्त होता है, उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं। इच्छापर आवात पहुँचनेसे मनमें जो खोभ होता है उसीका नाम है 'दौर्मनस्य'। विचित्र विषयोंमें जो सुखका भ्रम है, वही 'विषयलेखुपता' है।

योगपरायण योगीके इन विषयोंके शान्त हो जानेपर जो 'दिव्य उपसर्ग' ( विष्ण ) प्राप्त होते हैं, वे सिद्धिके सूचक हैं। प्रिभा, अवय, वार्ता, दर्शन, आत्माद और वेदना—ये छः प्रारम्भी सिद्धियाँ ही 'उपसर्ग' कहलाती हैं, जो योगशक्तिके प्रभव्यमें कारण होती हैं। जो पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हो, जोसीकी ओटमें हो, भूतकालमें रहा हो, वहुत दूर हो अथवा कीर्णमें होनेवाला हो, उसका ठीक-ठीक प्रतिभाव ( भाव ) हो जाना 'प्रतिभा' कहलाता है। सुननेका प्रयत्न न करनेपर भी सम्पूर्ण शब्दोंका हुनावी देना 'ध्वनि' कहा गया है। समस्त देहपरियोंकी वार्ताओंको समझ लेना 'वार्ता' है। दिव्य कथाओंमें विना किसी प्रकारके दिव्यायी देना 'दर्शन' कहा गया है, दिव्य रथोंका त्वाद प्राप्त होना 'आत्माद' कहलाता है, अन्तःपरणके द्वारा दिव्य शब्दोंका तथा द्रव्योंके द्रव्योंके व्यापादि दिव्य घोर्खोंका अनुभव 'वेदना' नामसे बिलिया है।

किन् योगीके पान स्वयं ही रख उपस्थित हो जाने हैं वे एक शुद्धी असुरे प्रदात फरते हैं। कुत्सी इच्छातुकार एवं प्रदातवी महुर लाभी निकलती है। जब प्रदातके एक और दिव्य ओरपियों सिद्ध हो जाती है। देवदत्तार्थ एवं देवतों प्रभव करके मनोतान्त्रित बहुए रहती है। एक देवतों द्वारा भी लालतसार हो जाती हो योगी एवं उसी होता है—इसके लिये देवा या अनुभव किया

है, उसी प्रकार मोक्ष भी हो सकता है। कुशलता, सूखलता, वाल्पा-वस्या, वृद्धावस्या, युवावस्या, नाना जातिका त्वरणः पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चारतत्वोंके शरीरको धारण करना, निल अपार्थिय एवं मनोहर गन्धको ब्रह्म करना—ये शारिं ऐश्वर्यके आठ गुण वताये गये हैं।

जलमें निवास करना, पृथ्वीर ही जलका निकल आना, इच्छा करते ही विना किसी आतुरताके स्वयं समुद्रको भी पी जानेमें समर्थ होना, इन संसारमें जहाँ चाहे कहाँ जलना दर्शन होना, घड़ा आदिके विना हाथमें ही जलराशिको धारण करना, जिस विस बलुको भी सानेही इच्छा है, उसका तत्त्वाल सरस ही जाना, जल, तेज और वायु—इन तीन तत्त्वोंके शरीरको धारण करना तथा देवता फौंटे, पुर्णी और फान आदिसे रहित होना—पर्मिन ऐश्वर्यके आठ गुणोंही मिलत हर ये सोलह जलीय ऐश्वर्यके अद्वृत गुण हैं।

शरीरसे अग्निको प्रकट करना, अग्निके तातो जलनी-हा भय दूर ही जाना, यदि इच्छा हो तो दिना रिती प्रवर्षते इस जगत्को जलाकर भस्त कर देनेकी शक्तिका रैना, अनीने ज्ञार अग्निको त्यापित कर देना, हाथों आग धारण करना, दृष्टिको जलाकर फिर उसे ज्ञानका लौं कर देनेकी कमताल होना, मुखमें ही अग्न अग्निको पत्ता लेना तथा तेज और वायु—जो ही तत्त्वसि शरीरस्ते रन देना—ये आठ गुण ऐश्वर्य ऐश्वर्यके उपर्युक्त नीलद गुणोंकी वायु चौरीमें होते हैं। ये जीवमें तंजन ऐश्वर्यके गुण नहीं गये हैं। जनके जाग जिन्दगी के देना, प्राणितोंने भूतकर उत्तरामें प्रसन्न दर लगा, जिन्दा प्रयत्नके ही परित आरिंठ भूमन् नामके उठा लेना, जात दी जाना, इला रेना, हाथमें अनुप्रे वह, अग्नि अमृतोंके अग्नभागही नीमेश्वर भूमिको भी जैव लूट कर देना इच्छावाल वादुसरत्ते ही शरीरका निर्मित उर लेना—ये आठ गुण तैजस ऐश्वर्यके नीरीम गुणोंकी वायु तरीके हो जाते हैं। दिल्लीमें वाकुम लवी इच्छाके ही दर्शन गृह इन्द्रिय किये हैं। अग्निरही उत्तराम न रोकत, इन्द्रियोंका इन्द्रियोंमें रहना, आग्नेयमें इच्छातुकार रित्या रक्षा, इन्द्रियोंका नाम्नु विद्यर्थी नामदात रेना, अग्निरही नीरीम गृह इन्द्रिय उत्तरा निर्मित रसायन भूमिको नीरीम देना देना और जिग्नार हेना—ये आठ गुण ऐश्वर्य जीवमें गुणोंसे निर्मित गृह लेनी हैं। ये जीवमें गुणोंके दृष्टिको देना है। ये जीवमें गुणोंके दृष्टिको देना है।

इच्छानुसार सभी वस्तुओंकी उपलब्धि, जहाँ चाहे वहाँ निकल जाना, सबको अभिभूत कर लेना, सम्पूर्ण गुण अर्थ-का दर्शन होना, कर्मके अनुरूप निर्भाण करना, सबको वशमें कर लेना, सदा प्रिय वस्तुका ही दर्शन होना और एक ही स्थानसे सम्पूर्ण संसारका दिखायी देना—ये आठ गुण पूर्वोक्त इन्द्रियसम्बन्धी ऐश्वर्यगुणोंसे मिलकर अइतालीस होते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्य इन अइतालीस गुणोंसे युक्त कहा गया है। यह पहलेके ऐश्वर्योंसे अधिक गुणवाला है। इसे 'मानस ऐश्वर्य' भी कहते हैं। छेदना, पीटना, बाँधना, खोलना, संसारके वशमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको ग्रहण करना, सबको प्रसन्न रखना, पाना, मृत्युको जीतना तथा कालपर विजय पाना—ये सब अहंकारसम्बन्धी ऐश्वर्यके अन्तर्गत हैं। अहंकारिक ऐश्वर्यको ही 'प्राजापत्य' भी कहते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्यके गुणोंके साथ इसके आठ गुण मिलकर छपन होते हैं। महान् अभिमानिक ऐश्वर्यके ये ही छपन गुण हैं। संकल्पमात्रसे स्थिरत्वना करना, पालन करना, संहार करना, सबके ऊपर अपना अधिकार स्थापित करना, प्राणियोंके चित्तको प्रेरित करना, सबसे अनुपम होना, इस जगत्से पृथक् नये संसारकी रक्षा कर लेना तथा शुभको अशुभ और अशुभको शुभ कर देना—यह 'बौद्ध ऐश्वर्य' है। प्राजापत्य ऐश्वर्यके गुणोंको मिलाकर इसके चौसठ गुण होते हैं। इस बौद्ध ऐश्वर्यको ही 'प्राक्ष ऐश्वर्य' भी कहते हैं। इससे उत्कृष्ट है गौण ऐश्वर्य, जिसे प्राकृत भी कहते हैं। उसीका नाम 'वैष्णव ऐश्वर्य' है। तीनों लोकोंका पालन उसीके अन्तर्गत है। उस सम्पूर्ण वैष्णव-पदको न तो व्रक्षा कह सकते हैं और न दूसरे ही उसका पूर्णतया वर्णन कर सकते हैं। उसीको पौरुषपद भी कहते हैं। गौण और पौरुषपदसे उत्कृष्ट गणपतिपद है। उसीको ईश्वरपद भी कहते हैं। उस पदका किञ्चित् ज्ञान श्रीविष्णुको है। दूसरे लोग उसे नहीं जान सकते। ये सारी विज्ञान-सिद्धियाँ औपसर्गिक हैं। इन्हें परम वैराग्यद्वारा प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिये। इन अशुद्ध प्रातिभासिक गुणोंमें जिसका चित्त आसक्त है, उसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला निर्भय परम ऐश्वर्य नहीं सिद्ध होता।

इसलिये देवता, अनुर और राजाओंके गुणों तथा भोगोंको जो तृणके समान त्याग देता है, उसे ही उत्कृष्ट योग-सिद्धि प्राप्त होती है। अथवा यदि जगत्पर अनुग्रह करनेकी इच्छा हो तो वह योगिद गुणे इच्छानुसार विचरे। इस

जीवनमें गुणों और भोगोंका उपभोग करके अन्तमें उसे मोक्ष-की प्राप्ति होगी।

अब मैं योगके प्रयोगका वर्णन करूँगा। एकाग्रचित्त होकर सुनो। शुभकाल हो, शुभदेश हो, भगवान् शिवका क्षेत्र आदि हो, एकान्त स्थान हो, जीव-जन्म न रहते हों, कोलाहल न होता हो और किसी वावाकी सम्भावना न हो—ऐसे स्थानमें लिपी-पुती सुन्दर भूमिको गन्ध और धूप आदिसे सुवासित करके वहाँ फूल विवर हे, चँदोवा आदि तानकर उसे विचित्र रीतिसे सजा दे तथा वहाँ कुश, पुष्प, समिधा, जल, फल और मूलकी सुविधा हो। फिर वहाँ योगका अभ्यास करे। अग्निके निकट, जलके सभीप और सूखे पत्तोंके ढेरपर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जहाँ डॉस और मच्छर भरे हों, सौंप और हिसक जन्मुओंकी अधिकता हो, दुष्प पश्च निवास करते हों, भयकी सम्भावना हो तथा जो दुष्टोंसे विरा हुआ हो—ऐसे स्थानमें भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। इमशानमें चैत्यवृक्षके नीचे, बाँधीके निकट, जीर्ण-शीर्ण घरमें, चौराहेपर, नदी-नद और समुद्रके तटपर गलीया सड़कके बीचमें, उजड़े हुए उद्यानमें, गोष्ठ आदिमें अनिष्टकारी और तिन्दित स्थानमें भी योगाभ्यास न करे। जब शरीरमें अजीर्णका कष्ट हो, खट्टी डकार आती हो, विष और मूत्रसे शरीर दूषित हो, सर्दी हुई हो या अतिशार रोगका प्रकोप हो, अधिक मोजन कर लिया गया हो या अधिक परिश्रमके कारण थकावट हुई हो, जब मनुष्य अत्यन्त चिन्ताते व्याकुल हो, अधिक भूख-प्यास सता रही हो तथा जब वह अपने गुरुजनोंके कार्य आदिमें लगा हुआ हो; उस अवस्थामें भी उसे योगाभ्यास नहीं करना चाहिये।

जिसके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों; जो कर्मोंमें यथायोग्य समुचित चेष्टा करता हो तथा जो उचित समयसे सोवा और जागता हो एवं सर्वथा आयासरहित हो, उसीको योगाभ्यासमें तत्पर होना चाहिये। आसन मुलायम, सुन्दर, विस्तृत, सब ओरते बराबर और पवित्र होना चाहिये। पद्मासन और स्वस्तिकासन आदि जो योगिक आसन हैं, उनपर भी अभ्यास करना चाहिये। अपने आचार्यपर्यन्त गुरुजनोंकी प्रत्ययको क्रमशः प्रणाम करके अपनी गर्दन, मस्तक और ढातीको, रथी रखें। ओढ़ और नेत्र अधिक सटे हुए न हों। सिर कुछ कुछ ऊँचा हो। दाँतोंसे दाँतोंका सर्व न करे। दाँतोंके अग्रभागमें स्थित हुई जिहाको अविचल भावसे रखते हुए, एङ्गोंसे दोनों अण्डकोशों और प्रजननेन्द्रियकी रखारूपक-

देंतों ऊँचोंके ऊपर बिना किसी बलके अपनी दोनों भुजाओं-  
में खड़े। किर दाहिने हाथके पृष्ठभागको बायें हाथकी  
पैरीर रखकर धीरेसे पीठको ऊँची करे और छातीको  
अग्रको ओसे सुस्थिर रखते हुए नासिकाके अग्रभागपर  
टिय जाये। अन्य दिशाओंकी ओर इष्टिपात न करे। प्राणका  
चार रेक्कर पापाणके समान निश्चल हो जाय। अपने  
र्जुके भीतर मानस-मन्दिरमें हृदय-कमलके आसनपर  
निश्चिह्नित भगवान् शिवका चिन्तन करके ध्यान-यज्ञके  
द्वय उनका पूजन करे।

मूलाधर चक्रमें, नासिकाके अग्रभागमें, नाभिमें, कण्ठमें,  
बहुके दोनों छिंद्रोंमें, भौंहोंके मध्यभागमें, द्वारदेशमें,  
ल्लाटमें या मस्तकमें शिवका चिन्तन करे। शिवा और  
शिवके लिये यथोचित रीतिसे उत्तम आसनकी कल्पना करके  
वह सावरण या निराकरण शिवका स्मरण करे। द्विदल,  
पूर्वद, पृदल, ददादल, द्वादशदल अथवा पोडशदल  
कमलके आसनपर विराजमान शिवका विधिवत् स्मरण करना  
चाहिए। दोनों भौंहोंके मध्यभागमें द्विदल कमल है, जो  
प्रियुके समान प्रकाशमान है। भ्रूमध्यमें स्थित जो कमल है,  
उसके क्रमशः दक्षिण और उत्तर भागमें दो पचे है, जो  
प्रियुके समान दीसिमान हैं। उनमें दो अतिम वर्ण 'ह' और  
'अ' अङ्कित हैं। पोडशदल कमलके पक्षे सोलह स्वरूप हैं,  
जिनमें 'अ' से लेकर 'अः' तकके अक्षर क्रमशः आङ्कित हैं।  
अ वो काल है, उसकी नालके मूलभागसे वारह दल  
प्रिय हुए हैं, जिनमें 'क' से लेकर 'ठ' तकके वारह  
के अभियः अङ्कित हैं। सूर्यके समान प्रकाशमान इस  
प्रियुके उन द्वादश दलोंका अपने हृदयके भीतर ध्यान  
प्रिय होता है। तत्त्वशात् गोदुग्धके समान उज्ज्वल कमलके  
प्रियुके चिन्तन करे। उनमें क्रमशः 'इ' से लेकर 'फ'

तकके अक्षर अङ्कित हैं। इसके बाद नीचेकी ओर दलवाले  
कमलके छः दल हैं, जिनमें 'व' से लेकर 'ल' तकके अक्षर  
अङ्कित हैं। इस कमलकी कान्ति धूमराहित अङ्गुरके समान  
है। मूलधारमें स्थित जो कमल है, उसकी कान्ति सुवर्णके  
समान है। उसमें क्रमशः 'व' से लेकर 'स' तकके चार अक्षर चार  
दलोंके रूपमें स्थित हैं। इन कमलोंमेंसे जिसमें ही अपना मन रखे,  
उसीमें महादेव और महादेवीका अपनी धीर बुद्धिसे चिन्तन  
करे। उनका स्वरूप बैंगूठेके बराबर, निर्मल और सब ओसे  
दीसिमान है। अथवा वह शुद्ध दीपशिखाके समान आकार-  
वाला है और अपनी शक्तिसे पूर्णतः मणित है। अथवा  
चन्द्रलेखा या तारके समान रूपवाला है अथवा वह नीचारके  
सींक या कमलनालसे निकलनेवाले सूतके सगान है।  
कदम्बके गोलक या ओसके कणसे भी उसकी उपागा दी जा  
सकती है। वह रूप पृथिवी आदि तत्त्वोंपर विजय प्राप्त  
करनेवाला है। ध्यान करनेवाला पुरुष जिस तत्त्वपर विजय प्राप्ती  
इच्छा रखता है, उसी तत्त्वके अधिगतिनी ल्लूल नूरिना  
चिन्तन करे। ब्रह्मसे लेकर सदाशिवपर्यन्त तथा भव आदि  
आठ मूर्तियाँ ही शिवशास्त्रमें शिवकी स्तूल मूर्तियाँ निश्चित  
की गयी हैं। मुनीश्वरोंने उन्हें 'धोर', 'धान्त' और 'गिर्भ' नाम  
प्रकारकी बताया है। फलकी आशा न रखनेवाले धान-  
कुशल पुरुषोंको इनका चिन्तन करना चाहिये। वर्दि वीर  
मूर्तियोंका चिन्तन किया जाय तो ये शीम ही धान और रुद्रा  
नाय करती हैं। गिर्भ मूर्तियोंमें शिवजा चिन्तन वर्दिवार  
चिरकालमें सिद्धि प्राप्त शेती है और धीःपूर्तिमें दित्ता  
ध्यान किया जाय तो सिद्धि प्राप्त होनेमें न कोई अविकृ  
शीप्रता होती है और न अधिक विकृष्ट हो। धीःपूर्तिमें  
ध्यान करनेसे विशेषतः मुच्छि, शक्ति एवं शुद्ध दुर्द दग्ध  
होती है। क्रमशः सभी निदित्वों प्राप्त होने हैं इनमें नद्यन  
नहीं हैं। ( अन्त १२५ )

### ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्त्व, शिवभक्त या विवेक लिये

#### प्राण देने अथवा शिवकेव्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लभिका कथन

अम्बुज बहते हैं—धीरुष ! धीकण्ठनापका स्मरण  
करनेवाले उन्हीं गयेरथों ही सिद्धि तत्काल हो जाती  
है। अन्य दूर्दिनेश्वर ऐसे उनसे भाले अवश्य करते हैं।  
उन्हीं लिखते हुए लिये रुद्रं लोका भाल करते  
हैं। उन्हीं लिखते हुए लंगहर जर नित निधन  
करते हुए उसमें दृष्टि स्थिर होता है। मत्त्वान्

शिवका चिन्तन तत्त्वपर उन सिद्धियों प्राप्त होने वाले हैं।  
अन्य दूर्दिनेश्वर ऐसे उन्हीं भाल करते हैं। उन्हीं लिखते हुए लंगहर  
करते हैं, उन्हें उन्होंना दर्शाये जाते हैं। उन्हीं लिखते हुए लंगहर  
दर्शित होता है, जिस लिखित वाले हैं। उन्हीं लिखते हुए लंगहर  
दुर्दिनेश्वर करते हैं। उन्हीं लिखते हुए लंगहर करते हैं।

कोई भी ध्यान निर्विषय होता ही नहीं। बुद्धिकी ही कोई प्रवाहरूपा संतति 'ध्यान' कहलाती है, इसलिये निर्विषय बुद्धि केवल—निर्गुण निराकार व्रहणमें ही प्रवृत्त होती है।

अतः सविषय ध्यान प्रातःकालके सूर्यकी किरणोंके समान ज्योतिका आश्रय लेनेवाला है तथा निर्विषय ध्यान सूक्ष्मतत्त्वका अवलम्बन करनेवाला है। इन दोके सिवा और कोई ध्यान वास्तवमें नहीं है। अथवा सविषय ध्यान साकार स्वरूपका अवलम्बन करनेवाला है तथा निराकार स्वरूपका जो वोध या अनुभव है, वही निर्विषय ध्यान माना गया है। वह सविषय और निर्विषय ध्यान ही क्रमशः सबीज और निर्बीज कहा जाता है। निराकारका आश्रय लेनेसे उसे निर्बीज और साकारका आश्रय लेनेसे सबीजकी संज्ञा दी गयी है। अतः पहले सविषय या सबीज ध्यान करके अन्तमें सब प्रकारकी सिद्धिके लिये निर्विषय अथवा निर्बीज ध्यान करना चाहिये। प्राणायाम करनेसे क्रमशः शान्ति आदि दिव्य सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं। उनके नाम हैं—शान्ति, प्रशान्ति, दीसि और प्रसाद। समस्त आपदाओंके शमनको ही शान्ति कहा गया है। तम (अशान)का बाहर और भीतरसे नाश ही प्रशान्ति है। बाहर और भीतर जो शानका प्रकाश होता है, उसका नाम दीसि है तथा बुद्धिकी जो स्वस्थता (आत्मनिष्ठता) है, उसीको प्रसाद कहा गया है। वास्त्र और आन्धन्तरसहित जो समस्त करण हैं, वे बुद्धिके प्रसादसे शीघ्र ही प्रसन्न (निर्मल) हो जाते हैं।

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानप्रयोजन—इन चारको ज्ञानकर ध्यान करनेवाला पुरुष ध्यान करे। जो ज्ञान और बैराग्यसे सम्बन्ध हो, सदा शान्तचित्त रहता हो, अद्वालु हो और जिसकी बुद्धि प्रसादगुणसे युक्त हो, ऐसे साधकको ही सत्पुरुषोंने ध्याता कहा है। 'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु है। इसका अर्थ है चिन्तन। भगवान् शिवका वारंवार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे योङ्गा-सा भी योगभ्यास पापका नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करनेवाले पुरुषके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक विक्षेपरहित चित्तसे परमेश्वरका जो चिन्तन है, उसीका नाम 'ध्यान' है। बुद्धिके प्रवाहरूप ध्यानका जो आलम्बन या आश्रय है, उसीको साधु पुरुष 'ध्येय' कहते हैं। स्वयं साम्य सदाशिव ही वह ध्येय है। मोक्ष-सुखका पूर्ण अनुभव और अणिमा आदि ऐश्वर्यकी उपलक्ष्य—ये पूर्ण शिवध्यानके साक्षात् प्रयोजन कहे गये हैं। ध्यानसे सौख्य और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है; इसलिये मनुष्यको सब कुछ छोड़कर ध्यानमें लग जाना

चाहिये। विना ध्यानके शान नहीं होता और जिसने योगका साधन नहीं किया है, उसका ध्यान नहीं सिद्ध होता। जैसे ध्यान और शान दोनों प्राप्त हैं, उसने भवसागरको पार कर लिया। समस्त उपाधियोंसे रहित, निर्मल ज्ञान और एकाप्रता-पूर्ण ध्यान—ये योगभ्याससे युक्त योगीको ही सिद्ध होते हैं। जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हींकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानमें लगती है। जिनकी बुद्धि पापसे दूषित है, उनके लिये ज्ञान और ध्यानकी बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ीको भी जल देती है, उसी प्रकार ध्यानाभ्यास शुभ और अशुभ कर्मको भी क्षण-भरमें दग्ध कर देती है। जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकारका नाश कर देता है, इसी तरह योङ्गा-सा योगभ्यास भी महान् पापका विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वरका ध्यान करनेवाले पुरुषको जो महान् श्रेय प्राप्त होता है, उसका कहीं अन्त नहीं है। #

ध्यानके समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यानके समान कोई तप नहीं है और ध्यानके समान कोई धन नहीं है; इसलिये ध्यान अवश्य करे। ॥ अपने आत्मा एवं परमात्मका वोध प्राप्त करनेके कारण योगीजन केवल जलसे भरे हुए तीर्थों और पथर एवं मिट्टीकी वनी हुई देवमूर्तियोंका आश्रय नहीं लेते (वे आत्मतीर्थमें) अवगाहन करते और आत्मदेवके ही भजनमें लगे रहते हैं। जैसे अयोगी पुरुषोंको मिट्टी और काठ आदिकी वनी हुई स्थूल मूर्तियोंका प्रत्यक्ष होता है उसी तरह योगियोंको ईश्वरके सूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जैसे राजाको अपने अन्तःपुरमें विचरनेवाले स्वजन एवं परिजन प्रिय होते हैं और बाहरके लोग उतने प्रिय नहीं होते, उसी प्रकार भगवान् शंकरको अन्तःकरणमें ध्यान लगानेवाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, वास्त्र उपचारोंका आश्रय लेने वाले कर्मकाण्डी नहीं। जैसे लोकमें वह देखा गया है कि बाहरी लोग राजाके भवनमें राजकीय पुरुषोंचित्त

\* यथा वहिमहादीपः शुक्रभादं च निर्देहेत् ।

१०४३ शुभाशुभं कर्म ध्यानान्निर्देहे क्षणात् ॥

१०४४ ध्यायतः क्षणमात्रं वा अद्या परमेश्वरम् ।

१०४५ यद्वेत् सुमहन्त्रेयस्तस्यान्तो नैव विष्टे ॥

( शि० पु० वा० स० उ० ख० ३० । २५, २७ )

१०४६ नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः ।

१०४७ नास्ति ध्यानरूपो यश्चत्साङ्कश्चानं समाचरेत् ॥

( शि० पु० वा० स० उ० ख० ३० । २८ )

उपभोग नहीं कर पाते, केवल अन्तःपुरके द्वारा ही उस फलके भागी होते हैं, उसी प्रकार यहाँ वाह्य-मनोपुरुष उस फलको नहीं पाते, जो ध्यानयोगियोंको सुलभ होता है।

जगत्योगीकी साधनाके लिये उच्चत हुआ पुरुष यदि उनमें ही मरजाय तो भी वह योगके लिये उद्योग करनेमात्रसे पर्याप्त न जायगा । वहाँ दिव्य सुखका उपभोग करके वह फिर योगियोंके कुलमें जन्म लेगा और पुनः ज्ञानयोगको पाकर उत्तरलागको लाँघ जायगा । योगका जिज्ञासु पुरुष भी जिस नियमोंपाता है, उसे यशकर्ता सम्पूर्ण महायज्ञोंका अनुष्ठान एवं भी नहीं पाता । करोड़ों वेदवेच्छा द्विजोंकी पूजा इनसे जो पूल मिलता है, वह एक शिवयोगीको भिक्षा देने-में भी प्राप्त हो जाता है । यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थसेवन द्वारा ही—इन सभी पुर्ण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है पर सार फल शिवयोगियोंको अन्न देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है । जो मूढ़ मानव शिवयोगियोंकी निन्दा करते हैं, वे भ्रात्रोंसहित नरकमें पड़ते हैं और प्रलयकालतक वहाँ रहे हैं । ध्रोताके होनेपर ही कोई शिवयोगियोंकी निन्दाका रक्त हो सकता है इसलिये महापुरुषोंके मतमें उस निन्दाको इन्द्रेश्वर भी महान् पापी और दण्डनीय है । जो लोग सदा शिवमात्रसे शिवयोगियोंकी सेवा करते हैं, वे महान् भोग तो और अन्तमें शिवयोगकी भी उपलब्धि कर लेते हैं । इसलिये भोगधीर्घी मनुष्योंको चाहिये कि वे रहनेको स्थान, विषय, शक्ति तथा ओड़ने-विछानेकी सामग्री आदि देकर इस योग्यतामें कालतका सत्कार करें । योगधर्म सासार—अत्यन्त अस्त्रः पापरूपी मुद्रारूपसे उसका भेदन नहीं हो सकता । इसमें और पापसुद्धरमें उतना ही अन्तर समझना चाहिये, जिस अवधि और तनुलमें अतः योगीजन पापों और ताप-दूरते उच्च तरद लिप्त नहीं होते, जैसे कगलका पत्ता रहता ।

यित्येवमरूपग मुनि जिस देशमें नित्य निवास करता है, वह वैष्णवी भी भवित हो जाता है । फिर उसकी पवित्रताके बानेहो रहना ही क्षा । अतः चतुर एवं विद्वान् पुरुष स्वयं द्वारा उभौष्ण दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये शिव-कल्पना करते हैं । जियका योगकल सिद्ध हो जाता है, वह

योगी यथेष्ट भोगोंको भोगकर समस्त लोकोंकी हित-कामनासे संसारमें विचरे अथवा अपने स्थानपर ही रहे या विष्णुसुलको अत्यन्त तुच्छ समझकर छोड़ दे और दैराग्ययोगसे स्वेच्छापूर्वक कर्मोंका परित्याग कर दे । जो मनुष्य वहुतसे अरिष्ट देखकर अपनी मृत्युको निकट जान ले, उसे योगानुशासनमें संलग्न हो सिवक्षेत्रका आश्रय लेना चाहिये । वह मनुष्य यदि धीरनिःहोकर वहीं निवास करता रहे तो रोग आदिके दिना भी स्वयं ही प्राणोंका परित्याग कर सकता है । अनशन करके, शिवायिमें शरीरकी आहुति देकर अथवा शिवतीयोंमें अवगाहन करते हुए अपने शरीरको उन्होंके जलमें डालकर शिवशासोक्त विधिसे जो अपने प्राणोंका स्थान करता है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । अथवा जो रोग आदिसे विवश होकर शिवक्षेत्रकी शरण रेता है, उसकी भी यदि वहाँ मृत्यु हो जाय तो वह इसी प्रकार मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है । इसलिये लोग अनशन आदिसे शिवक्षेत्रमें थ्रेष्ट मरणकी कामना करते हैं; ज्योंकि शास्त्रपर विश्वास करके धीर हुए मनसे उनके द्वारा इस तरहकी मृत्यु स्वीकार की जाती है । जो यिहके लिये अथवा शिवभक्तोंके लिये प्राणत्याग करता है, उसने समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्तिसार्गर स्थित नहीं है । इस कारण इस संसारमण्डलसे उसकी शीम मुक्तिहो जाती है । इनमेंसे किसी एक उपायका किसी तरह भी अवलम्बन नहीं हो सकता विधिवत् पद्धत्युद्धिको प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पश्चात्—प्राणियोंके समान पश्च और्पैदिन संस्कार नहीं करना चाहिये । विशेषतः उसके पुत्र अर्दितों उसके मरनेसे आशूचकी प्राप्ति नहीं होती । ऐसे पुत्ररहे मृत्यु शरीरको धरतीमें गाढ़ दे या पवित्र अग्निसे जला दे या यिह स्वरूप जलमें डाल दे अथवा काढ़ या निर्दीके लंगही नहीं कहीं भी कैंकड़ दे, दूध उसके लिये दस्यदर है । यदि ऐसे पुत्ररहे उद्देश्यते भी कोई कर्म करनेही इच्छा हो तो तूल्येवर विषय दी करे और अपनी दाढ़िये अनुग्रह दिवान्तीर्ते हुए करे । उसके धनको यिहभक्त ही ग्रहण दरे । यदि उसकी विषय शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण दर भवती है । यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका यह ग्रहण दिवान्तीर्ते हुए करनु उपर्युक्त हो जाये । यिहभक्त दर विषय दर भवती है क्योंकि ग्रहण दर

वायुदेवका अन्तर्धान, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवभृथस्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धि-प्राप्तिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना

सूलजी कहते हैं—इस प्रकार क्रोधको जीतनेवाले उपमन्युसे यदुकुलनन्दन श्रीकृष्णने जो ज्ञानयोग प्राप्त किया था, उसका प्रणतभावसे बैठे हुए उन मुनियोंको उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर प्रातःकाल नैमित्तिरण्यके समस्त तपस्वी मुनि सत्रके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्माजीके आदेशसे साक्षात् सरस्वतीदेवी स्वादिष्ट जलसे भरी हुई स्वच्छ सुन्दर नदीके रूपमें वहाँ बहने लगी। सरस्वती नदीको उपस्थित देख मुनि मन-ही-मन बढ़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्र समाप्त करके उसमें अवगाहन (स्नान) आरम्भ किया। उस नदीके मङ्गलमय जलसे देवता आदिका तर्पण करके पूर्ववृत्तान्तका सरण करते हुए वे सब-के-सब वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये। उस समय हिमालयके चरणोंसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहनेवाली भारीरथीका दर्शन करके उन ऋषियोंने उसमें स्नान किया और भारीरथीके ही किनारेका मार्ग पकड़कर वे आगे बढ़े। तदनन्तर वाराणसीमें पहुँचकर उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ उत्तरखाइनी गङ्गामें स्नान करके उन्होंने अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन और विष्णुर्घटक पूजन किया। पूजन करके जब वे चलनेको उद्यत हुए, तब उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा, जो करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता था। उसने अपनी प्रभाके प्रसारसे सम्पूर्ण दिग्नक्षको व्याप कर लिया था। तदनन्तर जिन्होंने अपने शरीरमें भस्त्र लगा रखदा था, वे सैकड़ों यिद्ध पाण्डुपत मुनि निकट जाकर उस तेजमें लीन हो गये। उन तपस्वी महात्माओंके इस प्रकार लीन हो जानेपर वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। वह एक अद्भुत-सी घटना घटित हुई। उस महान् आश्रयको देखकर वे नैमित्तिरण्यके निवासी महर्षि 'यह क्या है' इस वातको न जानते हुए ब्रह्मवनको चले गये।

इनके जानेसे पहले ही लोकपावन पवनदेव वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने नैमित्तिरण्यवासी ऋषियोंका जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ, जिस तरह उनसे उनकी वातचीत हुई, उन ऋषियोंकी शुद्ध बुद्धि जिस प्रकार पार्थदेवसहित साम्य सदाशिव-में लगी थी और जिस प्रकार उन वशप्रयण ऋषियोंका वह दीर्घकालिक वश पूर्ण हुआ था, वे सारी वातें जगत्क्षया

ब्रह्मयोनि ब्रह्माजीको बतायीं। फिर अपने कार्यके लिये उनसे आशा ले वे अपने नारदको चले गये। तदनन्तर अपने साथ पर बैठे हुए ब्रह्माजी गानकी कलामें परस्पर सर्दार रखने और विवाद करनेवाले तुम्हुर और नारदके गानजनित रसका आस्वादन करते हुए वहाँ मध्यस्थित करने लगे। उस समय वे गन्धवाँ और अप्सराओंसे सेवित हो सुखपूर्वक बैठे थे। उस बैलामें किसी बाहरी व्यक्तिको वहाँ जानेका अवसर नहीं दिया जाता था। इसीलिये जब नैमित्तिरण्यनिवासी मुनि वहाँ पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें द्वारपर ही रोक दिया। वे मुनि ब्रह्मवनसे बाहर ही पार्श्वभागमें बैठ गये। इधर संगीतगोष्ठीमें नारदने तुम्हुरकी समानता प्राप्त की। तब परमेश्वी ब्रह्माने उन्हें तुम्हुरके साथ रहनेकी आशा दी और वे पारस्परिक स्पर्धाको त्यागकर तुम्हुरके परम मित्र हो गये। तत्पश्चात् गन्धवाँ और अप्सराओंसे घिरे हुए नारद नकुलेश्वर महादेव-को वीणागान सुनाकर संतुष्ट करनेके लिये तुम्हुरके साथ ब्रह्मवनसे उसी प्रकार निकले, जैसे मेघोंकी धृतासे सूर्योदय वाहर निकलते हैं।

उस समय मुनिवर नारदको देखकर उन छः कुलोंमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने प्रणाम किया और वडे आदरके साथ ब्रह्माजीसे मिलनेका अवसर पूछा। नारदजीका चित दूसरी ओर लगा था और वे बड़ी उतावलीमें थे। अतः उनके पूछनेपर बोले—‘यही अवसर है। आपलोग भीतर जाइये।’ यह कहते हुए वे चले गये। तदनन्तर द्वारपालोंने ब्रह्माजीसे उन ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। उनकी आशा पाकर वे सब एक साथ ब्रह्माजीके भवनमें प्रविष्ट हुए। भीतर जाकर उन्होंने दूरसे ही दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। फिर उनका आदेश पाकर वे ऋषि उनके पास गये और चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठे। उन्हें वहाँ बैठा देख कमलासन ब्रह्माने उनका कुशल-समाचार पूछा और बताया कि मुझे तुमलोंगोंका सारा वृत्तान्त शात हो चुका है। क्योंकि वायुदेवने ही यहाँ सब कुछ कहा है। अब तुम बताओ, जब वायुदेव तुम्हें कथा सुनाकर अदृश्य हो गये, तब तुमने क्या किया?

देवेश्वर ब्रह्माके इस प्रकार पूछनेपर उन मुनियोंने अवभृथ-स्नानके पश्चात् गङ्गातीर्थमें जाने, वाराणसीकी वात्रा

इसे, वहाँ देवेशरोद्धारा स्थापित शिवलिङ्गों और अविमुक्तेश्वर शिवके भी दर्शन-पूजन करने, आकाशमें महान् तेजःपुज्जके दिशाश्री देने, कतिपय महर्षियोंके उसमें लीन होने तथा फिर उन तेजके अदृश्य हो जानेकी सब वातें ब्रह्माजीसे विस्तार-द्वारा उन्हें बारंबार प्रणाम करके कहीं। साथ ही वह भी देखा कि 'हम अपने मनमें बहुत विचार करनेपर भी उस तेजको ठीक-ठीक जान न सके'। मुनियोंका कथन सुनकर विश्वस्था न्तुर्मुख ब्रह्माने किंचित् सिर हिलाकर गम्भीर वाणी-में कहा—'महर्षियो ! तुम्हें परम उत्तम पारलौकिक सिद्धि उन होनेका अवसर आ रहा है। तुमने दीर्घकालिक सत्त्रद्वारा नैतिक प्रमुकी आराधना की है। इसलिये वे प्रसन्न होते हुमलोगोंपर कृपा करनेको उत्सुक हैं। उस तेजःपुज्जके द्वारा जो धूमना घटित हुई है, उससे यही वात सुचित नहीं है। तुमने वाराणसीमें आकाशके भीतर जो दीतिसान् त्य तेज देखा था, वह साक्षात् ज्योतिर्मय लिङ्ग ही था, मैं गैरहरका उत्कृष्ट तेज समझूँ। उस तेजमें श्रौत और गुप्तव्रतान् पालन करनेवाले मुनि, जो स्वर्थमें पूर्णतः निष्ठा रखे थे और अपने पापको दग्ध कर चुके थे, लीन हुए हैं। वहाँ शोकर वे त्वस्य एवं मुक्त हो गये हैं। इसी मार्गसे उन्हें भी शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होनेवाली है। तुम्हारे देखे हुए ये नेत्रे वही वात सुचित होती हैं। तुम्हारे लिये यह वही देवता त्यं उपस्थित हो गया है। तुम मेरुपर्वतके द्वितीय विश्वरपर, जहाँ देवता रहते हैं, जाओ, वही मेरे पुत्र अमुम्यार, जो उत्कृष्ट मुनि हैं, निवास करते हैं। वे वहाँ तुम्हाय नन्दीके आगमनकी प्रतीक्षामें हैं।

पूर्वगढ़की वात है सनकुमार अशानवश अपनेको सब निरोग सिद्धेष्विभि भानने लगे थे। इसीलिये दुर्विनीत हो

गये थे। यही कारण है कि उन्होंने किसी समय परमेश्वर शिवको सामने देखकर भी उनके लिये उचित अनुत्थान आदि सत्कार नहीं किया। वे अगमे स्थानर निर्भय पैठे रहे। उनके इस अपराधसे कुप्रिय हो नन्दीने उन्हें बहुत बड़ा ऊँट बना दिया। तब उनके लिये नुस्खे वज्ञा द्वारा कुआ और मैने दीर्घकालिक महादेव और महादेवजी का उग्रामना करके नन्दीसे भी वज्ञी अनुनयविनय की। इस प्रकार प्रसन्न करके किसी तरह उनको ऊँटकी योनिसे कुटकारा दिलाया और उन्हें पूर्ववत् सनकुमार-रूपकी प्राप्ति करायी। उस समय महादेवजीने मुस्कराते हुए-से अपने गणावाह नन्दीसि कहा—'अनव ! सनकुमार मुनिने मेरी ही अक्षेत्रना करने अपना वैसा अहंकार प्रकट किया था, अतः नुष्ठी उनसे मेरे वयार्थ स्वल्पका उपदेश दो। ब्रह्माका ऐपु एवं मूर्द्वी भौति मेरा स्मरण कर रहा है, अतः मैंने ही उन्होंने तुम्हें दिए रुपमें दिया है; तुमसे उपदेश पाकर वह गंगे शामका प्रभावना होगा और वही तुम्हारा धर्मव्यवहरके पश्चात् अग्निरूप करेगा।'

महादेवजीके ऐसा कहनेपर समस्त धूरागांठे अपराध नन्दीने प्रातःकाल भृत्यक त्वामीयी दृढ़ आवाय विश्वार्थ की तथा सनकुमार भी मेरी आवायसे इस गमगम नन्दीको प्रसन्न करनेके लिये भेदवर दुष्ट उड़ाया कर रहे हैं। गणावध्य नन्दीकि समागमते दृष्टि ही कुप्रिय सनकुमारसे मिलो; क्योंकि उनका कुमा असरेंद्र निः नन्दी शीघ्र ही वहाँ आयेंगे।

विश्वयोनि व्रताके इन प्रत्यार निः ग्राविन्द्र दृर्मन्त्र नन्दी  
वे मुनि भेद पर्वतके दक्षिणतरी कुमारनिः नन्दी।

( ४३ )

मेरुगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनकुमारजीसे मिलना, भावान नन्दीका वर्णा  
आना और दृष्टिपात भावसे पाशछेदन एवं ज्ञातयोगका उपदेश करके चला गया।

शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपनिषद्

पाता है। वहाँ बहुत से लोग नहानेके लिये उतरते हैं और कितने ही नहाकर निकलते रहते हैं। स्नान करके श्वेत यज्ञोपवीत और उज्ज्वल कौपीन धारण किये, बल्कल पहने, सिरपर जटा अथवा शिखा रखाये या मूँड मुड़ाये; ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये, वैराग्यसे विमल एवं मुसकराते मुखवाले बहुत-से मुनिकुमार घड़ोंमें, कमलिनीके पत्तोंके दोनोंमें, सुन्दर कलशोंमें, कमण्डलुओंमें तथा वैसे ही करकों (करवों) आदिमें अपने लिये, दूसरोंके लिये विशेषतः देवपूजाके लिये वहाँसे नित्य जल और फूल ले जाते हैं। वहाँ इष्ट और शिष्ट पुरुष जलमें स्नान करते देखे जाते हैं। उस सरोवरके किनारे-की शिलाओंपर तिल, अक्षत, फूल और छोड़े हुए पवित्रक दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ स्थान-स्थानपर अनेक प्रकारकी पुष्पबलि आदि दी जाती है। कुछ लोग सूर्यको अर्थ्य देते हैं और कुछ लोग वेदीपर बैठकर पूजन आदि करते हैं।

उस सरोवरके उत्तर तटपर एक कल्यावक्षके नीचे हीरेकी शिलसे बनी हुई वेदीपर कोमल मृगचर्म विछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमारजी बैठे थे। वे अपनी अविचल समाधिसे उसी समय उपरत हुए थे। उस समय बहुतसे ऋषिमुनि उनकी सेवामें बैठे थे और योगीश्वर भी उनकी पूजा करते थे। नैमित्यारण्यके मुनियोंने वहाँ सनत्कुमारजीका दर्शन किया। उनके चरणोंमें मस्तक छुकाया और उनके आस-पास बैठ गये। सनत्कुमारजीके पूछनेपर उन ऋषियोंने उनसे ज्यों ही अपने थागमनका कारण बताना आरम्भ किया, ज्यों ही आकाशमें दुन्दुभियोंका तुमुल नाद सुनायी दिया। उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ, जो असंख्य गणेश्वरोंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ था। उसमें अप्सराएँ तथा रुद्रकन्याएँ भी थीं। वहाँ मृदङ्ग, ढोल और वीणाकी ध्वनि गूँज रही थी। उस विमानमें विचित्र रत्नजटित चैंद्रेवा तना था और मोतियोंकी छड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। वहुत-से मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, चारण और किन्द्र नाचते, गाते और बाजे बजाते हुए उस विमानको सब ओरसे बेरकर चल रहे थे, उसमें वृषभाचिह्नसे युक्त और मूँगेके दण्डसे विभूषित ध्वजान्तका फहरा रही थी, जो उसके गोपुरकी शोभा बढ़ाती थी। उस विमानके मथ्यभागमें दो चैंद्ररोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मणिमय दण्डवाले शुद्ध छन्दके नीचे दिव्य सिंहासनपर शिलादपुन नन्दी देवा सुयशाके साथ बैठे थे। वे अपनी कान्तिसे, शरीरसे तथा तीनों नेत्रोंसे वड़ी शोभा पा रहे थे। भगवान् शंकरको

आवश्यक कार्योंकी सूचना देनेवाले वे नन्दी मानो जगत्सत्त्व शिवके अलङ्घनीय आदेशका मूर्तिमान् स्वरूप होकर वहाँ आये थे, अथवा उनके स्वप्नमें मानो साक्षात् शम्भुका सम्पूर्ण अनुग्रह ही साकार रूप धारण करके वहाँ सदके सामने उपस्थित हुआ था। शोभाशाली श्रेष्ठ त्रिशूल ही उनका आयुध है। वे विश्वेश्वर गणोंके अध्यक्ष हैं और दूसरे विश्वनाथकी भाँति शक्तिशाली हैं। उनमें विश्वलक्ष्मा विधाताओंका भी निश्च है और अनुग्रह करनेकी शक्ति है। उनके चार मुजाएँ हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता सूचित होती है, वे चन्द्रलेखासे विमूषित हैं। कण्ठमें नाग और मस्तकपर चन्द्रमा उनके अलङ्कार हैं। वे साकार ऐश्वर्य और सक्रिय सामर्थ्यके स्वरूपसे जान पड़ते हैं।

उन्हें देखकर ऋषियोंसहित ब्रह्मपुन्र सनत्कुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे दोनों हाथ जोड़कर उठे और उन्हें आत्मसमर्पण-सा करते हुए खड़े हो गये। इतनेहीमें वह विमान धरतीपर आ गया, सनत्कुमारने देव नन्दीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियोंका परिचय देते हुए कहा—‘ये छः कुलोंमें उत्तम ऋषि हैं, जो नैमित्यारण्यमें दीर्घकालसे सन्धका अनुष्ठान करते थे। ब्रह्माजीके आदेशसे आपका दर्शन करनेके लिये ये लोग पहलेसे ही वहाँ आये हुए हैं।’ ब्रह्मपुन्र सनत्कुमारका यह कथन सुनकर नन्दीने दृष्टिपातमान्त्रसे उन सबके पाशोंको तत्काल काट डाला और दीश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोगका उपदेश देकर वे फिर महादेवजीके पास चले गये। सनत्कुमारने वह समस्त ज्ञान साक्षात् मेरे गुरु व्यासको दिया और पूजनीय व्यासजीने मुझे संक्षेपसे वह सब कुछ बताया। त्रिपुरारि शिवके इस पुराणद्रक्का उपदेश वेदके न जाननेवाले लोगोंको नहीं देना चाहिये। जो भक्त और शिष्य न हो, उसको तथा नास्तिकोंको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि मोहवश इन अनधिकारियोंको इसका उपदेश दिया गया तो यह नरक प्रदान करता है। जिन लोगोंने सेवानुग्रह-मार्गसे इस पुराणका उपदेश दिया, लिया, पढ़ा अथवा सुना है, उनको यह मुख तथा धर्म आदि त्रिवर्ग प्रदान करता है और अन्तमें निश्च ही मोक्ष देता है। इस पौराणिक मार्गके सम्बन्धसे आप लोगोंने और मैंने एक दूसरेका उपकार किया है; अतः मैं सफल-मनोरथ होकर जा रहा हूँ। हमलोगोंका सदा सर प्रकारसे मङ्गल ही हो।

कृतज्ञके आशीर्वाद देकर चले जाने और प्रयागमें  
उन मध्यवर्षके पूर्ण हो जानेपर वे सदाचारी मुनि विष्ववक्तुषित  
शूलाङ्क आनंदे काशीके आसपास निवास करने लगे।  
दूसरे पश्चात्यसे छूटनेकी इच्छासे उन सदने पूर्णतया  
शुल-क्रतज्ञ अनुष्ठान किया और सम्पूर्ण वोध एवं  
लग्नवर अधिकार करके वे अनिन्द्य महर्षि परमानन्दको  
प्रत्यक्ष देखे।

## व्यास उव्धाच

पृथिव्यपुराणं हि समाप्तं हितमादरात् ।  
पश्चिमं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि ॥  
नान्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ।  
अभक्ताय महेशत्य तथा धर्मध्वजाय च ॥  
पृथिव्या शेषकारं भवेत् पापं हि भस्सात् ।  
अगतो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक् ॥  
पुनः धृते च सद्भक्तिसुक्तिः स्याच्च श्रुते पुनः ।  
तस्मात् पुनः पुनश्चैव श्रोतव्यं हि सुसुक्षुभिः ॥  
पश्चात्पृष्ठिः प्रकृतव्या पुराणस्यात्म सद्विद्या ।  
एवं फलं समुद्दिश्व तत्प्राप्नोति न संशयः ॥  
पुरातनात् राजानो विश्वा वैश्याश्च सत्त्वमाः ।  
पृथिव्यवज्ज्ञात्यालभन्त शिवदर्शनम् ॥  
प्राप्तव्यापि यश्चेदं सानवो भक्तितप्तः ।  
एवं भुज्यादिलान् भोगानन्ते सुक्तिं लभेत् सः ॥  
पश्चिमिद्यपुराणं हि शिवत्यात्मियं परम् ।  
भुक्तिसुमित्रं वहात्समितं भक्तिवर्धनम् ॥

पृथिव्यपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा ।  
सणाः ससुतः साम्बः शं करेतु च शंकरः ॥  
( शिं पु० वा० सं० उ० ख० ४८ । ४३—५१ )

व्यासजी कहते हैं—यह शिवपुराण पूरा हुआ; इस  
हितकर पुराणको वडे आदर एवं प्रयत्ने पढ़ना तथा गुमना  
चाहिये। नास्तिक, श्रद्धाहीन, शृणु, महेश्वरके प्रति भक्तिर्दा  
रहित तथा धर्मध्वजी ( पालण्डी ) को इसका उत्तरदा नहीं रेखा  
चाहिये। इसका एक बार अवण करनेसे ही दाया जान भसा  
हो जाता है। भक्तिहीन भक्ति पाता है और भक्त भक्तिहीन भगवान्ना  
भागी होता है। दोबारा अवण करनेतर उत्तम भक्ति और  
तीसरी बार सुननेपर मुक्ति मुलभ हो जाती है, इनमें सुन्दर  
पुरुषोंको बारंबार इरका अवण करना चाहिये। हिसी गति  
उत्तम फलको पानेके लिये युद्ध-वुद्धिसे इन पुराणही पान  
आवृति करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य उन कलों  
प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों  
राजाओं, व्राजीओं तथा श्रेष्ठ वैश्योंने इसकी तात आकृति करके  
शिवका सदाचात् दर्शन प्राप्त किया है। जो मनुष्य भक्तिरमात्र  
हो इसका अवण करेगा, वह भी इदलोकमें नमूर्य भोगोंका  
उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह पैदा किए  
पुराण भगवान्, शिवको अलवन्त प्रिय है। यह पैदा किए  
माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिमार्ग के दृढ़ने-  
वाला है। आने प्रभयगमों, देनों पुर्यों सवा देती पौर्तीतों  
साथ भगवान्, शंकर इन पुराणहे वक्ता और भक्तिमार्ग दर्शा  
कल्याण करें। ( नृष्ट ११ )

॥ वायदीयसंहिता सम्पूर्ण ॥

॥ शिवपुराण सम्पूर्ण ॥



## रुद्र-देवता-तत्त्व

( लेखक—सर्वदर्शनाचार्य, तत्त्व-चिन्तक स्वामी अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वैकटाचार्यजी महाराज )

परीक्षा-पारित, व्यापक अतएव सर्वमात्र्य नैसर्गिक नियमोंके आधारपर प्रमाणोंके द्वारा तत्त्व-निर्णय-पद्धतिको मीमांसा ( न्याय ) कहते हैं । यहाँ रुद्र-तत्त्वका निर्णय भी इसी पद्धतिसे किया जा रहा है । ‘रुद्र’ शब्दके अर्थ एवं ‘रुद्रतत्त्व’को जाननेके पूर्व, ‘देवता’ शब्दके अर्थ और उसके तत्त्वको सम्यक् समझ लेना आवश्यक है; क्योंकि ‘रुद्रो देवता’ इस ज्ञानमें देवता-तत्त्व व्यापक एवं रुद्र-तत्त्व व्याप्त है । इसी प्रकार देवता-तत्त्व विशेष्य एवं रुद्र-तत्त्व उसका विशेषण है । रुद्र उद्देश्य एवं देवता-तत्त्व विधेय है ।

अस्फुटतया भासमान व्यापक वस्तुके ‘इदमिदम्’ ‘इदमित्यत्’ ‘इदमित्यथम्’-रूप निर्णयसे अस्फुटतया प्रतीयमान व्याप्त वस्तुका निर्णय भी सरल हो जाता है । अस्पष्टार्थ वैदिक शब्दोंको सु-स्पष्टार्थमें लानेके लिये ‘निश्चक्ष-प्रक्रिया’ आविष्कृत हुई है, जिसके द्वारा अस्पष्टार्थ शब्दोंके विवक्षित अर्थतक सुगमतासे पहुँचा जा सकता है । इस दिशामें ‘निश्चक्ष-प्रक्रिया’, शत-प्रतिशत-रूपमें सफल सिद्ध हुई है । ‘शाकपूणि’, ‘तैटिकि’, ‘शतबलाक्ष’ एवं ‘थार्स’ प्रभृति सभी प्राचीन आचार्योंने इस प्रक्रियापर परम श्रद्धा व्यक्त करते हुए उसका अनुसरण किया है ।

### ‘देवता’ शब्दकी निरुक्ति

निश्चक्षकार ‘थार्स’ ने ‘देवता’ शब्दकी निरुक्ति यह की है—‘देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, धू-स्थानो भवति वा, यो देवः सा देवता इति’ इन निश्चक्षियोंके फलित अर्थोंका निर्देश ‘तन्त्रालोक’ ग्रन्थमें सर्वश्री अभिनवगुप्ताचार्यने इस प्रकार किया है—जो शक्ति पुद्गल ( स्थूल ) पिण्डोंसे भिन्न है, किंतु उनकी उपादानकारण भी है, जो शक्ति पुद्गल पिण्ड एवं तदगत कायोंपर नियन्त्रण करती है और जो जड भूतोंके तत्-तत् परिणामोंकी जनयनी एवं रक्षिका भी है, वही शक्ति ‘देवता’ शब्दसे अभिहित है । इस सिद्धान्तके उपोद्घलक ‘ऐतरेय ग्राहण’ एवं ‘पाशुपत सूत्र’ के क्रमशः ‘यज्ञायते तदाभिर्देवताभिः’ ‘शक्तियत्योऽस्य विश्वम्’—ये दो वाक्य हैं । अर्थात् जो वस्तु विश्वमें उत्पन्न होती है, उसके उपादान कारण देवता है एवं यह विश्व परमात्माकी शक्तियों ( देवताओं ) की समष्टिमात्र है । आत्मनिक संस्कृत भाषामें

‘शक्ति’ इस शब्दसे जिस अर्थका बोध होता है अथवा दार्शनिकोंकी परिभाषामें ‘तत्त्व’ शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, उसी अर्थको अभिव्यक्त करनेके लिये वैदिक भाषामें ‘देवता’ शब्दका प्रयोग हुआ है ।

### ‘देवता’ शब्दका प्रयोग

मन्त्र-संहिता, ग्राहण-ग्रन्थ, तन्त्र और पुराणोंमें ‘देवता’ शब्दका प्रयोग पाँच अर्थोंमें हुआ है । इनमेंसे चार अर्थ शक्ति एवं एक अर्थ परिभाषिक है । ‘देवता’ शब्दका नामनाम प्राणोंमें भी क्वचित् प्रयोग हुआ है । उपासनाके लिये कलित सांकल्पिक देवताओं ( प्रतिमाओं ) और विद्वानोंमें भी इसका प्रयोग कहीं-कहीं होता है ।

१. सब द्रव्योंके उपादान, इन्द्रिय-रहित, निरवयव, ज्योती-रूप, धर्मात्मक, ( गुण अथवा शक्तिरूप ) अभिनव, सोम, इन्द्र, वरुण तथा सूर्य आदि प्राकृत पदार्थरूप तत्त्वविशेष ‘देवता’ शब्दका प्रथम अर्थ है । महाभाष्यकार पतञ्जलि-परिभाषित, ‘गुणसमुदायो द्रव्यम्’ इस द्रव्य-परिभाषाको वैदिक परिभाषामें ‘देवतासमुदायो द्रव्यम्’ इस प्रकार अभिनीत किया जा सकता है । पौराणिकोंकी परिभाषामें यह तत्त्व ‘स्थानाभिमानी देवता’ इस संज्ञासे भी परिभाषित है । ( वायुपुराण )

२. अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस एवं अग्न्य अधामच्छदप्राण ( दम ) ‘देवता’ शब्दका द्वितीय अर्थ है । यह प्राण अनेक रूपोंमें विवर्तित होकर विश्वरूपमें परिणत हो जाता है । इस प्राणात्मक दमके निकल जानेसे वस्तुमान निर्माल्य एवं नष्ट हो जाती है । इस प्राणको ही अधिष्ठात्री देवता कहते हैं ।

३. स्थानाभिमानी ( भूतात्मक देवता ) एवं अधिष्ठात्री देवता ( प्राणात्मक ) इस दोनोंपर नियन्त्रण करनेवाली मनोमयी अभिमानिविध देवता, ‘देवता’ शब्दका तीसरा अर्थ है । ये त्रिविध देवता अचेतन, सर्वव्यापक, नियताकार-रहित एवं विश्व-शरीरी हैं । ‘कुमारिल भट्ट’ की—

विग्रहो हविरादानं युगपत् कर्मसंनिधिः ।  
प्रीतिः क्षलग्रदानं च देवतानां न विद्यते ॥

यह उक्ति इन्हीं प्रियिध देवताओंको लक्ष्यमें रखकर कही गई है; जिनका अभिप्राय यह है कि देवता आकार ( शरीर-रूप ) एवं चेतनारहित है। इसलिये हवि-ग्रहण, प्रीति, र्षीकर्त्तव्यकि प्रदान आदिसे बे दूर हैं। किंतु इन प्रियिध दलांशेमें धर्मात्मक ( गुणात्मक ) देवता ही अचेतन हैं, प्रशस्तम् एवं अभिमानिरूप देवता चेतन है। ये कीमतानि-विध कद्रदेव ही उपासनासे प्रसन्न तथा संकल्पातुसार एक देशकालमें परिच्छिन्न होकर प्रत्यक्ष हो जाते हैं और अभियोगत कल देते हैं। यह न्याय सभी देवताओंके लिये लाभ है। श्रीनुलसी एवं श्रीगङ्गा आदिकी पूजा-प्रार्थना उनके अभिमानि-विश्वरूप देवताके उद्देश्यसे ही की जाती है।

४. विमदवान् ( शरीरधारी ) चेतन, सौम्यप्राणिविशेष, प्रभु, प्राज्ञात्म्यादि अध्यविकल्प-भिन्न २८ वीर्योंसे समन्वन्न, भूतप्रथान गर्भके प्राणी 'देवता' शब्दका चतुर्थ अर्थ है। भूतप्रथार शरीरयुक्त चेतन और प्राणि-विशेष ये देवता एक-सी हैं। यहूहुत-से तत्त्वचिन्तक इन्हें तथा अभिमानि-विध देवताओंसे एक ही मानते हैं, किंतु यह अविश्वान है—प्रम । अभिमानि-विध देवता मनोमय और सर्वव्यापक हैं, जबकि प्राणिविध देवता एकदेशीय एवं देवयोनिविशेष है ।

५. नितके उद्देश्यसे यत्किञ्चन कर्म किया जाता है, उसकी वही ऐतता है एवं जिसके उद्देश्यसे जो वाक्य कहा जाता है। ६ इस वाक्यमें भी वही देवता है। यह पारिभाषिक 'देवता' शब्दका पाँचवाँ अर्थ है। पारिभाषिक देवता, जल उभयनिःश्रु है; काँकि वैदिक मन्त्रोंमें दोनोंका है। ऐसकोंकी 'मान्त्रवर्णिकी' देवता अथवा शब्द-ऐतता ही पारिभाषिकी देवता है।

देखा शर्मणमें प्राप्तः प्राकृत-पदार्थ-विधि अर्थमें, व्राहण-  
पदार्थः प्राणिकिय एवं अभिमानि-विधि अर्थमें, तन्व  
प्राणियः प्राप्तः अभिमानि-विधि एवं अष्टविकल्प-प्राणि-  
यः जिन्हें देखा शब्द प्रधुक्त हुआ है। कच्चित्-फलित्  
पदार्थः नवदारा प्रयोग-संकीर्ण भी है (अधिक-  
प्रयोग)।

प्रत्येक देश धरम के व्यापक तत्त्वात्मक अर्थशासन के लिए एक धर्म के लिए जोत्तरायासी, अद्वितीय और सभी एवं देशीय प्रणिक्षिय अर्थात् यही मीमित है। इसके नवाचल भूमिकियां अर्थात् उन्हें देश के लिए बहुत ज्ञानी हैं। उत्तराधिकार के लिए यह क्षेत्रमिल

सत्यतिः त्वं राजोत् बृद्धहा । त्वं भद्रो असि कनुः ॥ नद् भूषणे पीर  
भूचा प्रस्तुत की जा सकती है । देवता-निहन्ते रहित मनव  
इस भूचाका यही सीमित अर्थ करेगा कि—ऐ भोगदेव !  
आप सञ्चरनेके स्वामी हैं, आप राजा हैं; ब्रह्मासुरके भाषाह हैं,  
आप यज्ञलूप हैं । किंतु रहुगग-वंशज रोलम अूर्मिको उस  
भूचामें इतना ही अर्थ निश्चित नहीं है; अग्नितु तीव्रभने इसमें  
तत्त्वात्मक सोमदेवताके कार्योंमें उल्लेख किया है—तो सोम !  
आप सत्यति हैं । यहाँ 'नन् त् त् वद् भूति-शक्तिः चाचक दे'  
जिसका कार्य विश्वनदाध्योमें विद्यमान निपित्त घटाया उत्तम ग  
है । वह शक्ति सोमाधित है, अतः सोम नयति ( प्राणात्म  
उत्पादक ) है । विश्वमें 'व्यव्यापत्' और आपने एवं नन्द  
आदि दीप्तियाँ ( प्रकाश ) हैं; इन सबका कारण सोमका ही  
है । इसलिये वह राजा है । ब्रह्म नाम अवश्य, आत्म आदि  
तमःशक्तियोंका है । तामसिक शक्तियोंमें ही केवल 'प्रसुर'  
कहा गया है । प्रकाश एवं शानत्व ऐसेमें सोम उन प्रकृतिन  
निरसन करता है, अतः वह सोम ही ब्रह्म है । अर्थाৎ, सूर्य  
एवं इन्द्र आदि भी सोमके संयोगसे ही पृथक हैं, इन्हें सूर्य  
नहीं । विश्वके कोमल पदार्थकमें उरितत ऐसेमें सोम नहीं  
है । अथात्ममें संकलनलूपसे विनिर्दित ऐसेमें तामत वह वह  
( संकल्प ) है । इस प्रकार ऐदिक भव्योंद उल्लिखित नाम  
लिये देवता-तत्त्वका यथार्थ शान तरमावश्यक है । देवतासेव  
घोरन्ते रुद्र-देवताकी जिग्नाता-गणित चर्चा भी भा रहा ॥

‘खुद’ अनुदर्शकी निरूपण

वेद, तत्त्व और पुरुषोंमें उद्दामस्त्री भवति । ये  
प्रकारसे की गयी है जो एक शब्दके अर्थ एवं उसका अर्थ  
शानमें सहायक है । 'धृत' अर्थात् या विद्युत् उद्दामस्त्री  
( काठक वासा ) व्यापितोऽनुभवस्त्री उद्दामस्त्री है ।  
'धृत' अर्थात् वा धृत उद्दामस्त्री । अर्थात् वा अभिव्यक्त देखे ही यद्यन उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री ।  
'रोक्ष्यनामगो द्रवति इति उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री  
( मन्दस्त्री ) देखे तु एवं इनका उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री  
मन्दस्त्री व्यापिता उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री  
इति इति उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री ।  
द्रवति उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री ।  
( उद्दामस्त्री ) उद्दामस्त्री उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री ।  
पुरुषस्त्री । उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री ।  
उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री । उद्दामस्त्री ।

उपलब्ध पदार्थ रुद्र है। 'रोदनाद् द्रावणाद् रुद्रः ( पद्मपुराणम् )' शब्दयुक्त और द्रावणशील पदार्थ रुद्र है। 'रोदयति इति रुद्रः' ( देवराजयज्वा ) अर्थर्पति होनेसे अर्थासक्त प्राणियोंको रुलानेवाला रुद्र है।

### रुद्रतत्त्व कौन ?

वह रुद्रतत्त्व कौन ? इस जिज्ञासाके उत्तरमें यजुर्वेदकी कठसंहिताने 'अग्निवै रुद्रः' यह कहा है, जिसका अभिप्राय है कि अग्नि ही रुद्र है। शुक्र यजुर्वेदकी काण्डशाखाने 'देवानां या धोराः तन्वः ताः रुद्रः' यह कहकर देवताओंके धोर शरीरोंको रुद्र-शब्दसे अभिहित किया है। 'तैत्तिरीयसंहिता' के मतमें 'रुद्रो वै क्रूरो देवानाम्' अनेकविध तत्त्वोंमें क्रूर तत्त्व ही रुद्र है। तान्त्रिक, पौराणिक और सांख्यके मतसे क्रियाशक्ति ( अहंकार ) ही रुद्र है, जिसके ज्ञान, क्रिया और अर्थ—ये तीन अवान्तर भेद हैं। क्रियाशक्तिके रजोगुणात्मक होनेसे 'शान्ता धोरश्च मूढाश्च' इस सांख्य-परिभाषासे क्रियामय रुद्रकी धोरता स्वतःसिद्ध है।

### रुद्रतत्त्वका निर्णय

पूर्वोक्त 'रुद्र' शब्दकी निरुक्तियों एवं समनन्तरोक्त रुद्र-शब्दार्थके निर्णयिक वैदिक वाक्योंके समन्वयसे रुद्रतत्त्वका निर्णय यह होता है कि जो तत्त्व पदार्थमात्रमें स्पन्दनशील, क्षोभशील ( रोष-रूप ), द्रवणशील ( गतिरूप ) क्रूर ( धोर ), व्याधि-मूल, कठिन पदार्थोंका द्रावक ( तरलता-सम्पादक ), ध्वनि-शील होकर दौड़नेवाला, रुलानेवाला तथा सदा द्रुत अवस्थामें उपलब्ध है, वही रुद्रतत्त्व है। यह तत्त्व अन्तरिक्षमें अभिव्यक्त होकर विश्वमें फैला हुआ है।

### प्रतिमा और उपासना

अन्तरिक्षमें अभिव्यक्त, वस्तुतः विश्व-व्यापक रुद्रदेवता स्वानुकूल जिन-जिन विशेष शक्तियों अथवा अपने भिन्न-भिन्न विवरोंद्वारा विश्वमें जिन कार्योंका संचालन करते हैं, उन्हीं शक्तियों और कार्योंको व्यवहार-मार्गसे सरल-रूपमें समझाने एवं उसकी उपासनाके लिये ऋूषियोंने निदानशास्त्रके आधार-पर उसके भिन्न-भिन्न सदृश-शिल्पों ( मूर्तियों ) का निर्माण किया है। किसी भी वस्तुके सदृश-शिल्पको मूर्ति कहते हैं। मूर्ति ( प्रतिमा ) देवताओंका सांकलिक रूप है। देवताओंके इस सांकलिक आकार ( आकृति ), मुख, हस्त, वर्ण ( रंग ), अवस्था एवं वाहन आदिके भेदका रहस्य 'तन्त्रराज तन्वः' में इस प्रकार उपलब्ध है—

क्षित्यादिभूतैः सत्त्वादिगुणैरेकसंहतैः ।  
एकद्वयादिसमारब्धैर्वर्णोक्तरैस्तु शक्तयः ॥  
असंख्याता भवन्त्यासाम् ॥

अर्थात् सत्त्व, रज, तम आदि प्राकृत गुणों अथवा चित्-स्पन्द, ज्ञान, इच्छा और कृतिरूप आत्मगुणोंमेंसे एक-एक गुणोंसे संयुक्त क्षित्यादि पञ्चभूतोंमेंसे एक अथवा दो भूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण प्राकृत ( नित्य-सिद्ध ) एवं सांकलिक देवताओंके आकार, आयुध, वर्ण आदिमें भेद हो जाता है और उससे देवता असंख्य हो जाते हैं। सांकलिक देवताओंके रूपों ( प्रतिमाओं )में पञ्चमौतिक शक्तियाँ मुख-रूप हैं। सत्त्व, रज आदि गुण-शक्तियाँ हस्त-रूप हैं। शक्तियोंके कार्य आयुध-रूप हैं। योगियोंका आवेदन है कि अचिन्त्य, अप्रमेय, निर्गुण और गुण-स्वरूप परमात्माको समझने एवं उसके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये प्रतिमाकी कल्पना माध्यम-रूपसे की गयी है। परमात्माकी व्यष्टिगत उपासनासे समष्टिगत परमात्माकी प्राप्ति होती है। सब जगह रहनेवाला अव्यक्त, अचिन्त्य वायु, जिस प्रकार पंखाके द्वारा प्रबुद्ध ( अभिव्यक्त ) होनेपर स्वेदापनोद आदि क्रिया करता है, उसी प्रकार सर्वत्रगामी इन्द्र आदि सब शक्तियाँ साधकके विश्वाससे एक देशमें अभिव्यक्त होकर उसके मनोवाञ्छितको देती हैं। इसलिये उनका वह संर्वगामी स्वरूप अपने संकल्पसे परिच्छिन्न ( एकदेशीय ) हो जाता है। कार्य-भेदके अनुसार उसका दो-चार-ठः भुजा-रूपमें चिन्तन किया जाता है। वस्तुतः सब देवता ज्ञान और क्रिया-रूप होनेसे विश्वरूप एवं बोधरूप हैं। अपने संकल्पसे उनका जो रूप बनता है, उसे सांकलिक अथवा वैधानिक रूप कहते हैं। उस रूपकी आकृति, वर्ण, हाथ, आयुध एवं वाहन आदि अपने कार्य-भेदसे होनेवाले संकल्पके भेदसे भिन्न-भिन्न हैं। जैसे कि वश्यमाण वचनोंसे प्रमाणित है—

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।  
उपासकानां सिद्धयर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥  
( ब्रह्मसंधान )

व्यष्ट्यपासनया पुंसः समष्टिव्याप्तिमाप्नुयात् ।  
सर्वगोऽप्यनिलो यद्वद् व्यज्ञनेनोपवीजितः ॥  
प्रबुद्धः स्वक्रियां कुर्याद् धर्मनिर्णयद्वादिकाम् ॥  
तद्वत् सर्वगताः सर्वा येन्द्राद्याः शक्तयः स्फुर्तम् ॥  
साधकाश्वाससमुद्वास्तत्त्वत्येष्टकलप्रदाः ॥  
( तन्मात्रां )

ततः सांकलिकं रुद्यं वपुरासां विचिन्तयेत् ।  
हृष्टभेदासुसारेण ह्रिचतुःपद्मभुजादिकम् ।  
गमन्तो विश्वस्पास्ता देव्यो वोधारिका यतः ॥  
( तन्त्रराज तन्त्र )

मूर्तिका निर्माण निदान-शास्त्रके आधारपर किया जाता है। मूर्तिका ही नाम निदान है। अमुकको अमुक समझो—यह निदान है। प्रैहलैकिक और पारत्यैकिक दोनों भावोंमें निदानका उभान सम्भव है—जैसे शोक और प्रलयका निदान ( निष्ठा ) काला रंग है। आपत्कालका निदान ( संकेत ) लाल रंग है। लिङ्गपदवताका संकेत हरितवर्ण है। कीर्तिका निदान ( सूक्ष्म ) इवत रंग है। पृथिवीका निदान कमल है। मैरी शक्तिका निदान सुरा है, लक्ष्मीका निदान हस्ती है और मार्गिका निदान छिन्नमस्तक है। सकल कल्य एवं सकल विद्योंका निदान ( संकेत ) शुक है। निदानका सम्बन्ध मृदुलीय भास्ये ही होता है, विजातीयसे नहीं। निदानविद्या ( विद्या उपराजना ) में आहार्यारोप-शास्त्रका प्रभाव मुख्य है। आहार्यारोप-शास्त्र अभिग्राय अन्यमें अन्यबुद्धि करना है। ऐसे कमल पृथिवी ही है, इसमें कमलमें पृथिवीका आरोप

आदि ) जो कोई भी जड़-चेतन पदार्थ साक्षात् अपना जलस्त्रमें भोग-मोक्षका साधक है; वह उपास ( पूज्य ) है। उपेक्षी प्राप्तिके उपाय ( कर्म, ज्ञान, भक्ति ) आदि भी पूज्य हैं। उपेक्षी प्राप्तिमें नृत्पूजा, काल ( एकादशी आदि त्यज ) क्रिया ( स्नान-संध्या ) आदि भी नहायक होनेपूर्व हैं। उपायमें तम्भयतसे उपेक्षी प्राप्ति शीघ्र होती है। इसला यही है—पूज्यमें आदर-भावसे तहीन हो जाना। यह तद्धीगता यी निदान-विद्या एवं आहार्यारोपण ग्रन्थ है। उत्तरां देवताओंकी शक्तियोंको समझानेके लिये भूरिक्षेत्रे निदान ( संकेत ) द्वारा तत्त्व देवताओंका प्रकृति-अनुलय लगाया जाता है। इसे विज्ञानके आधारपर शास्त्रमें रुद्रका चान इन प्रकार मिलता है। व्रहाण्डमें वयावस्थित रुद्रका आन्तर चान यी तापमें रुद्रकी वज्रसुखी प्रतिमा है।

मुन्हार्पीत्पयोद्भासिकवादीमुर्खः पृथिवी  
व्याशैरजितमीशमिन्दुगुण्डं पृथिवीमित्यन्तः ।  
शूलं दुःकृपाणवज्रदहनान् नविन्द्रापरां पृथिवी  
घण्डां भौतिकुरां द्वयनमग्निं रुद्रां इन्द्रां भौतिका

पञ्चमुख आदिका रहस्य

शूल, वज्र, पाश, खड़ग, अंकुश, घण्टा, नाद और अग्नि—ये दस आयुध हैं। शिवकी सर्वज्ञताके सूचक अमित आकल्य (आभूषण) हैं। निदान-भाषामें प्रकाशोंके निदान (संकेत) आभूषण हैं। रुद्रकी पाँच दिशाओंमें व्याप्ति है। उसके सूचक पाँच मुख हैं। इस रुद्रके आग्नेय, वायव्य एवं सौम्य—ये तीन स्वरूप धर्म हैं। ये तीनों भी तीन-तीन प्रकारके हैं। आग्नेय प्राणके अग्नि, वायु, इन्द्र—ये तीन भेद हैं। वायव्य प्राणके वायु, शब्द एवं अग्नि—ये तीन भेद हैं। सौम्य प्राणके वरुण, चन्द्र, दिक्—ये तीन भेद हैं। इस प्रकार उसकी नौ शक्तियाँ हो जाती हैं। ये नवों शक्तियाँ धोर हैं। इनके अतिरिक्त एक शान्त शक्ति है, जिसे मिलाकर ये दस शक्तियाँ—उसके दस हाथ हैं एवं दस आयुध हैं। इन्हें शक्तियोंके सूचक उपर्युक्त ध्यानश्लोकमें वर्णित दस आयुध हैं। टंक आग्नेय तापका सूचक है, इससे यह फलित होता है कि जिस देवताके हाथमें टंक हो, वह यह सूचित करता है कि उस देवताके वशमें आग्नेय ताप है। शूल वायव्य तापका सूचक है। वज्र ऐन्ड्र तापका व्योतक है। पाश वारुण तापका संकेत है। खड़गका सम्बन्ध चान्द्री शक्तिसे है। इसलिये उसका नाम चन्द्रहास है। अंकुश दिक्सम्बन्धी शक्तिसे सम्बन्धित है। नाग विष-संचर नाड़ीसे सम्बन्धित है। जिस वायु-सूत्रसे शरीरोंमें रुद्र प्रविष्ट होता है, वही संचर नाड़ी कहलाती है। इस नाड़ीका नाशक्रिक सर्प-प्राणसे सम्बन्ध है। सारे ग्रह सर्पाकार हैं, इनमें सौर तेज व्याप्त रहता है। सब ग्रहरूप सर्पोंके साथ 'रुद्रात्मक' सूर्यका भोग होता है। अतः रुद्रके सर्वाङ्गमें सर्प भूषणलूपसे स्थित हैं। नाग इसी उपर्युक्त अर्थके सूचक हैं। इनकी दृष्टि ग्रकाशरूपा है। इसीकी परिचायिका अग्निज्वाला है। मरुतकस्य इन्दु (ब्रह्मणस्यतिसोम) सोमाहुतिका सूचक है। अभय-मुद्रा परोरजायकिकी परिचायिका है। स्वरात्मक वाक्के अधिष्ठाता रुद्र है—इसका संकेत घण्टा है। सूर्यमें प्रकाश, ताप (अग्नि) और आहुति सोम (चन्द्रमा)—ये तीनों हैं। रुद्रने इन तीनों ही प्रकाशोंसे विश्वको प्रकाशित कर रखता है। इन तीनों प्रकाशोंके सूचक तीन नेत्र हैं। आकर्षण-शक्तिका परिचायक पाश है। इसी आकर्षण-शक्तिका निर्देश 'अदित्यैरस्त्वासि' इस वैदिक मन्त्रमें निहित है, जिसके अर्थके अनुसार त्रिथिवीके आकर्षणका परिचायक रात्मा (पाश) है। इस आकर्षण पाशसे ही तमस्त विश्व परस्परमें आकृष्ट है। नियतिशक्तिका निदान अंकुश है। इस नियतिके कारण ही सूर्य 'पथ्यामुद्देति पथ्यामल्लमेति' यह

कहा गया है। जो प्रश्नापराधसे रुद्रकी इस नियतिशक्तिगत नियमों (वैदिक सनातन नियमों) का उल्लङ्घन करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। शुक्रवर्ण शान्तिका सूचक है। इसका फलितार्थ यह है कि रुद्रका रौद्रभाव शान्ति-स्थापनार्थ है अथवा मूलमें रुद्र शुक्र है, लाल और नीला रंग उसकी तूलावस्थाके सूचक हैं। इस प्रकार सब अन्न-शब्द आदि संकेतोंसे प्रतीयमान अर्थोंको समझाना ही निदान-विधाका कार्य है। (पितृ-समीक्षा)

उपर्युक्त अन्न-शब्द आदि संकेतोंका रहस्य तन्त्रग्रन्थोंके अनुसार वर्णित किया गया है। अब विष्णुधर्मोन्तरपुराणके अनुसार निदानगत रहस्योंके अर्थोंका उद्घाटन किया जा रहा है।

महादेवके पाँच मुख पञ्चमहाभूतोंके सूचक हैं। दस हाथ दस दिशाओंके संकेत हैं। हाथोंमें विद्यमान अन्न-शब्द जगद्रक्षक शक्तियोंके सूचक हैं, जिसका फलित अर्थ यह होता है कि दस दिशाओंमें व्याप्त रुद्रकी शक्तियाँ जगत्की रक्षा कर रही हैं। हस्तगत अक्षमाला कालकी परिचायिका है, जिसका फलितार्थ यह है कि काल और उसके परिणाम रुद्रके हाथमें हैं। कमण्डल जगदुत्पादक जलका सूचक है। रुद्रका चाप; जिसे आजगव और पिनाक भी कहा जाता है, वहिका सूचक है। वाण पञ्चतन्मात्राओंके सूचक हैं अथवा निगमानुसार अन्न, वात और वर्षके सूचक हैं। दण्ड मृत्युका परिचायक है। मातु लंग, समग्र जगद्वीज परमाणुओंका सूचक है। चर्म (ढाल) अज्ञानावरणका संकेत है। विशूल इच्छा, ज्ञान, क्रिया—इन तीनों शक्तियोंका सूचक है। खड़ग शानकी प्रतीक है। रुद्रके पाँचों मुखोंमें सौतराह मुख 'उमामुख' कहलाता है, जो जल-तत्त्वप्रधान है। उमामुख महादेवके हाथोंमें इन्दीवर और दर्दण है। यहाँ 'इन्दीवर' (नीलकमल) वैराण्य एवं दर्दण निर्मल ज्ञानका परिचायक है। रुद्रके सिरमें स्थित चन्द्रमा ऐश्वर्यका परिचायक है। बैलोक्य-शमन (नाशक) क्रोधका सूचक वासुकि नाग है। विशाल और विच-विनिप्र व्याप्र-चर्म, विविधरूपधारिणी मृगतृष्णाका सूचक है। रक्तर्ण वृपम जगद्वारिणी शक्तिका निदान और 'तपः शोचं दया सत्यमिति पादाः कृते दृताः' (श्रीमद्भागवत) चतुपाद है। निदान-शब्दोंमें प्रकृति (मूलकारण) को शुक्र और विश्वि (कार्य) को कुण्डवर्ण माना दै। अतः महादेव कृष्णोर (शुक्र) है। जगद्वीवनकी कारणभूत ओपथियाँ जयाएँ हैं।

दृष्टिकोण सुधर्मेत्तरपुराण' के अनुसार निदानगत इसका वर्णन किया गया। इसके अनन्तर 'योगचासिष्ठ' के जनने निदान-रहस्यों का निरूपण किया जा रहा है।

अनेक तरव्यचित्तक मानते हैं कि सुष्टि, स्थिति, ल्य,  
अनुग्रह ( अनुमति ) एवं निग्रह ( निर्वृति )—इन पाँच  
भव्योंकी निर्मात्री पाँच शक्तियोंके निदान ( संकेत ) पाँच मुख्य  
हैं। पूर्वमुख सुष्टि, दक्षिणमुख स्थिति, पश्चिममुख प्रलय,  
उत्तरमुख अनुग्रह ( कृपा ) एवं ऊर्ध्वमुख निग्रह ( ज्ञान )का  
मूलक है। वहुत-से चिन्तनशील महादेवके पाँच मुख्योंका  
भौति ( सम्बन्ध ) मन्त्रयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग  
एवं धरणागतियोगसे क्रमद्यः मानते हैं। सुष्टि आदि पाँच  
शक्तिकी ही पूर्वाभ्याय, दक्षिणाभ्याय, पश्चिमाभ्याय, उत्तराभ्याय  
एवं ऊर्ध्वाभ्याय—ये तान्त्रिक संकेत हैं। इनका रुद्रके पाँच  
मुखोंमें सम्बन्ध है। रुद्रदेव कहीं पश्चिम मुख भी माने गये हैं।  
उनके भौतिमें पड़ाभ्याय होते हैं।

अहंकारात्मक ( सूर्यके अभिभावी ) द्वद्र सर्वभूतोंके भ्रमा और सर्वव्यापी हैं। इस अहंकाररूपी द्वद्रके प्रत्येक शरिसे सम्पन्न रखनेवाली पञ्चशानेन्द्रियाँ ही पाँच मुख हैं। स्वयंशे शतोन्द्रियाँ सब ओरसे प्रकाशरूप कही गयी हैं। पाँच भौतिक्याँ ( धातु, पाणि, पायु, पाद, उपस्थि ) तथा इनके भौतिक विषय ( वेदना, ग्रहण करना, मलत्याग, गमन एवं विषय कुछसे उत्तराधिकरना) —ये क्रमशः आहंकाररूपी द्वद्रकी छहही एवं यार्थी मुखाएँ हैं। सुकृट चुलोकका और सम्पर्ख द्विवधारणका परिचायक है। क्याल याता-हृत्याक्षय निदान है। इमानवास अध्यात्ममें सुगुणात्मा एवं भौतिकतामें भाक्षणका संकेत है। अद्वगाला वर्णव्याख्याताकी वर्णनविधि है। तीन गुण, तीन काल, अन्तःकरणव्य, प्रशव-द्वय व अन्तःकरण और वेदवारी द्वद्रके पाँचों मुखोंकी क्रमशः तीन-तीन हैं जिनसे प्रशाणात्मक एवं निष्ठात्मक द्विवर्णन होता है। निष्ठा निष्ठात्मक जगत्‌के भौतिक निदान है। निष्ठा द्वद्रकी इच्छात्मक ( अहंतात्मक ) विधि रक्षणव्य निदान गुल्म है। बलुगत परिचय ही इन्हें दियेव है। प्रज्ञ और सृष्टि, सृष्टि और प्रज्ञकी विधि यह द्वद्र अधिक्तर होता है। इसमें द्वद्रको प्रज्ञ रखते हैं। शक्ति और शक्तिभूतके अभेदकी विधि यह द्वद्र लक्षिती लक्षित ( अर्जनार्थिवर ) दृष्टि है। द्वद्रके दृष्टि द्वारा नामान्तरमें प्रकृतिविहृदाक्षस ( प्रशव ) एवं दृष्टि द्वारा दृष्टि द्वारा है। यह अद्वद्र भौतिक

होनेसे इन्हु कहलाता है। यही महादेवकी शिरसा इन्हें लगती है। अपनेसे उत्तरन्न और अवयवमृत दृश्यकरतुओंके हस्तमें धारण करनेकी परिच्छायिका मुण्डमाला है। लद्धी भक्तम् आकृति उमकी सर्वव्यापकताकी सूचिका है। महादेवके संहारक होनेसे उनका वर्ण नील है। ये देवे लद्धी सूर्य एवं रक्तवर्ण भी कहा है। इनमें रक्तवर्ण मौभाग्य और विजयादित्य सूचक है तथा धूम्रवर्ण क्षोभ एवं उच्चाटनका सूचक है। सर्वांगत अहंप्रतीति ही अहंकारात्मक लद्धीका कार्य है।

रूपमें वामार्ध भोग्य वस्तुका परिचायक है। दक्षिणार्ध भोक्तृ-वस्तु ( जीवात्मा ) का परिचायक है, जिसका यह अर्थ होता है कि भोक्ता रुद्रके भोग्यवस्तु सदा वामार्धमें रहती है। नन्दी आदि रुद्रगण मरीचि-समूहोंके परिचायक हैं। स्वभाण्डोंके साथ रुद्र नृत्य करते हैं—इसका अर्थ है कि स्वरशिमयोंके साथ रुद्र नृत्य करते हैं। व्राक्षी-माहेश्वरी आदि सप्त माताएँ काम, क्रोध आदि सप्त भावोंकी परिचायिकाएँ हैं। महादेवके भस्तकमें स्थित गङ्गा, जटाएँ एवं सोम—ये तीनों अमृतके परिचायक हैं। भस्त वीर्यका एवं नग्नता शास्त्राच्छादनका संकेत है। उनका सच्चा आच्छादन दया, क्षमा, धृति आदि आत्मगुण हैं। महादेव, अन्य प्राकृत आच्छादनों ( दुर्गणों ) से रहित है। प्रलयकालमें आवरणों ( विश्वविवर्तों ) के राहित्यका निदान भी नग्नता है। वस्त्र समुद्रोंके संकेत हैं। मुजाएँ देवताओंकी सूचक हैं। मौक्किक आभूषण नक्षत्रोंके परिचायक हैं। केश पुष्करावर्तादि मेघोंके सूचक हैं। प्राणापानका सूचक ग्राणेन्द्रिय है। श्रुति और स्मृति रुद्रकी गतियाँ हैं। रुद्रका नील-लोहित वर्ण प्रकृति-पुरुषके समन्वयका द्योतक है। जटाएँ सप्तरसोंकी परिचायिकाएँ हैं। त्रिपुण्ड्र इच्छा, क्रिया और ज्ञानात्मक शक्तियोंका द्योतक है। अग्निलय प्रजापतिके मूर्धन्ये उत्पन्न वायुमय एवं व्योमकेश शिवयी वायुमयी ( विभिन्न प्राणमयी ) जटाओंमें विद्यमान जलोंकी सूचिका गङ्गा है। जटास्थित गङ्गा ( सप्तरसों ) द्वारा गङ्गाधर रुद्र क्षीण ओषधियोंका पुनः-पुनः प्रतिसंधान करते रहते हैं, जिससे ओषधियों, वनस्पतियों और तृणादिकों-के मूल नष्ट नहीं होते। यह प्रभाव रुद्र-जटास्थित गङ्गाजलका ही है। विश्वमें व्यास नादका निदान डमरू है। 'साधनमाला' के मतमें काल-रात्रिका निदान व्याग्रार्थी है। काल-रात्रि प्रकाशलय रुद्रको विविध रूपोंमें विवरित करती है, अतः वह चित्र-विचित्र है। ल्याटमें स्थित चन्द्रमा सर्वैषधि-मूलोंके उद्भव सोमका परिचायक है। सोमात्मक अपोमय यह सोम नीरुप वायुमें वायुलय होकर सब ओषधियों और वनस्पतियों-का पोषक है। इस वायुलय दिक्षोमको वायुलय शिव धारण करता है। गगनात्मक महादेव, अनेक व्रह्माण्डलय मुण्डमाला पहनता है। 'वायुपुराण' के अनुसार रुद्र-शरीरके आभूषण सर्द हैं, जो शारीरिक अद्य-धातुओंके परिचायक हैं। 'अग्नि-पुराण' के मतमें रुद्रके भूपण स्वप्नोंको वात-पित्त-कफात्मक माना गया है। रुद्र-विश्वस्थित गङ्गाप्रवाह अमृत-तेचनका परिचायक है। रुद्रके शास्त्राञ्जलि राग-द्वेष्य, नोह-ईर्ष्या, धर्म आदि शक्तियोंके

परिचायक हैं। ( साधनमाला ) 'स्कन्दपुराण' का कथन है कि चन्द्रमाकी सोलहवीं कला 'अमा' है, जो महादेवके सिरमें स्थित होकर प्रकृति ( विश्व ) को प्रकाशित करती है। विश्वस्थ चन्द्र-कला शुद्धाशुद्ध-खस्तियों है। रुद्रका त्रिशूल और परशु दुष्ट तत्त्वोंके नाशका संकेत है। आत्मोंकी सर्वविधि पीडाके नाशकी सूचिका उनकी अभय-मुद्रा है। उनका वरद-हस्त स्वख्योंको अम्युदयमें पहुँचानेका संकेत है। रुद्रके हाथमें विद्यमान मृगतन्त्रके अनुसार उनकी तीव्रगतिका एवं 'विष्णु-धर्मोत्तरपुराण' के अनुसार कर्मका परिचायक है। रुद्रकी वृषभध्यजताका रहस्य निम्नाङ्कित श्लोकमें बताया गया है—  
धर्मो हि वीर्यं द्वियते हि धर्मः धर्मो धृतो धारयते हि रूपम्।  
यद् धर्मयोगादिह योऽस्ति धर्मो धर्मे हृते हन्त्यत एव तस्मिन् ॥

अर्थात् किसी भी देवताका ध्वज उसमें विद्यमान शक्ति-का संकेत है। जो धर्मों ( पदार्थ ) जिस धर्म ( शक्ति ) को धारण करता है, वह शक्ति उसकी ध्वजा है और वही शक्ति उस धर्मों पदार्थका वाहन ( आधार ) है। इसलिये ध्वज और वाहन दोनों एकलूप हैं। अहंकारात्मक रुद्रके वस्तुलय होनेसे वह अहंकारात्मक रुद्र तत्-तत् धर्मोंको धारण करता है और वे धृत शक्तियाँ उसका वहन करती हैं; रुद्रकी वृषभध्यजताका यही मार्मिक अर्थ है। जैसे मेघ ( उष्णता ) अग्निका ध्वज और वाहन दोनों है, वैसे ही कातिकेयका मयूर ( चित्राग्नि ) ध्वज और वाहन दोनों है। वेदने देवता और वाहनमें अधिक भेद न मानकर इनका परस्परमें वाहक-वाह्यभाव-सम्बन्ध माना है।

यज्ञसूत्र ( यज्ञोपवीत ) इच्छा, ज्ञान, क्रिया—इन तीन शक्तियोंका सूचक है। इन शक्तियोंमें यज्ञात्मक अखिल विश्व सम्प्रोत है। इन तीनों शक्तियोंमें एक-एकके तीन-तीन भेद होनेसे ये नौ हो जाती हैं। अतः यज्ञसूत्र नवतन्त्रमय है। विश्व-धारक ये नौ सूत्र ही तन्त्रोक्त नौ महाविद्याएँ हैं। इनका परस्पर सम्मेलन ही यज्ञ-सूत्रकी ग्रन्थि है। पोड़शी उपनिषद् व्रह्मसूत्र ( यज्ञोपवीत ) को व्रह्मनाडीका निदान मानती है। जैसे—

यस्य शक्तिवयेणेऽ सम्प्रोतमस्थिलं जगत् ।

यज्ञसूत्रायते वस्त्वं यज्ञसूत्रं समर्पये ॥

( नारदप्रवान )

विल्वपत्र सर्वतत्त्वमय है। विल्वपत्रके मूलमें जनारदन, मध्यमें व्रह्मा, अन्तमें रुद्र एवं तलमें सर्वदेव निवास करते हैं।

विल्वपत्रमें ज्योतिर्मय है। विल्वपत्रमें तीनों गुणों ( नाय, रज, तम ), तीनों देवताओं ( ब्रह्मा, विष्णु, महेश ), तीनों तत्त्वों ( प्रकृति, जीव एवं परमात्मा ) का सम्भावसे उल्लेप है। विल्वपत्रमें सुवर्ण-कणोंका अधिक उद्ग्रेक होनेसे वह धीरुग है—‘वनस्पतिस्त्रव वृक्षोऽथ विल्वः’ ( ऋग्वेद )। विल्वपत्रका सर्व एवं गन्ध शोक, मोह, दारिद्र्य, अपमृत्यु एवं अदृश्योंका नाशक है। उससे रुद्रका समर्चन ज्योति, झन, लक्ष्मी, आरोग्य एवं आयुष्य आदिका वर्धक है और अग्निकार, अस्तान, अलक्ष्मी, अनारोग्य एवं अनायुष्यका नेत्रक है—‘विल्वं भरणादु वा भेदनादु वा’ ( निरुक्त )।

रुद्राक्षके सम्बन्धमें शास्त्रोंका मत है कि रुद्र ( सूर्य ) वीथि ( तेज ) ही वनस्पतिलूपसे परिणत होकर रुद्राक्ष हो गया है। केवल सौरशक्तिके विकसित होनेपर एकवक्त्र ( एकशक्ति ) रुद्राक्ष होता है, दो शक्तियोंके विकसित होनेपर द्विवक्त्र, तीन शक्तियोंके विकसित होनेसे त्रिवक्त्र आदि द्वादशके अनेक भेद हैं। रुद्राक्षलूपसे परिणत ये विभिन्न धर्मियाँ मानवोंमें सम्भावित, वर्तमान एवं भविष्यत् तथा भाग्यरिक, भाग्यलिक एवं वौद्ध रोगोंकी निरोधिका हैं। इन्हें अर्थ-शास्त्रोंमें इनके धारणका विवान है।

स्त्रीमुख्य कार्य घन पदाधोंको तरल बनाना है।  
सूक्ष्मगत-कमल, हृदय-कमल, शिर-कमल—इन तीनों पुष्करों  
( कमलों ) में रहनेके कारण केदको विपुक्तरस्य कहा गया  
है। उनमें से भृत्य-दल कमल ( शिरोगुहा ) ही अव्यात्ममें  
बिल्लू है, अधिरैतवत्सं यु-लोक ही कैलास है। तीक्ष्णा, रेत्री,  
भृत्य, निदा, तन्त्र, छुआ, कोणिनी, किया, उद्गारी,  
सौनु—ये स्त्रीमी दम कलाएँ हैं ( परशुरामकल्पसूत्र )।  
प्रत्यक्षमें प्रथा रवोभासमें, विष्णु सत्यभावमें, द्वद्रष्टव्य-  
में रिति है। अस्थिरैतवत्सं पुष्पिनीभागमें त्रिला, जलभाष  
में रमभाष, रिष्णु एवं तेजोभागमें द्वद्रष्टव्य हैं। ( ब्रह्मसंधान )

‘प्राणमृतम्’ के भक्तसे पक्षमुखका रूप्त्व इस प्रकार है। यह दहन ईश्वरमुख ( आगामालक जग्नेश्वर ) मेंबर ३५वीं अधिक भोजन क्षेत्रालय याकिंच दरियालक है। यह दहन ईश्वरमुख (कुर) ही प्राणिमृतमें जोवेदिवलक, जोवेदिवलम् यथारमण्डल है एवं आगामालकसे परिवर्त्त हो चुका है। इसमें दहनक्षेत्रालय आगामालकी दृष्टिनीहै एवं यह दहन, जो यज्ञम् का दहन दहन दहन वर्जनालय यज्ञ है। इन दहनदहन दहन की दृष्टि दहन दहन (प्रमेयद) और दहनी दृष्टि

मध्यम आकारकी है। दूसरा तत्त्वरूप नामक दक्षिण सुर परमात्म-गुहा प्रकृति-शक्तिका सूक्ष्मक है। तत्त्वदर्शकों की ल्पणिन्द्रिय-रूप, पाणि (हस्त) रूप, दाढ़ी-तन्मात्रा एवं एवं वायु-रूपसे परिणत हुई है। विश्वमें व्यापि (कैलास) इसका कार्य है। तीसरा अधिक नामक दक्षिण सुर त्रिदिवीन का निदान है। त्रुट्टिके ही धर्म, अर्थात् ज्ञान, अध्यात्म, विद्या, राग, ऐश्वर्य, अनेकर्थ (आस्तिता) —ये आठ अस्तार हैं। प्राणिमात्रके शरीरमें चक्रु-रूप, पादेन्द्रिय-रूप, दाढ़ी-तन्मात्रा-रूप एवं अथि-रूपसे एक ही अधोशक्ति परिणत हो जाती है। यही विश्वका प्रकाश है। चौथा वामदेव यमऋत्तर सुर सर्वत्र व्याप महादेवकी तुन्द्र नूरि अस्तारशक्तिता बोलता है। यही वामदेव-शक्ति रसमेन्द्रियरूप, वायु-निद्रियरूप, रस-तन्मात्रा एवं जरा—इन लंबेमें परिणत हो जाती है। यह जलात्मकरूप विश्वका संजीवन है। वामदेवा अप्य सूर्य देव होता है, विश्वमें जल ही तुन्द्र है। पाँचवा यमोंका नामक पूर्वमुख सब शरीरमें विद्यमान गमनशीलता गत है। यही सद्योजात तत्त्व सब दर्शनमें प्राप्यन्द्रियरूप, उत्तमनिद्रिय-रूप, गन्धतन्मात्रारूप और पुरुषी-स्त्री वर्गका तुन्द्र है। यह पार्थिवी-शक्ति विश्वकी आपार है। इन प्रत्यारुपोंकी पञ्चमुखात्मक पाँच शक्तियाँ रुप संकेमें परिणत होती हैं। विलत विश्वास्त्रों भारग फर रही हैं।

पत्नीलालोकमें श्रीअग्निकन्तुकमें भित्ति, वरदा, वर्णा, विद्या  
एवं दृष्टि ( प्रदल )—मेरे गायब कालाएँ बड़ी ही अचूकी में  
सम्बन्धित मानी जाती हैं । अतः यदि इन प्रदलों द्वारा उन्मित्ति  
परिणत होकर विद्याकार भवा दृष्टि हो । तो, यहाँकी विद्या  
कथम है कि यदि अग्निकन्तुक द्वारा यह प्रदल दृष्टि देता है तो वह  
भित्ति है । इनस्थिति द्वारा स्वयं भित्ति होने का लक्षण देखा  
कर रखा है । यदि इन द्वारा प्राप्तिका विद्यामें वह विद्या दृष्टि  
( वास्तविक ) सम्बन्धित हो तो वह विद्या है । इनस्थिति द्वारा  
होकर विद्याकर वास्तव दृष्टि होती है । तो, यहाँकी विद्या  
का दृष्टि ( अग्निकन्तुक ) है ।

લાંબા વિષય

देवता तथा भावा और निम्न दृष्टि के साथ इसकी विवरणों  
में ज्ञानमुद्देश्य का अनुभव होता है। इसमें अनेक विषय वर्णित  
होते हैं। ऐसा एक विषय है कि विवरणों में उनकी विवरणों  
में अनेक विषय वर्णित होते हैं। इसकी विवरणों में उनकी विवरणों  
में अनेक विषय वर्णित होते हैं।

संहिता ) इस वैदिक मन्त्रमें कहा गया है । रोषात्मक प्रलयंकर रुद्रतत्त्व ही जब जल ( सोम ) से युक्त होता है, तब वह शिव अथवा साम्ब सदाशिव कहलाता है । एक ही तत्त्व अवस्था-भेदसे रुद्र और शिव-रूपमें विवर्तित होता रहता है । यह तो अवस्था-भेदसे रुद्र और शिवकी परिभाषा हुई; किंतु यत्कालावच्छेदेन वह तत्त्व रुद्र है, तत्कालावच्छेदेन वह शिव भी है । रुद्र विश्वके नाशक, 'नाष्टारक्षांसि' ( नाशक शक्तियों ) का नाशक है । इसलिये सब वस्तुओंकी रक्षा करनेके कारण वह शिव भी है । यदि रोषरुपी रुद्र ओषधियों, वनस्पतियों, पशुओं, पक्षियों, प्रस्तर तथा मनुष्योंमें मात्रा-रूपसे न रहे तो 'नाष्टारक्षांसि' इनको कभी नष्ट कर डालें । इनकी रक्षाके लिये वह स्थिरधन्या, क्षिप्रेषु और तिग्मायुध होकर भेषज-रूप हो रहा है—‘रुद्रः किलास भेषजम्’ ( ऋग्वेद ) । भेषजरूपता ही शिवकी शिवता है ।

### रुद्रके व्यूह

देवतातत्त्वसे अभिन्न होनेके कारण रुद्र-तत्त्व भी ६ व्यूहों ( प्रकारों ) में विभक्त है—१ प्राकृत पदार्थ-रूप, २ प्राण-रूप, ३ अभिमानि-रूप, ४ सौम्य-प्राणि-रूप, ५ नाशक्त्रिक-प्राण-रूप, ६ वौपासनिक-रूप । इनमें अर्क, धत्तूर, विष आदि उग्र प्राकृत पदार्थोंका उत्पादक प्राकृत-शक्ति-रूप पहला रुद्र है । काम, क्रोध, मोह, दम्भ आदि प्राणात्मक रुद्र दूसरा है । अर्क, धत्तूर एवं काम, क्रोध आदिका अभिमानी तीसरा व्यूह है । ज्योत्स्नावासी सौम्य-प्राणि-विशेष चौथा प्रकार है । मूल, ज्येष्ठा आदि नक्षत्र-सम्बन्धी प्राण पाँचवाँ व्यूह है । ‘प्रकृतिवत् विकृतिः कर्तव्या’—इस न्यायसे प्रकृतिमें व्याप्त रुद्रका अपने संकल्प-भेद-विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त संकल्पज प्रतिमामें आना पाँचवाँ अर्थ है । वेदोंमें इन सब अर्थोंके लिये रुद्र-शब्दका प्रयोग हुआ है । प्रकृति-शक्ति-रूप ( तत्त्वात्मक ) रुद्र, प्राण-रूप रुद्र, अभिमानि-रूप रुद्र, सर्वव्यापक एवं अप्राणिविध हैं । इनको लक्ष्यमें रखकर श्रीअभिनवगुप्तका कथन है—

न स्वल्पेष शिवः शान्तो नाम कविद् विभेदवान् ।  
सर्वेतराध्वव्यावृत्तो घटतुल्योऽस्ति कुत्रचित् ॥  
महाप्रकाशरूपा हि येयं संविद् विजृम्भते ।  
स शिवः शिवतैवास्य वैश्वर्य्यावभासिता ॥  
( तत्त्वालोक )

अर्थात् जगत्से भिन्न वर्तवत् एक देशमें स्थित कहीं

भी शान्त शिव नहीं रहते । यही प्रकाश-रूप संवित् जो सब जगह सब रूपोंसे उछल रही है, वही शिव है । विश्व-रूप-से भासना ही उसकी शिवता है ।

### एकादश रुद्र

‘प्राणा वाव रुद्रः’ इस वैदिक प्रमाणके अनुसार अध्यात्ममें मुख्य प्राणात्मक एवं अधिदैवतमें सूर्यात्मक एक रुद्र है । प्राण, अपान आदि भेद-भिन्न अनेक प्राण एवं सूर्यकी अनेक रश्मियाँ अनेक रुद्र हैं । रुद्रोंका कार्य भी कठिन द्रव्योंको तरल बनाकर पदार्थोंकी रक्षा करना है । रुद्रगण नील-लोहित हैं; फिर भी शोचिष्ठ-केश होनेसे शुक्रवर्ण हैं । रुद्र-वायु चतुष्कर्मा होनेसे चतुर्भुज है । रुद्रोंके वर्ण रक्त, पीत, हरित आदि हैं । पदार्थोंमें विद्यमान संचरण ही रुद्रोंका कार्य है । रुद्रोंका आयुध त्रिशूल है । रुद्रगणोंके लिये ‘ज्वलन्तः वर्धन्तः चोत्मानाः’ आदि अनेक विशेषण मिलते हैं, जो रुद्रोंके कार्योंके निर्देशक हैं । पृथ्वीमें विद्यमान ‘अङ्गिरामि’ रुद्र है । अङ्गिरामिके पुत्र रुद्रगण हैं । रुद्रगणोंके पुत्र मरुदग्नि हैं । रजोगुण ( रक्तवर्ण ) एवं तमोगुण ( कृष्णवर्ण )—इन दोनोंका समन्वित वर्ण नील-लोहित होनेसे ये नील-लोहित कहलाते हैं । वेदने रुद्रगणोंका वर्ण धूम भी माना है, जो उच्चाटन तथा मारणका सूचक है । रुद्रगण संख्यामें ११ हैं ।\* सामवेदीय ‘जैमिनीय ब्राह्मण’ का कथन है कि ‘त्रिष्टुप्’ छन्दके अक्षर ४४ हैं । ‘त्रिष्टुप्’ छन्दके साथ सम्बन्ध होनेसे रुद्रोंकी संख्या भी ४४ है । ‘काठक-संहिता’ रुद्रोंकी संख्या १० मानती है । प्रतिवस्तुकी रक्षाके लिये २०-१० रुद्र प्रतिदिशाओंमें रहते हैं । जैसा कि ‘तेभ्यो दश प्राचीर्दशा दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशो-र्द्वाः’—इस कपिष्ठल-संहितोक्त वाक्यसे रुद्रोंकी संख्या १०० हो जाती है । इनका वर्णन करनेके कारण ग्रन्थका नाम भी ‘शतरुद्री’ हो गया है । जिस दिशाके रुद्र निर्वल पड़ जाते हैं, उसी स्थलसे वस्तुएँ सड़ने लगती हैं । ‘स्कन्दपुराण’ का आवेदन है कि रुद्र वोधनात्मक ( शान-रूप ) है, जिनके

\* ये चैकादश रुद्रा वै तत्र प्रोक्ता मया प्रिये ।

दश ते वायवः प्रोक्ता आत्मा चैकादश स्मृतः ॥

तेषां नामानि वस्यामि वायूनां शुशु मे क्रमात् ।

प्राणोऽपानः समानश्च शुदानो व्यान एव च ॥

नागः कूर्मश्च कृकलो देवदण्डो धनंजयः ।

( स्कन्दपुराण )

प्रियाशमें वस्तु जड़ कही जाती है। सन्द ही जड़चेतनका निकट है। दृढ़ सन्दात्मक है।

### पार्वती

‘इच्छाशक्तिरूपकुमारी’ इस ‘पाशुपतसूत्र’ के प्रमाणसे बहुत दर्की इच्छाशक्ति ही पार्वती है। इच्छाको ही प्रकृति द्य गया है। स्कन्दपुराणीय ‘शिवस्य गृहमेधिनो गृहिणी शूर्विदिव्या प्रजात्र महादाद्यः’ इस वाक्यके अनुसार प्रकृति अंतर्गती पती मानी गयी है। ‘साधनमाला’के अनुसार कथा (अग्नी कक्षि) ही अङ्गना है। निष्ठकारने भी ‘भूमेव सर्वं देवस्य देवत्य’ यह कहकर इस उपर्युक्त भावका अनुमोदन किया है। चन्द्रमाकी एक कलाको ‘स्कन्दपुराण’ने ‘भव’ कहा है वही दक्षपुत्री ‘सती’ मानी गयी है। जिस वर्णनमें उपर्युक्त ‘अमा’ नामक कलाका विकास अधिक हो, अग्न ग्रन्थमय शिवके साथ प्रेमल सम्बन्ध रहता है और वह कलाक होता है। जिस व्यक्तिमें उक्त कलाके विकासकी व्युत्ता ५२८ केवल गुणक कर्ममें निरत रहता है एवं शानात्मक शिवसे देख रहता है; ऐसे व्यक्तिमें पशु-भावकी वृद्धि अधिक होती है और ५२८नान्तिक होता है। दक्षमें मानवोचित दिव्य-भाव नहीं है। इसी गूचक उसका ग्रन्थ-मुख्यालयदेन एवं पशु-भावका अनुभुत्या प्रतिष्ठापन है। वस्तुतः पार्वती शान, एवं एवं निया—इन तीन शक्तियोंके सम्मिलित-रूप शिवमें विद्यम अर्हता-शक्ति है। यह अहंता जब स्पन्दित होता है वह पार्वती कहलाती है; क्योंकि उसमें शान, इच्छा, शिव भीरि पर्य अनेसे वह पर्वती (पार्वती) हो जाती है। वी विश्वासित है। जबतक यह इच्छा शक्तिरूपमें है, तबतक वी कहलती है और विश्वाशक्तिरूपमें परिणत होते ही वी रो जाती है।

### सेनापति स्कन्द

‘पशुपतसूत्रमें अङ्गकारको स्कन्द कहा गया है। उक्तका अर्थ है—

इति पिष्टुरियुक्तः शियो या नामतः स्कन्दः ।  
स्कन्दः ३ उमादेवी धीर्यो पश्चनिमेध्याण ॥  
पश्चनिमेध्याः स च सेनापतिर्युदः ।  
वी इत्यक्षम् कथम् है कि प्रह्लेष्युदके क्षेत्रमें इति पिष्टुरियुक्त है। यह महात्म्य अप्या भर्त्यार है। वी इत्यक्षम् स्पन्दने दृष्टिरीतिरूपस्त्रिय अभिप्रदात्ये नामसे अर्हता देख रहा है। उक्तके ५ अङ्गकार हैं। उक्तका अर्थ,

वैश्वानरामि, कुमारामि, चित्रामि एवं शशुद्धामि—इनमेंसे कुमारामि ही स्कन्द है। वह कुमारामिली श्वर्ण चित्रामि (मवूर)ल्य वाहनपर स्थित है। कालाम्बि रुद्र (नाभिस्यवहि) एवं ऊर्ध्मस्तकस्त्र शान्तिरूपान्तररूप रूप पार्वती—इन दोनोंका द्रवित रैत्र एवं शशुद्धामा स्फुटमिश्रण ही ‘कातिकेय’ है। वह अन्तःकरणला है। कातिकेयके हाथमें विद्यमान शक्ति आश्रेय नामर्थ (भग्न) है। शान ही देवताओंका सेनापति है। यावामुखीहि नामाम्बिन स्कन्द वीर्य ही ‘स्कन्द’ है; वह संवत्सरामि रहता है। गंगामरी छः शृतुएँ उसके छः मुख हैं और वारह नाम से वारह भुजाएँ हैं। ‘अहंकार स्कन्द है’ इस पदमें मनवहेता पांच शमिन्द्रिया उस स्कन्दके छः मुख हैं। तन्त्र-शास्त्रका कथन है—

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपसम्भिरं गतो ।  
शिवरक्षिण्योगं शनशन्तिरूपसम्भर् ॥

इच्छा, शान एवं क्रियाका सम्बोध सा वी रूपरूप हाथमें रहनेवाली शक्ति है और वह स्वयं नाम रहता है। मिश्र-भिन्न वल्लाओंके शानात्मक विवेगमें उक्तस अङ्गसे नामर्थ ही शक्ति है।

### गणेश

‘वद्यवैपर्वतपुराण’ का कथम है कि इन्द्रजीव द्वारा हर्षल्पात्मक गणेश है। ‘पागल्या गिर्वामिनी’ इन वर्तनद सिद्धान्तसे किसी भी रेताली ग्रामस्त्रवा वर्तनदी शक्तिकी यन्त्रिता है। अपशुरुपायमें भावद्वयों नामाम्बिन वीर्य है। आर्यशनिता त्वय ह गणेश है। वीर्यमान वर्तनदी कथन है कि भुमिति और तुम्हारी—दोनों वर्तनदों का वर्तन है; उनमेंसे भुमिति नामद वह है इसीलीके अनुरक्षित रखता है। तुम्हारी नामद वर्तनद वर्तनदी है और अन्य वायपमें वे रखता है। वी इसीलीके विवरणमें इन अर्थ होता है—तुम्हारिये वर्तनदे इन वर्तनदों वर्तनदी कथित वर्तनद वर्तनदक वर्तनदी वृद्धि वर्तनद वर्तनदी है। अतः भ्राताय भ्राता वर्तनद वर्तनदी वर्तनदी वर्तनदी है। भ्राताली उत्तरित वर्तनद वर्तनदी वर्तनदी वर्तनदी है। विष्वासी वर्तनदी वर्तनदी वर्तनदी वर्तनदी है। देख अपश्व वर्तनद वर्तनदी वर्तनदी है। वर्तनदी वर्तनदी वर्तनदी है। आपरद्वय वर्तनद वर्तनदी है। वीर्यवर्तनदी वर्तनदी वर्तनदी है।

हैं, इसलिये आकाश गणाधिपति है। गणेशकी महोदरता उसकी सर्वाधारताकी सूचिका है। हस्तमुखका क्रमशः क्षीण शुष्ठादण्ड क्रमशः शब्दतन्मात्रासे लेकर गन्धतन्मात्रातक अर्थ-शक्तिके विभिन्न परिणामोंका परिचय है। इससे यह भी सूचित होता है कि शब्द-तन्मात्राकी अपेक्षा स्पर्शतन्मात्रा अत्य (व्याप्त) है। शब्द-तन्मात्रासे लेकर गन्ध-तन्मात्रातक सब तन्मात्राएँ गणेशरूप हैं; क्योंकि ये भूतोंकी आधार हैं। आज भी महाराष्ट्रमें वृक्षादिकी मुख्य जड़को गणेश-मूल कहते हैं।

### शिवलिङ्ग

‘लयनालिङ्गमित्याहुः’—इस लिङ्गपुराणीय वाक्यके आधारसे कार्य-समूह जहाँ लयको प्राप्त होता है, वह तत्त्व लिङ्ग-पदवाच्य है। कार्योंका लय अक्षर-तत्त्वमें होता है, अतः क्षर-तत्त्वसे वेष्टित अक्षर-तत्त्व ही लिङ्ग है। वह तत्त्व तत्त्वचिन्तक कपिलिकी परिभाषामें अव्यक्त अथवा महत्तत्त्व है और वह क्षरात्मक अहंकारसे वेष्टित है। तत्त्वोंकी इसी अवस्थाको ब्रह्म कहा गया है—

प्रकृतिश्च पुमांश्चैव परं ब्रह्म ग्रकीर्तिंतम् ।  
पुमान् विन्दुस्तद्वदने नादरूपा जगन्मधी ॥  
विन्दुर्लिङ्गं दिवः पुंसः योनिर्नादस्तरूपिणी ।

—हठसंकेतचंद्रिका

अर्थात् प्रकृति-तत्त्व और पुमान्-तत्त्व—इन दोनोंकी यामल (सम्मिलित) अवस्था ही परब्रह्म-शब्दसे अभिहित की जाती है। इनमेंसे निदान-शास्त्रानुसार पुमान्-तत्त्वका सूचक विन्दु है। विन्दुतत्त्वको परिच्छिन्न (वेष्टित) करनेवाली प्रकृति है। इसी अर्थको दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि पुमान्-तत्त्वका लिङ्ग (चिह्न) विन्दु है और नादतत्त्वका लिङ्ग (चिह्न) योनि है। अतः क्षरात्मक योनि-रूप नादसे आलिङ्गित अक्षर-तत्त्व ही शिवशक्तिकी अव्यक्तावस्थाका लिङ्ग (अनुमापक) है। (पुराणोत्पत्ति-प्रसङ्ग) निदान-भाषामें विन्दुका निदान (संकेत) लिङ्ग है। नादका निदान (संकेत) योनि है। प्रकृति ही पीठ है, जीव लिङ्ग है। ‘प्रकृतिस्तस्य यज्ञो च पुरुषो लिङ्गसुच्यते’ अथवा ग्राण-लिङ्ग है, अग्नि पीठ है। ग्राण अथवा जीव दोनों ही दीपाकार हैं और प्रकृति एवं अग्निमें स्थित हैं। सूर्य ही ज्योतिलिङ्ग है। शिवलिङ्गका रहस्य एवं स्वरूप वर्ताते हुए ‘स्कन्दपुराण’ ने यह कहा है—

अनादिमत्युतं दिव्यं ग्रमाणातीतगोचरम् ।  
अवश्वोर्वगतं दिव्यं जीवात्म्यं देहसंस्थितम् ॥

हृदयादि द्वादशान्तस्थं प्राणपात्रोदयास्तगम् ।  
अआहमिन्द्रियात्मानं निष्कलं कालगं विभुम् ॥  
स्वरादिव्यज्ञनातीतं वर्णादिपरिवर्जितम् ।  
वाचामयाच्यविषयं अहंकारार्थरूपिणम् ॥  
हृतपद्मकोशमध्यस्थं शून्यरूपं निरञ्जनम् ॥  
एनं सदाशिवं विद्धि प्रभासे (शरीरे) लिङ्गरूपिणम् ॥

इसका फलितार्थ यह है कि जो अनादि, अच्युत, दिव्य, ग्रमाणातीत, सर्वत्रग, हृदयसे लेकर द्वादशान्तमें स्थित है, ग्राण-अपानके उदयास्तमें है, इन्द्रियग्राहा, अवश्यवोंसे रहित, जो प्राणोंमें स्थित है, व्यापक है, स्वर और व्यञ्जन—इन दोनोंसे रहित, वर्णोंसे रहित, स्थूलादि अवस्थाओंसे रहित, वाणीका अविषय, जिसका आधा शरीर अहंकार है, वह सदाशिव, जीवरूपसे हृदय-कमलमें निवास करता है। वही प्रभासक्षेत्रमें लिङ्ग-रूपसे विराजमान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रकृति-रूप मेंखलासे वेष्टित परमात्मा ही लिङ्ग (जीवरूप अथवा ग्राणरूप) से विवर्तित हो रहा है। खेद है कि विषय-कीट पामरोंको वेदसिद्ध निदान-विद्याद्वारा निर्दिष्ट नादविद्युके यामलरूपके प्रतिमात्मक चिह्नमें प्राकृत लिङ्ग-योनिका आन्तिमूलक आभास होता है। इसे उनके धोर अशान, मानसिक विकार अथवा द्वैण-स्वभावके अतिरिक्त और क्या कहा जाय?

### अष्टमूर्ति शिव

तस्मिन् श्वेते निस्तरङ्गे समाप्तिमुपागतः ।  
संविदः सुष्टुप्यर्भित्वादाधामेति तरङ्गिताम् ॥  
सैव मूर्तिरिति यथाता ॥.....

(तन्त्रालोक)

उपर्युक्त श्लोकसे उपलब्ध होनेवाले अर्थके अनुसार मूर्ति-की परिभाषा यह है कि श्वेत, निस्तरङ्ग ज्ञानमें तरङ्गोंकी परम्परा मूर्ति है। इसका तात्पर्य यह है कि तत्त्वका सूक्ष्म अवस्थासे स्थूल अवस्थामें आ जाना ही मूर्ति है। यह इसकी मूर्ति है, ऐसा कहनेसे यह उसकी स्थूलवस्था है—यह व्योध होता है। किसी भी तत्त्वको सदा-सर्वदा अव्यक्त (निराकार) और निर्गुण अवस्थामें मानना अज्ञान है। एक ही तत्त्व अव्यक्त और अव्यक्त दोनों अवस्थाओंको धारण करता रहता है। सद्गम रुद्रतत्त्वका आठ प्रकारकी स्थूलवस्थाओंमें परिणत हो जाना ही उसकी आठ मूर्तियाँ हैं, जिनके अव्यात्म, अविभूत, अधिदैवतमें भिन्न-भिन्न कार्य हैं। दूरकी वस्थग्राण आठ मूर्तियों

इन साम तथा कार्योंका निर्देश 'त्रहाण्डपुराण' में इस प्रकार  
दिया गया है—१ द्वद्र, २ भव, ३ शर्व, ४ ईशान, ५ पशु-  
नन् द्वंद्व, ६ उग्र, ८ महादेव—इनमेंसे प्रथम 'द्वद्र' नामक  
द्वृष्टि द्वारा प्रकाशितसे रहती है। इसी कारण उदय और  
उम द्वारा हुए दृश्यका देखना निषिद्ध माना गया है ॥ क्योंकि  
वे समझी रक्ता सूर्योंकी रुद्रताका व्योतक हैं। द्वितीय 'भव'  
द्वद्र भूति रस-लप्तसे जलमें रहती है। जल अथवा जलस्थ  
क्षेत्र भव इनलिये कहते हैं कि उससे प्राणी उत्पन्न होते  
धूर स्त्रिय रहते हैं। जलमें रुद्र-शक्तिके निवासके कारण  
उसमें भल-भूत लाग करना निषिद्ध माना गया है। जलमें  
(जल) नय-न्मान करने और मैथुनके नियेधका भी यही  
है ॥ जलमें मल-मूच्छादिके लाग करनेसे जलस्थ रुद्रकी  
शक्तिके आशासे इन्द्रियोंकी शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगती  
। तृतीय 'पशु' नामक मूर्ति भूमिमें काठिन्य  
विद्युत ( विद्युत )हासे निवास करती है। भूमिगत रौद्री शक्तिके कारण  
। हुय ( वेतो की हुई ) जमीन, मार्ग, स्वच्छाया तथा वृक्ष-  
भूमि कष्टभूता तापनिषिद्ध माना गया है; क्योंकि इन स्थलोंमें  
विद्युत रुद्री रुद्रता विशेषतासे रहती है, जिसके सम्बन्धसे  
विद्युतिवेत्ता आना निर्धारित है । चतुर्थ 'ईशान' नामक  
द्वृष्टि द्वारा प्राणात्मन आदि पश्च-प्राणस्त्रप्तसे रहती है, इनलिये  
वहाँ वायुपी विद्युत निषिद्ध है; क्योंकि वायुका बहन विद्यु-  
ती है ॥ चौथी 'पशुका' भूति उष्णतालप्तसे अग्निमें रहती  
। विद्युत-स्वरूप ( प्रगति ) एवं पशुओं ( दृश्यवलुओं )  
से रहती है इनलिये वह अभ्यात्मक रुद्र पशुति कहलाता  
। अपके भूमिगत निवासके कारण ही अग्निमें अद्विष्ट  
रहती है। वह यज्ञो, वृत्त तराना, अग्निका उल्लङ्घन करना  
। वही विद्युतीय रुद्रता निषिद्ध माना गया है । वही  
दृश्यता है जिस द्वारा भी अनुकूल न होता कि अग्नु-  
कूल न होने दखलो इन्य न कर चुपादि विद्युतिके लिये  
रहती है वही प्रवृत्तिमें की है, उमके दूसरीं अग्निकी  
विद्युतीय रूप से रहती है जिसका दृश्यता है । पर यह तो नैति ही कहला-  
ता है ॥ अपके दृश्यता द्वारा दूसरीं दृश्यता की रुद्र नहीं गया ।  
अपके दृश्यता द्वारा दूसरीं दृश्यता उमके दृश्यता की रुद्र नहीं गया ।  
अपके दृश्यता द्वारा दूसरीं दृश्यता उमके दृश्यता की रुद्र नहीं गया ।

चक्रु-शक्तिको मन्द करती है। छटी भीम नामक गूर्ति आकाशमें सुपिर ( छिद्र ) लगने रहती है। उसका सम्बन्ध हमारे शरीरस्थ छिद्रोंसे है, इनलिये असंतुष्ट तथा खुले भिर मलत्याग करना निपिद्ध है। भोजन, जलवान, शर्म एवं उच्छिष्ट पदार्थोंको मुक्ताकाशके नीचे न सेवन करनेके शर्माओं आदेशके मूलमें भी वही भावना है कि ऐसा करनेपरालेखी शक्तियोंको भीमात्मक रुद्र कमज़ोर कर देता है। शर्माओं 'उम' नामक भूति गोमयागमें दीक्षित व्राह्मणमें चैतन्यलालसे रखी है, अतः दीक्षित व्राह्मणकी निन्दा एवं उसके प्राप्तहर्मोक्ष कीर्तन निपिद्ध है। ऐसा करनेमें उसके लिये पार ग्राममें गंदात्म हो जाते हैं; क्योंकि उस गंदाय दीक्षित व्रजमान उम रहता है। आठवीं 'भद्रदेव' नामक भूति मंकलालसे -नद्रगमें रहती है। नोमभी आक्षा ( वर्गीर ) नोमभी है। भद्रास्त्राके दिन नद्रगा ओपियों और प्राणियोंमें वर्षन्येन प्रसंग करता है, अतः उग दिन किमी भी प्राणीही दिन और इसका छेदन करना निपिद्ध है। अमारम्यादे दिन निपिद्ध यो वातोंको आचरणमें लेनेने लकड़ी अचन्द्र दीपमें दूसरे दीपक शुभ संकल्पोंके नष्ट होनेत भय लगा देता। भयलाल-को दिन और रात्रिके लकड़ी गर्व-करणोंके लिये दशम एक होकर रहने हैं, इनलिये उग दिन नद्रा ( नद्रगम ) में रहना चाहिये।

अभिनवगुप्तके मतमें रुद्रकी अष्ट मूर्तियाँ निम्नलिखित प्रकारोंसे हैं—आठ नाग, आठ दिग्गज, आठ ग्रह, आठ मैरव और आठ गणपति । 'लिङ्गपुराण'के मतमें अव्यक्त ( पुरुष ) एवं प्रधान ( प्रकृति ) अथवा महत्त्व, अहंकार और पञ्च तन्मात्राएँ—ये महादेवकी आठ मूर्तियाँ हैं । मतात्मरसे १ स्वयम्, २ आत्मा, ३ इन्द्र, ४ सूर्य, ५ वायु, ६ अग्नि, ७ जल, ८ पृथिवी—इस प्रकार भी रुद्रकी अष्ट मूर्तियाँ कही गयी हैं ।

### रुद्रका हरि-हरात्मक रूप

जिस प्रकार रुद्रका अर्धनारीश्वर रूप प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उसका हरि-हर रूप भी पुराणोंमें वर्णित है । इसके अर्ध ( वाम ) भागमें हरि और अवशिष्ट अर्ध ( दक्षिण ) भागमें हर हैं । दोनों मिलकर एक रूपसे प्रकट हो रहे हैं । 'वायुपुराण'का आवेदन है—

प्रकाशं चाप्रकाशं च जङ्घमं स्थावरं तथा ।  
विश्वस्त्वयसिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥

अर्थात् यह विश्व हरि-हरात्मक है । इसलिये प्रतीकोपासना ( अङ्गोपासना ) के सिद्धान्तसे एकका उपासक शात्-अज्ञात् अपस्थामें दोनोंका उपासक है । वैदिक शब्दोंमें यह विश्व हरि-हरात्मक है—इसका अर्थ यह होता है कि विश्व अग्नीषोमात्मक है । 'सोमो वै विष्णुः' इन वैदिक वाक्यके अनुसार सोमतत्त्व नारायणात्मक एवं 'अग्निर्वै रुद्रः' इस वेदवाणीके अनुसार अग्नितत्त्व रुद्रात्मक है । दोनोंका मिल हुआ रूप ही यह विश्व है—'अग्नीषोमात्मकं जगत्' ( महाभारत )

### कामदहन

कंदर्पो हर्यतनयो योऽसौ कामो निगच्यते ।  
स शंकरेण संदर्भो ह्यनङ्गत्वमुपागतः ॥  
( वायुपुराण )

अर्थात् हर्यपुत्र ( कंदर्प ) सबको गर्वयुक्त बना देता है । ज्ञानज्ञी शंकरने उसे जला दिया । वह स्थूलरूपसे जल जानेपर भी सूक्ष्म वासनारूपसे प्राणिमात्रके हृदयमें रहता है । अतः निष्काम ( हर्य-शोकरहेत ) हो जाना ही काम-दहन है । व्रहाके शिरक्षेदका अभिग्राय यह है कि मानसाभि व्रहाका पौच्छां सिर है, वह सत्त्वरूप है; उसका रजःसम्मुक्त तमोगुणसे मूच्छित हो जाना ही शिरक्षेद है—‘मुसोइ रजसा सत्यम्’ ( इन्द्रपुराण ) ।

### दक्ष-यज्ञ-विवरण

'वराहपुराण'के अनुसार वोधात्मक रुद्रद्वारा यज्ञ ( प्राणरूप-दक्ष ) के मुष्क ( प्रजनन-शक्ति ) का नाश कर दिया जाना ही दक्ष-यज्ञ-विवरण है । वस्तुमें विद्यमान प्रजनन-शक्ति ही दक्ष है । ज्ञानात्मक शिवकी पत्नी सती ( बुद्धि ) है । बुद्धि प्राणात्मक दक्षकी अन्यतम शक्ति है, अतः वह दाक्षायणी कहलाती है । ज्ञानरुद्र एवं बुद्धि ( सती ) के तिरस्कर्ता प्राण ( दक्ष ) का यज्ञ ( कार्य ) विश्वके लिये अभ्युदयात्मक न होकर नशक होता है । यह वायुपुराणोंके अर्थ अद्यात्मपक्षका है । अन्य पुराणोंमें आधिदैवत तथा आविभौतिक पक्षमें इसके तात्पर्यान्तर भी हैं; क्योंकि पुराणोंके उपाख्यान अनेक अभिप्रायोंको लिये हुए होते हैं ।

### मोहिनीपर मोह

‘अग्निर्वै वरुणानीरभ्यकामयत्, तस्य तेजः परापतत्, तद्विरप्यमभवत् । अग्निर्वरुणानीरभ्यकामयन्त् । ताः समभवन् । यदम्भे रेतोऽसिन्यत, तद्विरितमभवत्, यदपां तद्रजतम्, आपो वै वरुणानीः’ ( कपिष्ठल-संहिता ) । इन वैदिक वाक्योंका तात्पर्य यह है कि अग्नि ( रुद्र ) ने जल ( सोम ) की कामना की और वह उसके साथ मिल गया; मिलनेपर जलसे प्रतिमूर्च्छित अग्नि ( रुद्र ) देवता ( तत्त्व ) धातु-उपधातु-रूपमें परिणत हो गये । रुद्र ( अग्नि ) तत्त्वकी प्रधानता और वरुणानी ( मोहिनीरूप ) जलकी न्यूनतामें सुवर्ण बन जाता है । रुद्रतत्त्वकी और वरुणानीतत्त्वकी अधिकतामें रजत बन जाता है । लोहमें रुद्रतत्त्वकी अल्पता और वरुणानी-तत्त्वकी अत्यधिकता है । सोमसे अग्नि ( रुद्र ) का मूर्च्छित ( मुग्ध ) हो जाना ही रुद्रका मोहिनीपर आसक्त होकर पीछे दौड़ना है । मोहिनी नाम सुन्दर वस्तुका है । वेदमें छी-रूप जलको सुन्दर कहा है । इस प्रकार वेदोंके नैतर्गिक धातु-निर्माण-प्रक्रियाका वर्णन श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें मोहिनीकथाके रूपकसे किया गया है ।

### आधुनिकोंका अज्ञान

वेदों, तन्त्रों और पुराणोंमें भृगियोंके अभिप्रेत रुद्रतत्त्वके सम्बन्धमें प्रमाणोंके आधारसे यह चर्चा की गयी है । इस चर्चाते रुद्र देवताके विषयमें आधुनिकोंकी कल्पनाएँ कितनी भ्रान्ति-मूल्क हैं, यह विद्यित ही जाता है । ऊहेंने अपनी भान्तिमूल्क

वनामेंकी आधारसे यहाँतक कह डाला है कि 'बद्र, गणेश  
आदि देवता अवैदिक होनेसे अनार्थ-देवता हैं। आयोनि अनायोनि से  
उनमें नियंत्रण की, तब उनके देवताओंको अपने देवताओंमें  
अंकर उन्हें मान्य कर लिया।' उन्होंने अपने अशानन्दलुक  
प्राणके कारण आयोकि इतिहास, तत्त्ववाद, सामाजिक व्यवस्था,  
शृंग ( वास्त्वान ), काल ( उद्गम-समय ) आदि-आदि  
विषयोंमें विश्वास उत्पन्न कर दिया, जिसके फलस्वरूप  
द्विष्ट्रिग्र उत्पन्न हो जानेसे हम प्रश्नप्रोक्त प्राचीन वैशानिक,  
वैदिक भर्यादाओंसे दूर होते जा रहे हैं। खेद है कि  
वैशानिक एवं संस्कार-सम्बन्ध परम्पराके रहस्योंको  
ज्ञानांके कारण, उन लोगोंने संस्कृत भाषाके कठिपय  
उन्होंका गिनिय, अवृट्टि एवं गर्ह वर्ध करनेमें कुछ  
नीचेन्द्रिय नहीं किया है। उनकी संकीर्ण दृष्टिमें 'नर्मदा'  
एवं 'पूर्वोदय' का अपवृंदा है, जिसका अर्थ वे यह करते हैं  
कि गर-वर्षा देनेवाले वृगेधा मानव जहाँ रहते हों, वह नर्मदा  
है। इन नृमध्या गन्धोंसे वे बद्रका सम्बन्ध भी जोड़ते हैं,  
जैसे कि गंसृत भाषामें 'नर्मदा' का अर्थ होता है—  
उन प्रशासिती नदी 'नर्मदां नदीवरां चिक्रूपां विशालाभ्'—  
( 'गणगाम ।' )

प्रधान विद्वान्, एवं उनके शिष्य भारतीय विद्वानोंकी  
मतगति भी जितना मिथ्या है कि 'हठ' कोई मतुर्पविध  
नहीं और वह महान्, कूर भा, उमीला वर्णन वैदिक  
हन्ते और पुराणोंमें है। उनकी इस कल्पनाके—

ਸੋਧੀ ਰਖੋ ਵਿਧਿਧੰਨਤਾ ਦਰੋਝੁ ( ਵਿਧੁ: ) ਸਨਦਰ ਪਨੁ: ।  
ਅਥਵੇ ਪਾਪਿ ਚਨਦ੍ਰਾਦੀ ਯੁਕੁਸਤ ਚ ਗੈਰੂਰੁ ॥

— अब भी ही व्यक्ति कर रहा है, जिसका अर्थ यह है कि वे ही मानसिक रूप हैं, जास्ति व्यक्ति है, वह भवनतात् है और अन्य व्यक्ति नहीं, यद्यु और सूर्य ही सबके चक्र हैं। इस उच्चता परमात्मा और गुणोत्तम व्यक्ति द्वारा एवं व्यक्ति और विष्वकर अवश्यकिता लियूँगी इला रक्षा की हो ॥१॥ उभयाना कर्म-कामना है ।

किसी भी वर्ष में यह दिनों के इस तरह किंवा अधिकारीमें  
प्रति वर्ष लगभग लिपेंगे वर्षों द्वादश अक्टूबर के दो दिनों  
में एक बड़ा उत्सव होता है जो एक व्रतालय है—

२ या ते दिशुद्वयस्थादिवस्परि इमका चरनि परि सा गुणकुमः  
सहस्रं ते स्थित्वात् भेषजा मा नस्तोक्तिषु तदर्थेषु रोगिः ।

प्रथम अन्नामें 'इमा मिर्सः' 'भरत शहोनु नः' ये शंख पद साध्यार्थक हैं। अन्य पदोंकी व्याख्या यह है कि दिग्गज (अध्यात्म), ब्रह्माण्ड (अविदैरत) एवं भूत (उत्तीर्ण-भौतिक) भेदसे विविध विश्वमें तीन लक्ष्य हैं। अपेक्षन, प्राण-तन्त्र, शान-तन्त्र—इन तीनोंके क्रमशः यह, इन्हें और अल्पा संचालक एवं अधिकारी हैं। उर्ध्वाधी व्रह्माण्डमें इन तीनों देवताओंकी आधिकारिकता कहा जाता है। इनमेंसे अर्थ-तन्त्रके संचालक यह है और वे तीन व्याख्योंके यथाकाल होकर उन्हें नाशक शक्तिहामें विविध गोडियोदाम बनाते हैं। वहुत-से पदार्थोंमें नाशक शक्तिहामों अस्ति निरुत न होते, वहुत-से पदार्थोंमें नाशक शक्तिहामों लापत्ति वहामें रूपमें, वहुत-से पदार्थोंमें नाशक शक्तिहामों नह वहामें रूपमें द्वाक एवं रुद्रगंगामी विविध गोडियां होती हैं।

ମନ୍ଦିରରେ ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ କାହାର  
ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ  
କାହାର ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ କାହାର  
ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ  
କାହାର ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ କାହାର  
ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ କାହାର ପାତାରେ

ही अपने अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध एवं आकल्प—इन चार व्यूहों ( विभागों ) में परिणत हो जाती है। ‘निरक्त’ में ‘यास्क’ का भी यही भत है कि ‘आत्मैवैषां रथो भवति, आत्मा अशः, आत्मा आयुधम्, आत्मा इषवः, आत्मा सर्वम्, ( जायादि ) देवस्य देवस्य इति ।’ इसका फलितार्थ यह होता है कि आत्मा ( देवता ) ही अपने रथ, वाहन, आयुध, इषु एवं पक्षी आदि रूपोंमें परिणत हो जाती है। इस सिद्धान्तसे रुद्रके चाप, वाण, आयुध आदि रुद्रके रथमिरूप हैं। रुद्रदेव अपनी रुद्रताके मूर्तरूप चाप, वाण एवं आयुधात्मक शक्तियोंसे विश्वनाशक शक्तियोंका नाश करते हैं। ओषधि, वनस्पति, पुष्प एवं फल आदिके उत्पादनमें सहायक बनते हैं, अब्रोत्यादक और जीवनीय शक्तियोंके निर्माता हैं और स्वयं अनभिभूत रहकर नाशक शक्तियोंका नाश करते रहते हैं। ऐसे रुद्रदेवसे स्तुतिद्वारा सम्बन्ध जोड़ना प्रथम मन्त्रका अभिप्राय है।

- १ नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्धमिष्वः ।
- २ नमो अस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इष्वः ।
- ३ नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिष्वः ।

इन आयुर्वैदिक श्रुतियोंके आधारपर इनसे पूर्व उपरिलिखित ‘या ते दिव्युत् अवसृष्टा दिवस्परि’ इस ऋचाका यह अर्थ होता है कि हे रुद्र ! विकृत वर्षा, वायु और अक्षरे उत्पन्न अतिसार, मन्दामि, शूल आदि रोगोंकी उत्पादक और विध्वंसक शक्तियों द्वालेक, अन्तरिक्ष और भूलेकमें घूमती रहती हैं। वे विश्वमें ‘सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय’ प्रमाणित हों—ऐसी कामना है। इस कामनाका मूल यह है कि विश्वमें रोगोंके मूल रुद्र, यम, वरण, निर्भृति—ये चार देवता हैं। विविध ज्वर, महामारी और उन्माद आदि रोग रुद्र-जन्य हैं। मूर्छा, मृत्यु, अङ्ग-भङ्ग प्रभृति यम-जन्य हैं। संधिवात, शूल, पक्षावात आदि वरण-जन्य हैं। महाशोक, कलह, दारिद्र्य आदि व्याधियाँ निर्भृति-जन्य हैं। इन देवताओंमें रुद्र प्रथम और मुख्य हैं। अतः उक्त व्याधियोंसे मुक्ति पानेकी कामना करते हुए रुद्र-देवतासे सम्बन्ध जोड़ना ही ‘या ते दिव्युत्’ इस ऋग्वेदीय ऋचाका ध्येय है। हम भी इस वैदिक आदेशके पालनार्थ ‘ॐ नमः शिवाय, शिवतंसाय’ उच्चारण करते हुए इस लेखका समापन करते हैं।

### प्रलयकरके प्रति

( लेखक—श्रीरसिकचिहारी मंजुल, एम.० ए० )

नेति नेति हे निरपेक्षित-नीतौं के नायक ।  
 कुसुमायुध-रिषु हे त्रिनेत्र, हे साधु-सहायक ॥  
 सृजक विधाता, विज्ञुरूप हो संसृति-पालक ।  
 रुद्र-रूपसे विकट प्रलयके हो संचालक ॥  
 परम-ज्ञान-भंडार, भक्तिमय हे भूतेश्वर ।  
 चृत्य तुम्हारा होता ताण्डव-तुङ्ग-भयंकर ॥  
 तुम्हाँ नित्य हो, तुम्हाँ सत्य हो, हे जगदीश्वर ।  
 नीलकण्ठ ! तुमको प्रणाम शत-शत उर के कर ॥  
 रुद्र-कुद्ध, हे दक्ष-यज्ञ-विव्वंस-विधायक ।  
 ब्रह्मचर्य-पद हे अखण्ड, हे ब्रह्म-सहायक ॥  
 हे उदार योगीश्वर ! हे उन्मुक्त शेषधर ।  
 दृग्य-ताप-जग-मत्य तुम्हाँ हो परम शान्तिकर ॥  
 दया करो, स्तीकार करो अन्तरतमके स्वर ।  
 क्षमा करो, धो दो चिताप, हे पाप-ताप हर ! ॥  
 तृपादष्टि कर दो, वर दो, हर लो दुख सत्वर ।  
 अद्विल-अमर-कर-वन्ध देव देवाधिदेव हर ॥

## शिव-महिमा

( लेखक—महानदीपाध्याय पं० श्रान्तिपर्वती हाजी रुद्रेंदो, बाबतांग )

शंकरस्थी अद्विक्षूता भगवती पार्वती जिस समय अद्ग्रुत  
वस्त्रमें निरत थीं और उनके प्रेमकी परीक्षाके लिये स्वयं  
मालान् शंकरने ब्रह्मचारीआ वेष चनाकर उनके गामने  
असीं थी भरपट निन्दा की थी, दांकर इतना दख्लि है कि  
उस यमतक पद्मनेको नहीं गिलता, इससे परिगम्यर  
भृकुलता है। यह शमशानवासी है, उसका रूप ही भरपट  
है। इत्यादि अनेकानेक दोष जब अपने आपमें बताये थे, उस  
समय पार्वतीका उत्तर महाकवि कालिदासके शब्दमें ये  
कहिए गुश्छा है—

अकिञ्चनः सद् प्रवयः स समद्वा  
प्रियोक्तनाथः पितृसद्गमोवरः ।  
न भीमल्यः दिव इन्द्रुर्गमे  
न सन्ति वायार्घ्यविदः पितृकिनः ॥

अर्थात् शिव परम दख्लि होकर भी सब नमस्तियोनि  
अंगमध्यान है, वय गमस्तियाँ नहीं प्रस्तुत होती हैं; वे  
भृकुलमारी होकर भी तीनों लोकोंके नाम हैं; भगवनक रूपमें  
अनेक भी उनका नाम भवित्व है। वय तो यह है कि  
किंचित्पर्याप्ती भौतिकापत्ता अपार्थ कर और धान ही नहीं  
जल्दी करता है और करते हैं—कल वहाँ कोई नहीं रहता ।

कौं हि शक्ति तुगान् वसुं देवदेवता भौमनः ।  
गमंजनमजरायुधे नवो गृगुनमनिमाः ॥

आगे भीमर्गीतामहां युक्तिहरो नियम तुमि देव तो  
पैर्व दिलाया कि इन नममें नामान् दिलुने वसुन  
भगवान् द्वीकुल उत्तियत है, वे नियमी मन्त्रमें कहे गए हैं। ताप  
की तरफ स्वयं भगवान् द्वीकुलमें प्रवर्णन की है—“वय  
युक्तिहरो और वय युक्तिहरुम अद्वितो दिवमदिवा  
सुनायें।” भगवान् द्वीकुलमें वे नममें प्राप्त दिव ही  
परिष्वगम्भ, इन्द्रः गढ़ी आदि भी नियमान् ग्रन्थमें  
अपार्थ हैं; मैं उनके कुछ गुणोंकी वर्णनाम चलवा हूँ।  
ऐसी दिलाईमें एक युक्तिहरु वर्णनीया दिलाई है;  
व्याल्यान् लिये नहीं करनामा या लिये उठाना मरणा  
कुस्ताह्य है। असर्विकर नियमी की या नियमीकी तरह  
इसका उत्तर प्राप्तिहन्तानवर्द्धने करने युक्तिहरु भारतीय  
लोकों के असरमें ही है दिलाया है—

नदिद्वः पारं न दम्भिदुयो वदनदाः  
स्तुतिवं प्रदायनमति वदनदाः वदनिमाः ।  
वदनायावः सर्वोऽस्मद्विविलासां देव गृन्  
भगवान् रुद्धिहरु नियमाः हृषीक्षुः ॥

अपनी दुदिके अनुसार अनन्त शिवतत्त्वमें जितना समझ सकें, उतना समझना और जितना समझा है, उसके मननके लिये परस्पर कहना और सुनना मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सबका आवश्यक कर्तव्य है। बस, उसी कर्तव्यकी आंशिक पूर्तिके लिये यह छोटा-सा लेख भी पाठकोंकी सेवामें समर्पित है।

### ईश्वर-निरूपण

शिव जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं। ईश्वर और महेश्वर शिवके पर्याय शब्द हैं, शिवके ही नाम हैं—यह अमरकोष पढ़नेवाला भी जानता है। श्रुति भी यही कहती है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-  
र्य इमौल्लोकानीशत ईशनीभिः ।  
प्रत्यहूजनाँस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले  
संस्त्य विश्वा मुवनानि गोपाः ॥  
( श्वेताश्तर ० ३ । २ )

‘एक ही रुद्र है, जो कि इन सब लोकोंको अपनी शक्ति-से वशमें रखता है; अतएव वह ईश्वर है। उसीकी सब उपासना करते हैं, वह सब लोकोंको उत्पन्नकर अन्तकालमें संहार भी करता है, वही सबके भीतर अन्तर्धानीरूपसे स्थित है।’ इत्यादि। अतएव शिवतत्त्वका विचार या ईश्वर-तत्त्वका विचार एक ही बात है। ईश्वरका निरूपण वैदिक सिद्धान्तमें दो भावोंसे है—एक वैज्ञानिक भावसे अर्थात् व्यापकरूपसे, दूसरा उपासना-भावसे अर्थात् मनुष्यरूपमें। वैज्ञानिक रूपकी भी मनुष्याकार कल्पना होती है और अवताररूपसे मनुष्याकारधारी भी ईश्वर होता है। इन दोनों रूपोंमें आश्रयजनक समानता होती है। अस्तु, वैज्ञानिक भावमें ईश्वरका जगत्के साथ छः प्रकारका सम्बन्ध शास्त्रमें वताया जाता है—( १ ) ‘जगति ईश्वरः’, ( २ ) ‘ईश्वरे जगत्’, ( ३ ) ‘जगद् ईश्वर एव’, ( ४ ) ‘जगद् ईश्वरश्च भिन्नोः’, ( ५ ) ‘ईश्वरो जगतोऽतिरि-

१-२. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।  
( गीता ६ । २० )

३. मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदिस्ति धर्मजय ।  
( गीता ७ । ७ )

४. परत्तस्मात् भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।  
( गीता ८ । २० )

५. मत्स्यानि सर्वं भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।  
( गीता ९ । ४ )

च्यते, जगत्तु ईश्वराज्ञातिरिच्यते’, ( ६ ) ‘ईश्वरैद् भेदेन अभेदेन वा अनिर्वचनीयं जगत् ।’ [ ( १ ) जगत्में ईश्वर है, ( २ ) ईश्वरमें जगत् है, ( ३ ) जगत् ईश्वर ही है, ( ४ ) जगत् और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं—ईश्वर जगत्से परे है, ( ५ ) ईश्वर जगत्से भिन्न है, किंतु जगत् ईश्वरसे भिन्न नहीं; ( ६ ) जगत् अनिर्वचनीय है—भिन्न वा अभिन्न कुछ भी नहीं कहा जा सकता । ] ये सम्बन्ध देखनेमें परस्परविरुद्ध प्रतीत होते हैं, किंतु विचारदृष्टिसे देखनेपर उपादान-कारणके साथ कार्यके छहों प्रकारके सम्बन्ध व्यवहारमें आते हुए प्रतीत होते हैं। वस्त्रमें तन्तु हैं, तन्तुओंके आधारपर वस्त्र है; तन्तु ही पटरूपताको प्राप्त हो गये हैं; पट एक अतिरिक्त वस्तु ( अवयवी ) है जो तन्तुओंसे उत्पन्न हुआ है; तन्तुओंकी सत्ता स्वतन्त्र है—तन्तु पटसे पूर्व भी थे, आगे भी रहेंगे और जहाँ पट उत्पन्न नहीं हुआ, वहाँ भी हैं, किंतु पट तन्तुओंसे स्वतन्त्र अपनी सत्ता नहीं रखता; कह नहीं सकते कि तन्तु और पट भिन्न-भिन्न हैं या एक हैं। यो छहों प्रकार-के व्यवहार लोकमें भी उपादान और उपादेयमें प्राप्त होते हैं। ईश्वरने अपनी इच्छासे स्वयं ही जगदरूप धारण किया है—‘एकोऽहं वहु स्याम्, प्रजायेय’। वह जगत्का उपादान-कारण भी है और निमित्त-कारण भी, इसलिये उसके साथ जगत्के छहों प्रकारके सम्बन्धोंका होना युक्तियुक्त ही है। हाँ, तन्तु-पट आदिकी अपेक्षा इतनी विशेषता यहाँ समझने योग्य है कि ईश्वर चेतन है, अतः वह जगत्को अपनी इच्छासे रचकर शासकरूपसे भी उसके प्रत्येक अवयवमें प्रविष्ट हो रहा है—

तत् सृष्टा तदेवानुप्राविशत् । ( श्रुति )

‘ईश्वर जगत्को बनाकर उसीमें अनुप्रविष्ट होता है।’ निम्नाङ्कित श्रुति इस दूसरे रूपका ही वर्णन करती है; क्योंकि सृष्टिके अनन्तर प्रविष्ट होना इसमें वतार्था गया है—

एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विघ्नतौ तिष्ठतः । ( बृहदारण्यक उपनिषद् )

‘हे गार्गि ! इस अक्षर पुरुषके शासन—नियन्त्रणमें सूर्य और चन्द्रमा ठहरे हैं।’

भीष्यास्माद् वातः पवते भीयोदेति सूर्यः । ( कठोपनिषद् )

६. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमायृतः ।  
( गीता ७ । २५ )

—इत्यादि

‘इन्हीं भवते पवन चलता है, इसीके भवते सूर्य उदय होता है।’

—इत्यादि श्रुति भी शासकलयसे इसी प्रविष्टि लाना  
जर्जर करती है। लकड़ी, पत्थर, बृक्ष आदि जितने पार्थिव  
पदार्थ हम देखते हैं, उनमें वैज्ञानिक दृष्टिसे दो प्रकारकी  
प्रायक्ष्य अभिन्न हैं—एक यह जो उन पदार्थोंकी उत्पादिका  
(उत्पादनकारण) है और दूसरी उनमें उत्पत्तिके अनन्तर  
पर्याप्त दुर्दृश्य है। इन दोनोंका नाम वैदिक परिभाषामें कमसे  
कमला और 'चितं निषेध' है। जितका चयन हुआ है  
पर्याप्तताद्वारा क्रातो विषकी जुगाई होकर ये सब वस्तुएँ उनी  
हैं कि 'चितं' अभिन्न है और वस्तु यन जानेपर समुदायवर  
ये प्रायगति वैठकर उसे अपने स्वल्पमें रखती हैं कि  
कहीं 'निषेध' (जुने हुएपर ठहरनेवाली) कहती है। इस  
प्रायगतिकी व्याप्ति उस स्थूल वस्तुकी सीमातक ही नहीं  
पर्याप्त किंतु यह उसकी परिपत्ति वादर भी यहुत दूरतर  
नहीं रहती है। मित्र-मित्र वस्तुओंके अकाशसे रहारे नेत्रों  
पर असर दें दिखाना, प्रेतोव्राचीके आदेशमें वस्तुके  
आपसमें छोड़ जाना उत्तम गरम या ठंडे परार्थी ही गर्भ  
या वर्षीय दूरतर प्रभाव होना, अवना प्रदायकमान पदार्थ हा  
टूपी ही अपनोंसे नीतिया दिला इसलिएक दूरके भीय जानी  
ही जुलापनार हो जाना या नीमके दुर्दृश भीय संकेत  
स्वेच्छान आपनेप्राप्त हुए अस्तित्वमें इन हृती (निषेध  
प्रति) प्राप्त-प्राप्तके ही नाम है। वैदिक चित्तमें यहुत कुछ  
लोर निर्वर्तते हैं। अब हमें यह असर इस भी उत्पादन  
की ओर जानकारी—ऐसी व्यापकसे भय जानकी कहिये

जो जाना जाता है, कह करते असंदृष्ट शुद्ध वर देखता  
तीकरा 'विविक्त' लगता है। इन्हीं तीकरों को करने से विविक्त,  
'विश्वचर' और 'विष्वलति' नामों से भी कहा जाता है।

प्रजापति या प्रजापति

नियमों व्यवस्था या 'प्रक्रान्ति' भी कहते हैं। उनमें सबसे  
भाग है—आत्मा, प्राण और प्रश्ना या वय। ये एक दर्शकोंमें  
इन तत्त्वोंको व्युत्पत्ति, व्याधि और व्यापु जैव जला है।  
निरुद्धारणी गरिमाला नियन्त्रित होनेके कारण अस्त्रम् और  
वहुत भैरव द्वारा जाता है किंतु भूतसदा वह करता है कि ये  
रखते हैं, धर्मोंका ही भैरव रखता है। जाति-जाति या जाति-  
जाति वाला ही व्यापु नामने कर्ता यहाँ है, इसमें व्यापु भैरव  
दोनों नामोंमें कर्ते जानिसके बड़ीया अस्त्रमें ही करता है।  
जीवमात्रमें रहता हुआ ये भी व्यापु व्यापुमें ये व्यापु ही  
कर्त्त्वित और आप उसका व्यापुमें भी है। ये व्यापु  
किमगमन व्यस्तताया या उसमें उत्सुकता व्यस्तता व्यापु  
तद्वारा स्वयम् तथा आत्मा द्वारा या उपर्याही द्वारा व्यापु  
विन व्यापुमें उत्तेज व्यस्तता ही ये व्यापु हर समय में है।  
ये व्यापु व्यस्तता या व्यापु व्यवस्था जैव त्वं भी है। व्यापु व्यवस्था  
या व्यापु व्यस्तता में व्यस्तता व्यापु व्यवस्था होती है। व्यापु  
सीमों से व्यापु व्यवस्था में व्यापु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था होती है। व्यापु  
अम्बु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था होती है। व्यापु  
नियन्त्रित होनेमें व्यापु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था होती है। व्यापु  
दर्शकों द्वारा व्यापु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था होती है। व्यापु  
व्यवस्था व्यापु व्यवस्था व्यापु व्यवस्था होती है।

जगत् का कारण नहीं बन सकता; इसलिये जो उसकी आत्म-भूत 'शक्ति' सुष्टि, प्रलय और स्थिति के कारणरूपसे मानी जाती है, वह 'बल' या 'शक्ति' प्राणरूप है और इससे आगे उत्पन्न होनेवाले पुरुष, प्रकृति आदि सब 'पशु' हैं। यह एक हृषि हुई। यह निर्विशेष 'क्षर,' 'अक्षर' और 'अव्यय' तीनों पुरुषोंसे भी पर—उनका भी आत्मा है; यही शिवका मुख्य रूप 'परमशिव' है।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राहमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विशेषः । (माण्डूक्योपनिषद् ७ )

यह श्रुति निर्विशेष रूपका ही वर्णन करती है और उसे ही 'शिव' कहती है। इस रूपकी उपासना नहीं हो सकती; क्योंकि यह मनमें नहीं आ सकता। 'नेति-नेति' कहकर श्रुति किसी प्रकार उसका परिचय कराती है, कर्म या उपासनासे उसका साक्षात् सम्बन्ध नहीं बन सकता; किंतु यह भी सिद्धान्त है कि लक्ष्य हमारा वही है। आगे उत्पन्न होनेवाले प्रतीकोंके द्वारा उसीकी उपासना की जाती है, मुख्य आत्मा वही है, वही प्राप्य मुख्य लक्ष्य है।

अब आगे चलिये। शक्तिसहित आत्मा या बलविशिष्ट रस 'परात्पर' कहलाता है। बल या शक्ति जब मायारूपसे प्रकट होकर अपरिच्छिन्न रसको परिच्छिन्न (सीमावद्ध) कर लेती है, तब अव्यय पुरुषका प्रादुर्भाव होता है। उसकी पाँच कलाएँ हैं—आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और धार्। क्रमसे वर्लोंकी चित्ति होकर अक्षर पुरुष और आगे उसीसे क्षर पुरुष भी प्रकट हो जाता है। अब इस दशामें अव्यय पुरुष 'आत्मा,' अक्षर उसकी 'प्रकृति' या 'प्राण' और क्षर 'पशु' कहा जाता है। अर्थात् 'क्षर' रूप पशुके लिये 'अव्यय' पशुपति और अक्षर पाश है। या यों कहें कि अव्यय ईश्वर, अक्षर, प्रकृति और क्षर जगत् है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें अव्यय पुरुषको ही 'ईश्वर' कहा गया है। नारायणोपनिषद् में भी अव्ययकी कलाओंका प्रतिसंचार (विपरीत) क्रमसे उन्यजनकमाय कहा गया है—

अन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम्, प्राणैर्मनो भनस्तथ विज्ञानम्, विज्ञानादानन्दो वद्ययोनिः स वा एष पुरुषः पञ्चधा, पञ्चात्मा, येन सर्वमिदं प्रोतम्.....

ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च  
भूयो न मृत्युमुपयाति विद्वान् ।  
(नारायणोपनिषद् ७९)

इन पाँचों कलाओंके अधिष्ठातारूपसे भगवान् शंकरके पाँच रूप माने जाते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न ध्यान तन्त्रग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। आनन्दमय रूपकी 'मृत्युंजय' नामसे उपासना होती है; क्योंकि 'रस' स्वयं आनन्दरूप है—'रसऽ ह्येवायं लब्ध्याऽनन्दी भवति' (श्रुति)। और बल, जिसका दूसरा नाम मृत्यु भी है, उस आनन्दका तिरोधान करता है। मृत्यु (बल) पर जय करनेसे, मनसे हटा देनेसे आनन्द प्रकट होता है, वा यों कहिये कि आनन्द ही मृत्युका जय करके प्रकट हुआ करता है। इसलिये आनन्द 'मृत्युंजय' है। दूसरी कला विज्ञानमय शंकरमूर्तिकी 'दक्षिणामूर्ति' नामसे उपासना प्रसिद्ध है। 'विज्ञान' बुद्धिका नाम है, उसका धन 'सूर्यमण्डल' है, सूर्यमण्डलसे ही विज्ञान सौर-जगत्के सब प्राणियोंको प्राप्त होता है। सूर्य सौर-जगत्के केन्द्रमें स्थित है, वृत्त (मण्डल) में केन्द्र सबसे उत्तर माना जाता है। यह वृत्तकी परिभाषा है, अतः विज्ञान उत्तरसे दक्षिणको आनेवाला सिद्ध हुआ। इसी कारण विज्ञानमय मूर्ति 'दक्षिणामूर्ति' कही जाती है। 'वर्णमातृका' पर यह मूर्ति प्रतिष्ठित है। विज्ञानका आधार वर्णमातृका है। इसके स्पष्टीकरणकी सम्भवतः आवश्यकता न होगी। ये दोनों (मृत्युंजय और दक्षिणामूर्ति) प्रकाश-प्रधान होनेके कारण श्वेतवर्ण माने जाते हैं। तीसरी मनोमय (अव्यय पुरुष) की कलाका अधिष्ठाता 'कामेश्वर' शिव है। मन कामप्रधान है—

कामस्तद्देपे समवर्तताधि  
मनसो रेतः प्रथमं तदासीत् । (श्रुति)

इस कारण इसका 'कामेश्वर' नाम है और मनके धर्म अनुरागका वर्ण 'रक्त' माना जाता है, इसलिये यह कामेश्वर-मूर्ति तन्मयोंमें रक्तवर्ण मानी गयी है। पञ्चप्रेतपर्यङ्कपर शक्तिके साथ विराजमान इस कामेश्वरमूर्तिकी उपासना तान्त्रिकोंमें प्रसिद्ध है। चौथी कला 'प्राणमय मूर्ति' 'पशुपति', 'नीललोहित' आदि नामोंसे उपासित होती है। यह पञ्चमुखी मूर्ति है। आत्मा-पशुपति प्राणरूप पाशके द्वारा विकाररूप पशुओंका नियमन करता है—यह हम पूर्व कह चुके हैं, अतः प्राणमय मूर्तिको ही 'पशुपति' कहना युक्तियुक्त है। प्राण बैदिक परिभाषामें दो प्रकारका है—एक आग्रेय, दूसरा सौम्य। अग्रिका वर्ण लोहित—

नुदरी और सोमका नील या कुण्ड माना गया है। ‘पद्मे नेदिनं स्पृष्टुं’ ‘तेजस्तद्दूपम्’, ‘थच्छुले तदपाम्’, ‘यत्कृष्णं तदद्वत्’ ( आनंदोऽग्निगद् ६ प्रगा० ४ खं० ) ( सोम ही अत्र होता है, इस कारण वहाँ अन्न शब्दसे सोमका निर्देश हुआ है )। इमीलिये वह मूर्ति भीलकोहित कुमार नामसे प्रविष्ट है। इन दोनों रूपोंके सम्मिश्रणसे पौँच लप बनते हैं— इन्हीं पौँच वर्णके पौँच नुखोंका ध्यान इन मूर्तियाँ ध्यान बढ़ा देती हैं—

गुरुप्राप्तिपद्योद्दूसीजिकव्याचर्णसुर्जैः पश्चिम-  
दद्विरप्रितमीशमिन्दुसुरुदं पौर्णचन्द्रकेष्ठिमन् ।  
गृहं दद्विष्टुपाणवद्वद्विगातामेनद्विष्ट्युद्वान् ।  
पारं वर्णित्वरं दध्यानसमिताकलोद्विष्ट्यलाङ्गं भवते ॥

नीम ( कुण्डवर्ण ) पर जब अग्नि ( वेदित ) आलट होती है तो पूर्ण रुप देखा है और अग्निर तीम आलट होती है तो पौर्ण रुप देखा है। जोम और अग्नियों भावाके लालनसे और वी—सेविया, दीपों, दरित आदि रूप देखते हैं। अम्, यही न विषयत वित्तार वर्णसे प्रदर्शण हितेश्वर भवते हैं इन्हीं उन्हें ध्याय-मूर्तिके ध्यानपर विद्या एवं व्याख्यान अभियान किया जायगा। इन अम्-मूर्तियाँ एक सुर नवरके उत्तर हैं और चार सुर वर्णों द्विष्ट्यलाङ्गमें। उत्तरवासी विष्ट्यला-

विकार करे जाते हैं इन्होंको इन दृष्टिये सुनते ही जल और पर्वु कहा जाता है। आगे यह कहने प्राप्त अर्थ यही है कि अपरत्तर पश्चीमीकरणके द्वारा आग्निरैतिह अग्नियोग्यम् और अग्निभौतिक लर्णमें विस्तृत होने हैं और अग्निरैतिह कहने में इनके स्वैकर्म्य, परम्पराओं, सूर्यों, चंद्रों और अमृतम् अग्निरैतिह लर्णमें अवश्यक; विद्यान्, विज्ञान, प्रगति और विद्या अग्निभौतिक लर्णमें गुण ( अत्यं या अश्याम )। अम्, विद्या, रस और अमृत—ों नाम पड़ते हैं ताकि अपरत्तर अपरत् और धर—ये तीनों पूर्णां आत्मां या अस्तुतां, प्राप्त अर्थ वीचों पूर्णोऽक् अग्निरैतिह प्राप्तां या वापां और ये अस्तुतां अदि तथा रुप विद्यारे या वापां कहे जाते हैं। अग्निरैतिह अदि लर्णमें भी पुराव और प्रकृतिरैतिह अस्तुतां वापां और परम्पराएँ तथा एक अमृतस्त्र विष्ट्यलाङ्ग, चंद्रों और चंद्रमा, सूर्यों और सूर्यम् विष्ट्यला-

किंतु वह कार्य और कारण दोनोंसे अतीत है। वह न जगत् है न जगत्कर्ता; हाँ, जगत् और जगत्कर्ता दोनोंका आलम्बन अवश्य है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते । ( श्रुति )

तस्य कर्तारमपि मां विद्युत्कर्तारमब्ययम् ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

न च मत्स्थानि भूतानि । ( गीता )

—इत्यादि विचित्र भावोंसे श्रुति-स्मृतिमें उसका वर्णन मिलता है। जब बलोंकी ग्रन्थि होकर बलप्रधान अक्षर पुरुषका प्रादुर्भाव होता है, तब जगत्की सृष्टिका उपकरण होता है। अतः सृष्टिकर्ता ईश्वर 'अक्षर' पुरुषको ही कहते हैं। यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि अव्यय, अक्षर और क्षर—ये तीनों पुरुष कभी पृथक्-पृथक् नहीं रहते। जहाँ क्षर है, वहाँ अक्षर और अव्यय भी अवश्य है। अक्षर भी बिना अव्ययके निरालम्ब कभी नहीं रहता। विशिष्टरूप एक है और वही उपलब्ध होता है, अपेक्षाकृत दृष्टिमें तीनों पुरुषोंका विभाग है। अस्तु, अक्षर पुरुष जो कि जगत्का निमित्तकारण है, ईश्वर है। वह बलप्रधान है; बलका नाम शक्ति, प्राण या किया भी है। सोता हुआ बल शक्ति-नामसे, जागकर कार्य करनेको उद्घात होनेपर प्राण-नामसे और कार्यरूपमें परिणत होनेपर क्रिया-नामसे पुकारा जाता है। शक्तिका बल तीन प्रकारसे सब पदार्थोंमें लक्षित होता है—गति, आगति और प्रतिष्ठा ! प्रत्येक पदार्थमेंसे प्रतिक्षण प्राणोंकी गति या उल्कान्ति होती रहती है। किंतु केवल उल्कान्ति ही हो तो सब पदार्थोंका प्रतिक्षण समूल नाश हो जाय; इसलिये जैसे गति है वैसे आगति ( आमद ) भी है। जगत्के सब पदार्थ प्रतिक्षण लेते और देते रहते हैं, इसी व्यवहारको दार्शनिक परिभाषामें 'आदान' और 'विसर्ग' कहते हैं। सूर्यमण्डलमें आदान और विसर्ग स्फुटरूपसे हमें दिखायी देते हैं। सूर्य अपनी किरणोंसे सब पदार्थोंको ताप देता है, ओषधि आदिका परिपाक करनेमें अपनी शक्ति लगाता है और चारों ओरसे जल, रस या सोमको लेता भी रहता है। न केवल सूर्य, किंतु पृथिवी भी अपना बल पार्थिव पदार्थोंको देती रहती है और आकर्षणद्वारा उनमेंसे कुछ लेती भी रहती है। किसी भी पदार्थमें आदान-विसर्ग न हों, तो वह कभी परिवर्तित न हो, पुराना न पड़े, सदा एकरूप रहे; किंतु एक रूपमें कोई भी पदार्थ रहता नहीं, इससे सबमें आदान और विसर्गका होना सिद्ध है। जब आदान अधिक होता है और विसर्ग न्यून, तब सब पदार्थ बढ़ते हैं, वाल्यावस्थासे युवावस्थामें जाते हैं और इसके विपरीत आदानकी अपेक्षा

विसर्ग जब अधिक होता है, तब घटनेकी वारी आती है; इससे ही जरा ( वृद्धावस्था ) आती है। यो आदान और विसर्गके द्वारा परिवर्तन होता रहनेपर भी पदार्थमें जो सत्ता-स्थिरता-एकरूपता प्रतीत होती है, उससे तीसरा प्रतिष्ठा-बल भी स्वीकार करना पड़ता है। बौद्ध दर्शनमें केवल आदान-विसर्ग ही माने जाते हैं—इससे वहाँ प्रत्येक पदार्थको क्षणिक कहा गया है; किंतु इस क्षणिकताको उच्छृङ्खल मान लेनेपर व्यवहारका लोप हो जायगा। 'स एचायम्' ( यह वस्तु वही है )—यह प्रत्यभिशा सबको होती है और इसके आधारपर सारे जगत्का व्यवहार चलता है। एक कुम्हार बड़े परिश्रमसे बड़ा पक्षा घड़ा बनाता है और इंजीनियर बड़े कला-कौशलसे मशीन बनाता है। अपना बनाया घड़ा और अपनी बनायी मशीन एक क्षणमें ही नष्ट हो जायगी—ऐसी सम्भावना इन्हें ही तो ये कभी बुद्धि और शरीरका श्रम न करें। हमारे बोये आमके बीजसे एक वृक्ष लगेगा और वह चिरस्यायी होकर फल देता रहेगा, ऐसा विश्वास न हो तो कोई भी चतुर माली सुयोग्य स्थानमें वृक्ष लगाकर उसे सींचनेका प्रथास न करे। यह एक विषयाल्पतर है, विस्तारकी आवश्यकता नहीं। ऐसी बहुत-सी युक्तियोंसे क्षणिकवादका निराकरण करके वैदिक दर्शनमें प्रतिष्ठा-बल भी माना जाता है। बलकी इन तीनों अवस्थाओंके अधिष्ठाता अक्षर पुरुषके भी तीन रूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र। प्रतिष्ठा-बलका अधिष्ठाता ब्रह्मा है, आदानका विष्णु और विसर्ग या उल्कान्तिका इन्द्र। ये तीनों ईश्वरके रूप हैं। नारह आदित्योंमें जो विष्णु और इन्द्र हैं या अन्तरिक्षके देवता जो इन्द्र हैं, वे देवतारूप इन्द्र या विष्णु आगे उत्पन्न होनेवाले हैं। उनको और इनको एक न समझ लिया जाय। अस्तु, इन तीनोंकी 'स्थिति स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा या इन मण्डलोंसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंके केन्द्र या हृदयमें रहती है, अथवा यों कहिये कि ये ही तीनों इन सब मण्डलोंको या इनके आध्यात्मिक और आधिभौतिक ( पूर्णक ) रूपोंदो बनाकर उनमें विराजमान होते हैं। शृग्वेद-संहिता म० ६ अ० ६ का ६९ सूक्त इन्द्र और विष्णुका सूक्त है, उसका सूक्ष्मदृष्टिसे मनन करनेपर यह तत्त्व स्फुट होता है। उसका अन्तिम मन्त्र है—

उभा जिग्ययुर्न परा जयेथे

न परा जिग्ये कतरथ नैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यद्यप्तपृथेयां

त्रेधा सहस्रं वि तदैस्यंथाम् ॥

इनका अर्थ है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही विजय करने-शांत हैं, ये कभी नहीं हारते और इन दोनोंमें भी कोई एक दर्हा हारता। ये दोनों सद्गुण ( युद्ध ) करते हारते हैं और लौलि तोन प्रकारके 'सद्गुण' को प्रेरित करते हैं। ऐतरंय आवश्यक है। १५ में इस मन्त्रकी व्याख्या करते हुए तीन प्रमाणके 'सद्गुण' का अर्थ लोकगृहस्थ, वेदगृहस्थ और वाहू गृहस्थ किया है। लोक, वेद और वाहू ही अबर पुराणसे निकलकर मध्य संवारके उपादान-कारण होते हैं। यह वैदिक विज्ञानका एक जटिल विषय है, इस छोटीसे लेखमें इस विषय-में कुछ जाह्नवी जा सकता। जिन सज्जनोंको इस विषयकी जानने की अभियाचि हो, ये इसका साधीकारण गुप्तवर और ६ प्राचीन शा विद्यावाचस्पति महानुभावके 'व्रह्मतिग्राम' का 'प्रथमोद्देश्यादृश्याद', 'अहोरात्रवाद' या 'मिद्रानत्तवाद' हैं। अनु विद्यावाचस्पति, काण्ड ११, अ० १ त्रा० ६ में भी वर और अबर पुराणकी कल्याणीका मिलाया प्राप्त होता है। अन्यत्र ज्ञानोंमें भी इनका विस्तारण जानायें चाहुगा हुआ है।

उक्ताचि और आगतिके गाथ जब प्रसिद्ध वेदका भवनका लेना है, तब उससे अभिय और नोम जानकी दो रूपाएँ और भव्य हो जाती हैं। यहाँ भी यह सत्रष रहे हि जिसे हम अवृद्ध रहते हैं, यह भौतिक अभिय ज्ञान रसायन गोम जानी रहती रहती उत्तर रहती रहती है। ये अभिय और नोम अबर इनके रूपाव भान्तिरिक्षय हैं, इन्हे जीवर स रामता जाय।

लगभग विष्णु ( नूके, गुणितो और लोकी ) की उपस्थि होती है और उन तिर्तुओंमें भी ने ही अभिय और नोम अबर देखा जाता है। ये अबर पुराणकी यीन कलाएँ निरुद्ध दुर्दृश्य—वृत्ता, विष्णु, इन्द्र, अभिय और नोम। इनमें आदिके तीन अन्याद्य अन्तर्यामी वा हृषि ( केवलमें रहतेयाहि ) और आदिके दोनों अभिय और नोम विवृतर ( भिन्नों जहाँ रहते रहते रहते ) या स्वावलक्ष्य हैं।

आदिके तीन लोगों प्रसिद्धान्त—दत्ता और आदिनारा—विष्णुको बाहर जाने का प्रबन्ध नहीं ज्ञात, ये लेखमें ही अस्ता अन्याना कार्य करते हैं कि तु उत्तरनीय हो—इन्द्र लेखमें रखा हुआ भी केवल यान्त्रिकी रात्रि विवेचना है। इन्होंने २५ स्वर्य भी उत्तरन्ता होती है प्रथम् दूसरा ज्ञाता है। चतुर्थ लेखमें अभिय और नोमके नाम भी उत्तर दिये हैं। वर्षग्रह गुरु इसमें यों देखा कि अभिय और नोमका गुरुको इन्द्रानी कारण ही है। उसे ने देखो इन्द्र की अन्तर्यामी है। चूल्हा इन्द्र, अभिय और नोम—जो लोगों नीचमानीत रूपाव देखा जाय जानदार है। अबर पुराण ही वेद-वाची देखा जाय है एवं उत्तर भवते हैं। उत्तरी प्रवृद्ध होता ही देखा है कि उत्तर नीचे कलाएँ जाते रहती हैं, उत्तर—उत्तरी वर्ष दिये जाना जाहेवरा होता रहता है। उत्तरी वर्ष दिये जाना जाहेवरा होता है, ये लोग रहते रहते हैं। उत्तरी नीचे उत्तर—उत्तरी वर्ष दिये जाना जाहेवरा होता है। उत्तरी नीचे उत्तर—उत्तरी वर्ष दिये जाना जाहेवरा है।

है। यदि ऐसा न किया जाय तो उन अदृश्य शक्तियोंका शान ही मनुष्योंको कैसे हो। ईश्वरकी उपासना प्रकृतिको या जगत्को आलम्बन या प्रतीक बनाकर ही की जाती है। इन सूर्य-पृथिवी आदि मण्डलोंकी परिचालिका भी तो वही अक्षरशक्ति है, इन्हींमें कार्य करती हुई उस शक्तिको हम पाते हैं और इनमें ही उत्तकी दृष्टि रखकर उपासना करते हैं। यही क्यों, वह शक्ति भी तो इन्हीं पाशोंके द्वारा हमारा सबका नियमन करती है। इसलिये भगवान् शिव इन तीनों नेत्रोंसे सब जगत्को देखते हैं, या सब जगत् इनके द्वारा उन्हें देखता है ( नेत्रोंसे ही मनुष्यका भाव पहचाना जाता है )। किसी भी प्रकारसे उलट-पुलटकर समझ लीजिये, वैज्ञानिक भाषामें सब तरह कहा जा सकता है।

तीन बलोंकी समष्टि होनेके कारण तीनोंके धर्म शिवमें व्यवहृत होते हैं। इन्द्र उल्कान्ति ( विसर्ग ) बलका अधिष्ठाता है और उल्कान्तिसे ही वस्तुका विनाश होता है। जब आमदसे व्यय अधिक हो, शनैःशनैः जीर्ण होकर प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपको खो देता है, इसी दृष्टिसे महेश्वरको 'संहारक' या 'प्रलयकर्ता' कहा जाता है। आदानसे ( वाहरसे खुराक लेनेसे ) वस्तुका पालन होता है और आदान ही यज्ञ है, इसलिये विष्णुको पालक वा यज्ञरूप और प्रतिष्ठासे ही वस्तुका स्वरूप बनता है, इसलिये ब्रह्माको 'उत्पादक' कहा जाता है; किंतु यह सब अपेक्षाकृत है। एक वस्तुकी दृष्टिसे जिसे 'उल्कान्ति' कहते हैं, दूसरी वस्तुके लिये वही 'प्रतिष्ठा' या 'आगति' ( आदान ) हो जाती है। जैसे दीपशिखा उल्कान्त हुई, उससे कजलकी प्रतिष्ठा ( जन्म ) हो गयी। समुद्रसे जलकी उल्कान्ति हुई— उससे मेघका जन्म हो गया। सूर्यमण्डलसे किरणोंकी उल्कान्ति हुई, इससे पृथिवी या पार्थिव ओपरिं आदिका पालन होता है। सूर्यसे प्रकाश उल्कान्त हुआ, उससे चन्द्रमण्डल प्रकाशित या पालित हो गया। सूर्यने रसका आदान किया, इससे जलका सरोवर सूख गया। यही न्याय सृष्टि और प्रलयमें भी चलता है। स्यम्भू आदि मण्डलोंसे प्राणोंकी उल्कान्ति होकर परमेष्ठी, सूर्य आदि नये-नये मण्डल बनते हैं; सूर्यसे पृथिवी बनती है और वह इसकी शक्तियोंको अपनेमें ले लेता है, तो यह लोन हो जाती है। तात्पर्य यह कि एकका आदान दूसरेकी दृष्टिसे विसर्ग और एकका विसर्ग दूसरेकी दृष्टिसे आदान कहा जा सकता है। एकका विनाश दूसरेका उत्पादक है। यीज नह हुआ, अद्वृतने जन्म लिया; इसलिये आदान और विसर्गमें ही प्रतिष्ठा भी अनुगत है। इसी विचारसे त्पष्ट कहा जाता है कि—

एका भूतिंख्यो देवा ग्रहविष्णुभृहेश्वरः।  
ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं। एक ही अक्षर पुरुषके तो तीन रूप हैं, एक ही शक्तिके तो तीन व्यापार हैं—दृष्टिमात्रका भेद है। एक ही विन्दुपर तीनों शक्तियाँ रहती हैं; किंतु कार्यवश कभी भिन्न-भिन्न स्थान भी ग्रहण कर लेती हैं। चेतन प्राणियोंमें विशेषकर शक्तियोंका स्थान-भेद देखा गया है; वहाँ प्रतिष्ठा-बल मध्यमें और गतिवल तथा आगति-बल इधर-उधर रहते हैं। जैसा कि मनुष्य-शरीरके अन्तर्गत हृदयकमलमें ब्रह्माकी, नाभिमें विष्णुकी और मस्तक-में शिवकी स्थिति मानी गयी है। मनुष्य-शरीर पार्थिव है पृथिवीसे जो प्राण मानव-शरीरमें आता है, वह नीचेसे ही आता है। इसलिये आदान-शक्तिके अधिष्ठाता विष्णुकी स्थिति नाभिमें कही गयी है और उल्कमण उससे विपरीत दिशमें होना सिद्ध ही है; इससे महेश्वरकी स्थिति शिरोभागमें मानी जाती है। सम्पूर्ण शरीरकी प्रतिष्ठा हृदय है, हृदयमें ही एक प्रकारस्की तिलमात्र ज्योति यात्रावल्क्यसमृति आदिमें बतायी जाती है, वहाँसे सब शरीरको चेतना मिलती है, अतः वह ब्रह्माका स्थान हुआ। संध्योपासनमें इन्हीं स्थानोंमें इन तीनों देवताओंका ध्यान होता है; किंतु वृक्षोंमें वह स्थिति कुछ बदल गयी है, वहाँके लिये यों कहा जाता है—

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।

अग्रतः शिवरूपाय अद्वृत्थाय नमो नमः ॥

यहाँ अश्वत्यको प्रधान वृक्ष मानकर उपलक्षणरूपसे अश्वत्यका नाम लिया गया है, सभी वृक्षोंकी स्थिति इसी प्रकार है। उनकी प्रतिष्ठा ( जीवन ) मूलपर निर्भर है, इसलिये मूलमें ब्रह्मा कहा जाता है। मूलसे जो रस आता है, उसके द्वारा वृक्षका पालन या पोषण मध्यभागसे होता है। आया हुआ रस यशद्वारा गुदा, लच्छा आदिके रूपमें मध्यभागमें ही परिणत होता है, इससे यज्ञरूप पालक विष्णुकी स्थिति मध्यमें मानी गयी है और वह रस ऊपरके भागसे उल्कान्त होता रहता है; इसीसे वृक्षके ऊपरी भागसे शाखा, पत्ते आदि निकलते रहते हैं। अतएव उल्कान्तिका अधिपति महेश्वर वहाँ भी अग्रभागमें ही माना गया है। यह सब इन्द्रप्राणरूपसे महेश्वरकी उपासना है।

### रुद्र और शिव

अब अग्नि और सोमके सम्बन्धको लेकर भी शिव-तत्त्व-का विचार आवश्यक है; क्योंकि तीनों प्राणोंकी समर्पिता

काम 'भवद्वयर' या 'शिव' कहा गया है। अनिको 'कद्र' कहते हैं। 'अग्निवै स्त्रदः' ( शतपथब्रा० ५ । ३ । १ । १० । ६ । १ । ३ । १० ), 'अग्नेष स्वर्णोऽग्निः संस्कृतः स पूर्णोऽग्ने  
ष्टः देवता' ( शतपथब्रा० ३ । ३ । १ । १ ) इनारि  
लोकानेक श्रुतियोंमें अनिको 'कद्र' कहा गया है। लक्षण इन  
श्रुतियों सामान्यतासे अनिको 'कद्र' कहा है, क्योंकि देवताओं  
में अग्नर्विचकारक विवेद्य इस सम्बन्धमें कुछ शिव स्वरूपन-  
वी जापत्वता है। अग्नर्वी पाँच वर्षाएँ और वर एक वर्ष  
के एक प्रकृतियोंसे प्राप्तुमोर्च देखत उसे उत्तम्म होनेवाले  
सम्भ. आदि पाँच गण्डल कहे जा चुके हैं। वे गण्डल वर  
पुराणों अधिर्विकल पाँच कहाएँ कही जाती हैं। इनमें  
सभी मर अग्नर्वप्राप्त रर्वत्र व्याप्त है, तथापि एक एक  
कष्टमें कमसे एक-एक अग्नर्वप्राप्ती प्रभासता रहनेवाले वर  
का उप इसीला कहा जाता है। स्वसम्मुखदलने वाला, गर्भमें  
में रस्य, वर्षमें इन्द्र, पूर्णिमें अग्नि और कन्द्रयामें कुंभमें  
प्रवर्षता है—

महाराजे का अन्य है—‘अर्था या आदित्यो द्विष्टिमा’  
( अति ) । इस क्रियेत्वमें लिखा ( ३ ) मौखिक इस  
अन्यता नाम ‘अनिः वा रक्षा है अवारित्योदेहमें वर्णा  
१ में १५ तक इसे पाया जाये हैं और इसे २५ में २५ तक  
कुलक्रमे ‘आदित्य’ नामे का भी लिखा है । इसके अन्य  
प्रिया निकल दिखाए गए अन्यता वर्णों में से इसे १५ तक  
दर्शाये गए हैं यह की अधिकारीयोंगे वर्णन करते हैं । यह  
स्त्री वार्षिक १०८ वर्षों के बाद एक वर्ष लुप्त रहती है औह  
एकादश वर्ष में आदित्यों के द्वारा विद्युत दीपकों  
द्वारा दी जाती है । अपर्याप्त अभियान वर्षों में यद्युपर्याप्त विवेचनों  
और आदित्य वर्षों में यथा है । इससे ज्ञात विद्युत दीपक  
से वर्ष । यह अमृतसंबंध विवरणों द्वारा दी जाती है और  
अर्थात् और यथा है कि विवेचन २५ वर्षों का विवरण  
करता है और २५ वर्षों के द्वारा विवरण करता है । यह वर्ष  
ये वर्षों को लोग क्रियेत्वमें देखते हैं जिसे वर्षों की विवरण  
करता है । यह वर्षों की विवरण करता है ।

‘मरुतो रुद्रपुत्रासः’—मरुत् रुद्रके पुत्र हैं। ‘मरुत्’ नाम भौतिक वायुका है और इस अग्निको भी रुद्रका वीर्य कहा जाता है, जिससे कि रुद्रका नाम ‘कृशानुरेताः’ है। सूर्यके ताप (धूप) में भी रुद्रप्राणकी ही प्रखरता रहती है। अतः धूपको ‘रौद्र’ या ‘रौद’ कहते हैं। रुदप्राणसे ही भूमिके स्तरमें पारद बनता है, अतः उसे ‘रुद्रवीर्य’ कहा गया है। यह सब ‘ब्रह्मविश्वान्’ ग्रन्थका विषय है, यहाँ इसका विशेष विस्तार किया नहीं जा सकता। यहाँ इतना ही कहना है कि सौम्य वायु ‘साम्ब सदाशिव’ और आनेय वायु ‘रुद्र’ कहा जाता है। आनेय वायु उपद्रावक है। वह रुक्षता पैदा करता है, रोग उत्पन्न करता है, हर एक पदार्थका भेदक है, अतः वह ‘रुद्र’ (रुलानेवाला भयंकर) कहा गया है और सौम्य वायु सबका प्राणप्रद, सब उपद्रवोंका शान्त करनेवाला संयोजक है। अतः वह ‘शिव’ है। जैसा कि आगे कहते हैं—रुद्र भी किसी अवस्थामें ‘शिव’ होता है; किंतु सौम्य वायु सदा ही शिव है; अतः उसे ‘सदाशिव’ कहते हैं। अम्बा वैदिक परिभाषामें ‘जल’ का नाम है। सौम्य वायु जलसे मिश्रित रहता है, अतः वह ‘साम्ब सदाशिव’ कहलाता है।

रुद्रके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

भग्निर्वा रुद्रः, तस्यैते द्वे तन्वौ, घोरान्या च शिवान्या च ।

अर्थात् अग्निका नाम रुद्र है। उसके दो रूप हैं—एक घोर, दूसरा शिव। जो अग्निका रूप उपद्रावक, रोगप्रद, नाशक है, उसे ‘घोररुद्र’ कहते हैं और जो लाभप्रद, रोगनाशक, रक्षक है, उसे ‘शिव’ कहते हैं। यों रुद्र भी ‘शिव’ माने गये हैं। घोर रुद्रोंसे ‘मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्’, ‘मा नः स्तोके तनये मा न आयुषिः’ ‘नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे’ इत्यादि रक्षाकी प्रार्थना या ‘परो मूजवतोऽतीहि’ इत्यादि दूर रहनेकी प्रार्थना की जाती है, उनसे वचना आवश्यक है और शिव-रुद्रकी पूजा-उपासना होती है, उनकी रक्षामें हम सब रहना चाहते हैं। अग्निमें जितना सोमसम्बन्ध है, वह उतना ही ‘शिव’ (कल्याणकर) हो जाता है, यह शतपथ—नवमकाण्डमें आरम्भमें ही स्पष्ट किया गया है।

रुद्र ग्यारह प्रसिद्ध है। आव्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक या अधिवृत्त-भेदसे इन ग्यारहके पृथक्-पृथक् नाम श्रुति, पुराण आदिमें प्राप्त होते हैं। शतपथ-चतुर्थकाण्ड (चृहदारण्यक उपनिषद्)—५ अव्याय, ९ ब्राह्मणमें शाकल्य

और याज्ञवल्क्यके प्रस्तोत्रमें देवतानिरूपणमें (दरोमे पुरुषे प्राणाः, आत्मैकादशः) पुरुषके दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा आव्यात्मिक रुद्र बताये गये हैं। दस प्राणोंकी व्याख्या अन्यत्र श्रुतिमें इस प्रकार है—‘सप्त शीर्षण्याः प्राणाः, द्वाववाच्चौ, नाभिर्दशमी’—मस्तकमें रहनेवाले सात प्राण, दो आँख, दो नाक, दो कान और एक मुख, नीचेके दो प्राण, मल-मूत्र त्यागनेके दो द्वार और दशवाँ नाभि। अन्तरिक्षस्थ वायुप्राण ही हमारे शरीरोंमें प्राणलृप होकर प्रविष्ट है और वही इन दसों स्थानोंमें कार्य करता है, इसलिये इन्हें रुद्रप्राणके सम्बन्धसे ‘रुद्र’ कहा गया है। ग्यारहवाँ आत्मा भी यहाँ ‘प्राणात्मा’ ही विवक्षित है, जो कि इन दसोंका अधिनायक ‘मुख्य प्राण’ कहता है। आधिभौतिक रुद्र पृथिवी, जल, सेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान (विद्युत), पवमान, पावक और शूचि नामसे कहे गये हैं। इनमें आदि-के आठ शिवकी अष्टमूर्ति कहाते हैं, जिनका निरूपण आगे लिखते हैं और आगेके तीन (पवमान, पावक और शूचि) चौर रूप हैं। ये उपद्रावक रुद्र (वायुविशेष) हैं। इनमें शूचि सूर्यमें, पवमान अन्तरिक्षमें और पावक पृथिवीमें कार्य करता है; किंतु हैं तीनों अन्तरिक्षके वायु। अष्टमूर्तिकी उपासना है और तीनोंसे पृथक् रहनेकी प्रार्थना है। आधिदैविक षट्कादश रुद्र तारामण्डलोंमें रहते हैं—इनके कई नाम भिन्न-भिन्न स्पसे मिलते हैं—(१) अज\* एकपात्, (२) अहिर्दुर्घ्य, (३) विल्पाक्ष, (४) त्वष्टा अयोनिज यागम्भ, (५) रैवत, भैरव, कपदीं वा वीरभद्र, (६) हर, नकुलीश, पिङ्गला या स्थाणु, (७) बहुरूप, सेनानी या गिरीश, (८) व्यम्बक, भुवनेश्वर, विश्वेश्वर या सुरेश्वर, (९) सावित्रि, भूतेश या कपाली, (१०) जयन्ता, वृद्धाकपि, शम्भु या संध्य, (११) पिनाकी, मृगव्याघ, लुब्धक या शर्व—इनका पुराणोंमें स्थान-स्थानपर विस्तृत वर्णन है। ये सब तारामण्डलमें तारारूपसे दिखायी देते हैं। रुद्रप्राण इनमें अधिकतासे रहता है और इनकी रशिमयोंसे भूमण्डलमें आया करता है, इसीसे इन्हें ‘रुद्र’ कहा गया है। इनमें भी ‘घोर’ और ‘शिव’ दोनों प्रकारकी रुद्राग्नि है। इनके आधारपर फलाकल हिंदू-शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं—जैसे कि श्लेष्या-नक्षत्रपर सूर्यके रहनेपर जो वर्षा होती है, उसे रोगोतादक और मवाकी वर्षाको रोगनाशक माना जाता है, इत्यादि। रोग देशके पुराने तारामण्डलके चित्रोंमें सर्पधारी, कपालधारी,

\* यह नामाकलं श्रावुगुचरणोंकी ‘देवतानिविद्’ पुस्तकों आधारपर लिखा गया है। —लेखक

शूलवारी आदि भिन्न-भिन्न आकारोंके इन तारोंके चित्र दिखायी देते हैं, उन तारोंका आकार ध्यानपूर्वक देखनेपर उसी संनिवेशका प्रतीत होता है, इसीलिये उनके दैसे आकार बनाये गये हैं। ऐसे ही शिवके भी भिन्न-भिन्न रूप उपासनामें प्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें कई एक शिवके आख्यान इन तारोंके ही सम्बन्धके हैं, जैसा कि शिवने ३ हाथका एक मस्तक काट दिया—इस कथाका ‘लुब्धकबन्धु’ तारेसे सम्बन्ध है। यह कथा ब्राह्मणोंमें भी प्राप्त होती है और वहाँ इसका तारपरक ही विवरण मिलता है। दक्षयज्ञकी कथा भी आधिदैविक और आधिभौतिक—दोनों भावोंसे पूर्ण है। वह मनुष्याकारधारी शिवका चरित्र भी है और ‘दक्षका सिर काटकर उसके बकरेका सिर लगाया गया’—इसका यह आशय भी है कि प्राचीन कालमें नक्षत्रोंकी गणना कृतिकाको आरम्भमें रखकर होती थी, किंतु उसे अधिनी ( मेष ) से आरम्भ किया गया। यों ही कई एक कथाएँ आधिदैविक भावसे हैं। यज्ञमें ग्यारह अग्नि होते हैं। पहले तीन अग्नि हैं—गाईपत्य, आहवनीय और विष्ण्य। इनमें गाईपत्यके दो मेर द्वे जाते हैं। इष्टिमें जो गाईपत्य था, वह सोमयगमें ‘पुराणगाईपत्य’ कहाता है और इष्टिके आहवनीयको सोमयागमें गाईपत्य बना लेते हैं—वह ‘नूतनगाईपत्य’ कहाता है। धिष्ण्याग्निके आठ मेर हैं—जिनके नाम श्रुतिमें आग्नीश्रीय, आच्छावाकीय, नेष्ट्रीय, पोत्रीय, ब्राह्मणाच्छंसीय, होत्रीय, प्रशाच्छीय और मार्जालीय हैं। आहवनीय एक ही प्रकारका है, यों ग्यारह होते हैं। ये सब अन्तरिक्षस्थ अग्नियोंकी अनुकृति हैं—इसीलिये ये भी एकादश रुद्र कहे जाते हैं। ये शिवरूप ही यज्ञमें ग्राह्य हैं, घोर रूपोंका यज्ञमें प्रयोजन नहीं।

### एक रुद्र और अनन्त रुद्र

‘एक एव रुद्रोऽवतस्ये न द्वितीयः’ और ‘असंख्यातः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूत्याम्’, यों तत्त्वोंमें एक रुद्र और असंख्यात रुद्र—दोनों प्रकारके वर्णन प्राप्त होते हैं। इसकी व्यवस्था शतपथब्राह्मण-नवमकाण्डके आरम्भमें ( प्रथमाध्याय, प्रथम ब्राह्मण ) ही इस प्रकार की गयी है कि ‘क्षत्र रुद्र’ एक है और असंख्यात रुद्र ‘विट्’ ( वैश्य ) रुद्र हैं, विट्कोंही ‘प्रजा’ कहते हैं। इसका अभिप्राय यही होता है कि एक रुद्र राजा—अधिनायक मुख्य है और अनन्त रुद्र उसकी प्रजा—अनुगामी है। मुख्य रुद्रको ‘शतशीर्षा’, ‘सहस्राक्ष’, ‘शतेषुषि’ कहा गया है। उसकी उत्पत्ति प्रजापतिके मन्त्र ( क्रोध )

और अश्रुके सम्बन्धसे वहाँ बतायी गयी है। ‘नमस्ते रुद्र मन्त्रवे’ इत्यादि मन्त्रोंकी व्याख्या भी वहाँ है। अस्तु—इसका तात्पर्य पूर्वोक्त ही है कि अग्नि ( प्रजापतिका मन्त्र वा क्रोध ) और सोम ( अश्रुजल ) के सम्बन्धसे ‘रुद्र’ प्राण होता है। जिनमें ‘विष्ट्रू’—विष्ट्रुमात्रका सम्बन्ध है, वे वायुके अनन्त भेद असंख्यात रुद्र बताये गये हैं। विकृत वायुके भिन्न-भिन्न अंश जो पृथिवी, अन्तरिक्ष या सूर्यलोकमें व्याप्त हैं, उनका ही विस्तृत वर्णन रुद्राध्यायके मन्त्रोंमें आया है—उन रुद्रोंके अन्त्र आदि भी बताये हैं। ‘येषां वात इष्ववः’ इत्यादि और किस तरह इनका प्रभाव प्राणियोंपर पड़ता है, इसका भी वर्णन है। ‘ये यामे पात्रे विध्यन्ति’ इत्यादि स्थानविशेष भी इनके आये हैं—‘परो मूजवतोऽतीहि’ ( आप मूजवान् पर्वतसे परे चले जाइये )। मूजवान् पर्वत ईमकूट ( हिंदुकुश ) का प्रत्यन्त पर्वत है—जो कि पश्चिमके सुलेमान पर्वतसे बहुत उत्तर, श्वेतगिरि ( सफेद कोह ) से भी उत्तर है। इसीसे पूर्वकी ओर क्रौञ्चगिरि ( काराकुरम् ) है, जिसका विद्यरण स्वामिकार्तिकेये द्वारा पुराणोंमें वर्णित है। ‘उमावन’, ‘शरवण’ आदि स्थान इसीके आसपास हैं। वहाँसे आगेका वायु बहुत ही विकृत माना जाता है, इसीलिये विकृत वायुसे वहाँसे चले जानेकी प्रार्थना की गयी है। अस्तु, रुद्रका विज्ञान न समझकर आजकलके कई विद्वान् रुद्रपाठवर्णित रुद्रोंको ‘जर्मस्’ कहने लगे हैं; किंतु हैं वे विकृतवायुप्रविष्ट ‘रुद्रप्राण’। यह सब ‘घोर रुद्र’ का विस्तार है। रुद्रका वर्णन श्रुति, मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंमें अोतप्रोत है। घोर रुद्र दूरसे नमस्कार्य है और शिवरुद्र उपास्य।

### अष्टमूर्ति शिव

अक्षर पुरुषकी ‘इन्द्र’, ‘अग्नि’, ‘सोम’—इन तीनों कलाओंके एक अधिष्ठाता ‘महेश्वर’ या ‘शिव’ कहाते हैं—इस पूर्वोक्त तत्त्वका स्मरण रखिये। जितने पिण्ड बने हैं, वे सब अग्नि और सोमसे बने हैं; किंतु किसी पिण्डमें अग्निकी और किसीमें सोमकी प्रधानता है। स्वयम्भू-मण्डल आगेय, परमेष्ठि-मण्डल सौम्य, फिर सूर्यमण्डल आगेय, चन्द्रमा सौम्य और फिर पृथिवी आगेय है। जो-नो आगेय है, उन्हें ‘महेश्वर’, ‘रुद्र’ या ‘शिव’ कहकर पूजते हैं। सोमसमृक्त अग्निको ही पूर्वप्रकरणमें ‘रुद्र’ कहा जा सका है।

असौ यस्तात्रो भस्य उत वत्रुः सुमङ्गलः ।  
ये चैनं रुद्रा अभितो दिष्टु श्रिताः सदत्तमः ॥

‘जो यह लाल ( बैंगनी ), गुलाबी, खाली या मिश्रित रूपका दिखायी देता है और इसके चारों ओर जो हजारों रुद्र हैं’ इत्यादि वर्णन सूर्यमण्डलका ही रुद्रलूपसे है, वही सर्ववर्ण है और उसके चारों ओर सब देवता रहते हैं—‘चिंग देववासुदवाक्षनीक्षम् ।’ अस्तु, सूर्यमण्डलसे जो मण्डलाकार आग्नेय प्राण निकलता रहता है, उसे ‘संवत्सरानि’ कहते हैं। इसकी पूर्ति एक वर्षमें होती है, इसलिये वर्षको भी ‘संवत्सर’ कहा करते हैं। यह सौर अग्नि ही पृथिवीमें ‘वैश्वानर’ अग्निलूपसे परिणत होता है, यह निरुक्तकारने सिद्ध किया है। भूमण्डलके चारों ओर वारह योजन ऊपरतक एक ‘भूवायु’ है, जिसमें भूमिका-सा आकर्षण है। पक्षी उसीके आधारपर रहते हैं, इसे ज्योतिषमें ‘आवह वायु’ और वैदिक परिभाषामें ‘एमूष वराह’ या ‘उषा’ कहते हैं। इस उषारूप पत्नीमें संवत्सराग्निरूप पुरुष जब गर्भाधान करता है ( प्रविष्ट होता है ) तब दोनोंके योगसे ‘कुमार’ नामक अग्निकी उत्पत्ति होती है—यह सब विषय शतपथब्राह्मण—काण्ड ६, अध्याय २, ब्राह्मण तीनमें स्पष्ट है। यही कुमाराग्नि ‘कुमारो नीढ़लोहितः’ कहकर रुद्रलूपसे उपास्य माना गया है। इस कुमाराग्निके आठ रूप हैं, जो कि ‘चित्राग्नि’ नामसे कहे जाते हैं। इन आठों रूपोंका विवरण उनके आठ नाम—रुद्र, सर्व ( शब्द ), पशुपति, उग्र, अश्वनि ( भीम ), भव, महादेव और ईशान और उनके आठ स्थान—अग्नि ( भौतिक तेज ), अप् ( जल ), ओषधि ( पृथिवी ), वायु, विद्युत् ( वैश्वानराग्नि, यजमानका वात्मा ), पर्जन्य ( आकाश ), चन्द्रमा और सूर्य शतपथके उक्त स्थानमें स्पष्ट रूपसे गिनाये हैं। पौराणिक निरूपणमें जो नाममें हैं—उन्हें हमने कोष्ठोंमें प्रकट कर दिया है। इसी श्रुतिका संकेत करते हुए महिमनःतोत्रमें कहा गया है—

नवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोऽग्रः सहमहां-  
स्तथा भीमेशानाविति यदभिवानाप्तकमिदम् ।  
अमुविम् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि  
प्रियायास्मै धाम्ने गणिहितनमत्योऽस्मि भवते ॥

उक्त आठों स्थानोंमें जो आग्नेय प्राण हैं—वे ‘रुद्र’ या ‘शिव’ रूपसे उपास्य हैं, यही शिवकी आठ मूर्तियाँ कही जाती हैं। इसके आगे ही शतपथके काण्ड ६ अ० २ ब्रा० १ में इस कुमाराग्निसे पाँच पशुओं—पुरुष, अश्व, गो, अज और अविकी उत्पत्ति वतावी है। ये पाँचों भी अग्नि

( प्राणविशेष ) हैं, जिनकी प्रधानतासे आविभौतिक पशुओंके भी यही नाम पड़ते हैं। इन पशुओंका पति ( अधिनाथक ) होनेके कारण भी यह कुमाराग्नि—रुद्र ‘पशुपति’ कहाता है।

### शिव और शक्ति

रुद्र-निरूपणमें पूर्व कह आये हैं कि पार्थिव अग्नि इक्षीस अहर्गण ( एकविंशत्सौम ) तक अर्थात् द्युलोक या स्लोक-तक ( लूर्यस्त्रण्डलतक ) व्याप्त है, उससे आगे सोमपांडल है। अग्निकी भक्ति ऊपरको और सोमकी गति ऊपरसे नीचेकी ओर रहती है। यह भी कह चुके हैं कि विशकलनकी सीमापर पहुँचकर अग्नि ही सोमरूपसे परिणत हो जाता है और फिर ऊपरसे नीचेकी ओर आकर अग्निमें प्रवेशकर सोम अग्नि बन जाता है। इनमें अग्निको ‘शिव’ और सोमको ‘शक्ति’ कहते हैं। ‘सोम’ शब्द उमासे ही बना है—‘उमया सहितः सोमः’। शक्तिरूपकी विवशा कर उमा भगवती कह लीजिये और शक्तिमान् द्वय या प्राणको शक्तिका आश्रय, शक्तिसे अतिरिक्त मानकर ‘उमया सहितः सोमः’ कह लीजिये, बात एक ही है। भेद-अभेदकी विवक्षामात्रका ऐह है। यह तत्व वृहजावालोपनिषद्-त्राक्षण २ में स्पष्ट है—

अङ्गीष्ठोऽस्तमकं नियमित्वं भिरुचक्षते । सौद्री धोरा या लैजसी तनूः । सोमः दात्त्वयस्त्रुतमयः शक्तिकरी तनूः ।

अभृतं यथातिष्ठा ला रेजोविद्याकला स्वयम् ।

स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसि (सी) ॥ ३ ॥

द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका ।

तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चान (नि) लात्मिका ॥ ४ ॥

वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः ।

तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम् ॥ ५ ॥

अग्नेऽस्मृतनिष्पत्तिरमृते नाभिरेधते ।

अतएव हृषिः कुसमञ्जीपोमात्मकं जगत् ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वशक्तिमयं (यः) सोम अधो (धः) शक्तिमयोऽनलः ।

ताम्यां सम्पुटिस्त्रमाच्छध्राद्विश्वसिदं जगत् ॥ ७ ॥

अरने (ग्नि) रुद्धं भवत्येषा (प) यावत्सौम्यं परामृतम् ।

यावद्गन्यात्मकं सौम्यममृतं विसूजत्यधः ॥ ८ ॥

अतएव हि कालाग्निरथस्ताच्छक्तिरुद्धर्वगा ।

यावद्गद्दाहनश्चर्वमधातात्पावनं भवेत् ॥ ९ ॥

आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरथमूर्ध्वगः ।

तथैव निष्ठगः सोमः दिवशक्तिरपासदः ॥ १० ॥

शिवश्चोर्ध्वमन्तः शक्तिरुद्धर्शक्तिमयः शिदः ।  
तदित्यं शिवशक्तिभ्यां नान्यासुभिह किञ्चन ॥ ९ ॥

इसका तात्पर्य है कि इस सब जगत्‌के आत्मा अग्नि और सोम हैं या इसे अग्निरूप भी कहते हैं । धोर तेज (अग्नि) रुद्रका शरीर है; अमृतमय, शक्ति देनेवाला सोम शक्तिरूप है । अमृतरूप सोम सबकी प्रतिष्ठा है, विद्या और कला आदिमें तेज (अग्नि) व्याप्त है । स्थूल या सूक्ष्म सब भूतोंमें रस (सोम) और तेज (अग्नि) सब जगह व्याप्त हैं । तेज दो प्रकारका है—सूर्य और अग्नि; सोमके भी दो रूप हैं—रस (अप्) और अनिल (वायु) । तेजके विद्युत् आदि अनेक विभाग हैं और रसके मधुर आदि भेद हैं । तेज और रससे ही यह चराचर जगत् बना है । अग्निसे ही अमृत (सोम) उत्पन्न होता है और सोमसे अग्नि बढ़ता है, अतएव अग्नि और सोमके परस्पर हविर्यशसे सब जगत् उत्पन्न है । अग्नि ऊर्ध्वशक्तिमय होकर अर्थात् ऊपरको जाकर सोमरूप हो जाता है और सोम अथशक्तिमय होकर अर्थात् नीचे आकर अग्नि बन जाता है, इन दोनोंके सम्पुटमें निरन्तर यह विश्व रहता है । जबतक सोमरूपमें परिणत न हो, तबतक अग्नि ऊपर ही जाता रहता है और सोम—अमृत जबतक अग्निरूप न बने तबतक नीचे ही गिरता रहता है । इसलिये कालाग्निरूप रुद्र नीचे हैं और शक्ति इनके ऊपर विराजमान है । दूसरी स्थितिमें फिर (सोमकी अहुति हो जानेपर) अग्नि ऊपर और पावन-सोम नीचे हो जाता है । ऊपर जाता हुआ अग्नि अपनी आधारशक्ति सोमसे ही धृत है (विना सोमके उसका जीवन नहीं) और नीचे आता हुआ सोम शिवकी ही शक्ति कहाता है अर्थात् विना शिवके आधारके वह भी नहीं रह सकता । दोनों एक दूसरेके आधारपर हैं । शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है, शिव और शक्ति जहाँ व्याप्त न हों—ऐसा कोई स्थान नहीं ।

अब इसपर और व्याख्या लिखनेकी आवश्यकता नहीं ही । अग्निसे सोम और सोमसे अग्नि बनते हैं—वे दोनों एक ही तत्व हैं । इसलिये शिव और शक्तिका अभेद (एकलसत्ता) माना जाता है, एकके विना दूसरा नहीं रहता । इसलिये शिव और उमा मिलकर एक अङ्ग है, उमा शिवकी अद्वाङ्गिनी है । सोम भोज्य है और अग्नि भोक्ता, इसलिये अग्नि पुरुष और सोम छोड़ी माना गया है । लेककम-में सोम ऊपर रहता है, इससे शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई शक्तिकी उपासना होती है । शिव ज्ञानस्वरूप या

रसस्वरूप है और शक्ति किया या बलरूप । किया वा बल, ज्ञान या रसके अधारपर खड़ा रहता है, इसलिये भगवतीको शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई मानते हैं,—यह भी भाव इसमें अन्तर्निहित है । विना कियके ज्ञानमें स्फूर्ति नहीं—वह मुर्दा है, इसलिये वहाँ शिवको 'शब' रूप माना जाता है । अथवा यों भी कह सकते हैं कि विश्वरूप (विराटरूप) शिव है, उसपर चिक्कलारूपा (ज्ञानशक्तिरूपा) भगवती खड़ी है । वही इसकी प्रधान शक्ति है, उसके विना विश्वरूप निश्चेष्ट है । वह 'शब' रूप है । ज्ञान और कियाको अद्वाङ्ग भी कह सकते हैं । यों कोई भी भाव मान लिया जाय, सभी प्रमाणसिद्ध और अनुभवगम्य हैं ।

### विश्वचर ईश्वर और शिवसूर्ति

विश्वकी उत्पत्तिसे शिवका सम्बन्ध संक्षेपमें दिखाया गया है, यह शिवका 'विश्व' रूप या 'ब्रह्मसत्य' कहाता है । हम ईश्वर-निरूपणमें पूर्व कह चुके हैं कि ईश्वर जगत्‌को रचकर उसमें प्रविष्ट होता है । वह प्रविष्ट होनेवाला रूप ईश्वरका 'विश्वचर' रूप कहा जाता है, इसे वैदिक परिभाषामें 'देवसत्य' कहते हैं । यही सब जगत्‌का नियन्ता है और व्यवहारमें, न्यायदर्शनमें या उपासनाशास्त्रोंमें यही नियन्ता 'ईश्वर' कहलाता है । ईश्वरके इस रूपकी व्याप्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है, समष्टिब्रह्माण्डमें और प्रत्येक व्यष्टि-पदार्थमें यह व्यापकरूपसे विराजमान है और ब्रह्माण्डसे बाहर भी व्याप्त रहकर ब्रह्माण्डको अपने उदरमें रखते हुए है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः  
सर्वज्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।  
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः  
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥  
यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्  
यस्मात्काणीयो न ज्यायोऽस्ति कञ्चित् ।  
वृक्ष इव सञ्चयो दिवि तिष्ठत्येव-  
स्तेनेहं पूर्णं मुख्येण सर्वम् ॥  
श्री योगिनि चोनिसधितिष्ठत्येजो  
यस्मिन्दिवं सं च विचैति लर्वम् ।  
तमीशानं चर्वं देवमीडर्वं  
निचायेमां शान्तिसत्यन्तरंत्वं ॥  
सर्वान्नगदितोशीद्यः सर्वभूतगुह्यत्वः ।  
सर्वद्वयापी स भगवांस्तसात् सर्वगतः दिवः ॥  
( देवताश्वर उपनिषद् )

—इत्यादि शतशः मन्त्रोंमें ईश्वरके विश्वचर रूपका वर्णन मिलता है और इनमें 'शिव', 'ईशान', 'सद्ग्राय' आदि पद भी स्पष्ट हैं।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर कहलाता है, इस शरीरका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

|               |                |                                            |
|---------------|----------------|--------------------------------------------|
| अग्निमूर्धी   | चक्षुषी        | चन्द्रसूर्यी                               |
| दिशः श्रोत्रे | वाग्‌विवृताश्च | वेदाः ।                                    |
| वायुः प्राणो  | हृदयं          | विश्वभूमयः                                 |
|               |                | पद्मन्थां पृथिवी श्वेष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ |

( मुण्डक० २।१।४ )

'अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा-सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, विश्वव्यापी वायु प्राणरूपसे हृदयमें है, पृथिवी पादरूप है—वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है।'

इसी प्रकारका संक्षिप्त या विस्तृत वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। इसी वर्णनके अनुसार उपासनामें शिवमूर्तिके ध्यान है। हम पूर्व कह चुके हैं कि अग्निकी व्याप्ति इक्कीस स्तोमतक ( सूर्यमण्डलतक ) है, इसी अग्निको यहाँ मस्तक बताया गया है और उसी मस्तकके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमाको नेत्र माना है। यों पृथिवीसे आस्मकर सूर्यमण्डलसे परे, स्वयम्भूमण्डल तक ईश्वरकी व्याप्ति बतायी जाती है। हमारी आराध्य शिवमूर्तिमें भी तृतीय नेत्ररूपसे अग्नि ललाटमें विराजमान है, जो कि अन्य दोनों नेत्रोंसे किञ्चित् ऊँचेतक है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं ही—

### 'चन्द्रे सूर्यंशशाङ्कवह्निनयनम्'

यहाँतक अग्निकी व्याप्ति हुई, इससे आगे सोममण्डल है और सोमकी तीन अवस्थाएँ हैं—अप्, वायु और सोम, यह भी पूर्व कह चुके हैं। इनमेंसे सोम चन्द्रमारूपसे, अप् गङ्गारूपसे और वायु जटारूपसे शंकरके मस्तकमें ( अग्नि आदिसे ऊपर ) विराजमान है। सूर्यमण्डलसे ऊपर परमेष्ठिमण्डलका सोम मण्डलरूपमें नहीं है—इसलिये शिवके मस्तकपर भी चन्द्रमाका मण्डल नहीं, किंतु कलामात्र है। सोमके ही तीन भाग हैं, जो कि तीन कला ( अंश, अवयव ) कही जा सकती हैं। केवल सोम पूर्णरूपमें नहीं रहता; किंतु भागोंमें विभक्त होकर रहता है—इसलिये भी चन्द्रकी कलाका मस्तकपर विराजित होना युक्तियुक्त है। मण्डलरूप पृथिवीका चन्द्रमा पहले नेत्रोंमें आ चुका है यह सरण रहे; परमेष्ठि-

मण्डलका 'अप्' ही गङ्गाके रूपमें परिणत होता है—यह गङ्गा-के विनामें कहीं अन्यत्र स्पष्ट किया जायगा। वह गङ्गा जटमें है अर्थात् वायुमण्डलमें व्याप्त है। शिवका नाम 'व्योमकेश' है, अर्थात् आकाशको उनकी जटा माना गया है और आकाश वायुसे व्याप्त ही मिलता है—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।

इससे भी जटाओंका वायुरूप होना सिद्ध है। एक-एक केशके समूहको 'जटा' कहते हैं और वायुका भी एक-एक ढोरा पृथक्-पृथक् है, जिनकी समष्टि 'वायु' कहलाता है—यह जटा और वायुका सादृश्य है। पृथिवीका अधिकतर सम्बन्ध सूर्यसे ही है, आगेके सोममण्डलका पृथिवीसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता—सूर्य-चन्द्रद्वारा होता है; इससे हमारा असली ब्रह्माण्ड सूर्यतक ही है। यही यहाँ भी ( शिवमूर्तिमें भी ) सूचित किया है, क्योंकि मस्तकतक ही शरीरकी व्याप्ति है, केश मुख्यतः शरीरके अंश नहीं कहे जाते। शरीरका भाग ही अवस्थान्तरित होकर केशरूपमें परिणत होता है, इसी प्रकार अग्नि ही अवस्थान्तरित होकर सोमरूपमें परिणत होता है—यह कह चुके हैं। यह परमेष्ठिमण्डलका वायु जटारूपसे है और जिसे श्रुतिमें प्राणरूपसे हृदयमें विराजमान कहा है, वह इस हमारे अन्तरिक्षका वायु है। पद्मपुराणमें पृथिवीका पद्मरूपसे निरूपण किया है; और शंकरका ध्यान पद्मासनस्थितरूपमें है—'पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः', इससे पृथिवीकी पादरूपता भी ध्यानमें आ जाती है।

ईश्वरके शरीर इस ब्रह्माण्डमें विष और अमृत—दोनों हैं। विष भी कहीं बाहर नहीं, ईश्वर-शरीरमें ही है। किंतु ईश्वर विषको गुप्त—अतलीन रखता है और अमृतको प्रकट। जो ईश्वरके उपासक ईश्वरके शरीररूपसे जगत्को देखते हैं, उनकी दृष्टिमें अमृत ही आता है, विष विलीन ही रहता है। अतएव शंकरकी मूर्तिमें विष गलेके भीतर है, वह भी कालिमारूपसे मूर्तिकी शोभा ही वदा रहा है और अमृतमय चन्द्रमा स्पष्टरूपसे सिरपर विराजमान है। वैशानिक समुद्रमन्थनके द्वारा जो विष प्रकट होता है, उसे रुद्र ही धारण करते हैं; किंतु इस संक्षिप्त देखतमें उस कथाका भाव नहीं बताया जा सकता। ईश्वरको शास्त्रकारोंने 'विश्वदधर्माश्रय' माना है; जो धर्म हमें परस्पर-विश्वद प्रतीत होते हैं, वे सब ईश्वरमें अविश्वद होकर रहते हैं। सभी विश्व वर्गोंको ब्रह्माण्डमें ही तो रहना है, बाहर जायें कहाँ? और ब्रह्माण्ड

दृष्टि ईश्वरचरीरो फिर वहाँ विरोध काहेका ? वह भाव भी निन्दुवने लग्त है कि वहाँ अनृत भी है; विष भी; अमि भी है; जल भी—किसीका परत्पर विरोध है ही नहीं । इस भाव-त्रों पर्वतीकी उक्तिने कविकुल्लुक कालिदासने वडे सुन्दर शब्दोंमें चिन्तित किया है । इस प्रकरणका एक पद्य हम लेखके के आरम्भमें दे चुके हैं, दूसरा भी बड़ा मार्मिक है—

विभूषणोद्भासि सुजङ्गभोगि वा  
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।  
कपालि वा स्यादथ वेदुशेखरं  
न विश्वमूर्तेऽवधार्यते चपुः ॥

( उभारतस्थव ५ )

वह शरीर भूषणोंसे भूषित भी है और सर्प-शरीरोंसे वैष्णित भी । गजचर्म भी ओढ़े हुए है और सुन्दर-सुन्दर वहुमूल्य वस्त्रधारी भी हो सकता है । वह शरीर कपालपाणि भी है और चन्द्रसुकुट भी । जो विश्वमूर्ति ठहरा, उस शरीरका एक रूपसे निश्चय कौन कर सकता है ?

भगवान् शंकरके हाथमें परशु, मृग, वर और अभय वताये गये हैं—

### परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।

ध्यानमें हाथोंके द्वारा देवमूर्तिके कार्य प्रकट किये जाते हैं—यह 'निदान' की परिभाषा है । यहाँ भी शंकरके (ईश्वरके) चार कर्म इन चिह्नोंद्वारा बताये गये हैं । परशु (या विश्वल) रूप आयुधसे दुष्टोंका, आत्मविधातक दोषों और उपद्रवोंका और पवमान, पावक, शुचि आदि धोर खेंद्रोंका हनन सूचित किया जाता है । काल आनेपर सनका हनन भी इसीसे सूचित हो जाता है । दूसरे हाथमें मृग है । शतपथब्राह्मण—काण्ड १, अध्याय १, ब्राह्मण ४ में कृष्ण मृगको यशका स्वरूप वताया गया है । अन्यत्र शतपथ और तैत्तिरीयमें यह भी आख्यान है कि अमि वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हो गया, 'वनस्पतीनाविवेदा' इस ऋचाको भी वहाँ प्रमाणरूपमें उपस्थित किया गया है । उस अमिको देवताओंने छैदा, इससे 'मृगवत्वान्मृगः'—द्वैदनेयोग्य दोनोंसे वह अमि 'मृग' कहाया । यह अमि वेदका रखक है । अस्तु, दोनों ही प्रकारसे मृगके धारणद्वारा यशकी रक्षा या वेदकी रक्षा—यह ईश्वरका कर्म सूचित किया गया है । वरसुद्राके द्वारा सनको उन कुछ देनेवाला ईश्वर (शंकर) ही है, अमि, वायु और ईश्वरसे वही सब जगत्का धालक है—यह भाव व्यक्त किया

है और अभयके हारा अविष्टसे जगत्का ज्ञान विनिष्टित है । यह: निश्चृति, वक्षण और रुद्र—जो चार जगत्के अधिष्ठकारक भाने गये हैं; इनमें रुद्र समयपर हनम लरता है और अन्य अनिष्टोंका उपर्यादन कर रक्षा भी करता है । इसीसे रुद्रनूतिमें अभयमुद्भाव आवश्यक है । शंकर जामन्तर्मीको नीचेके अङ्गमें पहनते हैं शा आरान बगानर निष्ठित भी हैं और गजन्तर्मीको ऊपर ओढ़ते हैं, इससे भी उपर्यामी तुष्णी-गां दबना और सम्पत्ति देना लक्षित होता है । उठाने गएमें जो मुण्डमाला है, उससे गही सूचित होता है कि रथ जगत्के पदार्थ ईश्वरके रूपमें अन्तर्गत हैं, उनके रूपमें सब प्रियेषे हुए हैं—

मणि सर्वमिदं प्रतेतं सूत्रे मणिमाणा रथ ॥

ईश्वरसत्त्वसे पृथक् किये जानेपर रथ पदार्थ अनेकत—मृत हैं, यही भाव 'मुण्ड' लासे सूचित किया है । ग्रन्थ-बालमें शिव ही शोष रहते हैं, शेष सब पदार्थ नीतगाथूना द्विपर मृत-मुण्डरूपसे उनमें प्रोत रहते हैं—यह भी गुणमालाना भाव है ।

### सर्प

शिवको 'सर्पभूषण' कहा जाता है । उनकी मूर्तिमें जगह-जगह सौंग लिपटे हुए हैं । इसका रथूल अग्निमाण नाम द्युके हैं कि मङ्गल और अमङ्गल रथ तुच्छ ईश्वरशरीरमें है । दूसरा अग्निमाण यह भी है कि रोहस्नारह दीनोंपारा संहारसामग्री भी रहनी ही चाहिये । रागान्तर उत्ताप्ति और समयपर संहार—दीनों ईश्वरके ही कार्य हैं । रथी नक्षर संहारक तमोगुणी कोरं ही ही नर्धी रक्षाम् क्षोभि भानं वालकोंको भी ला जाना—यह व्यापार राजान्तरमें ही ऐसा जाता है, अन्यत्र नहीं । तीसरा अग्निमाण निर्वात निर्गुह है । चन्द्रमा, मङ्गल, वृद्धती आदि ग्रह जो सर्पके धारों और धूमते हैं—ये अनेक पद्म परिष्वामाणमें जिया जातीर गये थे, टीक उन्हीं किन्तुओंपर दूरी तार नहीं जाते । निर्वात हृष्टकर उसी मार्गार नहीं है, यो एक हृष्टक तारके ग्रामणाला पक्ष-एक कुण्डलवार युत बनता जाता है । कुछ निर्वात परिष्वामाणोंके बाद ते फिर अपने उपर पूर्ण वृगाम या जांडे हैं, यह नियम निर्वातमाणोंका नियम निर्वातमाणोंहै । महान् ७० वर्षोंमें फिर अपने पूर्ण वृगाम आता है, और और गांडोंमें भी नमय नियत है । यह निर्वातमाणोंका वृगाम रसीदी तथा श्वेत दुआ लगाकर्में लगा जाता है, वह यां कुण्डलोंके आमामाला दी जाता है । अपने दीमें इनका

व्यवहार नाग या सर्प कहकर ही किया गया है। आधुनिक ज्योतिष-शास्त्रमें इन्हें 'कक्षावृत्त' कहते हैं। सूर्यको मध्यमें रखकर धूमनेवालोंमें आठ ग्रह मुख्य हैं, अतः आठ ही सर्प प्रथान माने गये हैं। और भी बहुतसे तारे धूमनेवाले हैं, उनके लघु सर्प बनते हैं। ये सब ग्रह और उनके कक्षावृत्त ( सर्प ) ईश्वरके शरीर—ब्रह्मण्डमें अन्तर्गत हैं—इसलिये शिवके शरीरमें भूषणरूपसे सर्पोंकी स्थिति बतायी गयी है। तारामण्डलमें भी अनेक रुद्र हैं, और उनके आकार सर्प-जैसे दिखायी देते हैं—यह पूर्व स्त्रुतिरूपणमें कह चुके हैं। उन सबके धारक मुख्य रुद्र भगवान् शंकर हैं—यह चौथा अभिग्राय भी भुलाया न जाय।

### श्वेत मूर्ति

भगवान् शंकरकी मूर्ति उज्ज्वल—श्वेत है—

रद्धाकल्पोज्ज्वलाङ्गम्

इसके अभिग्राय निम्नलिखित हैं—

( १ ) व्यापक ईश्वर चेतन अर्थात् शनरूप है। शनि-को 'प्रकाश' कहते हैं, अतः उसका वर्ण श्वेत ही होना चाहिये।

( २ ) श्वेत वर्ण कृत्रिम नहीं, स्वाभाविक है। वस्त्र आदिपर दूसरे रंग चढ़ानेके लिये यक्ष करना पड़ता है, किंतु श्वेत रंगके लिये कोई रँगरेज नहीं होता। श्वेतपर और-और रूप चढ़ते हैं और धोकर उतार दिये जाते हैं, श्वेत पहले भी रहता है और पीछे भी। धोयीद्वारा दूसरे रंगके उतार दिये जानेपर श्वेत प्रकट हो जाता है। इससे श्वेत नैसर्गिक ठहरा। वस, यही बताना है कि ईश्वरका कृत्रिम रूप नहीं है, सब रूप उसमें उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं, वह स्वभावतः एकरूप है, या यों कहो कि कृत्रिम रूपोंसे वर्जित है, नीरूप है।

( ३ ) वैशानिक लोग जानते हैं कि श्वेत कोई भिन्न रूप नहीं। सब रूपोंके समुदायको ही श्वेत कहते हैं। सब रूपोंको जब मिलाया जाय तब वे यदि सब-के-सब मूर्च्छित हो जायें तो काला रूप बनता है और सब जाग्रत् रहें तो श्वेत प्रतीत होता है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं—यह वैशानिक लोग जानते हैं। तिकोने काँचकी सहायतासे सर्वसाधारण भी देख सकते हैं; किंतु सबके मिलनेके कारण प्रतीत श्वेत रूप ही होता है। भिन्न-भिन्न सब वर्णोंके पत्ते एक बन्धमें रखकर उसे जोरसे बुमाया जाय तो श्वेत ही दिखायी देगा। इससे सिद्ध है कि सब रूप हैं,

किंतु उनमें मेद-भाव न हो; वह शुक्र होता है। यही स्थिति ईश्वरकी है। जगत्के सब रूप उसीमें ओतप्रोत हैं किंतु मेद छोड़कर। मेद अविद्याकृत है। ईश्वरमें अभिन्नरूपसे सबकी स्थिति है। तब उस ईश्वरको श्वेत ही कहना और देखना चाहिये।

( ४ ) सात लोकोंमें जो स्वयम्भूसे पृथिवीतक पाँच मण्डल बताये गये हैं, उनमेंसे सूर्यमण्डलमें सब वर्ण हैं। आगे परमेष्ठिमण्डल कृष्ण है—यह हम कल्याणके कृष्णाङ्क-परिशिष्टाङ्कके पृष्ठ ५३६-५३७ में दिखा चुके हैं। उससे आगे स्वयम्भूमण्डल प्रकाशमय श्वेतवर्ण है और आगेयमण्डल होनेके कारण वह 'शिवमण्डल' या 'स्त्रुदमण्डल' भी कहाता है। वही मण्डल सर्वव्यापक होनेके कारण ईश्वरका रूप कहा जा सकता है। उसके प्रकाशमय श्वेतवर्ण होनेके कारण शिवमूर्तिका श्वेतवर्ण युक्तियुक्त है।

### विभूति

शंकर भगवान् सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलिप्त—आच्छन्न रहते हैं। इसका भी यही कारण है। उक्त पाँचों मण्डलोंके प्राण सारे पार्थिव पदार्थोंमें व्याप्त हैं। उनमेंसे सौर-जगत्में सूर्यप्राण उद्भूत ( सबसे ऊपर, प्रकाशित ) रहते हैं और आगेके अमृतमण्डलों ( परमेष्ठी और स्वयम्भू ) के प्राण आच्छन्न ( ढके हुए, गुस ) रहते हैं। सूर्यकिरणोंके कारण ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न रूप दीख पड़ते हैं—यह वैशानिकोंका सुप्रिसिद्ध सिद्धान्त है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं, हर एक पदार्थ अपनी विशेष शक्तिसे अन्य रूपोंको निगल जाता है और एक रूपको उगल देता है। जिसे उगलता है वही हमें उस पदार्थका रूप प्रतीत होता है, वह आधुनिक वैशानिकोंका कथन है। अस्तु, जब इन पदार्थोंमें अग्नि लगायी जाती है तो अग्निका स्वभाव है कि वनीभूत पदार्थोंका विशकलन करे—उन्हें तोड़े। यों अग्निद्वारा पृथक् किया जाकर सौर-प्राणोंका ऊपरी स्तर जब निकल जाता है, तब भीतरका छिपा हुआ परमेष्ठिमण्डलके प्राणका समनुगत कृष्ण-रूप काले कोयलेके रूपमें निकल आता है, किसी भी पदार्थको जलानेपर वह काला ही होगा—यह प्रत्यक्ष है। यह पदार्थोंमें दूसरा स्तर है। जब इसपर भी किर अग्निका प्रयोग किया जाय और अग्निद्वारा विशकलित होकर दूसरा स्तर भी निकल जाय—उड़ जाय—तब तीसरा अन्तर्निर्गृह स्वयम्भू प्राणोंका स्तर प्रकट होता है और वह स्वयम्भूप्राणके समनुगत श्वेत रूपका देखा जाता है। किसी भी रंगके पदार्थको जलाइये, अन्तर्नि-

प्रकाशमान श्वेत भस्म ही शेष रहता है। यह मौलिक तत्त्व है, इसे अभि नहीं उड़ा सकता। भगवान् शंकर इसी मौलिक तत्त्व—भस्मसे सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्वसे वे सुष्ठिकी रचना करते हैं—यह शिवपुराणकी सुष्ठि-प्रक्रियामें स्थृत है। स्वयम्भूमण्डलके अधिष्ठाता श्वेतमूर्ति शिवका जगद्व्याप्त स्वयम्भूम प्राणलप भस्मसे उद्धूलित रहना सर्वथा स्वारसिक है—इसमें संदेह नहीं। शिवके अन्य प्रकारके भी ध्यान हैं, यह पूर्व लिखा गया है। उन अन्यान्य शिवमूर्तियोंके सम्बन्धमें भी विवेचना आवश्यक थी और शिवलिङ्गके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ वक्तव्य था; किंतु लेख विस्तृत हो गया, अब लिखनेके लिये न तो उपयुक्त समय है और न स्थान ही। इसलिये इन विवेचनाओंको समयान्तरके लिये छोड़कर, दो-एक आवश्यक वाँट और कहकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं।

## शिव और विष्णु

उपासनाके प्रेमियोंमें इस बातपर आधुनिक युगमें बहुत विवाद रहता है कि शिव और विष्णुमें कौन बड़ा? कोई विष्णुको ही परमात्मा कहकर शिवको उनके उपासक मानते हुए जीवकोटिमें माननेका साहस करते हैं और कोई शिवको परतत्त्व कहकर विष्णुको उनके अनुगत, सेवक या जीवविशेष कहनेतकका पाप करते हैं। कुछ सज्जन दोनोंको ईश्वरके ही रूप कहते हुए भी उनमें तारतम्य रखते हैं। वैज्ञानिक प्रक्रियामें वस्तुतः इन विवादोंका अवसर ही नहीं है। यहाँ न कोई छोटा है, न बड़ा। अपने-अपने कार्यके सब प्रमुह हैं। यह उपासककी इच्छा और अधिकारके अनुसार नियत है कि वह किसी रूपको अपनी उपासनाके लिये चुन ले, किंतु किसीको छोटा कहना या निन्दा करना अपनेको विज्ञानशून्य घोषित करना है। अस्तु, अब क्रमसे देखिये—निर्विशेष, परात्पर या अव्यय पुरुष, जो उपासना और शानका मुख्य लक्ष है, जो जीवका अन्तिम प्राप्त है, उसमें किसी प्रकारका भेद नहीं। उसे ‘वैवेश्वरि विष्णुः’—सर्वत्र व्यापक है, इसलिये ‘विष्णु’ कह लीजिये, अथवा ‘शेरतेऽस्मिन् सर्वे इति शिवः’—सब कुछ उसीके पेटमें है, इसलिये ‘शिव’ कह दीजिये। उसका कोई नाम-रूप न होते हुए भी—

## सर्वधर्मोपपत्तेश्च ।

—इस वेदान्तसूत्रके अनुसार सभी गुण, कर्म और नाम घटके हो सकते हैं। अतएव विष्णुसहस्रनाममें शिवके नाम और यिवसहस्रनाममें विष्णुके नाम आते हैं, मूलरूपमें भेद है

ही नहीं। यों परम शिव या महाविष्णु एक ही वस्तु है, उपासकके अधिकार या रचनिके अनुसार उसकी भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे उपासना होती है। अब आगे अक्षर पुरुषमें आइये—यहाँ विष्णु और महेश्वर शक्ति-भेदसे पृथक्-पृथक् प्रतीत होंगे, जैसा कि कहा गया है कि आदान-क्रियाके अधिष्ठाता विष्णु और उल्कान्तिके अधिष्ठाता महेश्वर हैं; किंतु वस्तुतः विचार करनेपर एक ही अक्षर पुरुषकी दोनों कल्याँँ हैं, इसलिये मौलिक भेद इनमें सिद्ध नहीं होता। आदान और उल्कान्ति दोनों एक ही गतिके भेद हैं। गति यदि केन्द्रभिमुखी हो तो ‘आदान’ कहाता है और यदि केन्द्रसे विपरीत दिशामें अर्थात् पराढ़मुखी हो तो ‘उल्कान्ति’ कहाती है, यों एक ही गतिके दिग्भेदसे दो विभेद हैं—तब वस्तविक भेद कहाँ रहा? नाममात्रका ही तो भेद है। एक कविने बड़ी सुन्दरतासे कहा है—

उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययतो सिन्धवद्वाति ।  
कलयतु कश्चन मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम् ॥

व्याकरणके अनुसार हरि और हर दोनों शब्द एक ही ‘हृ’ धातुसे बनते हैं, अतः प्रकृति ( मूल धातु ) दोनोंमें एक है, केवल प्रत्यय जुदा-जुदा है—तब इनका भेद मानना शास्त्रसे अनभिज्ञोंका ही काम है। दूसरा अर्थ इलोकका यह है कि दोनोंकी प्रकृति एक है अर्थात् मूल-तत्त्वरूपसे दोनों एक हैं, केवल प्रत्यय-प्रतीति—वाहरी दृष्टिसे भेद हो रहा है; यह भेद शास्त्र-दृष्टिवालोंको कभी प्रतीत नहीं होता। अतएव उल्कान्ति-का नेता ‘इन्द्र’ कहाता है तो आदानका ‘उपेन्द्र’ ( दूसरा इन्द्र )। विष्णुका दूसरा नाम ‘उपेन्द्र’ भी है।

कुछ सज्जन शिवको संहारकर्ता कहकर उपासनाके अयोग्य मानते हैं; किंतु वैज्ञानिक दृष्टिसे वह भी तर्क नहीं ठहरता। हम अक्षर पुरुषके निलमणमें स्थृत कर लुके हैं कि एक दृष्टिसे जो संहार है, दूसरी अपेक्षासे वही उत्पादन या पालन है। नाममात्रका भेद है, वास्तविक भेद इसमें भी नहीं है। इसके अतिरिक्त संहार भी तो ईश्वरका ही काम है और वह अवदयम्भावी है। समयपर उत्पादन और पालन वैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। तीनों कार्य ईश्वरके द्वारा ही होते हैं। यदि एक ही शक्ति तीनों कार्योंको करने-वाली न मानी जाय तो वडा युक्तिविरोध आ पड़े। संहार करनेवाला कोई और है, तो वह पालकसे जबर्दस्त कहा जायगा; क्योंकि उसके पालितको वह नष्ट कर देता है।

फिर संहारक ही ईश्वर कहायेगा, पालक नहीं। इसके अतिरिक्त जिसने सबका संहार किया वही तो अन्तमें शेष रहेगा, फिर सृष्टिके समय सृष्टि भी वही करेगा। दूसरा रूप है ही कहाँ, जो सृष्टि करे ? इन सब कुतकोंका समाधान तभी होता है जब कि एक ही ईश्वरके कायपिक्षासे तीनों रूप माने जायँ—उनमें भेद न माना जाय। जिस समय जिस रूप या शक्तिकी आवश्यकता होती है, उस समय वह प्रकट हो जाता है, तत्व एक ही है। फिर भी कहा जाय कि तत्व चाहे एक हो, किंतु संहारकारक रूपसे हमें ध्यान नहीं करना चाहिये—तो यह युक्ति भी निःसार है। सब रूपोंके उपासक अपने उपास्यमें सभी शक्तियोंका ध्यान करते हैं। विष्णुके उपासक भी उनको उत्पादक, पालक और संहर्ता तीनों कहते हैं और शिवके उपासक भी ऐसा ही करते हैं। कोई भी शक्ति न माननेसे ईश्वरमें न्यूनता आ जायगी। ईश्वरका काम यथाकाल सब कार्य करना है, कालमें संहार अभीष्ट ही है। क्या संहारका ध्यान न करनेवालोंका संहार न होगा ? फिर महेश्वर तो केवल संहारक हैं भी नहीं, तीन अक्षर कलाओंकी समष्टिको ‘महेश्वर’ बताया गया है; इनमें अग्नि और सौम ही तो सब जगत्‌के उत्पादक हैं, इसलिये यह उल्कर्षापकर्षकी कल्पना कोरी कल्पना ही है। कुछ सज्जन शिवको तमोगुणी कहकर उपासनाके अयोग्य ठहरानेका साहस करते हैं, किंतु यह भी साहसमात्र ही है। शिव ईश्वर हैं, वे तमोगुणके वशमें तो ही ही नहीं सकते। ईश्वर और जीवमें यही तो भेद है कि जीव प्रकृतिके वशमें है और ईश्वर प्रकृतिका नियन्ता है। तब शिव तमोगुणी हैं—इसका अभिप्राय यह होगा कि वे तमोगुणके नियन्ता हैं। तो फिर सत्त्वगुणके नियमन करनेकी अपेक्षा तमोगुणके नियमन करनेका कार्य कितना कठिन है और वैसा कार्य करनेवाला रूप और भी उल्कृष्ट है कि नहीं—इसका विचारशील स्वयं निर्णय करें।

वस्तुतः तमोगुण ‘आवरक’ कहलाता है, भूतोंकी उत्पत्ति तमोगुणसे ही मानी जाती है और वैशानिक प्रक्रियामें भूतोंके उत्पादक अग्नि और सौम हैं। उन अग्नि और सौमके अधिनायक महेश्वर हैं, इसलिये उन्हें तमोगुणका अधिष्ठाता कहा गया है। इससे उपास्यतामें कोई हानि नहीं। उपासक उन्हें तमोगुणके नियन्ता कहकर उपासना करते हैं; अतएव परमवैराग्यवान्, अत्यन्त शान्त, विषयनिर्लिप्त रूपमें वे उनका ध्यान करते हैं, इससे उपासकोंमें तमोगुणकी वृद्धि होगी—इसकी लेशतः भी सम्भावना नहीं। वल्कि वे भी तमोगुणके नियन्ता हो जायेंगे।

अब प्राकृत स्वयम्भू आदि मण्डलोंपर विचार कीजिये। यहाँ भी एक दृष्टिसे एककी व्यासि न्यून रहती है, तो दूसरी दृष्टिसे दूसरेकी। विष्णु यज्ञस्वरूप हैं और यज्ञद्वारा ही छद्म आदि सब देवता उत्पन्न होते हैं—यज्ञके आधारपर ही सब देवताओंकी स्थिति है। रुद्र शिवका रूप है, इसलिये कहा जा सकता है कि शिव विष्णुके उदरमें हैं—उनसे उत्पन्न होते हैं। किंतु दूसरी दृष्टिसे अग्निप्रधान सूर्यमण्डल रुद्रका रूप है उस मण्डलकी व्यासिमें अर्थात् सौर-जगत्‌के अन्तर्गत यज्ञमय विष्णु हैं। सौर-जगत्‌में जो यज्ञ हो रहा है उसीसे हमारा जीवन है और ‘यज्ञो वै विष्णुः’—यज्ञ ही विष्णुका रूप है, इस दृष्टिसे शिव या रुद्रके पेटमें विष्णु रहे। अब आगे बढ़िये—सूर्यका उत्पादक यज्ञ परमेष्ठिमण्डलमें होता है, अतएव वह मण्डल विष्णुप्रधान कहा गया है—उस मण्डलके पेटमें सूर्यमण्डल आ जाता है, इससे विष्णुके पेटमें शिवका अन्तर्भाव हुआ। और आगे चलें तो परमेष्ठिमण्डल स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत रहता है, स्वयम्भूमण्डल आगेय होनेके कारण रुद्रका या अग्निके नियन्ता महेश्वरका मण्डल कहा जा सकता है—यह अभी विस्तारसे निरूपित हो चुका है। स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत एक वाचस्पति तारा है, वह श्रुतिमें इन्द्र माना गया है और इन्द्र महेश्वरके रूपमें अन्तर्गत है। उस मण्डलकी व्यासिमें परमेष्ठिमण्डलके अन्तर्भूत रहनेके कारण फिर शिवके उदरमें विष्णु आ गये। इसीलिये स्पष्ट कहा गया है—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोस्तु हृदयं शिवः।

सब जिसके अन्तर्गत हैं—वह परमाकाश सर्वस्त्र है, उसे परमशिव कह लीजिये या महाविष्णु। इसलिये इस दृष्टिसे भी कोई भेद या छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं होता।

अब आगे जो हमने विश्वचरस्त्र ईश्वरका बताया है, वह विष्णु भी कहा जा सकता है और शिव भी। विष्णुका वर्णन भी पृथिवी पाद, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र इत्यादि रूपसे ही मिलता है और शिवका भी वैसा ही वर्णन हम लिख चुके हैं। जिस प्रकार शिवकी उपास्य-मूर्तिमें हमने सब ब्रह्माण्डका अन्तर्भाव बताया है, वैसा ही विष्णुमूर्तिका रहस्यविवरण भी विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत आदिमें मिलता है। इसमें केवल इतना विवक्षाभेद है—जगत्‌के तीन मूल हैं, शान, क्रिया और अर्थ। या यों कहो कि इनका समुदाय ही जगत् है। इसमें क्रियाको ‘यज्ञ’ कहते हैं और यज्ञ विष्णुका रूप बताया गया है। इससे क्रियाप्रवानरूपसे—कुर्वद्वृप्तामें—जिसमें वरावर

कार्य हो रहा है—यदि समूर्ण ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय तो वह विष्णुकी मृत्ति होगी और ज्ञानकी प्रधानता से—प्रशान्तभावमें यदि ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय तो वह शिवमूर्ति कही जायगी। इसीलिये यह प्रवाद भी चला है कि उपासनाका विष्णुसे और ज्ञानकाण्डका शिवसे सम्बन्ध है, क्योंकि उपासना कियारूप है। महेश्वरकी उपासना भी ज्ञानप्राप्तिके लिये ही मानी गयी है—‘ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत्’। ज्ञानप्राप्तिके अनन्तर भी प्रथम भूमिकाओंमें निदिष्यासन आदि क्रियाओंकी मुक्तिके लिये आवश्यकता रहती है—इसलिये फिर ‘मोक्षमिच्छेज्ञानार्दनात्’ मान लिया गया। ज्ञान यिन अर्थके नहीं रहता, वही अर्थका धारक है—इसलिये विद्वानोंकी उक्ति है कि—

शब्दजातमशेषं तु धन्ते शर्वस्य बहुभा ।

अर्थजातमशेषं च धन्ते सुरघेन्दुरेखरः ॥

‘सब अर्थोंके धारण करनेवाले बालेन्दु-सुकुट भगवान् शंकर हैं।’

इस दृष्टिमें भी अर्थ मुख्य है या यज्ञ—इसका निर्णय कोई नहीं कर सकता। यज्ञसे अर्थ बनते हैं, अर्थ होनेपर यज्ञ होता है और ज्ञानसे क्रिया या यज्ञ होता है, बिना अर्थके भी यज्ञ नहीं हो सकता। यों दोनों रूप परस्पर सापेक्ष रहते हैं, विवक्षाभेदसे कोई किसीको प्रधान मान ले। वस्तुतः यज्ञ और अर्थ एक ही मूलसे निकले हैं—अतः एक ही हैं।

यों वैज्ञानिक भावमें किसी भी दृष्टिसे हरि और हरका मौलिक भेद या छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं हो सकता। केवल दृष्टिमें है। उसमें उपासकके अधिकार और सचिके अनुसार किसी भी रूपमें प्रधान-हृषि की जा सकती है। पुराणादिमें जो कहीं किसीकी और कहीं किसीकी प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारीका मनोभाव उस रूपमें हृषि करनेके लिये—उसी रूपमें ‘ब्रह्मदृष्टि’ करानेके उद्देश्यसे है—किसीके वास्तविक उत्कर्ष या अपकर्षका कहीं भी तात्पर्य नहीं।

न हि निन्दा निन्द्यान् निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु स्तुत्यान् द्वौत्सु ।

‘निन्दा निन्दनीयकी निन्दाके उद्देश्यसे नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिके उद्देश्यसे होती है’—यह मीमांसाका न्याय भी इसीके अनुकूल है।

### मनुष्याकारधारी शिव

लेखके आरम्भमें हम कह आये हैं कि हमारे शास्त्रोंमें ईश्वर-

का दो भावोंमें वर्णन है, वैज्ञानिकरूपसे और मनुष्याकारसे। वे मनुष्याकार ईश्वरके सगुणरूप या अवतार कहे जाते हैं। वैज्ञानिक निरूपणमें और इन मनुष्याकारधारी ईश्वररूपोंके चरित्रोंमें आश्र्वयज्ञक सादृश्य देखा जाता है। अतएव आर्य-शास्त्रोंका विश्वास है कि उपासकोंपर अनुग्रहके कारण ईश्वर मनुष्यरूप ग्रहण करता है। गुरुवर श्री द्वादशदूनजी ओंशा विद्यावाचस्पतिके ‘देवासुररूपाति’, ‘अत्रिल्याति’ और ‘इन्द्रविजय’ आदिमें निरूपण है कि पृथिवीमें भी एक त्रिलोकी है। कारणावतपर्वत—जिससे इरावती नदी निकलती है—के उत्तरका प्रदेश भूस्वर्ग ( त्रिविष्टप ) कहाता है, उसके ‘इन्द्रविष्टप’, ‘विष्णुविष्टप’, ‘ब्रह्मविष्टप’ आदि विभाग भी पुराणादिमें सुप्रसिद्ध हैं। आर्यसम्बताके प्राधान्यकालमें इस प्रदेशमें सब वैज्ञानिक देवताओंके समान ही संस्था प्रचलित थी। अस्तु, इस अप्रकृत विषयका हम यहाँ विस्तार न करेंगे; यहाँ हमारा वक्तव्य केवल इतना ही है कि एक भगवान् शंकरका मनुष्यरूप भी है। वह लक्ष्यालक्ष्यरूप है, कभी कार्यकालमें प्रकट होता है और कभी अलक्षित रहता है। इसी प्रकारके वर्णन इस रूपके पुराणोंमें हैं। इसे शिवावतार कह सकते हैं। समय-समयपर इन शंकर भगवान्की तीन स्थानोंपर स्थिति बतायी गयी है। प्रथम भद्रवटस्थानमें—जो कि कैलाससे पूर्वकी ओर लौहित्यगिरिके ऊपर है, ब्रह्मपुत्रा नदी उसके नीचे होकर बहती है। दूसरा स्थान कैलास पर्वतपर और तीसरा मूजवान् पर्वतपर। मूजवान्का स्थान-निर्देश हम पहले कर चुके हैं। इन शंकरके गण, भूत आदिका निवास हिमालय और हेमकूटके दर्रोंमें बताया गया है। ये शंकर भगवान् भी पूर्ण वैराग्यरत, आत्मसंयमी हैं। काशीश्वरणमें एक कथा है कि इन शंकर भगवान्से अपना सारा राज्य मानसरोवरपर विष्णुभगवान्को दे दिया और स्वयं विरक्त होकर एकान्तमें रहने लगे। देवताओंके कार्यके लिये—स्वामिकार्तिकेयकी उत्पत्तिके लिये पार्वती-विवाह करनेको या त्रिपुरासुरका वध करनेको—ऐसे ही अन्यान्य समयोंमें देवताओंकी प्रार्थनापर ये प्रकट होते रहे हैं। पार्वती-विवाह, त्रिपुर-वध आदिकी कथाएँ इनकी बड़ी रोचक और आर्यसम्भाताके सुगमें पदार्थ-विश्लेषणका अद्भुत महत्व प्रकट करनेवाली हैं; किंतु उनका विवरण शंकर भगवान्की कृपासे कभी समयान्तरमें सम्भव होगा—यह आशा कर शंकर-सरण करते हुए इस लेखको पूर्ण किया जाता है।

ॐ शान्तिः ।

## लिङ्ग-रहस्य

( लेखक—स्व० श्रीरामदासजी गौड एम० ए० )

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।  
अचर्यैथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥  
( महाभारत, अनु० अ० १४ )

### १—लिङ्गार्चनकी व्यापकता

माहेश्वरलिङ्गकी अर्चा अनादिकालसे जगद्ब्यापक है । स्थीष्टिय धर्मके प्रचारके पूर्व पश्चात्य देशोंकी प्रायः सभी जातियोंमें किसी-न-किसी रूपमें लिङ्गपूजा सर्वत्र प्रचलित रही है । रोमक और यूनान दोनों देशोंमें क्रमशः प्रियेपस और फल्लुसके नामसे लिङ्गकी ही अर्चा होती थी । इन दोनों राष्ट्रोंके प्राचीन धर्मका लिङ्गपूजा प्रधान अङ्ग था । वृक्षकी मूर्ति लिङ्गके साथ ही पूज्य थी । पूजाकी विधिमें धूप, दीप, पुष्पादि हिंदुओंकी ही तरह काममें आते थे । मिस्रदेशमें तो हर और ईशिःकी उपासना उनके धर्मका प्रधान अङ्ग था । इन तीनों देशोंमें प्रायः फाल्गुनमासमें ही वसन्तोत्सवके रूपमें लिङ्गपूजा वार्षिक समारोहसे हुआ करती थी । मिस्रमें ओसिरि, नामके देवता एथियोपियाके चन्द्रशैलसे निकली हुई नीलनदीके अविष्टाता माने जाते हैं । यहाँ कैलासके चन्द्रगिरिसे निकली गङ्गा और पश्चिमगामी सिन्धुनद जिसका दूसरा नाम नील भी है, दोनोंके ही सामी भगवान् शंकर हैं । ‘फल्लुस’ शब्दकी व्युत्पत्ति कर्नल टाडके मतसे अङ्गुत है । वह कहते हैं कि यह शब्द संस्कृतके ‘फलेश’ से निकला है\* क्योंकि भगवान् शंकर यजनका तुरंत ही फल देते हैं और उन्हें वसन्तारम्भके क्रतुफल निवेदन भी किये जाते हैं । प्लतार्कके लेखोंसे पता चलता है कि उस समय मिस्रमें प्रचलित लिङ्गपूजा सारे पश्चिममें प्रचलित थी ।

प्राचीन चीन और जापानके साहित्यमें भी लिङ्गपूजा-

की गवाही मिलती है और पुरानी मूर्तियोंसे वह भी अनुमान होता है कि अमेरिकाके महाद्वीपोंके प्राचीन निवासी भी लिङ्गपूजा किया करते थे ।

इसाईयोंके वेदके दो विभाग हैं । पुराने सुसमाचार नामक विभागमें राजाओंकी पुस्तकके पंद्रहवें अध्यायमें यह कथा है कि रैहोगोप्यमके पुत्र आशाने अपनी माता मामाकाको लिङ्गके सामने बलि देनेसे रोका था । पीछे उन्होंने क्रोधमें आकर उस लिङ्गमूर्तिको तोड़-मोड़ डाला । यहूदियोंके देवता बेलफेगोकी पूजा लिङ्गमूर्तिकी होती थी । उनका एक गुप्तमन्त्र था, जिसकी दीक्षा यहूदी लिया करते थे । मोयावी और मरिनावासी यहूदियोंके उपास्य लिङ्गकी स्थापना फेगोशैलपर हुई थी । इनकी उपासनाविधि मिस्रवासियोंसे मिलती-जुलती थी । पहाड़के ऊपर जंगलमें और बड़े वृक्षके नीचे यहूदियोंने लिङ्ग और बछड़ेकी मूर्ति स्थापित की, इसपर यहूदियोंके परम पिता उनसे रुष्ट हो गये थे । यह बालेश्वर-शिवलिङ्ग पत्थरका बनाते और स्थापित करते थे और ‘बाल’ नामसे ही पूजते भी थे । बालेश्वरकी वेदीके सामने वह धूप जलाते थे और लिङ्गके सामनेवाले वृष ( नन्दी ) को हर अमावस्याको पूजा चढ़ाते थे । मिस्रके ओसिरिसके लिङ्गके सामने भी बैल रहता था ।

कर्नल टाडका कहना है कि मुहम्मद साहबके पहले ‘लात’ नामक अरबके देवताकी उपासना ‘लिङ्ग’ के रूपमें हुआ करती थी और सोमनाथके शिवलिङ्गको भी पश्चिमी लोग ‘लात’ ही कहते थे । ‘लात’ की मूर्तियाँ दोनों जगह बहुत विशाल और खोंसे सुसज्जित थीं । यह एक ही पत्थरका लिङ्ग था, जो पचास पुरुष या पोरसा ऊँचा था । जिस मन्दिरमें यह स्थापित था उसमें इस लिङ्गको सँभालनेके लिये ठोस सोनेके छप्तन खम्मे

थे। \* महमूद गजनवी इसे व्यंस करके सोना ढो ले गया। दोनों देशोंमें नाम एक ही था 'लात' या 'लाट', यह विचित्रता थी। आकार और लम्बाईके हिसाबसे 'लाट' कहना तो ठीक ही था। परंतु कोषकार रिंडसन लिखता है कि 'लात' अल्लाहकी सबसे बड़ी उन्नीकरण नाम था और उसका चिह्न या मूर्ति लिङ्गकी तरह थी। जो हो, मुसल्मानोंने 'लात'का व्यंसावशेष भी न रखता, परंतु मक्केश्वर तो अवतरक लिङ्गरूपमें काबेमें पधराये हुए हैं। इस मक्केश्वर लिङ्गकी चर्चा भविष्यपुराणके ब्राह्मणमें आयी है।

मक्केश्वरलिङ्ग काले पत्थरका है। इसे मुसल्मान 'अस्वद' कहते हैं। पहले इसराएली और यहूदी इसकी पूजा करते थे। मुहम्मद साहबके समयमें इसकी चार कुलोंके पण्डे पूजा-अच्छा किया करते थे। जब काबेमें इसके लिये एक स्थान बनाया गया और इसके प्राचीन स्थानसे वहाँ ले जाकर जब पवरानेका प्रसन आया तब चारों पण्डोंमें यह झगड़ा उठा कि मूर्तिको उठाकर निश्चित स्थानतक पहुँचानेका गौरव किसे प्राप्त हो? हजरत मुहम्मद साहबका फैसला सर्वमान्य हुआ और एक चादरपर चारोंने उसे थामकर उठा और चादरके चारों कोनोंको थामकर उस स्थानपर ले जाकर मूर्तिको पधराया। काबेमें इस मूर्तिकी पूजा कहीं होती, परंतु जो मुसल्मान हज करने जाता है, उस मूर्तिका चरणचुम्बन करके आता है।

यथापि अब पहलेकी तरह पूजा नहीं होती तथापि श्रमके अनेक प्रसिद्ध स्थानोंमें अवतरक लिङ्ग देखनेमें अते हैं। गिरजाघरोंमें, धर्म-मन्दिरोंमें, अजायथवाखानोंमें, संस ही नहीं और देशोंमें भी लिङ्गरूपके पत्थर स्मारक-स्तंभसे रक्खे देखे जाते हैं। लिङ्गपूजाका पाश्चात्य देशोंमें

इतना प्रचार था कि 'लिङ्गार्चा' अथवा Phallicism ए सम्रदाय ही समझा जाता था, जिसका अस्तित्व सभी देशोंमें पाया जाता है। इसी तरहका 'लिङ्गायत' सम्रदाय हमारे देशमें भी है। दक्षिणमें इस सम्रदायके शैव मिलते हैं जो 'जद्गम'\* कहलाते हैं और सोने या चाँदीके सम्पुटमें शिवलिङ्ग रखकर बाढ़ था गलेमें पहनते हैं। ऐसाइङ्गोपीडिया ब्रिटानिकामें Phallicism शब्दमें इस सम्रदायका वर्णन अधिक विस्तारसे मिलेगा।

पणि: जातिके लोगोंकी चर्चा हमारे वैदिक साहित्यमें आयी है। यह पाश्चात्य वणिक-समाज था, जिसका आनन्दाजाना भारतसे लेकर भूमध्यसागरतक हुआ करता था। पच्छाईहाँमें यही लोग फणिश कहलाते थे और इवरानी-जाति इन्हींके विकासका फल हुई, जिनके यहाँ भारतीय बालेश्वरलिङ्गकी उपासना विधिवत् होती थी। मन्दिरोंकी बनावट भी भारतीय ढंगकी थी, जैसा कि उनके व्यंसावशेषोंसे अवगत होता है। इस बालेश्वरलिङ्गको वैविलमें 'शिउन' कहा है। इस धने साटथ्यको देखकर अनेक प्राच्यविद्या-विशारद कहलानेवालोंने यहाँतक अटकलका घोड़ा दौड़ानेका साहस किया है कि उनकी दृष्टिमें भारतके लोगोंने लिङ्गोपासना पच्छाई हाँ देशोंके लिङ्गायत-सम्रदायवालोंसे सीखी है।

अमेरिका-महाद्वीपमें पेरुविया नामक स्थानमें वहाँके प्राचीन निवासी रहते हैं। उनका पुराना राजवंश सूर्यवंशी कहा जाता है और वह 'रामसीतोया' नामका एक महोत्सव भी करते हैं। वहाँकी मत्यवर्ती कुछ जातियोंमें ईश्वरको 'सिद्धु' कहते हैं। प्रीजिया-देशमें जो आसुरिया-देश या ओटी शियाका एक भूखण्ड है वहाँके निवासी 'सेत्रा' या 'सेवाजियः' नामके देवताकी उपासना करते हैं। जिस समय मन्त्र लेते हैं कुछ ऐसा

\* Richardson's Dictionary (1829) में देखें।

\* काशीमें इन्हीं जहाँसके वसनेसे एक पुण्यना महाद्वा 'जहाँमवाडी' के नामसे प्रसिद्ध है।

अनुष्ठान भी करते हैं जिसमें साँपोंका भी काम लगता है। मिस्त्रमें भी 'सेवा' देवताके साथ सर्पका सम्बन्ध है। यह व्यालमालधारी भगवान् शिवके सिवा और कोई नहीं।

इन प्रमाणोंपर विचार करनेसे इस बातमें तो तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि लिङ्गपूजा बहुत प्राचीन है और संसारमें साधारणतया किसी कालमें अवश्य फैली हुई थी और सर्वत्र लिङ्गोपासनाका प्रचार था।

अब अपने देशकी ओर आइये। हमारे देशमें तो हिमालयमें मानसरोवर और कैलाससे लेकर कन्याकुमारी और रामेश्वरजीतक और अटकसे लेकर कटकतक लिङ्गों और शिवालयोंकी कोई गणना नहीं है। असंख्य लिङ्ग हैं, असंख्य शिवालय हैं। यह देश शिवमय ही है। यह तो वर्तमानकालकी बात हुई जब कि एक सुदीर्घ-कालसे हमारा देश आसुरी माया और संस्कारसे आवृत है। परंतु शिवलिङ्ग और शिवालय भारतीय संस्कारोंमें रग-रगमें भिना चला आया है—इस बातकी साक्षी भूगर्भमें गड़ी पड़ी है। छोटी-छोटी खुदाइयोंमें, जेवों और कुओंके भीतर तो शिवलिङ्ग अक्सर मिलते ही रहते हैं। काशीमें अभी हालमें कपड़ेके चौक बाजारके बीचमें दो-तीन पोरसा नीचे शिवलिङ्ग और मन्दिरका मिलना कोई मूल्य नहीं रखता जब कि मोहन्जो-दारो और हरप्पाकी खुदाइमें ऐसी तहोंमें शिवलिङ्ग मिलते हैं जो समयको निकट-से-निकट खींच लानेवाले कट्टर आनुमानिकोंकी अटकलसे आजसे कम-से-कम छः हजार और भारतीय महायुद्धसे कम-से-कम एक हजार वर्ष पहलेके ठहरते हैं। सर जान मार्शल अनेक लिङ्गोंके प्रादुर्भावसे चक्रराक्षर कहते हैं कि शैवर्वम कल्कालिथिक (Chalcolithic age) युग या इससे भी पहलेका है और इस सम्बन्धके अपने प्रन्थमें उस समयके इन शैवोंको आर्यजातिके पूर्वगमी कोई अधिक सम्भ राष्ट्रके मनुष्य ठहरते हैं; क्योंकि उनके मतसे भारतमें तबतक आर्योग आकर वसे ही न थे। यह एक वैज्ञानिक

तथ्य है कि पुरातत्व एवं भूगर्भके खोजी सत्यकी खोजकी उत्सुकतामें समयको सदा संकुचित करके ही देखते रहे हैं। अतः मेरी समझमें तो मोहन्जो-दारोके सबसे नीचेके स्तर महाभारतकी लड़ाईके कई हजार वर्ष पहलेके होंगे। इस तरह शिवलिङ्गकी उपासनाकी साक्षी महाभारतकी ऐतिहासिक घटनासे कई हजार वर्ष पूर्वकी पथरकी लीक है। मार्शल महोदय यह कहकर मोहन्जो-दारोकी उस लिङ्गप्राप्तिको अनार्थ ठहराते हैं कि 'शिव'जीका वैदिक विश्व-देवतामें कोई स्थान नहीं है, परंतु यह मार्शलकी भारी भूल है। रुद्रायाय तो शिव भगवान्के नामोंसे भरा पड़ा है। रुद्रकी स्तुतियाँ चारों संहिताओंमें हैं। 'शिव' नामपर अनेक मन्त्र हैं। कपर्दिन्, पशुपति, सहस्राक्ष, सद्बोजातादि अनेक नाम अनेक स्थलोंमें आये हैं और जहाँ इन्द्रद्वारा शिवलिङ्गोपासनोंके प्रति वृणा प्रकट की गयी है वहाँ तो स्पष्टतया लिङ्गपूजा प्रमाणित होती है।\* अतः लिङ्गपूजाकी प्राचीनतम परम्परा प्रमाणित है।

## २-लिङ्गार्चन-सम्बन्धी साहित्य

ऋग्वेदमें लिङ्गोपासनाकी चर्चा जब मौजूद है तब रामायणकालमें उसकी चर्चाका होना कोई विशेष महत्वकी बात नहीं समझी जा सकती। तो भी कालक्रम-से वैदिक साहित्यके बाद इतिहास, पुराण तथा तन्त्रोंकी गणना की जाती है। वैदिक साहित्यमें, संहिताओंमें, त्रास्त्रणोंमें, आरण्यकोंमें और उपनिषदोंमें रुद्रादि अनेक नामोंसे और उमा, विद्या आदि अनेक नामोंसे उपासनेश्वर-के प्रसङ्ग आते हैं। पुराणोंमें उन्हीं वैदिक विशेषोंकी ही तो व्याख्या है। इतिहासोंमें तो घटना-प्रसङ्गसे चर्चा आती है। वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डमें रावणके कथाप्रसङ्गमें आया है—

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।  
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥  
वालुकादेविमध्ये तु तलिङ्गं स्थाप्य रावणः ।  
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्टैश्चामृतगन्धिभिः ॥

( ३१ । ४२-४३ )

शिवभक्त रावण जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ सर्णलिङ्ग  
भी जाता है और वालुको वेदीपर पथराकर वह विधिवत्  
पूजा करता है और लिङ्गके सामने नृत्य करता है ।

महाभारत अनुशासनपर्वमें चौदहवें अध्यायसे  
भगवान् महेश्वरका प्रसङ्ग चलता है, जिसके अन्तर्गत  
'शिवसुहस्रनाम' कहा गया है और सौतिकपर्वमें तो  
अश्वत्यामाकी स्तुतिपर रीझकर भगवान् शंकरने उनके  
शरीरमें ही प्रवेश किया है । भगवान् श्रीकृष्णका  
उपमन्युसे दीक्षा पाना और भगवान् शंकरके प्रीत्यर्थ  
तपस्या करना न केवल अनुशासनपर्वमें ही वर्णित है  
बल्कि प्रायः सभी वैष्णव और शैवपुराणमें यह कथा  
आयी है । फिर लिङ्गपूजाकी चर्चा भी प्रायः सभी पुराणमें  
है । पश्चपुराण वैष्णवपुराण है तो भी लिङ्गपूजाका  
प्रसङ्ग उसमें बड़े विस्तारसे वर्णित है । शिवपुराण,  
लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और  
ब्रह्माण्डपुराण—यह छः तो शैवपुराण ही ठहरे ।  
इनमें तो भगवान् शंकरकी कथाका विस्तार है ही, परंतु  
हिंदू-साहित्यमात्रमें जहाँ कहीं शिवोपासनाकी चर्चा  
है, वहाँ बहुधा लिङ्गकी चर्चा अवश्य ही आयी है ।

इतिहासों और पुराणोंके सिवा तन्त्र-प्रन्थ और  
सृष्टियाँ भी हैं । तन्त्रोंकी तो रचना ही उमामहेश्वर-  
संवादपर है । तन्त्रोंके द्वारा भगवान् शंकरने अनेक  
नियाओं और रहस्योंका उद्घाटन किया है । सृष्टियोंमें भी  
कर्मकाण्ड-सम्बन्धी विषयोंमें शिवोपासनाका विषय जहाँ-  
तहाँ आया है । वीरमित्रोदयमें शिवोपासना और  
लिङ्गाचारका विस्तारसे वर्णन है । तन्त्रोंमें लिङ्गाचर्चनतन्त्र  
तो वस्तुतः अर्चाकी नियिका प्रामाणिक प्रन्थ है । इन

सभी धर्म-शास्त्रोंमें शिव-पूजाको नित्यकर्ममें रखा है और  
संघ्याकी तरह जलप्रहणके पूर्वका इसे आवश्यक कर्म  
बतलाया है ।

संहिताओंमें तो रुद्रकी स्तुतिमात्र है, परंतु शतपथ  
ब्राह्मणमें ( ६ । १ । ३ । ७-१९ ) और शांखायन  
ब्राह्मणमें ( ६ । १ । १-९ ) भगवान् रुद्रकी  
उत्पत्तिका वर्णन ग्रायः उसी ढंगपर है जिस ढंगपर कि  
मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणमें दिया हुआ है । साय  
ही सारे शैवसाहित्यमें भगवान् महेश्वरके साथ-ही-साथ  
भगवती उमाका भी वर्णन है । वाजसनेयिसंहितामें  
'अम्बिका' ( ३ । ५७ ) और 'शिवा' ( १६ । १ ),  
तलवकार उपनिषद्में ( ३ । ११-१२ तथा ४ । १-२ )  
'ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी उमा हैमवती' और तैत्तिरीय आरण्यक-  
के दसवें प्रपाठकमें 'कन्याकुमारी' 'कात्यायनी' 'दुर्गा'  
इत्यादिकी चर्चा है ।

इस तरह प्रायः सारा हिंदू-साहित्य भगवान्-शंकरके  
यशःकीर्तनसे भरा पड़ा है ।

प्र०—'इसी तरह क्या सारा हिंदू-साहित्य भगवान्  
विष्णुके उत्कर्षसे नहीं भरा पड़ा है ? कठ्र शैवपुराणमें  
भी तो भगवान् विष्णुका प्रतिपादन है । यह क्या  
वात है ?'

उ०—प्रस्तुत प्रसङ्गमें इस प्रश्नपर विस्तारार्थक  
विचार नहीं हो सकता । हम इतना ही कह देना यहाँ  
पर्याप्त समझते हैं कि सृष्टिसे परे परमात्मसत्ता एक ही  
है, जिसे परमब्रह्म, परमेश्वर या परमविष्णु अथवा चाहे  
जिस नामसे कहें, उसका निराकारत्व एक ही है, परंतु  
उसकी सगुण सत्ता त्रिगुणात्मिका होनेसे तीन गुणोंमें  
तीनों शक्तियोंके साथ व्यक्त होती है । भक्त जिस भाव-  
का उपासक होता है वही उसके लिये उत्तम दीक्षा है । दूसरे दो ख्य प उसके अर्थात् भासते हैं । वल्लुनः  
सत्ता एक ही है । एकाग्र दूसरेका उत्कर्ष भक्तोंके

हितार्थ भक्तभावनकी लीलामात्र है। यह वात प्रसङ्ग-प्रसङ्गपर अच्छी तरह सष्ठ शब्दोंमें व्यक्त कर दी गयी है कि ब्रिमूर्ति एक ही सत्ता है। इनमें भेद माननेवालों-की अधोगति होती है। इस प्रकार सारे हिंदू-साहित्यमें भिन्न-भिन्न नामोंसे एक ही परमात्म-सत्ताका प्रतिपादन है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इति श्रुतिः।

लिङ्गपुराणके तीसरे ही अध्यायमें कहा है कि भगवान् महेश्वर अलिङ्ग हैं। प्रकृति प्रधान ही लिङ्ग है, महेश्वर निर्गुण हैं। प्रकृति सगुण है। प्रकृति या लिङ्गके ही विकास और विस्तारसे विश्वकी सृष्टि होती है। सारा ब्रह्माण्ड लिङ्गके ही अनुरूप बनता है। ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिर्लिङ्ग अनन्त-कोटि हैं। सारी सृष्टि लिङ्गके ही अन्तर्गत है, लिङ्गमय है और अन्तमें लिङ्गमें ही सारी सृष्टिका लय भी होता है। इसी तरहका भाव स्कन्दपुराणके इस श्लोकसे व्यक्त होता है—

आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।  
आलयः सर्वदेवानां लयनालिङ्गमुच्यते ॥

आकाश लिङ्ग है, पृथिवी उसकी पीछिका है, सब देवताओंका आलय है। इसमें सबका लय होता है, इसीलिये इसे लिङ्ग कहते हैं।

आकाशको लिङ्ग कहा है, यह आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे बड़े महत्वकी उक्ति है। सम्भ्राति शर्मण्य-देशके ( जर्मनीके ) प्रसिद्ध विश्वविद्यात गणिताचार्य अल्बर्टे एंस्टैनने यह सिद्ध किया है कि अनन्त आकाश वक्र है, पर वलयके-से वक्रके अनुरूप है। देशमात्र वक्र है, जो कि लिङ्गका रूप है। देश, काल और वस्तु-इन्हीं तीन पदार्थोंसे यह सारा विश्व बना है। ये तीनों ही लिङ्गवत् वक्र हैं। उपादान जब वक्र हैं तो जितनी वस्तुएँ इन उपादानोंसे बनी हैं—विद्युत्कणों, परमाणुओं और अणुओंसे लेकर ब्रह्माण्डतक समूर्ग सृष्टि वक्र है, लिङ्गरूप है। वस्तुतः जिसे सीधी रेखा कहते हैं वह कर्दै अस्तित्व नहीं रखती, वह केवल अंश-मात्र है वक्रका।

एंस्टैनका सापेक्षवाद आज पाश्चात्य विज्ञानपर शासन कर रहा है, उसके अनुसार धरतीकी आकर्षण-शक्ति कर्दै वस्तु नहीं है। देशकी वक्रताके कारण ही वस्तुएँ गिरती हैं या लुढ़कती हैं। वस्तुकी मात्रा जिस पिण्डमें जितनी अधिक है, उतनी ही वक्रता उस पिण्डमें बड़ी हुई है इसीलिये उसमें उतना ही अधिक खिचाव देखनेमें आता है। वराह भगवान्‌का जोरोंसे दौड़ना लिखा है, गिरना नहीं। केतकीका पत्ता गिरता है परंतु अभी उस पिण्डके आधे-तक भी नहीं पहुँचा है जिसका विस्तार अनन्त है, जिसकी आधीसे भी कम दूरीतक गिरनेमें केतकच्छदको दस कल्प बीत गये हैं। आकाशकी अनन्तता तो इस लिङ्ग या पिण्डकी अपेक्षा अत्यधिक होगी और वह भी 'लिङ्ग' है। यह महान् ज्योतिर्लिङ्ग तो प्रकृतिका, आगेय वस्तुमात्राका एक विशाल समूह है, जिसका आकाशकी अपेक्षा आद्यन्त होनेपर भी जो ब्रह्मा और विष्णुके समान ईश्वरोंको भी अनादि-अनन्त है। निदान अनन्तकोटि विश्व लिङ्गमय है और विश्वोंसे परे सगुण परात्मर ब्रह्मका आकार भी लिङ्ग है। अतः सब शर्वमय है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सिद्ध है।

सृष्टिके आरम्भमें सर्वप्रथम ज्योतिर्मय लिङ्गका आविर्भाव उसके कर्ता और पाताके समुख हुआ है। परमात्म-सत्ता जो निर्गुण, निराकार, निर्विकार है, विवृत होकर इसी वक्राकारमें विकसित होती है जिसे चिह्नमात्र कह सकते हैं और इसी चिह्नके मूल रूपसे अनादि और अनन्त विविधताका विकास होता है। उस अर्द्ध और अरूप परमात्माकी मूर्ति और रूपका आविर्भाव इसी लिङ्ग-रूपमें हो सकता है।

यह लिङ्ग विदेवताले रुद्रका नहीं है। यह परात्मर परतम ब्रह्मका लिङ्ग है। देखिये स्वयं भगवान् विष्णु अपने श्रीमुखसे क्या कहते हैं—

स्वया त्वं सर्वजगतां रक्षिता सर्वदेहिनाम् ।  
हर्ता च सर्वभूतानां त्वां विनैवास्ति कोऽपरः ॥१३॥

अणूनामन्यणीयस्त्वं महास्त्वं महतमपि ।  
अन्तर्यहस्तवमेवैतज्जगदाक्रम्य वर्तसे ॥ १२ ॥  
निगमास्तव निःश्वासा विश्वं ते शिल्पैभवम् ।  
सत्यं त्वदीय एवासि ज्ञानमात्मा तव प्रभो ॥ १३ ॥  
अमरा दानवा दैत्याः सिद्धा विद्याधरा नराः ।

नगः

ग्राणिनः पश्चिणः शैलाः शिखिनोऽपि त्वमेव हि ॥ १४ ॥  
सर्वस्त्वमपर्वग्स्त्वं त्वमोङ्गारस्त्वमध्वरः ।  
त्वं योगस्त्वं परा संचित्किं त्वं न भवसीश्वर ॥ १५ ॥  
त्वमादिमन्यमन्तश्च तस्युषां जग्मुषामपि ।  
कालस्वरूपतां प्राप्य कलयस्यखिलं जगत् ॥ १६ ॥  
परेषाः परतः शास्ता सर्वानुग्राहकः शिवः ।  
स एव मे कथंकारं साक्षात्कृत्वति धूर्जटिः ॥ १७ ॥  
( स्क०पु० १ । ३ । २ । १४ )

शिवपुराणमें भी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डके छठे अध्यायमें भगवान् वायुदेवने शिवके लिङ्गस्वरूपका ऐसा ही उपनिषदुक्त परब्रह्मके सदृश ही वर्णन किया है ।

### ३—मैथुनी सृष्टिका आरम्भ

जगत्की सृष्टिमें मैथुनी सृष्टिका विकास पीछेका है । पुराणोंके अनुसार ब्रह्मजीने पहले मानसिक सृष्टिसे ही काम लिया । उन्होंने अपने मानसपुत्र इसीलिये उत्पन्न किये कि वे मानसी सृष्टिको ही बढ़ावें, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली । उनके मानसिक पुत्रोंमें प्रजाकी शृदिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी । भला, प्रजाकी शृदि वे क्यों करें ? इससे उन्हें क्या लाभ ? हानि अवश्य थी कि कर्मका बन्धन बढ़ता था, झंझट बढ़ता था, परमात्मा से या अद्यात्मसे दूरीकरण होता था । सनकादिको पसंद न आया । नारदको एक आँख न भाया । उन्होंने देखा कि संसार जितना ही बढ़ता है उतना ही भगवान्से दूर होता है, परंतु ब्रह्माका उद्देश्य तो संसारको बढ़ाना ही था । वे कैसे रुक् सकते थे ? उन्होंने सृष्टि-रचनाकी पीक्षा-प्र-पीक्षा की और पग-पगपर असफल हुए और प्रत्येक असफलतापर उन्होंने तपस्या की । तपस्या एकमात्र उपाय थी । जब जिस किसीको कोई मनोरथ होता उसकी

पूर्तिके लिये वह तपस्या करता । तपस्याकी निर्दिष्ट विधियाँ थीं और अधिकार-निर्धारण भी था । अविहित तपस्या फलवती नहीं होती थी । यह सब सही है, परंतु विहित तपस्या ही उस समय उपाय था । इस प्रसङ्गमें शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें पंद्रहवें अध्यायमें वायु भगवान् कहते हैं—

यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त वेधसः ।  
तदा मैथुनजां सृष्टि ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ १ ॥  
न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात् ।  
तेन मैथुनजां सृष्टि न शाशक पितामहः ॥ २ ॥  
ततः स विद्ये बुद्धिमर्थनिश्चयगमिनीम् ।  
प्रजानामेव बुद्धिमर्थं प्रधृव्यः परमेश्वरः ॥ ३ ॥  
प्रसादेन विना तस्य न वर्धरन्निमाः प्रजाः ।  
एवं संचिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥  
तदाद्या परमा शक्तिरनन्ता लोकभाविनी ।  
आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥ ५ ॥

×      ×      ×

तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम् ।  
संचिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः ॥ ७ ॥  
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः ।  
अविरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोप ह ॥ ८ ॥  
ततः केनचिदंशेन मूर्तिमाविद्य कामपि ।  
अर्धनारीश्वरो भूत्वा यत्यौ देवः स्वयं हरः ॥ ९ ॥  
तं दृष्टा परमं देवं तमसः परमव्ययम् ।  
अद्वितीयमनिर्देश्यमदश्यमकृतात्मभिः ॥ १० ॥  
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ।  
सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ॥ ११ ॥  
अप्रत्यक्ष्यमनाभासममेयमजरं शुचम् ।  
अचलं निर्गुणं शान्तमनन्तमहिमास्पदम् ॥ १२ ॥  
सर्वं सर्वदं सर्वं सदसदव्यक्तिवर्जितम् ।  
सर्वोपमाननिर्सुकं शरण्यं शाश्वतं शिवम् ॥ १३ ॥  
प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा समुत्थाय कृताङ्गिः ।

×      ×      ×

तुष्टाव देवं देवीं च सूक्ष्मार्थगोचरैः ॥ १५ ॥

×      ×      ×

सकलमुवनभूतभावनाभ्यां  
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम् ।  
नरवरयुवतीवपुर्वराभ्यां  
सततमहं प्रणतोऽस्मि शंकराभ्याम् ॥ ३५ ॥

जब फिर भी प्रजा न बढ़ी, तब ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिका ध्यान आया । पहले ईश्वरने खीकुल नहीं पैदा किया था । यह बात साधारण जीवोंकी समझमें आ ही नहीं सकती कि आरम्भमें सृष्टिके लिये कैसी असाधारण आवश्यकता थी । ब्रह्मामें भी वह असाधारण बुद्धि न थी । पूर्वकल्पकी सृष्टिसे उन्होंने पुरुष और स्त्रीकी रचना भी की तो भी उन्हें ठीक विधि न सूझी । इसलिये उन्होंने भगवान् शंकरके साथ-ही-साथ उनकी परमा शक्तिका भी ध्यान किया और महाघोर तप किया । भगवान् संतुष्ट हुए और अर्धनारीश्वररूपमें ब्रह्माके सामने प्रकट हुए । ब्रह्माजीने विनीत हो स्तुति की और नर-नारीरूप भगवान्को साक्षात् प्रणाम किया । भगवान् ने उन्हें वर दिया और साथ ही अपने शरीरसे देवी-देवकी रचना करने लगे ।

ससर्ज वपुषो भागादेवीं देववरो हरः ॥ ६ ॥  
यामाहुर्वद्वा विद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम् ।  
परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः ॥ ७ ॥  
यस्यां न खलु विद्यन्ते जन्मस्तुत्युजरादयः ।  
या भवानी भवस्याङ्गात्समाभिरभवत्किल ॥ ८ ॥  
यस्या वाचो निवर्त्तन्ते मनसा चेन्द्रियः सह ।  
सा भर्तुवपुषो भागाज्जातेव समदद्यत ॥ ९ ॥

×      ×      ×      ×

तां दद्वा परमेशान्तों सर्वलोकमहेश्वरीम् ।  
प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट् ॥ १४ ॥

×      ×      ×      ×

न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।  
तेन नारीकुलं स्त्राणं शक्तिर्मम न विद्यते ॥ १८ ॥

×      ×      ×      ×

त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम् ।  
चराचरविवृद्धर्थमंशेनैकेत सर्वगे ॥ २० ॥  
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि ।  
एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मणेनिना ॥ २१ ॥

शक्तिमेकां भुवोर्मध्यात्सर्जात्मसमप्रभाम् ।  
तामाह प्रहसन् प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः ॥ २२ ॥  
ब्रह्मणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेप्सितम् ।

×      ×      ×      ×

ब्रह्मणे वचनादेवी दक्षस्य दुहिताभवत् ।  
दस्त्वैवमतुलां शक्ति ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम् ॥ २४ ॥  
विवेश देहं देवस्य देवश्चान्तरधीयत ।  
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् द्वियां भोगः प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥  
प्रजासृष्टिश्च विग्रेन्द्रा मैथुनेन प्रवर्तते ।  
ब्रह्मापि प्राप सानन्दं संतोषं मुनिपुङ्गवाः ॥ २६ ॥

उस देवीको विद्वान् ‘ब्रह्म’ कहते हैं । (यहाँ ‘ब्रह्म’ नामसे पुरुष और प्रकृतिकी एकता स्पष्ट है ।) वह परमात्माकी शक्ति है । परमात्माके सभी विशेषण उसके लिये उपयुक्त हैं । वह अधीज्ञिनी देवी जब प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने स्तुति की और कहा कि इस सृष्टिको वारंवार बनाता हूँ पर इनकी बढ़न्ती नहीं होती, इसीलिये अब मैं मैथुनी सृष्टि करना चाहता हूँ । आपने पहले नारीकुल नहीं सिरजा, इसलिये मुझमें नारीकुल सिरजनेकी शक्ति नहीं है । आप सारी शक्तियोंकी खानि हैं, इसलिये मेरी प्रार्थना है कि अपने एक अंशसे चराचरकी बृद्धि करो और मेरे अंशसे उत्पन्न पुत्र दक्षकी कन्या होओ । इसपर उस ‘ब्रह्म’ ने अपनी भौंहोंके बीचसे एक शक्ति प्रकट की और आप ईश्वरमें लीन हो गयी । जो शक्ति ब्रह्माके लिये इस तरह प्रकटी, उसे भगवान् शंकरने आज्ञा दी कि तू तपस्याद्वारा ब्रह्माका आराधन करके उनके मनोरथोंको पूरा कर । यह कह भगवान् अन्तर्धान हो गये । ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिकी शक्ति मिली और तभीसे मैथुनधर्मद्वारा प्रजाकी सृष्टि प्रवृत्त हुई । भगवती दक्षकी कन्या सती हुई और मैथुनधर्मकी प्रवृत्ति-के लिये पहलें-पहल ब्रह्माजी अपने शरीरको ही विमक्त करके दहिने आवेसे स्वायम्भुव मनु और वायें आवेसे शतरूपा-रूपसे स्वयं प्रकट हुए और मानव-सृष्टिका प्रारम्भ किया । मनु और शतरूपाने भी तपस्या की और तब वे सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त हुए ।

सृष्टिकी कथा बहुत बड़ी है। सभी पुराण सर्ग और प्रतिसर्गकी कथा कहते हैं। यहाँ वह सब प्रयोजनीय नहीं है। हमने ऊपर अत्यावश्यक श्लोक उद्भृत किये हैं। ऊपर उसके भाव भी संक्षेपसे दिये हैं। सभी प्रसङ्गोंपर अवतरण देनेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जायगा। अर्धनारीश्वर-खपका लिङ्ग और पीठिकासे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सृष्टिके इस प्रसङ्गका महाभारत-अनुशासनपर्वके चौदहवें अध्यायमें इन्द्र और उपमन्युके संवादमें उपमन्युके इन वचनोंसे मिलान करनेपर मैथुनी सृष्टिसे अर्धनारीश्वरका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

सुरासुरुरुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हृतम् ।  
कस्य वान्यस्य रेतस्तद्येन हैमो गिरिः कृतः ॥ २१६ ॥  
दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोदृथ्य रेतसः ।  
कस्य चार्थं स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः ॥ २१७ ॥

\* \* \* \*

पुँलिङ्गं सर्वमीशानं ख्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम् ।  
द्वाभ्यां ततुभ्यां व्यासं हि चराचरमिदं जगत् ॥ २३५ ॥

‘देवों और असुरोंके गुरु आग्निके मुखमें आदिकालमें किसके वीर्यकी आहुति दी गयी? वह क्या किसी औरका वीर्य है जिससे सर्ण-सुमेरु बना है? लोकमें दिग्मवर और ऊर्ध्वरेता और कौन है? किसने अपनी शीको अर्धाङ्गिनी बनाया है और किसने कामको जीता है? ‘चराचरमें पुरुषमात्रको हर और श्री-मात्रको गौरी जानो, यह चराचर जगत् इन दोनों शरीरोंसे व्याप रहा है……।’

शैवपुराण तो साम्रादायिक ग्रन्थ समझे जाते हैं, परंतु महाभारत इतिहास है, उसे किसी साम्रादायिक पक्षपातसे कोई प्रयोजन नहीं है। उपमन्युका उपास्यान जिससे किंउपरका अंश अवतरित है, महाभारतकी विशेषता नहीं है। प्रायः सभी पुराणोंमें श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरितमें उपमन्युकी कथा है जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने

उपमन्युसे दीक्षा ली है, भगवान् शंकरके प्रीत्यर्थ बड़ी उग्र तपस्या की है और मनोवाञ्छित वर पाया है। इसी अध्यायके ये उद्भृत श्लोक पता देते हैं कि अर्धनारीश्वरने ब्रह्माजीको मैथुनी सृष्टिमें किस तरहकी सहायता दी? ब्रह्माजीने सारी सृष्टि कर डाली, परंतु सृष्टिकी वृद्धिका कोई उपाय न किया। जिनको सिरजा वे बने रहे, परंतु फिर! उनकी रक्षा भी होती रही। परंतु अपने आप वह सृष्टि बढ़े—ऐसा कोई उपाय न था। ब्रह्माजी अपनी असफलतापर झुँझलाये तो पिशाच-प्रेतादि उत्पन्न हो गये। क्रोध हुआ तो रुद्रोंकी उत्पत्ति हुई। इस तरह विविध भावोंसे विविध प्रकारकी सृष्टि होती गयी। नियमन कैसे हो? जब उन्होंने देखा कि हमारे मानस पुत्र वैरागी हुए जाते हैं, तब काम, लोभ, मोह आदि विकार उपजाये। जिनकी सृष्टि की, उनमें मिलनेकी कामना हुई, कलाकी प्रवृत्ति हुई, सुन्दर रचनाओंकी ओर मन लगा। प्रकृतिमें, संसारमें सौन्दर्य देखनेकी इच्छा हुई। सुन्दर मणि हों, सुन्दर पौधे हों, सुन्दर पशु-पक्षी हों, सुन्दर मनुष्य, ऋषि, देवता हों। सौन्दर्यपर मोह हुआ, उन सुन्दर वस्तुओंके संप्रहरण लोभ हुआ, इसी प्रकार मद-माल्सर्य आदि भी उत्पन्न हुए। परंतु इनसे भी वृद्धि न हुई तब लाचार हो वे अर्धनारीश्वर भगवान् शंकरकी शरण गये। उन्होंने शक्तिमान् और शक्तिमें मेलका मार्ग दिखाया। अब ब्रह्माजीने जिस काम-देवताकी रचना की थी, उससे काम लिया गया। काम अब मैथुनी सृष्टिके लिये प्रवर्तक हुआ। शक्तिने नारीको सुन्दर बनाया और कामने दोनोंको मिलनेके लिये प्रवृत्त किया। यों गर्भधानका कारण काम बना।

यह लिङ्गोपासना सृष्टिके परम रहस्यकी साक्षी है, प्रवृत्ति-मार्गका ठीक पता देती है और धीरे-धीरे जब इस उपासनाका रहस्य उपासकके अनुभवमें आता है तब वह लिङ्गोपासनासे ही यथार्थ निवृत्ति-मार्गपर आलड़ हो जाता है।

#### ४—पशुपति और लिङ्ग-शब्द तथा लिङ्गार्चन

भगवान् शंकरके अनेक नामोंमेंसे 'पशुपति' और 'लिङ्ग' ये दो समझमें कम आते हैं। 'पशुपति' शब्दपर शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें यों लिखा है—

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तत्त्वं पश्यति ।  
तौ पश्यति परः कथ्यित्ताद्युभौ तं न पश्यतः ॥६०॥  
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताञ्च पशादः परिकीर्तिताः ।  
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतत्त्विदर्शनम् ॥६१॥  
स एव वध्यते पाशौः सुखदुःखाशनः पशुः ।  
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ॥६२॥  
अश्वो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।  
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥६३॥

( अध्याय ५ )

'यह जीव शरीरको देखता है, शरीर जीवको नहीं देखता । दोनोंको कोई उनसे भी परे देखता है परंतु ये दोनों उसे नहीं देखते । ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक सभी पशु कहलाते हैं । सब पशुओंके लिये ही यह निर्दर्शन कहा है । यह मायापाशोंमें बँधा रहता है और सुख-दुःखरूपी चारा खाता है और भगवान् ( मदारी ) की लीलाओंका साधन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं । यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दुःखात्मक है और ईशकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमें जाता है ।'

इसलिये जीव 'पशु' है और उसका 'पति' ईश है, ब्रह्म है, इसलिये 'पशुपति' महेश्वरका एक नाम है ।

'लिङ्ग' शब्दका साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है । सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतिको भी लिङ्ग कहते हैं । देव-चिह्नके अर्थमें लिङ्ग-शब्द शिवजीके ही लिङ्गके लिये आता है । और प्रतिमाओंको मूर्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्तिमानके व्यानके अनुसार होता है, परंतु लिङ्गमें आकार या रूपका उल्लेखन नहीं है । वह चिह्नमात्र है और चिह्न भी पुरुषकी जनने-नियकान्सा है, जिसे लिङ्ग कहते हैं; परंतु स्कन्दपुराणमें

'ल्यनालिङ्गमुच्यते' कहा है अर्थात् ल्य या प्रल्य होता है इसीसे उसे 'लिङ्ग' कहते हैं । प्रल्यसे लिङ्गका क्या सम्बन्ध है ?

प्रल्यकी अर्थिमें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिङ्गमें समा जाता है । वेद-शास्त्रादि भी लिङ्गमें ही लीन हो जाते हैं । फिर सृष्टिके आदिमें लिङ्गसे ही सबके-सब प्रकट होते हैं । अतः 'ल्य' से ही लिङ्ग-शब्दका उद्भव ठीक ही है, उससे ल्य या प्रल्य होता है और उसीमें सम्पूर्ण विश्वका ल्य होता है । यह एक संयोगकी बात है कि 'लिङ्ग' शब्दके अनेक अर्थोंमें एक लोकप्रसिद्ध अर्थ अक्षील है । वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेना ही समीचीन माना जाता है । यौगिक अर्थमें कोई अक्षीलता नहीं रह जाती । इसके सिवा अक्षीलता तो प्रसङ्गसे आती है । विषयात्मक वर्णनमें जो अक्षील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित इशों जा सकता है । 'पशुपति' और 'लिङ्ग' शब्दका भी यही हाल है ।

लिङ्गार्चनमें अक्षीलताके भावकी कल्पना परम मूर्त्ति, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है ।

हमारे देशमें प्रायः सभी जगह पार्थिव-पूजा प्रचलित है । परंतु विशेष-विशेष स्थानोंमें पाषाणमय शिवलिङ्गकी भी स्थापना है । ये स्थावर मूर्त्तियाँ होती हैं । वाणलिङ्ग या सोने-चाँदीके छोटे लिङ्ग जड्हम कहलाते हैं । इन्हें प्राचीन पाशुपत सम्प्रदायवाले एवं आजकलके लिङ्गयत सम्प्रदायवाले पूजाके व्यवहारमें लानेके लिये अपने साथ लिये फिरते हैं अथवा बाँह या गलेमें बाँधे रहते हैं ।

लिङ्ग विविध द्रव्योंके बनाये जाते हैं । गरुडपुराणमें इसका अच्छा विस्तार है । उसमेंसे हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं ।

( १ ) गन्धलिङ्ग—दो भाग कर्त्त्वी, चार भाग चन्दन

और तीन भाग कुंकुमसे बनाते हैं। शिव-सायुज्यार्थ इसकी अर्चा की जाती है।

(२) पुष्पलिङ्ग—विविध सौरभमय फूलोंसे बनाकर पृथ्वीके आविष्ट्य-लाभके लिये पूजते हैं।

(३) गोशङ्खलिङ्ग—खच्छ कपिलवर्णके गोबरसे बनाकर पूजनेसे ऐश्वर्य मिलता है, परंतु जिसके लिये बनाया जाता है वह मर जाता है। मिठीपर गिरे गोब्रकत व्यवहार वर्जित है।

(४) रजोमयलिङ्ग—रजसे बनाकर पूजनेवाला विद्यधरत्व और फिर शिव-सायुज्य पाता है।

(५) यवगोधूमजालिज लिङ्ग—जौ, गेहूँ, चावलके आटेका बनाकर श्रीमुष्टि और पुत्रलाभके लिये पूजते हैं।

(६) सिताखण्डमय लिङ्ग—से आरोग्यलाभ होता है।

(७) लवणज लिङ्ग—हरताल, त्रिकटुको लवणमें मिलकर बनता है। इससे उत्तम प्रकारका वशीकरण होता है।

(८) तिलपिण्डोत्थ लिङ्ग—अभिलाषा सिद्ध करता है। इसी तरह—

(९-१२) तुषोत्थ लिङ्ग—मारणशील है, भस्मसय लिङ्ग—सर्वफलप्रद है, गुडोत्थ लिङ्ग—प्रीति वदानेवाला है और शर्करामय लिङ्ग—सुखप्रद है।

(१३-१४) वंशाङ्कुरमय लिङ्ग—वंशकर है, केश-स्थिलिङ्ग—सर्वशङ्खनाशक है।

(१५-१७) दुमोङ्गूत लिङ्ग—दारिद्र्यकर, पिण्डमय—विद्यप्रद और दधिदुर्घोङ्गव लिङ्ग—कीर्ति, लक्ष्मी और सुख देता है।

(१८-२१) धान्यज—धान्यप्रद, फलोत्थ—फलप्रद, धर्मीकलजात—मुक्तिप्रद, नवनीतज—कीर्ति और सौभाग्य देता है।

(२२-२७) दूर्वाकाण्डज—अपमृत्युनाशक, कर्पूरज

—मुक्तिप्रद, अयस्कान्तमणिज—सिद्धिप्रद, मौक्तिक—सौभाग्यकर, स्वर्णनिर्मित—महामुक्तिप्रद, रजत—भूतिवर्धक है।

(२८-३६) पित्तलज तथा कांस्यज—मुक्तिद, त्रपुज, आयसज और सीसकज—शङ्खनाशक होते हैं। अष्टधातुज—सर्वसिद्धिप्रद, अष्टलौहजात—कुष्ठनाशक, वैदूर्यज—शङ्खदर्पनाशक और स्फटिकलिङ्ग—सर्वकामप्रद है।

परंतु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, काँसा, लोहा—इन द्रव्योंके लिङ्गोंकी पूजा कलियुगमें वर्जित है। परेका शिवलिङ्ग विहित है और वह महान् ऐश्वर्य देता है।

लिङ्ग बनाकर उसका संस्कार करना पार्थिव लिङ्गोंको छोड़ और सब लिङ्गोंके लिये करना पड़ता है। सर्णपात्रमें दूधके अंदर तीन दिनोंतक रखकर फिर 'अयम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्रोंसे स्नान कराकर वेदीपर पार्वतीजीकी धोडशो-पचारसे पूजा करनी उचित है। फिर पात्रसे उठाकर लिङ्गको तीन दिन गङ्गाजलमें रखना होता है। फिर प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है।

पार्थिव लिङ्ग एक या दो तोला मिठी लेकर बनाते हैं। प्राविण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और शूद्र काली मिठी लेता है। परंतु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ कोई हर्ज नहीं, मिठी चाहे जैसी मिले।

लिङ्ग साधारणतया अंगुष्ठप्रमाणका बनाते हैं। पापाणादिके लिङ्ग मोटे और बड़े बनते हैं। लिङ्गसे दूनी चेदी और उसका आया योनिपीठ करना होता है। लिङ्गशी लम्बाई कम होनेसे शङ्खकी वृद्धि होती है। योनिपीठ बिना या मस्तकादि अङ्ग बिना लिङ्ग बनाना अद्युम है। पार्थिव लिङ्ग अपने अंगोंके एक पोरवेभर बनाना होता है। लिङ्ग सुलक्षण होना चाहिये। जलक्षण अमङ्गलकारी होता है।

लिङ्गमात्रकी पूजामें पार्वती-परमेश्वर दोनोंकी पूजा हो जाती है। लिङ्गके नूलमें दक्षा, मयदेशमें विद्योक्तिनाय

विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य (ॐ-रूप) महादेव स्थित हैं। वेदी महादेवी हैं और लिङ्ग महादेव हैं। अतः एक लिङ्गकी पूजा में सबकी पूजा हो जाती है—( लिङ्गपुराण )। पारद के लिङ्गका सबसे अधिक माहात्म्य है। पारद-शब्दमें प विष्णु, आ कालिका, र शिव, द ब्रह्म—इस तरह सभी मौजूद हैं। उसके बने लिङ्गकी पूजासे, जो जीवनमें एक बार भी की जाय, तो धन, ज्ञान, सिद्धि और ऐश्वर्य मिलते हैं।

यह तो लिङ्ग-निर्माणकी बात हुई। परंतु नर्मदादि नदियोंमें भी पाण्डित लिङ्ग मिलते हैं। नर्मदाका वाणलिङ्ग भुक्ति-मुक्ति दोनों देता है। वाणलिङ्गकी पूजा इन्द्रादि देवोंने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उसपर स्थापना करके पूजा करते हैं। वेदी ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदी या रूपेकी भी बनाते हैं।

परंतु नदीसे वाणलिङ्ग निकालकर पहले परीक्षा होती है, फिर संस्कार। पहले एक बार लिङ्गके बराबर चावल लेकर तौले। फिर दूसरी बार उसी चावलसे तौलनेपर लिङ्ग हल्का ठहरे तो गृहस्थोंके लिये वह लिङ्ग पूजनीय है। तीन, पाँच या सात बार तौलनेपर भी तौल बराबर निकले तो उस लिङ्गको जलमें फेंक दे। यदि तौलमें भारी निकले तो वह लिङ्ग उदासीनोंके लिये पूजनीय है—( सूतसंहिता )। तौलमें कमी-वेशी ही वाणलिङ्गकी पहचान है। जब वाणलिङ्ग होना निश्चित हो जाय तब संस्कार करना उचित है। संस्कारके बाद पूजा आरम्भ होती है। पहले सामान्य निधिसे गणेशादिकी पूजा होती है। फिर वाणलिङ्गको स्नान कराते हैं। स्नान कराकर, यह ध्यान-मन्त्र—

ॐ प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यं च महाप्रभम्।  
कामवाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्।  
शृङ्गारादिरसोष्टासं वाणाख्यं परमेश्वरम्॥

—पढ़कर मानसोपचारसे तथा फिरसे ध्यानकर पूजा

करनी होती है। भरसक घोडशोपचार पूजा होती है। फिर जप करके स्तवपाठ करनेका दस्तूर है। वाणलिङ्गकी पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

वाणलिङ्गके प्रकार बहुत हैं। विस्तारभयसे यहाँ हम उनका उल्लेख नहीं करते। हाँ, यह जानना आवश्यक है कि वाणलिङ्ग निन्द्य न हो। कर्कश होनेसे पुत्रदारादि-क्षय, चिपटा होनेसे गृहभंग, एकपार्वतीस्थित होनेसे पुत्रदारादिधनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होनेसे व्याधि, छिद्र होनेसे प्रदास और लिङ्गमें कर्णिका रहनेसे व्याधि होती है। ये निन्द्य लिङ्ग हैं, इनकी पूजा वर्जित है। तीक्ष्णाग्र, वकशीर्ष तथा त्रिकोण लिङ्ग भी वर्जित हैं। अति स्थूल, अति कृश, सख्य, भूषणयुक्त मोक्षार्थियोंके लिये हैं, गृहस्थोंके लिये वर्जित हैं।

मेघाम और कपिल वर्णका लिङ्ग शुभ है, परंतु गृहस्थ लघु या स्थूल कपिल वर्णवालेकी पूजा न करे। भैरवी तरह काला लिङ्ग सपीठ हो या अपीठ, संस्कृत हो या मन्त्रसंस्काररहित भी हो तो गृहस्थ उसकी पूजा कर सकता है। वाणलिङ्ग प्रायः कँवलगड़ेकी शकलका होता है। पकी जामुन या मुरगीके अण्डेके अनुरूप भी होता है। इवेत, नीला और शहदके रंगका भी होता है। ये ही लिङ्ग प्रशस्त हैं। इन्हें वाणलिङ्ग इसलिये कहते हैं कि वाणसुरने तपस्या करके महादेवजीसे वर पाया था कि वे पर्वतपर सर्वदा लिङ्गरूपमें प्रकट रहें। एक वाणलिङ्गकी पूजासे अनेक और लिङ्गोंकी पूजाका फल मिलता है।

### पार्थिव-पूजा

‘ॐ हराय नमः’ मन्त्रसे मिट्ठी लेकर ‘ॐ महेश्वराय नमः’ मन्त्रसे अंगूठेके पोरभरका लिङ्ग बनावे। तीन भागमें बाँटे। ऊपरीको लिङ्ग, मध्यको गौरीपीठ और नीचेके अंशको वेदी कहते हैं। दहिने या बायें किसी एक ही हाथसे लिङ्ग बनावे। असर्व दोनों द्वागा सवता है। लिङ्ग बन जाय तो उसके सिरपर नहीं-सी मिट्ठिर्या

गेली बनाकर रखती जाती है। यह वज्र है। पूजनेवाला कोई दूसरा हो तो शिवके गात्रपर हाथ रखकर 'ॐहराय नमः' और 'ॐहेश्वराय नमः' कहे। पूजाके समय षोडशोपचारकी सामग्रीमें चिल्पपत्र जरूरी है। पूजाके मध्येपर भस्म या मिट्टीका त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माला जरूर होनी चाहिये। आसमशुद्धि, जलशुद्धि, गणेशादि देवताओंकी पूजा करके इस प्रकार भगवान् शंकरका धान करे—

ॐयायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिमं चारचन्द्रावतंसं  
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्कं परशुमुगवरभीतिहस्तं प्रसन्नम्।  
पशासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः व्याघ्रकूर्चिं वसानं  
विश्वाद्यं विश्ववीजं निरिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

यह ध्यान पढ़कर मानसोपचारसे पूजन करे, फिर वही ध्यान-पाठ करके लिङ्गके मस्तकपर छल रखे। तब 'ॐगिनाकृष्ण, इहागच्छ, इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह तिष्ठ, इह संनिवेहि, इह संनिधेहि, इह संनिरुद्धयस्त्, इह संनिरुद्धयस्त्, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहण।' इस प्रकार आवाहनादि करे। आवाहनादि पाँच मुद्रा दिखाकर करते हैं। पीछे 'ॐशूलपाणे, इह सुप्रतिष्ठितो भव' मन्त्रसे लिङ्ग-प्रतिष्ठा करे। फिर 'ॐपशुपतये नमः' मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तकपर जल चढ़ाये। फिर मस्तकपरका वज्र फेंककर चार अरवा चावल चढ़ाये। फिर पाठादि दशोपचार 'ॐ एतत् पादम् ॐ नमः शिवाय नमः।' 'इदमर्थम् ॐ नमः शिवाय नमः।' इत्यादि क्रमसे मन्त्रके साथ करे। शिवके अर्धमें केला और बेलपत्र देना होता है और स्नानके पहले मधुपर्क। इसके बाद शिवकी अष्टमूर्तिकी पूजा करनी होती है। गन्ध-पुष्प लेकर पूर्वसे लेकर उत्तरावत्तीं मार्गसे आठवीं दिशा अग्निकोणपर आकर समाप्त करना होगा। 'एते गन्धपुष्पे ॐ सर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' ( पूर्व )। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भवाय जलमूर्तये नमः' ( इशान )। 'एते गन्धपुष्पे ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः' ( उत्तर )। 'एते

गन्धपुष्पे ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः' ( वायव्य )। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः' ( पश्चिम )। 'एते गन्धपुष्पे ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः' ( नैऋत्य )। 'एते गन्धपुष्पे ॐ महादेवाय सौममूर्तये नमः' ( दक्षिण )। 'एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः' ( अग्निकोण )। इस तरह अष्टमूर्तिपूजाके अनन्तर यथाशक्ति जप करे, फिर जप और पूजाका भी विसर्जन 'गुह्यातिगुह्या' इत्यादि मन्त्रोंसे करे। फिर दहिने हाथका अंगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा 'बम् बम्' शब्द करते हुए दहिना गाल बजाये। अब अन्तमें महिनस्तोत्र या और कोई शिव-स्तुति पढ़ना आवश्यक है। अब प्रणाम करके दहिने हाथसे अर्धजलसे आत्म-समर्पण करके लिङ्गके मस्तकपर थोड़ा जल चढ़ाये और कृताञ्छलि हो क्षमा-प्रार्थना करे।

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।  
विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर॥

इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करके विसर्जन करना होता है। ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बनाकर पीछे संहारमुद्राद्वारा एक निर्मल्यपुष्प सूँघते हुए उस त्रिकोण-मण्डलके ऊपर डाल देना होता है। इस बड़ी ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान् शंकरने मेरे हृत-कमलमें प्रवेश किया है। इसके बाद 'एते गन्धपुष्पे ॐ चण्डेश्वराय नमः।' 'ॐ महादेव क्षमस्तु' कहकर शिवको ले मण्डलके ऊपर रख देना होता है।

#### ५-ज्योतिर्लिङ्गानि

शैवपुराणोंमें वारह ज्योतिर्लिङ्गोंका उल्लेख है। काशी-धामके विश्वेश्वरलिङ्ग इन सबमें प्रधान हैं। इनका नाम सबसे पहले लिया जाता है। और गजेवके समयमें मुसल्मानोंके उपद्रवसे वह ज्योतिर्लिङ्ग ज्ञानवार्षिके भीतर छुरक्षित रहा। बदरिकाश्रममें केदारेश्वर दूसरे हैं। कृष्णके तटवर्तीं श्रीशैलपर मण्डिकार्जुन तीसरे हैं। वहाँ भीमशंकर चौथे हैं। काशी-प्रदेशके ओंकारमें अमरेश्वर या अम-

नाथ पाँचवें हैं। उजयिनीमें महाकालेश्वर छठे हैं। महाकालेश्वरकी मूर्तिको अलतमशा बादशाहने शक ११५८में तोड़ डाला था। सूरत या सौराष्ट्रदेशमें सोमनाथके मन्दिरको संवत् १०८१ में महसूद गजनवीने नष्ट किया और ढट ले गया। यह सातवें हैं। चिताभूम ज्ञारखण्डमें वैद्यनाथजी आठवें हैं। औड़देशमें नागनाथ नवें हैं। शिवालयमें घूरमेश (या शैवालमें सुषमेश) दसवें हैं। ब्रह्मगिरियें ब्र्यम्बकनाथ एवरहवें हैं। सेतुबन्धमें रामेश्वर बारहवें हैं। शिवपुराण उत्तरखण्डके तीसरे अध्यायमें उपर्युक्त नाम दिये हुए हैं। परंतु 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र' प्रसिद्ध है। उसमें कावेरी और नर्मदासङ्गमपर मान्यातापुरमें ओंकारेश्वर नाम लिङ्गको चौथा बताया है। सहाद्रिकी चोटीपर गोदावरीके किनारे ब्र्यम्बकनाथका पता बताया है। भीमशंकरका ठीक पता वहाँ भी नहीं लिखते।

इलापुरीमें घूरमेश्वरकी जगह धृष्णेश्वरको बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग बताया है। इन स्थानोंका ठीक पता लगाना सतत्र विषय है।

लिङ्गसम्बन्धी साहित्य इतना विशाल है कि उसका सार भी यहाँ इस लेखमें सम्भव नहीं है, परंतु जिन बातोंके जाननेका शिवभक्तोंको साधारणतया कुत्थल रहता है, संक्षेपमें उन विषयोंकी थोड़ी-सी जानकारी पिछले पृष्ठोंसे यदि पाठकोंको हो जाय तो इन पंक्तियोंका लेखक अपनेको कृतकृत्य समझेगा। यदि यह कृतकृत्यता उसे न भी प्राप्त हुई तो इसमें तो संदेह नहीं कि जगद्गुरु जगदीश्वर मदीयगुरु महेश्वर भगवान् शंकरके गुण-कीर्तनका उसे अलभ्य लाभ और कल्याणके साथ-ही-साथ सहदय पाठकोंका और लेखकका परम कल्याण हुआ।\*



## शिव-तत्त्व

( लेखक—स० श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी०ए०, बी०एल०, बी०एस्-सी०, एम०आर०इ०इ०, एम०आई०ई० )

देवाधिदेव महादेवके विषयमें सम्प्रकृत्यपसे आलोचना करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है, यही सब शास्त्रोंका सिद्धान्त है। पूर्णका वर्णन ही क्या किया जा सकता है? हम भी गन्धर्वराज पुष्पदन्तके शब्दोंमें सर्वप्रथम यही कहते हैं—

महिमः पारं ते परमविदुषो यद्यसद्वशी  
स्तुतिर्ब्रह्मादीनाभिपि तद्वसन्नास्त्वयि गिरः ।  
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्  
ममाप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ॥

‘हे शिव! मुझ-जैसे अङ्ग पुरुषसे तुम्हारी महिमा यदि पूर्णस्त्रपेण व्यक्त करके नहीं कही गयी है तो मैं यह कहूँगा कि ब्रह्मादि भी तुम्हारी महिमाको व्यक्त करनेमें समर्य नहीं हो सके हैं, मेरी तो विसात ही क्या है? किंतु अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा विषय कहनेमें यदि दोष न होता हो तो मैं भी यथासाध्य तुम्हारे गुणोंका

वर्णन अपनी बुद्धिके अनुसार करता हूँ, इसमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।’ मेरी प्रार्थना है—

आमि शिखि नाइ किछु बूझि नाइ किछु  
दाओ हे शिखाये बुझाये ।

अर्थात् ‘न तो मैंने कुछ सीखा है और न मैं कुछ समझता ही हूँ। तुम्हीं सिखा दो, समझा दो।’ मेरी इच्छा होती है कि माता पार्वतीने ब्रह्मचारि-वेशधारी शंकरके निकट शिवकी जो व्याख्या की है उसे ज्ञात्य समझकर नीचे उद्धृत करूँ—

स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः ।  
सर्वं जगद्वयस्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः ॥  
गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्विभर्ति सः ।  
अवद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव स तत्पतिः ॥  
इमशानं चापि संसारस्तद्वासी शृण्यार्थिमाम् ।  
भूतयः कथिता भृतिस्तां विभर्ति स भृतिभृत् ॥

\* ‘शिवाङ्क’ में प्रकाशित स्वर्गीय श्रीगौड़जीके महत्वपूर्ण लेखका कुछ अंश।

वृथो धर्म इति प्रोक्तस्तमारुदस्ततो वृथी ।  
सर्पश्च दोषाः क्रोधाद्यास्तान् विभर्ति जगन्मयः ॥  
नानाविधान् कर्मयोगाङ्गास्तारूपान् विभर्ति सः ।  
वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरस्त्रियुणं वपुः ॥  
भस्तीकरोति तदेवस्त्रिपुरप्रस्ततः स्मृतः ।  
पवित्रिधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः ॥

‘वे समस्त जगत्के आदि हैं, सुतरां उनके वंशका वृत्तान्त कौन जान सकता है ? समस्त जगत् उनका सख्य है, इसीलिये वे विवल हैं । वे त्रिगुणान्मक शूल धारण करते हैं, इसीलिये उन्हें ‘शूली’ कहते हैं । भूत सर्वथा संसारमें बद्ध नहीं हैं; बल्कि पूर्णतः मुक्त हैं, इसीलिये वे मुक्त भूतगणोंके अधिपति हैं । यह संसार ही मशानक्षेत्र है, वे प्रार्थियोंके प्रति कृपावशतः इस इमशानमें वास करते हैं । उनकी विभूति ही सबको प्रकृत विभूति ( ऐश्वर्य ) प्रदान करती है, इसीलिये वे इस विभूतिको अपने शरीरपर धारण करते हैं । धर्म ही वृथ है और उसपर आरुद्ध होनेके कारण वह ‘वृप्तवाहन’ कहलाते हैं । क्रोधादि दोषसमूह ही सर्प हैं, जगन्मय महेश्वर इन सबको वशीभूत कर भूयणके रूपमें धारण करते हैं । विविध कर्मकलाप ही जटा हैं, वह इन सबको धारण करते हैं । वेदत्रयी उनके तीन नेत्र हैं । त्रिगुणमय शरीर ही त्रिपुरपदवाच्य है, इसको भस्मसात् करनेके कारण ही वह ‘त्रिपुरम्’ कहलाते हैं । जो सूक्ष्मदर्शी पुरुष इस प्रकारके महादेवको जानते हैं वे उन हरका भजन क्यों न करेंगे ?’

माँ पार्वतीके द्वारा वर्णित शिव उन्होंके निकट प्रकट होते हैं । हम इस रहस्यको क्या समझें ? साधारण नेत्रोंसे देखते हैं तो माझम होता है कि शिव सर्वशालकके चर्णनातीत लक्ष्य हैं । काण्ट ( Kant ) के देश और काल ( Time and Space ) से अतीत 'Ding an sich' ( वस्तुतत्त्व ) हमारे शिव ही हैं । इसीलिये वे लक्ष्यकलके नामसे विल्यात हैं, दिगम्बर हैं—असम्य, अन्त्यातीय पुरुष अथवा राक्षस नहीं । भर्तृहरिने भी उन्हें

‘दिक्षालाघवच्छिन्न’ ( दिशा एवं काल आदिसे अनवच्छिन्न ) कहा है । श्रुति भी उन्हें ‘अप्रमेय’ और ‘अनाद्य’ कहती है—

अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम् ।  
( ब्रह्मबिन्दु० १४ । ५ । २ )

इसी कारण वह ‘स आदिः सर्वजगताम्’ हैं और उनके पिताका कोई पता नहीं बताया गया है । उन्होंके विषयमें यह कहा गया है—

‘सर्वकार्यधर्मचिलक्षणे ब्रह्मणि’  
( तैति० उ० भा० )

He forms the very supreme unity of all contradictions. ( Cardinal Nichola Causa )

इसी कारण माता पार्वतीने कहा है—‘सर्पश्च दोषाः क्रोधाद्याः’ इत्यादि । उनका प्रभुत्व असमग्र नहीं है अर्थात् वे Devil या Satan अथवा God ही नहीं, वे तो ‘शिवमद्वैतम्’ हैं—एकेश्वर, सर्वेश्वर हैं । शिव भिक्षुक हैं, यह सुनकर, जान पड़ता है, माता पार्वती सकुचा जाती हैं । परंतु मैं समझता हूँ कि वे हमारे मनकी ही भिक्षा माँगते हैं । अहा ! वे सर्वदा ही वंशीनिनादसे अथवा डमरू-ध्वनिसे हमारे मनको भिक्षा-रूपमें हरण करते हैं । हम उनको नहीं चाहते तथापि वे हमारे मनको चाहते हैं, क्योंकि वे अपना मन भक्तोंको देकर स्वयं भिक्षुक बन गये हैं । यही बात अन्यत्र भी देखनेमें आती है—

इत्यं वदति गोविन्दे विमला पद्मरातया ।  
मनोरथवती नाम भिक्षापात्रं समर्पिता ॥  
( काशीखण्ड ३० । १०२ )

तथा हम भी प्रार्थना करते हैं—

लक्ष्मीपते निगमतत्त्वविदाश्रयाय  
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।  
राधागृहीतमनसो मनसोऽस्ति दैन्यं  
दत्तं मया मम मनः रुपया गृहण ॥  
जब उपर्युक्त वर्णनके विषयमें कुछ निचार किया

जायगा । 'बोधसार'\* नामक ग्रन्थसे सर्वसाधारणके ज्ञानार्थ संक्षेपमें कहा जाता है ।

### दिगम्बरता-विचार

निरावरणविज्ञानखलूपो हि स्यं हरः ।  
स्वैरं चरति संसारे तेन प्रोक्तो दिगम्बरः ॥

जो कारणाविद्या जीवको अपने ब्रह्मत्वकी उपलब्धि नहीं करने देती, उस अविद्याका लेशमात्र भी परमात्मा शिव गुरुमें स्वभावतः ही नहीं रह सकता, क्योंकि वे समष्टि-व्यष्टि देहत्रयरूप प्रपञ्चके विधि-नियेधसे अतीत हैं । इसी कारण वे 'दिगम्बर' कहलाते हैं । उनकी इस दिगम्बरताको बेसमझ लोग 'नानता' कह बैठते हैं ।

### भसोदधूलन-विचार

ज्ञानाद्विः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते किल ।  
तेनैव भस्मना गात्रमुदधूलयति धूर्जटिः ॥

देह-संबलित चिदामासमें 'मैं' बुद्धिके द्वारा जो कर्म होते हैं वे संचित, प्रारम्भ और क्रियमाणरूपमें बन्धनका कारण बनते हैं, वही सब कर्म निष्क्रिय ब्रह्मरूपताकी प्राप्ति होनेपर शरीरान्तर ( पुनर्जन्म ) के उत्पादनमें असमर्थ हो जाते हैं और इसलिये भस्मके सदृश अकिञ्चित्कर हो जाते हैं—यह बात गीता आदि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है । शिवके असुरविमर्दन तथा विश्वसंहारादि कर्म उसी प्रकार अकिञ्चित्कर हैं । इसी कर्मके द्वारा आवृत होकर वे लोकदृष्टिमें आविर्भूत होते हैं । इसी कारण वे मूढ़जनोंके निकट भस्मावृततया प्रतिपादित होते हैं ।

\* 'बोधसार' ग्रन्थ महात्मा श्रीनरहस्यामीकृत है । वहुत उत्तम ग्रन्थ है । इसका हिंदी-भाषान्तर पं० रामाकृतार्जी विद्याभास्कर शास्त्रोने किया है और उसे ठा० कायमसिंहजीने प्रकाशित किया है । उसका कुछ अंश कल्याणमें भी पहले छप चुका है । हिंदी-भाषान्तरसहित, ६२५ शृङ्खले ग्रन्थका मूल्य २।) है । साधकों और वेदान्तप्रेमी महानुभावोंको ग्रन्थ पढ़ना चाहिये । पहले यह ग्रन्थ—विद्याभास्कर उकड़िपो, चौक, नारणसीमें मिलता था ।

—समादक

भासते भिन्नभावानामपि भेदो न भसनि ।  
स्वस्वभावस्वभावेन भस्म भर्गस्य बहुभूम् ॥

'परस्पर भिन्न वस्तुएँ भी भस्मीभूत हो जानेपर एक-रूप ही भासती हैं, इसी कारण भस्म सब वस्तुओंकी एकरूपताका प्रतिपादक है । तुल्य स्वभाववाले 'भर्ग' अर्थात् जगद्वीज-भर्जक शिवके निकट आनन्ददायक है ।'

### जटाजूट-विचार

विश्रामोऽयं मुनीन्द्राणां पुरातनवटो हरः ।  
वेदान्तसांख्ययोगास्त्र्यास्तिष्ठस्तज्जटयः स्मृताः ॥

'यही हर अर्थात् अपरोक्ष परमात्मा पञ्चम्यादिभूमिका-रूप जीवन्मुक्तोंके विश्रामस्थान, पुरातन वटवृक्षस्तरूप हैं । वेदान्त, सांख्य और योग—ये तीन उस वटवृक्षकी जटाके रूपमें शिरोभूषण हैं । शिवके जटाजूटका यही तात्पर्य है ।'

### त्रिनेत्रता-विचार

आप्यायनस्तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत ।  
सोमसूर्यान्निनयनविनेत्रस्तेन शंकरः ॥

'शंकर चन्द्रके समान जगदानन्ददायक, सूर्यके समान अज्ञानतमोनाशक तथा अग्निके समान रागादि दोषोंके दहनकर्ता हैं । इसी कारण चन्द्रसूर्यान्निनयन अथवा त्रिनेत्र कहकर उनका वर्णन किया जाता है ।'

### भुजगभूषणता-विचार

योगिनः पवनाहारास्तथा गिरिविलेशयाः ।  
निजरूपे धृतास्तेन भुजङ्गाभरणो हरः ॥

'योगिजन सर्पके समान वायुभक्षण कर प्राणधारण करते हैं तथा पर्वतीय गुहाओंमें रहते हैं । 'विविक्तसेवी' एवं 'लघ्वाशी' होनेके कारण वे शिवको इतने प्रिय हैं कि वे इन योगिजनोंको अपने अङ्गका भूषण बनाये रखते हैं । इसी कारण शंकर 'भुजङ्गाभरण' के रूपमें वर्णित होते हैं ।'

### त्रिशूल-विचार

शान्तिवैराग्यवोद्यास्यैविभिरत्रैस्तरसिभिः ।  
त्रिगुणत्रिपुरं इन्ति भ्रिशूलेन त्रिलोकनः ॥

शान्ति अर्थात् उपरति, जो यम-नियमादिके अभ्यास, वित्तनिरोध तथा व्यवहारके संकोचद्वारा उत्पादित होती है।

वैराग्य अर्थात् दोषदर्शनके द्वारा रूप-रसादि सब विषयोंके त्यागकी इच्छा एवं भोग वस्तुके अभावमें बुद्धिकी अदीनता।

बोध अर्थात् श्रवणादिजनित सत्य-मिथ्या-विवेचन, जिसके द्वारा चिदात्मा और अहंकारकी एकतारूप प्रन्थिका अनुदय और विनाश होता है।

ये तीनों उपाय अज्ञान और अज्ञानके कार्यको शीघ्र ही मेदन करनेमें समर्थ होनेके कारण त्रिशूलके फलोंके साथ सादृश्यको प्राप्त होते हैं। इसी त्रिशूलके द्वारा विलोचन सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंका तथा उनके कार्यरूप रथूल, सूक्ष्म और कारण नामक देहत्रयका विनाश करते हैं, मिथ्यात्वका निश्चय करा उसमें अप्रतीति उपादन करते हैं।

### वृषभवाहन-विचार

ब्रह्माद्य यत्र नारुदास्तभारोहति शंकरः ।  
समाधि धर्ममेघार्थं तेनायं वृषवाहनः ॥

जिस धर्ममेघ नामक समाधिमें ब्रह्मादि कोई स्थित नहीं हो सकते, शंकर उसी समाधिमें आरूढ़ देखे जाते हैं। तीनी कारण शंकर 'वृषवाहन' कहलाते हैं। जिस प्रकार जन ही ब्रह्म है, ऐसा समझकर मनमें ब्रह्मबुद्धि करके उपासना की जाती है, इसी प्रकार नन्दीवृष्टमें धर्ममेघ-समाधि-बुद्धि एवं शिवमें ब्रह्मभिन्न-प्रत्यात्मगुरु-बुद्धि करके उपासना करनी चाहिये। समाधिद्वारा बुद्धिका साक्षात्कार ही जानेपर निरोध-समाधिद्वारा चैतन्यमात्राधिगम होनेसे वह बुद्धि जब पुरुषक्विविक प्रज्ञा बनती है तब उसे 'विवेक-स्थाप्ति' कहते हैं। इस प्रकारकी विवेक-रूपातिसे रूपता-सिद्धि उत्पन्न होती है। ब्रह्मवेत्ता जब इस सर्वज्ञता-सिद्धिके प्रति भी आसक्तिरहित हो जाता है तब विवेक-स्थाप्ति पूर्णताको प्राप्त होती है। इस प्रकारकी समाधिको

'धर्ममेघ' कहते हैं। मेघ जिस प्रकार वारिवर्षण करते हैं, वह समाधि भी उसी प्रकार परम धर्मका वर्षण करती है, अर्थात् उस अवस्थामें साधक बिना प्रयत्नके ही कृतकृत्य हो जाता है।

### श्मशान-विचार

नित्यं क्रीडति यत्रायं स्वयं संसारभैरवः ।  
तत्र श्मशाने संसारे शिवः सर्वत्र हृश्यते ॥

स्वतःसिद्ध प्रत्यगात्मस्वरूप, ज्ञानिजन-प्रत्यक्ष शंकर सर्वजगत्के लयके अधिष्ठान हैं। इसी कारण वे सबके भयका कारण बन संसारमें नित्य-क्रीडा करते हैं। इस श्मशानवत् अमङ्गलरूप संसारमें सर्वदा और सब पदार्थोंमें वे ज्ञानिजनोंको दृष्टिगोचर होते हैं। उपासनाके लिये संसारमें श्मशान-दृष्टि करनी चाहिये।

### गण-विचार

आनन्दसागरः शम्भुस्तच्छकिर्द्रव उच्यते ।  
शीकरा इव सामुद्रास्तदानन्दकणा गणाः ॥

शम्भु चतुर्विध ( विद्यानन्द चार प्रकारका होता है— ( १ ) दुःखाभाव या दुःखनाश, ( २ ) सर्वकामावासि, ( ३ ) कृतकृत्यता तथा ( ४ ) प्राप्तप्राप्तव्यता ) विद्यानन्दके समुद्रके समान हैं। मुनिगण शक्तिको या जगदुत्पादन-सामर्थ्यको इस सागरके जलरूपमें वर्गन करते हैं। समुद्रके शीकरोंके समान इस आनन्द-समुद्रके समस्त क्षुद्र अंशोंको अर्थात् विवित प्रकारके विद्यानन्दको, शिवके सांनिध्य और अन्तरङ्गताके कारण, गण या सेवक समझना चाहिये। अर्थात् उपासनाके लिये गणोंकी विद्यानन्दरूपताका चिन्तन करना चाहिये।

जगद्विलक्षणः स्वामी स्वस्पाकुतिलक्षणैः ।  
जगद्विलक्षणा पद्म गणास्तस्य किमद्गुतम् ॥

जब स्वामी स्वयं ही लरूप, आङ्गृति और लक्षणसे सृष्टिसे विलक्षण हैं, तब उनके गण या सेवकगण अद्वृत लभावनाले हों, इसमें जाश्र्व वी क्या है? भावाद्य

यह है कि सचिदानन्दस्वरूप शिव अस्तु, जड़ और दुःखरूप जगत्-ग्रामश्चके विपरीत स्वभाववाले होनेके कारण उनके सेवक—विद्यानन्दादि भी विषयानन्दसे विपरीत स्वभाववाले अवश्य होंगे ।

इस प्रकार शिवके साधारण, प्रचलित तथा ध्यानमें वर्णित समस्त विषय शास्त्रोंमें विवेचित हुए हैं । लेखके बढ़ जानेके भयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया जाता ।

कोई ऐसा विचार कर सकते हैं कि यदि तत्वतः शिव परमात्माके स्वरूप हैं तो उनका इस प्रचलित भावमें ध्यान क्यों किया जाता है ? बात यह है कि अधिकारिमेदसे कार्य-कारण-भेद होता है । परंतु—  
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पर्यसामर्णव इव ।

अर्थात् जिस प्रकारसे नाना प्रकारके नदी-नाले नाना मार्गसे समुद्रमें ही जाते हैं, उसी प्रकार भक्त चाहे जिस भावसे भक्ति करे, तुम्हीं उसके गन्तव्य स्थान हो । कोई मार्ग तुमसे विपरीत नहीं है तथा कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें तुम शिव-स्वरूपसे विद्यमान न हो ।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पर्वनस्त्वं हुतवह-  
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।  
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रति गिरं  
न विद्वस्त्वं तत्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि ॥

अतएव उनका प्रचलित भावसे विचार करनेमें ही क्या दोष है ? वे भावमय हैं, भाव ही देखते हैं । वे अमूर्त हैं, भक्तके लिये मूर्ति धारण करते हैं । यही देखता हूँ—

सत्यं विद्यतुं निजभृत्यभापितं  
व्याप्तिं च सर्वेष्वसिलेपु चात्मनः ।  
अद्वद्यतात्यद्वृतरूपमुद्वहन्  
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

चिन्मयस्याद्वितीयस्य विष्कलस्याशारीरिणः ।  
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥  
साकारका अवलम्बन करके ही निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी भावना की जाती है । साकारके बिना निराकार-में स्थितिलाभ नहीं होता । सब कुछ साकार ही दृष्टिगोचर होता है, परंतु अभ्यासके द्वारा निराकारकी उपलब्धि होती है तथा उसमें स्थिति प्राप्त की जाती है । भगवान् चिन्मय, अद्वितीय, कलारहित तथा रूपरहित होते हुए भी उपासकको कृतार्थ करनेके लिये उसके ध्येयरूपमें उपस्थित होते हैं । ब्रह्मणो रूपकल्पना-कर्त्तरि वष्टी । इसीको सपष्ट करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

सर्वेष्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः ।  
सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभूत्तिराकृतिः ॥  
( अग० सं० त० )

जो सर्वेष्वर, सर्वमय, सब भूतोंके हितमें लो रहनेवाले हैं, वही सबके उपकारके लिये निराकार होते हुए भी साकार हुए हैं । यह साकार रूप मनुष्यकी कल्पना नहीं है, भगवान् ही अपनी शक्तिसे रूप धारण करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे गीताके १६ वें अध्यायमें वर्णित देवी सम्पत्तिके लिये भगवान्से आत्म-निवेदन करनेपर तथा १२ वें अध्यायमें कहे हुए भक्तके लक्षणोंसे युक्त होनेपर आशुतोष शंकर साथकके निकट आविर्भूत होते हैं । ऐसा करनेसे ही शिवका रूप है या नहीं, पुराण सत्य हैं या असत्य इत्यादि नाना प्रकारके संदेह दूर होते हैं । केवल पुस्तक पढ़नेसे पुस्तकी विद्याके आगे कोई नहीं जा सकता । सद्गुरुके शरणागत हो अपने चरित्रको सुवराना तथा भगवान् शंकरकी कृपा प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ समझकर कार्य करनेसे शिव दया करते हैं । तव—

भिद्यन्ते हृदयग्रन्थिशिठ्डवन्ते सर्वसंशयाः ।  
श्रीयन्ते चास्य कर्मणि तस्मिन् दृप्ते परावरे ॥

## श्रीशिवचालीसा

दोहा

अज अनादि अविगत अलख, अकल अतुल अधिकार ।  
 बंदौं शिव-पद-युग-कमल अमल अतीव उदार ॥ १ ॥  
 आर्तिहरण सुखकरण शुभ भक्ति-सुक्ति-दातार ।  
 करौ अनुग्रह दीन लखि अपनो विरद विचार ॥ २ ॥  
 परथो पतित भवकूप महँ सहज नरक आगार ।  
 सहज सुहृद पावन-पतित, सहजहि लेहु उबार ॥ ३ ॥  
 पलक-पलक आशा भरथो, रह्यो सु-बाट निहार ।  
 गरौ तुरंत स्वभाववश, नेक न करौ अद्यार ॥ ४ ॥  
 जय शिवशंकर औंदरदानी ।  
 जय गिरितनया मातु भवानी ॥ ५ ॥  
 सर्वोत्तम योगी योगेश्वर ।  
 सर्वलोक-ईश्वर-परमेश्वर ॥ ६ ॥  
 सब उर-प्रेरक सर्वनियन्ता ।  
 उपद्रष्टा भर्ता अनुमन्ता ॥ ७ ॥  
 पराकृति-पति अखिल विक्षपति ।  
 परब्रह्म परधाम परमगति ॥ ८ ॥  
 सर्वातीत अनन्य सर्वगत ।  
 निज स्वरूप महिमामें स्थित रत ॥ ९ ॥  
 अंगभूति-भूषित इमशानचर ।  
 भुजंगभूधण चन्द्रसुकुटधर ॥ १० ॥  
 बृष्टवाहन नंदीगण नायक ।  
 अखिल विक्षके भाग्य-विधायक ॥ ११ ॥  
 व्याघ्रचर्म परिधान मनोहर ।  
 रीछचर्म ओढे गिरिजावर ॥ १२ ॥  
 कर शिश्यल ढमरुवर राजत ।  
 अभय वरद मुद्रा शुभ साजत ॥ १३ ॥  
 तजु कर्मनौर उज्ज्वलतम ।  
 पिंगल जटाजूट सिर उत्तम ॥ १४ ॥  
 भाल त्रिपुण्ड्र मुण्डमालाधर ।  
 गल सद्राक्ष-माल शोभाकर ॥ १५ ॥  
 विधि-इरि-सद्द विविध वपुधारी ।  
 जने सूजन-पालन-ल्यकारी ॥ १६ ॥

तुम हो नित्य दयाके सागर ।  
 आशुतोष आनन्द-उज्जागर ॥ १३ ॥  
 अति दयालु भोले भण्डारी ।  
 अग-जग सबके मंगलकारी ॥ १४ ॥  
 सती-पार्वतीके प्राणेश्वर ।  
 स्कन्द-गणेश-जनक शिव सुखकर ॥ १५ ॥  
 हरि-हर एक रूप गुणशीला ।  
 करत स्वामि-सेवककी लीला ॥ १६ ॥  
 रहते दोउ पूजत पुजवावत ।  
 पूजा-पद्मति सबन्हि सिखावत ॥ १७ ॥  
 मारुति बन हरि-सेवा कीन्ही ।  
 रामेश्वर बन सेवा लीन्ही ॥ १८ ॥  
 जग-हित घोर हलाहल पीकर ।  
 बने सदाशिव नीलकंठ वर ॥ १९ ॥  
 असुरासुर शुचि वरद शुभंकर ।  
 असुरनिहन्ता प्रभु प्रलयंकर ॥ २० ॥  
 'नमः शिवाय' मन्त्र पञ्चाक्षर ।  
 जपत मिठत सब क्लेश भयंकर ॥ २१ ॥  
 जो नर-नारि रट शिव-शिव नित ।  
 तिनको शिव अतिकरत परम हित ॥ २२ ॥  
 श्रीकृष्ण तप कीन्हों भारी ।  
 है प्रसन्न वर दियो पुरारी ॥ २३ ॥  
 अर्जुन संग लडे किरात बन ।  
 दियो पाशुपत-अख्यमुदित मन ॥ २४ ॥  
 भक्तनके सब कष निवारे ।  
 दे निज भक्ति सबन्हि उद्धारे ॥ २५ ॥  
 शंखचूड जालंधर मते ।  
 दैत्य असंख्य प्राण हर तारे ॥ २६ ॥  
 अन्धकको गणपति पद दीन्हों ।  
 शुक शुक्रवध याहर कीन्हों ॥ २७ ॥  
 तेहि संजीवनि विद्या दीन्हों ।  
 वाणासुर गणराति-पति कीन्हों ॥ २८ ॥  
 अष्टमूर्ति पंचानन विम्बन ।  
 दादृश ज्योतिलिङ्ग उयोद्धिर्मय ॥ २९ ॥

सुवन चतुर्दश व्यापक रूपा ।  
अकथ अचिन्त्य असीम अनूपा ॥३०॥

काशी मरत जंतु अवलोकी ।  
देत मुक्तिपद करत अशोकी ॥३१॥

भक्त भगीरथकी रुचि रखी ।  
जटा बसी गंगा सुर साखी ॥३२॥

रुह अगस्त्य उपमन्त्रू ज्ञानी ।  
ऋषि दधीच आदिक विज्ञानी ॥३३॥

शिवरहस्य शिवज्ञान प्रचारक ।  
शिवहिं परम प्रिय लोकोद्धारक ॥३४॥

इनके शुभ सुमिरनते शंकर ।  
देत मुदित है अति दुर्लभ वर ॥३५॥

अति उदार करणावरुणालय ।  
हरण दैन्य-दारिद्र्य-दुःख-भय ॥३६॥

तुम्हरो भजन परम हितकारी ।  
विग्रह शुद्ध सब ही अधिकारी ॥३७॥

आलक शुद्ध नारिन्नर ध्यावहि ।  
ते अलभ्य शिवपदको पावहि ॥३८॥

भेदशून्य तुम सबके स्वामी ।  
सहज सुद्धद सेवक अनुगामी ॥३९॥

जो जन शरण तुम्हारी आवत ।  
सकल द्विरित तत्काल नशावत ॥४०॥

दोहा

वहन करौ तुम शीलवशा, निज जनकौ सब भार ।  
गनौ न अघ, अव-जातिकन्तु, सब विधि करौ सँभार ॥१॥

तुम्हरो शील स्वभाव लखि, जो न शरण तब होय ।  
तेहि सम कुठिल कुत्रिंज जन, नहि कुभाग्य जन कोय ॥२॥

दीन हीन अति मलिन मति, मैं अघ-ओघ अपार ।  
कृपा-अनल प्रगटौ तुरत, करौ पाप सब छार ॥३॥

कृपा-सुधा बरसाय पुनि, शीतल करौ पवित्र ।  
रासौ पदकमलनि सदा, हे कृपात्रके मित्र ! ॥४॥

## शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।  
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न'काराय नमः शिवाय ॥

मन्दाकिनीसालिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरग्रमथनाथ महेश्वराय ।  
मन्दारपुष्पवहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म'काराय नमः शिवाय ॥

शिवाय गौरीवदनाव्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।  
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि'काराय नमः शिवाय ॥

वशिष्ठकुरुमोद्धवगौतमाय मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।  
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व'काराय नमः शिवाय ॥

यज्ञस्यस्तपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।  
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य'काराय नमः शिवाय ॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ ।  
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

## श्रीशिव

( लेखक—ख० प० श्रीहनुमान् शर्मा )

( १ )

भगवान् शिव परम कल्याणमय हैं। उनके सरूपमें, लीलमें, साधनमें सर्वत्र परम कल्याणकारी कल्याण ही भरा है। अतएव कल्याणकारी कल्याणके कल्याणोच्छु समादर्कोंने कल्याणजीवी पाठकोंकी कल्याणी कामनासे प्रेरित होकर जो यह प्रयास किया है सो सर्वथा उचित ही है। किंतु स्थूल दृष्टिवालोंको शिवके लोकप्रसिद्ध वेश-भूषादि-में कल्याण नहीं दीखता। ठीक भी है—

नंगा शरीर, सिरपर जटा, गलेमें मुण्डमाल, झशानमें वास; राखसे रँगे हुए और संहारमें तत्पर कैसा कल्याण करते हैं। चरित-चंचमि भी कई घटनाएँ ऐसी हैं जिनमें अमङ्गल हुआ है। उदाहरणमें दक्षका यज्ञ विष्वंस करके उसका अमङ्गल किया। इन्द्रादिको हर्षित करनेवाले सृष्टि-बीज कामदेवको भस्म करके रतिको रुलाया और सृष्टिका कई बार संहार करके ब्रह्माको निराश किया।

ऐसी अवस्थामें शिवको 'कल्याण' कहना विलक्षण कल्याण है। किंतु तत्त्वज्ञ शिव-भक्त शिवको शिव ही नहीं, सदाशिव कहते हैं। और इसीलिये शिवाराधनासे शिव-सायुज्य मिलनेका सफल प्रयत्न किया जाता है।

( २ )

पुराणादिके पढ़नेसे प्रतीत होता है कि सृष्टिके ज्ञाने, बढ़ाने और विनाश करनेवाले विदेव हैं। उनमें वहा उसको बनाते, विष्णु उसको बढ़ाते और शिव उसका संहार करते हैं। ऐसा कई बार हुआ है और आगे भी होगा। विशेषता यह है कि ब्रह्मा कई बार प्रकट होते, रुषि रचते और शाल बनाते हैं और विष्णु यथावकाश सोते हैं। किंतु शिव और शक्ति सोते नहीं, सदा उपरिषेव होते हैं। उनको कव विश्राम मिलता है, वह जैके प्रणेता ( परमेश्वर ) की इच्छापूर है।

शालोंमें शिवके अनेकों नाम लिखे हैं। वे सब गुण-कर्मादिके अनुसार निर्दिष्ट किये गये हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें शिवका 'हृद' नाम था। प्रलयकारी, भयकारी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणोंको देखकर ही इस नामकी कल्याणा की गयी थी। वैदिककालके देव, दानव, महर्षि या मनुष्य मानते थे कि 'प्रलयकालके अवसरमें जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निदाह, प्रज्वलन, तडित्रवाह अथवा वज्रपातादि होते हैं, वे सब रुद्रके ही प्रतिरूप या प्रभाव हैं। अथवा खंयं रुद्र ही वायु, वह्नि या इन्द्रादिके द्वारा प्रलय करते हैं।

ऋग्, यजु और अथर्ववेदमें शिवके ईश, ईश्वर, ईशान, रुद्र, कपर्दी, शितकण्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वभूतेश आदि नाम निर्दिष्ट किये गये हैं। साथ ही उनको भयकारी, भयहारी, शान्तिवर्द्धक, महौपरिज्ञ, हानग्रद, खर्णसनिभ और चमकती हुई चाँदीके पहाड़-जैसा माना है तथा उनसे चुख-सम्पदा, संतान तथा सौभाग्यादि प्राप्त होनेकी प्रार्थना की है।

अकेले ऋग्वेदकी ६०—७० ऋचाओंमें शिवके नाम, काम, प्रभाव और सरूपादिका वर्णन है। यजुवेदमें क्रोधित शिवको शान्त करनेके लिये शतरुद्रका खतन्त्र विधान किया है। अथर्ववेदमें इनको 'सहस्रचक्रु' 'तिमायुव' 'वज्रायुव' और 'विचुन्द्रक्षि' आदि व्रतलाया है और सामवेदमें इनका 'अग्नि' सरूप स्वीकार किया है।

कैवल्य, अर्य, तैतिरीय, इवेतायतर और नागयण आदि उपनिषदोंमें शंख धाक्कायनाडि गृहसूत्रोंमें शिवको व्यम्बक, विद्युत्तम, त्रिपुरहन्ता, त्रिगुडवन्तक, दशवन्त्र, द्वृतिवान्, अछल्ति, व्यव्रक्षति, वृशकवन्त, वस्त्रहन्त, भिस्कृतम, लंगीतज्ज, पशुपति, शंभुविद्धि, शंगोग्यवान्द,

वंशवर्धक और नीलकण्ठ कहा है और इन सबकी सार्थकता तथा आदि भी बतलाये हैं।

शिव वामन और स्कन्द आदि पुराणोंमें तथा वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और कुमारसम्भव आदि अनेकों प्रन्थोंमें शिवके लोकोत्तर गुणोंका विस्तारके साथ वर्णन है। उनमें उनके अनेकों चरित्र, अनेकों आद्यान या अनेकों कथाएँ लिखी हैं और उनको परमेश्वर, सर्वेश्वर या अजन्मा माना है। प्रसङ्ग-वश यहाँ शिवके कुछ नाम, काम और चरित्रोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

( ३ )

विद्युत् ( विजली ) शिवका प्रहरण ( प्रहार करने का सावन ) है। त्रिपुर और मदनका दहन इसीसे किया था। शिवके तीसरे नेत्रसे विद्युतप्रवाह निर्गत होता है। अजेय शत्रुओंका संहार करना हो तभी वे उस नेत्रको खोलते हैं। मानो वर्तमान समयके विज्ञानकी विष्टज्ञाला तीसरा नेत्र है। संहारकारी अवसरोंमें उक्त विजली-को शूलाप्रमें नियुक्त करके भी कई बार प्रहार किया है। शिवालि और रुद्रालि उसीके रूपान्तर हैं।

शिव अपने सेवकोंपर न तो कभी क्रोध करते हैं और न उनकी हिंसा। वे सदैव मङ्गलकर और कृपालु रहते हैं। इसीसे 'शिव' नाम सार्थक हो सकता है। शत्रुनाशके लिये सदैव धनुष चड़ाये रहनेसे 'पिनाकी' और ब्रह्माके मस्तकको करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहलाते हैं। ब्रह्माके अनुचित व्यवहारको देखकर तन्काल सिर काट लिया और कई दिनोंतक उसे करमें लिये रहे।

आत्मलब्धको आरोग्य रखने, पशुओंतकको तन्दुरुस्त करने और प्रत्येक प्रकारकी महीयवियोंका ज्ञान होनेसे आप 'वैद्यनाथ' कहते हैं। धन-पुत्र और सुख-सौभाग्यादि देनेसे ही इनका 'सदाशिव' नाम विद्यात हुआ है। सदैव अचल-अटल या स्थिर रहनेसे 'स्थाणु' और शीत्र

प्रसन्न होनेसे 'आशुतोष' कहलाते हैं तथा अम्बिका अथवा पार्वतीके पति होनेसे आपने 'अम्बिकेश्वर' नाम पाया है।

एक बार परब्रह्मने स्थायं अलक्षित रहकर देवताओंको विजयी किया था। इससे देवता गर्वित हुए कि हम सबको जीत सकते हैं। परब्रह्मने उनका बमंड दूर करनेके लिये हाथमें एक तृण लेकर अग्निसे कहा कि इसे जलाओ, वह न जला सके। वरुण ( जल ) से कहा इसे बहाओ, वह न बहा सके और वायुसे कहा इसे उड़ाओ, किंतु वह न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र आये तब परब्रह्म अन्तर्घान हो गये और सुशोभना स्वर्णवर्ण 'अम्बिका' ने इनको दर्शन दिये।

अम्बिका ब्रह्मविद्या हैं। वे ही कात्यायनी, गौरी, पार्वती और भवानी आदि भी कहलाती हैं। भगवान् रुद्र अग्निखरूप हैं, यह पहले कहा जा चुका है। शाब्दमें अग्निकी सात जिह्वाएँ बतलायी हैं। वे सब शिवाके नामोंमें भी परिणत होती हैं। 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूमर्णा, सुलिङ्गिनी, विश्वरुचि'—ये सब नाम अग्निवर्ण दुर्गके भी हैं। जिस भाँति शिव अग्निवर्ण माने गये हैं, उसी भाँति शिवा भी स्थायं अग्निखरूप हैं। अतएव—

अग्निवर्ण रुद्रके अग्निवर्ण अम्बिका, कल्याणकारी शिवके कल्याणिनी पार्वती और देवाधिदेव महादेवके देव्यादिपूज्या महादेवी दुर्गा पल्नीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। इससे विदित होता है कि शिवने जैसा स्वरूप धारण किया है—शक्ति भी तद्रूपमें ही अवतरित होती है। उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवती, ईश्वरी, शिवा, भवानी, स्त्राणी, शर्वाणी, सर्वमङ्गला—ये सब शक्तिके ही रूपान्तर हैं।

( ४ )

वाल्मीकीमें निम्न प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश एवं

हैं उसी प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी भी एक हैं। अपने-अपने प्रसङ्ग या प्रयोजनवश इनको भिन्न-भिन्न मानते हैं अथवा कार्य और अवसरके अनुसार ये सब यथासमय भिन्न-भिन्न रूप धारणकर प्रयोग सिद्ध करती हैं।

इस विषयमें एक बार शिवने विष्णुसे पूछा था कि हम सब एक होते हुए भी अलग-अलग क्यों हैं? इसपर विष्णुने उत्तर दिया कि—‘संसारमें जिस समय कुछ भी नहीं रहता उस समय केवल परब्रह्म या उनका काल-नामक नित्यखरूप रहता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये उसी परब्रह्मके रूप हैं और ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी उस नित्यखरूपा ( प्रकृति ) अथवा शक्तिके रूपान्तर हैं।

जब स्त्रान्को सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब प्रकृति-को विशेषित करके अपने त्रिगुणात्मक अखण्ड शरीरको तीन भागोंमें बाँटकर ऊपरके भागको चतुर्भुख, चतुर्भुज, चतुर्भुज और कमलसंनिम रूपमें परिणित करते हैं। वही ‘ब्रह्मा’ हैं। मध्य-भागको एकमुख, चतुर्भुज, श्यामवर्ण और शङ्ख, चक्र, गदाधारीके रूपमें परिणित करते हैं। वही ‘विष्णु’ हैं। और अधोभागको पञ्चमुख, चतुर्भुज और स्फटिकसंनिम शुद्धरूपमें परिणित करते हैं। वही ‘शिव’ है। इन तीनोंमें उत्पत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्तिकी शक्ति भी युक्त कर देते हैं जिससे ये अपने-अपने कर्त्तव्य-पालनमें परायण हो जाते हैं और उससे विकास, वृद्धि, विनाश सदैव होते रहते हैं।

शिवके उपर्युक्त नामोंमें एक नाम ‘सर्वभूतेश’ भी आया है और सर्वेश, सर्वशक्तिमान् या सृष्टिसंहारक है ही। इन नामोंके तथ्यपर इष्टि दी जाय तो सर्वभूतेश-ज्ञ अर्थ पञ्चमहाभूत ( पृथिवी, अप्, तेज, वायु, अकाश ) के अधिपति या उनसे यथारुचि काम कराने-बल भी हो सकता है। यह स्पष्ट है कि संसारके प्रत्येक ग्रन्थी और पदार्थ पञ्चमहाभूतोंसे ही प्रकट होते हैं और

उनका यथायोग्य योग होता रहनेसे ही वे बढ़ते और जीवित रह सकते हैं। कदाचित् कुपित भूत बिगड़ जायें तो संसारके ग्रात्येक प्राणी और पदार्थका सर्वनाश हो सकता है। किंतु बिगड़ना भूतेशकी इच्छापर है। यही कारण है कि शिव ‘सर्वभूतेश’ होनेसे ही परमात्मा माने गये हैं, इसी प्रकार शिवाके नामोंमें भी एक नाम ‘स्फुलिङ्गिनी’ है।

‘स्फुलिङ्ग’ का असली खरूप प्रज्वलित अग्निकी ज्वालामय शिखाओंके साथ चमक-दमकसे उठती या उड़ती हुई चिनगरियोंके देखनेसे प्रतीत होता है अथवा वेगवान् बिजलीके महाप्रवाहमें किसी प्रकारका अवरोध आनेपर जब वह क्रोधित शक्तिकी तरह तड़कती-भड़कती और धोर नाद करती है, उस समय भी स्फुलिङ्गके खरूप-का आभास होता है। इसीलिये शिवके सम्बन्धमें कहा गया है कि—‘वह चाहें तो चराचर सृष्टिका क्षणभरमें नाश कर सकते हैं।’ अस्तु।

उपर्युक्त विवरणसे निझ पाठकोंको विदित हो सकता है कि—‘शिव क्या हैं, उनकी शक्ति कैसी है, संसार-का सर्वनाश या अमिट कल्याण करनेमें ये कहाँतक समर्थ हैं और प्राचीनकालमें इनका किस रूपमें और किस सीमातक प्रभाव फैला हुआ था।’

( ५ )

यहाँ इस बातके विचारकी विशेष अवश्यकता है कि ‘शिव जब अग्निमय, वायुमय या हिममय आदि हैं तो फिर पुराणोंके कथाओंमें इनके मानव-शरीरवारी-जैसे चरित्रोंका वर्णन किस प्रकार किया है? इसके लिये यह ध्यान रहना चाहिये कि प्रथम तो सर्वसमर्थ सभी तुछ कर सकते हैं। जिनमें संसारके बनाने या विगड़नेकी सामर्थ्य है वे स्वयं संसारी होकर भी सांसारिक व्यवहार बना सकते हैं और दूसरे किसी अप्रकट रूपवाले देव, देवी या उपास्यकी उपासना की जाय तो सर्वसाधारण

उसको किस रूपमें मानकर या उसके किस आधारको लेकर उसकी पूजा, उपासना या भक्ति कर सकते हैं ?

यह स्पष्ट ही है कि 'विद्यास ही फल देता है' और प्रत्येक देवभक्त अपने इष्टदेवसे अभीष्ट-सिद्धिके विद्यासपर ही उसकी आराधना करता है। ऐसी अवस्थामें शिव-भक्तोंके लिये पुराणोंमें उनके मानवशरीरधारियों-जैसे नाना-विष स्वरूपोंका वर्णन होना अस्यावश्यक ही है और उनके चाहुं चरित्रोंको पढ़ने, देखने या सुननेसे ही उसकी सेवा, पूजा या उपासनामें प्रवृत्ति हो सकती है।

पुराणोंमें शिवके अनेक चरित्र वर्णन किये गये हैं और उनके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ हैं, जिनसे शिवतत्त्वका ज्ञान होता है और उनमें भक्ति, प्रीति या अनुराग बढ़ता है। यह उसीका प्रभाव है कि भारतमें छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े असंख्य शिव-मन्दिर हैं और उनमें अगणित मनुष्य पूजा, उपासना या स्तोत्रपाठादि करते हैं। यदि शिव-मन्दिरोंकी गणना की जाय तो उनकी संख्या लाखोंपर और उनके उपासकोंकी संख्या करोड़ोंपर पहुँच सकती है।

अति क्षुद्र वस्ती या छोटी-सी ढानीमें भी गजभरके चबूतरेपर शिव-मूर्ति स्थापित देखी जाती है और उनकी उसी भक्ति-भाव या कामनासे पूजा होती है जिससे रामेश्वर, विश्वेश्वर, सोमेश्वर या तारकेश्वर आदिकी होती है। अन्तर यही है कि वहाँ विशाल मन्दिरोंके भव्य आयोजनोंसे हजारों-लाखों उपासक उपस्थित होते हैं और यहाँ संकीर्ण मन्दिरकी मव्यगत मूर्तिको एक, दो, दस या सौ-पचास ली-पुरुष पूजते हैं। जो फल सोमेश्वर या विश्वेश्वर देते हैं वही फल हमारे मातेश्वर, जागेश्वर या कामपूर्णेश्वर देते हैं। प्रधानता है भाव, भक्ति और विद्यासकी ओर आवश्यकता है एकान्त चिन्तन या चित्त-संलग्नताकी। अस्तु।

( ६ )

पुराणोंके गूदाशयगर्भित स्थलोंको साधारण मनुष्य सहज ही नहीं समझते। साथ ही विज्ञानभित्तिपर आखड़ किये हुए वर्णन भी वे नहीं समझ सकते। अधिकांश बातोंको सुनकर वे आर्थर्यचक्रित हो जाते हैं। यथा— 'हिंदू शिवलिङ्गका पूजन करते हैं और योनिमें उसकी स्थापना की जाती है।' यह विषय गहन है, वे जान नहीं सकते। लिङ्गोपासकोंके लिये यहाँ इसका किञ्चित् दिग्दर्शन हो जाना अच्छा है।

( १ ) किसी प्रकारके चिह्न या स्वरूपका नाम भी 'लिङ्ग' होता है। पञ्चभूतात्मक, स्थावरजंगमात्मक या सृष्टिरूपात्मक शिवका क्या स्वरूप होना चाहिये ? इसके समाधानार्थ शिवस्वरूपको 'लिङ्ग' रूपमें परिणत किया है। लिङ्ग कैसा होना चाहिये यह लिङ्गपुराण और लिङ्ग-चिन्तनतन्त्र आदिमें लिखा है।

( २ ) सृष्टिसंहारके बाद सम्पूर्ण जगत्-पिण्ड अण्डाकृतिमें हो जाता है और उसी अण्डसे सृष्टि विकसित होती है। विनाश और विकासमें शिवका प्राधान्य या रूपयोग है ही। अतः अण्डाकृति 'शिवलिङ्ग' ( शिवचिह्न ) सबके लिये हितकर एवं पूजनीय है।

( ३ ) शैवलोग सृष्टिचुत्पादनमें लिङ्गको प्रधान मानते हैं। उनका कथन है कि प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे ही सृष्टि आरम्भ होती है। ठीक ही है— मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंगादिमें भी सह-वासजनक सृष्टिका विद्यान देखा जाता है। प्रकृति और पुरुष, शिव और शक्ति हैं।

( ४ ) स्कन्दपुराणमें आकाशको लिङ्ग और पृथिवी-को पीठ माना है। यही सब देवताओंका आवश्य

है और इसीमें सबका लय होता है। इसीलिये इसे लिङ्ग कहते हैं।

( ५ ) लिङ्गपुराणमें दो प्रकारका लिङ्ग बताया है। अलिङ्ग ( बिना चिह्नवाले ) शिवसे लिङ्ग ( चिह्नवान् ) शिवकी उत्पत्ति हुई है। उसमें शिव लिङ्गी और शिवा लिङ्ग माने गये हैं।

( ६ ) अन्यत्र उसी पुराणमें यह भी लिखा है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु दोनों आपसमें अपनेको बड़ा बताने लगे। उनके बड़ेपनको प्रत्यक्ष करनेके लिये वहाँ ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग उपस्थित हुआ। वे दोनों उसको नीचे-अपरसे नापने लगे किंतु किसीको भी उसका थाह नहीं आया, तब वे स्वतः शान्त हो गये। जो कुछ भी हो, लिङ्गार्चन सबके लिये हितकर और आवश्यक बताया गया है और सभापेक्षा लिङ्गार्चनका महाफल लिखा है। यही कारण है कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी येन केन प्रकारेण शिव-लिङ्ग-पूजनका प्रचार पाया जाता है।

चीनमें 'हुवेड़-हिकुह', भ्रीकमें 'फालास', रोमकमें 'प्रियासस' और मक्केमें 'मक्केघर' के नामसे शिवलिङ्ग-का पूजन होता था। इनके सिवा विसमिसके सर्किसमें, इटालीके मन्दिरोंमें, टैलोसके गिरजामें तथा बुरजोके धर्म-मन्दिरोंमें अब भी शिवलिङ्ग मौजूद हैं। पृथ्वीके अन्यान्य स्थानोंमें बहुत-से शिवलिङ्ग पाये गये हैं। अनेक जगह अति विशाल या प्रलभ शिवलिङ्ग भी देखे गये हैं। चीनी परित्राजक हैनसांगने काशीमें १०० हाथ लम्बा 'तौंकेका शिवलिङ्ग' देखा था। अब वह नहीं मालूम होता। ग्रीकलोग विकसदेवके साथमें १२० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग ले जाते थे और सारिया-ग्रदेश तथा चाविलननार्ज्योंमें ३०० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग था। अत्यु।

भारतवर्षीय शिवलिङ्गोंमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सबसे विशेष विद्यात और सुपूजित हैं। शिवपुराणमें लिखा है कि यों तो मैं ( शिव ) सर्वव्यापी हूँ, किंतु द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें मेरा विशेषांश विद्यमान है।

( ७ )

शिव-मन्दिरोंमें पाषाण-निर्मित शिवलिङ्गोंकी अपेक्षा बाणलिङ्गोंकी विशेषता है। अधिकांश उपासक पृष्ठमय शिवलिङ्ग अथवा बाणलिङ्गकी स्ततन्त्र सेवा भी करते हैं। शाल्वोंमें अनेक प्रकारके शिवलिङ्ग-निर्माणका विश्वान, उनकी पूजा-विधि और तछुब्य विविध फल भी लिखे हैं।

( १ ) 'कस्तूरी' आदिसे निर्माण किये हुए शिव-लिङ्गका यथाविधि पूजन करनेसे शिव-सायुज्यका लाभ होता है। ( २ ) 'पुष्टमय' लिङ्गका पूजन करनेसे भूम्याधिपत्य प्राप्त होता है। ( ३ ) 'गो-शक्त' ( गोवर ) का लिङ्ग पूजनेसे ऐर्ष्यलाभ और जिसके लिये किया जाय उसकी मृत्यु होती है। गोवर अधर लिया जाय, पृथिवीपर न गिरे। ( ४ ) 'रजोमय' लिङ्ग जनेसे विद्या धारण होती है। ( ५ ) 'धान्य'—जौ, गेहूँ और चावल आदिके चूनसे बने हुए लिङ्गको पूजनेसे स्त्री, पुत्र और धन मिलता है। और ( ६ ) 'सिता' ( मिश्री ) के लिङ्गका पूजन करनेसे आरोग्य-लाभ होता है। इसी प्रकार ( ७ ) 'लवण' लिङ्गसे सौभाग्य, ( ८ ) 'पार्यिव' से कार्यसिद्धि, ( ९ ) 'भस्ममय' से सर्वफल, ( १० ) 'गुडिलिङ्ग' से प्रीतिवृद्धि, ( ११ ) 'वंशांकुरनिर्मित' लिङ्गसे वंशवृद्धि, ( १२ ) 'केशास्थि' निर्मित लिङ्गसे शत्रुनाश, ( १३ ) 'दुमोद्रूत' से दारिद्र्य, ( १४ ) 'दुग्धोद्वाव' से कीर्ति, लक्ष्मी और सुख, ( १५ ) 'फलोत्थ' से फललाभ, ( १६ ) 'धात्रीकल' से मुक्तिलाभ, ( १७ ) 'नवनीत' निर्मितसे कीर्ति तथा सौभाग्य, ( १८ ) 'कर्पूर' जनितसे मुक्तिलाभ, ( १९ ) 'सर्गमय' से महासुक्षि, ( २० ) 'रजत' से विभूति, ( २१ )

‘कांस्य’ तथा पितलमयसे सामान्य मोक्ष, ( २२ ) ‘सीसकादि’ से शत्रुनाश, ( २३ ) ‘अष्टधातुज’ से सर्वसिद्धि, ( २४ ) ‘मणिजात’ से अभिमाननाश और ( २५ ) ‘पारद’ निर्मितसे महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि लिङ्ग-निर्माण-विधि और उसकी पूजाविधि सम्यक्-प्रकारसे जानकर फिर सकाम शिव-पूजन करना चाहिये। उसका संक्षिप्त विधान यह है—

ब्राह्मण सफेद मिट्ठीको, क्षत्रिय लाल मिट्ठीको, वैश्य पीली मिट्ठीको और शूद्र काली मिट्ठीको भिंगोकर एक या दो तोला लेकर उसका अंगुष्ठप्रमाण शिवलिङ्ग और उससे दूनी बेदी तथा उससे आधी थोनिपीठ ( जलहरी ) बनावे। पाषाणादिका शिवलिङ्ग मोटा और रत्न अथवा धातुओंका यथाशक्ति इच्छानुसार मोटा या छोटा भी हो सकता है। लिङ्ग-सुडौल, अवण और सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण लिङ्ग अच्छा नहीं। पीठहीन और अंगुष्ठपर्व-प्रमाणसे छोटा-बड़ा भी शुभ नहीं। ऐसे लिङ्ग त्याग देने चाहिये।

लिङ्गार्चनमें ‘बाणलिङ्ग’ का विशेष महत्त्व माना गया है। वह सब प्रकारसे शुभ, सौम्य, सुलक्षण और श्रेय-स्कर होता है। प्रतिष्ठामें भी पाषाणलिङ्गकी अपेक्षा बाणलिङ्गका स्थापन सुगम है। नर्मदाके सभी कंकर ‘शंकर’ माने गये हैं। उनमें मनोरम मूर्तिको लेकर चावलोंसे तौलना चाहिये। तीन बार तौलनेपर भी चावल बढ़ते ही रहें तो वह मूर्ति वृद्धिकारक होती है। नर्मदानदीमें आध तोला वजनसे लेकर ८० मन वजनतककी मूर्तियाँ मिलती हैं। वे सब असंख्य संख्यामें स्वतः प्राप्त और स्वतः संघटित होती हैं। उनमें कई लिङ्ग बड़े ही अद्भुत, मनोहर, विलक्षण और सुन्दर होते हैं। उनके पूजनेसे महाफल मिलता है।

मिट्ठीकी, पाषाणकी या नर्मदाकी जिस किसी मूर्तिका पूजन करना हो, पूजा करनेसे पहले पवित्र दोकर शुद्धा-

सनपर पूर्वाभिसुख बैठे। जल, फल, छुल और गन्धाक्षत आदि यथायोग्य रख ले। पार्श्व-पूजन करना हो तो भीगी हुई मिट्ठीका कराङ्गुष्ठके ऊर्ध्व-पर्व-तुल्य शिवलिङ्ग बनावे। उसको जलहरीमें स्थापनकर प्राणप्रतिष्ठा करे और फिर घोड़श, दश या पञ्च यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करे। यदि बाणलिङ्ग मन्दिरोंकी चिरप्रतिष्ठित मूर्ति-का पूजन करना हो तो उसमें प्राणप्रतिष्ठा न करे। अस्तु, सब प्रकारकी शिव-पूजन-विधि अनेक ग्रन्थोंमें लिखी है। उसे देख लेना चाहिये।

( ८ )

शिवलिङ्गके दर्शनोंसे उनके आध्यात्मिक खरूपका आभास होता है और तत्त्वज्ञ उसमें भूमण्डलके प्रत्येक पदार्थका अनुभव करते हैं। किंतु सर्वसावारणके जानने-के लिये शिव-पर्वतीकी मानुषी मूर्ति ही उनके प्रत्येक चरित्रको प्रकट करनेवाली होती है। अतः चित्रादिमें उनका वही खरूप अङ्गित देखा जाता है जो उनके चरित्रोंमें वर्णित हुआ है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अत्यन्त प्राचीन कालमें शिव-भक्त सृष्टिके प्रत्येक पदार्थको शिवखरूपमें परिणत मानते थे और इस कारण उनको चित्र-प्रतिमा या लिङ्ग-स्थापनकी आवश्यकता नहीं होती थी। उनकी दृष्टिमें सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ ही शिव था। उनको यदि उपासना या पूजा करनी होती तो उसीकी करते थे। संसारमें उस प्रकारके ‘रुद्र-वन,’ ‘शंकर-दावानल,’ ‘शिव-समुद्र’ और ‘गौरीशंकर’ आदि दृश्य पदार्थ या प्रतिमाएँ अब भी ऐसी विद्यमान हैं जिनसे शिवखरूप नाम-तुल्य आभासित होता है और वे हजारों-लाखों वर्षोंसे शिव-खरूप धारण किये हुए हैं।

धन्य है उन यूरोपीय सज्जनोंको जिन्होंने भारतीय हिंदू-शास्त्रोंके वर्णनोंको प्रत्यक्ष देखनेका सफल प्रयत्न या प्रयास किया है और धन, जन तथा समयकी अपरि-

मित हानि सहकर 'गौरीशंकर' जैसे अगम्य और दुर्बोध्य दर्शनोंके देखा है। इस लेखका अङ्गीभूत होनेसे उसका संक्षिप्त विवरण विदित कर लेना आवश्यक प्रतीत हुआ है। हिमालयके दो अति उच्च शिखर ही 'गौरीशंकर' नामसे प्रसिद्ध हैं और वास्तवमें उनका स्तरप्रभी शार्ख-लिखितके तुल्य है। पुराणोंमें हिमालयकी विस्तृति चालीस हजार कोस और महोन्नति आठ हजार कोस मानी गयी है। किंतु आधुनिक अन्वेषक अभीतक इसका आपाद-मस्तक अन्वेषण कर नहीं सके हैं। अभी उनकी नाप-जोखमें चालीस शिखर आये हैं, जिनकी ऊँचाई सत्रहसे उन्तीस हजार फीटक है। यह समुद्र-तलसे मानी गयी है।

भारतीय यात्रियोंको जिन शिखरोंतक जानेका प्रयोग पड़ता है या वे जाते हैं उनके नाम और ऊँचाई स मौति हैं—( १ ) कृष्णशैल १७५७२ फीट, ( २ ) यमुनोत्तरी २००३८, ( ३ ) श्रीकण्ठ २०१४९, ( ४ ) नीलकण्ठ २१६६१, ( ५ ) केररनाथ २२७९०, ( ६ ) ब्रदरीनाथ ( नर-नारायण ) २३२१०, ( ७ ) विशूल २३३००, ( ८ ) धवल-गिरि २६८२६, ( ९ ) काञ्चनजहाँ २८१५३ और ( १० ) गौरीशंकर ( एवरेट ) २९००२ फीट हैं। भारतके क्रमपुत्र, सतलज, व्यास, रानी, कोशी, बाघरा, चनाह, झेलम और गङ्गादि नद-नदी शैलराजसे ही निर्गत होती हैं।

आकाशके अन्वेषकोंका अनुमान है कि विष्णुपादाब्ज-समूह, सतर्पिंष्टलसे गिरी हुई गङ्गा गौरीशंकर (शिखरों) पर पड़ती है और उसके पार्श्ववर्ती अपर पर्वत-शृङ्गोंके विस्तृत और गहनतम गतोंमें पूमती हुई गंगोत्रीमें पहुँचती है और वहाँसे निर्गत होकर भारतके भूभागोंको तुम और पवित्र करती हुई सागरमें समिलित हो जाती है। अनुमानतः गौरीशंकर और उनके जटाजट तथा गङ्गा आदि-रो अभिष्ट स्तरप्रभी इसी प्रकारका प्रतीत होता है।

( ९ )

उपासकोंके लिये इस बातकी नितान्त आवश्यकता होती है कि वह अपने अभीष्ट देवके स्तरप्रभको हृदयज्ञम् करके उसका ध्यान करें। शिव-भक्तोंने उनके चरित्रगत अनेकों स्तरप्रभोंकी कल्पना की है और उन्होंका ध्यान करते हैं। उनमेंसे कुछ ध्यान यहाँ भी प्रकाशित किये जाते हैं—

### १-सदाशिव

मुक्ताधीतपयोद्मौकिकजवावर्णेसुखैः पञ्चभि-  
स्त्रयक्षैरजितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णंदुकोटिप्रभम् ।  
शूलं दद्वक्षपाणवज्जदहनाशागेन्द्रघण्टादुक्षान्  
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्जवलं चिन्तयेत् ॥१॥

### २-शिव-पार्वती

वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसञ्चारुचन्द्रवतंसं  
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूयज्जरागम् ।  
वप्रोहन्यस्तपाणेररुणकुवलयं संदधत्याः प्रियाया  
वृत्तोजुङ्गस्तनाम्रे निहितकरतलं वेदटद्वेष्टस्तम् ॥२॥

### ३-मृत्युंजय

चन्द्राकांशिविलोचनं स्मितमुखं पदम्भ्रयान्तःस्थितं  
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलस्तपाणिं हिमांशुप्रभम् ।  
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूयोज्जवलं  
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युंजयं भावयेत् ॥३॥

### ४-महामृत्युंजय

इस्ताभ्यां कलशद्वयमृतरसैराप्लावयन्तं शिरो  
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तंपरम् ।  
अङ्गन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं  
स्वच्छाम्भोजगतं नचेन्दुमुकुटभातं विनेत्रं भजे ॥४॥

### ५-महेश

ध्यायेवित्यं महेशं रजतगिरिनिमं चारुचन्द्रवतंसं  
रत्नाकल्पोज्जवलार्हं परचुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।  
पद्मासीनं सामन्तात्स्तुतमरगणैव्यंग्रहर्त्ति वसानं  
विश्वादांविश्ववीजं निखिलमयहरं पञ्चवक्त्रं विनेत्रम् ॥५॥

## ६—पशुपति

मध्याह्नार्कसमग्रम् शशिधरं भीमाद्वाहासोज्ज्वलं  
व्यक्षं पश्चात्पूषणं शिखिशिखाशमश्च रुद्रमृद्गजम् ।  
हस्तान्जैशिखिशिखं सुसुन्दरमर्सिं शक्तिं दधानं विमुं  
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यस्वरूपं भजे ॥६॥

## ७—चण्डेश्वर

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रकांशुकाढ़यं हृदि भावयामि ।  
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं विभ्रतमिन्दुचूडम्

## ८—अर्द्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्तित्रिनेत्रं  
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम् ।  
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं  
बालेन्दुवद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥८॥

## ९—पञ्चवक्त्र

घण्टाकपालपृष्ठणिमुण्डकपाणखेट-  
खट्काङ्गशूलडमरुमभयं दधानम् ।  
रक्ताम्बमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रं  
पञ्चाननाद्वामरुणां शुक्रमीशमीडे ॥९॥

## १०—सद्योजात

कर्पुरेन्दुनिभं देवं सद्योजातं त्रिलोचनम् ।  
हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम् ।  
बालेन्दुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत् ॥१०॥

## ११—विश्वरूप

हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः ।  
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनं च यथाश्रुतम् ॥११॥

## १२—दिव्याह

कैलासाचलसंनिभं त्रिनयनं पञ्चास्यमस्यायुतं  
नीलश्रीवमहीशभूषणधरं व्यावृत्यचा प्रावृत्तम् ।  
अक्षस्यग्वरकुण्डिकाभयकरं चान्द्रीं कलां विश्रतं  
गङ्गाम्भोविलसज्जटं दशमुजं वन्दे महेशं परम् ॥१२॥

सब्र भूतों ( पृथिवी-अप्-तेजादि ) के हृदयमें स्थित  
रहनेवाले विश्वरूप महेश्वर भूतोंपर कृपा करके यथाश्रुत

दर्शन देते हैं । इसीलिये कल्पनागत स्वरूपका व्याप  
किया जाता है ।

( १० )

आरम्भमें विचार था कि लेखकी समाप्ति शिवचरित्रके  
संकलनसे की जाय, किंतु इसके समाप्त होनेसे पहले  
वह विचार ही समाप्त हो गया । वेदों, पुराणों, इतिहासों,  
स्तोत्रपाठ, पूजा और उपासना आदिके विभानोंमें और  
अगणित ग्रन्थोंके मझलाचरणोंमें शिव-चरित्रका संकलन है ।

( १ ) शिव गंजेडी, भैंगेडी, सुलफाबाज, अमलदार,  
पोस्ती और आक-धतुरे खानेवाले हैं । ( २ ) वह  
कामी, क्रोधी, त्यागी, वैरागी, योगी, भोगी, दयालु,  
कृपालु, उदार और भोले भण्डारी हैं । ( ३ ) समुद्र-  
मन्थनके चौदह रनोंमें हालाहल इन्हींको मिला था ।  
( ४ ) भस्मासुरको वर देनेमें इनसे बड़ी भूल हुई थी ।  
( ५ ) जालधरके न मरनेसे उसकी पतित्रता खीको  
विगाइनेका जाल इन्होंने ही रचा था । ( ६ ) त्रिपुर  
और मदन-दहनका दावानलरूप नेत्र इन्हींका है ।

( ७ ) सतीके स्वतः चले जानेसे श्वशुरका यज्ञनाश  
इन्होंने ही करवाया था । ( ८ ) सतीको सीतारूपमें  
देखकर इन्होंने उसे त्याग दिया था । ( ९ ) उसके  
सृतदेहको कंवेपर रखकर ये पागलकी तरह फिरते हैं  
थे । ( १० ) पार्वतीपरिणयमें इनके अद्भुत रूपको  
देखकर खास सासू भी सहम गयी थी । ( ११ )  
पार्वतीके साथ रहकर इन्होंने मन्त्र-तन्त्र-यामल और औपध-  
शास्त्रोंकी अपूर्व रचना की थी । ( १२ ) शुकदेवने इनसे  
ही अमर कथा पढ़ी थी ।

( १३ ) हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भ-  
कर्ण, वज्रक और बाणासुरादि इन्हींकी दयासे दिविजर्या  
बने थे । ( १४ ) अपना अमोद्ध अव्र अर्जुनको इन्होंने  
ही दिया था । ( १५ ) सीताव्यवंवरका किसासे भी

न हटनेवाला धनुष इन्होंका पिनाक था । ( १६ )  
वृत्तासुरादि अजेय असुरोंका इन्होंने ही संहार किया था ।  
( १७ ) पार्वतीके पास जानेसे रोकनेवाले गणेशका सिर  
इन्होंने ही उड़ाया था और पत्नीकी प्रसन्नताके लिये पुत्र-  
को गजवदन बना दिया था ।

( १८ ) अस्पृश्य भीलके जूँठे जलबिन्दु और वासी  
वित्तपत्रोंको प्राप्तकर इन्होंने ही उसे शिवसायुज्य दिया

था । ( १९ ) मेघनाद-जैसे दुधमुँहे बच्चोंको इन्होंने ही  
इन्द्रजीत बनाया था और ( २० ) लङ्घासे रामेश्वर आकर  
प्रतिदिन दर्शन करनेवाला विमीषण इन्होंका भक्त था ।  
कहाँतक लिखें—

शिव-चरित्रिका इस प्रकार प्रावल्य और बाहुल्य देखकर  
ही उसकी सूचीमात्र देनेमें भी संकोच हो गया है और  
इस लेखको यहीं समाप्त कर दिया है ।

## श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय

( लेखक—सम्मान्य पण्डित स्व० श्रीहारणचन्द्रजी भद्राचार्य, प्रधानाध्यापक मारवाडी-संस्कृत-कालेज, काशी )

### अवतरणिका

शिव-नैवेद्यके विषयमें शिवपुराणादि शास्त्र-ग्रन्थोंमें  
निर्लासे निरूपण है; इसके पूर्व अनेक विशिष्ट पण्डित  
भी विचारकर इस विषयमें शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकाशित  
कर चुके हैं, तथापि इस समय कुछ लोग शास्त्रीय  
सिद्धान्तकी अनभिज्ञताके कारण इस विषयमें भ्रममें पड़े  
हैं; इसलिये यहाँ दो-चार अक्षर लिख देना कर्तव्य  
समझता हूँ ।

### शिवनैवेद्य-ग्रहणकी प्रशंसा

शिवपुराण-विवेश्वरसंहिताके २२वें अध्यायमें शिव-  
नैवेद्यकी प्रशंसा स्पष्टरूपसे लिखी है—

द्युप्ति शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः ।  
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः ॥ ४ ॥  
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा ।  
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ॥ ७ ॥  
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते ।  
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्याद्वरकं यात्यपि ध्रुवम् ॥ ९ ॥  
शिवनैवेद्यान्वितो भक्तो महाप्रसादसंशकम् ।  
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥ ११ ॥

‘शिवके नैवेद्यको देखनेमात्रसे समस्त पाप दूर भग  
जाते हैं। उसके खा लेनेपर तो करोड़ों पुण्य अपने

भीतर आ जाते हैं। आये हुए शिव-नैवेद्यको सिर झुकाकर  
मुदित मनसे ग्रहण करे और प्रयत्नपूर्वक शिवजीका स्मरण  
करके उसका भक्षण करे। जिसके मनमें शिव-नैवेद्यके  
ग्रहणकी इच्छा नहीं, वह धोर पापी है और वह निश्चय  
ही नरकगामी होगा। शिवकी दीक्षासे युक्त शिवमक्त  
पुरुषके लिये सभी शिवलिङ्गोंका नैवेद्य शुभ और महा-  
प्रसाद है। अतः वह उसका अवश्य भक्षण करे।’

इस प्रकार जो शिवमन्त्रसे दीक्षित हैं, वे सभी  
लिङ्गोंका नैवेद्य भक्षण कर सकते हैं। जिनकी अन्य  
देवकी दीक्षा है, उनके लिये विचारणीय है ।

अन्यदीक्षायुतचृणां शिवमक्तिरताऽऽत्मनाम् ।  
शूण्यध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे ॥  
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः ।  
पापाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते ॥  
काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः ।  
चान्द्रायणसमं ग्रोक्तं शश्मोनैवेद्यभक्षणम् ॥  
ब्रह्महापि शूचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।  
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति ॥

( शि० पु० वि० सं० २२ । १२-१३ । )

‘जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है और श्रीशिवमें भक्ति  
है,—उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणका वह निर्णय है—

जिस स्थानमें शालग्राम-शिलकी उत्तरति होती है,  
वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, पारद ( पारा ) के लिङ्गमें, पापाग,

रजत तथा सर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केसरसे निर्मित लिङ्गमें, स्फटिक-लिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें, समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें श्रीशिवका नैवेद्य-भक्षण चान्द्रायण-त्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिमाल्य भक्षणकर उसे धारण करे तो उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है।'

इन वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि जिनकी शैवी दीक्षा नहीं है, वे भी उपर्युक्त लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण कर सकते हैं, परंतु पार्थिव लिङ्ग प्रभृतिके, अर्थात् जिनके नाम श्लोकोंमें नहीं आये हैं, नैवेद्यका भक्षण वे न करें। शैवी-दीक्षावाले तो सभी लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण करें। यह पहले उद्घृत किये हुए—

शिवशीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंहकम् ।  
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥  
( शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२ । ११ )

—इस वचनमें स्पष्ट कहा है।

### ज्योतिर्लिङ्गोंके नाम तथा नैवेद्यकी ग्राह्यता

उपर उद्घृत किये हुए श्लोकमें ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य सभीको प्रहण करना चाहिये, यह बताया है। ज्योति-लिङ्गोंका निरूपण शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहितामें इस प्रकार किया है और उनके नैवेद्यको सबके लिये ग्राह्य तथा भक्ष्य कहा है—

सौराष्ट्र-देशमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उजयिनीमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमालयमें केदार, डाकिनीमें भीमशङ्कर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोमतीतटमें ऋष्मन्त्रक, चिताभूमि (अन्य लिङ्गोंके स्थानकी तरह यह भी देशविशेष है—मृतककी चिता नहीं है) में वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुवन्धमें रामेश्वर, शिवालयमें घुर्मेश—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं; इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन सबको करना चाहिये। जो इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन करते हैं, उनके सारे पाप क्षणभरमें भत्तम हो जाते हैं।

### श्रीविश्वेश्वरप्रभृति लिङ्गोंके नैवेद्यकी ग्राह्यता

काशीमें श्रीनिश्वेश्वर-लिङ्गका नैवेद्य-भक्षण उसके ज्योति-लिङ्ग होनेके कारण सभीके लिये पुण्यजनक है, यह शास्त्रप्रमाणसे सिद्ध है। पहले शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताका जो वचन उद्घृत किया गया है, उसमें देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित सभी लिङ्गोंके नैवेद्यको भक्ष्य बताया है। काशीमें शुक्रेश्वर, वृद्धकालेश्वर, सोमेश्वर प्रभृति जितने पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं, वे सभी किसी-न-किसी देवता या सिद्धके द्वारा प्रतिष्ठित किये हुए हैं; इसलिये काशीके पुराण-प्रसिद्ध लिङ्गोंका नैवेद्यं शैव, वैष्णव, शाक, सौर, गाणपत्य—सभीको भक्ष्य है।

श्रीविश्वेश्वरप्रभृति लिङ्गोंके स्नानजलकी महिमा स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।  
जिः पिबेत्त्वाविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥

( शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२ । १८ )

जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करते हैं, उनके शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। श्रीविश्वेश्वरके स्नानके जलका विशेष माहात्म्य है—

जलस्य धारणं शूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः ।

एष जालन्धरो वन्धः समस्तसुरदुर्लभः ॥

( स्कन्दपुराण-काशीखण्ड ४१ । १८० )

‘श्रीविश्वेश्वरके स्नान-जलको मस्तकमें धारण करना, यह योगशालमें प्रतिपादित जालन्धर-वन्धके समान पुण्य-जनक है और समस्त देवताओंको दुर्लभ है।’

### मीमांसकपद्धतिसे वचनोंकी एकत्राक्षयता

उपर उद्घृत किये हुए शास्त्र-वाक्योंसे शिव-नैवेद्यकी भक्ष्यता तथा शिवचरणोदककी ग्राह्यता सिद्ध होती है। इस विषयमें कुछ शास्त्रवाक्य अन्य प्रकारके भी मिलते हैं; पूर्वपण्डितोंकी परम्पराके अनुसार उन वचनोंकी

मीमांसा की जाती है। श्रुति-वाक्योंमें परस्पर विरोध प्रतीत होनेपर पूर्व-मीमांसा तथा उत्तर-मीमांसाकी युक्तियोंसे उसका निर्णय किया जाता है। धर्मशास्त्रके निबन्धकार कमलाकर भट्ट, वाचस्पति भिन्न, शूलपाणि, खुनन्दन मद्वाचार्य प्रथमि महानुभावोंने मीमांसाकी पद्धतिसे परस्पर विरुद्ध-से प्रतीत होनेवाले शास्त्रवाक्योंका अर्थ निर्णय किया है और उसी निर्णयको सभी शिष्टजन आजतक मानते आये हैं। मीमांसाकी पद्धतिको न जाननेसे विरुद्ध वचन देखकर लोगोंको भ्रम हो जाता है। इसलिये मीमांसाकी पद्धतिसे वहाँ निर्णय दिखाया जाता है—

पूर्व-मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, चतुर्थ सूत्रमें मीमांसकधुरन्धर श्रीकुमारिल भट्ट लिखते हैं—

सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यमेदश्च नेष्यते ।

( श्लोकवार्तिक २ । १ । ४ । ९ )

जिन स्थलोंमें एकवाक्यता सम्भव है, वहाँ वाक्यमेद ऐ नहीं है; ( क्योंकि वाक्यमेद करनेसे अर्थात् भिन्न वाक्य माननेसे वहाँ गौरव होता है। ) यही युक्ति प्रकृतमें शरीर मीमांसाका मूल है। सामान्य वचनका विशेष वाक्यमें उपसंहार किया जाता है अर्थात् विशेष वाक्यके साथ सामान्य वाक्यकी एकवाक्यतासे विशेष वाक्यके विषयमें सामान्य वचनका संकोच किया जाता है—सामान्य वाक्यको विशेष विषयमें नियमित किया जाता है—यह मीमांसकोंकी युक्तियुक्त सिद्धान्तपद्धति है। कुमारिल भट्टने यही वात अन्वयात्मिकमें कही है—

सामान्यविधिरस्पष्टः संहित्येत विशेषतः ।

विधि तथा निषेधोंका उपसंहार

यह उपसंहार विधिवाक्य तथा निषेधवाक्य दोनोंका एता गया है। ‘पुरोडाशं चतुर्थं करोति’ इस सामान्य विनियोगका ‘आग्नेयं चतुर्थं करोति’ इस विशेष वाक्यमें उपसंहार माना गया है। इसी पद्धतिके अनुसार—

सहानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् ।  
या स्थी ब्राह्मणजातीया सृतं पतिमनुब्रजेत् ।  
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पति नयेत् ॥  
न प्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता ।  
न ब्रह्मगतिमप्नोति भरणादत्मघातिनी ॥

ब्राह्मणीके लिये सहमरणके निषेधक इन सामान्य निषेध-वाक्योंका—

पृथक् चिर्ति समारुद्ध्य न विप्रा गन्तुमर्हति ॥

अर्थात् पृथक् चितामें आख्य होकर ब्राह्मणीको सती न होना चाहिये, इस विशेष निषेध-वाक्यके साथ उपसंहार होता है। यह सिद्धान्त प्राचीन प्रामाणिक मीमांसक शंकर भट्टने ‘मीमांसाबालप्रकाश’में प्रतिपादित किया है। वेद-भाष्यकार माधवाचार्यने ‘पराशर-भाष्य’ में तथा कमलाकर भट्टने ‘निर्णय-सिन्धु’में इन निषेध-वाक्योंकी इसी प्रकार एकवाक्यता मानी है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि सामान्य निषेध-वचनोंका विशेष वचनोंमें उपसंहार प्रामाणिक ग्रन्थकारोंको सम्मत है। इसी पद्धतिसे शिवनिर्माल्यके निषेधक सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे इस विषयमें कुछ भी संदेह नहीं रह जाता।

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताकी व्यवस्था

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताके प्रतिपादक वचन ये हैं—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुर्णं फलं जलम् ।  
शालश्रामशिलासज्जात् (स्पर्शात्) सर्वं याति पवित्रताम्  
( शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। ११ )

अनहीं मम नैवेद्यं पत्रं पुर्णं फलं जलम् ।  
मद्यं निवेद्य सकलं कूपं एवं विनिःक्षिपेत् ॥  
( पादे शिवोऽक्षिः )

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुरपनिदेवनम् ।  
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्य वस्त्रविभूयगम् ॥  
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत् ।  
( लालं सूतेऽक्षिः )

धराद्विरण्यगोरलं ताम्ररौप्यांगुकादिकान् ।  
विहाय शोपं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥  
( निर्गंधिनिर्माल्यमें उद्धृत )

इन वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि भूमि, वस्त्र, भूषण, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र आदि छोड़कर श्रीशिवके चढ़े हुए पत्र, पुष्प, फल, जल—ये सब निर्माल्य अग्राह्य हैं, इन निर्माल्योंको 'चण्डेश्वर'के निवेदन करना चाहिये। ( इस प्रकार ) यथापि ये निर्माल्य स्थयं अग्राह्य हैं तथापि शालग्राम-शिलाके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। अर्थात् शालग्रामजी-का स्पर्श हो जानेपर सबके ग्रहणके योग्य हो जाते हैं।

इन वचनोंसे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीशिवके जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग हैं, उनका ग्रहण निषिद्ध है; जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग नहीं हैं, उनके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है—उनको ग्रहण करना चाहिये। इसलिये शिवपुराण-विद्येश्वरसंहितामें स्पष्ट कहा है—जिनमें चण्डका अधिकार है, मनुष्य उन निर्माल्यों या नैवेद्योंका भक्षण न करे—

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्गोकव्यं न मानवैः।

( २२। १६ )

यह भी उसीमें कहा है कि जिनमें चण्डका अधिकार नहीं है, उनका भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये—  
चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्त्वं भक्तिः।

( शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। १६ )

### शिवनिर्माल्य-निषेधका परिहार

निम्न प्रकारके लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, इसलिये इन लिङ्गोंके निर्माल्य ग्रहण तथा भक्षणके योग्य हैं—  
बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्थयंभूवि।  
प्रतिमासु च सर्वासु च चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥

( शि० पु० वि० सं० २२। १७ )

'बाणलिङ्ग ( नर्मदेश्वर ), लौह ( स्वर्णादिधातुमय ) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग ( जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है, या जो सिद्धोद्वारा प्रतिष्ठित है ), स्थयम्भूलिङ्ग ( केदारेश्वरप्रभृति )—इन लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओंमें ( मूर्तियोंमें ) चण्डका अधिकार नहीं है।'

लिङ्गे स्थायम्भूवे वाणे रत्नजे रसनिर्मिते।  
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥

( निर्णयसिन्धुमें उद्धृत )

इस वाक्यमें 'रत्ननिर्मित तथा पारदनिर्मित लिङ्गमें भी चण्डका अधिकार नहीं है'—इतना अधिक कहा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन शिवलिङ्गोंके निर्माल्य या नैवेद्यका ग्रहण करनेमें दोष नहीं है।

### नर्मदेश्वरके निर्माल्यकी ग्राह्यता

वर्तमान श्रीविश्वेश्वर-लिङ्ग बाणलिङ्ग ( नर्मदेश्वर ) हैं। इसलिये उनके स्नानोदक, निर्माल्य तथा नैवेद्यादिमें ग्रहण न करनेकी शङ्का भी ठीक नहीं है। बाणलिङ्गके सम्बन्धमें उपर्युक्त वचनके अतिरिक्त मेस्तन्त्र ( चतुर्दश पठल ) में भी विशेष वचन है—

बाणलिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना।  
सर्वे बाणार्पितं ग्राह्यं भक्तव्या भक्तेश्व नान्यथा॥  
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते।  
तदार्पितं जलं पञ्चं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया॥

'बाणलिङ्गके विषयमें ग्राह्य तथा अग्राह्यका विचार नहीं है। बाणलिङ्गपर चढ़ाया हुआ सभी कुछ ( जल, पत्र आदि ) भक्तिपूर्वक प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये।' यह इस वाक्यमें स्पष्ट बताया गया है।

### सिद्धलिङ्ग तथा स्थयम्भूलिङ्ग

शिवपुराण-कोटिसिद्धसंहिता तथा काशीखण्ड प्रभृति ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि काशीप्रभृति तीर्थोंमें पुराणप्रसिद्ध जितने भी लिङ्ग हैं, उनमें कोई स्थयम्भूलिङ्ग हैं तो कोई सिद्धलिङ्ग हैं। जो लिङ्ग भक्तोंके अनुग्रहके लिये स्थयं प्रकट हुए हैं वे स्थयम्भूलिङ्ग हैं, जो लिङ्ग सिद्ध-महात्मा जनोद्वारा प्रतिष्ठित या उपासित हैं, वे सिद्धलिङ्ग हैं—वे सभी पुराणप्रसिद्ध हैं। ऊपर उद्धृत किये हुए शिवपुराणके वचनके अनुसार पुराणप्रसिद्ध इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है और उनके निर्माल्य या नैवेद्यके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है; अपितु पूर्वप्रदर्शित शिवपुराण-

विदेशरसंहिताके वाक्योंके अनुसार उन लिङ्गोंके नैवेद्यका ग्रहण पुण्यजनक है ।

### शिवनिर्माल्य-निषेधकी विशेष व्यवस्था

पूर्वप्रदर्शित जिन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार है उनके विषयमें भी विशेष व्यवस्था है और वह इस प्रकार है—

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुलीश्वराः ।

सुपवित्रं च तज्ज्वरेण यत्लिङ्गस्पर्शवाह्यतः ॥

( शिं पु० वि० सं० २२ । २० )

जो वस्तु लिङ्गके ऊपर रखी जाती है, वह अग्राह्य है । जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अल्प रखकर श्रीशिवजीको निवेदित किया जाता है— लिङ्गके ऊपर नहीं चढ़ाया जाता—वह अत्यन्त पवित्र है ।

लिङ्गार्चनतन्त्र, द्वादशपटलमें भी शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंको ही अग्राह्य बताया है—

यत्किञ्चिदुपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत् ।  
तन्मिर्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि ॥

इन वाक्योंके साथ एकवाक्यता करनेसे पता लगता है कि जिनने शिवनिर्माल्यके निषेधक वाक्य हैं, सभी लिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंका ही निषेध करते हैं ।

### शिवनिर्माल्यकी व्यवस्थाका सारांश

समस्त सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकता करनेसे यह सिद्ध होता है कि—

नमदेश्वर लिङ्ग, धातुमय लिङ्ग, रत्न-लिङ्ग, पुराणप्रसिद्ध—इन लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए निर्माल्यका सरके लिये । तथा भक्षण करना शाखविधिसम्मत है । अन्य लिङ्गोंके चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्योंका ग्रहण करना सम्मत नहीं है । शिवनिर्माल्य-ग्रहण तथा शिव-भक्षणके निमित्त जो प्रायश्चित्त शाखमें कहे गये हैं, वे इन निषिद्ध नैवेद्य तथा निर्माल्योंके विषयमें ही हैं । । शिव-नैवेद्य तथा शिव-निर्माल्यका ग्रहण और भक्षण ग्रविधिसम्मत है, उनके ग्रहण तथा भक्षणके निमित्त

प्रायश्चित्त नहीं हो सकता । निषिद्ध कर्मोंके लिये शाखोंमें प्रायश्चित्त कहे हैं, विहित कर्म करनेसे प्रायश्चित्तकी प्राप्ति ही नहीं है । पापोंके हटानेके लिये प्रायश्चित्त किया जाता है । विहित कर्मके अनुष्ठानसे पाप नहीं होता, अपितु विहित कर्मके न करनेसे, निषिद्ध कर्मके करनेसे और इन्द्रियोंका निग्रह न करनेसे पापोंकी उत्पत्ति होती है; उन्हीं पापोंकी शुद्धिके लिये शाखोंमें प्रायश्चित्तका उपदेश किया गया है—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।  
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥  
तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।  
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

( याज्ञवल्क्यस्मृति ३ । २१९-२२० )

निर्णयसिन्धु तृतीय परिच्छेद पूर्वभागमें भी श्रीशिव-निर्माल्यके विषयमें इसी प्रकार व्यवस्था की है । नमदेश्वर-लिङ्ग, धातुमयलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा स्वयम्भू और सिद्धलिङ्ग ( जो पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं )—इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार न होनेसे इनके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्य सभीके भद्र तथा ग्राह्य हैं, यह पहले कहा जा चुका है । जो वस्तुएँ शिवलिङ्गपर चढ़ायी नहीं गयी हों, किंतु किसी भी लिङ्गोंको निवेदित की गयी हों, वे वस्तुएँ शैवी दीक्षावाले मतुष्योंके लिये ग्राह्य हैं । जिन्हें शैवी दीक्षा नहीं है उनके लिये पार्यिलिङ्गके निवेदितको छोड़कर और सभी लिङ्गोंको निवेदित की हुई वस्तुएँ तथा शिवप्रतिमाओं निवेदित किये हुए प्रसाद ग्राह्य हैं । और जिन शिवनिर्माल्योंके लिये निषेध है, वे भी शालप्राम-शिलाके सर्वसे ग्रहण योग्य हो जाते हैं, यह शाखमर्यादा है ।

### शिवनिर्माल्य-धारणके प्रायश्चित्तका निर्णय

'प्रायाधितविवेक', 'तिथितत्व' तथा 'निर्णयसिन्धु' आदि ग्रन्थोंमें यह वचन उद्बृत है—

स्पृष्टा सद्रस्य निर्माल्यं सद्याज्ञा

( वास्तवा ) आन्द्रुतः श्रुचिः ।

अर्थात् रुद्रके निर्माल्यको सर्वा करनेवाला पुरुष सचैल स्नानसे शुद्ध होता है।

रुद्रनन्दन भट्टाचार्यने तिथितत्त्व-शिवरात्रिप्रकरणमें इस सामान्य वचनकी अन्य विशेष वचनके साथ एकवाक्यता की है—

निर्माल्यं यो हि मङ्गलत्वा शिरसा धारयिष्यति ।  
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः ॥  
नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च जायते ॥  
( स्कन्दपुराण )

इस वचनमें जो अशुचि अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करते हैं, उनके लिये पाप कहा है। इस वाक्यके अनुरोधसे पूर्वप्रदर्शित सामान्य वाक्य भी अशुचिविषयक समझना चाहिये। इन दोनों वाक्योंको मिलाकर यह अभिप्राय निकलता है—

‘अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको नहीं धारण करना चाहिये। जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करता है वह पापी होता है; इस पापकी शुद्धिके लिये सचैलस्नान प्रायश्चित्त है।

स्नानादिसे शुद्ध होकर शिवनिर्माल्यको धारण करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पापतक नष्ट हो जाते हैं—यह शिवपुराण तथा स्कन्दपुराणके वाक्योंमें कहा है—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।  
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं शणिष्यति ॥  
( विशेषसंहिता २२ । १५ )

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।  
तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महावते ॥  
( तिथितत्त्वमें उद्धृत स्कन्दपुराण )

शिवनिर्माल्य-धारणकी इस विधिके साथ अधिरोध सम्पादन करनेके लिये—इस विधिके अनुरोधसे भी—पूर्वोक्त शिवनिर्माल्य-धारणका प्रायश्चित्त ‘अशुचि’के विषयमें ही समझना उचित है।

शिवनिर्माल्य-विषयक अन्य वाक्योंकी व्यवस्था

ऊपर शिव-निर्माल्य-ग्रहणके अनुकूल तथा प्रतिकूल

शास्त्र-वाक्योंका तत्पर्य मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करके दिखाया गया है। इस विषयमें इस प्रकारके जितने भी अन्य शास्त्र-वाक्य हैं, उन सभीके तात्पर्यका पूर्वप्रदर्शित मीमांसकपद्धतिसे निर्णय करना शास्त्रमर्मज्ञ पुरुषोंका कर्तव्य है। युक्तियुक्त मीमांसा-पद्धतिका परित्याग कर शास्त्र-वचनोंके अनर्थको अर्थ कर जनतामें उपदेश देना अपने पाण्डित्यपर विज्ञजनोंका संशय उत्पन्न कराना ही है।

### भस्मरुद्राक्षधारणकी विधि

इस अवसरपर प्रसंज्ञवश और दो बातें कह देना अनुचित न होगा।

कुछ महाशय साम्प्रदायिक आग्रहवश भस्म-त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षधारणकी अनर्गल निन्दा करते हैं। उनसे मुझे कुछ कहना नहीं है। जो आप्रही हैं, वे अपना हठ छोड़नेके लिये कभी प्रस्तुत नहीं होंगे—इस बातको मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ। इसलिये उन आप्रही महाशयोंके लिये व्यर्थ परिश्रम न उठाकर मैं जिज्ञासु जनताके लिये इस तत्त्वका उद्घाटन करना उचित समझता हूँ।

बृहजावालोपनिषद्—पञ्चम श्लाहणमें भस्म-धारणकी विशेष प्रशंसा है—

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।  
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम् ॥  
त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः ।  
सच्चात्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राक्षधारणात् सोऽपि पूज्यते ॥  
ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्यान्ति मानवाः ।  
तेषां नास्ति विनिमोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥  
( ७-९ )

‘जिस श्रावणने मस्तकमें भस्म-त्रिपुण्ड्र धारण किया है, उसने समस्त शास्त्रोंका अव्ययन तथा श्रवण किया है—समस्त कर्तव्यका अनुष्ठान किया है। जिसने वर्ण-श्रमके आचारका परित्याग कर दिया है, जिसकी समच्छ किया लुप्त हो गयी है—एक बार त्रिपुण्ड्र धारण कर लेनेपर वह भी पूजित होता है। जो मनुष्य भस्मधारण

न कर कर्म करते हैं, कोटि जन्मोंसे भी उनकी संसारसे मुक्ति नहीं होती ।'

बृहजाबालोपनिषद्‌में और भी बहुत वाक्य हैं जिनसे चारों वर्णोंके लिये भस्मधारण कर्तव्य सिद्ध होता है । कालाग्निशब्द तथा भस्मजाबाल-उपनिषद्‌में भी भस्मधारणकी विधि विस्तारपूर्वक लिखी है ।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्‌में रुद्राक्षधारणकी विधि है— एक मुखसे लेकर चतुर्दशमुखपर्यन्त रुद्राक्षके धारणका फल विस्ताररूपसे वर्णन किया गया है । शिवपुराण-विधेश्वरसंहिता तथा स्कन्दपुराण-काशीखण्डमें भी भस्मधारणकी विधि है ।

उपनिषद् श्रुति है; पूर्वोक्त सब उपनिषद् अर्थवेदके अन्तर्गत हैं । धर्म तथा अधर्मके निर्णयमें श्रुति सबसे प्रबल प्रमाण है । महर्षि जैमिनि पूर्व-मीमांसामें लिखते हैं—

## श्रीशिवकी अष्टमूर्तियाँ

( लेखक—श्रीपन्नालालसिंहजी )

श्रीविष्णुपुराणमें लिखा है—

षष्ठिश्चित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।  
स संज्ञां याति भगवानेकं पव जनार्दनः ॥

'एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, स्थिति और ग्रलय-सम्बन्धकी लेकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन मिन नामोंसे पुकारे जाते हैं ।'

शिव परमात्मा या ब्रह्मका ही नामान्तर है । वे एत शिव अद्वैत और चतुर्थ ( 'शान्तं शिवमद्वैतं तुर्मम्'—माण्डूक्योपनिषद् ) हैं, वे विद्याध, विश्वाज, खदेव, विश्वरूप, विश्वाधिक और विश्वान्तर्यामी हैं । तीव्र खलिदं ब्रह्म—यह सभी कुछ ब्रह्माय है, तभी ते वृहदराप्यक उपनिषद्‌के अन्तर्यामीनामणमें कहा है कि 'जो सर्वभूतोंमें अवस्थित होते हुए भी सर्वभूतोंसे इक्के हैं, सर्वभूत जिन्हें जानते नहीं, किंतु सर्वभूत-

विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुभानम् ।  
( ११३१३ )

इस सूत्रका अर्थ 'कुदूहलवृत्ति'में इस ग्रकार लिखा है— प्रत्यक्षश्रुतिविरोधे सति अनपेक्षं भूलप्रमाणानपेक्षं श्रुतिवाक्यमेव प्रमाणं स्याद्व तु स्मृतिवाक्यम् ।

जिस स्थलमें प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य ही प्रमाण है, स्मृतिवाक्य ( मन्वादि धर्मशास्त्र तथा पुराण ) प्रमाण नहीं हैं ।

'व्यासस्मृति' में इस बातको स्पष्ट किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणामां विरोधो यत्र दश्यते ।  
तत्र शौतं प्रमाणं स्यात्तयोद्दैधे स्मृतिवर्ता ॥

( ११४ )

'जिस विषयमें श्रुति, स्मृति तथा पुराणका प्रस्तर विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य प्रमाण है; स्मृति तथा पुराणके विरोधस्थलमें स्मृति प्रमाण है ।'

जिनके शरीर हैं और जो सर्वभूतोंके अंदर रहकर सर्वभूतोंका नियन्त्रण करते हैं, वे ही ( परम ) आत्मा, वे ही अन्तर्यामी और वे ही अमृत हैं ।

भगवानने गीतामें कहा है—

मया लतभिदं सर्वं जगदव्यक्तस्मृतिंना ।

'अर्थात् मेरी इस अव्यक्त मूर्तिद्वारा सारा संसार व्याप्त है ।' शिवपुराणमें भी महादेव कहते हैं—

अहं शिवः शिवश्चायं त्वं चापि शिव पव हि ।

सर्वं शिवमयं ब्रह्म शिवात्परं न किञ्चन ॥

'मैं शिव, यह शिव, तुम शिव, तव तुम शिवनय है । शिवके अनिरिक्त और तुम भी नहीं हैं ।'

पञ्चभूतोंमें जन्तु, संगटित हैं । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, तृतीय और जीवात्मा इन्हीं अद्वैती-

द्वारा समस्त चराचरका बोध होता है। तभी महादेवका एक नाम 'अष्टमूर्ति' है।

शिवपुराणमें आया है—

तथादिदेवदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ।  
तस्मिन् व्याप्त्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥  
शर्वो भवस्तथा रुद्र उथो भीमः पशुपतिः ।  
ईशानश्च महादेवः मूर्त्यश्चाष्ट विश्रुताः ॥  
भूल्यमपेऽग्निमस्त्रद्वयोप्रक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।  
अधिष्ठिता महेशस्य सर्वदेवष्टमूर्तिभिः ॥  
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम् ।  
भजस्य सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥

'इन देवादिदेवकी अष्टमूर्तियोंसे यह अखिल जगत् इस प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार सूतके धारेमें सूतकी ही मणियाँ। भगवान् शंकरकी इन अष्टमूर्तियोंके नाम ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उत्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। इन अष्टमूर्तियोंद्वारा विश्वमें अधिष्ठित उन्हीं परम कारण भगवान्की सर्वतो-भावेन आराधना करो।'

ॐ शर्वाय श्वितिमूर्त्ये नमः

ॐ भवाय जलमूर्त्ये नमः

ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्ये नमः

ॐ उत्राय वायुमूर्त्ये नमः

ॐ भीमाय आकाशमूर्त्ये नमः

ॐ पशुपतये यजमानसूर्त्ये नमः

ॐ महादेवाय सोममूर्त्ये नमः

ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्ये नमः

सूर्य और चन्द्र प्रत्यक्ष देवता हैं।

पृथिवी, जल आदि पञ्चमूर्त्यमूल हैं, जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। जीव ही यजमानरूपसे यज्ञ या उपासना करने-वाला है, इसलिये उसे 'यजमान' भी कहते हैं। पाश या मायायुक्त जीव ही पाशु या पशु है और जीवके उद्धार-

कर्ता होनेके कारण ही महादेव 'पशुपति' हैं। वे ही जीवका पाशमोचन करते हैं—

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।  
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्त्तिनः ॥  
तेषां पतित्वादेवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ।  
मलमायादिभिः पाशौः स बधाति पशून् पतिः ॥  
स एव सोचकस्तेषां भक्तानां समुपासितः ।  
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मणास्तथा ।  
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिवन्धनाः ॥  
सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी ।  
सूर्तिः पशुपतिर्वेद्या पशुपाशनिकृन्तनी ॥

'ब्रह्मासे लेकर स्थावर ( वृक्ष-पाषाणादि ) पर्यन्त जितने भी संसारवशवर्ती जीव हैं, सभी देवाविदेव महादेव-के पशु कहे जाते हैं और उन सबके पति होनेके कारण महादेव 'पशुपति' कहे जाते हैं। वही पशुपति ब्रह्म आदि सब पशुओंको मछ, मायादि अविद्याके पाशमें जकड़कर रखते हैं और फिर भक्तोंद्वारा पूजे जाकर उन्हे उक्त पाशसे मुक्त करते हैं। चौबीस तत्त्व और मायाकृत कर्मके गुण 'विषय' कहलाते हैं। ये विषय ही जीवको बन्धनमें डालनेवाले हैं, इसीलिये इन्हें 'पाश' कहते हैं। महादेव सब जीवोंके अविष्टाता और सर्वक्षेत्रोंमें वास करनेवाले ( क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । —गीता ) तथा पशुपाशको काटनेवाले होनेके कारण पशुपति नामसे प्रख्यात हैं।'

शिवपुराणका कथन है कि परमात्मा शिवकी ये अष्टमूर्तियाँ समस्त संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इस कारण जैसे मूलमें जल-सिद्धन करनेसे वृक्षकी सभी शाखाएँ हरी-भरी रहती हैं, वैसे ही विश्वात्मा शिवकी पूजा करनेसे उनका जगद्रूप शरीर पुष्टि-लभ करता है। अब हमें यह देखना है कि शिवकी आराधना क्या है? सब प्राणियोंको अभयदान, सबके प्रति अनुग्रह, सबका उपकार करना—यही शिवकी वास्तविक आराधना है। जिस प्रकार पिता पुत्र-प्राणीत्रादिके आनन्दसे आनन्दित होता

है, उसी प्रकार अखिल विश्वकी प्रीतिसे शंकरकी प्रीति होती है। किसी देहधारीको यदि कोई पीड़ा पहुँचाता है तो इससे अष्टमूर्तिधारी महादेवका ही अनिष्ट होता है। जो इस प्रकार अपनी अष्टमूर्तियोंके द्वारा अखिल विश्वको अधिष्ठित किये हुए हैं, उन्हीं परम कारण महादेव का सर्वतोभावेन आराधन करना चाहिये।

अत्मनश्चाष्टमी मूर्त्तिः शिवस्य परमात्मनः ।  
व्यापकेतरमूर्त्तिनां विश्वं तसाच्छिवात्मकम् ॥  
बृक्षमूलस्य सेकेन शारखाः पुल्यन्ति वै यथा ।  
शिवस्य पूजया तद्वत् पुष्येत्तस्य वपुर्जगत् ॥  
सर्वभूम्यप्रदानश्च सर्वानुग्रहणं तथा ।  
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं चिदुः ॥  
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत् पिता ।  
तथा सर्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥  
देहिनो यस्य कस्यापि कियते यदि निश्रहः ।  
अनिष्टमष्टमूर्त्तस्तत् कृतमेव न संशयः ॥  
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम् ।  
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥  
( शिवपुराण )

'सर्व भूतोंमें और आत्मामें ब्रह्म अथवा शिवका दर्शन अर्थात् 'सर्व शिवमयं चैतत्'—इस भावकी अनुभूति किये बिना जन्म-मरणसे मुक्ति नहीं होती। इस भावकी उत्पत्तिके लिये ही इन अष्टमूर्तियोंकी पूजा कही गयी है। वास्तवमें जीव-देह ही देवालय है। मायासे मुक्त होनेपर जीव ही सदाशिव है। अज्ञानरूप निर्मलिका त्याग कर सोऽहं-भावसे उन्हीं सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये—

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः ।  
त्यजेदज्ञाननिर्मल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥

इसी भावको हृदयस्थ करके आओ, आज हम महादेव-के असंस्थ मन्दिरोंमें उनका पूजन करें। आओ, हम आपने दृश्यकमलमें उन्हीं आत्मलिङ्गका अनुभव करके निर्मल-वित्तसे श्रद्धारूपी नर्दिके जलसे समाधि-मुमनोंके द्वारा नेत्रप्राप्तिके लिये उनकी पूजा करें—

आराधयामि मणिसनिभमात्मलिङ्गं  
मायापुरीहृदयपङ्कजसनिविष्टम् ।  
अद्वानदीविमलवित्तजलावगाहं  
नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय ॥  
अष्टमूर्तिके तीर्थ

( १ ) सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम् ।  
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च ॥

अर्थात् शिव और सूर्यमें कोई भेद नहीं है, इसलिये प्रत्येक सूर्यमन्दिर शिवमन्दिर ही है।

( २ ) 'चन्द्र'—काठियावाड़का सोमनाथ-मन्दिर और बड़ालका चन्द्रनाथ-क्षेत्र—ये दोनों महादेवके सोममूर्तिके ही तीर्थ हैं।

सोमनाथका\* मन्दिर प्रभासक्षेत्रमें है और चन्द्रनाथका वर्तमान पूर्व-पाकिस्तानके चट्टगाँव ( Chittagong ) नगरसे ३४ मील उत्तर-पूर्वमें एक पर्वतपर स्थित है। स्थानका नाम सीताकुण्ड है। श्रीचन्द्रनाथका मन्दिर पर्वतके सर्वोच्च शिखरपर है, जो समुद्रकी सतहसे चार सौ गज ऊँचा है। देवीपुराणके चैत्र-माहात्म्यके अनुसार यह त्रयोदश ज्योतिर्लिङ्ग है जो पहले गुप्त या और कलिमें लोकहितार्थ प्रकट हुआ है। काशी, प्रयाग, मुमनेश्वर, गङ्गासागर, गङ्गा और नैमित्तिराष्ट्रके दर्शनसे जो फल प्राप्त होता है, वह श्रीचन्द्रनाथ-क्षेत्रमें जानेसे एक साथ प्राप्त हो जाता है।

श्रीचन्द्रनाथके निकट और भी अनेक तीर्थ हैं।  
उदाहरणार्थ—

( ३ ) उत्तरमें लवणाक्ष कुण्ड है जिसमेंसे अग्निर्का ज्वाला निकलती है, ( २ ) पर्वतके नीचे गुरुद्वूरी है जो फ्ल्यरपर प्रज्ञालित है, ( ३ ) बड़ाल कुण्ड है जिसके जलपर सक्षमित्रात्मक अग्नि सदा प्रज्ञालित रहती

४ इनका निवासी भी इनी भूमियां अग्नि देवा नहा दे ।  
—समाप्त

है। इसके अतिरिक्त ( ४ ) तत जलयुक्त ब्रह्मकुण्ड, ( ५ ) सहस्रधारा-जलप्रपात, ( ६ ) कुमारी कुण्ड, ( ७ ) श्रीब्यासजीवी तपस्याभूमि, व्यास कुण्ड, ( ८ ) सीता कुण्ड, ( ९ ) ज्योतिर्मय, जहाँ पाषाणके ऊपर ज्योति प्रज्वलित है, ( १० ) काली, ( ११ ) श्रीखण्डभूताथ, ( १२ ) मन्दाकिनी नामका स्रोत, ( १३ ) गयाक्षेत्र, जहाँ पितरोंको विष्णुदान दिया जाता है, ( १४ ) श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर, ( १५ ) क्षत्रियशिला, जहाँ पत्थरकी गुहामें अनेक शिवलिङ्ग हैं, ( १६ ) विरुद्धपाथ-मन्दिर, ( १७ ) हर-गौरीका विहार-स्थल, जो एक सुरम्य नीरव स्थानमें है। यहाँ सघन वृक्षावलीके होते हुए भी पशु-पक्षीगण बिल्कुल शब्द नहीं करते। तथा ( १८ ) आदित्यनाथ।

( ३ ) नेपालके पशुपतिनाथ महादेव 'यजमान' मूर्तिके तीर्थ हैं—पशुपतिनाथ लिङ्गरूपमें नहीं, मानुषी विग्रहके रूपमें विराजमान हैं। विग्रह कटिप्रदेशसे ऊपरके भागका ही है। मन्दिर चीनी और जापानी ढंगका बना हुआ है और नेपालराज्यकी राजधानी काठमाडूमें वागमती नदीके दक्षिण तीरपर आर्याबाटके समीप अवस्थित है। मूर्ति खण्डनिर्मित पञ्चमुखी है। इसके आसपास चाँदीकी ज़ंगला है, जिसमें पुजारीको छोड़कर और किसीकी तो बात ही क्या, खँयं नेपाल-सम्राट्का भी प्रवेश नहीं हो सकता। नेपालराज्यमें भी विना पासपोर्टके बाहरके लोगोंका प्रवेश बंद है; पर महाशिवरात्रिके अवसरपर लोग पासके विना भी जाकर पशुपतिनाथके दर्शन कर सकते हैं। नेपाल महाराज अपनेको श्रीपशुपतिनाथजीका दीवान कहते हैं।

( ४ ) शिवकाञ्चीका 'श्निति' लिङ्ग—पञ्चमहाभूतोंके नामसे जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं वे सभी दक्षिण भारतके मद्रासप्रान्तमें हैं। इनमेंसे एकाम्ब्रेश्वरका श्नितिलिङ्ग शिवकाञ्चीमें है। इस मूर्तिपर जल नहीं चढ़ाया जाता, चमेलीके तेलसे स्नान कराया जाता है। मन्दिर बहुत

विशाल और सुन्दर है। अंदर अनेक देवमूर्तियोंके साथ एक पाषाणमूर्ति भगवान् शङ्कराचार्यकी भी है। मन्दिरके 'गोपुरम्' पर हैदर अलीके गोलोंके चिह्न अवतक मौजूद हैं। अग्रेल मासमें यहाँका प्रधान वार्षिकोत्सव होता है जो पंद्रह दिनतक रहता है। यहाँ ज्वरहरेश्वर, कैलासनाथ तथा कामाक्षीदेवी आदिके मन्दिर भी दर्शनीय हैं। काञ्चीमें मरनेसे काशीकी तरह सद्योमुक्ति मानी जाती है। इसकी सत सोक्षदा पुरियोंमें गणना है।

इस तीर्थका इतिहास यह है कि एक समय पार्वतीने कौतूहलवश चुपचाप पीछे से आकर दोनों हाथोंसे भगवान् शंकरके तीनों नेत्र बंद कर लिये। श्रीमहेश्वरके लोचनत्रय आच्छादित हो जानेसे सारे संसारमें घोर अन्धकार छा गया; क्योंकि सूर्य, चन्द्र और अग्नि जो संसारको प्रकाशित करते हैं, वे शंकर ( के नेत्रों ) से ही प्रकाश पाते हैं—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं  
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।  
( कठोपनिषद् )

अतः ब्रह्माण्डलोपकी नौकत आ पहुँची। इस प्रकार श्रीशिवके अर्द्धनिमेषमात्रमें संसारके एक करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये। असमय ही देवीके इस प्रलयक्षर अन्यथ-कार्यको देखकर श्रीशिवजीने इसके प्रायथित-खरूप श्रीपार्वतीजीको तपस्या करनेका आदेश किया। अतएव वह महादेवजीकी आङ्गासे काञ्चीपुरीमें कम्मानदीके तटपर आकर एक आम्रवृक्षकी छायामें जटावल्कलावारिणी एवं भस्म-विभूषिता तपस्थिनीका वेश धारणकर कम्पाकी बालुकासे लिङ्ग बना, विधिधूर्वक पूजा और तपस्या करने लगी। जब श्रीपार्वतीको कठिन तपस्या करते कुछ काल बीत गया, तब शंकरजीने गौरीकी भक्ति और एकनिष्ठाकी परीक्षाके लिये नदीमें बाढ़ ला दी, जिससे उनके चारों ओर जल-ही-जल हो गया। भगवतीने आँख खोलकर देखा तो उन्हें यह आशङ्का हुई कि नदीके वर्द्धमान

प्रबल प्रवाहमें कहीं वह बालुका-लिङ्ग विलीन न हो जाय, जिससे उनकी तपस्यामें विन्न उपस्थित हो, और इसी आशङ्कासे वे चिन्तित हो उठीं। समस्त कामनाओंके व्यापूर्वक भगवान्को अपना मन समर्पण करके उनका भजन करनेसे कोई भी विन्न भक्तका अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवती शिवलिङ्गको छातीसे चिपटाकर ध्यानमग्न हो गयी। उन्होंने जलप्रवाहके भैंश्रमें पड़कर भी उस लिङ्गका परित्याग नहीं किया। तब भगवान् शंकर प्रकट होकर बोले—

विमुच्च बालिके लिङ्गं प्रवाहोऽयं गतो महान् ।  
त्वयाचिंतमिदं लिङ्गं सैकतं स्थिरचैभवम् ॥  
भविष्यति महाभागे वरदं सुरपूजितम् ।  
तपश्चर्या तदालोक्य चरितं धर्मपालनम् ।  
लिङ्गमेतत्त्वमस्तुत्य कृतार्थः सन्तु मानवाः ॥

‘हे बालिके ! नदीमें जो बाढ़ अथी थी वह अब चली गयी है। तुम लिङ्गको छोड़ दो। तुमने इस स्थिर वैभवयुक्त सैकत-लिङ्गकी पूजा की है, अतएव हे महाभागे ! यह सुरपूजित पार्थिव लिङ्ग वरदाता बन गया। अर्थात् जो कोई इसकी जिस कामनाके साथ उपासना करेगा, उसकी वह कामना पूर्ण होगी। तुम्हारी तपश्चर्या और धर्मपालनका दर्शन और श्रवण एवं इस लिङ्गकी आराधना करके लोग कृतार्थ होंगे।’

अनैवं तैजसं रूपमहं स्थावरलिङ्गताम् ।

‘यहाँ मैं अपने ज्योतिर्मय रूपको त्यागकर स्थावर लिङ्गमें परिणत हो गया हूँ।’ तुम गौतमाश्रम, अरुणाचल (तिरुणामले) तीर्थमें जाकर तपस्या करो। वहाँ मैं तेजोरूपमें तुमसे मिलूँगा।

शिवकाञ्जीका एकाम्ब्रजाय क्षितिलिङ्ग ही महादेवीद्वारा प्रतिष्ठित स्थावर लिङ्ग है।

अन्धिकाने काष्ठीसे चलते समय तपस्याके लिये जाये हुए देवताओं और त्रिपियोंको वर प्रदान किया।

तिष्ठताचैव वै देवा मुनयश्च दृढव्रताः ।  
नियमांशाधितिष्ठन्तः कम्पारोधसि पावने ॥  
सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम् ।  
पूज्यतां सैकतं लिङ्गं कुचकङ्गणलाञ्छनम् ॥  
अहं च निष्कलं रूपमास्थायैतदिवानिशाम् ।  
आराधयामि मन्त्रेण महेश्वरं वरप्रदम् ॥  
मत्तपश्चरणाल्लोके मद्दर्मपरिपालनात् ।  
मन्त्रिदर्शनात् तथा सिद्धयन्त्वश्चिभूतयः ॥  
सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमिति कामतः ।  
मां प्रणम्यात्र मद्भक्ता लभन्तां वाञ्छितं वरम् ॥

‘हे दृढव्रत देवताओं और मुनियो ! नियमाधिष्ठित होकर आपलोग पवित्र कम्पातटपर निवास कीजिये और सर्वपापक्षयकर तथा सर्वसौभाग्यवर्द्धक मदीयकुचकङ्गणलाञ्छित इस सैकतलिङ्गकी पूजा कीजिये। मैं भी निष्कल (अव्यक्त) रूपसे अवस्थित होकर अहर्निश इस स्थानपर वरद महेश्वरकी आराधना करूँगी। मेरे तपस्या-प्रभाव एवं धर्मपालनके फलस्वरूप इस लिङ्गका दर्शन और पूजन करके मनुष्य अभिलाषित ऐश्वर्य और विभूति लाभ करेंगे। मैं सर्वकाम प्रदान करती हूँ, मेरे भक्त मुझे कामदायिनी कामाक्षी मानकर कामनापूर्वक मेरी अर्चना करके अभिलाषित वर लाभ करेंगे।’

(५) जम्बुकेश्वर—मद्रास-ग्रान्तके विचनापछी जिलेमें ‘श्रीरङ्गनाथ’ से एक मीलपर जम्बुकेश्वर—‘अप’लिङ्ग है। यहाँके शिवलिङ्गकी स्थिति एक जलके स्रोतपर है, अतः जलहरीके नीचेसे जल वरावर ऊपर उटता हुआ नगर आता है। स्थापत्य-शिल्पकी दृष्टिसे वह मन्दिर भी बहुत उत्तम बना है। मन्दिरके बाहर पाँच परकोटे हैं, तीसरे परकोटमें एक जलाशय भी है, जहाँ स्नान किया जाता है। यहाँके जम्बु अर्थात् जामुनके पेंडका भी बड़ा माहात्म्य है। यह स्थान ‘चिदनन्दन’ से पश्चिमकी ओर होरे जानेवाली लाइनपर विचिनापछीसे धोड़ी दूर आगे है।

(६) तिरुपण्डुले य अद्यावद—‘इसी मद्रिंदिला तेजोलिङ्ग’ है। शिवकाञ्जीसे श्रीपद्मर्त्तीर्णके तिरुपण्डुले

या अरुणाचल-तीर्थ पहुँचकर कुछ काल और तपस्या करनेके पश्चात् अरुणाचल-गर्वतमें अग्निशिखाके रूपमें एक तेजोलिङ्गका आविर्भाव हुआ और उससे जगत्का वह अन्वकार दूर हुआ, जिसका वर्णन काञ्चीके क्षितिलिङ्गके इतिहासमें आया है। यही 'तेजोलिङ्ग' है। यहाँ हर और पर्वतीका मिलन हो गया। यह स्थान \* चिदम्बरम्‌के उत्तर-पश्चिममें विल्लुपुरम्‌से आगे कटपडी जानेवाली लाइन-पर स्थित है।

( ७ ) कालहस्तीश्वर—तिरुपति-बालाजीसे कुछ ही दूर उत्तर आर्कट जिलेमें खर्णमुखी नदीके तटपर काल-हस्तीश्वर—'वायु'लिङ्ग है। मन्दिर बहुत ऊँचा और सुन्दर है और स्टेशनसे एक मील दूर नदीके उस पार है। मन्दिरके गर्भगृहमें वायु और प्रकाशका सर्वथा अभाव है। दर्शन भी दीपकके सहारे होते हैं। यह स्थान वायु-लिङ्गका माना जाता है। लोगोंका विश्वास है कि यहाँ एक विशेष वायुके झोंकेके रूपमें भगवान् सदाशिव विराज-मान रहते हैं। यहाँकी शिवमूर्ति गोल नहीं, चौकोर है। इस शिवमूर्तिके सामने एक मूर्ति कण्णप भील्की है। कण्णप भील एक बहुत बड़ा शिवभक्त हो गया है। इसने भगवान् शंकरको अपने दोनों नेत्र निकालकर अर्पण कर दिये थे। शिवजीने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा;

\* यहाँका सबसे बड़ा उत्सव 'कार्तिंगाई' नामक है। इस उत्सवके अवसरपर मन्दिरके पुजारी एक बड़े-से पात्रमें बहुत-सा कपूर जलकर उस पात्रको ऊपरसे ढक देते हैं और प्रज्वलित अवस्थामें ही उसे बाहर मण्डपमें ले आते हैं, जहाँ दक्षिण-की प्रथाके अनुसार भगवान्का दूसरा मानुषी विग्रह छुम्फिराकर रखता जाता है। वहाँ उस पात्रको खोल दिया जाता है और उसी समय मन्दिरके शिखरपर भी बहुत-सा कपूर जल दिया जाता है और धीकी मशाल भी जला दी जाती है। कहते हैं कि शिखरका यह प्रकाश दो दिन दो रात वरावर रखता जाता है। यही भगवान्का तेजोलिङ्ग कहलाता है और इसीके दर्शनके लिये लगभग एक लाख दर्शकोंकी भीड़ उत्सव-पर जमा होती है।

जिसपर इसने यही माँगा कि 'मैं सेवार्थ सदा आपके सामने उपस्थित रहा करूँ।'

खर्णमुखी नदीका सम्बन्ध शालग्रामकी मूर्तिसे बतलाया जाता है, अतः वे यात्री, जिनके पास शालग्रामकी मूर्ति होती है, इसमें एक रात्रिके लिये अवश्य निवास करते हैं। दाक्षिणात्यलोग इस तीर्थको 'दक्षिण काशी' कहते हैं। यहाँ एक मन्दिर मणिकुण्डेश्वर नामका है। लोग मरणासन्न व्यक्तियोंको इस मन्दिरके अंदर छुला देते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वाराणसीकी भाँति यहाँ भी शिवजी मरनेवालोंके कानमें तारकमन्त्र सुनाकर मुक्त कर देते हैं। पास ही पहाड़ीपर, एक भगवती दुर्गाका मन्दिर भी है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, जो सात दिनोंतक रहता है।

( ८ ) चिदम्बरम्-'आकाश'लिङ्ग—यह मन्दिर समुद्र-तटसे दो तीन मीलके अन्तरपर कावेरीनदीके तटपर बड़े सुरम्य स्थानमें बना हुआ है। मन्दिरके चारों ओर एकके बाद दूसरा, इस क्रमसे चार बड़े-बड़े धेरे हैं। यहाँ मूल-मन्दिरमें कोई मूर्ति ही नहीं है। एक दूसरे ही मन्दिरमें ताण्डवनृत्यकारी चिदम्बरेश्वर नटराजकी मनोरम मूर्ति विराजमान है। चिदम्बरम्‌का अर्थ है ( चित्-ज्ञान+अम्बर=आकाश ) चिदाकाश। बगलमें ही एक मन्दिरमें शेष-शायी विष्णुभगवान्के दर्शन होते हैं। शंकरजीके मन्दिरमें सोनेसे मढ़ा हुआ एक बड़ा-सा दक्षिणार्थ शङ्ख रखा हुआ है, जो गजमुक्ता, सर्पमणि एवं एकमुखी स्त्राक्षकी भाँति अमूल्य और अलभ्य माना जाता है। मन्दिरमें एक ओर एक परदा-सा पड़ा हुआ है। परदा उठाकर दर्शन करनेपर खर्णनिर्मित कुछ मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ निरा आकाश-ही-आकाश है। यही भगवान्का आकाशलिङ्ग है। निज-मन्दिरसे निकलकर बाहरके धेरेमें आते ही कनक-सभा मिलती है, जिसके पूर्वीय और पश्चिमीय द्वारोंपर नाव्यशास्त्रोक्त १०८ मुद्राएँ

हुरी हुई हैं। मन्दिरके बाहरी धेरेमें रक्खी हुई श्रीगणेश-बीकी मूर्ति इतनी विशाल है, जितनी भारतमें कहीं नहीं प्रेगी। इस मन्दिरका अनूठी कारीगरीसे तैयार किया आ प्रधानद्वार ( गोपुर ), सहस्र स्तम्भोंका मण्डप तथा रेखगङ्गा नामक सुन्दर सरोवर आदि द्राविड स्थापत्य या आस्कर्य शिल्पके अद्भुत नमूने हैं। सहस्रस्तम्भ-मण्डपमें लिल खम्मे-ही-खम्मे हैं, ऊपर छत नहीं है। उत्सवोंके अवसरपर इन खम्मोंपर चौड़नी डाल दी जाती है। गर्भ-मन्दिरके सामने छोटीपर पीतलकी एक विशाल चौखट नी हुई है। वहाँपर रात्रिमें सैकड़ों दीपक जलाये जाते हैं। यहाँ जून तथा दिसम्बरके महीनोंमें दो बड़े-बड़े उत्सव होते हैं। जिन्हें क्रमशः 'तिरुमङ्गलम्' और 'अस्त्र-रैनम्' कहते हैं। इन अवसरोंपर बड़ी धूमधामसे गवानकी सवारी निकलती है और कई दिनोंतक बड़ी रोइ-भाइ रहती है।

दक्षिणमें ६३ शिवभक्त या 'आडियार' आविर्भूत रहे हैं जिन्होंने 'द्राविडेव' के नामसे तामिळ-प्रवन्ध लिखे

हैं। ये सब तीर्थ इन भक्तोंके लीलाक्षेत्र हैं। इस स्थानमें एक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है जो हिंदू-विश्व-विद्यालयके ढंगका है। यहाँका पुस्तकालय बड़ा प्रसिद्ध है, इसमें संसारभरकी भाषाओंकी पुस्तकें संगृहीत हुई हैं।

अन्तमें, महाकवि कालिदासने अष्टमूर्तिकी जिस स्तुति-से अपने विश्वविद्यात 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटकका मङ्गलाचरण किया है, उसीके द्वारा हम भी सर्वान्तर्यामी श्रीमहादेवको प्रणाम कर लेखको मङ्गलके साथ समाप्त करें।

या स्तुष्टिः स्त्रेद्वुराद्या वहति विधिहुतं  
या हविर्या च होत्री  
ये द्वे कालं विधन्तः श्रुतिविषयगुणा  
या स्थिता व्याप्य विश्वम्।  
यामाहुः सर्ववीजप्रकृतिरिति यथा  
प्राणिनः प्राणवन्तः  
प्रत्यक्षाभिः प्रपञ्चस्तनुभिरवतु च  
स्ताभिरप्ताभिरीशः ॥

## भगवान् शिव

( रचयिता—श्रीवल्लभदासजी विनानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न )

शिव शिव हर हर, शिव शिव हर हर,  
वायम्बर धर, डमरु सुकर धर। शिव० ॥ १ ॥  
तर त्रिशूल धर, अभय सुवर कर,  
भस्त्र अंग धर, जटाजूट धर। शिव० ॥ २ ॥  
भाल चन्द्रधर तीन नयनधर,  
नाग हार धर, मुण्ड माल धर। शिव० ॥ ३ ॥  
जटा गंग सारंग अंग धर,  
उमा वाम श्रीनाथ दक्ष धर। शिव० ॥ ४ ॥  
गरल कंठ धर, तीलकंठ धर,  
तन्दू पौढ भव भूतभार धर। शिव० ॥ ५ ॥  
किया-कर्म-कारण अनन्त धर,  
भक्त-देतु कर सार सुधर धर। शिव० ॥ ६ ॥

## शिव-तत्त्व

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदथालजी गोयन्दका )

शान्तं पञ्चासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवष्ट्रं त्रिनेत्रं शूलं वज्रं च खड़ं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम् ।  
नामं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साहुरां वामभागे नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥

शिव-तत्त्व बहुत ही गहन है । मुङ्ग-सरीखे साधारण व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है । परंतु इसी बहाने उस विज्ञान-नन्दघन महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनो-विनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ । विद्वान् महानुभाव क्षमा करें ।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है । इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना सम्भव है; परंतु पुराण तो अठाहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्नता ही पायी जाती है । शैवपुराणोंमें शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और शाक्तपुराणोंमें देवीसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है । इसका क्या कारण है? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंमें भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है । इसका क्या हेतु है?

इस प्रश्नपर मूळ-तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट माद्भूम हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचयिता ऋषियोंके कथनमें भेद रहनेपर भी बल्तुतः मूळ-सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं है; क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-लक्ष्य बदलकर आदि-

में प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं । वर्णनमें भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई कारण हैं—

१—मूळ-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता; क्योंकि वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना स्वाभाविक है ।

२—महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्ति-क्रममें भेद रहता है । ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है तो कहीं सर्गका, इससे भी भेद हो जाता है ।

३—प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक कारण है ।

४—सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका रहस्य बहुत ही सूहम और दुर्विज्ञेय है, इसे समझनेके लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-त्रायोद्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदि-का रहस्य बतलानेकी चेष्टा की गयी है । इस तात्पर्यको न समझनेके कारण भी एक-दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष भेद प्रतीत होता है ।

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं । अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है । पुराणोंकी रचना प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यासजीने की है । वेदव्यासजी महाराज वडे भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्य-

के जननेवाले महापुरुष थे। उन्होंने देखा कि वेद-शब्दोंमें व्रहा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मुख्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले एक ही परमात्माको अनेक मानसे लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छूट गया है। इस अवस्था-में उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य खी, शूद्धादि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परमहितके उद्देश्यसे पुराणोंकी रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महाष वेदव्यासजीने उनमें इस प्रकार-के वर्णन और उपदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वर-के नाना प्रकारके नाम और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वर्णीभूत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गन्तरमें नहीं जा सकते। वे किसी भी नाम-लक्ष्यसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही सन्मार्गपर आख्य रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-वैचित्रियके कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी उपासना करनेवाले जैसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर उन्हें सन्मार्गपर या देनेके उद्देश्यसे ही वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देते रुप-भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न नैतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम ज्ञाया गया है। जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम शक्ति है। उन्होंने सबके लिये परम धाम पहुँचनेका र्थी सरल कर दिया। पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान्के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, एवं गुणधार, विज्ञाननन्दधन परमात्मा माने और उसीको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले रुप, रिष्यु, गहेशके रूपमें प्रकट होकर किया करने-

वाला समझे। उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बदकर और कोई है ही नहीं। सब उसीका लील-विस्तार या विभूति है।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दधन परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया वड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है; क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार ( चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो ) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये।

विज्ञानानन्दधन परमात्माके वेदोंमें तो त्वरण माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको गिर्गुण ब्रह्म कहा गया है और जिस अंशमें प्रकृति या गिर्गुणर्थी माया है उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके अंशको सगुण कहते हैं। लगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निरकार, दूसरा साकार। उस निराकार, सगुण ब्रह्मशी द्वी नदेश्वर, परमेश्वर आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वही सर्वशक्ती, निराकार, लक्षिकर्ता परमेश्वर, स्वयं ब्रह्म, दिव्य, लक्षण—

इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इस प्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त-से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक सदाशिव, विष्णुके उपासक महाविष्णु और रात्तिके उपासक महाशक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दधन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधा भिन्नो ह्याहं विष्णो व्रह्मविष्णुहराख्यया ।  
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे ॥  
यथा च ज्योतिषः सङ्घाज्जलादेः स्पर्शता न वै ।  
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्वन्धनं न हि ॥  
यथैकस्य सृदो भेदो नाम्नि पात्रे न वस्तुतः ।  
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः ॥  
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम् ।  
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम ॥  
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।  
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च वन्धनं भवेत् ॥  
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम् ।  
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥  
( शिवपुराण )

‘हे विष्णो ! हे हरे !! मैं सभावसे निर्गुण होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ। जिस-प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिविम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतियोंमें कोई स्पर्शता नहीं आती, उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे वन्धन नहीं होता। मिट्ठीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका

ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है—एक मिट्ठी ही है। समुद्रके भी फेन, बुदबुदे, तरङ्गादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आपलोंको भेदका कोई कारण न देखना चाहिये। वस्तुतः दृश्य पदार्थ मात्र शिवरूप ही है, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूल-खरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।’

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका ‘सत्यं ज्ञान-मनन्तं ब्रह्म’—नित्य विज्ञानानन्दधन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पञ्चवक्त्र हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्म को महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको वाह देव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।  
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥  
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।  
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥  
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।  
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥  
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः ।  
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥  
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।  
प्रणम्य सर्वभूतस्थमन्त्युतं पुरुयोत्समम् ॥  
( विष्णु० १ । २ । १-५ )

‘निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव आदि नामों-

से प्रसिद्ध संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा  
व्यक्ति कारण, एक और अनेक स्थूलपत्राले, स्थूल, सूक्ष्म—

भयात्मक व्यक्ताव्यक्तस्थूलप एवं मुकिदाता भगवान्  
। युको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति,  
फलन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके भी  
मूलकारण, जगन्मय उस सर्वध्यापी भगवान् वासुदेव  
। परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसे भी अति  
भगवान्को मेरा प्रणाम है।

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्माका  
निर्गुण स्थूलप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्थूलप—  
जगत्ता चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—  
दो स्थूलप बतलाये गये हैं। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वध्यापी  
भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो कि ब्रह्मा, विष्णु  
और महेशके भी मूल-कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति  
सूक्ष्म पुरुषोत्तम नामसे बतलाये गये हैं तथा स्थूलस्थूलप  
यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा,  
विष्णु और महेशके बाचक हैं जो कि हिरण्यगर्भ, हरि  
और शंकरके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब बचनोंसे  
यहाँ संसारकी उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।  
इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए  
कैण कहते हैं—

स्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।  
गुणात्मये गुणमयि नारायणि नमोऽस्तु ते॥  
( मार्कण्डेय० ११ / १० )

ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति,  
गत्वा और विनाश करनेवाली है सनातनी शक्ति ! हे  
उग्रात्मये ! हे गुणमयी नारायणीदेवी ! तुम्हें नमस्कार हो !

संयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—  
त्वमेव सर्वजननी सूलप्रटिरीद्वरी।  
वगेधाया खण्डिधौ स्वेच्छया निर्गुणात्मिका॥  
पि० ३० अ० ८२—

कार्यार्थं सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।  
परब्रह्मस्थूलपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥  
तेजःस्थूलपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥  
सर्वस्थूलपा सर्वेशा सर्वधारा परात्परा ॥  
सर्वधीजस्थूलपा च सर्वपूज्या निराथया ॥  
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥  
( ब्रह्मै० प्रकृति० २ / ६६ / ७—११ )

‘तुम्हीं विश्वजननी, मूढ़-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं  
सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान  
रहती हो और स्वेच्छासे निर्गुणात्मिका बन जाती हो।  
यद्यपि वस्तुतः तुम स्यं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश  
सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्थूलप, सत्य, नित्य  
एवं सनातनी हो; परम तेजःस्थूलप और भक्तोंपर अनुग्रह  
करनेके हेतु शरीर धारण करती हो; तुम सर्वेशस्थूलप,  
सर्वेश्वरी, सर्वधारा एवं परात्परा हो। तुम सर्वज्ञा, सर्वग्रिकारसे  
सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञा, सर्वमङ्गलोंकी भी मङ्गल हो।’

अपरके उद्वरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दवनस्थूल-  
प के साथ ही सर्वध्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिकी उत्पत्ति,  
पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके  
रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके बारेमें कहा गया है—

जय देवातिदेवाय निर्गुणाय तुमेधसे ।  
अव्यक्तजन्मस्थूलपाय कारणाय महात्मने ॥  
पतत्विभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक ।  
रजोगुणगुणाविष्ट द्वजसीदं वरात्परम् ॥  
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽप्तिकलम् ।  
X X X X X ( देवीपुराण ८३ / ८३—१३ )

‘आपर्का जय हो। उत्तम तुम्हिंवाले, अव्यक्तजन्म-  
स्थूल, निर्गुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, तद्यम  
एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशब्रह्म तीनों भव्योंसे  
भावित होनेवाले महात्मा देवादिवेद द्रष्टव्यदेवों लिये नमस्कार

है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्य-र्गभरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्व-गुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अव्यक्तसे तो परात्पर परब्रह्मस्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा, विष्णु-महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे ।  
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥  
अरूपस्त्वग्नेष्वस्य जगतः कारणं परम् ।  
एक एव विधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः ॥  
सृष्टौ विधातुरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः ।  
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वरूपतां गतः ॥

(पद्म० पाता० २८ । ६—८)

‘आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र-रूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर विविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मा-रूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्रभामय विष्णु-रूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुक्त शर्व (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं।’

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुन अरूप अलख अज जोहूं । भगत प्रेमवस सगुन सो होहूं ॥  
जो गुनरहित सगुन सो कैसे । जल हिम उपल विलग नहिं जैसे ॥  
राम सचिदानन्द दिनेसा । नहिं तहूं भोहनिसा-लवलेसा ॥  
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविव ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैर्तपुराणमें कथा है कि एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सभ देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए। वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम् ।  
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥  
विश्वरक्षाकारणं च विश्वधनं विश्वजं परम् ।  
फलवीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम् ॥  
(ब्रह्म० १ । ३ । २५-२६)

‘आप विश्वरूप हैं, विश्वके खामी हैं, नहीं नहीं, विश्वके सामियोंके भी खामी हैं, विश्वके कारण हैं, कारणके भी कारण हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नाना रूपोंसे विश्वमें आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।’

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुख कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमसृतस्याव्ययस्य च ।  
शाद्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥  
(१४ । २७)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।  
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं वीजमव्ययम् ॥  
(१ । १८)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सुजामि च ।  
असृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥  
(१ । १९)

मत्तः परतरं नान्यर्तिकच्छिदस्ति धनञ्जय ।  
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥  
(७ । ७)

यो मामजमनार्दि च वेत्ति लोकमदेवतम् ।  
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
(१० । ३)

‘हे अर्जुन ! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा निष्ठ-धर्मका एवं अद्यष्ट एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ; अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्तर्धर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होने योग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका खामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उपति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान\* और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षको आकर्षण करता हूँ और वरसाता हूँ एवं हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ।

‘हे धनंजय ! मेरेसे सिवा किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूक्ष्मे सूक्ष्मके मणियों-के सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित) अनादि† तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।’

उपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण तत्त्वतः एक ही हैं। इस विवेचनपर इष्टि डालकर मिचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दधन परमात्माको मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूपका भेद है, परंतु वस्तु-तत्वमें कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वरको इस प्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दधन समझकर शाश्व और आचार्योंके ब्रतलाये हुए मार्गके

\* प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं उसका नाम ‘निधान’ है।

† ‘अनादि’ उसको कहते हैं जो आदिरहित हो और अस्ति करण हो।

अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उस परमात्माको लक्ष्य करके जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है।

विज्ञानानन्दधन, सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन-से तो रहते ही हैं। परंतु इस प्रकारका व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझा जाता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता क्षी एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसके आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिके आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पतिव्रत-धर्मसे जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यशको प्राप्त होती है। वास्तवमें दोप पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यमिचार और शत्रुलाभमें है। यथोचित वैध सेवा तो कर्तव्य है। इसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परं इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवोंकी अपेक्षा इष्टदेवके आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये अद्वा और आदरके साथ यद्योग्य सेवा करनी चाहिये। उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक निष्ठ विज्ञानानन्दधन दृष्टि हो देता वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी दृष्टि नहीं है, तब किसी एक नाम-रूपसे दैव या उपर्युक्त निदान, निरस्कार और उपेक्षा करना उस दृष्टिसे दीर्घकाल करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णु या श्रीराम-

ने एक दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसीसे कहा ही है; बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेकी प्रशंसा की है। शिवपुराणमें कहा गया है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।  
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः ॥  
कचिद्व्रह्मा कचिद्विष्णुः कचिद्वुद्रः प्रशस्यते ।  
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥  
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः ।  
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः ॥

( शिवपुराण )

‘ये तीनों ( ब्रह्मा, विष्णु और शिव ) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेके द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरेकी अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है मानो वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक वडा है और अमुक डोटा है वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।’

स्थायं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान् से कहते हैं—

महर्षने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने ।  
ममैव हृदये विष्णुविष्णोश्च हृदये त्वहम् ॥  
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम ।

( शिव० शान० ४ । ६१-६२ )

‘मेरे दर्शनका जो फल है वही आपके दर्शनका है। आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।’

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम् ।  
आवयोरन्तरं नास्ति भूदाः पश्यन्ति दुर्धियः ॥

ये भेदं विद्धत्यज्ञा आवयोरेकरूपयोः ।  
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम् ॥  
ये त्वद्वक्ताः सदासंस्ते मद्वक्ता धर्मसंयुताः ।  
मद्वक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्ग्राः ॥

( पद्म० पाता० २८ । २१-२३ )

‘आप ( शंकर ) मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आप-के हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अंदर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अंदर भेद-भावना करते हैं वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।’

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः ।  
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेत्सः ॥  
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावचन्द्रदिवाकरौ ।  
कृत्वा लिङ्गं सकृत्यपूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि ॥  
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा ।  
ज्ञानवान् सुकिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्वयेत् ॥  
शिवेति शब्दसुचार्यं प्राणांस्त्यजति यो नरः ।  
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः ॥

( व्रसावैवर्त० प्र० ६ । ३१, ३२, ४५, ४७ )

‘मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे ज्वरक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा तबतक कालसूत्रमें ( नरकमें ) रहते रहेंगे। जो शिवलिङ्गका निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्तरामें निवास करता है। शिवलिङ्गके अर्चनसे मनुष्यको प्रज्ञा, भूमि, विद्या, पुत्र, वान्यव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण कर शरीर छोड़ता है वह करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णु श्रीमद्भागवत ( ४ | ७ | ५४ ) में दक्षप्रजापतिके प्रति कहते हैं—

त्रयाणमेकभावानां यो न पद्यति वै भिदाम् ।  
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छुति ॥

'हे विष्णु ! हम तीनों एकरूप हैं और समस्त भूतोंकी आत्मा हैं, हमारे अंदर जो भेद-भावना नहीं करता, मिस्त्रेह वह शान्ति ( मोक्ष ) को प्राप्त होता है।'

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने कहा है—

संकरप्रिय मम द्रोही सिवद्रोही मम दास ।  
ते नर करहि कल्प भरि घोर नरकमहै वास ॥  
धौरउ एक गुपुत मत सवहि कहौं कर जोरि ।  
संकरभजन विना नर भगति न पावहू मोरि ॥

ऐसी अवस्थामें जो मनुष्य दूसरेके इष्टदेवकी निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तवमें अपने ही इष्टदेवका अपमान या निन्दा करता है। परमात्माकी प्राप्तिके पूर्व-कालमें परमात्माका यथार्थ रूप न जाननेके कारण भक्त अपनी समझके अनुसार अपने उपास्यदेवका जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तवमें उपास्यदेवका स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण है; तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचिके अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासनाको परमात्मा सर्वथा सर्वांशमें स्थीकार करते हैं; क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिके पूर्व ईश्वरका यथार्थ स्वरूप किसीके भी चिन्तनमें नहीं आ सकता। अतएव परमात्माके किसी भी नाम-रूपकी निष्ठाम-भावसे उपासना करनेवाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दधन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। हाँ, सकाम-भावसे उपासना करनेवालेको दिलच्छ हो सकता है। तथापि तकाम-भावसे उपासना करनेवाला भी श्रेष्ठ और उदार ही मना गया है ( गीता ७ | १८ ); क्योंकि अन्तमें वह भी ईश्वरको ही प्राप्त होता है। 'मङ्गला यान्ति मामपि' ( गीता ७ | २३ )।

'शिव' शब्द नित्य विज्ञानानन्दधन परमात्माका वाचक है। यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है। 'शिव' शब्दकी उत्पत्ति 'शश कान्तौ' धातुसे हुई है, जिसका तत्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते हैं अखण्ड आनन्दको। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ आनन्द हुआ। जहाँ आनन्द है वहाँ शान्ति है और परम आनन्दको ही परम मङ्गल और परम कल्याण कहते हैं, अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ परम मङ्गल, परम कल्याण समझना चाहिये। इस आनन्ददाता, परम कल्याणरूप शिवको ही शंकर कहते हैं। 'शं' आनन्दको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है, अतएव जो आनन्द करता है वही 'शंकर' है। ये सब लक्षण उस नित्य विज्ञानानन्दधन परम ब्रह्मके ही हैं।

इस प्रकार रहस्य समझकर शिवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे उनकी कृपासे उनका तत्त्व समझमें आ जाता है। जो पुरुष शिव-तत्त्वको जान लेता है उसके लिये फिर कुछ भी जानना शैया नहीं रह जाता। शिव-तत्त्वको हिमालयतनया भगवती पार्वती वर्धारूपसे जानती थी, इसीलिये उग्रवेशी स्वयं शिवके ग्रहकानेसे भी वे अपने सिद्धान्तसे तिलमात्र भी नहीं टूटे। उमा-शिवका यह संवाद बहुत ही उपरेकाप्रद और रोचक है।

शिव-तत्त्वेकनिष्ठ पार्वती शिवप्राप्तिके लिये थोर तप करने लगी। माता मेनकाने स्नेहकात्मा होकर उ ( करो ! ) मा ( ऐसा तप न करो ) कहा, इससे उनका नाम 'उमा' हो गया। उन्होंने सूर्यो पते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका 'उमा' नाम पड़ा। उनकी बढ़ोग तात्पर्यको देख-लुतकर परम अवध्यानित हो गयी थी उन्हें जो कि 'अहो, इसके तत्त्व हैं, इसकी तत्त्वानुसारे

दूसरोंकी तपस्या कुछ भी नहीं है।' पार्वतीकी इस तपस्याको देखनेके लिये स्वयं भगवान् शिव जटाधारी वृद्ध ग्राहणके बेशमें तपोभूमिमें आये और पार्वतीके द्वारा फल-पुष्टादिसे पूजित होकर उसके तपका उद्देश्य 'शिवसे विवाह करना है' यह जानकर कहने लगे।

'हे देवि ! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। मित्रताके नाते मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है। तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका संकल्प सर्वथा अनुचित है। तुम सोनेको छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्यागकर कीचड़ पोतना चाहती हो। हाथी छोड़कर बैलपर मन चलाती हो। गङ्गाजल परित्यागकर कुएँका जल पीनेकी इच्छा करती हो। सूर्यका प्रकाश छोड़कर खद्दोतको और रेशमी वस्त्र त्यागकर चमड़ा पहनना चाहती हो। तुम्हारा यह कार्य तो देवताओंकी संनिधिका त्याग कर असुरोंका साथ करनेके समान है। उत्तमोत्तम देवोंको छोड़कर शंकरपर अनुराग करना सर्वथा लोकविरुद्ध है।

'जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवनकमलीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी, चिताभस्मलेषनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र भूतपति महादेव ! कहाँ तुम्हारे घरके देवतालोग और कहाँ शिवके पार्षद भूत-प्रेत ! कहाँ तुम्हारे पिताके घर बजनेवाले सुन्दर बाजोंकी व्यनि और कहाँ उस महादेवके डमरू, सिंगी और गाल बजानेकी व्यनि ! न महादेवके माँ-बापका पता है, न जातिका ! दरिद्रता इतनी कि पहननेको कपड़ातक नहीं है। दिग्पत्र रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाघका चमड़ा ओढ़े रहते हैं ! न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है ! सदा अकेले रहनेवाले, उत्कृष्ट विरागी, रुद्धमालाधारी महादेवके साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी ?'

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सह सकी। वे

तमक्कर बोले—'वस, व्रस, व्रस, रहने दो, मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती। माल्दम होता है, तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। तुम किसी धूर्त त्रिवचारीके रूपमें यहाँ आये हो। शिव वस्तुतः निर्गुण हैं, करुणावश ही वे सगुण होते हैं। उन सगुण और निर्गुण—उभयात्मक शिवकी जाति कहाँसे होगी ? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका ही क्या परिमाण बौंधा जा सकता है ? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतएव उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है ? वही अनादि, अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणावार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातन देव हैं। तुम कहते हो, महादेव विद्याहीन हैं। अरे, ये सारी विद्याएँ आयी कहाँसे हैं ? वेद जिनके निःश्वास हैं उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो ? छिः छिः !! तुम मुझे शिवको छोड़कर किसी अन्य देवताका वरण करनेको कहते हो। अरे, इन देवताओंको, जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व प्राप्त ही कहाँसे हुआ ? यह उन भोलेनाथकी ही कृपाका तो फल है। इन्द्रादि देवगण तो उनके दरवाजेपर ही स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणोंकी आज्ञाके अंदर धूसनेका साहस नहीं कर सकते। तुम उन्हें अमङ्गलवेश कहते हो ? अरे, उनका 'शिव'—यह मङ्गलमय नाम जिनके मुखमें निरन्तर रहता है, उनके दर्शनमात्रसे सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या ? जिस चिता-भस्मकी तुम निन्दा करते हो, तृत्यके अन्तमें जब वह उनके श्रीअङ्गोंसे झड़ती है, उस समय देवतागण उसे अपने मस्तकोंपर धारण करनेको अव्ययित होते हैं। व्रस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्त्वको विलुप्त नहीं जानते। जो मनुष्य इस प्रकार उनके दुर्गम तत्त्वको बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके संचित किये दृष्ट पुण्य विलीन हो जाते हैं। तुम-जैसे शिव-

निष्ठका सल्कार करनेसे पाप लगता है। शिव-निष्ठको देखकर भी मनुष्यको सचेल स्थान करना चाहिये, तभी वह शुद्ध होता है। बस, अब मैं यहाँसे जाती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि वह दुष्ट फिरसे शिवकी निष्ठा प्रारम्भकर मेरे कानोंको अपवित्र करे। शिवकी निष्ठा करनेवालेको तो पाप लगता ही है, उसे सुननेवाला भी वह सके, पार्वती जिस रूपका ध्यान करती थी उसी रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—मैं वहाँ रहता हूँ, वर माँगो।

पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई, उन्हें साक्षात् शिवके दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, उछ कालमें शिवने पार्वतीका शाणिप्रहण कर लिया।

जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्यामाचरधारी, सदाशिव समझकर उनकी सगुण, साकार एवं सगुण, निराकार भरता है, उसीकी उपासना सची और सर्वाङ्गपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके वही जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंको तो यही क्या है? परंतु वास्तवमें शिवजी महाराज है ही आशुतोष! उपासना करनेवालोंपर बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्यको जानकर क्रम-प्रेमभावसे भजनेवालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें

तो कहना ही क्या है? सकामभावसे, अपना मत उत्तर गाँठनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं उनमर भी आप रीङ्ग जाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आग-पीछा नहीं सोचते। जरासी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यङ्गसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। इस विषयमें गोसाई उल्लसीदासजी महाराजकी कल्याना बहुत ही उन्द्र है। वे विधाताके वचनोंमें कहते हैं—  
वावरो रावरो नाह भवानी !

दानि वहो दिन देत दथे विनु, वेद वडाई भानी ॥ टेक ॥  
निज घरकी वर वात विलोकहु, ही तुम परम सथानी ।  
सिवकी दई संपदा देखत, श्रीसारदा सिहानी ॥  
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी बुखकी नहीं निशानी ।  
तिन रंगनको नाक संवारत, हीं आयो नकवानी ॥  
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता बहुत्यानी ।  
वह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली में जानी ॥  
प्रेम-प्रसंसा विनय व्यंगाहुत, सुनि विधिकी वर वानी ।  
उल्लसी मुद्रित महेस मनहि मन, जगतमातु सुसकानी ॥

ऐसे भोलेनाथ भगवान् शंकरको जो प्रेमसे नहीं  
भजते, वास्तवमें वे शिवके तत्वको जानते नहीं हैं, अतएव  
उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है इससे अधिक उनके  
लिये और क्या कहा जाय। अतएव प्रिय पाठकगणो!  
आपलोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है, यदि आपगेग उचित  
समझे तो नीचे लिखे साधनोंको समझकर व्याख्याकि  
उन्हें काममें लानेकी चेष्टा करें—

(क) पवित्र और एकान्त स्थानमें गाता अस्याय ३,  
ध्येक १० से १४ के अनुसार—

(१) भगवान् शंकरके प्रेम, (इत्य, युग और  
प्रभावद्वयी अष्टतम्यी कथाज्ञेया, उनके  
तत्वको जाननेवाले भज्योदात भवत करदे,  
नमन करता एवं लय वी लेद्दर्शनोंको  
पढ़कर उनका हृत्त लिये रखा

करता और उनके अनुसार आचरण करने-  
के लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करना ।

( २ ) भगवान् शिवकी शान्तमूर्तिका पूजन-  
वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य करना ।

( ३ ) भगवान् शंकरमें अनन्य प्रेम होनेके लिये  
विनय-भावसे सुदन करते हुए गद्द वाणी-  
द्वारा स्तुति और प्रार्थना करना ।

( ४ ) 'ॐ नमः शिवाय'—इस मन्त्रका मनके  
द्वारा या आसोंके द्वारा प्रेमभावसे गुस  
जप करना ।

( ५ ) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित  
यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-  
भक्तिसहित निष्कामभावसे ध्यान करना ।

( ६ ) व्यवहारकालमें—

( १ ) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ  
सदृश्यवहार करना ।

( २ ) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी  
आज्ञाके अनुसार फलासक्तिको त्यागकर  
शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप,  
सेवा एवं वर्णश्रिमके अनुसार जीविकाके  
कर्मोंको करना ।

( ३ ) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी  
प्राप्ति और विनाशको शंकरकी इच्छासे  
हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान्  
सदाशिवकी दयाका दर्शन करना ।

( ४ ) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और  
निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके

स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-  
फिरते, उठते-बैठते, उस शिवके नाम-  
जपका अन्यास सदा-सर्वदा करना ।

( ५ ) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और  
सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय  
कोशिश करते रहना ।

उपर्युक्त साधनोंको मनुष्य कटिवद्ध होकर ज्यों-ज्यों  
करता जाता है, ज्यों-ही-ज्यों उसके अन्तःकरणकी  
पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय  
श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली  
जाती है। इसलिये कटिवद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको  
करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करनी चाहिये।  
इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेमपूर्वक निरलत

चिन्तन करना सबसे बढ़कर है। अतएव नाना प्रकारके  
कर्मोंके वाहुल्यके कारण उसके चिन्तनमें एक क्षणकी  
भी बाधा न आये, इसके लिये विशेष साधान रहना  
चाहिये। यदि अनन्य प्रेमकी प्रगड़ताके कारण शास्त्र-  
सुकूल कर्मोंके करनेमें कहीं कमी भी आती हो तो कोई  
हर्ज नहीं, किंतु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी चाहिये;  
क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ भगवान् का चिन्तन  
( ध्यान ) तो निरन्तर होता ही है और उस ध्यानके  
प्रभावसे पद-पदपर भगवान् की दयाका अनुभव करता  
हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे  
समझकर कृतवृत्त्य हो जाता है, अर्थात् परम पदको प्राप्त  
हो जाता है। अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको  
समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर  
चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

## परात्पर शिव

(लेखक—स० श्रीगौरीशंकरजी गोपनका )

गोदयति यन्न नदयति निर्वाति न निर्वृतिं प्रयच्छति च ।  
शानकियाखमावं तत्त्वेजः शाम्भवं जयति ॥

एक परमतत्त्व है, जो सर्वत्र अनुस्थृत है, सब ग्रण्योंका कारण है। सबका अधिष्ठिति, सबका रचयिता, शालमिता एवं संहर्ता है। जिसके भयसे सूर्य प्रतिदिन यथासमय उद्दित होता है और यथासमय अस्त। वायु अविर्भूत बहता है, चन्द्र प्रतिपक्ष घटता-बढ़ता है, प्रकृतिकी छविको नयनाभिराम बनाती है। कभी अनित्य, तरु, निकुञ्ज और लताएँ पल्लवों और तो कभी उनमें एक पीला पता भी नहीं दिखायी देता। च जाती है, तो कभी कहीं एक शब्द भी नहीं हुआयी देता। कभी काले-काले बादलोंकी घटाएँ, विद्युतिताओंका परिनर्तन, मेघका तर्जन-गर्जन अपना द्वय उपस्थित करते हैं, तो कभी द्वकी लपटें, हेमन्तका शीतजन्य हाहाकार और शिशिरका सील्कार आदि अपना अभिनय दिखाते हैं। यह सब उसी उच्चतुर शिरीकी उश्यका ही तो है, उसी मायावीकी मायाका विलास ही तो है। वसन्तके बाद सदा ग्रीष्मका ही आविर्भव द्वय होता है। उसके पश्चात् वर्षा, इसी कामसे अन्यन्य चतुर आती हैं और जाती हैं। इसमें तनिक भी भवित्वन या विपर्यय नहीं होता। ये सब बातें विना संचालकके सम्भव नहीं हैं।

जो दिग्पसन होते हुए भी भक्तोंको अनुल ऐश्वर्य कीमतेले हैं, रमशानवासी होते हुए भी ग्रैडोन्याधिष्ठित हैं; योगिराजाधिराज होते हुए भी अद्वनारीवर हैं, सदा विभूतियाँ। कोई उनकी दिव, नदादेव कहकर उपस्थन

रक्षाते अद्यिङ्गित रहते हुए भी मदनजित हैं, अज

होते हुए भी अनेक स्थानोंसे आविर्भूत हैं, उणहीन होते हुए भी गुणाव्यक्ष हैं, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हैं, सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं, अनन्त रत्न-राशियोंके अधिष्ठिति होते हुए भी भस्मविभूषण हैं, वही इस जगत्के संचालक हैं, वही परात्पर शिव हैं। विष्णु पड़नेपर सब देवता जिनकी शरणमें जाते हैं, क्रृष्ण, विष्णु आदि देव भी घोर तपस्या कर जिनके कृपाभाजन हुए हैं, जिन्होंने अन्धक, शुक, दुन्दुभि, महिष, विषुर, रावण, निवातकनच आदि अनेकोंको अतुल ऐश्वर्य देकर फिर उनका संहार किया, जिन्होंने भयभीत देवताओंकी प्रार्थनापर हालाहल गरलको अमृतके समान पी लिया, चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेम हैं; सर्ग सिर है, आकाश नामि है, दिशाएँ कान हैं; जिनके मुखसे ब्राह्मण और ब्रह्म पैदा हुए, इन्द्र विष्णु और क्षत्रिय जिनके हाथोंसे उत्पन्न हुए, जिनके ऊरुदेशसे वैश्य और पाँचसे शूद्र पैदा हुए, अनेक देव, सिद्ध, गन्धर्व, वक्ष, किन्नर, मनुष्य, राक्षस आदि जिनकी कृपासे अनन्त ऐश्वर्यके अधिष्ठिति हुए हैं; जो ज्ञान, तप, ऐश्वर्य, लीला आदिसे जगत्के कल्याणमें रत हैं; जिनके समान न कोई दाता है, न तपसी है, न ज्ञानी है, न त्यागी है, न वक्ता है, न उपदेश है, न ऐश्वर्यशाली है, जो सदा सब वस्तुओंसे परिष्ठ्री है; जिनके आवास कैदासका विशाल वर्णन करते-करते शोर, शारदा आदि भी यक्षित रह जाते हैं; जो ध्रुतियोंमें नदादेव, देवदेव, महेश्वर, महेशान, आद्युतोप आदि अनेक नामोंसे पुकारे गये हैं—वही परात्पर है, परमकरण है।

उनके अनन्त नाम हैं और हैं उनकी अपरिमित विभूतियाँ। कोई उनकी दिव, नदादेव कहकर उपस्थन करता है तो कोई व्रज, नारायण, पुष्टि, कल्प, वर्द्धन,

बुद्ध आदि विभिन्न नामोंसे उन्हींकी उपासना करते हैं। महाकवि कालिदासने बहुत ठीक कहा है—

**बहुधाप्यागमैर्भेषाः पश्यानः सिद्धिहेतवः ।  
त्वच्येव निपतन्त्योदा जाह्नवीया इवार्णवे ॥**

निष्ठय ही ये विभिन्न मार्ग उसी एक परात्परको विषय करते हैं। नद-नदी-नाले, इनमेंसे भले ही कोई शूर्वकी ओर बहे और कोई पश्चिमकी ओर, अन्तमें वे सब समुद्रमें ही जा गिरते हैं।

**महिम्नःस्तोत्रमें पुष्पदन्ताचार्यने** भी इसी भावका संकेत किया है—

**श्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति  
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।  
रुचीनां वैचित्र्याद्जुकुटिलनानापथजुयां  
गुणमेको गम्भरस्त्वमसि पथसामर्णव इव ॥**

‘स्मार्त, सांख्य, योग, पशुपतमत, पाष्वरात्रमत आदि विभिन्न शाखाओंमें ‘यह श्रेष्ठ है, यह हितकर है’ इत्यादि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सीधे-टेढे अनेक मार्गोंका अवलम्बन करनेवाले लोगोंके एक आप ही गम्य हैं, जैसे कि नद, नदी, नाले, झरनों, झोतोंके जलका एकमात्र आश्रय सागर है।’

कहाँ अतुल महिमावाले परात्पर शिव, कहाँ मैं अत्यत्यन्त प्राणी। उनकी परात्परता तथा सर्वकारणताके विषयमें लिखनेकी भला मेरी क्या सामर्थ्य? तथापि अपनी लेखनीको उनके गुण-लेखनसे पवित्र करनेके लिये कुछ निवेदन करनेका साहस करता हूँ। सम्भव है, इससे पाठकोंका यत्किञ्चित् मनोविनोद हो जाय।

जैसे चृपतिके छत्र, चौंकर आदि असाधारण अभिज्ञान है, उसी प्रकार जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करना परात्परका असाधारण अभिज्ञान है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि

जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजित्वासत्त्व ।  
तद्ब्रह्म ।

( तैत्ति० )

‘जिससे हिरण्यगर्भसे लेकर कीटपर्यन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर प्राण धारण करते हैं, अन्तमें जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसको जाननेकी इच्छा करो, वही ब्रह्म है।’

**द्यवाभूमी जनयन् देव एकः ।**

( श्वे० ३ । ३ )

‘द्यौ और पृथिवी ( ब्रह्माण्डके दो कटाहों ) की सृष्टि, स्थिति और लय करनेवाला स्वयंप्रकाश एक है।’ इत्यादि अनेक श्रुतियों एवं ‘जन्माद्यस्य यतः’ ( ब्र० १ । १ । २ ) ‘जिससे इस जगत्के जन्म आदि होते हैं, वह ब्रह्म है।’—इत्यादि सूत्रोंसे उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

यहाँपर देखना यह है कि उक्त लक्षण शिवजीमें घटता है या नहीं? श्वेताश्वतर-उपनिषद्में एक गाथा आयी है। उसका आशय यह है कि कतिपय ब्रह्मादी ऋषियोंको ‘यतो वा’ श्रुतिके बलसे जगत्के जन्म आदिका कारण, सबका अधिष्ठाता ब्रह्म है—ऐसा निष्ठय हुआ; किंतु वह ब्रह्म असुक देवतारूप है, इस प्रकार विशेष ज्ञान उन्हें नहीं था। अतः उन्हें संशय हुआ कि समस्त संसारकी रचना, पालन तथा संहार करनेवाला वह ब्रह्म किस रूपवाला है। उक्त संशयको ‘किं कारणं ब्रह्म?’ ( श्वे० १ । १ ) इत्यादि प्रकरणसे दिखाकर जगत्के हेतु काल, समाव, नियति, महाभूत, पुरुष हैं या इनका संयोग है, अथवा यह विना किसी कारणके बना है, इस प्रकारकी आशङ्काओंका—

**कालः स्वभावो नियतिर्यदच्छा  
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ।  
संयोग एवां न त्वात्मभावात्  
—इत्यादिसे उपर्युक्त संशयकी सिद्धिके लिये**

निराकरण करते हुए ब्रह्म किंसूप है, इस विषयमें स्थान निर्णय करनेमें असमर्थ हो ग्रन्थियोंने सोचा कि ब्रह्मविद्या देनेमें अतिनिपुण तथा उदार परमशक्तिसूख्या अभिका देवीके प्रसादसे ही इस विषयका निर्णय हो सकेगा। वे ऐसा निश्चय कर समाधिष्ठ हो गये। उन्हें परमात्माकी शक्तिके दर्शन हुए। उसके प्रसादसे उन्हें पूर्वोक्त काल, स्वभाव आदि कारणोंके कारण, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सत्-अभिन्न चित्, चित्-अभिन्न सत्, आनन्दामूलनिधि परमात्माका विशेषसूख्यसे साक्षात्कार हुआ। अनन्तर—

क्षरं प्रधानमसृताक्षरं हरः  
क्षरात्मानादीशते देव एकः ।  
( श्लो० १ । १० )

—इत्यादि उपसंहारसे विस्तारपूर्वक यह निर्णय किया है कि 'यतो च' श्रुतिमें जिसे 'ब्रह्म' नामसे जगत्के जन्म आदिका कारण कहा गया है, वे शिव ही हैं। कूर्मपुराणमें इसी गाथाका विस्तृत वर्णन इस तरह किया गया है—

समेत ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ।  
वितेन्निरे वहून् वादानात्मविशानसंथ्रयान् ॥  
किमस्य जगतो मूलमात्मा वासाक्षेप्ति हि ।  
कोऽपि स्यात्सर्वभूतानां हेतुरीश्वर एव च ॥  
इत्येवं मन्यमानानां ध्यानकर्मविलम्बिनाम् ।  
आविरासीन्महादेवी गौरी गिरिवरात्मजा ॥

—इत्यादिसे लेखत

|                 |                    |
|-----------------|--------------------|
| निरीक्षितास्ते  | परमेशपत्न्या       |
| तदन्तरे         | देवमशेषप्रहेतुम् । |
| पश्यन्ति शश्मुं | कथिमोशितात्        |
| रुद्रं शृहन्तं  | पुरुषं पुराणम् ॥   |

—एतमर्यन्त श्वेताख्तर-उपनिषद्की गाथाका ही विशद स्थापने उल्लेख है। इनका भी सारांश यही है कि शिवजी सबके कारण हैं, परात्पर हैं, पुराणपुरुष हैं, इत्यादि।

अर्थवृश्टि-उपनिषद् २ में कहा है—

देवा ह वै स्वर्गं लोकमगमस्ते देवा रुद्रमपुच्छन्  
को भवानिति । सोऽत्रवीद्वामेकः प्रथममासं वर्तामि  
भविष्यामि च नाम्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति ।

‘देवतालोग महाकैलासमें गये, उन्होंने रुद्रसे पूछा—  
‘आप कौन हैं?’ रुद्रभगवान् बोले—‘मैं एक (प्रत्यग्रू) हूँ। मैं सृष्टिके पूर्वमें था, इस समय हूँ और भविष्यमें  
रहूँगा—मैं तीनों कालोंसे अपरिच्छिन्न हूँ। मुझ सर्वेषांसे  
अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।’

अर्थवृश्टि-उपनिषद्में भी सन्त्कुमार आदिने  
अर्थवृण शृणुसे प्रश्न किया है—

भगवन् ! किमादौ प्रयुक्तं व्यानं ध्यायितव्यं किं  
तद्व्यानं को च ध्याता कथा ध्येयः ।

वे कामशः तीन प्रभोंका उत्तर देकर बहते हैं—

ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम् । सर्वमिदं व्रह्मविष्णु-  
रुद्रेन्द्रस्ते सम्प्रसूयन्ते……कारणं तु ध्येयः सर्वैर्वर्य-  
सम्पन्नः । सर्वैश्वरः शम्भुरकाशमध्ये ।

यहाँपर ‘ध्यायीतेशानम्’ से शिवजीको व्यानपोष्य  
कहा। तदनन्तर शिवसे इतर सम्पूर्ण देवताओंकी उपेक्षा  
कर शिवजीका ही व्यान करना चाहिये, यह दियानेन्द्र  
लिये कहा है। सब देवताओंमें प्रथान देवता ब्रह्म, विष्णु  
और रुद्र इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहासने नियुक्त  
हैं; किन्तु वे भी भूत और इन्द्रिय आदिके समान परमित्वासे  
उत्पन्न होते हैं। सब द्वारणोंके कारण शिवजी कदाचि  
उत्पत्ति, विनाश आदि विकारोंको प्राप्त करते हीं। इस  
प्रकार तत्र देवताओंसे शिवजीकी विदिषानामा विश्व यत,  
उपतिष्ठक—ये तत्के धेय हैं, ऐसा उपसंहर  
किया है।

देवताख्तर-उपनिषद्में—

यो देवानां प्रभवद्वद्वद्वद्व  
विष्णविष्णो रुद्रो नदिः ।

हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं  
स तो देवः शुभया स्मृत्या संयुनकु ॥  
( श्वे० ४ । १२ )

‘जो देवताओं की उत्पत्ति करनेवाला है, ऐर्ष्य देवेवाला है, जगतमें सबसे अधिक ( श्रेष्ठ ) है उस महर्षि रुद्रने पैदा होते हुए हिरण्यगर्भको देखा, वह हमको अच्छी बुद्धिसे युक्त करे ।’

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रि-  
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।  
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं  
प्रक्षा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥  
( श्वे० ४ । १८ )

‘सुष्टिके आदिकालमें जब केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था; न दिन था न रात्रि थी, न सत् ( कारण ) था न असत् ( कार्य ) था, केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे । वही अक्षर है, वही सबके जनक परमेश्वर का प्रार्थनीय स्वरूप हैं, उन्हींसे शास्त्रविद्या प्रवृत्त हुई है ।’

इत्यादि अनेक उपनिषद्-खण्डोंसे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भगवान् शंकर अनादि हैं, अनन्त हैं, सबके कारण हैं, परम उपास्य हैं, आनन्दमय हैं, सच्चित् हैं, उनके बराबर दूसरा कोई है ही नहीं । उन्होंने सबसे प्रथम उत्पन्न हुए जीव हिरण्यगर्भको पैदा होते देखा । वे देश तथा कालके परिच्छेदसे शून्य हैं ।

श्वेताश्वतर-उपनिषद् को देखनेसे ज्ञात होता है कि वह आदिसे लेकर अन्ततक सारा-का-सारा शिवपरक ही है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्युः ।  
( श्वे० ३ । २ )

‘केवल एक रुद्र ही तो हैं, इसलिये इत्यादीलोग दूसरेके मुखका अवलोकन नहीं करते थे—

विश्वाविषो रुद्रो महर्षिः ।  
( श्वे० ३ । ४ )

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं  
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पर्ति पतीनां परमं परस्ताद्  
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥  
( श्वे० ६ । ७ )

‘जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और ल्यके कारण ब्रह्म, विष्णु और सूर्यसे भी उत्कृष्ट, इन्द्र आदि देवताओंके भी देवता, जगत्के पति हिरण्यगर्भ आदिके भी अधिपति, पर-अक्षरसे भी पर, भुवनोंके परमेश्वर देवको हम जानते हैं ।’

मायिनं तु महेश्वरम् ।

—इत्यादि अनेक वचन उपर्युक्त कथनका समर्थन करते हैं । श्वेताश्वतरकी भाँति अर्थवृशिर-उपनिषद् भी पूर्णतया शिवपरक ही है ।

यत्सूक्ष्मं तद्वैद्युतम्, यद्वैद्युतं तत् परं ब्रह्म, यत्  
परं ब्रह्म स एकः, य एकः स रुद्रः, यो रुद्रः स  
ईशानः, य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ।  
( अर्थवृशिर० ३ )

—इत्यादिसे शिवजीकी ज्योतिःस्वरूपता, अद्वितीयता, परब्रह्मता, परतत्तताका स्पष्ट वर्णन किया गया है ।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरके ‘तमेव विदित्वातिमृत्यु-  
मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय’ आदि अनेक मन्त्र-  
खण्डोंके अविकल्पनसे मिलने तथा ‘विश्वतश्शुक्ष्मत  
विश्वतोमुखो विश्वतोयाहुरुत विश्वतस्पात्’ आदि  
कितने ही मन्त्रोंका अर्थसाम्य होनेसे पुराणपुरुषके विराट्-  
रूपका प्रतिपादन करनेवाला पुरुषसूक्त भी शिवपरक ही  
है । रुद्रपरक होनेके कारण ही रुद्राभिषेकमें उसे स्थान  
मिला है । लिङ्गपुराणमें शिवजीकी पूजाकी विधियां कहा  
गया है—

ज्येष्ठसाम्वां व्र्येषौव तथा देववतैरपि ।  
रथन्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥

‘तीन ज्येष्ठसाम ( सामके भेद ), तीन देवत्रत, पुण्य-  
रथन्तर ( सामभेद ) तथा पुण्यपुरुषसूक्तसे शिवजीका  
अभिषेक करे ।’ इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरुषसूक्त  
शिवपरक ही है । इसके अतिरिक्त लिङ्गपुराणमें, पुरुषसूक्तमें

प्रतिप्रदित पुराणपुरुषकी महिमा शिवजीकी ही महिमा है, शिवजी ही पुराणपुरुष हैं, यह स्पष्टतया कहा गया है—

द्यौर्मूर्द्धा हि विभोस्तस्य खं नभिः परमेष्ठिनः ।

सोमसूर्यग्नियो नेत्रं दिशः श्रोत्रे महात्मनः ॥

वक्त्राद्व व्रह्मणा जाता व्रह्मा च भगवान् विभुः ।

इन्द्रविष्णु भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ॥

वैश्यश्चोरुप्रदेशात्मु शूद्राः पादात् पिनकिनः ।

इत्यादि

अन्य पुराणोंमें भी शिवजीकी परात्परता, मर्वकारणताके वचनोंकी जहाँ-तहाँ भरमार है। शिवपुराणमें इसका वर्णन देखिये—

त्रयस्ते करणात्मनो जाताः साक्षात् महेश्वरात् ।

चरन्चरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तेहनवः ॥

पित्रा नियमिनाः पूर्वं व्रयेऽपि विषु कर्मसु ।

ब्रह्मा सर्गं हरिष्वाणे रुद्रः संहरणे पुनः ॥

इत्यादि

यहाँपर 'महेश्वर'पदवाच्य शिवजीको ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रका जनक और शासक स्पष्ट ही कहा गया है।

महाभारतमें देखिये—

यत्र भूतपतिः सृष्टा सर्वोकान् सनातनः ।

उपास्यते तिग्मतेजा चृतो भूतैः सहस्रगः ॥

(भीष्मपर्व)

—इत्यादि मैनाकके वर्णनके प्रकरणमें भूतपति शिवजीसे मत्र लोकोंका स्थान, सब प्राणियोंका उपास्यदेव तथा पुराणपुरुष कहा गया है।

शान्तिपर्वमें—

ईश्वरश्चेततः कर्ता पुरुषः कारणं शिवः ।

विष्णुर्ब्रह्मा शशी सूर्यः शको देवाश्च साम्वयाः ॥

सूर्यते अयते चैव तमोभूतमिदं जगत् ।

अपश्चातं जगत्सर्वं तदा होको महेश्वरः ॥

—इत्यादिसे ईश्वर शिवजीको सर्वकारण एवं सर्वदेवस्य वत्र वया गया है और सृष्टिके द्वारा कोइ उत्तीर्णको स्थिरिता निर्देश दिया गया है।

अनुशासनमें—

स एता भगवतीशः सर्वतत्त्वादिश्वयः ।

सर्वतत्त्वप्रियाननः प्रवत्तुरुपश्वरः ॥

सोऽस्तु जदक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम् ।

वामपादश्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥

युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रुद्रं प्रभुरथासृजत् ।

यहाँपर भी ब्रह्मा, विष्णु तथा संहारकर्ता रुद्र आदिकी सुष्ठि करनेवाले शिवजी सर्वादि, सर्वप्रवान, सब तत्त्वोंको जाननेवाले हैं—ऐसा स्पष्टतया उल्लेख है।

महाभारतमें शिवजी सर्वग्रवान, देवाभिदेव, परिषुर्गतम, परात्पर एवं क्या ज्ञानमें, क्या दानमें, क्या सम्पादनमें सबसे अनिक हैं—इस वातकी धोतक अनेकानेक आख्यायिकाएँ हैं।

जाम्बवतीके अथव अनुनयविनय करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण उसकी पुत्र-प्राप्तिके लिये शिवजीकी आराधना करनेको कैशसरगये। श्रुगिवर उपमन्त्रके मुलारविन्दसे उनकी अतुल महिमाको सुनकर उनि सुध द्वारा और श्रुपिके उपदेशसे विभिन्नरूप भगवान् शिवजीकी आराधनामें संदर्भ हुए। एक मासतक फठ खाकर, दूसरे मासमें पानी पाकर और तीन मास कैवल वायुका भक्षण करके, ऊपरको हाथ उठाये, एक पैरसे खड़े रहे। उनकी इस उप्रत्यन्यासे भगवान् प्रसन्न हुए। शिरजीने जगद्भा पार्वतीमेतत् उनको दर्शन देकर मनोवाञ्छित आठ वरदान दिये। उस समय उनके चारों ओर सभी देवगण वेदमन्त्रोंसे उनका जग्नयकार मना रहे थे। श्रीकृष्ण भगवान् ने—

त्वं पै ब्रह्मा च रुद्रश्च वर्हणोऽप्निमित्तुर्भवः ।

पाता त्वया विभला च च वृ प्रसुः सर्वेषांपुन्दः ॥

त्वन्नो जनानि भूतानि स्थावराणि चरणि च ।

सर्वाणिष्पदन्त्वं सर्वाणोऽप्निशिरोपृष्ठः ।

सर्वतःश्रुतिमांहृते क सर्वमनुव्य निष्पत्तिः ॥

(मन्त्र ३८३ ८८) ३५२३३ ४०३

—इत्यादि वातीनि उपदेश न्यूनि वा उपर्युक्त लक्षणाद्यन्ते भगवतीके उपदेश नहीं। दूसरे ओर न्यून न्यून द्वारा दर्शन करने वाले भगवतीकी वर्णिताएँ इस रूप से दर्शन की गयी हैं। अपर्युक्त वातीने वेदमन्त्रोंसे उनका जग्नयकार मना रखने के लिये विभिन्न भगवतीको दर्शन किया है।

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।  
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजसृत्यचे ॥  
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।  
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिद्धवतां नो वरः प्रभो ॥

(महा० द्रेण० ८० । ६३-६४)

—इत्यादि अनेक प्रकारकी स्तुतिसे उन्हें प्रसन्न कर कृतकृत्य हुए । इस प्रकारकी अनेक गाथाएँ हैं । कहाँतक कहें, श्रीकृष्णभगवान्‌को प्रवान अथ सुदर्शन भी शिवजीका प्रसादरूप ही है । यह गाथा शिवपुराण आदि में विस्तारसे कही गयी है । किसी समय दैत्य वडे वल्लान् हो गये थे । उन्होंने देवताओंको वडा कष्ट दिया । देवताओंने विष्णुभगवान्‌की शरण ली । विष्णुभगवान्‌ने उन्हें आश्वासन देकर देवदेव शिवजीकी वडी आराधना की । अन्तमें नियम किया कि भगवान् शिवजीके सहस्रनामका पाठ किया जाय और प्रत्येक नामपर भगवान्‌को मानसरोवरमें पैदा हुए सुन्दर कमल चढ़ाये जायें । इस प्रकार स्तुति द्वारा देवताओंको जानकारी दी गयी है । विष्णुकी दृढ़भक्तिको जाननेके लिये शिवजीने एक दिन चढ़ानेके लिये प्रस्तुत हजार कमलोंमें से एक कमल उठा लिया । जब विष्णुको ज्ञान हुआ कि एक कमल कम है, तो उन्होंने सारी पृथिवी खोज लाली, किंतु उन्हें कमल नहीं मिला । तब अन्तमें उन्होंने अपनी थाँख कमलके बदलेमें चढ़ा दी । भगवान् शिव दृढ़भक्त जानकर विष्णुपर रीझ गये और साक्षात् दर्शन देकर बोले—‘हे हरे ! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ, तुम मेरे दृढ़भक्त हो; जो इच्छा हो, मैं पूछो । तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।’

प्रसन्नददन विष्णुने हाथ जोड़कर कहा—‘आप अन्तर्मी हैं, सबके अभिन्नत्वको जानते हैं । यद्यपि आपसे कुछ छिपा नहीं है, तथापि आपके आज्ञानुसार कहता हूँ—हे देवदेव ! दैत्योंने सारे संसारको पीड़ित कर सक्छा है । उनका संहार करनेमें मेरे अब्द-शक्ष समर्थ नहीं हैं । मैं क्या करूँ ? आपको छोड़ मेरा कोई दूसरा आसरा नहीं है ।’ यह सुनकर भगवान् देवाधिदेव शिवने तेजःपुञ्जरूप अपना सुदर्शनचक्र विष्णुके अपर्ण कर दिया । उसे जाकर उन्होंने अनायास दैत्योंको गार डाला और देवोंकी रक्षा की, ह्यादि ।

हरिविंशति में शिवजीकी स्तुति करते हुए श्रीकृष्ण-भगवान्‌ने कहा है—

अहं ब्रह्मा कपिलोऽथाप्यनन्तः  
पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।  
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता  
एवं सर्वेश कारणात्मा त्वमीज्यः ॥

इस वचनसे भी भगवान् शिवकी सर्वदेवमयता, सबका आधिपत्य, देवाधिदेवता, सर्वकारणता और प्रात्परता स्पष्ट झलकती है ।

वायुसंहितामें शिवजीका उपकरण करके कहा है—  
सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमाद् द्यौः समवर्तत ।  
धरा वहिश्च सूर्यश्च वज्रपाणिः शनीपतिः ॥  
विष्णुर्नरायणः श्रीमान् सर्वे सोममयं जगत् ।

इससे भी स्पष्टतया प्रतीत होता है कि पुरुषसूत्रमें उक्त महाविराट् पुराणपुरुण शिवजी ही हैं । वही जगत्के मूल हैं । उन्होंसे चराचर जगत्की सृष्टि हुई है ।

परशापुराणके निम्नांगित वचनोंसे भलीभाँति विदित होता है कि श्रुतियों, स्मृतियों एवं पुराणोंमें जहाँ कही अन्यान्य देवताओंको जगत्का कारण बतलाया गया है—उसका पर्यवसान शंकरजीमें ही है । उसमें स्पष्ट कहा गया है—सम्ब्रशिव ही सबके कारण हैं । सत्य, ज्ञान, अनन्त वही हैं । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि उनके अधीन हैं, उनकी आज्ञा तथा कृपा विना कुछ नहीं कर सकते ।

सर्वकारणमीशानः साम्यः सत्यादिलक्षणः ।  
न विष्णुर्न विरच्छिश्च न रुद्रो नापरः पुमान् ॥  
श्रुतयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम ।  
शिवमेव सदा साम्यं हन्ति कृत्वा द्रुवन्ति हि ॥

इत्यादि ।

परमेश्वर सबसे परे हैं, यह वात स्मृतिमें भी डिप्पिम-घोपसे स्पष्ट कही गयी है—

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीपिणिः ।  
मनस्तथाप्यहुकरः अहंकारान्महान् परः ॥  
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।  
पुरुषाद् भगवान् प्राणतत्त्वं सर्वमिदं जगत् ॥  
प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ।  
ईश्वरात् परं किञ्चित् ॥

विद्वान् लोग कहते हैं कि सारी इन्द्रियोंसे मन पर है, मनसे अहंकार पर है, अहंकारसे महत्त्व पर है, महत्त्वसे प्रकृति पर है, प्रकृतिसे पुरुष पर है, पुरुषसे भगवान् प्राण थ्रेष्ट है, प्राणका ही यह सारा जगत् है। प्राणसे व्योम परतर है, ज्योतिःखल्प ईश्वर ( शिव ) औपर से भी परे है; ईश्वरसे कुछ भी पर नहीं है—वह परात्पर है। श्रुति भी कहती है—

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्

अर्थात् ‘जिससे परे और कुछ भी नहीं है।’

पूर्व-उद्धृत श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासके वचनोंपर ध्यान देते हुए किसीको भी शिवजीके देवाधिदेव, सर्वकारण, परात्पर, परमोपास्य, अनादि, अनन्त, परमैश्वर्यशाली, सबके शोक-संतापको हरनेवाले ज्योतिःख्य होनेमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता। किंतु अनेक स्थलोंमें त्र्यक्ष, शूलपाणि, रुद्र, नीललोहित, महेश आदि नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें कहींपर विष्णु-भगवान्‌से उत्पन्न और कहींपर ब्रह्मासे उत्पन्न माना गया है। यहाँपर लोगोंको संदेह हो जाता है कि वात क्या है, कहींपर उसी नामवाले व्यक्तिकी ऐसी महिमा गायी गयी है और कहींपर उन्हें जन्म तथा संहारका कर्तामात्र माना गया है? जैसे—

तस्य ललाटात् त्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत ।

अर्थात् ‘विष्णुके ललाटसे शूलको हाथमें लिये हुए एक त्रिवेत्र पुरुष पैदा हुए।’

एतौ द्वौ पुरुषश्चेष्टौ प्रसादकोधजौ मम ।

अर्थात् ‘ऐ दो पुरुषश्चेष्ट ( ब्रह्मा और रुद्र ) मेरे ( विष्णुके ) प्रसाद और कोधसे पैदा हुए हैं।’

प्रादुरासोन्नभोरङ्गे कुमारो नीललोहितः ।

अर्थात् ‘ब्रह्माकी गोदमें कुमार नीललोहित ( शिव ) पैदा हुए।’

इसादि शुनि और स्मृतियों नारदग ( विष्णु ) तक रहते हो उनकी उत्पत्तिका दर्शन यित्त गया है, दह-

अन्यान्य कल्पोंमें संहार-रुद्ररूपसे नारायणसे उनके आविर्भावमात्रका कथन है। उसका कारण भी भगवान् परात्पर शिवका वरदान ही है। जैसे शूलपुराणमें उन्होंने कहा है—  
अहं च भवतो वक्त्रात् कल्पान्ते धोररूपधृक् ।  
शूलपाणिर्भविष्यामि कोधजस्तव पुन्नकः ॥  
इत्यादि ।

ब्रह्मासे आविर्भूत होनेमें भी कारण भगवान्का अनुग्रह ही है। वायुपुराणमें कहा है—

निर्दिष्टः परमेशोन महेशो तीललोहितः ।  
पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽनुजः ॥  
इत्यादि ।

महाभारतमें भी कहा है—  
जनादिनिधनो देवद्वैतन्यादिसमन्वितः ।  
ज्ञानानि च वशे यस्य तारकादीन्यदोषतः ॥  
अणिमादिगुणोपेतमैश्वर्यं न च कृत्विमम् ।  
सुषुधर्थं ब्रह्मणः पुत्रो ललाटादुत्पितः प्रभुः ॥

अर्थात् ‘अनादि, अनन्त एवं चैतन्य आदिसे युक्त देव ( परमशिव ), जिनके वशमें तारक आदि समस्त ज्ञान हैं और जिनका अणिमा आदिसे युक्त ऐश्वर्य कृत्विम नहीं है, वे प्रभु ( परमशिव ) सृष्टिके लिये ऋजाके ललाटसे पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए।’ ऐसा ही वर्णन शिवपुराणमें है।

भगवान् परात्पर शिव कितने दयालु हैं कि फस उड़ाष्ट होते हुए भी अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये स्वेच्छाये उनके नियम्य बन जाते हैं। महान् लोगोंका यह समाज ही है, अपनी मान-मर्यादाको कम करके भी अपने लाश्चित्कर्म मान-मर्यादाको बढ़ाता।

परम पुरुषार्थकं इच्छा करनेवाले जनोंको परमरित्यगी उपासना अवश्य करती चाहिये; क्योंकि उनके मानन् दूसरा कर्त्ता नहीं है—

नास्ति शर्वत्मो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।  
नास्ति शर्वत्मो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।  
( मरा० अम० ३१ । १३ )

## श्रीशिवाष्टक

आदि अनादि अनंत अखंड अभेद अखेद सुवेद बतावै ।  
 अलख अगोचर रूप महेस कौं जोगि-जती-मुनि ध्यान न पावै ॥  
 आगम-निगम-पुरान सबै इतिहास सदा जिनके गुन गावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ १ ॥

सुजन-सुपालन-ल्लय-लीला हित जो विधि-हरि-हर रूप बनावै ।  
 पकहि आप विचित्र अनेक सुवेष बनाइकैं लीला रचावै ॥  
 सुंदर सुष्ठि सुपालन करि जग पुनि बन काल जु खाय पचावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ २ ॥

अगुन अनीह अनामय अज अविकार सहज निज रूप धरावै ।  
 परम सुरम्य बसन-आभूधन सजि मुनि-मोहन रूप करावै ॥  
 लालत ललाट ब.ल विधु विलसै रतन-हार उर पै लहरावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ ३ ॥

अंग विभूति रमाय मसानकी विषमय भुजगनि कौं लपटावै ।  
 नर कपाल कर, मुँडमाल गल, भालु-चरम सब अंग उढ़ावै ॥  
 घोर दिगंबर, लोचन तीन भयानक देखि कैं सब थरावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ ४ ॥

सुनतहि दीन की दीन पुकार दयानिधि आप उधारन धावै ।  
 पहुँच तहाँ अविलंब सुदारुन मृत्युको मर्म विदारि भगावै ॥  
 मुनि मृकंड-सुत की गाथा सुचि अजहुँ विश्वजन गाइ सुनावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ ५ ॥

चाउर चारि जो फूल धतूरके, बेल के पात औ पानि चढ़ावै ।  
 गाल बजाय कैं बोल जो 'हरहर महादेव' धुनि जोर लगावै ॥  
 निनहि महाफल देयं सदासिव सहजहि भुक्ति-मुक्ति सो पावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ ६ ॥

विनास क्षेष दुख दुरित दैन्य दारिद्र्य नित्य सुख-सांति मिलावै ।  
 असुतोष हर पाप-ताप सब निरमल वृद्धि-चित्त बकसावै ॥  
 अस्मन-स्वरन काटि भववंधन भव निज भवन भव्य बुलधावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ ७ ॥

अंधरदानि, उदार अपार जु नैकु-सी सेवा तैं दुरि जावै ।  
 इमन असांति, समन सब संकट, विरद्व विचार जनहि अपनावै ॥  
 ऐसे कृपालु कृपामय देव के वयों न सरन अवहीं चल जावै ।  
 बड़भागी नरनारि सोई जो सांव-सदासिव कौं नित ध्यावै ॥ ८ ॥

## श्रीशिव-तत्त्व

( लेखक—ख० पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न )

‘कल्याण’ सम्पादकने मुझे कुछ लिख देनेका अनुरोध किया। मुझे ‘शिवतत्त्व’ अत्यन्त प्रिय है। अतः मैं लोभ-संवरण न कर सका। इस प्रकारके अमृतमय तत्त्वके आसादनकी सूहाका परिहार न कर सका। मैं समझता हूँ कि यह सूहा, यह लोभ पद्मके गिरिलङ्घनकी कामनासे भी अधिक असम्भव है।

### थं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

वेद भी जिमके तत्त्वका निरूपण करनेमें चकित है, मैं विषयासक्त मूँह मनुष्य उसीके तत्त्वके निरूपण करनेके लिये लेखनी हाथमें लेना हूँ। यह सत्य हो मेरी धृष्टता है, जानता हूँ यह अमार्जनीय ( अक्षन्तव्य ) अपराध है। लेखनी आगे चलती नहीं है, हृदय धर-थर काँप रहा है। भय और उद्गेगसे, नहीं-नहीं उल्लास और आनन्दसे भी ।

हे देवाविदेव करुणानिधान ! तुम अपने इस दीन दासके ऊपर एक बार प्रसन्न हो जाओ ।

भवदुपगमशून्ये मन्मनोदुर्गमश्वे  
निभसति भयहीनः कामवैरिन् रिपुस्ते ।  
सं यदि तव विजेयस्तर्णमागच्छ शामो  
नृपतिरधिमुगद्यं किं न कान्तारमेति ॥

शहूर आमार मनो दुर्गमाद्वे तोमार प्रवेश नाई ।  
तव रिपु काम हये निर्भय एखामे स्येले ताई ॥  
ताहाके जिनिते यदि थाके साध एत हेया शीघ्रगति ।  
धापदसंहृल वने जाय ताकि सून्याय नरपति ॥

‘हे शंकर ! मेरे मनके किन्तेमें तुम्हारा प्रवेश नहीं है, हीने तुम्हार शयु काम निर्भय होकर वहां दस गहा है। शम्नो ! यदि उसे जीतकेकी इच्छा हो तो यहां दुर्लभ जल्द धूयो। क्या शिवारके लिये राजा दशोंसे गरे जगतमें गयी जाता है ?

हे शिव ! तुम्हारे प्रसादरूप पवित्र स्फर्शमणिकी प्रभासे मेरी हृदय-गुहा आलोकित हो, जिससे मैं उस आलोकमें तुम्हारे दुर्ब्रेय तत्त्वको क्षणमात्रके लिये भी अणुमात्र अबलोकनकर कृतार्थ हो जाऊँ । हे महेश्वर ! ‘महावति कहते हैं—‘महेश्वरस्त्रघमक एव नापरः’ । महान् ईश्वर परमेश्वर तुम्हीं हो । परमेश्वरका तत्त्व ही तुम्हारा तत्त्व है ।’

इतने बड़े विशाल भूमण्डलका मानचित्र कितना छोटा होता है। धर-धरमें भूमण्डलके करोड़ों भागके एक-एक अंशमें वही मानचित्र, आखोंकी मंड्यामें रहते हैं। एक-एक क्षुद्र मानचित्रमें समस्त भूमण्डल होता है। तुम सर्वव्यापी हो, तुम्हारी साकार और भी तुम्हारे ही सुगम्भीर असीम परमतत्त्वका मानचित्र है। आखों भक्तोंके हृदयमें वही मानचित्र अवस्थित रहता है। तुम्हारी स्वच्छ शुभ्र कान्ति निर्गुण परमेश्वरके स्वाभाविक निर्मलत्वकी प्रतिष्ठाया है। निराकार परमेश्वर-स्वरूपमें तुम्हीं निराकरण हो, इसीसे साकार-श्रीलामें तुम दिग्भर हो। परमेश्वर-रूपमें तुम्हीं पञ्च-व्रतके प्रवर्तक हो, इसीसे साकार-श्रीलामें तुम द्वाकान हो। परमेश्वर, विकालदर्शी है, इसीसे साकार-श्रीलामें तुम मिगदन हो। परमेश्वर-स्वरूपमें तुम भय और अमय दानोंके हेतु हो, इसीसे साकारलक्षणी विषवर और सुयाकर तुम्हारे भूरप हैं। परमेश्वर-स्वरूपमें स्वर्वानिशायिती शक्ति तुमसे अलग नहीं । इसीसे साकार-श्रीलामें नर्वानिशायिती नहीं तुम्हारी अदीर्दीभी है। जो व्याघ्रनं दिव्य द्वृक्षा दृष्ट्याद वन्धु दे, उन्होंको इन्हें लीपदिलाने दिलिप दानं वृक्ष दृष्ट्याद वन्धु दे । इस दिलिपदे द्वान् दीन-

दद्यते च दृमनि भू इन उरुम । न दद्यति  
ज्ञानं दद्यते दृमनि द्वारा । १३१५ ।  
स्वर्वान्यर्पन स भगवन् दिलिप । १३१६ ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

आनन्दं ब्रह्म । ( तैत्ति० )

द्विशावास्यमिदं सर्वम् । ( ईरा० )

अतो वाद्यो लिवर्तद्वे अपाञ्च मनसा सह ।

शालं शिशुस्तैतम् । ( तैत्ति० )

—इत्यादि श्रुतियाँ तथा इनके व्याख्यास्वरूप पुराण-वचन नोचे उद्द्युत किये जाते हैं—

यतः सर्वं समुत्पन्नं येनैव पालयते हि तत् ।  
 यर्स्मिन्द्वयं लीयते सर्वं येन सर्वमिदं ततम् ॥  
 तदेव शिवस्त्रिं हि प्रोच्यते हि मुक्तीश्वराः ॥  
 सत्यं ज्ञानमनन्तं च चिदानन्दं उदाहृतः ।  
 निर्गुणो निरुपाधिश्च निरञ्जनोऽव्ययस्तथा ॥  
 न रक्तो न च पीतश्च न श्वेतो नीलं एव च ।  
 यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।  
 तदेव प्रथमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंक्षितम् ॥  
 ( शिवपुराण )

अर्थात् जिनसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, जो इस समस्त विश्वरूपमें व्याप्त हैं, हे मुनिवर ! वे ( वेदमें ) शिवस्वरूपसे कथित हुए हैं । वही सत्य हैं, ज्ञानस्वरूप हैं; वही अनन्त हैं, असीम चिदानन्द हैं । वे निर्गुण, निरसाधि, निरज्ञन और अव्यय हैं । वे रक्त, पीत, नील, श्वेतवर्ण नहीं हैं । वे तो मन और बाणीकी पहुँचके परे हैं । वही ब्रह्म पहले 'शिव'नामसे कहे गये हैं ।

उभयोर्वादनाशार्थं यद्वूपं दर्शितं पुरा ।  
महादेवेति विख्यातं शिवाच्च निर्गुणादिह ॥  
तेन चोक्तं ह्यहं रुद्रो भविष्यामि कपोलतः ।  
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ॥  
व्यानार्थं चैव - सर्वेषामरुपो रूपवानभूत ।  
स एव च शिवः सक्षात् भक्तवात्सल्लकारकः ॥  
( शिवपराण )

निर्गुण निराकार शिवसे एक अद्वृत रूप उत्पन्न होता है। ब्रह्मा और विष्णुके विवादको नष्ट करनेके लिये ही उस रूपका प्रदर्शन होता है। वह महादेव नामसे चिह्नित है। उनकी स्वमुख-विनिःसृत वाणी है—‘मैं रुद्

झूँगा।' संसारके प्रति अनुग्रहशील शिवने रूपहीन होते हुए भी सबके ध्येय होनेके लिये रूप धारण किया। भक्तवत्सल वे रूपधारी रुद्र भी साक्षात् शिव हैं। उन रूपहीन और रूपवानमें कोई भेद नहीं है। यजुर्वेद-माद्यन्दिनीय शाखाके सोलहवें अव्यायमें सर्वस्वरूप एक जगत्पति रुद्रका तत्त्व उपदिष्ट हुआ है। उसका नाम प्रथम मन्त्रमें रुद्र; द्वितीय और तृतीय मन्त्रमें गिरिशान्त, गिरित्र; चालीसवें मन्त्रमें पशुपति, उग्र, भीम; ४१वें मन्त्रमें शंकर, शिव; ४७वें मन्त्रमें नील, लोहित; ४८वें मन्त्रमें कापर्दी; ४९वें मन्त्रमें मृड वर्णित हुआ है। ये सब नाम पुराण-तन्त्रादिमें भी प्रसिद्ध हैं। ५१वें मन्त्रमें यह प्रार्थना है—

कृत्ति वसानः पिनाकं विभ्रदा गहि ।

अर्थात् व्याघ्रचर्म पहनकर और मिनाक धारण करके आओ।

इन एक साकार शिवकी ही जगत्की नाना वस्तुओं, प्राणियों तथा जातियोंके रूपमें वन्दना की गयी है। ये ही जगत्पतिके नामसे पुकारे जाते हैं। निराकार शिव तथा साकार शिव एक ही हैं, यह बात इस अध्यायमें विशद-रूपसे वर्णित है।

ऋग्वेदके ७वें मण्डलके ५१वें सूक्तमें इनका 'च्यव्वक' नाम आया है। विदित होता है कि मृत्युके मोर्चनार्थ तथा अमृतमें स्थितिके लिये इनका यज्ञ ऋषियों-ने किया है।

यह क्रांतिका सप्रसिद्ध मन्त्र है—

अयम् यजामहे सुगतिव पुष्टिकर्त्तनम् ।

उर्वारुकमिव यन्यत्तान्तुयोर्गुडीय मानुलत् ॥

रुद्र-रचित वहुतेरे मन्त्र क्रान्तेदादि संहिताओंमें भरे पड़े हैं। इवेतास्वतर-उपनिषद्‌के तृतीय अध्यायमें इसी एक शिवतत्त्वका उपदेश किया गया है—

एको हि स्त्रो न द्वितीयाय तस्युर्य इमाँहोकार्नाशत  
ईशनीभिः ।

पुनर्क्ष—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो  
महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।

सर्वतनशिरोद्ग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।  
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥

एक अद्वितीय रुद्र अपने शक्तिसमूहके द्वारा सब  
लोकोंके ईश्वर हैं । सर्वज्ञ रुद्र देवताओंके क्षम्य और  
पालक हैं । उन्होंने पहले ब्रह्माकी सृष्टि की थी । उनके  
मुख, मस्तक और ग्रीवा असंख्य हैं । वे सब प्राणियोंकी  
इत्यगुहामें अवस्थित हैं । वे ही सर्वव्यापी भगवान् शिव  
हैं । इसी प्रसङ्गमें उपनिषद् ने कहा है—

अपाणिपादो जयतो ग्रहोता

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

—इत्यादि ।

उनके हाथ नहीं, परंतु वे ग्रहण करनेमें समर्थ हैं ।  
चरण नहीं हैं, किंतु द्रुतगमी हैं; चक्षु नहीं, परंतु सर्वदृष्टा  
हैं । कर्ण नहीं हैं तथापि वह अवगशक्तियुक्त हैं । इन  
समस्त श्रुतिग्रन्थोंमें शिवके निर्गुण, समुग्र एवं विश्वरूप-  
के भाव प्रदर्शित हुए हैं । दीक्षाविग्रहके अप्राप्ति कर,  
चरण, नयन, कर्णादिकों भी भक्तगण देखते हैं ।  
कैवल्योपनिषद् में लिखा है—

त्वादिमध्यान्तविहीनमेऽं  
विभुं विदानन्दमल्पमद्गुतम् ।  
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं  
विलोचनं तीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥

वे आदि, मध्य और अन्तहीन हैं, वे खलहीन हैं,  
एक हैं—अद्वितीय हैं, विदानन्द हैं, वे अद्गुत हैं,  
विश्व हैं, वे ही उमासहाय विलोचन तीलकण्ठ प्रशान्त हैं—  
उपर्युक्त जी निरकार हैं, वहो सद्वात हैं । वे रामर  
लक्ष्मी देवता उनकोहन हैं, एवं करुण वे अद्गुत हैं ।  
इसी उनकोहन खलहीन करा विदुरागते उन्हें  
संस्कृते रूपित हुई हैं । यही एक अद्वितीय शिव

विभूतिरूपमें असंख्य हैं । शुङ्ग यजुर्वेद-संहिताके सोलहवें  
अध्यायमें इसका प्रमाण है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।

( मन्त्र ५४ )

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा द्रिवं रुद्रा उपश्रिताः ॥

( मन्त्र ५५ )

शर्वाः—( मन्त्र ५७ )

ये भूतानामधिपतयः……कपर्दिनः—( मन्त्र ५९ )

स्त्रोंकी गिनती नहीं की जा सकती । ये सभी  
नीलकण्ठ, भूतोंके अविपत्ति, कागदी, संहार-शक्तिमान्,  
शर्व, भूतल, आकाश सर्वत्र ही रहते हैं । एकादश रुद्र-  
की कथा वृहदारण्यक, महाभारत तथा पुराणादिमें वर्णित  
है । रुद्रगांगोंका उल्लेख ऋग्वेदादिमें भी है ।

संख्याभेदसे जो विरोध या असामज्ञस्य ज्ञान पड़ता  
है, इसकी मीमांसा वृहदारण्यक उपनिषद् में देवता-संख्या-  
विचारके प्रसङ्गमें हुई है । जनककी सभामें शाकत्य  
और याज्ञवल्यके प्रदेश और उत्तरमें निवित हुआ है कि  
देवता व्यालिंशत् सहस्र व्यालिंशत् शत ( ३३३३०० )  
है, तत्पश्चात् पुनः प्रस्तोतरमें कहा गया है कि देवताओं-  
की संख्या तैतीस ही है । इस संख्याविदेवता परिवार  
इस प्रकार हुआ है—‘महिमानमेवैपरमेते व्यालिंशत्येव  
देवाः’ अर्थात् प्रथमोक्त ३३३३०० देवता इन्हीं ३३३  
देवताओंकी विभूतिमात्र हैं, दूसरा ३३ ही देवता है ।  
इन्होंने ११ रुद्र हैं । इन एकादश रुद्रोंकी निवृति  
११११०० देवताओंमें है । उनके अन्यमें एक ३३  
देवता एक ही प्राग्देवताद्वयी निवृति है । वे प्रथा प्राग्देवता ही एक है । सेवाद्वारा प्राग्देवता इन्होंनें  
इस शिव आदि वर्णिते रुद्रे नहीं हैं ।

लग्नागत, रसायन, द्युमि, उद्यापन सद्वी, नवमी,  
दिव्यन्य विश्व वर्णित हैं । ये एवं उन्हें उपर्युक्त विवरण द्वारा  
लग्नागत एवं वी वर्णित विद्युत एवं वायु ।  
उद्यापनादी रसायन और अमृतगत्वात् एवं विविध

प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। महाभारतके अनुशासन-पर्वके १४वें अध्यायमें युधिष्ठिरके प्रश्नका उत्तर देते हुए भीषणितामह कहते हैं—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः ।  
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥  
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्तष्टा च प्रभुरेव च ।  
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते ॥  
प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः ।  
चिन्त्यंतं यो योगविद्विर्भूषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥  
अश्वरं ब्रह्म परमं असच्च सदसच्च यः ।  
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्रिधः परमेश्वरम् ॥  
ऋते नारायणात्पुत्रं शङ्खचक्रगदाधरात् ।  
रुद्रभक्त्यातु कृष्णेन जगदृश्यास्म महात्मना ॥  
तं प्रसाद्य महादेवं वद्यो किल भारत ।  
आपत् प्रियतरत्वं च सुवर्णाक्षत्नमहेश्वरात् ॥  
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तत्पानेष माधवः ।  
प्रसाद्य वरदं देवं चराचरगुरुं शिवम् ॥  
युगे युगे तु कृष्णत तोषितो वै महेश्वरः ।

‘उन सर्वबुद्धिके अविष्टि श्रीमहादेवजीके गुणवर्णनमें मैं असमर्थ हूँ। वे सर्वव्यापी होते हुए भी सर्वत्र अदृश्य हैं—वे ही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि देवताओंके स्तष्टा और प्रभु हैं। ब्रह्मादि देवोंसे पिशाचपर्यन्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं; प्रकृति और पुरुषके अतीतरूप योगमें स्थित योग-तत्त्वदर्शीं ऋषिगण जिनका ध्यान करते हैं, जो अक्षर परब्रह्म हैं, जो असत् और सदसद् हैं, उन परमेश्वर भवको मेरे समान मनुष्य क्या जान सकता है? केवल एक शङ्ख-चक्र-गदाके धारण करनेवाले नारायण श्रीकृष्ण उनको जानते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण रुद्रभक्तिके प्रभावसे ही जगत्-व्यापक हो रहे हैं। उन्होंने बदरिकाश्रममें महादेवको प्रसन्नकर उनसे प्रियवरत्व-रूप वर प्राप्त किया है। पूर्ण सहस्र वर्ष अर्थात् सहस्र दिन उन्होंने तपस्या की थी। उद्देश्य केवल चराचर-गुरु शिवकी प्रसन्नताकी प्राप्ति थी। श्रीकृष्णने नाना अवतारोंमें युग-युगमें महेश्वरकों तपस्याद्वारा तुष्ट किया है।’

इसके पश्चात् भीषणकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण महेश्वरके गुण-कीर्तनमें सम्मत हो पहले ही कहते हैं—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तु मीशस्य तत्त्वतः ।  
हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्पयः ॥  
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः ।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान् ने महादेवजीकी जो आरावना की थी उसका पूरा वर्णन किया। भगवान् महादेव प्रसन्न होकर श्रीकृष्णके सम्मुख आ प्रकट हुए थे, उस अवस्थाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूतदा ।  
ततो मामवीदेवः पद्य कृष्ण वदस्य च ॥  
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः ।  
त्वत्स्तमो नास्ति मे कञ्चित्तिषुलोकेषु पैत्रियः ॥  
ततोऽहमत्रवं स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ।  
नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने

ब्रह्माधिपं त्वामृतयो वदन्ति ।  
तपश्च सन्चं च रजस्तमश्च  
त्वामेव स यं च वदन्ति सन्नः ॥  
त्वया सृष्ट्यमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सन्तराचरम् ॥  
इत्यादि ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि “तेजःपुञ्जकलेवर महादेव मेरे सम्मुख प्रकट हुए। मैं उनको देखनेमें समर्थ न हुआ, उनके तेजसे मेरो दृष्टि-शक्ति प्रतिहत हो गयी। मेरी उस अवस्थाको देखकर देवदेव श्रीमहादेव मुझसे बोले—‘हे कृष्ण! मेरी ओर देखो और अपनी मनःकामना प्रकट करो। तुमने मेरी सैकड़ों-सहस्रों बार आरावना की है। तीनों लोकमें तुम्हारे समान प्रिय मेरा कोई नहीं है।’ इसके पश्चात् ब्रह्मादि देवताओंके बन्ध श्रीमहादेवसे मैंने कहा—‘हे शाश्वत पुरुष ! सर्वकारण ! आपको मैंग प्रणाम हो।’ ऋषिगण आपको ब्रह्माधिपति ( ब्रह्मादि भी प्रनु या वेदके अवित्यामी ) कहते हैं। और भी आपको तपःखल्य, सत्त्व, रज एवं तमोगुण-खल्य

कहते हैं। आप ही सत्य हैं। (यहाँ सत्य शब्दका परम्परा अर्थ श्रुतिसम्मत है।) आप ही इस चराचर समस्त जगत्के सृष्टिकर्ता हैं।”

इस प्रकार महाभारतमें अनेक स्थानोंमें शिव-तत्त्वकी आलोचना की गयी है। श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके सप्तम अध्यायमें है—

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्ब्रह्मभावनः।  
नानाशक्तिभिरभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः॥

इसी प्रकार इसका पूर्व लोक भी है—

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यव्ययान् विभो।  
धत्से यथा सद्वर्ग भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥

‘तुम निरूप परब्रह्म हो, सदसद् समस्त वस्तुएँ तुम्हासे उत्पन्न होती हैं। तुम ईश्वर हो, नाना प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा तुम जगत्स्वरूपमें प्रकाशित हो रहे हो। तुम अपनी गुणमयी शक्तिकी सहायतासे ब्रह्मा, विष्णु और शिव-नाम धारणकर सृष्टि, स्थिति और संहार करते हो। तुम सप्रकाश भूमात्मखल्प हो।’

इस प्रकार साकार, निराकार एवं विश्वस्त्रपकी आलोचना करनेके बाद स्तुतिकर्ता प्रजापतिगण कहते हैं—

यत्तच्छिद्याख्यं परमात्मतत्त्वं  
देव स्वयंज्योतिरवास्थितिस्ते।

‘हे देव ! शिव-नामसे अभिहित स्वयंज्योति परमात्म-तत्त्व ही तुम्हारी नैसर्गिक अवस्था है।’

इसके पश्चात् कहते हैं—

न ते गिरियाख्यिलद्योक्षपाल-  
विरिज्ञवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।  
ज्योतिः परं यत्र रजत्तमध्य  
सत्त्वं न यद्यथ्य निरस्तभेदम्॥

‘ऐ गिरिय ! तुम्हारी परम ज्योति कला, विष्णु, ईश्वरि जिल्लिय लोकान्योंको अप्राप्य है। उसमें रज, लम और सत्त्वगुणका सम्बन्ध नहीं है एवं वही ईश्वरि कह दें।’

अब और अधिक अवतरण देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं रह गयी है। सभी शालोंमें शिव-तत्त्व उपदिष्ट हुआ है। न्यायशालकार महर्षि गौतमने बादयुद्धमें शिवको संतुष्ट करके उनकी कृपासे सिद्धि प्राप्त की थी। महर्षि कणाद शिवकी कृपासे ही वैशेषिक दर्शनके प्रणेता बने हैं। तण्डि, उपमन्यु, दधीचि, मार्कण्डेय, क्रमु, दुर्वासा प्रभृति ऋषिगण शिव-तत्त्व-सुधाके आनन्द-सिन्धुमें सदा निमग्न रहते थे। एक ऐसा समय था जब समस्त पृथिवी, यही क्यों समस्त जगत् ( अखिल विश्व ), ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त सभी शिवकी आराधनामें रह थे। आज जगत्में उनकी आराधना हासको प्राप्त हो रही है।

अब जगद्ब्यापी शिवाराधनाके भेदोंका उल्लेख किया जाता है। शिवकी आराधना प्रवाननः दो प्रकारकी होती हैं—वैदिक और अवैदिक। देवता, ऋषि तथा वणश्रीम-धर्मानुयायी मानवगण शिवकी वैदिक आराधना करते हैं। इस आराधनाकी तीन पद्धतियाँ हैं—कर्ममार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। हृद-याग प्रवृत्ति यज्ञ, स्मार्त, पौराणिक एवं वेदानुमत तन्त्र-सम्बन्ध शिव-भूज कर्ममार्गके अन्तर्गत हैं। खेताधतर-उपनिषद्में कथित—

प्रिस्त्रतं स्याप्य समं शरीरं  
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य ।  
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्  
नोत्तांसि सर्वाणि भयावदानि ॥

—योग-साधना योग-सार्वती है। तथा—

तमेव विद्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्युन्तुप्रनाय ।

—इयादि उपनिषदोंमें प्रदर्शित प्रवृत्ति उपनिषद्में वर्णी है।

प्रवृत्ति-नेत्रों द्वितीयद्वय समय एवं विभिन्न संस्कारों से संबंधित है। परंतु इसके बाहर सभी उपनिषदोंमें वैदिक उपनिषद्वारा दर्शित हो रही प्रतारी वैदिक दिव्यात्मकता है, जिसे उसमें वर्णित करने वाले

नहीं है। ब्राह्मणादि संज्ञा उस सम्प्रदायमें प्रचलित न होनेके कारण वे शैव-नामसे ही प्रसिद्ध हैं ये शैव लोग नाथ-समादाय, जङ्गम-सम्प्रदाय प्रभृति कतिपय सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। वर्णश्रीम-धर्मवर्जित वैष्णव भी होते हैं। इस प्रकारके शैव और वैष्णव प्रायः परस्पर विवाद किया करते हैं। स्मृति-शास्त्र वर्णश्रीम-धर्म-हीन लोगोंका पृथक् स्थान निर्देश करते हैं। मैंने इस निबन्धमें वैदिक उपासनाके अनुकूल ही शिवतत्त्वकी आलोचना की है। श्रीमद्भागवत, शिवपुराण प्रभृति कतिपय पुराणोंमें आया है कि रुद्र ब्रह्मके ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। कल्पमेदसे परमेश्वरकी लीला विविव प्रकारकी है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीकृष्णको परब्रह्म कहा गया है। उनके ही दक्षिणपार्श्वसे वैकुण्ठनाथ नारायणका तथा वामपार्श्वसे कैलासपति शिवका उद्भव होता है। दोनों मतसे परब्रह्मका संज्ञामेद होनेपर भी साकार शिव-तत्त्व मूलतः एक ही है। वैष्णवपुराणोंमें अनेक स्थानोंमें शिव विष्णुके उपासकके रूपमें कथित हुए हैं तथा शैवपुराणोंमें विष्णु शिवके उपासकरूपमें वर्णित हुए हैं। इस प्रकारके वर्णनका मूल हरि-हरकी भेद-लीला है। जान पड़ता है, यही शिव-तत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम् ।

एकस्यैव नटस्यानेकविद्या भूमिकाभेदात् ॥\*

‘हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही भेद होता है। नाटकमें अभिनेता नाना रूप धारण करता है, परंतु वस्तुतः वह जो है सो ही रहता है।’

हे जगद्गुरु महेश्वर ! एकमात्र तुम्हीं सब जीवोंके ज्ञानदाता हो, मैंने उसी ज्ञानके कणमात्रका अनुसरण कर इस दुर्ख, दुर्ज्ञ तत्त्वकी सत्यतातिसत्य आलोचना की है। इसालिये गन्धर्वराज पुष्पदन्तके पदोंका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाषामें कहता हूँ—

महिमः पारं ते परमविदुषो यद्यसदशी

स्तुतिर्व्विहादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ॥

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

तोमार महिमा सीमा ना जानिया से विघ्नये

आलोचने यदि हय दोप ।

ब्रह्मा आदि देवता ओ ताहा हते अव्याहति

नाहि लमे प्रभु आशुतोष ।

तव दत्त ज्ञानमते ये याहा बलिबे ताहे

यदि नाहिं हय अपराध ।

हइले ओ क्षुद्र आसि बलिते तोमार कथा

बल क्लेन ना करिब साध ॥

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।

निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥



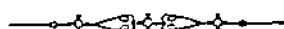
## हर हर भज

अचल अमल अज अनघ अचर-चर अजगव-धर हर ।

अकल सकल खल-दमन शमन-यम-भय शशधर-धर ॥

अचल अठल तन-विमल अतन गणधर अजगर-धर ।

भव-भय-हर अधहरण अभयकर भज भव हर-हर ॥



\* हरि और हर दोनों ( शब्दों ) की प्रकृति ( वास्तविक तत्त्व; ‘हृ’ धातु ) एक ही है। परंतु प्रत्यय ( विश्वास; ‘इ’ एवं ‘अ’ प्रत्यय ) के भेदसे रूपभेद हो जाता है।

# शिवालिङ्ग और काशी

( लेखक—स्व० पण्डित श्रीभवानीशङ्करजी )

## श्रीगणेश

पञ्च उपास्य देवोंमें एक देव श्रीआदिगणेशको महेश्वरने सुष्ठिके प्रारम्भमें सृष्टि-कार्यमें विन्न-वाधाके प्रशमनार्थ अपने साक्षात् अंशसे प्रकट किया, इसी कारण प्रत्येक यज्ञादि शुभ कार्यमें प्रथम श्रीगणेशकी दृज्ञा होती है। जब उस महेश्वर परात्पर तत्वने व्यक्त-ख्यमें शिवमूर्ति धारण की तो उसी अनादि शैलीके अनुसार श्रीगणेश भी उनके यहाँ पुग्रखण्डसे उत्पन्न हुए और गणोंके ( देवताओंके ) अधिष्ठित अर्थात् संचालक बने। इस भगवान् शिव-सम्बन्धी लेख लिखनेके पूर्व श्रीगणेशकी वन्दना और गुणगान करना आवश्यक है—

ॐ देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।  
विघ्नं हरन्तु हेरम्बवचरणाम्बुजरेणवः ॥

ये गणाधिप गणेश ज्ञानके दाता हैं, इसी कारण बुद्धिद्वारा कार्य करते हैं। इनका विशाल मस्तक इनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूपकसे वाहनका कार्य चलता है। इसका तार्त्त्व यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुर रूपमें प्राप्त हो तो उसके बलसे बहुत स्वस्य वाहा सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाज-में कोई-कोई जो नेता होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं, वे इन्हीं श्रीगणेशके कृपापत्र होते हैं। श्रीगणेश अर्थात् बुद्धिमान् योऽपि परिश्रमसे वज्ञा कार्य करते हैं।

एक बार श्रीमहादेवको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निष्क्रिय भेजना था। कात्तिकेयज्ञसे यह कार्य अस्पष्टिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीर यह भूर दिया गया, जितु उनका वाहन क्षुद्र सूक्ष्म था जो

बहुत मन्दगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे कार्य किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींको तीन बार परिक्रमा करके सब देवताओंको वहाँ निमन्त्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमन्त्रणकी जानकारी हो गयी और सब-के-सब यज्ञमें सम्मिलित हुए।

## परात्पर शिव और आद्या शक्ति

सुष्ठिमें जो परम परात्पर हैं वहीं शिव हैं। माण्डूक्योप-निघद्में शिवका यों वर्णन मिलता है—

नात्तःप्रज्ञं न वहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रशान्तयनं न प्रज्ञं नाप्रश्नमद्यमव्यवहार्यमग्राद्यमलक्षणमचिन्त्य-मत्यगदेवयमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशामं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विदेयः।

जिनकी प्रज्ञा वाहिर्मुख नहीं है, अन्तर्मुख नहीं है और उभयमुख भी नहीं है, जो प्रशान्तयन नहीं है, प्रज्ञ नहीं है और अप्रज्ञ भी नहीं हैं, जो वर्गनसे अतीत है, दर्शनसे अतीत, अवहारसे अतीत, प्रश्नसे अतीत, लक्षणसे अतीत, चिन्तासे अतीत, निर्देशरो अतीत, आत्मप्रत्ययमात्र-सिद्ध, प्रपञ्चातीत, शान्त, शिव, अद्वैत और तुरीयपदस्थित हैं, वे ही निहायिक ज्ञाननेत्रोमय हैं। इनका ही नाम 'महेश्वर', 'स्वदम्न्' और 'शिवम्' है। श्रुति भी कहती है—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं  
तं देवतानां परमं च देवतम् ।  
पति पतीनां परमं परत्नाद्  
चिदाम देवं भुवनशर्माप्यम् ॥  
यस्मिन्दिवे यतद्येवं येनद य देवं स्वयम् ।  
योऽल्लातपरल्लात्य परत्नां प्राप्य नवदम्नुपाम् ॥  
तमीश्वराणं यद्येवं देवतांश्चर्तुर्य  
निवायेनां शान्तिमन्दन्तमेति ॥

वे ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और सुवनेश हैं। जिनमें यह विश्व है, जिनसे यह विश्व है, जिनके द्वारा यह विश्व है, जो स्वयं यह विश्व हैं, जो इस विश्वके परसे भी परे हैं, उन स्वयम्भू भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ। उन्हीं ईशान और वरदाता पूज्यदेवको जाननेसे जीव आत्मनिकी शान्तिका अधिकारी हो जाता है।

ये सदाशिव अपनी शक्तिसे युक्त होकर सृष्टि रचते हैं। इवेताश्वतर-उपनिषद्‌में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।  
तस्यावयवभूतस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृति—मायाके अधिष्ठाता, मायी हैं। मायाके द्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार परिव्याप्त हो रहा है।

इस प्रकार यह अव्यय सदाशिव सृष्टिकी रचनाके निमित्त दो हो जाते हैं; क्योंकि सृष्टि बिना द्वैत (आधार-आधेय) के हो नहीं सकती। आधेय (चैतन्य पुरुष) बिना आधार (प्रकृति, उपाधि) के व्यक्त नहीं हो सकता। इसी कारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं उनमें आभ्यन्तर-चेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि-चैतन्य परमपुरुष परमात्माकी 'शिव'संज्ञा सृष्टयुन्मुख होनेपर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है; क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिङ्गरूपमें पिता और प्रकृति योनिरूपमें माता हैं। गीतामें इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया गया है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।  
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥  
( १४ । ३ )

'महद्ब्रह्म (महान् प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं

बीज देकर गर्भका संचार करता हूँ और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

इसी अनादि सदाशिव-लिङ्ग और अनादि प्रकृति-योनिसे समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है। इसमें आधेय बीज-प्रदाता (लिङ्ग) और आधार बीजको धारण करनेवाली (योनि) का संयोग आवश्यक है। इन दोनोंके संयोग-के बिना कुछ नहीं उत्पन्न हो सकता। इसी परम भावका मनुजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

द्विधा कृतात्मनो देहमर्द्देन पुरुषोऽभवत् ।  
अर्द्देन नारी तस्यां स विराजमसृजतप्रभुः ॥

सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्द्धलिङ्गसे प्रकृतिको निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार शिवका लिङ्ग-योनिभाव और अर्द्धनारीश्वरभाव एक ही वस्तु है। सृष्टिके बीजको देनेवाले परमलिङ्गरूप श्रीशिव जब अपनी प्रकृतिरूपा नारी (योनि) से आधार-आधेयकी भाँति संयुक्त होते हैं, तभी सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार श्रीशिव अपनी तेजोभयी प्रकृतिको धारणकर उससे आच्छादित होकर व्यक्त होते हैं, अन्यथा उनका व्यक्त होना असम्भव है। इसी कारण कहा है—

त्वया हृतं वामवपुः शरीरं त्वं शम्भोः ।

अर्थात् 'हे देवि ! आपने श्रीशिवके आधे शरीर वाम भागको हरण कर लिया है, अतएव आप उनके शरीर हैं।'

यह लिङ्ग-योनि जिसका व्यवहार श्रीशिव-पूजामें होता है, प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्तिकी सूचक है। इस प्रकार यह परम परात्पर जगत्प्रिता और दयामयी जगन्माताके आदिसम्बन्धके भावकी घोतक है। अतः यह परम पवित्र और मधुर भाव है। इसमें अश्लीलताका आक्षेप करना सर्वथा अज्ञान है। यह अनादि प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध परम सृष्टियज्ञ है जिसका परिणाम यह सुन्दर सृष्टि है। इसीसे शुद्धमैथुन, जिसका उद्देश्य

कामोपभोग नहीं वल्कि पितृऋणसे उद्धार पानेके लिये उत्पत्ति-धर्मका पालन करना है, कामाचार नहीं, परम यज्ञ है और इस प्रकार विचार करनेसे परम कर्तव्य सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे प्रत्येक जन्मुका परम पवित्र कर्तव्य है कि वह इसका उत्पत्ति-धर्मके पालनके लिये ही उचित व्यवहार करे। और इनका यज्ञार्थ—धर्मिं व्यवहार न करके कामोपभोगके निमित्त व्यवहार करना दुष्प्रयोग है और ध्वन्य ही पापजनक तथा दुर्गतिकारक है।

इस प्रकार शिवलिङ्गका अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करनेवाला है। क्योंकि इसीके व्यक्त होनेसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ आल्य है अर्थात् यह प्राणियोंका परम कारण और निवास-स्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्', अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायें वह परम कारण लिङ्ग है। लिखा भी है—

लीयमानमिदं सर्वं ब्रह्मण्येव हि लीयते ।

लिङ्ग परमानन्दका कारण है जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिङ्गपुराण तथा शिवपुराणमें कहा है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुके बीच यह विद्याद चल रहा था कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। इनमें उन्हें एक बृहत् ज्योतिर्लिङ्ग दिखलायी दिया। उसके मूल और परिमाणका पता लगानेके लिये ब्रह्मा ऊपर गये और विष्णु नीचे, परंतु दोनोंमेंसे किसीको उसका पता न चल। विष्णुके स्मरण करनेपर वेद-नामके ऋषि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने समझाया कि प्रणवमें 'अ'कार द्रवा हैं, 'उ'कार विष्णु हैं और 'म'कार श्रीशिव हैं।

'म'कार ही बीज है और वही बीज लिङ्गपुराणसे स्वयम् पत्त घटाया है। उपरकी कथामें विष्णुसे ब्रह्मण्डके लिङ्गसे तात्पर्य है न कि लगुदिव्यसे, जो इनेका ब्रह्मण्डोंके नामका है तथा जिनमें और सदाशितमें जैर्व नी नेद नहीं है।

## शिव और मन्त्र

परमपुरुष शिव और उनकी शक्तिके सम्बेलनसे जो स्पन्दन उत्पन्न हुआ, वही सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण बना। इसीको शिवका ताण्डव-नृत्य कहते हैं। रसायन-विज्ञानका सिद्धान्त है कि इलेक्ट्रॉन (Electrons) जो बुद्धके समान आवेय (Position) हैं उनका प्रोटोन (Protons), जो प्रकृतिके समान आवेय (Negation) हैं, के साथ संबंध होनेसे जो स्पन्दन (Encircling motion) उत्पन्न होता है, उसीके द्वारा अणुओंकी उत्पत्ति होती है और उन अणुओंसे आकार बनते हैं।

जब सदाशिव आनन्दोन्मत्त होकर अर्थात् माँ आनन्द-मयीसे युक्त होकर नृत्य करते हैं, तब उस महानृत्यके परिणामसे इस सृष्टिके पदधोर्णोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह विश्व सदाशिवके नृत्य और नादका परिणाम है। क्योंकि नृत्यमें वह डमरू बजाते हैं। जहाँ त्पन्दन (Motion) होता है वहाँ शब्द भी होता है। इस प्रकार श्रीशिवके डमरूके शब्दसे (जो प्रकृति और गुरुर्मने सम्बेलनके द्वारा नादरूपमें प्रकट होता है) व्याकरणके मुख्य शब्द-सूत्रकी उत्पत्ति हुई। यह शब्द नार प्रकारके शब्दोंमें अन्तिम 'वैखरी' वाक्यका अर्थ है। अतएव वर्णमालाके प्रत्येक अद्वयमें शक्ति संनिहित है। इस शक्तिके कारण आनन्दतरिक पश्चक्रमोंमें इन अद्वयोंका निवासस्थान है। इस शिवशक्तिके नादका स्वरम द्वारा कोई भागमें है जिसकी 'परा' संतुष्टि है। उस अद्वय कर्ममें अग्रसिग्ग स्वरूपमें देखते हैं, इसीसे उसे 'एशन्टी' कहते हैं। परंतु ये मत्त उस 'परा'के अन्तर्मिद्द स्वर हैं, जो खर्ममें देखे और मुनि देखते हैं। प्रथम वे मन्त्रमें 'मैर्टी' रूपसे प्रकट होते हैं, जोकिं श्रीशिव उस प्रथमाकृत कथा है जिसमें इस गत्ता अदि स्वरूप लकड़ी उपरि रहते हैं। अन्दर धोदिव स्वरूपाकृते प्रथमका रहे प्रतीत है। दिव्यकृते

अन्तमें जो 'बम्, बम्' शब्दका उच्चारण किया जाता है वह प्रणवका ही सुलभ रूप है जो अत्यन्त प्रभावशाली है।

ऊपर सदाशिवका वर्णन हुआ। परंतु उनका व्यक्तभाव श्रीमहादेव मनुष्य रूप पिण्डाण्डका सर्वोल्कृष्ट उदाहरण है। तात्पर्य यह कि मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँची-से-ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेव उसके आदर्शखलरूप है। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अप्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिव जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति, ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। वे इनके आदर्श और उपदेश हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञानचक्षु है जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर है, परंतु यह बिना श्रीजगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता। गायत्रीशक्ति शिवके इसी आदर्शको लेती है और अपने सृष्टि-कार्यमें इसको लक्ष्य बनाकर उसी ओर साधकोंको प्रवृत्त करती है।

### आध्यात्मिक काशी

जब साधककी चित्तवृत्ति शुद्ध, शान्त और निःस्वार्थ होकर अपने अभ्यन्तरके आध्यात्मिक हृदयमें वहाँ स्थित होती है जहाँ प्रज्ञाका बीज होता है तो उसी अवस्थाको 'काशीप्राप्ति' कहते हैं। यह अवस्था परम सुषुप्तिके समान है। इसमें आनन्दका अनुभव होता है, इसी कारण काशीको आनन्द-यन कहते हैं। इस काशीमें महाश्मशान-की स्थिति ( जहाँ शिवका वास होता है ) का कारण यह है कि यहाँ शिवके तेजसे विकारोंके दग्ध होनेपर अनात्मरूप उपाधियोंसे छुटकारा मिलता है और अहंकार भी दग्ध हो जाता है। गौरीमुखका तात्पर्य यह है कि इस काशीप्राप्तिकी अवस्थामें साधक दैवी ज्योति और वोधशक्तिके सम्मुख पहुँच जाता है और ज्यों ही उसका आध्यात्मिक दिव्य चक्षु श्रीशिवके द्वारा खुलता है त्यों ही वह विलोक्यके पार पहुँच गौरी अर्थात् विद्या देवीको बिना आवरणके देखनेमें समर्थ हो जाता है। मणिकर्णिका

प्रणवकर्णिका है और इनकी तीन कर्णिकाएँ चित्तकी तीन अवस्थाओंकी धोतक हैं, जैसे—

- ( १ ) साधारण, जाग्रत्-अवस्था ।
- ( २ ) दूर-दर्शन और दूर-श्रवणकी अवस्था ।
- ( ३ ) स्वर्गलोककी अवस्था ।

काशी इन तीनोंके परे है जिसके लाभसे मुक्ति होती है। श्रीशिवजी तारकमन्त्र तभी प्रदान करते हैं जब साधक हृदयरूप काशीमें ( कारण-शरीरमें ) स्थित होता है और तब वह तारकमन्त्रके प्रभावसे सदाके लिये तुरीयावस्थामें चला जाता है।

त्रिशूलका भाव है—त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वस, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे भी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधक ही यथार्थ त्रिशूलधारी है।

### अन्य भाव

शिवके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्द्धमात्रासे है और इसी निमित्त उनके मस्तकको अर्द्धचन्द्र भूषित करता है। योगिण अपने अभ्यन्तरके चित्-अग्निके द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि सबको दग्धकर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसे ही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गङ्गा एक वज्ञ तेजःपुञ्ज है, जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर त्रिलोकके नायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याणके निमित्त फैलता है। इस तेजःपुञ्जको केवल महादेव धारण कर सकते हैं; क्योंकि शिव और विष्णु एक हैं। श्रीशिवकी कृपासे इस आध्यात्मिक गङ्गाका लाभ अभ्यन्तरमें—अन्तरस्य काशीस्त्रमें—होता है।

शिवके पाँच मुख हैं—ईशान, अधोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ है स्थामी। अधोरका अर्थ है कि निन्दित कर्म करनेवाले भी श्रीशिवकी कृपासे निन्दित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं। तत्पुरुषका अर्थ है अपने आत्मामें स्थिति लाभ करना। वामदेव विकारोंके नाश करनेवाले हैं। सद्योजात वालको समान परम खण्ड, शुद्ध और निर्विकार हैं। व्यम्भकका अर्थ

है व्रहाण्डके निदेव व्रहा, विष्णु, महेश तीनोंके अन्य अर्थात् कारण। जीवात्माकी तीव्र भक्ति ( सेवा ) और मिलनके प्रगाढ़ और अनन्य अनुराग तथा विशुद्ध निर्विकार प्रेमसे शिवप्राप्ति होती है और अनुराग-मिलन होनेपर वह श्रीशिवके चरण-कमलके स्पर्शकी परम शान्तिमें पूर्णताको प्राप्त होता है।

## शिव-महिमा-सूत्र

[ लेखक—पं० श्रीसूरजचन्द्रजी सत्यग्रेमी ( डॉगीनी ) ]

( १ ) क्रियादक्ष प्रजापति दक्षने शिव-(कल्याण) को निमन्त्रित नहीं किया, इसीलिये यह प्रब्वंस हो गया। हमारी वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ कितनी ही दक्षतापूर्ण हों, पर विश्व-कल्याण शिवके प्रतिकूल होंगी या उसका खागत न करेंगी तो अंसकी ओर ही ले जायेंगी।

( २ ) दक्षकी कल्या शिवकी शक्ति-वुद्धि—सती होनेपर भी सच्चिदानन्दकी अवतार-लीलाओंपर संशय करनेके कारण जलनेयोग्य समझी गयी और हिमाचलकी पार्वती अविचल शान्तश्रद्धा हुई, जो सत्पर्योगेके डिगानेपर भी नहीं डिगी, तब शाश्वत स्त्रीकृत हुई और रामायण सुननेकी अधिकारिणी बनी। इसी प्रकार हमारी दक्ष-वुद्धि भी संशय छोड़कर शान्त, स्थिर, अचल और उज्ज्वल बनेगी—हिमाचलके घर जन्मेगी, तभी रामचत्त्रिके योग्य बन सकती है—अन्यथा नहीं।

( ३ ) गुणप्रतिवाहन—मूरक और शिव-भूरुण सर्प वैरी होनेपर भी समन्वय-शक्तिसे साप-साप रहते हैं। शिव-भूरुण सर्प और सेनापति-वाहन मयूरका भी वैर, नीलकण्ठके विर और चन्द्रमौलिके अमृतने भी वैर, भयाली-वाहन सिंह और शिव-वाहन वैलमें भी वैर, काम भल्म करके भी यी रखनेमें परत्सर विरोध, शिवके तीसरे नेमें प्रलयकी भाग और हितर निरन्तर शीतल-धरामी गङ्गासे टैटा भगवान्‌के चरण-मूर्त्तसे रहत, पह भी परस्पर विरोध एवं दूत-मूर्त और दिग्नदर विनृतका

भी वैर। ऐसे दक्ष-जामाता राजनीतिज्ञ होनेपर भी भोले-भले। परंतु इस सहज परस्पर-प्रिरोधितामें भी नित्य सहज समन्वय ! धन्य ! धन्य ! धन्य ! शिव ! इसीलिये तो महाराणा प्रतापके मालिक, संस्कृति, सम्पत्ति, सत्ता, संतति आदि सब विभूतियोंसे सम्बन्ध पौछत्यके पूज्य, भगवान् रामके ईश्वर, रामेश्वर, भगवान् परशुरामके गुरुदेव भगवान् शिवकी सदाकाल जय हो, विजय हो !

( ४ ) ऋद्धि-सिद्धिका सामी, गगका पति, गगके पिता भगवान् शंकरके आशीर्वादके बिना प्रकट नहीं हो सकता—उन्हींके आशीर्वादसे वह खण्ड-खण्ड करनेवाले चूहोंपर सबारी करके भी राष्ट्र-गगको अलगड़ करता है। राष्ट्रवाँ, गगको खण्ड-खण्ड करनेवाले चूहोंको वाहन बनाकर संयत करनेवाले और अलगड़ करनेवाले गग-पतिको वाप भगवान् शंकरी लदा जय हो, विजय हो !

( ५ ) नमस्ते नमस्तक सब गति रहती, पर दिल कर्मी गति न हो। नदियें नदा रहती, नदम रहती। तर्मा द्वार्देश्वरी द्वार्देश्वरी करनेमें अर्थी। द्विनो भूता द्विन वन्दित।

( ६ ) इन, नेत्रदाता जय ! अद्विद देवमि दिवदाम भगवान्‌के चरण-मूर्त्ति गङ्गामें इसीरिये लिय वरम करते हैं !

## शिवताण्डव-स्तोत्र

( अनु०—प्र० गोपालजी ‘सर्वकिरण’, एम० ५० )

ओ पुण्यकण्ठ, गंगासे शोभित जटा-विपिन ,  
ओ रम्यरूप, धरे भुजंग माला महान ।  
द्वमरुकी डिम्-डिम्-ध्वनि, ताण्डव नृत्य-निरत ,  
ओ शंकर, ग्रलयंकर, हर, दो कल्याण-दान ॥ १ ॥

धूर्मितकर जटा-कटाह गंग चल वीचि-लता ,  
शोभित ललाटपर वहि धधकती परम तृपु ।  
नव बालचन्द्र धारण कर मस्तकपर ललाम ;  
ओ भव्यरूप, हो श्रीति चरणमें नित प्रदीप ॥ २ ॥

गिरितनयाके मनहर कटाक्षसे परम मुदित ,  
कर कृपा-दृष्टि हर लेते कठिन, भक्तके दुख ।  
ओ अवढरदानी, धारणकर दिक् गगन-वसन ,  
हो आश्रय शुभ, आनन्द-राशि, मन-विषय-प्रमुख ॥ ३ ॥

ओ जटालिस फणि-मणि पिंगल धूति केसरसे  
रँगकर दिग्बधुओंके सुखको, रहते हर्षित ।  
मदमत्त गजासुर चर्माम्बर शुभ उत्तरीय ,  
ओ रक्षक भूत जगतके, हो मन आनन्दित ॥ ४ ॥

ओ, मस्तक-प्राणगण-ज्वलित अग्निकी लपटोंसे,  
जल गथा काम, नतमस्तक सब इन्द्रादि देव ।  
ओ शशिशेखर, गंगासे शोभित जटाजूट ,  
दो धर्म-विभव, ओ महाकपाली, महादेव ॥ ५ ॥

इन्द्रादिदेवके सुकुट-माल-मकरन्द-विन्दु ,  
शुभचरणोंके नीचेकी भू धूसरित रंग ।  
ओ सर्पराजसे बद्ध विभूषित जटाजूट ,  
शंकर, दो धर्मादिक पुरुषार्थ, विभव-तरंग ॥ ६ ॥

ओ, भालपट्टिकी वेदी प्रज्वलित जवाल ,  
वनकर होता, आहुति दे, हर्षित पंचवान ।  
गिरितनयाके स्तनके हित चित्रक, शिल्पकार ,  
ओ ओ त्रिनेत्र, हो ग्रेम निरन्तर वर्द्धमान ॥ ७ ॥

नव धनसमूह दुस्तर तमन्तोम अमा श्रीवा ,  
शोभित गंगासे तन, भूषित गज-चर्माम्बर ।  
कंधेपर भवके भार धारकर तुम हर्षित ,  
ओ दीप्ति भाल यालेन्दु, विभव वरसे झट-झर ॥ ८ ॥

विकसित इन्दीवर-धुति श्रीवा अति भासमान ,  
ओ सर-छेदक, ओ पुर-छेदक, ओ मख-छेदक ।  
ओ गज-छेदक, अन्धक-छेदक, अघहर भज-भज ,  
हो तृप्तकाम शंकर, ओ महाकाल-छेदक ॥ ९ ॥

अलिके समान चूसते मंजरी-रस प्रवाह ,  
कादम्ब सर्वमंगला-कला, विद्या-निःसृत ।  
ओ सर-पुर-अन्तक, भव-अन्तक, मखके अन्तक ,  
गजके अन्तक, अघ-तम-अन्तक, हम नतमस्तक ॥ १० ॥

मस्तक-प्राणगणमें आग्नि ग्रदीपित ज्वालामय ,  
विश्रमित भुजंगोच्छासोंसे जो है वाधित ।  
धिम्-धिम्-धिम्-स्वर, शृदंग ध्वनिकर, ताण्डवमें रत ,  
ओ ग्रलयंकर, उल्कर्ष करो, तुम हो प्रकटित ॥ ११ ॥

चट्टान-सेज, सुक्ताकी माला, सर्प-माल ;  
बहुमूल्य रत, भृत्यिका-लोष्ट, औ शत्रु-मित्र ।  
तृण और कमलनेत्री सुरम्य, भू-प्रजामहिष ,  
कब सम प्रवृत्तिसे देखें, समदर्शी पवित्र ॥ १२ ॥

कर त्याग दुष्ट दुर्मति गंगा-निकुंजमें जा ,  
बद्धाजलि शिरपर धरे हाथ शिव-मन्त्र जाप—  
जो रत्नरूप हिमगिरि-तनया-ललाट अंकित ,  
हों तृप्त-काम, कट जाएँ बद्ध दुष्कर्म धाप ॥ १३ ॥

ओ इन्द्र-अप्सरावृन्द-शिरस-मङ्गिकागुच्छ—  
मकरन्दविन्दुके उष्ण तापसे दीप्तवान ।  
तन कान्ति-कुंज शोभाके अनुपम दीप्तधाम ,  
हो कृपादृष्टि, अन्तरानन्द नित वर्द्धमान ॥ १४ ॥

ओ हिमगिरि-तनयाके परिणय कालिक शुभध्वनि ,  
बद्धानल दीप भवान्ति सिद्धि सँग गौंज गगन ।  
'शिव-शिव'का मन्त्राभूषण जिसका है सम्बल ,  
भवसागरके हित हो वह सुन्दर अचलमन ॥ १५ ॥

जो नर संध्या समय शेषकर पूजाचर्चन ,  
पढे शम्भु पूजनपर रावण स्तोत्रभंग ।  
पाये वह अघहर शंकरकी कृपादृष्टि ,  
हों मत्त गजेन्द्र, अचंचल लक्ष्मी औ तुरंग ॥ १६ ॥

## श्रीशिवाशिवसे वर-याचना

( याचक—पं० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री )

शिवाशिव ! तुम हो दयानिधान ।  
हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ६ )

प्रणव-जप-तप-ब्रत कर अविराम ।  
करै हम प्रभु-पूजन निष्काम ॥  
वसा हृदयोंमें सीताराम ।  
द्वगोंमें राधायुत घनश्याम ॥  
सुनें मंजुल मुरलीकी तान ।  
हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ७ )

उपनिषद उपवन सुमन सुवास ।  
उडे पाकर अध्यात्म विकास ॥  
हमारा सबका हर निश्वास ।  
करे वह सुरभित हर हिय-हास ॥  
मोह-मायाका हो अवसान ।  
हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ८ )

सकल जीवोंका हिय धार ।  
लक्ष्यकर सब जगका उदार ॥  
करै हम बनकर विद्युध उदार ।  
ब्रह्मविद्याका प्रचुर प्रचार ॥  
भरै हिय-हियमें ब्रह्म-पान ।  
हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ९ )

प्रगति दुष्कर्मोंकी कर मन्द ।  
विषय विषका पीना कर वन्द ॥  
आत्मचिन्तन रत हो सच्छन्द ।  
सुखम कर लै हम ब्रह्मानन्द ॥  
यही मुख हमको जबे प्रभान ।  
हमें दे डालो यह वरदान ॥

( १० )

चराचरके इन बनकर 'मित्र' ।  
यना लै जीवन परम पवित्र ॥  
विशद कर भ्रमन जह नदीन ।  
दिला दै इन भ्रदरों विकित ॥  
नेत्रराद नामी लै विदेन ।  
हमें दे डालो पर एवन ॥

रहै हम सब शाश्वत स्वाधीन ।

परस्पर भत्सर-चैर-विहीन ॥

करै इस विधि उद्योग नवीन ।

न रह जायें हम जगमें दीन ॥

हमारा दिन दिन हो उत्थान ।

हमें दे डालो यह वरदान ॥

( २ )

भरै हम सबमें विमल विचार ।

यनें हम शुभ शुण-नाण भण्डार ॥

शान्ति समताका रख व्यवहार ।

करै हम अविरत पर-उपकार ॥

सभ्यताका हो हममें स्थान ।

हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ३ )

क्षमा करुणा अद्वा विश्वास ।

निरन्तर हममें करै निवास ॥

करै हम हिलमिल यही प्रयास ।

समुज्ज्वल हो अपना इतिहास ॥

प्रसारित हों फिर वेद-विधान ।

हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ४ )

रखे हमको हरि-कथा-प्रसंग ।

मिले संतत संतोंका संग ॥

धर्मकी हममें बढ़े उमंग ।

न शुभ कर्मोंका क्रम हो भंग ॥

करै हम सबका सम सम्मान ।

हमें दे डालो यह वरदान ॥

( ५ )

भक्तिका हममें वहे प्रवाह ।

सत्त्वगुण हममें भरे अयाह ॥

यहै हममें साहस उत्साह ।

मिटे सब भद्रतापोंका दाह ॥

करै हम भद्रतापतिर ध्यान ।

हमें दे डालो यह वरदान ॥

## आशुतोष भगवान् शिवजीके चरणोंमें एक विनीत प्रार्थना

त्रैलोक्यवन्द्य ! देवाधिदेव भगवान् महादेव ! आप—  
१—शिव हैं ।

२—विशूलधारी हैं ।

३—मिनाक्षणि हैं ।

४—सृष्टि-संहारक हैं ।

५—आपके पुत्र षण्मुख कार्तिकेय देवसेनाके अध्यक्ष हैं, और

६—कार्तिकेयकी माता पार्वती तो स्वयमेव शक्ति हैं ।

इस तरह हम देखते हैं आप और आपका कुटुम्ब लोकसर्वस्व ही तो है । दोनों मिलकर तो संरक्षण और आक्रमणकी दिशामें सुरासुर-स्तुत्य और लोकालोकदुर्लभ हैं ।

आपकी भूकुटी-विलासमें विश्व-ब्रह्माण्डोंका उदयास्त होता रहता है । भगवती उमाके कोपसे अजय दैत्य-दानव भी समाप्त होते हैं और उनके पराक्रमी पुत्रके प्रतापसे तो असुरोंके आक्रमण भी निष्फल हो जाते हैं, तभी तो भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

**सेनानीनामहं स्कन्दः ।**

**भगवन्!** आजके अणु बम, हाइड्रोजन बम तथा रॉकेट और मेगाटन बम तो आपके लोकसंहारक तीसरे नेत्रकी तुलनामें अणु-रेणुमात्र भी नहीं हैं । परंतु समझमें नहीं आता कि आजके भारतीय संस्कृति-धातक तत्वोंके विनाशार्थ आप दण्डका प्रयोग क्यों नहीं करना चाहते, जब कि भारतीय आचार-संहितामें भगवान् मनु इस प्रकार कहते हैं—

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि किनरोरगाः ।

तेऽपि भोगाय कल्पन्ते कृष्णेनैव निपीडिताः ॥

दीनवन्धु । आज संसारमें सर्वत्र असांस्कृतिक तत्वोंका दौरदौरा है, पथनष्ट विज्ञान मानव-जातिको नामशेष

करनेको समुद्दत है, मनुष्य सर्वथा असुर बन रहा है । ऐसी विषम परिस्थितिमें भी क्या आप मौनावलम्बी और शान्त ही बने रहकर तथाकथित अनर्थ होने देंगे और आपका कुटुम्ब भी आपका ही अनुकरण करता रहेगा ।

त्रिपुरारि । यह शान्ति-काल नहीं है । प्रत्युत लोम-हर्षण अशान्ति-काल है । आपके रौद्र एवं विकट व्यक्तिल-के उपयोगका यही उपयुक्त समय है, अपितु हम तो आपसे यह प्रार्थना भी करते हैं कि आप भारतवासियोंमें भाग्यवादके स्थानमें पुरुषार्थवादका मन्त्र छँकें और उन्हें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें कि वे उपनिषद्के इस वाक्यको स्वप्रमें भी न भुलायें—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः । \*

साथ ही वैदिक और लौकिक संस्कृत वाङ्मयके इन अमर शब्दोंको अपने हृदय-पठलपर अङ्गित कर लें और इनको अपने चरित्रमें ढालें—

स्वर्वीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः । †

पुरुषार्थो मे दक्षिणे हस्ते जयश्च वामे हस्ते । ‡

चरन् वै मधु विन्दति

चरन् स्वादुसुदुम्यरम् ।

सर्वस्य पश्य श्रेमाणं

यो न तन्द्रयते चरैश्चरैवेति ॥ §

या फिर, अपने परम शान्त शिवतत्त्वका प्रसारकर विश्व-मानवके हृदयको ही परम सान्त्विक सुशान्त बना दें, जिससे प्रत्येक मानव प्राणिमात्रमें आपके 'शिव'रूपका दर्शन कर सबके कल्याण तथा सबकी सेवामें संलग्न हो जाय । विषमय भौतिक विज्ञानकी ज्वाला शान्त हो जाय तथा सर्वत्र शान्त शिवात्म-तत्त्वके दर्शन हों—पार्थी—श्रीरामनिवास शर्मा

\* बलहीनके लिये आत्मा अल्पत्य है ।

† मनुकी संतति स्ववल-संरक्षित है—पराश्रय-आकाङ्क्षिणी नहीं ।

‡ पुरुषार्थ मेरे दहिने हाथमें हो और जय वोंये हाथमें; क्योंकि पुरुषार्थके लिये जय तो वायें हाथका ही खेल है ।

§ गतिशील व्यक्ति मधु पा लेता है और आगे दढ़नेवाला उदुम्बर आदि फल भी प्राप्त कर लेता है । अविश्रान्त गतिशील रहनेके ही कारण सूर्य विश्व-तत्त्व है । इसलिये जीवनमें दृढ़ निष्पत्त्यके साथ कदम बढ़ाते ही चलो ।

## हिंदीवर्णानुक्रम जययुक्त अष्टोत्तरशिवसहस्रनाम

जय अज, अब्यय, अमित शक्ति जय  
 जय अनियम, अध्रुव, अनादि जय  
 जय अमृताशा, अमृत-वपु जय जय  
 अमृतप, अमृतरूप, अक्षय जय  
 अप्राकृतिक दिव्य-तत्त्व जय जय  
 जय अनादि-मन्द्याल्त जयति जय  
 अर्थेगम्य, जय अष्टमूर्ति जय  
 अपरिच्छेद्य, अध्यात्म-निलय जय  
 जय अचलेश्वर, अजितप्रिय जय  
 जय असाध्य, अनिवृत्तात्मा जय  
 जय अभिवाद्य, अकल्पप जय जय  
 जय अनन्तदक्, अन्नरूप जय  
 जयति अजातशान्त्रु, अघरिपु जय  
 जय अन्तर्हित-आत्मा जय जय  
 अन्नगृणी, अक्रिय, अकथनीय जय  
 अभिजन, अकुतोभय, अकुण्ठ जय  
 अतिग्राकृत, अतिदैव, अजर जय  
 अतिमानुप, अतिवेल, अचर जय  
 जयति अखण्ड, अग्न्य, अक्षर जय  
 अतिवल, अत्त्वु-ग्राण-हर जय जय  
 जय अधिराज, अधृत्य जयति जय  
 असंदिग्ध, असुरारि जयति जय  
 जय अद्व्यालय, अद्वि, अतिथि जय  
 जय अधिशिष्ट अपांनिधि जय जय  
 जय अराण, अभिराम, अमृत जय  
 जय अगस्त्य, अंगिरा, अत्रि जय  
 जय अनन्त, अरिदमन, अचल जय  
 जय अमेद, अद्देय, अमल जय  
 जय अनर्थनाशन, अमोघ जय  
 जयति अनर्थ, अर्थ, अमिनव जय  
 जयति अचंचल, असंसृष्ट जय  
 जय अधर्मरिपु, अन्यतारि जय  
 जय अधोर, अनिस्त्र, अभय जय  
 जयति अरिन्दम, अमरेष्वर जय  
 जय अलोक, अपराजित, अषु जय  
 जय अद्भुर, अशिक्षुन जय जय

जय अभ्युण्ण, अनद, अग्रह जय  
 जयति अगुण, अनन्तगुणनिधि जय  
 जय अक्षयगुण, अधिष्ठान जय  
 जयति अपूर्व, अनुत्तर जय जय  
 जय अप्रतिम, अकम्प, अधृत जय  
 जयति अकाल, अकल, अमृत्यु जय  
 जय असुरासुरपति, अहपति जय  
 जयति अमाय, अनामय जय जय  
 जयति अकर्ता, अखिलकर्तृ जय  
 जयति अतीन्द्रिय, अखिलेन्द्रिय जय  
 जय अनपायोद्धर, अद्दम्य जय  
 जय आनन्द, आनन्दतन जय  
 आत्मयोनि, आधितवन्सल जय  
 आशुतोष, आलोक जयति जय  
 जयति इष्ट, ईशान, ईश जय  
 जय उम्ब्र, उग्र, उत्तर जय  
 जयति उण्ण, उमत्तवेष जय  
 जयति उपदूव, उत्तारण जय  
 जय उद्योगी, उद्यमप्रिय जय  
 जय ऋषि, ऋद्धर्मवर जय जय  
 एकरुद्र, जय एकयन्त्रु जय  
 जय एकात्मा, एकलेष जय  
 जय एक्षर्यानिन्त्य जयति जय  
 जयति ओज, और्कारेश्वर जय  
 अमुजात्म, अन्तर्यामी जय  
 अन्तरदित, अन्तरप्रिय निधि जय  
 जय कमलाद्व, कमण्डलुभर जय  
 जयति कला, कर्ता, कर्ति जय जय  
 कर्णिकागप्रिय, कर्णराज जय  
 जय कर्मसीय कर्णदर, कर्तु जय  
 जय कर्मसामा, कर्मददस्तु जय  
 जय कर्माण-नाम गुणार जय  
 जय कर्मण-विधार्य जय जय  
 जयति कर्मापर, कर्त्तुभ जय  
 जय कर्त्तवदि, कर्मदि, कर्म जय  
 उपनि कर्मदि, कर्म जय जय

|                     |               |              |    |                 |                    |            |      |    |
|---------------------|---------------|--------------|----|-----------------|--------------------|------------|------|----|
| जयति                | कामशास्त्रन,  | कामी         | जय | जय              | जगदीशा,            | जगद्गुरु   | जय   | जय |
| काम,                | कामरिपु,      | कामपाल       | जय | जय              | जस्मारि,           | जनार्दन    | जय   | जय |
| जयति                | काल,          | जय कलपवृक्ष  | जय | जय              | जगदादिज,           | जनक,       | जनन  | जय |
| कालाधार,            | कालभूषण       |              | जय | जयति            | जप्य,              | जमद्विषि   | जयति | जय |
| कालकाल,             | जय कलरहित     |              | जय | जटिल,           | जलेश्वर,           | जगद्गुरु   | जय   |    |
| जय कान्ताग्रिय,     | कान्त जयति    | जय           | जय | जनास्यक्ष,      | जन-मन-रंजन         |            | जय   |    |
| जय किंनरसेवित,      | किंशत         |              | जय | जयति            | जरादिशमन,          | जगपति      | जय   |    |
| किंकरवश्य,          | कितव-चरि      | जय           | जय | जाणजीवन,        | जय                 | जातुकर्ष   | जय   |    |
| कीर्तिविभूषण,       | जय किरीटि     | जय           | जय | जय जितकाम,      | जितेम्द्रिय        | जय         | जय   |    |
| जय कृतज्ञ,          | जय कृतानन्द   |              | जय | जीविताक्ष्टकर,  | जीवनेश             |            | जय   |    |
| जयति                | कृष्ण,        | जय कृष्ण-वरद | जय | जयति            | ज्योति,            | ज्योतिर्मय | जय   | जय |
| जय कुमार,           | कुम्भलाग्न    | जय           | जय | जयति            | तत्त्व,            | तत्त्वज्ञ  | जयति | जय |
| जय केवल,            | केदारनाथ      |              | जय | जय तापस,        | तमिक्ष्वाक्ष       | जय         | जय   |    |
| जय कैवल्यप्रदाता    | जय            |              | जय | जय तमरूप,       | तमोहर              | जय         | जय   |    |
| जय कैलासशिखरवासी    |               |              | जय | जय तत्पुरुष,    | तार्क्य,           | तारक       | जय   |    |
| जय कंकणि-कृत-वासुकि | जय            |              | जय | जय तिग्मांशु,   | तीर्थधामा          |            | जय   |    |
| जय खग,              | खगवाहनग्रिय   | जय           | जय | तीर्थ,          | तीर्थमय,           | तीर्थदृश्य | जय   |    |
| जय खद्वांगी,        | खण्डपरशु      |              | जय | तुम्बवीण,       | जय                 | तुष्ट,     | तेज  | जय |
| जय खलकष्टक,         | खलदलारि       |              | जय | तेजद्युतिघर,    | तेजराशि            |            | जय   |    |
| जय गणेश,            | गणकाय,        | गहन          | जय | जयति            | त्रिवर्ग-सर्व-साधन |            | जय   |    |
| गगनकुन्द-प्रभ,      | गणनायक        |              | जय | जय ब्रैविद्य,   | ब्रयीतन्           | जय         | जय   |    |
| जय गायत्रीवल्लभ     |               |              | जय | जयति            | त्रिलोचन,          | त्रिदशाधिप | जय   |    |
| जय गिरीश,           | गिरिजापति     | जय           | जय | जय त्रिलोकपति,  | न्यस्वक            | जय         | जय   |    |
| जय गिरि-जामाता,     | गिरिरित       |              | जय | जय त्रिशूलधर,   | त्र्यक्ष           | जयति       | जय   |    |
| जय गुह,             | गुह,          | गुणसत्तम     | जय | जय दुर्जय,      | दुस्सह,            | दम         | जय   | जय |
| जय गुणराशि,         | गुणाकर        |              | जय | जय दुर्धर्ष,    | दुरतिक्रम          |            | जय   |    |
| जय गुणग्राहक,       | ग्रीष्म       | जयति         | जय | जय दक्षारि,     | दक्षत्राता         |            | जय   |    |
| जय गोपति,           | गोसा,         | गोप्रिय      | जय | जयति            | दक्ष-जामाता        |            | जय   |    |
| जय गोविन्द,         | गोशश्वा       |              | जय | जय दर्पद,       | दर्पहा             | जयति       | जय   |    |
| जय गौरी-भर्ता,      | गंगाधर        |              | जय | दनुज-दमन,       | दमयिता             | जयति       | जय   |    |
| जय घुम्मेश्वर,      | घनानन्द       |              | जय | दान्त,          | दयानिधि,           | दाता       | जय   | जय |
| जयति                | चतुर,         | जय चन्द्रचूड | जय | जयति            | दिवाकर,            | दिव्यायुध  | जय   |    |
| चतुर्वेद,           | जय चन्द्रमौलि |              | जय | जयति            | दिवस्पति,          | दीर्घतपा   | जय   |    |
| चतुर्भाव,           | चतुरप्रिय     |              | जय | जय दुर्जय,      | दुःसह,             | दुर्लभ     | जय   |    |
| जयति                | चतुष्पद,      | चतुर्वाहु    | जय | जय दुर्वेय,     | दुर्ग,             | दुर्गति    | जय   |    |
| जयति                | चतुर्मुख,     | चिदानन्द     | जय | जय दुर्वासा,    | दुराधर्म           |            | जय   |    |
| जयति                | चिरन्तन,      | चित्रवेश     | जय | जय दुर्गतिनाशन, | दुरंत              |            | जय   |    |
| चन्द्रापीड,         | द्विषंसंशय    |              | जय | दुरावास,        | दुष्कृतिद्वा       |            | जय   |    |

|                      |                 |                |                   |                  |                        |    |
|----------------------|-----------------|----------------|-------------------|------------------|------------------------|----|
| जय                   | दुःखग्रविनाशक,  | द्रुत          | जय                | जय               | निर्वैद्ध, नित्यसुन्दर | जय |
| दूरथवा,              | दुरासद          | जय             | जय                | नित्यशान्तिमय,   | नित्यनृत्य             | जय |
| देवदेव,              | देवाधिप         | जय             | जय                | नित्यनियतकल्याण, | नीति                   | जय |
| देवासुर-गुह्यदेव     | जयति            | जय             | नीतिमान,          | जय               | नीलकण्ठ                | जय |
| देवासुर-पूजित        | ईश्वर           | जय             | जय नीलाम,         | नीललोहित         | जय                     |    |
| देवासुर-सर्वाश्रय    | जय              | जय             | नैककर्मकृत्,      | नैकात्मा         | जय                     |    |
| देवसिंह,             | देवात्मरूप      | जय             | न्यायगम्य,        | जय               | न्यायी जय              | जय |
| देवनाथ,              | जय देवप्रिय     | जय             | न्यायनियामक,      | न्यायप्रिय       | जय                     |    |
| जय दृढ़,             | दृढ़प्रतिक्षा,  | दृढ़मति        | जयति              | परात्पर,         | परब्रह्म               | जय |
| जय द्युतिधर,         | जय द्युमणि-तरणि | जय             | जय परमात्मा,      | परमेष्ठी         | जय                     |    |
| जयति द्रुहिण,        | द्रोहान्तक      | जय             | जयति परावर,       | परं ज्योति       | जय                     |    |
| जयति धर्म,           | जय धर्मधाम      | जय             | जय पशुपति.        | जय पशागर्भ       | जय                     |    |
| जय धर्माङ्ग,         | धर्मसाधन        | जय             | जय परश्वधी,       | पदु, परिवृढ      | जय                     |    |
| धर्मधेनु,            | जय धर्मचारि     | जय             | जयति परंतप,       | पंचलन            | जय                     |    |
| जय धन्वी,            | धव,             | धनदस्यामि      | जय                | परावरण,          | परार्थवृत्ति           | जय |
| जयति धनागम,          | धनाधीश          | जय             | परकार्यक-सुपण्डित | जय               | जय                     |    |
| जयति धनुर्धर,        | धनुर्वद         | जय             | जयति प्रणव,       | प्रणवात्मक       | जय                     |    |
| जय धात्रीश,          | धतुवामा         | जय             | जय प्रधान,        | प्रभु, प्रमाणङ्  | जय                     |    |
| जय धीमान्,           | धुर्य,          | धूर्जटि        | जयति प्रभाकर,     | प्रमथनाथ         | जय                     |    |
| ध्यानाधार,           | ध्येय,          | ध्याता         | जय प्रच्छन्न,     | प्रशान्तवृक्षि   | जय                     |    |
| धृतवत्,              | धृतियुत,        | धृत-जनकर       | जयति प्रतत,       | प्रकाशक          | जय                     |    |
| जय प्रिय             | नर-नारायण       | जय             | जय प्रतापमय,      | प्रभव जयति       | जय                     |    |
| जय नरसिंह-ल्पाधर     | जय              | जय प्रलभ्यगुज, | प्रलयंकर          | जय               |                        |    |
| जय नरसिंहतपन,        | नन्दी           | जय             | जयति प्रगल्भ,     | प्रसीर्ण, प्रण   | जय                     |    |
| नन्दीश्वर,           | नग्नवत्         | जय             | जय पावन,          | पावावर-नुमि      | जय                     |    |
| नन्दिस्कन्धधर,       | नभोयोनि         | जय             | पारिजात,          | जय पाश्चज्यन्य   | जय                     |    |
| जय नश्वरमालि,        | नव-रस           | जय             | पिंगल-जटी,        | पिनाकी जय        | जय                     |    |
| नयनाध्यक्ष,          | नदीधर           | जय             | पिंगलम-शुचि-तपन   | जयति             | जय                     |    |
| नागेश्वर,            | नागेश,          | नाक            | पुण्यक्षेत्र,     | पुरेश            | जय                     |    |
| जय नागेन्द्र-एस-भूषण | जय              | पुद्दह,        | पुरस्त्य, पुरेश्य | जय               | जय                     |    |
| जय निर्वार,          | निशाकर          | जय             | पुष्पक,           | पुष्पविद्योग्य   | जय                     |    |
| निरावरण,             | निधि,           | नियताश्रय      | पूरक्षनामित्,     | पूर्ण,           | जय                     |    |
| नित्य,               | निरञ्जन,        | नियतात्मा      | पूर्ण,            | पूर्ण            | जय                     |    |
| निष्पेयसकर,          | निराकार         | जय             | प्रमधापिण,        | प्रतुद,          | प्रगाम्य               |    |
| जय निष्पक्ष,         | निष्कल्प        | जय             | प्रभावान्,        | प्रतुद           | प्रगाम्य               |    |
| जय निष्पत्त्य,       | निरात्मु        | जय             | प्रेताधीश,        | प्रेतामरि        | जय                     |    |
| जय निर्यात,          | नित्यसुन्दर     | जय             | उव नीलाम-पुरात-   | पर्वतप           | जय                     |    |
| जयते निरहुणि,        | निरपत्त         | जय             | उव नामाम-रुद्रम्  | पर्वत            | जय                     |    |
|                      |                 |                | सामद्वान,         | उमापिर           | जय                     | जय |

जयति कामशास्त्रन्, कामी जय  
 काम, कामरिपु, कामपाल जय  
 जयति काल, जय कलपवृक्ष जय  
 कालाधार, कालभूषण जय  
 कालकाल, जय कालरहित जय  
 जय कान्ताग्रिय, कान्त जयति जय  
 जय किंवरसेवित, किरात जय  
 किकरवश्य, कितव-अरि जय जय  
 कीर्तिविभूषण, जय किरीढि जय  
 अय कृतज्ञ, जय कृतानन्द जय  
 जयति कृष्ण, जय कृष्ण-वरद जय  
 जय कुमार, कुम्हलागम जय जय  
 जय केवल, केदारनाथ जय  
 जय कैवल्यप्रदाता जय जय  
 जय कैलासशिखरवासी जय  
 जय कंकणि-कृत-चासुकि जय जय  
 जय खग, खगवाहनग्रिय जय जय  
 जय खट्टवांगी, खण्डपरश्चु जय  
 जय खलकण्ठक, खलदलारि जय  
 जय गणेश, गणकाय, गहन जय  
 गगनकुन्द-प्रभ, गणनायक जय  
 जय गायत्रीवह्नि जय जय  
 जय गिरीश, गिरिजापति जय जय  
 जय गिरि-जामाता, गिरिरित जय  
 जय गुह, गुरु, गुणसत्तम जय जय  
 जय गुणराशि, गुणाकर जय जय  
 जय गुणप्राहक, ग्रीष्म जयति जय  
 जय गोपति, गोसा, गोप्रिय जय  
 जय गोविन्द, गोदामा जय जय  
 गौरी-भर्ता, गंगाधर जय  
 जय घुष्मेश्वर, घनानन्द जय  
 जयति चतुर, जय चन्द्रचूड जय  
 चतुर्वेद, जय चन्द्रमौलि जय  
 चतुर्भाव, चतुरप्रिय जय जय  
 जयति चतुष्पद, चतुर्वाहु जय  
 जयति चतुर्मुख, चिदानन्द जय  
 जयति चिरन्तन, चिव्रवेश जय  
 चन्द्रापीड, छिन्नसंशय जय

जय जगदीश, जगहुरु जय जय  
 जय जन्मारि, जनार्दन जय जय  
 जय जगदादिज, जनक, जनन जय  
 जयति जप्य, जमदग्नि जयति जय  
 जटिल, जलेश्वर, जगद्धन्दु जय  
 जनास्यस्त्र, जन-मन-रंजन जय  
 जयति जरादिशमन, जगपति जय  
 जगजीवन, जय जातुकर्ष जय  
 जय जितकाम, जितेन्द्रिय जय जय  
 जीवितान्तकर, जीवलेश जय  
 जयति ज्योति, ज्योतिर्मय जय जय  
 जयति तत्त्व, तत्त्वज्ञ जयति जय  
 जय तापस, तमिन्नाश्च जय जय  
 जय तमरुप, तमोहर जय जय  
 जय तत्पुरुष, तार्क्य, तारक जय  
 जय तिग्मांशु, तीर्थधामा जय  
 तीर्थ, तीर्थमय, तीर्थदृश्य जय  
 तुम्बवीण, जय तुष्ट, तेज जय  
 तेजद्युतिधर, तेजराशि जय  
 जयति त्रिवर्ग-खर्ग-साधन जय  
 जय त्रैविद्य, त्रयीतनु जय जय  
 जयति त्रिलोचन, त्रिदशाधिप जय  
 जय त्रिलोकपति, त्र्यम्बक जय जय  
 जय त्रिशूलधर, त्र्यक्ष जयति जय  
 जय दुर्जय, दुस्सह, दम जय जय  
 जय दुर्धर्ष, दुरतिकम जय जय  
 जय दक्षारि, दक्षत्राता जय  
 जयति दक्ष-जामाता जय जय  
 जय दर्पद, दर्पहा जयति जय  
 दनुज-दमन, दमयिता जयति जय  
 दान्त, दयानिधि, दाता जय जय  
 जयति दिवाकर, दिव्यायुध जय  
 जयति दिवस्पति, दीर्घतपा जय  
 जय दुर्जय, दुःसह, दुर्लभ जय  
 जय दुर्शय, दुर्ग, दुर्गति जय  
 जय दुर्वासा, दुराधर्म जय  
 जय दुर्गतिनाशन, दुरंत जय  
 दुरावास, दुष्कृतिदा जय जय

|                      |                |              |    |                    |              |                |             |
|----------------------|----------------|--------------|----|--------------------|--------------|----------------|-------------|
| जय                   | दुःखप्रविनाशक, | द्रुत        | जय | जय                 | निर्व्यङ्ग,  | नित्यसुन्दर    | जय          |
| दूरथ्रवा,            | दुरासद         | जय           | जय | नित्यशान्तिमय,     | नित्यनृत्य   | जय             |             |
| देवदेव,              | देवाधिप        | जय           | जय | नित्यनियतकल्याण,   | नीति         | जय             |             |
| देवासुर-गुरुदेव      |                | जयति         | जय | नीतिमान,           | जय           | नीलकण्ठ        | जय          |
| देवासुर-पूजित        |                | ईश्वर        | जय | जय                 | नीलाभ,       | नीललोहित       | जय          |
| देवासुर-सर्वाश्रय    |                | जय           | जय | नैककर्मकृत,        | नैकात्मा     | जय             |             |
| देवसिंह,             | देवात्मरूप     |              | जय | न्यायगम्य,         | जय           | न्यायी जय      | जय          |
| देवनाथ,              | जय             | देवप्रिय     | जय | न्यायनियामक,       | न्यायप्रिय   | जय             |             |
| जय दृढ़,             | दृढ़प्रतिज्ञ,  | दृढ़मति      | जय | जयति               | परात्पर,     | परब्रह्म       | जय          |
| जय द्युतिधर,         | जय             | द्युमणि-तरणि | जय | जय                 | परमात्मा,    | परमेष्ठी       | जय          |
| जयति द्रुहिण,        | द्रोहान्तक     | जय           | जय | जयति               | परावर,       | परं ज्योति     | जय          |
| जयति धर्म,           | जय             | धर्मधाम      | जय | जय                 | पशुपति,      | जय             | पश्चगम्ब    |
| जय धर्माङ्ग,         | धर्मसाधन       |              | जय | जय                 | परश्वधी,     | पटु,           | परिवृद्ध    |
| धर्मधेनु,            | जय             | धर्मचारि     | जय | जयति               | परंतप,       | पंचानन         | जय          |
| जय धन्वी,            | धव,            | धनदखामि      | जय | परावरज्ञ,          | परार्थवृत्ति |                | जय          |
| जयति धनागम,          | धनाधीश         |              | जय | परकार्यैक-सुपण्डित |              |                | जय          |
| जयति धनुर्धर,        | धनुर्वेद       |              | जय | जयति               | प्रणव,       | प्रणवात्मक     | जय          |
| जय धात्रीश,          | धातृधामा       |              | जय | जय                 | प्रधान,      | प्रभु,         | प्रमाणक     |
| जय धीमान्,           | धूर्य,         | धूर्जटि      | जय | जयति               | प्रभाकर,     | प्रमथनाथ       | जय          |
| ध्यानाधार,           | ध्येय,         | ध्याता       | जय | जय                 | प्रचछन्न,    | प्रशान्तवृद्धि | जय          |
| धृतव्रत,             | धृतियुत,       | धृत-जनकर     | जय | जयति               | प्रतस,       | प्रकाशक        | जय          |
| जय प्रिय             | नर-नारायण      |              | जय | जय                 | जय           | प्रतापमय,      | प्रभव जयति  |
| जय नरसिंह-स्त्रपधर   |                | जय           | जय | जय                 | जय           | प्रलभ्यभुज,    | प्रलयंकर    |
| जय नरसिंहतपन,        | नन्दी          |              | जय | जयति               | प्रगल्भ,     | प्रकीर्ण,      | जय          |
| नन्दीश्वर,           | नश्व्रत        |              | जय | जय                 | जय           | पावन,          | पारावर-सुनि |
| नन्दिस्कन्धधर,       | नभोयोनि        |              | जय | पारिजात,           | जय           | पाञ्चजन्य      | जय          |
| जय नक्षत्रमालि,      | नव-रस          |              | जय | पिंगल-जटी,         | पिनाकी       | जय             | जय          |
| नयनाध्यक्ष,          | नदीधर          |              | जय | पिंगलाभ-गुच्छि-नयन |              | जयति           | जय          |
| नागेश्वर,            | नागेश,         | नाक          | जय | पुण्यस्फोक,        | पुरंदर       | जय             | जय          |
| जय नागेन्द्रहार-भूषण |                | जय           | जय | पुलह,              | पुलस्त्य,    | पुरंजय         | जय          |
| जय निर्वार,          | निशाकर         | जय           | जय | पुष्कर,            | पुष्पविलोचन  | जय             | जय          |
| निरावरण,             | निधि,          | नियताश्रय    | जय | पूपदन्तभित्,       | पूर्ण,       | पूत            | जय          |
| नित्य,               | निरञ्जन,       | नियतात्मा    | जय | प्रमथाधिप,         | प्रबुद्ध,    | प्रणप्रिय      | जय          |
| निःश्वेयसकर,         | निराकार        |              | जय | प्रभावान्,         | प्रभु विष्णु | जयति           | जय          |
| जय निष्कण्ठक,        | निष्कलङ्घ      |              | जय | प्रेताधीश,         | प्रेतवारी    |                | जय          |
| जय निष्पद्वव,        | निरातङ्क       |              | जय | जय                 | पौराण-पुरुष, | फणिधर          | जय          |
| जय निष्पत्ति,        | नित्यसुन्मय    |              | जय | जय                 | बहुधुत,      | बहुधुप,        | धर्मी       |
| जयति निरहृण,         | निष्प्रपञ्च    |              | जय | धारहृत्,           | आदाधिप       | लघु            | जय          |

|                                |      |                            |               |
|--------------------------------|------|----------------------------|---------------|
| जयति व्रह्म, व्रह्मा, व्राह्मण | जय   | महोत्साह                   | जय, महिभर्ता  |
| जय व्राह्मणप्रिय, व्रह्मगर्भ   | जय   | मधुरप्रियदर्शन,            | महर्षि जय     |
| व्रह्मवर्चसी, व्रह्मज्योति     | जय   | जयति महारेता,              | मंत्रप्रिय जय |
| व्रह्मवेदनिधि, व्रह्मचारि      | जय   | जयति महाकवि,               | महाप्राण जय   |
| वीजविधाता विन्दुरूप            | जय   | जय मधवान्, महाघन           | जय जय         |
| वीजाधार, वीजवाहन               | जय   | जयति मानधन, महापुरुष       | जय            |
| बृहदगर्भ, बृहदश्व              | जयति | जय मध्यस्थ, महास्वन        | जय जय         |
| बृहदीश्वर-मंगलमय               | जय   | महेष्वास, जय मृडु, मृड जय  | जय जय         |
| जय भव, भव्य, भस्मप्रिय         | जय   | जयति मल्लिकार्जुन, मृगपति  | जय            |
| जय भगवान्, भस्मशारी            | जय   | मारुतिरूप, मोहविरहित       | जय            |
| भस्मोद्भुलित-विग्रह            | जय   | मृग-बाणार्पण, मेष, मेघ     | जय            |
| भस्म-शुद्धिकर, भक्तिकाय        | जय   | जयति यज्ञ, जय यज्ञश्चेष्ट  | जय            |
| भक्तिवश्य, जय भक्तभक्त         | जय   | जयति यज्ञभोक्ता, जय यश     | जय जय         |
| भालनेत्र जय, भालुदेव           | जय   | जयति यशोधन, युगपति         | जय जय         |
| भावात्मात्मनि-संस्थित          | जय   | जयति युगावह, योगपार        | जय            |
| भीमपराक्रम, भीम जयति           | जय   | जय योगेश्वर, योगीश्वर      | जय            |
| जय भुवनेश, भुवनजीवन            | जय   | योगाध्यक्ष, योगविद्        | जय जय         |
| भूति, भूतिनाशन, भूशय           | जय   | जय रवि, रविलोचन, रसप्रिय   | जय            |
| जयति भूतवाहन, भूपति            | जय   | जयति रसश, रसद, रसनिधि      | जय            |
| जयति भूतकृत, भूतभव्य           | जय   | रजनीजनक, रमापति            | जय जय         |
| जयति भूतभावन, भूषण             | जय   | रामचन्द्र, राधव, जय रुचि   | जय            |
| जयति भोग्य, भोक्ता, भोजन       | जय   | रुचिरांगद, जय जयति रुद्र   | जय            |
| जयति महेश्वर, महादेव           | जय   | रिपुमर्दन, रोचिष्णु        | जयति जय       |
| जयति महाद्युति, महातपा         | जय   | जयति ललित, जय ललटाक्ष      | जय            |
| जयति महानिधि, महामाय           | जय   | लिङ्गाध्यक्ष, लिङ्गप्रतिमा | जय            |
| महागर्भ जय, महागर्भ            | जय   | जयति लोककर, लोकवन्धु       | जय            |
| महानाद जय, महातेज              | जय   | लोकनाथ जय, लोकपाल          | जय            |
| महावीर्य जय, महाशक्ति          | जय   | लोकगृह जय, लोकवीर          | जय            |
| महावुद्धि जय, महाकल्प          | जय   | लोकोत्तर-सुख-आलय           | जय            |
| महाकाल जय, महाकोश              | जय   | लोकानामग्रणी               | जयति जय       |
| महायशा जय, महामना              | जय   | जयति लोक-सारंग             | जयति जय       |
| महाभूत जय, महापूत              | जय   | लोक-शाल्य-धूक्             | लोकोत्तम जय   |
| जयति महोषधि मंगलमय             | जय   | जयति लोकवर्णोत्तम          | जय जय         |
| जय महदश्वर्य, महत् जयति        | जय   | लोक-लवणताकर्ता             | जय जय         |
| महामहिम, मत्सरविहीन            | जय   | लोक-रचयिता, लोकनारि        | जय जय         |
| जयति शहाहद, महावली             | जय   | लोहितात्मा, लोकोत्तर       | जय जय         |
| जयति मन्त्र, मन्त्राधिपमय      | जय   | जय वरेण्य, जय वरवाहन       | जय जय         |
| जयति मन्त्र-प्रत्यय, मन्त्री   | जय   | वरद, दक्षिष्ठ, दक्षुयद     | जय जय         |

|                              |                                   |
|------------------------------|-----------------------------------|
| वसु, वसुमना, वरांग जयति जय   | बीरशिरोमणि, बीराग्रणि जय          |
| जय वसुधामा, वसुश्रवा जय      | बीतराम, जय बीतभीति जय             |
| जय वसंत-भाधव, वत्सल जय       | वेदरूप, जय वेदवेद्य जय            |
| जय वर्णा, वर्णाश्रमगुरु जय   | जय वेदाङ्ग, वेदविद् मुनि जय       |
| जय वसुरेता, वज्रहस्त जय      | जयति वेदकर, वेचा जय जय            |
| जय वरशील, जयति वर-गुण जय     | वेदशास्त्र-तत्त्वज्ञ जयति जय      |
| जय वागीश, वायुवाहन जय        | जय वेदान्त-सार-निधि जय जय         |
| वालखिल्य जय, वाचस्पति जय     | वैद्यनाथ, वैद्य वैरिज्ज्यधुर्य जय |
| वामदेव, वामाङ्ग-उमा जय       | जयति वैद्य, वैरिज्ज्य जयति जय     |
| वासुदेव, वासवसेवित जय        | जयति शर्व, जय शक जयति जय          |
| जय वाराहशृङ्गधृक् जय         | जयति इमशाननिलय, शरण्य जय          |
| जय वर्णीपति, वाणीवर जय       | जय इमशानप्रिय, शमनशोक जय          |
| जय वृषांक, वृषवाहन जय        | जय शत्रुघ्न, शत्रुतापन जय         |
| जयति वृपाक्षि, वृषवर्धन जय   | शबल, शक, शम, शरभ जयति जय          |
| जयति विश्व, विश्वम्भर जय     | जय शनि, शरण, शत्रुजित् जय जय      |
| विश्वमूर्ति जय, विश्वदीसि जय | जयति शबासन, शक्तिधाम जय           |
| जयति विश्वसृक्, विश्ववास जय  | शब्दघस्त जय, जयति शम्भु जय        |
| विश्वनाथ जय, विज्वेश्वर जय   | शबर-चन्द्रघु जय, शमनदमन जय        |
| जयति विश्वकर्ता-हर्ता जय     | शंकर, शंकर, शर्वरीश जय            |
| विश्वरूप जय, विश्वधर्म जय    | शाश्वत, शान्त, शाख, शास्ता जय     |
| विश्वोत्पत्ति, विश्वगालव जय  | शान्तमद्र, शाकल्य जयति जय         |
| जयति विश्ववाहन, विशोक जय     | जय शिव, जय शियिचिष्ट जयति जय      |
| जयति विश्वगोत्तमा, विराट् जय | शिशु, शिखि, शिखि-सारथी जयति जय    |
| जयति विरचि, विमोचन जय        | जय शिवशाननिरत, शिखण्ड जय          |
| विश्वदेह, विद्येश जयति जय    | जय शिष्टेष्ट, शिवालय जय जय        |
| जय विशाख, विजितात्मा जय      | श्रीकण्ठ, श्रीमान् जयति जय        |
| जयति विश्वसह, विद्वत्तम जय   | श्रीशैल, श्रीवास जयति जय          |
| जयति विनीतात्मा, विराम जय    | शुचि, शुचिसत्तम, शुचिस्मित जय जय  |
| जयति विरोचन, विरूपाक्ष जय    | जय शुभ, शुभद, शुभांग जयति जय      |
| जय विरतज्वर, विमलोदय जय      | शुद्धमूर्ति, शुद्धात्मा जय जय     |
| जय विषमाक्ष, विशाल-अक्ष जय   | शुभ्र, शुभकर, शुभ-स्वभाव जय       |
| जय विल्प, विक्रान्त, विमल जय | जय शुभकर्ता, शुभनामा जय           |
| विद्याराशि, वियोगात्मा जय    | शूली, शूर, शूलनाशन जय             |
| जयति विद्येयात्मा, विशाल जय  | शोभाधाम, शोकनाशन जय               |
| जयति विधाता, विष्णुः विरत जय | शंकाविरहित, शंघवर्ण जय            |
| जयति विशारद, विशृंखल जय      | श्रीशूरप, श्रीवृद्धिकरण जय        |
| जय वीरेश्वर, वीरभद्र जय      | श्रुतिप्रकाश श्रुतिमान जयति जय    |
| वीर्यवान्, वीरासन, विधि जय   | सम, समान जय, समाप्नाय जय          |

सदाचार जय, समावर्त जय  
 सगण, स्थपित, सनातन जय जय  
 सद्योजात, सदाशिव जय जय  
 सत्य, सत्यव्रत, सत्यसंध जय  
 सत्यपरायण, सत्यकीर्ति जय  
 सत्यपराक्रम, सत्यमूर्ति जय  
 सफल, सकल-निष्कल, समाधि जय  
 सती-देहधर, सत्तम जय जय  
 सदय, सदाशय, समतामय जय  
 सकलाधार, सकल-आश्रय जय  
 सकलागम-पारग-स्वभाव जय  
 सच्चिदित्रि, सच्चिदानन्द जय  
 सत्पुरुषाधिप, सदानन्द जय  
 सर्व, सर्वस्त्रष्टा-पालक जय  
 सर्वेश्वर, सर्वादि जयति जय  
 जयति सर्वसंहारमूर्ति जय  
 सर्वाचार्य-मनोगति जय  
 सर्वावास, सर्वशासन जय  
 सर्वरूप-चर-अचर जयति जय  
 सर्वलोक, सर्वेश जयति जय  
 सर्वलोक-ईश्वर महान् जय  
 सर्वभूत-ईश्वर महान् जय  
 सर्व-शास्त्र-रक्षक महान् जय  
 सर्वशास्त्र-भंजन महान् जय  
 सर्वधर्मरक्षक महान् जय  
 सर्वधर्मभक्षक महान् जय  
 सर्वसाध्य-साधन महान् जय  
 सर्वदेवसत्तम महान् जय  
 सर्वशास्त्र-सत्त्वार जयति जय  
 सर्ववन्धमोचन-स्वभाव जय  
 सर्वलोकधृक्, सर्वशुद्धि जय  
 जयति सर्वदृक्, सर्वयोनि जय  
 सर्वप्रजापति, सर्वसत्य जय  
 जय सर्वज्ञ, सर्वगोचर जय  
 जयति सर्वसाक्षी, सर्वग जय  
 सर्व दिव्य-आयुध-काता जय  
 सर्वपापहर-काता जय जय  
 जय सर्वतुं-विधायक जय जय

जयति सर्वसुर-नायक जय जय  
 सर्वशक्तिमत्, सर्ववीर्य जय  
 सर्वोच्चर, सर्वेसर्वा जय  
 सर्वाणी-स्वामी, ससज्ज जय  
 सद्गति, सत्कृति, सद्योगो जय  
 जय सज्जाति, सदागति जय जय  
 जय सम्राट्, स्वधर्मा जय जय  
 जयति स्कन्द, जय स्कन्दजनक जय  
 जयति स्तव्य, स्तवप्रिय, स्तोता जय  
 स्वक्ष, स्वधृत, सर्वन्धु जयति जय  
 जय स्वच्छन्द, स्ववश, स्वराट् जय  
 जयति स्वभाव-भद्र, स्वर्गत जय  
 स्वतःप्रमाण, स्वमहिमामय जय  
 स्ववश, स्वयंभू, स्वच्छ जयति जय  
 स्वर्ग, स्वर्गस्वर, स्वरमयस्वन जय  
 जयति स्थविष्ट, स्थविर ध्रुव जय जय  
 सहसपाद जय, सहसबाहु जय  
 सहसनेत्र जय, सहसकर्ण जय  
 सहसशीरा जय, सहसकण्ठ जय  
 सहसगिरा जय, सहसअर्चि जय  
 साधुसाध्य जय, साधुसार जय  
 सार-सुशोधन, साधन जय जय  
 जयति साध्य, सात्त्विकप्रिय जय जय  
 साम-गानप्रिय, सानुराग जय  
 साम्ब-सदाशिव जयति जयति जय  
 सिद्ध, सिद्धि जय, सिद्धिद जय जय  
 सिद्धिकरण जय, सिद्धखड़ जय  
 सिद्धवृन्द-चंदित-पूजित जय  
 स्थिर, स्थिरमति जय, स्थिर-समाधि जय  
 जय सुरेश, सुरपतिसेवित जय  
 जयति सुभग, सुवत, सुपर्ण जय  
 जयति सुतन्तु, सुनीति, सुलभ जय  
 जयति सुधी, सुशरण, सुकीर्ति जय  
 सुहृद्, सुधीर, सुचरित जयति जय  
 जय सुकुमार, सुलोचन जय जय  
 जयति सुखानिल, सुप्रतीक जय  
 जयति सुप्रीत, सुमुख, सुन्धर जय  
 जय सुधांशुशेषर, सुवीर जय

जय सुकीर्तिशोभन, सु-स्तुत्य जय  
सुमति, सुकर, सुरनायक जय जय  
सुनिष्पन्न जय, सुषमामय जय  
सुखी परम, जय सूक्ष्मतत्त्व जय  
सूर्य, सूर्य-उष्मा-प्रकाश जय  
सूत्ररूप जय, सूचकार जय  
सोम, सोमरत, सोमनाथ जय  
सोमप, सौम्य, सौम्यग्रिय जय जय  
संकर्षण, संकल्प-रहित जय  
संगरहित, संगीत-निपुण जय  
संग्रहरहित, संग्रही जय जय  
जय संचुत, संभाव्य जयति जय  
जय संसार-चक्रभित् जय जय  
जय संसरण-निवारण जय जय  
जय षट्-चक्र-विकासन जय जय  
जय षट्-शश्व-विनाशन जय जय

जय षट्-कर्म-विधायक जय जय  
जय षड्-दर्शन-नायक जय जय  
जय षड्-ऋतु, षड्-रसमय जय जय  
जयति षडाननजनक जयति जय  
जय हर, हरि, हिरण्यरेता जय  
हंस, हंसगति, हव्यवाह जय  
जयति हिरण्यवर्ण, हिमप्रिय जय  
जयति हिरण्यगर्भ, हितकर जय  
जयति हिरण्यकवच, हिरण्य जय  
हिसरहित, हितैषी जय जय  
हृषीकेश जय, हृष्ट, हृद्य जय  
जय हृत्पञ्चविराजित जय जय  
क्षमाशील जय, क्षाम, क्षण जय  
जय क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक जय  
ज्ञानगम्य जय, ज्ञानमूर्ति जय  
ज्ञानवान् जय, ज्ञानरूप जय

## । शिवलिङ्गपूजनमें खियोंका तथा शिवनिर्माल्यमें सबका अधिकार है या नहीं ?

( लेखक—श्रीवल्लभदासजी विज्ञानी ‘वजेश’ साहित्यरत्न )

इस प्रकारका एक विचार सर्वत्र फैला है कि खियोंको भगवान् शंकरका पूजन तथा स्पर्श नहीं करना चाहिये । अवश्य ही इस प्रकारके शाश्वतचन मिलते हैं, पर वे वैदिक मन्त्रोंसे पूजा करनेके सम्बन्धमें हैं । वैसे सभीको शिवपूजाका अधिकार है, इसमें भी शास्त्रप्रमाण हैं । भगवान्की भक्तिके सभी अधिकारी हैं । खियोंके शिव-पूजाके सम्बन्धमें कहा गया है—

प्रसवो जायते यस्यास्तया तु शिवपूजनम् ।  
कर्तव्यं मानसं नित्यं दशाहान्तं प्रथत्वतः ॥  
दशाहे समतीते तु कृत्वा स्नानं यथाविधि ।  
शिवलिङ्गार्चनं कार्यं द्विजस्त्रीभिर्द्विजैरिव ॥

‘जिस लीके शंकरजीके पूजनका नियम हो और उसके बालकका जन्म हो जाय तो उसे दस दिनोंतक सूतिक्षणमें मानसिक पूजन ही करना चाहिये ।’

‘दस दिन व्यतीत हो जानेपर विधिर्वक्तु कुल-मर्यादाके अनुसार स्नान करके द्विजातियोंकी खियोंको श्रीशंकरजी-के लिङ्गका पूजन करना चाहिये, जैसे द्विज पुरुष पूजन करते हैं, उसी प्रकार खियाँ भी पूजन करें ।’

काशीखण्डमें आया है—

पुरा हि मृण्मयं लिङ्गमर्च्य लक्ष्मीः प्रयत्नतः ।  
जाता सौभाग्यसम्पन्ना महादेवप्रसादतः ॥

‘श्रीलक्ष्मीजी पहले प्रयत्नपूर्वक श्रद्धासे पार्थिव लिङ्गका पूजा करके ही शंकरजीके प्रसादसे सर्वदाके लिये सौभाग्यवती होई थीं ।’

श्रीपार्वतीजीने तो कठिन तपस्या करके ही शम्भुको स्वामीके रूपमें प्राप्त किया था । यह प्रसिद्ध ही है ।

दक्षिण देशमें एक धुमा नामकी ली पी, वह प्रतिदिन शंकर-पूजन करती थी । उसपर भगवान्

शंकर प्रसन्न हुए और उसे वर माँगनेको कहा । उसने यही वर माँगा कि मेरे नामसे इसी स्थानपर आप निवास करें और भक्तोंका कल्याण करें । भगवान् शिवने यह स्वीकार किया और धुष्मेश्वरके नामसे वहाँ प्रतिष्ठित हुए । धुष्मेश्वर महादेवजी दक्षिण देशमें ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग हैं । इसके अतिरिक्त अनसूया, सुमति, सीमन्तिनी, महानन्दा तथा विधवा ब्राह्मणी आदि खियोंके द्वारा शिवपूजनकी अनेक कथाएँ शिवपुराणमें हैं । शिवपुराणमें सभीके लिये शिवलिङ्गपूजनका अधिकार बतलाया गया है ।

श्रीमृतजी कहते हैं—

**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः ।  
पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्त्वमन्त्रेण सादरम् ॥  
किं वहक्तेन मुनयः खीणामपि तथान्यतः ।  
अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः ॥**  
( शिव० विद्येश्वरसं० २१ । ३९-४० )

‘ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर—कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिङ्ग-की पूजा करे । मुनियो ! ब्राह्मणो ! अधिक कहनेसे क्या लाभ ? शिवलिङ्गका पूजन करनेमें खियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है ।’ ( इतना अवश्य है कि द्विजेतर वर्णको तथा खियोंको वैदिक मन्त्रोंसे शिवकी पूजा न करके तान्त्रिक मन्त्रोंसे करनी चाहिये । )

पश्चपुराणके वचन हैं—

**यो न पूजयते लिङ्गं ब्रह्मादीनां प्रकाशकम् ।  
शास्त्रवित्सर्ववैत्तापि चतुर्वेदः पशुस्तु सः ॥**

‘ब्रह्मादि देवताओंके प्रकाशक अथवा ब्रह्मज्ञान आदिको प्रकाशित करनेवाले शिवलिङ्गका जो पूजन नहीं करता, वह चारों वेदोंका तथा शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सर्ववैत्ता होनेपर भी पशुके समान है ।’

इसी प्रकार जड़ों चण्डेश्वरका अधिकार नहीं है,

वहाँ शिवनिर्मल्य\* भी परम आदरके साथ प्रहण करना चाहिये ।

शास्त्र कहते हैं—

**गङ्गोदकात्पवित्रं तु शिवपादोदकं हितम् ।  
पीतं वा मस्तकस्थं वा बृणां पापहरं परम् ॥**

‘गङ्गाजलसे भी शिवजीका चरणोदक हितकर तथा पवित्र है । पान करनेसे तथा मस्तकपर एवं शरीरमें धारण करनेसे वह मनुष्योंके सम्पूर्ण पाप नाश कर देता है ।’

**यदक्षीन्दुलोकै पचति विविधं त्वोषधिगणं  
तथैवान्नं वह्निरविरपि पुनातीह सकलम् ।  
विधिर्यद्रेतो यो जनयति जगत्स्थावरचरं  
सुधर्णं यद्रेतः सुरनरगणा विभ्रति तनौ ॥**

‘जिन विराटस्वरूप शंकरका नेत्ररूप चन्द्रमा द्युलोकरूप उनके मस्तकमें विराजमान होकर समस्त अन्नादि औषधियोंको अमृत वरसाकर पुष्ट करता है, इसी प्रकार जिनका दूसरा नेत्र वैश्वानर-अग्नि शरीरोंमें प्रत्येक प्राणीके खाये हुए अन्कोंपासे पचाता है और शरीरोंको पुष्ट करता है तथा जिन विराटरूपी शंकरका सूर्यरूपी तीसरा नेत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंको पवित्र कर रहा है और जिन शंकरके वीर्यसे उत्पन्न ब्रह्मा जड़-चेतन सबको पैदा करता है, तथा प्रत्येक घरोंमें जिस अग्निसे अन्नादि पकाये जाते हैं और उन्हें मनुष्य खाते हैं तथा जिन शंकरके शुक्रसे उत्पन्न सोनेको आभूषणरूपमें देवता तथा मनुष्यगण शरीरोंमें धारण करते हैं और भस्म बनाकर औषधिरूपमें खाते हैं तथा जिसके वीर्यसे उत्पन्न हुए गन्धक, पारेको लोग औषधोपचारमें प्रहण करते हैं । एवं—

**श्रुतिर्यड्ढकाजा भनसि दधते वाचि च बुधा  
यदड्डयुत्यं चकं हरिरवति विभ्रत्विभुवनम् ।  
तथा धत्ते नेत्रं हरयजनसम्पूतमनिशं  
क इष्टे भोक्तुं तत्परमशिवसम्पर्करहितम् ॥**

\* ‘शिवनिर्मल्य’ के सम्बन्धमें एक विचारगूण शास्त्रनिर्णय-लक्ष लेख हसी अङ्कमें प्रकाशित हुआ है ।—सम्पादक

जिन शंकर भगवान्‌के उमरुसे उत्पन्न हुई श्रुतिरूपी पाणीय व्याकरण शास्त्रको समूर्ण विदान् लोग मनमें, हृदयमें तथा वाणीमें—मुखमें धारण करके शास्त्रोंके अनेकानेक अर्थ करते हैं तथा जिन आशुतोष भगवान्‌के चरणसे उत्पन्न हुए सुदर्शनचक्रको धारण किये हुए श्रीविष्णु भगवान् तीनों लोकोंकी रक्षा कर रहे हैं, एवं श्रीशंकरजीको पूजनके समय कमलके स्थानपर चढ़ाये हुए तथा उनके प्रसादस्त्रमें पुनः प्राप्त हुए नेत्रको विष्णु भगवान् सदा धारण किये हुए हैं और अपने पुण्डरीकाक्ष नामको चरितार्थ करते हैं, उन परमदेव शिवजीके समर्कसे रहित वस्तुका उपभोग करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् ऐसी कोई वस्तु नहीं जो शिवजीके समर्कसे रहित हो और शंकरजीका निर्माल्य न हो । सभी वस्तु शंकरजीको समर्पित हैं, अतः उनमें भेदबुद्धि करना सर्वथा अज्ञान ही है ।

महामन्नं प्रयत्नेन निवेद्याद्वनाति यः सदा ।

स भूपालः सर्ववैत्ता भवत्येव हि सर्वथा ॥

शंकरजी कहते हैं—‘जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक—श्रद्धापूर्वक मेरे लिये अन्नादि नैवेद्य निवेदन करके भोजन करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके शास्त्रोंका ज्ञाता और भूपाल अर्थात् राजा होता है ।’ ( ब्रह्माण्डपुराण )

गङ्गानङ्गरिपोर्जट्टाविगलिता चन्द्रश्च तन्मस्तके  
केशात्तस्य वियत् ततो विगलिता वृष्टिर्जग्जीवनी ।

रुद्रोऽग्निः श्रुत एव सर्वमशानं तज्जिह्वया वाचते  
निर्माल्यं तु विहाय वै श्वितितले जीवन्ति के मानवाः ॥

वे गङ्गाजी, जो संसारको पवित्र कर रही हैं, शंकर-जीकी जटासे निकली हैं । चन्द्रमा, जो समूर्ण ओषधियोंको—सब प्रकारके अन्नोंको अपृत्तसे पुष्ट करता है, शिवजीके मस्तकमें विद्यमान है । रुद्र ही अग्नि है, ऐसा वेदोंमें कहा गया है, सभी देवगण उसी अग्निरूपिणी जिह्वासे हविष्यरूप भोजन प्राप्त करनेकी आशा करते हैं । अतः पृथ्वीतलमें शंकरजीके निर्माल्यका त्याग करके कौन मनुष्य जीवित रह सकते हैं ? कोई भी नहीं रह सकता । अतः उनके प्रति भेदबुद्धि करना अज्ञान नहीं तो और क्या है ? ( स्कन्दपुराण )

गङ्गापुष्करनर्मदाद्यु यमुनागोदावरीगोमती-  
मायाद्वारवतीप्रयगगण्डरीवाराणसीसिंधुषु ।

वेणीसेतुसरस्वतीप्रभृतिषु ब्रह्माण्डभ्राण्डोदरे  
सीर्यज्ञानसहस्रकोटिफलंदं श्रीशसुपादोदकम् ॥

श्रीगङ्गजी, पुष्करराज, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, गोमती, वेणी, सरस्वती एवं सिन्धु आदि नदियोंमें तथा हरिद्वार, प्रयागराज, ब्रह्मोनारायण एवं सेतुबन्ध रामेश्वर आदि पुरियोंमें, इतना ही नहीं, समस्त ब्रह्माण्डके उदरमें जितने भी तीर्थ हैं, उन मूल तीर्थोंमें स्नान करनेकी अपेक्षा हजारों-करोड़गुना पुण्यफल देनेवाला श्रीशम्भु-चरणोंका धोवन है । ( स्कन्दपुराण )

## नटराज शंकर

अमित उमंगनि स्तो नाचै शिव श्रुंगनि ऐ,  
धमकै हुलास तै कैलास धमकत है ।  
भाल वाल इन्दुहृतै झरि कै सुधा के विन्दु,  
छहरि विभूति भरै ढंग थिरकत है ॥  
उम उम उमरु उमाक उमकत कर,  
उर पै बिसाल मुंड-भाल लरकत है ।  
गंग गंग छिरकत, बंग-आंग थिरकत,  
नील बलमें यिरीसके भुजंज सरकत है ॥

—पृथ्वीरिह चौदशन प्रेनी—

## महेश्वरस्त्रयम्बक एव नापरः

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

वेदोंका अधिकांश भगवान् शंकरकी स्तुतियोंसे ही पूर्ण है। 'रुद्राष्टाव्यायी', 'शतरुद्रिय' आदिका तो प्रत्येक मन्त्र ही शिवस्तुति है। 'वेदस्योपनिषत्सारम्'—ज्ञानसार-सर्वस्व उपनिषदें भी इनकी ही प्रशंसामें रत हैं। 'इवेताश्वतर', 'रुद्रद्वय', 'कठरुद्र', 'रुद्राक्षजावाल', 'भस्मजावाल', 'पाशुपतब्रह्म', 'योगतत्त्व', 'निरालम्ब' आदि उपनिषदें एक स्वरसे भगवान् शिवको विश्वाधिपति, महेश्वर बतलाती हैं। ईशोपनिषद् प्रभुके ही नामपर है। दूसरी—

१. ( क ) नमस्ते रुद्र मन्यदे ( यजु० १६ | १ ), न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ( ऋृक् ७ | ४ ), आ नो राजा मध्वरस्य रुद्रम् ( साम० ), नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ( अथर्व० ११ | २ | १५ ), रुद्राय नमः कालाय नमः कलविङ्गरणाय नमः ( तैत्तिरीयारण्यक २ ), शर्व एतान्यद्यौ अग्निरूपाणि ( शतपथ० १६ | ११ | ३ | १८ ), अग्निर्वै रुद्रः ( शतपथ० ३ | १ | ३ ), रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ( अथर्व० ७ | ९२ | १ ), अग्निर्वै स देवः ( शतपथ० १ | ७ | ३ | ८ ), उमापतये पशु-पतये नमोनमः ( तैत्तिरीया० १८ )।

( ख ) सायणने रुद्रका प्रायः सर्वत्र परमात्मा अर्थ किया है। यथा—रुद्रस्य—परमेश्वरस्य ( ऋृ० ६ | २८ | ७ ), रुद्रः—परमेश्वरः ( अथर्वभाष्य ११ | २ | ३ ), जगत्स्वाधा रुद्रः ( अथर्वभा० ७ | ९२ | १ )।

( ग ) अन्यत्र ( अथर्व० ११ | २ में ) महादेव, भव, शर्व, मृड, भूतपति, शिखपटी, भीम आदि शब्द यार-वार आये हैं। शतपथ ( ६ | १ | ३ | ११-२० ) में रुद्र, शर्व, उग्र, ईशान, भव, महादेव आदि नामोंकी सुन्दर व्याख्या है।

२. यो देवानां प्रभवश्चोद्दत्त्वश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ( इवेताश्व० ३ | ४; ४ | १२ ), मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ( इवेताश्व० ४ | ३० ), एको हि इशो न वित्तीयाय तस्युर्भुमौऽकामीश्वत

केनोपनिषद् में 'उमा हैमवती' ( ३ | १२ ) इन्हें ही ब्रह्म बतलाती हैं। इन यक्षकी कथाका लिङ्गपुराण ( ५३ | ५४—६२ ) तथा देवीमागवत ( १२ | ८ ) में भी सुस्पष्टरूपसे उपबृंहण एवं व्याख्यान हुआ है। 'माण्डूक्योपनिषद्' मौक्तिकोपनिषद् आदिसे सर्वाधिक प्रशंसित माण्डूक्योपनिषद् भी सर्वदृश्यविवर्जित, अवस्थात्रयातीत, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दधन ब्रह्मका नाम शिव ही बतलाती है—'शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' ( ७ ) 'अव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः' ( १२ ) विश्वमें प्रतिमाएँ भी शिवकी ही सर्वाधिक हैं। लिङ्ग ( चिह्नात्मक ) रूप होनेसे तो सारा विश्व ही शिवस्वरूप है। 'सर्वं लिङ्गमयी भूमिः सर्वं लिङ्गमयं जगत् ।' ( काशीखण्ड )

### पुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व शिव

अष्टादश महापुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व भी भगवान् चन्द्रशेषद्वर ही हैं। इसे शूलपाणि, वाचस्पति मिश्र, अप्यन्त्र दीक्षितेन्द्र आदिने अपने-अपने ग्रन्थोंमें विस्तारसे सिद्ध किया है। उनका कथन है कि 'हरिद्वार्म्यां रविद्वार्म्यां द्वाभ्यां चण्डीविनायकौ। द्वाभ्यां ब्रह्मा समाख्यातः शेषेण भगवान् भवः' इस प्रसिद्ध स्कान्दवचनानुसार दस पुराण तो एकान्ततः शिवपरक हैं, जब कि मणेशजीका एक, दुर्गाका एक, विष्णुके दो, ब्रह्माके दो और सूर्यके भी दो ही प्रतिपादक पुराण हैं—'हरिद्वार्म्यां—वैष्णव-वराहाभ्यां, रविद्वार्म्यां—वामनभविष्याभ्यां, द्वाभ्यां चण्डी-

ईशनीभिः ( इवेताश्व० ३ | २ ), उमासहायं परमेश्वरं विभुम् ( कैवल्योपनिषद् ७ ), यो रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः ( अथर्वशिर उपनिषद् ३ ), ऊर्बशक्तिर्भवः यिवः ( बृहत्तावालोप० २ | ९ ), पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दशवाहुं त्रिलोचनम् ( योग-सत्त्वोपनि० १०९ ), मृद्युदेप्युगार्धकृतशोकम् ( भज्जावालोप० )।

विनायकौ—ब्रह्मवैवर्तेन विनायकः, देवीभागवतेन चण्डी, द्वाभ्यां ब्रह्मा—ब्रह्मब्रह्माण्डाभ्यामिति शूलपाणिवाचस्पति-मिश्रादयः । ( वाणीविलासका देवीभागवतोपोद्घात पृ० ३ ) । इनमें अकेले स्कन्दपुराण ही ( संहितात्मक तथा खण्डात्मक मिलकर ) एक लाख ६२ हजार श्लोकोंका होता है । शिवपुराण, वायुपुराण, लिङ्गपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण आदि भी शिवपरक ही हैं । अप्यथ दीक्षितने तो अपने 'महाभारततात्पर्यनिर्णय' एवं 'रामायणतात्पर्यनिर्णय' नामक प्रन्थोंमें 'वाल्मीकीय रामायण' एवं 'महाभारत' के भी प्रतिपाद्य भगवान् शिवको ही माना है । उनके तर्क वडे ही प्रौढ़ और युक्तियाँ सर्वथा अकाव्य हैं । बादके इन इतिहास-पुराणोंके आधारपर बने काव्य, साहित्य, नाटकादिमें भी शिव ही वन्द्य हैं । प्रायः सभी काव्य-नाटकोंके आरम्भमें शिवकी ही वन्दना है, यह शोधकर्ताओंके लिये ध्यान देनेकी वस्तु है । कालिदासने तो सर्वत्र शिव-वन्दनासे ही मङ्गलान्चरण किया ही है, भवभूति, बाण, हर्ष, शूद्रक, विशाखदत्त, जगन्नाथ पण्डितराज, शंकराचार्य, क्षेमेन्द्र, अप्यथ दीक्षित आदिने भी अपने-अपने प्रन्थोंके आद्यन्तमें उन्हें ही स्मरण किया है । भागवत-जैसे श्रेष्ठ काव्य तथा वैष्णव पुराणमें भी—

**ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला**  
यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।  
आश्वाकरी तस्य पिशाचचर्या ।  
अहो विभूत्स्त्रश्चरितं विडम्बनम् ॥  
यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो ।  
गृणन्त्यविद्यापटलं विभित्सवः ।  
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्खयं  
पिशाचचर्यामिचरद्वितिः सताम् ॥ ३ । १४ । २८, २६ ॥

**दद्दुः शिवमासीनं त्यक्तामर्पमिवान्तकम् ।**\*\*\*

१०. पूर्वोक्तरीत्या रामायणे प्रायः सर्वत्र व्यन्यमानं शिव-परम्परेव तस्य प्रधानप्रतिपाद्यम् ।

( रामायणतारत्व )

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्तयोः सरूपयोः ।  
विश्वं सुजसि पास्यत्सि क्रीडनूर्णपटो यथा ॥  
( ४ । ६ । ३३, ४३ )

—इन्हें ही ब्रह्मा आदिका भी सदा परब्रह्म परमात्मा वतलाया गया है । इससे सिद्ध है कि महेश्वर ही पुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व हैं । सुतिकुसुमाङ्गलिजैसे बृहत्सोत्रके रचयिता जगद्गर भट्ठ, अप्यथ दीक्षित तथा बाण, कालिदास आदि तो ईश, महेश, ईश्वर, महेश्वर, ईशानादि शब्दवाच्य शिवको ही परमेश्वर मानते हैं—

**हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो**  
**महेश्वरस्त्रयज्ञक एव नापरः ।**  
( खुवंश ३ । ४९ )

अष्टाभिरेव तनुभिर्मुखनं दधन-  
स्तेजस्त्रयेण महता विहतेश्वणश्चीः ।  
अन्येषु सत्त्वपि य 'ईश्वर'-शब्दवाच्यः ।  
( पार्वतीपरिणयम् १ । २१ )

ईशमेवाहमत्यर्थं न च मामीशतेऽपरे ।  
ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्त्यते ॥

उपमन्यु आदि भक्तोंके भी वडे रम्य वचन हैं—  
पशुपतिवचनाद् भवामि सद्यः  
कृमिरथवा तस्त्रव्यनेकशाखः ।  
अपशुपतिवरप्रसादजा मे  
विभुवनराज्यविभूतिरप्यनिश्च ॥  
यावच्छशाङ्कधवलामलवद्मौलि-  
र्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् महेशः ।  
तावज्जरामरणजन्मशताभिवातै-  
दुःखानिदेहयिहतानि समुद्दहामि ॥  
( महा० अनु० १४ । ८०, ८१ )

'पुरुषविशेष ईश्वरः' ( योग० १ । २४ ) आदि दर्शन-वचनोंके द्वारा योगियेय भी वे ही कहे गये हैं । विनु छल विस्वनाथ पद नेहू । रामभगत कर लच्छन पूर्व ॥ जेहि पर कृपा न करहि पुरारी । सो न पाव सुनि भगति हमारी ॥ संकर विनुस भगति चह मीरी । सो नारकी झुड मति थोरी ॥

—आदिसे अन्य इष्टदेवताओंकी पूर्ण प्रसन्नतान्वाभके लिये भी आपकी आराधना परमावश्यक है ।

### शिवपुराण और शिव

अन्यत्र सर्वत्र शिवभावात्म्य होनेपर भी 'शिवपुराण' का शिवसे साक्षात् सम्बन्ध है। इसके प्रतिपाद्ध एकमात्र भगवान् शिव ही हैं। यह पुराण पहले बहुत ही सम्मानित रहा है। इसके श्लोक सरल होनेसे इसपर संस्कृत टीकाकी भी आवश्यकता नहीं रही। इसकी शैली तथा श्लोक बड़े ही स्म्य, मधुर एवं भावोत्पादक हैं। इसकी महिमा पुराणोंमें निरूपित है। गणनाकी दृष्टिसे इसे पुराणोंमें चतुर्थ स्थान प्राप्त है। रेवाभावात्म्य, देवीभागवत, ब्रह्मवैर्त, मत्स्य और मार्कण्डेयादि पुराणोंमें इसे २४ सहस्र श्लोकोंवाला चौथा पुराण बतलाया गया है। पर इसमें संदेह नहीं कि इसके संस्करणोंमें कुछ भिन्नता आ गयी है। शिवपुराणके आदिमें इसमें १२ संहिताएँ बतलायी गयी हैं। फिर वहीं ७ संहिताओंके संक्षिप्त संस्करणकी भी बात है। किसी प्रतिमें ज्ञानसंहिता पहले है, किसीमें विद्येश्वरसंहिता। किसीमें ज्ञानसंहिता नहीं है, रुद्रसंहिताका सृष्टिखण्ड ही ज्ञान-संहिता है। किसीमें विद्येश्वरका नाम विद्येश्वरसंहिता या विद्येशसंहिता भी है। किसी प्रतिमें सनकुमार तथा धर्मसंहिताएँ भी हैं। एक शिवपुराणका उत्तरखण्ड भी देखा जाता है। इसी प्रकार रुद्रसंहिताका नाम कहीं-कहीं पार्वतीखण्ड देखा जाता है। एक शिवधर्मोत्तर नामके पुराणकी भी बात आती है। इसकी गणना उप-पुराणोंमें होती रही। पर अब इसका दर्शन नहीं होता। अभव है, इस 'उत्तरखण्ड'में उसका अंश आया हो। कुछ ऐसे वायुपुराणको ही शिवपुराण मानते हैं। पर वायुपुराण वैधा भिन्न है। हाँ, ब्रह्माण्ड तथा वायुपुराण लिंगामाहात्म्य-अतिरिक्त दो-एक अव्यायोंके हेर-फेरसे तथा सर्वथा हैं, यह कोई भी अव्येता समझ सकता है। पर उनका पुराणसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

### शिवपुराणका प्रभाव और समयनिरूपण

कालिदासका कुमारसम्बव शिवपुराण ( रुद्रसंहिता १४-१९ ) पर ही आधृत है। इसे निर्णयसागरोंसे अपने कुमारसम्बवके अन्तमें परिशिष्ट देकर तुलनात्मक श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध किया है। गोस्वामी तुलसीदासजीके पार्वतीमङ्गलपर इन दोनों प्रन्थोंकी ही छाया है। उनका मानस-का नारद-मोह रुद्रसंहिता ( ३० १ से ५ ) का अनुवाद है। प्रतीत होता है। मानसका शिवविवाह भी इसीके २६ से ५५ तकके अव्यायोंपर आधृत है। इससे सिद्ध है कि कभी शिवपुराण भी श्रीमद्भागवत-जैसा धर-धर प्रचलित था।

#### तुलसीदासके—

यह इतिहास सकल जग जाना। ताते मैं संछेप बसाना ॥

दक्षयज्ञ-ध्यंस, शिवविवाह, कुमारजन्मके—

आगम निगमप्रसिद्धपुराना। घनसुख जन्म सकल जग जाना ॥

जगु जान घनसुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा ।

तेहि हेतु मैं दृष्टकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा ॥

—आदि चौपाइयोंका भाव शिवपुराणके प्रचारमें ही है। कुछ पाश्चात्योंका पुराणोंको नवीन सिद्ध करनेकी दुष्किळित्य व्याख्यासी ही है। पर हेमादि, दानसागर ( बछालसेन ) आदिके निबन्ध-प्रन्थोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख होने, मत्स्य-मार्कण्डेयादि पुराणोंमें इसकी महिमा एवं वर्णन होने तथा कालिदासपर इसका अत्यधिक प्रभाव होनेसे इसका समय बहुत ही प्राचीन है, यह सूर्यके आलोककी भाँति सुस्पष्ट है। पर इधर लोगोंकी कुछ उदासीनता हो रही है। अब तो शिवपुराणका कोई उत्तम संस्करण नहीं मिलता। मूल पुस्तकाकार रूपमें यह कहींसे भी प्राप्य नहीं है। सटीक पत्राकार एक बैंकटेश्वरोंसे प्राप्य है, पर उसका मूल अधिक पड़ता है। अतः हम सभी समर्थ प्रकाशकोंसे इसके मूलपाठसंहित शुद्ध, सस्ते समूर्ण ग्रन्थ-प्रकाशनकी भी एक बार प्रार्थना करना आवश्यक कर्तव्य समझते हैं। यों भगवान् शिवकी मङ्गलमयी इच्छा ।

# पवित्रतम शिवपुराणको कैसे पढ़ना, सुनना और रखना चाहिये

[ शिवभक्तोंसे करबद्ध प्रार्थना ]

( लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी )

यह पढ़कर कि 'कल्याण' का विशेषाङ्क अबकी बार 'शिवपुराणाङ्क' प्रकाशित हो रहा है, अपर हर्ष और प्रसन्नता हुई। शिवपुराण सनातनधर्मी शिवभक्तोंका प्राण है और यह डंकेकी चोट सप्रभाष कहा जा सकता है कि शिवपुराणके द्वारा जितना जीवोंका कल्याण हुआ है और विदेशोंमें भी इसके द्वारा जितना शिवभक्तिका प्रचार और हिंदूसम्यता-संस्कृतिका प्रसार तथा रक्षण हुआ, वह बड़े ही महत्वका है। यह शिवपुराणकी ही अद्भुत विशेषता और महिमा है कि भारतके कोने-कोनेमें, गली-गलीमें, मोहल्ले-मोहल्लेमें आज भी लाखों शिवमन्दिर, शिवलिङ्ग दिखलायी पड़ते हैं और सारा भारत शिवलिङ्गपर जल छोड़ता तथा 'हर हर महादेव' के नारे लगाता मिलता है। भारतके साथ-साथ विदेशोंमें भी कहीं भी चले जाइये, आपको वहाँ आज भी किसी-न-किसी रूपमें शंकरकी पूजा-प्रतिष्ठा मिलेगी। आज भी खुदाईमें जगह-जगह शिवमन्दिर तथा शिवलिङ्ग मिल रहे हैं। कहीं-कहीं मन्दिरोंकी दीवारोंपर शिवपुराणके शोक खुदे मिले हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि एक समय समस्त संसारमें शिवभक्तिका विस्तार था। यह माना जाता है कि मकामों भी मकोश्वर महादेवके मन्दिरमें शिवलिङ्ग विराजमान है। उस मन्दिरके तोड़े-ढाहाये जानेपर भी वहाँ एक शिवलिङ्ग रह गया जो आज 'अस्वद' नामसे प्रसिद्ध है तथा वही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है। प्रतिवर्ष जगह-जगहसे मुसलमान आते हैं और वे अस्वदको पाणहारी मानकर वही श्रद्धा-भक्तिसे उसका बोसा लेते ( चरणचुम्बन करते ) हैं तथा ऐसा करनेपर अपने सारे गुनाहोंका कट जाना मानते हैं।

शिवपुराणकी वड़ी विलक्षण महिमा है। यह अपने

जोड़का नस एक ही पुराण है और शिवभक्तोंके लिये तो साक्षात् प्राणस्वरूप है। इसके द्वारा जितनी रक्षा हुई है वह वर्णनातीत है। यह शिवपुराणकी ही अद्भुत विशेषता है कि आज भारतदेशमें और विदेशोंमें लाखों-करोड़ों ऐसे हिंदू हैं कि जो अपना सारा धर्मकर्म भुला बैठनेपर भी एक लोटा जल 'शिव-शिव हर-हर' कहकर शिवलिङ्गपर चढ़ा देते हैं और उससे अपना सर्वविधि कल्याण होना मानते हैं। यह सब शिवपुराणकी ही महिमा है।

## निष्पत्तिसित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दें—

१—यह याद रखिये कि शिवपुराण कोई साधारण किताब या पोथी नहीं है, यह एक बड़ा ही पवित्र तथा आदरणीय ग्रन्थ है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णका वाच्मयस्तरूप है तथा श्रीरामायण भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुका साक्षात् स्तरूप है, उसी प्रकार शिवपुराण भगवान् श्रीशंकरका साक्षात् वाङ्मय-स्तरूप है। शिवपुराणका जितना भी मान-सम्मान किया जाय, थोड़ा है। शिवपुराणका तनिक भी अपमान करना मानो साक्षात् श्रीशंकरजीका अपमान करना है।

२—जहाँपर शिवपुराण है, वहाँ समझना चाहिये कि साक्षात् श्रीशंकरजी ही विराजमान हैं। जिस वरमें शिवपुराण है, वह घर तीर्थस्थल है। शिवपुराणकी कथा सुनना भवसागरसे पार होनेका सर्वसुलभ साधन है। शिवपुराणकी कथा वड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ सुननी-सुनानी चाहिये और विचित्र पवित्र शिवलीलाओंको सुनकर श्रीशंकरप्रेममें निमग्न हो जाना चाहिये। शिवजीकी द्वितीय लीलाओंमें तनिक भी शङ्का नहीं करनी चाहिये। इन लीलाओंका रहस्य भगवान् शिवकी कृपासे ही शिवभक्त

समझ पाते हैं, साधारण प्राणी नहीं समझ सकते। इसलिये शान्तिसे बैठकर सुननेमें ही सच्चा कल्याण है।

३—यदि कोई ऐसी जातिमें हैं, जिनको शास्त्र-मर्यादानुसार अधिकार नहीं है, उनको इस पवित्र प्रन्थका स्थाय अध्ययन नहीं करना चाहिये। शास्त्रमर्यादाका भङ्ग करना बड़ा दोष है। जिन घरोंमें मुर्दे पशुओंको चीरा-फाड़ा जाता है, उनकी खाल उतारी जाती है, घर दुर्गन्धसे भरा रहता है तथा जहाँ अपवित्र गंदी चीजें रहती हैं, वहाँ शिवपुराणको रखकर उसका तिरस्कार करना उचित नहीं। ऐसी अवस्थामें भगवान् शिवके पवित्र नामकी रटन लगाकर तथा शिवपुराणकी आज्ञाका अनुसरण करके जीवनको पवित्र करना चाहिये।

४—खजुला माता-बहनोंको भी पवित्र शिवपुराणके हाथ नहीं लगाना चाहिये। जूते पहने शिवपुराण नहीं

पढ़ना चाहिये। जूठे हाथोंमें लेकर नहीं पढ़ना चाहिये। पढ़ते समय भूलकर भी थूक लगाकर पृष्ठ नहीं बदलने चाहिये। बीड़ी-सिगरेटका धुआँ उड़ाते नहीं पढ़ना चाहिये। पवित्र शिवपुराणको पैरोंकी ओर कभी नहीं रखना चाहिये। अश्रद्धालू अनधिकारीको कभी नहीं सुनाना चाहिये। विश्वासपूर्ण हृदयवाले सनातनधर्म विद्वान् ब्राह्मणके द्वारा शिवपुराण सुननेसे बड़ा लाभ है सकता है।

५—शिवपुराणको शुद्ध पवित्र वस्त्रमें लपेटकर शुद्ध पवित्र स्थानपर रखना चाहिये। इसे बाजारोंमें रद्दीमें बेचन महाद्वारा पाप मानना चाहिये। शिवपुराणमें जो कुछ लिखा है उसे अक्षर-अक्षर सत्य मानना चाहिये। समझने-न-आये तो भी शङ्का नहीं करनी चाहिये।

ब्रोलो सनातनधर्मकी जय !

## कालिदासोक्त कुमारसम्भवगत भगवान् शिवजीका विलक्षण स्वरूप\*

( लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा )

भिषुकोऽपि सकलेष्वितदाता  
प्रेतभूमिनिलभ्योऽपि पवित्रः ।  
भूतमित्रमपि योऽमयसत्र-  
स्तं विचित्रचरितं शिवमीडे ॥

असाधारण महात्मा एवं हिंदू-देवताओंके व्यक्तित्व, रूप तथा आनुषङ्गिक सभी बातें प्रायः आधुनिक लोगोंकी दृष्टिमें धृष्टित, विकृत तथा अरुचिकर प्रतीत होने लगी हैं। चतुर्भुज विष्णु और चतुर्मुख ब्रह्मा भी इसके अपवाद नहीं हैं। षष्ठ्यमुख कार्तिकेय तो और भी आगे बढ़ जाते हैं, किंतु त्रैलोक्यवन्द्य नटनागर त्रिभंगी श्रीकृष्ण तथा प्रयम-दूज्य गणेश भी इसके अपवाद नहीं हैं। परंतु अशुतोष

शिवजी तो तथा कथित रूपमालामें शिरोमणि ही हैं। उनका तो रूप और शृङ्खला, आवासस्थान एवं भौजन आदि सभी कुछ अद्भुत और विचित्र हैं। अतएव उनको समझना-समझाना असम्भव नहीं तो दुःसम्भव अवश्य है। यही कारण है कि युगोंके बाद इस क्षण भी हम उन्हें अच्छी तरह नहीं समझ पा रहे हैं। प्राचीन मनीषी, साधक विद्वान् और ग्रन्थकार भी उनके विषयमें ‘यह इतना और ऐसा ही है’—यों नहीं कह सके। महिमाका पार न पा सके। सच है किसी भी लोकातीत तत्त्व-वस्तुको तत्त्वतः समझ सकना कठिन ही है।†

\* यह शास्त्रोक्त वात है कि ऋषिकल्प महाएरुप ही वास्तविक कवि हो सकता है और वही मन्त्रदृष्टा ऋषिको तरह आधिभौतिक, आधिदैविक और आव्यासिक व्यक्तित्वको हृदयके नेत्रोंसे पूर्णतः देख सकता है। हमारे महाकवि कालिदास भी ऋषिकल्प व्यक्ति थे। यही कारण है कि वे शिवजीके विभिन्न गुण तथा सदाशिवके व्यक्तित्वको ठीक तरह समझ सके तथा चिन्तित भी कर सके। वह भी समन्वय-सामज्ञस्पृष्टि। वह स्मरण रखना चाहिये कि कालिदासकी रचनाका आधार ‘महा-शिवपुराण’ ही है।

+ अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विपन्ति मन्दाश्रितं महात्मनाम् ॥

( कुमारसम्भव )